GL H 617.7
VAI
125771
LBSNAA

श्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी
Academy of Administration
मसूरी
MUSSOORIE
पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. — 125771 ~~140024~~
वर्ग सख्या
Class No. GL H 617.7
पुस्तक संख्या
Book No. VAI वैद्य

नेत्र रोग विज्ञान

लेखक

स्व. डा. जादव जी हंसराज वैद

D.O.M.S. (LON.)

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमाला का अष्टम पुष्प ।

प्रकाशक
कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय
पो० कालेडा-बोगला, (जि० अजमेर)

प्रथम संस्करण । २००० प्रति सन् १९४९ ई०

मूल्य सजिल्द १५) रु०

मुद्रक
सत्य पाल शर्मा

वजवंदन ।

सुजला सुफला मलयज शीतला शस्य श्यामला मातरम् ।
शुभ्रज्योत्स्नापुलकितयामिनीं फुल्लकुसुमितद्रुमदलशोभिनीम् ।
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीं सुखदां वरदां मातरम् ॥

"वन्दे मातरम्"

नेत्ररोग विज्ञान के लेखक

स्व० डा० जादवजी हंसराज वैद्य

B. A. M. S. (LON.) L. M. & S. (BOMBAY).

[illegible] मेडिकल ऑफिसर [illegible] कच्छ राज्य, बम्बई यूनिवर्सिटी के M. B. B. S. [illegible] के पारितोषिक, बम्बई सायन्स की आंखों के अस्पताल, मोतिया जनरल होस्पिटल तथा [illegible] डी. [illegible] पारसी जनरल होस्पिटल के नेत्र रोगों के अवैतनिक डाक्टर।

जन्म स्थान कच्छ, भुज
ता० [illegible]-[illegible]-८८ ई०

निधन स्थान बम्बई
ता० [illegible]-८-४६ ई०

भारतीय वैद्यक साहित्य की

समुन्नति के इच्छुक

गुणग्राही

वैद्यों की सेवा में

समर्पित ।

अनुवादक

(स्व० लेखक की इच्छानुसार)

निवेदन

"नेत्ररोग विज्ञान" हिन्दी साहित्य और आयुर्वेदिक-जगत में अपने ढङ्ग का एक अद्भुत ग्रन्थ साबित होगा। हिन्दी भाषा में आज इस प्रकार के ग्रन्थों की कितनी आवश्यकता है, यह राष्ट्र के प्रत्येक वैज्ञानिक और शुभ-चिन्तक पर भली भांति प्रगट है। हमारे भारत पर सैकड़ों वर्ष के विदेशीय और विजातीय शासन के परिणाम स्वरूप हमारी प्रत्येक अवस्था में अवनति हुई है। समय के साथ उन्नति करते जाने के स्थान पर हम अपने ज्ञान, विज्ञान और कला-कौशल के अनेक महत्वपूर्ण अंशों को खो बैठे हैं। ऐसा स्वीकार करते समय हमें किसी प्रकार की लज्जा अनुभव नहीं करनी चाहिये। अपितु यह एक गर्व की बात है और स्वयं हमारी महत्ता प्रगट करती है कि इतने अत्याचारों के होते हुए भी अपने विज्ञान को इस अवस्था तक बचा सके हैं कि अब भी संसार के विचारशील पाश्चात्य देशों के वैज्ञानिक यह स्वीकार करने का साहस करते हैं कि अब भी हम पूर्व से कुछ सीख सकते हैं।

जीवन के प्रत्येक पहलू की भांति भारत का चिकित्सा शास्त्र भी इस काल के प्रभाव से अछुता नहीं रह सकता था। इसी के परिणाम स्वरूप आयुर्वेदिक जगत में आज कोई ऐसा विद्वान् नहीं है कि जिसको इस विषय का सर्वाङ्ग ज्ञान हो और जो इस प्रकार के अधिकार पूर्ण ग्रन्थ लिख सकें। इस कठिनाई को महसूस करके हिन्दुस्तान के सुप्रसिद्ध नेत्ररोग विशेषज्ञ डा० जादवजी हंसराजजी से नेत्ररोग पर एक प्रमाणिक ग्रन्थ लिख देने के लिये निवेदन किया गया। स्वर्गीय (हमें दुख है कि, लेखक का ता० १४-७-४६ में देहान्त होगया है), सेवाभावी और राष्ट्र के शुभचिन्तक डाक्टर साहब ने कठोर परिश्रम करके यह ग्रन्थ गुजराती भाषा में लिखकर इस लोकोपकारी संस्था को समर्पित कर दिया। पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराज ने अथक परिश्रम करके इसका हिन्दी में अनुवाद किया है। स्वर्गीय डाक्टर साहब ने ३० वर्ष पूर्व गुजराती में 'नेत्ररोग' नामक पुस्तक लिखी थी। परन्तु इसके पश्चात् नेत्ररोग के सम्बन्ध में बहुत अन्वेषण हुआ। अनेक औषधियां और साधनों की शोध हुई है। इस हेतु से यह ग्रन्थ बिल्कुल नये ढङ्ग से नवीन ही लिखना पड़ा है। आदरणीय डाक्टर साहब ने राष्ट्र, समाज और आयुर्वेद की उन्नति के लिये निष्काम भाव से यह ग्रन्थ लिख दिया है। इस हेतु से हम उनके बहुत आभारी हैं। यह ग्रन्थ आयुर्वेद के विद्वानों और विद्यार्थियों को

अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो, इस दृष्टि से इसका लेखन किया गया है। आशा है इस ग्रन्थ के प्रकाशन से हिन्दी साहित्य और आयुर्वेदिक जगत की एक कमी पूर्ण होगी।

लगभग ३ वर्ष से इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। सर्व प्रथम यह ग्रन्थ अजमेर के एक प्रेस को दिया गया। ४ फार्म छप जाने पर छपाई और अशुद्धियां देखकर अनुभव हुआ कि यह कार्य इस प्रेस की शक्ति से बाहर की वस्तु है। अतः ४००) का घाटा सहन करके भी उस प्रेस से पुस्तक वापस ले ली गई। और छपे हुए फार्म रद्दी के समान काम में लाये गये। पत्पश्चात् यह कार्य कान्ति प्रेस, आगरा को दिया गया। आधा ग्रन्थ छप जाने के पश्चात् काग़ज समाप्त हो गया। काफी परिश्रम करने पर भी समान जाति का काग़ज न मिल सका। और लगभग ८ मांह तक यह कार्य रुका रहा। इस प्रकार एक के बाद एक बाधा आजाने से ३ वर्ष का लम्बा समय निकल गया।

ग्रन्थ के रंगीन चित्रों के ब्लोक्स बनाने का कार्य "मुरारी फाइन आर्ट वर्क्स, देहली" को दिया गया। परन्तु ग्रन्थ तैयार हो जाने के अन्त तक आवश्यक सामग्री और साधनों के अभाव के कारण रंगीन ब्लोक्स तैयार न हो सके। अन्त में निराश होकर शीघ्रता में सब एक रंगी ब्लोक्स बनवाकर ग्रन्थ में दे देने पड़े हैं। इसके लिये प्रेमी और दयालु पाठकों से हम क्षमा मांगते हैं।

ग्रन्थ में कुछ स्थानों पर पुनरावृत्ति दोष आगया है। एवं गुजराती पर से हिन्दी अनुवाद करते समय इस भय के कारण कि, कहीं लेखक का मूल आशय ही परिवर्तित न हो जाय या प्रमादवश भूल न हो जाय, अनेक स्थानों पर भाषा में शिथिलता आगई है। इसके अतिरिक्त छपाई शुद्ध हो इस बात पर पूर्ण लक्ष्य रखा गया है; फिर भी अनेक स्थानों पर दृष्टि दोष और प्रमादवश मुख्यतः इङ्गलिश स्पेलिंग के कम्पोज़ में भूल रह गई है। इन कमियों को दूसरे संस्करण में यथाशक्ति दूर कर देने का प्रयत्न किया जायगा।

अगर डाक्टर साहब की जीवितावस्था में इस ग्रन्थ का प्रकाशन हो जाता है तो स्वयं उनके द्वारा दूसरे संस्करण का संशोधन किया जाता, भूलों की याद दी जाती। इसके अतिरिक्त डाक्टर साहब को प्रसन्नता होती? ग्रन्थ प्रकाशन हो जाने के पश्चात् उन्होंने कान, नाक और कण्ठ के रोगों पर भी एक विशेषज्ञ द्वारा ग्रन्थ लिखवा देने का आश्वासन दिया था। परन्तु ईश्वर की माया अपरम्पार है। उसकी इच्छा इसके विपरीत ही थी। इसलिये काफी

प्रयत्न करने पर भी हम ऐसा करने में समर्थ न हो सके। इसका हमें सर्वदा दुःख रहेगा।

इस ग्रन्थ में चित्र "मैं एण्ड वर्थ और परसन" के डाक्टरी ग्रन्थों पर से लिये गये हैं। अतः हम इन ग्रन्थकारों के आभारी हैं। डाक्टर साहब ने उनके साथ पत्र-व्यवहार करके स्वीकृति ले ली या नहीं, यह हम उनकी अकस्मात् असामयिक मृत्यु के कारण नहीं जान सके। कुछ ब्लोक लेखक के पास थे वह हमें उनके सुपुत्र मुरार जी भाई ने देने की कृपा की है। एवं कुछ ब्लोक्स इन्होंने "बाम्बे सर्जिकल हाऊस" से माँग कर १ मास के लिये भेज देने का कष्ट किया है। अतः हम उनके आभारी हैं। एक मास की अवधि में हमको ये सब ब्लोक्स लौटा देने थे। अतः इन सबको एक ही स्थान पर छपवाकर ग्रन्थ में लगा देना पड़ा है। इस असुविधा के लिये पाठक हमें क्षमा करें।

ग्रन्थ स्वर्गीय लेखक की इच्छानुरूप बन सका है या नहीं, यह तो अब एक प्रश्न मात्र ही रह गया है। यदि आयुर्वेदिक जगत ने इसे अपनाया और माता सरस्वती के हिन्दी साहित्य भण्डार में इससे कुछ वृद्धि होकर इस ग्रन्थ द्वारा ज्ञान पिपासु पाठकों को कुछ भी लाभ मिला तो निश्चय ही उनके आशीर्वाद से स्वर्गीय आत्मा को अपूर्व तृप्ति और गर्व अनुभव होगा।

लेखक ने ग्रन्थ निष्काम सेवाभाव से लिखा था। अतः आज उनकी आज्ञानुसार ही हमें इसे वैद्य समाज के सामने रखते हुये प्रसन्नता है।

महासमर के पश्चात् की बढ़ती हुई महंगाई के कारण कागज, छपाई, जिल्द और ब्लोक्स आदि में हमको बहुत खर्चा करना पड़ा है। इसलिये निरुपायवश हमें इस ग्रन्थ का मूल्य १५ रु० रखना पड़ा है।

अन्त में पुनः स्वर्गीय डाक्टर साहब के लिये हम पुनः आभार प्रकट करते हैं और दयालु प्रभु से प्रार्थना करते हैं कि उनकी आत्मा को चिरकालीन शान्ति और सुख प्रदान करें।

कालेडा-बोगला
(अजमेर)
ता० १-८-४९

निवेदक
ठा० नाथूसिंह
मैनेजिंग ट्रस्टी

नेत्ररोग विज्ञान के लेखक—

स्व० डाक्टर जादवजी हंसराजवैद्य

की

संक्षिप्त जीवनी

-:❀:-

जननी जणे तो भक्त जण, के दाता के सूर।
न तो रीजे बाँझड़ी, मत गमावे नूर॥

ग्रन्थ-लेखक डाक्टर जादवजी भाई का जन्म कच्छ स्टेट की राजधानी भुज शहर में विक्रम संवत् १९३९ आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा, तदनुसार ता० २३-७-१८८३ को हुआ था। आपके पिता का नाम हंसराज भाई, दादा का नाम आणंदजी भाई और माता का नाम प्रेमाबाई था।

हंसराज भाई कच्छ के महाराव श्री प्रागमलजी और महाराव श्री खेंगारजी तृतीय के निजी वैद्य और राजकुटुम्ब के वैद्य थे। वे गरीब जनता और मध्यम वर्ग में भी अति लोकप्रिय थे। महाराव, उनके कुटुम्बी समूह और प्रजाजन इन सबका आपकी चिकित्सा में अति विश्वास था। रोगों का निदान करने में सिद्धहस्त थे एवं निष्काम भाव से सप्रेम चिकित्सा करते थे, जिससे इनकी औषधियाँ रामबाण के समान कार्य करती थीं।

ग्रन्थ-लेखक जादवजी भाई बाल्यावस्था से ही श्रद्धासम्पन्न, कुशाग्र-बुद्धि और आज्ञाकारी थे। इनकी स्मरणशक्ति अद्भुत थी। किसी भी कठिन विषय को जल्दी समझ जाते थे। इनको विद्याध्ययन पिताजी ने पहले भुज नगर की दरबारी माध्यमिक पाठशाला में कराया और फिर ऑल्फ्रेड हाई-स्कूल में भेजा। १९०० ई० में अहमदाबाद केन्द्र में प्रवेशित (Appear) होकर एण्टरेन्स पास हुए। फिर इनकी इच्छा पुत्र को आयुर्वेद का अभ्यास करा तथा अपना अनुभव देकर कुशल राजवैद्य बनाने की थी, किन्तु इस विचार से जादवजी भाई सहमत नहीं हुए।

इन्होंने पिताजी से पाश्चिमात्य वैद्यक शास्त्र के अभ्यासार्थ निवेदन किया और आज्ञा प्राप्त कर बम्बई में ग्राण्ट मैडीकल कालेज में प्रवेश किया।

१९०४-०५ में बम्बई के भीतर ग्रन्थिज्वर (Plague) की जन-विध्वंसक महामारी ने अति उग्र रूप धारण किया था, फिर भी आप भयभीत या विचलित नहीं हुए। श्री हरि पर श्रद्धा रखकर आपने विद्याध्ययन का त्याग नहीं किया। फिर प्रभुकृपा से आप L. M. & S. की परीक्षा में उत्तीर्ण होकर बम्बई युनिवर्सिटी के स्नातक हुए। कच्छ देशवासियों में और समस्त भाटिया जाति में L. M. & S. होने वाले आप पहले ही थे। इस हेतु से समस्त कच्छी प्रजा और बम्बई भाटिया जाति की ओर से आपको मान-पत्र दिया गया।

फिर आपने अपनी जन्मभूमि भुजनगर में आकर निजी व्यवसाय प्रारम्भ किया। आपमें जन्मसिद्ध नम्रता, सदाचार, रोगियों के प्रति सहानुभूति, दया, उदारता और उत्साह आदि सद्गुण विद्यमान थे। जिससे स्वल्प समय में ही आप जनता के प्रीतिपात्र बन गये। भुजनगर आये थोड़े ही मास हुए थे, उस समय वहाँ के एक विख्यात वकील की पुत्री रुग्णा हुई। जिसे उस समय के कच्छ स्टेट के चीफ मेडिकल आफीसर ने निराशाजनक (Hopeless case) कहकर त्याग दी थी, आपने उसकी चिकित्सा की और उसे मृत्यु-मुख से निकाला। परिणाम में आपकी कीर्ति की सुवास शहर में सर्वत्र फैल गई।

उस समय दैववशात् तत्कालीन युवराज श्री (फिर सद्गत महाराव श्री) विजयराजजी को टेनिस खेलने में रबर की गेंद (Ball) नेत्र पर लग गई। चीफ मेडिकल आफीसर घबरा गये और परिचर्या नहीं कर सके। जिससे जादवजी भाई को बुलाया। आपने अति सम्हालपूर्वक चिकित्सा करके युवराज श्री के नेत्र की रक्षा की और यश को प्राप्त किया। यही नेत्रवैद्य रूप से आपकी स्वभावसिद्ध कुशलता की प्राथमिक सिद्धि और कच्छी जन समाज में आपकी नेत्रवैद्य रूप से यशस्वी चिकित्सा का आरम्भ था।

तत्पश्चात् आपकी उदारता, सेवा-भाव और सफल चिकित्सा को लक्ष्य में रखकर कच्छ राज्य के धनिकों ने कच्छ स्टेट के पुलिस कमिश्नर खान बहादुर रुस्तमजी कोटवाल की सहायता से भुजनगर में नेत्ररोगों की चिकित्सार्थ एक धर्मार्थ चिकित्सालय (Dispensary) स्थापित किया। जिसमें आप सेवाभाव से काम करते थे। जिससे आपको रोगियों का आशीर्वाद मिलता ही रहता था आप निर्धन रोगियों की चिकित्सा भी अति प्रेमपूर्वक करते थे। उनको सान्त्वना देते थे और सहायता पहुँचाते थे। जिनको अपना जीवन भार रूप भासता था उनको दृष्टि प्रदान करके कार्यपरायण बनाते थे। इस हेतु से उस चिकित्सालय का लाभ लेने के लिये रोगी दूर-दूर से आने लगे।

परिणाम में उसे थोड़े ही समय में आतुरालय (Hospital) रूप में परिवर्तित करना पड़ा। फिर निष्काम भाव से और सहानुभूतिपूर्वक सेवा होती रहने से सहस्त्रावधि रोगी प्रति वर्ष आपकी चिकित्सा का लाभ उठाते थे। इस आतुरालय की सेवा ने आपकी कीर्ति को बम्बई, कराची आदि दूर रहने वाली कच्छी प्रजा में पहुँचाई और महाराव श्री की कृपा भी सम्पादन करायी।

१९१२ ई० में पिता जी हंसराज भाई का ५७ वर्ष की आयु में स्वर्गवास हुआ। जिससे समग्र कुटुम्ब के पोषण का भार आपके ऊपर आया। एवं महराव श्री ने अपने और राजकुटुम्ब के वैद्य (Family doctor) रूप से आपको स्वीकार किया। जिससे आपके उत्तरदायित्व में वृद्धि हुई। कुशलता के हेतु से आपको महाराव श्री ने १९१३ ई० संवत् १९७० में कच्छ राज्य के चीफ मेडिकल आफिसर के पद पर नियुक्त किया। ३० वर्ष की छोटी आयु में और कच्छी रूप से इस सम्मान को प्राप्त करने वालों में आप पहले ही थे।

आपने १९२० ई० तक अर्थात् ७ वर्ष पर्यन्त राज के चीफ मेडिकल आफिसर रूप से हृदयपूर्वक चिकित्सा करके और प्रभावशाली प्रबन्धक रूप से व्यवहारकुशलता दर्शाकर कच्छी जनता की सेवा की। आपने मेडिकल डिपार्टमेंट में नाना प्रकार का सुधार किया। आपने लांच लेना बिल्कुल बन्द कराया और राज के समग्र प्रदेशों में ग्राम-ग्राम पर्यटन करके वैद्यक परिचर्या के साधन और सुविधा में वृद्धि कराई।

आप १९२० ई० में इंगलैण्ड गये। वहाँ पर ६ मास रहकर लन्दन की रायल कालेज आफ फिजिसियन्स और सर्जन्स की ओरसे D. O. M. S. की उच्च उपाधि प्राप्त की। आप कच्छ वापस आये फिर विशेष सेवा और उन्नतार्थ उसी वर्ष आप कच्छ राज्य चीफ मेडिकल आफिसर पद से निवृत हुए। फिर बम्बई आकर नेत्ररोग विशेषज्ञ (Ophthalmic surgeon) रूप से व्यवसाय आरम्भ किया।

आपका अनुभव ज्ञान बम्बई के अन्य प्रसिद्ध नेत्र-चिकित्सकों के समान और किसी विषय में अधिक था। रोगियों के साथ का बर्ताव सद्भावपूर्ण था, और चिकित्सा अति लक्ष्यपूर्वक करने का स्वभाव था। इस हेतु से बम्बई में भी कुशल नेत्र-चिकित्सक रूप से आपने थोड़े ही समय में ख्याति प्राप्त की। आप बम्बई युनिवर्सिटी की M. B. B. S. की परीक्षा में अनेक बार नेत्र-रोग परीक्षक रूप से नियुक्त हुए थे। आपने बम्बई की पार्सी जाति की

Bamanji D. pitit parsee general hospital में अवैतनिक नेत्र-वैद्य रूप से सेवा की। इसके अतिरिक्त श्री रामवाड़ी फ्री आई होस्पिटल और भाटिया जनरल होस्पिटल की स्थापना की एवं गुजराती में "नेत्ररोग", "आँखों के सामान्य रोग" और "वैद्यक की विविध बातें" आदि पुस्तकों का प्रकाशन किया।

व्यापारी और औद्योगिक क्षेत्र में भी अपने पुत्र के साथ मिलकर दि बाम्बे सिल्क मिल्स, श्री कच्छ स्पिनिङ्ग एण्ड वीविंग मिल्स और दि बाम्बे एनेमल वर्क्स की स्थापना की। इन सब औद्योगिक संस्थाओं की व्यवस्था हंसराज सन्स नामक फर्म (Firm) द्वारा हो रही है, जिसमें डाक्टर साहिब भागीदार थे।

आपने १९२९ ई० और १९३३ ई० में पुनः यूरोप का पर्यटन किया आपने आस्ट्रिया की राजधानी विएना की नेत्र की अस्पताल में कितनेक समय तक सेवा की। पुनः १९३५ ई० में आदरणीय महाराव श्री के आग्रह के वश होकर कच्छ राज्य के चीफ मेडिकल आफिसर का पद स्वीकार किया। पश्चात १९४२ ई० में हृदयशूल (Angina Pectoris) से पीड़ित होने से कच्छ राज्य से निवृत्त होकर पुनः बम्बई आये। आप उदार, निरभिमानी और सेवा परायण वृत्ति वाले थे। जिससे बम्बई आने पर तुरन्त आपने रामवाड़ी आँख का धर्मार्थ होस्पिटल और भाटिया जनरल होस्पिटल द्वारा जनता की सेवा करने की प्रवृत्ति प्रारम्भ की और मृत्यु पर्यन्त यह सेवा करते ही रहे। इस तरह आपने अपने जीवन काल में दश लक्ष रोगियों को चक्षुदान दिया है।

कच्छ राज्य में क्षय-पीड़ित निर्धन जनता के लिये कोई आश्रय स्थान नहीं था यह आपको सर्वदा शूल की तरह चुभता था। यद्यपि आप पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षा से विभूषित थे, फिर भी आपका हृदय भक्तिप्रधान था। दूसरों के दुःख को देखकर आपका हृदय द्रवीभूत हो जाता था। इस हेतु से अपने सेठ वल्लभदास कृष्णनाथ नाथा को प्रेरित करके कच्छ राज्य के भीतर भारापुर ग्राम में एक सेनेटोरियम की स्थापना कराई।

आपने कच्छ, काठियावाड़, बम्बई और गुजरात में एक राजनीतिज्ञ और प्रखर प्रभावशाली सेवक रूप से और समग्र भारत में नेत्र के सिद्ध अस्त्र-

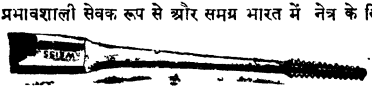

चित्र नं० ३ शुक्लमण्डल घर्षण यन्त्र।

वैद्य रूप से सुयश प्राप्त किया था। आपने नेत्ररोग में उपकारक नूतन शुक्ल-मण्डल घर्षण शस्त्र (Corneal Scraper) का निर्माण किया था, जो इस समय डाक्टर जादव जी स्क्रॅपर के नाम से व्यवहृत होता है। इसका बनाने का अधिकार लन्दन की जोहन ब्रेस कम्पनी को दिया गया है।

श्री कच्छी प्रजाकीय परिषद की संस्थापना में आपने मुख्य भाग लिया था। इस तरह आप में सेवा परायणता जन्मसिद्ध होने से आप देश सेवा और समाज सेवा में सर्वदा तत्पर रहते थे। जिससे अनेक संस्थाओं और मण्डलों की ओर से आपको मानपत्र मिला था।

कच्छ राज्य के अंजार शहर में आपने दो बार नेत्रयज्ञ करके हजारों दीन दुःखी मनुष्यों को चक्षुदान दिया है। अन्तिम नेत्रयज्ञ १९४६ ई० के मार्च मास में किया है।

१९४५ ई० में कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय के संस्थापक श्री० स्वामी कृष्णानन्दजी के साथ पत्र व्यवहार प्रारम्भ हुआ। काय चिकित्सा करने वाले डाक्टर, कायवैद्य और हकीमों को नेत्ररोगों का ज्ञान अति मर्यादित होता है। भारतीय भाषा—गुजराती, हिन्दी, मराठी, बंगाली, संस्कृत, उर्दू, तामिल, तेलगु आदि भाषा में नेत्ररोगों का पूर्ण बोध देने वाली एक भी प्रामाणिक पुस्तक नहीं है। प्राचीन संहिता ग्रन्थों में नेत्ररोग का वर्णन मिलता है किन्तु वह अति स्वल्प है। अतः नेत्ररोग की पुस्तक लिखनी चाहिये। भारत में अधिक प्रचलित भाषा हिन्दी है, जो भविष्य में राजभाषा का पद ग्रहण करेगी। उस भाषा द्वारा आयुर्वेद साहित्य की सेवा करना विशेष उपकारक होगा। उससे छोटे शहरों के डाक्टर, कायवैद्य, विद्यार्थी आदि को चिकित्सा का ज्ञान सरलता से मिल जायगा। इस भाव से प्रेरित होकर आपने नेत्ररोग विज्ञान का गुजराती लेखन निष्काम भाव से किया। जिस पर से कृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय ने अनुवाद करा यह ग्रन्थ वैद्य समाज की सेवा में समर्पित किया है।

यह ग्रंथ डाक्टर साहब का सच्ची सेवा वृत्ति का प्रतीक है। आपका यह सच्चा दान है। आयुर्वेद समाज आपका ऋणी है। इस ग्रंथ के अध्ययन करने वालों के अन्तःकरण में आपकी स्मृति बनी रहेगी।

आपकी इच्छा अपने जीवन काल में ही हिन्दी संस्करण को देख लेने की थी। हृदयशूल के हेतु से जीवनयात्रा दीर्घकाल स्थाई नहीं है, यह आपका अनुभव था। इसलिये यह सेवा अपूर्ण न रह जाय, इस भय से भाषा

की शुद्धि पर भी आप लक्ष्य नहीं दे सके। आपने व्यवसाय के समय को कम करके इस सेवा को अधिक महत्त्व दिया। इस तरह यह लेखन कार्य समाप्त किया। अनुवाद भी साथ-साथ होता गया। किन्तु प्रयत्न करने पर भी कागज और प्रेस की छपाई का प्रबन्ध न हो सका। यदि आपको प्रकाशित पुस्तक मिल जाती, तो भावी संस्करणों के लिये संशोधिन परिवर्द्धन कर देते। यह आपकी अन्तिम इच्छा अपूर्ण ही रह गई।

हमें लिखने में अति दुःख होता है कि विक्रम संवत् २००३ के भाद्रपद (गुजरात में २००२ के श्रावण) कृष्ण पक्ष द्वितीया (ता० १४-८-४६) आपको हृदयशूल का प्रबल आघात हुआ और हृदय गति बन्द हो गयी उसी समय नश्वर देह तथा विधवा स्त्री और पुत्र आदि परिवार का आपने याग किया। श्री हरि आपकी दिवंगत आत्मा को अविचल शान्ति प्रदान करें तथा वैद्य समाज की ओर से शुभ कामना और ग्रन्थ प्रकाशन का पुण्य प्रद समाचार प्रेरित करें, यह प्रभु प्रार्थना है।

बम्बई
ता० १-५-४९

विनीतः—
मुरारजी जादवजी वैद्य
(ग्रन्थकार के पुत्र)

❀ ॐ ❀

नेत्र रोगविज्ञान प्रकरण सूची

प्रकरण	विषय	पृष्ठांक
१	नेत्र और उसके उपांगों की रचना	१
२	नेत्र और उसके उपांगोंका कर्तव्य	४५
३	दृक् शास्त्र के नियम	५८
४	नेत्र परीक्षा	६४
५	नेत्ररोग चिकित्सा	१२६
६	नेत्ररोग संप्राप्ति विज्ञान	१६७
७	नेत्रनिदान (कारण विज्ञान)	२०८
८	नेत्ररोगोत्पादक कीटाणु विज्ञान	२१६
९	नेत्रश्लेष्मावरणके रोग	२२८
१०	पोथकी, रोहे	२७३
११	शुक्लमण्डल के रोग	२९५
१२	नेत्रबाह्यपटल के रोग	३८१
१३	तारामण्डल और तन्तुमय समूहके रोग	३९९
१४	नेत्रमध्यपटलके रोग	४२७
१५	समदुःखी चक्षुप्रदाह	४३८
१६	दृष्टिमणिके रोग	४४३
१७	काँचरूपरस के रोग	५०४
१८	अधिमन्थ	५१०
१९	नेत्रदर्पण के रोग	५४२
२०	दर्शननाड़ी के रोग	५७५
२१	अक्षिपुट के रोग	५९३
२२	अश्रुजनकपिण्ड और अश्रुवाहक अवयवों के रोग	६२३
२३	नेत्रकी मांसपेशियोंके रोग	६३७
२४	नेत्रगृहके रोग	६७५
२५	नेत्र के अज्ञातरोगज अन्धता	६९५
२६	मस्तिष्क और सुषुम्णाकांडकी व्याधियों से नेत्ररोग	७०६
२७	शारीरिक रोगोंके साथ उत्पन्न नेत्ररोग	७१५

प्रकरण	विषय	पृष्ठांक
२८	उपनेत्र विद्या (चश्मा)	७२२
२९	चश्मेके उपयोगसे अच्छे होने वाले विकार	७४८
३०	नेत्र और उपांगोंकी शस्त्रचिकित्सा	७७०
३१	नेत्ररक्षा	पृष्ठांक शेष
३२	परिशिष्ट	परिशिष्टके पृष्ठ १
३३	पारिभाषिक शब्दकोष	,, ,, १७

१-नेत्र और उसके उपाङ्गों की रचना

१—नेत्रगोलक २

अ. शुक्लमण्डल। आ. नेत्रबाह्यपटल। इ. तारामण्डल। ई. तन्तुमयसमूह। उ. नेत्रमध्यपटल। ऊ. नेत्रदर्पण। ए. जलमय रस का पूर्वखण्ड। ऐ. जलमय रस का पश्चिम-खण्ड। ओ. दृष्टिमणि-यवकाँच। औ. दृष्टिमणि-आवरण। क. काँचरूपरस-सान्द्रजल। ख. दर्शननाड़ी। ग. दर्शननाड़ी का सिरा।

२—नेत्रगोलककी धमनी, शिरा आदि २२

अ. नेत्रदर्पण मध्यस्था धमनी। आ. संधानिका धमनी। इ. शिराएँ। ई. रसवाहिनियाँ। उ. वातनाड़ी।

३—नेत्रकी माँसपेशियाँ २७

४—नेत्र श्लेष्मावरण २९

५—पलक-नेत्रच्छदौ ३१

६—भ्रू-भौं ३३

७—अ. अश्रुजनक पिण्ड ३४

,,—आ. अश्रुद्वार ३५

,,—इ. अश्रुवाहक नलिका ३६

,,—ई. अश्रुवाशय ३३

८—नेत्रगृह ३७

९—नेत्रसे सम्बन्ध वाले मस्तिष्क प्रदेश ४०

अ. दर्शननाड़ी संगम। आ. दर्शनप्रबन्ध। इ. बाह्यग्रन्थल भाग। ई. चतुर्गुण समूह। उ. उच्च दर्शनकेन्द्र स्थान।

विषय पृष्ठांक

२-नेत्र और उपाङ्गोंका कर्तव्य। ४५

१—दृष्टिसे सम्बन्धवाले अवयव ४५

अ. शुक्लमण्डल का कर्तव्य। आ. जलमय रसका कर्तव्य। इ. तारामण्डलका कर्तव्य। ई. तन्तुसमूहका कर्तव्य। उ. दृष्टिमणि का कर्तव्य। ऊ. दृष्टिमणि के उद्बन्धन का कर्तव्य। ए. नेत्रमध्यपटल का कर्तव्य। ऐ. नेत्रदर्पण का कर्तव्य। ओ. काँचरूप रसका कर्तव्य। औ. दर्शननाड़ी आदि का कर्तव्य।

२—नेत्रगोलकके संचालक भागोंका कर्तव्य ५३

३—नेत्रगोलकको आर्द्र रखनेवाले भागोंका कर्तव्य ५४

४—नेत्रगोलकके संरक्षक अवयवोंका कर्तव्य ५५

५—नेत्रगोलकके आकृति और कठिनताके संरक्षक अङ्गोंका कर्तव्य ५६

३-दृक् शास्त्र के नियम ५८

४. नेत्रपरीक्षा ६४

१—शुक्लमण्डलकी परीक्षा ७०

२—जलमयरसके पूर्वखण्डकी परीक्षा ७४

३—तारामण्डल की परीक्षा ७५

४—कनीनिका की परीक्षा ७६

५—दृष्टिमणि की परीक्षा ७९

६—नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा ८३

७—मोर्टन का नेत्रदर्शक यन्त्र ८५

८—प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षा ८६

९—प्रत्यक्ष परीक्षा ८८

अ. दर्शननाड़ी की परीक्षा। आ. धमनी-शिरा की परीक्षा ८९

१०—प्रत्यक्ष परीक्षा ९१

११—नेत्रान्तर दबाव का नाप निर्णय ९४

१२—दृष्टि परीक्षा १००

अ. रंगदृष्टि की परीक्षा। आ. प्रकाश दृष्टि। इ. दृष्टिक्षेत्र की परीक्षा। ई. परीक्षोपयोगी रोग।

१३—अन्धप्रदेश १०८

विषय पृष्ठांक

१४—शुक्लमण्डलका अणुवीक्षणयन्त्र १२२

१५—प्रतिप्रकाश यन्त्रसे परीक्षा १२४

५—नेत्ररोग चिकित्सा १२६

अ. सार्वाङ्गिक उपचार १२६

१. पथ्यापथ्य (खुराक)। २. विश्रान्ति। ३. व्यायाम। ४. नेत्ररोगोत्पादक विकारके देहगत मल को दूर करना। ५. मुखसे देने योग्य औषध। पारदप्रधान औषध। मल्लप्रधान औषध। बिस्मथप्रयोग। आयोडाइड प्रयोग। १२६ से १४०

दाह—शोथहर औषधियाँ—प्र. उपदंश विकारघ्न। आ. सेलीसिलास आदि। इ. प्रथिन (दुग्धादि)का अन्तःक्षेपण। ई. गव्य (वेक्सिन) और रसी। उ. कीटाणुनाशक औषधियों का अन्तःक्षेपण। ऊ सल्फोनेमाइड वर्ग। ए. पेनीसिलिन। पृ० १४१ से १४८

वेदनाशामक औषध। रक्तप्रणाली प्रसारक औषध। रक्त की घनत्वजनक औषधियाँ। वातसंस्थाउत्तेजक औषध। मधुमेहज नेत्रप्रदाह नाशक। पृ० १४९ से १५२

६. सूचीवेधार्थ औषधियाँ १५३

७. विविध रक्त-रस गव्यादिका उपयोग। ८. रक्तमोक्ष शिरामोक्ष। ९. कृत्रिमज्वर।

आ. नेत्रके स्थानिक उपचार १५४

१० शीतोष्ण प्रयोग ,,

११ औषधोपचार १५५

जलमिश्रित बूंद। तैलमिश्रित बूंद। मल्हम। अंजनचूर्ण। (कीटाणु नाशक, ग्राही, चेतनाहर, कनीनिका प्रसारक, कनीनिका संकोचक, शोषण-लेखन, पीड़ा-शामक, शोथहर, रक्तप्रणालीप्रसारक, रक्तप्रणाली आकुंचक, नेत्रान्तरदबाव-शामक।) पृ० १५६ से १८४

१२. नेत्र के भीतर अन्तःक्षेपण। १३. विद्युच्चिकित्सा। १४. नेत्रगोलक का मर्दन। १५. प्रकाशचिकित्सा। १६.

विषय	पृष्ठांक
१६—शु-क्रिया चिकित्सा। १७. शस्त्रोपचार।	पृ १८४ से १९७
६-नेत्ररोग सम्प्राप्ति विज्ञान	**१९७**
१—आयुवृद्धिके साथ नेत्रांगों का परिवर्त्तन	१९८
२—रक्तवाहिनियों में होनेवाला परिवर्त्तन	१९९
अ. अभिघातज परिवर्त्तन। आ. जराजन्य परिवर्त्तन। इ. शारीरिक व्याधिजनित परिवर्त्तन।	२०१
३—वातसंस्था विकृतिजनित नेत्ररचना परिवर्तन	२०१
४—अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियोंकी विकृतिजनित परिवर्त्तन	२२०
५—विषोत्पादित अन्धता	२०३
६—पोषक तत्वोंकी न्यूनतासे नेत्रमें परिवर्तन	२०४
७—विविध नेत्रार्बुद	२०५
८—संक्रामक संसर्ग जनित व्याधियाँ	२०६
७-नेत्र निदान	**२०८**
१—जन्मलब्ध विकृति	२०८
२—भौतिक व्यथा	२०९
३—यान्त्रिक व्यथा	२१०
४—रासायनिक द्रव्यसे व्यथा	२१२
५—कीटाणुजन्य व्यथा	२१४
६—प्रकान्तिजन्य विकृति	२१७
७—ग्रन्थियाँ-अर्बुद	२१८
८-नेत्ररोगोत्पादक कीटाणु विज्ञान	**२१९**
१—नेत्ररोगोत्पादक कीटाणुओंका संक्षिप्त परिचय	२२४
९-नेत्रश्लेष्मावरण के रोग	**२२८**
१—नेत्रश्लेष्मावरण में रक्तसंग्रह	२२८
२—नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२२९
३—नेत्रकोणगत श्लेष्मावरण प्रदाह	२३४
४—न्युमोकोकसजनित नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२३५
५—चिरकारी प्रसेकज श्लेष्मावरण प्रदाह	२३७
६—दानेदार श्लेष्मावरण प्रदाह	२३९

विषय	पृष्ठांक
७—पूयमेहज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२४१
अ० बालकों का पूयमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२४१
आ० वयस्कोंके पूयमेहज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२४५
८—कण्ठ रोहिणीजन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२५०
९—शिथिल कृत्रिम कलामय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२५२
१—पिडिका क्षतमय अभिष्यन्द	२५४
११—नेत्रश्लेष्मावरण की शेष व्याधियाँ	२५८
अ. पेरीनोडका नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह। आ. मस्तिष्कावरण प्रदाह जनित नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह। इ. नेत्रश्लेष्मावरण का कक्ष। ई. नेत्रश्लेष्मावरण का उपदंश। उ. नेत्रश्लेष्मावरण का क्षय। ऊ. नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे रक्तस्राव। ए. नेत्रश्लेष्मावरण में अर्श आदि। ऐ. शीतला जनित नेत्रश्लेष्मावरण और शुक्लमण्डल के रोग।	
१२—नेत्रश्लेष्मावरण की आगन्तुक व्यथा	२६४
अ. नेत्रश्लेष्मावरण के अभिघातज क्षत। आ. नेत्रश्लेष्मावरण का जलना। इ. नेत्र में बाह्य पदार्थ का प्रवेश। ई. नेत्रश्लेष्मावरण पर विषाक्त गैसजनित असर।	
१३—नेत्रश्लेष्मावरण की शुष्कता	२६७
अ. गर्भ भाग में शुष्कता। आ. उत्तान वृत्तिगत शुष्कता।	
१४—अर्म—वेल	२६९
१५—पिष्टक—पीतबिन्दु	२७१
१६—गोलक और पलक के आवरण की संलग्नता	२७२
१-पोथकी—रोहे—ट्रेकोमा	२७३
१-५ प्रकार, लक्षण-चिह्न, कारण, क्रम, रोग विनिर्णय।	२७३
६—उपद्रव	२७९
अ. सफेदी। आ. शुक्लमण्डल क्षत। इ. परवाल और पलक का भीतर या बाहर मुड़जाना। ई. पलक धारा का पाक। उ. पलक और गोलक की संलग्नता। ऊ. नेत्रश्लेष्मावरण की शुष्कता। ए. अश्रुवाशय प्रदाह।	२८३

विषय पृष्ठांक

७—पोथकी-रोहा चिकित्सा २८३

८—शस्त्रोपचार २८८

९—कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह २९१

११-शुक्लमण्डल के रोग २९५

१—जन्मजात शुक्लमण्डल की अस्वाभाविकता २९५

२—शुक्लमण्डल प्रदाह २९६

१—व्रतसहित शुक्लमण्डल प्रदाह २९६

(a) शुक्लमण्डलके प्राथमिक व्रत। अ. सामान्य व्रत। आ. परिसरणशील व्रत, चक्राकार व्रत। इ. शुक्लमण्डल के गम्भीर व्रत, शुक्लमण्डल के गम्भीर भाग का पूय प्रदाह। ई. शुक्लमण्डल का गलन, उ. वातनाड़ी स्तम्भ जनित व्रत। ऊ. नेत्रगोलक खुला रहने से उत्पन्न व्रत। ए. शुक्लमण्डल की परिधि के व्रत, (उत्तान परिधि व्रत, गम्भीर परिधि व्रत, संक्रामक व्रत, तारुण्य पिटिका जन्य व्रत, पिटिका व्रत)। ऐ. स्फोटमय शुक्लमण्डल प्रदाह। ओ. शुक्लमण्डलका दुष्टव्रण। पृ० ३१० से ३२८

(b) शुक्लमण्डलके अनुषंगी व्रत ३२९

अ. नेत्रश्लेष्मावरणका प्रसेकज व्रत, आ. पोथकी जन्य व्रत इ. बसन्तोद्भूद व्रत। ई. पूयमेह और कंठरोहिणी जन्य व्रत, उ. शुक्लमंडल का स्फोटक। ऊ. कक्षाजन्य और अन्य प्रदाह (वृत्ताकार प्रदाह, कक्षाजन्य प्रदाह, शुक्लमंडलका अन्य प्रकारका प्रदाह)। ए. क्षयजन्य शुक्लमंडल के व्रत।

पृ ३२९ से ३३६

२—व्रतरहित शुक्लमंडल प्रदाह ३३७

(१)बाह्य विन्दुमय शुक्लमंडल प्रदाह, शुक्लमंडलका गम्भीर बिन्दुमय प्रदाह। ३३९

(२) शुक्लमंडल के गर्भ भागका प्रदाह अ. इन्फ्लूएञ्जाके उपद्रव जनित प्रदाह, आ.शुक्लमंडलके गहरे भागका प्रदाह, इ. परिधि के गंभीर भागका प्रदाह, ई. शुक्लमंडल के गहरे भाग का पूयमय प्रदाह, उ. गम्भीर भागका पिटिकामय अन्तर्भरण।

विषय पृष्ठांक

२ नेत्रबाह्यपटल प्रदाहसह शुक्लमंडल प्रदाह २४६

३—शुक्लमंडलकी अपारदर्शकता—शुक्र—फूला ३५०

४—शुक्लमंडलकी आगन्तुक व्यथा ३६४

अ. शुक्लमंडलमें बाह्य पदार्थ का प्रवेश। आ. शुक्लमंडल के घर्षण क्षत। इ. शुक्लमंडल के घाव। ई. शुक्लमंडल का जलना।

५—शुक्लमंडलके पोषणकी न्यूनताजन्य रोग ३७१

अ. वार्धक्यजन्य शुक्लमंडल की परिधि की अपारदर्शकता आ. युवावस्था में शुक्लमंडल की परिधि की अपारदर्शकता। इ. शुक्लमण्डल की प्राथमिक मेदोप्रक्रान्ति। ई. मेदमय सफेदी। उ. पट्टी सदृश अपारदर्शकता। ऊ. रजत क्षारज श्यामता। ए. लोह भस्मज पिंगलता।

६—शुक्लमण्डलका बहिर्निःसरण ३७५

अ. शुक्लमण्डल का पूर्ण निःसरण। शंकाकार शुक्लमण्डल।

७—शुक्लमण्डलगत अर्बुद ३८०

१२—नेत्रबाह्यपटल के रोग ३८१

१—नेत्रबाह्य पटलका उत्तान प्रदाह ३८२

२—नेत्रबाह्य पटलका गंभीर प्रदाह ३८५

३—नेत्रबाह्यपटल की आगन्तुक व्यथा ३८५

४—नेत्रबाह्य पटलका प्रलम्बन ३९६

५—नेत्रबाह्य पटलके अर्बुद ३९८

१३—तारामण्डल और तन्तुसमूह के रोग ३९८

१—जन्मलब्ध न्यूनता ३९९

अ. कनीनिका के आवरण का अस्तित्व। आ. तारामण्डल के जन्मलब्ध छिद्र। इ. तारामण्डल का अभाव। ई. कनीनिका का स्थलान्तर। उ. कनीनिका की कृष्ण धारा का बाहर मुड़जाना। ऊ. अनेक कनीनिका। ए. पिंगल तारामंडल।

विषय पृष्ठांक

२—तारामंडल और तन्तुमय समूहका प्रदाह ४०२

A. तारामंडल प्रदाह, चिरकारी, मुख्य और अनुषंगी ४०२

B. तन्तुमय समूहका प्रदाह ४२०

३—तारामण्डलकी आगन्तुक व्यथा ४२१

अ. तारामण्डल के घाव। आ. तारामण्डल में बाह्य पदार्थ का प्रदेश। इ. गोलकपर चोट। (A. तारामण्डल का विच्छेद, B. तारामण्डल वियोग, C. कनीनिका में चीरे, D. तारामण्डलमें चीरे) पृष्ठ ४२१ से ४२४

४—तारामण्डलके अर्बुद ४२४

अ. उपदंशज ग्रन्थि। आ. क्षयज ग्रन्थियाँ। इ. रसग्रन्थियाँ। ई. मांसार्बुद।

१४-नेत्रमध्यपटलके रोग ४२७

१—रसस्रावात्मक मध्यपटल प्रदाह ४२७

२—पूयात्मक नेत्रमध्यपटलप्रदाह ४२९

३—नेत्रमध्यपटलकी आगन्तुक व्यथा ४३१

अ. मध्यपटलके घाव। आ. मध्यपटलका विच्छेद। इ. मध्यपटल में बाह्य पदार्थ। ई. मध्यपटलका भेदन। उ. मध्यपटलमें रक्तस्राव।

४—नेत्रमध्यपटलकी ग्रन्थियाँ ४३४

अ. मध्यपटलके मांसार्बुद, आ. मध्यपटलकी क्षयज ग्रन्थियाँ।

५—लघु दृष्टि जन्य मध्यपटलमें परिवर्त्तन ४३७

६—नेत्रमध्यपटलकी जन्मलब्ध अपूर्णता ४३७

अ. मध्यपटलमें छिद्र। आ. वर्ण परिवर्त्तन।

१५-समदुःखी चक्षुप्रदाह ४३८

१६-दृष्टिमणि के रोग ४४३

१—जन्मलब्ध अपूर्णता ४४३

अ. जन्मसिद्धि काँचबिन्दु। आ. जन्मलब्ध दृष्टिमणि की स्थान भ्रष्टता। इ. जन्मलब्ध दृष्टिमणि छिद्र। ई. जन्मलब्ध सूक्ष्म दृष्टिमणि। उ. दृष्टिमणिका अभाव। ऊ. शंकाकार दृष्टि मणि।

विषय पृष्ठांक

२—दृष्टिमणिकी स्थान भ्रष्टता ४४६

अ. व्यथाजन्य। आ. नेत्ररोगजनित। इ. निर्बलताजनित।

३—दृष्टिमणिकी अपारदर्शकता-काँचबिन्दु ४५२

१. प्राथमिक काँचबिन्दु, ४५२

१. जन्मलब्ध मोतियाबिन्दु, २. शैशवावस्थागत मोतियाबिन्दु, ३. युवावस्थागत काँचबिन्दु, ४. वृद्धावस्थागत काँचबिन्दु, ५. व्यथाजन्यकाँचबिन्दु, ६. मधुमेहज काँचबिन्दु, ७. कृष्ण काँचबिन्दु, अपूर्ण काँच बिन्दु ८. अग्रवर्ति मध्यस्थ काँच-बिन्दु, ९. पश्चाद्वर्त्तिमध्यस्थ काँचबिन्दु, १०. चिह्नमय काँचबिन्दु, ११. चक्राकार काँचबिन्दु, १२. पश्चाद्वर्ति गर्भगत काँचबिन्दु।

२. अनुषंगी काँचबिन्दु ४९९

अ. आवरणगत अवशेष, आ. उपद्रवरूप।

४—दृष्टिमणिका अभाव ५०२

१७-काँचरूप रसके रोग ५०४

१—काँचरूप रसमें पूय ५०४

२—काँचरूप रसमें रुधिर ५०५

३—काँचरूप रसमें अपारदर्शकता ५०६

४—काँचरूप रसमें बाह्यपदार्थ ५०७

५—काँचरूप रसमें सूक्ष्म कृमि ५०८

६—काँचरूप रसका प्रवाहीपना ५०९

१८-अधिमन्थ-आँखका नजला ५१०

१—प्राथमिक अधिमन्थ ५१०

अ. आशुकारी अधिमन्थ-शूलसह अधिमन्थ ५११

२—अनुषंगी अधिमन्थ ५३६

३—बालअधिमन्थ-नयनजलोदर ५३९

१९-नेत्रदर्पण के रोग ५४२

१—नेत्रदर्पण में रुधिराभिसरण से उत्पन्न व्याधियाँ ५४३

अ. रक्तसंग्रह, आ. रक्तह्रास, इ. मध्यस्थ धमनीका अव-रोध, ई. मध्यशिरा का अवरोध, उ. नेत्रदर्पण में रक्तस्राव, ऊ. धमनी कोष काठिन्य, ए. रक्तप्रणालियों में स्पन्दन।

प्रकरण विषय पृष्ठांक

२—नेत्रदर्पण प्रदाह ५५१

अ. वृक्करोगज प्रदाह, आ. मधुमेहज प्रदाह, इ. श्वेतावर्णु-वृद्धि जनित प्रदाह, ई. नक्षत्राकार प्रदाह, उ. रेखाकार प्रदाह, ऊ. मण्डलाकार प्रदाह, ए. स्त्रावमय प्रदाह, ऐ. उपदंशज प्रदाह, ओ. प्रचण्ड प्रकाशज प्रदाह।

३—नेत्रदर्पणके अपक्रान्तिकारक रोग ५५९

अ. वर्ण बिन्दुसह नक्तांध्य और नेत्रदर्पणका प्रदाह, आ. श्वेतबिन्दुसहनक्तान्ध्य और नेत्रदर्पण प्रदाह, इ. अन्धतासह कौटुम्बिक मूढ़ता, ई. मध्यस्थ नेत्रदर्पणका अपकर्ष, उ. मस्तिष्क और पीतबिन्दु अपकर्ष।

४—नेत्रदर्पणकी आगन्तुक व्यथा ५६४

अ. मूढ़मारजनित पीतबिन्दुशोथ। आ. नेत्रदर्पण के घाव। इ. नेत्रदर्पण के चीरे।

५—नेत्रदर्पण के अर्बुद ५६५

अ. वातनाड़ी अर्बुद। आ. दुष्ट अर्बुद। इ. रसार्बुद।

६—नेत्रदर्पणमें रक्तवाहिनीवृद्धि और स्थली निर्माण ५६७

७—नेत्रदर्पण विच्छेद। ५६९

८—जन्मलब्ध नेत्रदर्पणकी न्यूनता ५७४

२०-दर्शननाड़ीके रोग ५७५

१—दर्शननाड़ी प्रदाह ५७६

अ. दर्शननाड़ी शीर्षप्रदाह। आ. दर्शननाड़ी शीर्षशोथ। इ. पश्चिमा दर्शननाड़ी प्रदाह।

२—दर्शननाड़ीका शोष ५८४

अ. प्राथमिक, आ. प्रदाहजनित।

३—दर्शन नाड़ी की आगन्तुक व्यथा ५८७

४—दर्शननाड़ी के अर्बुद ५८७

५—विषजनित अन्धता ५८९

अ. तमाखूजनित अन्धता। आ. मद्यजनित अन्धता। इ. क्विनाइनजन्य अन्धता। ई. सेलिसिलिकादिसे अन्धता।

विषय पृष्ठांक

उ. सीसा विषज अन्धता। ऊ. जन्मसिद्ध दर्शननाड़ी में न्यूनता।

२१-अक्षिपुट के रोग ५९३

१—अक्षिपुट की त्वचा के रोग ५९३

अक्षिपुट के विसर्प, कंडू, न्युची। ५९४

२—अक्षिपुट की शोथ ५९८

३—अक्षिपुट प्रदाह ६००

अ. विद्रधि, आ. पिटिका, इ. पूय पिटिका।

४—पलकका क्षत ६०१

५—अक्षिपुट धारा प्रदाह ६०२

६—अक्षिपुट ग्रन्थियों के रोग ६०४

अ. अंजननामिका—गुहेरी, आ. अक्षिपुट की ग्रन्थि, इ. मेईबोमियन पिण्डों में शुष्क रसका संग्रह।

७—अक्षिपुट का मुड़ना और परवाल ६०८

अ. अक्षिपुट का अन्तरावर्तन, आ. अक्षिपुट का बाह्यावर्तन, इ. परवाल।

८—अक्षिपुट धाराकी परस्पर संलग्नता ६१२

९—नेत्रद्वारका कोथ ६१३

१०—अक्षिपुट बन्द होने की शक्तिमें न्यूनता—नकुलदृष्टि ६१३

११—ऊर्ध्वाक्षिपुट पतन ६१४

अ. जन्मलब्ध पतन, आ. सम्प्राप्त पतन

१२—अक्षिपुट की आगन्तुक व्यथा ६१६

१३—अक्षिपुट के अर्बुद ६१८

अ. पीत सर्पप आ. इ. ई. जतुक, बहुजतुक और मस्से, उ. रसार्बुद, ऊ. रक्तार्बुद, ए. दुष्ट कर्कस्फोट, ऐ. मांसार्बुद।

१४—अक्षिपुट की जन्मलब्ध न्यूनता ६२०

१५—पलकमें चर्म जूं ६२२

२२-अश्रुजनक पिण्ड और अश्रुवाहक अवयवों के रोग। ६२३

१—अश्रुजनक पिण्ड के रोग ६२३

अश्रुजनक पिण्ड प्रदाह, अर्बुद।

२—अश्रुवाहक अवयवों के रोग ६२५

अ. अश्रुवाहक छिद्र या अश्रुद्वारका बाह्यावर्तन, आ.

विषय पृष्ठांक

आ. अश्रुद्वारका संकोच और अवरोध, इ. अश्रुवाहक नलिका अवरोध, ई. अश्रुवाहक नलिका संकोच, उ. अश्रुवाशय का प्रदाह।

३—नेत्र में जलस्राव ६३६

२३-मांसपेशियों के रोग ६३७

१—नेत्रगोलककी बाह्यपेशियों की कर्तव्यभ्रष्टता ६४४

अ. मांसपेशियों की निर्बलता ६४५

अन्तरावर्तन, बाह्यावर्तन, ऊर्ध्वावर्तन।

आ. गोलककी तिर्यक्दृष्टि ६५१

१. पेशी स्तम्भ रहित तिर्यग् दृष्टि—[A. अन्तर्गामी (केन्द्राभिमुखी) B. बहिर्गामी]

२—पेशी की स्तम्भज तीर्यग्दृष्टि। ६५८

३—पेशी आक्षेपज तीर्यग्दृष्टि। ६६६

इ. मांसपेशी की संधानगति भ्रष्टता ६६६

ई. अक्षि आंदोलन ६६७

२—गोलक के भीतर की पेशियों के रोग ६६८

अ. संधानशक्ति की न्यूनता, आ. संयोजन शक्तिका स्तम्भ, इ. संधान शक्ति की अति कर्तव्यता

३—नेत्र के उपाङ्गों की पेशियों के रोग ६७३

पेशीवधज अक्षिपुट पतन, अक्षिपुट निमीलनाभाव।

२४ नेत्रगृह के रोग ६७५

१—गोलकका बहिर्निःसरण ६७५

२—गोलकका शोष ६७७

३—नेत्रगृहप्रदाह ६७८

४—टेनन के आवरण का प्रदाह ६७९

५—त्रिकोणिका सिरासरिता में रक्तजमाव ६८०

६—नेत्रगृहास्थि का आवरण प्रदाह ६८१

७—नेत्रगृहास्थि कोथ ६८३

८—नेत्रगृह की आगन्तुकव्यथा ६८३

९—नेत्रगृह में रक्तस्राव ६८५

विषय	पृष्ठांक
१. नेत्रगृह के अर्बुद	६८९
रसमयग्रन्थियां, दुष्ट अर्बुद, अस्थिमय ग्रन्थि।	
११—बहिर्निःसरित गोलक में स्पन्दन	६९०
१२—तुंगाह्व गलगण्ड	६९१
२५-नेत्र के अज्ञात रोग जनित अन्धता	६९५
१—कृत्रिम अन्धता	६९५
२—मधुमेहज अन्धता	६९८
३—सेन्द्रिय विषज अन्धता	६९९
४—जन्मजात अन्धता	६९९
५—गर्भावस्था में प्राप्त अन्धता	६९९
६—दन्तरोगज अन्धता	७००
७—मूत्रविषज अन्धता	७०१
८—मस्तिष्क क्षोभज अन्धता	७०१
९—ओजक्षयज अन्धता	७०१
१०—अपतन्त्रकजनित अन्धता	७०१
११—तिर्यक् दृष्टिस्थ अन्धता	७०३
२६-मस्तिष्क और सुषुम्णाकाण्ड की व्याधियों से नेत्ररोग	७०६
१—अर्ध दृष्टिनाश	७०६
२—मस्तिष्क के रोगों में नेत्रगत परिवर्तन	७०९
३—सुषुम्णाकाण्ड के रोगों में नेत्र में परिवर्तन	७१३
२७-शारीरिक रोगों के साथ उत्पन्न नेत्र रोग	७१५
२८-उपनेत्र विद्या	७२२
१—चश्मे के काँच की पेटी	७२३
२—नम्बर लेने की तैयारी और नियम	७२७
३—अर्द्ध गोल काँच की अक्षरेखा	७२९
४—नम्बर लेने की पद्धति	७३०
५—प्रकाश प्रतिबिम्ब पद्धति	७३१
६—चश्मे के नम्बरों का व्यवस्थापत्र	७३९
७—चश्मे के काँच का नम्बर जानने की रीति	७४१

विषय पृष्ठांक

२९-चश्मे के उपाय से अच्छे होने वाले विकार ७४८

१—ह्रस्व दृष्टि ७४८

२—दीर्घ दृष्टि ७५६

३—विषम दृष्टि ७६५

४—वार्धक्यजन्य दृष्टि मान्द्य ७६८

३०-नेत्र और उपाङ्गों की शस्त्र चिकित्सा ७७१

शस्त्र चिकित्सार्थ रोगी की शारीरिक स्थिति। चक्षु की स्थिति। शस्त्र चिकित्सा के अनुकूल ऋतु। शस्त्र चिकित्सार्थ दिन का अनुकूल समय। शस्त्रक्रियार्थ योग्य स्थान। रोगी की तैयारी और देने योग्य सूचना। शस्त्र चिकित्सार्थ आवश्यक साधन। शस्त्र वैद्य और सहायक वैद्य की तैयारी। शस्त्र क्रियार्थ शस्त्र, पट्टी, फोड़े आदि शोधन-विधि। नेत्रों का शोधन। पीड़ा शामक-चेतनाहर औषध। नेत्र को रोगी न दबादे ऐसे उपाय। शस्त्र चिकित्सा के पश्चात् परिचर्या। पृष्ठ ७७१ से ७८८

A. अक्षिपुटपर शस्त्र चिकित्सा ७८९

१. रोहे को दबा देने की रीति, २. रोहे को काटने की शस्त्रक्रिया, ३. रोहे का विद्युत से दहन, ४. रोहे पर कुन्त की शस्त्र चिकित्सा, ५. अञ्जन नामिका पर शस्त्र क्रिया, ६. अक्षिपुट की रस ग्रन्थि की शस्त्र क्रिया, ७. नेत्रच्छदार्बुद पर शस्त्र क्रिया, ८. परवाल पर शस्त्र क्रिया ९. परवाल और अक्षिपुट का अन्तरावर्तन पर शस्त्रक्रिया, १० अक्षिपुट के बाह्यावर्तन पर शस्त्रक्रिया, ११. नूतन अक्षिपुट निर्माण क्रिया, १२. आकुंचित नेत्रद्वार विस्कारक क्रिया, १३. नेत्रद्वार आकुंचनार्थ क्रिया, १४. झुके हुए पलक को सुधारने की क्रिया। ७९० से ८१५

B. अश्रुजनक पिण्ड और अश्रुवाशय पर शस्त्र क्रिया। ८१५

१. पिण्ड को निकाल देना, २. अश्रुवाशय धोना, ३. अश्रुद्वार चीरना, ४. अश्रुवाशय में सलाका प्रवेश, ५. अश्रुवाशय में काट क्रिया, ६. अश्रुवाहक जल का संकोच नाश, ७.

विषय पृष्ठांक

नाक के भीतरके मार्ग का शोधन, ८. अश्रुवाशय को निकाल देना ९. नाक के मार्ग में अश्रुवाशय को निकालना। ८१५ से ८२६

C. नेत्र श्लोष्मावरण पर शस्त्र क्रिया ८२७

१. रोहे को दबाना, २. रोहे को छीलना. ३. अक्षिपुट के श्लेष्मावरण को काट देना, ४. शुक्ल मण्डल के चारों ओर के श्लेष्मावरण में छेद, ५. श्लेष्मावरण की ग्रन्थियों को निकाल देना ६. वेल पर शस्त्र क्रिया, ७. गोलक से संलग्न श्लेष्मावरण की शस्त्र क्रिया, ८. नेत्र श्लेष्मावरण धोने की क्रिया, ९. नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे अन्तः क्षेपण, १०. आकुंचित अक्षिपुट पर शस्त्र क्रिया। ८२७ से ८३२

D. शुक्ल मण्डल पर शस्त्रक्रिया ८३३

१ बाह्यद्रव्यको हटाना, २ क्षत दहन क्रिया, ३ सीने की विधि, ४ जलमयरसके पूर्व खण्डमें छिद्र, ५ सिमिरक की शस्त्रक्रिया, ६ निःसरण पर शस्त्रक्रिया, ७ शुण्डाकार शुक्लमण्डल पर क्रिया, ८ शुक्र पर क्रिया, ९ रंजनविधि, १० शुक्लमण्डल धोना।

E. तारामण्डल की शस्त्रक्रिया ८३६

१. तारामण्डल छेदन, २. काट, ३. अर्बुदों का दूरीकरण।

F. अधिमन्थके लिये शस्त्रक्रिया ८४७

१ तारामण्डल छेदन, २ तारामण्डल को चिपकाना, ३ बाह्यपटलके अग्रभागमें छेदन, ४ बाह्यपटलके पश्चिम भाग में छेदन, ५ लेग्राज की शस्त्रक्रिया, ६ होल्थकी शस्त्रक्रिया, ७ इलियटकी शस्त्रक्रिया, ८ तारामण्डल चिपकाने की होल्थकी क्रिया, ९ तन्तुसमूह विच्छेद, १ जलमयरस के पूर्वखण्डमें सतत स्रावकराना, ११ जलमयरस के पूर्व खण्डके कोण का छेदन।

G. काँच बिन्दु पर शस्त्रक्रिया ८५९

१ दृष्टिमणिके आवरण का छेदन, २ दृष्टिमणि के आवरण का मेदन, ३ आवरण सर काँचबिन्दुको निकालना (स्मिथ,

निंग और वाराञ्चर की विधि), ४. श्लेष्मावरण के नीचे कांच बिन्दुको हटाकर निकालना ५ कांचविन्दुको बैठा देना या स्थान भ्रष्ट करना, ६ कांचबिन्दु निकालने के बाद आवरण की शस्त्रक्रिया। (आवरण भेदन, आवरण दूरीकरण) ८५६ से ८६३

H. नेत्रदर्पणपर क्रिया (गोनिन, गीस्ट और साफर विधि) ८६३

I. नेत्रगोलकमें गिरे हुए बाह्यपदार्थ को निकालना। ८६७

J. नेत्रगोलककी मांसपेशियों पर शस्त्रक्रिया। ८६९

K. नेत्रगोलक को निकाल देना। ८७५

L. दर्शन नाड़ीका छेदन। ८७६

M. नेत्रग्रहपर शस्त्रक्रिया। ८७८

३१ नेत्र रक्षा।

———

नेत्ररोग विज्ञानके ग्रन्थके साथ छपे हुए चित्र

सूचना—जो चित्र यथा स्थान नहीं छपे, चित्रफलक में छपे हैं, या अन्त में छपे हैं, उनके विवरण का पृष्ठांक चित्रों के नाम के आगे (पंक्ति के अन्त में) दर्शाया है।

जो ब्लॉक नहीं बन सके, उनके पृष्ठांक के नीचे "नहीं बना" लिखा गया है।

चित्रांक	पृष्ठांक	नाम (संज्ञा)	विवरण पृष्ठाङ्क
१	१	नेत्रगोलक	
२	१२	वाम नेत्रका पिछला अर्द्ध भाग	
३	१३	नेत्रदर्पणकी सूक्ष्म रचना	
४	२६	दहिने नेत्रकी मांसपेशियां	
५	३८	अश्रुवाहक उपाग समूह	
६	४०	दृष्टिनाड़ी और सम्बन्धवाला मस्तिष्क प्रदेश	
७	५८	दीपक किरण	
८	५९	किरणों का वक्रीभवन आधा अन्तमें	
९	६०	बहिर्गोल कांच से निःसृत किरणों का वक्रीभवन	
१०	६१	अन्तर्गोल ,, ,, ,, ,,	
११	अन्तमें	दृक् शास्त्रके अनुसार नेत्रगोलक का कर्तव्य	६१
१२	,,	अश्रुद्वार विस्फारक नलिका	६७
१३	,,	अश्रुवाशय धोनेकी पिचकारी	६८
१४	,,	डिस्मारका पलकको उठाने का यन्त्र	६९
१५	,,	दस्तेवाला बहिर्गोल कांच	७१
१६	७१	उभय नेत्रोंके लिये शुक्लमण्डलका दूरवीक्षण यन्त्र	
१७	अन्तमें	शुक्लमण्डलका बृहद्दर्शक कांच	७१
१८	,,	शुक्लमण्डलका बृहद्दर्शक यन्त्र प्रकाशकेन्द्रक दीपकसह	७१
१९	७७	प्रकाशकेन्द्रक लघुदीपक	
२०	अन्तमें	मोर्टनका नेत्रवीक्षण यन्त्र	८५
२१	,,	विद्युद्दीपकसह नेत्रवीक्षण यन्त्र	८७
२२	,,	नेत्रदर्शक दीपक	८८

२३	अन्त में	नेत्रवीक्षण यन्त्रसे प्रत्यक्ष परीक्षा	८८
२४	५४२	नेत्रदर्पण नेत्रवीक्षण यन्त्रसे प्रतीत होने वाला	९१
२५	अन्तमें	नेत्रवीक्षण यन्त्रसे परोक्ष परीक्षा	९१
२६	,,	दर्शननाड़ीके सिरेकी अवसादक स्थिति	९३
२७	९६	नेत्रगोलकका कठिनतामापक सियोट्स का यन्त्र	
२८	९७	नेत्रगोलकका कठिनता मापक मेकलीनका यन्त्र	
२९	१०१	स्नेलनका दृष्टि परीक्षार्थ मूलाक्षर	
३०	अन्तमें	दृष्टि परीक्षार्थ बिन्दुपत्रक	१०१
३१	१०१	दृष्टि परीक्षार्थ भुग्न मुद्रापत्रक	
३२	१०२	दृष्टि परीक्षार्थ प्राणीपत्रक	
३३	१०८	एड्रिज ग्रीनका रंगपरीक्षार्थ लालटीन	
३४	११४	दृष्टि क्षेत्र मापक यन्त्र	
३५	११७	रंग निर्णायक दृष्टि क्षेत्र पत्रक	
३६	१२१	इलियटका अन्ध प्रदेश मापक यन्त्र	
३७	१२१	जेरमका पर्दा	
३८	१२५	प्रतिप्रकाश यन्त्र	
३९	१३४	शिरामें अन्तःक्षेपण	
४०	१३६	मांसपेशीमें अन्तःक्षेपणकी तैयारी	
४१	१३७	नितम्बपेशीमें अन्तःक्षेपणविधि	
४२	१९१	विद्युत्प्रवाहयुक्त दम्भक शलाका	
४३	१९२	पेक्वेलिनका दहनकर यन्त्र	
४४	१९३	हस्तचुम्बक	
४५	१९३	राक्षसी चुम्बक	
४६	२२४	कोकवीकके लम्बे कीटाणु	२४४
४७	,,	मोराक्स एक्सन फिल्डके लम्बे	२४५
४८	२२५	पूयमेहोत्पादक गोलकीटाणु	
४९	२२६	कण्ठरोहिणी के सरल कीटाणु	
५०	अन्त में	काँचकूपी	२३२
५१	२२८	आशुकारी नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२२९
५२	,,	नवजात शिशु का पूयमयज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२४१
५३	,,	दानेदार नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	२३९
५४	,,	पोथकी—रोहे	२७३

५५	२२८	पिटिका क्षत	२५४
५६	,,	नेत्रबाह्यपटल का उत्तानप्रदाह	३८२
५७	,,	नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे रक्तस्राव	२६०
५८	२६६	वेत्र	
५९	२७२	गोलक-और पलक के आवरण की सलग्नता	
६०	२९५	शुक्लमण्डल का क्षत	३१२
६२	,,	कनीनिका अनुबन्धमय शुक्र	३५१
६३	,,	सफेदी	२७९
६४	,,	पिटिका क्षतज शुक्लमण्डल व्रण	३२८
६५	,,	शुक्लमण्डल का गर्भप्रदाह	३३९
६६	अन्त में	नेप का आवर्त्तक संदंशक	२८७
६७	२८७	पोथकी घर्षक यन्त्र	
६८	२९५	पीत पिटिका	६१८
६९	,,	रौप्य क्षारज श्यामता	३७४
७०	,,	पलकावरण का कण्डूमय प्रदाह	२९१
७१	,,	गोलकावरण का कण्डूमय प्रदाह	२९१
७२	,,	शुक्लमण्डल का परिधि क्षत	३२६
७३	२९५	वृत्ताकार शुक्ल मण्डल प्रदाह	३३१
७४	अन्त में	बाल नोंचने की चिमटी	३०३
७५	,,	क्लार्क की नेत्र को खुला रखने की कमानी	३०८
७६	,,	गोलक को स्थिर रखने का चिमटा	३०८
७७	,,	ग्राफे की संकीर्ण छुरिका	३०८
७८	,,	तीक्ष्ण घर्षक चिमटा	३१५
७९	३५०	प्रथमस्तर पर शुक्र	
८०	३५०	द्वितीय स्तर पर शुक्र	
८१	३५०	गहरा शुक्र	
८२	३५८	शुक्ल मण्डल रंगने की अनेक सुई (ये चित्र भूल वाले हैं) (अन्त में दिये हुए चित्रों के पृष्ठ १० में देखें)	
८३		शुक्लमण्डल घर्षण यन्त्र (लेखक की जीवनी के भीतर देखें)	३५९
८४	३६२	वार्धक्य जन्य शुक्ल मण्डल की श्वेत परिधि	

८५	३६५	शुक्ल मण्डल में से बाह्य पदार्थ निकालने के शस्त्र	
८६	३७६	शुक्लमण्डल का निःसरण	
८७	३७८	शंक्वाकार शुक्लमण्डल	
८८	अन्त में	नेत्रश्लेष्मावरण की कर्तनी	३९४
८९	३९४	चिपटा आँकड़ा	
९०	अन्त में	गोलक कर्तनी	३९४
९१	४२७	पश्चिम मध्यस्थ प्रलम्बन	३९७
९२	४००	जन्मलब्ध तारामण्डल में छिद्र	
९३	३९९	तारामण्डल प्रदाह	४०२
९४	,,	तारामण्डल में उपदंशज ग्रन्थि	४२४
९५	,,	शुक्लमण्डल में सूक्ष्मबिन्दु	४०४
९६।९७	,,	नेत्रगोलक में पूयमय प्रदाह	३८७
९८	४०४	तारामण्डल की तलकी संलग्नता	
९९		रसस्त्रावात्मक मध्यपटलप्रदाह	४२७
१००	४२७	मध्यपटलका भेदन	४१३
१०१	,,	मध्यपटल के मांसार्बुद	४३४
१०२	अन्त में	शुक्लमण्डल वेधन सरलयन्त्र	४४७
१०३	४४८	लघुपेशी बड़िश	
१०४	अन्त में	श्नेलनका दृष्टिमणि जाल	४५१
१०५	४५१	तारामण्डल नियोजक	
१०६	४५८	अ तारामण्डल की छाया, अपक्वकांचबिन्दु में तीर्यक् प्रकाश। ब. पक्वकांचबिन्दु में। छाया का अभाव।	
१०७	अन्त में	नेत्रखुले रखने की कमानी	४७३
१०८	नहीं छपा	ग्रेफेकी छुरिका	
१०९	अन्त में	तारामण्डल पकड़ने का चिमटा	४७३
११०	,,	तरामण्डल कर्तनी	,,
१११	४७३	दृष्टिमणि का आवरण भेदक कांटा	,,
११२	अन्त में	कांचबिन्दु को बाहर निकालने का चिमच	
११३	४७३	कांचबिन्दु को बाहर निकालने का आँकड़ा	४७३

११४	अन्त में	काँचबिन्दु को निकालने का चिमटा चिमच	४७३
११५	४७३	पलक उठाने का दोहरा आँकड़ा	
११६	४७६	डिस्मारका छिद्रप्रसारक यन्त्र	
११७	अन्त में	स्मिथ का आँकड़ा काँचबिन्दु निकालने का	४८६
११८	,,	स्मिथ का तारामण्डल स्थापक यन्त्र	४८६
११९	,,	काँचबिन्दु के आवरण का काल्टका चिमटा	४८७
१२०	४८८	काँचबिन्दु चूषक बाराक्वर का यन्त्र	
१२१	४९५	अग्रवर्त्ति मध्यस्थ काँचबिन्दु	
१२२	४९६	पश्चादवर्ति मध्यस्थ काँचबिन्दु	
१२३	४९७	चक्राकार काँचबिन्दु	
१२४	३९९	आशुकारी (शूलसह) अधिमन्थ	५११
१२५	,,	दर्शननाड़ी के सिरे की निम्न स्थिति	५१६
१२६	,,	नेत्रदर्पणस्थ मध्य धमनी का अवरोध	५४४
१२७	,,	,, ,, शिरा का ,,	५४७
१२८	५४२	नेत्रदर्पण में रुधिरस्राव	५४७
१२९	४२७	नेत्रदर्पण में धमनी कोष काठिन्य	५४९
१३०	५४२	वृक्करोगज नेत्रदर्पण प्रदाह	५५१
१३१	,,	मधुमेहज नेत्रदर्पण प्रदाह	५५२
१३२	,,	रेषाकार नेत्रदर्पण प्रदाह	५५४
१३३	,,	वर्णबिन्द्वात्मक नेत्रदर्पण प्रदाह	५५९
१३४	,,	अन्धतासह कौटुम्बिक मूढ़ता	५६२
१३५	४२७	नेत्रदर्पण की वातनाड़ी में ग्रन्थि	५६५
१३६	५६८	नेत्रदर्पण में रक्तवाहिनी वृद्धि और स्थली निर्माण	
१३७	५४२	नेत्रदर्पण विच्छेद में चीरा	५७०
१३८	५७५	आवरणसह रेषामय दर्शननाड़ी	५७४
१३९	५४२	दर्शननाड़ी के सिरे का प्रदाह	५७६
१४०	५७५	दर्शननाड़ी के सिरे का शोथ	५७८
१४१	,,	दर्शननाड़ी का प्राथमिक शोष	५८४
१४२	,,	प्रदाहज दर्शननाड़ी शोष	५८६
१४३	५९५	अक्षिपुट का कक्ष	
१४४	५९३	अञ्जन नामिका	६०४

१४५	५६२	अक्षिपुट की रसग्रन्थियाँ	६०७
१४६	,,	अक्षिपुट धाराप्रदाह	६०२
१४७	,,	अक्षिपुट बाह्यावर्तन	६०९
१४८	,,	चिरकारी अश्रुवाशय प्रदाह	६३३
१४९	,,	आशुकारी अश्रुवाशय प्रदाह	६३१
१५० १५१	६१०	पलक के भीतर मुड़ने पर कुन्तकी शस्त्रक्रिया	
१५२	६११	परवाल	
१५३	६१४	ऊर्ध्व अक्षिपुट निमीलन	
१५४	६२७	वेबर की अश्रुद्वारभेदक छुरिका	
१५५	अन्त में	बोमन की अश्रुवाशय शलाका	६३०
१५६	६३०	वेबर की अश्रुवाशय शलाका	
१५७	६३०	पुलार्ड की ,, ,,	
१५८	६३०	,, अश्रुनल सकोच भेदक छुरिका	
१५९	६३८	नेत्रपेशियों का क्रियादर्शक पत्रक	
१६०	६४६	मेडोक्स के अर्द्ध गोल लाल काँच	
१६१	६५२	पेशी स्तम्भरहित पार्श्विक अन्तर्गामी तिर्यग् दृष्टि	
१६२	६५४	तिर्यग् दृष्टि मापक प्रिस्टली स्मिथ की पट्टी	
१६३	६५५	वर्थ का न्यून दृष्टि सुधारक यन्त्र	
१६४	६५७	एकाक्षि तिर्यग् दृष्टि	
१६५	६६५	तिर्यग् दृष्टि मापन यन्त्र	
१६६	६७६	एक गोलक का बहिर्निःसरण	
१६७	६७६	उभय गोलकों का बहिर्निःसरण	
१६८	७२०	चश्मे के नम्बर लेने में प्रयोजित कमानी	
१६९	७२८	सूर्य किरण पत्रक	
१७०	७३२	प्रतिफलित प्रकाशसे चश्मेका नम्बर लेना	
१७१	७३३	प्रकाश प्रतिफलित क्रियार्थ दर्पण	
१७२	७३९	चश्मेके नम्बरों का व्यवस्थापत्रक	
१७३	७४२	चश्मेका नम्बर शोधक यन्त्र	
१७४	७४५	मेडोक्सका अक्षरेखा शोधक यन्त्र	
१७५	५७५	पीतबिन्दुके समीप मध्यपटलका शोथ	७५४

१७६	९७६	छाया रहित प्रकाशदायक दीपक	
१७७	नहीं छपा	प्रकाश केन्द्रक हस्त दीपक	
१७८	७७९	डायाथर्मी	७७७
१७९	अन्त में	प्रक्षालन यन्त्रिणा	७८१
१८०	नहीं छपा	शस्त्र धारणार्थ चौकोर थाल (ट्रे)	७८२
१८१	अन्त में	तारकी नेत्र रक्षिका	७८२
१८२	७८२	एल्युमिनियमकी नेत्ररक्षिका	
१८३	७८२	विद्युत संचालित शस्त्र शुद्धिकर पेटिका	
१८४	७८३	वस्त्र शुद्धिकर पात्र	
१८५	अन्त में	वस्त्रधर पेटिका	७८२
१८६	७९३	पलक उलटने का चिमटा	
१८७	अन्त में	परवालकी वाम दक्षिण चाप	७९६
१८८	,,	लम्बी चाकू (Scalpel)	,,
१८९	,,	सूक्ष्म नोकवाली चिमटी	,,
१९०	नहीं छपा	सरल कैंची	८००
१९१	८००	सूचीधर यन्त्र	
१९२	८००	बाधने की पट्टी	
१९३	नहीं छपा	अक्षिपुटधर फलक	८०५
१९४	८१०	नेत्र द्वार विस्फारक क्रिया	
१९५	,,	नेत्र द्वार संकोचन क्रिया	
१९६ } १९७ }	८१२	नेत्रोन्मीलनी पेशी को उठाने की शस्त्रक्रिया	
१९८ } १९९ }	८१३	झुके हुए पलकों को सुधारने की हेसकी शस्त्रक्रिया	
२००	८१४	झुके हुए पलकों पर मोटे की शस्त्रक्रिया	
२०१ } २०२ }	८१८	अश्रु द्वार चीरने की शस्त्रक्रिया	
२०३	८१८	अश्रुवाहक नल में सलाका प्रवेश	
२०४	नहीं छपा	स्पेन्सर वेल्मकी रक्तस्राव रोधक चिमटी।	
२०५	,,	दांतेदार चिमटी	
२०६	,,	घाव को खुला रखने वाला आंकड़े जैसा यन्त्र	
२०७	,,	अस्थि के आवरणको साफ करने वाला यन्त्र	
२०८	,,		

२०९	,,	हथौड़ी	
२१०	८२०	अस्थिछेद प्रसारक अस्त्र	
२११	नहीं बना	दस्ते में व्यवस्थित सुई	
२१२	,,	अश्रुवाराय की छुरिका	
२१३	८२१	अश्रुवाशय निकालने का काट	
२१४	८२२	नेत्रकोणगत रक्तवाहिनियों का सम्बन्ध	
२१५	८२३	अश्रुवाशय निकालने की शस्त्रक्रिया	
२१६	अन्त में	अश्रुवाशय निकालने का नोकदार चिमटा	८२४
२१७	अन्त में	घाव को खुला रखने का मूलर का यन्त्र	८२४
२१८	८२४	नोक रहित विभाजक शस्त्र	
२१९	८२८	रोहे को दबाने की विधि	
२२० } २२१ }	८३७	तारामण्डल का दृष्टिवर्धक	
२२२	८३८	टाइरेल का तारामण्डल अंकुश	
२२३	८४३	शुक्लमण्डल छेदन स्थलदर्शक आकृति	
२२४	अन्त में	भिग्लर की छुरिका	८६७
२२५	८५४	इलियट की वाह्यपर्त में छिद्रक्रिया	
२२६	८५०	लेग्राज की शस्त्रक्रिया	
२२७	८५१	जेगर का त्रिकोणाकार शस्त्र	
२२८	८५३	रोल्थ की वेधनिका कैंची	
२२९	अन्त में	इलियट की वेधनिका	
२३०	८५३	हेरिसन बटलर की वेधनिका	
२३१	अन्त में	इलियट का वर्तुलाकार टुकड़ा निकालने का चिमटा	
२३२	८५७	तन्तुसमूह विच्छेदक छुरिका	
२३२	,,	,, ,, सिकलेर की सलाका	
२३४	८६०	दृष्टिमणि के आवरण में छेद	
२३५	८६०	आवरण का भेदन करके काँचबिन्दु बाहर निकालना	
२३६	८३६	एक्सलर का वाह्यपटल मुद्रक	
२३७	नहीं छपा	गुथरी का दोहरा आँकड़ा	
२३८	८४२	डा० हर्बर्ट की शुक्लमण्डल भेदक छुरिका	

२३६		पेशी सिराकर्तन क्रिया
२४० २४१	अन्त में	प्रिन्स का पेशी लघुकरण चिमटा
२४२	८७२	पेशी लघुकरण क्रिया
२४३	८७६	नेत्रमल अपसारक शस्त्र

———

आर्ट पेपर पर छपे हुए चित्रों की सूची

चित्रफलक	चित्रांक	विषय	फलक पृष्ठ
१	१	नेत्रगोलक आडाकट	१
२	४६	कोकवीक के कीटाणु	२२४
	४७	मोराक्स एक्सनफील्ड के कीटाणु	,,
३	५१	आशुकारी नेत्रावरणप्रदाह	२२८
	५२	नवजात शिशु का नेत्रप्रदाह	,,
	५३	दानेदार नेत्रप्रदाह	,,
	५४	पोथकी, रोहे	,,
	५५	पिटिकामय नेत्रप्रदाह	,,
	५६	नेत्रबाह्यपटल का उत्तानप्रदाह	,,
४	५७	नेत्रावरण में अन्तःक्षेपण	,,
	,,	तन्तुसमूह में ,,	,,
	,,	अन्तःक्षेपण से तारामण्डलप्रदाह	,,
	,,	नेत्रावरण के नीचे रक्तस्राव	,,
५	६०	शुक्लमण्डल का क्षत	२३५
	६१	,, परिसरणशील क्षत	,,
	६२	कनीनिका अनुबन्धयुक्त शुक्र	,,
	६३	सफेदी	,,
	६४	पिटिका क्षतज शुक्लमण्डल व्रण	,,
	६५	शुक्लमण्डल का गर्भप्रदाह	,,
६	६८	पीत पिटिका	,,
	६९	रौप्य क्षारज श्यामता	,,
	७०	पलकावरण का कण्डूमय प्रदाह	,,
	७१	गोलकावरण का ,, ,,	,,
	७२	शुक्लमण्डल का परिधिक्षत	,,
	७३	वृत्ताकार शुक्लमण्डल प्रदाह	,,
७	९१	पश्चिम मध्यस्थ प्रलम्बन	४२७
	९७	रसस्रावात्मक मध्यपटल प्रदाह	,,
	१०१	मध्यपटल में दुष्ट मांसाबुर्द	,,
	१३५	नेत्रदर्पण में नाड़ीग्रन्थि	,,

चित्रफलक	चित्रांक	विषय	फलक पृष्ठ
८	१००	मध्यपटल का भेदन	४२७
	१२९	नेत्रदर्पण में धमनी कोष काठिन्य	,,
९	९३	तारामण्डल प्रदाह	३९९
	९४	तारामण्डल में उपदंशज ग्रन्थि	,,
	९५	तारामण्डल तन्तुसमूह प्रदाह	,,
	९६	नेत्रगोलक में पूयप्रदाह	,,
	९७	,, ,,	,,
१०	१२४	आशुकारी अधिमन्थ	३९९
	१२५	दर्शन नाड़ी के सिरे की निम्न स्थिति	,,
	१२६	नेत्रदर्पण में धमनी अवरोध	,,
	१२७	नेत्रदर्पण में शिरावरोध	,,
११	२४	नेत्रदर्पण	५४२
	१२९	,, में रक्तस्त्राव	,,
	१३०	वृक्कगोजज नेत्रदर्पण प्रदाह	,,
	१३१	मधुमेहज ,, ,,	,,
१२	१३२	रेखाकार ,, ,,	,,
	१३३	वर्णबिन्दुात्मक ,, ,,	,,
	१३४	अन्धता अह कौटुम्बिक मूढता	,,
	१३७	नेत्रदर्पण विच्छेद में चीरा	,,
१३	१३८	दर्शननाड़ी सिराप्रदाह	५७५
	१४१	,, का प्राथमिक शोष	,,
	१४२	प्रदाहज दर्शननाड़ी शोष	,,
	१७५	पीतबिन्दु के समीप मध्यपटलशोष	,,
१४	१३८	आवरणसह रेखामय दर्शननाड़ी	,,
	१४०	दर्शननाड़ी के सिरेका शोष	,,
१५	१४४	अंजन नामिका	५९३
	१४५	अक्षिपुट की रसग्रन्थियां	,,
	१४६	अक्षिपुट धाराप्रदाह	,,
	१४७	अक्षिपुट बाह्यावर्तन	,,
	१४८	चिरकारी अश्रुवाशयप्रदाह	,,
	१४९	आशुकारी ,,	,,

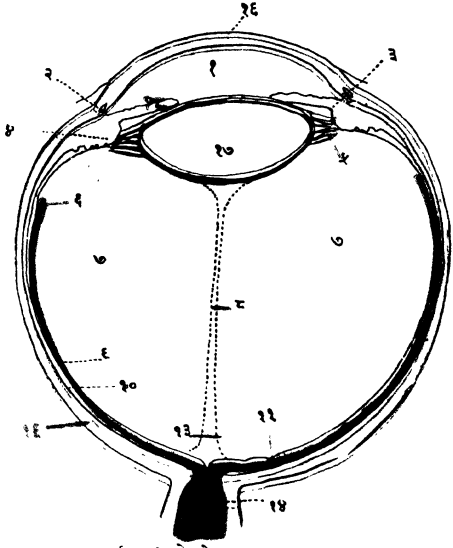

चि० १, नेत्रगोलक आड़ाकटा हुआ।

चित्र १ला

नेत्रगोलक आड़ा कटा हुआ।

१. जलमय रस का पूर्वखण्ड (Anterior chamber)

२. अग्रजल मार्ग (Canal of schlemm)

३. जलमय रस का पश्चिमखण्ड (Posterior chamber)

४. तन्तुसमूह (Ciliary body)

५. दृष्टिमणि बन्धनी (Suspensory ligament)

६. दन्तुर धारामण्डल (Ora serrata)

७. काँचरूप रस (Vitreous)

८. सान्द्र जलधरा कोष (Hyaloid canal)

९. नेत्रदर्पण (Retina)

१०. नेत्रमध्यपटल (Choroid)

११. पीतबिन्दु (Macula)

१२. नेत्र बाह्यपटल (Sclera)

१३. दर्शननाड़ी का सिरा (Optic disc)

१४. नेत्रदर्पण मध्यस्था धमनी (Central artery of retina)

१५. दर्शन नाड़ी (Optic nerve)

१६. शुक्लमण्डल (Cornea)

१७. दृष्टिमणि (Lens)

१८ तारामण्डल (Iris)

१९. नेत्रबाह्यपटल (Sclera)

ॐ

श्री धन्वन्तरये नमः

नेत्ररोग विज्ञान।

प्रकरण पहला

नेत्र और उसके उपाङ्गों की रचना

Anatomy of the Eye and its appendages.

नेत्रके अंग (*Organs.*)

१. नेत्रगोलक—Eye-ball.

२. नेत्रकी धमनियाँ—Arteries, शिराएँ-Veins, रसवाहिनियां—Lymphatics और वात नाड़ियाँ—Nerves.

३. नेत्रगोलकको चलन-शक्ति देने वाली मांसपेशियाँ-Ocular muscles.

४. नेत्रश्लेष्मावरण-नेत्रवर्त्म—Conjunctiva.

नेत्रके उपाङ्ग—(*Appendages.*)

५. पलक-नेत्रच्छदौ—Eyelids.

६. भ्रू--Eye-brow.

७. अश्रुजनक पिण्ड--अश्रुग्रन्थियाँ-Lachrymal glands (अश्रु वाहक प्रणालिका-Lachrymal duct सह); अश्रुद्वार—Puncta Lachrymalis; अश्रुवाहक नलिका—अश्रुप्रपिका-Canaliculi; अश्रु-वाशय--अश्रुकुम्भिका--Lachrymal sac (अश्रुवाहक नल—नासा सुरङ्गगत अश्रुवाहिका--Nasal duct सह).

८. नेत्रगृह--नेत्रगुहा--Orbit.

उक्त अवयवोंके अतिरिक्त दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखने वाले मस्तिष्क के कितनेक भागोंका विवेचन आगे इसी प्रकरणमें यथास्थान किया जायगा।

१. नेत्र गोलक (*Eye ball-Bulb of the Eye.*)

चित्र नं० १ देखें। नेत्रगोलककी रचना समझनेके लिये मृत बैल, बकरे वा मृत मनुष्यका नेत्रगोलक मिल सके तो शस्त्रसे खड़े और आड़े भाग करें। अभ्यास करनेके समय इन भागों को पासमें रखना चाहिये। नेत्र गोलकके विभाग करनेके पहले उसे बर्फ और नमकके मिश्रण या फार्मेलिन (Formalin) में रख कर कठिन बना लेना चाहिये।

नेत्रगोलकके मुख्य भाग :—

अ. शुक्लमंडल--स्वच्छ मंडल— Cornea.
आ. नेत्रबाह्यपटल--शुक्ल वृत्ति—Sclerotic coat--sclera.
इ. तारामण्डल--Iris.
ई. तन्तु समूह--संधान मण्डल--Ciliary body.
उ. नेत्रमध्यपटल—कर्बुर वृत्ति—Choroid.
ऊ. नेत्रदर्पण--दृष्टि वितान—Retina.
ए. जलमयरसका पूर्व खण्ड-अग्रिमा जलधानी--Anterior Chamber.
ऐ. जलमयरसका पश्चिमखण्ड-पश्चिमा जलधानी-Posterior Chamber.
ओ. दृष्टिमणि-यवकाँच-- Crystaline Lens.
औ. दृष्टिमणि आवरण--दृष्टिमण्डलधर कलाकोष—Lens Capsule.
क. काँचरूप रस—सान्द्र जल Vitreous Humour.
ख. दर्शन नाड़ी--दृष्टि नाड़ी— Optic Nerve.
ग. दर्शन नाड़ीका सिरा--बिम्बांकुरका-सित बिम्ब-Optic disc.

नेत्रगोलक लगभग गोलाकार (गेंदके समान) होता है। नवजात शिशुका नेत्रगोलक बिल्कुल गोलाकार होता है; किन्तु जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है; वैसे-वैसे कुछ लम्बा गोलाकार बनता जाता है। आगेके हिस्सेमें इसका गोलाकार स्वरूप शुक्लमण्डलके हेतुसे कुछ परिवर्तित होजाता है। एक गोलाकार वस्तुके ऊपर, घड़ीके काँचके समान, शुक्ल मण्डल नेत्रगोलकके आगेके हिस्सेमें प्रतीत होता है। नेत्रगृहमें नेत्रगोलक माँसपेशियाँ और श्लेष्मावरण जैसे आच्छादनसे बँधा हुआ है। इस आच्छादनको टेननका आच्छादन-नेत्र घरकला कोष (Tenon's Capsule) कहते हैं। इस आवरण और नेत्रगृहकी अस्थिके मध्यमें कुछ मेदका भाग रहता है। दृढ़ देह और अधिक मेद वाले मनुष्यका नेत्रगोलक अधिक बड़ा देखनेमें आता है। इसका एक कारण यह मेद है। शुष्क और वयोवृद्ध मनुष्यका नेत्रगोलक भीतर बैठा हुआ दिखता है। उसका मुख्य हेतु इस मेदकी न्यूनता है।

नेत्रगोलकका अनुलम्ब (पूर्व-पश्चिम) व्यास (Antero-posterior or saggital diameter) बाह्य भाग में २४·१५ मिली मीटर (१·०२३ इञ्च) और भीतरके भागमें २२·१२ मि. मी. है। नेत्रके दोनों कोनोंके बीच अनुप्रस्थ (उत्तर दक्षिण) व्यास (Horizontal diameter) २४·१३ मि॰ मी॰ और उत्तान (खड़ा) व्यास (Vertical diameter) २३·४८ मि॰ मी॰ है। सामान्यतः स्थूलरूपमें नेत्रगोलकका व्यास सब ओर लगभग १ इञ्च है। सामान्यतः जन्मके समय सबल शिशुके नेत्रका अनुलम्ब व्यास लगभग १७·५ मि॰ मी॰ और युवावस्थामें प्रवेश होने पर २०·२१ मि॰ मी॰ होता है। फिर पूर्ण वृद्धि-काल तक २४·१५ मि. मी. हो जाता है। अनुलम्ब व्यास, यह अनुप्रस्थ और उत्तान व्यास की अपेक्षा अधिक होता है। उत्तान व्यास सबसे न्यून है। पुरुषोंके तीनों व्यास स्त्रियों की अपेक्षा कुछ अधिक होते हैं।

नेत्रगोलकका वजन औसत १०५ ग्रेन अर्थात् ६॥। माशे होता है। दोनों नेत्रके अक्ष (Axis) समान्तर है; किन्तु दोनों नेत्रगृहोंके अक्ष समान्तर नहीं होते हैं। दर्शनतन्तु के अक्ष नेत्रगृह के अक्षोंसे मिलते-जुलते होते हैं।

नेत्रगोलकके दो भाग हुए हों, ऐसा प्रतीत होता है। आगेके हिस्सोंमें ⅓ भाग जो अवस्थित है, और जो घड़ीके काँचके समान दिखता है, उसे शुक्ल मण्डल कहते हैं। वह पारदर्शक है। पीछे रहा हुआ ⅔ भाग जो अपार दर्शक है, उसे नेत्र बाह्य-पटल कहते हैं। शुक्ल मंडल और नेत्र बाह्य पटल जिस स्थान पर मिलते हैं, वहाँ पर सहज दबा हुआ गोलाकार भाग बन जाता है। उस भागको स्वच्छ-शुक्ल संधि (Limbus Cornea) संज्ञा दी है। शुक्ल मंडल का मध्य बिन्दु और नेत्र बाह्य आच्छादनका पिछला मध्य बिन्दु, इन दोनों बिन्दुओंको जोड़ने वाली रेखाको नेत्राक्षरेखा (Ocular axis) कहते हैं। जो रेखा नेत्रदर्पणके मध्यमें पीत बिन्दु (Macula Lutea) से शुक्ल मंडलके मध्य भागकी अपेक्षा कुछ भीतरके भागमें होकर जाती है, उसे दृश्याक्ष रेखा (Visual axis) कहते हैं। यह रेखा विशेष महत्वकी है। ह्रस्व दृष्टि (Myopia) अथवा दीर्घ दृष्टि (Hypermetropia) जैसी विकृति में जहाँ नेत्रगोलक लम्बा या छोटा हो जाता है, वहाँ इस अक्ष रेखामें भी अन्तर हो जाता है। यह विषय चश्मे (ऐनक) के प्रकरणमें आगे विशेष स्पष्ट रूपसे समझाया जायगा।

स्थल—नेत्रगोलक नेत्र गृहके भीतर आगेके हिस्सेमें अवस्थित है। वह नेत्रगृहके ऊपरकी ओर बाहरकी दीवारसे कुछ अधिक समीप रहता है। किसीभी स्थानमें नेत्रगृहके किसीभी भागके साथ नेत्रगोलक सीधा नहीं चिपका है; किन्तु ऊपर कहे अनुसार नेत्रगृहके अस्थि और नेत्रगोलकके

बीचमें कितनाक चर्मीका हिस्सा आया है। नेत्रगृहकी बाहरकी दीवार उतने तक पीछे रही देखनेमें आती है कि, उस स्थल में नेत्रगोलकका कितनाक भाग खुला हो जाता हो, ऐसा भास होता है। विशेषतः शुक्ल मंडलका मध्य-भाग उस तरह अवस्थित है कि, नेत्रगृहके ऊपर और नीचेके भागमें लगी हुई एक पट्टी रखी जाय तो वह शुक्लमंडलके मध्य भागको कुछ स्पर्श करती है। किन्तु प्रत्येक व्यक्तिमें इस तरह नहीं होता। कुछ मनुष्योंके नेत्रगोलक किंचित् आगे बढ़े हुए देखनेमें आते हैं; और गहरे उतरे हुए दिखते हैं। दोनों पुतलियों (ताराओं) के मध्य भागका अन्तर बहुधा ६० मिलीमीटर अर्थात् लगभग २½ इंच होता है। यह अन्तर ऐनक (चश्मे) के नम्बर लिख देनेके समय उपयोगी होता है।

रचना—नेत्रगोलक मुख्य तीन पटलों (Tunics) से बना है। (१) नेत्रबाह्य पटल और शुक्लमंडल, (२) नेत्रधमनीमय मध्य पटल और (३) नेत्रान्तर पटल (नेत्रदर्पण)। नेत्रबाह्य पटल और शुक्लमंडल, इन दो अवयवोंसे चक्षुका बाह्य आवरण बना है। उसमें शुक्लमंडल ⅙ भाग में और बाह्य पटल ⅚ जितने हिस्सेमें अवस्थित है।

अ. शुक्लमंडल (*Cornea.*)

नेत्रगोलकके आगेके हिस्सेमें जो काला-सा पारदर्शक (Transparent) भाग है, उसे शुक्लमंडल कहते हैं। यह भाग समस्त चक्षुके ऊपर घड़ीका काँच एक गोल गेंद पर बैठाया हो उसी तरह प्रतीत होता है। वह पारदर्शक और चमकीला दीखता है। शुक्लमंडल बाह्यगोल है और नेत्रको बाह्य पटलके साथ चिपकाया-सा प्रतीत होता है आगेसे देखने पर वह अण्डाकार विदित होता है। उसका आड़ा व्यास (Transverse diameter) ११·६ मिलीमीटर है और बड़ा व्यास (Vertical diameter) १०·६ मिलीमीटर है। भीतरके भाग से देखने पर वह गोलाकार भासता है। उसका आड़ा (उत्तर दक्षिण) और खड़ा व्यास लगभग समान है। आगे का हिस्सा सब समान बाह्यगोल नहीं है। बीच का ⅔ भाग बिल्कुल बाह्य-गोल है। शेष ⅓ भाग कुछ चिपटा-सा है। पीछे का भाग अन्तर्गोल है। मध्य भाग में वह पतला और परिधि के भाग में कुछ मोटा है। ऊपर कहे अनुसार शुक्लमंडल नेत्रबाह्य पटल में घड़ी के काँच के समान बैठाया है। जिस तरह घड़ी के ढक्कन का किनारा काँच के ऊपर भी आ जाता है उस तरह नेत्र बाह्यपटल शुक्लमण्डल के किनारे पर मुड़कर आजाता है। युवा-वस्था तक शुक्लमण्डल बिल्कुल पारदर्शक होता है। फिर कितनेक मनुष्यों

में वृद्धावस्था का प्रारम्भ होने पर शुक्लमण्डल की परिधिका भाग अपारदर्शक (opaque) और श्वेत होने लगता है। उस स्थिति को वृद्धावस्था जन्य श्वेतपरिधि (Arcus senilis) कहते हैं। यह स्थिति किसी प्रकार का रोग नहीं है; किन्तु वृद्धावस्था जनित शुक्लमण्डल के आवरण में होने वाले परिवर्तन के हेतु से होता है, इससे दृष्टि को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती।

सूक्ष्म रचना।

अणुवीक्षण यन्त्र से परीक्षा करने पर शुक्लमण्डलमें निम्नानुसार पाँच स्तर विदित होते हैं।

१. आगे का सूक्ष्मत्वचा स्तर--अग्रिमा उत्तान स्तरिका-Anterior epithelial membrane.
२. बाऊमेन स्तर--Bowmen's membrane.
३. गर्भ स्तर--Stroma.
४. डेसमट का स्तर--Descemets' membrane.
५. पीछे का त्वचा स्तर-पश्चिमा उत्तानस्तरिका--Posterior epithelial membrane.

(१) अग्रिम सूक्ष्म त्वचा स्तर—यह पर्त सूक्ष्म रन्ध्र के ५-६ तह की बनी हुई है। वह नेत्रश्लेष्मावरण के आगेकी तहके साथ मिली हुई है।

(२) बाऊमेन स्तर—बाऊमेन नामक डा० ने सबसे पहले इस स्तर को दर्शाया है। जिससे उनके नामपरसे इस पटलको बाऊमेन स्तर संज्ञादी है। यह स्तर स्वच्छ, पारदर्शक और एक ही प्रकार के समान पदार्थ से बना है। इसमें अनेक छिद्र हैं। इन छिद्रों में से वातवाहिनियों के सूक्ष्म तन्तु प्रवेश करते हैं। यह स्तर व्याधि या व्यथा से एक बार नष्ट हो जाय तो पुनः बिल्कुल वैसा उत्पन्न नहीं होता। इसी हेतु से शुक्लमण्डल के क्षत यदि इस स्तर तक पहुँच जाय तो फूला होजाता है या अपारदर्शकता आजाती है।

(३) गर्भ स्तर—इस तहसे शुक्लमण्डलका लगभग $\frac{९}{१०}$ भाग बना है। यह पारदर्शक तन्तुओं और संयोजक अणुओंसे बना है।

(४) डेसमट स्तर—इसका पहला वर्णन पारिस शहरके एक डाक्टर डेसमट (Descemet) ने किया है। इस हेतुसे उसके नामसे यह स्तर प्रसिद्ध हुआ है। यह स्तर अति दृढ़ और लेसदार है तथा शुक्लमण्डलके क्षतमें अधिकसे अधिक समय तक टिकता है। यह स्तर बाऊमेन स्तरकी

अपेक्षा एक प्रकारसे पृथक् है। यदि क्षतसे उसका हिस्सा गल कर नष्ट हो जाय तो फिर उत्पन्न हो जाता है। यदि यह शस्त्रसे काटनेमें आवे तो उसके दो सिरे बढ़ जाते हैं। इस गुणके हेतु से मोतियाबिन्दके लिये शस्त्र क्रिया करनेमें अनेक बार ऐसी अपारदर्शकता प्रतीत होती है, जो शस्त्र-वैद्य को कठिनतामें डाल देती है।

(५) पश्चिम सूक्ष्मत्वक् स्तर—पीछेकी ओर रहा हुआ यह अंतिम स्तर है। यह एक प्रकारके सूक्ष्म रन्ध्रोंसे बना है। इसे जलमय-रस का सतत स्पर्श होता रहता है। क्योंकि, इसीसे जलमय रस के पूर्वखण्ड के आगे का हिस्सा बना है। यदि यह स्तर किसी कारणसे टूट जाय तो जलमय रस शुक्लमण्डलमें प्रवेश कर जाता है। परिणाममें अपारदर्शकता आजाती है।

शुक्लमण्डलमें धमनियाँ या शिराएँ बिल्कुल नहीं हैं। इसी कारणसे जब वह काटनेमें आता है, तब रक्तस्राव बिल्कुल नहीं होता। शुक्लमंडल का पोषण रक्तरस या रक्तवारिसे होता है। उसके लिये प्रकृतिने रस-वाहिनियोंकी विशेष रूपसे योजना की है। शुक्लमण्डलमें संवेदक नाड़ियाँ अच्छी तरह विशेष परिमाणमें अवस्थित हैं। इसी हेतु से सामान्य चोट लगे या शुक्लमण्डलमें बहुत छोटा क्षत होजाय, तो भी अति वेदना होती है। इस मण्डलके पीछेके हिस्सेमें जलमय रसका पूर्वखण्ड रहा है। जिस भागमें यह मण्डल और नेत्र बाह्यपटल संसर्गमें आते हैं, उस भागमें एक रसवाहक मार्ग अथवा जलवाहक मार्ग बन जाता है। इस मार्गको अपन अग्रजलमार्ग (Canal of Schlemm) कहेंगे। यह मार्ग विशेषतः नीला मोतिया (अधिमंथ) रोगके साथ अति घनिष्ट सम्बन्ध रखता है। इस मार्गसे नेत्रके भीतरका अधिक उत्पन्न जलरस नेत्र गोलकसे बाहर निकल जाता है; और इसी हेतु से नेत्रके भीतरका दबाव या नेत्रगोलककी कठिनता प्रायः एकसी रहती है। यह विषय आगे अधिमंथके प्रकरण में विस्तारसे समझाया जायगा।

आ. नेत्रबाह्यपटल (*Sclerotic coat*)

इस पटलसे नेत्रगोलकका $\frac{5}{6}$ भाग बना है। यह पटल दृढ़, श्वेत रंग का और चिकना है। आगेके हिस्सेकी अपेक्षा पिछला हिस्सा अधिक मोटा है; तथा पिछली ओर बिल्कुल अंत भागमें तो इसकी मोटाई १ मिलीमीटर ($\frac{1}{25}$ इंच) जितनी होती है। मध्य भागमें ·४ से ·५ मिलीमीटर ही है। नेत्र बाह्यपटलके पीछे बाह्यभागमें टेनन का गिलाफ (कोष--Capsule of Tenon) और आगेके हिस्सेमें नेत्रश्लेष्मावरण अवस्थित है।

अक्षिगोलकके बाह्यपटलको ६ मांसपेशियाँ चिपकी हैं। जहाँ शुक्ल-मंडल और नेत्रबाह्यपटल परस्पर मिलते हैं, वहाँ पर एक जलमार्ग (अम्ब-जलमार्ग) अथवा श्लेमका जलमार्ग (Canal of schlemm) बन जाता है। इस जलमार्गका सम्बन्ध अक्षिगोलकके आगेके हिस्सेमें अवस्थित शिराओंके साथ है। नेत्रगोलकके मध्य भागसे ४-६ मिलीमीटर पीछेकी ओर ४-५ शिराएँ नेत्रगोलकसे बाहर निकलती हैं। इन शिराओं द्वारा नेत्रमेंसे अशुद्ध रक्त बाहर निकलता है। नेत्र बाह्यपटलके पिछले भागमें एक छिद्र है, उस छिद्रमें दर्शन नाड़ी प्रवेश करती है। दर्शन नाड़ीके अतिरिक्त रक्तवाहनियाँ और वातनाड़ियाँ भी इस छिद्रके आसपास नेत्रमें प्रवेश करती हैं। इस छिद्रवाले भागके इर्द-गिर्दका थोड़ा भाग असंख्य छोटे छिद्रोंका बना हो, ऐसा प्रतीत होता है। इस भागमें दर्शन नाड़ीके सूक्ष्म तन्तुका प्रवेश होनेसे चालनीके सदृश रचना हो जाती है, अतः उसे चालनी पटल (Lamina Cribrose) संज्ञा दी है। नेत्र बाह्यपटलके भीतरका भाग काला-सा होता है। कारण, वह नेत्र मध्यपटलके साथ चिपका हुआ है। बालकों में नेत्रबाह्यपटल इतना पतला होता है कि, यह कालापन बाहरसे नेत्र बाह्यपटलमें प्रतीत होता है। नेत्र बाह्यपटलके भीतरके भाग और नेत्रमध्यपटलके बीचमें कितनेक अंशमें रिक्त स्थान है। उसमें रसतन्तु (Lymphatic tissue) अवस्थित है। नेत्र बाह्य-पटलके भीतरके भागमें सूक्ष्म सूक्ष्म गहरी रेखाएँ हैं। उनमें धमनियाँ, शिराएँ और वात नाड़ियाँ अवस्थित हैं।

६. तारामण्डल (*Iris*)

तारामण्डल एक पर्दा है। यह शुक्ल मण्डलके पीछे जो जलमय रसका पूर्वखण्ड है, उसके पीछे रहा है। इसका रंग भारतवासियोंमें प्रायः काला तथा अँगरेज और अन्य गोरे मनुष्योंमें भूरा होता है। भारतमें भी किसी किसीके नेत्रमें भूरे रंगका दीखता है। जो लोग जन्मसे ही रंगरहित अर्थात् भूरे होते हैं उनके तारामण्डलका रंग रक्ताभ भूरा होता है।

तारामण्डलके लगभग बीचमें एक गोल छिद्र रहा है उसे कनीनिका (Pupil) कहते हैं। कनीनिका में संकुचित-विकसित होनेका गुण है। नेत्रपर जब प्रकाश गिरता है, तब कनीनिका संकुचित होती है; और जब प्रकाश हटा लिया जाता है, तब संकोच दूर होकर पुनः विस्तृत हो जाती है। उसी तरह मनुष्य दूर देखता है, तब कनीनिका चौड़ी होती है; और समीप देखता है, तब संकुचित होती है। भय, विस्मय और शारीरिक दुःख, इन सब हेतुसे कनीनिका विस्तृत होती है। निद्रामें कनीनिका संकुचित होती है। इसका

विस्तारपूर्वक विवेचन आगे 'कनीनिकाकी क्रिया' इस विषयमें दिया जायगा।

कनीनिकाका परिमाण आयु अनुसार पृथक् पृथक् होता है। छोटे आयु और वृद्धावस्थामें कनीनिका छोटी होती है। शैशवावस्थामें कुछ मोटी होती है। दीर्घ दृष्टिकी अपेक्षा ह्रस्व दृष्टि वालोंकी कनीनिका बड़ी होती है। कनीनिकाका व्यास सब मनुष्योंमें एक समान नहीं होता। लगभग २'५ मि० मी० से ६ मि. मी. तक होता है। २ मिलीमीटर से छोटी और ५ मिलीमीटरसे बड़ी कनीनिका स्वाभाविक नहीं मानी जाती। कनीनिका गोल है। उसके भीतरकी किनारी कुछ मोटी देखनेमें आती है। गर्भावस्था में कनीनिकाके भागमें श्लैष्मिक कलाका आच्छादन रहता है, उसे कनीनिकाच्छादनी कला (Pupillary Membrane) कहते हैं। यह आवरण गर्भावस्थाके छटवें माससे कुछ कुछ अदृश्य होने लगता है और आठवें मासके अन्त में बिल्कुल अदृश्य हो जाता है। किसी नवजात शिशुमें जन्मके समय यह आवरण रह जाता है। उस हेतुसे वह दृष्टि रहित जन्मता है।

तारामण्डल सूक्ष्म, मृदु और रंगदार पर्दा है। परिधिके भागमें वह तन्तुरूप समूहके पूर्वभागको चिपका हुआ है। आगेके हिस्सेमें वह जलमय रसके पूर्वखंडके सम्बन्धमें आता है। पिछले भागमें बीचका हिस्सा दृष्टि-मणिके मध्य भागको और उसके आच्छादनको लगा है। इर्द-गिर्दका अर्थात् परिधिकी ओरका हिस्सा मुक्त है और उसके तथा दृष्टिमणिके आच्छादनके बीचमें जलमय रसका पश्चिम खण्ड रहा है। उसमें जलमय रस रहता है। वह रस कनीनिकाके मार्गसे पूर्व खण्डमें आता जाता रहता है। तारामंडल किञ्चित् शंकु आकारका प्रतीत होता है; अर्थात् इसका मध्य भाग कुछ आगे आया हुआ और परिधिका भाग समतल भासता है। जब काँच बिन्दुकी शस्त्र क्रियाके परिणाममें अथवा किसी अन्य कारणसे दृष्टिमणि नेत्रमें नहीं रहता, तब तारामण्डल सपाट प्रतीत होता है। कितनेक समय वह कम्पायमान देखनेमें आता है। पूर्व कथनानुसार लगभग मध्यमें, किन्तु किञ्चित् भीतर की ओर रही हुई कनीनिका दृष्टिमें अति महत्वका भाग लेती है।

तारामंडलके आगे का हिस्सा, मानो दो भाग में विभक्त हुआ हो ऐसा भासता है। बीचका कनीनिका भाग और परिधिका संधान मंडल (Orbicularis Ciliaris), ये दो हिस्से जहाँ पर मिलते हैं, वहाँ पर एक गोल चक्र बन जाता है। वह चक्र कनीनिकाके किनारेसे लगभग १'५ मि. मी. की दूरी पर अवस्थित है। कनीनिकाके बाहरके हिस्सेके तीन विभाग हो जाते हैं। भीतरका भाग सपाट, बीचका भाग वल्लीमय और बाहरका हिस्सा छिद्रमय

प्रतीत होता है। तारामण्डलके पीछेका समस्त हिस्सा लगभग एक समान और सपाट है। मात्र किसी-किसी स्थानमें ही वल्लीमय है।

सूक्ष्म रचना।

अणुवीक्षण यन्त्रसे तारामंडलके एक छोटे टुकड़ेको काँचपट्टीपर रखकर परीक्षा करनेपर उसमें ५ तह प्रतीत होती हैं।

१. आद्यम सूक्ष्म त्वचामय स्तर—Endothelial layer or Anterior limiting layer.

२. रक्तवाहिनीमय स्तर—Vascular layer.

३. संकोचविस्तारक तन्तुमय स्तर—Layer of dilator and sphinctor muscle.

४. रंजित स्तर—Pigmentary layer.

५. अन्तराच्छादन स्तर—Inner lining membrane.

तारामण्डलमें मुख्य दो बाह्य माँसपेशियाँ रही हैं। (१) कनीनिका संकोचक (Sphincter pupillae) और (२) कनीनिका प्रसारक Dilator pupillae)। संकोचक पेशीके तन्तु गोलाकार और प्रसारक पेशीके तन्तु किरणों के समान व्यवस्थित हैं। संकोचक पेशीको तीसरी नाड़ी और प्रसारक पेशीको स्वतन्त्र नाड़ीमंडल (Sympathetic nerve fibers) की संवेदक नाड़ी के तन्तु गति देते हैं।

ई. तन्तुमय समूह—सन्धानमण्डल (*Cilary Body*)

यह समूह मुख्य तीन भागोंसे बना है:—

१. तन्तुमय मंडल—सन्धान वलयिका—Orbicularis Ciliaris.

२. तन्तुमय पुट—सन्धान दर्शिका—Ciliary processes.

३. तन्तुमय पेशी—सन्धान पेशिका—Ciliary muscle.

तन्तुमय समूह, यह शुक्लमंडल और नेत्र बाह्यपटलका जहाँ संगम होता है, उस संगमस्थान (Corneo-Scleral junction) के और नेत्र-दर्पण के दन्तुरधारा मंडल (Ora serrata) के भागक साथ पीछेकी ओर जुड़ा है। इस भागको तंतुमय पेशी संज्ञा दी है। इसकी जो बाजू नेत्रबाह्य-पटलकी ओर रही है, वह सपाट और चिकनी है। भीतरकी बाजू लगभग ७० से ८० किरणाकार पुटोंसे बनी है। इस पुटमय विभागको तंतुमयपुट (संधान-दर्शिका) कहते हैं।

तारामण्डलका मूल (संधान दर्शिका-Ciliary Process), यह तन्तुमय समूहके बीचक भागमेंसे निकाला है; और उसके साथ इसका

सम्बन्ध है। इस तन्तुमय समूह को पिछले भागमें नेत्रदर्पण और नेत्रमध्य पटलसे सरलतासे अलग कर सकते हैं।

जिस स्थानमें नेत्रमध्य पटलका अन्त होता है, उस स्थानसे तन्तुमय समूह समस्त अक्षिगोलककी गोलाईमें चारों ओर आजाता है, इस भाग को तंतुमय मण्डल संज्ञा दी है। उसकी चौड़ाई भीतरके और ऊपरके भागमें लगभग ५ मि॰ मी॰ (लगभग ⅕ इंच) तथा बाहरके और नीचेके भागमें ६। मि. मी. (¼ इंच) है। इस तंतू समूहके अग्रपश्चात् भाग का आकार लगभग त्रिकोणाकार है। उसके अन्तका भाग नेत्रमध्यपटलको लगा है और मूलका भाग शुक्ल मण्डलके मध्य भागकी ओर किञ्चित् मुड़ा हुआ है। उसका बाहरका भाग पहले कहे अनुसार नेत्रबाह्य पटलको लगा है, जो भाग एड़ी के सदृश भीतर आया है; उसको भीतरकी धारा मुक्त है और वह दृष्टि मणिके बीचके भागसे आयी है।

उ. नेत्रमध्य पटल—कर्बुर वृत्ति (*Choroid*)

नेत्र गोलकके दो भाग करके उसमेंसे यदि नेत्र दर्पणको निकाल दिया जाय, तो उसके नीचे एक काला नरम और अपारदर्शक पटल प्रतीत होता है, उसे नेत्रमध्य पटल कहते हैं। वह समस्त गोलकके लगभग ⅔ भागमें आजाता है। वह बहुत सूक्ष्म है। उसकी मोटाई यथार्थ रूपसे निर्णित करना कठिन है। कारण, यह पटल मुख्यतः सूक्ष्म रक्तवाहिनियोंसे बना है। जीवित मनुष्यके गोलकमें ये धमनियाँ-शिराएँ रक्तपूर्ण रहती हैं। जिससे यह पटल अधिक मोटा प्रतीत होता है। मृत व्यक्तिके गोलककी इन धमनियों-शिराओंमें रक्त नहीं रहता जिससे इस पटलकी मोटाई बहुत कम होजाती है। जहाँ दर्शन नाड़ीका सिरा गोलकमें प्रवेश करता है, वहाँ मध्यपटल अधिक मोटा होता है। उस स्थान पर उसकी मोटाई ·२२ मि॰ मी॰ के लगभग होती है। जहाँ आगेके भागमें नेत्रदर्पणके वन्तुरधारा मण्डलसे सम्बंध होता है, वहाँ मोटाई मात्र ·१ मि॰ मी॰ के लगभग हो है।

यह मध्यपटल भारतीय लोगोंमें लगभग काले रङ्गका, गोरे लोगोंमें भूरे रंगका एवं श्वेत त्वचा और श्वेत बाल वाले (Albinos) लोगोंमें करीब रंग रहित होता है। इस पटलके पिछले भागमें दर्शन नाड़ीको प्रवेश होनेके लिये एक छिद्र होता है, उसमेंसे दर्शन नाड़ीके तन्तु नेत्रगोलकमें प्रवेश कर नेत्रदर्पणके कोषके साथ मिल जाते हैं। इस स्थान पर यह पटल नेत्र बाह्यपटलके साथ चिपका हुआ है। पहले किये हुए वर्णन परसे समझमें आया होगा कि, इस पटलको बाहरकी बाजूमें नेत्रबाह्यपटल और भीतरके भाग

में नेत्रदर्पण रहा है। यह पटल सूक्ष्म रक्त वाहिनियों (कैशिकाओं) का बना है। उसके बीचमें रंजित या रंगके कण रहे हैं। यदि इस पटलको चोट लगे, कट जाय या पृथक् हो जाय तो (अति कैशिकाओंके हेतुसे) अति रक्तस्राव होता है। इस पटल और बाह्यपटलके बीच किञ्चित् रिक्त स्थान है।

सूक्ष्म रचना

१. बाह्यतम सूक्ष्म स्तर—Epichoroid.
२. रक्त वाहिनीमय स्तर—Vascular layer.
३. सूक्ष्म धमनीमय स्तर (कैशिकामय)—Chorio-Capillaries.
४. बाह्य सूक्ष्म स्तर—Outer stratum.

ऊ. नेत्रदर्पण—दृष्टिवितान (*Retina*)

चित्र नं० २ देखें। काँचमय रस नेत्रगोलकमेंसे निकाल दिया जाय, फिर जो सूक्ष्म पटल प्रतीत हो, उसे नेत्रदर्पण कहते हैं। यह अन्तःपटल अति सूक्ष्म, मृदु, चिकना, पारदर्शक और कुछ बैंजनी रंगका है। मृत्युके पश्चात् या नेत्रगोलक देहसे पृथक् होनेके पश्चात् उसकी पारदर्शकता कम होजाती है। फिर वह मैले सफेद रंगका भासता है। जीवित प्राणियोंमें इस पटलके ऊपर प्रकाश पड़ने पर उसका बैंजनी रंग अदृश्य होता है; अर्थात् पटल सफेद देखनेमें आता है। यह जैसे जैसे आगे आता है, वैसे वैसे पतला होता जाता है। अंतमें आगेके हिस्सेमें तन्तुमय समूह और मध्यपटलके साथ चिपक जाता है। वहाँ पर यह कंगूरेदार होजाता है। इस भागको दांतोंके हेतुसे दांतेदार मण्डल और दन्तुरधारा मण्डल (Ora Serrata) संज्ञा दी है। नेत्रदर्पण इस मण्डलकी परिधिसे बाहरकी बाजू ६ मि० मी० है। भीतरकी बाजू अर्थात् नाककी ओर वह १ मि० मी० अधिक आगे आया है। नेत्रदर्पणके दांते तन्तुमय समूहके दांतोंमें अच्छी तरह बैठ जायँ उस तरह व्यवस्थित हैं। नेत्रदर्पणको बाहरकी ओर नेत्र मध्य पटल अवस्थित है तथा भीतरकी ओर कांचरूप रस। नेत्र दर्पणके मध्य बिन्दुके कुछ भीतर (३ मि० मी०) अर्थात् नाककी ओर एक सूक्ष्म सफेद भाग प्रतीत होता है। उसे दर्शन नाड़ीका सिरा-सितबिम्ब (Optic disc) नाम दिया है। दर्शन नाड़ीके इस सिरेका नाप लगभग १·५ मि० मी० है। इस भागमें दृष्टि बिल्कुल नहीं है, यह बात दूसरे प्रकरणमें स्पष्ट की जायगी। दर्शन नाड़ीके सिरके मध्य भागमें से एक सूक्ष्म धमनी निकलती है। उसकी छोटी शाखाएँ नेत्रदर्पणके ऊपर फैल जाती हैं।

नेत्रदर्पणकी जो मध्यस्थ धमनी है, उसे दृष्टि नाड़ी मध्यगा धमनी

कहते हैं। इसके साथ एक शिरा भी देखनेमें आती है। उसकी शाखाएँ धमनीकी शाखाओंके साथ साथ समस्त नेत्रदर्पणके ऊपर फैली हुई हैं। इस शिराको नेत्रदर्पण मध्यस्थ शिरा और दृष्टिनाड़ी मध्यगत शिरा नाम दिया है।

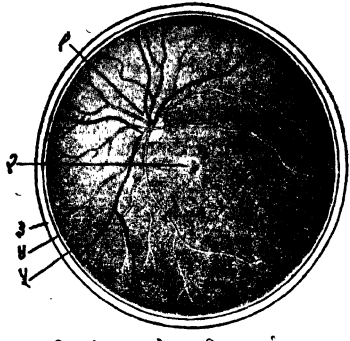

चित्र नं० २ वामनेत्र का पिछला अर्ध भाग

१. सित बिम्ब--Optic disc.
२. पीत बिम्ब--Macula lutea.
३. नेत्रबाह्यपटल--Sclera.
४. नेत्रमध्यपटल--Choroid.
५. नेत्रदर्पण--Retina.

धमनियों की अपेक्षा शिराएँ अधिक गहरी हैं।

नेत्रदर्पणके ठीक बीचमें एक थोड़ा उभरा हुआ दाग देखनेमें आता है। उसका रंग ऊपरमें पीत-आभायुक्त होनेसे उसे पीत बिन्दु और पीत बिम्ब (Macula Lutea) संज्ञा दी है। यह पीताभ रंग परिधिके भागमें अधिक तथा मध्य भागकी ओर न्यून है। काले रंगके लोगोंमें रंग अधिक होता है; एवं वृद्धावस्थामें भी अधिक दिखाई देता है।

पीतबिन्दुका परिमाण १ से ३ मि० मी० है। यह जीवित मनुष्यके नेत्रमें नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखनेमें आता है। इस यंत्रमें यदि प्रकाशकी रक्त किरणोंको अदृश्य करने वाले कांचकी योजना की जाय, तो पीत बिन्दु पीले रंगका प्रतीत होता है। ऐसा नेत्रदर्शक यंत्र (Ophthalmoscope with red-free light) विशेष मूल्यवान है। इस हेतुसे उसका उपयोग भारतमें

कम होता है। पीत बिन्दुके मध्य भागमें कुछ गड्ढासा भासता है, उसे दर्शन केन्द्र (Fovea centralis) संज्ञा दी है। पीत बिन्दुके इस भागमें धमनी या शिरा बिल्कुल नहीं है, किन्तु उसमें नाड़ियोंके तन्तु अनेक होनेसे इस भागमें दृष्टि अति तीव्र होती है।

सूक्ष्म रचना।

चित्र नं० ३ देखें। नेत्र दर्पण १० पर्तोंका बना है। इन पर्तों की रचना नेत्रदर्पणके टुकड़ेको काट अणुवीक्षण यंत्र से देखने पर ही विदित होती है।

(नेत्रदर्पणकी १० पर्त)

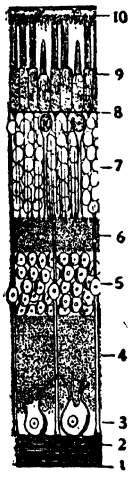

चित्र नं० ३

१०. रंजित स्तर-चित्रजवनिका-Pigmentary layer.

९. दण्डशंकु स्तर-रूपादानिका-
Layer of Rods & cones.

८. बाह्य स्तर-बहिःसीमिका-External layer.

७. बाह्य बीज स्तर-यवकन्दिनी बाह्या-Outer nuclear.

६. बाह्य अणु स्तर-तन्तुजालिनी बाह्या-
Outer molecular.

५. अन्तर बीजस्तर-यवकन्दिनी अन्तरा-
Inner nuclear.

४. अंतर अणु स्तर-तन्तुजालिनी अन्तरा-
Inner molecular.

३. नाड़ीग्रन्थि स्तर-पुरुकन्दाणुकिनी-
Ganglian layer.

२. नाड़ीस्तर-वितान सूत्रिणी-
Layer of Nerve fibers.

१. अंतराच्छादन स्तर-अंतःसीमिका-
Internal Membrane.

१. *अन्तराच्छादन स्तर*—यह पर्त कांच रूप रस के कोष के साथ सम्बन्ध वाली है।। जहाँ दर्शन नाड़ी नेत्रदर्पणमें प्रवेश करती है, उस स्थान पर यह नहीं रहती। एवं कितनेकों के नेत्र में दाँतेदार मण्डल के पास भी खण्डित हो जाती है। इसके सम्बन्ध में दो मत हैं। कितनेक लेखक इसे नेत्र दर्पण की पर्त मानते हैं। अन्य कितनेक विद्वान् उसे काँच रूप रसके बाहरका आच्छादन गिनते हैं। यह स्तर समान, सूक्ष्म और रंग रहित है।

२. नाड़ी स्तर—यह पर्त दर्शन नाड़ी के तन्तुओंके फैलनेसे बनती है। अन्य शब्दोंमें कहें तो यह दर्शन तन्तुओंसे ही बनी है। इसके तन्तु सूर्यकिरणोंके आकारसे व्यवस्थित होते हैं। मात्र बाहरके भागोंमें जहाँ ये तन्तु पीतबिन्दुकी ओर आते हैं, वहाँ पीतबिन्दुके ऊपर और नीचे चारों ओर वर्तुलाकार सज्जित हुये देखनेमें आते हैं। वहाँ से ये तन्तु दर्शन नाड़ीमें प्रवेश करते हैं।

मात्र थोड़े तन्तु जो पीतबिन्दुसे दर्शन नाड़ी के सिरे तक पहुँचते हैं। वे ही सीधे जाते हैं। ये तन्तु अति महत्त्व के हैं। कारण, उसका सम्बन्ध तीक्ष्ण दृष्टिके साथ रहता है। यह वृत्तिदर्शन नाड़ीके सिरेके भागमें अधिकसे अधिक मोटी है और जैसे-जैसे परिधिकी ओर जाती है, वैसे-वैसे मोटाई कम होती जाती है। दर्शन-नाड़ी के सिरे के बाहर के भाग में वह अधिक सूक्ष्म तथा पीत विन्दुकी ओर जाने पर अधिक से अधिक पतली होती जाती है। है। अन्तमें दर्शन केन्द्रके भागमें वह अदृश्य हो जाती है।

३. नाड़ी ग्रन्थि स्तर—इस तहमें सूक्ष्म रन्ध्र की एक ही पंक्ति आई है; और उसके बीचमें मूलरके तन्तु (Muller's fibers) और कोषाणु अवस्थित हैं। परिधिके भागमें नाड़ी ग्रन्थियाँ परस्पर पृथक् होती हैं; और उसके बीचमें जो अन्तर उत्पन्न होता है, उसमें नाड़ियोंके तन्तु आये हुए प्रतीत होते हैं। दर्शन नाड़ीके सिरेके बाहरके भाग में यह स्तर दो ग्रन्थियोंकी तह से बना है। एवं जैसे-जैसे पीतबिन्दुकी ओर जाता है वैसे-वैसे अधिक मोटा होता जाता है। अन्त में पीत बिन्दु के पास ५ से ६ तह का हो जाता है। यहाँ से पुनः तह कम होने लगती है और दर्शन केन्द्र के पास तो वह बिल्कुल प्रतीत नहीं होती। इसके तन्तु पीछे रही हुई पर्तके तन्तुओं के साथ मिल जाते हैं।

४. अन्तर अणु स्तर—यह तह जालाकार है। यह नेत्र दर्पणके समस्त भागमें लगभग समान मोटी है, केवल दर्शन केन्द्रमें प्रतीत नहीं होती।

५. अन्तर बीज स्तर—यह पर्त बीजके आकार के कणों से बनी है, इसका देखाव बाह्य बीज स्तर जैसा ही है। मात्र अन्तर उतना ही है कि, यह बाह्य स्तरकी अपेक्षा पतला है। यह स्तर भी पीत बिन्दुके चारों ओर के भाग में मोटा है और जैसे-जैसे दर्शन केन्द्रकी ओर जाता है वैसे-वैसे पतला होता जाता है, अन्तमें दर्शन केन्द्रके भीतर तो बिल्कुल नहीं भासता।

६. बाह्य अणु स्तर—यह पर्त परस्पर चिपककर रहे हुए तन्तुओंकी बनी है। इसके दो भाग देखनेमें आते हैं। बाहरका या पिछला भाग कुछ मोटा है। उसके तन्तु दण्ड शंकु कोषके तन्तुके साथ मिले हुए हैं। भीतरके या

आगेके भागके तन्तु अधिक दृढ़ सुसज्जित हैं। ये तन्तु अन्तर बीज कोष के तन्तुओंके साथ मिले हुए हैं।

७. *बाह्य बीज स्तर*—यह पर्त दो जाति के बीज कणों की बनी है। एक जातिके बीजकोष छोटे और गोल तथा दूसरी जातिके लम्बे और लम्ब गोलाकार हैं। पहली जातिके कण दण्डके बीज रूपसे और दूसरी जातिके कण शंकुके बीज रूपसे अवस्थित हैं।

८. *बाह्य स्तर*—यह पर्त अति पतली है। दण्ड-शंकुमें से निकलने वाले तंतु इसका भेदन करके बाह्य बीज स्तरके तंतुओंके साथ मिल जाते हैं।

९. *दण्डशंकु स्तर*—यह वृत्ति जिन कणोंकी बनी है, उसके दो रूप देखनेमें आते हैं। कितनेक दण्ड जैसे आकारके और कई एक शंकु आकार के। दण्डाकार कण पतले और वर्तुलाकार हैं। उनका बाह्य भाग प्रतिछाया देने वाला और पतला तथा भीतरका भाग दानेदार मोटा भासता है। बाहर के भाग में बैंजनी रङ्ग लगा है, इस रङ्गके ऊपर प्रकाश पड़ने पर वह सफेद हो जाता है। प्रकाश बन्द होने पर (अंधकार होने पर) यह रङ्ग पुनः देखने में आता है। आगे दूसरे प्रकरण में समझाया जायगा कि, इस रङ्ग में होने वाले परिवर्त्तन का सम्बन्ध दृष्टि के साथ अति निकट का है। शंकुएँ अंडाकार हैं। उनके बाहरका भाग पतला और शंकु आकारका तथा भीतरका भाग मोटा देखनेमें आता है। शंकुओंके आकार और परिमाण, वे जिन स्थानों पर अवस्थित हैं उनके अनुरूप पृथक् पृथक् हैं। दर्शन केन्द्रमें आये शंकु लम्बे और पतले देखनेमें आते हैं। जैसे-जैसे परिधिके भागकी ओर जाते हैं, वैसे वैसे शंकु लम्बाईमें कम होते जाते हैं। दर्शन केन्द्रके मध्य भागमें मात्र शंकुही आये हैं। इस भागके बाहर दंड दिखाई देते हैं। प्रारम्भमें कुछ बिखरे हुए दण्ड-शंकु साथमें देखनेमें आते हैं और जैसे जैसे परिधिके भागकी ओर जाते हैं, वैसे वैसे दण्ड बढ़ते जाते हैं। फिर एक शंकुके चारों ओर अनेक दण्डोंके वर्तुल (चक्र) देखनेमें आते हैं। परिधिके अन्त भागमें दण्डोंकी अपेक्षा विकृत आकार वाले शंकु अधिक परिमाणमें अवस्थित हैं।

१०. *रंजित स्तर*—यह पर्त रंगमिश्रित कणोंसे बनी है। इसे कई शारीर-शास्त्री मध्यपटलकी पर्त और कितनेक नेत्र-दर्पणकी वृति कहते हैं।

ये सब स्तर एक प्रकारके तन्तुओंसे संयोजित हैं।

नेत्रदर्पणमें मुख्य धमनी १ ही है। उसे नेत्रदर्पण-मध्यस्था-धमनी कहते हैं। यह धमनी दर्शन नाड़ीके मध्य भागमेंसे निकल कर ऊपरकी और नीचेकी दो शाखाओंमें विभक्त होकर बाहर आती है। ऊपरकी शाखाकी पुनः

दो उपशाखाएँ हो जाती हैं, बाहरकी और भीतरकी। उसी अनुसार निम्न शाखाकी भी दो उपशाखाएँ बनती हैं। प्रत्येक उपशाखामेंसे सूक्ष्म सूक्ष्म अनेक प्रशाखाएँ निकलकर वे संपूर्ण नेत्रतर्पण पर छाजाती हैं। रचना जानने के लिये चित्र नं० २ देखें। इस धमनीकी शाखाएँ एक दूसरेके साथ सम्बन्ध नहीं रखती। जिससे किसीभी शाखामें रक्तप्रवाह होना बंद हो जाय, तो वह शाखा जिस भागको रक्तपोषण देती है, वह भाग बिल्कुल मृत हो जाता है। जिस तरह धमनी की रचना है, उसी अनुसार शिरा और उसकी अनेक शाखा प्रशाखाओंकी रचना हुई है।

ए. जलमय रसका पूर्वखण्ड–अग्रिमा जलधानी।

(*Anterior Chamber*)

शुक्लमण्डल और तारामण्डलके बीचमें एक अर्धगोलाकार खण्ड है, उसे जलमय रसका पूर्वखण्ड कहते हैं। इस खण्डके आगेके हिस्सेमें शुक्लमंडलकी सबसे पिछली वृत्ति और पिछले हिस्सेमें तारामण्डलकी आगेकी वृत्ति अवस्थित है। बीचमें जहाँ कनीनिका है, वहाँ जलमय रस दृष्टिमणिके आगेकी वृत्तिके साथ संसर्ग में आता है। यदि पुतली चौड़ी हुई हो, तो दृष्टिमणिकी वृत्तिका विशेष भाग जलमय रससे सम्बन्धित होता है; किन्तु पुतली संकुचित हो तो जलमय रस पिछले भागमें लगभग समस्त तारामण्डलसे सम्बन्ध रखता है। जलमय रसके पूर्वखण्डकी परिधि के भागमें फिरता हुआ सूक्ष्म कोण बन जाता है। इस कोणमें बहुत सूक्ष्म तंतुओंका बना हुआ एक मार्ग है। उसे अग्र जलमार्ग (Schlemm's Canal) कहेंगे। इस मार्गसे नेत्रके भीतरका जल जितना अधिक हो, उतना गोलकसे बाहर निकल जाता है। यह जल उपर्युक्त मार्गमें प्रवेश करता है। फिर उसके चारों ओर अवस्थित सूक्ष्म शिरा समूहके भीतर गमन करता है। इस तरह वह रक्तमें मिल जाता है।

जलमय रसका पूर्व खण्ड करीब ६ बूँद जितने जलसे भरा है। यह परिमाण सबके नेत्रोंमें एकसा नहीं होता, किन्तु सामान्यतः औसत उतनी होती है। यह जलरस जल और नमक जैसे क्षारके मिश्रणसे बना है। इस रसका पूर्व खण्ड बीचमें अधिक गहरा है और जैसे जैसे परिधि की ओर जाता है, वैसे वैसे गहराई कम होती जाती है। किन्तु अग्र जलमार्ग आगे कुछ अधिक गहरा है। ठीक मध्य भागमें वह लगभग ३·५ मि. मी. है। यह गहराई आयुके परिमाणमें, समीप और दूर देखनेके समय तथा छोटी और लम्बी दृष्टि युक्त नेत्रोंमें न्यूनाधिक होती है। बाल्यावस्थामें यह खण्ड कम गहरा, युवावस्थामें अधिक गहरा और वृद्धावस्थामें पुनः कम

गहरा होजाता है। दूर देखने पर अधिक गहराई और समीप देखने पर कम गहराई हो जाती है। छोटी दृष्टि वालोंका यह खण्ड अधिक गहरा और लम्बी दृष्टि वालोंका कम गहरा होता है। ये सब विचार विस्तारसे इस लिये लिखा है कि, नेत्रपरीक्षा करनेके समय अनेक रोगोंके निदानार्थ जलमय रसके पूर्व खण्डकी स्थितिका सूक्ष्म अवलोकन करना पड़ता है। पहले लिखे अनुसार जलमय रसके पूर्व खण्डकी परिधिका भाग जलमय रसका क्षरण मार्ग (Oozing way) है। इसका परिचय अधिमंथ होनेका कारण समझनेमें उपयोगी है। एवं नेत्र गोलकके ऊपर की प्रत्येक शस्त्र क्रिया करने के समय शस्त्रका नेत्रमें प्रवेश कराना पड़ता है, तब इस भागकी रचना खास करके याद रखनी पड़ती है। इतना जाननेकी पूरी आवश्यकता है कि, यह मार्ग शुक्ल मण्डल-नेत्र बाह्यपटलकी संधिसे ठीक १ मि. मी. पीछे रहा हुआ है। अतः ठीक संधि स्थानपर ही शस्त्रका प्रवेश कराया जाय, तो वह पूर्व खण्डमें जाता है।

ऐ. जलमय रस का पश्चिम खण्ड–पश्चिमा जलधानी।

(Posterior Chamber)

यह खण्ड तारामण्डलके पीछेके भाग और दृष्टिमणि और उसके पटलके अगले भागके बीचमें है। बाजूमें उसके आगेके हिस्सेमें तन्तुरूप समूह तथा पीछेके भागमें दृष्टिमणि और उसका उद्बंधन अवस्थित हैं। उद्बंधनके तन्तु यथार्थतः इस पश्चिम खंडमेंसे गमन करते हैं। पूर्वखंडमें जितना जल है, उसकी अपेक्षा पश्चिम खंडमें बहुत कम है। दोनों खण्डोंमें रहा हुआ जल कनीनिका द्वारा एक दूसरे खण्डमें आता जाता रहता है।

ओ. दृष्टिमणि–यवकाँच (*Crystaline lens*)।

दृष्टिमणि बिल्कुल पारदर्शक मसूराकार (दोनों ओरसे उभरा हुआ अर्थात् युगल उन्नतोदर–Biconvex) है। यह एक पटलमें सब ओरसे घिरी हुई है। इस पटलको दृष्टिमणिवृत्ति-दृष्टिमण्डलधर कलाकोष (Lens capsule) कहते हैं। दृष्टिमणि तारामण्डलके पीछे है और दृष्टिमणिके पीछे कांचरूप रस रहा है। दृष्टिमणिकी बाह्य वर्तुलता आगेकी अपेक्षा पिछली ओर अधिक है। आगेके भागका बाह्यगोलपना समीप देखने पर बढ़ जाता है। इसके आगे और पीछेके मध्य बिन्दुओंको पूर्व और पश्चिम-मध्यबिन्दु (Anterior and posterior poles of the lens) कहते हैं।

उत्तर दक्षिण व्यास ३ इंच या ७ सि. मी. के लगभग और पूर्व पश्चिम नाप ४'३ मिलीमीटर या ⅙ इंचके के लगभग है। छोटी आयुमें दृष्टिमणि छोटी और मृदु होती है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है; वैसे-वैसे दृष्टिमणि बड़ी और कठिन होती जाती है। दृष्टिमणिके बीचके हिस्सेको बीजमण्डल का केन्द्रस्थान (Nucleus of lens) संज्ञा दी है। इसके चारों ओरके भागको गर्भ भाग (Lens matter) के नामसे पुकारते हैं। एक दूसरेकी तुलना करने पर बीज गर्भ भागकी अपेक्षा अधिक कठिन है। करीब २५ वर्षकी आयु तक बीज बहुत नरम होता है; किन्तु इसके पश्चात् जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे कठिनता बढ़ती जाती है। ५० वर्षकी आयुके बाद तो भिगोई हुई चनेकी दाल जैसी कठिनता धारण कर लेता है। बीजके चारों ओर गर्भ भागकी पेशियाँ त्रिकोणाकार अवस्थित हैं। गर्भावस्थामें दृष्टिमणि वर्त्तुलाकार होती है, उसका रंग कुछ रक्ताभ है। वह बिल्कुल पारदर्शक नहीं है और उतनी नरम है कि किंचित् दबाने से ही फूट जाती है। परिपक्व आयुके मनुष्योंमें आगेका हिस्सा पिछले भागकी अपेक्षा कुछ चपटा होता है। वह पारदर्शक और सहज कठिन होता है। वृद्धावस्थामें वह आगे और पीछे, उभय और चपटा हो जाता है। इसकी पारदर्शकतामें भी न्यूनता आ जाती है; एवं रंग किंचित् पीताभ बन जाता है। यह परिवर्तन देखनेमें आने पर बड़ी आयुके मनुष्यको जिसे कांचबिन्दु न आया हो, ऐसे रोगीको कांच बिंदु आरहा है, ऐसा निर्णय नेत्ररोगके अपूर्ण ज्ञान वाले डाक्टर और वैद्य प्रदर्शित करते हैं। कांचबिंदु है या नहीं? उसका निदान किस तरह करना। यह आगे दृष्टिमणिके रोगोंके प्रकरणमें लिखा जायगा। दृष्टिमणिकी परिधिका हिस्सा तन्तु रूप समूहके साथ सूक्ष्म तन्तुमय बंधनसे बँधा हुआ है। इस बंधनको दृष्टिमणि उद्बंधन-दृष्टिमणि बंधनी* (Suspensory ligament of the lens–Zonule of Zinn) कहते हैं। यह उद्बंधन लगभग १४० सूक्ष्म तन्तुओंका बना है। इन तंतुओंके बंधनके हेतुसे दृष्टिमणि झूलती हुई भासती है। जब नेत्र नजदीक देखनेकी स्थितिमें या केन्द्रीयकरणकी स्थितिमें नहीं होता, तब ये तंतु खिंचकर दृष्टिमणिके पटलको खेंचते हैं, इस हेतुसे दृष्टिमणि चपटी हो जाती है; और जब नेत्र नजदीक देखनेकी स्थितिमें

---

* प्रत्यक्ष शारीर तृतीय खण्ड में Suspensory ligament of the lens को दृष्टिमणिबन्धनी और Zonule of zinn को कलाचक संज्ञा दी है; अर्थात् दोनों को भिन्न-भिन्न माना है। किन्तु इन दोनों संज्ञावाला बंधन एक ही है।

हों, तब वह तन्तु शिथिल हो जाते हैं, इस हेतुसे दृष्टिमणि पटल भी ढीला पड़ जाता है और दृष्टिमणि का बाह्य गोलपना बढ़ जाता है। ऐसा होनेसे समीप की वस्तु विशेष स्पष्ट भासती है। दृष्टिमणि अपने उद्बंधनसे चिपकी हुई है। उतना ही नहीं, किन्तु पीछे रहे हुए कांचरूप रसके साथ भी किंचित् चिपकी है। ये सब बंधन जब टूट जाते हैं, तब दृष्टिमणि स्थान-भ्रष्ट होती है।

औ. दृष्टिमणि आवरण–दृष्टिमंडलधरकलाकोष।

(*Lens Capsule.*)

यह आवरण एक समान किसी भी जातिके चिह्न आदि रहित, सूक्ष्म और स्थितिस्थापक है। अति सूक्ष्म होनेसे सरलतासे टूट जाता है। यह आवरण दृष्टिमणिको संपूर्ण घेर लेता है। इसमें जब काट (छेद) किया जाता है तब वह काटकी दोनों ओर लिपट जाता है। इसकी आगेकी ओर मध्यमें पुतली रही है। ठीक उसी स्थान पर तारामंडलका पर्दा उसे अच्छी तरह लगा हुआ है। मध्य भागके चारों ओरके भागमें कलाकोष और तारामण्डलके बीच कुछ अन्तर है। उस स्थानमें जलमय रस अवस्थित होनेसे जलमय रसका पश्चिम खंड बन जाता है। पीछेके भागमें कांचरूप रसमें एक मामूली खड्डा है, उसमें कलाकोष रहा है। ऊपर लिखे अनुसार इस कलाकोषको नियत स्थान में रखनेके लिये उसके किनारे पर चारों ओर एक उद्बंधन चिपका हुआ है। दृष्टिमणिमें कोई धमनी न आनेसे उसका पोषण रक्तोदक नामक प्रवाही से होता है। उसमें किसी वात नाड़ी का प्रवेश न होनेसे उसमें छिद्र करनेपर भी रोगी को बिल्कुल व्यथा नहीं होती। गर्भावस्थामें नेत्रदर्पणके मध्यमेंसे एक सूक्ष्म धमनी निकल, कांचरूप रसके मध्यमें होकर दृष्टिमणिके आवरणके पीछेके भागमें अनेक छोटी केशिकाएं बनकर चिपक जाती हैं। वे शिशुका जन्म होनेके थोड़े समय पहले अदृश्य होजाती हैं। केवल अपवादरूपसे किसी बालकके जन्मकालमें शेष रह जाती हैं।

दृष्टिमणि असंख्य तन्तुओंकी बनी है। ये तन्तु दृष्टिमणिकी परिधिके भागमें उत्पन्न होते हैं। जैसे-जैसे नूतन तन्तु उत्पन्न होते हैं, वैसे-वैसे पुराने तंतु मध्य भागकी ओर दबते जाते हैं। यह क्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है। उसी हेतुसे आयु जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे दृष्टिमणि कठिन और दृढ़ होती जाती है।

क. कांचरूपरस-सान्द्रजल (*Vitreous humour*)।

दृष्टिमणिको स्वस्थानमें से निकालदें, तो उसके पीछे कांचरूपरस

अवस्थित है। यह पदार्थ पारदर्शक, गाढ़ा और गोंदके प्रवाहीके सदृश चिपचिपा है। उससे नेत्रगोलकका लगभग $\frac{3}{4}$ भाग भरा हुआ है। यह एक पारदर्शक और अति सूक्ष्म कलाकोषके भीतर रहा हुआ है। उस आवरणको कांचरूप रसावरण—सान्द्रजलधराकोष (Hyaloid membrane) कहते हैं। यह झिल्ली सूक्ष्म-सूक्ष्म पारदर्शक तंतुओं की बनी है। आगेके हिस्सेमें इसके दो भाग हो जाते हैं। एक भाग गड्ढे में अवस्थित आवरण सह दृष्टिमणिको आच्छादित करता है। दूसरा भाग आगे आकर दांतारूप बन जाता है और प्रत्येक दांता तंतुरूप समूहके दांतोंमें सज्जित होता है। इस तरह व्यवस्थित होकर तथा दृष्टिमणिके आवरणके साथ चिपक कर दृष्टिमणिका उद्बंधन बनता है। तंतुसमूह जब संकुचित होता है, तब वह बंधन शिथिल होता है। जिससे दृष्टिमणिके आवरणके ऊपरका खिंचाव कम होता है और इस झिल्लीके स्थितिस्थापक गुणके हेतुसे दृष्टिमणि अधिक वर्तुलाकार बनती है। जब तंतुसमूहकी मांसपेशियाँ शिथिल होती हैं, तब दृष्टिमणिका उद्बंधन खिंचता है। इसलिये भी दृष्टिमणिका आवरण खिंचता है। परिमाणमें दृष्टिमणि कम वर्तुलाकार होती हैं। यह परिवर्तन होनेसे ही दूर और नजदीक नेत्र समानरूपसे देख सकता है। ऐसा किस नियमानुसार होता है, यह दूसरे प्रकरणमें विस्तारपूर्वक समझाया जायगा।

कांचमय रस नेत्रगोलकमें केवल ३ स्थानों पर चिपका हुआ है। आगेके हिस्सेमें मात्र २ मि.मी. जितने भागमें तंतुरूप समूहके भीतरके त्वचास्तरसे संलग्न है। अन्यत्र दर्शन तंतु जहां नेत्रगोलकके भीतर प्रवेश करता है, वहां पर कांचरूपरस चिपका हुआ है। किंतु यह चिपकना आगेके भाग जितना दृढ़ नहीं है। आगेके भागके बीचमें दृष्टिमणिके आवरणके पीछेके भागके साथ भी वह चिपका हुआ है। यह चिपकनेका तीसरा स्थल है। इस स्थान पर तो एक बंधन जैसा होजाता है। जब तक यह उद्बंधन अवस्थित होता है, तब तक दृष्टिमणि ऊपर या नीचेकी ओर कुछ आगे या पीछे हो सकती है, किंतु जब यह उद्बंधन टूट जाता है, तब दृष्टिमणि आगे जलमयरसके पूर्व खंडमें या पिछले कांचमयरसमें बिल्कुल गिर जाती है। इस स्थितिको दृष्टिमणिकी स्थानच्युति (Dislocation of the lens) कहते हैं।

ख. दर्शन नाड़ी–दृष्टि नाड़ी (*Optic Nerve*)।

दृष्टिनाड़ी नेत्रके गोलकसे करोटिके भीतर अवस्थित दर्शनतंतु संगम-दृष्टिनाड़ी योजनिका (Chiasma) तक पहुँची है। इस हेतुसे नेत्रदर्पणकी नाड़ियों का मस्तिष्कगत दृष्टिनाड़ी के साथ संयोग होता है। नेत्रदर्पणके

वर्णनमें लिखे अनुसार दर्शननाड़ीके बहुसंख्य तंतु, जिनसे नेत्रदर्पणका दूसरा स्तर बनता है, वे एकत्र होकर दर्शननाड़ी का सिरा बनाते हैं। यहांसे यथार्थ में दर्शननाड़ीका प्रारम्भ होता है। उसके पश्चात् नेत्रमध्य पटल और नेत्र बाह्यपटलका भेदन कर नेत्रगोलकके पिछले भागमें एक सफेद डोरी जैसी बन जाती है। इस स्थानसे मस्तिष्कके दर्शन तंतुछिद्र-दर्शन नाड़ीरंध्र (Optic Foramen) तक उसका आकार 'S' जैसा होजाता है। दर्शननाड़ी छिद्रमें प्रवेश कर फिर पिछले और अगले भागका मार्ग ग्रहण कर वह दर्शननाड़ी संगम के साथ मिल जाती है। यहां पर बांयी और दहिनी, दोनों दर्शन-नाड़ी मिलकर दर्शननाड़ी संगम बनाती हैं। इस स्थान पर उसके तंतु किस तरह सुसज्जित हुए हैं, यह आगे दर्शन नाड़ी संगमकी रचनाके वर्णनमें लिखा जायगा।

उपर्युक्त विवेचन परसे विदित हुआ होगा कि, दर्शन नाड़ीके ४ भाग हो सकेंगे। १. नेत्रगोलकके भीतरका भाग; २. नेत्रगृहमें रहा हुआ भाग; ३. करोटिगत भाग; ४. मस्तिष्कमें प्रेषित भाग। पहला भाग अर्थात् अक्षि गोलकके भीतरका भाग मात्र १ मि. मी.; नेत्रगृहमें आया हुआ भाग २५ से ३५ मि. मी. (लगभग १ से १'४ इंच); करोटिकी अस्थिके भीतरका भाग ४ से ७ मि. मी.; और मस्तिष्कके भीतरका भाग १० मि. मी. है। संक्षेपमें दर्शन नाड़ीकी लंबाई ४५ से ५० मि. मी. होती है। नेत्रगोलकके भीतर मोटाईका व्यास १'५ मि. मी.; नेत्रगृहमें ३—४ मि. मी. है; तथा करोटिमें ४-४'५ मि. मी. है। अन्य सब भागोंमें अवस्थित दर्शननाड़ी गोल है। केवल खोपड़ीके भीतर का भाग कुछ चपटा है।

दर्शन नाडीका आवरण—मस्तिष्ककी रचनाका अभ्यास जिस विद्यार्थीने किया हो, उसे याद होगा कि, मस्तिष्क आवरणके ३ पर्त हैं। अन्तरावृत्ति-चीनाशु (Pia mater), मध्यावृत्ति-नीशारिका (Arachnoid mater) और बहिर्वृत्ति-वराशिका (Dura mater), ये तीनों पर्त मस्तिष्क परसे दर्शन नाड़ी पर आ जाते हैं। अंतरापर्त दर्शन नाड़ी संगमसे कुछ दूरीपर पृथक् होता है और फिर दर्शन नाड़ीसे चिपक जाता है। मध्य-पर्त खोपड़ीमें अवस्थित दर्शन नाड़ी छिद्रके भीतरके भागसे निकल कर जहां नेत्र-गोलकके भीतर दर्शननाड़ी मिलती है, वहां तक गया है। बाह्यपर्त दर्शननाड़ी के बाह्य पर्तरूपसे नेत्रगोलक तक पहुँचता है और उसी स्थान पर नेत्रके बाह्यपर्तके साथ सम्मिलित हो जाता है। इन तीनों पर्तों के बीचमें कुछ-कुछ स्थान रहता है; किन्तु विशेष जानने योग्य स्थान तो दर्शन नाड़ी और मस्तिष्क के बाह्य पर्तके बीचमें है। इसका परिचय इसलिये आवश्यक है कि किसी

रोगीकी आंख पक जाती है (विद्रधि हो जाती है), तब उसके नेत्रगोलकको शस्त्र क्रिया करके निकाल देना पड़ता है। उस समय क्वचित् किसी रोगी को मस्तिष्कका दाह-शोथ (Inflammation) भी हो जाता है। उसका हेतु नेत्रगोलकमें से उक्त मार्ग द्वारा मस्तिष्कमें पूयकीटाणु का प्रवेश है।

ग. दर्शननाड़ीका सिरा–बिम्बांकुरिका–सितबिम्ब (Optic disc)*

जब मनुष्यके नेत्रकी परीक्षा नेत्रदर्शक यंत्रसे की जाती है, तब नेत्र दर्पणके मध्यमें जो सफेद रंगका गोल बिम्बाकार भाग प्रतीत होता है, वह दर्शननाड़ीका सिरा (अन्त भाग) है। यह चपटा, गोल और नेत्रदर्पणके अन्य भागोंकी अपेक्षा सहज उभरा हुआ है। उसका व्यास लगभग १·५ मि. मी. है। यह सिरा यथार्थमें नेत्रगोलकके भीतर अवस्थित दर्शननाड़ीका भाग है। दर्शननाड़ीके तंतु समस्त नेत्रदर्पणमें से निकल इस स्थानमें मुड़ने पर दर्शननाड़ीका सिरा बनता है। यह सिरा एक सहज दबे हुए खड्डे जैसा प्रतीत होता है। इस खड्डेके आगेका भाग काँचरूप रसका और पीछेका भाग चालनी पटलके आगेके हिस्सेके साथ संसर्गमें आता है। यह खड्डा यदि कुछ अधिक हो तो नीलकांचबिंदु (अधिमंथ) में जो गड्ढा प्रतीत होता है, उससे मिलता जुलता, किंतु किसी भी प्रकारके रोगरहित होता है। इसे दर्शननाड़ीके सिराका नैसर्गिक विदारण (Physiological Cupping) संज्ञा दी है। इस खड्डे की गहराई प्रत्येक मनुष्यमें समान नहीं है। कितनेक व्यक्तियोंमें तो लगभग १ मि. मी. ही है। लम्बी दृष्टिवालोंकी आंखोंमें अधिक, नैसर्गिक स्थितिके नेत्रोंमें उससे कम और छोटी दृष्टिवालोंके नेत्रमें उससे भी कम गहराई भासती है। दर्शननाड़ीके सिरेका नैसर्गिक आकार लगभग गोल है; किंतु छोटी दृष्टि वालोंकी आँखोंमें लम्बगोल तथा लम्बी दृष्टिवालोंकी आंखोंमें बिल्कुल गोल और छोटे नापका हो जाता है। कितनीक बार इस सिरेके चारों ओर काले रंगकी किनारी देखनेमें आती है; किंतु उसे किसी भी प्रकार का रोग नहीं मान लेना चाहिये। छोटी दृष्टि वाली आंखोंमें इस रंगकी किनारी टूटी-सी और अर्धचंद्राकार बन जाती है।

२. नेत्रगोलककी धमनी, शिरा, रसवाहिनियां और वातवाहिनियां।

नेत्रगोलकके रक्तकी पूर्ति करनेका मुख्य आधार अन्तर्भागका

---

* प्रत्यक्ष शारीरकारने Optic disc को 'सितबिम्ब' संज्ञा दी है और Optic papilla को बिम्बांकुरिका नाम दिया है; किन्तु अंग्रेजी ग्रन्थोंमें दोनों नामों को पर्याय शब्द माने हैं। अतः यहां पर एक ही नाम दिया है।

(Internal Carotid artery) की शाखा नेत्रधमनी—चाक्षुषी धमनी (Ophthalmic artery) पर अवलम्बित है। नेत्र धमनीकी दो बड़ी शाखाएँ मुख्यतः नेत्रगोलकको रक्त प्रदान करती हैं। उनमें से एक को नेत्र दर्पण मध्यस्था धमनी (Arteria Centralis retina) और दूसरीको धमनी-संधानिका धमनी (Ciliary art.) कहते हैं।

(अ) नेत्रदर्पणमध्यस्था धमनी—यह एकही है। वह नेत्र धमनीमेंसे नेत्र-गृहके भीतरके द्वारके आगे निकल दर्शननाड़ीमें प्रवेश करती है। नेत्रगोलक से लगभग १० से १५ मि. मी. के अंतरपर वह दर्शन नाड़ीमें प्रवेश करती है। उसके साथ नेत्रदर्पण मध्यस्थ शिरा एवं स्वतंत्र नाड़ी मंडल (Sympathetic nerve) के कितनेक तंतु भी प्रवेश करते हैं। यह धमनी और शिरा दर्शननाड़ी वस्तुके मध्य भागमें आगे आने वाले दर्शन तंतुके सिराको बांधकर नेत्रदर्पणके ऊपर ४ शाखाओंमें विभक्त हो जाती हैं। इन ४ शाखाओंमें से दो ऊपरकी ओर तथा दो नीचेकी ओर जाती हैं। दो ऊपर की हैं, उनमेंसे एक कनपटीकी ओर तथा दूसरी नाककी ओर गति रहती है। इसी तरह निम्न दो शाखाएँ भी बाहर और भीतरकी बाजूमें जाती हैं। प्रत्येक शाखा मेंसे सूक्ष्म-सूक्ष्म बहु संख्य उपशाखाएं निकलकर समस्त नेत्रदर्पण के ऊपर फैल जाती हैं। नेत्रदर्पण मध्यस्थ धमनीकी शाखाएं संधानिका धमनीकी दूसरी शाखाके साथ सम्बंध नहीं रखतीं। इस हेतुसे यदि इस धमनीमें या इसकी किसी शाखामें रक्तस्राव बंद हो जाय, तो जिस भागको वह रक्त प्रदान करती है, उस भागको अन्य किसी प्रकारसे रक्त नहीं मिल सकता। परिणाममें वह भाग निकम्मा हो जाता है। मात्र दो ही स्थानमें अपवादरूप ऐसा व्यवहार स्थापित होता है। एक धमनी दर्शनतंतुके सिरामें प्रवेश करती है, उस स्थान पर और दूसरे जहां दांताकार मंडलका सिरा है वहां पर। जिस तरह धमनी और उसकी शाखाएं भी सुसज्जित हुई हैं, उसी तरह मुख्य सिरा और उसकी शाखाएँ भी सुसज्जित हुई हैं।

(आ) संधानिका धमनी—यह धमनी नेत्रदर्पण और दर्शन नाड़ीके निश्चित भागके अतिरिक्त नेत्रगोलकके इतर सब भागोंको रक्त प्रदान करती है। इसकी अनेक शाखाएं हैं। इनके मुख्य दो विभाग हैं। पूर्वगामी (Anterior) और पश्चिमगामी (Posterior)। पूर्वगामी धमनियोंकी संख्या लगभग ७ है। वे सब नेत्रकी मांसपेशियोंकी धमनियोंमेंसे निकलती हैं; और नेत्रवाह्यपटलका भेदन कर तंतुसमूहकी पेशियोंमें प्रवेश करती हैं। अंतमें दीर्घ पश्चिमगामी धमनियों (Long posterior Ciliary) की शाखाओं के साथ सम्बन्ध सिद्ध होने पर तारामंडलका वृहद् वर्तुलाकार (Circulus

Arteriasus major) बन जाता है। इस चक्रमेंसे तारामंडल, तन्तुरूप समूह और नेत्रमध्य पटलके कितनेक भागको रक्त प्रदान होता है।

पश्चिमगामी धमनियां नेत्र धमनीमेंसे निकल, नेत्रगोलकके पीछे लगभग २० शाखाओंमें विभक्त हो जाती हैं। ये शाखाएं नेत्र बाह्यपटलके बाहरके भागको रक्त प्रदान कर नेत्र बाह्यपटलके भीतर प्रवेश करती हैं। फिर दर्शनतंतु जहां नेत्र गोलकमें प्रवेश करता है, वहां एक लघु धमनी चक्र (Circulus arteriasus minor) बना देती है।

उक्त शाखाओंमेंसे दो शाखाएं नेत्रगोलकके लगभग बीचमें नेत्र बाह्य पटलमें घुसती हैं। वहां पर वे दीर्घ पश्चिमगामी धमनियोंके नामसे परिचयमें आती हैं। इनके अतिरिक्त दूसरी लघु-पश्चिमगामी धमनियां भी दो स्थानोंमें विरचित होती हैं। इस समूहकी प्रायः अनेक शाखाएं नेत्र बाह्य पटलका भेदनकर नेत्रमध्यपटलमें प्रवेशित होकर वहां धमनीमय प्रदेश बना देती हैं। कुछ दर्शनतंतुकी ओर जाकर वहां एक और छोटा चक्र बनाती हैं। वह दर्शन नाड़ी, उसके आवरण और चालनी पटलको रक्त प्रदान करती हैं। दीर्घ पश्चिमगामी धमनियां दो हैं। वे नेत्र बाह्यपटलमें प्रवेश कर मुख्यतः तंतुसमूहको रक्त प्रदान करती हैं।

(इ) शिराएं—निम्नानुसार मुख्य ३ शिरा हैं:—

१. शिरा गुल्मिका—Venae Vorticosae—यह गुल्मके सदृश भासती है। यह नेत्रबाह्यपटल और मध्यपटलके दोनों ओरके विषुवत् रेखा प्रदेश (Equatorial region) में प्रतीत होती है। इसमें से अनेक शाखा-प्रशाखाएं निकलती हैं।

२. तंतुमय समूहकी दीर्घशिरा (Long ciliary vein) की पूर्व गामी और पश्चिमगामी शाखाएं।

३. नेत्रच्छदगा उत्तरा और अधरा शिरा (Super & Infer. Palpebral veins) इन सब शिराओं द्वारा तारामंडल, तंतुसमूह, नेत्रमध्यपटल और पलक आदि प्रदेशोंमेंसे अशुद्ध रक्त देहकी मुख्य शिराओंमें प्रवेश करता है।

(ई) रसवाहिनियाँ—अनेक रसवाहिनियां नेत्रगोलकके भीतर नेत्रश्लेष्मावरणमें तथा कुछ शुक्ल मंडलके इर्द-गिर्द अवस्थित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य कोई रसवाहिनियां नहीं हैं।

(उ) वात नाड़ी—नेत्रमंडलसे संबंध रखनेवाली मुख्य ४ वातनाड़ी हैं।

१. दर्शन नाड़ी—Optic nerve.

२. तंतुमय ग्रन्थि—वात्तपग्रन्थि—Ciliary Ganglion मेंसे आनेवाली

वात नाड़ियां या अश्रुगृह, नासिका तंतुमय नासानाड़ी या औपनासिकी नाड़ीमें से सीधे आनेवाले तंतु।

३. तारामंडल और तंतुमय मांसपेशीको चलन शक्ति और चेतना देनेवाली नाड़ी।

४. शुक्लमंडलको चेतना देनेवाली नाड़ी।

ये सब मुख्य नाड़ियां मानी गई हैं।

१. *दर्शन नाड़ी*—इसका वर्णन पहले लिखा गया है।

२. *तंतुमय ग्रंथि नाड़ी*—तंतुमय या चाक्षुष ग्रंथि (Ciliary Ganglion) के तीन मूल हैं। इन तीनोंमेंसे निकलने वाली नाड़ियां निम्नानुसार ३ प्रकार की हैं:—

अ. संज्ञावह मूल (Sensory root)—इसके लम्बे तंतु औपनासिकी नाड़ी (Naso-ciliary nerves) में से निकलकर मस्तिष्क कंदके पश्चिमोत्तान कोष्ठमें मिल जाते हैं। इनकी संख्या २ हैं।

आ. सहायक स्वतंत्र मूल (Parasympathetic root)—इसके छोटे और दृढ़ तंतु २ भागमें विभक्त होकर मस्तिष्क कंदके पश्चिमोत्तान कोठामें मिलते हैं। इनकी संख्या १० से २० है।

इ. स्वतंत्र नाड़ी मूल (Sympathetic root)—इसके पतले तंतु स्वतंत्र नाड़ीके बहिर्मातृका चक्रमेंसे निकलकर विशेषतः लम्बे मूलके साथ सम्मिलित हो जाते हैं।

इस तंतुमय ग्रन्थि नाड़ीकी छोटी शाखाओं (Short ciliary nerves) के तंतु मृदु हैं। इनकी संख्या ६ से १० है। वे शाखाएं मस्तिष्क कंदके अग्र भागमेंसे उत्पन्न होकर दो समूहोंमें विभक्त होकर उत्तान और अधोकोन को जोड़ती हैं। इनमें निम्न समूह लम्बा है। ये दोनों तंतुमय नाड़ीके साथ तरंगित गतिसे आगे गमन करते हैं। इनमेंसे एक समूह ऊपर है और दूसरा नेत्र नाड़ीके नीचे। ये तंतुमय नाड़ीके साथ जाते हैं और १५ से २० शाखाओंमें विभक्त हो जाते हैं। फिर नेत्र नाड़ीके प्रवेश मार्गके चारों ओरसे नेत्र बाह्य पटलका भेदन करते हैं, तथा पटलकी अंतर सतहके ऊपर कोमल प्रणालियोंमें आगे जाकर तंतुमय पेशी, तारामंडल और शुक्लमंडलमें विभक्त हो जाते हैं।

३. तारामंडल और तन्तु समूहको चलनशक्ति देने वाली नाड़ी—ये तीसरी नाड़ीमें से निकलती हैं।

४. शुक्लमंडलको चेतना देने वाली नाड़ी—ये ५वीं नाड़ीमें से निकलती हैं। इनके अतिरिक्त स्वतंत्र वातवाहिनियोंके बहुसंख्य तंतु नेत्र मध्य पटल,

तारामंडल और तंतु समूहमें आते हैं और नेत्रकी मांसपेशियोंकी नाड़ियां इनसे अलग हैं। उनका वर्णन मांसपेशियोंके वर्णनमें विस्तारपूर्वक किया जायगा।

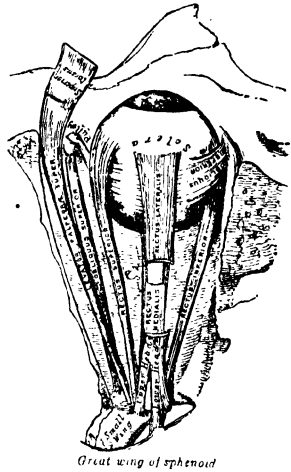

चित्र नं० ४ दहिने नेत्रकी मांसपेशियाँ (पार्श्वस्थ आकार)

नेत्रोन्मीलनी	--	Levator Palpebrae Superiories
ऊर्ध्वा वक्रादर्शिनी	--	Obliquus Superior ,,
ऊर्ध्वा चालका सरला	--	Rectus ,,
मध्यचालका सरला	--	,, Medialis
पार्श्वचालका सरला	--	,, Lateralis
अधश्चालका सरला	--	,, Inferior
अधरा वक्रा दर्शिनी	--	Obliquus Inferior
नेत्र बाह्य पटल	--	Sclera
फिरकी	--	Pulley
नेत्रचौखटका ऊर्ध्व देश	--	Superior Tarsus
लघुपक्षिका	--	Small wing
अक्षकास्थिकी बृहत् पक्षिका	--	Great wings of sphenoid bone

३. नेत्रकी मांसपेशियां (*Ocular muscles*)।

नेत्रकी मांसपेशियोंमें दो प्रकार हैं—अन्तःस्थ और बाह्यस्थ। अन्तःस्थ पेशियां—ये निम्नानुसार ३ हैं:—

१. कनीनिका संकोचक—Sphincter Pupillae muscle.
२. कनीनिका प्रसारक—Dilator Pupillae muscle.
३. तन्तुमयपेशी—सन्धान पेशिका—Ciliary muscle.

इन तीनों मांसपेशियोंका वर्णन पहले हो चुका है।

बाह्यस्थ मांसपेशियां—ये निम्नानुसार ६ हैं:—

१. बाह्यस्था सरला—बहिर्दर्शनी—External Rectus.
२. अन्तःस्था सरला—अंतर्दर्शिनी—Internal Rectus.
३. ऊर्ध्वस्था सरला—ऊर्ध्वदर्शिनी—Superior Rectus.
४. अधस्था सरला—अधोदर्शिनी—Inferior Rectus.
५. ऊर्ध्वस्था वक्रा—वक्रोर्ध्वादर्शिनी—Superior Oblique.
६. अधःस्था वक्रा—वक्राधोदर्शिनी—Inferior Oblique.

इन मांसपेशियों का परिचय चित्र नं० ४ में देखिये।

चार सरल मांसपेशियां उनकी संज्ञाके अनुरूप बाहर, भीतर, ऊपर और नीचे अवस्थित हैं। वे नेत्रगोलकको संज्ञाके अनुरूप दिशामें फिराती हैं। ये ४ और २ वक्र पेशियां नेत्रगृहके अंतरद्वारके पाससे निकल नेत्र-गोलकको चिपक कर आगे चलती हैं। नेत्रके लगभग मध्य भाग तक ये मांसल हैं। मध्य भागसे आगे फिर वे सूक्ष्म कण्डरारूप बन जाती हैं और नेत्रगोलकके भीतर नेत्र बाह्यपटलमें चिपक जाती हैं। इनकी कंडरा (Tendons) जिस स्थान पर मिलती हैं; उस स्थलका अंतर शुक्लमंडलके किनारेसे प्रत्येक मांसपेशीके लिये पृथक्-पृथक् है। अंतःस्था सरला ५·५ मिली मीटर है एवं अधःस्थासरला ६·५, बाह्यस्था सरला ६·७ और ऊर्ध्वस्था सरला ७·७ मिली मीटर हैं।

चारों मांसपेशियोंकी कण्डरा मध्यभागको छोड़ आगे आकर फिर नेत्र बाह्यपटलमें चिपकते हैं। वक्र मांसपेशियां नेत्रगोलकके मध्य भागके पीछेके हिस्सेमें लग जाती हैं।

१. *बाह्यस्था सरलापेशी*—यह पेशी दो भागमें खोपड़ीके नीचेके हिस्सेमें अवस्थित दर्शन तंतुछिद्रके किनारेमेंसे निकलती है। एक भाग छिद्रकी बाह्यधारामेंसे और दूसरा भाग उससे कुछ नीचेके हिस्सेमेंसे निकलता है। कुछ आगे चलकर दोनों हिस्से मिल जाते हैं। फिर आगेकी बाजू और

बाहरकी बाजू नेत्रगोलक और नेत्रगृहकी बाहरकी दीवारके बीचमें आगे बढ़कर कंडरारूप बनकर शुक्लमंडलसे ६'७ मिली मीटरके अंतरपर नेत्रबाह्य पटलसे चिपक जाती है। इसकी लम्बाई ४०'६ मिलीमीटर है। उसका संबंध छठवीं नाड़ीके साथ है। इस पेशीकी कंडरा अधःस्थावक्रा पेशीकी कंडराके ऊपरसे गमन करती है।

२. *अन्तःस्था सरलापेशी*—दर्शन नाड़ीके छिद्रके भीतरकी ओर नीचे की बाजूसे निकल मांसलरूपसे नेत्रगोलक और नेत्रगृहके भीतरकी दीवारके बीचमें आगे बढ़कर कंडरा रूप धारण कर शुक्लमंडलके भीतरके किनारेसे ५'५ मिलीमीटर की दूरी पर नेत्र बाह्यपटलमें चिपक जाती है। इस मांस-पेशीका तीसरी नाड़ीके साथ सम्बन्ध है।

३. *ऊर्ध्वस्था सरलापेशी*—यह मांसपेशी खोपड़ीके नीचेकी ओर अवस्थित दर्शन नाड़ीके छिद्रके ऊपरकी धारामेंसे निकल आगे और कुछ ऊपर नेत्र और नेत्रगृहके ऊपरकी दीवारके बीच गमन कर कंडरारूप बनकर नेत्र बाह्यपटलमें शुक्लमंडलके ऊपरके किनारेसे ७'७ मिलीमीटरकी दूरीपर मिल जाती है। इस मांस पेशीकी लम्बाई ४१'८ मिलीमीटर है। जिस स्थान पर यह अक्षिगोलकसे चिपकती है, उस स्थान पर वह ऊर्ध्वस्था वक्रापेशी की कंडराके ऊपरसे आती है। इस मांस पेशीका सम्बन्ध तीसरी नाड़ीके साथ है।

४. *अधःस्था सरलापेशी*—यह पेशी दर्शन नाड़ीके छिद्रके भीतरकी ओर नीचे किनारेके आगेसे निकल मांसल रूपसे नेत्रगोलक और नेत्रगृहके नीचेकी दीवारके बीचमें आगे बढ़कर कंडरारूप धारणकर नेत्रबाह्य पटलमें शुक्लमंडलके नीचेके किनारेसे ६'५ मिलीमीटरके अंतरपर सम्मिलित हो जाती है। इसकी लम्बाई ४० मिलीमीटर है। इसका सम्बन्ध तीसरी नाड़ीके साथ है। इस पेशीका नेत्रगृहमें गमन करनेपर अधःस्था वक्रापेशीके साथ सम्बन्ध होता है। फिर इनके तन्तु परस्पर ओतप्रोत हो जाते हैं।

५. *ऊर्ध्वस्था वक्रापेशी*—यह पेशी दर्शन नाड़ीके छिद्रके सहज ऊपरके भागमें से निकल कर आगे जाती है। वहाँ पर वह अन्तःस्था सरलापेशीके ऊपर अवस्थित होती है। वहाँसे मांसलरूपसे आगे आकर लगभग नेत्रगृहके बाह्य द्वार तक पहुँच कर नेत्रगृहकी ऊपरकी दीवारके कोनेमें और भीतरकी दीवारके शिखरपर कण्डरारूप बन जाती है। वहाँ पर आकर फिरकी (आकर्षिका) जैसी बन जाती है। उस फिरकीमें कण्डरा प्रवेशित होकर पीछे मुड़ जाती है तथा पीछे, नीचे और ऊपरकी ओर मार्ग लेकर नेत्र-गोलकके ऊपर ऊर्ध्वस्था सरलापेशीके नीचेसे गमन कर नेत्रबाह्य पटलके

पिछले और नासिकाके ओरके भागमें सम्मिलित हो जाती है। यह पेशी ६० मिलीमीटर लम्बी है। उसमें ४० मिलीमीटर मांसल और २० मि. मी. प्रदेश कण्डरारूप है। इस पेशीका सम्बन्ध चतुर्था नाड़ीके साथ होता है।

६. *अधःस्था वक्रापेशी*—यह पेशी दूसरी नेत्रपेशियोंके समान दर्शन तन्तुके छिद्रोंमें स नहीं निकलती। किन्तु नेत्रगृहके नीचेकी दीवारके भीतरके भागमेंसे निकल बाहरकी ओर पीछेके भागकी तरफ चलकर अधःस्थासरला पेशीके नीचे गमन कर नेत्रबाह्य पटलमें नेत्रके पीछे और भीतरके भागमें संलग्न होती है। यह पेशी ३७ मि. मी. लम्बी है। इस पेशीका सम्बन्ध तृतीय नाड़ीके साथ है।

उपरोक्त वर्णनसे स्मरण रखना चाहिये कि, नेत्रकी ६ पेशियोंमेंसे मात्र ऊर्ध्वस्था वक्राका सम्बन्ध चौथी नाड़ीके साथ और बाह्यस्था सरलाका संबंध छठवीं नाड़ीके साथ है। शेष ४ पेशियोंका सम्बन्ध तीसरी नाड़ीके साथ रहा है। इन सब पेशियोंके कार्यका विशेष वर्णन आगे प्रकरण २३ वें के प्रारम्भमें दिया जायगा।

४. नेत्रश्लेष्मावरण—नेत्रवर्त्म (*Conjuctiva*)।

पलककी धारासे प्रारम्भ होकर पलकके भीतरकी ओर आकर समस्त नेत्रगोलक पर श्लैष्मिक त्वचाका जो सूक्ष्म आच्छादन आजाता है, उसे नेत्रश्लेष्मावरण कहते हैं। इस झिल्लीसे नेत्रकी पुतली और पलक परस्पर सम्बन्धित रहते हैं। यथार्थ में देखने पर जैसे कि, यह एक थैली होगई हो और उस थैलीका मुंह ऊपरके और नीचेके अक्षिपक्ष्म (Eyelashes) की धाराके पास मुक्त हो, ऐसा देखाव होता है। यह आवरण ऊपरके पलककी धाराके पाससे प्रारम्भ होकर ऊपरके पलकके भीतरके भागको आच्छादित करता है। ऊपरके पलककी धारासे कुछ भीतर एक लम्बी परिखा प्रतीत होती है। उसमें अनेक बार विजातीय द्रव्य (बाह्य पदार्थ) पड़े रहते हैं। उससे नेत्रमें व्यथा होती है।

यह आवरण ऊपरके पलकको आच्छादित करके नेत्रगोलक पर जाता है। जिससे पलक और नेत्रगोलकके ऊपर लेजाने पर नेत्र श्लेष्मावरणका संगम होता है। वहां पर ऊपर, नीचे, बाहर और भीतरके भागमें अर्थात् ४ स्थानोंमें निम्न पुट बन जाते हैं:—

१. ऊर्ध्वपुट—ऊर्ध्ववर्त्मकोण—Superior fornix.

२. अधःपुट—निम्नवर्त्मकोण—Inferior fornix.

३. मध्यपुट—मध्यवर्त्मकोण—Medial fornix.

४. पार्श्वपुट—पार्श्ववर्त्मकोण—Lateral fornix.

इनमेंसे ऊपरका पुट निम्नपुटकी अपेक्षा अधिकतर गहरा है। मध्य-पुटके कोणमें एक अर्धचन्द्राकार उप पुट बनता है। उसे अर्धचन्द्राकार पुट-कोणच्छदिका (*Plica Semi-lunaris*) कहते हैं। इस अर्धचन्द्राकार पुटके तलमें अर्थात् नेत्रके भीतरके कोणमें एक मूंग जितना शंकु आकारका रक्ताभ पिण्ड है। उसे नेत्रपिण्ड कोणांकुर (Caruncle Lachrymalis) संज्ञा दी है। वह जिस कोणमें रहता है, उसे नेत्रपिण्ड स्थान—नेत्रान्तःकोण (Inner Canthus) नाम दिया है। नेत्रके भीतरके कोणमें जो चिपचिपा पदार्थ अनेक बार प्रतीत होता है, वह इस पिंडमेंसे उत्पन्न होता है। इस पिंड पर थोड़ेसे सूक्ष्म रोम हैं।

पलकके ऊपरसे नेत्रगोलकपर जाकर श्लेष्मावरण समस्त गोलकको आच्छादन करता है; और शुक्लमंडलके ऊपर भी यही आवरण उसके बिल्कुल बाहरके आच्छादन रूपसे आजाता है। उक्त वर्णनसे समझमें आया होगा कि, विवेचनार्थ नेत्र श्लेष्मावरणके ४ भाग हो सकते हैं। १. पलकको आच्छादन करनेवाला; २. पुटपर अवस्थित; ३. नेत्रगोलक पर रहा हुआ; और ४. अर्धचन्द्राकार पुट (Plica semilunaris) पर आया हुआ भाग।

(१) इनमेंसे पलक पर आये हुए नेत्र श्लेष्मावरणमें अनेक धमनियां हैं। यह आवरण चिकना है और पलकके भीतर अवस्थित कोमलास्थिके ऊपर दृढ़ संलग्न है; अर्थात् पलकके आवरणके नीचे सूक्ष्म-सूक्ष्म पीताभ नलिकाएं हैं। ये नलिकाएं यथार्थ में एक प्रकारके पिंड हैं। उनको जल-पिंड-मंजरी ग्रन्थियां (Meibomian glands) कहते हैं। बिल्कुल पलकके ऊपर के सिरे पर आया हुआ श्लेष्मावरण कुछ मुक्त है। उस हेतुसे जब पलक हिलती है, तब उस स्थानके आवरणमें सलवट होजाती है।

(२) पुटोंके ऊपर अवस्थित आवरण—यह पलक परसे नेत्रगोलक पर गये हुए आच्छादनके बीचका भाग है। इस भाग में अवस्थित झिल्ली दृढ़ संलग्न नहीं है, जिससे नेत्रगोलकके हलन-चलनको बाधा नहीं पहुँचती। इस भागमें सरलापेशी और पलकको ऊंचा उठाने वाली पेशीके तन्तुओंके साथ वह चिपका हुआ है।

(३) अक्षिगोलक पर आया हुआ आच्छादन अन्य स्थानोंकी अपेक्षा पतला है एवं पारदर्शक भी है। इस हेतुसे नीचे सूक्ष्म धमनियां स्पष्ट प्रतीत होती हैं तथा अक्षिगोलकके ऊपर इसे सरलता पूर्वक चला सकते हैं। वह शुक्लमंडल पर सीधा चला जाता है।

(४) पलकके विवेचनमें आगे कहा जायगा कि, ऊपर और नीचेकी

पलकोंके भीतरी कोनेमें एक-एक छिद्र रहा है, इनको अश्रु द्वार (Punctum Lachrymal) संज्ञा दी है। प्रत्येक छिद्र के भीतर आच्छादन सीधा आकर नासिका के आच्छादनके साथ मिल जाता है।

नेत्रश्लेष्मावरणकी धमनियाँ—'नासिकी' और 'आश्रवी' नामक शाखाओंमेंसे आती हैं। नेत्रगोलकके ऊपरके आवरणमेंसे आई हुई धमनियां तन्तुमय शाखामेंसे आती है। धमनियोंके साथ-साथ शिराएँ भी आती हैं।

रसवाहिनियाँ—इनके दो प्रकार हैं। १. नेत्र श्लेष्मावरणमें आई हुई और २. निम्न प्रदेशमें गई हुई। इसी प्रकार नेत्र श्लेष्मावरणकी वातनाड़ियां भी नेत्रगोलक और पलकके भागके लिये पृथक्-पृथक् हैं। जो नासिकी तंतुमय वातवाहिनियोंकी एक शाखामेंसे और आश्रवी नाड़ियोंमेंसे आती है। नेत्रगोलककी नाड़ियां तंतुमय नाड़ियोंमेंसे आती हैं।

नेत्र के उपाङ्ग (Appendages)।

नेत्रके उपाङ्गोंमें पलक, भ्रु, अश्रुजनक पिण्ड, अश्रु द्वार, अश्रुवाहक नलिका, अश्रुवाशय, यह मुख्य हैं। इनका क्रमशः वर्णन करते हैं।

५. पलक-नेत्रच्छदौ (*Eye lids*)।

प्रत्येक नेत्रमें दो पलक हैं। एक ऊपर और एक नीचे। ऊपरका पलक नीचेकी अपेक्षा बड़ा होता है। दो पलकोंके भीतर जो भाग है, उसे नेत्रद्वार-पुटान्तरिया परिखा (Palpebral fissure) कहते हैं। जब पलक बंद होते हैं, तब यह द्वार केवल एक दरारके समान संकुचित बनजाता है। जब दोनों पलक पूरे खुलते हैं, तब यह द्वार लगभग ३० मि. मी. लम्बा और १५ मि. मी. चौड़ा हो जाता है। यथार्थमें यह चौड़ाई केवल बीचके भागमें प्रतीत होती है। कोनेकी ओर जाने पर चौड़ाई कम होती जाती है। इस द्वारके दोनों कोनोंको नेत्रकोण कहते हैं। भीतरके कोणको नेत्रान्तः कोण (Inner canthus) और बाहरके कोणको नेत्रबहिः कोण (Outer canthus) संज्ञा दी है।

बाह्य नेत्रकोण एक तीक्ष्ण कोण जैसा और अन्तःकोण अण्डाकार छोटे खंड जैसा भासता है। अन्तःकोणमें अश्रु संगृहीत होता है और वहाँसे अश्रु छिद्र द्वारा नासिकामें चला जाता है। इस कोणमें नेत्रपिण्ड रहा है। इसका वर्णन पहले हो चुका है। इसके अतिरिक्त अर्धचन्द्राकार पुट, जो इस भागमें दीखता है, उसका वर्णन भी पहले आगया है।

दोनों पलकोंके बाहरकी ओर त्वचा है। उसका रंग अन्य त्वचाके

समान है। पलकोंके भीतर श्लैष्मिक त्वचाका आवरण है। इस त्वचा और आवरणका जहां संगम होता है, उस स्थानको पलकका किनारा कहते हैं। इस किनारेमें एक श्वेताभ रेखा प्रतीत होती है। उस रेखा पर बालोंकी एक-एक पंक्ति है। इस पंक्तिके नीचे निरीक्षण करने पर सूक्ष्म-सूक्ष्म छिद्र विदित होते हैं। यदि पलकोंको किसी दो कठोर पदार्थोंके बीचमें रखकर दबाया जाय तो इन छिद्रोंमें से श्वेत गाढ़ा पदार्थ निकलता है। यह पदार्थ पलकोंके भीतर रहे हुए जलपिण्डोंमें (मेइबोमियन ग्लेण्ड्स–Meibomian glands) बनता है। इनसे दोनों पलक ठीक बन्द हो जाते हैं; उतने तक कि, फिर वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती।

ऊपर श्वेताभ रेखा कही है, उसका विशेष महत्व परवालकी शस्त्र-क्रिया के समय है। जब यह शस्त्रक्रिया की जाती है, तब इस रेखामें एक शस्त्रको प्रवेश करा, पलकके किनारेको उस तरह चीर दिया जाता है कि पलक के दो विभाग हो जाते हैं। ऊपरके विभागमें त्वचा, मांसपेशी और पलक धाराके बाल तथा निम्न भागमें कोमलास्थि और नेत्र श्लेष्मावरण रहते हैं। पलकोंका छेदन करके जांचकी जाय तो प्रतीत होगा कि बाहरकी पर्त त्वचा की है। उसे निकाल दी जाय तो उसके नीचे दूसरा पर्त मांसपेशी का आता है।

पेशियाँ–इस पलकसे सम्बन्ध वाली मांसपेशियां २ हैं। १. नेत्र निमीलनी (Orbicularis oculi) और २. नेत्रोन्मीलनी (Levator Palpebrae superioris) इन मांसपेशियोंके नीचे कुछ भाग जाल सदृश रहा है। उसके नीचे नेत्र कोमलास्थि-छद्रपत्रिके (Tarsus) हैं। इस कोमलास्थिके हेतुसे पलकका आकार बना रहता है।

ऊपरकी ओर भ्रू के नीचे बरुनीमें एक लम्बा सलवट-सा रहा है। उससे बरुनीके दो भाग हो जानेका भास होता है। ऊपरका भौंकी ओरका भाग और नीचेका कोमलास्थि भाग। पलक ऊपरके भागमें नेत्रगृहके ऊपरी किनारेके साथ त्वचा, मांसपेशी और श्लेष्मावरण से संलग्न है। भीतर की ओर तथा बाहरकी ओर मांसपेशियोंके कितनेक तन्तु भीतर और बाहर के भागमें अवस्थित अस्थियोंके साथ पलकको जोड़ते हैं। उक्त कोमलास्थि के ऊपरसे यदि मांसपेशीके भागको निकालकर सूक्ष्म अवलोकन किया जाय, तो ऊपर नली जैसे कितनेक जलपिण्ड प्रतीत होते हैं। इन पिण्डोंसे उत्पन्न रससे बरुनी मृदु रहता है। एवं इससे बरुनीके बालोंको पोषण मिलता है। उक्त पिंडोंके अतिरिक्त बरुनीके बालोंके मूलमें अन्य सूक्ष्म पिंड भी प्रतीत होते हैं। उनको ज़ाइसके पिण्ड (Zeis's glands) कहते हैं।

कोमलास्थिके नीचे नेत्र श्लेष्मावरण रहा है। दोनों पलकोंकी धारा के भीतरके सिरे पर दो छिद्र हैं; उन्हें अश्रु द्वार कहते हैं। ये अश्रु द्वार एक ऊपरके पलकमें और दूसरा नीचेकी पलकमें हैं। इनका विशेष वर्णन अश्रु-जनक और अश्रु वाहक उपांगोंके वर्णनमें दिया जायगा।

पलककी जो दो मांसपेशियाँ कही हैं, उनमेंसे जिससे नेत्र बन्द होता है तथा जिसे नेत्र निमीलिनी पेशी कही है, उसका सम्बन्ध ७ वीं नाड़ीमें से आने वाले तन्तुओंके साथ है। पलकको ऊँचे ले जाने वाली (नेत्रको खोलने वाली) मांसपेशी, जिसे नेत्रोन्मीलिनी कही है, उसका सम्बन्ध तीसरी नाड़ीमें से आने वाले तन्तुओंके साथ है। पलकोंके भीतर रहे हुए श्लेष्मावरणको चेतना देने वाले तन्तु ५ वीं नाड़ीमें से आते हैं।

धमनियाँ—पलकोंको रक्त प्रदान करने वाली धमनियोंकी शाखा मुख्यतः निम्नानुसार है:—

१. बहिर्हानव्या धमनी—Facial artery.
२. उत्ताना अनुशंखा धमनी—Superficial temporal artery.
३. नेत्रगुहाधरीया धमनी—Infra-orbital artery.
४. नेत्र धमनी—Ophthalmic artery की चार शाखाएँ।
   अ. बाह्य नासिकी—Dorsalis nasi art.
   आ. ललाटिकी—Frontal art.
   इ. अधिभ्रुवा—Supra-orbital art.
   ई. आश्रुवी—Lachrymal art.

इन धमनियोंके अतिरिक्त रक्त लेजाने वाली शिराएँ भी उस स्थानमें हैं।

रसवाहिनियाँ—इनके मुख्य दो समूह हैं:—ऊपरका और गहरा। ऊपरकी रसवाहिनियां त्वचा और मांस पेशियोंमें से तथा गहरी कोमलास्थि और नेत्र श्लेष्मावरणमेंसे इसका वहन कर शिराओंमें डालती हैं।

६. भौं—भ्रू (*Eye brow*)।

यथार्थमें भौं, नेत्रका भाग नहीं है, तो भी उसका सम्बन्ध नेत्रके साथ अत्यधिक है, एवं विशेषतः पलकके ऊपर कितनीक शस्त्र क्रियाओंमें यह भाग विशेष रूपसे सम्बन्ध वाला है। इन हेतुओंसे इस भागकी रचना का वर्णन नेत्रके साथ देना आवश्यक माना गया है। नेत्रके ऊपर रहे हुए पलकके भी ऊपर कपालमें अवस्थित और मोटे बालोंसे आच्छादित जो भाग

है, उसे भौं कहते हैं। इस भागमें बिल्कुल ऊपर बाल उसके नीचे त्वचा, उसके नीचे पेशियोंके तन्तु-शिरच्छदा (Epicranial), नेत्रनिमीलनी और भ्रूसंकोचनी, इन ३ पेशियों के तन्तु, उसके नीचे थोड़ा चरबीका भाग और उसके नीचे खोपड़ीके आवरणका भाग रहा है।

भ्रू में धमनीकी शाखा अधिभ्रुवा (Supra orbital art.), उसी नाम की शिरा एवं वात नाड़ी हैं। ये सब मांसपेशियोंकी तहके नीचे रहे हैं।

७ अ. अश्रुजनकपिण्ड-अश्रुग्रन्थियाँ (*Lachrymal glands*)।

अश्रुजनकपिण्डके २ प्रकार हैं—मुख्य और गौण। मुख्य पिण्ड एक है; किन्तु उसके २ विभाग हैं। इनमेंसे बड़ा हिस्सा नेत्रगृह के बाहरके और ऊपरके कोणमें अवस्थित गड्ढेमें रहा है। यह गड्ढा ऊपरके पलकके बाहरके भागमें रहे हुए किनारेके नीचे है। दूसरा छोटा हिस्सा ऊपरके पलकमें नेत्र-श्लेष्मावरणके नीचे ही रहा है। इन दोनों स्थानोंके पिण्डोंमें सूक्ष्म प्रणालिकाएं (Lachrymal ducts) उत्पन्न होती हैं। इन प्रणालियोंकी संख्या लगभग १२ है। इनके मुख नेत्र श्लेष्मावरणसे बनी हुई थैलीके ऊपरके और बाहरके भागमें रहे हैं। इस परसे स्पष्ट विदित होता है कि, अश्रु इस पिण्ड के दोनों भागोंमें उत्पन्न होकर इन प्रणालियोंके मुखद्वारा नेत्रगोलकके ऊपर छा जाता है। इस पिण्डको रक्त पोषण चाक्षुषी धमनीकी आश्रवी शाखा से मिलता है। नेत्रकी ७वीं वातनाड़ी और स्वतन्त्र वातनाड़ीमें से आने वाले तन्तुओंमेंसे इसकी वातनाड़ी बनती है।

गौण अश्रुजनक पिण्ड ४ जातिके हैं। १. क्रौसेके पिंड (Accessory lachrymal glands of krause); २. वॉलफ्रिङ्ग (Wolfring) के पिंड; ३. नेत्रगृहके नीचे अवस्थित पिंड तथा ४. अर्धचन्द्राकार पुट और नेत्रकोण के पिंड।

क्रौसेके पिंड संख्या में लगभग २० हैं। वे ऊपरके नेत्रपुटमें हैं। इनके अतिरिक्त अन्य ८ नीचेके पुटमें रहे हैं। अन्य तीन जातिके पिंड नेत्रकोमलास्थिमें हैं। ये सब पिंड अश्रुको उत्पन्न करते हैं। यह अश्रु नेत्रगोलक को सतत आर्द्र रखता है। अश्रु अधिक होने पर नेत्रगोलकपर से निम्न पुटमें आकर भीतरके भागमें रहेहुए त्रिकोणाकार स्थानमें संगृहीत होता है और ऊपरके एवं नीचेके पलकके भीतरके सिरे पर जो अश्रुद्वार हैं, उनमें प्रवेश कर अश्रुवाशयमें जाकर अश्रुनली द्वारा नाकमें चला जाता है। वहाँ पर निःश्वासकी वायुके साथ वाष्परूपसे बाहर निकल जाता

है। यह अश्रु गोलकको गीला रखनेके अतिरिक्त स्वच्छ रखनेका कार्य करता है।

७ आ. अश्रु द्वार और अश्रु द्वारांकुर।

(*Puncta Lachrymalis & Lachrymal Papillae*)

चित्र नं० ५ देखें। ऊपर कहे अनुसार ऊपरके और नीचेके पटलके भीतरके सिरे पर फूटे हुए दाने जैसा भाग प्रतीत होता है, उसे नेत्रद्वारांकुर

चित्र नं० ५ अश्रुवाहक उपाङ्ग समूह।

१. अश्रुजनक पिण्ड —Lachrymal gland.
२. मेईबोमियम पिण्डकी नलियाँ—Ducts of Meibomiam glands.
३. अश्रुवाहक नलिका —Canaliculi.
४. अश्रुवाशय का ऊर्ध्व भाग --Upper part of Lachrymal sac.
५. अश्रुवाहक नलिका —Canaliculi.
६. अश्रुद्वार —Lachrymal Puncta.

(Lachrymal Papillae) कहते हैं। वह भाग नेत्रगोलककी ओर मुड़ा हुआ है। उसके मध्यमें एक छिद्र है। उस छिद्रको अश्रुद्वार (Puncta Lachrymalis) कहते हैं। उसका व्यास २ से ३ मि. मी. है। वह

कितनेक मनुष्योंमें अति सूक्ष्म होता है। जिससे कुछ प्रयत्न किये बिना प्रतीत नहीं होता। एवं अन्य कई व्यक्तियोंमें स्पष्ट देखनेमें आता है। यह अश्रु द्वार अश्रु वाहक नलियों (Canaliculi) का बाह्यमुख है।

७ इ. अश्रु वाहक नलिका—अश्रु प्रणिका (*Canaliculi*)।

ये दो छोटी नलिकाएं अश्रु द्वारसे निकलकर अश्रु वाशयमें प्रवेश करती हैं। प्रत्येककी लम्बाई लगभग १० मि. मी. है। प्रत्येक नलिकाके दो भाग होते हैं। खड़ा भाग लगभग १'५ से २ मि.मी. लम्बा है। यह पलकके मृदु भागके भीतर है। वहाँ पर लगभग कोण बनजाता है, अर्थात् दूसरे भागका प्रारम्भ होता है। कोनेसे आगे जाने वाला भाग भीतर की ओर मृदुभागमें और शेष नासास्थिके ऊपर आड़ा रहा है। वह आगे चलकर अश्रु वाशयमें प्रवेश करता है।

जहां कोण बनता है अर्थात् जहांपर ये दो भाग मिलते हैं; वहां पर कुछ चौड़ा भाग बनता है। अश्रु द्वार, अश्रु द्वारांकुर और अश्रु वाहक नलिकाके इर्द-गिर्द नेत्रनिमीलनी पेशीके तन्तु एक मेहराबके समान लिपटे हुए होनेसे इन सब भागोंमें संकुचित होनेका और बंद होनेका गुण रहता है। ऐसी जातिकी रचनाको समझनेके लिये यह अवश्य स्मरण रखना चाहिये कि, ऊपरकी अश्रु वाहक नलिका का पहला भाग सीधा खड़ा जाकर फिर आड़ा मुड़ता है। जिससे गुरुत्वाकर्षण नियमके अनुसार उसमें अश्रु ऊंचा नहीं चढ़ सकता; किन्तु मांसपेशियोंके तन्तु मेहराबरूपसे सुसज्जित होनेसे उस नलिकामें पिचकारीके समान आकर्षण गुण आजाता है। एवं इन मांसपेशियोंकी योजनाके हेतुसे आवश्यकता न हो तब ये नलिकाएं बन्द रहती हैं।

७ ई. अश्रु वाशय—अश्रु कुम्भिका (*Lachrymal Sac.*)।

अश्रु वाशय एक छोटी थैली जैसा है। वह नेत्रके भीतरके कोणमें नाकके बाहरकी अस्थिकी दीवारमें एक विशेष खड्डेके भीतर रहा है। इस खड्डेको अश्रु वाशय खात* (Lachrymal fossa) कहते हैं। अश्रु वाशय, वह अस्थिके तन्तुसे निर्मित आवरण (अस्थिधरा कला—Periosteum) से सब ओर घिरा हुआ है। जिससे उसके आगे, पीछे सब ओर अस्थिधरा आवरण रहा है। जिस खड्डेमें अश्रु वाशय है, उस खड्डेकी नाककी ओर की धारा अंगुली फिराने पर स्पष्ट अवगत होती है। इस बातको इस आशय

* प्रत्यक्ष शारीरकारने इसे अश्रुग्रन्थि खात संज्ञा दी है, किन्तु यह संज्ञा अशुद्ध है।

के ऊपर शस्त्र क्रिया करनेके समय अवश्य लक्ष्यमें रखनी चाहिये। ऊपर लिखे अनुसार अश्रुवाशयमें दोनों अश्रुवाहक नलियां प्रवेश करती हैं। उस मार्गसे अश्रु इस आशयमें आता है। इस आशयका बोध करानेके लिये इसके ३ विभागकी कल्पना की जाती है—ऊर्ध्व, मध्य और निम्न प्रदेश।

ऊर्ध्वभागको अश्रुवाशय शिर (Fundus) कहेंगे। वह भीतरके नेत्र कोणसे ३ से ५ मि. मी. ऊपरमें रहा है। उसके बिल्कुल ऊपरका भाग नेत्र के भीतरके हिस्सेमें रहे हुए पेशीरज्जुके नीचे अवस्थित है। इस हेतुसे अश्रुवाशय निकाल देनेके लिये यदि शस्त्र क्रिया करनी हो तो इस पेशीरज्जु काटने पर तुरन्त उसके नीचे अश्रुवाशय प्रतीत होता है।

मध्य भाग, यह शिर और निम्न प्रदेशके बीचमें रहा है। उसे मध्य अश्रुवाशय कहेंगे। तीसरा भाग (निम्न प्रदेश) नासिका सुरंगगत अश्रुवाहिका (Nasal duct) में प्रवेशित होकर नासिकाके बीचके खण्डमें खुलता है, यह भाग अस्थिके भीतर रहा है।

अश्रुवाशय लगभग १२ मि. मी. लम्बा, ४ से ८ मि. मी. चौड़ा और २ से ३ मि. मी. मोटा है। उसमें अश्रुके कितने बूँद रह सकेंगे, इस बातका निर्णय करना कठिन है। किन्तु स्वस्थ अश्रुवाशयमें अधिकसे अधिक २ से ३ बूँद जल होता है। जब नीचेका मार्ग बन्द होजाता है, तब उसमें लगभग ६० बूँद पूयं भी रह सकता है। नैसर्गिक स्थितिमें तो अश्रु-वाशयके भीतरका भाग मात्र एक चीरा जैसा होता है; किन्तु जब वह द्रव पदार्थसे भरकर फूलता है, तब एक गोल नलिका जैसा बन जाता है।

८. नेत्रगृह–नेत्रगुहा–नेत्रकोटर (*Orbit*)।

नेत्रगृह २ हैं। दोनोंमें एक-एक गोलक रहे हैं। गोलकके अतिरिक्त इसमें नेत्र की मांसपेशियाँ, नेत्रधरकलाकोष (टेननका आच्छादन), नसें, धमनियाँ, शिराएँ तथा वातवाहिनियाँ अवस्थित हैं। नेत्रगोलक और नेत्रगृहके बीच टेननका आच्छादन रहा है। टेननका आच्छादन और नेत्र गृहास्थिके बीच मेद है। मेद देहकी रचनाके परिणाममें न्यूनाधिक होता है। दुर्बल और वयोवृद्ध व्यक्तियोंके नेत्रोंमें गड्ढेसे भासते हैं। उसका कारण प्रायः मेदकी न्यूनता है। नेत्रगृह, यह मुखमण्डलके भीतर नासिकासे ऊपरके भागमें दोनों ओर कपालके नीचे एक-एक खड्डा है। आगेके हिस्सेमें वे अधिक चौड़े और पिछले हिस्सेमें अति सकड़े हैं; आगेकी ओर दोनोंके मुख हैं, उनको नेत्रगृहद्वार कहेंगे। इन मुखोंके इर्द-गिर्द धारा रही है। इन

नेत्रगृहोंके ४—४ दीवार हैं—ऊर्ध्वा, निम्ना, अन्तरा और बाह्य। इन चारों दीवारोंके ४ चौड़े कोने हैं। नेत्रगृहका पीछेका द्वार, जो अति सकड़ा है, उसे हम नेत्रगृह मूल कहेंगे, उसमें से दर्शन नाड़ी और नेत्रधमनी मस्तिष्कमें जाती हैं। दोनों नेत्रगृह ७-७ अस्थियोंके बने हैं; किन्तु उनमेंसे ३ अस्थि दोनोंके लिये सम भावसे रही हैं। जिससे दो गृहोंकी ११ अस्थि होती हैं।

ऊर्ध्वा प्राचीर—नेत्रगृहकी ऊपरकी दीवार (छप्पर–Roof) अन्तर्गोल है। इस दीवारके ऊपरके हिस्सेमें बाहरकी ओर एक खड्डा (अश्रु ग्रन्थि खात—Lachrymal fossa) है, उसमें अश्रुजनक पिण्ड रहा है। भीतरकी ओर एक मामूली खाई (Shallow depression) अवस्थित है। उसीमेंसे ऊर्ध्वव्रका मांसरज्जु निकलती है, और वही फिरकी (Pulley) का स्थान है।

पिछली ओर अर्थात् मूलके भागमें दर्शननाड़ी छिद्र रहा है। उस छिद्रमेंसे दर्शननाड़ी और धमनी निकलती हैं। भीतरके भागमें जो अस्थिका आवरण रहा है, वह बहुत सूक्ष्म है। उस अस्थिके ऊपर एक पोला भाग रहा है, उसे जतुका कोटर (Sphenoidal sinus) कहते हैं। नेत्रगृहकी ऊपरकी दीवारकी मोटाई प्रत्येक व्यक्तिमें समान नहीं होती। कितनेकोंमें वह केवल पतले कागज जैसी और कइयोंमें कभी-कभी ४ मि. मी. तक भी होती है।

निम्न दीवार (Base of the Orbit)—अन्य सब दीवारोंकी अपेक्षा यह अधिक सकरी है। इस में एक छोटी परिखा अवस्थित है, जो दर्शननाड़ीके छिद्रसे बिल्कुल नेत्रगृहके नीचेके किनारे तक जाती है। इस परिखामें एक धमनी और एक शिरा रही है। इस परिखाके ऊपर सूक्ष्म अस्थिधरा कलाकोष आच्छादित है। इस दीवारकी अस्थिके नीचे एक पोला स्थान रहा है, उसे हनुगर्भकोटर (Antrum of Highmore or maxillary sinus) कहते हैं।

भीतरकी दीवार (Medial wall of the Orbit)—सब दीवारोंकी अपेक्षा यह अधिक छोटी, लगभग खड़ी और अति पतली है। आगेके हिस्से में अश्रु पाठास्थि (Lachrymal bone), बीचके भागमें झर्झरास्थि (Ethmoid bone) का भाग तथा पिछले भागमें जतुकास्थि (Sphenoid bone) अवस्थित हैं। इस से अवगत हुआ होगा कि नेत्रगृहके भीतरकी दीवारका सम्बन्ध नासिकाके इर्द गिर्द अवस्थित कोटरोंके साथ अति विशेष है। इस दीवारमें एक सूक्ष्म दरार है, जिसमेंसे नासिकाकी नाड़ियां और नाकमें जाने वाली सूक्ष्म धमनियां गमन करती हैं।

पिछली दीवार (Lateral wall)—अन्य सब दीवारोंकी अपेक्षा यह

अधिक दृढ़ है। यह किनारेके पास सबसे अधिक मोटी तथा पीछेकी ओर पतली है। पीछेके भागमें कुछ पतली और पुनः कुछ मोटी बनती है। ऊपरके भागमें पराभ्रान्तराल (Supra Orbital fissure) नामक दरार ऊपरकी ओर रही है। उसमेंसे नेत्रपेशीकी वातनाड़ियां, नेत्रशिरा और नेत्रनाड़ी निकलती हैं। ऊपर के समान निम्नभाग में भी एक दरार है, इसे नेत्रगुहाधरासीता (Infra orbital fissure) कहते हैं। यह दरार एक सूक्ष्म मांसपेशियों से बंद हुई है। उनमेंसे सूक्ष्म-सूक्ष्म शिराएं गमन करती हैं। वह दीवार अधिक महत्व की इसलिये है कि, नेत्रगोलकके पिछले भागमें ग्रन्थियां आदि होती हैं, उनके लिये जो क्रोनलेन (Kronlein's) की शस्त्र क्रिया की जाती है। उसमें इस अस्थिमय दीवार को छैनी और हथौड़ीसे काटनी पड़ती है।

नेत्रगृह धाराके चारों ओर किनारी है। इस किनारीके वर्णनके लिये चार भागोंकी कल्पना करना सुविधा वाला होगा। ऊर्ध्वा, निम्ना, बाह्या और अन्तरा। ऊपरकी किनारी बाहरकी ओर अधिक नोकदार है। उस स्थान पर वह नेत्रगोलकका संपूर्ण रीतिसे रक्षण करती है। उसके नीचे अश्रुजनक पिण्ड है। जहां बाहरके और मध्य भागका संगम होता है, वहां एक गड्ढा या कितनेक मनुष्योंमें छिद्र अवस्थित है। उस खड्डे (छिद्र) में से अधिभ्रुवा धमनी और नाड़ियां निकलती हैं। यह खड्डा आगेकी ओरसे सरलतापूर्वक जाना जाता है। इस गड्ढेके भीतरके भागमें कितनेक व्यक्तियोंमें एक और खड्डा है। उस खड्डेमेंसे एक नाड़ी निकलती है। भीतरके आधे की अपेक्षा कुछ अधिक भागमें ऊपरकी ओर अधिभ्रुवा द्वार है। यह धारा पुरुषोंने अधिक मोटी और स्त्रियोंमें कम विकसित होती है। इस बातका विशेष महत्व, मात्र अस्थिपंजर या खोपड़ीको देखकर स्त्री या पुरुष, किसकी है, इसके निर्णयार्थ है। इस धाराकी कोटरमें कपालकी कोटर (Frontal sinus) अवस्थित है।

निम्न किनारीके मध्यमें दो अस्थिका संयोग होता है। उससे कुछ भीतर एक अर्बुद प्रतीत होता है। उस अर्बुदके लगभग ½ इंच नीचे एक धमनी और एक नाड़ी गमन करती हैं। वे दोनों गाल पर आगे बढ़ती हैं।

बाहरकी किनारी अन्य सब किनारोंकी अपेक्षा विशेष दृढ़ है। ऊपर के हिस्सेमें वह नेत्रगोलकका अच्छी तरह रक्षण करती है। किन्तु मध्यभाग और नीचेके भागमें नेत्रगोलक कितनेक अंशमें खुला अर्थात् अरक्षित रहता है। मध्यसे नीचेके भागमें एक अर्बुद प्रतीत होता है। इस अर्बुदको कितनेक रज्जु चिपके हैं। जो नेत्रगृहके साथ नेत्रगोलकको बद्ध रखते हैं।

अन्तरा धारा अन्य सब किनारोंकी अपेक्षा अस्पष्ट और मोटा होती हुई है। ऊपरके भागमें किनारोंके भीतर ऊर्ध्व वक्रपेशीकी शिराके लिये जो उभरा हुआ प्रदेश है, वह अंगुलीके स्पर्श द्वारा स्पष्ट विदित हो सकता है। निम्न भागमें अश्रु वाशय जिस खड्डेमें रहता है, उसके ऊपरका भाग इस किनारीसे लगा हुआ है।

नेत्रगृह परिमाण—नेत्रगृहद्वारकी ऊँचाई लगभग ३५ मि. मी., चौड़ाई ४० मि. मी. और गहराई भी ४० मि. मी. है। ये सब सामान्य परिमाण मानें। क्योंकि भिन्न-भिन्न ऊँचाईके लोगोंमें माप भिन्न-भिन्न होता है।

६. नेत्रसे सम्बन्धवाले मस्तिष्क प्रदेश।

१. दर्शन नाड़ी संगम—दृष्टि नाड़ी योजननिका—Chiasma.
२. दर्शन प्रबन्ध—दृष्टि नाड़ी मूलिका—Optic tracts.

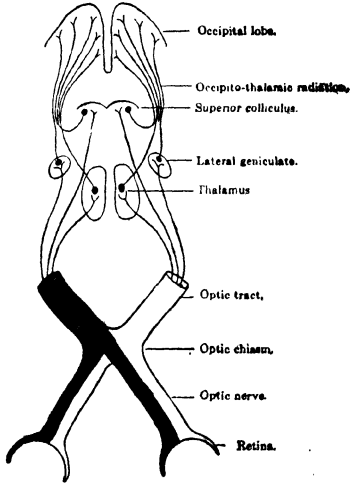

चित्र नं० ६ दृष्टिनाड़ी और सम्बन्धवाला मस्तिष्क प्रदेश।

१ नेत्रदर्पण — Retina
२ दर्शन नाड़ी — Optic nerve

३ दृष्टिनाड़ी योजनिका — Optic chiasma
४ दर्शन प्रबंध — Optic tract
५ दर्शन केन्द्रस्थान—आज्ञाकंद — Thalamus
६ पार्श्विका अधिपीठिका — Lateral geniculate
७ कलायिका चतुष्टय — Superior colliculus
८ पश्चिम पिण्डकी ओर वातनाड़ियोंके तन्तुओंका फैलाव— Occipito-thalamic radiation
९ पश्चिम पिण्ड —Occipital lobe

३. बाह्य ग्रन्थिमय प्रदेश—अधिपीठिका उत्तरा—External geniculate body (Corpus geniculatum).
४. चतुर्गुण समूह—कलायिका चतुष्टय—Corpora quadri geminum.
५. उच्च दर्शन केन्द्र स्थान (Higher visual Centre), आज्ञाकन्द (Optic-Thalamus) आदि। उच्च दर्शन केन्द्र स्थान, यह प्रदेश परिचमपिण्ड (Occipital lobe) के भीतर वक्रान्तरा सीता (Calcarine fissure) के इर्दगिर्द है।

इन सब भागोंके विवेचनका अध्ययन करना हो, तो शारीर शास्त्रका ग्रन्थ देखना चाहिये। अब इनका संक्षिप्त वर्णन, जो नेत्रके समीपके सम्बन्ध वाला है, उतना ही दिया जायगा। चित्र नं० ६ देखें।

९ अ. दर्शननाड़ी संगम (*Chiasma*)।

दोनों दर्शननाड़ी नेत्रगृहके मूल भागमें अवस्थित दर्शन नाड़ी छिद्रमें से निकलकर भीतर की ओर आगे बढ़ती हैं और लगभग आध इंच जाकर मस्तिष्क के निम्नप्रदेशमें परस्पर सम्मिलित हो जाती हैं। इस तरह जिस स्थानपर वाम और दक्षिण दर्शन नाड़ियोंका संगम होता है उस स्थान पर एक करीब चौकोर भाग बन जाता है उस भाग को दर्शननाड़ी संगम कहते हैं।

पहले लिखे अनुसार दोनों दर्शन नाड़ी तन्तुओंके सम्मिलित होने पर बनी हैं। इन दोनोंके सूक्ष्म तन्तु दर्शननाड़ी संगम स्थानमें परस्पर ओत-प्रोत होते हैं और उल्लंघन करके अपने मार्ग पर गमन करते हैं; अर्थात् सूक्ष्म तन्तुओंमेंसे कितनेक संगमस्थानके बाहर (कनपटी) की ओरसे निकलकर दाहिनी ओरके दर्शनप्रबन्धमें प्रवेश करते हैं। जब उसी ओर (दाहिनी ओरके दर्शननाड़ीके भीतर) के सूक्ष्म तन्तु बृहद् परिमाणमें दर्शन नाड़ी संगमके पास बांयी दर्शन नाड़ीके भीतर रहे हुए सूक्ष्म तन्तुओं

का अतिक्रमण करते हैं, उसी तरह बांये दर्शन तन्तु दाहिनी ओरके तन्तुओं का भी अतिक्रमण करते हैं। संक्षेपमें दक्षिण दर्शन नाड़ीके भीतरके सूक्ष्म तन्तु वाम दर्शन प्रबन्धमें तथा वाम दर्शननाड़ीके भीतरके सूक्ष्म तन्तु दक्षिण प्रबन्धमें प्रवेश करते हैं। इससे स्पष्ट अवगत हुआ होगा कि, दाहिनी दर्शननाड़ीके बाहरके सूक्ष्म तंतु दक्षिण दर्शन प्रबंधके साथ और भीतरके सूक्ष्म तंतु वाम दर्शन प्रबंधके साथ सम्बन्ध रखते हैं। उसी तरह वामदर्शन नाड़ीके सूक्ष्म तंतु वामदर्शन प्रबंधके साथ और भीतरके सूक्ष्म तंतु दक्षिण दर्शन प्रबंधके साथ सम्बन्ध रखते हैं। दर्शननाड़ी संगममें उक्त दर्शन नाड़ी के सूक्ष्म तंतुके अतिरिक्त अन्य भी कितनेक तन्तु हैं। ये तंतु दर्शननाड़ी संगमके भीतरके किनारे और पिछले भागमें अवस्थित हैं। उनका सम्बन्ध दर्शन नाड़ीके साथ कुछ भी नहीं है। वे केवल दर्शन तंतु संगमको मस्तिष्क के दक्षिण और वाम गोलार्द्धके साथ जोड़ते हैं।

९ आ. दर्शनप्रबंध–दृष्टिनाड़ी मूलिका।

(Optic tract)

दर्शन नाड़ी संगम दो दर्शन नाड़ियोंके संयोगसे होता है, ऐसा पहले कहनेमें आया है। पुनः पिछले हिस्समें दर्शननाड़ी जैसे दो तंतु बंधन (Nerve fibres) दर्शननाड़ी संगममेंसे निकलते हैं, उनको दर्शनप्रबन्ध कहते हैं। दर्शनप्रबंध दो हैं। बांया और दाहिना। दर्शनप्रबंध द्वारा नेत्र-दर्पणका सम्बन्ध मस्तिष्कके साथ होता है। दर्शनप्रबंध बहुसंख्य नाड़ी तंतुओंसे बना है। दर्शननाड़ी संगमका वर्णन करनेके समय कहा है कि, प्रत्येक दर्शननाड़ीके भीतरके भागके अर्थात् नाककी ओरके तंतु दर्शननाड़ी संगमके मध्यभागमें अतिक्रमण करते हैं। इस अतिक्रमणकी क्रिया आगे चलकर दर्शनप्रबंध तक पहुँचती है। जिससे दाहिने दर्शन प्रबंधमें दाहिने नेत्रदर्पणके बाहरके भाग (कनपटीकी ओरके भाग) के साथ संबंध रखनेवाले तंतु और बाँये नेत्रदर्पणके भीतरके भाग (नाककी ओरके भाग) के साथ संबंध रखनेवाले तंतु आते हैं। उस अनुसार बांये दर्शन सम्बन्धमें बांये नेत्रदर्पणके बाहर (कनपटीकी ओरके भाग) के तंतु और दाहिने नेत्रदर्पण के भीतरके भाग (नाककी ओर) के तंतु आते हैं। ये तंतु नेत्रप्रबंधमें आगे चलकर फैलने लगते हैं और मस्तिष्क बंधन–मस्तिष्क मृणालक (Crura Cerebri) की बाजूमें जाकर वल्क (Cortex) के नीचे अवस्थित मध्य दर्शन केन्द्र स्थान (Subcortical Optic Centre) में मिल जाते हैं।

६ इ. बाह्यग्रन्थल भाग—अधिपीठिका उत्तरा।

(*External geniculate body*)

दर्शनप्रबंधके तन्तुओंका बड़ा भाग आगे चलकर बाह्य ग्रन्थल भागकी रचना करता है। यह ग्रन्थिल मध्य मस्तिष्कके बाहरकी ओर है। यह लम्ब गोलाकार है, दर्शन केन्द्र स्थान समूहके नीचे है। दर्शननाड़ीके लगभग ८० प्रतिशत तंतु इस ग्रन्थिमें प्रवेश करते हैं।

बाह्य ग्रन्थिलके दो भाग हैं। बांया और दाहिना। इसी तरह दर्शनकेन्द्र स्थान—आज्ञाकन्द (Optic thalamus) भी दो हैं। बांया और दाहिना—ये मध्य मस्तिष्क में अवस्थित हैं। बाह्य ग्रन्थल भाग और चतुर्गुण समूहके ऊपरके भागमें मध्य मस्तिष्कके अधिक भागको रोक लेता है। इस भागमें दर्शन प्रबन्धके कितनेक तन्तु बाह्य ग्रन्थल भागमें से आगे चलकर पहुँच जाते हैं।

६ ई. चतुर्गुण समूह—कलानिका चतुष्टय।

(*Corpora Quadrigemine Anterior or Superior Colliculus*)

यह भाग दृक् कन्दिका (Pineal body) और दर्शनकेन्द्र समूहके नीचे मध्य मस्तिष्कके ऊपरके भागमें अवस्थित है। यह नाड़ी वस्तु की ४ तह का बना है। अतः चतुर्गुण समूह संज्ञा दी है।

६ उ. उच्चदर्शन केन्द्रस्थान (*Higher Visual Centres*)।

आज्ञाकन्द (Thalami)—ये दो लगभग अण्डाकार पिण्ड हैं। ये ब्रह्मगुहाके भीतर दोनों ओर १-१ रहा है। इनके भीतर धूसर द्रव्य अवस्थित है। प्रत्येककी लम्बाई ४ सेण्टी मीटर है। दोनों को २-२ स्थान और ४-४ तल हैं।

इन स्थानोंके सम्बन्धमें शारीर शास्त्री और इन्द्रिय विज्ञानशास्त्री, दोनों एकमत नहीं हैं; तथापि यह निर्णीत हुआ है कि, दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखने वाले तन्तु बाह्य ग्रन्थल भागमें से आगे बढ़ कर संज्ञाधिष्ठान (Sensory area) प्रदेश में पहुँचते हैं। (यह भाग मस्तिष्कके पश्चिम पिण्ड (Occipital lobe) के भीतरकी ओर रही हुई एडी सदृश दरार—वक्रान्तरा सीता—Calcarine fissure के इर्द गिर्द का प्रदेश है), उस भागको रेखा चिह्नित प्रदेश (Area Striate) कहते हैं। उसे हम दृष्टिकेन्द्र और दर्शनकेन्द्र कहेंगे।

नेत्ररोगके गुजराती प्रथम संस्करणमें इस विषयका वर्णन कुछ कम

विस्तारसे दिया है; किन्तु वह उपयोगी और सामान्य शब्दोंमें होनेसे यहां पर उसकी नकल दी है।

इन स्थानों (मध्य दर्शन स्थानों) मेंसे मस्तिष्कके अलग-अलग भाग का तन्तुओं द्वारा संबन्ध होता है। इन तन्तुओंमें दो भाग मुख्य हैं। एक भाग तीसरी नाड़ी (3rd. Cranial nerve–नेत्रचेष्टनी नाड़ी) के साथ सम्बन्ध रखता है। आगे लिखा जायगा, उस अनुसार नेत्रगोलकका हलन चलन प्रायः तीसरी नाड़ीके हेतुसे होता है। जिस तरह तीसरीके साथ सम्बन्ध रखने वाले तन्तु नेत्रगोलकको भिन्न-भिन्न दिशामें फिराते हैं, उस तरह वे नेत्रगोलकको आकुंचित और विकसित करनेमें भी उपयोगी होते हैं।

अन्य जातिके तन्तु बाह्य पदार्थोंके दर्शनमें सहायक हैं। मस्तिष्क वल्क का जो भाग इस दूसरी जातिके तन्तुओंके साथ सम्बन्ध रखता है और जो बाह्य पदार्थके दर्शनार्थ उपयोगी है, वह मस्तिष्ककी सतह पर पिछले हिस्सेमें एडी आकार दरार (Calcarine fissure) के इर्द गिर्द रहा है। इस पर से स्पष्ट समझमें आया होगा कि, अपनी दृष्टिसे हम जो-जो देखते हैं उनको देखनेकी सच्ची शक्ति मस्तिष्क में है। जिन-जिन को हमने देखा हो, उन-उन का स्मरण भी मस्तिष्क में ही रह जाता है। यथाहि–मनुष्य बिल्कुल अन्धा होगया हो तो भी उसने जो जो वस्तु देखी हो, उनका आकार उसकी दृष्टिके समक्ष भासमान होता है; अर्थात् उसका स्मरण उसकी दृष्टिके सामने टिका रहता है। नेत्रके गोलकमें अवस्थित सब भाग एवं दर्शननाड़ी, दर्शननाड़ी संगम और दर्शनप्रबन्ध, ये सब भाग मात्र दृष्टि–दर्शन चित्रको पहुँचाने वाले अनुचर (हरकारे) ही हैं। इस सम्बन्धका विशेष वर्णन दूसरे प्रकरणमें किया जायगा। नेत्रदर्पण में से वातनाड़ियां किस तरह मस्तिष्क त्वचा तक जाती है। वह छठे चित्र परसे अवगत होगा।

दूसरा प्रकरण

नेत्र और उसके उपाङ्गोंका कर्त्तव्य।

Functions of Eye and its appedages.

नेत्र और उसके उपाङ्गोंके कर्त्तव्य का वर्णन करनेके लिये पहले प्रकरणमें लिखे हुए पृथक्-पृथक् भागोंका निम्नानुसार वर्गीकरण किया जाता है :—

१. दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखनेवाले अंग।
२. नेत्रगोलकके हलन-चलन करानेवाले अंग।
३. नेत्रगोलक को अश्रु से आर्द्र रखनेवाले अंग।
४. नेत्रगोलकके संरक्षक अंग।
५. नेत्रगोलकके आकारके संरक्षक और उसे समान रूपसे कठोर रखने वाले अंग।

१. दृष्टिसे सम्बन्ध वाले अवयव।

अ. शुक्लमण्डल —Cornea.
आ. जलमयरस —Anterior and Posterior Chambers.
इ. तारामण्डल —Iris.
ई. तन्तु समूह —Ciliary body.
उ. दृष्टिमणि —Crystaline lens.
ऊ. दृष्टिमणिके उद्बंधन और दृष्टिमणिके आवरण—Zonnule of Zinn and Lens Capsule.
ए. नेत्रमध्यपटल —Choroid.
ऐ. नेत्र दर्पण —Retina.
ओ. काँचरूपरस —Vitreous humour.
औ. दर्शन नाड़ी (Optic nerves) तथा दर्शननाड़ी संगम, दर्शन-प्रबंध, बाह्य प्रन्थल भाग, चतुर्गुण समूह, दर्शनकेन्द्र स्थान और दृष्टि सोपानस्थान (एड़ीके आकारकी दरारके बाजूका मस्तिष्क देश) आदि।

इन सबके कर्त्तव्य क्रमशः दिये जाते हैं।

अ. शुक्ल मण्डलका कर्त्तव्य।

इसका मुख्य कर्त्तव्य यह है कि, नेत्रमें प्रवेश करने वाले प्रकाश और दृष्टिके किरणोंका वक्रीभवन करना। शुक्लमण्डल, दृष्टिमणि और कांच रूपरस, ये मुख्य रूपसे तथा जलमय रसका पूर्वखण्ड कुछ अंशमें इस वक्रीभवन क्रियामें भाग लेते हैं। शुक्ल मण्डल पारदर्शक होनेसे उसमेंसे किरण सर्वांशमें निकलकर भीतरके भागमें प्रवेश करते हैं। इसके अतिरिक्त शुक्लमण्डल की बाहरकी सतह अति तीक्ष्ण चेतनायुक्त होनेसे धुआँ, धूली, रज अथवा अन्य बाह्य पदार्थका उसे स्पर्श होने पर नेत्र तत्काल बन्द हो जाते हैं। इस लिये अधिक हानि नहीं होती। अन्य शब्दोंमें कहें तो शुक्लमण्डल नेत्रका रक्षण करनेमें भी अच्छी सहायता पहुँचाता है।

आ. जलमय रसका कर्त्तव्य।

इस रससे नेत्रगोलकका आकार ठीक कायम रहता है। उतना ही नहीं, किन्तु उसके हेतुसे शुक्ल मण्डलके पीछेका आवरण आर्द्र रहता है; एवं किरणोंके वक्रीभवनमें भी यह सहायता देता है। नेत्रगोलककी कठिनता को कायम रखने में इस रसका अति उपयोग होता है। यह बात विस्तार-पूर्वक नेत्रान्तर दबावके विषयके वर्णनमें आगे यथास्थान समझायी जायगी।

यह रस शुक्ल मण्डल, दृष्टिमणि और काँचरूप रस के पोषण में मुख्य भाग लेता है। जलमय रस सतत उत्पन्न होता रहता है और अधिक हो जाय उतना अग्र जलमार्ग से निकल जाता है। इस क्रियामें नेत्रके गोलकके भीतर कुछ भी निरुपयोगी या हानिकर पदार्थ उत्पन्न हुआ हो तो वह इस रसमें मिलकर नेत्रगोलक से बाहर निकल जाता है।

इ. तारामण्डल का कर्त्तव्य।

तारामण्डल के मुख्य दो कार्य हैं। १. नेत्र में प्रवेश करने वाले प्रकाश और दृष्टि किरणों को मात्र कनीनिकाके अतिरिक्त नेत्रगोलकके प्रवेश में से प्रवेश न होने देना; २. कनीनिकाके संकोच और विकाससे नेत्रको दूर और समीप की वस्तुओं को स्पष्ट देखनेकी शक्ति देना।

नेत्रयन्त्रकी रचना और क्रिया कतिपय अंशमें चित्र (फोटो) लेनेके यन्त्र (Photographic Camera) से मिलती जुलती है। जिन्होंने केमरा का निरीक्षण न किया हो, वैसे पाठकोंके लाभके लिये ऐसे यन्त्रकी रचना संक्षेपमें यहाँ समझाना आवश्यक माना है। (तथा क्रिया सम्बन्धी नियम तृतीय प्रकरणमें समझाया जायगा)

यह यन्त्र एक पेटी जैसा होता है। उसके चारों ओर से काले रंग का आच्छादन लगाया है। आगे के हिस्से में एक गोल छिद्र है। उस छिद्रमें एक बाह्य गोल (उन्नतोदर—Convex) काँच बैठाया है। उसके पीछे एक गोल छिद्रवाला पर्दा (Diaphragm) रहता है। यह छिद्र छोटा-बड़ा हो सकता है। उसके पीछे चित्र लेने वाला काँचपत्र (Plate) होता है। उसे आगे-पीछे हटा सकें, ऐसी इसकी रचना है। उस काँचके ऊपर कितनेक रासायनिक पदार्थ चिपकाये हैं। जब तक उसपर प्रकाश नहीं पड़ता, तब तक रासायनिक संलग्न द्रव्य एक ही स्थित में रहता है। प्रकाश पड़ने पर उसमें परिवर्त्तन होने लगता है। इस परिवर्त्तनके हेतुसे जिस वस्तु का चित्र लेना हो, उसका चित्र बन जाता है। नेत्र में भी वैसी ही रचना है। चित्र-ग्राही यन्त्रस्थ बहिर्गोल काँचका कार्य शुक्ल मण्डल, जलमय रस, दृष्टिमणि और काँचरूप रस, ये चारों करते हैं। तारामण्डल और कनीनिका छिद्रवाले पर्देका काम करते हैं। जैसे वह छिद्र विशेष रचनाके हेतुसे छोटा बड़ा होता है; वैसे कनीनिका भी प्रकाश की न्यूनाधिकताके परिमाण में छोटी बड़ी होती है। प्रकाश जितना अधिक उतना ही कनीनिका छोटी होती है। इससे जिस वस्तु को देखना हो, उसकी स्वच्छ और स्पष्ट प्रतिमा नेत्रके भीतर पड़ती है। चित्र लेनेके काँचपत्रका कार्य नेत्रदर्पण करता है। जिस तरह चित्रग्राही यन्त्रमें पीछे सजाये हुए काँचपत्र पर रासायनिक पदार्थ चिपकाये होते हैं, उस तरह नेत्र दर्पणमें भी निसर्गने एक प्रकारका चाक्षुस-बैंजनी रंग (Visual purple) लगाया है। जब नेत्रदर्पण पर प्रकाश गिरता है, तब यह रंग श्वेत हो जाता है। जिससे जिसको देखना हो, उसकी प्रतिमा नेत्र-दर्पण पर गिरती है। जिस तरह चित्र लेनेके यन्त्रमें दूर और समीपकी वस्तु का चित्र स्पष्ट लेनेके लिये काँचको आगे-पीछे हटाने की योजना की है; उस तरह नेत्रमें भी ऐसी योजना रक्खी है। उस योजनाके हेतुसे दृष्टि-मणिके बाह्य गोलपनमें परिवर्त्तन होकर रश्मियोंका एकीकरण (Focussing) होता है। (फिर ये संगृहीत रश्मियाँ काँच रूप जलका अतिक्रमण करके नेत्र-दर्पणके दशमस्तर पर प्रतिबिम्बकी रचना करती हैं।)

नेत्रदर्पणकी रचना और कर्त्तव्य चित्रग्राही यन्त्रमें लगे हुए रासा-यनिक पदार्थकी अपेक्षा अत्यन्त उलझन वाली है। इसका वर्णन नेत्रदर्पण का कर्त्तव्य समझानेके समय आगे दिया जायगा।

तारामण्डलका एक और कर्त्तव्य यह है कि, सूर्यके प्रकाशमें जो किरण नेत्रको हानि पहुँचाता हो, उसे नेत्रमें जानेसे रोकना। सूर्यके किरण अथवा प्रकाशके किरण पृथक्-पृथक् जातिके कहे हैं। उनकी सब मिलकर

९ जाति दर्शायी हैं। इनमेंसे यहाँ केवल ३ जातिका उल्लेख किया जायगा। ये ३ जाति रक्तातीत (Infra-red), दर्शनीय प्रकाश (Visible light) और नीललोहितातीत (Ultra violet) हैं। इन जातियोंमें से रक्तातीत (उष्णता रक्त) और नील लोहितातीत अतिशय बनफसाई यदि नेत्रके भीतर पूरे परिमाणमें प्रवेश करें, तो नेत्रके प्रत्येक भागको हानि पहुँचाये बिना न रहें। उदाहरण—जो लोग काँच गलाने का कार्य करते हैं, उन लोगोंके नेत्रोंमें अत्यन्त गरम काँचमेंसे निकलने वाली उष्णताके हेतुसे दृष्टिमणिको उतनी हानि पहुँच जाती है कि उसमें काँचबिन्दु हो जाता है। उसी तरह अत्यन्त बनफसाई (violet) रंगका प्रकाश नेत्रदर्पणको हानि करके अंधत्वकी प्राप्ति कराता है। इस जातिके प्रकाशसे नेत्रको बिल्कुल हानि न पहुँचे इसके लिए निसर्गने शुक्ल मण्डल, जलमय रस और दृष्टिमणिमें ऐसी योजना की है कि इस जातिका प्रकाश इन भागोंमेंसे नेत्रके भीतर प्रवेश ही न कर सके; अथवा अन्य शब्दोंमें कहें तो इस जातिके प्रकाशके किरणोंको ये अवयव शोषण कर लेते हैं। यह शोषण क्रिया वर्तमान होने पर भी मर्यादासे अधिक प्रकाश नेत्रमें जाय, तो मनुष्यको असह्य हो जाता है। उतनाही नहीं, बल्कि नेत्रोंको हानि पहुँचती है। तारामण्डलका पर्दा चाहिये उससे कुछभी अधिक प्रकाश को नेत्रके भीतर प्रवेश करनेही नहीं देता। जब एट्रोपिन या ऐसी अन्य कनीनिका विस्तारक औषध नेत्रमें डालनेसे कनीनिका चौड़ी होती है, तब रोगीको सामान्य प्रकाश भी असह्य हो जाता है।

ई. तन्तुसमूहका कर्त्तव्य।

पहले प्रकरणमें कहे अनुसार तन्तुसमूहमें ३ भाग हैं। १—तन्तु-मण्डल; २—तन्तु पुट और ३—तन्तुमय मांसपेशी। इन भागोंमें से तन्तु मण्डल और तन्तुपुटका कर्त्तव्य अभी तक ठीक समझमें नहीं आया, तथापि विद्वान् नेत्रवैद्योंकी मान्यता अनुसार इन दो भागोंके मुख्य दो कर्त्तव्य हैं। १. दृष्टिमणि, अग्र जलमार्ग, दृष्टिमणिका उदूबंधन और नेत्रदर्पणका दन्तुरधारामण्डल प्रदेश, इन सबको सहायता देना; २. नेत्रके भीतर प्रवाही की उत्पत्ति करानेमें उसका मुख्य भाग है।

तन्तुरूप मांसपेशीका कर्त्तव्य अधिक स्पष्ट है। उसके मुख्य दो कर्त्तव्य हैं। १. संकोचित और प्रसारित होकर दूर और समीप देखने की योजना करना; २. अग्रजल मार्गको खुला और बन्द करने पर नेत्रके भीतरका दबाव न्यूनाधिक करना। इनके अतिरिक्त संकोच द्वारा वन्तुरूप

धमनीके ऊपर दबाव डाल, उसका रक्ताभिसरण कम कराकर नेत्रके भीतर के प्रवाहीका दबाव कम करना। पहले प्रकरणमें कहे अनुसार तन्तुमय पेशीमें अलग-अलग जातिके पेशी तन्तु अवस्थित हैं। बिल्कुल बाहरके भागमें तन्तु सीधे हैं। बिल्कुल भीतरके भागमें अर्थात् तन्तुमय पेशीके सिरे पर तन्तु वृत्त (वर्तुलाकार) हैं तथा इन दोनों भागोंके बीचमें किरणाकार फैले हैं। जब किरणाकार तन्तु (सूत्र) आकुंचित होते हैं, तब तन्तुमय पेशी छोटी होती है। उस हेतुसे जिस भागके साथ वह चिपकी है, वह भाग खिंचता है। ये दो भाग हैं—नेत्र मध्य पटलके तन्तु और अग्र जल-मार्गके तन्तु। उसी अनुसार मण्डलाकार तन्तु आकुञ्चित होते हैं तब तन्तुसमूह बिल्कुल दृष्टिमणिके मध्य भाग तक पहुँच जाता है। इस परसे विदित हुआ होगा कि, जब तन्तुमय पेशी संकुचित होती है, तब दृष्टिमणि उद्बंधन शिथिल होता है। उस हेतुसे समीपकी दृष्टिके लिये योजना हो जाती है। एवं इस पेशीके संकोचसे ऊपर लिखे अनुसार नेत्र के भीतरका दबाव कम होता है। समीपकी दृष्टिकी योजना किस तरह होती है, वह आगे समझाया जायगा।

उ. दृष्टिमणिका कर्त्तव्य।

पहले कहे अनुसार चित्रग्राही यन्त्रमें एक बहिर्गोल काँचकी योजना की है। इस काँचका मुख्य कर्त्तव्य कोई भी वस्तुका छोटा-छोटा चित्र पीछे रहे हुए काँचके ऊपर बनानेका है। उसी अनुसार दृष्टिमणिका मुख्य कर्त्तव्य नेत्रके भीतर प्रवेश होने वाले किसी भी पदार्थके किरणोंका वक्रीभवन या भुग्नीभाव (Refraction) करनेका है। नेत्रविज्ञान-दृक्शास्त्रके नियम आगेके प्रकरणमें समझाये जायँगे, तब विदित होगा कि प्रत्येक वस्तु जो नेत्र को देखने की है, उसमेंसे प्रकाश या दृष्टिके किरण उत्पन्न होते हैं। ये किरण समान्तर और सीधे होते हैं। जितनी वस्तु बड़ी उतने ही परिमाणमें उसमेंसे निकलने वाले किरण विस्तार वाले होते हैं। ये सब किरण यदि उसी स्थितिमें नेत्रदर्पण पर पहुँचें, तो किसी भी वस्तु की प्रतिमा स्वच्छ और स्पष्ट कभी प्रतीत नहीं हो सकेगी। वह वस्तु स्पष्ट देखनेमें आवे, इसलिए उसमेंसे निकलने वाले किरणोंका वक्रीभवन होता है। फिर जो प्रतिमा उपस्थित हो वह स्पष्ट होती है। यह वक्रीभवन विशेषतः दृष्टिमणिमें ही होता है। दृष्टिमणिमें एक स्थितिस्थापकता रूप विशेष गुण हैं जिससे वह न्यूनाधिक बाह्यगोल हो सकता है। जब कोई

भी वस्तु दूर हो और उसे देखना हो, तब दृष्टिमणिका बहिर्गोलपना कम चाहिये। जैसे-जैसे वस्तु अधिक समीपसे देखनेकी हो, वैसे-वैसे दृष्टिमणि का बहिर्गोलपना बढ़ता जाता है। इस बहिर्गोलपनेके लिये भी कुछ सीमा है। जब किसी भी वस्तुको नेत्रके अति नजदीक लानेमें आवे, तब चाहे उतना नेत्रोंको खेंचे और अधिकसे अधिक प्रयत्न करें, किन्तु वह वस्तु स्पष्ट प्रतीत नहीं हो सकेगी। अन्य प्रकारसे कहें तो दृष्टिमणिमें जो बहिर्गोल बननेकी शक्ति है, वह पूरी-पूरी योजने पर भी उस वस्तुको स्पष्ट देखनेके लिये पूरी नहीं है।

इस परसे प्रश्न यह होता है कि बिल्कुल स्वस्थ स्थिति वाले नेत्र कितने समीपसे स्पष्ट देख सकते हैं? इसका आधार आयु पर अवलम्बित है। लगभग ८ वर्षकी आयुतक ७ सेण्टीमीटर अर्थात् २·७ इञ्चके दूरसे स्पष्ट देख सकते हैं। फिर जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे यह अन्तर बढ़ता जाता है। लगभग ४५ वर्षकी आयुमें अन्तर २५ सेण्टीमीटर अर्थात् १० इञ्च तक पहुंच जाता है। यह परिवर्त्तन चालू ही रहता है। ६० वर्षकी आयुमें लगभग ३० सेण्टीमीटर (१३ इञ्च) हो जाता है। उतने दूर किसी संयोगोंमें स्पष्ट प्रतीत नहीं होता। जैसे इस वक्रीभवन पर नजदीक देखनेका आधार है, वैसे कनीनिकाके छोटी-बड़ी होने पर भी उतना ही आधार रहता है।

ऊ. दृष्टिमणिके उद्बंधनका कर्त्तव्य।

ऊपर दृष्टिमणिका कर्त्तव्य दर्शाया, उसमें दृष्टिमणिका उद्बंधन और आवरण अति महत्त्वका भाग लेते हैं। वह क्रिया किस तरह होती है, यह अब समझाया जायगा।

जब दूरकी वस्तुको देखना हो, तब कनीनिका चौड़ी होती है, और दृष्टिमणिके उद्बंधनका संकोच होता है। यह संकोच तन्तुमय पेशीके शिथिल होनेसे होता है, ऐसा ऊपर लिखा है। जब उद्बंधन का संकोच होता है, तब दृष्टिमणिका आवरण खिंचता है। जिससे दृष्टिमणि कम बहिर्गोल होती है। परिणाममें जो किरण लम्बेसे समान्तर होकर आते हैं; उनका वक्रीभवन कम होता है। दूसरी ओर जब कोई भी समीप की वस्तु देखनेकी हो, तब तन्तुमय पेशी संकुचित होती है। इस शिथिलता के हेतुसे दृष्टिमणिका आवरण शिथिल होता है। जिससे दृष्टिमणिमें अवस्थित स्थितिस्थापकताके हेतुसे वह अधिक बहिर्गोल बनती है। उसके साथ कनीनिकाका संकोच होता है। ऐसा होनेसे दृष्टिके किरणोंका

अधिक वक्रीभवन होकर वह वस्तु स्पष्ट प्रतीत होती है। ऊपर दिये हुए विचारके लिये सब दृक्‌शास्त्री एक मत नहीं हैं। यदि हम ऐसा मान लें कि दृष्टिमणिमें स्थितिस्थापकताका गुण अवस्थित है; और उद्‌बंधन शिथिल होने पर वह अधिक बहिर्गोल बनती है, तो उपरोक्त कथनकी सिद्धि हो सकती है। कितनेक दृक्‌शास्त्री इस बातको स्वीकार नहीं करते; तथापि वे अभीतक दूसरे किसी मतको स्थापित नहीं कर सके। अतः तबतक उपरोक्त सिद्धान्तको मान्य रखना पड़ता है।

ए. नेत्रमध्य पटलका कर्त्तव्य।

पहले प्रकरण में कहे अनुसार नेत्रमध्य पटल में विशेषतः धमनी, शिरा और रंगके परमाणु अवस्थित हैं। धमनी और शिराओंके हेतु से वह एक प्रकार का पोषक प्रवाही उत्पन्न करता है; तथा नेत्रगोलकमें अवस्थित जो भाग उसके समीप या संसर्ग में है, उसका पोषण करता है। इन भागों में मुख्य नेत्रदर्पण और कितनेक अंश में दृष्टिमणि और काँचरूप रसका अन्तर्भाव होता है। इस प्रवाहीके हेतुसे और नेत्रमध्यपटल में रक्त की पूर्णता होनेपर मोटा बनता है तथा रक्तकी न्यूनता होनेपर पतला होजाता है। ऐसे प्रसंगों पर नेत्रके भीतरके प्रवाहीके दबाव को न्यूनाधिक करने में यह अति महत्त्वका भाग लेता है। उसमें रहे हुए काले या भूरे रंगके हेतुसे नेत्र बाह्य पटलमेंसे थोड़ा सा भी प्रकाश आता हो तो उसे पूर्ण रीतिसे रोकता है। चित्र लेनेके यन्त्रका वर्णन देनेके समय लिखा है कि उस यन्त्रकी सब ओर काला रंग लगाया है। उसी अनुसार नेत्रगोलक रूप दृष्टियन्त्रके नेत्र मध्यपटलमें अवस्थित काला या भूरा रंग भी उसी काम में आता है।

ऐ. नेत्रदर्पणका कर्त्तव्य।

नेत्रदर्पणका मुख्य कर्त्तव्य बाहरकी वस्तुओंकी प्रतिमा लेनेका और उस प्रतिमा को दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखने वाले मस्तिष्कके भागोंमें पहुँचाने का है। प्रतिमा लेनेका गुण प्रायः नेत्रदर्पणके सब भागोंमें है। मात्र जिस भागमें दर्शन तन्तुका सिरा रहा है उस भागमें यह गुण नहीं है; अर्थात् तन्तुके सिरेके भागमें दृष्टि नहीं पड़ती। इस बातको निश्चित करनेके लिये निम्न प्रयोग करके अनुभव करें।

एक कागजके ऊपर लगभग ३ इञ्चके अन्तर पर दो छोटी आकृति बनावें। फिर १ फीटके अन्तर पर कागज को सामने रखकर बांये नेत्रको बन्द करें और दहिने नेत्रसे बांयी ओर की आकृति पर दृष्टि डालें। जिससे दहिनी ओरकी आकृति दिखना बन्द हो जाता है। उसी अनुसार बांयी आंखसे

दहिनी ओरकी आकृति देखनेपर बांयी ओर रही हुई आकृति दृष्टिगोचर नहीं होती। इस प्रयोगके समयमें उतना सम्हाल रखना चाहिये कि दृष्टि ठीक सीधी रहनी चाहिये। दृष्टि आड़ी टेढ़ी हो जाने पर दोनों आकृति देखनेमें आजाती हैं। पीत बिन्दु वाले भागमें यह गुण अति तीव्र है। जिससे जब कोई भी वस्तु अति सूक्ष्मतासे देखनी हो, तब अपने इस भागका उपयोग करते हैं।

नेत्रदर्पण पर वस्तुओंकी प्रतिमा किस नियम अनुसार पड़ती है, उसे जाननेका हम प्रयत्न करें। चित्र लेनेके यन्त्रमें पिछली ओर कांचपत्र या सेल्युलोइडका टुकड़ा (Plate or film) रहता है, उसपर जिस वस्तुका चित्र लेना हो, उसका चित्र अङ्कित हो जाता है। उस कांच पत्र या सेल्युलोइड पत्र पर रौप्य लवण (Silver Nitrate) के मिश्रणका लेप किया हुआ होता है। जिससे सूर्य या दीपकका प्रकाश जब उस पत्र पर गिरता है, तब रौप्य लवणमें रासायनिक परिवर्त्तन होकर अधिक प्रकाश गिरनेवाले स्थानमें अधिक काला और कम प्रकाश पड़े वहां कम काला रंग बनकर वस्तुकी प्रतिमा अङ्कित हो जाती है।

जिस तरह रौप्य लवणमें प्रकाश संयोगसे परिवर्त्तन होता है, उस तरह नेत्रदर्पणमें अवस्थित बैंजनी रंगमें भी परिवर्त्तन होता है। उस हेतुसे प्रत्येक वस्तुकी प्रतिमा नेत्रदर्पणके ऊपर अंकित होती है। यह प्रतिमा उपस्थित होने पर एक जातिका विद्युत प्रवाह उत्पन्न होता है। वह प्रवाह नेत्रदर्पणमें रहे हुए दर्शनतन्तुके सूत्रों को उत्तेजित करता है। दर्शनतन्तु और दर्शनतन्तु संगम आदि दृष्टि वाहक अवयवों द्वारा दृष्टि केन्द्रस्थानों को पहुँचायी जाती है। उस हेतुसे हम वस्तु को सच्चे स्वरूपमें देख सकते हैं।

इसके अतिरिक्त जिस तरह हम नेत्र से एक वस्तु का आकार देख सकते हैं, उस तरह स्पर्शेन्द्रिय द्वारा भी उसका आकार जान सकते हैं। उदा०— हम अपनी आँखों को बन्द करके हाथके ऊपर एक वस्तु रक्खें; या किसी वस्तुपर हाथ फिरावें, तो उससे उस वस्तुका आकार कैसा है, यह हम स्पर्शेन्द्रियसे जान सकते हैं। इस क्रिया में उस वस्तु का आकार स्पर्शेन्द्रिय द्वारा मस्तिष्कमें पहुँचता है, और वहाँ पर उस वस्तुके आकार का खयाल हमको आता है। जिस तरह इस आकारको मस्तिष्कमें पहुँचाने का कार्य स्पर्शेन्द्रियसे सम्बन्धवाली संज्ञावह नाड़ी (Sensory nerves) करती हैं, उसी तरह नेत्रदर्पणके ऊपर पड़ी हुई प्रतिमाको मस्तिष्कमें पहुँचानेका कार्य दर्शननाड़ीके तन्तु करते हैं।

किसी भी वस्तुकी प्रतिमा अंकित करनेके अतिरिक्त अलग-अलग

रंग पहचाननेका गुण भी नेत्रदर्पणमें रहा है। कितनेक रोगी ऐसे प्रतीत हुए हैं कि जो अन्य रीतिसे सब वस्तुओंको ठीक देख सकते हैं, किन्तु मात्र अमुक रंगको ही नहीं जान सकते। इसपरसे ऐसा अनुमान होता है कि वस्तु देखनेका गुण और रंग जाननेका गुण दोनों नेत्रदर्पणके अलग-अलग भागमें रहे हैं।

औ. काँचरूपरस का कर्त्तव्य।

कांचरूपरसके ३ कार्य हैं। १. दृष्टि या प्रकाशके किरणोंको नेत्रदर्पण तक पहुँचाना; २. दृष्टिमणिके पोषणमें सहायता करना; ३. नेत्रदर्पणके अलग-अलग पर्त्तको स्वस्थानमें कायम रखना। इसके अतिरिक्त इस काँचरूपरसके हेतुसे नेत्रगोलकका वर्तुलाकार ठीक कायम रहता है। इतना ही नहीं, यह रसपूर्ण हो तो ही शुक्लमण्डल ठीक और सलवट रहित चिकना रह सकता है। मोतियाबिन्दुकी शस्त्रक्रियाके परिणाममें या नेत्रगोलक पर अभिघात होनेसे जब काँचरूपरस विशेषांशमें बह जाता है, तब शुक्लमण्डलमें सलवट हो जाती है। इतना ही नहीं, समस्त नेत्रगोलककी कठिनता कम हो जाती है; और नेत्रगोलकमें भी सलवट हो जाती है।

औ. दर्शननाड़ी आदि अवयवोंका कर्त्तव्य।

दर्शननाड़ी, दर्शननाड़ी संगम, दर्शनप्रबंध, बाह्य ग्रन्थल भाग और चतुर्गुण समूह आदि सब भागोंका कार्य यह है कि जिस वस्तुकी प्रतिमा नेत्रदर्पण पर अंकित होती है, उस प्रतिमाको उच्च दृष्टिकेन्द्र स्थानमें पहुँचाना। जो वस्तु हम देखते हैं, उसका आकार, रंग, नाप आदि उस केन्द्रस्थानमें खड़े होते हैं। इतना ही नहीं, बल्कि एक या एकाधिक समय देखी हुई वस्तुके आकार आदिका स्मरण भी रह जाता है। ऊपर लिखे हुए और पहले लिखे हुए वर्णन परसे स्पष्ट समझमें आया होगा कि दृष्टि उत्पन्न करनेका सच्चा गुण मस्तिष्क स्थित दृष्टिकेन्द्र स्थानोंमें ही है। नेत्रगोलकमें अवस्थित सब भाग तो केवल देखी हुई वस्तुका आकार या चित्रका खयाल मस्तिष्क तक पहुँचाने वाले कर्मचारी हैं। यह क्रिया इतनी अधिक उलझन वाली है कि अत्यन्त परिश्रम करनेपर भी विज्ञानशास्त्री इसे पूर्णांशमें अभी तक नहीं समझ सके। अतः यहां पर इतना ही संक्षिप्त विवेचन किया है।

२. नेत्रगोलकके संचालक भागोंका कर्त्तव्य।

पहले कहे अनुसार नेत्रगोलकको अलग-अलग दिशामें फिरानेके लिये मुख्य ६ मांसपेशियाँ—बाह्य सरला, अंतरा सरला, ऊर्ध्वासरला, निम्नस्था

सरला, ऊर्ध्वावक्रा और अधस्था वक्रा हैं। इनमेंसे बाह्या सरलापेशी नेत्रके गोलकको बाहर की ओर, अन्तरासरला भीतरकी ओर, ऊर्ध्वासरला ऊपरकी ओर, तथा निम्नस्थासरला नीचेकी ओर फिराती है। ऊर्ध्वावक्रासे नेत्रगोलक ऊपर और भीतरके भागमें गोल फिरता है तथा अधस्थावक्रासे बाहरकी ओर गोल फिरता है। ऊर्ध्वासरला और अन्तरासरला के खिंचने पर नेत्र-गोलक भीतर और ऊपरके भागमें फिरता है। बाह्यासरला और ऊर्ध्वासरला के खिंचने पर बाहरके और ऊपरके कोणमें फिरता है। उसी तरह बाहरके और नीचेके कोणमें फिराने का कार्य बाह्यासरला और अधस्था सरलापेशी करती हैं। भीतरके और नीचेके कोणमें नेत्रगोलक को फिरानेके लिये अधस्था सरला और अन्तरासरलापेशी कार्य करती हैं। उसी अनुसार अलग-अलग दिशामें नेत्रगोलक को गोल फिराना हो, तब वक्रा और सरलापेशी साथमें कार्य करती हैं।

इन सब स्नायुओंके खींचनेकी क्रिया मस्तिष्कमेंसे होती है; और वे अलग-अलग नाड़ियों द्वारा होती है। बाह्या सरलाको छठवीं नाड़ी द्वारा, ऊर्ध्वावक्राको चतुर्थ नाड़ी द्वारा और शेष सब (अन्तरा सरला, ऊर्ध्वासरला, अधस्था सरला और अधस्था वक्रा) को तीसरी नाड़ी द्वारा हलन चलन की शक्ति मिलती है।

३. नेत्रगोलक को आर्द्र रखने वाले भागोंका कार्य।

नेत्रगोलकको आर्द्र रखने वाले भाग अश्रुजनक पिण्ड, अश्रुवाहक नलिकाएं, अश्रुवाहक छिद्र, अश्रुवाशय और अश्रुवाहक नल हैं। इनमेंसे अश्रुजनक पिण्डका कर्त्तव्य अश्रु उत्पन्न करने का है। नेत्रको गीला रखनेके लिये जितना प्रवाही चाहिये उतना प्रवाही वह उत्पन्न करता है; किन्तु अनेक बार नेत्रको धुआं, रज या अन्य कोई दाहक वस्तु का स्पर्श हो जानेसे अश्रु अत्यधिक परिमाणमें उत्पन्न होता है। उसी तरह शोक या अति हर्ष होने पर भी अश्रु विशेष परिमाणमें पैदा होता है। अश्रुजनक पिण्डके अतिरिक्त अन्य भागों का कर्त्तव्य अश्रुओंको योग्य स्थानमें ले जानेका है। इनमें अश्रुवाहक नलियां पिण्डमें उत्पन्न अश्रुओंको नेत्र पर पहुँचाते हैं। जितना प्रवाही नेत्रके गोलकको गीला और साफ रखनेके लिये चाहिये, उससे अधिक ही वह अश्रुद्वार या अश्रुवाहक छिद्रों द्वारा अश्रुवाशय में पहुँचाती हैं; और वहाँ से अश्रु अश्रुवाहक नल द्वारा नाकके भीतर प्रवेश करता है। वहाँ श्वासकी उष्णताके हेतुसे वाष्परूप होकर निःश्वास के साथ नासा मार्गसे चला जाता है। जैसे अश्रुओंसे आंख गीली रहती है, वैसे आंखमें कुछ भी रज धूली

आदि कचरा गिरा हो, तो वह भी उस से धुलकर बाहर निकल जाता है। उसमें एक दूसरा गुण यह है कि अश्रु के भीतर जन्तुघ्नद्रव्य-लाइसोझिम (Lysozyme) रहा है। इस हेतुसे सब प्रकारके कीटाणु नष्ट हो जाते हैं।

४. नेत्रगोलकके संरक्षक अवयवोंका कर्त्तव्य।

नेत्रगोलकके संरक्षक अवयव—नेत्रगृह, पलक, बरुनी और मेइबोमियन और झाइसके पिण्ड हैं। इनमेंसे नेत्रगृहका कर्त्तव्य यह है कि समस्त नेत्र-गोलक और उसकी मांसपेशियां, धमनियां, शिराएं, नाड़ियां और दर्शननाड़ी, इन सबका संरक्षण करना। जैसे एक मनुष्य अपने घरमें सुरक्षित रह सकता है; चोर, हिंसक पशु, शीत, सूर्यका ताप और वायु आदिसे पूरा रक्षित रहता है, वैसे नेत्रगोलक आदि अवयव नेत्रगृहमें सुरक्षित-शीत, प्रकाश, वायु, चोट, आघात और शीतोष्ण आदिसे रक्षित रहते हैं। नेत्र का गोलक और उसके भाग उतने तक कोमल हैं कि, उसे सामान्य चोट लगनेपर भी उसे अतिशय हानि हो जाती है। नेत्रगृहकी अस्थिमय दीवारोंसे मात्र आगेके भागके अतिरिक्त अन्य सब भागोंका पूरा रक्षण होता है। नेत्रगृह की दीवार अस्थियों की होनेसे शीत, वायु, सूर्यताप और बाह्य उष्णता आदिका असर नेत्रगोलक पर नहीं होता।

पलक और बरुनी नेत्रके आगेके भाग का संरक्षण करते हैं। पलक जैसे नेत्ररूपी नगरीके दो द्वार हों, वैसे रहे हैं। नेत्रको सामान्य व्यथा होने का संभव उत्पन्न होता है, उसके पहले पलक तत्काल बन्द हो जाते हैं। किसी स्थान पर धूल उड़ती हो, धुंआ हो या सामनेसे कोई पदार्थ उड़ता हुआ आता हो, तो वह नेत्रके समीप आनेके पहले दोनों पलक तुरन्त बन्द हो जाते हैं। यह क्रिया किस तरह होती है, इसे कुछ संक्षेपमें दर्शाते हैं। जब कोई भी पदार्थ नेत्रके भीतर कदाच गिर जायगा, ऐसा हमको नेत्र द्वारा भासता है। उसी समय नेत्रमें से मस्तिष्कको समाचार पहुँचता है। यह समाचार सातवीं नाड़ी (पलकको बन्द करने वाली मांसपेशियों पर अकुश रखने वाली नाड़ी) का सम्बन्ध मस्तिष्क के जिस केन्द्रस्थानके साथ है, उसे पहुँचता है। वह तत्काल चेष्टातन्तुओं द्वारा पलक को बन्द करा देता है। मस्तिष्कमें समाचार पहुँचना, चेष्टा नाड़ीको आज्ञा होना, चेष्टा नाड़ीके तन्तुओं की क्रिया होना, ये सब क्रिया इतनी जल्दी होती है कि उसका खयाल भी नहीं आसकता। जैसे पलक और बरुनी बाहरके पदार्थों से नेत्रगोलक का संरक्षण करते हैं, वैसे नेत्रके गोलक को गीला रखना, रात्रिको निद्राके समयमें नेत्र को उस तरह बन्द रखना कि बाहर की वायु

तक नेत्रमें न जा सके, ये कार्य भी पलक और बरुनी करते हैं। हम जानते हैं उस अनुसार पलक को खोलने और बन्द करने की क्रिया एक मिनट में ६ से ३० समय तक होती है। सब मनुष्यों में इस क्रिया की गति समान नहीं होती। कितने की यह क्रिया उतनी अधिक तेजी से करते हैं कि किसी भी मनुष्य का लक्ष्य उस ओर खिंचता है। जब साधारण क्रिया होती हो, तब किसी का लक्ष्य उस ओर नहीं जाता। इस क्रियाके होते रहनेसे नेत्रगोलक नहीं सूखते; एवं उनमें गिरा हुआ सूक्ष्म द्रव्य बाहर निकल जाता है। आँसुओंके बाहर निकलने और अवरोध होनेके अनुसार नेत्रके भीतरका दबाव न्यूनाधिक होता रहता है।

रात्रि को मनुष्य सो जाता है, तब दोनों पलक बन्द होजाते हैं। यह बन्द होनेकी क्रिया उतनी पूर्ण होनी चाहिये कि उसमें वायु तक भी प्रवेश न कर सके। इस योजनाके लिये पलककी धारामें जो पिण्डोंके मुख रहे हैं, उनमेंसे एक प्रकारका गाढ़ा पदार्थ उत्पन्न होता है; वह पलकके नीचे और ऊपरकी धाराको बिल्कुल बन्द कर देता है। इससे रात्रिके समयमें या जब निद्रामें पलकें बन्द हों, तब नेत्रगोलकको वायु नहीं लगती; एवं नेत्रगोलक नहीं सूखते। जब किसी भी कारणसे पलक योग्य आपसे बन्द नहीं हो सकते, तब शुक्लमण्डलका जितना भाग खुला रहता है, उतना सूखा और अपारदर्शक हो जाता है।

पलककी धारामें अवस्थित बरुनीके बालोंका मुख्य कर्त्तव्य नेत्रके भीतर बाहरके पदार्थोंको जानेसे रोकनेका है। मेइबोमियन पिण्ड और झाइसके पिण्डका कर्त्तव्य ऊपर कहे अनुसार एक प्रकारका गाढ़ा द्रव्य तैयार करनेका है; जिससे दोनों पलककी धारा दृढ़ बंध हो जाती हैं।

५. नेत्रगोलकके आकृति और कठिनताके संरक्षक अंगोंका कार्य।

नेत्रगोलकके आकारसंरक्षक अवयव नेत्रबाह्यपटल, और शुक्लमण्डल, टेननका आवरण, नेत्रगोलककी पेशियाँ, काँचरूपरस, जलमय रस और दृष्टिमणि आदि हैं। पहले प्रकरणमें समझाया है कि नेत्रगोलक ३ पटलोंसे बना है। बाह्य, मध्य और अन्तर। बाह्य पटलमें नेत्र बाह्यपटल और शुक्लमण्डल, मध्य पटलमें नेत्रमध्यपटल, तारामण्डल और तन्तुसमूहका समावेश होता है। ये दो पटल और अन्तर पटल ये सब भाग नेत्रके आकार का रक्षण करते हैं। जितनी सिद्धि इन अवयवोंसे होती है, उतने ही या उनसे भी कुछ अधिक काँचरूपरस, जलरूपरस और दृष्टिमणि, ये आकार-

को कायम रखनेमें भाग लेते हैं। यदि काँचरूप रस नेत्रमें से निकल जाय तो नेत्रगोलक नरम और सलवटमय हो जाता है। काँचरूप रसकी अपेक्षा जलमय रसको अधिक महत्त्व दिया जायगा। कारण, काँचरूप रस थोड़ा बहुत निकल जाय, तो उसका स्थान नूतन उत्पन्न जलमय रस ले लेता है; किन्तु जलमय रसकी उत्पत्ति किसी हेतुसे बन्द हो जाय, तो नेत्रगोलक बिल्कुल नरम और विकृत आकारका हो जाता है। दृष्टिमणिके हेतुसे नेत्र-गोलकके आकारमें अधिक अन्तर नहीं पड़ता। दृष्टिमणि निकल जाने पर केवल नेत्रके भीतरका दबाव कम हो जाता है। किन्तु वह कुछ समयके लिये ही। जलमय रस अधिक उत्पन्न होकर इस न्यूनताको पूर्ण कर देता है। नेत्रकी माँसपेशियोंके उपर खिंचाव चालू रहने पर नेत्रगोलकका आकार कायम रहता है। इन पेशियोंके अतिरिक्त नेत्रगृहके भीतर रही हुई मुलर (Muller) की मांसपेशी भी नेत्रके गोलकके आकार स्थिर रखनेमें कुछ अंशमें सहायक है।

तीसरा प्रकरण

दृक्शास्त्रके नियम।

Principles of Optics.

दृक्शास्त्र वर्त्तमान युगमें इतना आगे बढ़ चुका है कि, यदि इस शास्त्रको यहाँ पर सामान्यरूपसे समझानेका प्रयत्न किया जाय, तोभी कम से कम १०० पृष्ठका लेख सहज हो जाय। इतना ही नहीं, जिन्होंने इस शास्त्रके प्राथमिक भागका अभ्यास भी न किया हो, ऐसे पाठक-वृन्दोंको उलझन-सी प्रतीत होनेकी संभावना है। अतः इस प्रकरणमें इस शास्त्रके मुख्य सिद्धान्त ही दिये जायँगे।

७ वे चित्रमें दर्शाया है, उस अनुसार प्रकाश, चाहे बत्तीका हो या सूर्यका· किन्तु वह प्रकाशके किरणरूप है। ये किरण प्रकाश देनेवाली वस्तुमेंसे निकलकर फैलते जाते हैं। जिससे प्रत्येक किरण एक दूसरेसे अधिक और अधिक अन्तर पर गति करता जाता है। सब किरण सीधी पंक्तिमें फैलते हैं। इस तरह फैलने वाले किरणोंकी गतिमें जिस वस्तु पर ये किरण गिरते हैं, उस अनुसार अन्तर होता है। यदि वे किरण नेत्र-या दर्पण जैसी वस्तु पर गिरें तो ये किरण आगे गति न करके उस वस्तु परसे प्रतिफलित (Reflected) होते हैं, अर्थात् ये किरण उस पदार्थ परसे पीछे मुड़ते हो, ऐसा भास होता है। यदि ये किरण पारदर्शक पदार्थ पर पड़े, तो ये उस वस्तुमेंसे निकल जाते हैं। उस क्रियाको हम संचारण (Transmission) कहेंगे। यदि ये किरण किसी अपारदर्शक वस्तुपर पड़ें तो वह वस्तु उनका अपनेमें अन्तर्भाव कर देती है। इस क्रियाको हम संशोषण (Absorption) कहेंगे। यदि पारदर्शक वस्तुमेंसे संचारण करने वाले किरण सपाट वस्तुमेंसे सीधे निकलते हैं, तो वे किरण निकल जानेपर भी उसी स्थितिमें देखनेमें आवेंगे, किन्तु वे ही

चित्र न० ७
दीपक किरण

किरण यदि सपाट वस्तु पर सीधी गिरनेके बदले में टेढ़े (Oblique) गिरें तो उन किरणोंका एक बाजूमें वक्रीभवन होता है। इस वक्रीभवनकी क्रिया तो ही होती है, यदि प्रकाशके किरण वस्तुपर गिरते हों और वह वस्तु इर्द-गिर्दके वातावरणकी अपेक्षा अधिक गाढ़ी हो, जैसे वायुकी अपेक्षा कांच अधिक दृढ़ है।

चित्र ८ में समान्तर पार्श्वयुक्त कांच दर्शाया है। उसपर गिरने वाला प्रासंगिक किरण ह-क है। वह किरण स्वाभाविक य-ब स्थान में वक्रीभवनको प्राप्त होता है। फिर वही किरण कांचके दूसरे पार्श्वसे जब बाहर निकलता है, तब स-भ स्थानमें ह-कके समान पुनः अधिक वक्रीभूत होता है। इसलिये तत्कालोत्पन्न र-फ किरण ह-कके समान्तर होता है। यदि यह कांचपट्टी अति पतली हो, तो वह किरण समान्तरके स्थान पर बिल्कुल ह-कसे संयुक्त होगी। इसपरसे कितनेक नियम बनाये हैं। इन सब को इस ग्रन्थमें देना अशक्य है। मुख्य नियम निम्नानुसार है।

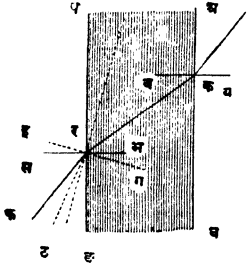

चित्र नं० ८

१. जलती बत्ती या कोई भी प्रकाश देनेवाली वस्तुमेंसे प्रकाशके किरण निकलते हैं। ये किरण निकलनेके पश्चात् एक दूसरेसे अधिकाधिक दूर होते जाते हैं; अर्थात् ये किरण फैलते हैं। आकृति ७ वीं देखें।

जिस तरह किरण प्रकाशके मूलसे दूर जाते हैं, उस तरह दो किरणों के बीचका अन्तर भी बढ़ता ही जाता है। अन्त में लगभग ६ मीटर (२० फुट) के अन्तर पर पहुँचने पर एक दूसरेसे उस तरह दूर हो जाते हैं कि उनको हम लगभग समान्तर गिन सकेंगे। दृक्शास्त्रमें प्रत्येक वस्तु जो ६ मीटर या उससे अधिक दूर हो, उसमेंसे निकलने वाले किरण समान्तर गिननेमें आते हैं। ऐसे ६ मीटर या उससे अधिक दूरी से आनेवाले किरण कनीनिका पर पड़ें तो उसको हम समान्तर गिनेंगे।

२. जब प्रकाश किसी भी अपारदर्शक वस्तु पर पड़ता है, तब उस प्रकाशके किरणोंमेंसे कितनेक उस वस्तुमें मिल जाते हैं। जिससे उन किरणोंका संशोषण (Absorption) हो जाता है। कितनेकका उस वस्तु

परसे प्रतिफलित प्रकाश (Reflection) पड़ता है। जिस हेतुसे वह वस्तु दृश्यमान होती है। कितनेक किरण उस वस्तु पर गिरकर उसका प्रकाश ढालते हैं। वस्तुके तेजस्वीपन पर प्रतिफलित प्रकाशका आधार रहा है। साफ की हुई तांबे पीतलकी वस्तुके दर्पण अधिकमें अधिक प्रतिफलित प्रकाश डालनेवाली वस्तुओंमें उदाहरणरूपसे कह सकते हैं।

३. जब प्रकाश किसी भी पारदर्शक पदार्थ पर पड़ता है, तब प्रकाशके किरण उसमेंसे निकल जाते हैं। यदि उस प्रकाशको ग्रहण करने वाली वस्तु पूर्व-गिर्दके वातावरणकी अपेक्षा गाढ़ी हो, तो प्रकाशके किरणोंका वक्रीभवन (Refraction) होता है। वायुकी अपेक्षा काँच अधिक गाढ़ा होनेसे वक्रीभवन होता है।

४. यदि किरण बाह्यगोल काँचमें से निकलते हैं तो समान्तर किरण उस तरह वक्रीभवन पाते हैं कि वे काँचके पीछे अमुक बिन्दुके पास सब किरण संगृहीत हो जाते हैं। आकृति ९वीं देखें। इस बिन्दु और काँचके पिछले हिस्सेके बीचमें जो अन्तर रहता है, उसका आधार काँचके बहिर्गोल-पनके ऊपर है। उदा०—ऐसा काँच हो, कि जिसमेंसे निकलने वाले किरण काँचके पीछे एक मीटरके अन्तर पर संचित होते हैं। उस काँचको हम नं० १ की संज्ञा देवेंगे।

नं० २ के बीचमें से निकल कर वक्रीभवन होने वाले किरण ½ मीटर के अन्तर पर इकट्ठे होते हैं। नं० ४ के काँच में से गमन करने वाले किरण ¼ मीटरकी दूरी पर जमा होते हैं। इस तरह अधिक नम्बरके काँचोंकी गिनती ऊपरके अनुपातके अनुसार होगी। दूसरी ओर आध नं० का अर्थात् ०·५ के काँचमें से गमन करने वाले किरण दो मीटरके अन्तर पर संचित होते हैं।

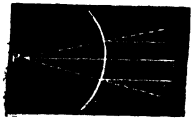

चित्र नं० ९
बहिर्गोल काँचसे निःसृत किरणोंका वक्रीभवन।

५. यदि समान्तर किरण अन्तर्गोल काँचमें से निकले, तो उसका वक्रीभवन उस तरह होगा कि काँचमें से निकलनेके पश्चात् ये किरण फैलने लगते हैं। फिर जैसे-जैसे अन्तर बढ़ता जाता है, वैसे-

वैसे विशेष और विशेष ही फैलते जाते हैं। चित्र नीचे देखें।

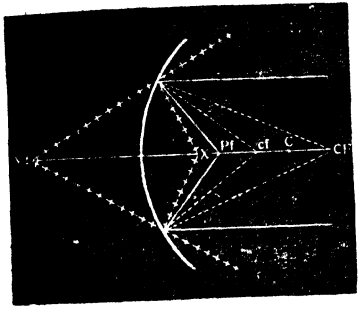

चित्र-१० अन्तर्गोल कांच से निःसृत किरणों का वक्रीभवन

नं० १ के काँच में ये किरण उवने अंशमें निकलते हैं कि वे किरण यदि पुनः उसी काँचके आगे के हिस्सेमें आ-जायँ, तो फिर एक मीटर के अन्तर पर इकट्ठे होते हैं। ऐसा मान लें, तो उस नियमानुसार नं २ के कांच में से गति करने वाले किरण आध मीटर की दूरी पर संचित होंगे।

६. जैसे बहिर्गोल और अन्तर्गोल काँचसे बनता है, उस तरह अर्द्ध अन्तर्गोल (Cylindrical Concave) तथा अर्द्ध बहिर्गोल (Cylindrical Convex) से भी होता है; किन्तु एकही रेखामें। दूसरी रेखामे सामान्य अर्थात् नम्बररहित काँच होनेसे किरणों का वक्रीभवन नहीं होता।

७. त्रिकोण घन काँच (Prism) लगभग त्रिकोणके समान होता है। निम्न भाग मोटा होता है, उसे हम आधारस्थान (Base) और ऊपरके पतले भाग को शिखर (Apex) कहेंगे। इस काँचमेंसे निकलने वाले समान्तर किरणों का उस तरह वक्रीभवन होता है कि नेत्रके आगे वैसा एक काँच रखेंगे तो उसमें से प्रतीत होने वाले पदार्थ उस काँचके शिखर की ओर हटे हुए भासेंगे। शिखरका कोण जितना बड़ा उतना ही पदार्थके हटने का अन्तर अधिक। नं १ के त्रिकोण घन काँचमें से देखने पर जितनी वस्तु दूर गई हुई भासेगी, उससे दूनी हटी हुई नं० २ में से तथा चार गुनी नं० ४ में से दीखेगी।

चित्र नं० ११ को देखने पर अवगत होगा कि जब नेत्र स्थिर स्थितिमें हों, तब जिस वस्तु को नेत्र देख सकें, उसे किस तरह देख सकते हैं? यह द्वितीय प्रकरण में आगया है कि, नेत्र की रचना विशेषतः चित्र खेंचनेके यन्त्रसे मिलती जुलती है। उस यन्त्रमें जिस वस्तु का चित्र लेना हो, उसे

यन्त्रसे अमुक दूरीपर रक्खा जाता है। उस वस्तुमें से दृष्टिकिरण निकल चित्र लेनेके यन्त्रके आगेके हिस्से में अवस्थित छिद्र में प्रविष्ट होते हैं। ये किरण नैसर्गिक रीतिसे फैले हुए होते हैं। जब तक इन किरणों का वक्रीभवन नहीं होता, तब तक छोटी-सी प्लेट, जो चित्रयन्त्रके पिछले हिस्से में रहती है, उस पर उस वस्तुकी स्पष्ट प्रतिमा नहीं होती। इस क्रियाके लिये चित्रयन्त्रमें एक बाह्यगोल काँच (lens) रखा जाता है। इस काँचमेंसे किरण जब निकलते हैं, तब किरणों का वक्रीभवन होकर एक स्थान पर केन्द्रित होकर उसका स्पष्ट चित्र अङ्कित हो जाता है। यह क्रिया चित्रयन्त्र के भीतर बहिर्गोल काँच करता है; वही क्रिया नेत्रमें होनेके लिये शुक्ल मण्डल, जलमय रसके खण्ड, दृष्टिमणि और काँचरूप रस, ये सब भाग करते हैं।

यह वक्रीभवन किस नियमानुसार होता है, यह अब समझाया जायगा। ११ वीं आकृति देखने पर प्रतीत होगा कि, बीच की सीधी पंक्तिमें किरण सीधा आता है। वह बहिर्गोल काँचके मध्य में से निकलता है। इस लिये अक्षरेखामें से सीधा गमन करता है; अर्थात् बिना वक्रीभवन हुए सीधा नेत्रदर्पण पर गिरता है। ब और प किरणों का दृष्टिमणि में न के पास वक्रीभवन होता है और नेत्रदर्पणके पास प, ब स्थानमें केन्द्रित होते हैं; अर्थात् वस्तु का जो ऊपर का हिस्सा है वह नेत्रदर्पणमें नीचेके भागमें प्रतीत होता है। अन्य रीतिसे कहें तो वस्तु औंधी दिखनी चाहिये। ऐसा क्यों नहीं होता, यह आगे समझाया जायगा।

उपरोक्त वर्णनके अनुसार स्थिति स्वस्थ नेत्रके लिये है। जो नेत्र छोटी दृष्टि वाले (*Myopic*) या लम्बी दृष्टिवाले (*Hypermetropic*) हों, ऐसे नेत्रोंमें प्रवेशित दृष्टिकिरण नेत्रदर्पण पर केंद्रित नहीं होते, किन्तु आगे या पीछे केन्द्रित होते हैं। छोटी दृष्टिवाले नेत्रमें नेत्रदर्पणके आगे और लम्बी दृष्टि वालेमें नेत्रदर्पणके पीछे। इस स्थिति को सुधारनेके लिये अन्तर्गोल या बहिर्गोल काँच चश्मा रूपसे लगानेसे वस्तु स्पष्ट भासती है। इसका विशेष स्पष्टीकरण आगे चश्माके प्रकरणमें समझाया जायगा।

चित्रयन्त्रमें संकोच-विकास होसके ऐसा एक काला पर्दा लगाया है, उसमें एक छोटा-सा छिद्र होता है। उस छिद्रको छोटा बड़ा करनेकी योजना हो सके ऐसा प्रबन्ध किया है। यह योजना इसलिये होती है कि दृष्टिकिरण न्यूनाधिक परिमाण में यन्त्रके भीतर प्रवेश कर सके। वैसी ही योजना नेत्र के भीतर कनीनिका जो तारामण्डलके मध्यमें एक छिद्र रूप रही है, उसके

लिये की है। जब दृष्टिकिरण थोड़े परिमाण में प्रवेश कराना हो, तब कनीनिका संकुचित होती है और जब विशेष परिमाण में प्रवेश कराना हो, तब विस्तृत होती है।

इनके अतिरिक्त चित्रयन्त्र में यह सुविधा होती है कि, जिस वस्तु का चित्र लेना हो, वह दूर हो चाहे नजदीक, उसका चित्र लेने की योजना रक्खी है। इस योजना को किरणों का एकीकरण या चित्रयन्त्र का केन्द्रीभवन (Focussing) कहते हैं। इस योजनाके लिये बहिर्गोल कांचको आगे पीछे हटाना पड़ता है। या पीछे रही हुई काँच की तख्ती (प्लेट) को सरकाना पड़ता है। नेत्रके भीतर यह प्रबंध दृष्टिमणिके न्यूनाधिक बहिर्गोल होने पर होता है। यह विषय द्वितीय प्रकरण में विस्तारपूर्वक समझाया है। यहाँ यहाँ इतना कहना पर्याप्त होगा कि जब दृष्टिमणि बहिर्गोल होती है (उसमें अवस्थित स्थितिस्थापकता के गुणके और उद्बंधनके शिथिल होनेके हेतुसे), तब उसमेंसे गमन करने वाले दृष्टिकिरणों का अधिक वक्रीभवन होकर सब किरणों का एकीकरण हो जाता है। इससे उस वस्तु की प्रतिमा नेत्र दर्पण पर स्पष्ट पड़ती है।

चौथा प्रकरण

नेत्र परीक्षा।

Examination of the Eye.

नेत्र की परीक्षा केवल नेत्रदृष्टि द्वारा और परीक्षोपयोगी अनेक यन्त्रों द्वारा की जाती है। रोगी की आँख की परीक्षा प्रारम्भ करनेके पहले उसके लिये आवश्यक कितनाक पूर्ण इतिहास और हेतु आदि जानकर उसकी यथोचित यादी कर लेवें, जिससे रोग विनिर्णय करनेमें सहायता मिलती है। इतना ही नहीं, वही रोगी कालान्तर में पुनः दूसरी बार परीक्षा के लिये आता है, उस समय नेत्रकी स्थिति में क्या अन्तर हुआ है, सुधार हुआ है या बिगाड़, यह ठीक अवगत हो जाता है। यह यादी किस तरह करनी चाहिये, वह यहाँ समझाया जाता है।

१—रोगी का नाम, रहने का स्थान, आयु, जाति, गृहस्थ, कुमार या कुमारी एवं विधुर या विधवा।

२—वर्त्तमान का नेत्ररोग—किस तरह रोग प्रारम्भ हुआ? कितना समय हुआ? और आज दिन तक किस तरह रोग आगे बढ़ रहा है?

३—नेत्रके अनुरूप पूर्वलक्षण, लक्षण (Symptoms) और चिह्न (Signs)।

अ. नेत्रपर शोथ कभी पहले आया था?
आ. नेत्रमेंसे चिपचिपा स्राव होता है या नहीं?
इ. नेत्रसे तेज सहन होता है या नहीं?
ई. नेत्रमें दर्द होता है?
उ. नेत्रसे पढ़ने और देखनेमें थकावट आती है?
ऊ. शिर में दर्द रहता है?
ए. नेत्रसे कभी एक वस्तुके स्थान पर दो दिखती हैं?
ऐ. नेत्रसे मंद दीखता है?
ओ. चश्मा का उपयोग किया है या नहीं?
औ. चक्कर कभी आता है?

४—कुटुम्ब सम्बन्धी प्रश्न—

अ. कुटुम्ब के अन्य किसी मनुष्य को नेत्र की तकलीफ थी या नहीं ?

आ. रोगी का नेत्र या अन्य रोग सम्बन्धमें वृत्तान्त ।

५—नेत्रके अतिरिक्त देहके अन्य भागोंकी परीक्षा—नाक और उसके इर्द-गिर्द अवस्थित अस्थियोंके कोटर, दांत की स्थिति (अनियमितता, सड़न, पूय आदि), जिह्वा, गल ग्रन्थियों (Toneils) की स्थिति, हृदय, धमनियां और शिराओं की स्थिति, फुफ्फुस, उदर, त्वचा आदि की परिस्थिति कण्ठ या बगल में ग्रन्थियां हैं या नहीं आदि हेतुओं का निर्णय करना चाहिये ।

६—आवश्यक हो तो रक्त परीक्षा, क्ष किरण (एक्सरे) की परीक्षा तथा मस्तिष्कके भिन्न-भिन्न भागों की परीक्षा ।

७—नेत्रपरीक्षा—यह अधिक महत्व की और मुख्य है । इसकी शैली निम्नानुसार है:—

अ. दोनों नेत्रगृह समान हैं या नहीं है ?

आ. भ्रू का भाग उभरा हुआ है नहीं ?

इ. पलक पर शोथ आया है ?

ई. नेत्रकोण रक्ताभ है या शोथ भासता है ?

उ. अंगुली या अंगुष्ठसे नेत्रके भीतरके कोण में दबानेपर अश्रुवाहक छिद्रों में से कुछ लेसदार पदार्थ निकलता है ?

इतनी परीक्षा कर लेनेके पश्चात् फिर निम्नानुसार जांच करें:—

ऊ. बरुनीके बाल योग्य परिमाण में प्रतीत होते हैं ?

ए. पलक की धारा शोथमय या पकी हुई तो नहीं है ?

ऐ. नेत्र में से लेसदार पूयमय पदार्थ निकलता है ?

इसके पश्चात् दोनों पलकों को उलट कर देखें । पलकोंमें शोथ होगा, तो पलकों को उलटने पर व्यथा होगी । पलक भीतर मुड़ने पर सिरा बाहर ठीक मुड़ा है या नहीं ? यह अच्छी तरह देखें । भीतर मुड़े हुए हों, तो परवाल या नेत्रच्छदका अन्तर्वलन (Trichiasis or Entropion) की उपस्थित मानी जायगी । पलक बाहर मुड़े हों तो उस स्थिति को नेत्रच्छद का बहिर्वलन-एक्टोपियन (Ectropion) कहते हैं । पलकों में किसी भी प्रकार की रसौली या गुहांजनी (गुहेरी) है या नहीं ? यदि पलकों की धारा पकी हो उसे नेत्रच्छद धारा प्रदाह (Marginal Blepharitis) कहते हैं ।

इस परीक्षाके आगे पलकों को उलटावें । पलकों को उलटनेके सरल

उपाय दो हैं। सामान्यतः पलकोंके बालों को नेत्रवैद्य अपने बाँये हाथके अंगुष्ठ और तर्जनीके बीच पकड़ दहिने हाथ की तर्जनी को पलकोंके ऊपरके हिस्सेमें रख उसके ऊपर पलक को मोड़ें। यदि अंगुलीसे पलक न उलट सके तो धातुकी एक मोटी शलाकासे पलकों के ऊपर के भाग को दबाकर उसपर पलकको उलट देवें। सामान्यतः पलकोंको उलटनेमें विशेष कठिनता नहीं होती। फिर भी विशेषतः उग्र स्वभाव वाली स्त्रियोंके पलकों को उलटने में अधिक श्रम और अनेक बार कष्ट होता है। ऐसे प्रसंगों पर नेत्रके भीतर कोकेन या एनिथिन (Anethaine) के बूंद (कितने परिमाण में बनाना चाहिए यह औषध प्रकरणमें लिखा जायगा) दो या तीन बार दो दो मिनट पर डालनेसे बहुधा पलक सरलतासे उलट सकेंगे। क्वचित् ये सब उपाय निष्फल होते हैं तब रोगी को क्लोरोफार्म सुंघा बेहोश किये बिना नेत्रपरीक्षा नहीं हो सकती। पलकों को उलट कर देखने पर स्वस्थावस्था में पलकोंके भीतर का हिस्सा चिकना, समान सतह वाला और सहज रक्ताभ प्रतीत होता है। यदि अधिक निस्तेज प्रतीत हो तो रोगी को पाण्डु रोग या रक्त की निर्बलता है, ऐसा माना जाता है। यदि सूक्ष्म-सूक्ष्म दाने प्रतीत हों तो रोहे दानेदार नेत्र श्लेष्मावरण का दाह-शोथ अथवा वसन्त ऋतु में होने वाला कण्डूमय नेत्र श्लेष्मावरण का दाह-शोथ, इनमेंसे कोई उपस्थित है, ऐसा मानना चाहिये। इन तीनों विकारों का निदान उन रोगोंके वर्णनमें अगले प्रकरण में दिया जायगा।

यदि लाली विशेष परिमाणमें प्रतीत हो और बीच-बीचमें श्वेताभ पंक्तियाँ जैसा भास हो तो पहले रोहे हुए होंगे और मिट गये होंगे, ऐसी कल्पना होती है।

यदि पलकों में बहुत शोथ आया हो तो शोथ एक ओर है या दोनों ओरके पलकों में, यह देखना चाहिये। यह शोथ नेत्रके प्रदाहके हेतुसे होता है। अथवा शरीरके अन्य भागोंके रोग, जैसे कि वृक्कप्रदाह या हृदयरोगके हेतुसे भी आता है। यदि शोथ प्रातःकाल को प्रतीत हो और फिर शनैः-शनैः कम होता जाय तो रक्ताभिसरण की न्यूनतासे है, ऐसा समझना चाहिये। शोथ में अंगुली से दबानेपर गड्ढा न हो तो शोथ श्लीपद (Elephantiasis) के हेतुसे अथवा घनशोथ (Myxoedema) रोगसे हो सकता है। कभी मस्तिष्कके भीतर अवस्थित मुख्य शिरामें रक्त जम जानेसे ही प्रतीत होता है। पलकमें गुहाँजनी हो तो भी शोथ आजाता है।

कितनेक समय पलकों की धारा अनियमित प्रतीत होती है। यह स्थिति विशेषतः परवालके लिये की हुई शस्त्रक्रियाके हेतुसे होती है।

पलकों की धारामें यदि खुजली आती हो, तो उस स्थान पर सूक्ष्म-सूक्ष्म सफेद दाने प्रतीत होते हैं या नहीं, यह देखना चाहिये। यदि ऐसे दाने प्रतीत हों, तो बरुनीके बालोंके मूलमें अवस्थित जुओं (Lice) के अण्डे हैं, ऐसा समझना चाहिये।

पलकोंकी परीक्षा कर लेनेके पश्चात् अश्रुवाहक अवयवों की जाँच करनी चाहिये। प्रारम्भमें नेत्रमेंसे गिरने वाले जलका अवलोकन करें। यदि जलस्राव अधिक हो तो उसकी धारा गालके ऊपर और नेत्रके निम्न पलकके नीचेके भागमें बहती हुई प्रतीत होगी। इतना ही नहीं, बल्कि रोगी को बारबार रूमाल या कपड़ेके टुकड़ेसे नेत्रों को पोंछना पड़ता होगा।

अश्रु की स्थिति देखने के पश्चात् अश्रु द्वारों को देखें। इन छिद्रों को देखनेके लिये ऊपर और नीचेके पलकों को कुछ उलटना पड़ेगा। तत्पश्चात् नेत्रमेंसे नाकमें अश्रु जानेका मार्ग खुला है या नहीं, इसको देखने के लिये नेत्रमें फ्ल्यूओरिसिन (Fluorescein) या मक्युरोक्रोम (Mercurochrome) के बूंद डालें। यदि अश्रु जानेका मार्ग खुला अर्थात् स्वस्थावस्था में होगा तो फ्ल्यूओरिसन डालनेपर पीला रंग का और मक्युरोक्रोम डालने पर रक्ताभ प्रवाही नेत्रमेंसे निकलता हुआ प्रतीत होगा। यदि ऐसा स्राव न हो तो रोगी को रूमाल नाकके मुखके आगे रख कर छींकने को कहें या जिस ओर की आँख में औषध डाली हो, उस ओरके नाकके द्वार को मुक्त रख दूसरे नासापुट को बन्दकर नासापुटमेंसे बलपूर्वक श्लेष्म निकालने का प्रयत्न करने की सूचना करें। यदि बिल्कुल रंग प्रतीत न हो तो समझना चाहिये कि उस ओर का अश्रु जाने का मार्ग बन्द होगया है। इस सम्बन्ध में विशेष निर्णय करनेके लिये पिचकारी द्वारा जल डालकर देखें कि, वह नेत्रके अश्रु द्वार में से नाक में या कण्ठ में जाता है या नहीं? यह जानना आवश्यक है।

नेत्रके भीतर एनिथेइन या कोकेन या अन्य चेतनाहर औषधके बूंद बनाकर उसके साथ एड्रिनलिन (Adrenalin) क्लोराइडके एक-दो बूंद मिलाकर उसके बूंद नेत्रके भीतर ३-३ मिनटके अन्तर पर ३ बार डालें। ऐसा करने पर अश्रु द्वार, कितनेक अंशमें अश्रु वाशय तथा उसमें आनेवाली कितनीक नलिकाएं चेतना रहित हो जायँगी। जिससे इसकी परीक्षा करनेमें रोगी को किसी भी जाति की पीड़ा नहीं होगी। इस परीक्षाके लिये मुख्य २ शस्त्रों की आवश्यकता है। १. अश्रु द्वार प्रसारक नली (Canaliculus dilator) देखो चित्र नं० १२; २. दो क्युबिक सेण्टीमीटर (C. C.) जल रह

सके ऐसी काँच की पिचकारी और उसमें आ सके ऐसी पोली नोंक रहित आर (Canula.) देखो चित्र नं० १३।

रोगीके नेत्र चेतना हीन होगये हैं ऐसा निश्चय कर नेत्रको किसी भी प्रकारके जन्तुघ्न (Antiseptic) प्रवाही जैसा कि हाइड्रार्जिरी परक्लोराइड (H. P. lotion) या सायानाइड (Cyanide) का १-५००० के प्रवाहीसे धो देवें। एक मनुष्य नेत्रपर विद्युत दीपकसे प्रकाश डाले। इस प्रकाशसे निम्न पलकके भीतरके सिरे अवस्थित अश्रु द्वार स्पष्ट प्रतीत होगा। इस छिद्र में अश्रु द्वार प्रसारक नलीके सूक्ष्म सिरे को प्रवेश करावें। यह सिरा शुण्डाकार अर्थात् सिरे पर बहुत पतला और ऊपर की ओर क्रमशः मोटा होता है। इस नलिकासे अश्रु द्वार को कुछ चौड़ा करें। इस क्रियाके होजावे पर नली को एक ओर रखदें। फिर कन्युला सह पिचकारी को उबाले हुए स्वच्छ जलसे भर अश्र द्वार में डालकर धीरे-धीरे भीतर प्रवेश करावें। जब कन्युला अश्र्वाशय में प्रवेशित हो जाय, तब शनैः-शनैः पिचकारीमें रहे हुए जल को डालें। यदि अश्रु मार्ग खुला होगा तो जल का प्रवेश सरलतासे हो जायगा। फिर रोगी कहेगा कि कण्ठ में जल आगया। यदि जल सरलता से न जाय, तो सूक्ष्मतासे निरीक्षण करने पर नेत्रवैद्य को प्रतीत होगा कि ऊपरके पलकके भीतरके सिरे पर अवस्थित ऊपरके अश्रु द्वारमें से जल धारा रूपसे बाहर आता है। ऐसा देखनेमें आवे तो समझना चाहिये कि, किसी भी कारणसे अश्र्वाशय का निम्नमार्ग बन्द होगया है। नेत्रके भीतरके कोण में नासिकाके भागमें जहाँ अश्र्वाशय अवस्थित है, वहाँ अंगुलीसे धीरे हाथ से दबावें। यदि अश्र्वाशय में पूय या चिपचिपा प्रवाही संग्रहीत होगया होगा, तो पूय निम्न अश्र द्वार में से बाहर निकलता हुआ प्रतीत होगा। यह स्थिति देखने में आवे तो अश्र्वाशयका प्रदाह है, ऐसा निदान करें। अश्र्वाशयका प्रदाह हो या निम्न मार्ग का अवरोध हो, तो नेत्रगोलकके ऊपर किसी भी प्रकार की शस्त्रक्रिया नहीं करनी चाहिये। अन्यथा नेत्रगोलक पक जायगा। फिर रोगी को आजीवन नेत्रनाशरूप हानि उठानी पड़ेगी।

यदि नेत्रके भीतरके कोण में दबाने पर रोगी को दर्द हो और कुछ रक्ताभयुक्त स्फीति प्रतीत हो तो अश्र्वाशयके तीक्ष्ण प्रदाह का प्रारम्भ होता है; ऐसा समझना चाहिये। यदि यह भाग अधिक स्फीत और ग्रन्थिमय भासे और ये गाँठ नरम हो, और दबाने पर रोगी को असह्य व्यथा हो तो अश्र्वाशयके तीक्ष्ण प्रदाहने विद्रधि रूप धारण कर लिया है, ऐसा निश्चित होता है। यदि उसी भाग में घाव भर गया हो, ऐसा देखने में आवे

तो अश्रुवाशय के ऊपर शस्त्रक्रिया की गई है या प्रदाह पक, फूट कर मिट गया है, ऐसा समझना चाहिये।

इस परीक्षा को पूर्ण करनेके पश्चात नेत्र श्लेष्मावरण की परीक्षा प्रारम्भ करनी चाहिये। यह परीक्षण कैसे करना, क्या देखना चाहिये, आदि बातें सामान्य रूपसे प्रकरणके प्रारम्भ में दी हैं; फिर भी यहाँ विशेष वर्णन करना आवश्यक है। एक महत्त्व की सूचना यह है कि यदि रोगी की आँख सरलतासे खुल न सके, तो नेत्रवैद्य को बलप्रयोग बिल्कुल नहीं करना चाहिये। कारण, नेत्रके भीतर यदि शुक्लमण्डल में क्षत होगा और वह आगे बढ़ा होगा, तो कितनीक बार पलक को बलपूर्वक खोलने का प्रयत्न करने पर भीतर की पुतली फूट जाने का और रोगीके नेत्रको आजीवन हानि पहुँचने का भय रहता है। इसलिये किसी भी संयोगमें नेत्रों को खोलने या पलकों को उलटनेमें अधिक बल नहीं लगाना चाहिये। यदि नेत्र न खुल सके तो पलकों को ऊँचा करनेके लिये एक विशेष यन्त्र आता है, जिसे डिस्मार का नेत्रच्छद उत्थापक यन्त्र (Desmaer's lid elevator) (चित्र नं. १४) कहते हैं। इसका प्रवेश करानेके लिये ऊपरके पलक की धारा को हल्के हाथसे पकड़ें। फिर अति धीरेसे ऊपर के पलकके नीचे यन्त्र को प्रवेश करावें; ऊपर के पलक को ऊँचा करें; तथा उसी समय निम्न पलक को अंगुष्ठसे नीचा करें। ऐसा करने पर नेत्रके भीतर का भाग प्रतीत होजायगा। सबसे पहले नेत्रमेंसे जलसदृश चिपचिपा या पूय सदृश गाढ़ा पदार्थ निकलता है या नहीं; यह देखना चाहिये। फिर पुतलीके ऊपरके नेत्रश्लेष्मावरण की अच्छी तरह जाँच करें। वह उभरा हुआ है या नहीं? उसमें किसी स्थान पर लाल रंगके दाग प्रतीत होते हैं या नहीं? समग्र नेत्रश्लेष्मावरण लाल होगया या नहीं? किसी स्थान पर टूटा हुआ प्रतीत होता है या नहीं? आदि विकृतियों का ठीक से अवलोकन करना चाहिये। कुछ क्षत-सा प्रतीत हो तो उसकी भी यादी करनी चाहिये। फिर पलकों को उलट कर देखें। उसमें किन-किन विकृतियों की सभावना है; यह पहले लिखा गया है। जहाँ पलक और नेत्रगोलक का संगम होता है और जिस भाग को ऊर्ध्व और निम्न संगम पुट (वर्त्मकोण Fornix) कहते हैं; उनकी परीक्षा लक्ष्य देकर करनी चाहिये। कारण, नेत्रमें जो कुछ बाह्य पदार्थ गिर जाता है, वह इस स्थान में रह जाता है। यदि पलकके भीतरके हिस्सेमें कुछ श्वेताभ गोलाकार दाग देखनेमें आवें और पलकके बाह्य भागमें ग्रन्थि सदृश प्रतीत हो तो वह नेत्रच्छदार्बुद (Meibomian Cyst or Chalazion) है, ऐसा जानें। यदि पलकों की धाराके ऊपर बरुनी (बालों) के मूल में फुन्सी जैसी प्रतीत हो, उसे

अंजननामिका (गुहेरी Hordeolum) कहते हैं। शुक्ल मण्डल की धार वाले भागमें कुछ फुन्सी जैसी विकृति या स्फीति है या नहीं देखना चाहिये। फुन्सी जैसी स्थित रक्ताभ पिटिका (Phlyctene) होने पर या क्षय और उपदंश जनित नेत्ररोग में प्रतीत होती है। स्फीति प्रायः वसन्त ऋतुमें होने वाले नेत्रश्लेष्मावरणके दाह-शोथमें देखनेमें आती है। दो पलक सामान्य खुले होने पर नेत्र की पुतली का जो भाग दृष्टिगोचर हो, उसमें नेत्रश्लेष्मावरण निस्तेज और सिलवट युक्त भासे तो रोगी को बहुधा रतौंधी होगी। इस स्थिति को नेत्रश्लेष्मावरण की शुष्कता (Xerosis) कहते हैं। उसी भागमें जो सहज पीताभ दाग दीखे तो उसे नेत्रश्लेष्मावरण का दोष मानें। उसे वार्धक्यजनित पीत चिह्न (Pingueoula) कहते हैं। कितनीक बार नेत्रके भीतरके हिस्सेमें या क्वचित् बाहरके हिस्सेमें जैसा कि श्लेष्मावरण की वृद्धि होती हो और वह बिल्कुल शुक्लमण्डल की परिधि तक पहुँचता हो तो उस स्थिति को वेल (Pterygium) कहते हैं। उसके लिये नेत्र की पुतली ठीक मध्यमें है या एक ओर, बाहर, भीतर, ऊपर या नीचे हट गई है, यह देखना चाहिये। यदि वार्धक्यावस्थामें पुतली हटी हुई भासेगी तो रोगी को सब वस्तु दो-दो प्रतीत होंगी। यदि छोटी आयुमें ऐसी विकृति हुई हो, तो दो-दो वस्तु नहीं भासेंगी; किन्तु जिस नेत्रकी पुतली एक ओर हट गई होगी, उस नेत्र की दृष्टि दूसरे नेत्र की अपेक्षा कम प्रतीत होगी। इस स्थितिको टेढ़े नेत्र (Squint) कहते हैं।

१. शुक्लमण्डल की परीक्षा।

परीक्षणार्थ सूचना—इस परीक्षणार्थ छोटे बच्चों को ठीकसे पकड़ना पड़ेगा, अन्यथा परीक्षा नहीं हो सकेगी। इस परीक्षामें रोगी को बराबर स्थिर रखने का और पुतली पर अधिक दबाव न होजाय, इ। बातों का विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। विशेषतः जिन बच्चोंके नेत्र बहुत दिनोंसे बन्द हों, उनके नेत्रके भीतर शुक्लमण्डलमें व्रण होता है। फिर विशेष दबाव होजाय, तो वह व्रण फूटकर नेत्र सदाके लिये चला जाता है। ऐसे रोगियों में माताके उजड्डपनसे हमारे समक्षमें ही बच्चों की आँख फूट जानेके उदाहरण मिले हैं। रोगी की आँख को दिखाने के लिये उसे उसकी माता डाक्टरके पास लाती है। डाक्टर नेत्र का शोथ देखकर पलक को ऊँचा करने का यन्त्र आदि मंगाते हैं। इतने में ही बच्चे की माता "मैं अभी खोल देती हूँ" ऐसा कह कर ऊपर के और नीचेके पलक को खोलनेके लिये प्रयत्न करती है। उस क्रिया में बिना हेतु पुतलीपर अधिकतर दबाव सहज

आ जाता है। इससे नेत्रकी पुतली फूटकर उसमें से पूय और दृष्टिमणि बाहर निकल आते हैं। अतः बालकोंकी नेत्रपरीक्षाके लिये उत्तम मार्ग यह है कि, बालक को उसकी माता या अपने सहायक (Assistant) की गोदमें सुलावें। फिर माता या सहायक को अपने बाँये हाथसे बालकके दोनों पैर और दाहिने हाथसे दोनों हाथ और शरीर को पकड़ रखने की सूचना करें। पश्चात् डाक्टर बालकके शिरके पास बैठें और अपने दोनों घुटनेके बीच बालक का शिर साधारण बलसे पकड़ें। घुटनेके ऊपर एक स्वच्छ वस्त्र रख लेनेसे डाक्टरके वस्त्र खराब नहीं होंगे। इस तरह दोनों घुटनोंके बीच शिर को पकड़नेसे बालक अपना शिर चला नहीं सकता। इससे नेत्र की परीक्षा करने या नेत्रमें औषध लगाना अति सरल हो जाता है।

शुक्लमण्डलके परीक्षोपयोगी यन्त्र—१. आकृति १५ में दर्शाया हुआ नं० + १३ से + २० तकके बाह्यगोल (उन्नतोदर Convex) काँच; २. आकृति १६ में दर्शाया हुआ शुक्लमण्डल का दूरदर्शक यन्त्र (Corneal loupe); ३. आकृति १७ में दर्शाया हुआ शुक्लमण्डल दर्शक काँच (Corneal lans; ४. आकृति १८ में दर्शाया हुआ शुक्ल मण्डल दर्शक अणुवीक्षण यन्त्र (Corneal microscope with slit lamp).

उन्नतोदर-बहिर्गोल Convex)काँच, यह केवल साधारण बाह्य गोलकाँच को एक दस्ते में बैठाया होता है। उससे विद्युद्दीपक या जहाँ पर विद्युद्दीपक न हो, वहाँ अन्य किसी जातिके अच्छा प्रकाश देनेवाले दीपक द्वारा उसके प्रकाश का शुक्ल मण्डल पर एकीकरण कर शुक्ल मण्डल की परीक्षा करें।

चित्र नं० १६

दूरदर्शक यन्त्र और शुक्ल मण्डल दर्शक काँचसे शुक्लमण्डल १०-१२ गुना बड़ा प्रतीत होता है और उसमें जो कुछ रोग हो वह स्पष्ट विदित हो जाता है। अणुवीक्षण में ऐसा प्रबंध किया हुआ होता है कि शुक्ल मण्डल और पुतलीके ऊपर अतिशय तेजस्वी प्रकाश डाल सकते हैं तथा दोनों नेत्रसे उपयोग हो सके ऐसे अणु-

वीक्षण यन्त्र से शुक्ल मण्डल, तारामण्डल, दृष्टिमणि आदि भाग अति स्पष्ट और बड़े प्रतीत होते हैं।

शुक्लमण्डल की परीक्षा विधि—यदि समग्र शुक्ल मण्डल स्वच्छ, तेजस्वी, पारदर्शक, किसी भी स्थानमें दाग रहित और धमनियोंसे मुक्त भासे तो बिल्कुल स्वस्थ है, ऐसा माना जायगा। शुक्ल मण्डल का नाप योग्य है या न्यूनाधिक हुआ है यह देखना चाहिये। शुक्ल मण्डल यदि छोटा हुआ होगा तो उस नेत्र की पुतली भी छोटी होगी। उस स्थिति को लघु नेत्र (Microphthalmus) संज्ञा दी है। यदि वह बड़ा होगया होगा तो छोटी अवस्थामें होने वाले नेत्र जलोदर की प्रथमावस्था (Buphthalmus) या नेत्रके भीतर होने वाली ग्रन्थियों के हेतुसे होता है। शुक्लमण्डल की पारदर्शकता देखनेके लिये खिड़की की छाया उस पर डालें। यदि छाया ठीक गिरेगी, तो शुक्लमण्डल का समग्र भाग समान पारदर्शक है, ऐसा माना जायगा। यदि एक ओर स्वच्छ और दूसरी ओर मंद छाया प्रतीत हो तो वह भाग स्वस्थ नहीं है, ऐसा मानें। यदि खिड़की की शलाकाएं सरल प्रतीत होने के बदलेमें किसी स्थान में मुड़ी हुई भासें, तो शुक्लमण्डल का वह भाग ठीक समान नहीं मुड़ा, ऐसा समझें। शुक्लमण्डल के आकार को भी ठीक से देखें। शुण्डाकार (Keratoconus) होनेपर शुक्ल मण्डलके बीच का हिस्सा नोक रूपमें बढ़ा हुआ देखनेमें आवेगा। इस परीक्षा के पश्चात् कपड़ेके टुकड़े या रूई की बत्तीसे शुक्ल मण्डलकी चेतना की जाँच करें। यदि चेतना शक्ति योग्य होगी, तो किंचित् स्पर्श होने पर नेत्र की पुतली सरक जायगी। यदि चेतनाशक्ति कम होगी तो शलाका लगने पर पुतली चलित नहीं होगी।

केवल नेत्रदृष्टिसे या उपर्युक्त यन्त्रों द्वारा शुक्लमण्डल की परीक्षा करने पर उसमें गड्ढे या सूक्ष्म क्षत प्रतीत हों, तो शुक्लमण्डल में व्रण (Corneal Ulcers) है, ऐसा माना जाता है। इस व्रण या क्षत का निदान विशेष स्पष्ट करनेके लिये नेत्रके भीतर फ्ल्युओरेसीन* के प्रवाही का बूंद डालें। बूंद डालनेके २ मिनट पश्चात् नेत्रको बोरिक एसिड के प्रवाही से धो देवें। (१ औंस उबाले हुए जलमें ५ ग्रेन बोरिक एसिड मिलावें) यदि शुक्ल मण्डलमें व्रण होगा तो वह भाग नीला हो जायगा। जो भाग स्वस्थ होगा तो सब पर रंग नहीं चढ़ेगा। यदि व्रण या क्षत प्रतीत हो तो वह किस जाति का है यह देखें। यदि शुक्लमण्डलके ऊपरके हिस्सेमें से सूक्ष्म

* फ्ल्युओरेसीन ३ ग्रेन और सोडाबाई कार्बोनेट ५ ग्रेन को २॥ ड्राम बाष्प जल (डिस्टिल्ड वाटर) में मिलाकर तैयार किया जाता है।

धमनियाँ बीचके भाग की ओर उपस्थित हों, वह भाग अपारदर्शक प्रतीत हो, नेत्रके भीतर रोहे देखने में आवें और शुक्लमण्डलमें प्रतीत होने वाले व्रण या क्षत अपारदर्शक भागमें हो तो सफेदी (कृत्रिम कला) जनित व्रण (Pannus ulcers) माना जाता है। यदि ऐसी कला देखनेमें न आवे किन्तु रोहे दृष्टिगोचर हों और व्रण या क्षत शुक्लमण्डलके किसी भी भागमें प्रतीत हो तो पोथकी जन्य व्रण (Trachoma ulcers)मानें। इसी अनुसार शुक्लमण्डलके अलग-अलग भागों में अलग-अलग जातिके व्रण प्रतीत हों, तो उनमें से किस जातिका व्रण है, वह शुक्लमण्डलके व्रण विवेचन का अध्ययन करने पर विदित होगा।

यदि शुक्लमण्डलमें व्रण न हो, किन्तु छोटा बड़ा श्वेताभ दाग हो और उसके हेतुसे उस स्थान पर शुक्लमण्डल अपारदर्शक हुआ है, ऐसा विदित हो तो वह फूला (Corneal opacity) है, ऐसा समझें। उस फूलाके नीचे यदि तारामण्डल का परदा किञ्चित् भी चिपका हुआ प्रतीत हो तो वह तारामण्डलसे अनुबन्धित फूला (Adherent leucoma) माना जाता है। यदि शुक्ल मण्डलके ऊपर कृष्णाभ छोटा या बड़ा प्रतीत हो, तो भीतरका तारामण्डलका पर्दा उस स्थानमें शुक्ल मण्डलसे संलग्न है या नहीं, यह देखना चाहिये। यदि चिपका हुआ प्रतीत हो, तो शुक्ल मण्डल का व्रण फूटकर उसमेंसे तारामण्डल का पर्दा बाहर निकल आया है, फूटे हुए भाग में भर गया है तथा चिपक गया है, ऐसा मानना चाहिये। यदि शुक्लमण्डल विशेषतः ऊपरके भागमें किंचित् अपारदर्शक भासे और उस पर सूक्ष्म-सूक्ष्म धमनियाँ ऊपर की ओर से आती हुई देखने में आवें तो कृत्रिम कला (Pannus) उत्पन्न हुई है, ऐसा माना जाता है। काँचपर बाष्प लगने पर जैसा वह अपारदर्शक होजाता है, उस तरह यदि समस्त शुक्लमण्डल अपारदर्शक हो और उसमें गहरी धमनियाँ प्रतीत हों तो शुक्लमण्डलके गर्भभाग का दाह-शोथ (Intersititial Keratitis) माना जाता है। वे धमनियाँ यदि केवल नेत्रदृष्टि से प्रतीत न हों, तो अणुवीक्षण यन्त्रसे देखने पर अवश्य प्रतीत होती हैं। यदि शुक्लमण्डल बिल्कुल अपारदर्शक, शुष्क, पतले चमड़े जैसा और निस्तेज हो तथा उसके साथ नेत्रश्लेष्मावरण भी तेजोहीन, खुरदरा, सिलवट युक्त प्रतीत हो, तो नेत्रमें शुक्लमण्डल की शुष्कता (xerosis) समझें। यदि अँधेरे वाले कमरे में शुक्लमण्डल पर दीपक का प्रकाश डालकर काँच से केन्द्रित किया जाय और दूरवीक्षण यन्त्र या काँचसे सूक्ष्म अवलोकन किया जाय, तथा शुक्लमण्डलके पिछले भागमें बहुसंख्य सूक्ष्म-सूक्ष्म दाने प्रतीत हों तो दानेदार

शुक्लमण्डल का प्रदाह (Keratitis Punctata) समझें। यह स्थिति बहुधा तारामण्डल या तन्तुमय समूह के प्रदाह में उपस्थित होती है। यदि समस्त शुक्लमण्डल का क्षोथ हो गया हो और उस स्थान पर समस्त भागमें या थोड़े भागमें पुतली निकल आई है, ऐसा देखनेमें आवे तो शुक्ल मण्डल का सम्पूर्ण या अपूर्ण निःसरण (Total or partial Staphyloma) है, ऐसा निदान करें।

२. जलमय रसके पूर्वखण्ड की परीक्षा।

शुक्लमण्डल की परीक्षा हो जाने पर जलमय रसके पूर्वखण्ड की जाँच करें। मोटे बहिर्गोल काँचसे यदि बत्ती का प्रकाश नेत्रपर डालनेमें आवे, तो यह परीक्षा अधिक सुगम हो जाती है। इस खण्ड की गहराई कितनी है, यह पहले देखना चाहिये। यदि गहराई कम हुई हो, अर्थात् पीछे का तारामण्डल का पर्दा आगे उभड़ा हुआ प्रतीत हो तो यह नेत्रमें नीला मोतिया (अधिमंथ) होने का संशय उत्पन्न कराता है। इस खण्डके भीतर रक्त या पूय होगा, तो सरलतासे अवगत हो सकेगा। यदि गहराई अधिक हो जाने का भास हो, तो दृष्टिमणि स्वस्थानसे भ्रष्ट हुई है या नहीं, इसका निर्णय करें। इस खण्डके भीतर रक्त या पूय थोड़ा होगा, तो वह खण्डके नीचेके भाग में प्रतीत होगा। रक्त लाल रङ्गसे और पूय सफेद रङ्गसे अवगत हो जायगा। खण्डके भीतर कोई बाह्य पदार्थ होगा तो वह भी प्रतीत होगा। कितनीक बार दृष्टिमणि स्थान भ्रष्ट होकर जलमय रसके पूर्व खण्डमें आजाता है। फिर उसी हेतुसे खण्ड का लगभग समग्र भाग सफेद अथवा मैले सफेद रङ्गके गोल पदार्थसे भरा हुआ देखनेमें आता है। कितनीक बार यह मैला सफेद पदार्थ दृष्टिमणि का बीज है, अथवा तारा-मण्डल या तन्तुमय समूह के प्रदाहके हेतुसे उत्पन्न स्राव है, यह पहिचानना कठिन हो जाता है। खण्डके भीतर रक्त होगा तो प्रायः वह जमकर चिपक जाता है। इससे रोगी का शिर ऊँचा नीचा रक्खा जायगा, तब भी रक्त अपना स्थान नहीं छोड़ेगा; किन्तु पूयके लिये यह नियम नहीं है। जब रोगी बैठा हो या खड़ा हो, तब पूर्व खण्डके नीचेके हिस्से में पूय पड़ा हुआ प्रतीत होता है और उसके ऊपरके हिस्सेसे एक श्वेत पंक्ति बँध जाती है। इस तरह जलमय रसके पूर्वखण्डमें पड़े हुए पूय की स्थिति को डाक्टरीमें हाइपो-पिओन (Hypopyon) संज्ञा दी है। कितनीक बार नेत्रके भीतरके शोथ या तारामण्डलके पर्दाके प्रदाहके हेतुसे जलमय रस स्वच्छ रहनेके बदलेमें अस्वच्छ मलिन होता है। जब ऐसा प्रतीत हो तब नेत्रके भीतर शोथ है,

ऐसा समझना चाहिये। ऐसे शोथ में शुक्लमण्डल के इर्द-गिर्द की शिराएँ अच्छी तरह फूल जाती हैं। इस स्थिति को डाक्टरीमें सिलअरी इञ्जेक्शन (Ciliary injection) संज्ञा दी है। इससे नेत्रके भीतर का शोथ जाना जाता है। इस सब परीक्षाके अतिरिक्त जलमय रसके पूर्वखण्डके कोण के भाग का सूक्ष्म अवलोकन करने पर नीला मोतियाके रोगके सम्बन्धमें अति उपयोगी परिचय मिल जाता है। यह परीक्षा बाह्य गोल काँचसे प्रकाश डालनेपर नेत्रदर्शक यन्त्र (Ophthalmoscope), नेत्र अणुवीक्षण यन्त्र (Corneal microscope) या कोणदर्शक यन्त्र (Gonioscope) से हो सकती है। कितनीक बार तारामण्डलके पर्दा की परिधि का भाग शुक्लमण्डलके भीतर की परिधि के भाग से चिपक जाता है, तब वह मात्र उक्त यन्त्रसे ही देखनेमें आता है।

३. तारामण्डलकी परीक्षा।

जलमय रसके पूर्व खण्ड की परीक्षा पूर्ण करने पर तारामण्डल और कनीनिका की जाँच करनी चाहिये। पहले प्रकरणमें लिखे अनुसार तारामण्डल का रङ्ग प्रायः काला होता है। केवल गोरे लोग और कितनेक भूरे लोगों में उसका रङ्ग हल्का काला या भूरा होता है। उस रङ्गमें परिवर्त्तन हुआ है या नहीं, यह देखें। यह परिवर्त्तन बांयी और दहिनी, दोनों पुतलियों में समान है या एक ओरमें ही हुआ है, यह जाँच करें। कदाचित् जन्मसे ही एक ओर की पुतलीमें अवस्थित तारामण्डल का रङ्ग दूसरी ओर की पुतलीमें रहे हुए तारामण्डल की अपेक्षा अलग होता है। किन्तु ऐसा परिवर्त्तन प्रायः शोथके हेतुसे ही हुआ हो, ऐसा प्रतीत होता है। यदि रङ्गमें परिवर्त्तन रक्ताभ हो, तो तारामण्डल का शोथ है, ऐसा समझें। किन्तु भूरी आँखोंमें शोथके हेतुसे जो परिवर्त्तन होता है, वह रक्ताभ न होते हुए कुछ नीलाभ होता है। शोथमें प्रायः पुतलीके किनारेमें भी अन्तर हो जाता है। वह पुतली की परीक्षा का वर्णन करने पर दर्शाया जायगा। यदि समग्र तारामण्डलके रङ्गमें अन्तर प्रतीत न हो किन्तु तारामण्डलके ऊपर काले रङ्ग की एक या अधिक सूक्ष्म पिटिका देखने में आवें तो क्षय की ग्रन्थि, उपदंश जन्य ग्रन्थि या तारामण्डल में उत्पन्न होने वाली ग्रन्थियोंमें से एक है, ऐसा माना जाता है। रक्त तथा समग्र शरीर की जाँच करने पर यह ग्रन्थि या ग्रन्थियाँ किस जातिकी हैं यह भी विदित हो जाता है। तारामण्डल का रङ्ग देखनेके पश्चात् वह स्वच्छ है या नहीं, एवं उसकी जातिमें कुछ अन्तर हुआ है या नहीं; यह देखें। यदि शोथ हो, तो जाति में

अस्वच्छता और कितनीक वार जमा हुआ स्राव देखने में आता है। तारामण्डल का पर्दा आगे आया है या पीछे हट गया है, वह भी देखें। नीला मोतिया जैसा रोग जिसमें नेत्रान्तर दबाव बढ़ा हो, उसमें तारामण्डल आगे आजाता है।

४. कनीनिकाकी परीक्षा।

पुतली गोल है या नहीं, उसका किनारा ठीक समान है या नहीं? दोनों नेत्र की पुतली समान हैं या नहीं? पुतली आकुंचित हुई है या प्रसारित हुई है? प्रसारित हुई हो तो खड़ी चौड़ी हुई है या आड़ी चौड़ी हुई है, यह देखना चाहिये। यदि किसी भी स्थान से पुतली का किनारा दृष्टिमणि की पर्त को चिपका हुआ होगा तो वह गोल दिखनेके स्थान पर विषम प्रतीत होगा। इस बात का निर्णय करने के लिये होमेट्रोपीन (Homatropine) या एट्रोपीन (Atropine) जैसी पुतली को प्रसारित करने की औषधके बूंद डालने की आवश्यकता रहती है। जब ऐसी औषधसे पुतली विस्तृत होती है, तब जो भाग चिपका हुआ हो, वह प्रसारित नहीं होता। इससे औषध डालनेके पहले जो पुतली गोल प्रतीत होती हो, वह फिर विषम हो जाती है। इस तरह पुतलीका किनारा चिपक जानेका कारण एक ही होता है। वह यह है कि कुछ समय के पहले तारामण्डल का शोथ हुआ होगा। यदि होमेट्रोपीन या एट्रोपीनके बूंद डालने पर पुतली कुछ भी प्रसारित नहीं होती, तो पुतली का समग्र किनारा दृढ़ संलग्न होगया है, ऐसा समझें। ऐसी स्थिति प्रतीत हो तब १% अर्थात् १ औंस बाष्प जलमें ५ ग्रेन एट्रोपीन मिलाकर तैयार किये हुए प्रवाही की २ बूंद और एड्रीनलीन क्लोराइड (Adrenalin Chloride) के प्रवाही (१-१०००) की १ बूंद मिलाकर उसे सूचिका द्वारा नेत्र श्लेष्मावरणके भीतर प्रवेश करावें। जहाँ एट्रोपीन से कार्य सिद्ध न हुआ हो वहाँ पर इस मिश्रणसे सफलता मिल जाती है। पुतली दोनों ओर समान है या नहीं, वह भी ठीक से देखें। कभी किसी भी कारण बिना जन्म से ही दोनों पुतली समान नहीं होती। पुतली संकुचित प्रतीत हो और रोगी अतिवृद्ध न हो, तो पुतली का संकोच होने का हेतु अफीम या अन्य कोई अफीम या अन्य कोई अफीम के सत्वप्रधान औषध का व्यसन होना चाहिये। वृद्धावस्था में कितनीक वार अफीमके उपयोग बिना भी पुतली का संकोच होजाता है। उसका कारण प्रायः वृद्धावस्थाजनित धमनियों में और उनमें भी विशेषतः महामातृका धमनी (Common Carotid artery) की दीवार में क्षार का संग्रह होकर धमनी

की दीवार कठोर होना। यदि पुतली चौड़ी होगई हो और जाँच करने पर नेत्र में किसी भी प्रकार की औषध डालने में न आई हो, ऐसा निश्चय हो तो पुतली का चौड़ापन खड़ी रेखा में हुआ है या आड़ी रेखा में, यह देखें। यदि खड़ी रेखा में पुतली चौड़ी हुई हो तो प्रायः उस नेत्रमें नीला मोतिया का प्रारंभ होने का संदेह होता है। इस बातके विशेष निर्णयार्थ जो-जो परीक्षा करनी चाहिये वह उस रोगके प्रकरण में यथा स्थान लिखा जायगा।

अब कनीनिका पर प्रकाश डालने परस और मीप देखनेसे उसका संकोच होता है या नहीं, इसकी परीक्षा करनी चाहिये। इन दोनों प्रकार की परीक्षा पृथक्-पृथक् करनी चाहिये। इनमेंसे प्रकाशसे पुतलीके संकोच की परीक्षा तीन रीतिसे होती है। भारत में वर्षा ऋतुके अतिरिक्त ९ मास सूर्य का प्रकाश दिन के समयमें जहाँ बराबर मिल जाता है, वहाँके लिये सरल रीति यह है कि रोगी को बड़ी शलाका से रहित खिड़की या दरवाजेके पास खड़ा रखवा कर या बैठा कर वैद्य को अपने हाथसे नेत्रपर गिरते हुए प्रकाश को रोकना अर्थात् रोगी के भ्रू और कनपटीके भाग पर हाथ इस तरह रखना चाहिये कि जिससे नेत्रपर गिरता हुआ प्रकाश कितनेक अंशमें कम होजाय। फिर वैद्य तुरन्त अपना हाथ उठा लेवे, जिससे प्रकाश पूर्णांश में नेत्र पर गिरे। ऐसा होने पर आरोग्य पुतली का तत्काल संकोच होता हुआ प्रतीत होता है। दूसरी रीति यह है कि अंधेरे वाले कमरेमें रोगी को कुर्सी या फिरने वाले स्टूल पर बैठा कर वैद्य सामनेके स्टूल या कुर्सी पर बैठे। यदि बांयी आँख की कनीनिका की परीक्षा करनी हो तो बिजली की बत्ती (विशेषतः नेत्रपरीक्षार्थ बत्ती आती है वह विशेष सुविधाजनक है) की योजना रोगी की कनपटी को बाँयी ओर करें। फिर +२० के बहिर्गोल काँचसे बत्ती का प्रकाश पुतली पर केन्द्रित करें। प्रकाश पुतली पर गिरने के साथ ही तत्काल उसका संकोच होने लगेगा बत्ती का प्रकाश एक ओर खेंच लेनेपर पुतली पुनः मूल स्थितिमें आ-

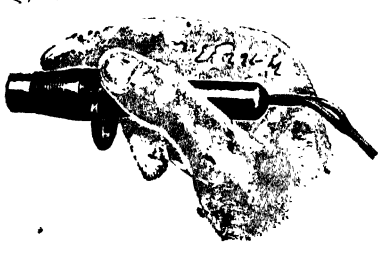

चित्र नं० १६
प्रकाशकेन्द्रक लघु दीपक (Hand slit lamp)

जायगी। वही परीक्षा स्लिट लेम्प (Slit lamp) से भी हो सकती है। जब पुतली का आकुंचन अतिकम होनेसे संकोच होता है या नहीं, यह निर्णय दुष्कर हो, तो नेत्र अणुवीक्षण यन्त्रके साथ जो स्लिट लेम्प आता है, उस से पुतली पर प्रकाश डालकर परीक्षा की जाती है। इस यन्त्रमें किञ्चित भी आंकुचन क्रिया होती हो तो अवश्य विदित होजाती है। यदि इस यन्त्रसे भी पुतलीके आकुञ्चन की प्रतीति न हो तो यह क्रिया नष्ट हुई है ऐसा निर्णित होता है। यदि दोनों नेत्र स्वस्थ हों, तो एक पुतली पर प्रकाश डालने पर दूसरी पुतलीका भी संकोच होता है। इस क्रिया को उभयधर्मि प्रतिक्रिया (Consensual reaction) संज्ञा दी है। इस क्रियाके होने का कारण यह है कि, एक नेत्रकी पुतली पर जब प्रकाश डाला जाता है, तब तारामण्डलमें अवस्थित तृतीय नाड़ीके सूक्ष्म तन्तु द्वारा मस्तिष्क गत नाड़ी केन्द्रस्थान, जो कनीनिका संकोचक मांस-पेशीपर शासन चलाता है, उसमें चेतना उत्पन्न होती है। उसी केन्द्रस्थानके पास उपस्थित अन्य ऐसा ही केन्द्रस्थान परस्पर मस्तिष्क प्रदेशमें ही सम्बन्ध रखने वाला होनेसे दोनों में एक साथ चेतना उत्पन्न होती है। इससे दोनों ओरके तारामण्डलमें अवस्थित कनीनिका संकोचक मांस-पेशियों का संकोच हो जाता है। फिर इसी हेतुसे दोनों पुतलियों का आकुंचन होता है। यदि इन पुतलियों का आकुंचन बिल्कुल न हो किन्तु उसके साथ पुतली किञ्चिन् या अधिक चौड़ी प्रतीत हो, तो नेत्रदर्पण, दर्शननाड़ी या दर्शनप्रबंध पर्यन्त का मस्तिष्कगत प्रदेश, जो दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखने वाला हो, उसकी विकृति मानी जाती है। दर्शनप्रबंधके ऊपरके मस्तिष्क गत प्रदेशक विकारसे पुतलीके संकोच का नाश नहीं होता, यह आगे समझाया जायगा। यदि पुतली का संकोच न हो, तथा प्रसारण भी न हो किंतु अनियमित हो तो तारामण्डल और कनीनिका दृष्टिमणि के पर्त्त को चिपके हुए हैं, ऐसा माना जाता है। इस विकृतिके निर्णयार्थ ऊपर लिखी हुई विधि अनुसार कनीनिका औषध डालकर चौड़ी करनी चाहिये। यह क्रिया जिसे कनीनिका की प्रकाश प्रतिक्रिया (Light reaction of pupil) कहते हैं, यह अति उपयोगी और महत्व की परीक्षा है। विशेषतः मोतीबिन्दु और ऐसे अन्य रोग, जिनमें नेत्रके भीतर का भाग प्रतीत नहीं हो सकता और दृष्टिके प्राप्त्यर्थ नेत्र पर शस्त्रक्रिया की जाती है, उनके लिये यह परीक्षा अति सहायक होती है। इतना ही नहीं, बल्कि नेत्र पर शस्त्र क्रिया करना या नहीं, इसके निर्णय का आधार विशेषतः इस परीक्षापर अवलम्बित है। फिर जिस तरह प्रकाश की प्रतिक्रियार्थ कनीनिका

की जाँच की जाती है, उस तरह नजदीक देखनेसे कनीनिका की जो प्रतिक्रिया होती है, उसकी परीक्षा करें। यह परीक्षा परीक्षाभवनमें होसकती है। इसके लिये रोगीको अंधकार वाले कमरेमें लेजाने की आवश्यकता नहीं है। रोगी को दूर देखने को कहें उस समय पुतली कुछ चौड़ी होगी। फिर वैद्य अपनी अंगुली को रोगी के नेत्रसे लगभग १० इंच दूर रखकर रोगी को उस ओर देखने को कहे। रोगी जब अपनी दृष्टि वैद्य की अंगुली की ओर डालेगा, तब पुतली तत्काल संकुचित होजाती है। इस क्रिया को एक केन्द्राभिमुख प्रतिक्रिया (Convergence reaction) कहते है। जिस नेत्रमें प्रकाश से पुतली का संकोच नहीं होता, किन्तु समीप देखने पर अर्थात् दोनों नेत्र की पुतली भीतर मुड़ने पर कनीनिका संकुचित होती है, उसे दो डाक्टरोंके नाम परसे आर्गिल-रोबर्टसन कनीनिका (Argyll Robertson pupil) संज्ञा दी हैं। यह चिह्न मस्तिष्क और सुषुम्णा काण्डके कितनेक रोगोंमें दृष्टिगोचर होता है। उससे ऐसे रोगोंके निदान में सहायता मिल जाती है। प्रकाशमें और समीप देखने पर जैसी कनीनिका आकुंचित होती है, उसके विपरीत कण्ठ की त्वचा को पकड़ने अथवा कुछ सुई या पिन लगाने पर पुतली प्रसारित होती है। इस स्थिति को व्यथाजन्य प्रतिक्रिया (Sensual reaction) कहते हैं।

५. दृष्टिमणि की परीक्षा।

तारामण्डलकी परीक्षा करनेके पश्चात् दृष्टिमणिका निरीक्षण करना चाहिये। सबके पहले नेत्रके भीतर दृष्टिमणि उपस्थित है या नहीं, यह जानना आवश्यक है। इस परीक्षाके लिये अंधकारमय कमरेमें रोगीको एक कुर्सी पर बैठा उसके समक्ष एक मोमबत्ती या जिस बत्तीकी ज्वाला (Flame) हो, उसे नेत्रके ठीक सामने और उसी सतह पर रक्खें। ऐसा करने पर ज्वालाकी तीन प्रतिमा नेत्रके भीतर प्रतीत होंगी। एक बड़ी, उसके पासमें छोटी और उसके पास उससे भी छोटी। इन तीनोंमें से पहली स्पष्ट और बड़ी प्रतीत होगी, वह सीधी भी दिखेगी। यह शुक्लमण्डल के ऊपर प्रकाशकी प्रतिमा है। दूसरी जो छोटी सीधी और कुछ कम स्पष्ट है, वह दृष्टिमणिके आगेके भागके ऊपर पड़नेवाले प्रकाशकी प्रतिमा है। तीसरी जो बिल्कुल छोटी और आधी मुड़ी हुई प्रतीत होगी, वह दृष्टिमणि के पीछेके भागमें पड़नेवाले प्रकाशकी प्रतिमा है। इन प्रतिमाओंको परकिंजे की प्रतिमा (Purkynje's images) संज्ञा दी है। यदि नेत्रमें दृष्टिमणि का अस्तित्व न हो तो नं० २ और ३ की प्रतिमाएँ प्रतीत नहीं होंगी।

यदि किसी भी हेतुसे दृष्टिमणि स्थानभ्रष्ट हुआ हो, अर्थात् कनीनिकाके मध्यमें वह न हो, तो तारामण्डल स्थिर होनेके बदलेमें दोलायमान प्रतीत होगा। यदि उपर्युक्त परीक्षाके परिणाममें ऐसा निर्णय हो कि दृष्टिमणि नेत्रमें है, तो फिर उसकी कैसी स्थिति है, यह जाँच करनी चाहिये। प्रायः दृष्टिमणिका बिल्कुल मध्य भाग अपनेको प्रतीत होगा। शेष भाग तारा-मण्डलके पीछे छिपा हुआ रहता है। इससे जबतक कनीनिकाको प्रसारित न किया जाय, तबतक दृष्टिमणिके मध्यभागके अतिरिक्त प्रदेश प्रतीत नहीं होगा। अतः इस परीक्षाके लिये कनीनिकाको प्रसारित करनी चाहिये। कनीनिका प्रसारित करनेके लिये अनेक औषध व्यवहृत होते हैं। उनकी संख्या अधिक होनेसे उनका विस्तारपूर्वक वर्णन 'नेत्ररोगोपयोगी औषध' नामक प्रकरणमें किया जायगा। संक्षेपमें नेत्रपरीक्षार्थ कनीनिकाका प्रसारण करनेके लिये निम्न मुख्य ५ औषध व्यवहृत होती हैं:—

१. युफथलमीन हाइड्रोक्लोराइड (Euphthalmine Hydrochloride) १ औंस बाष्पजलमें १० ग्रेन।

२. एफेड्रीन हाइड्रोक्लोराइड (Ephedrine Hydrochloride) १ औंस बाष्पजलमें २० ग्रेन।

३. होमेट्रोपीन हाइड्रोब्रोमाइड (Homatropine Hydrobromide) १ औंस बाष्पजलमें ५ ग्रेन।

४. एट्रोपीन सल्फेट (Atropine Sulphate) १ औंस बाष्पजल में २॥ से ५ ग्रेन।

५. कोकेन हाइड्रोक्लोराइड (Cocaine Hydrochloride) १ औंस जलमें १० ग्रेन।

कितनेक चिकित्सक इन औषधों को प्रवाही जलसे नहीं बनाते, वे एरंड तैलसे बनाते हैं। इन औषधों में से युफथेलमीन और एफेड्रीनसे प्रसारित हुई कनीनिका लगभग ६ घण्टे में मूल स्थिति में आजाती है। होमेट्रोपीन से चौड़ी होने पर २४ से ४८ घण्टे में और एट्रोपीनसे चौड़ी होने पर ८ से १० दिनमें मूलस्थिति में आती है।

सूचना—(१) जब तक कनीनिका प्रसारित हो, तब तक रोगीसे पढ़ने का कार्य नहीं हो सकता; अर्थात् जिन रोगियों के नेत्रमें उक्त औषधियाँ डाली हों, उन रोगियोंसे ऊपर दर्शाये हुए अलग-अलग समय तक लिखने और पढ़ने का कार्य नहीं हो सकता। यह सूचना पहले ही रोगी को कर देनी चाहिये; अन्यथा रोगी नेत्रवैद्यसे नाराज होगा। इतना ही नहीं, कितनीक बार अति व्यवसाय वाले रोगीको आर्थिक हानि बहुत पहुँचती है।

(२) होमेट्रोपीन और एट्रोपीनके उपयोगसे नेत्रके भीतर का दबाव बढ़ जाता है और वह भी विशेषतः ३५ वर्ष से अधिक आयुवाले रोगियों को। सब नेत्रवैद्योंके अनुभवमें ऐसे उदाहरण भी आये होंगे कि इन औषधियोंके उपयोग के पश्चात् उस रोगीके नेत्रपर नीले मोतिये (नेत्रमें रक्तदबाव वृद्धि) का तीक्ष्ण आक्रमण हुआ हो। इस आपत्तिसे बचनेके लिये हो सके तबतक होमेट्रोपीन और एट्रोपीन का प्रयोग ३५ वर्षसे अधिक आयुवाले रोगियोंके लिये नहीं करना चाहिये। ऐसे रोगियोंके नेत्र की परीक्षाके लिये कनीनिका को प्रसारित करनी हो, तो युफ्थेलमीन, एफेडोन या कोकेन को उपयोग में लें।

(३) कदाचित् उक्त तीन औषधियोंसे कनीनिका प्रसारित न हो और होमेट्रोपीन को ही प्रयोजित करना पड़े तो कनीनिका प्रसारित होने और रोगपरीक्षा कर लेने पर रोगीके नेत्रमें इसरीन सलफेट (Eserine Sulphate) १ औंसमें ५ ग्रेनके बूंद कनीनिका संकोचार्थ डालें एवं जब कनीनिका का संकोच हुआ, ऐसा विदित हो, तभी रोगीको मकान पर जानेकी अनुमति देवें। तब तक नेत्र-वैद्यको चाहिये कि रोगीको अपने समक्ष चिकित्सालयमें रोक रक्खें।

कनीनिका विस्तृत करने पर रोगीको अंधकार वाले कमरेमें ले जायँ और दृष्टिमणिकी परीक्षा करें। दृष्टिमणिमें मुख्य ३ बात देखनेकी हैं। १. दृष्टिमणि स्वस्थानमें है या नहीं? २. वह पारदर्शक है या नहीं? यदि बिल्कुल पारदर्शक न हो तो उस स्थितिमें कितने अंशमें न्यूनता है; ३ दृष्टिमणिके किसी भी भागमें अपारदर्शक दाग है या नहीं?

(१) दृष्टिमणि स्वस्थानमें है या नहीं? निम्न ३ हेतुओंसे विदित होता है :—

अ. कनीनिकाका वर्ण स्वाभाविकको अपेक्षा अधिक काला भासता है। यह कालापन बहिर्गोल काँच द्वारा बाहरसे नेत्रपर प्रकाश डालनेपर स्पष्ट अवगत होता है।

आ. तारामण्डल कितनेक अंशमें पीछे सरका हुआ दिखता है, या जलमय रसका पूर्वखण्ड अधिक गहरा होजाता है।

इ. कितनीक बार तारामण्डलका आधार दूर हो जानेसे वह पर्दा कँपायमान (Tremulous Iris) प्रतीत होता है।

इन तीन लक्षणों परसे भी निर्णय न होता हो तो ऊपर लिखे अनु-

सार परकंजेकी ३ प्रतिमाओं को देखकर विशेष निश्चय किया जाता है। यहाँ पर इस परीक्षाके विशेष स्पष्टीकरणार्थ पुनः विवेचन किया जाता है।

रोगीकी बांयी आँख देखनी हो तो उसे एक अंधकार वाले कमरेमें कुछ ऊँचा बैठावें। फिर एक मोमबत्ती जलावें। रोगीकी आँखसे कुछ बाजू में बत्तीको पकड़ रक्खें, फिर सूक्ष्म निरीक्षण करने पर बत्तीकी ३ प्रतिमाएँ प्रतीत होती हैं। एक बड़ी, अधिक स्पष्ट और सीधी; दूसरी अति निस्तेज, सरल और पहली प्रतिमासे कुछ दूर; तथा तीसरी प्रतिमा दूसरीके पार्श्व में पहली और दूसरीकी अपेक्षा अधिक स्पष्ट और औंधी। पहली शुक्ल-मण्डलके बहिर्गोलपनके हेतुसे, दूसरी दृष्टिमणिके आगेके बहिर्गोलपनमें से और तीसरी दृष्टिमणिके पिछले बहिर्गोलपनेसे उत्पन्न होती है। यदि दृष्टिमणि स्वस्थानमें न हो तो दूसरी और तीसरी प्रतिमाकी उत्पत्ति नहीं होगी।

२. *दृष्टिमणि ठीक पारदर्शक है या नहीं?* इसकी परीक्षाके ४ साधन हैं। अ. केवल नेत्र; आ. पार्श्वमें से प्रकाश डालकर; इ. नेत्रदर्शक यन्त्रसे; ई. नेत्र अणुवीक्षण यन्त्रसे। यदि अपारदर्शकता अत्यंत बढ़ गई हो तो केवल नेत्रसे प्रतीत होती है। आरोग्यावस्थामें दृष्टिमणि कांच जैसा स्वच्छ होनेसे कनीनिका कृष्णाभ भासती है। यदि पारदर्शकतामें कतिपय अंशमें न्यूनता हुई हो, तो कृष्णाभ वर्णके बदलेमें बदल जैसा श्वेताभ या मलिन पिंगलाभ वर्ण प्रतीत होता है। बहिर्गोल कांचसे प्रकाश डाला जाय, तो अपारदर्शकता विशेष स्पष्ट होती है।

वृद्धावस्थामें दृष्टिमणिका रंग किसी भी रोगकी संप्राप्तिके विना कुछ मलिन भासता है, जिससे अनुभवरहित वैद्य और डाक्टर रोगीके नेत्रमें मोतीबिंदु आता है, ऐसा मान रोगीको उस तरह अभिप्राय दर्शाकर विना हेतु घबराहट उत्पन्न करते हैं। इसका निर्णय नेत्रदर्शक यन्त्र और नेत्र अणुवीक्षण यंत्रके प्रयोगसे सहज हो जाता है। नेत्रदर्शक यंत्रका उपयोग इसी प्रकरणमें आगे लिखा जायगा। इन यंत्रोंसे कनीनिकाके भीतर समतल दर्पण (Plane mirror) से प्रकाशका प्रवेश कराया जाय तो दृष्टिमणिकी आरोग्य स्थितिमें कनीनिकाका सब भाग लाल भासता है। यदि किंचित् भी अपारदर्शकता होगी, अर्थात् मोतीबिन्दुका प्रारम्भ होगा, तो कुछ अंशमें काले दाग या धब्बे प्रतीत होंगे।

३. *दृष्टिमणिमें अपारदर्शक दाग है या नहीं?* इसका निर्णय भी उसी अनुसार नेत्रदर्शक यंत्रसे जांच करके हो सकता है। उसमें भी विशेषतः दृष्टिमणिके पिछले पर्त्तमें एक अपारदर्शक धब्बा (Posterior

Polar cataract) उत्पन्न होकर दृष्टिको कितनेक अंशमें हानि पहुँचाता है। वह इस परीक्षाके अतिरिक्त अन्य रीतिसे विदित नहीं हो सकता। जिस तरह नेत्रदर्शक यन्त्रसे दृष्टिमणिकी परीक्षा हो सकती है, उस तरह बल्कि उससे भी विशेष सूक्ष्म परीक्षा नेत्र अणुवीक्षण यन्त्रसे हो सकती है। उसका वर्णन आगे इसी प्रकरणके भीतर नेत्र अणुवीक्षण यन्त्रके वर्णनमें किया जायगा।

यदि दृष्टिमणि बिल्कुल अपारदर्शक होगयी होगी अर्थात् मोतिया-बिन्दु बिल्कुल पक गया होगा, तो कनीनिकाके बीचका भाग बिल्कुल श्वेत वर्णका प्रतीत होगा। कभी-कभी वह भाग श्वेतवर्णके बदलेमें ओसके रंग जैसा भासता है। जब ऐसा प्रतीत हो तब मोतियाबिंदु कच्चा है, ऐसा समझें। यदि कनीनिका प्रदेश बिल्कुल दूधके सदृश श्वेत प्रतीत हो और सूक्ष्मतासे देखने पर उसमें मलिन रंगका बीज सदृश भाग भासे तो मोतिया-बिंदु अति पक्व होगया है। इतना ही नहीं, जिसे "दूध सदृश मोतिया" (Milky cataract) कहते हैं, जिसका वर्णन आगे मोतियाबिंदुके प्रकरणमें किया जायगा, उस जातिका है, ऐसा निदान करना चाहिये। कभी-कभी समग्र कनीनिका बिल्कुल सफेद प्रतीत होती है और उस भागमें एक या अधिक सूक्ष्म बिंदु प्रतीत होते हैं। वह मोतिया भी दीर्घकालके पहले पक गया है।

अन्य एक जातिका मोतिया होता है, जिसे 'काला मोतिया' कहते हैं। उसमें कनीनिका प्रदेश श्वेत नहीं होता, काले रंगका हो जाता है। किन्तु अंधकारमय कमरेमें नेत्रदर्शक यन्त्रके सीधे दर्पणसे नेत्रमें प्रकाश डालने पर कनीनिका बिल्कुल रक्त आभारहित प्रतीत होती है।

मोतियाबिंदु जब तक पका न हो तब तक परीक्षाके लिये रोगीको अंधकार वाले कमरेमें ले जायँ, वहाँ स्टूल या कुर्सी पर बैठाकर बत्तीका प्रकाश करें और बहिर्गोल काँच द्वारा कनीनिका पर डालें, ऐसा करने पर जिस ओरसे प्रकाश डाला जायगा, उस पार्श्वमें अन्तर्गोल आकारकी एक छाया पड़ती है, उसे तारामण्डलकी छाया (Iris shadow) कहते हैं।

६. नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा।

१८५१ ई० के पहले नेत्रके भीतरके भागकी परीक्षा नहीं हो सकती थी। हाँ, अवश्य यूरोपके अलग-अलग विद्वान् नेत्रवैद्य इस बातके लिए अति प्रयत्न कर रहे थे; किन्तु उनको सफलता नहीं मिलती थी। १८५१ ई० में हेल्महोल्ज (Helmhotz) नामक एक नेत्रवैद्यने अति सरल नेत्रदर्शक

यन्त्र की शोध की। उस यन्त्रमें केवल धातुका एक अत्यन्त तेजस्वी गोल टुकड़ा बनाया और उसके बीचमें एक सूक्ष्म छिद्र रक्खा। उस छिद्रमय टुकड़ेको एक दस्तेमें सज्जित किया गया। फिर एक मोमबत्ती या मिट्टीके तेलके दीपकका प्रकाश उस गोल तख्ती पर गिरता था और वही प्रकाश प्रसारित की हुई कनीनिका द्वारा नेत्रदर्पण पर डाला जाता था। उससे नेत्र-दर्पणमें अवस्थित धमनी, शिराएँ, नाड़ियोंके सिरे, ये सब प्रतीत होते थे।

१८५१ ई० के पश्चात् बारम्बार इस यन्त्रमें संशोधन होता गया और फिर मोर्टन (Morton) नामक नेत्रवेद्यने वर्त्तमानके प्रचलित नेत्रदर्शक की शोध की है। इसके पश्चात् १९१३ ई०में नेत्रदर्शक यन्त्रके दस्तेमें बिजली उत्पन्न करने वाली बेटरीकी योजना कर स्वतन्त्र रीतिसे कार्य कर सके ऐसा नेत्रदर्शक यन्त्र बनाया। साथमें मुख्य बिजली देने वाले प्रवाह मेंसे कभी प्रवाह प्राप्त हो सके और कम प्रवाहसे चल सके, ऐसी बत्तीकी योजना कर नेत्रदर्शक यन्त्र बनाया। पश्चात् बारम्बार संशोधन होता रहा और अंतके २० वर्षों में अनेक प्रकारके नेत्रदर्शक यन्त्र बने हैं। उनमें मुख्य निम्न हैं :—

१—मोर्टन (Morton's) का नेत्रदर्शक यन्त्र। जिसमें बड़े, सादे और अन्तर्गोल तथा छोटे सादे और अन्तर्गोल दर्पणकी योजनाके अतिरिक्त +०·५ से +३० और –०·५ से –२० तक कांच सज्जित हो सके ऐसा प्रबन्ध किया है।

२—विद्युद्दीपक युक्त नेत्रदर्शक यन्त्र (Electric Ophthalmoscope)।

३—विद्युद्दीपकसह चश्माके नम्बर ले सके ऐसे प्रबंधयुक्त (Electric ophthalmoscope with refraction denise).

४—नं० २ और नं० ३ जैसा, किन्तु विशेषतः बत्तीके प्रकाशमें आने वाले रक्त किरणोंका रोध करनेकी योजना वाला (Electric ophthalmoscope with red free filter).

५—एकाधिक विद्यार्थियोंको रोगीके नेत्रदर्पणको एक साथ देख सके ऐसा यन्त्र (Demonstration ophthalmoscope).

६—रोगीके नेत्रदर्पणका चित्र आसके ऐसी रचना सह (Ophthalmoscope with retinal photography).

७—गुलस्ट्राण्डका नेत्रदर्शक यन्त्र (Gullstrand's ophthalmoscope)। नेत्र दर्पणको बृहद् दर्शाने वाला नेत्रदर्शक यन्त्र (Gullstrand's magnifying ophthalmoscope)

८—दोनों नेत्रोंसे नेत्रदर्पण प्रतीत हो सके ऐसा नेत्रदर्शक यन्त्र (Binocular ophthalmoscope).

९—नेत्र अणुवीक्षण यन्त्र सह नेत्रदर्शक यन्त्र (Ophthalmoscope with retinal microscope) ।

इन सब यन्त्रोंकी कृति, रचना, उपयोग विधि आदि समस्त वर्णन विस्तारसे लिखा जाय तो यह प्रकरण बहुत बड़ा हो जायगा और ग्रन्थ-कलेवरकी भी वृद्धि हो जायगी; तथापि लम्बा विस्तार करने पर भी जब तक विद्यार्थियोंको प्रत्यक्ष अनुभव नहीं कराया जायगा, तब तक योग्य लाभ नहीं मिल सकता। किसी भी यन्त्र या शस्त्रकी रचना और उपयोग विधि के अध्ययनका उत्तम मार्ग यह है कि किसी नेत्रवैद्यके पास रहकर योग्य लाभ उठाना। नीतिकारोंने भी कहा है कि 'गुरु विना ज्ञान नहीं मिलता' यह कथन नेत्ररोग शास्त्रके सम्बन्धमें सर्वांशमें सत्य है। व्यर्थ विस्तार न हो इसलिये यहाँ केवल दो ही जातिके नेत्रदर्शक यन्त्र, जो विशेष प्रचलित हैं, उनका वर्णन सचित्र संक्षेपमें दिया जाता है।

७. मोर्टन का नेत्रदर्शक यन्त्र *(Morton's ophthalmoscope)*

चित्र २० वां देखने पर इस यन्त्र की रचना समझने में सुविधा रहेगी। इस यन्त्र का दस्ता हाथी दांत या धातु का बनाते हैं। वह ऊपर के हिस्से में 'च' भाग से 'ब' यन्त्र के नीचे के चक्कर वाले 'व' भाग में सज्जित किया जाता है। इस तरह सुसज्जित यंत्र नेत्रके भीतरके भागोंको देखने के लिये उपयुक्त होता है।

'क' भागको गोल फिरानेसे 'ड' वाले भागमें अवस्थित ०'५ से २० तक + अथवा – अर्थात् बहिर्गोल या अन्तर्गोल काँच नेत्रदर्पणदर्शक छिद्र 'ग' के पीछे सज्जित कर सकते हैं। 'फ' गोल तख्ती है, जिसमें 'ग' छिद्र है। उस छिद्रमें से नेत्रदर्पणका भाग देख सकते हैं। इस तख्तीमें एक दूसरी तख्ती व्यवस्थित की है। उसमें – १० और – ३० दाहिने हाथकी ओर तथा + ५ और + २० बांये हाथकी ओर सज्जित काँच तख्तीको फिरानेसे देखनेके छिद्र वाले भाग में व्यवस्थित हो जाते हैं। इस काँचका उपयोग आगे समझाया जायगा।

नेत्रदर्शक यन्त्रके आगेके हिस्सेमें ऊपरकी ओर दो गोल दर्पण व्यवस्थित किये हैं। एक बड़ा और सपाट तथा दूसरा छोटा और कुछ टेढ़ा। दोनों दर्पणोंको दो पार्श्व हैं। एक ओर समतल काँच (Plane mirror) और दूसरी ओर अन्तर्गोल (नतोदर – Concave mirror) है। दोनों दर्पणोंके

ठीक बीचमें एक छिद्र है। वह छिद्र और उक्त २० वीं आकृतिमें दर्शाये हुए यन्त्रके पिछली ओरका 'ग' छिद्र समान रूपसे सुसज्जित हो जाते हैं। दोनों दर्पण इस तरह व्यवस्थित हैं कि आवश्यकता अनुसार सरल काँच या अन्तर्गोल काँचको बत्तीके समक्ष व्यवस्थित कर सकते हैं। 'छ' '६' भाग आगे की ओर एक पतरावाला और पीछेकी ओर एक पतराके अतिरिक्त ३ अलग-अलग चक्कर वाला होता है। इन दो पतरों के बीच अनेक + और – काँचों की १ पंक्ति घटमाल अर्थात् कुएमेंसे जल खेंचनेके यन्त्रमें व्यवस्थित बालटियों के समान रचनावाली होती है। जिस तरह जल खेंचनेके घटमालमें चक्र फिरानेसे एक बालटी ऊंचे और दूसरी क्रमानुसार नीचे जाती है, उस तरह यह काँच भी चक्र 'क' फिराने से छिद्र 'ग' के पीछे अलग-अलग काँच व्यवस्थित होते हैं। एक काँच छिद्रमें व्यवस्थित हो और उसके पार्श्वका काँच एक ओर सरक जाता है। जो दो जातिके दर्पण यन्त्रके आगेके हिस्सेमें (आकृतिमें यह नहीं दर्शाया) हैं, उनके कर्त्तव्यका हम विचार करें।

जो बृहद् दर्पण है, उसकी एक ओर समतल दर्पण है और दूसरी ओर अन्तर्गोल (नतोदर) दर्पण है। अन्तर्गोल दर्पणका मुख्य उपयोग परोक्ष परीक्षा अर्थात् बीचमें बहिर्गोल (उन्नतोदर) काँचको रख नेत्रके भीतरके भागकी परीक्षाके लिये है। समतल दर्पणका उपयोग दृष्टिमणि तक के भागोंकी परीक्षार्थ और विशेषतः चश्माके नम्बर सरलतासे निकालने (Ratinoscopy) के लिये हैं। ये दोनों क्रिया किस तरह की जाती हैं; यह आगे समझाया जायगा।

जो लघु दर्पण है उसके भी दो पार्श्व हैं—समतल और अन्तर्गोल। समतल दर्पण दृष्टिमणि तकके नेत्रके भागोंकी प्रत्यक्ष (Direct) परीक्षा करनेके लिये तथा अन्तर्गोल दर्पण नेत्रके भीतरके भागोंकी प्रत्यक्ष परीक्षार्थ उपयोगी है।

८. प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षा।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे नेत्रके भीतरका भाग किस तरह प्रतीत होता है उसे समझानेके लिये एक सामान्य उदाहरण लेवें। एक अंधकारमय कमरा है। उसके द्वारमें एक छिद्र है। उस छिद्रमेंसे उस कमरेके भीतर देखनेका प्रयत्न करेंगे तो अंधकारके हेतुसे कुछ भी नहीं दिखेगा। किन्तु उस कमरेके भीतर दीपक का प्रकाश होगा तो कमरेके अनेक भाग देख सकेंगे। या छिद्र में से कमरेके भीतर प्रकाश डालेंगे तो जिस भाग पर प्रकाश गिरेगा, वह

भाग छिद्रमेंसे प्रतीत हो सकेगा। उसी तरह नेत्रदर्शक यन्त्रसे नेत्रके भीतर के भागमें कनीनिकाके मार्गसे प्रकाश डालकर भीतरके भाग को देख सकते हैं। जो दो अन्तर्गोल दर्पण नेत्रदर्शक यन्त्रमें व्यवस्थित किये हैं, उनसे दीपकका प्रकाश भीतरके नेत्रदर्पणके जिस भाग पर पड़ता है, वह भाग स्पष्ट प्रतीत होता है। हमको नेत्रके भीतर देखना है—बाह्यगोल भाग, शुक्ल मण्डल, जलमय रस, दृष्टिमणि और काँचरूप रस। नेत्रदर्पण आदि भागों को देखनेके लिये अनुभव की आवश्यकता है। इतना ही नहीं, रोगी और नेत्रवैद्यका नेत्र संयोजन (Accomodation) शिथिल होना चाहिये। इस संयोजनका वर्णन पहले किया गया है, तथा पुनः विशेष वर्णन आगे करेंगे।

विद्युद्दीपक सह नेत्रवीक्षण यन्त्र—चित्र नं० २१ देखें। 'अ' यन्त्रका पोला दस्ता है, वह विद्युत प्रकाशकी उत्पादक बैटरी (Dry cell) की व्यवस्था वाला है। 'च' कमानी (चांप) है। उसे on की ओर फिराने पर ऊपरके भाग में व्यवस्थित दर्पणमें प्रकाश उत्पन्न होता है, उस प्रकाशसे नेत्रके भीतर का भाग प्रतीत होता है। 'ब' चक्रको फिरानेपर दर्पणके बीचमें अवस्थित छिद्रके पीछे अलग-अलग नम्बरके + अथवा – कांच व्यवस्थित हो सकते हैं। 'क' चक्रमें ये काँच सुसज्जित हैं। 'ड' चक्रमें + ५ और २० तथा ० – १० और – ३० के काँच व्यवस्थित हैं। 'फ' यन्त्रमें दर्पण व्यवस्थित हैं, उसे सीधा नहीं रक्खा, कुछ टेढ़ा रक्खा है। 'फ' के नीचे बहिर्गोल दर्पण 'ग' उस तरह व्यवस्थित किया है कि उसके नीचे आयी हुई बिजलीकी बत्तीका प्रकाश दर्पणपर ठीक केन्द्रित हो सकता है। इस विद्युत्प्रकाशयुक्त नेत्रदर्शक यन्त्रसे मुख्यतः प्रत्यक्ष रीतिसे नेत्रके भीतरका भाग प्रतीत हो सकता है। इस तरह कितनेक यन्त्रोंमें परोक्ष रीतिसे नेत्रके भीतरके भागको देखनेकी और अंधकारमय कमरेमें चश्माके नम्बर लेनेकी भी योजना होती है। उस जातिके नेत्रदर्शक यन्त्रके उपयोगमें विशेष दो फल हैं। १. नेत्रके भीतरका भाग अर्थात् नेत्रदर्पणके अलग अलग भाग नैसर्गिक हो, उसकी अपेक्षा बहुत बड़ा और स्पष्ट प्रतीत हो; २. रोगी जब उठ या बैठ न सकता हो तब या डाक्टरके पास न आ सकता हो, तो भी किसी प्रकारकी विशेष बत्तीकी सहायताके बिना रोगीके मकान पर ही नेत्रपरीक्षा हो सकती है। इनके अतिरिक्त विशेष अनुभवसे रहित वैद्य-डाक्टर भी इस यन्त्रसे नेत्रके भीतरका भाग देख सकते हैं।

नेत्रान्तर्गत प्रदेशकी परीक्षाविधि—उक्त यन्त्रसे नेत्रके भीतरके भागोंकी परीक्षा करनेकी २ रीति हैं। १. प्रत्यक्ष (Direct); २. अप्रत्यक्ष (Indirect) अथवा बहिर्गोल काँचकी सहायता द्वारा परीक्षा।

६. प्रत्यक्ष परीक्षा (*Direct Examination*)

हो सके तब तक कनीनिका प्रसारक किसी भी औषधसे कनीनिकाको प्रसारित करें। अन्यथा यह परीक्षा कठिन और अनेक रोगियोंके लिये अशक्य हो जाती है। एक अंधेरावाला कमरा, जो कमसे कम ८×४ फुट लम्बा चौड़ा हो, उसमें एक विशेष प्रकारके विद्युद्दीपक (देखो चित्र नं० २२) की योजना करें। जो नेत्रपरीक्षामें उपयोगी हो, उसके ऊपर ६० बत्तीके प्रकाशवाला गोला जिसका काँच घिस दिया हो (Frosted lamp. 60 C. P.) वैसा, एक बिजलीका पंखा, रोगी और नेत्र वैद्य, दोनोंको बैठनेके लिये गोल फिर सके वैसी दो कुर्सी या स्टूल तथा नीचे बिछानेके लिये मुलायम दरी (या कालीन), ये सब होने चाहिये। ऐसे कमरेमें रोगीको बत्तीकी ओरके स्टूल पर बैठावें। सामनेके स्टूलपर नेत्रवैद्य बैठे। रोगी और नेत्रवैद्यकी ऊंचाईके अनुरूप स्टूलको फिराकर अनुकूल स्थितिमें रक्खें। इस शैलीकी परीक्षा चित्र नं० २३ में दर्शायी है।

बत्ती रोगीके एक ओर रहनी चाहिये। बहुधा बांये नेत्रको देखनेके लिये बत्ती बांयी ओर तथा दहिने नेत्रको देखनेके लिये दहिनी ओर रखना, यह अनेक चिकित्सकोंको अनुकूल रहता है। कतिपय नेत्रवैद्य बत्तीको बांयी ओर ही रखते हैं। बत्तीको जिस चौखटमें लगाई हो, उसमें ऐसा प्रबंध होता है कि बत्तीको आगे, पीछे, ऊँचे, नीचे, बांये, दहिने, सब ओरको सरलतासे लेजा सकते हैं। उस तरह नेत्रदर्शक यन्त्रके छोटे दर्पणमें अन्तर्गोल दर्पणको उस तरह व्यवस्थित करना चाहिये कि बत्तीका प्रकाश उसपर गिरकर उसका प्रतिफलित प्रकाश ठीक रोगीकी कनीनिका पर गिरे; जिससे समग्र कनीनिका लाल प्रतीत हो।

यदि रोगीके दहिने नेत्रकी परीक्षा करनी हो तो नेत्रवैद्य अपने दहिने हाथकी अंगुली ऊंची करे और उस ओर रोगीको देखनेको कहें, एवं बांये नेत्रकी परीक्षाके लिये रोगी नेत्रवैद्यके बांये कानकी ओर देखे। इस तरह क्रिया करनेपर जितना हो सके उतना दूर देखनेको कहें। नेत्रवैद्य नेत्रदर्शक यन्त्रके दर्पणको ठीक अपने दहिने नेत्रके पास व्यवस्थित करें। उस तरह कि दर्पणके बीचके छिद्रमेंसे वह ठीक देख सके। फिर नेत्रवैद्य धीरे-धीरे रोगीके नेत्रके नजदीक जाँय। ऐसा करने पर नेत्रदर्पणके अलग-अलग भाग प्रतीत होने लगेंगे। परन्तु नेत्रवैद्य यदि अपनी कनीनिका चौड़ी कर सकेंगे, तो ही इस तरह देख सकेंगे। अन्य प्रकारसे कहें तो नेत्रवैद्यको अपने नेत्रमें रहा हुआ संयोजन शिथिल करना चाहिये। इस

शिथिलताको अनुभवी तत्काल जान सकता है। कारण, समीप देखने पर जब उसकी कनीनिका विस्तृत होती है, तब नेत्रके भीतर एक प्रकार की विचित्र भावना उपस्थित होती है। फिर कनीनिका विस्तृत होकर नेत्रके भीतरका भाग प्रतीत होने लगता है।

अ. दर्शननाड़ी की परीक्षा।

सबसे पहले दर्शन तन्तुके सिरे प्रतीत होते हैं। वह गोलाकार सहज रक्ताभ तथा अन्य भागोंकी अपेक्षा किंचित् आगे निकला हुआ भासता है। उसके मध्यमें धमनी और शिराएँ निकल कर शाखा-रूपसे आगे बढ़ती हैं। इनको देख लेनेके पश्चात् रोगीको नेत्रवैद्यके सामने देखनेको कहें, जिसमे पीत बिंदु दिखेगा। उस भागमें धमनियाँ और शिराएँ न होनेसे अन्य भागोंकी अपेक्षा पृथक् होजाता है। यदि रक्त प्रकाशरोधक कांच या हरे रंगका कांच बीचमें रक्खा होगा, तो पीतबिंदु अधिक स्पष्ट भासेगा। शान्तिपूर्वक निरीक्षण करने पर नेत्रदर्पणका लगभग पौन हिस्सा इस तरह प्रतीत हो जाता है। केवल नेत्रदर्पण और तन्तुमय समूहका संगम भाग प्रायः प्रतीत नहीं होता। उपरोक्त वर्णन स्वस्थ स्थितिके नेत्रदर्पणका है।

अस्वस्थ स्थितिमें क्या-क्या देखना चाहिये, इसका विचार करें। सबके पहले दर्शनतन्तुका सिरा ठीक आरोग्य रंगका है या नहीं, यह देखना चाहिये। यदि लाली अधिक हो तो दर्शन तन्तु या नेत्रदर्पणका दाह-शोथ होना चाहिये। यदि बिल्कुल श्वेत वर्णका होगया हो और सिरेका किनारा बिल्कुल स्पष्ट दीखे, तो दर्शन तन्तुके सिरेका प्राथमिक क्षय है, ऐसा अनुमान होता है। दर्शनतन्तुका सिरा कुछ भूरा (पिंगल) सफेद रंगका हो और किनारा अति स्पष्ट न हो तो दर्शनतन्तुके दाह-शोथके परिणाममें उसका क्षय हुआ है, ऐसा विदित होता है। यदि दर्शनतन्तुका सिरा गहरा उतरा हुआ भासे तो प्रायः उसके किनारेके पासमे गमन करनेवाली धमनियां मरोड़ खाकर निकलती हों, ऐसी प्रतीति होगी। किन्तु क्वचित् कितनेक नीरोगी नेत्रमें भी उक्त सामान्य प्रकारकी धमनियाँ होती हैं। यदि यह अधिक स्पष्ट हो तो एक नेत्रमें नीलामोतिया माना जाता है। यदि दर्शनतन्तुका सिरा उभरा हुआ हो तो प्रायः मस्तिष्कके भीतरका दबाव किसी भी कारणसे बढ़ जानेका अनुमान होता है। इस स्थितिको दर्शन-तन्तुके शिराओंका शोथ (Papillo-edema) कहते हैं। यह शोथ कितनी क्रियाका है, इसके बोधके लिये नेत्रदर्शक यन्त्रके पीछे आये हुए + बहिर्गोल

कांचको फिरावें। जिस कांचमे सिरा ठीक स्पष्ट देखनेमें आवे, उस कांच जितना शोथ माना जायगा।

यदि नेत्रवैद्यका सब प्रयत्न निष्फल हो और नेत्रके भीतरका भाग देखनेमें न आवे तो विदित होता है कि नेत्रवैद्य या रोगी, दोनोंमें से किसी की भी आंख नीरोगी अर्थात् चश्मेके उपयोगकी आवश्यकतासे रहित नहीं है। नेत्रवैद्य अपने नेत्रको कौनसे नम्बरकी आवश्यकता है, यह तो जानता होगा, जिससे अपनी आवश्यकताके अनुसार उस नम्बरका कांच नेत्रदर्शक यन्त्रमें फिराकर रख सकता है। किन्तु यदि अपनी आँख नीरोगी हो तो उसे रोगीकी आँखके भीतरका भाग स्पष्ट देखनेके लिये + या – काँचको फिराना पड़ेगा। जिस कांचसे भीतरका भाग स्पष्ट प्रतीत हो वह कांच रोगीके नेत्रको अनुकूल रहता है। अन्य शब्दोंमें कहें, तो रोगीके नेत्रको किस नम्बरका कांच लगेगा, उसका लगभग अनुमान इस परीक्षासे हो सकता है।

आ. धमनी–शिराकी परीक्षा।

दर्शनतन्तुके शिराओंकी परीक्षा करने के पश्चात् धमनी और शिराओंकी परीक्षा करनी चाहिये। किसी भी कारणसे मुख्य धमनी बन्द होगई हो तो धमनी रक्त रंगके बदलेमें सफेद भासेगी। यदि मध्य धमनी किसी भी कारणसे अधिक रक्तसे भर गई होगी तो धमनियाँ मोटी हुई और विशेष रक्तवर्णकी प्रतीत होतीं। शराबियोंमें उग्र प्रकृति के हेतुसे, क्षण-क्षणमें कुपित होनेवालोंमें तथा लम्बे समय तक अधिक मोटेसे बोलनेवालोंमें प्रायः धमनियाँ अधिक भरी हुई दिखती हैं। पाण्डु रोग और उसके समान रक्तके विकारोंमें धमनियाँ निस्तेज भासती हैं। तथा नेत्रदर्पणके भागमें सफेद रंगके धब्बे या समस्त नेत्रदर्पण दूध-जैसे रंगका दिखता है। जब वृद्धावस्था या उपदंश विकार अथवा अन्य किसी कारणसे धमनियोंकी दीवार कठिन (Arteriosclerosis) हो जाती है या उसकी अपकान्ति होकर तथा क्षारमय पदार्थ जमकर दीवार कठिन (Atheroma of Arteries) होजाती है। ऐसी स्थितिमें धमनियाँ कुछ छोटी भासती हैं और उन पर चाँदीका सूक्ष्म तार लगाया हो उस तरह उन पर सफेद पंक्ति प्रतीत होती है। एवं जहाँ धमनी सिरा परसे निकलती होंगी, वहाँ पर धमनी टूटी-सी भासती हैं।

नेत्रदर्पणमें यदि अन्य कोई विकार होगा तो वह भी विदित हो

जायगा। इसका विशेष विवेचन नेत्रदर्पण एवं दर्शननाड़ीके रोगोंके प्रकरणोंमें यथास्थान दिया जायगा। चित्र नं० २४ देखें।

१०. अप्रत्यक्ष परीक्षा (*Indirect Examination*)

परोक्ष परीक्षाके लिये अंधकारमय कमरा, बत्ती, रोगीको बैठनेकी सुविधा आदि व्यवस्था प्रत्यक्ष परीक्षामें लिखे अनुसार करनी चाहिये। केवल उतना ही अन्तर है कि नेत्रवैद्य रोगीके अति समीप बैठनेके बदलेमें लगभग ½ मीटर (करीब १३ इञ्च) दूर बैठे। (देखो चित्र नं० २५) नेत्रवैद्य दाहिने हाथमें नेत्रदर्शक यन्त्र रख, बत्तीका प्रकाश, जो नेत्रवीक्षण यन्त्रसे बृहद् अन्तर्गोल दर्पणपर गिरता है, उसका प्रतिफलित प्रकाश रोगीकी कनीनिकाके ऊपर डालें। जिससे कनीनिका रक्तवर्णकी हो जायगी। फिर + १३ से १६ के एक बहिर्गोल काँचको ठीक बांये हाथमें रह सके इसलिये उसे एक गोल चौखटमें लगाते हैं, उसे बांये हाथसे पकड़ रोगीकी जिस आँखकी जाँच होती हो और जो कनीनिका प्रकाशके हेतुसे लाल रंगकी भासती हो, उस कनीनिका के पास लगभग १–२ इञ्च दूर पकड़ रक्खें। ऐसा करनेपर नेत्रदर्पण उस काँचमें दिखेगा। यदि स्पष्ट प्रतीत न होता हो, तो बहिर्गोल काँचको कुछ आगे या पीछे सरकावें। इस परीक्षामें नेत्रदर्पण की औंधी प्रतिमा दिखती है इससे भीतरके सब भाग उल्टे भासते हैं। अर्थात् ऊपरका भाग नीचे और नीचेका भाग ऊपर भासता है। एवं जो प्रतिमा पड़ती है, वह प्रत्यक्ष परीक्षामें प्रतीत होनेकी अपेक्षा छोटी दिखेगी। यदि भीतरके भाग स्पष्ट प्रतीत न हों तो नीरोगी नेत्रवाले नेत्रवैद्यको प्रकाश डालनेवाले दर्पणके पीछे + ३ या + ४ का काँच नेत्रदर्शक यन्त्रमें व्यवस्थित करना चाहिये। इससे स्पष्ट प्रतीत होगा।

समतल दर्पण (Plane mirror) *का उपयोग*—नेत्रदर्शक यन्त्रस्थ दर्पणमें अन्तर्गोलकी दूसरी ओर समतल दर्पण है। उसके दो उपयोग हैं। १. शुक्लमण्डल, जलमय रसका पूर्वखण्ड, दृष्टिमणि और काँचरूप रस, इन सबमें अवस्थित अपारदर्शकता हो, जो अन्य परीक्षासे अविदित हो, उसकी प्रतीति इस दर्पणसे प्रकाश डालनेपर होती है। २. चश्माके नम्बरकी परीक्षा। इस दूसरी परीक्षाका वर्णन चश्माके नम्बर निकालनेके प्रकरणमें दिया जायगा। यहाँ अपारदर्शकता कैसे देखनी, इसका विवेचन किया जायगा।

उक्त परीक्षाके लिये नेत्रवैद्य रोगीसे लगभग १॥ फुट दूर बैठे और समतल दर्पणसे बत्तीका प्रतिफलित प्रकाश रोगीके नेत्रकी कनीनिकामें डालें।

यदि कनीनिका बिल्कुल स्वच्छ लाल रंगकी प्रतीत हो तो उपर्युक्त चारों भाग शुक्लमण्डल, जलमय रसका पूर्वखण्ड, दृष्टिमणि और काँचरूपरस स्वच्छ और अपारदर्शकता रहित हैं ऐसा मानें। यदि अपारदर्शकता होगी तो लाल कनीनिकाके बीचमें काले रंगके छोटे या बड़े धब्बे प्रतीत होंगे। धब्बे या अपारदर्शकता हो, तो वह किस भागमें है, यह जाननेके लिये पकड़े हुए नेत्रदर्शक यन्त्रको दहिनी ओरसे शनैः-शनैः बांयी ओर फिरावें या चलावें। ऐसा करनेपर काला धब्बा किस ओर सरकता है, उस पर लक्ष्य दें। यदि लगभग स्थिर रहे या किञ्चित् उल्टी दिशामें फिरे तो समझना चाहिये कि, अपारदर्शकता दृष्टिमणिके आगेके हिस्सेमें है। यदि उसी दिशामें फिरे तो दृष्टिमणिके पिछले हिस्सेमें या काँचरूपरस में है। यदि अधिक तेजीसे भिन्न दिशामें फिरे तो शुक्लमण्डलमें है, ऐसा मानें। यह वर्णन अपारदर्शकता प्रथम परीक्षामें स्थिर देखनेमें आवे उसका है। यदि यह अपारदर्शकता पहलेसे ही प्रतीत हो और अदृश्य हो या नृत्य करती हुई प्रतीत हो, तो काँचरूप रसमें है, ऐसा निश्चित होता है।

अन्तर्गोल (नतोदर) दर्पणसे नेत्रके भीतरके भागकी परीक्षा करने पर क्या-क्या प्रतीति होती है, यह प्रत्यक्ष परीक्षाके विवेचनमें लिखा गया है, तथापि विषयकी उपयोगिताकी दृष्टिसे उसका दुबारा कथन आवश्यक माना है।

इस परीक्षासे नेत्रदर्पणका विशेषांश प्रतीत होता है। उसमें मुख्य दर्शनतन्तुका सिरा (Optic-disc), धमनियां, शिराएं, पीत बिन्दु (Macula Lutea) और उसके मध्यमें रहा हुआ छिद्र (दर्शनकेन्द्र - Fovea Centralis) हैं। आकृति २३ वीं देखनेपर यह वर्णन सरलतासे समझमें आवेगा। नेत्रदर्पणके मध्यभागसे किञ्चित् भीतरकी ओर जो चनेकी दाल जेसा गोल और कुछ रक्तमिश्रित सफेद रंगवाला भाग दिखता है, वह दर्शनतन्तुका सिरा है। प्रायः उसके मध्यमेंसे एक धमनी और एक शिरा गमन करते हुए प्रतीत होते हैं। एवं धमनी तथा शिराओंकी शाखाएं भी उत्पन्न हो जाती हैं। प्रारम्भमें दर्शनतन्तुमेंसे निकलनेपर ही धमनीकी दो शाखा हो जाती हैं। एक ऊपरकी और दूसरी नीचेकी। फिर उभय शाखाओंमेंसे अन्य प्रशाखाएं निकलती हैं। पश्चात् जैसे-जैसे प्रशाखाएं-उपशाखाएं निकलती जाती हैं, वैसे-वैसे धमनिएं और शिराएं छोटी-छोटी होती जाती हैं।

नेत्रदर्पणकी मुख्य धमनी या उसकी कोई शाखा टूट जाय या किसीभी कारणसे उसमें बहता रक्ताभिसरण बन्द हो जाय तो वह धमनी

जिस भागका रक्त द्वारा पोषण करती हो, उस भागका पोषण आजीवन बन्द हो जानेसे नेत्रदर्पणका उतना भाग निकम्मा (कर्त्तव्यहीन) हो जाता है।

जिस तरह धमनियोंमेंसे शाखा-प्रशाखाएं निकलती हैं, उस तरह शिराएं छोटी शाखारूपसे प्रारम्भ होकर बड़ी होते होते अन्तमें एक या दो शिराएं (कभी चार) दर्शनतन्तुके सिरे परसे सीधी चली जाती हैं और अन्तमें मध्यभागके भीतर प्रवेश करती हैं, किन्तु कितनेक बार दर्शनतन्तुका सिरे नेत्रदर्पणकी सतहसे कुछ दबे हुए देखनेमें आते हैं। इससे छोटा गड्ढासा भासता है। उसके परिणाममें धमनिएं और शिराएं दर्शनतन्तुके सिरेके ऊपर सीधी निकलनेके बदलेमें कितनेक अंशमें मुड़ी हुई भासती हैं और नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखनेपर जैसे कि बीचमें टूटीसी होकर पुनः प्रारम्भ होती हों, ऐसा देखाव देती हैं। उस स्थिति को दर्शन तन्तुके सिरके कर्त्तव्य की अवसादक स्थिति (Physiological Cupping) कहते हैं। ऐसी ही अवसादकता नीला मोतिया दर्शनतन्तुके क्षयमें प्रतीत होती है। किन्तु इन तीनों अवस्थाओंके भीतर कुछ अन्तर है। जिससे ये तीनों स्थिति परस्पर एक दूसरेसे पृथक् होती हैं और नेत्रदर्शक यन्त्रकी परीक्षासे विदित होती हैं।

इन्द्रिय कर्त्तव्यकी अवसादक स्थिति (PhysiologicalCupping) में दर्शनतन्तुके सिरेका समग्र भाग गहरा नहीं उतरता, किन्तु कुछ भाग गहरा चला जाता है और कुछ भाग सपाट रहता है। इतना ही नहीं, नीले मोतीबिन्दुमें जितनी गहराई होती है, उतनी इसमें नहीं होती। यह दर्शन नाड़ीके सिरेकी सादी स्थिति चित्र २६ वां देखने पर विदित हो सकेगी।

दर्शनतन्तुके क्षयमें भी नीले मोतीबिन्दुके जितनी गहराई नहीं होती। दर्शन तन्तुके सिरेका रंग श्वेताभ हो जाता है। नीले मोतीबिन्दुमें गहराई कुछ अधिक प्रतीत होती है। एवं दर्शन तन्तुके सिरेका समस्त भाग गहरा उतरा हुआ प्रतीत होता है। जब नीला मोतीबिन्दु अधिक बढ़ जाता है या लम्बे समयसे होता है तब दर्शनतन्तुका क्षय हो जाता है। जिससे उस समय नीले मोतीबिन्दुमें होने वाली अवसादकता और दर्शन-तन्तुक्षयसे उत्पन्न अवसादकताके बीचमें अधिक अन्तर प्रतीत नहीं होता। यदि रोगीको अपने सामने देखनेको कहेंगे, तो नेत्रदर्पणके बीचका हिस्सा देखनेमें आवेगा। उस स्थानपर पीत बिन्दु अवस्थित होनेसे उसे देखनेके लिये प्रयत्न करना चाहिये। पीत बिन्दुका स्पष्ट भासना अति कठिन है, तथापि इतना लक्ष्यमें रक्खें कि, जिस भागमें पीतबिन्दु अवस्थित है, वह

भाग धमनी और शिराओंसे रहित है। इस हेतुसे वह कुछ अंशमें पीत-बिन्दुको देखनेमें सहायक होता है। पीतबिन्दु सहज सफेद, तेजस्वी, छोटा बिन्दु है। उसके भीतर कुछ विशेष देखनेको नहीं है। ऊपर लिखे अनुसार नेत्रदर्पण पारदर्शक है; जिससे वह इस यन्त्रसे नहीं दिखता। जो दिखते हैं, वे उसमें रहे हुए अपारदर्शक भाग। जैसा कि धमनी, शिरा, दर्शनतन्तु का सिरा और पीतबिन्दु आदि।

उक्त प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष परीक्षाओंमें कौनसी रीति विशेष सुविधा-जनक और लाभप्रद है, ऐसा सहज प्रश्न उपस्थित होता है। इसका उत्तर यह है कि, उभय रीतिमें कुछ लाभ और कुछ हानि रही हैं। प्रत्यक्ष रीतिमें विशेष लाभ यह है कि, उससे नेत्रदर्पणका भाग सीधा और बड़ा दिखता है। इसलिये रोगके हेतुसे कुछ भी अन्तर हुआ हो तो वह स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि विशेष निर्णित हो जाता है। हानि यह है कि, यह परीक्षा कनीनिकाको प्रसारित किये बिना नहीं होती। विशेष अनुभव बिना यह परीक्षा दुष्कर है। रोगीके अति नजदीक जाना पड़ता है, जिससे रोगीके मुँहमेंसे यदि उग्र वास निकलती हो तो नेत्र-वैद्यको बेचैनी सी होती है; तथा रोगीके मुखमें यदि कोई संक्रामक रोग हो तो वह नेत्रवैद्यको हो जानेका डर रहता है।

परोक्ष परीक्षामें लाभ यह है कि, कनीनिका कुछ चौड़ी हुई होवा नेत्रवैद्य कुछ कम अनुभवी हो तो कनीनिकाको प्रसारित किये बिना भी परीक्षा हो सकती है। इस परीक्षासे नेत्रदर्पणका विशेषांश प्रत्यक्ष हो जाता है। नेत्रवैद्यको कम अनुभव हो तो भी यह परीक्षा हो सकती है। हानि यह है कि नेत्रदर्पणका भाग छोटा दिखनेसे सूक्ष्म विकृतिका अनुभव नहीं हो सकता। जिससे कितनीक बार जो रोग प्रत्यक्ष परीक्षासे विदित हो सकता है, वह इस परीक्षा द्वारा विदित नहीं होता।

उत्तम मार्ग यह है कि पहले परोक्ष पद्धतिसे नेत्रपरीक्षा करके उसका सामान्य परिचय प्राप्त करें। फिर प्रत्यक्ष पद्धतिसे परीक्षा कर अवगत रोग या स्थितिका सूक्ष्मतासे निरीक्षण करें।

११. नेत्रान्तर दबावका नाप निर्णय (*Tonometry*)।

पहले प्रकरणके भीतर नेत्ररचनाके विवेचन में लिख चुके हैं कि नेत्रगोलक ३ पटल और ३ प्रवाही खण्डोंसे बना है। उनमेंसे पहला बाह्य पटल दृढ़, न्यून स्थितिस्थापक गुणयुक्त और अन्य पटलोंकी अपेक्षा मोटा है। जिससे नेत्रगोलककी कठिनताका या नेत्रके भीतर अवस्थित दबावका आधार इस पटलकी स्थिति और नेत्रके भीतर रहे हुए प्रवाहीके

संग्रह पर अवलम्बित है। नेत्रस्थ प्रवाही संग्रहका आधार प्रवाहीकी उत्पत्ति और नेत्रगोलकसे बाहर निकल जानेके मार्गके ऊपर है। नेत्रगोलकको नीरोगी स्थितिमें जितने अंशमें कठिन रहनेकी आवश्यकता हो उतने अंशमें कठिन रहे, तब तक प्रवाहीकी उत्पत्ति और निकास, दोनों समतोल रहते हैं। एवं उत्पत्ति-निष्कासनकी समतावाली स्थितिमें नेत्रगोलककी कठिनता हो, वह नीरोगी स्थितिकी कठिनता मानी जाती है। यह कठिनता दो रीतिसे नापी जाती है। अंगुलीसे और विशेष यन्त्रसे। इनमेंसे अंगुली द्वारा निर्णय करनेके लिये रोगीको नेत्रवैद्यके सामने कुर्सीपर बैठाकर उसे नेत्र बन्द करनेको कहें। फिर रोगीको अपने पैर पर दृष्टि (लक्ष्य) रखनेको कहें। पश्चात् नेत्रवैद्य अपने दोनों हाथोंकी तर्जनियोंसे रोगीके ऊपर पलकोंकी धारासे १-१॥ मि० मी० ऊपर किंचित् क्रमशः दबावें। यह दबाव इतना होना चाहिये कि रोगीका नेत्रगोलक कुछ दबे। किन्तु इतना अधिक दबाव न होना चाहिये जिससे कि रोगीको पीड़ा हो। यदि नेत्र ठीक मुड़े हुए होंगे तो यह दबाव शुक्लमण्डलके किनारेसे १०-१२ मि० मी० ऊपर, जहां तन्तुमय समूह अवस्थित है, वहां होता है। यदि नेत्रवैद्यकी अंगुलियां ऐसी परीक्षाके अभ्यासवाली हैं तो ५ सेकण्डमें ही नेत्रकी कठिनता आरोग्य स्थितिकी है या उसमें न्यूनाधिकता हुई है, यह विदित हो जाता है। अंगुलियों द्वारा इस कार्यका ठीक अनुभव मिल सके, इसलिये नेत्रवैद्यको चाहिये कि अपने पास आने वाले रोगियोंकी जाँच अंगुली द्वारा भी बार-बार करते रहें। अभ्यास होजाने पर नीरोगी नेत्रगोलककी कठिनताका निर्णय सहज हो जाता है। जब नेत्रगोलककी कठिनता बढ़ जाती है, तब अंगुली द्वारा उसका परिमाण भी विदित हो जाता है। इस परीक्षाकी यादी हो सके इसलिये परिमाणदर्शक अङ्क + १, + २, + ३, ऐसे अङ्क रक्खे जाते हैं। यदि कठिनता सामान्य बढ़ी हो, तो क + १ ऐसा रोग परीक्षा पत्रक पर लिख रक्खें। उससे अधिक कठिनता हो क + २ तथा लगभग पत्थरके सदृश अति कठिनता हो तो क + ३ ऐसी यादी करें। अंग्रेजीमें कठिनता (क) के स्थान पर Tension (T) लिखते हैं। इस तरह कठिनता नीरोगी स्थितिकी अपेक्षा कम हुई हो तो क – १, क – २, क – ३ इस तरह यादी करनी चाहिये।

इस तरह अंगुली द्वारा की हुई परीक्षामें आपत्ति यह है कि, सब नेत्रवैद्योंसे इस कठिनता का समान निर्णय नहीं हो सकेगा। एक नेत्रवैद्य को + १ जितनी कठिनता भासती है; उसी नेत्रमें अन्य नेत्रवैद्यको + २ जितनी या बिल्कुल नीरोगी स्थितिमें कठिनता जितनी विदित होती है। जब

तक ज्वर निर्णायक थर्मामीटरकी शोध नहीं हुई थी, तबतक ज्वरके सम्बन्धमें भी इसी तरह वैद्योंके भीतर मतभेद होता था। उसी तरह अंगुली द्वारा कठिनता निर्णयमें भी मतभेद रहता था। उस मतभेदको मिटानेके लिये १८५३ ई० में एक जर्मन वैद्य वॉन ग्राफे (Von Graefe) ने एक कठिनता-मापक यन्त्रकी शोध की। किन्तु वह पूरा सफल नहीं हुआ। पश्चात् लगभग ३० जितने अलग-अलग जातिके यन्त्र निर्माण हुए। किन्तु उनको नेत्रचिकित्सकोंने पसन्द नहीं किया। अन्तमें १९०५ ई० में नार्वेके एक नेत्रवैद्य शियोट्ज (Schiotz's) ने एक यन्त्रका निर्माण किया। वह सबको समान उपयोगी लगनेसे सर्वमान्य हुआ, एवं उसका उपयोग सब नेत्रवैद्य करने लगे।

इस यन्त्रका यहाँ संक्षिप्त वर्णन करनेसे पाठक वृन्दको उसका कुछ ध्यान आ सकेगा। इस यन्त्रको समझने और इसके उपयोगके लिये किसी भी अच्छे नेत्रवैद्यसे सीखनेपर थोड़े ही समयमें अति सरलतासे बोध मिल जाता है। इस यन्त्रको शियोट्जका कठिनता मापक यन्त्र (Schiotz's Tonometer) कहते हैं।

चित्र नं० २७

शियोट्जका गोलककी कठिनता-मापक यन्त्र
(Schiotz's Tonometer)

अ. यन्त्र परीक्षा साधन — ब. छोटी प्याली
क. छोटी शलाका — ट. शलाकाका मार्ग
च. यन्त्रको पकड़नेका भाग — फ. वजन रखनेका स्थान
ड. वजन प्रवेश करानेका स्थान — ग. अर्ध चन्द्राकार महराब
ह. लम्बी सूक्ष्म चिपटी शलाका — ज. अंक स्थान

'ब' छोटी प्यालीको रोगीके नेत्रगोलक पर रक्खें। 'क' छोटी शलाकाको 'ट' के मध्यमें से निकाल बिल्कुल ऊपर 'ड' के पास उसके ऊपरका सिरा रक्खें। 'फ' के पास विविध वजन-नेत्रकी कठिनताके परिमाणमें रक्खें। ये वजन ५, ७.५, १० और १५ ग्रामके हैं। इन वजनमें एक चीरा होता है। जिससे 'ड' के पाससे वजनका प्रवेश कराया जाता है। फिर वजन 'फ' के पास रुक जाता है। 'ग' अर्धचन्द्राकार महराब है। उसका सम्बन्ध 'ह' लम्बी, सूक्ष्म चिपटी शलाकाके साथ होता है।

'ज' स्थानमें अंक लगाये हैं। वहाँ पर शलाकाका सिरा कठिनताके परिमाण में बदलता है। कठिनता अधिक होने पर 'ट' शलाकाका ऊपरका सिरा बांयी ओर अधिक गति करता है। यह सिरा किस अंक पर है। यह देख फिर यन्त्रके साथ रक्खे हुए पत्रकमें देखें। जिससे कठिनता विदित होजाती है। उस पत्रक (कोष्ठक) में ० से ९० तक दबाव दर्शक अंक हैं। १५ से २५ तक अंक नीरोगी स्थिति दर्शक माने गये हैं। २५ से ३० तक कठिनताको भी क्वचित् मान लेते हैं। ३० से अधिक होनेपर रुग्णावस्थाकी सूचना मिलती है।

पाठकोंका सहज प्रश्न होगा कि ०–१५–२५, इन अंकों का अर्थ क्या? ये अंक इस तरह लाये हैं कि एक काँचकी सूक्ष्म पोली नलीमें पारा भरा है। उस नलीका सम्बन्ध सीधा नेत्रगोलकके भीतरके भागके साथ व्यवस्थित किया हो तो उस नलिकास्थित पारा भीतरके दबावके आघातसे कितने मिलीमीटर तक ऊपर चढ़ता है, इसका वर्णन इस यन्त्रमें किया है।

इस कठिनता मापक यन्त्रमें एक आपत्ति यह है कि, नेत्रगोलककी न्यूनाधिक कठिनता नापनेके लिये भिन्न-भिन्न वजन बदलना पड़ता है। एवं इन प्रत्येक वजनसे शलाकाके ऊपरका सिरा जो अंक दर्शावे, उससे कितना मिलीमीटर दबाव हुआ, यह जाननेके लिये कोष्ठक देखना पड़ता है। इस सब छानबीनमें नेत्रवैद्योंको न उतरना पड़े और रोगीके नेत्रगोलकपर यन्त्र को रखनेके साथ दबाव निर्णित होजाय, ऐसा यन्त्र मेकलीन नामक घड़ीसाजने बनाया है। उसे मेकलीनका दबाव मापक यन्त्र (Maclean's Tonometer) कहते हैं।

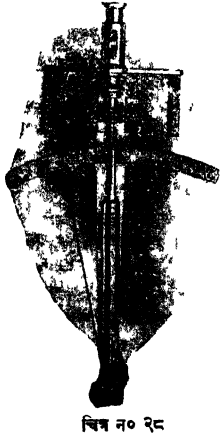

चित्र न० २८

चित्र २८-मेकलीनका कठिनतामापक यन्त्र (Maclean's Tonometer)

अ. नीचे रही हुई प्याली।

ब. नलीके मध्यभागमें रही हुई शलाका।

क. नेत्रवैद्य अपना अंगूठा और तर्जनीसे चक्र को पकड़ सके इसलिये दो डण्डी रखी हैं।

ड. लीवर

फ. अर्धचन्द्राकार महराब

'अ' प्यालीको रोगीके नेत्रगोलकपर रखकर कुछ दबाते हैं। उस प्यालीके ऊपरके अंशमें एक नली रक्खी है। उस नलीके मध्य भागमें 'ब' शलाका व्यवस्थित की है। इस शलाकाका सिरा बिल्कुल ऊपर 'ड' लिवर को हिलानेवाले प्रबंधके साथ जुड़ा हुआ है। वह लिवर 'फ' अर्धचन्द्राकार महराबके ऊपर ० से १०० तक अंक अंकित किये हैं। वे अंक नेत्रगोलककी न्यूनाधिक कठिनता के परिमाणमें फिरते हैं। इससे कठिनता कितनी है, यह तत्काल विदित होजाता है। जैसे शियोट्जके यन्त्रमें १५ से २५ मि. मी. आरोग्य स्थितिके अंक माने हैं वैसे इस यन्त्रमें २२ से ४० तक अंक कठिनता आरोग्य स्थिति दर्शक गिने हैं। ४० से ऊपर संशयात्मक स्थिति और ५० से अधिक निश्चित अधिक कठिनता दर्शक स्थिति मानी गई है।

यन्त्रकी उपयोग विधि—रोगीको एक तख्त पर सुलावें। शिरके नीचे कुछ मोटा सिराना रक्खें। जहाँसे अच्छा प्रकाश आता हो, वहाँ खिड़की या दरवाजेके पास तख्तको रखना चाहिये; जिससे नेत्रवैद्य यन्त्रके ऊपरके अंक ठीक देख सके। फिर ब्युटिन (Butyn) २ % अर्थात् १ औंस बाष्प जलमें १० ग्रेन का प्रवाही या होलोकैन (*Holocaine Hydrochloride*) १ % अर्थात् १ औंस बाष्प जलमें ५ ग्रेनको प्रवाही अथवा वर्त्तमानमें नूतन आविष्कृत ग्लेक्सो कम्पनीका एनेथीन (Anethaine) १ % प्रवाही, इन अल्पकालीन चेतना हर (Anesthetic) तीन औषधियोंमेंसे किसी एकके २-२ बूँद रोगीके दोनों नेत्रों में डाले। २ मिनटके पश्चात् पुनः २-२ बूंद डालें। इस औषध प्रयोग से रोगी को किसी भी प्रकार का कष्ट नहीं होता। रोगीको नेत्रगोलक पर रहे हुए यन्त्रके दबावसे वेदना नहीं होती, एवं नेत्रगोलककी कठिनतामें कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता।

सूचना—कोकैन (Cocaine) भी अल्पकाल चेतना हर रूपसे व्यवहृत होता है; किन्तु उसके बूँदका उपयोग नहीं करना चाहिये। कारण, वह नेत्रगोलककी कठिनताको कुछ कम कराता है। अर्थात् जितनी कठिनता हो उतनी प्रतीति नहीं होती, उससे कम भासती है। जिससे रोग निर्णयमें भूल होनेकी संभावना है।

नेत्रमें चेतनाहर औषध डालनेके ५ मिनिट बाद यन्त्रकी तैयारी करें। यदि शियोट्जके यन्त्रका उपयोग करना हो तो सबके पहले वह यन्त्र ठीक है या नहीं, यह देख लेना चाहिये। इस जाँचके लिये आकृति २४ वींमें बिल्कुल नीचेके भागमें जो 'अ' दर्शाया है, उसके ऊपरके भागमें धातुका बहिर्गोल टुकड़ा है। उस पर यन्त्रको रखकर कुछ दबावें। यन्त्र बराबर होगा, तो उसके ऊपरकी दण्डी बिल्कुल बांये हाथके अंक पर्यन्त जायगी।

(मेकलीनके यन्त्रकी इस जाँचसे दण्डीके नीचेका सिरा बिल्कुल १०० के अंक पर चला जाता है) इस तरह शियोट्जके यन्त्रकी योग्यताका निर्णय कर ७'५ ग्रामका वजन उसके विशेष स्थानमें आकृति २४ में दर्शाये 'क' के पास व्यवस्थित करें। पश्चात् रोगीको अपने ऊँचे किये हुए हाथकी ओर या कमरे की छत की ओर देखने को कहें। रोगीके नेत्रोंके नीचे-ऊपर के दोनों पलकों को खोलें। सहायक उपस्थित हो तो उसे निम्न पलक को नीचे खेंचने को कहें और नेत्रवैद्य ऊपरके पलक को ऊपर उठावें। फिर यन्त्र के 'च' स्थान को दहिने हाथके अंगुष्ठ और तर्जनीके बीच पकड़ अति धीरेसे रोगीके शुक्लमण्डलके बीचके भाग पर रक्खें। इस क्रियामें यन्त्रको किञ्चित् भी नहीं दबाना चाहिये। यन्त्र अपने वजनसे ही रोगीके नेत्रपर रहेगा। फिर तुरन्त ऊपरके हिस्सेमें रही हुई दण्डी का सिरा दहिनी ओरसे बांयी ओर हटने लगता है। वह सिरा जब स्थिर हो तब कौनसे अंक पर स्थिर हुआ, यह देखकर यादी कर लेवें। पश्चात् ७'५ वाला वजन जो चढ़ाया है, उसे निकाल डालें। उसके स्थान पर १० का वजन रक्खें। यह वजन यन्त्र में व्यवस्थित करनेके पश्चात् जिस तरह पहले शुक्लमण्डलके मध्य भागमें यन्त्र रक्खा था, उस तरह पुनः रक्खें और दण्डी किस अंक पर स्थिर होती है, उसकी यादी करें। तत्पश्चात् जो अंक दोनों वजनसे आये हों उन अंकोंसे कितना मिलीमीटर वजन विदित होता है, वह कोष्टकमें देखें। दोनों वजनसे आये हुए अंक और उससे दर्शाया हुआ दबाव लगभग समान आता है। किन्तु ३ मिलीमीटर जितना अन्तर रहे तब तक चला लेवें। अधिक अन्तर हो तो पुनः परीक्षा करें।

मेकलीनके यन्त्रसे भी परीक्षामें उसी विधि अनुसार करें। अन्तर केवल इतना ही किया जाता है कि सियोट्जके यन्त्र से जो अंक प्रतीत हों उन अंक तथा उपयोग किये हुए बांटके अनुरूप मिलीमीटर का अंक पत्रकमें देखना पड़ता है। इस मेकलीनके यन्त्रमें पत्रक नहीं देखना पड़ता। एवं किसी वजन को भी व्यवस्थित नहीं करना पड़ता। यन्त्र को नेत्रगोलकके ऊपर रखनेके साथ जिस अंक पर दण्डी का निम्न सिरा स्थिर होजाय, वही अंक नेत्रकी कठिनता दर्शाता है।

यह परीक्षा मुख्यतः नीले मोतीबिन्दुके निदानमें अति उपयोगी होती है। कारण, नीले मोतीबिन्दुके प्रकरणमें आगे दर्शाया जायगा कि उस रोग का मुख्य लक्षण नेत्र गोलककी कठिनता की वृद्धि है। सामान्यतः निम्न रोगोंमें नेत्रगोलककी कठिनता बढ़ी हुई भासती है:—

१. नीला मोतीबिन्दु—अधिमंथ—Glaucoma.

२. नेत्रगोलकके भीतर हुआ रक्तस्राव—Heamorrhage in the eyeball.

३. नेत्रगोलकके भीतर उत्पन्न ग्रन्थियां—Tumours of the eyeball.

४. तन्तुरूप समूह का दाह-शोथ-सिक्लाइटिज—Cyclitis.

५. नेत्रगृह का दाह-शोथ—Orbital Cellulitis

६. नेत्रगृह की ग्रन्थी—Tumours of orbit.

उक्त कठिनता वृद्धिके विपरीत कभी-कभी कठिनताका ह्रास होता है। उसकी मुख्य परिस्थितियां निम्न हैं:—

१. नेत्रदर्पणके विच्छेद--Detachment of retina

२. नेत्रगोलकका घाव—Wounds of eyeball.

३. नेत्रगोलकका अति बढ़ा हुआ दाह-शोथ।

४. काँचरूप रसका निकल जाना।

१२. दृष्टिपरीक्षा (*Visual acuity*)।

दृष्टिकी परीक्षा बहुधा रोगीका इतिहास जानने पर तुरन्त की जाती है, जिससे यथार्थमें इसका वर्णन प्रकरणके प्रारम्भमें ही देना चाहिये। किन्तु विशेष हेतुसे यहाँ दिया है। वह कारण यह है कि, रोगी नेत्रवैद्यके पास आनेके साथही यह परीक्षा की जाय तो कितनेक रोगियोंका विश्वास नेत्रवैद्य परसे कम हो जाता है। एवं दूसरा कारण यह है कि यदि नेत्र-वैद्यने पहले लिखी हुई परीक्षा करली हो तो नेत्रकी स्थितिका परिचय इसे मिल जाता है। फिर भी कितनेक नेत्रवैद्य यह परीक्षा सबसे पहले करते हैं।

रोगीकी दृष्टि ४ जातिकी है। १. दूरकी, २. समीपकी, ३. रङ्ग परिचयकी, ४. अन्धकार और प्रकाशका परिमाण जान लेनेकी। इनमें से नं० ३ और ४ का वर्णन आगे किया जायगा। यहाँ पर केवल नं० १ और २ का वर्णन करेंगे।

दूर देखनेकी शक्ति—रोगी दूर कितना देख सकता है, इसके निर्णयके लिये एक विशेष तख्ता बनाया है। वर्त्तमानमें ४ पार्श्ववाली एक पेटी तैयार होती है। इस पेटीमें चारों ओर काँच लगाये हैं। इन काँचोंके ऊपर अक्षर बिन्दु या टूटी हुई कड़ियोंके आकार चित्रित किये होते हैं। पठित रोगियों के लिये विविध भाषाओंके अक्षर अङ्कित करते हैं; तथा निरक्षरोंके लिये छोटे मोटे काले बिन्दु अलग-अलग खण्डोंमें चित्रित करते हैं। इंग्लेण्ड और अमरीका आदि देशोंमें जहाँ एकही अंग्रेजी लिपि प्रचलित है, वहाँ

तो एक ही अंग्रेजी पहली ए. बी. सी. के मूलाक्षर ही अङ्कित किये जाते हैं। भारतमें अनेक लिपि होनेसे दशोंके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें जो लिपि प्रचलित हो, उसके अक्षर अङ्कित किये जाते हैं।

बम्बई शहरमें मुख्यतः अङ्गरेजी, गुजराती और देवनागरी अक्षर पढ़ने वाले लोग विशेष परिमाणमें होनेसे इन ३ लिपियोंके मूलाक्षर अलग-अलग तीन कांच पर चित्रित करते हैं। निरक्षरोंके लिये गोल बिन्दु या टूटी हुई कड़ियोंकी पंक्ति तथा छोटे बालकोंके लिये कतिपय पशु और वस्तुओंके चित्र निकाले हुए होते हैं।

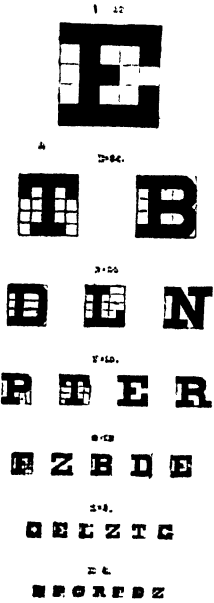

चित्र नं० ३९
स्नेलनके दृष्टिपरीक्षार्थ मूलाक्षर (Snellen's Test Types.)

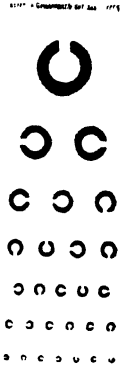

चित्र नं० ३१
भग्नमुद्रापत्रक।
(Broken ring Test types.)

चित्र नं० ३१
(अन्तमें देखें)

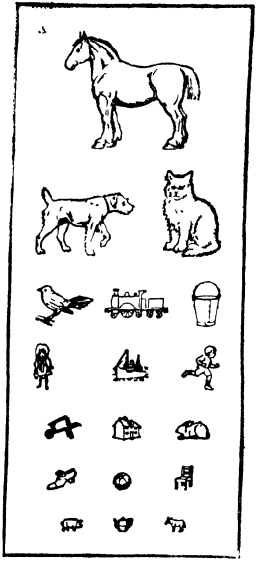

चित्र नं० ३२
प्राणीपत्रक (Animals Test-types)

अंग्रेजीके समान देवनागरी, गुजराती, उर्दू, बंगाली, गुरुमुखी, कर्णाटकी, तामिल आदि लिपियोंके अक्षर अङ्कित कराये जाते हैं। इन मूलाक्षरोंमें स्नेलनके परीक्षा-मुद्राक्षरों (Snellen's test type) और अन्य आकृतियोंके तरते विशेष प्रचलित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य चित्रकारोंके भी तरते आते हैं। तथापि स्नेलनका प्रचार अधिक होने से अनेक डाक्टर उनका ही उपयोग करते हैं।

ये मुद्राक्षर निश्चित परिमाणके होते हैं। सबके ऊपर बड़े, उसके नीचे उससे छोटे, फिर उत्तरोत्तर छोटे होते जाते हैं। चित्र नं० २९वे में ऊपरके बड़े अक्षर 'E' पर ६० का अङ्क है। उसके नीचे T.B. पर ३६ का अङ्क फिर २४, १८, १२, ८ और ६, इस प्रकारके अङ्क हैं। कितनेक तरतेमें ६ के नीचे भी एक पंक्ति देते हैं। उस पर ५ या ४.५ का अङ्क होता है।

'६०' के अङ्कका अर्थ यह है कि, यदि नेत्र नीरोगी है तो ऊपरका अक्षर ६० मीटर (२०० फुट) दूर से दीख सकेगा। अर्थात् रोगी जहाँ बैठा हो या खड़ा हो, वहाँसे २०० फुट दूर १ तख्ता रखना चाहिये। किंतु कमरा २०० फुट लम्बा होना अशक्य है। सामान्यतः कमरा ६ मीटर (२० फुट) होनेसे जो अक्षर २० फुट दूरसे प्रतीत हो वह नीरोगी नेत्रदृष्टि का सच्चा नाप स्थिर करने में आता है। अर्थात् बिल्कुल नीचेकी पंक्ति जिस पर ६ का अङ्क है, वह ६ मीटर दूरसे रोगी पढ़ सके तो उसकी दृष्टि संपूर्ण है, ऐसा माना जाता है। उसी तरह १२ के अङ्क वाले अक्षर ६ मीटर की दूरी परसे दीखे, उसकी दृष्टि नीरोगी दृष्टिकी अपेक्षा आधी है। जिसको

केवल ऊपरका ६० के अङ्क वाला अक्षर दीखे; उसकी दृष्टि पूर्ण दृष्टिका १० वां भाग है, ऐसा मानेंगे।

उक्त नियमानुसार रोगी की दृष्टि की यादी नेत्रवैद्य अपने पास रख सकता है। इस परीक्षाके लिये जो चौखट (या पेटी) व्यवहृत होती है, उसे मुद्राक्षर पेटी कहेंगे। इसके ४ बाजू होते हैं। प्रत्येक ओर काँच सज्जित करते हैं। उन पर अक्षर, बिन्दु आदि चित्रित करते हैं। ये सब रोगी को स्पष्ट दीख सकें, इसलिये उस पेटीके भीतर विद्युद्दीपक इस तरह व्यवस्थित होते हैं, कि उन दीपकों को जलाने पर पेटीके सब भागों पर समान प्रकाश पड़ता है। यथार्थमें मुद्राक्षरों को प्रकाशित कर रोगीकी दृष्टि की परीक्षा करनेमें दूसरा लाभ यह भी है कि, दिनके अलग-अलग समय पर और ऋतु भेदसे सूर्य का प्रकाश न्यूनाधिक होता है। उसका असर रोगीकी दृष्टि को नहीं होता। ऊपर कही हुई पेटीके ऊपरके भागमें एक गोल चक्र व्यवस्थित किया है। उस चक्र पर एक डोरी लपेटी है। उस डोरीको वैद्य और रोगी बैठे हों वहाँ लेजाने में आती है। वहाँ दीवारमें दो फिरकी सज्जित होती हैं। उनमेंसे डोरीके दोनों सिरों को निकालनेमें आती है। उन फिरकीमें से निकले हुए दोनों सिरे पर वजन बाँधते हैं, जिससे डोरी नहीं सरकती। इतना ही नहीं, उसके आधारमे केवल वजन को नीचे खेंच कर एक जातिके मुद्राक्षरोंमें से दूसरी जातिके मुद्राक्षरों का तख्ता बदल सकते हैं। इस सुविधाके हेतुसे नेत्रवैद्य अपना स्थान छोड़े बिना अलग-अलग तख्ते रोगीके समक्ष ला सकते हैं। प्रत्येक नेत्रवैद्य इस प्रकारकी पेटी का उपयोग करते हैं, ऐसा नहीं। कितनेक पृथक्-पृथक् तख्ते भी कार्य में लेते हैं। उन पर प्रकाश गिरे उस तरह बिजली की बत्तियां व्यवस्थित कर देते हैं। अन्य कतिपय चिकित्सिक उक्त पेटी की अपेक्षा भी विशेष मूल्यवान और दुर्बोध सामग्री को प्रयोगमें लाते हैं। इन सबका वर्णन यहां देने की आवश्यकता नहीं है। जिस विद्यार्थी को ऐसी योजना प्रत्यक्ष देखनी हो, वे बड़े शहरोंके सुप्रसिद्ध नेत्रवैद्यों की आफिस या नेत्रचिकित्साके रुग्णालय (Hospital) में जाकर देख लेवें।

दृष्टिपरीक्षा विभाग—दृष्टिपरीक्षामें दो विभाग हैं। १. दूर देखने की दृष्टि की परीक्षा; २. समीप देखने-लिखने-पढ़ने की दृष्टि की परीक्षा। इन दोनों को क्रमशः दर्शाते हैं।

दूर दृष्टि परीक्षा—रोगी की दूर दृष्टि कितनी सबल-निर्बल है, इसकी परीक्षा के लिये एक कमरा लगभग २० फुट लंबा चाहिये। उस कमरेके एक सिरे पर दीवारमें स्नेलनके मुद्राक्षर वाला तख्ता या पहले लिखी हुई मुद्रा-

अक्षरोंकी पेटी व्यवस्थित करनी चाहिये। उस तख्त या पेटीके ठीक सामने ६ मीटर (२० फुट) के अन्तर पर रोगी को बैठावें और उसे तख्तके ऊपरके अक्षर देखने को कहें। उस समय नेत्रवैद्य रोगी की एक आंख बन्द करे। जिससे रोगी केवल एक ही नेत्रसे अक्षर पढ़ सके, ऐसी योजना करें। उसके लिये नेत्रवैद्य अपने हाथों का उपयोग कर सकता है, या कागज का टुकड़ा अथवा रोगीके रूमाल को कार्य में ला सकता है–यह प्राचीन प्रथा है। वर्त्तमानमें लकड़ी या धातु की नेत्रके आकार की (नेत्र बन्द हो सके उतनी बड़ी) छोटी चिपटी कटोरी बनाते हैं, उसे ८-१० इंच लम्बे दस्तेमें सज्जित करते हैं। उस दस्ते को नेत्रवैद्य अपने हाथमें पकड़कर कटोरीसे रोगीकी आंख को बन्द करते हैं। उदाहरण रोगी–दहिने नेत्रसे पढ़ता है तो नेत्रवैद्य रोगी की बांयी आंख को बन्द कर देता है। रोगी ऊपरसे मुद्राक्षर पढ़ने लगता है। यदि अन्तिम पंक्ति जिस पर '६' अंक हो वह पढ़ सके तो उसकी दृष्टि ठीक पूर्ण है, ऐसा विदित होता है। इस निर्णयको लिख लेने के लिये अंग्रेजीमें कितनेक संक्षिप्त अक्षरों की योजना की है।

जैसे रोगी दहिनी आंखसे ६ अंकवाली पंक्ति पढ़ सकता है, तो 'R. F. V. $\frac{6}{6}$' इस तरह यादी करते हैं। R = Right दहिनी, E=Eye आंख, V=vision दृष्टि; अर्थात् दहिनी आँख की दृष्टि। मनुष्य की दृष्टिमें दूर और समीप ऐसे दो भेद हैं। दोनों की परीक्षा करनी चाहिये। यह परीक्षा दूर की है। अतः V के आगे D भी लिखना चाहिये अर्थात् Distant (दूर की दृष्टि) जो $\frac{6}{6}$ लिखा है। उनमें ऊपर का ६ अंक ६ मीटर की दूरतादर्शक है। निम्न ६ अक्षर अंतिम छठवीं पंक्ति वाचक है; अर्थात् ६ मीटर की दूरीसे जो अक्षर दिखने चाहिये, वे अक्षर रोगी देख सकता है। यदि रोगी अन्तिम पंक्ति न पढ़ सके तो '८' '१२' '१८' '२४' '३६' और '६०' के अंक जो ऊपर हैं, उन अक्षरोंके पढ़नेके अनुसार यादी करनी चाहिये। इस तरह परीक्षा करने पर R. E. D. V. $\frac{6}{12}$ (१२ के अंक वाली पंक्तिके लिये) यादी करें। फिर उसी तरह बांयी आंख की परीक्षा L. E. D V. $\frac{6}{6}$ या जो प्रतीत हो उसकी यादी करें। L = Left बांया।

रोगीकी दूर दृष्टिकी परीक्षा करनेमें जो $\frac{6}{60}$, $\frac{6}{36}$ आदि अंक लिखे हैं वे दशांश पद्धति (Metric) अनुसार हैं अर्थात् इसमें मीटर, डेसीमीटर, सेण्टीमीटर, मिलीमीटर आदि का उपयोग होता है। यह पद्धति यद्यपि वर्त्तमानमें अमेरिका जैसे देशोंमें स्वीकृत नहीं हुई। वहाँ पर तो अभी तक प्राचीन पद्धतिके अनुसार फुटोंका उपयोग होता है। उसके अनुसार संपूर्ण दृष्टि दर्शाती हो तो $\frac{6}{6}$ के स्थान पर $\frac{20}{20}$ लिखना चाहिये। अर्थात् २० फुट

दूरी परसे जो अक्षर विदित होने चाहिये वे २० फुट दूरसे जाने जाते हैं। उसी तरह बिल्कुल ऊपरके अक्षर ही मात्र प्रतीत हों तो उसके लिये $\frac{20}{200}$ का संकेत करना चाहिये।

यदि रोगी निरक्षर हो तो, टूटी हुई कड़ी वाले तख्तेमें अमुक कड़ी कौनसे स्थानमें टूटी है, वह दिखाते जाँय और जो दृष्टि प्रतीत हो उसकी यादी करें। इसी तरह बिन्दु या पशुओंके चित्र पर से भी निर्णय हो सकता है।

कितनेक रोगी ऐसे भी होंगे कि जो सबके ऊपर ६० के अंक वाला अक्षर भी ६ मीटर की दूरीसे न पढ़ सकें। तब रोगी को ३ मीटरके अन्तर पर लेजाँय, फिर वहांसे ऊपरका अक्षर पढ़ सके तो उस अनुसार R. E. D. V. $\frac{3}{120}$ यादी करें। यदि १॥ मीटरके अन्तरसे पढ़ सके तो R. E. D. V. $\frac{6}{240}$ यादी करें। यदि उससे भी दृष्टि निर्बल होगई हो तो उसके नेत्रसे दूर अपनी अंगुलियाँ गिनावें। जितनी दूरी पर से अंगुलियां गिन सके उस अनुसार यादी करें। R. E. D. V. F. C. 6 ft. अर्थात् F=Finger अंगुलियां, C = Counting गिनती; अर्थात् दहिने नेत्रकी दूर की दृष्टि ६ फुटके अन्तर परसे अंगुलियाँ गिन सकती है। उसी तरह जितना अन्तर निर्णित हो, उतने की यादी हो सकती है।

यदि रोगी की दृष्टि अंगुलियां गिनने योग्य भी न हो तो नेत्रवैद्य अपना हाथ रोगीके नेत्रके सामने चलावें, यदि हाथ चलता हुआ देखनेमें आवे तो उसकी यादी करें R. E. V. M. B. इसमें M. B. = Moving bodies चलता शरीर अर्थात् मात्र चलती हुई वस्तुएँ देख सकता है। यदि रोगी की दृष्टि उतनी भी न हो तो रोगी को अंधेरे वाले कमरेमें ले जायँ, वहां पर कुर्सी पर बैठा पीछेकी ओर की बत्ती का प्रतिफलित प्रकाश रोगीकी आंख पर डालें अर्थात् नेत्रदर्शक यन्त्रके दर्पणपर प्रकाश डाल उसका प्रतिबिम्बित प्रकाश रोगीके नेत्र पर डालें। वह प्रकाश ऊपर, नीचे, बाहर और भीतर, चारों दिशाओंसे डालना चाहिये। चारों दिशाओं का प्रकाश ठीक समझ सके तो उस अनुसार यादी करनी चाहिये। R.E.P.L. good। P. L. = Perception of Light प्रकाश का अनुभव। फिर जिस दिशाका प्रकाश रोगी न देख सके उस दिशा की यादी करें। P. L. Upward Nil अर्थात् ऊपरसे आता हुआ प्रकाश रोगी नहीं देख सकता।

यदि इतनी भी दृष्टि न रही हो तो रोगी को बत्ती का प्रकाश दिखावें। यदि वह भी न देख सके तो यादी करें कि P. L. Absent अर्थात् प्रकाश का अनुभव नहीं होता।

इन सबकी यादी हिन्दीमें निम्नानुसार करें:—

R. E. D V. $\frac{3}{3}$ = द. ने. दू. दृ. $\frac{3}{3}$ = दक्षिण नेत्र दूर दृष्टि।
L. E. D. V. $\frac{3}{3}$ = बा. ने. दू दृ. $\frac{3}{3}$ = वाम नेत्र दूर दृष्टि।
F. C. = अं० ग० = अंगुली गणना।
P. L. = प्र० द० = प्रकाश दर्शन।
Prog. L. = दि० प्र० प्र० द० = दिशा प्रतिफलित प्रकाशदर्शन।
(Progection of Light)

समीप दृष्टिपरीक्षा—जिस तरह दूर देखनेके लिये डा० स्नेलन (Snellen) ने मुद्राक्षर बनाये हैं; उस तरह समीपसे पढ़नेके लिये जेगर (Jaeger) नामक नेत्रवैद्यने परीक्षाक्षर (Test types) निर्माण किये हैं। ये भी छोटे बड़े होते हैं। सबसे छोटेके ऊपर ·३ (१) उसके पश्चात् ·४५ (१½), ·६ (२), ·७५ (२½), ·९ (३), १·२ (४), १·५ (५), १·८ (६), २·१ (७), २·६ (८½), ३·६ (१२), ४·८ (१६), ६ (२०), ९ (३०), १२ (४०), इस तरह उत्तरोत्तर मोटे-मोटे अक्षरों पर अङ्क रक्खे गये हैं। जिस तरह अंग्रेजी अक्षरोंको पढ़नेके लिये मुद्राक्षर (Type) बनाये हैं, उस तरह हिन्दी आदि भारतीय भाषाओंके लिये भी भिन्न-भिन्न लिपिके अक्षर भी बनाये हैं। एवं निरक्षर लोगोंके लिये जिस तरह दूर दृष्टि की परीक्षाके लिये बिन्दु और टूटी हुई कड़ियोंकी व्यवस्था की है, उसी तरह पढ़नेके लिये छोटे बिन्दु और टूटी हुई छोटी कड़ियोंके चित्रोंकी योजना की है। इन सब योजनाओंका मुख्य सिद्धान्त यह है कि, अक्षर जितना लम्बा हो उससे चौड़ाई ⅔ जितनी होनी चाहिये।

ऊपर जो ·३ मीटर (१ फुट), ·४५ (१½) आदि अंकोंकी व्यवस्था की है, उसका अर्थ यह है कि नेत्र बिल्कुल स्वस्थ हों तो ·३ (१) अङ्कवाले, उसमें ३ = $\frac{3}{10}$ परिमाणके छोटे अक्षर १ फुटकी दूरी परसे ठीक पढ़ाना चाहिये; और ये अक्षर रोगी उतनी दूरतापरसे ठीक पढ़ सके तो यादी पत्रक पर अङ्कित करें कि, R. E. R. V. ·3 (1 अर्थात् R = Right दाहिना, E = Eye नेत्र, R = Reading पठन, V = Vision दृष्टि। –३ परिमाण वाले अक्षरोंको १ फुट दूरसे पढ़नेकी शक्ति है। यदि वह अक्षर न पढ़ सकें और ·४५ परिमाण वाले अक्षर पढ़ सकें तो यादी करें—R. E. R. V. ·45 (1½) अर्थात् जो छोटे अक्षर १ फुट दूरसे पढ़नेमें आवे, वह पढ़नेमें नहीं आया और उससे कम नम्बरका अक्षर पढ़ा जाता है। जिस तरह दहिने नेत्रकी यादी हुई उस तरह बांये नेत्रकी भी यादी करनी चाहिये। L. E. R. V. ·३ (१) = अर्थात् बांयी आँखकी पठन दृष्टि

३ परिमाणकी हिंदीमें यादी करनी हो तो R. E R. V. के स्थान पर द. नें. प. द. = दक्षिण नेत्रकी पठन दृष्टि तथा L. E. R. V. के स्थान पर बा. नें. प. द. = बाम नेत्रकी पठन दृष्टि, इस प्रकारसे संकेत करें।

कितनेक नेत्रवैद्य R. V. = Reading Vision के स्थान पर N. V. लिखते हैं अर्थात् Near Vision = समीपकी दृष्टि। इस तरह परीक्षा करने पर विदित हो कि रोगीकी पढ़नेकी दृष्टि सम्पूर्ण है तो उस रोगीको लिखने-पढ़नेके लिये चश्मेकी आवश्यकता नहीं है। इतना ही नहीं, बल्कि उसकी आंखमें कोई रोग वर्त्तमान होनेका सम्भव भी नहीं है। यदि पढ़नेकी दृष्टि न्यूनता वाली भासे तो योग्य नम्बरका चश्मा लगाते रहें और उससे पूर्ण दृष्टि आ जाय तो समझलें कि मात्र चश्माकी ही आवश्यकता थी। जब ऐसी प्रतीति हो कि कोई भी नम्बरका चश्मा रोगीकी समीपकी दृष्टिसे सबसे छोटे अक्षर पढ़नेमें सहायक नहीं होता, तब ऐसा निर्णय करना चाहिये कि नेत्रमें कुछ विकार है। ऐसी आँखोंकी परीक्षा आगे लिखे हुए वर्णनके अनुसार करनेपर उसमें रहा हुआ रोग जाननेमें आजायगा।

अ. रंगदृष्टि की परीक्षा।

जिस तरह रोगीकी दूर-समीप दृष्टिकी परीक्षा की जाती है, उस तरह पृथक्-पृथक् रंग परीक्षाकी दृष्टि आरोग्य स्थितिमें है या नहीं इसका निर्णय भी किया जाता है। यहाँ पर यह स्पष्ट कह देना चाहिये कि, सामान्यतः कार्य-परायण व्यापार-रोजगार वालोंके लिये इस परीक्षाकी विशेष आवश्यकता नहीं है। किन्तु रेल्वे विभाग, सेना विभाग, और नौका विभागमें कार्य करने वाले मनुष्योंके लिये यह परीक्षा अति महत्त्व की है। क्योंकि रंगका बोध योग्य न हो सके तो अलग-अलग संकेतों (सिगनल-Signal) की परीक्षामें न्यूनता रहे और उसका परिणाम अति भयङ्कर आवे। इस हेतुसे यह परीक्षा उक्त कार्य विभागमें प्रवेश करने वाले उम्मेदवारोंके लिये अत्यावश्यक है। इस परीक्षार्थ अलग-अलग साधनोंका उपयोग किया जाता है। अति सामान्य और सरल साधन यह है कि, नेत्रवैद्य अपने टेबल पर अलग-अलग रंगके ऊनके लच्छे रक्खें और उम्मेदवारको लाल, पीला, नीला, बेंजनी, हरा आदि रंगका नाम कहकर उस रंगका लच्छा टेबलपरसे उठानेको कहें। यदि उसकी रंग-निर्णायक दृष्टि पूरी होगी, तो वह सच्चे रंगके लच्छेको उठायगा। यदि उसमें दोष होगा, तो वह अलग ही रंगके लच्छेको उठायगा। उसपरसे उसके नेत्रमें रंग-निर्णयकी न्यूनता अवगत हो जायगी।

एड्रिज ग्रीन (Edridge green) के रंग परीक्षाके कार्ड और रंग-परीक्षाके लालटेन आते हैं, ये दो अन्य मुख्य साधन हैं। जो कार्ड आते हैं, उनमेंसे भिन्न-भिन्न रंगके कार्डकी परीक्षा करनेके लिए उम्मेदवारको कहा जाता है। यदि उसकी रंग-दृष्टि योग्य होगी तो कहे हुए रंगका कार्ड दिखलायगा।

एड्रिज ग्रीनकी लालटेनके भीतर बिजलीकी बत्ती की जाती है और उसमें अलग-अलग रंगके काँच व्यवस्थित होते हैं। इन काँचोंको क्रमशः फिरा सकते हैं। अतः काँचको फिराते जायँ और उम्मेदवारको रंग पूछते जायँ। उसका नेत्र ठीक होगा, तो वह सब रंगोंको जान सकेगा। जिस तरह एड्रिजके कार्ड और लालटेन आते हैं उस तरह अन्य नेत्र चिकित्सकोंने भी कार्ड और लालटेनकी शोध की है। उन सबके नाम देनेकी यहाँ आवश्यकता नहीं है।

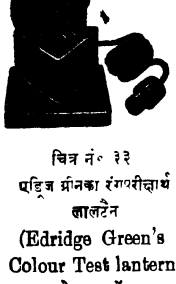

चित्र नं० ३३
एड्रिज ग्रीनका रंगपरीक्षार्थ लालटेन

रंगकी अंधतावाले रोगियोंमें विशेषतः लाल और हरे रंगकी परीक्षा करनेकी शक्ति कम होती है। इनमें भी कितनेक रोगी कुछ अंशमें वर्णान्ध होते हैं तब अन्य रंग परीक्षामें पूर्णांशमें वर्णान्ध होते हैं। ऐसे रोगी लाल, केसरिया, पीला और पीला-नीला, इन रंगोंको एक ही जातिका रंग कहते हैं। अलग-अलग रंग पहिचाननेकी न्यूनताको लक्ष्यमें रखकर नेत्रवैद्योंने उन स्थितियोंके अलग-अलग नाम दिये हैं; अर्थात् रंग अन्धताके रोगियोंके मुख्य दो वर्ग बनाये हैं। १. अपूर्ण वर्णान्धता और २. संपूर्ण वर्णान्धता। इनमें अपूर्ण वर्णान्धताके ३ प्रकार हैं।

(Edridge Green's Colour Test lantern)

अ. रक्तान्धता—Protanopia—इस स्थितिमें लाल रंग नहीं भासता।

आ. हरितान्धता—Deuteranopia—इस स्थितिमें रोगी हरा रंग नहीं देख सकता।

इ. नील पीतान्धता—Tritanopia—इस स्थितिकी प्राप्ति होनेपर रोगी को पीला और नीला रंग नहीं दीखता।

इन तीनोंमें लाल और हरा रंग प्रतीत न हो ऐसी अन्धता विशेष परिमाणमें प्रतीत होती है। तृतीय प्रकारका—नीला और पीला रंग न देख सके ऐसे रोगी बहुत कम होते हैं।

जिसे लाल रंग न भासता हो उसे प्रायः हरा रंग भी प्रतीत नहीं होता;

अर्थात् ऐसे रोगियोंको लाल, नारंगी, पीला और पीला-हरा, ये सब रंग एक ही प्रकारके प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त एक और वर्ग भी रोगियोंका मिलता है कि जिन लोगोंकी वर्णान्धताका आधार प्रकाशके ऊपर अवस्थित होता है। यदि प्रकाश कम हो तो उन लोगोंको रंगका परिचय योग्य नहीं हो सकता। प्रकाश पूरा हो तो रंगको ठीक पहचान सकते हैं।

जो लोग सम्पूर्ण वर्णान्धता युक्त हैं, उनको तो किसी भी प्रकारका रंग नहीं दिखता। यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक है कि, इन रोगियोंके नेत्रमें न्यूनता हो तो केवल रंग-परीक्षाकी ही होती है; अन्य प्रकारसे दृष्टि ठीक होती है।

उक्त वर्णान्धताकी प्राप्तिके दो प्रकार हैं। १. जन्मजात अर्थात् जन्मसे ही प्राप्त; २. व्याधिजन्य।

जन्मजात वर्णान्धता—यह स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें अत्यधिक होती है। कभी केवल एक नेत्रसे ही रंगका परिचय नहीं होता। दूसरे नेत्रसे योग्य परीक्षा होती है। यह स्थिति प्रायः वंशागत होती है। यह बहुधा मातृ पक्षसे अवतरित होती है। ऐसे रोगियोंमें विशेषतः लाल और हरा रंग दोनों की अन्धतावाले विशेष परिमाणमें प्रतीत होते हैं। इससे अधिक परिमाणमें रोगी लाल या हरा, इन दोनोंमें से एक रंग नहीं जान सकता। इस स्थितिके लिये कुछ भी उपाय नहीं है।

व्याधिजनित वर्णान्धता—यह स्थिति विशेषतः नेत्रदर्पण, दर्शननाड़ी और दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखनेवाले कितनेक मस्तिष्क प्रदेशके विकारोंके हेतुसे प्राप्त होती है। कभी-कभी तम्बाखू और शराबके हेतुसे भी वर्णान्धता उपस्थित होनेके उदाहरण मिले हैं।

आ. प्रकाशदृष्टि।

प्रकाश दृष्टि—प्रकाश ज्ञान—Light sense.

प्रकाशज्ञान अर्थात् नेत्रमें अवस्थित वह शक्ति, जिससे प्रकाश, अंधकार और न्यूनाधिक प्रकाशका बोध होता है। सबको अनुभव है कि, किसी ऊँचे स्थान पर हम खड़े या बैठे हों, संध्याका समय हो अर्थात् सूर्यास्त होरहा हो, तब अनुभव होता है कि, जैसे-जैसे सूर्यास्त होता जाता है, वैसे-वैसे सूर्यका प्रकाश कम-कम होता जाता है। जिससे दूर की वस्तु पहले मंद भासती है फिर देखनेमें नहीं आती। इस तरह जब गाढ़ अंधकार हो जाता है, तब बिल्कुल समीप की वस्तु भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकती। इस तरह वर्तमान युगमें कितनेक छविगृहों (सिनेमा गृहों) में भी जब धीरे-धीरे प्रकाश

मंद किया जाता है, तब हम देख सकते हैं कि प्रत्येक पदार्थ शनैः-शनैः मंद होता जाता है। फिर कुछ प्रकाश होने पर भी कोई भी वस्तु प्रतीत नहीं होती। इसे प्रकाश ज्ञान कहते हैं। कम से कम प्रकाशसे जब हम वस्तुओं को देख सकें तब उस प्रकाशके परिमाण को न्यूनतम प्रकाश (Light minimum) कहते हैं। फिर जब प्रकाश अति ही मंद हो या अंधकार हो और शनैः-शनैः प्रकाशमें वृद्धि की जाय, तब प्रकाशमें कम-से-कम वृद्धि जिसे नेत्रसे देख सके उसे प्रकाशान्तर ज्ञान (Light difference) कहते हैं। इसके अतिरिक्त और एक नियम सबको अनुभूत है कि जब हम प्रखर प्रकाश युक्त कमरेमें से तुरन्त एक दूसरे अन्धकारमय कमरेमें जाते है, तब हम को कुछ भी नहीं दिखता; किन्तु कुछ समयके पश्चात् जैसे-जैसे समय जाता है वैसे-वैसे वस्तुएँ अधिक-अधिक भासने लगती हैं। फिर अंधकार में जितना अधिक हम देख सकें उतना हम देख सकते हैं। उस स्थिति को अंधकार संयोजन (Dark adaptation) कहते है। अंधकार वाले कमरेमें जानेके पश्चात् हमको कुछ समय के बाद ठीक दीखता है। इस सम्बन्धमें भिन्न-भिन्न नेत्रोंकी भिन्न-भि.. शक्ति है। कितनीक आँख ५ मिनटके पश्चात् स्पष्ट देख सकती हैं, तब कई एक को १५-२० मिनिट लग जाती हैं। इस विषय का भी अभ्यास आँख को करा सकते हैं। जो डाक्टर क्ष-किरण (X. Ray) से रोगियों की परीक्षा करनेका कार्य करते हैं, और जो लोग छबियन्त्रमें ली हुई प्लेटों को धोने का कार्य करते हैं, उनको प्रकाशमें से अंधकार में जाने का अभ्यास होजाता है। उनको अंधकारमें देखनेके लिये बहुत कम समय लगता है। नेत्रदर्पण की रचनाके वर्णनमें कहा गया है कि, उसकी एक पर्त्त दण्ड और शंकु (Rods & cones) की बनी है; पीतबिन्दु का भाग प्रायः दण्डरहित है; और नेत्रदर्पणकी परिधि प्रदेशमें दण्ड अधिक परिमाणमें अवस्थित हैं। प्रकाशमें होनेवाले परिवर्त्तन देखने की शक्ति मुख्य उन दण्डोंमें ही अवस्थित है। जिससे यह क्रिया विशेषांशमें नेत्रदर्पणके परिधिके भागमें होती है। एवं यह शक्ति पीतबिन्दुके भागमें कम है, इसका कारण भी उक्त वर्णनमें स्पष्ट समझाया है। इस हेतु से जब प्रकाश कम किया जाता है, तब अपने समक्ष प्रतीत होने वाले पदार्थ पहले मंद होने लगते हैं।

अमुक नेत्रमें प्रकाशज्ञान कितनेक अंश में है, उसे नापनेके लिये अलग-अलग प्रकारकी योजनाएं की हैं। इन सब योजनाओं और अलग-अलग मूल्यवान साधनों का वर्णन देने पर यह प्रकरण अत्यधिक लम्बा हो जायगा। एवं नेत्रपरीक्षामें उसका अधिक व्यावहारिक उपयोग भी नहीं

है। अतः पाठकों को संक्षेपमें समझाया जाता है। इसके लिये दो मुख्य साधन आते हैं, उनमें से एक फोस्टर का प्रकाश ज्ञानमापक यन्त्र (Foster's photometer) और दूसरा नेगलका प्रकाश संयोजन मापक यन्त्र (Nagel's adaptometer)। सामान्य उपयोगके लिये तो एक छोटी पेटीके भीतर एक गोल छिद्र होता है, और उस पेटीके भीतर ऐसे प्रकाशकी बत्ती व्यवस्थित की होती है कि, जिसका प्रकाश शनैः-शनैः कम कर सकते हैं। नेत्रवैद्य स्वयं जितने प्रकाशसे देख सके उससे रोगी जितना कम देख सके, उस परसे रोगीके प्रकाशज्ञान न्यूनाधिकताका कुछ ध्यान आ सकता है।

दूसरी योजनामें न्यूनाधिक कालापनके बहुसंख्य कांच एक पेटीमें सज्जित किये हों। उनमेंसे अधिकाधिक काले कांचोंको नेत्रकी ओर रखनेमें आता हो तथा अन्धकारवाले कमरेमें की हुई बत्तीका प्रकाश रोगी देख सकता हो, तो उस परसे प्रकाशज्ञानका माप निकाल सकते हैं।

यह परीक्षा विशेषतः जो लोग रतौंधीसे पीड़ित हों, या जिनमें इस विकारका प्रारम्भ होता हो, उन लोगोंकी परीक्षाके लिये उपयोगी है।

नक्तान्धता—रतौंधीपन कितनेक कुटुम्बोंमें वंश परम्परागत आता है। एवं देहमें किसी वस्तुके विषके हेतुसे तथा नेत्रदर्पण, दर्शननाड़ी और ऊँच दृष्टिकेन्द्र स्थानोंके रोगके हेतुसे हो सकता है। नेत्रदर्पणके रोगोंका वर्णन करनेके समय इन रोगोंका विवेचन किया जायगा। यहाँ पर इतना कह देना आवश्यक है कि रतौंधीके मुख्य दो प्रकार हैं। १. जन्मसिद्ध; २. व्याधिजन्य या विषजनित। इनके अतिरिक्त एक तीसरा प्रकार यह है कि, वह रोगीको भोजनमें योग्य पोषक तत्त्वों, मुख्यतः विटामिन A और D की न्यूनताके हेतुसे उत्पन्न होता है। वर्त्तमानके महासमरके हेतुसे भोजन हलका (न्यून पोषक) मिलता है; और कितनेक जातिके सात्विक भोजन मँहगाई और नियन्त्रणके हेतुसे सामान्य जनताको मिल ही नहीं सकता। उस हेतुसे भी इस प्रकारकी रतौंधीके रोगी बड़ी संख्यामें बम्बई शहरमें प्रतीत होते हैं।

व्याधिजनित या विषजनित रतौंधी कहिये, उसकी सम्प्राप्ति विशेषतः शराब और तमाखूका विष रक्तमें मिल जानेपर होती है। ऐसे व्यसन वाले रोगी यदि समयपर (रोग प्रबल होजानेके पहले) इन व्यसनोंको त्याग दें और योग्य उपचार करें तो यह रतौंधी दूर हो सकती है।

इस तरह जो रतौंधी विटामीन A और D की न्यूनतासे उत्पन्न हुई है, वह भी मक्खन, ताजा दूध, काडलिवर ओइल (Cedliver oil) और हलीबट ओइल (Halibut oil) या इन दोनों प्रकारके तैलके अभावमें

शार्क नामक मत्स्योंका तेल (Shark oil) आदिके सेवनसे जल्दी दूर होजाती है।

दिवान्धता—जैसे ऊपर रतौंधीपनेका वर्णन किया, वैसे दृष्टिमणिकी अमुक अंशमें अपारदर्शकता जो विशेषतः दृष्टिमणिके मध्य भागमें आई हुई है, उस रोगमें रोगीको दिनमें कम दिखता है किन्तु शामको और रात्रिको अन्धकार होनेपर उसकी दृष्टि विशेषतः सबल बनती है। इस स्थितिको दिवान्धता (Day Blindness) कहते हैं। इस स्थितिकी सम्प्राप्तिका एक ही हेतु है कि, कनीनिकाके ऊपर दिनका प्रकाश गिरनेसे यह आकुंचित होती है और इस हेतुसे दृष्टिमणिका जो भाग अपारदर्शक होता है, उसी भागसे रोगीको देखना पड़ता है; जिससे उसकी दृष्टि कम हो जाती है। सायंकालको प्रकाश कम होनेपर कनीनिकाका आकुंचन कम होता है जिससे दृष्टिमणिके मध्यभागसे जो बाहरका भाग है और जो पारदर्शक है वह भाग रोगीके उपयोगमें आता है। इस हेतुसे वह अधिक देख सकता है।

६ दृष्टिक्षेत्र की परीक्षा।

Examination of the Field of Vision.

नेत्र को ठीक स्थिर रखकर, नेत्र को कुछ भी न चलाते हुए परिधिके भागमें अपनी जो दृष्टि जाती है, उसे नेमिदृष्टि (Pripheral vision) कहते हैं; और वह दृष्टि जिस स्थानमें जाती है उसे दृष्टिक्षेत्र (Field of vision) कहते हैं। जब हम एक नेत्र को बन्दकर दूसरे नेत्रको स्थिर रख अपनी अंगुलीको मध्यमें रखकर देखते हैं, तब वह अंगुली स्पष्ट प्रतीत होती है। उस दृष्टिको मध्यदृष्टि (Central vision) कहते हैं। यदि हम अंगुली को बाहर, भीतर, ऊपर, नीचे, इस तरह चारों ओर चलाते रहेंगे तो वह अंगुलीदर्शन मंद-मंद होता जायगा और अन्तमें अंगुली दिखना बिल्कुल बन्द हो जायगा। यदि हम लक्ष्यपूर्वक सूक्ष्म निरीक्षण करेंगे तो विदित होगा कि बाहर की ओर वह अंगुली अधिकसे अधिक लम्बाई तक दिखती है। इसका उपयोग दृष्टिक्षेत्रके नापके लिये होता है, यह विषय समझाया जायगा। संक्षेपमें दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र (Perimeter) से जो यादी की जाती है, उसमें बाहर की दृष्टिमर्यादा ९०° से भी आगे चली जाती है। भीतरके भागमें अर्थात् नाक की ओर लगभग ६१° तक। ऊपरके भागमें ६२° तक तथा नीचे की ओर लगभग ७२° तक जाती है। इस परसे पाठकों को सहज विदित हुआ होगा कि, दृष्टिमर्यादा अधिकसे अधिक बाहर की ओर है। उससे कम नीचे की ओर, उससे कम भीतर की ओर तथा सबसे कम ऊपर

की ओर है। ऐसा होने का कारण एक ही है। वह यह है कि, बाहरकी ओर दृष्टिमर्यादा को किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं है। निम्न ओर नेत्रगुहा के नीचे का किनारा कुछ अंशमें अवरोधक है; भीतर की ओर निम्न भागकी अपेक्षा नासिकासे अधिक प्रतिरोध होता है; तथा ऊपर की ओर भ्रू होनेसे सबसे अधिक अन्तराय पहुँचता है। इसी हेतुसे ऊर्ध्व भागमें दृष्टिमर्यादा कमसे कम होती है।

नेत्रदर्पणके कर्त्तव्यके वर्णनमें लिखा है कि तीक्ष्णसे तीक्ष्ण दृष्टि नेत्रदर्पणके मध्य भागमें अवस्थित पीत बिन्दुमें है; और जैसे-जैसे नेत्रदर्पणकी परिधि की ओर जाते हैं, वैसे-वैसे दृष्टि न्यून होती जाती है। यहाँ पर एक विशेष बात यह कहना चाहिये कि, मध्य दृष्टि विशेषतः नेत्रदर्पणके मध्य में अवस्थित है, और नेमिदृष्टि अर्थात् जिस दृष्टिसे हम हल-चल सकते हैं और चारों ओर उपस्थित पदार्थों को देख सकते हैं, उस दृष्टि का आधार बिल्कुल नेत्रदर्पणके मध्य भागसे बाहरके भाग पर और परिधि (नेमि) के भाग पर रहा है। यहाँ पर और भी स्पष्ट करना चाहिये कि मध्य दृष्टि का आधार नेत्रदर्पणमें अवस्थित शंकुओं पर तथा नेमिदृष्टि का आधार दण्डों पर है।

ऊपर लिखा है कि दृष्टिक्षेत्रका कुछ निर्णय अंगुली को नेत्रके पास चारों ओर फिराने पर होता है, किन्तु उससे जो परिचय मिलता है वह इतना अस्पष्ट है कि उसके आधारपर रोगीके दृष्टिक्षेत्रकी सच्ची निर्णीत यादी नहीं रख सकते। इस अपूर्णता को दूर करनेके लिये कितनेक कुशल नेत्रवैद्योंने एक यन्त्रकी शोध की है। उसे नेत्रदृष्टि मापक यन्त्र (Perimeter) संज्ञा दी है। इस यन्त्र की शोध करने वालोंमें पहला प्रिस्टली स्मिथ (Pristly Smith) है; जिससे उनके नामसे यह यन्त्र प्रसिद्ध है। इसके पश्चात् अनेक नेत्रवैद्योंने उस यन्त्रमें भिन्न-भिन्न अन्तर करके उस यन्त्रको अपने-अपने नाम दिये हैं। इनमें एक अन्तिम शैली का यन्त्र एडिनबरो के एक नेत्रवैद्यने बनाया है। पहलेके यन्त्रमें अति संशोधन परिवर्धन किया है।

इस यन्त्रको टेबल पर सज्जित किया है, वह टेबल लोहेका होता है। अच्छी जातिके यन्त्रके भीतर कितनेक पुर्जाओं द्वारा इस यन्त्रको ऊपर नीचे करनेकी व्यवस्था भी होती है। इसके एक सिरे पर लम्बी शलाका और दूसरे सिरे पर छोटी शलाका होती है। या टेबलके एक सिरे पर चौखटकी

योजना होती है। उस पर ठोड़ी (चिबुक) टिकानेका भाग होता है। या छोटी शलाकाके ऊपरके हिस्सेमें एक मोड़ रहता है, उस पर ठोड़ी रहती है जिससे रोगीके शिर और मुँह स्थिर रहते हैं। कितनेक यन्त्रोंमें रोगीके एक

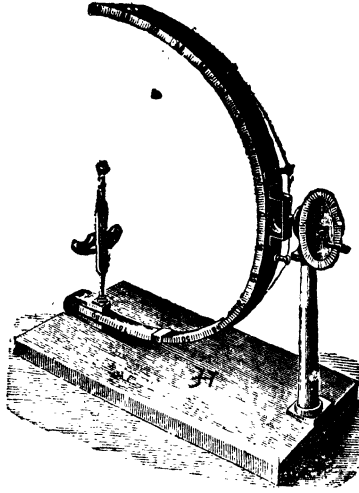

चित्र नं० ३४ दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र (Perimeter)।

नेत्रको बन्द रखनेके लिये विशेष योजना होती है। ऐसी योजना न होनेपर नेत्रवैद्य अपने हाथमें या अन्य किसी युक्तिमे रोगीके एक नेत्रको बन्द रखते हैं।

जो लम्बी शलाका है, उसके ऊपरके सिरे पर एक लोहेकी अर्धचन्द्राकार (वर्त्तुलके चतुर्थ या अर्धभाग जितनी) कमानी इस तरह व्यवस्थित होती है कि, वह बाहर, ऊपर, भीतर, नीचे या दिशाओंके बीच किसी भी कोनमें फिर सकती है।

भूमिति शास्त्रके नियमानुसार एक वर्तुल ३६० अंशका बनता है। वह कमानी चतुर्थांशकी होने पर उसके ऊपरके और नीचेके सिरे पर ९० का अङ्क दर्शाया होता

है। एवं बीचमें ५–१०–१५ आदि अङ्क रहते हैं। अथवा ऊपरके सिरेपर ९० का अङ्क तथा मध्य भागमें ८०, ७०, ६०, ५०, ४०, ३०, २०, १०, ०, ये अङ्कित होते हैं। पुनः शून्यसे प्रारम्भ होकर बिल्कुल निम्नान्त भाग तक ९० अङ्क आ जाता है।

उस कमानी पर एक छोटी सी तख्ती 'फ' है। जो दो लोह पत्रोंसे बनी है। ऊपरके लोह पत्रमें १–५–१०–२० मिलीमीटर (१ मि० मी० अर्थात् $\frac{१}{१०००}$ मीटर या $\frac{३९}{१०००}$ इञ्च) की खिड़कियोंकी योजना रहती है। उन खिड़कियोंके नीचे श्वेत, रक्त, पीत, हरित, और नील चौकोन या गोल वर्णपत्र व्यवस्थित हो सके ऐसी व्यवस्था की है। इन पत्रोंको ऊपर सरका सकते हैं।

उपर्युक्त शलाकाके ऊपरके सिरेमें एक गोल चक्र सज्जित किया है। उस चक्रमें एक पेंसिल रक्खी जाती है। शलाकाके निम्न भागमें एक और शलाका लगी रहती है। उसके सिरेपर दृष्टिक्षेत्रदर्शक पत्रक रहता है। उस चक्रको फिराने पर भिन्न-भिन्न अङ्कोंके पास रोगीको 'फ' तख्ती की खिड़कियोंके नीचे व्यवस्थित किये हुए श्वेत आदि रंगके पत्र फिरते हैं। जिन-जिन अङ्कोंके पास भिन्न-भिन्न रंगके पत्र जब दीखना बन्द हो, तब उन-उन अंकोंकी यादी (या दृष्टिक्षेत्र) स्वयमेव दृष्टिक्षेत्र पत्रकपर चित्रित हो जाती है, या चित्रित की जाती है।

यद्यपि यह यन्त्र अन्धकारमय कमरेमें एवं अच्छी तरह प्रकाश-वाले कमरेमें रखकर भी रोगीकी परीक्षा हो सकती है, तथापि विशेष रोगियोंके लिये तो इस यन्त्रका उपयोग सामान्य सूर्यका प्रकाश आता हो ऐसे कमरेमें ही करना पड़ता है। एवं कुछ रोगियों, जिनको इतने तक दृष्टिहानि पहुँच गई हो कि, किसी भी प्रकारके आकारको न देख सकते हों, मात्र बत्तीका प्रकाश ही देख सकते हों, ऐसे अतिमंद दृष्टिवाले रोगियोंके लिये इस यन्त्रका उपयोग अंधकारवाले कमरेमें करना पड़ता है।

कितनेक रोगोंमें भिन्न-भिन्न रंगोंकी वस्तुओंको देखनेका दृष्टिक्षेत्र न्यून हो जाता है। यह न्यूनता कितने अंशमें आयी है। यह इस परीक्षा परसे विदित होता है। अतः विद्यार्थियोंको यह परीक्षा नेत्रवैद्यके सान्निध्य-में रहकर सीख लेनी चाहिये।

उपयोग विधि—रोगीको एक फिरने वाले स्टूल या कुर्सी पर बैठावें। जिस ओर रोगीके चिबुक को रखनेका भाग रहा हो, उस ओर रोगीको बैठावें। फिर उसकी ठोढ़ीको यन्त्रके 'क' भागपर व्यवस्थित करें। यदि रोगीकी दहिनी आंखकी जांच करनी हो, तो बांये मोढ़पर ठोढ़ी रखवावें।

ऐसी योजना करनेपर रोगीकी आंखका मध्य भाग अर्थात् कनीनिका वाला भाग, यन्त्रमें (दृष्टिक्षेत्र पट्टीके मध्य भागमें) अवस्थित एक श्वेत बिन्दुके ठीक सामने आजायगा। यदि रोगीकी आँखका मध्यभाग (कनीनिका) श्वेत बिन्दुसे ऊपर या नीचे प्रतीत होता हो, तो उस भागको ऊँचा-नीचा कर रोगीकी कनीनिका और श्वेत बिंदुको एक पंक्तिमें लावें। फिर ठोढ़ी टिकानेकी शलाकाके भीतर स्क्रु है, उसे अच्छी तरह दृढ़ बैठाकर उस भागको स्थिर करदें।

सूचना—इस तरह प्रबन्ध होजाने पर रोगी श्वेत बिन्दु की ओर ही देखता रहे। रोगी को अपनी दृष्टि स्थिर रखनी चाहिये। यदि रोगी अपने नेत्रको कुछ भी फिरायेगा, तो इस परीक्षा का परिणाम बिलकुल मिथ्या आयगा।

रोगी की दृष्टि स्थिर होने पर उस कमानी को फिराकर रोगीकी आँख के बाहर की ओर पकड़ रक्खें। उस कमानी पर जो एक छोटी तख्ती है, उसमें ३ मि. मी. का गोल जो वर्णपत्र है, उसे रक्खें। फिर उस तख्ती को कमानी पर लिखे हुए बिन्दुके पास लावें; जिससे रोगी को सामने रहा हुआ श्वेत बिन्दु और तख्तीके भीतर रहा हुआ सफेद दाग (वर्णपत्र), दोनों देखनेमें आवेगा। फिर तख्ती को धीरे-धीरे कमानी पर बाहर की ओर ० से ९० तक या ९० से ० तक सरकाते जाँय और 'दिखता है या नहीं' ऐसा पूछते जाँय। जब तख्तीमें व्यवस्थित सफेद दाग दीखना बन्द होजाय, तब जिस अंक पर दीखना बंद हुआ हो, उस अंक की यादी करें। उसी तरह कमानी को फिराकर बाहर की ओर ऊपरके भागके बीचमें अवस्थित कोन में रक्खें। वहाँ पर भी उसीके अनुसार तख्ती में रखा हुआ ३ मि. मी. का सफेद दाग (वर्णपत्र) दिखता है या नहीं, निर्णय करते रहें। दीखना बन्द होने पर जो अंक हो उसकी यादी करें।

इसी तरह ऊपर, ऊपर और भीतरके कोनमें, भीतर, भीतर और नीचे की दिशाके कोनमें, नीचे तथा नीचे और बाहर की दिशाके कोनमें कमान फिरा कर रोगी की दृष्टिमर्यादाके अंकों की यादी करें।

इन पत्रकों में जहाँ रोगी को न दीखे ऐसे धब्बे हों, उस भागका नेत्र-दर्पण अस्वस्थ माना जाता है। इसके अतिरिक्त इन पत्रकों में आरोग्य स्थितिमें प्रत्येक बाजमें कौनसे अंक तक दृष्टि पहुँचनी चाहियें, वह अंकित होता है। भिन्न-भिन्न नेत्रोंमें जो न्यूनता प्रतीत हो, इस परसे आरोग्य स्थितिमें कितना अन्तर हुआ है, यह दर्शा सकते हैं। उक्त

वर्णन परसे विदित हुआ होगा कि, उक्त यन्त्रसे दृष्टिक्षेत्रसे या दृष्टि-मर्यादा (Field of vision) का नाप होता है।

उक्त यादीके लिये छपा हुआ एक विशेष पत्रक आता है जो चित्र नं० ३५ में दर्शाया है। उस पर चिह्न कर (चिह्न को पंक्तिसे गोलाकार बना कर मिला लेवें) पत्रकमें रोगी की दृष्टि मर्यादा आरोग्य स्थितिमें कितनी चाहिये यह एक नियमित गोलाकार द्वारा दर्शाया होता है। जिस रोगीकी परीक्षा करने पर गोलाकार पत्रक बनाया है, उसका मिलान आरोग्य स्थिति के वर्तुलाकारके साथ करें। जिसमें आरोग्य स्थितिके अनुसार है या वर्तुल आकुंचित हुआ है, यह विदित हो जायगा।

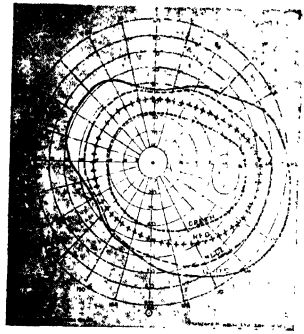

चित्र नं० ३५

रंग निर्णायक दृष्टिक्षेत्र पत्रक (दक्षिण नेत्रका)

Normal Perimeter Chart for white, blue, red and green colours.

चित्रमें श्वेत, नील, रक्त और हरित, इन रंगोंके क्षेत्र क्रमशः छोटे होते हुए दर्शाये हैं। जो सीमा दर्शायी है, वह नीरोगी नेत्र की है।

ऊपर जो वर्णन किया वह श्वेत वर्णपत्र की परीक्षा का दिया; उसी तरह विविध रंगके ३ मि. मी. के वर्णपत्रों को रखकर दृष्टिक्षेत्र कितना है यह निर्णीत किया जाता है। नेत्र की नीरोगी स्थिति में सफेद वस्तुके वर्णपत्र के लिए दृष्टिक्षेत्र अधिकतम तथा अन्य रंगोंके लिये कम है। इनका अंक निम्नानुसार माना है:—

रंग	बाहर	नीचे	भीतर	ऊपर
सफेद	९०°	७२°	६२°	६१°
नीले	८३°	६०°	५०°	४८°
लाल	७४°	५०°	४०°	३९°
हरा	६२°	४२°	३२°	३२°

सामान्यतः इस मर्यादा तक दृष्टि पहुँचती है।

जिस तरह श्वेत आदि बिन्दुओंका उपयोग करके दृष्टिक्षेत्रकी परीक्षा की, उस तरह अंधकार वाले कमरेमें एक बहुत छोटी बत्तीको कमानी की [illegible] में [illegible]जित करें और उस बत्ती को रोगी कौन से अंक तक देख सकता है, उसकी यादी भी उपरोक्त यादी के समान कर लेवें।

बत्ती भी श्वेत, नील, रक्त और हरित वर्ण की ले सकते हैं। इस तरह दोनों नेत्रों की परीक्षा कर, पत्रक तैयार करें। फिर उसमें जिस दिन परीक्षा की हो, उस दिन की तारीख लिखकर सम्हाल पूर्वक रक्खें। ऐसा करने पर पुनः १-२ मास बाद जब रोगी दृष्टिक्षेत्रके निर्णयार्थ आवे, तब दृष्टिक्षेत्रमें न्यूनाधिकता कितनी हुई है, यह अवगत हो सकेगा। फिर उस यादी परसे विचार कर जिस रोगके हेतुसे दृष्टिक्षेत्र का संकोच हुआ हो वह बढ़ता है या घटता है, यह निर्णय हो सकेगा।

ई. परीक्षोपयोगी रोग।

किस-किस रोगोंमें उक्त परीक्षा उपयोगी है, इस बात को भी जानना चाहिये। यह परीक्षा विशेषतः दृष्टिके साथमें सम्बन्ध रखने वाले मस्तिष्क के रोग, एवं दर्शन नाड़ी और उसके सिरेकी व्याधियोंमें सफल है। दृष्टि

के साथ सम्बन्ध वाले मस्तिष्कके भागों में विशेषतः दर्शनतन्तु संगम या दर्शनसंबंधके विकारों में यह परीक्षा विशेष उपयोगी है। पहले दर्शन तन्तु संगम की रचना के वर्णनमें (पृष्ठ ४२ में) लिखा है कि बाँयी ओर की दर्शन-नाड़ीके बाहर की बाजूमें आया हुआ तन्तु सीधा उसी ओरके दर्शनप्रबन्ध तथा दर्शननाड़ीके मध्य भागमें प्रवेश करता है। इस परसे पाठकोंको स्पष्ट विदित होगा कि यदि किसी भी कारणसे दर्शनतन्तु संगमके दहिनी ओर के भागमें दबाव होता होगा तो दहिनी ओर के बाहर के बाजूका दृष्टिक्षेत्र तथा बायीं ओर के भीतर के बाजूका दृष्टिक्षेत्र कम होगा या नष्ट हो जायगा। उसी तरह यह दबाव यदि दर्शनतन्तु संगम के बीचके हिस्से में होगा, तो दोनों ओरके भीतरके दृष्टिक्षेत्रमें न्यूनता या अभाव उत्पन्न होगा। दूसरी ओर यदि ऐसा ही किसी भी प्रकार का संचाप होगा और वह संचाप दर्शनतन्तु संगमके दोनों ओरके बाहर के भाग पर ही दबाव डालता होगा, तो दोनों ओरके बाहर का दृष्टिक्षेत्र संकुचित हो जायगा या नष्ट हो जायगा।

दृष्टिक्षेत्र विकृति—इस स्थितिको अंग्रेजी भाषामें निम्नानुसार अलग-अलग संज्ञा दी है:—

१. दोनों ओरकी कनपटीके दृष्टिक्षेत्रके संकोच या अभावको उभय शंख-देश या बाह्य दृष्टिक्षेत्रका अर्ध अभाव (Bitemperal Hemianopsia) कहते हैं। (यदि Hemianopsia को अर्ध दृष्टिक्षेत्र का अभाव कहेंगे तो इस स्थितिको उभय पार्श्वका बाह्य दृष्टिक्षेत्र का अभाव कहना पड़ेगा)।

२. दोनों ओरके अन्तर्गत दृष्टिक्षेत्रके संकोच या अभावको उभय नासादेश या अन्तर्दृष्टिक्षेत्रका अर्ध अभाव (Binasal Hemianopsia) कहते हैं।

पाठकोंकी ओरसे प्रश्न होगा कि ऐसी कौनसी व्याधियाँ हैं कि जिससे इस प्रकारकी स्थिति उत्पन्न होती है? शारीर-शास्त्रके अभ्यासीकी अवगत होगा कि मस्तिष्कमें पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary gland) नामक पिण्ड है जो दो भागका बना है, वह करोटीके नीचेके प्रदेशमें अवस्थित अस्थियोंके ऊपर रहा है, उस पिण्ड पर जब किसी भी प्रकारकी ग्रन्थि उत्पन्न होती है, तब उससे दर्शनतन्तु संगमके पृथक्-पृथक् भागके ऊपर दबाव होता है। उस दबावसे ऊपर लिखे अनुसार दृष्टिक्षेत्रमें विविध परिवर्तन होते हैं। अन्य शब्दोंमें कहें तो खोपरीके भीतर उत्पन्न ऐसी

ग्रन्थियोंका रोग-विनिर्णय विशेषतः दृष्टिक्षेत्रके इस प्रकारके परिवर्त्तनपर से हो सकता है। इस उदाहरणके समान मस्तिष्कके अन्य भागोंमें भी उत्पन्न होनेवाली ग्रन्थियोंसे भी दृष्टिक्षेत्रमें विविध विकृतियाँ हो जाती हैं; और उन विकृतियोंपर से उनके रोगोंका निदान हो सकता है।

जैसे दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखनेवाले मस्तिष्कके भीतरके विविध भागोंके रोगोंका असर दृष्टिक्षेत्र पर होता है। वैसे दर्शन नाड़ीपर होने वाले प्रदाह 'क्षय' और ग्रन्थियोंके हेतुसे भी दृष्टिक्षेत्रमें परिवर्त्तन हो जाता है। तमाखू और शराबके उपयोगसे उत्पन्न होनेवाली अन्धतामें भी कितना ही विशेष परिवर्त्तन दृष्टिक्षेत्रमें हो जाता है, उन सबका वर्णन उन-उन रोगोंके विवेचनमें यथास्थान लिखा जायगा। उक्त व्याधियोंके अतिरिक्त अपतन्त्रक जनित दृष्टिमांद्य (Hysterical Amblyopia) नामक विकारका निदान तो अनेक वार अलग-अलग रंगोंके और विशेषतः नीले रंगके दृष्टिक्षेत्रमें बहुत अन्तर हो सकता है। उसका वर्णन आगे उस रोगके विवेचनमें दिया जायगा।

१३. अन्ध प्रदेश (*Scotoma*)।

'नेत्रदर्पणके कर्त्तव्य' के विवेचनमें लिखा है कि नेत्रदर्पणके भीतर जिस स्थानमें दर्शनतन्तुका सिरा गया है, उस भागमें बिल्कुल दृष्टि नहीं है। अतः यथार्थमें वही भाग नेत्रदर्पणगत अन्ध प्रदेश (Scotoma) है। वह अन्ध प्रदेश प्रत्येक नीरोगी नेत्रोंके भीतर भी होता ही है। इस परसे पाठकवर्ग समझ गये होंगे कि नेत्र-दर्पणके शेष भागमें सर्वत्र न्यूनाधिक दृष्टि अवस्थित है। जब किसी भी कारणसे नेत्रदर्पणके कोई भी भागमें दृष्टि मन्द हो जाय या नष्ट हो जाय तब उस भागमें व्याधि जनित अन्ध-प्रदेश उत्पन्न होता है। इस प्रकारके नव्य अन्ध-प्रदेशोंकी उत्पत्ति नेत्र-दर्पणमें होनेवाले रक्तस्राव, नेत्र-दर्पणकी व्यथा (विकार), नेत्र-दर्पणका विच्छेद, नेत्रदर्पणकी ग्रन्थियों और दर्शन-नाड़ीके कितनेक तन्तुओंपर होनेवाले दबाव, इन सब कारणोंसे होती है या नैसर्गिक अन्ध-प्रदेशके क्षेत्रकी वृद्धि होती है। इस कृत्रिम अन्धप्रदेशकी परीक्षाके लिये निष्णात नेत्र-वैद्योंने कितनीक विशेष योजना की है। इसका प्रबंध 'दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र' की अपेक्षा अधिक सरल है। इसके नापनेके यन्त्रको अन्धप्रदेशमापक यन्त्र (Scotometer) कहते हैं।

अन्धप्रदेशमापक यन्त्र—इन यन्त्रोंमें मुख्य २ हैं। १. जेरमका पर्दा; २. इलियटका अन्धप्रदेशमापक यन्त्र। चित्र नं० ३६ और ३७ देखें।

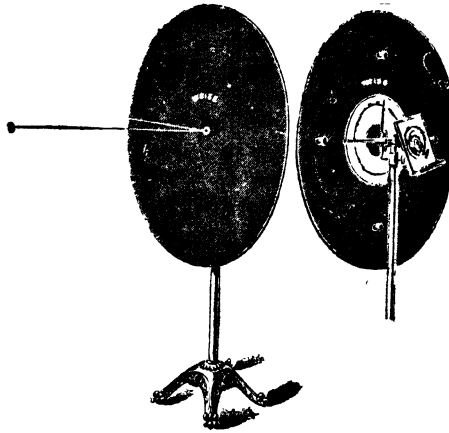

चित्र नं० १६. इलियटका अन्धप्रदेशमापक यन्त्र (Elleot's scotometer)

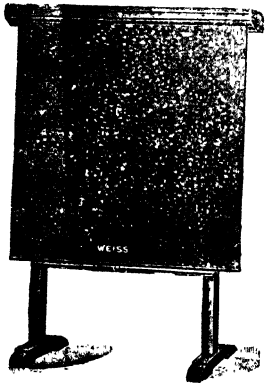

जेरमका पर्दा काले कपड़ेका तंग रह सके नेसा है, वह तैयार मिलता है। उस पर एक मिलिमीटरकी सफेद रंगकी वस्तु लगी है। वह वस्तु पृथक्-पृथक् दिशामें अर्थात् ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर सर्वत्र फिर सकती है। वह वस्तु एक डोरेमें व्यवस्थित की है, और पर्दाके ऊपर डिग्रीके अङ्क अंकित किये हैं; तथा इलियटके यन्त्रमें लोहे की बैठकपर एक गोल काला पर्दा व्यवस्थित किया है।

चित्र नं० १७, जेरमका पर्दा (Bjerrum's screen)

ये यन्त्र यथार्थ में निष्णात नेत्रवैद्यों के उपयोग के लिये हैं; अर्थात् इसका उपयोग सीखनेके लिये विद्यार्थियों को किसी अच्छे अनुभवी नेत्र-वैद्यके पास जाना चाहिये। यहां पर उसका चाहे उतना विस्तारपूर्वक वर्णन करनेपर भी पाठकों को पूर्णांश में परिचय नहीं मिल सकेगा।

इस पर्दे पर जो छोटी-छोटी सफेद वस्तुएँ हैं, वे रोगी को दिखाते रहें और जिस भागसे उसका दर्शन बन्द होजाय और फिर जिस भाग में दीखना प्रारम्भ हो, उस बीचके भागकी उस पर्दे पर यादी करें। उस परसे नेत्रदर्पण के किस भागमें दृष्टि बन्द हुई है या नेत्र दर्पण का कौनसा भाग अन्ध बन गया है, उसका निर्णय होजाता है। इस तरह नैसर्गिक अन्ध प्रदेशका क्षेत्र विस्तृत हुआ हो तो उसकी भी यादी हो सकती है।

विशेषतः नीले मोतिये (अधिमन्थ) के प्रारम्भ में जब अन्य किसी साधन से इस रोग का निदान नहीं होता, तब नैसर्गिक प्रदेश का विस्तृत होना, यह लक्षण नीले मोतियेके निदानमें अति महत्व का माना गया है। इसका विशेष वर्णन अधिमन्थ रोग प्रकरण में किया जायगा।

१४. शुक्लमण्डलका अणुवीक्षण यन्त्र।

(*Corneal Microscope with slit lamp*)

इस यन्त्रका कुछ वर्णन इसी प्रकरणके प्रारम्भमें पृष्ठ ७१ में दिया है। आकृति १८ वीं देखने पर इस यन्त्रका कुछ परिचय मिल सकेगा।

इस यन्त्रमें दो प्रकारके प्रबन्ध हैं। १. दीर्घच्छेद दीपक (Slit lamp); और २. शुक्लमण्डलका अणुवीक्षण यन्त्र (Corneal microscope)। इनमें से दीर्घच्छेद दीपककी शोध १९११ ई० में गुलस्ट्रेण्ड (Gullstrand) नामक नेत्रवैद्यने की है। उसमें ऐसी योजना है कि एक अति प्रकाशवान दीपक-नित्रा दीपक (Nitra) को एक डिब्बीके भीतर सुसज्जित किया है। उसका प्रकाश दो बहिर्गोल काँच में से निकलता है। यन्त्रके दस्तेके सिरे एक दीर्घ छिद्र रक्खा है, उसमें से अति प्रबल प्रकाश नेत्रके जिस भाग की परीक्षा करनी हो, उस पर गिरता है। उस प्रकाशको विशेष केन्द्रित करनेके लिये दस्ता के सिरेपर एक छोटे बहिर्गोल काँचकी योजना की है, उससे तेज विशेष केन्द्रित होकर इच्छित भागपर गिरता है।

शुक्लमण्डलका अणुवीक्षण यन्त्र भी उस तरह व्यवस्थित किया है कि उसे आगे, पीछे, बांयी ओर, दाहिनी ओर, ऊपर, नीचे, इच्छित स्थानमें फिरा सकते हैं। जिस भाग की परीक्षा करनी हो वह भाग उस

यन्त्रके भीतरसे २५ से ५० गुना बड़ा प्रतीत हो सकता है। इसके सब भाग ऊँचे नीचे हो सकें ऐसे टेबलपर व्यवस्थित किये होते हैं। रोगी का मस्तिष्क ठीक स्थिर रह सके इसलिये टेबल के सिरा जो रोगी की ओर है, उसपर उसकी ठोड़ी रह सके और सिरको भी आधार मिले, ऐसी योजना है।

यन्त्रका उपयोग—एक अँधेरे कमरेमें इस यन्त्रको सज्जित करें। रोगी को उस कमरेमें लेजानेके पहले यन्त्र ठीक कार्य करता है या नहीं, यह देख लेवें। फिर रोगीको लेजाकर एक स्टूल या कुर्सीपर बैठावें। यन्त्रकी दूसरी ओर नेत्रवैद्य बैठें। रोगीकी ठोड़ी और शिरको ठीकसे रख नेत्रवैद्यके सामने देखनेको कहें। फिर दीर्घच्छेद दीपकको चालू करें और उसका प्रकाश ठीक नेत्रगोलकके शुक्लमण्डल पर डालें। उस प्रकाशमें शनैः-शनैः अधिकसे अधिक वृद्धि हो ऐसी योजना करें। पश्चात् अणुवीक्षण को आगे पीछे लेकर नेत्रगोलक भलीभाँति स्पष्ट प्रतीत हो उस तरह व्यवस्था करें। इसके लिये उस यन्त्रको आगे, पीछे, ऊँचे, नीचे, बाँये, दहिने फिराना पड़ता है। अणुवीक्षण यन्त्रमें स्पष्ट देखनेके लिये दो योजना हैं। १. स्थूल समायोग (Coarse adjustment); २. सूक्ष्म समायोग (Fine adjustment)। पहले यन्त्रको स्थूल समायोगके चक्रसे नेत्रगोलक या उसका जो भाग देखना हो वह दीख सके उस तरह प्रबन्ध करें। फिर सूक्ष्म समायोगके लिये जो चक्र हो उसे अति शनैः-शनैः फिरावें। ऐसा करनेपर जिस भागको देखना होगा, वह भाग ठीक दीख सकेगा।

यदि सामान्य अर्थात् २५ गुना बड़ा करके देखना हो, तो एक जाति का दूरदर्शक यन्त्र (Telescope) लगाया जाता है। उससे अधिक बड़ा देखना हो तो अन्य प्रकारके दूरदर्शक यन्त्रकी योजना की जाती है। प्रायः पहले प्रत्येक भाग २५ गुना बड़ा कर सके, ऐसे दूरदर्शक यन्त्रसे जाँच की जाती है। फिर अधिक बड़े करनेवाले यन्त्रसे परीक्षा करें। दोनों नेत्रोंको एक साथ नहीं देखा जाता; किन्तु पहले एक और फिर दूसरेको देखते हैं।

इस यन्त्रसे नेत्रके भाग—नेत्रश्लेष्मावरण, शुक्लमण्डल, जलमय रसका पूर्व खण्ड, तारामण्डल, दृष्टिमणि और काँचरूप रसका आगेका भाग, इन सबका निरीक्षण हो सकता है। शुक्ल मण्डलके आगे और पीछेके हिस्से, ये भी प्रतीत होते हैं। जिससे किसी भी रोगके हेतुसे उसमें होने वाला परिवर्त्तन जो अति सूक्ष्म होनेसे केवल नेत्रसे जानना दुर्गम है, वह भी इस यन्त्र की सहायता से स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जाता है। इसी तरह जलमय रसके पूर्वखण्डमें कुछ भी अपारदर्शकता या अणुरूप पदार्थ, आगया हो, दूसरी रीतिसे प्रतीत न हो सकता हो; तथा तारामण्डल और कनीनिका

में होने वाला परिवर्त्तन, ये सब इस यन्त्रसे सुस्पष्ट विदित हो जाते हैं एवं रोग विनिर्णयके सम्बन्धमें संदेह हो, उसे भी इस यन्त्रसे निर्णित कर सकते हैं, ऐसा हमारा स्वानुभव है। इस तरह दृष्टिमणि और काँचरूपरस के आगेके हिस्सेमें कुछ भी किंचित् जो फेरफार हुआ हो, वह भी इस यन्त्रसे देख सकते हैं; तथा प्रारम्भसे ही रोग का निर्णय कर सकते हैं।

इस यन्त्रमें ३ प्रकार से परीक्षा हो सकती है। १. प्रकाश को केन्द्रित करके; २. प्रतिप्रकाश द्वारा और; ३. प्रतिफलित प्रकाश द्वारा।

१. *केन्द्रित प्रकाश*—इसकी रीति ऐसी है कि जिस भाग की जांच करना हो, उसी भागपर प्रकाश डालना।

२. *प्रतिप्रकाश* (Transilluminatio)—इसकी रीति यह है कि, जिस भाग को देखना हो उसके पीछे की ओर प्रकाश डालें, जिससे जिस भाग की परीक्षा करनी हो उस पर पिछली ओर से प्रकाश आसके।

३. *प्रतिफलित प्रकाश* (Reflected light)—जिस भागपर प्रकाश डाला जाय, वहाँ प्रकाश गिरकर, दर्पणकी रीति अनुसार प्रतिबिम्बित होकर नेत्रके इच्छित भागपर पड़े और उससे जो परिवर्त्तन हो, उसका बोध हो सके।

यहाँ कह देना आवश्यक है कि, वर्त्तमानमें दीर्घच्छेद दीपक और शुक्लमण्डलके अणुवीक्षण यन्त्रसे नेत्रपरीक्षाके विषय को इतना विशाल बना दिया है कि, केवल अनेक बड़ी हास्पिटलों में ही इस परीक्षाके विशेष निष्णातों को रक्खा गया है। जिन विद्यार्थियों को इस विषयमें पारंगत होना हो, उन्हें कम-से-कम १॥ मास तक इस विषय का अभ्यास करना पड़ता है और यन्त्र पर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। इस परसे सहज विदित होगा कि ऊपर जो वर्णन लिखा है वह अति संक्षिप्त, केवल भूमिका रूप है। विस्तार से लिखकर इस हिन्दी पुस्तकके कलेवर को बढ़ाने पर विद्यार्थियों को लाभ मिलने की अपेक्षा जाल-सा भासेगा। अतः निरुपायवश छोड़ना पड़ा है। अंग्रेजी और जर्मनी भाषामें तो इस यन्त्रसे जाँच करने का बोध प्राप्त करनेके लिये विशेष महत्वके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं। इस परसे यह विषय कितना गहन है, इसकी कुछ कल्पना विद्यार्थियों को आ सकेगी।

प्रतिप्रकाश यन्त्रसे परीक्षा।

(Transilluminator—Diaphanoscope.)

यह यन्त्र चित्र ३८ वें में दर्शाये अनुसार एक काले दस्तेमें सुसज्जित अति प्रकाश देनेवाली बिजली की बत्ती है। इसका प्रकाश केवल एक ही

छिद्र जो बत्तीके सिरे पर है, उसीमें से गिरता है; अर्थात् नेत्रगोलकके किसी भी स्थान पर इस यन्त्रकी व्यवस्था करके प्रकाश डाला जाय तो नेत्र गोलकके भीतर का भाग प्रकाशित होता है। केवल जिस भागमें ग्रन्थि हो गोलक में रक्तस्राव हो या नेत्रदर्पण का विच्छेद हो, वह भाग कम प्रकाशित दीखता है; अर्थात् इस यन्त्र का मुख्य उपयोग नेत्रदर्पण का विच्छेद और नेत्रगोलकमें उत्पन्न होने वाली ग्रन्थिके निदानार्थ है। इस यन्त्र की रचना अति सरल है। एक काले दस्ते में बिल्कुल अन्त भागमें एक बत्ती लगभग ४ से ८ वोट की सज्जित की है। उसके आगे एक छोटा छिद्र है। निम्नभाग में बिजली प्राप्त करने का बेटरीके साथ लगाने का तार है।

प्रतिप्रकाश यन्त्र
Transilluminator

चित्र नं० ३८

इस यन्त्रके उपयोग के लिये रोगी को बिल्कुल अँधेरे कमरे में ले जाना चाहिए। कमरे में बिल्कुल अंधकार होना चाहिये। किसी भी स्थानसे थोड़ा सा भी प्रकाश आता होगा, तो परीक्षा निष्फल हो जायगी। नेत्रवैद्य रोगीके सामने बैठें, या खड़े रहें। फिर बत्ती कर छिद्र स्थानको ठीक नेत्रगोलकके ऊपर नेत्रबाह्य पटल पर रक्खें। ऐसा करने पर कनीनिका रक्त प्रकाश से प्रकाशित होगी। इतना ही नहीं, भीतरके नेत्रगोलक का भाग भी प्रकाशित हो जायगा। यदि किसी भी प्रकार का विच्छेद या ग्रन्थि जैसा कुछ भी नहीं होगा, तो वह प्रकाश समभावसे प्रतीत होगा। जहाँ प्रकाश की न्यूनता प्रतीत हो, वहाँ पर विच्छेद या ग्रन्थि होने का अनुमान होता है। जैसे नेत्रगोलकके ऊपर लगाकर गोलक की परीक्षा की जाती है, वैसे भ्रू के ऊपर रख कर या गालके ऊपर रखकर अस्थिके भीतर रहे हुए विवर (हन्वीय कोटर–Maxillary Sinus) और ललाट कोटर (Frontal Sinus) की जाँच भी हो सकती है। यदि ये कोटर समान प्रकाशित हों तो वे आरोग्य स्थिति में माने जाते हैं। प्रकाशमें न्यूनता प्रतीत हो तो उसमें शोथ या पूय होने की कल्पना कर सकते हैं।

पाचवाँ प्रकरण ।

नेत्ररोग चिकित्सा ।

इस प्रकरणमें सब प्रकारके नेत्ररोगोंमें उपयोगी हो, ऐसी सामान्य चिकित्साका वर्णन किया जायगा । नेत्ररोगमें किस-किस प्रकारकी चिकित्साका आश्रय लिया जाता है, यह इस प्रकरणमें दर्शाया जायगा । भिन्न-भिन्न रोगोंकी विशेष चिकित्सा आगे अलग-अलग प्रकरणोंमें नेत्रकी शारीर रचनाके विभागके अनुसार यथाक्रमसे लिखी जायगी । नेत्र-रोगोंकी चिकित्साके मुख्य दो प्रकार हैं । अ. सार्वाङ्गिक और आ. स्थानिक । इनमें सार्वाङ्गिक ९ और स्थानिकके ८ प्रकार मिलकर १७ प्रकार निम्नानुसार होते हैं :—

अ. सार्वाङ्गिक उपचार :—

१. पथ्यापथ्य—Diet.
२. विश्रान्ति —Rest.
३. व्यायाम —Exercise.
४. नेत्ररोगोत्पादक विकारका केन्द्रस्थान, जो शरीरके अन्य स्थानमें हो, उसे दूर करना—Treating focal infections.
५. मुँहसे देने योग्य औषध—Drugs administered orally.
६. अन्तः क्षेपणार्थ औषधियाँ—त्वचाके नीचे (Subcutaneous) और मांसपेशीके भीतर (Intramuscular.)
७. विविध प्रकारके रक्तरस (Serum), गव्य (Vaccines), ट्यूबर्क्युलिन (Tuberculin) आदि ।
८. रक्तमोक्ष—(Venesection)
९. कृत्रिम ज्वर—Artificial fever.

आ. स्थानिक उपचार :—

१०. शीतोष्ण प्रयोग—Fomentation and stupe.
११. औषधोपचार—नेत्रमें डालनेकी औषधियाँ (Collirium)
१२. नेत्रश्लेष्मावरण और नेत्रके पीछेके हिस्से में पिचकारी और सुई

से प्रवेश करने की औषधियाँ—Subconjuntival and Retro-bulbar injections.

१३. विद्युच्चिकित्सा—Electric Treatment.

१४. नेत्रगोलक का मर्दन— Massage.

१५. प्रकाश चिकित्सा—Phototherapy.

१६. क्ष-किरण चिकित्सा—Redium Therapy.

१७. शस्त्र चिकित्सा—Operation Treatment.

१. पथ्यापथ्य-खुराक।

पथ्य की विचारणा दो रीति से करनी चाहिये। १. नेत्र की विविध व्याधियों में पथ्यापथ्य का निर्णय; २. भोजन में कितनेक तत्त्वों (Vitamin) की न्यूनता से उत्पन्न व्याधियों में उन तत्त्वों की प्रधानता वाला आहार देने की योजना।

जैसे प्रत्येक शारीरिक प्रदाह जनित रोगों में सामान्य नियम है कि अति मसाले वाले, चरपरे, गर्म और अति उत्तेजक आहार नहीं देना चाहिये, वैसे ही नेत्ररोगों में भी प्रत्येक प्रकार के प्रदाह में उस प्रकार का भोजन अपथ्य माना जाता है। विशेषतः शराबी लोगों को और तमाखू का विशेष उपयोग (धूम्रपान) करता हो, उनके लिये इन दोनों वस्तुओं का उपयोग बन्द करना चाहिये। यदि ऐसा न होसके तो निरुपायवश उपयोग यथाशक्य कम-से-कम कर देना चाहिये।

वर्त्तमान युगमें यह सिद्ध होचुका है कि, मनुष्य और पशु-पक्षी आदिके आहारमें कितनेक पोषक तत्त्वोंका अभाव या न्यूनता होने पर विविध प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं, ऐसे पोषक तत्त्वोंको डाक्टरीमें विटामिन नाम दिया है। फिर उसके अलग-अलग विभागों को A, B, C, D, K, M आदि संज्ञा दी हैं। नेत्ररोगोंमें इन तत्त्वोंमेंसे विटामिन A, B_1, B_2, C, D और K के साथ विशेष सम्बन्ध है।

विटामिन A की न्यूनता या अभाव हो तो रोगीको नक्तांधता (रतौंधी) उत्पन्न होती है। ऐसी अन्धतामें रोगीके शुक्लमण्डलकी बाहरकी ओरके नेत्र श्लेष्मावरणके कितनेक भागमें सिलवट होजाती है। एवं वह भाग खुरदरा और तेजोहीन बन जाता है। उसे शुक्लमण्डलका शुष्कशोथ (Xerophthalmia) कहते हैं।

विटामिन B की न्यूनता होने पर कुकूणक (Phlyctenula) की संप्राप्ति होती है। इसका वर्णन आगे दिया जायगा।

इन सबसे अधिक घातक व्याधि शिशुओं को होती है। उसे शुक्ल-मण्डल का क्षोय (Necrosis of cornea) कहते हैं। यह रोग प्रायः उन शिशुओं को होता है, जो अति कृश हों, जिनको माता का दूध नहीं मिलता या अति कम मिलता हो या कम पोषक तत्त्वयुक्त हो।

इस रोग में बालक की देह गिरती जाती है और अन्तमें नेत्रगोलकके शुक्लमण्डलका भाग सफेद होने लगता है। यह रोग विशेषतः विटामिन A और D की न्यूनता या अभाव से होता है। अतः उनके रोग निवारणार्थ विटामिन A और D युक्त दूध (आहार) की योजना करनी चाहिये।

विटामिन B अनेक बार नेत्रगोलककी मांसपेशियोंके पक्षाघात पर और दर्शनतन्तुओंके विकारों में अच्छा लाभ पहुँचाता है। विटामिन B, प्रारम्भके काँचबिन्दुमें अवश्य लाभ दर्शाता है। विटामिन C और K की न्यूनता के हेतुसे नेत्रके भीतर रक्तस्राव होता है। विटामिन D का सम्बन्ध विटामिन A के साथ अति घनिष्ठ है अर्थात् जो रोग A की न्यूनता से होते हैं वे ही रोग D की न्यूनता से भी होते हैं। अतः ऐसे रोगियों को मच्छीका तेल (Codliver oil, Hallibut oil, Shark oil), ताजा मक्खन और ताजा दूध आदि आहार दिया जाय, तो शीघ्र लाभ पहुँचता है।

जो लोग मांसाहारी हैं, उनको नेत्रप्रदाह होने पर यदि वे मांसाहार का त्याग कर देते हैं, तो उनका रोग अति शीघ्र दूर होता है।

२. विश्राँति।

नैसर्गिक नियम है कि, देहके किसी भी भाग में रोग या प्रदाह उत्पन्न हुआ हो, और फिर उस भाग का उपयोग चालू रहे तो रोग या प्रदाह बढ़ेगा। यदि उस भागको विश्रान्ति दी जाय, अर्थात् उस भागका उपयोग न किया जाय अथवा न्यून किया जाय तो उस भागके रोग या प्रदाह शमन होनेमें सहायता मिल जाती है। यह नियम नेत्रको देहके अन्य भागोंके समान या उनकी अपेक्षा भी अधिक परिमाणमें लागू होता है। निःसन्देह इस सम्बन्धमें निसर्ग रोगीको सूचना करता है जिससे रोग या प्रदाह युक्त भागके उपयोग में प्रतिरोध या कष्ट होता है। रोगीको उस भागका उपयोग करना रुचिकर नहीं भासता। फिर उस भागको आराम देना ही पड़ता है।

जिन नेत्ररोगोंमें प्रकाश असह्य हो या नेत्र खोलने में व्यथा होती हो, अथवा नेत्रसे देखनेपर पीड़ा होती हो, उन सब रोगोंमें देह और नेत्रको भी सम्पूर्ण विश्रान्ति देनी चाहिये। उदा०—नेत्रपाक हुआ हो तब पलक खुल नहीं सकते और प्रकाश सहन नहीं होता। तारामण्डलका प्रदाह होनेपर

प्रकाश अच्छा नहीं लगता; बल्कि उस नेत्रसे देखने पर नेत्र के भीतर पीड़ा होती है। इसी अनुसार तन्तुमय समूह के प्रदाह (Cyclitis) में भी नेत्रका उपयोग करते रहनेपर नेत्रके भीतर असह्य वेदना होती है।

नेत्रमध्यपटल प्रदाह (Choroiditis), नेत्रदर्पण प्रदाह (Retinitis), दर्शननाड़ी प्रदाह (Optic neuritis), नेत्रके पीछे के हिस्सेके दर्शनतन्तुके प्रदाह (Retrobulbar-neuritis) और दर्पणतन्तु विच्छेद (Retinal detachment) में नेत्र और शरीरको पूर्ण आराम देना चाहिये।

जब पूर्ण आराम की आवश्यकता हो, तब नेत्र का बिल्कुल उपयोग नहीं करना चाहिये। इतना ही नहीं, रोगी को हो सके तब तक बिछौनेमें पड़ा रहना चाहिये। जब पूर्ण आराम की आवश्यकता न हो, सामान्य विश्रान्ति चाहिये तब अनेक रोगोंमें नेत्रके पास एक हरा रंग का छोटा पर्दा या काले रंग का चश्मा (Smoked goggles) लगाने से नेत्र को बहुत आराम मिल जाता है। भूतकालमें कितने ही नेत्ररोगी बिल्कुल अंधेरे कमरेमें रक्खे जाते थे। वर्त्तमानमें वह प्रथा प्रायः बन्द की है। यदि रोगीके नेत्रों को प्रकाश न दिखाना हो तो एक या दोनों आंखों को पट्टीसे बन्द करते हैं; तथा रोगीको पूर्ण वायु और प्रकाश वाले कमरे में रखते हैं।

३. व्यायाम।

जैसे शरीरके सब अंगोंको दृढ़ स्थितिमें रखनेके लिये व्यायामकी आवश्यकता है, वैसे नेत्रको नीरोगी स्थितिमें रखनेके लिये व्यायामकी उतनी ही आवश्यकता है। नेत्रके लिये विशेषतः शीर्षासन और सूर्यनमस्कार विशेष लाभदायक प्रतीत हुए हैं।

शीर्षासनको विपरीतकरणी मुद्रा भी कहते हैं। इसका विशेष वर्णन 'हठयोग प्रदीपिका' आदि योगके ग्रन्थोंमें मिलता है। इस आसनमें शिर नीचे और पैर ऊपर किये जाते हैं। १-१ मिनट के हिसाबसे शक्ति अनुसार यह आसन बढ़ाया जाता है। सामान्यतः २४ मिनटसे अधिक नहीं बढ़ाना चाहिये। (योगके अभ्यासीको तो ३ घण्टे तक बढ़ानेका विधान किया है।) इस आसनका अभ्यास विशेष अभ्यासीसे सीखकर दिनमें एक बार सुबह भोजनके पहले किया जाता है। नूतनज्वरी, क्षयपीड़ित और हृदयरोगी के लिये निषेध है। किसी अन्तरेन्द्रियमें पूयपाक हुआ हो तब शीर्षासन अति हानिकारक है।

सूर्य नमस्कार, यह एक प्रकार का व्यायाम है। यह नेत्रके लिये

हितकर है। इस व्यायामका शोध भारतीयोंने किया है। औंध प्रदेशके श्रीमन्त राजा साहेबने उसका विशेष अभ्यास करके उसे शास्त्रीय पद्धतिमें ला दिया है। इस सम्बन्धमें उन्होंने एक पुस्तक भी लिखी है। इसके पश्चात् इस विषयपर हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि सब भारतीय भाषाओंमें पुस्तकें प्रकाशित होगई हैं। अधिक जिज्ञासुको "सूर्य नमस्कार" नामक पुस्तक देखनी चाहिये।

जिन लोगोंके नेत्रमें क्षयजनित प्रदाह हो या रोहे हों, उनको सूर्यके प्रकाशमें घूमने या बैठनेसे विशेष लाभ होता है। नेत्रकी मांसपेशियोंके कितनेक रोगोंमें इन मांसपेशियोंको व्यायाम करानेसे उनका पक्षवध दूर होता है; अथवा उनकी अवस्थामें सुधार होता है। जर्मनी जैसे विज्ञान समृद्ध देशोंमें ह्रस्वदृष्टि और दीर्घदृष्टि जैसे रोगोंकी सुश्रूषा अभी तक केवल चश्माके उपयोगसे करनेमें आती थी, वे अब उन रोगोंको नेत्रोंके विविध प्रकारके व्यायामसे आजीवन दूर करनेका दावा करते हैं। व्यायामसे रोगियोंको कितने अंशमें लाभ पहुँचता है। इस सम्बन्धमें सब नेत्रवैद्य सम्मत नहीं हुए, तथापि कितनेक रोगियोंको लाभ हुआ है, ऐसा हमने भी अनुभव किया है।

जिन रोगियोंकी सेन्द्रिय विष या मल आदिसे नेत्रशक्ति शिथिल हुई हो अथवा जिन रोगियोंकी नेत्रकी मांसपेशियों और नाड़ियोंकी शक्तिका क्षय कुछ अंशमें हुआ हो; तथा रोग निरोधक शक्ति कायम हो और केन्द्र-स्थानको हानि न पहुँची हो; उनको लाभ पहुँचता होगा। एवं जिन रोगियों की नेत्रसे सम्बन्धवाली नाड़ी संस्था और उनके केन्द्रस्थान शक्तिहीन—मृत-वत् होगये हों उनको लाभ न पहुँचता हो ऐसा अनुमान है।

४. नेत्ररोगोत्पादक विकारके देहगत मूलको दूर करना।

प्रायः प्रत्येक नेत्रवैद्यको अनुभव होगया है कि, कितनेक रोगियोंके नेत्रके प्रदाहकी परिचर्या चाहे जितनी की जाती है, फिर भी उस विकारका मूलोच्छेद नहीं होता या एक समय दमन होजाने पर पुनः आक्रमण होता है। ऐसे रोगोंके हेतुका समीचीन शोध किया जाय, तो विदित होगा कि रोगीके शरीरमें अमुक प्रदेशमें पूय वा जीर्ण प्रदाह है और उसका विष रक्तमें मिलकर नेत्रोंको हानि पहुँचाता है। देहके अन्य स्थानमें अवस्थित रहकर नेत्रोंको हानि पहुँचाने वाले रोगोंमें निम्न मुख्य हैं:—

१. मसूढ़ेका पूय (Pyorrhea)।

२. प्रसनिका ग्रन्थियोंमें पूय या उनका प्रदाह (Pus focus in Tonsils or Tonsillitis) ।
३. नासिका और उसके पासके कोटरों (Sinuses) में पूय या प्रदाहज शोथ ।
४. कान अथवा कानके पास अवस्थित शंखास्तिके पश्चिम प्रदेश गोस्तन प्रवर्द्धन (Mastoid process) में उत्पन्न पूय या प्रदाह ।
५. कण्ठमाल (Scrofula) ।
६. फुफ्फुसक्षय (Phthisis) ।
७. अन्त्रके किसी भी भागमें उत्पन्न पूय, विशेषतः उपान्त्रप्रदाह (Appendicitis) ।
८. पित्ताशय प्रदाह (Cholecystitis) ।
९. सुजाक जनित विषप्रकोप या संधिप्रदाह (Gonorrheal-arthritis) अथवा स्त्रियोंमें गर्भाशय या गर्भाशय मुखका प्रदाह ।

इन स्थानोंमें से किसी भी एक या अधिक स्थानोंमें विकृति होनेपर उसके परिणाममें नेत्रगोलकके किसी भी भागमें प्रदाह होजाता है । बल्कि शुक्लमण्डलके क्षत या बिल्कुल समस्त गोलकका पूय प्रदाह (Endophthalmitis) भी होजाता है । इन सब परिणामोंका श्रेष्ठ उपाय यह है कि, जिन-जिन स्थानोंमें पूय या प्रदाह हो, उसका शोध करके उसका उपचार पहले करें । ऐसा करनेपर नेत्रगत विक्रियाका कुछ समयमें सुधार होजायगा, या शमन होजायगा ।

५. मुखसे देने योग्य औषधियां ।

नेत्ररोगकी उत्पत्तिमें सहायक दोषके अनुरूप इन औषधियोंके भी विविध विभाग हो सकते हैं । उपदंश विष जन्य कारण हो, तो उसे दूर करनेवाली औषध देनी चाहिये ।

उपदंशज विषनाशक औषधियाँ—उपदंश अथवा उसकी विक्रियाके हेतुसे नेत्रकी विकृति होनेपर पारद और मल्लप्रधान निम्न औषधियाँ व्यवहृत होती हैं :—

पारद प्रधान औषध—

१. हाइड्रार्जिरी कमक्रिटा—Hydrargyri Cum Creta.
२. केलोमल—Hydrargyri Sub Chloridum.
३. मर्क्युरिक आयोडीड—Hydrargyri Iodidum or Biniodide of Mercury.

४. रसकपूर-मक्युरिक परक्लोराइड—Hydrargyri Perchloridum.

५. रेडमक्युरिक ऑक्साइड—Hydrargyri Oxidum Rubrum.

६. यलोमक्युरिक ऑक्साइड—Hydrargyri Oxidum Flavum.

७. ब्ल्युपील—Pilula Hydrargyri.

भूतकालमें पारदको तेलमें मिश्रित कर रोगीकी मांसपेशियोंमें पिचकारी से प्रवेश कराते थे। वर्तमानमें इस पद्धतिका त्याग हुआ है। अतः इसका यहाँ वर्णन नहीं करते।

उपरोक्त औषधियां कितने परिमाणमें और किस तरह देनी चाहिये; यह मटेरिया मेडिकामें देख लेवें।

मल्ल प्रधान औषध—उपदंशके विकारपर मल्लप्रधान औषधियोंमें मुख्य ३ विशेष व्यवहृत होती हैं।

१. सालवरसन (Salvarsan 606.)

२. नियोसालवरसन (Neo Salvarsan 914.)

३. सल्फार सेनोल (Sulpharsenol.)

इन औषधियोंको आर्सफिनामीन (Arsphenamine), नियो आर्सफिनामीन (Neo Arsphenamine) और सल्फार्स फिनामीन (Sulphars phenamine) भी कहते हैं। ये औषधियाँ औषध बनानेवाली भिन्न भिन्न कम्पनियोंने तैयार की हैं और भिन्न-भिन्न नामसे बेचते हैं।

इनके अतिरिक्त एटोक्सील (Atoxyl) और ट्राइपार्समाइड (Tryparsamide) नामक औषधियां भी व्यवहृत होती हैं।

उक्त दो औषधियाँ और उनके अनुरूप प्रयोजित अन्य औषधियोंके सम्बन्धमें नेत्र-वैद्योंमें मतभेद है। कितनेकोंकी मान्यता है कि इन औषधियोंके प्रयोगसे दर्शन-नाड़ीके क्षय होता है। परिणाममें रोगीकी दृष्टिको लाभ पहुँचना दूर रहा, बल्कि हानि होती है। अन्य नेत्रवैद्योंकी मान्यता अनुसार इन औषधोंसे कुछ भी हानि नहीं होती। जो दर्शन-तन्तुओंका क्षय प्रतीत होता है, वह स्वयमेव उत्पन्न हुआ है। कितनेक नेत्रवैद्य ट्राइपार्समाइडको साल्वरसन और नियोसाल्वरसनकी अपेक्षा विशेष सफल मानते हैं।

साल्वरसन आदिकी उपयोग विधि—साल्वरसन, नियोसाल्वरसन और सल्फारसेनोल, इन ३ औषधियोंमें से वर्त्तमानमें प्रायः साल्वरसनका उपयोग नहीं होता। उसका स्थान नियोसाल्वरसन और उसके अनुरूप

औषधियोंने ले लिया है। अतः शेष दो औषधियोंका उपयोग जानना चाहिये।

नियोसाल्वरसनका प्रयोग सुई और पिचकारी द्वारा रोगीकी शिरा-में होता है। यह औषध वायुसे रहित की हुई कांचकी छोटी बन्द शीशियों (Ampoules) में आती है। इसी तरह सल्फारसेनोल भी ऐसी ही शीशियोंमें आता है। प्रत्येक शीशीमें मात्रा अलग-अलग होती है। नियो-साल्वरसनका प्रारम्भ विशेषतः छोटी मात्रासे होता है। यदि रोगी अच्छा बलवान् हो, तो ·३० ग्रामकी मात्रासे प्रारम्भ करनेमें कुछ भी बाधा नहीं है। यदि रोगी निर्बल हो तो ·१५ ग्राम से प्रारम्भ करना चाहिये। यह इञ्जे-क्शन प्रति सप्ताह अर्थात् आठवें, आठवें दिन देना चाहिये। पहली मात्रा ·१५ ग्रामकी हो, तो दूसरी ·३० ग्रामकी, तीसरी ·४५ की, चौथी ·६० की, पाँचवीं ·७५ या ·९० की। इस तरह प्रति सप्ताह मात्रा बढ़ाते जाँय। प्रायः ७–८ समय इञ्जेक्शन करनेसे पूर्ण क्रम माना जाता है।

अन्तःक्षेपणकी तैयारी—अन्तःक्षेपण करनेके पहले रोगीके पेशाबकी परीक्षा करनी चाहिये। उसमें प्रथिन (Albumin) या शक्कर जाती है या नहीं? एवं वृक्क (Kidneys) नीरोगी है या नहीं? इनका निर्णय करें। वृक्कोंके समान हृदयकी भी जाँच करनी चाहिये। एवं इञ्जेक्शन देनेसे पहले रात्रिको सौम्य विरेचन देकर उदर शुद्धि करावें। उस रात्रिको हल्का पथ्य भोजन ही देना चाहिये। दूसरे दिन इञ्जेक्शन देना हो उस दिन बिल्कुल भोजन न देवें। चाय, दूध आदि भी न देवें।

फिर इञ्जेक्शन लेनेको रोगी आने पर जिस भागमें इञ्जेक्शन देना हो, उस भागको साबुन और जलसे अच्छी तरह साफ करें। विशेषतः कोहनीके आगेके हिस्सेमें जो शिरा आई है, उसमें अन्तःक्षेपण किया जाता है। अतः उस भागको साफ करें। फिर रोगीको टेबलपर सुला, साफ किये हुए भागको जल रहित शुद्ध मद्यार्क (Absolute Alcohol) या रेक्टीफाइड स्पिरिटसे ठीक धो देवें।

तत्पश्चात् जिस शीशीमें नियोसाल्वरसनका चूर्ण हो उसे सूक्ष्म रेती (File) से ऊपरके भाग तोड़ें। उसी तरह बाष्पजल (Distilled water) की १० सेण्टीमीटरकी शीशीको भी तोड़ें। एवं शिराके भीतर इञ्जेक्शनके लिये आने वाली विशेष पिचकारी (Intravenous Syringe) और उसमें ठीक बैठती हो ऐसी सुईको १५ मिनट तक स्वच्छ जलमें उबाल कीटाणु रहित (Sterilize) कर लेवें। फिर उस पिचकारी और सुईसे बाष्प-जल भरें; और उसे नियोसाल्वरसन वाली शीशीमें धीरे-धीरे

मिला लेवें। वह १-२ मिनटमें जलके भीतर घुल कर कुछ पीले रंगका बन जायगा। पश्चात् उस जलको पिचकारीमें खेंच लेवें। तत्पश्चात् पिचकारी-का दण्डभाग नीचे और सुई ऊपर रहे इस तरह पकड़ पिछले दण्डको शनैः-शनैः दबावें जिससे पिचकारीमें रहा हुआ प्रवाही ऊपर-ऊपर चढ़ता जायगा। जब प्रवाही सुईके ऊपरके सिरे तक प्रतीत हो तब पिचकारीमें से वायु बिल्कुल निकल जाती है। यदि पिचकारीमें कुछ वायु शेष रह जायगी तो वायुका शिरामें प्रवेश होनेसे परिणाम अति दुःखदायी आता है।

वायुको निकाल देनेके पश्चात् सुईको उबलते हुए जलमें डुबोवें। जिससे नियोसाल्वरसनके प्रवाहीका कुछ भी अंश सुई पर लगा हो धुप (धुल) जायगा। यदि वह अंश सुईपर रह जायगा, तो सुईका सिरा-प्रवेश होनेपर रोगीको जलन होगी।

अन्तःक्षेपण विधि—ऊपर कहे अनुसार तैयारी होने पर सहायक वैद्य रोगी के हाथ (दण्ड) पर एक पट्टी सामान्यतः खींचकर बांधे। फिर नेत्रवैद्य रोगी के हाथ को कोहनी के पास से दो तीन बार मोड़े जिससे शिरा फूल जावेगी और सुई डालने में सुविधा रहेगी। (नेत्रवैद्य को भी चाहिये कि वे अपने हाथ साबुन-जल से धोलें और स्पिरिट से ठीक शुद्ध करलें)। फिर फूली हुई मध्य शिरा को अपनी तर्जनी से स्थिर कर उसमें पिचकारी की सुई प्रवेश करावें। यदि सुई शिरा में गई होगी, तो

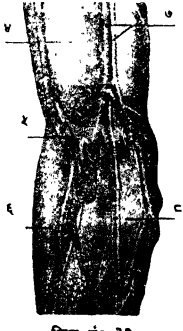

मध्य बाहु का योजनी शिरा—Vena medianacubiti.
बहिर्बाहु का शिरा —Vena Cephalica.
अन्तर्बाहु का शिरा —Vena Basilica.
बाहु की द्विशिरस्का पेशी —Muscle biceps.
करोतानती पेशी —M. Brachio-radialis.
संकोचनी पेशियां —Mm. flexores.
प्रकोष्ठ पार्श्विका त्वाची नाड़ी—Nerve cutan. antibrachii lat.
प्रगण्डान्तरीया त्वाची नाड़ी —N. cutan. Antibrachii medialis.

चित्र नं० ३६

शिरामें अन्तःक्षेपण। कोहनी के ऊपर उत्तान शिरा (उभरी हुई) अन्तः (Intravenous injection.) क्षेपण योग्य स्पष्ट विदित होती है।

आगे जाने में कुछ भी अवरोध नहीं होगा। यदि नेत्रवैद्य शिरा के भीतर इञ्जेकशन देने का अभ्यासी होगा, तो वह तत्काल निर्णय कर लेगा कि सुई शिरा के भीतर गई है या इधर-उधर गई है। शिरा में सुई जाने पर यदि पिचकारी के दण्ड को थोड़ा खींचेंगे तो काले रंग का रक्त पिचकारी में आ जायगा। इतना निर्णय होने पर दण्ड को धीरे-धीरे दबावें और पिचकारी में रहे हुए प्रवाही को शिरा में जाने देवें। अन्तःक्षेपणार्थ शिरा चित्र नं० ३९ पर से विदित हो सकेगी।

सूचना--१. इस क्रिया में कुछ भी बल प्रयोग नहीं करना चाहिये।

२. पिचकारी के दण्ड को ऊपर खिंचने के समय पिचकारी में रक्त न आया हो, तो सुई शिराके भीतर नहीं गई, अन्यत्र गई है, ऐसा जानकर वापस खींचलें और पुनः सम्हाल पूर्वक प्रवेश कराकर परीक्षा करें। पूर्ण निर्णय होने पर ही प्रवाही को भीतर डालना चाहिये। प्रवाही शिरा के बदले अन्य भाग में कुछ भी गिरेगा, तो परिणाम अति भयंकर आवेगा। तुरन्त रोगी को असह्य जलन होने लगेगी। फिर थोड़े ही समय में वहाँ पर बड़ी गाँठ हो जायगी।

३. रोगी को उत्पन्न दाह २४ घण्टे तक असह्य रहेगा, और वह बड़े जोर से चिल्लाता रहेगा। इञ्जेक्शन देने वाले नेत्रवैद्य को भी शाप देता रहेगा।

पिचकारी की सुई शिरा में जाने का पूर्ण निश्चय होने पर ही दण्ड को शनैः-शनैः दबाकर प्रवाही का प्रवेश करावें। सब प्रवाही के भीतर चले जाने पर सुई को धीरे-धीरे खेंच लेवें। फिर जिस स्थान पर सुई से छेद हुआ हो, उस स्थान पर क्षत के संरक्षणार्थ कोलोडियन फ्लेक्साइल (Collodian Flexile) के फोहे को लगा देवें। यदि अन्तःक्षेपण योग्य हुआ होगा तो रोगी को किसी भी प्रकार की वेदना नहीं होगी। अन्तक्षेपण हो जाने पर १० मिनट तक रोगी को टेबल पर ही पड़ा रहने देवें। फिर मकान पर जाने की अनुमति देवें। लगभग १२ घण्टे तक जल के अतिरिक्त अन्य कुछ भी आहार न लेना चाहिये, ऐसी विशेष सूचना करें। १२ घण्टे के पश्चात् दूध या चाय ले सकता है। २४ घण्टे के पश्चात् रोजका भोजन ले सकेंगे।

ये सब नियम सुखरूप सरलता से अन्तःक्षेपण हो गया हो, उस समय के लिये है। यदि किसी भी प्रकार का अन्तराय उत्पन्न हुआ हो तो परिणाम भयंकर आता है। ऐसे भी उदाहरण होते हैं कि, अन्तःक्षेपण करते-करते टेबल पर ही रोगी का प्राण चला जाता है। अतः अन्तःक्षेपण पूर्ण अनुभव होने पर ही देना चाहिये; अन्यथा साहस नहीं करना चाहिये।

इञ्जेक्शन देने पर ४-६ घण्टे बाद रोगी को मामूली ज्वर आता है। किसी को चक्कर आता है और किसी किसी को वान्ति होती है। उसके लिये रोगी को बिछौने में लेटा रखें, और बर्फ चूसने को देवें।

सल्फार सेनोलका अन्तःक्षेपण—यह अन्तःक्षेपण मांसपेशी के भीतर दिया जाता है। इञ्जेक्शन देने की विधि ऊपर के अनुसार है; किन्तु यह उसकी अपेक्षा अति सरल है। इसलिये जिस रोगी की शिरा अति सूक्ष्म या अस्पष्ट हो उसे तथा बालकों को भी (अति सूक्ष्म शिराओं के हेतु से) शिरा में अन्तःक्षेपण लगभग अशक्य है अतः वहाँ पर सल्फार सेनोल का व्यवहार किया जाता है। इसकी मात्रा प्रायः ·२–·४ ग्राम तक है। इस औषध का प्रयोग भी छोटी मात्रा में प्रारम्भ करें और फिर धीरे-धीरे मात्रा बढावें, वह निर्भय और उत्तम मार्ग है। यह अन्तःक्षेपण प्रत्येक ६-७ दिन पर दिया जाता है। न इञ्जेक्शन देने पर क्रम पूरा होता है।

इञ्जेक्शन देने के लिए २० या १० सी. सी. की पिचकारी और सुई ऊपर कहे अनुसार १५ मिनिट तक अच्छी तरह उबालकर तैयार करें। फिर नियोसाल्वरसनके वर्णनमें लिखे अनुसार सल्फारसेनोलके चूर्णकी शीशी और वाष्पजलकी शीशीको तोड़ें। वाष्पजलको पिचकारीमें भर सल्फारसेनोलकी शीशीमें डालकर मिलावें। औषध घुलकर साफ प्रवाही होजाने पर उसे पिचकारीमें खेंचकर फिर ऊपर कहे अनुसार वायुको बाहर निकाल

चित्र नं० ४०. मांसपेशी में अन्तःक्षेपण की तैयारी।

नितम्ब पिण्डिका मध्यमा (Gluteus medius muscle) में अन्तःक्षेपणार्थ त्वचाका स्थिरीकरण और पिचकारी पकड़ने की रीति।

देवें। यह इञ्जेक्शन प्रायः रोगीके नितम्ब (Buttock) की मांसपेशियोंमें दिया जाता है। अतः उस भाग को पहले साबुन जलसे धो फिर स्पिरिटसे साफ करें। एवं अन्तःक्षेपण करनेके पहले टिञ्चर आयोडीन फोहेसे लगालें। वह सूखनेपर सहायक वैद्य सुई जहाँ प्रवेश करानी हो वहाँ पर आध मिनिट तक एथिल क्लोराइड (Ethyl Chloride) को फुहारेके समान छिड़कें जिससे वह भाग चेतनाहीन होजायगा। फिर सुई टोंचने पर रोगीको पीड़ा नहीं होती। चित्र नं० ४० और ४१ देखने पर अन्तःक्षेपण विधि समझ में आ सकेगी।

चित्र नं० ४१. नितम्बपेशी में अन्तःक्षेपण विधि।

सब प्रकार की तैयारी होजाने पर नेत्रवैद्य बांये हाथके अंगुष्ठ और तर्जनीसे नितम्बके जिस भागमें सुई प्रवेश करानी हो, उस भागको अच्छी तरह खेंचें। ऐसा करने पर त्वचा ठीक दृढ़ होजायगी। फिर सुईको ठीक स्थिर हाथसे त्वचामें सीधी प्रवेश करावें और शनैः-शनैः मांसपेशीके भीतर लगभग १ से १॥ इञ्च तक जाने देवें। यदि रोगी अधिक मेदवाला न हो तो १ इञ्च ही बहुत होता है और रोगी अधिक मेदवाला होने पर १॥ से २ इञ्च सुई टोंचनी पड़ती है। इस तरह सुई प्रवेशित होने पर पिचकारीमें रहे हुए प्रवाहीको धीरे-धीरे मांसपेशीमें डाल देवें। फिर पिचकारी खाली होनेपर सुईको निकाल लेवें और उस छेदवाले स्थानपर टिंचर आयोडीन लगा देवें।

सूचना—आयोडीन लगानेके पश्चात् उस पेशीको हल्के हाथसे मसलें।

यदि उस भागको नहीं मसलेंगे, तो अनेक रोगियोंके वहाँ पर गांठ बन जायगी और उसे साफ होनेमें कितनेक दिन लग जायँगे।

यह इञ्जेक्शन नितम्बकी मध्यपेशीमें जघनचूड़ा (Iliac-Creast) और ऊर्वस्थिका महाशिखर (Great trochanter) के बीचमें ठीक जहाँ चित्र ४७ में स्थान दर्शाया है वहाँ पर करना चाहिये। यदि इञ्जेक्शन अज्ञानवश नितम्ब पिण्डिका गरिष्ठा (Gluteus maximum) में गृध्रसी नाड़ीप्रदेशमें वेधन किया जायगा, तो परिणाम भयंकर आवेगा ; और अति वेदना होगी।

बिस्मथप्रयोग (Bismuth)—जिस तरह उपदंशज नेत्ररोगोंपर सोमलकी औषधियोंका प्रयोग किया जाता है उसी तरह बिस्मथ धातुका उपयोग भी किया जाता है। रोग नूतन थोड़े समयका होनेपर सोमलकी कृति का व्यवहार किया जाता है और रोगी जीर्ण होने पर बिस्मथ प्रयोजित होता है। कितनेक चिकित्सक एक क्रम बिस्मथके अन्तःक्षेपणका और फिर दूसरा क्रम सोमलकी कृतिका भी देते हैं।

बिस्मथकी मुख्य कृति—

१. बिस्मथ सेलीसिलेट तेलमें (Bismuth Salicylate in oil)।

२. ओलिओ-बाई रोसे (Oleo-Bi-Roche)।

३. बिस्मोसोल (Bismosol)।

४. बिस्मथ आयोडाइड (Bismuth Iodide)।

प्रत्येक नेत्रवैद्यकी अभिरुचि अलग-अलग कृतिपर होती है। कोई एक प्रकारकी बिस्मथ की बनावटका उपयोग करता है, तो दूसरा दूसरे प्रकारकी। बिस्मथकी बनावट भी काँचकी बन्द शीशियोंमें तैयार आती हैं। एवं एक शीशीमें जितनी दवा हो उतनी एक मात्रा रूपसे व्यवहृत होती है। बिस्मथकी बनावट भी सल्फारसेनोलके समान नितम्बकी मांसपेशीमें अन्तःक्षेपण द्वारा प्रविष्ट करायी जाती है। प्रायः इनके अन्तःक्षेपण सप्ताहमें दो बार दिये जाते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य सप्ताहमें मात्र एक ही बार करते हैं। सब मिलकर लगभग १२ इञ्जेक्शन दिये जाते हैं।

कितनेक रोगियोंसे बिस्मथके इञ्जेक्शन सहन नहीं होते। उनको ३-४ इञ्जेक्शन होनेपर मुखपाक होजाता है। मुँहसे खूब लार गिरती है। ऐसा होनेपर प्रयोग बन्द करें और रोगीके मसूढ़ेकी जाँच करें। मसूढ़ेपर नीले रंगकी पंक्तियाँ प्रतीत हों तो समझलें कि रोगीको आवश्यक मात्रामें बिस्मथ पहुँच गया है। फिर आगे इसके इञ्जेक्शन न देवें।

कितनेक नेत्रवैद्य उपरोक्त सब प्रकारके उपचारोंसे संतोषकारक परि-

णाम नहीं मानते। विशेषतः नाड़ियोंके रोग—जैसा कि दर्शननाड़ी प्रदाह, क्षय, मस्तिष्कगत व्याधि जिसके हेतुसे दृष्टि मंद हुई हो, शकुन्त गतिरोग (Locomotor Ataxia) और अन्य अनेक मस्तिष्क विकार तथा सुषुम्णा काण्ड (Spinal cord) की विकृति जो उपदंश जनित हुई हो, इन सब रोगोंमें उपरोक्त उपचार अति लाभ पहुँचाते हैं, ऐसी प्रतीति नहीं होती। अतः कितनेक नेत्रवैद्योंने नियोसाल्वरसनका रोगीकी शिरामें प्रवेश करा, १ घण्टे बाद ४० सी. सी. (लगभग १०॥। ड्राम) रक्त निकालकर उसे जमने दिया (Coagulate)। २४ घण्टेके पश्चात् उस रक्तमेंसे रक्त रस (Serum) निकाल उसे जलके साथ मिला रोगीके सुषुम्ण काण्डकी थैली-में प्रवेश करानेका प्रयोग किया। परिणाममें अनेक रोगियोंको अच्छा लाभ मिलनेका अनुभव हुआ। यह पूर्ण क्रिया अति कठिन होनेसे इस ग्रन्थ के पाठकोंको अधिक उलझनमें डालना उचित नहीं माना, इसलिये वर्णन संक्षिप्त किया है।

आयोडाइड (Iodide)—आयोडीन और उसकी कृति बहुसंख्य हैं, किन्तु उनमेंसे मुख्य निम्नानुसार हैं:—

१. फ्रुक का कोलोसल आयोडिन—मुँहसे लेनेका १-५००। मात्रा १ से २ ड्राम दिनमें ३ बार जलसे।

२. फ्रुक का कोलोसल आयोडिन—अन्तःक्षेपण द्वारा देनेका—मात्रा १ शीशी (एम्पुल) प्रतिदिन १ बार मांसपेशीमें।

३. आयोडालबिन (Iodalbin)—मात्रा ५ से १० ग्रेन दिनमें ३ बार। इस दवाके केपसुल (Capsulls) मिलते हैं।

४. आयोडो-केसीन (Iodo-Caseine)—मात्रा ५ से २० ग्रेन। इस औषधकी टिकिया (Tablet) आती है।

५. आयोडिपिन (Iodipin) १०%—यह औषध आयोडिनको तैलमें मिलाकर बनाते हैं। मात्रा ६० से १२० ग्रेन।

६. आयोडोस्टारिन रोसे (Iodostarin Roche)—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। इस औषध की ४-४ ग्रेनकी टिकिया आती हैं।

७. लाइपोआयोडिन सिबा (Lipoiodine ciba)—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। यह दवा ५-५ ग्रेनकी टिकियोंके रूपमें मिलती है।

८. रियोडिन (Reodine)—यह दवा आयोडिन और एरण्ड तैलके मिश्रणसे बनती है। मात्रा ६ से ८ ग्रेन। यह दवा ३-३ ग्रेनके केपसुलमें मिलती है।

९. केलशियम आयोडो बेहनेट-सेजोडिन (Calcium Iodobehenate-Sajodin)—मात्रा १५ से ४५ ग्रेन। इस दवाकी ८–८ ग्रेनकी टिकिया मिलती हैं।

१०. फेरो सेजोडिन (Ferro-Sajodin)—इस कृतिमें यह गुण है कि यह दवा देहमें से धीरे-धीरे निकलती है; जिससे इसका असर दीर्घकाल पर्यन्त रह जाता हैं। मात्रा—८ से १५ ग्रेन। इस दवाकी ८–८ ग्रेन-की टिकिया आती हैं।

११. सियोमीन (Siomine)—मात्रा ५ से ३० ग्रेन। इस दवाके ५–५ ग्रेनके केपसुल आते हैं।

उपरोक्त सब दवाएं दिनमें ३ समय दी जाती हैं। इनके अतिरिक्त और भी अनेक औषधियां आयोडिन प्रधान आती हैं।

आयोडिनके क्षारप्रधान कृति—

१. पोटासियम आयोडाइड (Potassium Iodide)—मात्रा ५ से १२० ग्रेन तक।

२. सोडियम आयोडाइड (Sodium Iodide)—मात्रा ५ से १२० ग्रेन।

३. एमोनियम आयोडाइड (Ammonium Iodide)—मात्रा ५ से १२० ग्रेन।

ये तीनों औषधियां जलमें मिलाकर दी जाती हैं। प्रारम्भमें कम मात्रामें देवें। फिर धीरे-धीरे मात्रा बढ़ाते जांय। कितनेक डाक्टर बिल्कुल १२० ग्रेन एक समयमें अर्थात् एक दिनमें ६ ड्राम तक दे देते हैं। इन दवाओंको देनेकी उत्तम रीति यह है कि १ औंस पोटासियम, सोडियम या एमोनिया आयोडाइडको आध औंस जलमें मिलावें। जिससे क्षार जलमें मिल जायगा। अर्थात् ४८० ग्रेन क्षार २४० बूँद जलमें मिलाया है जिससे १ बूँद प्रवाहीमें २ ग्रेन क्षार है। यदि रोगीको ६ ग्रेन औषध देनी हो, तो उस गाढ़ी औषधके ३ बूँद १ औंस जलमें मिलाकर देना चाहिये। फिर जैसे-जैसे मात्रा बढ़ानी हो, वैसे-वैसे गाढे प्रवाहीका १–१ बूँद बढ़ाते रहने पर २–२ ग्रेनकी मात्रा बढ़ जायगी।

सोडियम आयोडाइड और पोटाशियम आयोडाइड ३० ग्रेनके १० सेन्टीमीटर जलमें मिले हुए एम्पुल्स मिलते हैं। वह रोगीको प्रतिदिन १ या दो बार अन्तःक्षेपण रूपमें दिये जाते हैं। इस तरह देनेपर रोगीको लाभ शीघ्र और अच्छा मिलता है।

आयोडिनजनित उपद्रव—कितनेक रोगियोंको आयोडिन या उसके क्षार बिल्कुल अनुकूल नहीं आते। ऐसे रोगियोंको आयोडिन छोटी मात्रा

में दिया जाय तो भी निम्नानुसार उपद्रव होते हैं—१. नासिकासे जलस्राव; २. बार-बार छींक आना; ३. अति प्रबल प्रतिश्याय; ४. मुँहमें कड़वा स्वाद; ५. अरुचि; ६. कनपटी और जाबड़ेमें वेदना; ७. पलक और मुँह पर शोथ; ८. कण्ठ नमकीन-सा भासना; ९. बार-बार खाँसी चलना; १०. आवाज बैठ जाना; और ११. श्वास लेनेमें कष्ट होना। अनेक रोगियोंको ये सब या इनमेंसे अनेक लक्षण इतने तीव्र प्रतीत होते हैं कि, रोगी और उनके सम्बन्धीवर्ग घबरा जाते हैं। फिर कितनेक रोगी इस औषधको पुनः लेना स्वीकार नहीं करते।

इन सब उपद्रवोंको रोकने का उत्तम उपाय यह है कि, प्रारम्भमें अति कम मात्रा देवें। पोटासियम, सोडियम या एमोनियम आयोडिनकी मात्रा २ ग्रेनसे प्रारम्भ करें। फिर जैसे-जैसे सहन करनेकी शक्ति बढ़ती जाय, वैसे-वैसे मात्रा बढ़ाते जायँ। कितनीक वार स्पिरिट ऐमोनिया एरोमेटिक के १० बूँद साथमें मिला देनेसे आयोडिनका प्रतिकूल असर कम होता है। जलपान अधिक करने पर भी आयोडिनकी विक्रिया न्यून हो जाती है।

उपर्युक्त सब लक्षण श्वास बाहर जानेके मार्गमें अवस्थित अवयवों पर होते हैं। इस परसे समझमें आया होगा कि, आयोडिन रक्तमें मिलकर निःश्वासके साथ बाहर निकलता है; उस समय उस मार्गमें रहे हुए अवयव—श्वास-नलिका, स्वरयन्त्र, नासापुटकी श्लैष्मिक-कला आदिके संसर्ग में वह आया है जिससे उन अवयवोंका दाह-शोथ हुआ है।

दाह-शोथहर औषधियाँ।

(Drugs which cure inflammation)

इस प्रकारकी औषधियोंमें मुख्य निम्न हैं :—

अ—उपदंशज विकारोंकी नाशक औषधियाँ प्रायः सब नेत्रके दाह-शोथ पर व्यवहृत होती हैं।

आ—सेलीसिलास आदि औषधियाँ।

इ—प्रथिनका अन्तःक्षेपण (दुग्धादिका इंजेक्शन)

ई—विविध प्रकारके गव्य (वेक्सिन) और रसी।

उ—कीटाणुनाशक औषधियोंसे अन्तःक्षेपण।

ऊ—सल्फोनेमाइड वर्गकी औषधियाँ।

ए—पेनीसिलिन।

अ. उपदंशज विकृति नाशक औषधियाँ।

इनका विवेचन पहिले इसी प्रकरण में किया जा चुका है।

आ. सेलिसिलास आदि औषधियाँ।

सोडा सेलिसिलास (Soda Salicylas), स्ट्रोन्शियम सेलिसिलास (Strontium Salicylas), सिंकोफेन (Cinchophen) और नियो-सिंकोफेन (Neo-Cinchophen)।

सोडासेलिसिलास—यह नेत्रकी अनेक व्याधियोंमे रोगीको पीनेके लिये दी जाती है। तारामण्डलका प्रदाह, नेत्रबाह्यपटल-प्रदाह, तन्तुरूप समूह प्रदाह, नेत्रकी स्वतंत्रनाड़ीका प्रदाह (Sympathetic Ophthalmia), नेत्रदर्पण प्रदाह, नेत्रमध्यपटल प्रदाह, दर्शनतन्तु-प्रदाह और नेत्र-गोलकके पिछले भागके दर्शन-तन्तु प्रदाह (Retrobulbar neuritis) तथा जिस-जिस नेत्र रोगका सम्बन्ध देहके संधिवात (Rheumatism) के साथ हो, उन सब रोगोंमें सोडासेलिसिलास व्यवहृत होता है।

सोडा सेलिसिलासमें २ प्रकार हैं। १. नैसर्गिक अर्थात् पौधे आदि में से बना हुआ; २. रासायनिक मिश्रण (Synthetic), इन दोनोंमें से नैसर्गिक विशेष कार्य करता है। किन्तु वह अधिक मँहगा है। मात्रा १० से ६० ग्रेन दिनमें ३ बार। कितनेक चिकित्सक सोडा सेलीसिलास के साथ उतनीही मात्रामें सोडाबाई कार्ब मिलाते हैं।

सिंकोफेन और निओ सिंकोफेन—इनमें से सिंकोफेनको एटोफेन (Atophan) और निओ सिंकोफेनको टोलीसिन (Tolysin) भी कहते हैं। इन दोनोंका गुण सेलीसिलेटसे मिलता-जुलता है। मात्रा भी उसके अनुरूप ही है। एक यही अन्तर है कि सेलीसिलेट सरलतासे जलमें घुल जाता है, जिससे वह प्रवाही रूपसे दिया जाता है; किन्तु ये दोनों औषधियाँ जलमें घुलनशील न होनेमें टिकियाके रूपमें दी जाती हैं।

इन तीनों औषधियोंसे कितनेक रोगियोंको उबाक, वमन, उदरमें पीड़ा, क्षुधानाश आदि पचनेन्द्रिय संस्थाके विकृति दर्शक लक्षण उपस्थित होते हैं। इस हेतुसे सोडा सेलिसिलासके साथ सोडाबाई कार्ब मिलाया जाता है। दोनोंको मिलाकर देने पर ऐसे विरुद्ध चिह्न प्रतीत नहीं होते।

इ. प्रथिनके अन्तःक्षेपण (प्रोटीनके इञ्जेक्शन)।

वर्त्तमानमें कितनेक समयसे ये उपचार अति प्रचलित हुए हैं। इनमें मुख्य दूध (उबाला हुआ), एओलेन (Aolan), ऑफथेलमोसन (Ophthal-

mosan), येट्रेन-केजीन (Yatren-casein), केजीओसन (Caseosun), टाइफाइड-वेक्सीन (Typhoid Vaccine, ओमनाडिन Omnadin), और लेक्टीजन (Lactigan) हैं। इनके अतिरिक्त भी अन्य बहुसंख्य इसी कोटिकी औषधियाँ मिलती हैं। इन सबमें दूधके इञ्जेक्शन प्रायः सब आँखों के औषधालयोंमें विशेष परिमाणमें प्रयोजित होते हैं। दूधके अन्तःक्षेपणसे सुजाक जन्य प्रदाह, नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह, तारामण्डलप्रदाह, शुक्लमण्डल-का क्षत, तन्तुरूप समूहका प्रदाह, कण्ठरोहिणीजन्य नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह (Diphtheritic Conjunctivitis), क्षयजनित प्रदाह और नेत्र-दर्पणप्रदाह आदि समस्त नेत्रप्रदाह शीघ्र शमन होते हैं। तारामण्डलप्रदाह और सुजाकजन्य नेत्ररोग पर तो यह उपचार जादू जैसा असर पहुँचाता है।

दूधकी *अन्तःक्षेपण विधि*--पहले गोदुग्धको बिल्कुल स्वच्छ मलमलसे छान लेवें। फिर लगभग आध औंस दूध एक काँच की परीक्षा नली (Test tube) में भर, उसे लम्बे-छोटे मुँह वाले बर्त्तनमें खड़ी रखकर बर्त्तन में जल भरें। फिर बर्त्तन को चूल्हे (स्टोव या अंगीठी) पर चढ़ा कर जलको लग-भग आध घण्टे तक उबालें जिससे परीक्षा नली में रहा हुआ दूध १०० डिग्री सेण्टी ग्रेड तक गरम हो जायगा। इस क्रिया को उष्णता जनित कीटा-णुनाश (पास्च्युराइजेशन-Pasteurization) कहते हैं। इस क्रिया से दूध के भीतर किसी भी जाति के कीटाणु हों, तो नष्ट हो जाते हैं; और दूध में रहे हुए तत्त्वों के भीतर महत्त्व का परिवर्त्तन नहीं होता। यदि दूध को चूल्हे पर उबाल लिया जाय, तो उसमें अवस्थित दुग्ध प्रथिन (केजीन-Casein) सत्व रूपान्तरित हो जायगा; जिससे अन्तःक्षेपण द्वारा इच्छित लाभ नहीं पहुँचेगा। अतः उपर्युक्त विधि अनुसार जल में रखकर उबाला जाता है। क्वचित् इतनी सुविधा न हो तो ताजा नीरोग गौ का छाना हुआ दूध परीक्षा नली में भर, ३-४ मिनिट उबाल लेने पर ही चल सकेगा। इस तरह दूध तैयार होने पर शीतल होने देवें। फिर २० सी. सी. या १० सी. सी. की पिचकारी तथा सामान्य मोटी और लम्बी सुई को १५ मिनिट तक उबाल कर शुद्ध करलें। जितनी मात्रा देनी हो, उतनी पिचकारी में भरें। सामान्यतः बच्चों को १ से २ सी. सी., स्त्रियों को ४ से ७ सी. सी. तथा बड़े पुरुषों को ६ से १० सी. सी. दिया जाता है। यह इञ्जेक्शन विशेषतः नितम्ब की मांसपेशी में दिया जाता है। इञ्जेक्शन देने के लिये रोगी को औंधा लेटाकर वेधस्थान को साबुन-जल से और फिर स्पिरिट से साफ करें। एवं फोहे से टिञ्चर आयोडिन लगा लेवें। वह सूखने पर नेत्रवैद्य त्वचा को खेंच सहायक वैद्य द्वारा एथील क्लोराइड

के फुआरे की धारा उस भाग पर डालें। वह भाग शून्य होने पर सुई को त्वचा और मांस के भीतर टोंचें। सुई मांसपेशी में जाने पर धीरे-धीरे पिचकारी में रहा हुआ दूध प्रवेश करावें। पिचकारी खाली हो जाने पर सुई को बाहर निकाल वेधस्थान पर टिञ्चर आयोडिन लगा देवें। फिर उस मांस पेशी के सब भाग को अच्छी तरह मसल देवें। इस इञ्जेक्शन से कितना लाभ हुआ है, यह देखकर दूसरा इञ्जेक्शन २-३ दिन बाद दें। मात्रा पहले के परिणाम पर से निश्चित करें। इस तरह सामान्यतः ४-६ इञ्जेक्शन २-२ या ३-३ दिन पर दिये जाते हैं।

सूचना— (१) दूधके अन्तःक्षेपणसे कितनेक रोगियोंको शारीरिक उत्ताप १०१°-१०२° तक बढ़ जाता है। वह ६ घण्टेके पश्चात् स्वयमेव शमन हो जाता है। कितनेकोंको उत्तापवृद्धि नहीं होती।

(२) किसी-किसी रोगीको दूधका इंजेक्शन देनेपर तुरन्त घबराहट होती है; और शीतपित्तके समान धब्बे होते हैं तथा नाड़ी मन्द होजाती है। उस उपद्रवको डाक्टरीमें प्रथिनक्षेपज आघात (Allergic shock) कहते हैं। हम उसे प्रकृति प्रकोपज अभिघात कह सकेंगे। उस प्रकोपके शमनार्थ एड्रिनलीन क्लोराइड (Adrenalin chloride) के प्रवाही (१-१०००) के ५ बूँदका त्वचाके नीचे इंजेक्शन देवें जिससे प्रायः थोड़े ही समयमें विकार दूर हो जायँगे।

ये दूधके इंजेक्शन किस प्रकार कार्य करते हैं, यह अभीतक समझमें नहीं आया। इतना निश्चय हुआ है कि, इससे रक्तके भीतर श्वेत कीटाणुओं (White blood corpuscles) का परिमाण बढ़ जाता है जिससे किसी भी प्रकारके प्रदाह जनित कीटाणुओंसे रक्षण करनेकी शक्ति बढ़ जाती है।

एओलेन आदि औषध—कितनेक नेत्रवैद्य दूधका इञ्जेक्शन देनेमें जो तैयारी की जाती है, उसके लिये कष्ट न करते हुए एओलेन (दुग्ध-सत्त्व), ऑफथेलमोसन, येट्रन-कजीन, कजीओसन आदि प्रथिन युक्त तैयार मिलनेवाले इञ्जेक्शनोंका उपयोग करना अधिक पसन्द करते हैं। ये अन्तःक्षेपण दूधकी अपेक्षा अवश्य विशेष खर्च वाले हैं। अतः जिन रोगियोंको पैसेकी बाधा न हो, उनके लिये इनका उपयोग करना अच्छा है। इनमें मुख्य विशेषता यह है कि इनके अन्तःक्षेपणसे रोगीको प्रायः ज्वर नहीं होता। यदि उत्ताप-वृद्धि हुई तो भी बहुत कम वृद्धि होती है।

टाइफाइड वेक्सिन—इसका भी अनेक नेत्रवैद्य विशेष परिमाणमें उपयोग करते हैं। ये इंजेक्शन शिरामें दिये जाते हैं। प्रारम्भमें मात्रा

३ कोटि कीटाणुओं जितनी होती है। ३ से ६ दिन बाद दूसरा इंजेक्शन दिया जाता है। यदि पहले इञ्जेक्शनसे अधिक उत्ताप न बढ़ा हो और श्वेताणुओंकी संख्या अति न बढ़ी हो, तो दूसरे इंजेक्शनकी मात्रा ४ कोटि की जाती है। इसका असर भी दूधके समान ही होता है।

६. विविध प्रकारके गव्य वैक्सिन और रक्तरस।

इन वेक्सिन और रक्तरसोंमें मुख्य एण्टीस्ट्रेप्टोकोकल (Antistreptococcal), एण्टीस्टेफिलोकोकल (Antistaphylococcal) और एण्टीडिफ्थेरेटिक (Antidiphtheretic) वेक्सिन हैं। विएनाके अनेक डाक्टर ट्यूबरक्युलिनका उपयोग अधिक करते हैं। इसके विपरीत विलायत में ट्यूबरक्युलिनका व्यवहार कम होता है। ये सब अन्तःक्षेपण त्वचाके नीचे या मांसपेशीके भीतर दिये जाते हैं। कभी शिराओंमें भी दे सकते हैं।

ट्यूबरक्युलिन देनेमें विशेष अभ्यास और अनुभवकी आवश्यकता है। इसके लिये जिज्ञासुको विशेष पुस्तकोंका अध्ययन करना चाहिये। यहाँ केवल ट्यूबरक्युलिन देनेकी सामान्य शैली मात्र लिखी जायगी। ट्यूबरक्युलिनमें अनेक प्रकार हैं। इनमेंसे नेत्र-रोगोंके लिये दो जातिका उपयोग होता है। कोचका पुराना ट्यूबरक्युलिन (Koch's old Tuberculin 6 T) तथा बेसिलरी इमलशन (Bacillary Emulsion), इन दोनोंमें कोचका पुराना ट्यूबरक्युलिन रोगीकी देहमें क्षय विकार अवस्थित है या नहीं, इसके निर्णयार्थ तथा दूसरा उपचारार्थ व्यवहृत होता है।

ट्यूबरक्युलिनका रोगविनिर्णयार्थ उपयोग—निदानार्थ उपयोगकी ३ रीति हैं—मेण्टोज (Mantoux) और वोन पर्क्वेटकी (Von Pirquet's) तथा त्वचाके नीचे प्रवेश करानेकी। इनमें पहली विशेष प्रचलित है। दूसरी बच्चोंके लिये व्यवहृत होती है। तीसरा भयप्रद होनेसे उसका त्याग किया गया है।

मेण्टोकी रीतिमें पुराना ट्यूबरक्युलिन १-१०००० पिचकारी और सुईसे रोगीकी त्वचाके भीतर १ से २ बूंद मात्रामें प्रवेश कराया जाता है। यदि रोगीके शरीरमें क्षयका कुछ भी अंश होगा, तो २४ से ४८ या ७२ घण्टे में इञ्जेक्शनवाले स्थानमें चांदीकी दुअन्नी जितना भाग लाल-सफेद और कुछ उभरा हुआ भासेगा। रोगीको कुछ ज्वर भी होजायगा। यदि १-१०००० वाले इञ्जेक्शनसे कुछ भी असर न हो तो १-१००० के ट्यूबरक्युलिनसे परीक्षा की जाती है। इतना होने पर भी परिणाम प्रतीत न हो तो निर्णित होता है कि रोगीकी देहमें क्षय विकार नहीं है।

वोन पर्क्वेंटकी रीतिमें जिस तरह शीतलाका निशान किया जाता है, उस तरह १-१००० ट्युबर क्युलिन १ बूंदको रोगीकी कोहनीके नीचे त्वचापर डाल, उस पर सुई जैसे तीक्ष्ण शस्त्रसे खुरचकर एक या दो पंक्ति खैंचें (इस क्रियाके पहले त्वचाको स्पिरिटसे धो लेना चाहिये) फिर २-५ मिनिट तक रक्त और औषध द्रवको सूखने तक सम्हालें। २४ घण्टेके पश्चात् रोगीको देखें। यदि कुछ भी परिवर्त्तन प्रतीत न हो तो ४८ घण्टे बाद देखें। यदि क्षय विकार होगा या भूतकाल में क्षय हुआ होगा तो वहाँ पर लाल धब्बा दृष्टिगोचर होगा।

ट्युबर क्युलिनका चिकित्सार्थ उपयोग—जिन-जिन रोगियों का क्षय रोगसे सम्बन्ध है, उन-उनके लिये अनेक नेत्रवैद्य ट्युबर क्युलिनका उपयोग करते हैं। इससे उनको विशेष लाभ प्रतीत होता है। पहले लिखे अनुसार इसके लिये बेसिलरी इमलशनका प्रयोग करते हैं। कितनेक अमेरिकन नेत्रवैद्य डेनीका ब्युलोन फिलट्रेट (Deny's Bouillon Filtrate B. F.) को प्रयोगमें लाते हैं। वियेनाके सुप्रसिद्ध डाक्टर युरबानेक (Urbanek) जो ट्युबर-क्युलिनके उपचारमें निपुण माने जाते हैं, वे एक भिन्न प्रकारके ट्युबर-क्युलिनका उपयोग करते हैं। उसे टेबेप्रोटीन (Tebeprotein) कहते हैं। इसके उपचार विधिका १९३३ ई० में जब वियेनाकी होस्पिटलमें मैंने कार्य किया था, तब अनुभव किया। उससे अच्छे परिणामके अनेक उदाहरण मिले हैं। इन सब औपचारिक प्रयोगकी रीति यह है कि भिन्न-भिन्न बोतलोंमें भिन्न-भिन्न मात्रा वाला ट्युबरक्युलिन तैयार करें। बहुधा पहली मात्रा १-१००००० मिलीग्राम की दी जाती है। फिर प्रति सप्ताह मात्रा दूनी-दूनी बढ़ाई जाती है। इसके लिये ४ शीशी कांचके डाटवाली अच्छी तरह गरम जलमें उबालकर कीटाणु रहित की हुई लेवें। प्रत्येकमें १०० सी० सी० लवण जल (सेलाइन सोल्युशन) तथा आध सी० सी० कार्बोलिक एसिड डालें और १, २, ३, ४ नम्बर लगावें।

सेलाइन सोल्युशन की बनावट—१०० सी. सी. बाष्प जल में ०·६ ग्राम (लगभग ९ ग्रेन) शुद्ध नमक (Sodium chloride) मिलाकर जल शोधक पत्र (Filter paper) से छान ३० मिनिट तक उबाल कर बोतल में भर लेवें।

फिर नं० १ की बोतल में ·१ सी. सी. ट्युबरक्युलिन मिलावें; जिससे १ सी. सी में १ मिलीग्राम परिमाण होता है। फिर उस नं० १ की बोतल में से नं० २, नं० ३ और नं० ४ की बोतलमें क्रमशः १० सी. सी., १ सी. सी. और ·१ सी. सी. प्रवाही डालें। जिससे इन तीनों में १ सी. सी. के

भीतर क्रमशः ·१, ·०१, ·००१ मि० ग्रा० प्रवाही होता है। यदि रोगी को १/१००००, अर्थात् ·००००१ मिलीग्राम की मात्रा देनी हो तो नं० ४ वाली बोतल में से १ सी. सी. प्रवाही लेकर १००० सी. सी. सेलाइन सोल्युशन मिलावें। फिर उस प्रवाही के १ सी. सी. का इञ्जेक्शन दिया जायगा। दूसरे सप्ताह में दूनी मात्रा अर्थात् १/५०००, तीसरे सप्ताह में चार गुनी मात्रा अर्थात् १/२५०००, चौथे सप्ताह में अठगुनी अर्थात् १/१२५००, पाँचवें सप्ताह में १/६२५०, इस तरह १ मिली ग्राम तक मात्रा बढ़ने पर क्रम पूरा माना जाता है। दो सप्ताह इञ्जेक्शन न देते हुए आराम देवें। पुनः पहले के अनुरूप क्रम दूसरी बार प्रारम्भ करें।

अधिक मात्रा देनी हो तब १, २, ३, इनका उपयोग करें।

इनके अतिरिक्त एक शीशी लवण जल की अलग तैयार रक्खें; जिससे आवश्यकतानुसार न्यूनाधिक मिला सकें।

उ. विविध कीटाणुनाशक औषधियों से अन्तःक्षेपण।

अनेक नेत्रवैद्य इस रीति का भी उपयोग करते थे। इन औषधियों में मुख्य युरोट्रोपिन (Urotropine), मक्युरोक्रोम (Mercurochrome), कोलारगोल (Collargol) आदि हैं।

एक समय ऐसा था कि ये सब औषधियाँ भिन्न-भिन्न नेत्रवैद्यों के व्यवहार में आती थीं और उन चिकित्सकों की ओर से उनका यशोगान अलग-अलग पत्रिकाओं में बारम्बार प्रसिद्ध होता रहता था। किन्तु अब कुछ वर्षों से सलफोनेमाइड (Sulphonamide) वर्ग की औषधियाँ प्रचलित होने पर अन्य सब प्रदाहशामक औषध पीछे ढकेल दिये गये। अन्तिम १-१॥ वर्ष के भीतर पेनीसिलीन (Penicillin) नामक औषध का प्रचार हो जाने से सल्फोनेमाइड वर्ग का भी दूसरा नम्बर हो गया।

ऊ. सल्फोनेमाइड वर्ग के औषध।

इस वर्ग में मुख्य-मुख्य औषधियां निम्नानुसार हैं:—

१. सल्फोनेमाइड (Sulphonamide) और पोण्टोसील (Pontosil) आदि।
२. सल्फापाइरिडीन (Sulphapyridine) जैसे मे और बेकर (May & Baker) की नं० ६९३ टिकिया।
३. सल्फाथियोझीन (Sulphathiozine)।
४. सल्फाडायाझीन (Sulphadiazine)।

इनके अतिरिक्त नये-नये नाम बाहर आते ही रहते हैं। इनका अवरोध कब होगा, यह कहना कठिन है। इन सब औषधियोंमें दो प्रकार

हैं। १. टिकिया; २. प्रवाही रूपसे एम्पुल्समें। जो टिकिया आती हैं वे ७॥ ग्रेन (आधग्राम) की आती हैं। ऐम्पुल्समें भी ५ सी. सी. में ७॥ ग्रेन होते हैं। इन सब औषधियोंकी मात्रा प्रायः एक-एक टिकिया (७॥-७॥ ग्रेन) दिनमें ४ बार दी जाती है। यदि प्रदाह तीव्र हो, तो प्रत्येक ४-४ घण्टेपर दो-दो टिकिया भी कितनेक नेत्रवैद्य देते हैं। उससे भी जल्दी असर पहुँचानेकी आवश्यकता हो तो वहाँ इस औषधके प्रवाहीका मांसपेशीके भीतर इञ्जेक्शन दिया जाता है। अनेक रोगियोंके नेत्र जो अन्य उपचारोंसे सुधरनेकी आशा न हो, उनको इस प्रयोगसे शीघ्र अच्छा लाभ होनेका अनुभवमें आता है।

ये औषध विशेषतः सुजाक, न्युमोनिया, गर्दनतोड़ बुखार (मेनीञ्जायटिस) और पंक्तिबद्ध रहनेवाले कीटाणुओं (स्ट्रेप्टोकोकाई) से उत्पन्न रोगोंमें तथा उनसे उत्पन्न नेत्ररोगोंमें निश्चयपूर्वक आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाते हैं। किन्तु यह नियम है कि जब नूतन औषधकी शोध होती है, तब उसका उपयोग प्रायः सब रोगों (विशेषतः जो रोग अन्य औषधोपचारसे दूर न होते हों उन) पर भी किया जाता है। इस नियम अनुसार सल्फोनेमाइडका प्रयोग भी विविध नेत्ररोग रोहे (Trachoma), वसन्त ऋतुमें होने वाला नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह (Spring Catarrha) और अन्य अनेक नेत्र-रोगोंमें जो अन्य रीतिसे असाध्य माने जाते हों, उनपर किया गया; किन्तु चाहिये वैसी सफलता नहीं मिली।

यथार्थमें ये औषधियाँ मुख्यतः सुजाकजनित नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह और उस हेतुसे होनेवाला शुक्लमण्डलका क्षत, इस तरह न्युमोकोकाई (न्युमोनियाके कीटाणुओं) से उत्पन्न नेत्र श्लेष्मावरणका प्रदाह, शुक्लमण्डलका क्षत, नेत्रगोलक पर शस्त्र चिकित्सा करनेके पश्चात् उत्पन्न नेत्रशोथ और पूय, अश्रु आशय का प्रदाह, तारामण्डल-प्रदाह, तन्तुरूप समूहका प्रदाह एवं अनेक जातिके नेत्रमध्यपटल और नेत्रदर्पणके प्रदाह जनित रोग, नेत्रगृहमें होनेवाला प्रदाह और विद्रधि, इन सबपर अच्छा लाभ पहुँचाती है।

सूचना—सल्फोनेमाइडके सेवन कालमें मेगनेशियम सल्फेट, अण्डा, प्याज, लहसुन, और गन्धक, इन औषधियोंका सेवन न करनेका आग्रहपूर्वक सम्हालना चाहिये।

ए. पेनीसिलीन।

यह औषध विशेषतः सबके अन्तमें २-२॥ वर्षसे प्रसिद्धिमें आई

है। ब्रिटिश साम्राज्यके मुख्य प्रधान मि० चर्चिलको कुछ भयंकर बीमारी हुई और उनको इस औषधने अच्छा किया। तत्पश्चात् यह अति शीघ्र विख्यात होगयी है। वर्त्तमानमें इसका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें होरहा है। नेत्र-रोगोंमें भी जिस स्थानमें अन्य सामान्य औषध कार्य नहीं करतीं, उस स्थानमें इसका प्रयोग किया जाता है। यह औषध नेत्रके विविध जातिके दाह-शोथ, रक्तमेंसे आये हुए विषसे नेत्रगोलकके अन्तर भागका प्रदाह (Endophthalmitis तथा करोटीके भीतर आई हुई त्रिकोणिका शिरा सरिता (Cavernous sinus) में रक्तसंग्रह (पेनीसिलिन की शोधके पहले यह रोग असाध्य माना जाता था), मस्तिष्कावरण-प्रदाह और मस्तिष्क प्रदाह पर अत्यधिक लाभ पहुँचाती है।

उपयोग विधि—यह औषध एम्पुल्समें आती है। उसमें १००००० (एक लक्ष) युनिट्स आते हैं। इसकी त्वचाके नीचे पिचकारी दी जाती है। मात्रा १ से २ सी० सी०। प्रत्येक ४–४ घण्टेपर अर्थात् दिनमें ६ बार दी जाती है। प्रायः २४ घण्टेके पश्चात् तुरन्त ही लाभ प्रतीत होता है। यह दवा बहुत मँहगी है, यह दोष है। इतना ही नहीं, दिनमें ६ बार इञ्जेक्शन देनेके लिये ६ बार डाक्टरको बुलानेसे अत्यधिक मूल्य बढ़ जाता है।

वेदनाशामक औषध (*Anodyne*)।

नेत्रके अनेक रोग ऐसे हैं, जिनमें रोगीको असह्य वेदना होती है। उदा०—तीक्ष्ण अधिमंथ (आशुकारी नीला मोतिया—नेत्रशूल), तारामण्डल का प्रदाह, शुक्लमण्डलका क्षत आदि। इन सब रोगोंमें नेत्रमें औषध डालने के अतिरिक्त पीड़ा शमनार्थ या ह्रासार्थ उदरसेवनकी औषध दी जाती है। इनमें मुख्य निम्न हैं:—

१. एस्पीरिन (Aspirin)—मात्रा १० से ६० ग्रेन।
२. फेनासिटिन (Phenacetin)—मात्रा ३ से ८ ग्रेन।
३. वेगानीन (Veganine)—मात्रा १ से २ टिकिया, दिनमें ३ से ४ बार। इस जातिकी टिकिया बहुसंख्य जातिकी आती हैं। अलग-अलग नेत्रवैद्य अलग-अलग जातिका उपयोग करते हैं। ये टिकिया जो विशेष प्रचलित है विशेष लाभप्रद विदित होनेसे हमने यहाँ उसी एकका ही उपयोग दिया है।
४. एण्टीफेब्रिन (Antifebrine)—मात्रा ३ से ६ ग्रेन। यह औषध हृदयको शिथिल बनाती है। अतः इसके साथ केफीन साइट्रस १–२ ग्रेन मिलाना हितकर है।

५. एण्टि पाइरिन (Anti pyrine)–मात्रा ५ से १० ग्रेन।
६. पोटास सोडियम और एमोनियम ब्रोमाइड (Pot Sod., Ammon. Bromide)–मात्रा १० से ६० ग्रेन।
७. पाइरेमीडोन (Pyramidon)–मात्रा ३ से ६ ग्रेन।
८. क्लोरल हाइड्रेट (Chloral Hydrate)–मात्रा ५ से १० ग्रेन।
९. अहिफेन और अहिफेनके विविध सत्व। अफीमकी मात्रा २ से ४ ग्रेन। मोर्फिन सल्फेट (Morphine Sulphate)–मात्रा ¼ से ½ ग्रेन।
हिरोइन हाइड्रोक्लोराइड (Heroine Hydrochloride)–मात्रा ⅛ से ¼ ग्रेन।
१०. कोकेन सल्फेट (Cocain Sulph.)–मात्रा ⅛ से ¼ ग्रेन।
११. डायोनिन (Dionin)–मात्रा ⅛ से ¼ ग्रेन।
१२. विविध निद्राप्रद औषधियां—बार्बिटोन (Barbitone)–और फेनो-बार्बिटोन (Pheno-barbitone) मात्रा १ से ३ ग्रेन; ट्रायोनल (Trional) मात्रा १०–१५ ग्रेन; वेरोनेल (Veronal) मात्रा ३ से ६ ग्रेन; हेडोनल (Hedonal) मात्रा ३० से ९० ग्रेन; मेडीनल (Medinal) मात्रा ५ से १० ग्रेन; प्रोपोनल (Proponal) मात्रा २ से ६ ग्रेन; ट्राइजेन (Trigen) मात्रा ५ से १० ग्रेन।

ये सब दवा निद्रा लाकर वेदनाको शान्त कर देती हैं। इनके अतिरिक्त मोर्फिया ¼ से ½ ग्रेन, ओमनोपोन (Omnopon) ½ से १ सी० सी०, ल्युमिनल सोडियम (Luminal Sodium) १॥ से ३ ग्रेन, हायोसीन हाइड्रोब्रोमाइड (Hyoscine Hydrobromide) $\frac{1}{100}$ से $\frac{1}{50}$ ग्रेन या अन्य निद्राप्रद औषधका त्वचाके नीचे अन्तःक्षेपण करनेसे रोगी ५–७ मिनिटमें मुग्धावस्थाको प्राप्त होता है जिससे वेदनाका भास नहीं होता। तीक्ष्ण वेदनाकालमें इनका प्रयोग होता है।

रक्तप्रणालीप्रसारक (*Vasodilatores*) औषध।

धमनी, शिरा और कैशिकाओंमें प्रवाहित रक्तको स्थानान्तरित करने वाली जो रक्तप्रणालियां हैं, उनका प्रसारण करनेवाली औषधियोंमें मुख्य ट्रिनीटिन (Trinitin), एमिल नाइट्रास (Amyl Nitras) और ऐसेटिल कोलिन (Acetyl Cholin), ये ३ हैं।

ट्रिनीटिनकी $\frac{1}{100}$ ग्रेनकी टिकिड़ियां आती हैं। मात्रा ३–४ टिकड़ी दिनमें ३–४ बार दें। एमिल नाइट्रास केपसुलमें आते हैं। इस केपसुलको

कपड़ेमें लपेट नाकके पास रक्खें। फिर दबाकर तोड़ देनेसे उसकी वायु श्वासके साथ भीतर जाती है। फिर रक्तकी सूक्ष्म प्रणालियां (Blood vesels) प्रसारित होती हैं। एमेटिल कोलिनका उपयोग त्वचाके नीचे अन्तःक्षेपण करनेके लिये होता है। उसका मुख्य गुण रक्त प्रणालियोंको प्रसारित करनेका है। जब नेत्रदर्पणकी मध्य शिराका संकोच या अवरोध होता है तब इस औषधके इञ्जेक्शनसे अनेक बार रोगीका नेत्र बच जाता है। मात्रा १॥ ग्रेन।

रक्तकी घनत्वजनक औषधियाँ (*Coagulents*)।

रक्तको जमानेके लिये निम्नानुसार औषधियाँ व्यवहृत होती हैं:—

१. स्टिप्टीसिन (Stypticin) का अन्तःक्षेपण त्वचाके नीचे किया जाता है। मात्रा $\frac{1}{20}$ ग्रेन।

२. सोडियम नाइट्रेटका शिरामें अन्तःक्षेपण किया जाता है। मात्रा ३० से ५० सी. सी. १०% प्रवाही।

३. अश्वरक्त-रस (Horse-serum) मात्रा ५ से ३० सी. सी.। त्वचाके नीचे या शिरामें प्रवेश कराते हैं।

सूचना—इस उपचारमें यह सम्हाल रखना पड़ता है कि अनेक रोगियों की शारीरिक प्रकृति ऐसी होती है कि उसके रक्तमें रक्तरसके दो बूँद जाने पर ही उसे शीतपित्त, चक्कर आना, हृदयकी शिथिलता, शरीरका शीतल होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर नेत्रवैद्यको भी घबराहट होता है। उसका तत्काल उत्तम उपाय यह है कि, एड्रीनेलिनक्लोराइडके प्रवाही (१–१०००) का इंजेक्शन त्वचाके नीचे देवें। मात्रा ५ से १० बूँद।

४. केल्सियम क्लोराइड (Calcium Chloride) मात्रा १५ से ३० ग्रेन।

केल्सियम लेक्टेट (Calcium Lactate) मात्रा ५ से ३० ग्रेन।

केल्सियम ग्लूकोनेट (Calcium Gluconate) मात्रा १० से ६० ग्रेन।

ये सब औषधियाँ रोगीको खिलानेसे रक्तमें जम जाने की शक्ति बढ़ती है; जिससे रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

जिन रोगियोंमें शस्त्रक्रिया करनेपर रक्तस्राव होनेका भय हो, उन रोगियोंको शस्त्रक्रिया करनेके ३–४ दिन पहलेसे ये औषधियाँ दी जाती हैं। इनमेंसे केल्सियम ग्लूकोनेट मांसपेशीमें इञ्जेक्शन करके भी दिया जाता है।

वातसंस्था उत्तेजक औषध (*Nervous Stimulants*) ।

इस प्रकारकी औषधियोंमें मुख्य स्ट्रिक्नीन (Strychnine) और विटामिन B, ये मुख्य हैं। नेत्रकी मांसपेशियोंकी नाड़ियोंके बध और दर्शनतन्तुके क्षयमें ये औषधियाँ उपयोगी हैं। तमाखू और शराबके विषसे उत्पन्न अंधतमें भी अच्छा लाभ पहुँचाती हैं। एवं कण्ठरोहिणी (Diphtheria) हो जाने पर संयोजन (दृक् संधान) क्रियाका बध (Paralysis of Accommodation) हुआ हो तो उसपर ये औषध हितकारक है।

स्ट्रिक्नीनके स्थानपर यदि टिञ्चर नक्सवॉमिकाका उपयोग करना हो, तो १५ से ४५ बूँद मात्रा देनी चाहिये। स्ट्रिक्नीन टिकड़ी रूपमें देना हो, तो $\frac{1}{60}$ से $\frac{1}{30}$ ग्रेन मात्रामें और प्रवाही रूपसे लाइकर स्ट्रिक्निन (Liq. Strychnine) २ से ५ बूँद दे सकते हैं।

विटामिन बी, (Vitamine B_1) की ३–३ मि० ग्रा० की टिकड़ियाँ आती हैं। रोगीकी मंद-तीव्र अवस्थानुसार एक दिनमें ९ से ९० मि० ग्रा० तक दे सकते हैं।

मधुमेहज नेत्रप्रदाह नाशक औषध।

इस विकारमें सफल मुख्य औषध इन्सुलिन (Insulin) है। यह विशेषतः मधुमेहके रोगियोंके लिये प्रयोजित होती है। इसमें दो प्रकार हैं। १. इन्सुलिन और २. प्रोटेमिन-झिंक-इन्सुलिन (Protamine-Zinc-Insuline)। इन दोनों औषधियोंसे मूत्रमें जानेवाली और रक्तमें आरोग्यावस्थाकी अपेक्षा बढ़ी हुई शर्करागका ह्रास हो जाता है। इन औषधियोंका मुख्य उपयोग मधुमेहज तारामण्डल प्रदाह, मधुमेहज नेत्रदर्पण प्रदाह तथा नेत्रगोलक पर शस्त्रक्रिया करनेके पहले मधुमेहका दमन करनेके लिये किया जाता है।

जब यह औषध देनी हो तब पहले रोगीके पेशाब की परीक्षा कर लेनी चाहिये। मूत्रमें शर्कराका परिमाण ३% से अधिक हो, तो इन्सुलिन २०–३० युनिट मात्रामें प्रतिदिन त्वचाके नीचे इंजेक्शन रूपसे देना चाहिये। इन्सुलिन प्रोटेमिनझिंक देना हो तो भी मात्रा वही है। इन दोनोंमें अन्तर यह है कि, इन्सुलिनका असर लगभग ६ घण्टेमें चला जाता है; और दूसरीका अधिक समय तक टिकता है। कितनेक वैद्य प्रतिदिन इन्सुलिनका १ इंजेक्शन भोजन कर लेने पर तुरन्त करते हैं; और फिर ८ घण्टे पश्चात् इन्सुलिन प्रोटेमिनझिंकका इंजेक्शन देते हैं। इस प्रयोगसे

जब पेशाबमें शक्कर निकलना बन्द हो जाता है, तब रोगीके नेत्रपर शस्त्र क्रिया की जाती है।

६. सूचीवेधार्थ औषधियाँ।

(त्वचा के नीचे, मांसपेशियों तथा शिरा में देने के अन्तःक्षेपण)

इसी प्रकरण में पहले देह के अन्यत्र केन्द्रस्थान वाले नेत्र-रोगों के उपचार में कितनेक अन्तःक्षेपणों का उल्लेख किया है, तथापि कितनेक औषध, जो नेत्ररोग में उपकारक हैं, उनका वर्णन रह गया है। अतः इनमेंसे मुख्य २ औषध यहाँ देते हैं। एक लवण (Sodium Chloride) १०% या ३०% के प्रवाही का शिरा में और दूसरा मोर्फिया का त्वचा के नीचे अन्तःक्षेपण, ये दो विशेष हैं।

यदि तीक्ष्ण अधिमन्थ (तीक्ष्ण नेत्रगोलक पर दबाव वृद्धिजन्य तीक्ष्ण शूल) होने पर नेत्र में डालने की औषध से रोगी को आराम न मिला हो और नेत्रगोलक के भीतर का दवाव कम न हुआ हो तब लवण जल (Saline solution) के प्रवाही को शिरामें प्रवेश कराने पर शीघ्र लाभ पहुँचता है। कितनेक चिकित्सक १०% प्रवाही १०० से १५० सी. सी. जितना शिरामें प्रवेश कराते हैं तब अन्य कितनेक ३०% प्रवाही २५–३० सी. सी. चढ़ाते हैं। प्रवाही जितने अधिक प्रतिशत युक्त हो उतना ही जल्दी असर होता है। कितनेक चिकित्सक ३०% का ग्लूकोज का प्रवाही भी इसी तरह प्रयोजित करते हैं। इसका विशेष विवेचन अधि-मंथ चिकित्सा प्रकरण में आगे किया जायगा।

कितनेक रोगियों को अतिवेदना हो या शस्त्रक्रिया के पहले अति घबराते हों उनकी शान्ति के लिये मोर्फिया या मोर्फिया-एट्रोपिन के अन्तःक्षेपण त्वचा के नीचे किये जाते हैं। प्रायः मोर्फिया $\frac{1}{4}$ ग्रेन और एट्रोपिन $\frac{1}{100}$ ग्रेन मिलाना पूरा होता है। यदि यह अन्तःक्षेपण वृद्धों को करना हो, तो वृक्क और फुफ्फुस की स्थिति की योग्य जाँच कर लेनी चाहिये।

७. विविध रक्त-रस गव्यादि का उपयोग।

इन रक्तरस और गव्य (वेक्सिन) के सम्बन्ध में पहले लिखा गया है। यहाँ इसका उपयोग क्यों किया जाता है, यह संक्षेप में यहाँ समझाया जायगा।

रक्तरस का उपयोग प्रायः रोगी को संक्रामक रोग के आक्रमण से

बचाने या संक्रामक रोग का असर अधिक न होने देनेके लिये होता है, तथा वेक्सिन विशेषतः संक्रामक कीटाणु या विषका देह में प्रवेश होने पर उत्पन्न व्याधिको शमन करने के लिये व्यवहृत होता है।

ट्युबर क्युलिन का वर्णन पहले आगया है। अतः यहाँ पुनः नहीं दिया।

८. रक्तमोक्ष—शिरामोक्ष (*Venesection*)।

यह एक प्रकार की छोटी शस्त्र क्रिया है, छेद लगाकर शिरा में से रक्त अमुक मात्रा में निकाल दिया जाता है। यदि छेद न करना हो तो ५० सी. सी. रक्त शिरा में सूचीका प्रवेश करा पिचकारी द्वारा निकाल सकते हैं। यदि रोगी का रक्त दबाव २०० मि० मी० से अधिक हो और उस रोगी के नेत्र पर शस्त्रक्रिया की आवश्यकता हो, तो पहले रक्त दबाव कम कराना चाहिये। अन्यथा नेत्र में से रक्तस्राव होने का डर रहता है। इसलिये शिरामोक्ष करके रक्त दबाव को कम कराया जाता है।

९. कृत्रिम ज्वर (*Artificial fever*)।

कितनेक शुक्लमण्डलके गर्भभागका प्रदाह जब अन्य उपचारसे दूर नहीं होता, तब उनके लिये एवं दर्शन तन्तुके प्राथमिक शोष (Primary optic atrophy) में इस उपायसे लाभ होता हुआ विदित हुआ है। इस उपायके लिये जिस रोगीको मलेरिया ज्वर आता हो, और जिसके रक्तमें तृतीयक ज्वर (Tertian malarial fever) के कीटाणु उपस्थित हों, ऐसे रोगीका रक्त १० सी० सी० शिरामेंसे निकालें। फिर उसी रक्तको तत्काल-नेत्ररोगसे पीड़ित रोगीकी शिरामें प्रवेश करा देवें। ऐसा करनेपर उसे एक-एक दिन आड़ देकर शीत लगकर मलेरिया आने लगेगा। इस तरह १०–१२ पाली तक ज्वर आने देवें। फिर किनाइन देकर ज्वरका शमन करें। इस उपचारसे कितनेक उक्त प्रकारके नेत्ररोगियों को लाभ होनेके उदाहरण मिले हैं।

नेत्रके स्थानिक उपचार।

१०. शीतोष्ण प्रयोग।

शीतल फोहे और उष्ण सेक, ये उपचार अति प्राचीन सुश्रुत आदिके समयसे अभी तक होरहे हैं। इन दोनोंका क्रमशः संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

१. *शीतल प्रयोग*—जब नेत्र लाल-लाल होजाते हैं और शोथ आया हो, तब अनेक बार शीतल जल या शीतल गुलाब जलके फोहे बांधे जाते हैं अथवा बर्फके चूर्णको कपड़ेमें लपेटकर नेत्रपर शीतल सेक किया जाता है। उससे शान्ति मालूम पड़ती है। इनके अतिरिक्त बड़ी होस्पिटलोंमें लीटरके कोइल (Leiter's Coil) का व्यवहार होता है। यह साधन विशेषतः शरीरके अन्य भागोंको शीतलता पहुँचानेके लिये प्रयोजित होता है। सीसे (Lead) के अति पतले पतरेकी नलियां आती हैं। फिर उनके लपेटोंको बिल्कुल पास-पास रखकर उस भागका आकार शरीरके जिस भागपर लगाना हो उसके अनुरूप बना लेते हैं। फिर मस्तिष्क आदि भागपर पहना देते हैं। इन नलियोंके ऊपरके सिरेसे बर्फका जल प्रवेश कराते हैं। वह फिर सब नलीचक्रमें से घूमकर निम्न सिरेसे निकल जाता है। नेत्रपर शीतल सेक देना हो तब अति पतली नलियां बना, नेत्रपर ठीक बैठ सके, ऐसे आकार की योजना की जाती है।

शीतल फोहे लगनेपर भी छोटी धमनियाँ और शिराएं आकुंचित होती हैं; जिससे शोथकी प्रथमावस्था हो, तो शोथ और वेदनाका निवारण होजाता है। यह शीतल उपचार पहले २४ घण्टे तक करें। यदि लाभ न हो तो फिर उष्ण सेकका प्रारम्भ करें।

सूचना—जिन रोगोंमें नेत्रके भीतर पूयोत्पत्ति हुई हो, ऐसे रोगोंमें शीतोपचार आध घण्टेसे अधिक समय तक नहीं करना चाहिये।

उष्ण प्रयोग—इस उपचारके अनेक प्रकार हैं। इनमें मुख्य २ विभाग हैं। अ. शुष्कसेक; आ. आर्द्रसेक।

अ. शुष्क सेक—रुई या कपड़ेके टुकड़ेको स्वच्छ पतले कपड़ेमें लपेट छोटी सी गेंद बनावें और कुछ कपड़ेका हिस्सा पकड़नेके लिये रक्खें। उसे कोयलेकी अंगीठीपर गर्म करें; फिर आंखपर सहन हो सके उस तरह सेक करें। गेंद शीतल होनेपर पुनः गर्म करके सेक करें; या दो गेंद रक्खें। जिससे एक शीतल होनेपर दूसरीसे तुरन्त उपयोग हो सके।

आ. आर्द्र सेक—इस प्रकार से सेक करने की सरल रीति यह है कि, एक भगोने में जल भरकर उसे अंगीठी पर रक्खें। जल उबलने लगे तब उसमें बोरिक एसिड (१ औंस जल में ५ ग्रेन के हिसाब से) मिलावें। दो मिनिट के पश्चात् उस भगोने में लिंट के ४-४ इंच के २ टुकड़े डालें। फिर एक टुकड़ा भगोने में से निकाल हाथ या छोटे रूमाल में रखकर निचोड़लें और थोड़ा झटक दें। फिर सहन हो उतना गरम रहने पर नेत्र पर रक्खें और उस पर एक तौलिया या मोटा कपड़ा

ढक देवें। एक टुकड़ा शीतल होने पर उसे भगोने में डाल दें और दूसरे टुकड़े को निकाल निचोड़कर नेत्रपर रक्खें। इस तरह १०-१५ मिनिट तक दिन में २-३ बार सेक करें।

आर्द्र सेक के लिये दूसरी रीति यह है कि, नेत्र धोने के लिये काँच की विशेष प्रकार की प्यालियां आती हैं। उसमें सहन होसके उतना गर्म जल और जलके परिमाण से बोरिक एसिड डालकर नेत्रपर रक्खें। इस तरह सेक करने में श्रम कम होता है।

बोरिक एसिड के समान जलमें अफीम की खाली डोंडी मिला, उबालकर लिंट के टुकड़ों से सेक किया जाता है। यह सेक वेदना शमन करने में विशेष उपयोगी है।

यूरोप जैसे सुधरे हुए देशों में नेत्र और उसके चारों ओर के भागों पर रह सके ऐसी थैली मिलती है, जो तांबे के तारको बुनकर बनायी जाती है। इसमें ऐसी योजना रक्खी है कि, एक सिरे पर बिजली का प्रवाह मिलने पर तार के गुच्छे गर्म हो जाते हैं। इस योजना में उष्णता न्यूनाधिक करने का साधन भी रक्खा है। इसे थर्मेल (Thermal) कहते हैं। सेक करने पर सब प्रकार के शोथ पर लाभ पहुँचता है। तुरन्त पीड़ा शमन होने से रोगी को आराम मिलता है। नेत्र के सब भागों के शोथ पर सेक का प्रयोग हो सकता है।

११. औषधोपचार।

नेत्र में डालने की औषधियां अलग-अलग स्वरूप में व्यवहृत होती हैं। इनमें मुख्यतः ४ प्रकार से उपयोग होता है। अ. जल मिश्रित बूँद; आ. तैल मिश्रित बूँद; इ. मल्हम; और ई. चूर्ण या अंजन।

अ. जल मिश्रित बूँद की बनावट।

एक परीक्षा नली १ औंस जल रह सके उतनी बड़ी या इससे बड़ी लेकर उसमें औषध चूर्ण और शुद्ध वाष्प जल मिलावें। फिर ऊपर अंगुष्ठ रख मुँह बन्द कर चलाने पर औषध चूर्ण जल में घुल जाता है। पश्चात् उस नली को स्पिरिट लेम्प पर रखकर उबालें। (कितनेक नेत्र-वैद्य टेस्ट ट्यूब के बदले छोटी आतशी शीशी (Flask) का उपयोग करते हैं) लगभग १० मिनिट तक उबालने पर उसमें रहे हुए कीटाणु और उनके बीज मर जाते हैं। जिससे शस्त्र क्रिया की हो, ऐसे नेत्र में भी इस प्रवाहीका प्रयोग करने पर कुछ भी हानि नहीं होती।

सूचना—(१) यदि प्रवाही को उस तरह कीटाणु रहित न बनाया जाय तो शस्त्रक्रिया की हुई और क्षत युक्त आँख में कीटाणुओं का संसर्ग होकर रोग बढ़ जाता है अथवा नेत्र पक जाता है।

(२) नेत्र में व्यवहृत होने वाले कितनेक औषधों के प्रवाही उबालने पर दूषित हो जाते हैं। ऐसे औषधों को मिलाकर न उबालें; किन्तु बाष्पजल को पहले उबाल कर फिर औषध मिलावें। इस प्रकार की औषधियों में मुख्य-मुख्य निम्न ८ औषधियां हैं:—

१. एड्रीनेलिन क्लोराइड—Adrenalin chloride.
२. आर्जिरोल—Argirol.
३. सिल्वरनाइट्रेट—Silver Nitrate.
४. कोलारगोल—Collargol.
५. प्रोटारगोल—Protargol.
६. निओसिलवोल—Neo Silvol.
७. सिल्वर आयोडाइड (Silver Iodide) और सिल्वर नाइट्रेटमेंसे बने हुये उस प्रकारके अन्य प्रयोग।
८. मक्युरोक्रोम—Mercuro-chrome.

आ. तैलमिश्रित बूँद बनानेकी विधि।

इस प्रकारकी औषध बनानेकी रीति अति सरल है। उसके लिये जेतुनका तैल (Olive oil) या ऐरण्ड तैल (Caster oil) को उपयोग में लिया जाता है। जिसका उपयोग करना हो उसे पहले अच्छी तरह गरम कर कीटाणुरहित कर लेना चाहिये। फिर जो औषध मिलानी हो उसे उसमें डाल अच्छी तरह हिलाकर मिला लेवें। आवश्यकता पर काँच की खरलमें घोटकर मिला लेवें। इन औषधियोंको विशेष प्रकारकी शीशियों में रखते हैं। इन बोतलोंमें काँचकी लम्बी सलाई होती है, उससे औषधके बूँद नेत्रमें डाले जाते हैं। इस प्रकारकी औषधियोंमें मुख्य एट्रोपिन (Atropine), होमाट्रोपिन (Homatropine), इसेरिन (Eserine) और पाइलोकार्पिन (Pilocarpine हैं।

इ. मलहम (*Ointment*)।

नेत्रमें डालनेके मलहम प्रायः वैसलिन, लेनोलिन और जैतुनके तेल मिश्रणसे तैयार किये जाते हैं। देहके अन्य भागोंपर लगानेके मलहम

की अपेक्षा नेत्रका मलहम कुछ अधिक नरम और प्रवाही होना चाहिये। इसीलिये इस प्रकारके मलहममें जेतुन तेलका उपयोग किया जाता है।

कितनेक वर्षोंके पहले नेत्रके अञ्जनके मलहमोंमें नेत्रगोलकपर लगानेके लिये मुख्य यलो ऑक्साइड आफ मक्युरी, केलोमल, एट्रोपिन, पाइलोकार्पिन, इसेरिन और आयडोफार्म मिश्रित मलहम; तथा पलक और उसकी धारापर लगानेके लिये एमोन्यटेड-मक्युरी, इक्थियोल, झिंक ऑक्साइड आदि मिश्रित मलहम मुख्य थे।

वर्त्तमानमें नेत्रमें बूँद डालनेके लिये जो-जो औषधियाँ व्यवहृत होती हैं; प्रायः उन सबका उपयोग मलहम बनानेमें होता है। इस प्रकार का प्रारम्भ करने वालोंमें स्पेन देशकी कुसी (Cusi) कम्पनीको मुख्य कह सकेंगे। इन औषध बनानेवालोंने बहुसंख्य दवाओंकी छोटी जसतेके पतरेकी नली, जिसमें से दबानेपर मलहम निकल सके वैसी तैयार कराकर भेजनेका प्रारम्भ किया। इन औषधियोंका पूरा वर्णन करना अशक्य है, तथापि नेत्रवैद्यको सहायक हो इसलिये कुछ नाम यहाँ देते हैं। आर्जिरोल, एसिडबोरिक, एरीस्टोल, कोलाइडल सिल्वर, कोलारगोल, प्रोटार्गोल, एट्रोपिन, होमेट्रोपिन, बिस्मथ, नोवीफार्म, झेरोफार्म, कोकेन, कॉपर सल्फेट, कॉपर साइट्रेट, एड्रीनेलिन, इफेड्रिन, यलोऑक्साइड आफ मक्युरी, केलोमल, हाइड्रार्जिरी परक्लोराइड, इक्थियोल, रूबिडो आयोडो केल्सियम, आयोडोकेल्सियम, आयोडोफार्म, ओप्टोचिन, डायोनिन, आर्थोफार्म, पाइलोकार्पिन, इसेरिन, रिसोर्सिन, स्कार्लेटरेड, थियोसिनेमिन, एक्रीफ्लेविन, झिंक आक्साइड और सल्फेनोमाइड आदि।

ई. अंजन चूर्ण (*Powders*)।

इस प्रकार की बनावटों में मुख्य निम्नानुसार है—एरीस्टोल, आयोडोफॉर्म, केलोमल, झिंक ऑक्साइड, एण्टी पाइरिन, एसिड बोरिक, क्विनाइन सेलीसिलेट,, झेरोफार्म, नोवीफार्म, सल्फेनोमाइड के सब कृति और ओर्थोफार्म।

अञ्जनों का वर्गीकरण:—

१. कीटाणु नाशक—Antiseptics.

२. ग्राही—Astringents.

३. चेतनाहर—Anesthetics.

४. कनीनिका प्रसारक—Mydriatics.

५. कनीनिका संकोचक— Miotics.

६. शोषक—Absorbents.
७. पीड़ा शामक—Anodynes.
८. प्रदाह नाशक—Antiphlogistics.
९. रक्तप्रणाली प्रसारक—Vasodilators.
१०. रक्तप्रणाली संकोचक—Vasoconstrictors.
११. नेत्रान्तर दबाव शामक—Drugs lowering intra ocular tension.

(१) कीटाणु नाशक औषध (*Antiseptics*) ।

व्रणक्षत या शस्त्र क्रिया जनित क्षत में कीटाणुओं का संसर्ग होने पर उस स्थान का पाक होता है। उस विकार के शमनार्थ नेत्र के भीतर निम्न २४ औषधियों का प्रयोग होता है:—

१. *एसिड बोरिक* (Acid Boric)—मात्रा ५ से १५ ग्रेन १ औंस जल में। यह औषध बूँद डालने एवं नेत्र को धोने के लिये धावन (Lotion) रूप से व्यवहृत होती है। नेत्रों को धोने के लिये शुद्ध जल को अच्छी तरह उबाल कर फिर उसमें एसिड बोरिक मिलाना चाहिये। इस प्रवाही को २-३ दिन बाद निकाल डालें और नया बना लेवें। क्योंकि २-३ दिन में उस जल के भीतर फफूंदी उत्पन्न हो जाती है।

२. *बोराक्स* (Borax)—अर्थात् सोडियम बाई बोरेट (Sodium biborate) का उपयोग भी उसी प्रकार से होता है।

३. *एसिड कार्बोलिक लिक्विड* (Acid carbolic Liquefactum)—यह औषध विशेषतः शुक्लमण्डल के क्षत को दग्ध करने के लिये व्यवहृत होती है। कितनेक चिकित्सक इस दवा को अकेली प्रयोजित करते हैं, तब अन्य कितनेक टिञ्चर आयोडीन के साथ समभाग मिलाकर प्रयोग में लाते हैं। एक शलाका पर रुई लगा फुरेरी बना इस दवा में डुबोकर क्षत को कुछ लगावें। फिर तुरन्त शुद्ध उबाले हुए जल से नेत्र को धो देवें; जिससे क्षत के अतिरिक्त प्रदेश को हानि न पहुँचे।

४. *एसिड पिक्रिक* (Acid Picric)—इसका उपयोग एसिड-कार्बोलिकके समान होता है। ५% अर्थात् १ औंसमें २५ ग्रेन चूर्ण मिला-कर प्रवाही बनाकर उपयोगमें लेवें।

५. *एसिड लैक्टिक* (Acid Lactic)—इसका उपयोग भी एसिड कार्बोलिकके समान होता है। समान जल मिलाकर बनाया हुआ प्रवाही प्रयोगमें लिया जाता है।

६. *एसिड सेलीसिलिक* (Acid Salicylic)—इस औषधका मलहम बनाकर उपयोग किया जाता है। एक औंस वैसलीनमें ५ से १० ग्रेन एसिड सेलीसिलिक मिलाकर मलहम बनाया जाता है। प्रायः इसके साथ झिंक आक्साइड और अन्य औषधियाँ भी व्यवहृत होती हैं। पलकधाराका पाक और पलककी त्वचाके अन्य रोगोंपर प्रयोजित होता है। क औंस जलमें ३ से ५ ग्रेन मिला प्रवाही बनाकर लगा सकते हैं।

७. *पोटास परमेंगनेट* (Potassium Permangnate)—इसके को ४–६ औंस जलमें मिला शुक्लमण्डलके क्षत, सुजाकजनित नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह आदि रोगोंमें नेत्र धोनेके लिये व्यवहृत करते थे। वर्त्तमानमें अन्य अच्छे कीटाणुनाशक औषध बन जानेसे इसका उपयोग क्वचित् ही होता है।

८. *फोर्मलडी हाइड* (Formalde Hyde)—यह औषध ४०% प्रवाही रूपसे फार्मलिनके नामसे आती है। ५–१०% का प्रवाही बनाकर पलकोंके कर्कस्फोट (Cancer) को धोनेके लिये व्यवहृत होता है।

९. *मर्क्युरी परक्लोराइड* (Mercury Perchloride)—इस दवाका उपयोग नेत्रके अनेक रोगोंमें अत्यधिक परिमाणमें होता है। इसका मुख्य उपयोग शस्त्र-क्रिया करनेके पहले नेत्रको कीटाणु रहित करने और नेत्रश्लेष्मावरणके विविध प्रकारके प्रदाहोंमें नेत्रको धोनेके लिये किया जाता है।

इस औषधको विशेषतः हाइड्रार्जिरी परक्लोराइड (Hydrargyri Perchloride) और इसके प्रवाहोंको एच० पी० लोशन (H. P. Lotion) के नामसे सम्बोधित करते हैं। यह औषध अति तीक्ष्ण होनेसे जलमें बहुत कम मात्रामें मिलाया जाता है।

नेत्रवैद्य तीन मात्राओंमें उसका व्यवहार करते हैं। एच० पी० लोशन १-३०००; एच० पी० लोशन १–५०००; एच० पी० लोशन १–१००००, इनमें पहले प्रवाहीमें ६ औंस जलमें १ ग्रेन औषध मिलाते हैं। नलके विशुद्ध जल या तालाबके जलको अच्छी तरह छान उबालकर उपयोगमें लेनेमें नेत्रवैद्योंको बाधा नहीं पहुँचती, तथापि अच्छा मार्ग यह है कि वर्षाके संगृहीत किये हुए जल या बाष्पजलको प्रयोगमें लावें।

जितना प्रवाही बनाना हो, उसके परिमाण अनुसार जलको छान कमसे कम २० मिनिट तक उबालें। फिर शीतल होनेपर उसमें मर्क्युरीपरक्लोराइड मिलावें। प्रायः इस प्रवाहीमें २० औंसके भीतर आध ग्रेन

मेथीलिन ब्लू (Methylene blue) नामक नीली औषध मिलायी जाती है; जिससे प्रवाहीका रंग कुछ नीला हो जाता है।

कितनीक औषध बनाने वाली कम्पनी मर्क्युरी परक्लोराइड और उसके अनुपात से मेथीलिन ब्लू मिला निश्चित मात्रा की टिकिया बना कर बेचते हैं। ऐसी टिकिड़ियों से प्रवाही सरलतापूर्वक बन सकता है; और मात्रा में न्यूनाधिकता नहीं होती।

सूचना—इस औषध के प्रवाही को धातु के पात्र में नहीं बनाना चाहिये। काँच, चीनी मिट्टी अथवा एनेमेल के पात्र में बनाना चाहिये।

कितनेक नेत्रवैद्य इस औषध का मलहम बनाकर रोहे पर रोगी के नेत्र में अंजन करते हैं। यह मलहम भी प्रायः १–५००० की मात्रा में बनाया जाता है।

१०. *मर्क्युरी सायानाइड* (Mercury Cyanide)—इस औषध का उपयोग भी मर्क्युरी क्लोराइड के समान ही होता है। इसके अतिरिक्त इस औषध के प्रवाही १–३००० से ५००० के २–३ बूँदोंका रोगी के नेत्र-श्लेष्मावरण में सुई और पिचकारी से प्रवेश भी कराया जाता है। यह इञ्जेक्शन तारामंडल, तन्तुमय समूह और नेत्रमध्य पटल के चिरकारी प्रदाह में तथा कांचरूप रस में होने वाली अपारदर्शकता के लिये विशेषतः व्यवहृत होता है।

११. *मर्क्युरोक्रोम* (Mercuro-chrome)—इस औषध की लाल रंग की सलाइयाँ (Crystals) होती हैं। इसके बूँद बनाकर नेत्र में डाले जाते हैं। प्रायः १ से २% अर्थात् १ औंस में ५ से १० ग्रेन परिमाण में मिलायी जाती है। (इस औषध के तैयार करने के लिये शुद्ध बाष्प जल को पहले गरम करके शीतल कर लेना चाहिये) यह औषध जल में मिल जाने पर लाल प्रवाही बन जाती है।

उपयोग—नेत्रके सब जातिके घाव और क्षत पर यह औषध बहुत अच्छा काम करती है। नेत्रगोलक और नेत्रके अन्य भाग की शस्त्रचिकित्सा करने के पश्चात् इस दवा के बूंद डालते रहने से घाव का पाक नहीं होता और घाव सरलता से भर जाता है।

१२. *एक्रीफ्लेवीन और ट्राइफ्लेवीन* (Acriflavine & Tryflavine)—इन दोनों औषधियों का पीला रंग का चूर्ण आता है। प्रायः २ औंस जल में १ ग्रेन डालकर तैयार किया जाता है। इसका उपयोग नेत्र में बूंद

डालने और नेत्रों को धोने के लिये होता है। यह औषध सुजाक के कीटाणुओं पर असर पहुँचाने में विशेष उपयोगी है।

१३. हाइड्रोजन परोक्साइड (Hydrogen Peroxide)—शुद्ध जल के भीतर १० से २० प्रतिशत प्राणवायु (Oxygen) मिलाकर यह दवा तैयार की जाती है। शुक्लमण्डल के क्षत और नेत्र के किसी भी भाग में पूय अथवा पूय और शोथ होने पर नेत्रों को इस औषध से धोते हैं। इस औषध से घाव साफ होकर जल्दी भरने लगता है।

१४. आयोडिन-आयोडोफार्म, एरीस्टोल (Iodine- Iodoform, Aristol)—इन औषधियों में से टिञ्चर आयोडिन का उपयोग नेत्र के बाहर तथा भीतर, दोनों स्थानों में होता है। पलक, भ्रू आदि किसी भी बाह्य भाग पर और नेत्रगोलक पर शस्त्र क्रिया करने के पहले पलक क्षेत्र और त्वचा को कीटाणु रहित बनाने के लिये इसका प्रयोग होता है। एवं शुक्लमण्डल के क्षत पर यह औषध एक पतली शलाका की बनी हुई फुरेरी से लगायी जाती है। या एसिड कार्बोलिक के साथ मिलकर क्षतपर उसी तरह प्रयोजित होती है।

आयोडोफार्म, एरीस्टोल और ऐसी जाति की अन्य चूर्ण रूपमें आनेवाली आयोडीन की कृति का उपयोग चूर्ण या मलहम रूपसे शुक्ल-मण्डल के क्षत और नेत्रगोलक के घाव पर होता है। मलहम बनाने के लिये एक औंस निर्जन्तुक वेसेलिन में २० से २५ ग्रेन मिलायी जाती है।

नेत्र में अंजन करने के लिये कितनेक औषध निर्माण करने वाली कम्पनियों की ओर से आयोडोफार्म का मलहम तैयार आता है। वह शुक्लमण्डल के क्षत और नेत्रगोलक के घाव पर व्यवहृत होता है। किन्तु वर्तमान में कुछ वर्षों से सल्फोनेमाइड समूह की औषधियों का प्रचार हो जाने से आयोडोफार्म का उपयोग क्वचित् ही होता है।

१५. ओप्टोचिन (Optochin)—यह औषध न्युमोकोकाई कीटाणुओं से उत्पन्न नेत्ररोगों में अच्छा लाभ पहुँचाती है। १ औंस जल में ५ से १० ग्रेन मिलाकर प्रवाही बना लिया जाता है।

१६. क्विनाइन सेलीसिलेट (Quinine Salicylate)—इस औषध का उपयोग वसन्त ऋतु में होने वाले नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह (Spring Catarrha) पर होता है। हम सुरमा के स्वरूप में अंजन (प्रदाहान्तक नेत्रांजन) बनाते हैं। इसका उपयोग अनेक रोगियों पर किया है और यह अच्छा लाभ पहुँचाता है, ऐसा निश्चित हुआ है।

प्रदाहान्तक नेत्राञ्जन—

क्विनाइन सेलीसिलेट	३० ग्रेन	एसिड बोरिक	४ ड्राम
एण्टीपाइरीन	३० ग्रेन	भीमसेनी कर्पूर	५ ग्रेन
ओर्थोफॉर्म	३० ग्रेन		

इन सब औषधियों को मिला अच्छी तरह खरल कर कपड़-छान कर लें। फिर कॉच के डाट वाली शीशी में भर लेवें। इसका विशेष उपयोग आगे बसन्त ऋतु में होने वाले नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह के वर्णन में लिखा जायगा।

१७. एबसोल्युट आल्कोहोल (Absolute Alcohol—शुद्ध मद्यार्क)—यह दवा प्रवाही है। यह १०० प्रतिशत शुद्ध शराब है। इसका उपयोग नेत्र क्षत और नेत्र के घाव, जिनका रोपण न होता हो, उन पर पतली फुरेरी से किया जाता है। इसके अतिरिक्त नीला मोतिया (अधिमंथ) या अन्य कारण से दृष्टि बिल्कुल नष्ट हो गई हो और किसी भी प्रकार से दृष्टि आने की संभावना न हो और रोगी को नेत्रशूल चलकर असह्य वेदना होती हो, तब वेदना शमन के लिये इस मद्यार्क के २-३ बूंद नेत्रगोलक के पिछले हिस्से में लम्बी सुई और पिचकारी से डाले जाते हैं। किन्तु इस इञ्जेक्शन से नेत्र में असह्य जलन होती है, वह न होने के लिये पहले नोवेकेन २ % के प्रवाही के लगभग ५ बूंद का इञ्जेक्शन करें। फिर ५ मिनिट बाद मद्यार्क का उपयोग करने पर बिल्कुल वेदना नहीं होती।

१८. ब्रिलियन्ट ग्रीन, जेन्शन वायोलेट, कोङ्गो रेड (Brilliant green, Gentian violet, Congo red) इत्यादि पेनोलिन में से बने हुए रंग कितनेक नेत्रवैद्य नेत्र क्षत और नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह और कीटाणु नाशक रूप से प्रयोजित करते हैं। उनमें ब्रिलियण्ट ग्रीन मुख्य हैं। १ औंस वेसेलीन में १० ग्रेन अर्थात् २% का मलहम बनाकर नेत्र में अंजन करते हैं। यह मलहम नलियों में तैयार भी मिलता है।

१९. इक्थियोल (Ichthyol)—इस दवा का मलहम बनाकर पलक पर लगाया जाता है। यदि रोगी को विसर्प (Erysipelas) पलक और उसके पासके भाग में हुआ हो तो इसे ग्लिसरीन में मिलाकर पीड़ित भाग और उसके समीप के भाग पर लगाने से अच्छा लाभ पहुँचता है।

२०. पिपरमेण्ट फूल और तैल (Menthol oil and Mentha Piperita)—इसका उपयोग कितनेक नेत्रवैद्य, नेत्र में बूंद डालने के लिये करते हैं। इस औषध से कुछ जलन होती है और अश्रुस्राव होता है। फिर शीतलता आ जाती है। इस हेतु से आयुर्वैदिक वैद्य और यूनानी

हकीम भी इस गुण के लिये सुरमा के भीतर इसे मिलाते हैं। पिपरमेण्ट के फूल वाला सुरमा नेत्र को शीतलता लाता है, इस हेतु से अनेक लोग इसे विशेष पसंद करते हैं।

२१. *नेपथेलीन* (Naphthalein)—यह दवा १% के परिमाणमें मलहम बनाकर पलक के व्युची (Eczema) आदि रोगों पर व्यवहृत होती है।

२२. *ओर्थोफॉर्म* (Orthoform)—यह दवा कीटाणु नाशक, पीड़ा-शामक और चेतनाहर है। इसका प्रयोग मलहम और सुरमा रूप से होता है।

२३. *रिसोर्सिन* (Resorcin)—इस दवाका आध प्रतिशत अर्थात् एक औंस जल में २॥ ग्रेन परिमाण में मिलाकर प्रवाही बना लिया जाता है। यह नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह में अच्छा लाभ पहुँचाता है।

२४. *सल्फोनेमाइड वर्गकी औषधियाँ*—इस वर्ग की औषधियों का विशेष वर्णन पहले पृष्ठ १४७ में दिया है। ये औषधियाँ पीने और नेत्र में डालने के लिये प्रयोजित होती हैं। कितनेक नेत्रवैद्य कांचबिन्दु, नीला मोतिया आदि की शस्त्र क्रिया के पश्चात् सल्फापाइरिडीन या सल्फा थीयोझोलका चूर्ण नेत्र के भीतर अच्छी तरह भरते हैं। उनकी मान्यता ऐसी है कि, ऐसा करने पर नेत्र में किसी भी प्रकार का शोथ या पूय नहीं होता। शुक्लमण्डल के क्षत और नेत्रगोलक के घावमें इस दवाको ६% मिला मलहम बनाकर उपयोग किया जाता है। ये औषधियाँ वर्त्तमान में नेत्रवैद्यों को अति प्रिय हैं।

(२) ग्राही औषधियाँ (*Astringents*)।

इस प्रकार की औषधियों में मुख्य १० निम्नानुसार हैं:—

१. *एसिड टेनिक* (Acid Tannic)—½ से १ प्रतिशत अर्थात् एक औंस जल में २॥ से ५ ग्रेन मिलाकर प्रवाही बना लेवें। इसके बूँद नेत्र-श्लेष्मावरण के चिरकारी प्रदाह और रोहे पर डाले जाते हैं।

२. *एलम* (Alum–फिटकरी)—इसका उपयोग बूँद रूपसे और शलाका रूप से होता है। १% के प्रवाही का बूँद डाला जाता है। नेत्र-श्लेष्मावरण के चिरकारी प्रदाह में व्यवहृत होता है। पिटिकामय नेत्र-श्लेष्मावरण प्रदाह (Follicular Conjunctivitis) पर शलाका विशेष हितकर है।

३. *कोपर सल्फेट* (Copper Sulphate-नीलाथोथा)—इस प्रकार की अन्य औषधियाँ—कोपर एल्युमिनेट फ्युस्ड-ल्यूपिस डिवाइनिस (Copper Aluminum Fus—Lupis Divinis) कोपर साइट्रेट (Copper citrate), क्युप्रोल (Cuprol) आदि हैं। इन औषधियोंमें से नीलाथोथा की शलाका रोहे के विकार पर पलक को उलट कर लगायी जाती है। इस क्रिया से रोगी को बहुत जलन होती है अतः एनीथिन या कोकैन जैसी चेतनाहर औषध के बूँद डाल फिर ५ मिनिट के पश्चात् नीलेथोथे को घिसना, यह विशेष अच्छा रहता है। ग्लिसरीन के साथ १ प्रतिशतके परिमाण में बूंदरूप से भी व्यवहृत होता है।

कोपर एल्युमिनेट फ्युस्ड—नीलाथोथा और फिटकरी, दोनोंको एक बर्त्तनमें डाल अग्निपर गरम करें। पिघलने पर यन्त्रमें डालकर शलाकाएँ बना लेवें। इस औषधकी सलाइयाँ जर्मनीसे मर्क कम्पनीकी आती हैं। पुराने रोहेपर पलकको उलटकर लगानेसे अच्छा लाभ होनेका हमें अनुभव हुआ है।

कोपर साइट्रेट ५ से १०%के परिमाणमें मलहम बनाकर रोहेपर व्यवहृत होता है।

क्युप्रोलका चूर्ण आता है। उसमें ६ प्रतिशत नीलाथोथा है। रोहेमें उलटे हुए पलकोंपर चूर्णरूपसे छिड़का जाता है। नेत्रश्लेष्मावरणके चिरकारी प्रदाहमें १% का प्रवाही बनाकर बूँद डाले जाते हैं।

४. *प्लम्बी एसिटास* (Plumbi Acetas)—इसे नागशर्करा (Sugar lead) भी कहते हैं। पहले यह दवा अति व्यवहृत होती थी। नेत्रपाक (अभिष्यन्द), अंजननामिका और आँखके किसी भागपर शोथ होनेपर इसका प्रयोग होता था। १ औंस जलमें ५ ग्रेन मिला, प्रवाही बना उसमें रुईके फोहे भिगो नेत्रोंपर बांधे जाते थे। हम अभीतक इस औषधका बारम्बार उपयोग करते रहते हैं; और इससे अच्छा लाभ होनेका हमें अनुभव मिला है।

सूचना—शुक्लमण्डलमें क्षत या घाव होनेपर इस औषधका बिल्कुल उपयोग नहीं करना चाहिये। ऐसी अवस्थामें इस औषधकी सफेद तह शुक्लमण्डल पर जम जाती है और फिर किसी प्रयोगसे वह नहीं निकलती।

५. *सिल्वर नाइट्रेट* (Silver Nitrate–Argenti Nitras Cryst) *और उसकी बनावट*—यह दवा चाँदी और नाइट्रिक एसिडके संयोगसे बनायी जाती है। पहले इस औषधके बूँद बनानेमें १ औंस जलमें १ से

२ ग्रेन मात्रामें मिलाते थे। इसे बोलचालकी भाषामें 'कास्टिकके बूँद' कहते हैं। अब इसका प्रयोग २% अर्थात् १ औंस जलमें १० ग्रेन मिलाकर होता है। इसे रोहेमें पलकको उलटकर फुरेरीसे लगाते हैं। आँख आई हो अर्थात् नेत्रश्लेष्मावरणके सब प्रकारके प्रदाहों, पूयप्रदाह और सुजाक जनित प्रदाह तथा रोहेपर यह उपचार अति प्रचलित है। इस औषधके लगानेपर जलन होती है और फिर ४-५ घण्टे तक नेत्रमें अति खटकती है। अतः रोगीको पहलेसे कह देना चाहिये एवं खटकना कम होनेके लिये किसी चेतनाहर औषधके बूँद सिल्वर नाइट्रेट लगानेके पहले और पीछे एक दो बार डालने चाहिये।

हम अनेक वर्षोंसे इस औषधके साथ पोटास आयोडाइड मिला सिल्वर आयोडाइड (Silver Iodide) संज्ञा देकर रोहेके रोगियोंपर अत्यधिक परिमाणमें उपयोग करते हैं। हमारे अनुभव अनुसार यह दवा रोहेके लिये अन्य किसी भी जातिके उपचारकी अपेक्षा अधिक प्रभावकारक अवगत हुई है।

सिल्वर आयोडाइड बनानेकी विधि—

सिल्वर नाइट्रेट क्रिस्टल्स	१ ड्राम	नं० १ की बोतलमें तीनोंको मिला लेवें।
बाष्पजल	१ ड्राम	
ग्लिसरीन	२ ड्राम	

सूचना—यह बोतल नीले रंगकी होनी चाहिये। यदि सफेद रंगकी हो, तो उसपर काला कागज ठीक लपेट देना चाहिये। अन्यथा सूर्यके प्रकाशसे यह औषध गुण रहित होकर निकम्मी बन जायगी।

पोटास आयोडाइड	२ ड्राम	नं० २ की बोतल में बनावें।
बाष्पजल	२ ड्राम	
ग्लिसरीन	४ ड्राम	

नं० १ की बोतल में से बूंद डालने की शलाका से ३ बूंद एक छोटे काँच के बर्त्तन में निकालें। दूसरी शलाकासे नं० २ की शीशी में से ६ बूंद उसी बर्त्तन में डालें। फिर तीसरी शलाका से दोनों को चलाकर मिला देवें। जिससे कुछ पीताभ रंग का, गाढ़े दूध जैसा प्रवाही बन जायगा। इस मिश्रण के बूंद रोगी के नेत्र में डालें।

सूचना—यह औषध नेत्र में अति जलन उत्पन्न करती है इसलिये ५ मिनिट पहले चेतनाहर औषध के बूंद डाल देना चाहिये।

५. *सिल्वर नाइट्रेट शलाका* (Silver Nitrate–Caustic stick)—सिल्वर नाइट्रेट को अग्नि पर गरम कर फिर शलाका बना लेने से कड़ी शलाका बन जाती है। इसके अतिरिक्त सिल्वर नाइट्रेट १ भाग और सोरा (Nitrate of Potash) २ भाग मिलाकर उसकी सलाइयाँ बनाई जाती हैं। उसे मन्द कास्टिक कहते हैं। ये सलाइयाँ नूतन ग्रन्थि और न भरने वाले भाग को दग्ध करने के लिये व्यवहृत होती हैं।

वर्त्तमान युग में प्रतिदिन नूतन-नूतन शोधें हो रही हैं। इस तरह सिल्वर नाइट्रेट में से नूतन-नूतन प्रकार की अनेक दवा बन गई हैं, और वे अत्यधिक परिमाण में व्यवहृत होती रहने से उनका वर्णन कुछ अधिक विस्तार से दिया जाता है।

६. *आर्जिरोल* (Argyrol)—यह औषध सिल्वर नाइट्रेट और एल्ब्युमिन के मिश्रण से तैयार की जाती है। यह दवा नेत्र में डालने पर बिल्कुल नहीं जलती। इस हेतु से अनेक नेत्रवैद्य इसे पसन्द करते हैं। इस औषध का ५ से १० % परिमाण में प्रवाही बनाकर बूंद रूप से व्यवहृत करते हैं। नेत्रश्लेष्मावरण के सब प्रकार के प्रदाह, रोहे आदि में अति प्रयोजित होती है। यूरोप में कितनेक नेत्रवैद्य नेत्रगोलक की शस्त्र-चिकित्सा करने पर इस औषध के बूंद प्रत्येक रोगी के नेत्र में डालते हैं; जिससे नेत्रपाक नहीं होता, ऐसा उनका अनुभव है।

प्रोटार्गोल (Protargol)—यह दवा भी अर्जिरोल से मिलती है। २ % के परिमाण में बूंद बनाकर व्यवहृत होती है।

७. *कोलार्गोल* (Collargol)—इसका १ प्रतिशत का मलहम बना कर नेत्र में अंजन किया जाता है। एवं १ से ५ प्रतिशत या प्रवाही बनाकर बूंद डालने में भी उपयोग होता है।

८. *नियोसिल्वोल* (Neosilvol)—यह दवा भी सिल्वर नाइट्रेटमें से बनती है। हमारे अनुभव में अति उपयोगी सिद्ध हुई है। किंचित् पीताभ चूर्णरूप से यह मिलती है। १० प्रतिशत तक के प्रवाही के बूंद नेत्रमें डाले जाते हैं।

इनके अतिरिक्त अन्य अनेक औषधियाँ उक्त औषधियों में मिलती-जुलती बनती हैं, और उनका उपयोग अलग-अलग नेत्रवैद्य करते हैं; किन्तु वे अधिक प्रचलित न होने से उनके नाम यहाँ नहीं दिये।

९. मेटोफेन (Metaphen)–एक औंस जलमें ½ ग्रेन मिला बूँद डालने के लिये प्रयोजित होती है। इससे नेत्रश्लेष्मावरण का आशुकारी प्रदाह शमन हो जाता है।

१०. *जिंक सल्फेट* (Zinc Sulphate)—यह दवा विशेषतः मोराक्स एक्सीन फिल्ड (Morax Axenfeld) नामक कीटाणुओं से उत्पन्न नेत्रश्लेष्मावरण का चिरकारी प्रदाह (Chronic Bacillary-Conjunctivitis) के लिये विशेष प्रयोजित होती है। इसका उपयोग १ औंस जल में १ से २ ग्रेन मिला बूँद बनाकर किया जाता है।

(३) चेतनाहर औषधियाँ (*Anesthetics*)।

इस प्रकारमें २ विभाग हैं। १. नेत्र में डालने पर प्रभाव करने वाले; २. त्वचा या नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे इञ्जेक्शन करने पर असर करने वाले।

१-नेत्र में डालने पर प्रभावकारक मुख्य औषध—

A. कोकेन हाइड्रो क्लोराइड–Cocaine Hydrochloride.

B. ब्युटिन–Butyn.

C. यूकेन–Eucaine.

D. होलोकेन हाइड्रोक्लोराइड– Holocaine Hydrochloride.

E. ट्रोपाकोकेन हाइड्रोक्लोराइड–Tropacocaine Hydrochloride.

F. न्युपर्कैन– Nupercain.

G. स्टोवेइन–Stovaine.

H. एलीपिन– Alypin.

I. एनेथेइन–Anethaine.

२-त्वचा और नेत्रश्लेष्मावरण में अन्तःक्षेपणार्थ औषधः—

J. नोवोकेन हाइड्रोक्लोराइड–Novocaine Hydrochloride.

K. पेन्टोकेन (Pantocaine) और परकेन हाइड्रोक्लोराइड–Percaine Hydrochloride.

L. एकोइन–Acoine.

इन सबका क्रमशः संक्षिप्त वर्णन लिखते है।

A. कोकैन *हाइड्रोक्लोराइड*—इसका प्रवाही बनाकर नेत्रमें बूंद डालने के लिये व्यवहृत होता है। एक औंस जल में ५ से २५ ग्रेन परिमाण में मिलाकर प्रवाही तैयार किया जाता है।

कोकैन डालने से रक्त वाहिनियां प्रसारित होती हैं। किन्तु एडीनेलिन क्लोराइड १-१००० के या एडनेफ्रिन (Adnephrin) के प्रवाही के १-२ बूंद कोकेन के बूंद, डालने के पश्चात् डाल लेने से अधिक असर होता है।

नेत्र के ऊपर की शस्त्रक्रिया के पहले ३ से ४ प्रतिशत का कोकैन प्रवाही प्रति ३-३ मिनिट पर ३-४ बार डाल लेने से शस्त्रक्रिया पीड़ा रहित बन जाती है। हम शस्त्रक्रिया के पहले कोकैन हाइड्रोक्लोराइड का चूर्ण सुई की नोक से उठ सके उतना एक ही समय में नेत्र के भीतर डालते हैं और फिर तुरन्त एक बूंद एड्रीनेलिन क्लोराइडका डालते हैं। हमारे अनुभव के अनुसार इस तरह कोकैन के उपयोग से अति संतोष मिला है।

सूचना—(१) कोकैन के प्रयोग से नेत्र को दो प्रकार से हानि होती है। एक हानि यह है कि, इसके प्रयोग करने के पश्चात् नेत्र खुले रह जायँ, तो शुक्लमण्डल की बाह्यत्वचा का स्तर सूख जाता है, और योग्य सम्हाल न रक्खी तो वहाँ सतह पर उत्तान (Superficial) क्षत हो जाता है। इस उपद्रव को टालने के लिये कोकैन डालने पर नेत्र को बन्द रखना पड़ता है।

(२) कोकैनसे कनीनिका विस्तृत होती है; जिससे नेत्रमें नेत्रान्तर-दबाव वृद्धिका कुछ भी कारण उपस्थित हो अर्थात् अधिमन्थ होने की सम्भावना हो, तो उसे उत्तेजना मिल जाती है।

(३) कोकैनका उपयोग हो सके तबतक नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे पिचकारी और रुईसे नहीं करना चाहिये, क्योंकि वह जहरी है।

(४) कोकैनका प्रवाही अधिक समय तक रहनेपर निर्वीर्य हो जाता है। ऐसा न होनेके लिये १ औंस प्रवाहीमें १ ग्रेन क्लोरेटोन (Chloretone) या १ बूँद एसिड कार्बोलिक लिकिडका मिला लेना चाहिये।

B. *ब्युटिन*—मात्रा १-२ % (१ औंस जलमें ५ से १० ग्रेन) प्रवाही के बूँद डालें।

C. *यूकेन*—१ औंस जलमें १० ग्रेन मिलावें।

D. *होलोकेन हाइड्रोक्लोराइड*—१ औंस जलमें ५ ग्रेन। कीटाणु-नाशक होनेसे शुक्लमण्डलके क्षतमें उपयोग करना अच्छा है।

E. *ट्रोपाकोकेन हाइड्रोक्लोराइड*—१ औंस जलमें ५ से १५ ग्रेन।

F. *न्युपर्केन*—१ औंस जलमें ½ से १ ग्रेन मिलावें।

G. *स्टोवेइन*—१ औंस जलमें २० ग्रेन मिलावें।

H. *एलीपिन*—१ औंस जल में ५ ग्रेन मिलाकर बूंद बना लेवें। यह रक्तवाहिनियां और कनीनिका पर कुछ भी असर नहीं करता।

इनके अतिरिक्त अनेक औषध अलग-अलग नेत्रवैद्यों से व्यवहृत हो रहे हैं। किन्तु हमारे अनुभवमें इन सबसे श्रेष्ठ ग्लेक्सो कम्पनी का एनेथेइन है।

एनेथेइन—यह औषध लगभग २ वर्ष से बाहर आई है। इसका वर्णन किसी अंग्रेजी पुस्तक में भी नहीं मिलता। १ औंस जलमें २ से ५ ग्रेन यह औषध मिलाकर प्रवाही बनाया जाता है। यह अति उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके बूंद डालने से नेत्रका स्पर्श ज्ञान बिल्कुल अदृश्य हो जाता है; तथापि कोकेन के समान इसमे हानि नहीं होती अर्थात् इसके प्रयोग से कनीनिका अथवा रक्तवाहिनियों पर कुछ भी असर नहीं होता एवं शुक्लमण्डलका त्वचा स्तर भी नहीं सूखता।

(२-त्वचा और नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे पिचकारी से उपयोग करने योग्य औषधियाँ)

J. *नोवोकेन हाइड्रोक्लोराइड*—१ औंस जलमें १० ग्रेन मिलाकर प्रवाही बना लेवें।

K. *पेण्टोकेन और पर्केन हाइड्रोक्लोराइड*—इन दोनोंका उपयोग १-१ औंस जलमें १०-१० ग्रेन मिला प्रवाही बनाकर किया जाता है।

L. *एकोइन*—१ औंस जलमें २॥ ग्रेन मिलाकर प्रवाही बना लेवें।

सूचना—इन सब औषधियोंके प्रवाही बनाकर रख सकते हैं। ये दीर्घकाल तक टिकते हैं। इनका उपयोग करने के पहले इनको अच्छी तरह उबाल लेना चाहिये। फिर प्रवाही शीतल होने पर उसमें एड्रीनेलिन क्लोराइड सोल्युशन के १ से ४ बूंद मिला लेना चाहिये।

इन औषधियोंका उपयोग जैसे त्वचा और नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे इंजेक्शन रूप से होता है; वैसे ये नेत्रगोलकके पिछले हिस्सेमें भी इंजेक्शन रूप से व्यवहृत होते हैं। एवं कॉचबिन्दु जैसी शस्त्र क्रिया के पहले रोगी नेत्रको जोरसे दबाकर बन्द न कर सके इसलिये नेत्रगृहकी बाहरकी किनारीमें त्वचा के नीचे और ७ वीं वातनाड़ी में भी ये इंजेक्शन दिये जाते हैं।

उक्त औषधियोंमें से अनेकोंके गुण, मात्रा कोष्टक रूपसे अगले पृष्ठोंमें दिये जाते हैं। इससे पाठक जल्दी समझ सकेंगे।

चेतनाहर औषधों (*Anesthetics.*) के लाभ-हानि आदि ।

औषध	किस तरह असर करता है	उपयोग विधि	लाभ	हानि
१ कोकैन	नेत्रमें डालनेपर किंचित् दाह । ३ मिनटमें चेतना शमन । असर आध घण्टे तक । धमनी संकोच, गोलक में मृदुता, कनीनिका प्रसारण, शुक्लमण्डलकी बाह्य-त्वचाकी शुष्कता, कुछ समयमें समीप देखनेकी शक्तिका ह्रास ।	१ औंस जलमें २५ ग्रेन मिलाकर प्रवाही बनालें । कितनेक चूर्णका उपयोग करते हैं । मर्क्युरी-परक्लोराइड के प्रवाहीके साथ न मिलावें ।	लाली कम करके लाभ पहुँचाता है ।	शोथमय नेत्रमें अन्तर नहीं पहुँचाता । औषध डालनेपर नेत्र-बन्द न रहे, तो शुक्ल-मण्डलकी त्वचाको हानि होती है । अश्रु-वाहक छिद्र द्वारा कण्ठमें प्रवेश करे तो विषाक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं ।
२ यूकेन	नेत्रमें डालनेपर अच्छी जलन । २ मिनटमें चेतना नाश । असर १५ मिनट तक । धमनियोंको प्रसारित करती है ।	१ औंस जलमें १० ग्रेन मिलावें । साथमें एड्रीनेलीन क्लोराइड मिलाना चाहिये ।	कोकैनसे कम विषाक्त । त्वचाके नीचे अन्तःक्षेपण करनेमें उत्तम है ।	शस्त्रक्रियाके समय रक्तस्राव अधिक होता है ।
३ होलोकेन	कुछ जलन । असर आधसे १ मिनटमें । असर	१ औंस जलमें ५ ग्रेन मिलावें । प्रवाहीको कांचकी	असर जल्दी और अच्छा । कनीनिकाके पर्दाको	दाह करती है, जहरी है । त्वचामें

	१५–२० मिनट तक। धमनियोंका कुछ प्रसारण होता है।	शीशीमें न रक्खें, चीनी मिट्टीकी शीशीमें रक्खें।	भी चेतना रहित बनादे। उबालनेपर असर कम नहीं होता। जन्तुघ्न है।	पिचकारी लगानेमें निरुपयोगी। शस्त्रक्रिया के समय रक्तस्राव होता है।
४ दोपा-कोकेन	जलन नहीं होती। आधसे २ मिनिटमें असर होता है।	१ औंस सेलाइन सौल्युशनमें ५ से २५ ग्रेन।	असर जल्दी और अच्छा। टिकाव अधिक समय। प्रवाही अधिक काल तक टिके। मूल्यमें सस्ता। कोकैनसे कम जहरी।	नेत्रको कुछ लाल बनाती है। आध ग्रेन से अधिकका उपयोग निर्भय नहीं माना जायगा।
५ एकोइन	असर १॥ से २ घण्टे तक। किन्तु बाहर त्वचा कायम हो, तब तक असर नहीं करती।	१ औंस जलमें ५ ग्रेन। प्रवाहीको प्रकाशमें न रक्खें। शीशीमें डालनेके पहले गरम हाइड्रोक्लोरिक एसिड से तथा फिर जलसे धोलेवें।	सोडियम क्लोराइड या मर्क्युरीक्लोराइडके प्रवाही को नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे प्रवेश कराना हो, तब वेदना न होनेके लिये यह मिलाया जाता है।	नेत्रमें डालनेपर चेतनापर असर नहीं होता।
६ स्टोवेन	नेत्रमें दाह। असर २ मिनिटमें करे और ६ मिनिट टिके। कनीनिका संकोच और धमनियां प्रसारित हों।	१ औंस सेलाइन सौल्युशनमें २० ग्रेन।	कोकैनसे कम जहरी।	असर जल्दी दूर होता है। नेत्रमें लाली लाती है।

७ एसीरिन	जलन करे। असर जल्दी हो। धमनियां प्रसारित हों। कनीनिका किंचित विस्तृत।	१ औंस जलमें १० से १५ ग्रेन।	असर जल्दी और अच्छा। प्रवाही उबालनेपर भी नहीं बिगड़ता।	शस्त्रक्रियाके समय रक्तस्राव अधिक होता है।
८ नोवोकेन	असर जल्दी	१ औंस जलमें १० से १५ ग्रेन।	कोकैनसे कम विषाक्त। नेत्रको लाल न करे। उबालनेपर न बिगड़े।	अभी तक हानि विदित नहीं हुई।
९ एनेस्थेइन	असर जल्दी	१ औंस जलमें २ से ५ ग्रेन।	कोकैनसे कम विषाक्त। नेत्रको लाल न करे। कनीनिका प्रसारित न करे। नेत्रान्तर दबाव न बढ़ावे।	हानि कुछ भी नहीं होती।

(४) कनीनिकाप्रसारक और तन्तुमय पेशी शैथिल्यकर औषध।

(*Mydriatics and Cycloplegics*)

इन औषधोंके प्रयोगसे कनीनिका प्रसारण और तन्तुमय पेशी की शिथिलता होती है। इनमें मुख्य निम्नानुसार है :—

१. एट्रोपिन सल्फेट—Atropine Sulphate.
२. दतुरिन—Daturine.
३. डूबोइसिन सल्फेट—Duboisine Sulphate.
४. स्कोपोलेमिन हाइड्रोब्रोमाइड—Scopolamine Hydrobromide.
५. यूमाइड्रिन—Eumydrin.
६. होमेट्रोपिन हाइड्रोब्रोमाइड—Homatropine Hydrobromide.
७. यूफथेलमिन—Euphthalmine.
८. इफेड्रिन हाइड्रोक्लोराइड—Ephedrine Hydrochloride.
९. माइड्रिन—Mydrine.
१०. एड्रीनेलिन क्लोराइड सोल्युशन–Adrenalin Chloride Solution.
११. लिवोग्लौकोसन—Levoglaucosan.
१२. कोकैन हाइड्रोक्लोराइड—Cocain Hydrochloride.

१. *एट्रोपिन सल्फेट*—यह औषध कनीनिका को अच्छी तरह प्रसारित करती है; इतना ही नहीं, तन्तुमय पेशी को बिल्कुल शिथिल बना देती है। इन दो गुणोंके हेतुसे यह औषध काचबिन्दु की शस्त्र क्रियाके पश्चात् एवं तारामण्डल प्रदाह (Iritis), तन्तुमय समूह प्रदाह (Cyclitis) और नेत्र-दर्पणके विच्छेदमें विशेषतः प्रयोजित होती है। प्रायः यह औषध बूंद रूप से व्यवहृत होती है। १ औंस जलमें ३ से ५ ग्रेन मिलाकर प्रवाही बना लेवें।

जैसे जलमें मिलाकर प्रवाही तैयार किया जाता है, वैसे तेलमें मिला कर बूंद रूपसे तथा मलहम रूपसे भी यह उपयोगमें ली जाती है। मलहम के लिये यह ½, ¾ और १ प्रतिशत परिमाणमें मिलायी जाती है। इस औषधके साथ कोकैन मिलाने पर इसका असर अधिक होता है।

१२ वर्षसे कम आयुवाले रोगीके नेत्रकी परीक्षा करने और चश्माके नम्बर निश्चित करने के लिये इस औषधका उपयोग होता है। इस औषधके उपयोगसे कितनेक रोगियोंको सूची बूटी (Atropa Belladonna) और धतूराके विषप्रकोपके सब लक्षण—त्वचामें दाह, मुखशोष, चक्कर आना, और घबराहट आदि उपस्थित होते हैं। कारण, इस औषधके

बूंद जो नेत्रमें डाले गये हैं, वे योग्य सम्हाल न रखनेसे नेत्रकोनमें होकर अश्रु द्वारके रास्तेसे कण्ठमें जाते हैं। वहाँ से रोगीके आमाशयमें जाकर शिरा द्वारा रक्तमें शोषित होजाते हैं। उस विषके लक्षण उत्पन्न होते हैं। इस उपद्रव को रोकनेके लिये इस बात की सम्हाल रखें कि बूंद नाकके भीतर न जाने दें। इसके लिये दो मार्ग हैं। एक यह है कि रोगीके शिरको कान की ओर झुकावें। दूसरा मार्ग यह है कि नेत्रवैद्य अपनी अंगुलीसे नेत्रके भीतरके कोनमें दबाव डालें। ऐसा करने पर फिर उपद्रव उत्पन्न नहीं हो सकते।

क्वचित् प्रमादवश उपद्रव उपस्थित हो जाय, और रोगी अति व्याकुल बन जाय, तो रोगी को दूध पिलावें तथा बहुत छोटी मात्रामें मोर्फिया देवें।

कभी दृष्टिमणिके आवरणके साथ तारामण्डल का पर्दा चिपक जाता है, तब इस औषधके बूंदसे कार्य नहीं हो सकेगा। १ प्रतिशतके प्रवाहीके २ बूंद, एडीनेलिन क्लोराइड का १ बूंद तथा वाष्पजलके २ बूंद मिला पिचकारी और सुईसे नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे इंजेक्शन देकर प्रवेश करावें। इस उपायसे कनीनिका अवश्य प्रसारित होजाती है।

यदि वह उपचार भी असफल हो जाय तो शस्त्रक्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय कनीनिका प्रसारक नहीं है।

२. *दतुरिन*—उपयोग और मात्रा एट्रोपिन के समान।

३. *डूबोइसिन सल्फेट*—मात्रा ·२५ से ·५ प्रतिशत अर्थात् १। ग्रेन से २॥ ग्रेन तक १ औंस जल या तैल में मिला कर एट्रोपिन के समान उपयोग करें।

४. *स्कोपोलेपिन हाइड्रोब्रोमाइड*—मात्रा १ औंस जल में १ ग्रेन। उपयोग एट्रोपिनके समान।

५. *यूमाइड्रन*—१ औंस जल में ५ से १० ग्रेन अर्थात् १ से २ %। यह एट्रोपिन की अपेक्षा कम विषाक्त और तीव्र असर करने वाला है।

६. *होमेट्रोपिन हाइड्रोब्रोमाइड*—१ औंस जल या तैल में ४ ग्रेन। प्रायः ४ ग्रेन होमेट्रोपिन और ४ ग्रेन कोकैन हाइड्रोक्लोराइड मिलाकर प्रवाही बनाया जाता है। इसके बूंद ५-५ मिनिट के अन्तर पर २-३ बार डालने से कनीनिका प्रसारित हो जाती है।

यह औषध नेत्रपरीक्षा के और चश्मा के नम्बर का निर्णय करने के लिये जब कनीनिका विस्तृत करनी हो तब व्यवहृत होती है। इस

औषधका असर २४ से ४८ घण्टे में दूर हो जाता है; जिससे रोगी को अधिक बाधा नहीं होती।

सूचना—४० वर्ष से बड़ी आयुवालों के लिये यह दवा सम्हाल-पूर्वक प्रयोग में लावें। क्योंकि कितनेक रोगियों में इस दवा के प्रयोग से तीक्ष्ण नेत्रशूल (नेत्रान्तर दबाववृद्धि–अधिमन्थ) का आक्रमण हो जाता है। ऐसा न होने के लिये रोगी की नेत्रपरीक्षा हो जाने पर इसरीन सल्फेट ½ प्रतिशत के प्रवाही के १-२ बूँद डालकर रोगी को बैठा रक्खें। जब कनीनिका आकुंचित हो जाय तब नेत्रवैद्य उसे औषधालय में से जाने की अनुमति देवें।

७. *यूफथेलमिन*—यह दवा केवल नेत्रपरीक्षा के समय कनीनिका विस्तृत करनी हो, तभी प्रयोजित होती है। १ औंस जल में १५ से २२ ग्रेन चूर्ण मिलाकर प्रवाही बना लेवें। फिर बूँद डालने में उपयोग करें। ५-५ मिनट के अन्तर पर प्रायः ३ समय बूंद डालनी पड़ती हैं। इस दवामें विशेष सुविधा यह है कि, इसका असर ६ घण्टे बाद निर्मूल हो जाता है; जिससे रोगी को अपने कार्यक्रम में बाधा नहीं पहुँचती। पढ़ न सकने के हेतु से जो प्रतिबन्ध होता हो, वह कष्ट नहीं भोगना पड़ता। यह दवा विशेषतः ३५-४० वर्ष से बड़ी आयु वालोंके लिये व्यवहृत होती है।

८. *इफेड्रिन हाइड्रोक्लोराइड*—इस दवाके ५० ग्रेन को १ औंस जल में मिलाकर प्रवाही बनालें। बूंद डालने में यह व्यवहृत होती है। गुण यूफथेलमिन से मिलते-जुलते हैं। असर भी ६–७ घण्टे में चला जाता है।

९. *माइड्रिन*—होमेट्रोपिन का प्रवाही १ भाग और १० प्रतिशत एफेड्रीन प्रवाही के १०० भाग को मिलाकर यह दवा बनायी जाती है। उपयोग यूफथेलमिन के समान है।

१०. *एड्रीनेलीन क्लोराइड सोल्युशन*—इस दवा के बूंद डालने पर कनीनिका विस्तृत नहीं होती। किन्तु इस औषध में छोटा फोहा भिगो नेत्र के भीतर ऊर्ध्व संगमपुट में ५ मिनिट तक रक्खा जाय तो कनीनिका विस्तृत होती है और वह असर थोड़े ही समय तक रहता है।

११. *लिवोग्लौकोसन*—यह दवा एड्रीनेलिन क्लोराइड के २ प्रतिशत का प्रवाही है। इससे कनीनिका विस्तृत होती है; किन्तु नेत्रान्तर दबाव कम होता है। इस हेतु से इसका उपयोग नीला मोतिया और तारामण्डल के पर्दोके बंधन में होता है।

१२. *कोकैन हाइड्रोक्लोराइड*—इसका वर्णन पहले चेतनाहर

औषधों के भीतर हो गया है। यहाँ केवल इतना कहना पर्याप्त है कि इससे कनीनिका कुछ प्रसारित होती है।

कनीनिका प्रसारक औषधियों के मात्रा आदि वर्णनके लिये साथमें लगा नकशा देखें।

(५) कनीनिकासंकोचक औषध (*Miotics*) ।

इस प्रकारकी औषधियोंमें मुख्य ४ निम्नानुसार हैं :—

१. इसरीन सलफेट और इसरीन सैलीसिलेट (Eserine Sulphate and Eserine Salicylate)। इसरीनका दूसरा नाम फिजोस्टिग्मिन (Physostigmine) भी है।

२. पाइलोकार्पिन नाइट्रास—Pilocarpine Nitras.

३. डोरिल—Doryl.

४. एमिन ग्लौकोसन—Amine Glaucosan.

इनका क्रमशः संक्षिप्त परिचय दिया जाता है :—

१. इसरीन सल्फेट और इसरीन सैलीसिलेट—इनके प्रयोग से कनीनिका अच्छी संकोचित होती है। मात्रा—१ से ५ ग्रेन को १ औंस जल में मिलाकर बूंद डालने के लिये उपयोगमें लेवें। इस दवावका प्रवाही बनाने के समय सफेद होता है, किन्तु जैसे-जैसे दिन जाते हैं, वैसे-वैसे लाल रङ्गका होता जाता है। यह अधिमन्थमें विशेष उपयोगी है। दिनमें लगभग चार बार प्रयोजित हो सकता है। अधिमन्थके तीक्ष्ण प्रकोपमें विशेष हितकर है।

सूचना—इस दवाके उपयोग से कितनेक रोगियों को नेत्र और मस्तिष्कमें अति खिंचाव होता है; और किसी-किसीको वान्ति भी हो जाती है।

२. पाइलोकार्पिन नाइट्रास—इस औषधसे कनीनिका आकुंचित होती है। इस हेतुसे अधिमन्थमें एवं एट्रोपिनके असरको दूर करने के लिये यह व्यवहृत होती है। इसका असर इसरीन से कम होता है और रोगी को किसी भी प्रकारकी बाधा कहीं पहुँचती। १ औंस जलमें ५ ग्रेन मिलाकर बूंद बना लेवें।

३. डोरिल—यह औषध जर्मनी से आती है और अधिमन्थमें कनीनिकाको संकोचित करने के लिये व्यवहृत होती है। इसका प्रवाही तैयार आता है।

४. एमिन ग्लौकोसन—यह औषध हिस्टेमिन नामक औषधका १० प्रतिशतका प्रवाही है। इससे कनीनिकाका अति संकोच होता है। तीक्ष्ण अधिमन्थमें जब अन्य औषध निष्फल होते हैं; तब इसके बूंद डाले जाते हैं।

सूचना—इससे बड़ी हानि यह है कि, इस औषध से नेत्र अतिशय लाल हो जाते हैं; और कभी तारामण्डलके पर्देका प्रदाह होकर वह दृष्टि-मणिके आवरणके साथ संलग्न हो जाता है। अतः अन्य उपाय न होने पर ही इसे प्रयोगमें लेना चाहिये।

(६) लेखन—शोषक (*Absorbents*)।

इस प्रकारकी औषधियों में निम्नानुसार ६ औषधियाँ विशेष व्यवहृत होती हैं:—

१. हाइड्रार्जिरी साइनाइड—Hydrargyri Cyanide.

२. डायोनिन—Dionin.

३. पोटाश आयोडाइड—Pot. Iodide.

४. पोटाश क्लोराइड—Pot. Chloride.

५. सोडियम क्लोराइड—Sodium Chloride.

६. हाइड्रार्जिरी ऑक्साइड फ्लेवा (Hydrargyri Oxide flava) इसे यलो मर्क्युरिक ऑक्साइड (Yellow Mercuric Oxide) भी कहते हैं।

ये सब औषधियाँ पहले व्यवहृत होती थीं। वर्त्तमानमें निम्न औषधियोंका व्यवहार विशेष होता है:—

७. थियोसिनामिन—Theosinamin.

८. फाइब्रोलाइसिन—Fibrolysin.

९. ऑइल गौल थेरिया नेचरेलिज-आइल विण्टर ग्रीन—Oil Gaultheria, Nat.-Oil Wintergreen.

इन सबका क्रमशः संक्षिप्त वर्णन किया जाता है।

१. हाइड्रार्जिरी साइनाइड—यह नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे पिचकारी से प्रवेश कराया जाता है। नेत्रके भीतर के प्रदाह से उत्पन्न होने वाले कितनेक रसका यह औषध शोषण कर लेता है।

बनावट—हाइड्रार्जिरी साइनाइड	१ ग्रेन	तीनोंको मिलाकर बोतलमें भर लेवें।
कोकैन हाइड्रोक्लोराइड	५० ग्रेन	
वाष्प जल	१० औंस	

मात्रा—५ से १५ बूंद।

इस औषधका उपयोग धावन (Lotion) रूपसे भी होता है। धावनार्थ १० औंस जलमें १ ग्रेन हाइड्रार्जिरी साइनाइड मिलाते हैं।

२. *डायोनिन*—प्रदाह जनित रस (Lymph) का शोषण करनेमें इसके समान दूसरी औषध अभी तक नहीं मिली। इसके अतिरिक्त रोगको कम करनेका गुण भी इसमें अच्छी तरह अवस्थित है। शुक्लमण्डल परसे अपारदर्शकता (फूला) को मिटानेका गुण भी इसमें अच्छा ही है।

यह औषध बूंद रूपसे एवं मलहम रूपसे व्यवहृत होती है। प्रवाही बनानेके लिये १ औंस जलमें २५ ग्रेन और मलहमके लिये १ औंस वेसेलिनमें ५ से २५ ग्रेन मिलाते हैं।

सूचना—इस औषधके प्रयोगसे नेत्रश्लेष्मावरणमें किंचित् शोथ हो जाता है और वह स्वयमेव शान्त हो जाता है।

३. *पोटास आयोडाइड*—कितनेक नेत्रवैद्योंकी मान्यता है कि, इस औषधमें शोषक गुण है। इसी हेतुसे कांचबिन्दुके प्रारम्भमें इसके प्रवाहीका उपयोग करते हैं। १ औंस जलमें ५-१० ग्रेन मिलाकर बूंद डालते हैं। इस औषधमें उक्त गुण मेरे अनुभवमें नहीं आया।

४-५. *पोटाश क्लोराइड और सोडियम क्लोराइड*—ये दो औषध वर्त्तमानमें कितनेक समयसे लेखन रूपसे विशेष प्रयोजित होते हैं। १ औंस जलमें ५-१० ग्रेनके परिमाणमें मिलाते हैं।

इसके प्रवाहीके १०-१५ बूंद परिमाणमें पिचकारी द्वारा नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे प्रवेश कराया जाता है।

सूचना—इस प्रकारसे इस औषधका प्रयोग करनेपर रोगीको अति वेदना होती है। इस हेतुसे १ औंस जलमें ५-१० ग्रेन नोवोकेन (Novocaine) मिला लेना चाहिये। नोवोकेन न मिले तो कोकैन भी चल सकता है।

इनके अतिरिक्त उदर सेवनार्थ लेखन गुणयुक्त कितनीक औषधियाँ आती हैं। ऐसी औषधियोंमें पारदमिश्रित औषधियाँ और पोटास आयोडाइड मुख्य हैं।

६. *हाइड्रार्जिरी ऑक्साइड फ्लेवा*—यह औषध नेत्रके फूलाके शोषणार्थ दीर्घकालसे प्रयोजित होती है। १ औंस वेसेलिनमें ५-१० ग्रेन मिलाकर अच्छी तरह खरलकर मलहम बना लिया जाता है। इसका उपयोग अञ्जन रूपसे होता है। यदि सूर्यके किरण या प्रकाश लम्बे समय तक

इस औषधपर गिरे, तो रंग हरा हो जाता है। ऐसा न होनेके लिये मलहम अपारदर्शक चीनी मिट्टीकी डिब्बीमें रक्खा जाता है।

सूचना—इस मलहमके अञ्जनसे किसी-किसीको नेत्रमें लाली आ जाती है; किन्तु वह स्वयमेव १–२ दिनमें दूर हो जाती है।

७. *थियोसिनामिन*—वर्त्तमान समयमें इसका उपयोग लेखन (शोषण) दवा रूपसे शुक्लमण्डलके फूलापर विशेष होरहा है। इससे लाभ भी प्रतीत होता है। इसके प्रयोगार्थ १५ से २५ ग्रेन औषधको १ औंस वेसलिनमें मिलाकर मलहम बना लिया जाता है। इस मलहमका अञ्जनरूप से उपयोग होता है। एवं ४–५% का प्रवाही बनाकर उसमेंसे ५ सी. सी. (लगभग ८ बूंद) नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे पिचकारी रूपसे प्रवेश कराने पर भी फूलामें अच्छा लाभ होता है।

८. *फाइबोलाइसिन*—यह औषध जर्मनीसे आती थी। इसका उपयोग हमने फूला पर विशेष किया है। इसका प्रवाही तैयार करके दिनमें २ बार बूँद नेत्रमें डाला जाता है। इसके अतिरिक्त इसका इञ्जेक्शन मांसपेशियोंके भीतर दिया जाता है।

९. *आइल गौलथेरिया*—यह एक प्रकारका तैल है। इस तैलमें कांच की सलाईको डुबोकर नेत्रमें अंजन किया जाता है। अंजन दिनमें १ बार करना चाहिये।

सूचना—यह आँखमें डालनेपर बहुत जलती है। इतनी कि रोगीसे सहन नहीं होती। इसलिये पहले एनीथेइन (१ औंसमें ३ ग्रेन) के बूँद ५–५ मिनिटके अन्तरपर दो बार डालकर फिर इस तेलका अंजन करना चाहिये। इससे जलन सामान्य होती है।

इस औषधके उपयोगसे अनेक वर्षोंके पुराने फूले भी मिटे हैं, ऐसा हमें अनुभव हुआ है। फूलाके लिये यह औषध अन्य सब औषधियोंकी अपेक्षा हमें श्रेष्ठ प्रतीत हुई है।

(७) पीड़ाशामक-वेदनाहर औषधियाँ (*Anodine*)।

पीड़ाशामक औषधियोंमें निम्नानुसार औषधियों का उपयोग विशेष होता है:—

१. डायोनित—Dionin.
२. अफीम—Opium.
३. कोकैन आदि चेतनाहर औषधियाँ।
४. सेडेटिव एण्टीसेप्टिक—Sedative Antiseptic.

५. ओर्थोफार्म—Orthoform.

इन सबका क्रमशः वर्णन किया जायगा।

१. *डायोनिन* (Dionin)—यह पीड़ाशामक औषधियोंमें मुख्य है। यह दवा अफीम से बनती है। यह सफेद चूर्णके रूपमें आती है। यह ५–१० प्रतिशत का प्रवाही बनाकर बूंद डालनेके लिये उपयोगमें ली जाती है। इसी तरह इसका मलहम बना करके भी प्रयोगमें लाया जाता है। इस दवामें पीड़ाशामकके अतिरिक्त शोषक गुण भी रहा है। इसका वर्णन पहले शोषक औषधके भीतर किया गया है।

२. *अफीम* (Opium)—यह पीड़ाशमनार्थ रोगी को खानेके लिये दी जाती है। इतना ही नहीं, इसके अर्कके बूंद नेत्रमें डालनेसे रोगी को शान्ति मिलती है। अर्क (टिंचर ओपियाई रेक्टिफिकेट्स) के १०-३० बूंद को १ औंस जलमें मिलाकर बूंद डालनेके लिये प्रयोजित होता है।

३. *कोकैन आदि चेतनाहर औषधियाँ*—इनके उपयोगसे रोगी को कुछ समयके लिये आराम मिल जाता है।

४. *सेडेटिव एण्टीसेप्टिक* (Sedative Antiseptic)—इस नामवाली मलहम की नली कितनेक औषध बनाने वाले बनाते हैं। जब नेत्रपीड़ा किसी भी औषधसे शान्त नहीं होती, तब इस मलहमसे लाभ होजाता है।

५. *ओर्थोफार्म*—इसका वर्णन पहले कीटाणुनाशक औषधियोंके भीतर किया गया है। यह दवा मलहम रूपसे या सुरमा रूपसे अंजन करने से कीटाणुनाशक रूपसे कार्य करती है। इतना ही नहीं, पीड़ाशामक रूपसे अच्छा कार्य करती है

(८) शोथघ्न (*Antiphlogistics*)।

शोथ शमन करने वाली औषधियोंमें ग्राही औषधियोंका वर्णन पहले कर चुके हैं। वे सब शोथशमनमें सहायक हैं। इनके अतिरिक्त सेक आदि उपचार लाभदायक हैं। सेक—उष्णजल, बोरिक ऐसिडके जल, अफीम की डोंडीके क्वाथ, पुल्टिस, एण्टीफ्लोजिस्टीन और मेग्नेशियम सल्फेटके जलसे होता है। ये सब सेक शोथ उतरनेमें सहायक हैं। इनमें एण्टीफ्लोजिस्टीन और मेग्नेशियम सल्फेटके प्रवाही का विशेष विवेचन किया जायगा।

एण्टीफ्लोजिस्टीन (Antiphlogistine)—यह औषध कितनेक वर्षों से जनतामें खूब प्रसिद्धि पा चुकी है। सब जनता इस औषध को छाती पर लगाने के सफेद मलहम रूपसे जानती है। यह मलहम केओलिन (एक

प्रकार की मिट्टी), ग्लिसरीन और कितनेक तेलोंके मिश्रणसे बनाई गई है। इस मलहममें विशेष गुण यह है कि इसे उष्ण करनेके पश्चात् इसमें उष्णता दीर्घ काल तक कायम रहती है; जिससे पुल्टिस की बदलीमें इसका उपयोग विशेष अनुकूल रहता है। नेत्रके कितनेक शोथमय रोगोंमें इस मलहम का उपयोग हो सकता है। इससे नेत्रको अच्छा लाभ पहुँचता है। मात्र एक ही हानि है कि यह मलहम वजनदार होनेसे पीड़ित नेत्रपर उसका वजन रोगीसे सहन नहीं होता।

मेग्नेशियम सल्फेटके प्रवाहीके फोहे उष्ण या शीतल नेत्रपर बाँधनेसे शोथ शमन हो जाता है। १ औंस जलमें मेग्नेसियम सल्फेट पिघल सके उतना मिलाना चाहिये।

एक्सट्रेक्ट बेलाडोना भी ग्लिसरीनके साथ या जलमें मिला कोहा रूपसे उपयोग करनेसे अच्छा लाभ पहुँचाता है। किन्तु इस बातको लक्ष्य में रखना चाहिये कि इस औषधका कुछ भी अंश नेत्रमें चला जायगा तो कनीनिका विस्तृत हो जायगी।

(६) रक्तवाहिनियों को प्रसारक (*Vasodilators*) औषधियां।

इस प्रकार की औषधियों में मुख्य ३ हैं। १. डायोनिन; २. यलो आक्साइड ऑफ मर्क्युरी; और ३. जोक्विरिटोल।

१. डायोनिन (Dionin)—इस औषधका उपयोग पीड़ा शामक और चेतनाहर रूपमे किया है। यहाँ उसका दूसरा गुण दर्शाया जाता है। यह औषध नेत्रमें डालनेके साथ जलन करती है। फिर नेत्र लाल-लाल हो जाते हैं, तथा नेत्रगोलक और पलक की रक्तप्रणालियाँ तुरन्त फूल जाती हैं। कितनेक रोगियोंमें नेत्रगोलक पर रहा हुआ नेत्रश्लेष्मावरण जिस तरह जलसे भर गया हो, उस तरह फूल जाता है। थोड़े ही समयमें जलन शांत हो जाती है और रोगी को औषध डालनेके पहले जो वेदना थी, वह भी प्रायः दूर हो जाती है। यह औषध रक्तप्रणालियों को प्रसारित करती है। इसलिये नेत्रगोलकके सब भागोंमें रसका अभिसरण बढ़ जाता है; जिससे भीतरके भागमें उत्पन्न शोथ दूर होने लगता है। शुक्लमण्डलके क्षतमें भी उस भाग को विशेष रस मिलनेसे लाभ पहुँचता है; तथा क्षत इस औषध प्रयोगसे भरने लगते हैं।

पहले लिखे अनुसार इस औषध का प्रभाव सब रोगियों पर समान नहीं होता। कितनेक रोगियोंके नेत्रमें डायोनिन का चूर्ण डालने पर भी शोथ नहीं आता; अन्य कतिपय रोगियोंमें केवल ३ प्रतिशत प्रवाहीके "ड्रू

डालनेसे भी शोथ आजाता है। फिर रोगी घबरा जाता है। इसलिये अच्छा मार्ग यह है कि नेत्रवैद्य अपने औषधालयमें ही रोगीके नेत्रमें १ प्रतिशत प्रवाहीके बूंद रूपसे व्यवहृत करे। कितनेक रोगियोंके नेत्रमें चूर्ण (अन्य किसी भी औषधके मिश्रण से रहित) डाला जाता है। एवं ५-१० प्रतिशत का मलहम बना करके भी उपयोगमें लिया जाता है।

२. *यलो आक्साइड ऑफ मर्क्युरी*—इसके २ प्रतिशत का मलहम डालने पर नेत्र लाल हो जाते हैं; जिससे इस औषधसे भी नेत्रकी रक्त-वाहिनियाँ भर जाती हैं।

३. *जेक्विरिटोल* (Jequiritol)—यह औषध सफेद चिरमी (Jequirity–Abrus precatorius) में से बनायी जाती है। ये अलग-अलग ४ नम्बरों की बनाई जाती हैं। नं० १ से नं० २ तेज, नं० २ से न० ३ अधिक तेज और नं० ४ सबसे अधिकतम तेज है। प्रारम्भमें नेत्रवैद्य चिरमीको पीस जलमें २४ घण्टे भिगो, जलको कपड़ेसे छानकर नेत्रमें डालते थे। १ औंस जलमें ५ ग्रेन चिरमीका चूर्ण डालते थे। इस प्रवाहीके बूंद डालने से जलन होकर नेत्र लाल हो जाते थे और शोथ आ जाता था। एक दो दिनमें लाली और शोथ दूर हो जाते थे। कितनेक रोगियोंमें शोथ बहुत आ जाता था; तथा नेत्रमें क्षत हो जाते थे। यह हानि न पहुँचने के लिये ग्लिसरीन के साथ इस औषधका क्वाथ मिलाकर नेत्रसे सहन हो सके उतना तेज प्रवाही नं० १ वाला बनाया गया। यह सहन हो जाने के पश्चात् नं० २ वाले प्रवाहीका उपयोग होता था। उसी अनुसार नं० ३ और नं० ४ का प्रयोग किया जाता था। इस औषधका उपयोग रोहके परिणाम में उत्पन्न सफेदी मिटाने के लिये किया जाता था। जब कितनेक रोगियों में अन्य उपचार निष्फल होते थे; तब इस उपायसे सफलता प्राप्त होती थी। अब उस तरह जलमें चिरमी चूर्णको भिगोकर प्रवाही तैयार नहीं करते; किन्तु मर्क कम्पनी के जेक्विरिटोलका उपयोग करते हैं।

(१०) रक्तप्रणालो संकोचक (*Vasoconstrictors*) औषध।

इस गुणयुक्त केवल दो ही औषधियाँ हैं। १. एड्रीनेलिन क्लोराइड और एफेड्रिन। इनमें भी विशेषतः एड्रीनेलिन का उपयोग होता है।

एड्रीनेलिन क्लोराइड—इसका सोल्युशन १-१००० के परिमाणमें तैयार आता है। उसे ४-५ गुने जलके साथ मिलाकर नेत्रमें बूंद डालने से नेत्र-गोलक की रक्तवाहिनियोंका बिल्कुल संकोच हो जाता है; तथा नेत्रगोलक सफेद बन जाता है। अमेरिका और यूरोप की कितनीक स्त्रियाँ मुखमण्डल

के सौन्दर्य तथा नेत्र श्वेत और बड़े प्रतीत होने के लिये इस औषधके बूंद अपने नेत्रमें डालते रहते हैं। इस औषधका असर लगभग २० मिनिट तक रहता है। इसका मुख्य उपयोग चेतनाहर औषधके साथ किया जाता है।

एफेड्रिन—इसके ३ प्रतिशत प्रवाहीका उपयोग एडीनेलिनके समान होता है। इसका भी असर वैसा ही होता है; किन्तु इसके प्रयोगसे कनीनिका विस्तृत होती है, इस हेतुसे इसका उपयोग रक्तप्रणालियोंके संकोचार्थ प्रायः नहीं होता।

(११) नेत्रान्तर दबावशामक औषधियां।

(*Drugs lowering intra ocular tension*).

इन औषधियों में मुख्य कनीनिका संकोचक औषध, जैसे कि इसरिन, पाइलोकार्पिन, ग्लोकौशन और एडीनेलिन क्लोराइड, ये स्थानिक उपचार के लिये तथा अर्गोटेमिन (Ergotamine), अर्गोटेमिन के प्रवाही जिनेर्जिन और निओजिनेर्जिन (Gynergen and neogynergen), केल-शियम, नमक का प्रवाही और पिटिइट्रिन (Pityitrin), ये सब इञ्जे-क्शन रूप से व्यवहृत होती हैं। जिन औषधियों से कनीनिका का संकोच हो, उनसे नेत्रान्तर दबाव कम होता है, ये सब औषध विशेषतः अधिमन्थ (नीले मोतिये) पर प्रयोजित होती हैं।

अब मात्र एक ही औषध जिसका प्रयोग नेत्रमें बूंद डालने के लिये होता है, उसका उल्लेख शेष रहा है। वह औषध एक ही होनेसे उसका अलग वर्ग नहीं हो सकता। वह फ्ल्यूओरेसीन (Fluorescein) है। इस औषध के बनाने की विधि और उपयोग का वर्णन नेत्रपरीक्षा प्रकरण में पहले किया जा चुका है। यह औषध नेत्रमें डालने पर शुक्लमण्डलके क्षत या घाव वाला भाग पृथक् प्रतीत हो जाता है।

१२. नेत्रके भीतर अन्तःक्षेपण।

इस प्रकार की औषधियोंमें से नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे के इंजेक्शन की ८ तथा नेत्रगोलकके पिछले हिस्से में उपयोग करने की ३ मिलकर ११ औषधियां निम्नानुसार हैं :—

(नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपणके लिये)

१. लवण—Sodium Chloride.

२. मर्क्युरी सायानाइड—Mercury Cyanide.

३. आयोडाइड्स (Iodides)—पोटास आयोडाइड (Pot. Iodide), आयोडीपिन (Iodipin), सोडियम आयोडेट (Sodii Iodate.)
४. हेटोल—Hetol.
५. डायोनिन—Dionin.
६. एस्टेरोल—Asterol.
७. ग्वायकोल केकोडीलेट—Guacol Cacodylate.
८. कोकैन हाइड्रोक्लोराइड (Cocain Hydrochloride) तथा नोवोकेन और उसके अनुरूप अन्य औषध—Novocain and allied drugs.
(नेत्रगोलकके पिछले हिस्सेके लिये)
९. कोकैन हाइड्रोक्लोराइड और नोवोकेन—Cocain Hydrochloride and Novocain.
१०. एब्सोल्युट आल्कोहाल—Absolute Alcohol.
११. सोडियम थियो सल्फेट—Sodium Thio sulphate.

१. लवण—इसके इञ्जेक्शनके लिये छाननेके कागज (फिल्टर पेपर) से छाना हुआ वाष्प जल १ औंस लेकर ५-१०-१५-२० ग्रेन या उससे भी अधिक शुद्ध सफेद सैंधानमक या सोडियम क्लोराइड मिलावें। नमक मिल जाने पर पुनः कागजसे छान लें। फिर परीक्षा नलिका या काँच के फ्लास्क में डालकर कमसे कम १० मिनट तक उबालें। शीतल होने पर जलमें उबाल कर साफ की हुई कांच के डाट वाली शीशी में भरें। यदि यह प्रवाही तैयार करनेके पश्चात् ३ दिनके बाद प्रयोगमें लेना हो, तो जितना प्रवाही चाहिये उतने को एक टेस्ट ट्यूबमें भर स्पिरिट की बत्ती पर फिरसे उबाल लेवें।

सूचना—नमक का इञ्जेक्शन ३-४ प्रतिशतसे अधिक तेज प्रायः नहीं दिया जाता; किन्तु किवनेक नेत्रवैद्य नेत्रदर्पणके विच्छेदमें २० प्रतिशत तकके प्रवाहीका उपयोग करते हैं। यह इञ्जेक्शन रोगीको वेदना उत्पन्न करता है। अतः आवश्यक नोवोकेन या कोकैन मिला लेना चाहिये।

उपयोग—यह इञ्जेक्शन विशेषतः शुक्लमण्डलके क्षत, शुक्र, शुक्लमण्डलके गर्भ भाग का प्रदाह और सफेदी, तारामंडल और तन्तुमय समूह का चिरकारी प्रदाह, नेत्रमध्य पटल का प्रदाह, कांचरूप रसके भीतरकी अपारदर्शकता और नेत्रदर्पणके विच्छेदके लिये व्यवहृत होता है।

अन्तःक्षेपण विधि—पहले लिखे अनुसार जिस औषधका अन्तःक्षेपण करना हो, उसे अच्छी तरह कीटाणु रहित कर लेना चाहिये। एवं पिचकारी और सुई को उबाल कीटाणु रहित कर ५-१० बूंद प्रवाही को

पिचकारी में ले लेवें। फिर पिचकारीमें से वायु को बाहर निकाल देवें। रोगी को टेबल पर लिटा, उसके नेत्रमें कोकैन-एड्रीनेलिन के बूंद डाल नेत्रगोलक को चेतना रहित करें। फिर नेत्र को H. P. १-५००० के धावनसे धो लेवें। पश्चात् सहायक वैद्यको रोगीके नेत्रके ऊपरके और नीचेके पलकको खींचकर नेत्र खोलने को कहें। कितनेक नेत्रवैद्य इञ्जेक्शन देनेके लिये नेत्रप्रसारक कमानी (Speculum) लगाते हैं। रोगी की आंख ठीक खुलने पर पिचकारी के ऊपर लगाई हुई सुई की नोक को नेत्रश्लेष्मावरणके भीतर प्रवेश करावें। प्रायः शुक्ल मण्डलके किनारे से ६ मि. मी. दूरी पर सुई को प्रवेश कराया जाता है। कितनेक नेत्रवैद्य नेत्रगोलक को स्थिर करनेके लिये चिमटे (Forceps) का उपयोग करते हैं। सुई को लगभग ३ मि. मी. जितनी नेत्र-श्लेष्मावरण में टोंचें, फिर पिचकारी को दबा प्रवाही को भीतर डाल देवें। जिस स्थानपर प्रवाही गया होगा वहाँ पर नेत्र श्लेष्मावरण फूला हुआ भासेगा। इञ्जेक्शन देनेके पश्चात् सुई को बाहर निकाल कर मर्क्युरोक्रोम २ प्रतिशतके १-२ बूंद नेत्रमें डालें।

सूचना—नेत्रगोलकके आगेके हिस्सेमें उत्पन्न रोगके लिये इञ्जेक्शन देना हो तब उपरोक्त विधिसे शुक्लमण्डलके किनारेसे लगभग ६ मि. मी. दूर सुई प्रवेश करायी जाती है, और रोग नेत्रगोलकके पिछले हिस्से में हो तो शुक्लमंडलके किनारे से १० मि. मी. दूरी पर सुई को प्रवेश कराना चाहिये।

२. *मर्क्युरी साइनाइड* (Mercury Cyanide)—इंजेक्शनके लिये १ औंस विशुद्ध बाष्प जलमें यह औषध मात्र ६ ग्रेन मिलायी जाती है जिससे १-३००० वाला प्रवाही बनता है। इसके २ से ३ बूंद का इंजेक्शन देवें। इस इंजेक्शनमें रोगी को अति वेदना होती है। अतः इस प्रवाहीके साथ एकोइनके १ प्रतिशत प्रवाहीके १ से २ बूंद मिला लेना चाहिये।

यह इंजेक्शन सफेदी, तारामंडल और तन्तुमय समूहके चिरकारी प्रदाह, शुक्लमंडलके गर्भका प्रदाह, काँच रूप रस की अपारदर्शकता, नेत्र-मध्य पटल और नेत्रदर्पणका प्रदाह तथा शस्त्रक्रियाके पश्चात् होने वाले नेत्रपाकके लिये प्रयोजित होता है।

३. *आयोडाइड्स*—इनमेंसे पोटास आयोडाइड २ प्रतिशत प्रवाहीके ५ बूंद, आयोडोपिन १० प्रतिशत को सिमाममें तेलमें बना उसमेंसे २ से ३ सी. सी. और सोडियम आयोडेट एक औंस जलमें आधग्रेन वाले प्रवाहीके १० बूंद, इन तीनों औषधियोंका इञ्जेक्शन नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे दिया जाता है।

उपयोग—इस औषधके प्रयोगसे प्रारम्भिक अवस्था वाला कांच-बिन्दु, तारामंडल का प्रदाह, तन्तुमय समूह का प्रदाह, काँचरूप रस की अपारदर्शकता, नेत्र बाह्यपटल और नेत्र मध्यपटल का प्रदाह, इन रोगोंमें अनेकों को लाभ पहुँचता है।

४. हैटोल (Hetol-Sodium Cinnamate) — इस औषधके १ प्रतिशतके प्रवाहीके ७ से ८ बूंद ३-३ दिन पर नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे पिचकारीसे डालनेसे शुक्लमण्डल कक्षा (शुक्लमण्डल में रसवही मय प्रदाह—Herpes cornea), केशरूप विकृति (Filamentous , वृक्षकी शाखा सदृश वृद्धि (Dendrite , शुक्लमण्डल का प्रदाह, क्षय जन्य शुक्लमण्डल गर्भ प्रदाह, तारामण्डल प्रदाह और नेत्र बाह्य पटल प्रदाह, इन रोगों पर लाभ पहुँचाता है।

५. डायोनिन—इस औषध का उपयोग जिन-जिन रोगों पर होता है, उन सब पर नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे इञ्जेक्शन रूपमे होता है। ३ प्रतिशत के प्रवाहीके ·५ से १ सी. सी. का इञ्जेक्शन दिया जाता है। ह्रस्व दृष्टिके हेतु से नेत्रदर्पण और नेत्रमध्यपटलमें उपस्थित परिवर्त्तन पर इस औषध का उपयोग किया जाता है। रोगी को पीड़ा न हो इसलिये १ से २ बूंद एकोइन का प्रवाही मिला देना चाहिये।

६. एस्टेरोल (Asterol)—इस औषध के प्रवाहीमें एस्टेरोल ·००१, डायोनिन ·२५; लवण, ·०२ और जल १० भाग मिलाकर इञ्जेक्शन दिया जाता है। शुक्ल मण्डलके क्षत, नेत्रबाह्यपटल प्रदाह, तारामण्डल, और तन्तुमय समूह का चिरकारी प्रदाह और ह्रस्व दृष्टिमें होने वाले पीत बिन्दुके विकार में यह इञ्जेक्शन व्यवहृत होता है।

७. ग्वायेकोल केकोडीलेट (Guaicol Cacodylate)—इस औषधके १ प्रतिशतके प्रवाहीके ५ बूंद का इञ्जेक्शन नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे किया जाता है। यह औषध पिटिकाक्षत (Phlyctenula) पर अत्यधिक लाभ पहुँचाती है, ऐसा हमारा अनेक वर्षोंका अनुभव है।

८. कोकैन हाइड्रोक्लोराइड नोवोकेन और उसके अनुरूप अन्य औषध—इनके २ प्रतिशतके प्रवाहीका इंजेक्शन नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे करनेसे नेत्रमें होने वाली व्यथा तत्काल शमन होजाती है। इतना ही नहीं, नेत्रगोलक पर शस्त्रक्रियाके लिये भी इसका इञ्जेक्शन कर लेने पर रोगी को बिल्कुल पीड़ा नहीं होती।

(नेत्रके पीछे देनेके अन्तःक्षेपण—Retrobulbar ingections)

९. कोकैन हाईड्रोक्लोराइड और नोवोकेन—इनके २ प्रतिशतके प्रवाही

के साथ १-२ बूंद एड्रीनेलिन मिलाकर उसका इञ्जेक्शन नेत्रगोलकके पिछले भाग में करने के पश्चात् नेत्रगोलक पर किसी भी प्रकार की शस्त्र-क्रिया की जाय, तो रोगी को बिल्कुल वेदना नहीं होती। समस्त नेत्रगोलक को निकाल देने की (Enucleation) शस्त्र क्रिया भी इस इञ्जेक्शन से रोगी को क्लोरोफार्म सुंघाये बिना की जाती है।

१०. एब्सोल्युट आल्कोहोल (शुद्धमद्यार्क)—इस दवाके २-३ बूंद का इञ्जेक्शन नेत्रगोलकके पिछले हिस्से में देनेसे बिल्कुल अन्ध होने पर भी गोलक की तीव्र शूल सदृश वेदना कुछ मासों के लिये दूर हो सकती है। इस इंजेक्शन का विवेचन पहले होगया है; इसलिये यहाँ पुनरुक्ति की आवश्यकता नहीं है।

११. सोडियम थियोसल्फेट—इस औषधके ४ प्रतिशतके प्रवाहीके ५-७ बूंद का इञ्जेक्शन नेत्रगोलकके पीछे देनेसे नेत्रमध्य पटलके भीतर रंग का जमाव या वृद्धि दर्शाने वाले रोगोंमें अच्छा लाभ पहुँचता है, ऐसा हमें अनुभव मिला है। प्रति सप्ताह एक, इस तरह १२ से १६ इंजेक्शन देना पड़ता है।

नेत्रगोलकके पीछे इन्जेक्शन देने की विधि—रोगी को टेबल पर लिटा, उसके नेत्रके लिये योग्य हो ऐसी चेतनाहर औषध डालकर नेत्रको स्पर्श-ज्ञान रहित बनावें। पिचकारी और सुई, एवं जो प्रवाही देना हो उसे अच्छी तरह उबाल कर कीटाणुरहित बनावें। इस इन्जेक्शनके लिये लम्बी मुड़ी हुई विशेष प्रकार की सुई आती है, उसका उपयोग कितनेक नेत्रवैद्य करते हैं। एवं अन्य कई नेत्रवैद्य सामान्य सुईसे ही कार्य लेते हैं। फिर चाहिये उतना प्रवाही पिचकारीमें लें और उसमें रही हुई वायु को निकाल डालें। रोगीके नेत्रको १-५००० मर्क्युरी परक्लोराइड के धोवनसे धोकर साफ करलें। पश्चात् सहायक वैद्य को नेत्र को ठीकसे खोलने को कहें। वे दोनों अंगुलियों को विशेषतः ऊपर की ओर नीचे की पलकके बाहर की ओर रक्खें, ऐसी सूचना करें। रोगी को अपनी नाक पर दृष्टि रखने को कहें। ऐसा करने पर नेत्रगृहके बाहरके किनारेके भीतर अवस्थित नेत्र-गोलक का भाग अधिक स्पष्ट होगा। फिर नेत्रवैद्य पिचकारी की सुई को नेत्रगृह के बाहर की दीवार और नेत्रगोलक के बीचमें अवस्थित पोले भाग (टेनन के आवरण) में प्रवेश करावें। बिना बल लगाये धीरे-धीरे सुई को भीतर जाने दें। लगभग १॥ इंच सुई जाने पर पिचकारी को किंचित् बाहर की ओर मोड़ें। ऐसा करने पर सुई नेत्रगोलकके पिछले हिस्से में जो खाली स्थान रहा है, उसमें प्रवेशित होगी। फिर पिचकारी में रहे हुए प्रवाही को

भीतर जाने दें तथा पिचकारी खाली होने पर सुई को निकाल लेवें। तत्पश्चात् मर्क्युरोक्रोमके बूंद डालें।

सूचना—इस इंजेक्शन में विशेष सम्हाल यह रखना चाहिये कि सुई को किसी भी प्रकार से नेत्रगोलक के भीतर न जाने दें। अन्यथा सामान्य इंजेक्शन भी भंयकर हानिकर हो जायगा। अतः नूतन नेत्रवैद्य और विद्यार्थियों को हमारी ओरसे विशेष शिक्षा (सलाह) है कि, किसी अनुभवी नेत्रवैद्य की सेवा में रहकर इस क्रिया का पूर्ण अभ्यास कर लें। फिर प्रयोग में लावें।

१३. विद्युच्चिकित्सा (*Electrical Treatment*)।

बिजलीके विविध प्रकारके यन्त्रों द्वारा जो उपचार किया जाता है, उसे विद्युच्चिकित्सा कहते हैं। इसके लिये साधन और प्रकार निम्नानुसार हैं :—

अ. आयोनिजेशन-आयोण्टो फोरेसिस-इलेक्ट्रो लाइसिस—Ionization-Iontophoresis-Electrolysis.

आ. फेरेडिक करण्ट—Faradic current.

इ. सेक करने के साधन-थर्मोफेर—Heat application-Thermophore.

ई. कोटरी (Cautery) आदि दहन करने के यन्त्र।

उ. इलेक्ट्रो मेग्नेट—Electro magnet.

ऊ. इलेक्ट्रो मेग्नेटिक बोक्स—Electromagnetic Box.

ए. क्ष-किरण (X Ray) और रेडियम—Radium.

ऐ. डायाथर्मी (Diathermy) लघुतरंग—Short wave.

अ. आयोनिजेशन—इस पहली पद्धति को आयोण्टो फोरेसिस, आयोनिक मेडीकेशन और आयोनिजेशन भी कहते हैं। इस क्रिया के लिये गाल्वेनिक (Galvenic) प्रवाहीकी आवश्यकता है। इस प्रवाहके उत्पादनार्थ पेण्टोस्टेट (Panto-tate) नामक यन्त्र आता है। उस यन्त्रमें ४ प्रकार की विद्युच्चिकित्सा करने की योजना है। गाल्वेनिक, फाराडिक, कोटरी और साइन्युसोइडल (Galvenic, Faradic, Coutery and Sinusoidal); इनमें से गाल्वेनिक का प्रयोग मांसपेशियों के उत्तेजनार्थ और आयोनिजेशनार्थ होता है। इसमें विद्युत् का प्रवाह सतत चालू रहता है। यह एसिड या अमोनियम क्लोराइड के प्रवाही की सहायता से उत्पन्न किया

जाता है, यह एक ही दिशा में + धन सिरे से – ऋण सिरे की ओर प्रवाहित होता है।

उपचार विधि—इस उपचार के लिये रोगी को टेबल पर लिटावें और जिस नेत्र में आयोनिजेशन करना हो, उस नेत्र में किसी भी प्रकार की चेतनाहर औषध के बूँद डालकर नेत्र को स्पर्शज्ञान रहित करें। फिर उस यन्त्र की दाहिनी ओर जहाँ गाल्वेनिक लिखा हो वहाँ '+' और '–' चिह्न वाले दो छिद्र होते हैं, उन छिद्रों में २ तार के सिरे-धातु की दो शलाकाएं होती हैं, उनको प्रवेश कराते हैं। फिर जो औषध नेत्र के भीतर पहुँचानी हो, वह औषध + हो, तो औषध में भीगे हुए लिण्ट के फोहे या भिगोई हुई नेत्र पर लगाने की छोटी प्याली को + तार के साथ संयोजित करें। दूसरा सिरा जो कण्ठ अथवा कनपटी पर रखना हो तो उसे दूसरे तार के साथ जोड़े। फिर पेण्टोस्टेट यन्त्र को चालू करने पर विद्युत्प्रवाह वर्त्तमान होगा और जिस औषध को नेत्र के भीतर पहुँचानी हो वह प्रवेशित हो जायगी।

इस तरह जिंक सल्फेट (Zinc. Sulphate) ½ से ¾ प्रतिशत के प्रवाही रूप से शुक्लमण्डल के परिसर्पक क्षत (Serpiginous ulcer of cornea), शुक्लमण्डल का वृक्षशाखावत् प्रदाह (Dendritic Keratitis) और शुक्ल मण्डल कक्षा (Herpes cornea) पर प्रयोजित होता है। क्विनाइन सल्फेट ¾ प्रतिशत के प्रवाही रूप से शुक्ल मण्डल कक्षा में तथा मक्युरी सब्लाइमैट, आर्जिरोल आदि औषधियाँ पृथक्-पृथक् रोगों में प्रयुक्त होती हैं।

सूचना—विद्युत्प्रवाह का परिमाण २ मिली एम्पियर से बढ़ना न चाहिये।

इलेक्ट्रो लाइसिस (Electrolysis)—यह चिकित्सा निम्न २ हेतुओं के लिये की जाती है। नेत्र के भीतर विद्युत्प्रवाह द्वारा गहराई में औषध पहुँचाने और परवाल के मूल को जलाने के लिये।

परवालके मूल को जलानेके लिये रोगी को टेबल पर लिटावें और जिस बालके मूल को जलाना हो उसकी बाजू की पलक धारामें नोबोकेन प्रवाहीके २–३ बूंद का अन्तःक्षेपण करें। ५ मिनिटके बाद विशेष सूचिका, जो इलेक्ट्रोलाइसिसके दस्तेमें रहती है और जो प्लेटिनम की होती है, उसे बेटरीके साथके एक – तारके साथ जोड़ें। दूसरा तार + जो बेटरीके दूसरे पोल (Pole) में प्रवेशित किया हो उसके सिरेपर एक भिगोया हुआ फोहा लगा कर कनपटी पर रक्खें।

विद्युत बेटरी और पेण्टोस्टेट, दोनों में दो सिरे होते हैं। एक को धन (Positive) और दूसरे को ऋण (Negative) पोल कहते हैं। पोजिटिव को + से और नेगेटिव को − चिन्हसे दर्शाया जाता है।

परवाल को जलाना हो उसके मूलमें सुई को प्रवेश कराकर विद्युत्प्रवाह चालू करें। धारा वर्त्तमान होनेपर बालक मूलमेंसे झाग सदृश वायुके

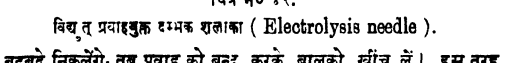

चित्र नं० ४२.

विद्युत् प्रवाहयुक्त दग्धक शलाका (Electrolysis needle).

बुदबुदे निकलेंगे, तब प्रवाह को बन्द करके बालको खींच लें। इस तरह जलाने पर फिर बाल नहीं उगेगा।

आ. फेरेडिक करण्ट (Faradic current)—यह प्रवाह विशेष प्रकार की बिजलीके उपकरणसे उत्पन्न होता है। इस उपकरणमें एक छोटा हथौड़ी जैसा हिस्सा सूक्ष्म कमानीके सिरे पर सज्जित होता है। विद्युत् की धारा चालू होने पर वह हथौड़ी ऊंची नीची होती है और निम्न अवस्थित लोहे के टुकड़े को स्पर्श करती है और पुनः उठती है। ऐसा होनेसे बार-बार विद्युत्प्रवाह रुक-रुक कर मिलता रहता है। जिससे यह प्रवाह जिस मांसपेशी को लगता हो, उसका संकोच होता है। इस तरह कृत्रिम संकोच होने से नष्ट हुई शक्ति पुनः आजाती है। यह विद्युत्प्रवाह चालू बैटरी या पेण्टोस्टेट में से मिलता है। यह उपचार नेत्रनिमीलनी पेशी (Orbicularis Oculi muscle) आदि मांसपेशियां रह जाने पर व्यवहृत होता है। अनेकों को इस उपचारसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

इ. सेक करने के लिये विद्युदुपकरण—इन साधनोंमें मेडोक्सका नेत्रोत्तापप्रद उपकरण (Maddox' Eye-heater) और थर्मोफोर (Thermophore), इन दोनोंमें नेत्र पर रखने की छोटी गद्दी गरम होती है। यह गर्मी न्यूनाधिक होती है। इससे नेत्र पर सूखा सेक होता है। इन यन्त्रों से साइन्युसोइडल प्रवाह मिलता है। यह फेरेडिक के समान किन्तु अति सौम्य होता है।

ई. दहन क्रियोपकरण (Electro cautery)—क्वचित् शुक्लमंडलके क्षत, नेत्रके अन्य घाव, तारामण्डलके पर्दे का कुछ बाहर निकल आना

इत्यादि स्थितिमें दहन क्रिया करनी पड़ती है। दहन क्रियाके लिये शलाका आती है, उसे अग्निमें तपाकर लाल बनाली जाती है अथवा शलाका बिजलीसे तप्त हो सके, उसके लिये दाग देने की शलाका वाला उपकरण मिलता है। बिजली वाले उपकरण का उपयोग पेण्टोस्टेट में से एवं बिजलीके प्रवाह को कम करने वाला, ट्रान्सफोर्मर (*Transformer*) में से हो सकता है।

इस उपकरणके अन्तभागमें प्लेटिनम की शलाका लगी है। बिजली

चित्र नं० ४३

पेक्वेलिनका दहनकर यन्त्र (Paquelin's Cautery).

प्रवाह चालू करनेके लिये दबाने का दस्ता है तथा ट्रान्सफोर्मर अथवा पेण्टोस्टेट में लगाने के लिये धातु की शलाका वाली दो डोरी हैं। इसका उपयोग सरल है। डोरीके साथ लगी हुई शलाकाएं पेण्टोस्टेट में लगाना हो, तो जितने अंश में शलाका लाल करनी हो उतने परिमाणमें सबल (Strong) या निर्बल (Weak) छिद्रों में प्रवेश करावें।

रोगी की तैयारी—रोगी को टेबल पर लिटा उसके नेत्रको स्पर्श-ज्ञान शून्य बनानेके लिये किसी भी चेतनाहर औषधके बूंद डालें। १० मिनिट के पश्चात् नेत्रको अच्छी तरह H. P. धावन १-५००० या बोरिक धावन के प्रवाही से धो डालें। आवश्यक हो तो नेत्रको खुली रखने वाली कमानी लगावें। फिर नेत्रवैद्य बांये हाथमें नेत्रगोलक को स्थिर करने की चिमटी पकड़े। उससे नेत्रगोलक को स्थिर करें और दहिने हाथमें दहन करने का उपकरण पकड़ उसके दस्तेको दबावें। दस्ता दबनेके साथ ही 'स' शलाका लाल होने लगती है। लाल होने पर जिस भागको जलाना हो उस भाग पर शलाकाको अति सफाईसे लगावें। इससे वह भाग जल जाता है। इस उपचारसे जो क्षत न भरते हों वे भरने लगते हैं।

ज. इलेक्ट्रोमेग्नेट (Electro magnet)–लोह चुम्बक—ये उपकरण

२ जातिके आते हैं। १. बड़ा या राक्षसी; २. छोटा या हस्तचुम्बक (Hand Magnets)। छोटा चुम्बक केवल ४ वोल्ट (Volt) की बेटरीको लगाकर प्रयुक्त होता है। इससे शुक्लमण्डलके बाहरके हिस्सेमें गिरे हुए लोहेके चिप्पड़ (जो कारखानोंमें काम करने वालोंकी आँखमें गिर जाते हैं, वे टुकड़े) आकर्षित हो जाते हैं। यदि लोहेके टुकड़े नेत्रके गहरे हिस्सेमें चले गये हों तो उसके लिये बृहद् राक्षसी चुम्बक (Haab's Giant Electro-magnet) का उपयोग किया जाता है। यह राक्षसी चुम्बक अति मूल्यवान् है। एवं उपयोगमें भी अनुभव और कुशलता की आवश्यकता है। ऐसे उपकरण तो केवल बड़े धनिक शहरोंके बड़े होस्पिटलों में ही रक्खे जाते हैं। सामान्य नेत्र-वैद्यों के लिये तो हाथसे उपयोग करनेका चुम्बक ही कार्य देता है। इसका उपयोग आगे संक्षेपमें नेत्रबाह्यपटलकी आगन्तुक व्यथामें दिया जायगा।

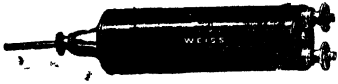

चित्र नं० ४४. हस्तचुम्बक (Hand magnet).

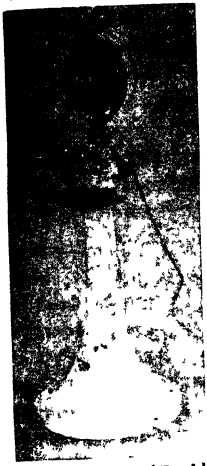
चित्र नं० ४५ हाबका (Haab's) राक्षसी चुम्बक Habb's Giant magnet).

ऊ. इलैक्ट्रोमेग्नेटिक बौक्स (Electro-magnetic box)—यह एक पुराने युगका बिजलीका साधन है। वर्त्तमानमें बड़े शहरोंमें प्रायः इसका उपयोग नहीं होता। तथापि छोटे शहर और ग्रामोंमें जहां बिजलीकी सुविधा न हो वहाँ पर कितनेक अंशमें यह उपयोगी होता है। इस साधनसे नेत्रकी मांसपेशियोंमें संकोच ला सकते हैं। अतः मांसपेशियों का बध (Paralysis) होगया हो, उसके लिये इसका व्यवहार हो सकता है। इससे भी इसका विशेष महत्त्वका उपयोग उन्माद या अपतन्त्रकजन्य अन्धता (Hysterical Amblyopia) पर होता है।

मेरे अनुभवमें आये हुए अनेक रोगियोंमें से दो रुग्णाओंके उदाहरण विस्मयजनक हैं। इनमें से एकका वृत्त उद्धृत करता हूँ। एक रुग्णा २० वर्षकी थी। एक रात्रिको वह पीहरसे ससुरालको गई। वहाँ पहुँचनेके साथ ही उसने बूम मार कर कहा कि, मैं कुछ भी नहीं देखती, बिल्कुल अंध होगई हूँ। ससुराल वालोंने अनेक उपचार किये, कुछ भी लाभ नहीं हुआ और रोगका निदान भी नहीं हुआ। २॥ मास निकल जाने पर कुटुम्बियोंका धैर्य भी टूटने लगा। फिर मुझे कच्छ भुजमें मिले। मैं उनके मकान पर गया; रुग्णाकी सब बात सुनी; और नेत्रकी अच्छी तरह परीक्षा की। किसी भी प्रकारका रोग प्रतीत नहीं हुआ। फिर अपतन्त्रक जनित अन्धता होनेका अनुमान किया और औषधालयसे बिजलीकी पेटी मँगवा कर उस बाईकी दोनों कनपटी पर विद्युत्प्रवाह पहुँचाया। तुरन्त वह बाई मेरा मुँह देखने लगी और ५ मिनिटमें अक्षर पढ़ने लगी; किन्तु बिजलीका प्रवाह बन्द करनेपर पुनः दृष्टि लोप होगई। १५ दिन तक उपचार करने पर बाई बिल्कुल स्वस्थ होगई। उस अनुसार अन्य एक रुग्णाके लिये भी तत्काल उपयोग होनेका उदाहरण मिला है। यह पेटी बहुत कम मूल्य की है और ऐसे रोगियोंके लिये कभी-कभी अति ही सफलता दिलाती है।

ए. क्ष-किरण और रेडियम (X Ray and Radium)—इस प्रकार के विद्युद्यन्त्र अति ही मूल्यवान् हैं। इनके दो उपयोग हैं। १. नेत्रगृहकी छवि लेनेका और २. विविध रोगोंमें उपचारार्थ। प्रायः यह उपचार पलक का कर्कस्फोट (Cancer), पलककी त्वचापर उत्पन्न क्षयकीटाणुजन्य क्षत (Lupus), शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरणके दुष्ट अर्बुद (Malignant Tumours), नेत्रगोलक और नेत्रगृहके दुष्ट अर्बुद आदिमें व्यवहृत होते हैं। इस विषयका यहाँ विशेष विवेचन नहीं करते। कारण, यह विशेष निष्णातोंका विषय है। केवल लेख द्वारा बोध देना कठिन है।

रेडियम का उपयोग भी ऐसे ही रोगियों में होता है। इस हेतुसे इस का उल्लेख भी यहाँ किया है। यद्यपि रेडियम का बिजलीके साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, तथापि रेडियम लगाने पर भी एक प्रकारके किरण देहमें प्रविष्ट होते हैं। फिर उनसे भी दुष्ट ग्रन्थिमें रहे हुए कीटाणुओं और विष का नाश होता है। इसका उपयोग भी विशेषज्ञोंसे ही होता है। एवं अत्यधिक मूल्यवान होनेसे सामान्य चिकित्सक उसका उपयोग भी नहीं कर सकते। अतः विशेष विवेचन नहीं करते।

दुष्ट अर्बुदोंके अतिरिक्त क्ष-किरण और रेडियम का उपयोग वसन्त

ऋतु में उत्पन्न होने वाले नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह पर भी होता है। कितनेक रोगियों को इनसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

सूचना—इन दोनों प्रकारके उपचार नेत्र के लिये करनेमें एक महा अनिष्ट की संभावना है कि, कुछ भी भूल हुई या अतियोग हुआ तो नेत्रके भीतर की दृष्टिमणि अपारदर्शक हो जाती है अर्थात् नेत्रमें काँच बिन्दु की संप्राप्ति हो जाती है।

ऐ. *डायाथर्मी और लघुतरंग* (Diathermy and Short wave)—दोनों प्रकारके बिजलीसे चलने वाले बड़े यन्त्र अति मूल्यवान हैं। डायाथर्मी के यन्त्र छोटे बड़े आते हैं। बड़े यन्त्रमें २ सुविधाएं होती हैं। १—नेत्रको उष्णता देने की; २—जिस भाग को प्रवाह लगे उसे जमाने की (ठोस बनाने की)।

नेत्रको उष्णता देनेके लिये डायाथर्मी का छोटा यन्त्र आता है उसे डाक्टरी में ओफथेल्मोथर्म (Ophthalmotherm) कहते हैं, इसका उपयोग विशेषतः नेत्रविच्छेद की साफर्स की चिकित्सा (Schaffer's Treatment) में होता है। इसका विस्तारपूर्वक विवेचन नेत्रविच्छेदके उपचार में यथा स्थान किया जायगा। इसका उपयोग हम वसन्त ऋतुमें होने वाले नेत्र-श्लेष्मावरण प्रदाह पर करते रहते हैं। इससे अनेकों को लाभ होता है। जब किसी भी प्रकार की नेत्रग्रन्थि, जिसे काटकर निकाल देनेमें अधिक रक्तस्राव भी नहीं होता।

लघुतरंगका मुख्य उपयोग नेत्रके भीतरके हिस्से में उत्पन्न प्रदाह, तारामण्डलप्रदाह, तन्तुमय समूह का प्रदाह, नेत्रमध्य पटल का प्रदाह, नेत्र-गोलकके भीतर प्रदाह, इन सब पर होता है। इससे अनेकों को बहुत अच्छा लाभ होता है। इस प्रकारके विद्युत्प्रवाह से नेत्र को उष्णता मिलती है। इतना ही नहीं, बल्कि प्रदाहउत्पादक कीटाणुओं का नाश होता है और प्रदाह भी शमन होता है।

१४. नेत्रगोलक का मर्दन (*Massage of the Eye*)।

नेत्रगोलकका मर्दन विशेषतः दो रोगोंमें किया जाता है। अधिमन्थ और शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकता (शुक्र-फूला) पर। अधिमन्थमें नेत्र-वैद्य या रोगी नेत्र को बन्द कर पलकके ऊपर दिनमें २ बार ५-५ मिनिट तक अंगुलीसे सहन हो सके ऐसा मर्दन करें। इससे नेत्र दबाव कम हो जाता है और चिरकारी नीले मोतियाके अनेक रोगी अपनी दृष्टि को दीर्घ काल तक कायम रख सकते हैं। कितनेक रोगियों में अधिमन्थ को दूर करने के लिये

शस्त्रक्रिया की हो फिर भी नेत्र दबावका ह्रास न होता हो तो मर्दन करने पर लाभ पहुँचता है और रोगी की दृष्टि सुधरती है।

आँखके फूलाके लिये जो यलो ऑक्साइड ऑफ मर्क्युरीका मलहम या रिफोलवण्ट नामक थियोसिनेमीन का मलहम यदि नेत्र के भीतर डाला जाय और उस समय नेत्र को हल्के हाथ से मसला जाय तो फूले जल्दी अच्छे हो जाते हैं।

१५. प्रकाशचिकित्सा (*Phototherapy*)।

इस चिकित्साके लिये दो प्रकार के उपकरणोंका उपयोग होता है। १. वर्श-हर्श फिल्डकी बत्ती (Birch-Hirsch feld irradiation lamp with uviol filter and quarty lens) और पारदीय बाष्प दीपक (Mercury vapour lamp), इन दोनों प्रकारके दीपकोंसे नेत्रके पीड़ित भाग पर तीव्र प्रकाश गिरता है। इससे रोगोत्पादक कीटाणुओंका ध्वंस होता है। इस प्रकाशका उपयोग विशेषतः क्षय कीटाणु जन्य रोग अथवा उसके अनुरूप विकार पिटिका क्षत, शुक्लमण्डलके गर्भ भागका प्रदाह, क्षय कीटाणु जन्य तारामण्डल और तन्तुसमूहका प्रदाह आदि रोगों में किया जाता है।

इस चिकित्सा का विशेष उपयोग युरोप, अमेरिका जैसे देशों में ही होता है। कारण, वहाँ वर्षमें ११ मास सूर्य प्रकाशका दर्शन नहीं होता। इससे इस प्रकारके कृत्रिम प्रकाशमें सूर्यप्रकाशमें अवस्थित गुण मान लिये जाते हैं। वहाँ ऐसे प्रकाश से लाभ होता होगा; किन्तु भारत भूमि जैसे देशमें जहाँ ११ मास तक सूर्यका प्रचण्ड प्रकाश हो, वहाँ ऐसी जातिके प्रकाश की चिकित्साका विशेष उपयोग नहीं है।

१६. क्ष-किरण और रेडियम चिकित्सा।

(*Radium Therapy*).

इस विषयका उल्लेख पहले क्ष-किरणके उपचारोंके साथ किया गया है।

१७. शस्त्रोपचार (*Operations on the Eye*)।

जब कितनेक नेत्ररोगोंमें औषधोपचार निष्फल होता है, तब शस्त्रोपचार से रोगीको फिर दृष्टि मिल जाती है। उदा०—काँच बिन्दु, नेत्र-विच्छेद आदि। एवं कितनेक रोग तो केवल शस्त्रक्रिया से ही दूर होते हैं। इन सबके लिये शस्त्रोपचारका वर्णन इस पुस्तकके अन्त में कई प्रकरणों में किया जायगा।

छठवां प्रकरण।

नेत्ररोग सम्प्राप्ति विज्ञान।*

(Pathology of Eye diseases).

नेत्रमें जब विविध रोग होते हैं तब उन रोगोंके हेतुसे नेत्रके अवयवों में विविध परिवर्त्तनों की प्राप्ति होती है, उसे नेत्ररोग सम्प्राप्ति कहते हैं।

गर्भावस्थाके भीतर गर्भके विकास की न्यूनताके हेतुसे प्राप्त विकृति (Congenital Abnormalities), ये विकृति मुख्य ३ हैं। १. नेत्रका बिल्कुल अभाव (Anophthalmos); सूक्ष्म गोलक (Microphthalmos ; और ३. तारामण्डल या नेत्रमध्यपटलके भीतर छिद्र (Coloboma of Uveal tract)।

कितनेक शिशुओंमें जन्म होने पर नेत्रगोलक बिल्कुल नहीं होता। कितनेक में नेत्रगोलकके अभावके साथ पलक भी एक दूसरेके साथ चिपके हुए रहते हैं। किसी-किसी को जन्म काल में ही काँचबिन्दु प्रतीत होता है। कितनेकों में नेत्रगोलक सामान्य की अपेक्षा बहुत छोटा होता है। ऐसे बालक बड़े होने पर उनका गोलक हिलता ही रहता है। एवं उनकी दृष्टि भी बहुत छोटी होती है। अन्य कितनेक बालकों को जन्मके साथ ही उनके तारामण्डलके नीचेके हिस्से में छिद्र (Coloboma) प्रतीत होता है। यह छिद्र निम्नांश में होनेसे बहुधा रोगी को अधिक बाधा नहीं पहुँचती। ये सब विकृति एक ही कारणसे होती है।

स्त्रियोंके गर्भ रहे उसी दिनसे गर्भाशयके भीतर अवस्थित गर्भके सब अवयवोंका क्रमशः विकास होता है। नेत्र भी देह का एक भाग होनेसे उसका भी योग्य विकास गर्भवृद्धिके साथ होता रहता है। फिर बालकका जन्म होनेके समय अर्थात् ९ मास १० दिन होने पर नेत्रगोलक लगभग पूर्ण विकास

*'Pathology' इस पारिभाषिक शब्दका अर्थ आयुर्वेदके चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थोंमें संप्राप्ति किया है और वही विशेष प्रचलित है। कितनेक नव्यलेखकों ने विकृति विज्ञान संज्ञा दी है। इनमेंसे प्राचीनों की परिभाषाके अनुरूप यहाँ संप्राप्ति अर्थ लिखा है।

को पाकर बड़े मनुष्यके गोलकके सदृश हो जाता है। किन्तु इस विकास क्रिया में कोई प्रतिबन्ध हो जाय, गर्भाशयमें किसी रोग का विष हो या माता को सगर्भावस्थामें कोई रोग हो जाय या हानि पहुँच जाय तो विकास क्रिया में न्यूनता रह जाती है। फिर नेत्रगोलक का बिल्कुल विकास नहीं होता या विकास अपूर्ण रह जाता है। परिणाममें उपरोक्त खोट रह जाता है। इस विषय को विशेष स्पष्ट समझनेके लिये गर्भशास्त्र (Embryology) का और उसमें भी विशेषतः नेत्र सम्बन्धी गर्भ विकास शास्त्र का अभ्यास करना चाहिये। इस समस्त विषय को समझने के लिये विद्यार्थियोंको उस शास्त्र का पृथक् अध्ययन करना चाहिये। यहाँ विस्तृत चर्चा करने पर ग्रन्थ का कलेवर बढ़ जाता है।

कितनेक शिशुओं को जन्मके समय में ही नेत्रमें शुक्र, नेत्रगोलक का बाहर निकल आना आदि विकार प्रतीत होते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य इस विकृतिका कारण गर्भवस्थामें ही गर्भके नेत्रमें शोथ आने को मानते हैं।

आयुवृद्धिके साथ नेत्राङ्गों का परिवर्त्तन।

जन्मके समय शिशुके नेत्रके दर्शन तन्तुका स्तर अपूर्ण होता है। वह लगभग ३ सप्ताह होने पर ठीक पूर्ण होता है। इस तरह शिशुके नेत्रमें पीतबिन्दु भी जन्म के पश्चात् कितनेक सप्ताहोंमें पूर्ण विकसित होता है। मनुष्यके नयनोंमें प्रायः सब भागोंमें अवस्थाके साथ परिवर्त्तन होता रहता है। नेत्रगोलकके भीतर अवस्थित दृष्टिमणिमें जन्मसे लेकर मृत्युपर्यन्त रूपान्तर सतत होता ही रहता है। छोटे बालकका दृष्टिमणि लगभग प्रवाही होता है। २५ वर्ष की आयु में दृष्टिमणि का बीज (केन्द्रस्थान) ठीक कठिन हो जाता है। ४० वर्ष की उम्र में दृष्टिमणि का गर्भ भाग सुदृढ़ होने लगता है और ६५ वर्ष की अवस्थामें इतना कठिन हो जाता है कि, उसमें रही हुई स्थितिस्थापकता लगभग दूर हो जाती है। इसी तरह नेत्र बाह्यपटल भी जन्म समयमें बिल्कुल नरम और खिंच सके ऐसा होता है। इसलिये यदि नेत्रान्तर दबाव किसी भी कारणसे बढ़ जाय, तो समस्त गोलक बड़ा होजाता है। वही बाह्यपटल शनैः-शनैः कठिन होता जाता है और वृद्धावस्थामें तो इतना कठिन हो जाता है कि, नेत्रके भीतर का दबाव चाहे जितना बढ़े (अधिमन्थ में) तो भी गोलकके परिमाण और आकारमें अन्तर नहीं हो सकता। वार्धक्यजन्य शुक्लमण्डल की परिधि की अपारदर्शकता (Arcus Senilis अवस्थाके हेतुसे शुक्लमण्डलके भीतर होनेवाले रूपान्तर से ही होती है। कांचबिन्दु होना, वह भी एक प्रकार का वृद्धावस्था

जन्य फेरफार है। उसी अनुसार नेत्रदर्पणके कितनेक भागोंमें अपक्रान्ति होती है। नेत्रदर्पण की रक्तवाहिनियों में भी उसी अनुसार जराजनित अन्तर होता है।

रक्तवाहिनियोंमें होनेवाला परिवर्त्तन।

इस परिवर्त्तनमें ३ प्रकार हैं। १. अभिघातज; २. जराजन्य; और ३. शारीरिक विकारजन्य।

१. अभिघातज परिवर्त्तन--जब नेत्रपर कोई चोट लगती है या घाव होता है, तब नेत्रकी रक्तवाहिनियाँ (धमनियां और शिराएँ) टूट जाती हैं। यदि उस समय नेत्रश्लेष्मावरण भी टूटता है तो नेत्रमेंसे रक्तस्राव बाहर होता है। यदि नेत्रश्लेष्मावरण मूल स्थितिमें रह जाता है, तो रक्तस्राव नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे होता है। ऐसा होनेपर छोटा या बड़ा लाल छिद्र प्रतीत होता है। जिस तरह वह दाग व्यथासे होता है, उस तरह कभी विना बाह्य व्यथा भी हो जाता है। छोटे बालकोंको काली खांसी होने अथवा आक्षेप आनेपर ऐसा दाग हो जाता है। वह नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे एकाध छोटी रक्तवाहिनी टूटनेसे होता है। उस तरह नेत्रगोलकके भीतर अवस्थित रक्तवाहिनियोंके टूटने पर नेत्रगोलकके भीतर रक्तस्राव होता है।

२. जराजन्य परिवर्त्तन—जैसे-जैसे मनुष्यकी उम्र बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे रक्तवाहिनियोंमें, उनमें भी विशेषतः धमनियोंमें स्थितिस्थापकताका ह्रास हो जाता है। फिर धमनियोंकी दीवारोंकी रचनामें कठिन पदार्थ उत्पन्न होता जाता है। इस स्थितिमें धमनीकोष काठिन्य (Atheroma or Arteriosclerosis) कहते हैं। जिस तरह यह स्थिति समस्त देहकी धमनियोंमें होती है, उसी तरह कितनेक रोगियोंमें नेत्रदर्पणकी धमनियोंमें भी होती है। इससे उन धमनियोंकी स्थितिस्थापकता कम हो जाती है, या कभी बिल्कुल नष्ट हो जाती है। जैसे यह फेरफार धमनियोंमें होता है वैसे कितनेक अंशमें शिराओंमें भी होता है। यह अन्तर यदि दर्शननाड़ीके भीतर रही हुई नेत्रदर्पणकी मध्य शिरामें हो जाय, तो नेत्रको बहुत हानि पहुँचती है। इस स्थितिका वर्णन 'नेत्रदर्पणकी शिराओंमें व्याधि' के वर्णनमें किया जायगा। कभी-कभी हृद्रोगसे पीड़ितोंमें या अन्य व्याधियोंमें किसी कारणसे नेत्रदर्पणकी मध्य धमनीमें रक्ताभिसरणके साथ आया हुआ जमे हुए रक्तका टुकड़ा (परिभ्रामक शल्य—Embolus) रुक जाता है, तो समस्त नेत्रदर्पणका रक्ताभिसरण बिल्कुल बन्द हो जाता है।

फिर इस हेतुसे रोगी अकस्मात् अन्ध हो जाता है। रोगीको जब रक्तदबाव बढ़ जाता है, तब उसी हेतुसे भी नेत्रदर्पणकी धमनियोंमें स्थितिस्थापकता का ह्रासरूप परिवर्त्तन होता है। वह परिवर्त्तन इतना अधिक होता है कि, नेत्रदर्पणमें एक प्रकारकी व्याधि उत्पन्न होती है। उसे नेत्रदर्पणस्थ धमनी-कोषकाठिन्य जनित प्रदाह (Arterio-sclerotic Retinitis) कहते हैं।

३. शारीरिक व्याधिजनित नेत्रकी रक्तवाहिनियों में परिवर्तन—देहमें विशेषतः ३ रोग ऐसे होते हैं कि, जिससे नेत्रदर्पणस्थ रक्तवाहिनियों में अन्तर हो जाता है। वृक्कप्रदाह, मधुमेह और पाण्डु। वृक्कप्रदाह परिवर्तन उतना अधिक स्पष्ट होता है कि, कुशल नेत्रवैद्य रोगीके नेत्रकी परीक्षा कर तत्काल कह सकेगा कि, रोगीको वृक्कप्रदाहकी सम्प्राप्ति हुई है। इस रोगमें नेत्रदर्पणकी शिराएं कठिन और श्वेत हो जाती हैं। इतना ही नहीं, नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव होने से एक विशेष आकारका सफेद दाग पीतबिन्दुके स्थानमें हो जाता है। यह दाग नक्षत्राकार (Stellate) होता है।

जीर्ण मधुमेहमें सामान्यतः प्रौढ़ावस्थामें जो परिवर्तन होता है, वह वृक्कप्रदाह के फेरफार से मिलता ही होता है। किन्तु इतना अन्तर है कि, जो सफेद दाग बीच में प्रतीत होता है, वह कम सफेद होता है और उसकी आकृति तारकाकार नहीं होती।

पाण्डुरोगके हेतु से धमनियोंमें बहने वाला रक्त बिल्कुल पतला हो जाता है। इससे नेत्रदर्पणके रंगमें अन्तर होता है। इतना ही नहीं, प्रायः इसमें से रसस्राव होता है। एवं नेत्रदर्पणके भीतर रक्तस्राव भी होता है।

उक्त रोगोंके अतिरिक्त कीटाणु जनित ज्वर, मोतीझरा, प्लेग, न्युमोनिया आदि तथा रक्तपित्त (स्कर्वी, पर्पुरा—Scurvy and Purpura) जैसे जिन रोगोंमें रुधिरके जम जाने का गुण कम हो जाता है उनमें भी नेत्रदर्पणके भीतर रक्तस्राव होता है। एवं एक विशेष रोग, जिसे इलकारोग (नेत्रदर्पणगत परिवर्त्तित रक्तस्राव—Eale's Disease) कहते हैं। इसमें किसी भी प्रकारके पूर्वबोधक लक्षण उत्पन्न हुए बिना अकस्मात् रक्तस्राव होता है। पहले एक नेत्रमें से फिर सप्ताहके पश्चात् दूसरे नेत्र में से। ऐसा होकर रोगी बिल्कुल अन्धा हो जाता है। इस रोगमें नेत्रगोलककी रक्त-वाहिनियोंमें इतने फेरफार हो जाते हैं कि, वह सरलता से टूट जाता है।

वातसंस्था विकृतिजनित नेत्ररचना परिवर्त्तन ।

(Changes in the Eye due to Diseases of Nervous System)

शारीरिक समस्त अवयवों की अपेक्षा नेत्रों का सम्बन्ध मस्तिष्क के साथ अधिक निकटका है। कारण, अक्षिगोलकमें से पिछली ओर जाने पर दर्शननाड़ीको मस्तिष्कका ही भाग कह सकते हैं। इस हेतुसे मस्तिष्क और सुषुम्णाकी विविध व्याधियोंमें दर्शननाड़ीमें विकृति प्रतीत होती है। उदा०—एक ही कुटुम्ब में वंशागत अंधतासह मूढ़ता (Amaurotic Family Idiocy), मस्तिष्कगत अपक्रान्तिमें पीतबिन्दुकी अपक्रान्ति (Cerebro-macular degeneration), शकुन्तगति रोग (Tabes dorsalis), सुषुम्णागत विकीर्ण कोरकाठिन्य (Disseminated Sclerosis), नेत्रकी मांसपेशियोंका बध (Paralysis of Ocular Muscles) और मस्तिष्कस्थ ग्रन्थियोंके हेतुसे या अन्य किसी कारणसे शिरोगुहाके भीतर दबाव बढ़ जाता है, तब दर्शनतन्तुओंका शोथ (Papillo edema) अवश्य प्रतीत होता है। पांचवीं नाड़ीका उत्पत्ति-स्थान, जिसे त्रिधार ग्रन्थि (गेसेरियन गैंगलियन-Gasserian ganglion) कहते हैं, उसकी विकृति होने पर समस्त शुक्लमण्डलका कोथ होजाता है। वह भी नेत्र और मस्तिष्कके सम्बन्धका उदाहरण है।

उपरोक्त फेरफारोंके भीतर जो परिवर्त्तन अन्धतासह मूढ़तामें तथा पीतबिन्दुकी अपक्रान्तिमें होता है, वह मातापिताकी ओरसे संतानके रक्त के भीतर उतरे हुए मस्तिष्क द्रव्योंके गम्भीर परिवर्त्तनोंके अन्तर्गत है; अर्थात् जो परिवर्त्तन मस्तिष्कमें होता है, उसी प्रकारका रूपान्तर नेत्रमें होता है। शकुन्तगति रोग, सुषुम्णागत विकीर्ण कठिनता और उसके अनुरूप अन्य विकारोंमें जो अदल-बदल आंखोंके भीतर होता है, वह विषप्रकोप (बहुधा उपदंशज) से होता है। विष रुधिराभिसरण द्वारा सुषुम्णामें पहुँचकर हानि पहुँचाता है। इससे सुषुम्णाकाण्डके कुछ अंशकी अपक्रान्ति होती है; साथ-साथ दर्शननाड़ीकी भी अपक्रान्ति होती है। सुषुम्णाकाण्डगत रूपान्तरके हेतुसे शरीरकी मांसपेशियोंकी शक्ति और क्रियामें न्यूनता होती है; तथा दर्शनतन्तुके विपरिणामसे रोगीकी दृष्टि शनैः-शनैः नष्ट होती जाती है। मस्तिष्ककी ग्रन्थियोंके हेतुसे मस्तिष्कस्थ रस-ब्रह्मवारि (Cerebro-spinal fluid) के अभिसरणका अवरोध होता है। फिर उस रसका दबाव बढ़ता है। इसका असर मस्तिष्कके ३ पर्त्तों—अन्तरा, मध्यमा और बाह्या पर होता है। ये तीनों पर्त्त मस्तिष्कमें से दर्शननाड़ी पर सीधे चले आते हैं।

इससे दर्शनतन्तु पर भी मस्तिष्कके समान असर पहुँचता है। परिणाममें दर्शनतन्तु फूल जाते हैं और उनको नेत्रदर्शक यन्त्रसे देख सकते हेतुसे मस्तिष्क ग्रन्थियोंका निदान प्रायः शस्त्रचिकित्सक नेत्रवैद्यकी सहायता के बिना नहीं कर सकते।

नेत्रकी मांसपेशियोंके वर्णनमें कहा है कि नेत्रकी बाह्या सरला मांसपेशी पर छठवीं नाड़ी और ऊर्ध्वा वक्रा पेशीपर चौथी नाड़ीका अधिकार है। अन्य सब पेशियों पर तीसरी नाड़ीका शासन चलता है। एवं नेत्रको बंद करने वाली पेशीपर ७ वीं नाड़ीका आधिपत्य है। अतः शिरोगुहाके भीतर रही हुई इन नाड़ियोंके किसी भाग में व्यथा हो या व्याधि उत्पन्न हो अथवा मस्तिष्कस्थ केन्द्रस्थान (उन नाड़ियोंके उद्भवस्थान) में प्रदाह, ग्रन्थि, रक्तस्राव या अन्य किसी भी प्रकारका रोग होजाय, तब इन मांसपेशियोंका स्तंभ (Paralysis) हो जाता है। वह स्तम्भ, कोथ या सरक जाना यदि एक ही नेत्रमें हो तो कदाच उस ओरकी नाड़ियोंके शिरोगुहासे बाहर रहे हुए भागमें उत्पन्न विक्रियाके हेतुसे हो सकती है; किन्तु दोनों आँखोंकी मांसपेशियोंकी यह स्थिति हो, तो ऊपर रहे हुए केन्द्रस्थानके रोगका परिणाम होना विशेष संभावित है।

पांचवीं नाड़ीके रोगके हेतुसे अथवा उत्पत्ति-स्थानके कट जाने या उस पर दबाव आनेसे यदि शुक्ल मण्डलकी संज्ञाशक्ति नष्ट हो जाय तो पूरा शुक्लमण्डल सड़कर नष्ट होता है (Necrosis)। उसी अनुसार कभी-कभी कक्षाके हेतुसे पांचवी नाड़ी पर असर होकर वही परिणाम आता है।

अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंका विकृतिजनित परिवर्त्तन।

(*Endocrine disturbances*)

शरीरके भीतर अन्तःस्राव करनेवाले अनेक पिण्ड हैं। इनमें पोषणिका ग्रन्थि (Pitutary gland), ग्रैवेयक ग्रन्थि (Thyroid gland), बालग्रैवेयक (Thymus), अधिवृक्क (Adrenal), वृषण (Testes) परिग्रैवेयक (Parathyroid) और दृक् कन्दिका (Pineal), ये मुख्य हैं। इनमें केवल ४—ग्रैवेयक, परिग्रैवेयक तथा कुछ अंशमें दृक् कन्द और पोषणिका ग्रन्थिके साथ अक्षिरोगोंका सम्बन्ध है।

ग्रैवेयक ग्रन्थि जब चाहिये उससे अधिक रसस्राव करती है और बढ़ती है, तब उसे ग्रैवका रोग या बेसडोका रोग (Grave's disease or Basedow's disease) कहते हैं। इस रोगमें नेत्रके भीतर जो-जो विकृति होती हैं, वे तत्काल अवगत हो जाती हैं। (१) इसमें नेत्रगोलकका बाहर

निकल आना (Exophthalmos); (२) नेत्रके पलक ऊपरकी ओर खिंचे-से होजाने से नेत्र ठीक बन्द न होना; (३) नेत्रगोलक जब नीचे फिरे, तब पलकका नीचे न आना; (४) नेत्रपलकके खुलने बन्द होने रूप क्रियाका ह्रास होना; (५) समीप देखनेमें नेत्रगोलक जितना भीतर जाना चाहिये, उतना न जाना, इन सब लक्षणोंकी उत्पत्तिका हेतु प्रैवेयक ग्रन्थिका अधिक स्राव है। यह रस अधिक उत्पन्न होकर रक्तमें मिश्रित होता है। फिर वह रक्त नेत्रमें गमन करने पर विकृतियां होती हैं।

परिप्रैवेयक ग्रन्थिका रस जब कम उत्पन्न होता है, तब बालकोंको आक्षेप आते हैं; और बहुत छोटी आयुमें भी नेत्रमें मोतियाबिन्दु आ जाता है।

दृक्कन्दिका और पोषणिका ग्रन्थियोंसे नेत्रमें सीधा परिवर्त्तन नहीं होता; किन्तु दर्शनतन्तु और दर्शनकेन्द्र पर दबावृद्धिके चिह्न उपस्थित होते हैं। इसका वर्णन पहले होचुका है।

विषोत्पादित अन्धता (*Toxic Amblyopia*)।

विषप्रकोपसे आनेवाली अन्धताके वेगके अनुसार २ प्रकार हैं। १. आशुकारी अर्थात् तुरन्त आनेवाली; २. चिरकारी अर्थात् शनैः-शनैः प्राप्त होनेवाली। आशुकारी (Acute) प्रकार में क्विनाइन, मेथिलेटेड स्पिरिट, सेसीसिलेटस, अनारके मूल की छाल, ओप्टोचिन, एटोक्सिल, ऑस्मिक एसिड, पोटासियम क्लोरेट, एण्टीफेब्रिन और अन्य कतिपय औषधियां हैं तथा चिरकारी (chronic) प्रकारमें तमाखू और शराब मुख्य हैं।

क्विनाइनसे उत्पन्न अन्धता—सब नेत्रवैद्योंके अनुभवमें ऐसे रोगी बहुसंख्य आते हैं। रोगी क्विनाइन बड़े परिमाण में लेता है; तब उसे दिखना बन्द हो जाता है और कानमें गुंज होने लगती है। जिन रोगियों ने क्विनाइन अत्यधिक न लिया हो उनको लुप्त दृष्टि से पुनः दृष्टि प्राप्त होती है। केवल कुछ अन्तर रह जाता है। कइयोंमें आजीवन दृष्टिमें खोट रह जाता है। प्रायः १५ ग्रेनसे कम मात्रामें लिया हुआ क्विनाइन दृष्टि को हानि नहीं पहुँचाता। १५ से ४५ ग्रेन की मात्रा नेत्रको हानि पहुँचाती है; किन्तु हमें कितनेक रोगियों के १० ग्रेनसे कम लेने पर भी दृष्टि कम होनेके उदाहरण मिले हैं।

मेथिलेटेड स्पिरिट जन्य अन्धता—प्राइमस जलानेके लिये जो स्पिरिट प्रयुक्त होता है, उसे मेथिलेटेड स्पिरिट कहते हैं। वह लकड़ीमेंसे बनता है अतः उसे वुड अल्कोहॉल (Wood alcohol) भी कहते हैं। इसके पीनेसे

नेत्रदृष्टि को बहुत हानि पहुँचती है। जिन शराबियों को किसी कारणवश शराब नहीं मिलती, तब मेथिलेटेड स्पिरिटको शराब मानकर लालसा मिटाने के लिये पीते हैं। प्रायः एक ही समय पीनेसे ही सदा के लिये दृष्टि को हानि पहुँच जाती है। इस प्रकारकी शराबसे दर्शननाड़ी का शोथ या अपक्रान्ति होकर दृष्टिमान्द्य होता है। कितनेक लोग, जो रंग चढ़ाने का काम करते हैं, उनके फुफ्फुसमें श्वास द्वारा इसकी वाष्प जाती रहती है। फिर वह रक्तमें जाकर दृष्टि को शनैः-शनैः हानि पहुँचाती है

उक्त दो द्रव्योंके अतिरिक्त ऊपर लिखी हुई शेष औषधियां भी यदि बड़ी मात्रा में ली जायँ, तो दृष्टि को हानि पहुँचती है। उनमें से अधिक प्रायः दृष्टिकेन्द्र स्थान और दर्शन नाड़ी में परिवर्त्तन करा कर दृष्टि को हानि पहुँचाती हैं।

चिरकारी दृष्टिमन्द्य विकार—तमाखू और शराबके सेवन से रक्तमें विष उत्पन्न होता है। जो शनैः-शनैः दृष्टि को हानि पहुँचाता है। इन दो में से एक ही वस्तु का उपयोग हो और मर्यादित सेवन हो, तो अधिक हानि नहीं होती। किन्तु दोनों का एक साथ उपयोग होता है और वह भी अधिक परिमाणमें, तो दृष्टिको अधिक हानि पहुँचती है। बहुधा इन रोगियों को रात्रि को ठीक और दिनमें कम दीखता है। प्रायः दोनों आँखोंमें समान हानि पहुँचती है।

शीशा (नाग धातु) के विषसे भी किसी-किसी को दीर्घ काल में अन्धता आती है। रंग का कारखाना, टाइप फाउण्ड्री और छापाखाना आदि में कार्य करने वालों को शीशे का विष मिलता ही रहता है। इस विष से दर्शनतन्तुओं पर असर पहुँचाता है। इसके विषसे नेत्रको क्वचित् हानि पहुँचती है। वर्त्तमानमें लड़ाईके हेतुसे कलई का मूल्य अत्यधिक होजाने से वर्त्तनों को कलई लगाने वाले लोग कलईके साथ शीशा मिला देते हैं। इस कारण उन वर्त्तनोंमें भोजन बनाने और खानेसे कुछ-कुछ जहर मिल जाता है।

पोषक तत्त्वोंको न्यूनतासे उत्पन्न नेत्रमें परिवर्त्तन।

(Disorders of Nutrition).

आँख भी देह का एक अंग है। अतः देहके समान नेत्रके अलग-अलग सब भागोंका स्वास्थ्य रक्त और रस द्वारा मिलने वाले पोषक द्रव्यों पर अवलम्बित है। जब इन पोषक तत्त्वों की न्यूनता होजाय, तब इन दो अवयवों को अधिक सहन करना पड़ता है। पहले लिखे अनुसार जिन

बालकों को योग्य पोषण नहीं मिलता, उनको शुक्लमण्डल का क्षत होता है या समस्त शुक्लमण्डल का पाक होकर सड़ जाता है। इसका मुख्य कारण एक ही है। शुक्लमण्डलके स्वास्थ्यके संरक्षणार्थ जिन तत्त्वों की आवश्यकता है, वे नहीं मिले।

शुक्लमण्डलके समान दृष्टिमणिके पोषण का आधार भी रस पर है। वृद्धावस्था और मधुमेहके रोगमें जब रसोत्पत्ति कम होती है, तब काँच-बिन्दु की उत्पत्ति होती है। दृष्टिमणि को पारदर्शक रखने के लिए जिन तत्त्वोंकी आवश्यकता है, उनमें न्यूनता होने पर पारदर्शकता कम होने लगती है। फिर शनैः-शनैः दृष्टिमणि अपारदर्शक हो जाती है। नेत्र-श्लेष्मावरण में होने वाला शुष्कता रूप परिवर्त्तन भी इसी कारणसे होता है।

विविध नेत्रार्बुद (*Tumours*)।

देहके अन्य भागमें जिस तरह अर्बुद और विद्रधि होते हैं और उनसे जैसा परिवर्त्तन होता है, उस तरह नेत्र और उसके उपाङ्गों में भी विविध प्रकारके अर्बुद और विद्रधि होते हैं और उनसे भी विविध परिवर्त्तन होता है। नेत्रके उपाङ्गोंमें मुख्य प्रसरणशील दुष्ट विद्रधि (Rodent Ulcer) है। वह प्रायः पहले पलककी बाह्य त्वचा पर उपस्थित होता है। फिर फैल-फैल कर कितनीक बार नेत्रश्लेष्मावरण तक पहुँच जाता है। इस क्षतके हेतुसे नेत्रके चारों ओरकी त्वचाका भाग, और अधिक वृद्धि हो तो गोलकके ऊपरका हिस्सा भी विनष्ट हो जाता है।

कभी-कभी पलकधारा और पलकके ऊपर कर्कस्फोट (Cancer) उत्पन्न हो जाता है। इससे भी पलकके कितनेक हिस्सेका ध्वंस होजाता है।

नेत्रगोलक पर तिल सदृश ग्रन्थियां (Moles), रक्तप्रणाली वृद्धि-जनित ग्रन्थियां (Naevi) उपस्थित होती हैं। इस तरह अश्रुपिण्डकी ग्रन्थियां भी कई बार देखनेमें आती हैं।

तारामण्डल पर कभी-कभी छोटे-छोटे काले मटर जितनी ग्रन्थियाँ हो जाती हैं। किन्तु वे दुष्ट नहीं हैं। नेत्रमें होनेवाली दुष्ट ग्रन्थि—अर्बुदोंमें मुख्य दो जाति हैं। तारामण्डल अथवा नेत्रमध्यपटलमें उत्पन्न मांसार्बुद (Sarcoma) और नेत्रदर्पणमें होने वाली नाड़ीग्रन्थि (Glioma), इन दोनों प्रकारके अर्बुदोंके अनेक रोगी प्रतीत होते हैं। ये दोनों अति दुष्ट हैं। इनसे नेत्रगोलक तो मारा जाता है, बल्कि यथासमय शस्त्रोपचार न किया जाय और शस्त्रोपचारके पश्चात् क्ष-किरण या रेडियमसे उपचार न किया जाय, तो वे पुनः प्रकाशित होते हैं। फिर मांसार्बुदसे देहमें अन्यत्र

दुष्ट मांसार्बुद तथा नाड़ीग्रन्थिसे मस्तिष्कके भीतर उसी अनुरूप ग्रन्थियाँ हो जाती हैं और रोगीकी मृत्यु भी करा देती हैं।

दर्शनतन्तु पर ग्रन्थियाँ और नेत्रगृहके भीतर अस्थिमय ग्रन्थियाँ (Osteomas) एवं अन्य अर्बुद होने पर उन भागोंका ध्वंस होजाता है।

संक्रामक–संसर्गजनित व्याधियाँ।

नेत्रमें कीटाणु और विषका संसर्ग दो प्रकारसे होता है। बाहरसे और भीतरसे (रक्ताभिसरण द्वारा)।

बाहरसे संसर्ग—बाहरसे रोगोत्पादक कीटाणुओंका प्रवेश कभी-कभी हो जाता है। इसके संसर्गसे नेत्रगोलक और अन्य अवयवोंका दाह-शोथ होता है। फिर रक्तवाहिनियाँ फूल जाती हैं। रसस्रावकी वृद्धि होती है। पूय उत्पन्न होता है और इस हेतुसे नेत्रका बहुत भाग सड़कर नष्ट हो जाता है। यदि योग्य उपचार और भीतरकी रोगनिरोधक शक्तिकी प्रबलतासे संरक्षक तत्त्वोंका बल बढ़ गया, तो तन्तुमय पदार्थ निर्माण होता है। फिर सड़नेकी क्रियाको रोक देता है, किन्तु वह पदार्थ शुक्ल-मण्डल जैसे पारदर्शक भागमें से उत्पन्न हुआ हो, तो उस स्थानको अपार-दर्शक बना देता है। यदि रक्तवाहिनियोंसे पूर्ण तारामण्डल जैसे प्रदेशमें से निर्मित होता है, तो वह भाग चारों ओरके अवयवोंके साथ संलग्न हो जाता है। यदि वह नेत्रमध्यपटल या नेत्रदर्पणके भागमें उपस्थित होता है, तो वहाँ श्वेत चिह्न बनाकर उस भागकी दृष्टिका नाश करता है।

रक्ताभिसरण द्वारा प्रवेश—देहके किसी भी भागमें पूयोत्पत्ति या कीटाणुजन्य प्रदाह हो जाय, तब कभी-कभी उसका अंश या कीटाणु रक्त में प्रवेश कर अभिसरण क्रिया द्वारा नेत्रमें पहुँच जाता है। इससे नेत्र-गोलकका प्रदाह होता है। फिर नेत्रगोलक एक बड़ा विद्रधि बन जाता है। जिस तरह कीटाणुजन्य प्रदाह होता है, उस तरह कीटाणु जनित विषसे भी उसी प्रकारका शोथ उपस्थित होता है। ऐसे प्रकारके कीटाणु या विष का आक्रमण देहके किस-किस भागमें से होता है, इसका वर्णन पहले हो चुका है। अतः पुनः यहाँ विस्तार नहीं किया।

मेरे अनुभवमें आये हुए अनेक रोगियोंमें से एकका उदाहरण यहाँ देता हूँ, जिससे पाठकोंको ख्याल आ सकेगा। एक ६५ वर्षकी आयुवाला रोगी कांचबिन्दुकी शस्त्र-चिकित्सा करानेके लिये मेरे पास आया। उसकी एक आँखमें मोतीबिन्दु ठीक पक गया था, जिससे मैंने उसका आपरेशन कर दिया। एक सप्ताह बाद उसकी दृष्टि ठीक हो जाने पर उसे होस्पिटलमें से

जानेकी अनुमति दी। दो मास बाद नेत्रकी परीक्षा कर योग्य नम्बर वाला चश्मा दिया गया, जिससे दृष्टि पहलेके समान पूर्ण होगई। इस तरह नेत्र लगभग चार मास तक अच्छा रहा। उस रोगीको कानमें पूय होता था। शस्त्रक्रियाके समय वह शमन होगया था। फिर उस कानमें पूय होगया। रोगीने उसकी ओर बिल्कुल दुर्लक्ष्य किया। वह एक रात्रिको सोया, तब उसकी दोनों आंख ठीक थीं, किन्तु दूसरे रोज सुबह उठनेपर उसे विदित हुआ कि, जिस नेत्रसे कांचबिन्दु निकलवाया है, उससे दीखता ही नहीं। आंखमें शोथ आगया है और असह्य वेदना होती है। वह शामको मेरे पास नेत्र दिखानेके लिये आया। नेत्र देखने पर तत्काल अवगत हुआ कि, उसकी आँखमें सर्वत्र पूय होगया है और पूरा गोलक विद्रधि रूप बन गया है। पूछनेपर विदित हुआ कि, उसके कानमें पूय होगया है। उस पूयका अंश रक्त द्वारा नेत्रमें गया जिससे नेत्रगोलक पककर नष्ट होगया। उस अनुभव पर से यह बात जानी गई कि, कांचबिन्दु निकलवायी हुई आँखमें अर्थात् निर्बल नेत्रमें पूयोत्पत्ति होगई, दूसरे नेत्रमें नहीं। इस परसे यह अनुमान सहज हो सकता है कि, जिस नेत्रको किसी भी जातिकी व्यथा होगई हो अथवा वर्त्तमान हो, उस नेत्रको अन्य नेत्रकी अपेक्षा रक्ताभिसरण क्रिया द्वारा इस प्रकारके कीटाणु या विषके संसर्गका सम्भव अधिकतर है। एवं एक दूसरा नियम भी सिद्ध होता है कि, रोगीके देहके सब अवयव यदि स्वस्थ हैं, तो नेत्र परकी सब प्रकारकी शस्त्रक्रिया विशेष सफल होती है। यदि रोगीके देहमें किसी भी भागके भीतर प्रदाह या पूय हो अथवा क्षय, उपदंश, सुजाक, आदि रोग हो, तो नेत्रवैद्य, पूर्ण कुशल होनेपर भी उस रोगीके नेत्रमें प्रदाह उपस्थित होता है। फिर सब प्रकारके सदुपचार करने पर भी वह आँख चली जाती है।

सातवाँ प्रकरण ।

नेत्रनिदान ।❀

(Aetiology of Eye-diseases)

नेत्रमें रोगोत्पत्ति के मुख्य कारण :—

१. जन्मलब्ध विकृति—

अ. गर्भज (Congenital defects) अर्थात् जन्मके समय प्रतीत होने वाला खोट;

आ. वंशागत (Hereditary) विकार ।

२. भौतिक व्यथा—Physical injuries.

३. यान्त्रिक व्यथा—Mechanical injuries

४. रासायनिक द्रव्यसे व्यथा—Chemical injuries.

५. कीटाणु जन्य व्यथा—Parasitic injuries.

६. अपक्रान्ति जन्य विकृति—Degenerative changes.

७. ग्रन्थियां—New growths.

१. अ. गर्भजन्यूनता और व्याधियाँ (*Congenital defects*).

ये न्यूनता विविध प्रकारकी होती हैं । पलक उठानेकी अशक्ति (Ptosis), यह नेत्रोन्मीलनी पेशीका विकास रुक जानेसे आती है । तारामण्डलका अभाव और तारामण्डलमें छिद्र (Aniridia and Coloboma of Iris), दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टता (Dislocation of Lens), जन्मजात काँचबिन्दु (Congenital Cataract), गोलकका अभाव, पलककी संलग्नता, सान्द्रजलकी धमनी और कलाका अस्तित्व (Persistent Hyoloid artery and membrane), कनीनिकाके आवरणका अवशेष रह जाना (Persistent pupillary membrane), ये सब प्रतीत होती हैं ।

❀ प्राचीन आयुर्वेदिक ग्रन्थोंमें रोगोत्पत्ति कारणको निदान संज्ञा दी है । उस प्राचीन परिभाषाके अनुसार यह निदान शब्दका प्रयोग किया है ।

इन सबके कारण ये हैं कि, नेत्रगोलक या उसके किसी अवयवका विकास ही न होना या किसी प्रतिबन्ध वश विकास रुक जाना अथवा नैसर्गिक रीतिसे जन्मके पहले शनैः-शनैः जिन-जिन भागोंका शोषण होजाना चाहिये, वह न होनेसे कुछ अंशमें शेष रह जाना, ये हैं।

१. अ. वंशगत व्याधियाँ (*Hereditary diseases*)।

माता-पिताकी ओरसे परम्परा प्राप्त नेत्ररोगोंके भीतर मुख्य नेत्र शुक्लांगता (Albinism), नक्तान्धता, नेत्रका तिर्यक्पन, ह्रस्वदृष्टि आदि हैं। ये जन्मके समय ही प्रतीत होते हैं या फिर उपस्थित होते हैं। कितनेक रोग कांचबिन्दु, अधिमन्थ, ह्रस्वदृष्टि आदि नवजात शिशुमें प्रतीत नहीं होते। किन्तु इन रोगोंके बीज बालकके रुधिरमें वर्त्तमान तो होते ही हैं, जो परिपक्व होकर आयुवृद्धि होने पर निश्चित अवस्थामें उपस्थित होते हैं। जो रोग माता या पिता को हो, वही संतानको प्राप्त हो जाता है। यह पूरा शास्त्र अभी तक अति अपूर्ण हैं। बड़े-बड़े विद्वान् उसके अध्ययनके लिये प्रयत्नशील हैं। पाठकोंके समक्ष इसके अधिक विवेचनकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

२. भौतिक व्यथा (*Physical injuries*)।

इस प्रकारमें नेत्रको हानि पहुँचाने वाला विशेषतः प्रकाश है; चाहे सूर्य, अग्नि या बिजलीका हो। सूर्यग्रहणके समय कितनेक लोग काँचकी सहायता बिना ग्रहणको देखनेकी चेष्टा करते हैं, उनकी दृष्टिको हानि पहुँचती है। वह सूर्यके प्रकाशके उष्ण किरणोंसे होती है। इस तरह अग्निकी उष्णता से भी क्षति पहुँचती है। काँचके कारखानोंमें जो लोग काँचको गलानेका काम करते हैं, उनको काँचबिन्दु होजाता है। इस काँचबिन्दुको डाक्टरीमें काँच निर्माताका मोती बिन्दु (Glass blowers' Cataract) कहते हैं।

भारत और आफ्रिका आदि देशोंमें जहाँ सूर्यका ताप अति प्रचण्ड होता है, वहाँ रहनेवालोंको शीतप्रधान देशवासियोंकी अपेक्षा कांचबिन्दु अधिकतर होता है। इसका कारण सूर्यतापकी उग्रता है। धूपमें फिरनेसे आँखका दुखना और प्रकाशकी असहिष्णुता होना, यह तो अनेकोंको रोजका अनुभव है। इस स्थितिको रोकनेके लिये अर्थात् सूर्यके प्रकाश और तापमें अवस्थित हानिकर किरणोंसे बचनेके लिये विशेष प्रकारके कांचके चश्मेका उपयोग करना चाहिये। ऐसे कांचका शोध रसायन-शास्त्र-

विद् क्रुक्स (Crooks) ने किया है। धूप और प्रकाशमें से हानिकर किरण जो निकलते हैं, वे उस कांचके चश्मेमें ही शोषित हो जाते हैं। वही कार्य काले रंगके साधारण कांचके चश्मे (Goggles) भी कर सकते हैं। यदि आंख आई हो, तारामण्डलका प्रदाह हुआ हो, या नेत्रके भीतरके भागमें प्रदाह हुआ हो, तब रोगीको अँधेरे वाले कमरेमें रखनेसे आराम मिलता है, और नेत्र पर प्रकाशको आने देवें, तो शोथ बढ़ जाता है। इसी तरह बिजली या बिजलीकी अधिक प्रकाश वाली बत्तीसे भी हानि पहुँचती है। सौभाग्यसे यह असर थोड़े समयमें शमन हो जाता है। किन्तु कितनेक व्यक्तियोंको अधिक असर पहुँचता है, जिससे कुछ असर आजीवन शेष रह जाता है।

अग्नि, बिजलीके समान बर्फ पर चलने वालोंको भी उसी तरह अन्धता (Snow blindness) आजाती है। इसका कारण बर्फ पर से आने वाला चमकाट आंखोंको चकाचौंध बना देता है। परिणाममें नेत्रदर्पणको हानि पहुँचती है।

३. यान्त्रिक व्यथा (*Mechanical injuries*)।

नेत्र को होनेवाली यान्त्रिक व्यथा दो प्रकार की है। अ. छिद्र सहित (With Perforation); आ. छिद्र रहित (Without perforation।

अ. छिद्रसहित व्यथा—इसमें २ उपविभाग हैं। A. छिद्र करके बाह्य पदार्थ का नेत्रोंमें रह जाना; B. छिद्र करके बाह्य पदार्थ निकल आना। किसी भी कारणसे आंखमें घाव हो जाय, तो वह घाव अति भयप्रद माना जाता है। पहले किये हुए वर्णन परसे पाठकों को विदित होगा कि, नेत्रगोलक एक प्रवाही तत्त्वोंसे भरी हुई गोल गेंद है। इन प्रवाही तत्त्वोंमें ऐसे पदार्थ अवस्थित हैं कि, किसी भी जातिके संक्रामक कीटाणुओं का उसमें प्रवेश होजाय, तो उन कीटाणुओं की वंशवृद्धि होनेके लिए जितनी चाहिए, उतनी सुविधा तत्त्वोंके भीतर पूर्ण रूपसे रही है। इस कारण नेत्रगोलकके छिद्र सहित घावके परिणाममें नेत्रगोलक पक जानेका और फिर पूय होने की पूर्ण संभावना है। यथार्थमें नेत्रके छिद्र सह सब घावों (चाहे निर्जन्तुक सुईसे ही हुआ हो) के परिणाम में प्रायः नेत्रका अति प्रदाह होजाता है। फिर बहुधा उसमें पूयोत्पत्ति हो जाती है और आंख पक जाती है।

यदि वह क्षत ऐसे शस्त्र या पदार्थ से हो कि नेत्रमें केवल गहरा घाव ही हो, तो नेत्रमें रहे हुए प्रवाही, जैसा कि जलमय रस और कांचमय रस,

ये घावके मार्गसे बाहर निकल जाते हैं। फिर नेत्रगोलक बिल्कुल नरम होजाता या बैठ जाता है। ऐसा होने पर नेत्रदर्पण स्वस्थानसे सरककर आगे आजाता है। एवं तारामण्डल, तन्तुसमूह और नेत्रमध्यपटल, तीनों अवयवोंमेंसे किसी को घाव हो, तो वे सब रक्तवाहिनियों से पूर्ण होनेसे उसमें से अति रक्तस्राव होता है। यह रक्तस्राव बाहर निकल आता है या गोलकके भीतर ही रह जाता है। यदि घाव शुक्लमण्डल और नेत्रबाह्यपटलके संगममें हो, तो तारामण्डल या तन्तुसमूह का थोड़ा बहुत अंश उस घाव में से बाहर आता है। फिर यथा समय उसे न बैठा दिया जाय या न काट दिया जाय तो उस क्षतके भीतर फँसकर पर्त्त चिपक जाते हैं। इन सबके परिणाम में नेत्रदृष्टि को गम्भीर हानि पहुँचती है। यदि दुर्भाग्यवश नेत्रमें शोथ या पूय हो जाय तो उस आंखके चले जानेकी भी विशेष संभावना है।

यदि छिद्र सहित घाव होनेके साथ नेत्रगोलकमें कोई बाह्य पदार्थ रह जाय, तो नेत्रको अधिक हानि पहुँचती है। ऐसा बाह्य पदार्थ प्रायः लोहेके और कभी ताम्बेके होते हैं। लोहा नेत्रके भीतर रह जाने पर नेत्र पकने का भय तो है ही, इसके अतिरिक्त लोहे पर जंग उत्पन्न होने और उस जंग की भस्म (Oxide of iron) बनकर नेत्रगोलकमें अवस्थित रसमें मिल जाती है। इससे शुक्लमण्डल, तारामण्डल, तन्तु समूह और दृष्टिमणिका रङ्ग पिंगल हो जाता है, तथा पारदर्शक भाग अपारदर्शक बन जाता है। इससे भी नेत्रको बहुत हानि पहुँचती है। इस तरह लोह भस्मके कारणसे उत्पन्न रंग भेद को लोह वर्णाणु संग्रह (Siderosis) कहते हैं।

यदि बाह्य पदार्थ ताम्बे का हो, तो लोह की अपेक्षा भी अधिकतर हानि पहुँचाता है। क्यों कि, अनुभवी नेत्रवैद्योंने देखा है कि, लोह (यदि कीटाणु रहित है, तो) प्रायः वर्षों पर्यन्त नेत्रको अधिक हानि पहुँचाये बिना रह सकता है। किन्तु ताम्र तो स्वल्प समयमें ही प्रदाह और पाक लाता है। यदि क्षत बहुत बड़ा हो तो सब काँच मय रस निकल जाता है। फिर नेत्रगोलक बिल्कुल नरम और छोटा हो जाता है।

छिद्र रहित व्यथा—इस प्रकार की व्यथा कितनीक बार बिलकुल साधारण भी होती है। शुक्लमण्डल पर खुरचने से हुए चिह्न या पंक्ति और शुक्ल मण्डल या नेत्र बाह्यपटल का मामूली घाव आदि व्यथासे प्रायः नेत्र को हानि नहीं पहुँचती। ये घाव कुछ दिनोंमें भर जाते हैं। किन्तु रोगी वृद्ध या अशक्त हो अथवा उसके आश्रयाशयमें पूय हो, तो शुक्लमण्डलका मामूली खुरचना और घाव भी पक जाता है। फिर वहाँ व्रण-क्षत होजाता है।

नेत्रगोलक को बलपूर्वक धक्का (Concussion) लगे या नेत्र पर जोरसे दबाव (Compression) आजाय उसका भी इस छिद्र रहित व्यथामें अन्तर्भाव होता है। ऐसे प्रकार की चोट नेत्र पर मुट्ठी लगने अथवा टेनिस या क्रिकेटके खेल में गेंद लगने पर होती है। इससे कभी-कभी नेत्रगोलक फट जाता है; यह फटने की क्रिया विशेषतः नेत्रबाह्यपटल और शुक्लमण्डल के संगमके पास होती है। कारण, वह हिस्सा अधिक निर्बल है। यदि गोलक न चिर जाय, तो भी इस प्रकारका आघात लगनेसे कुछ समय तक अन्धता आजाती है; या आँखके भीतरके भागों को हानि पहुँचती है। यदि वह हानि तारामण्डल या तन्तुसमूह को हो जाय तो तारामण्डलका पर्दा टूट जाता है या मूलमें से पृथक् हो जाता है। फिर ऐसा होने पर जलमय रसके पूर्व खण्डमें रक्त संगृहीत हो जाता है। यदि दृष्टिमणि के पर्दे को हानि पहुँचे तो अभिघातज कांचबिन्दु (Traumatic Cataract) की सम्प्राप्ति हो जाती है। या दृष्टिमणि स्वस्थानसे च्युत होजाती है। कभी-कभी ऐसी व्यथा से नेत्रदर्पण का विच्छेद एवं कांचमय रसके भीतर रक्तस्राव भी हो जाता है।

यदि नेत्र पर असह्य दबाव कुछ समय तक बना रहे, तो उससे भीतर का रक्ताभिसरण बन्द होकर दृष्टि को हानि पहुँचती है।

४. रासायनिक द्रव्यजनित व्यथा।

(*Chemical injuries*).

रासायनिक द्रव्यों में दो विभाग हैं। अ. बाह्य अर्थात् नेत्रके भीतर डालने योग्य और आ. अन्तर अर्थात् रोगीके रक्त में फिरने वाले।

अ. बाह्य हानिकर रासायनिक द्रव्य—नेत्रमें डालने पर हानि पहुँचाने वाले रासायनिक द्रव्योंमें मुख्य ६ हैं। १. एट्रोपिन; २. क्रिसारोबिन; ३. नपथेलिन, ४. विविध क्षार (Alkalies); ५. विविध अम्ल पदार्थ (Acids); ६. अग्निसे होनेवाला दाह।

१. *एट्रोपिन*—वह सामान्यतः चालू प्रयोगमें आने वाली औषध है। इससे अनेक रोगियों को कुछ भी हानि नहीं होती; किन्तु किसी-किसी रोगी को नेत्रश्लेष्मावरण का प्रदाह हो जाता है। ऐसा अनुभव नेत्रवैद्यों को होता ही रहता है।

२. *क्रिसारोबिन* (Chrysarobin or Goa powder)—यह औषध विशेषतः दाद के मलहम में व्यवहृत होती है। यह औषध नेत्र को लग

जाय या उसके मलहम वाला हाथ नेत्रको लग जाय तो पलक पर सूजन आ जाती है।

३. नफ्थेलिन (Naphthalin)—इससे नेत्रमें कांचबिन्दु आजाता है।

४. *विविध क्षार*—इनमें कास्टिक पोटास (साबुन बनानेमें जो व्यवहृत होता है वह), कास्टिक सोडा, अमोनिया और चूना, ये मुख्य हैं। ये पदार्थ नेत्रमें गिरने पर शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण का दाह होता है, कभी-कभी शुक्लमण्डल सब दूषित होजाता है। चूना, उसमें कलिचूना (Quick lime) नेत्र में पड़ने पर शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण का दाह होता है। इतना ही नहीं, बल्कि चूनेके सूक्ष्म अणु शुक्लमण्डल पर दृढ़ संलग्न हो जाते हैं। वे किसी भी उपचारसे नहीं निकल सकते। फिर आजीवन शुक्लमण्डलमें सफेद अपारदर्शकता रह जाती है।

५. *विविध अम्ल पदार्थ*—इनमें मुख्य गन्धक द्रावक (Sulphuric acid), सोराद्रावक (Nitric acid), नमक द्रावक (Hydrochloric acid) और कार्बोलिक एसिड, ये मुख्य हैं। यूरोप जैसे देशमें और उसका अनुकरण करने वाले बम्बई जैसे शहरोंमें कितनेक दुष्ट लोग उनके प्रेमके वश न होने वाली स्त्रियोंको कुरूपा बनानेके लिये उनके मुँहपर गन्धकका तेजाब छिड़क देते हैं। इससे उनका मुखमण्डल बदसूरत बन जाता है; इतना ही नहीं, नेत्रके पलक और गोलकको भी बहुत हानि पहुँच जाती है। परिणाममें शुक्लमण्डल कुछ अंशमें गल जाता है; पलकके भीतरका भाग गोलकको चिपक जाता है; और नेत्रको गम्भीर हानि पहुँच जाती है। अन्य तेजाब इस गन्धकद्रावकके समान किन्तु कुछ कम हानि पहुँचाते हैं।

६. *अग्निजनित दाह*—रसोई करने पर अति परिपक्व घी या तैलमें जलवाले पदार्थ डालने पर अकस्मात् अग्निके किरण या बाष्प निकलती है। एवं जलती हुई अग्निको बुझाने पर उसमेंसे उष्णता ऊपर उठती है। इसी तरह भट्टी या एञ्जिनमें कार्य करने वालोंके नेत्रको कभी अग्निकी लपट लग जाती है। इससे शुक्ल मण्डल और नेत्र बाह्यपटलको हानि पहुँचती है। यदि आघात प्रबल हो तो भीतरके अवयवोंको भी कुछ अंशमें हानि पहुँच जाती है।

आ. रक्तमें परिभ्रामक रासायनिक द्रव्य—यह विषय अति विस्तीर्ण है। यहाँ हम उसका सम्पूर्ण विवेचन करने लगें तो कम से कम ५० पृष्ठोंका लेख हो जाय। किन्तु वह आवश्यक न होनेसे उसका सामान्य परिचय दिया जाता है।

देहके भीतर या नेत्रमें जो-जो कीटाणु प्रवेश करते हैं, वे सब एक प्रकारका विष (Toxins) उत्पन्न करते हैं। इस विषसे नेत्रको हानि पहुँचती है। कण्ठरोहिणी (Diphtheria) जैसे रोगोंमें नेत्रकी मांसपेशियोंका बध होना, यह एक प्रकारके रासायनिक द्रव्यके हेतुसे होता है। सोमल मिश्रित औषध, क्विनाइन, मेथिलेटेड स्पिरिट आदि औषधोंसे नेत्रको होने वाली हानिका वर्णन पहले होचुका है। वह भी यथार्थमें रासायनिक पदार्थों से होनेवाली ही हानि मानी जायगी।

उदर कृमियोंको मारनेके लिये विशेषतः बालकोंको सेण्टोनाइन (Santonine) दिया जाता है। इससे सब रोगियोंको एकाध दिन पीला दीखता है। वह भी इस वर्गमें आसकता है।

५. कीटाणुजन्य व्यथा (*Parasitic injuries*)।

पहले कहे हुए सब कारणोंकी अपेक्षा यह कारण विशेष महत्वका है। वर्त्तमान युगमें कीटाणु विद्या (Bacteriology) अति प्रगतिपूर्ण शास्त्र है। इसमें नेत्रके अनेक रोग कीटाणुओंके आक्रमणसे वर्णित हैं। ये कीटाणु नेत्रको दो प्रकारसे हानि पहुँचाते हैं। अ. नेत्र और उसके उपाङ्गों पर आक्रमण करके (Ectogenous); आ. रोगीके रक्तमें प्रवेश कर वहाँ से नेत्रपर असर पहुँचाकर (Endogenous)।

अ. नेत्र और नेत्राङ्गों पर आक्रमण—पलककी धारा पर समुदायमें रहने वाले स्टेफिलोकोकाई आल्बस (Staphylococci Albus) और सरलाकृतिके जिरोसिस बेसिलाई (Xerosis Bacilli) आक्रमण करके उसे पका देते हैं। इस स्थान पर एक ओरसे मेइबोमिन रसपिण्डों और जाइसके रसपिण्डोंमेंसे निकलनेवाला लेसदार पदार्थ आता है तथा दूसरी ओरसे अश्रु इस स्थानको सतत आर्द्र रखता है। अतः कीटाणुओंके विकास (वंशवृद्धि) लिये अच्छी सुविधा मिल जाती है। क्षतयुक्त धारा-पाक और अंजन हारी (गुहांजनी) में स्टेफिलोकोकस औरियस (Staphylococcus Aureus) मुख्य भाग लेते हैं।

नेत्रश्लेष्मावरण और शुक्लमण्डल, ये दोनों दिनमें विशेषतः खुले रहते हैं। इनको धुआँ, वायु आदि का संसर्ग होता रहता है। इन दो द्रव्योंके हेतुसे अनेक कीटाणु नेत्रश्लेष्मावरण रूप स्थली में गिरते हैं और वहाँ संलग्न हो जाते हैं। इस हेतुसे नेत्रश्लेष्मावरण किसी भी समय निर्जन्तुक नहीं होता। इन कीटाणुओंमें २ प्रकार हैं। क्षीण सत्त्वपोषित (Saprophite) और विकार जनक (Pathological)।

वे कीटाणु सामान्यतः हानि नहीं पहुँचा सकते। कारण, पलककी सतत क्रियाके हेतुसे वे नेत्रसे धुपकर नासिकामें प्रवेशित हो जाते हैं। फिर पहले कहे अनुसार अश्रुस्थ कीटाणु नाशक द्रव्य द्वारा विनाशको प्राप्त होते हैं। एवं अश्रुप्रवाह अनवरत वर्त्तमान होनेसे नाकमें प्रवेशित कीटाणु पुनः नेत्रश्लेष्मावरणके भीतर दिनमें तो नहीं आ सकते, किन्तु रात्रिको यह क्रिया बन्द हो जानेसे नेत्रश्लेष्मावरण स्थलीमें उन कीटाणुओंकी वृद्धि हो जाती है। इससे रात्रिके समयमें वे अपनी हानिकर क्रिया विशेष बलपूर्वक कर सकते हैं। नेत्रवैद्योंको अनुभव मिला है कि, जिस रोगीकी आंख उठने वाली हो उसे प्रारम्भिक व्यथा प्रायः सुबह उठनेके समय भासती है। उस तरह रोगीके नेत्र पर पट्टी बँधी हुई रक्खें, तो भी वही स्थिति होती है। अर्थात् आंख उठनेके लक्षण (पूर्वरूप) प्रतीत होते हैं। मोतीबिन्दुकी शस्त्रक्रियाके पश्चात् दोनों आंखों पर पट्टी बांधी जाती है। तब कितनेक रोगियोंमें दूसरी आंख, जिसमेंसे मोतीबिन्दु न निकाला हो उसमें मल उपस्थित होता है; वह भी इसी कारणसे।

नेत्रश्लेष्मावरणमें रोगोत्पादक कीटाणु—इनमें मुख्य न्युमोकोकाई (Pneumococci), स्ट्रेप्टोकोकाई (Streptococci), कोकविक्स-बेसिली (Koch-weeks bacilli), मोराक्स एक्सनफिल्ड डिप्लोबेसिली (Morax Axenfeld Diplobacilli), गोनोकोकाई (Gonococci), माइक्रोकोकस (Micrococcus Catarrhalis), डिफथेरिया बेसिलाई (Diphtheria Bacilli), इन्फ्लुएन्झा बेसिली (Influenza Bacilli) और बेक्टिरियम टुलारेन्स (Bacterium Tularense) आदि हैं। इन प्रत्येक कीटाणुओंसे अलग-अलग जातिके रोगोंकी प्राप्ति होती है। इस विषयका विवेचन आगे ९वें प्रकरणमें रोगवर्णनके साथ तथा विशेष विज्ञान ८वें प्रकरणमें दिया जायगा। यहाँ केवल इतना ही कहेंगे कि, इन सब कीटाणुओंसे नेत्रश्लेष्मावरणमें प्रदाह उपस्थित होता है।

शुक्लमण्डलके विकार—उपर्युक्त सब कीटाणुओंका संक्रमण शुक्ल-मण्डल पर भी होता है; अर्थात् नैसर्गिक नियमानुसार जिन कीटाणुओंसे नेत्रश्लेष्मावरणमें रोगोत्पत्ति होती है, उनसे शुक्लमण्डलमें भी रोगोत्पत्ति होनी चाहिये; किन्तु ऐसा नहीं होता। इसके मुख्य २ कारण हैं। १. उपरोक्त कीटाणु सब नेत्रश्लेष्मावरण में दीर्घकाल तक रह सकते हैं। कारण, वहाँ पर रहनेकी सुविधा है। किन्तु शुक्लमण्डल बहिर्गोल और बिल्कुल चिकना होनेसे वे कीटाणु वहाँ टिक नहीं सकते। बल्कि अश्रुओंके सतत प्रवाहसे वे शुक्लमण्डल परसे सतत धुपते रहते हैं। २. शुक्लमण्डलके बाह्यपर्त

(सूक्ष्म त्वचास्तरिका) का गुण ऐसा है कि, जब तक उसपर खरोंच, खराश या घाव न हो, तब तक किसी भी प्रकार के कीटाणु शुक्लमण्डल को हानि नहीं पहुँचा सकते। यदि किसी कारणवश खरोंच आदि हुए हों और नेत्रश्लेष्मावरणमें कीटाणु हों, तो शुक्लमण्डलमें पाक या व्रण हो जायगा। यह विकार वृद्ध और निर्बलोंको सबल व्यक्तियोंकी अपेक्षा अधिक होनेकी सम्भावना है। कई प्रकारके नेत्रश्लेष्मावरणके प्रदाहमें शुक्लमण्डल का क्षत हो जाता है। विशेषतः रोमान्तिका, शीतला आदिमें। इन रोगोंमें रक्तके भीतर विष प्रवेश करता है; एवं नेत्र और नासिकामें भी रहता है। ऐसे क्षत अनेक रोगियोंमें प्रतीत होते हैं।

तारामण्डल और तन्तुसमूह के कीटाणुजन्य रोग—विशेषतः इन भागों तक कीटाणु तब पहुँच सकते हैं कि, यदि घाव हो या शुक्लमण्डल या नेत्र बाह्यपटल में फँस गये हों। वेधनयन्त्र-ट्रेफाइन (Trephine) की शस्त्रक्रियाके पश्चात् मासों और वर्षोंके बाद जो तारामण्डलका प्रदाह होता है वह इस प्रकारका है।

अश्रुवाशयका प्रदाह—यह प्रदाह प्रायः न्युमोकोकाई से होता है। इन कीटाणुओंके साथ स्ट्रेप्टोकोकाई और स्टेफिलोकोकाई भी प्रतीत होते हैं। अश्रुवाशयका प्रदाह बहुधा तब होता है कि, जब निम्न मार्ग बन्द हो। ऐसा होने पर नेत्र मेंसे आने वाले कीटाणुओं को निकल जाने का मार्ग नहीं मिलता। फिर थैलीमें संगृहीत हो जाने पर हानिकर बन जाते हैं।

आ. रक्तमें प्रवेश कर नेत्र पर असर पहुँचाने वाले रोग—रोगीकी देहके किसी भी भाग में पूय या पूयमय प्रदाह हो, तो उस पूयके परमाणु रक्तमें मिलकर नेत्रदर्पण की मध्य धमनी द्वारा या अन्य छोटी धमनियों द्वारा नेत्रगोलकमें प्रवेश कर जाते हैं। फिर वहाँ पूयमय प्रदाह होकर वह समस्त गोलक विद्रधि रूप धारण कर लेता है। इस प्रकार से पूयमय प्रदाह उत्पादक कीटाणुओंमें मुख्य स्ट्रेप्टोकोकाई और न्युमोकोकाई हैं। इनके अतिरिक्त मेनिङ्गोकोकाई (Meningococci), न्युमोबेसिलाई (Pneumo bacilli) और टाइफोइड बेसिलाई (Typhoid bacilli) भी कभी प्राप्त होकर इस प्रकारका प्रदाह उपस्थित करते हैं। प्रसवावस्थामें गर्भाशय में होने वाले प्रदाह और पूयमय रक्तविकार (Pyeamia) से भी इस प्रकार का नेत्रगोलक प्रदाह हो जाता है। दांत, नाक, कान, गलग्रन्थि (Tonsils) आदि स्थानोंके पूयके परिणाममें नेत्रप्रदाह होता है तथा इन्फ्लुएञ्जा जैसे रोग होने के पश्चात् तारामण्डल और तन्तुसमूहका स्रावात्मक प्रदाह

(Plastic inflammation) उपस्थित होता है। इस तरह क्षय, उपदंश, सुजाक और आमवातके कीटाणुओंकी देहमें उत्पत्ति होने पर वे नेत्रगोलक के कितनेक भाग विशेषतः तारामण्डल, तन्तुसमूह और शुक्लमण्डलका प्रदाह उत्पन्न करते हैं। शुक्लमण्डलके गर्भ भागके प्रदाह और पिटिकाक्षत का निर्माण भी ऐसे ही कारणों से होता है।

६. अपक्रांतिजनित विकृति (*Degenerative Processes*)।

इस विक्रियाके हेतुसे नेत्रगोलकमें होने वाले परिवर्त्तनका वर्णन छठवें प्रकरण में दिया गया है। अतः जो रोग नेत्रमें होने वाली क्रमशः विक्रियासे उत्पन्न होते हैं, यहाँ केवल उन्हींका उल्लेख किया जायगा। शुक्लमण्डलकी परिधिकी अपारदर्शकता (Arcus senilis), नेत्रश्लेष्मावरणमें पीले दाग (Pingue cula), नेत्रबाह्यपटलका वर्ण परिवर्त्तन (श्वेत मेंसे मलिन हो जाना) आदि स्थितिको रोग कहना या जराजन्य रूपान्तर, यह एक प्रश्न है। इस स्थितिके हेतुसे दृष्टिमें कुछ बाधा नहीं पहुँचती। अतः इनको रोग न कहें तो भी अनुचित नहीं माना जायगा। काँच बिन्दु भी यथार्थमें जराजन्य परिवर्त्तनसे ही होता है; तथा प्रौढ़ीभूत दृष्टि (Presbyopia) की संप्राप्ति भी दृष्टिमणिमें होने वाले अपकर्षसे ही होती है। इस विक्रियामें कितनेक वृद्ध रोगियोंमें दृष्टि-मणिका रंग इतना रूपान्तरित हो जाता है कि, नव अभ्यासी वैद्य उसे अज्ञानवश काँचबिन्दु मान लेता है। वह वार्धक्य जन्य अपकर्षका परिणाम है। जिस तरह दृष्टिमणिमें परिवर्तन होता है उस तरह काँच मयरस में भी कितनीक रूपान्तरित अवस्था भासती है, उसे भी इस अप-क्रान्ति जन्य ही मानेंगे। इसका एक उदाहरण देना ही काफी है। जब अवस्था वाले ऐसे रोगियोंकी आँखोंकी परीक्षा अँधेरे कमरेमें करते हैं, तब कितनेकोंके नेत्रमें सुवर्णकी वर्षा हुई हो ऐसा देखा व प्रतीत होता है। इसका कारण काँच रसके भीतर एक जातिके बंधे हुए और तैरते हुए पदार्थोंकी उत्पत्ति है।

नेत्रदर्पणके भीतर भी यह अपक्रान्ति जनित फेरफार अनेक रोगियों में भासता है, रतौंधी (Retinitis Pigmentosa); जराजन्य पीतबिन्दु क्षय (Central Senile Retino-Choroiditis), नेत्रदर्पणके अन्य रूपान्तर, नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियोंमें परिवर्त्तन, इन सबका कारण जराजन्य विपरि-माण है। इनके अतिरिक्त रोग ऐसे हैं, जो उत्तरोत्तर विक्रियाके हेतुसे होते

हैं। इन सबका उल्लेख यहाँ नहीं किया; किन्तु उन व्याधियोंके विवेचनके भीतर व्याधि निदानमें यह परिवर्त्तन दर्शाया जायगा।

७. ग्रन्थि–अर्बुद (*Tumours*)।

नेत्रपलक, अश्रुपिण्ड, नेत्रश्लेष्मावरण, तारामण्डल, नेत्रमध्यपटल, नेत्रदर्पण और दर्शनतन्तु, इन सबमें अलग-अलग प्रकार की ग्रन्थियाँ होती हैं। इनकी उत्पत्ति का सच्चा कारण अभी तक अज्ञात है। देह का विकास होने पर उसमें उपस्थित न्यूनताके हेतुसे कितनीक ग्रन्थियों की उत्पत्ति होती है और कई ग्रन्थियां रक्तमें उपस्थित विकारोंके हेतुसे होती हैं, ऐसा कहा जाता है। अभीतक सच्चा निर्णय नहीं हुआ। उदा०–नेत्रदर्पण की नाड़ी-ग्रन्थि (Glioma) जो छोटे बालकों में ही होती है। उसका कोई भी कारण विदित नहीं हुआ। इसी तरह नेत्रमध्य पटल के मांसार्बुद (Sarcoma) का कारण भी ज्ञात नहीं हुआ। अलग-अलग नेत्रवैद्य और सम्प्राप्ति-शास्त्र-विदोंने अनेक कल्पनाएं दर्शायी हैं। इनमेंसे एक को आज मानते हैं, कल दूसरी कल्पना को आगे लाते हैं और पुरानी कल्पना को भ्रान्ति दर्शाते हैं। अतः इसके निदान (हेतु) का विषय छोड़ देना पड़ता है।

आठवाँ प्रकरण।

नेत्ररोगोत्पादक कीटाणु विज्ञान।

(Bacteriology of Eye).

कितनेक नेत्ररोगोंके ग्रन्थकारों ने इस विषय को अलग प्रकरणमें नहीं लिया; किन्तु रोग जिस कीटाणु से उत्पन्न हुआ हो, उसका वर्णन उस रोगके निदान भागों में लिखते हैं। अंग्रेजी भाषाके ग्रन्थों की यह प्रथा योग्य है। कारण, जो विद्यार्थी या वैद्य उस पुस्तक का अध्ययन करता हो, उसने कीटाणु विद्या का अभ्यास उस विद्याके ग्रन्थों परसे अच्छी तरह किया होता है। किन्तु भारतीय भाषाओंमें अभी तक जन्तुविद्याका शिक्षण प्रायः नहीं दिया जाता; अतः इस विषय का परिचय देनेके लिये इस स्वतन्त्र प्रकरणमें विचारणा करते हैं।

कौनसे कीटाणु किस रोग की उत्पत्ति का कारण हैं। इसका निर्णय निम्न नियम अनुसार किया जाता है:—

१. जिस जातिके कीटाणु से रोगोत्पत्ति हुई हो, उस जातिके कीटाणु उस रोग वाले स्थानमें से मिलने चाहिये।

२. उन कीटाणुओं को अन्य प्राणीके उस अवयवमें प्रवेशित कराया जाय, तो उसी जाति का रोग उसे हो जाना चाहिये।

३. जो कीटाणु प्रतीत हुए हों, उन्हें अनुकूल पोषक तत्त्व (Culture media) में बोया जाय, तो उत्पन्न हो जाने चाहिये।

४. इस तरह उगे हुए कीटाणुओं को किसी प्राणी की देह में प्रवेशित कराया जाय, तो जिस रोगके कीटाणु हों, वैसा ही रोग उस प्राणीको होजाना चाहिये।

ये सब नियम नेत्ररोगोत्पादक सब कीटाणुओंको भी लागू होते हैं। इन कीटाणुओंका अस्तित्व जाननेके लिये अलग-अलग कीटाणुओंको अलग-अलग रंगोंसे रंगा जाता है। उस रंगको कीटाणु रंजक (Stain) संज्ञा दी है। भिन्न-भिन्न जातिके कीटाणु भिन्न-भिन्न रंगसे ही रँगे जाते हैं। सब एक ही प्रकारके रंगसे नहीं रँगे जाते।

उपरोक्त दो प्रकारके प्रयोगों (प्राणियोंमें रोगोत्पत्ति और कृत्रिम कीटाणु वृद्धि) में से कीटाणुओंको उत्पन्न करनेका प्रयोग तो संपूर्ण रूपसे साधन-सम्पन्न प्रयोगशालामें ही हो सकता है। ऐसी प्रयोगशालाकी योजना तो केवल नेत्रके बड़े होस्पिटलमें ही हो सकती है। अतः इस विषयकी चर्चा यहाँ नहीं करेंगे। केवल भिन्न-भिन्न जातिके नेत्ररोगोंके उत्पादक कीटाणुओं की परीक्षा किस तरह करनी, उसीका यहाँ संक्षिप्त वर्णन करते हैं।

परीक्षाकी साधन-सामग्री—इस परीक्षाके लिये निम्नानुसार साधन तैयार रखने चाहियेः—

१. काँचकी लम्ब चौकोर तख्तियां (Glass slides).
२. कांचपुट (Cover slips glass).
३. प्लेटीनमकी कांचमें बैठायी हुई शलाका (Platinum loop).
४. स्पिरिट या गैसका दीपक (Spirit or Gas lamp).
५. अणुवीक्षण यन्त्र, $\frac{1}{12}$ ऑइल इमर्सन कांचसह (Microscope with $\frac{1}{12}$ oil immersion lens).
६. सेडरवुड तैल (Cederwood oil).
७. छोटा चोंगा और छाननेके कागज (Small funnel and filter papers).

(निम्न रंग और रासायनिक द्रव्य)

८. मेथीलेटेड स्पिरिट (Methylated Spirit).
९. शुद्धमद्यार्क (Absolute Alcohol).
१०. गन्धकद्रावक (Sulphuric Acid).
११. लोफलरका मेथिलीन ब्ल्यू (Loffler's Methylene blue).
१२. फुक्सिन धावन (Fuchsin solution).
१३. मेथिलीन ब्ल्यूका मद्यार्कमें बना हुआ प्रवाही (Methylene blue in Alcohol).
१४. कार्बोल फुक्सिन धावन (Carbol Fuchsin solution).
१५. ग्रामके कीटाणु रंजक नं० १ और नं० २ (Gram's stain No. 1, No. 2)

इनमें पहले प्रकारकी कृति-जेन्शन वायोलेट मद्यार्कमें मिला हुआ (Alcoholic Gentian Violet) १० सी० सी०; कार्बोल वॉटर (Carbol water) १०० सी० सी०।

दूसरे प्रकारकी कृति—लुगोलका प्रवाही (Lugol's solution) १-१०; तथा ३ भाग विशुद्ध मद्यार्क और १ भाग ।

१६. लवणद्रावक प्रवाही १ प्रतिशत (Hydrochloric acid 1%).
१७. गीमसा धावन (Giemsa solution).
१८. लिण्डनरका प्रवाही रंजक (Lindener's Contrast stain).

१० सी० सी० बाष्पजल	१० बूंद गीमसा प्रवाही
१ बूंद मेथिलीन ब्ल्यू (मद्यार्कमें बना हुआ)	१ बूंद एसेटिक एसिड (सिर्का)

कीटाणुवर्द्धक प्रवाही—नेत्ररोगोत्पादक कीटाणुओंकी उत्पत्तिके लिये समभावी (न अम्ल और न क्षारीय—Neutral) अगर (Agar) को तपाकर प्रवाही बनावें। फिर उसे ४५० से ५०० सेण्टी ग्रेड तक शीतल होने दें। इतनी उष्णता पर पहुँचनेपर अगरका तीसरा हिस्सा मनुष्यके रक्तमें से अलग की हुई चर्बी (वसा) मिलावें। इस वसाको पहलेसे ही कितनेक दिनों तक ६०° सेण्टीग्रेड तककी उष्णता देकर कीटाणुरहित बना लेवें। दोनों द्रव्योंको मिला काँचकी नलीमें डाल, उसे कुछ टेढ़ी रक्खें, जिससे द्रव्य जम जाय। इस पर कीटाणु सरलतापूर्वक उगा सकते हैं।

नेत्रमल लेनेकी विधि—नेत्रश्लेष्मावरणके रोगोंमें जो लेसदार पदार्थ नेत्रमें से निकलता हो उसे प्लेटीनमकी शलाकासे लेकर कांचकी तख्ती पर रक्खें। फिर उसपर दूसरी तख्ती रखकर कुछ दबावें। फिर तुरन्त ही दोनों तख्तियोंको अलग करें। ऐसा करनेपर दोनों तख्तियों पर नेत्र-मलकी पतली तह हो जायँगी। इन तहोंको उन तख्तियोंपर अच्छी तरह स्थिर होनेके लिये उन तख्तियोंको स्पिरिटके दीपक की ज्वाला या शिखा (Flame) में चपलतापूर्वक ३-४ बार फिरा लेवें। ऐसा करने पर तख्तियाँ इतनी गर्म हो जायँगी कि नेत्रमल दृढ़ चिपक जायगा। कभी यह क्रिया दीपक-शिखा पर न करके विशुद्ध मद्यार्कसे की जाती है। कभी नेत्रसे निकला हुआ लेसदार पदार्थ परीक्षार्थ पूर्ण नहीं होता। तब पलकको उलट कर उसके भीतरके नेत्रश्लेष्मावरणको कुछ रगड़ कर वहाँसे पदार्थ लेना पड़ता है। इसे भी पहलेके अनुसार ही काँचकी तख्तियों पर चिपकाना चाहिये।

शुक्लमण्डलके क्षतमें से भी उसी अनुसार अति सम्हालपूर्वक पूय सदृश पदार्थ ले सकते हैं किन्तु वह अति ही सूक्ष्म भाग होनेसे और क्षत जो विशेषतः गहरा होगया हो और शुक्लमण्डल फूटनेकी स्थितिमें पहुँच गया हो, तो अति सम्हाल रखना पड़ता है। अन्यथा वह भाग फूट जाता है। अग्र वाशयमें से पूय या सादा प्रवाही लेना हो, तब अंगुष्ठसे दबाने

पर सरलतासे मिल जाता है। यदि नेत्रगोलकके भीतरका प्रवाही लेना आवश्यक हो तो पिचकारी और सुई द्वारा ले सकते हैं।

पदार्थ रंजन विधि—तख्ती पर लिये हुए पदार्थकी तह पर रंग चढ़ाने की रीति अलग-अलग रंगके लिये भिन्न-भिन्न हैं। मेथिलीन ब्ल्यू या लोफलर का मेथिलीन ब्ल्यू या फुक्सिन रंग या अन्य साधारण रंगोंका उपयोग करना हो तो बत्ती परसे निकाली हुई तख्ती शीतल बननेपर उसके ऊपर रंगके ४ बूँद डालें।

प्रत्येक रंगको काँचकी तख्तीपर डालनेके पहले फिल्टरपेपरसे छान लेना चाहिये। अन्यथा रंगके कण इतने अधिक कांचपट्टीको लग जायँगे कि, कीटाणुओं की प्रतीति अशक्य हो जायगी।

लगभग ५ मिनिट तक रंगको रहने देवें। फिर जलसे धोकर सूखने देवें। फिर उस पर १ बूँद सेडरवुड तेलका डालकर अणुवीक्षण यन्त्रसे जाँच करें।

ग्रामके रंग डालने की विधि—उपरोक्त गरम करके शीतल की हुई कांच पट्टीपर ग्रामके प्रवाही नं० १ के कुछ बूंद डालें। फिर कांचपट्टी को स्पिरिट दीपक पर इस तरह रक्खें कि, ऊपर रखा हुआ प्रवाही गरम हो किन्तु उबलने न पावे। इस तरह २ से ५ मिनिट तक रक्खें। पश्चात् जलसे धो डालें। पुनः नं० २ का प्रवाही डालें। एक मिनिट रहने दें; फिर जल से धो डालें। तत्पश्चात् शुद्ध मद्यार्क ३ भाग और १ भाग बाष्प जलमिश्रित द्रवके १-१ बूंद कांचपट्टी पर डालते रहें। जब रंग निकलना बिल्कुल बंद हो तब उस प्रवाही का डालना बन्द करें और कांचपट्टी को जलसे धो डालें। इसके पश्चात् कार्बोल फुक्सिन (१-१०) के दो बूंद डाल १० सेकण्ड तक रखकर धो डालें। इस तरह जो कीटाणु ग्राम स्पष्ट (Gram positive) होंगे, वे नीले रंगके प्रतीत होंगे। ग्राम अस्पष्ट कीटाणु और अन्य द्रव्य लाल भासेंगे।

क्षयकीटाणु रंजन रीति—उपरोक्त रीति अनुसार ही जिस पदार्थ की जांच करनी हो, उसकी पतली तह काँच पट्टी पर लेंवे। फिर दीपक शिखापर फिरा कर स्थिर करें। पश्चात् कार्बोल फुक्सिनके प्रवाहीके लगभग १० बूंद उस पट्टीपर डालकर उसे स्पिरिट दीपक पर इतने तक गरम करें कि ऊपर अवस्थित प्रवाहीमेंसे बाष्प निकलने लगे। इस तरह ५ मिनट तक रंग चढ़ने दें। जिससे जहाँ-जहाँ रंग लगना होगा, वहाँ-वहाँ लाल रंग आ जायगा। फिर उस भाग पर रेक्टीफाइड स्पिरिट ९९ भाग और लवणद्रावक (Hydrochloric acid) का प्रवाही १ भाग मिलाकर तैयार किये हुए मिश्रण को

रक्तभाग पर डालते रहें, तब तक कि जब तक किञ्चित् भी लाली प्रतीत हो। जब लाल हुआ भाग बिल्कुल रंग छोड़ दे तब उसे जलसे धो डालें। फिर मेथिलीन ब्ल्यू के प्रवाहीके २-३ बूंद डालकर २ मिनिट रहने देवें। पश्चात् जलसे धोकर तह को सूखने देवें। फिर सेडरवुड तेल की एक बूंद डालकर अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे रखकर जांच करें। केवल क्षय कीटाणु लाल प्रतीत होंगे। शेष कीटाणु और अन्य द्रव्य सब नीले रंगके भासेंगे।

गिमसा की रीति—यह रीति प्रायः पलकके भीतरके भागसे रगड़कर निकाले हुए पदार्थके लिये है। कांचपट्टी पर पदार्थ को लेकर १० मिनिट तक उसे विशुद्ध मद्यार्क में भिगो देनेसे वह स्थिर हो जाता है। फिर गिमसा के प्रवाहीमें ४० से ४८ घण्टे तक डुबो रक्खें (गिमसा प्रवाही १ बूंद और बाष्पजल २ सी. सी.) पश्चात् रंग को निकाल देने पर विशुद्ध मद्यार्क में डुबोवें। रंग निकल जाने पर कांचपट्टी को सुखा तेल की बूँद डाल, अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे रखकर देखें।

लिण्डर की रीति—गिमसा की पद्धतिके अनुसार तह को स्थिर कर कांचपट्टी को लिण्डरके प्रवाहीमें २ से ६ घण्टे तक डुबो रक्खें। फिर निकाल विशुद्ध मद्यार्कसे आधसे एक मिनिट तक धोवें। पश्चात् सुखा तेल बूंद डालकर जाँच करें।

नेत्ररोगोत्पादक कीटाणु—प्रायः इन कीटाणुओंके २ वर्ग बनाये हैं। १. ग्रामग्राही और २. ग्रामाग्राही (ग्रामके रंगसे रँगने पर भी न भासने वाले)।

१. ग्राम ग्राही कीटाणु—इसके दो उपविभाग हैं। अ. सरला कृति; आ. अण्डा कृति।

अ. ग्राम ग्राही सरलाकृति कीटाणु (Gram positive bacilli)—ग्रामके रंगसे रंजित होनेवाले सरलाकार कीटाणुओंमें मुख्य ३ जाति हैं। १. कण्ठरोहिणीके कीटाणु (Diphtheria bacilli); २. झेरोसिसबेसिली (Xerosis bacilli); ३. सटीलिस बेसिली (Bacillus Subtilis)।

आ. ग्रामग्राही अण्डाकृति कीटाणु (Gram positive cocci)—ग्राम के रंगको ग्रहण करने वाले अण्डाकार कीटाणुओंमें मुख्य ३ हैं। न्युमोकोकाई (Pneumococci); स्ट्रेप्टोकोकाई (Streptococci) और स्टेफिलोकोकाई (Staphylococci)।

२. ग्रामा ग्राही कीटाणु—इसके भी २ उपविभाग हैं। अ. सरलाकृति; आ. अण्डाकृति।

अ. ग्रामाग्राही सरलाकृति कीटाणु (Gram negative bacilli)—ग्रामके रंगसे रंजित करनेपर भी न भासने वाले सरल कीटाणुओंमें मुख्य ४ जाति हैं। कोकविक्स बेसिलाई (Koch-Weeks bacilli), इन्फ्लुएञ्जाके कीटाणु (Influenza bacilli), मोराक्श एक्सन-फेल्डके कीटाणु (Morax-Axenfeld), न्युमोबेसिलाई (Pneumobacilli) और पिटिटके डिप्लो बेसिलाई (Diplo-bacilli of Petit)।

आ. ग्रामाग्राही अण्डाकृति कीटाणु (Gram negative Cocci)—ग्राम के रंगसे प्रतीत न होनेवाले अण्डाकार कीटाणुओंमें मुख्य ३ जाति हैं। सुजाक (पूयमेह) के कीटाणु (Gonococci), मस्तिष्कावरण प्रदाहके कीटाणु (Meningococci) और प्रतिश्यायके कीटाणु (माइक्रोकोकस कटारेलिस Micrococcus Catarrhalis)।

अन्य नेत्ररोगोत्पादक कीटाणु—उपर्युक्त कीटाणुओंके अतिरिक्त कभी-कभी निम्न कीटाणुओंका भी नेत्रपर आक्रमण होजाता है। नीले पूयमें प्रतीत होने वाले बेसिलस पायोस्यानियस (Bacillus Pyocyaneus), क्षयोत्पादक सरल कीटाणु (Tubercle bacilli), उपदंशके कीटाणु (Treponema pallidum), झुरनेडनके सरल कीटाणु (Zur-nedden's bacilli), बेसिलस टुलारेन्सिस (B. Tularensis) आदि।

नेत्ररोगोत्पादक कीटाणुओंका संक्षिप्त परिचय।

१. कोकविक्सके *सरल कीटाणु* (Koch-Weeks bacilli)—(चित्र नं० ४६ देखें) ये अति सूक्ष्म हैं। ग्रामके रंगसे रंगने पर प्रतीत नहीं होते। लम्बाई केवल १ माइक्रो-मिलीमीटर अर्थात् $\frac{1}{25000}$ इञ्च। ये श्वेत कणों के भीतर और उनके बीचमें तथा बहुधा युग्मरूपसे प्रतीत होते हैं। ये कार्बोल फुक्सिनके जल मिश्रित प्रवाहीसे रंजित होते हैं। इन कीटाणुओंसे विशेषतः नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह (अभिष्यंद) की सम्प्राप्ति होती है।

२. इन्फ्लुएञ्जाके *सरल कीटाणु* (Influenza bacilli)—ये अति छोटे, सामान्यतः मोटी लकड़ीके आकारके, ग्रामसे अस्पष्ट, लगभग कोकविक्स कीटाणु जितने लम्बे (१ से २ माइक्रोमिलीमीटर) और उससे मिलते आकारके होते हैं। बालकोंमें होनेवाले नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहमें ये प्रतीत होते हैं।

चि० ४६ पृ० २२४ बीज के बीज के लम्बे कीटाणु

चि० ४७ पृ० २२५ मोराक्स एक्सन फिल्ड
के लम्बे कीटाणु।

३. मोराक्स एसमनीहरणी कीटाणु (Morax-Axenfeld Diplo-bacilli)—(चित्र नं० ४७ देखें) ये कीटाणु छोटे, मोटे, ग्रामसे अस्पष्ट, युग्म रूपसे या जंजीर सदृश मिलकर रहनेवाले, २ से ३ माइक्रो मिली-मीटर लम्बे और १ से १·५ मा० मिली० चौड़े होते हैं। इन कीटाणुओंके आक्रमणसे नेत्रश्लेष्मावरणका चिरकारी प्रदाह होता है। कभी यह रोग आशुकारी भी बन जाता है। कभी-कभी ये कीटाणु शुक्लमण्डल क्षतमें भी प्रतीत होते हैं।

४. पिटिटके डिप्लोबेसिलाई (Diplo-bacilli of Petit)—ये कीटाणु भी उपरोक्त मोराक्स ए० के कीटाणुओंसे कुछ छोटे और पतले होते हैं। ये भी ग्रामसे अस्पष्ट हैं। इनके संक्रमणसे शुक्लमण्डलमें एक प्रकारका क्षत होता है; और फिर जलमय रसके पूर्वखण्डमें पूयोत्पत्ति होती है।

५. न्युमोकोकस (Pneumococci)—ये कीटाणु ग्रामस्पष्ट हैं। आकार छोटे भाले जैसा होता है। कभी उसे पर्त्त होता है। इनके प्रकोप से नेत्रश्लेष्मावरणका आशुकारी प्रदाह किसी-किसी रोगीमें और कभी-कभी जनपद व्यापी स्वरूपमें प्रतीत होता है। एवं अश्रुवाशय प्रदाह, शुक्लमण्डल का फैलनेवाला क्षत, शस्त्रक्रियाके पश्चात् नेत्रगोलकका पाक, कभी-कभी नवजात शिशुके नेत्रश्लेष्मावरणमें पूयमय प्रदाह और कभी टेननके पर्दाका प्रदाह आदि रोग होते हैं। इनके अतिरिक्त फुफ्फुसप्रदाह (न्युमोनिया) हुआ हो, तो उसका विष रक्तमें जाकर फिर नेत्रगोलकका प्रदाह उत्पन्न कराता है।

६. पूयमेहके अण्डाकार कीटाणु (Gonococci)—(चित्र नं० ४८ देखें) ये कीटाणु ग्रामके रंगसे रंजित नहीं होते। ये वृक्काकार या काफी (Coffee) के दानेके आकारके होते हैं। श्वेतकणोंके भीतर प्रतीत होते हैं। सामान्य उपयोगके रंग—मेथिलीन ब्ल्यू, लोफ-लर्स ब्ल्यू आदिसे सरलतापूर्वक रंजित होते हैं। लम्बाई ·८ से १·६ मा० मिली०। इन कीटाणुओं से निम्नानुसार रोगोंकी संप्राप्ति होती है:—

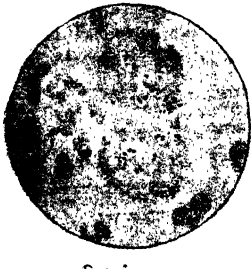

चित्र नं० ४८

१. नवजात शिशुको पूयाभिष्यन्द (नेत्रश्लेष्मावरणका पूयमय प्रदाह)।
२. बड़े बच्चोंको होने वाला पूयाभिष्यन्द।
३. बड़ी आयुवालोंको होने वाला पूयाभिष्यन्द।
४. शुक्लमण्डल क्षत (पूयाभिष्यन्दके हेतुसे)।
५. तारामण्डल प्रदाह (बहुधा तन्तुसमूहका प्रदाह भी कुछ अंशमें होजाता है)।

६. कीटाणुओंका रक्तमें प्रवेश होने पर उनका विष नेत्रमें पहुँचे तो नेत्र-बाह्यपटल, नेत्रश्लेष्मावरण और नेत्रगोलकका प्रदाह।

७. *माइक्रोकोकस कटारेलिस* (Micrococcus Catarrhalis)—ये कीटाणु ग्रामाग्राही हैं। प्रायः २-२ या ४-४ के समूह भासते हैं। ये पूयमेहके कीटाणुओंसे बड़े होते हैं। इन कीटाणुओंसे मुख्यतः नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह और क्वचित् अश्रुवाशय प्रदाहकी प्राप्ति होती है।

८. *कण्ठरोहिणीके सरल कीटाणु* (Diphtheria Bacilli)—(चित्र नं० ४९ देखें) ये कीटाणु ग्रामग्राही हैं। अकेले या जोड़ेमें प्रतीत होते हैं। ये कुछ मुड़े हुए और अलग-अलग भागमें असम चौड़ाई वाले होते हैं। कभी सिरे गोल होते हैं। चौड़ाई ·३ से ·८ मा० मिली० और लम्बाई १ से ६ मा० मिली०। सामान्य मेथिलीनब्ल्यू, लोफलरका मेथिलीन ब्ल्यू आदि रंगोंसे रंजित होते हैं। इसका आकार सामान्यतः लकड़ी जैसा और प्रायः एक दूसरेके सिरेपर प्रबन्धित होते हैं। इन कीटाणुओं और झेरोसिसके सरल कीटाणुओंमें इतनी समानता है कि इनको उगाये बिना या पशुओं पर संक्रमण कराये बिना एक दूसरे को पृथक् नहीं कर सकते हैं। इन कीटाणुओंसे झिल्लीसह नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह, शुक्लमण्डलका पाक और संधानशक्ति का स्तम्भ, इन रोगों की उत्पत्ति होती है। कभी नेत्रश्लेष्मावरण के भीतर पर्दा बन जाता है, वह इन कीटाणुओंसे नहीं होता।

चित्र नं० ४९

९. *झेरोसिसके सरल कीटाणु* (Bacilli Xerosis)—इनकी आकृति ग्रामग्राही है। कण्ठरोहिणी कीटाणुके समान भासते हैं। फिर भी

ये उनसे कुछ छोटे होते हैं। ये कीटाणु प्रायः सर्वदा नेत्रमें बने रहते हैं। इनसे किसी निश्चित रोगकी उत्पत्ति नहीं होती।

१०. *न्युमोबेसिलस* (Pneumo bacilli)—ये कीटाणु ग्रामग्राही हैं। ये लकड़ी जैसे सरल और आवरणसे लपेटे हुए भासते हैं। इनसे कोई खास रोग नेत्रमें नहीं होता; किन्तु कभी-कभी अश्रुवाशयमें से आने वाले चिपचिपे प्रवाहीमें ये प्रतीत होते हैं।

११. *बेसिलस पायोसानियस* (Bacillus Pyocyaneus)—ये कीटाणु कोकविक्स्के कीटाणुसे मिलते-जुलते हैं। ग्रामग्राही हैं। इनके प्रकोपसे कभी शुक्लमण्डलका गम्भीर पाक हो जाता है।

१२. *क्षयोत्पादक सरल कीटाणु* (Tubercle Bacilli)—ये कीटाणु लम्बे, पतले, सिरे पर गोल और ग्राम स्पष्ट हैं। लम्बाई १·५ से ४ मा० मिली० और चौड़ाई ·३ मा० मिली०। सामान्य रंगोंसे रँग नहीं चढ़ता; किन्तु कार्बोल फुक्सिनसे ही लाल रंग चढ़ता है। यह रंग एसिडसे भी नहीं जाता। इन कीटाणुओंसे कोई खास रोग सीधी रीतिसे नहीं होता। कभी पिटिका क्षत उत्पन्न हो जाता है। यदि इन कीटाणुओंका अस्तित्व देहके अन्य भागमें हो तो शुक्लमण्डलके गर्भ भागका प्रदाह, तारामण्डल प्रदाह, तन्तुपटमूह प्रदाह और नेत्रमध्यपटल प्रदाहकी उत्पत्ति हो सकती है।

१३. *स्ट्रेप्टोकोकाई* (Streptococci)—ये कीटाणु ग्राम स्पष्ट हैं। जंजीरकी सदृश व्यवस्थित होनेसे अन्य जातिकी अपेक्षा पृथक् होजाते हैं। इन कीटाणुओंसे निम्नानुसार नेत्र रोगोंकी प्राप्ति होती है :—

१–भिल्लीसह नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह।

२–नेत्रश्लेष्मावरण और शुक्लमण्डलका आशुकारी पाक।

३–रोमान्तिका और दण्डकज्वरमें उपस्थित नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह।

४–पेरिनोडका (Parinaud's) नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह।

१४. *स्टेफिलोकोकाई* (Staphylococci)—ये कीटाणु ग्रामस्पष्ट हैं। ये परस्पर चिपके हुए गुच्छरूप प्रतीत होते हैं। इन कीटाणुओंसे एक प्रकारका नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह होता है। इसके अतिरिक्त ये गुहाञ्जनी, पलकधारापाक और पलक पर ग्रन्थियाँ उत्पन्न करनेमें मुख्य भाग लेते हैं।

इनके अतिरिक्त जिन कीटाणुओंके नाम पहले लिखे हैं, वे नेत्र-रोगोत्पत्तिमें महत्त्वके न होनेसे उनका वर्णन नहीं किया।

नवाँ प्रकरण ।

नेत्र श्लेष्मावरणके रोग ।

(Diseases of the Conjunctiva)

नेत्र श्लेष्मावरणके मुख्य रोग ४ हैं। १. रक्तसंग्रह; २. विविध प्रकारके प्रदाह; ३. उपद्रवात्मक व्याधियाँ, ४. आगन्तुक व्यथा। इन सबका क्रमशः वर्णन करते हैं।

१. नेत्रश्लेष्मावरणमें रक्तसंग्रह ।

(Hyperaemia of the Conjunctiva)

इस व्याधिमें नेत्रके श्लेष्मावरणमें रक्त संगृहीत होजाता है। गोलक के ऊपरकी तहकी अपेक्षा पलकके ऊपरकी तहमें अधिक संग्रह प्रतीत होता है।

लक्षण और चिह्न (Symptoms and Signs)—इस रोगमें मुख्यतः जलन और चुभना होता है। नेत्र भारी मालूम पड़ता है। इसमें कुछ कण गिर गया हो, इस तरह खटकता रहता है। प्रकाश सहन नहीं होता और नेत्रदाह होता रहता है। ये सब लक्षण ग्रन्थ देखने, नेत्रको कष्ट पहुँचे ऐसा कार्य करने और प्रकाशमें बाहर घूमने पर बढ़ जाते हैं। नेत्रोंमें से जल गिरता रहता है। नेत्रकी जाँच करनेपर कुछ लाली प्रतीत होती है।

कारण—आँखमें रजकण गिरना, नेत्रको अति शीतल वायु लगना, दूषित वायुमें रहना, अति उष्णता, धुआँ लगना, विशेषतः तमाखू, मिर्च आदिका धुआँ लगना, नेत्रके लिये चश्माकी आवश्यकता होनेपर भी न पहनना, अति मन्द प्रकाशमें नेत्रको खेचना, अति प्रकाशवाले दीपकके सामने बहुत समय तक देखना, अति प्रकाशमें पढ़ना, सिनेमा बहुत समय तक देखना तथा अश्रुवाशयका अवरोध होनेसे अश्रु या पूयका नेत्रगोलकको बार-बार स्पर्श होते रहना आदि कारणोंसे इस विकारकी उत्पत्ति होती है।

उपचार—ऊपर कहे हुए कारणों में से जो कारण प्रतीत हों, उनको दूर करना चाहिये। नेत्र पर गुलाब जल के फोहे रक्खें। नेत्र पर प्रकाश

कम पड़े, इसलिये दोपहर को काला या उससे मिलते रंग के चश्मे का उपयोग करें। नेत्र में गुलाब जल की बूंद डालें या अफीम के अर्क (टिञ्चर ओपियम) को जल में मिलाकर उसकी बूंद डालें। चश्मा की आवश्यकता हो, तो आँखों की परीक्षा कर योग्य चश्मा की सूचना करनी चाहिये।

सूचना—कब्ज रहता हो, तो सारक औषध लेकर उदरशुद्धि कर लेवें। अति तीक्ष्ण पदार्थों का सेवन, गुड़, अधिक मिर्च, वृष्टि काल में घूमना, शराब, धूम्रपान आदि का सेवन तथा अन्य रक्तदबाववर्द्धक आहार-विहार का त्याग करना चाहिये। एवं नेत्र को अधिक श्रम नहीं देना चाहिये।

२. नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(*Catarrhal Conjunctivitis*)

इस रोग को आयुर्वेद में 'अभिष्यंद' (चित्र नं० ५१ देखें) तथा रूढ़ भाषा में 'आंख आना' और 'आंख उठना' कहते हैं। यह रोग सामान्य है; विशेषतः गर्मी के दिनों में प्रतीत होता है; अच्छी स्थिति की अपेक्षा गरीब लोगों को अधिकतर होता है। आंख आने पर लाल लाल हो जाती हैं।

लक्षण और चिह्न।

अ. नेत्र में वेदना; आ. लाली; इ. प्रकाश सहन न होना; ई. नेत्र में लसदार पदार्थ का निकलना, ये सब रोग निदर्शक लक्षण हैं।

अ. नेत्रपीडा—यह शोथ की अपेक्षा न्यूनाधिक होती है। प्रारम्भ में कुछ रजकण गिरा हो, उस तरह आंख में चुभता है। शोथ बढ़ने पर चुभना बन्द होता है और वेदना का प्रारम्भ होता है।

आ. नेत्र की लाली—यह शोथ की अपेक्षा न्यूनाधिक होती है। यह लाली पलक के या पलक और गोलक के श्लेष्मावरण में होती है। यदि रोग का बल अधिक न हो, तो केवल पलक पर के श्लेष्मावरण में लाली और शोथ होता है। किन्तु रोग बल बढ़ने पर गोलक के श्लेष्मावरण में भी अच्छी लाली आ जाती है। जो लाली प्रतीत होती है, वह श्लेष्मावरण की धमनियाँ रक्त से भरकर फूल जाने के हेतु से है। पहले लिखे अनुसार नेत्रमध्यपटल और तारामण्डल के प्रदाह में शुक्लमण्डल के चारों ओर लाली देखने में आती है। यह नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे रही हुई धमनियों

के फूल जाने से होती है। इन दोनों स्थितियों को पहचानने की सरल रीति यह है कि नेत्र को खोलकर गोलक के ऊपर के श्लेष्मावरण को कुछ हिलाकर जांच करें। यदि लाली और धमनियाँ श्लेष्मावरण के साथ सरक सके तो श्लेष्मावरण में लाली और स्थिर रहे तो निम्न अवयव में मानी जाती है।

इ. *प्रकाश की असहनशीलता*—यह लक्षण शोथ के अनुरूप कुछ अंश में रहता है; किन्तु जितने अंश में यह लक्षण तारामण्डल के पर्दे के प्रदाह में प्रतीत होता है, उतने अंशमें इस रोग में बढ़ा हुआ नहीं भासता। रोगी को विशेषतः अंधकार में रहना अच्छा लगता है।

ई. *नेत्र में से चिपचिपा पदार्थ निकलना*—नेत्र में से चिपचिपा स्राव होता रहता है; उसका परिमाण रोगबल पर अवलम्बित है। यदि रोग मामूली हो तो जलसदृश चिपचिपा प्रवाही गिरता है; किन्तु रोग प्रबल हो तो गाढ़ा, लसदार और सफेद प्रवाही निकलता है। इस प्रवाही के हेतु से नेत्र चिपक जाते हैं और वे अति कठिनता से खुल सकते हैं।

कारण—यह रोग बालकों में विशेष प्रतीत होता है। इसका मुख्य कारण एक प्रकार के कीटाणु का आक्रमण है। उस कीटाणु को शोधक के नाम से कोकविक के कीटाणु (Koch-week's bacillus) कहते हैं। इन कीटाणुओं की वृद्धि में सहायक हेतु-सूर्य का अति ताप, तेजवायु, रज (धूल) का उड़ना और अस्वच्छता आदि है। एवं यह रोग रोमान्तिका और शीतला रोग में लक्षणरूप से उपस्थित होता है

यह संक्रामक रोग होने से कुटुम्बके एक बच्चेसे दूसरे को सहज लग जाता है। बीमार बच्चेकी आंखके पोंछे हुए कपड़ेसे दूसरे बच्चेका मुँह पोंछा जाता है, तो उसे सहज हो जाता है।

रोगविनिर्णय—नेत्रकी लाली और नेत्रका चिपक जाना, इन दो लक्षणों परसे यह रोग सरलता से विदित हो जाता है। विशेष निर्णयार्थ नेत्रमें संगृहीत हुए चिपचिपे पदार्थको कांचपट्टी पर लेकर अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे रखकर परीक्षा कर लेवें। कोकविकके कीटाणु मिलने पर रोग निर्णय हो जाता है।

सूचना—यह रोग अधिक दिनों तक रह जाने पर शुक्लमण्डलमें क्षत हो जाते हैं। क्षत छोटा या बड़ा और गहरा बनकर शुक्लमण्डलके कुछ भागको नष्ट कर देता है। उसके परिणाममें नेत्रशुक्र (फूला) होकर या शुक्लमण्डल बाहर निकलकर कुछ या पूर्ण दृष्टि नष्ट हो जाती है।

चित्रफलक नं० ३

चि० ५१ पृ० २२६.
प्रथुकरीनेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह ।

चि० ५२ पृ० २४१
नवजात शिशुका नेत्रप्रदाह ।

चि० ५३, पृ० २२६.
अतिदारुण नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह ।

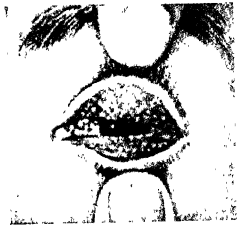

चि० ५४, पृ० २७३
पीलका-रोह ।

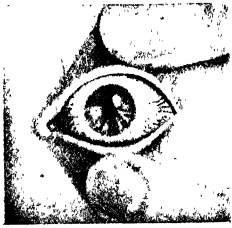

चि० ५५, पृ० २५४
पिटिकामय नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह ।

चित्र० ५६, पृ० २८३
नेत्रवर्त्मपटलका उत्तानप्रदाह ।

चि० ५७ अ, पृ० २६०
नेत्रश्लेष्मावरण में अन्तःक्षेपण।

चि० ५७ आ, पृ० २६०
तन्तुसमूहमें अन्तः क्षेपण।

चि० ५७ इ, पृ० २६०
अन्तःक्षेपणसे
तन्तुसमूहकी कठोरताग्रह तारामण्डलप्रदाह
एट्रोपीनसे कनीनिका भी कुछ प्रसारित।

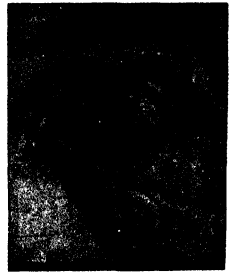

चि० ५७ ई, पृ० २६०
नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रक्तस्राव।

अभिष्यन्द चिकित्सोपयोगी सूचना।

अभिष्यन्द होने पर नेत्रको कष्ट हो ऐसा कार्य बिल्कुल नहीं करना चाहिये। लिखना, पढ़ना, सिलाई करना कसीदा निकालना, घड़ीसाजी, चित्रकारी, स्वर्णकारी, अणुवीक्षण यन्त्रसे देखना, नकशे खींचना, आदि आँखों पर जोर पड़ने वाले कार्य बन्द कर देने चाहिये। सिनेमा देखनेका त्याग करना चाहिये। अधिक प्रकाशमें हो सके तब तक न फिरें। अति आवश्यकता हो तो काला चश्मा पहिन कर बाहर जायं। नेत्र को पवन न लगे, धुआँ न लगे, अधिक प्रकाश न लगे और नेत्रमें रजकण न गिरे, इन बातोंका पूरा ध्यान रक्खें।

आँख पर पट्टी कभी न बाँधें। अन्यथा मल संगृहीत होकर अधिक हानि पहुँचाता है। भोजन सरलतासे पचन हो ऐसा करें। स्वच्छ वायुमें रहें। धूम्रपानका त्याग करें। सुबह-शाम काला चश्मा पहनकर थोड़ा घूमें या हल्का व्यायाम करें। अधिक समय तक लेटे रहें। मलावरोध रहता हो तो उदरशुद्धिका उपाय करना चाहिये। अधिक कब्ज करने वाला भोजन नहीं करना चाहिये। एवं अधिक गुड़ आदि जो-जो पदार्थ नेत्रमें लाली बढ़ाते हों, उनको छोड़ देना चाहिये।

नेत्र स्वस्थ हो जाने पर भी कुछ दिनों तक नेत्रको अधिक कष्ट न देवें। अति तेज प्रकाश और अति मन्द प्रकाशमें लिखना-पढ़ना आदि कार्य करना हानिकर है। बिजली की बत्ती और सूर्य पर दृष्टि नहीं डालनी चाहिये।

अभिष्यन्द चिकित्सा।

१. *नेत्रस्नान* (Eye-bath)--प्रारम्भमें नेत्रमें से निकलने वाले मल-लेसदार पदार्थ को हो सके उतनी अधिक बार धो देना चाहिये। नेत्रों को धोनेके लिये सामान्यतः बोरिक धावन व्यवहृत होता है। एक औंस जल में ५ से १० ग्रेन बोरिक एसिड मिलावें। इस प्रवाहीको कुछ निवाया (Luke warm) किया जाय, तो रोगीको विशेष अच्छा लगेगा।

२. *शीतल उपचार*—रोगके प्रारम्भमें बर्फके जलके फोहे या बर्फ और नमक पर रखकर शीतल किये हुए गुलाब जलके फोहे रक्खें। या बर्फ पर फोहे रख शीतल बनाकर नेत्र पर रक्खें। इसी तरह बर्फके चूर्णको कपड़ेकी पोटलीमें रखकर नेत्रपर रखनेसे शान्ति पहुँचती है। यह शीतल उपचार प्रत्येक बार लगभग १५ मिनिट तक करें।

यदि पलक पर शोथ अधिक हो तो १५ मिनिटके पश्चात् १५ मिनिट विश्रान्ति देकर पुनः १५ मिनिट तक उपचार करें। इस तरह रात्रि-दिन चालू रखनेमें बाधा नहीं है। इस उपचारसे रोगीको बहुत आराम लगता है।

सूचना—यदि शुक्लमण्डलमें क्षत हो गया हो, तो शीतल उपचार नहीं करना चाहिये।

३. उष्ण उपचार—यदि रोगोत्पत्ति हुए ३-४ दिन होगये हों तो शीतल उपचारकी अपेक्षा उष्ण उपचार—गरम जलके फोहे, बोरिक धावनके फोहे या अफीमके डोंडेके क्वाथका सेक विशेष अनुकूल रहता है।

नेत्रवैद्यको करने योग्य उपचार।

नेत्रवैद्यके औषधालयमें उपचारार्थ आये हुए रोगीको टेबलपर सुलावें। कण्ठके चारों ओर एक स्वच्छ तौलिया लपेटें। फिर दोनों नेत्रोंमें एमीथेइनकी बूंद डालें। ३ मिनिट पश्चात् पुनः दूसरी बार वही बूँद डालें। फिर २ मिनिटके बाद नेत्रोंको पारद धावन (H. P. Lotion) १-५००० से धोवें। नेत्रोंको धोनेके लिये अनडाइन (Undine) नामक कांचकी नेत्रकूपीका (चित्र नं० ५० देखें) उपयोग करनेपर आँख सरलतापूर्वक अच्छी धोई जाती है। नेत्रवैद्य रोगीकी आंखको खोलें या पलकको उलटें और सहायक वैद्य कांचकूपी द्वारा प्रवाही डालें।

नेत्र धोनेके पश्चात् जो दवा लगानी हो या बूँद डालनी हो, वह उपचार करें। अभिष्यन्द (नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह) के लिये अच्छी से अच्छी औषध सिल्वर नाइट्रेट (Argenti Nitras) का सोल्युशन (रजत लवणद्रव) है। प्रायः १ औंस वाष्प-जलमें १० ग्रेन मिलाकर प्रवाही तैयार करते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य मात्र ५ ग्रेन मिलाते हैं।

एक साफ लकड़ी या बांसकी साफ शलाका या इस कार्यके लिये खास धातु या कांचकी शलाका आती है। उस पर थोड़ी विशुद्ध रुई (Cotton wool) लपेट फुरेरी बना, उस प्रवाहीमें डुबो, रोगीके पलकको उलटकर उस पर लगावें। इससे पलकके भीतरका नेत्रश्लेष्मावरण जो अभी तक लाल-लाल भासता था, वह आध मिनिटके भीतर सफेद रंगका बन जाता है। उस समय सहायक चिकित्सक लवण-जल (१ औंस वाष्प जलमें ४ ग्रेन) उस पर डालें। ऐसा करने पर शेष रहा हुआ सोल्युशन धुप जायगा। इतना ही नहीं, लवणके संयोगसे वह सोल्युशन सिल्वर क्लोराइडमें परिवर्त्तित हो जायगा। वह नेत्रको कुछ भी असर नहीं पहुँचाता। कारण, वह न पिघलने वाला द्रव्य बन जाता है।

इस औषधके लगानेसे रोगीको नेत्रके भीतर बहुत खटकता हो, ऐसी पीड़ा प्रारम्भ होती है। वह ४ से ६ घण्टे तक रहती है। यह पीड़ा हो सके उतनी जल्दी कम होनेके लिये कोकैनका मलहम (Sedative Antiseptic) आध-आध घण्टे पर नेत्रमें डालते रहें।

सूचना—कितनेक रोगी सिल्वर नाइट्रेटसे होने वाला उपचार बिल्कुल सहन नहीं कर सकते। उनके लिये अनेक औषधियाँ निकली हैं, जो लाभ पहुँचाती हैं और जलन बिल्कुल नहीं करतीं। उन औषधियोंमें आर्जिरोल (Argyrol), प्रोटार्गोल (Protargol) और कोलारगोल (Collargol) मुख्य हैं।

आर्जिरोल लगभग ३० प्रतिशत परिमाणमें अर्थात् १ औंस बाष्प-जलमें १५० ग्रेन या प्रोटार्गोल २० प्रतिशत अर्थात् १०० ग्रेन मिलाकर प्रवाही बनाकर प्रयोगमें लावें। हम आर्जिरोल इससे अधिक परिमाणमें व्यवहृत करते हैं। हमारी रीति निम्नानुसार है :—

आर्जिरोल चूर्णको कांचकी तश्तरीमें लेवें। उसमें १ बूँद बाष्प जल डालें। इससे चूर्ण गल जायगा और शहद जैसा गाढ़ा प्रवाही बन जायगा। इस गाढ़े द्रव्यको कांचकी शलाकासे रोगीके पलकको उलट कर लगाते हैं। इस तरह प्रयोग करनेपर रोगीको बिल्कुल वेदना नहीं होती और लाभ भी अच्छा करता है।

यदि रोगी चाहे तो वह भी अपने हाथसे आर्जिरोल और प्रोटार्गोल-की बूँदका उपयोग कर सकता है।

वर्त्तमानमें मर्क्युरोक्रोम २ प्रतिशतका प्रवाही और मेटाफेन (Metaphen) एक औंसमें ६ ग्रेन डालकर बना हुआ प्रवाही विशेष व्यवहृत होता है। इन दोनोंसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

रात्रिको नेत्र चिपक जाते हों तो उसे रोकनेके लिये बोरिक मलहम (१ औंस विशुद्ध सफेद वेसेलिनमें ५ से १० ग्रेन बोरिक एसिड) का अञ्जन करें, या पलक धाराको लगावें।

सूचना—(१) यदि शुक्लमण्डलमें क्षत होगया हो तो आगे ११वें प्रकरणमें लिखे अनुसार उपचार करना चाहिये।

(२) यदि नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह उपचार किये बिना दीर्घकाल तक रह जायगा, तो प्रदाह जीर्णरूप धारण कर लेगा।

३. नेत्रकोणगत श्लेष्मावरण प्रदाह ।

(*Angular Conjunctivitis*)

लक्षण—इस रोगके लक्षण कोकविकके कीटाणु जनित नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाहके समान हैं। केवल इतना ही अन्तर है कि, इस विकारमें पलकका शोथ उतना अधिक नहीं होता। नेत्रमल अधिक चिपचिपा नहीं होता। यह रोग बिना उपचार किये स्वयमेव दीर्घकाल तक भी नहीं मिटता। एवं समय जाने पर जीर्ण रूप धारण कर लेता है। यह रोग नेत्रके भीतर लाली लानेके बदलेमें पलकके भीतरके भागमें और विशेषतः नेत्रके बाहर और भीतरके दोनों कोणमें प्रारम्भसे ही और अधिक परिमाणमें लाली लाता है।

यह रोग गर्मीके दिनोंमें अनेकोंको हो जाता है। बहुसंख्य रोगियोंमें नेत्रमें लाली आनेके अतिरिक्त पलक-धारामें लाली आना और पकना, ये विशेष लक्षण उपस्थित होते हैं। नेत्रके भीतर लालीके साथ नाकके भीतर भी लाली फैल जाती है। रोगीकी नाकमें से जल टपकता रहता है। कभी-कभी मुँहके कोणमें भी लाली प्रतीत होती है। इनके अतिरिक्त शिरदर्द, पढ़ने पर नेत्र जल्दी थक जाना, ये लक्षण भी कितनेक रोगियोंमें अनुभवमें आते हैं। इस रोगके उत्पादक कीटाणुओंसे शुक्लमण्डलका क्षत भी हो जाता है। कभी वह क्षत अधिक फैल जाता है। इस कीटाणुके विषसे कभी तारामण्डलका प्रदाह भी हो जाता है।

रोगविनिर्णय—इस रोगके निदानका ऊपर लिखे हुए लक्षणोंपर से अनुमान हो सकता है। अनुभवी नेत्रवैद्य इस रोगको तुरन्त जान लेते हैं। निश्चयात्मक निर्णय तो केवल रोगीके नेत्रमेंसे लसदार पदार्थ निकाल कांचपट्टीपर फैला उसे लोफलर मेथिलीन ब्ल्यूके सोल्युशनसे रंगकर परीक्षा करनेपर होता है। यदि मोराक्स एक्सीफेन्डके सरलकीटाणु प्रतीत हों तो यह रोग निश्चित माना जाता है। यह मलपदार्थ नेत्रकोणमें से लिया हो तो कीटाणुप्रतीति की संभावना अत्यधिक है। यदि उस मलपदार्थमें कीटाणुकी प्रतीति न हो तो पलकको उलट, उसके श्लेष्मावरणको स्पेटीनमकी लेपनी (Spatula) या अतीक्ष्ण चाकूसे रगड़कर कांचपट्टी पर फैला रंगकर परीक्षा कर लेनी चाहिये।

चिकित्सा।

इस रोगका निश्चित उपचार एक ही है। वह झिंक सल्फेट (Zinc Sulphate) है। इस औषधका प्रवाही बनाकर नेत्रके भीतर दिनमें ३-४

बार डालें। कितनेक नेत्रवैद्य १ औंस जलमें झिंक सल्फेट ½ से ½ ग्रेन डालते हैं; और इससे उनको अच्छा परिणाम प्रतीत होता है। हम सामान्य उपयोगके लिये एक औंस जलमें १ ग्रेन मिलाते हैं; और ये बूँद दिनमें १-२ बार डालते हैं। इससे अच्छा लाभ पहुँचता है। यह औषध कुछ जलन करती है। इस हेतुसे रोगीको वेदना न होनेके लिये कितनेक नेत्रवैद्य कम परिमाणमें मिलाते हैं।

झिंक क्लोराइड (जसद क्षार) से भी उतना ही लाभ पहुँचता है। बल्कि झिंक सल्फेटकी अपेक्षा यह लगभग दूनी बलवान है। किन्तु इससे नेत्रमें जलन अधिक होती है। इस हेतुसे झिंक सल्फासका उपयोग अधिकतर होता है।

यदि मोराक्स एक्सनफेल्ड कीटाणुओंसे शुक्लमण्डलमें क्षत हुए हों तो भी झिंक सल्फेटसे लाभ होजाता है। यदि केवल इसकी बूँद डालनेसे क्षतमें लाभ न हो तो झिंक सल्फेटके ½ से ½ प्रतिशतके प्रवाहीको आयोनिझेशनसे आंखके भीतर प्रवेश करावें। इस उपचारकी विधि ५वें प्रकरणमें विद्युच्चिकित्सा में लिखी है। हम इस तरह उपचार करते हैं और उससे बहुत अच्छा परिणाम आता है।

४. न्युमोकोकस जनित नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(Pneumococcal Conjunctivitis)

यह विकार अन्य प्रकारके नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहकी अपेक्षा भिन्न है; ऐसा निर्णय कुछ वर्षोंसे कीटाणु विद्याका उपयोग होनेपर हुआ है। इस रोगकी संप्राप्ति विशेषतः नासामार्गसे न्युमोकोकाई कीटाणुओंका नेत्रमें प्रवेश होनेपर होती है। इसके लक्षण सामान्यतः कोकविकके सरल कीटाणुओंसे उत्पन्न प्रदाहसे मिलते हैं; किन्तु उनके साथ निम्न लक्षणोंमें भिन्नता रहती है।

लक्षण और चिह्न—यह विकार विशेषतः छोटे बालकपर आक्रमण करता है; बड़ी आयुवालोंको अतिकम परिमाणमें होता है। इस रोगका प्रारम्भ अकस्मात् होता है। रात्रिको सोनेके समय अच्छी आँख होती है, और सुबह उठनेके समय बालककी दोनों आँख लाल होजाती हैं, कुछ शोथ आता है और चिपचिपा स्राव होने लगता है। यह स्राव प्रारम्भमें जल सदृश पतला होता है। फिर शनैः-शनैः गाढ़ा हो जाता है। किन्तु पूयमय क्वचित् ही होता है। यह रोग कई बालकोंमें अति बलवान भासता है और कितनेक बच्चोंको साधारण लाली आकर निवृत्त होजाता है। इस रोगमें

पलकके भीतरके श्लेष्मावरणकी अपेक्षा गोलकपरके आवरणमें अधिक लाली आती है। नेत्रगोलकपर छोटे-छोटे रक्तस्रावात्मक चिह्न, यह इस रोगका महत्वका लक्षण है। कचित् शुक्लमण्डलके किनारे पर पिटिकाएं (फुन्सियां) उपस्थित होती हैं। यह रोग विशेषतः ८-१० दिन तक रहता है। फिर स्वयमेव शमन होजाता है। इस रोगमें शुक्लमण्डल क्षत नहीं होता। कभी तारामण्डल प्रदाह अति मंद रूपमें होता है।

रोगविनिर्णय—इस रोगमें गोलकपर किञ्चत्-किञ्चित् रक्तस्राव दीखनेपर रोग स्पष्ट होजाता है। सच्चा निश्चयात्मक निदान अणुवीक्षण यन्त्रकी परीक्षासे होता है। नेत्रसे निकलनेवाले प्रवाहीको काँचपट्टीपर फैला ग्रामकी रीतिसे (प्रकरण ८ में लिखे अनुसार) रंजितकर अणुवीक्षण यन्त्र के नीचे रखकर देखनेपर न्युमोकोकाई बहुसंख्य प्रतीत होते हैं।

सूचना—कभी-कभी रोगारम्भमें न्युमोकोकाईकी प्रतीति नहीं होती किन्तु उसके स्थानमें अन्य पूयोत्पादक कीटाणु मिलते हैं। किन्तु ३ दिन हो जाने पर जांच करनेपर न्युमोकोकाईकी निश्चित प्रतीति होती है।

न्युमोकोकाई जनित नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह चिकित्सा।

यह रोग बहुधा स्वयमेव बिना उपचार किये ८-९ या १० वें दिन शमन होजाता है। रोगी नेत्रवैद्यके पास कुछ दिनोंके बाद आवेगा, और किसी भी प्रकारका उपचार किया जायगा उससे रोगीको लाभ हो ही जायगा। यदि रोगी रोगकी प्रारम्भावस्था में ही उपचार कराता है, तो २-४ दिनमें रोग दूर हो जाता है। कोकविकके कीटाणु जनित रोगपर जो उपचार व्यवहृत होते हैं, वे सब इसपर प्रयोजित होते हैं। किन्तु होरूके तब तक सिल्वर नाइट्रेटका उपयोग इस रोगपर नहीं करना चाहिये। आर्जिरोलकी बूंद विशेष हितावह हैं। किन्तु सबसे अच्छी औषध ओप्टोचिन (Optochin) है। यह क्विनाइन मिश्रण से बनी हुई खास औषध है। १ औंस जलमें ५ ग्रेन मिलायी जाती है। इसकी बूंद डाली जाती हैं; या वेसेलिनमें मिला मलहम बनाकर प्रयोगमें लाया जाता है।

सल्फापाइरीडिनकी टिकिया खिलाने और उसका ६ प्रतिशतका मलहम बनाकर उपयोग करने पर यह रोग अति जल्दी दूर हो जाता है।

उपर्युक्त नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहके अतिरिक्त निम्न प्रकारके रोगों का वर्णन डाक्टरी ग्रन्थोंमें मिलता है :—

१. इन्फ्लुएञ्जाके कीटाणु जनित प्रदाह—Influenza Conjunctivitis.

२. बालकोंको होनेवाला नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह– Infantile Conjunctivitis.

३. स्नान और तैरने के लिये बनाये हुए छोटे तालाबोंसे उत्पन्न प्रदाह—Swimming pool Conjunctivitis.

४. गिलहरीसे फैलने वाले प्लेग जनित प्रदाह—Squirrel plague-Conjunctivitis.

उक्त ये और अन्य नेत्रश्लैष्मिक कलाप्रदाहका वर्णन मिलता है। उन सबका रोगनिर्णय नेत्रमलकी परीक्षा करने पर उन रोगोत्पादक कीटाणुओंकी प्रतीति होने पर होता है। इन रोगोंके रोगी अति कम होते हैं। जो नेत्ररोगके खास पारङ्गत चिकित्सक नहीं हैं, वे इन रोगोंको नहीं जान सकते। यदि इनको पहचानने के लिये कोई प्रयत्न करें तो सम्पूर्ण साधनयुक्त प्रयोगशालाका अभाव होने से आवश्यक साधन ही नहीं मिल सकते। इससे इन रोगोंका यहां विवेचन नहीं किया।

५. चिरकारी प्रसेकज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(*Chronic Catarrhal Conjunctivitis*).

व्याख्या—इस रोगमें नेत्रश्लेष्मावरण कुछ अंशमें लाल बना रहता है। नेत्रमें से कुछ-कुछ चिपचिपा स्राव होता रहता है। प्रातःकाल उठने पर पलक परस्पर चिपक जाते हैं। कभी-कभी पलकधारा पक जाती है।

लक्षण और चिह्न—रोगीकी मुख्य शिकायत है कि आँखोंमें बेचैनी भासती है। विशेषतः प्रातःकाल उठने पर और लिखने-पढ़ने के पश्चात् विशेष अशान्ति होती है। आँखों पर इतना बोझ भासता है कि, रोगीको नेत्र खोलनेमें कष्ट होता है। नेत्रमें जलन, कण्डू, भीतर कुछ गिरा हो ऐसी भावना होना, बार-बार नेत्रके सामने मृगतृष्णासा भासना और आँख मसलने पर दूर होना, थोड़े-थोड़े में आँख थक जाना, प्रातःकाल आँख चिपक जाना आदि लक्षण रोगी दर्शाता है।

नेत्रपरीक्षा करने पर नेत्रमें कुछ अंशमें लाली और कभी-कभी पलकके भीतर छोटे-छोटे दाने (रोहे जैसे) प्रतीत होते हैं। इन दोनों को कभी-कभी रोहे माननेकी भूल होती है। रोग दीर्घकाल तक रह जाने पर पलकधारा पक जाती है।

कारण—इस रोगके मुख्य कारण निम्नानुसार हैं :—

१. आशुकारी प्रदाह शमन न होकर जीर्णरूप धारण कर लेना।

२. चश्माकी आवश्यकता होने पर भी उसका उपयोग न करना, या अन्य हेतुओंसे नेत्रको होने वाली थकावट।

३. कारखानोंमें कार्य करने वाले मजदूर आदि की आँखमें धुँआ, रजकण आदि हानिकर पदार्थ गिरना।

४. खेत और जंगलोंमें कार्य करनेवालोंके नेत्रोंको धूप, वायु, गर्मी आदि लगना।

५. मोटर चलाने वालों के नेत्र में धूलि गिरने और पेट्रोल का धुआं लगना।

६. मोराक्स एक्सफेल्ड के कीटाणु, न्युमोकोकाई, स्टेप्टोकोकाई आदि कीटाणुओं के विष का सस्पर्श होना।

७. अति सिनेमा देखना।

८. अश्रुवाशय का अवरोध होना।

अधिकारी—यह रोग विशेषतः ग्रामों के किसान, अहलकार-वर्ग और वृद्धों को विशेष परिमाण में होता है। जो लोग उपचार करने में लापरवाही करते हैं, उनको यह रोग दीर्घ काल तक कष्ट पहुँचाता है। एवं अनेक बार शुक्लमण्डल के क्षत, पलकधारा का पकना आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। यदि रोग का सच्चा हेतु जानकर योग्य उपचार किया जाय तो रोग २ सप्ताह में दूर हो जाता है। यदि कुछ आराम होने पर उपचार बन्द कर दिया जाय, तो रोग पुनः आक्रमण करता है।

चिकित्सा।

चश्मा की आवश्यकता हो तो डाक्टर की राय लेकर योग्य नम्बर का चश्मा ले लेवें।

औषधोपचारमें प्रायः सिल्वर नाइट्रेट के प्रवाही (१० ग्रेन १ औंस जल में मिला हुआ) की बूंद दिन में ३-४ बार डालने से रोग शमन हो जाता है। यदि मोराक्स एक्सनफेल्ड के कीटाणु प्रतीत हुए हों तो ½ से १ प्रतिशत झिंक सल्फेट की बूंद डालनी चाहिये। कभी-कभी पीत बिन्दु बहुत अच्छा असर पहुँचाता है। इसकी कृति निम्नानुसार है :—

पीत बिन्दुः—शुद्ध नौसादर (एमोनिया क्लोराइड)	७॥ ग्रेन	प्रवाही नं०१
झिंक सल्फेट	१९ ग्रेन	
बाष्प जल	६ औंस	

कपूर	६ ग्रेन	प्रवाही नं० २
केशर	१॥ ग्रेन	
रेक्टीफाइड स्पिरिट	२॥ ड्राम	
बाष्प जल	२॥ ड्राम	

फिर दोनों प्रवाहियोंको मिलाकर २४ घण्टे तक कांचके डाटवाली शीशीमें रक्खें और उस समयमें बार-बार (५-७ बार) बोतलको अच्छी तरह हिला लेवें। फिर छाननेके कागजमें छानकर बोतलमें भर लेवें। इस औषधका उपयोग हम अनेक वर्षोंसे करते रहते हैं। यह उत्तम सफल औषध है।

यदि रोग सामान्य हो तो शुद्ध फिटकरी (Alum) ५ ग्रेन अथवा एसिड टेनिक ५ ग्रेनको १ औंस जलमें मिलाकर बूँद डालनेसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

६. दनोदार नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(Follicular Conjunctivitis)

व्याख्या—इस रोगका मुख्य स्वभाव यह है कि, इसमें आँख उठनेके लक्षणोंके अतिरिक्त नेत्रके भीतर, विशेषतः पुटोंके भागमें कील-पिन (Pin) के शिरके आकार और नापकी बहुसंख्य सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकाएँ उत्पन्न होती हैं (चित्र नं० ५३ देखें)।

अधिकारी—यह रोग विशेषतः शालामें अध्ययन करने वाले और आश्रमोंमें रहने वाले विद्यार्थियोंको अधिक परिमाणमें होता है। बहुधा ५ से १५ वर्षकी आयुके बालकोंको होता है। जिसे कण्ठमालका रोग हो, क्षय रोगके अनुकूल प्रकृति हो, ऐसे बालकोंको यह रोग होनेकी संभावना अत्यधिक है।

रोग प्रकार—इस रोगके दो प्रकार हैं। १. आशुकारी (Acute); २. गुप्त (Latent)।

लक्षण और चिह्न—यदि रोग गुप्त प्रकारका हो तो किसी भी प्रकारका लक्षण प्रतीत नहीं होता। केवल शाला या आश्रमके विद्यार्थियोंकी वैद्यकीय जांच होने पर विदित होता है कि अमुक विद्यार्थी इस रोगसे पीड़ित है।

यदि रोग आशुकारी हो, तो अभिष्यन्द रोगके सब लक्षण—नेत्र-दाह, खटकना, प्रकाशकी असहिष्णुता, अधिक समय तक अध्ययनमें कष्ट होना और नेत्रस्राव आदि होना रोगी बतलाता है। परीक्षा करने पर गोलक

में कुछ लाली भासती है। पलक उलटने पर भीतरके भागमें सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकाएँ (पिनके सिरके आकार और कद की) प्रतीत होती हैं। ये पिटिकाएँ पंक्तिबद्ध व्यवस्थित होती हैं। इनका नाप सामान्यतः ·५ से १ मि० मी० होता है। कचित् अनियमित भी प्रतीत होती हैं। योग्य उपचार करने पर ये पिटिकाएँ कुछ समयमें शोषित होकर दूर हो जाती हैं।

रोहे भी ऐसे ही भासते हैं। किन्तु रोहे उस तरह नहीं मिटते, यह इन दोनोंमें महत्त्वका अन्तर है। ये पिटिकाएँ ऊपरके पुटकी अपेक्षा निम्न पुटमें विशेष परिमाणमें होती हैं।

कारण—यह रोग विशेषतः अनारोग्यकर वायुमण्डलमें रहने वाले सत्त्वहीन आहार लेने वाले और मलिन रहने वाले बच्चोंको होता है। कण्ठमाल जैसे रोग अथवा कण्ठ-ग्रन्थि (Tonsils) की वृद्धिसे पीड़ित, कृश तथा अशुद्ध आचरण वाले बालकोंको अधिक परिमाणमें होता है। कितनेक रोगी एट्रोपिन या इमरिनकी बूँदोंका दीर्घकाल तक उपयोग करते रहते हैं, उनको भी यह रोग हो जाता है।

इस रोगका खास कारण एक प्रकारके सरल कीटाणु है। इसका शोध नोगुची (Noguchi) नामक जापानीज कीटाणुविज्ञानशास्त्रीने किया है, ऐसी कितनेक नेत्रवैद्योंकी मान्यता है। ये कीटाणु प्राम अस्पष्ट हैं और केरोसिसके कीटाणुओंसे आकार और नापमें मिलते-जुलते हैं। किंतु ग्राम अस्पष्ट और गतिवान होनेसे, इन दो कारणोंसे केरोसिस कीटाणुओंसे पृथक् हो जाते हैं।

सूचना—यह रोग संक्रामक (छूतका रोग) है अर्थात् एक विद्यार्थीको होनेपर दूसरेको (जिसको रोगीके नेत्रप्रवाहीका संसर्ग हो, उसे) होजाता है। अतः रोगी विद्यार्थीके वस्त्र आदिका उपयोग भी निरोगी बालकोंको नहीं करना चाहिये। हो सके तब तक रोगीको अलग रखना चाहिये।

चिकित्सा।

रोग तीक्ष्ण स्वरूपमें हो तो कुछ दिनों तक सिलवर नाइट्रेट, आर्जिरोल, प्रोटार्गोल आदि औषधियोंका उपयोग करना चाहिये। आशुकारी स्वरूपका दमन होनेपर या प्रारंभसे ही आशुकारी न होनेपर नीलेथोथेका मलहम (१ औंस वेसेलिनमें आध ग्रेन) शर्तिया औषध है। कभी केलोमल के चूर्णका अंजन करनेसे भी अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

रोगीकी शारीरिक स्थितिको सुधारनेका योग्य प्रयत्न करना चाहिये। भोजनमें मक्खन, घी, दूध, अण्डे, यकृत् तैल, गाजर, ताजे साग, टमाटर,

मटर आदिका उपयोग करना चाहिये। स्वच्छताका आग्रहपूर्वक पालन करना चाहिये।

७. पूयमेहज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(पूयपूर्ण नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह—
Gonorrheal or Purulent Ophthalmia)

इस रोगमें २ प्रकार हैं। अ. नवजात शिशुको होनेवाला और आ. बड़ी आयुवालोंको होनेवाला। इन दोनोंका विचार आगे क्रमशः करते हैं।

अ. बालकोंका पूयमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(*Ophthalmia Neonatorum*)

सूचना—यह रोग अति भयंकर है। इसने हजारों नवजात शिशुओं के नेत्रोंको नष्ट करके अंध बना दिया है। यह मुख्यतः नवजात शिशुओंमें प्रतीत होता है। रोगदर्शक आकृति चित्र ५२ वें में दर्शायी है।

लक्षण और चिह्न—बालक रोता ही रहता है और कान खींचता रहता है। बालकके जन्मके बाद दूसरे या तीसरे दिन नेत्र एक साथ सूजे हुए भासते हैं। उनमेंसे गाढ़ा पूय निकलना रहता है। बालकका शोथ प्रारम्भसे ही रहता है। वह एक दो दिनमें इतना अधिक बढ़ जाता है कि, फिर बालक के नेत्र नहीं खुल सकते। यदि आंखके भीतरका भाग देख सकें तो गोलकके ऊपरके श्लेष्मावरणको जान सकते हैं कि वह सूजकर मखमल सदृश हो गया है या नहीं। आँखमें से झरनेवाला प्रवाही जो पहले सफेद रंगका था, वह पीले रंगका बिल्कुल पूय बन जाता है। रोगीको कुछ ज्वर भी आजाता है। कानके पास शोथमय रसग्रन्थि (Swollen gland) दीखती है। शिशु आँखको स्पर्श करने पर खूब रोता है। दो एक दिन वैसी ही स्थिति रहती है। फिर पूयप्रवाह बढ़ जाता है। शुक्लमण्डलके पास-श्लेष्मावरण इतना उभड़ आता है कि, शुक्लमण्डल गड्ढेमें पड़ा हुआ भासता है।

यदि आक्रमण साधारण हो, तो एकाध सप्ताहके पश्चात् लक्षणोंका ह्रास होने लगता है। आँख कुछ-कुछ खुलने लगती है। यदि संक्रमण प्रबल हो, तो शुक्लमण्डल पक जाता है और उसमें बड़ा क्षत होजाता है। इसका योग्य उपचार यथासमय न किया जाय तो प्रायः शुक्लमण्डल गल-कर नष्ट होजाता है। फिर फूटकर दृष्टिमणि आदि भाग बाहर निकल आते हैं और आँखमें खड्डा होजाता है। यदि शुक्लमण्डलको हानि पहुँचनेके

पहले योग्य उपचारका प्रबंध किया जाय, तो नेत्र बच जाता है और दृष्टि को हानि नहीं पहुँचती।

कारण—इस रोगकी संप्राप्तिका एक ही कारण है कि, बच्चेकी माता को सुजाक अथवा सुजाकजन्य प्रदर होना चाहिये। उन कीटाणुओं का संसर्ग दूषित योनिमें से मस्तिष्कके निकलनेके समय बालकके नेत्रको हो जाता है। प्रत्येक रोग कीटाणुओंको रोगीकी देहमें प्रवेश करनेके पश्चात् स्थिर होने और वंशवृद्धि करने में कुछ समय लग जाता है, उस नियमानुसार सुजाक कीटाणुओं को कुछ घण्टे से लेकर १-२ दिन लग जाते हैं; अर्थात् संक्रमण होने के पश्चात् कितनेक बालकों को दूसरे ही दिन यह रोग प्रतीत होता है। किसी को तीसरे या चौथे दिन प्रकाशित होता है। चौथे दिन या उसके पश्चात् उपस्थित होने वाला रोग निर्बल होता है।

पहले कहे अनुसार इस रोगमें मुख्य भय शुक्लमण्डल को हानि पहुँचने का है। यदि शुक्लमण्डल बच जाय तो रोगीके नेत्र को विशेष हानि नहीं पहुँचती।

जैसे यह रोग सुजाक के कीटाणुओंसे होता है, वैसे ही अन्य प्रकार के पूयजनक कीटाणुओं से भी हो जाता है। किन्तु सूक्ष्म निरीक्षण किया जाय, तो प्रायः प्रत्येक रोगीमें अन्य पूयोत्पादक कीटाणुओंके साथ पूयमेहके कीटाणु पाये जाते हैं।

रोगविनिर्णय—इस रोगका निर्णय अनुभवी नेत्रवैद्यके लिये अतिसरल है। बालकके जन्मके बाद दूसरे ही दिन या तीसरे दिन आँख का उठना, पलकका कठिन शोथ, आँख खोलनेमें अशक्ति, लसदार श्वेत पूयमय नेत्रस्राव, ये सब लक्षण अति स्पष्ट होने से रोगविनिर्णय में देर नहीं लगती। विशेष स्पष्टीकरणार्थ बालक की माता से प्रश्न करना चाहिये कि उसे प्रदर है या नहीं? यदि स्वीकार कर लेती है तो रोगनिर्णय में पुष्टि मिलती है।

अपने देशमें स्त्रीसमाजमें प्रदरका रोग अति प्रचलित है। इस रोग का सम्बन्ध सुजाकके साथ है ऐसा विचार भी बालक की माता को नहीं आता। प्रदरके सम्बन्धमें प्रश्न पूछने में अनुचितता नहीं भासती। यदि कोई विलायतसे पास होकर नया आया हुआ नेत्रवैद्य या पाश्चात्य शिक्षादीक्षाके अनुयायी नेत्रवैद्य भारतीय स्त्रीसमाजसे अपरिचित होने से, उसे सुजाक हुआ है या नहीं, ऐसा प्रश्न करेगा तो उस नेत्रवैद्यके प्रति तिरस्कारपूर्ण वृत्ति उत्पन्न होती है। पाश्चात्य प्रदेशोंमें ऐसे प्रश्न पूछनेमें

अधिक संकोच नहीं होता। यदि बालक का पिता उपस्थित होतो उसे एकान्तमें सुजाक होनेके विषयमें पूछ सकते हैं।

प्रदर या सुजाक के स्वीकार होने पर और विशेष निर्णयके लिये नेत्रमें से निकलने वाले पूयको काँचपट्टी पर फैला लोफलर मेथिलिन ब्ल्यू या सामान्य मेथिलिन ब्ल्यूके प्रवाहीसे रंजितकर धो देवें। फिर अणुवीक्षण यन्त्र के नीचे रख परीक्षा करने पर सुजाक कीटाणु दीखने पर शतप्रतिशत निर्णय हो जाता है।

चिकित्सा।

इस रोगकी चिकित्सा निम्न २ उद्देश्यों से की जाती है:—

अ. रोगोत्पत्ति के दमनार्थ।

आ. उत्पन्न रोगके शमनार्थ।

अ. *रोगोत्पत्ति निरोधक उपचार*—प्रसव होनेके पहले बाईके जननेन्द्रिय आदि भागों की परीक्षा स्त्रीवैद्या (लेडी डाक्टर) या साविका (Midwife) जो जननेन्द्रियके रोगों को समझ सकती हों, उनके पास करानी चाहिये। यदि प्रदर रोग हो और सुविधा मिल सके तो प्रदरस्रावका निरीक्षण अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा कराना चाहिये। यदि सुजाकके कीटाणुओंकी प्रतीति हो तो प्रसव होने पर बच्चे को हानि न पहुँच जाय, इस बात का ध्यान रखना चाहिये।

प्रसव होने के पहले जननेन्द्रियके भीतरका भाग एक्रीफ्लेविन १-१०००, या पारद धावन (H.P. Lotion) १-५००० अथवा सल्फोनेमाइडके प्रवाहीसे अच्छी तरह साफ कर लेना चाहिये। इससे सन्तानका जन्म होने पर पूय कीटाणु के संक्रमणका भय कम हो जाता है।

शिशुका जन्म होनेपर स्नान करानेके समय खास ध्यान रक्खें कि स्नान का जल (उछलकर या बहकर) नेत्रको न लग जाय। क्योंकि, बालक की देहपर जो पदार्थ लगा होता है, उसमें सुजाक कीटाणु बहुसंख्य होंगे। बच्चेको स्नान करानेके बाद उसके नेत्रकी ओर लक्ष्य देवें। एक्रीफ्लेविन या पारदलोशनमें भिगोये हुए फोहेसे नेत्रोंके पलकोंको अच्छी तरह साफ करलें। फिर सिल्वर नाइट्रेटके प्रवाही (१ औंस बाष्पजलमें ५ से १० ग्रेन मिला हुआ) की २-२ बूँद दोनों नेत्रमें डाल देवें। इस उपचारको क्रेडकी पद्धति (Crede's Method) संज्ञा दी है। इस उपचारसे इतना अच्छा परिणाम आता है कि अद्यावधि स्त्रियोंके सूतिकागार (मेटर्निटी वॉर्ड) में इसी पद्धतिपूर्वक उपचार होरहा है। उक्त औषधके बदलेमें आर्जिरोलके

३० प्रतिशत या प्रोटार्गोलके १५–२० प्रतिशतके प्रवाही की बूँद डालनेपर भी वही परिणाम आता है। क्वचित् सद्भाग्यसे जन्मके समय नेत्रको संसर्ग न हुआ हो, तो भी आगे कभी पूयकीटाणुओंका संक्रमण न होजाय, इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये।

आ. रोगशामक उपचार—इस बातको लक्ष्यमें रखना चाहिये कि, इस रोगमें नेत्रमें से पूयस्राव होता रहता है, उसमें बहुसंख्य सुजाक कीटाणु होते हैं। वे ही नेत्रको हानि पहुँचानेवाले हैं। अतः पूयको नेत्रमें न रहने देवें। इस आशयसे नेत्रको आध-आध घण्टेपर धोते रहना चाहिये। धोनेके लिये हमारे अनुभवके अनुसार एक्रीफ्लेविन १–१००० का धावन उत्तमोत्तम औषध है। कितनेक नेत्रवैद्य अभी तक बहुत समयसे प्रयोगमें आते हुए पारद धावन १–५००० का ही व्यवहार करते हैं। यदि शुक्ल-मण्डलमें क्षत हो तो पारद धावनकी अपेक्षा एक्रीफ्लेविनका प्रयोग ही विशेष हितकर माना जायगा। इस तरह आध-आध घण्टेपर नेत्रोंको धोने के साथ अन्य उपचार भी करते रहना चाहिये।

इस रोगमें दुग्धका इञ्जेक्शन बहुत अच्छा लाभ पहुँचाता है। प्रारम्भमें १ सी० सी० दुग्धका इञ्जेक्शन नितम्बपेशीमें देवें। यदि उससे १०१–१०२ डिग्री तक ज्वर बढ़ जाय, तो दो दिवस शान्ति करें। यदि उत्ताप-वृद्धि न हो तो दूसरे दिन १·५ सी० सी० दूधका इञ्जेक्शन करनेमें आपत्ति नहीं है। इस तरह ४–५ इञ्जेक्शन देवें। बहुधा पहले इञ्जेक्शनसे ही लाभ होने लगता है।

वक्षःस्तन्यक्षेपणके अतिरिक्त शिशुका आमाशय सहन कर सके तो सल्फाथियोझोल १–१ ग्रेन दिनमें ४ बार माताके दूध (स्तन्य) के साथ देते रहें। यदि इन औषधसे वान्ति हो जाय तो फिर दूसरी बार न देवें।

नेत्रके पलकको उलटकर सिल्वर नाइट्रेट १० ग्रेनके प्रवाहीको लगाना, यह अमृतके समान उपकारक है। यह लगानेके पश्चात् नेत्रमें सल्फोनेमाइड ६ प्रतिशतका मलहम अञ्जन करें। कितनेक नेत्रवैद्य सल्फोने-माइडके चूर्णका ही अञ्जन करते हैं। यह भी अच्छा लाभ पहुँचाता है; अथवा आर्जिरोल ३० प्रतिशत या प्रोटार्गोल २० प्रतिशतके प्रवाहीकी बूँद २–२ घण्टेपर डालनेसे भी सफलता मिलती है।

सूचना—सिल्वर नाइट्रेट लगाना हो तो दिनमें १ ही बार लगावें और नेत्र बिल्कुल स्वस्थ हो तब तक यह उपचार करते रहना चाहिये।

आ. वयस्कोंके पूयमेहज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(*Gonorrheal Conjunctivitis*)

यह रोग सुजाक हुआ हो उनके जननेन्द्रियमेंसे निकलनेवाले पूय संसर्गसे या अन्य किसी सुजाकपीड़ित रोगीके पूय लगे हुए वस्त्रमें से पूयकीटाणुओंके संसर्गसे होता है। वस्त्रमें पूयके दाग लगे हों वे चाहे सुजाकके पूयके हों या सुजाकजनित नेत्रश्लेष्मावरणके पूयके हों।

यह रोग अति घातक है। इससे बहुसंख्य मनुष्यों के नेत्र चले गये हैं। छोटे बालकों में शुक्लमण्डल संकुचित होता है, उसकी अपेक्षा बड़े मनुष्यों में ऐसा होने की संभावना अधिकतर है। सुजाक होने पर ३ सप्ताह तक विशेष मारक है। फिर जितना-जितना समय जाता है, उतना-उतना कीटाणु-बल कम होता जाता है। फिर भी वर्षों के पुराने रोग के कीटाणुओं से भी नेत्ररोग हो जाने के उदाहरण मिले हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगी की आंख खुल नहीं सकती, उसमें बहुत वेदना होती है। जब शुक्लमण्डल के क्षत का प्रारम्भ होता है, तब वेदना बढ़ जाती है। रोग का प्रारम्भ सामान्य अभिष्यंद रोग के समान होता है। नेत्र को सुजाक के पूय का स्पर्श होने पर कुछ घण्टों में ही या अधिक से अधिक ५ दिन के भीतर खटकना प्रारम्भ होता है। लाली आती है, पलक में कुछ शोथ होता है और नेत्र में से चिपचिपा स्राव होने लगता है। दो दिन में ये सब लक्षण अति गम्भीर रूप धारण कर लेते हैं। पलक का शोथ अत्यधिक बढ़ जाता है और वह अच्छी तरह कठिन हो जाता है। नेत्रस्राव दिन-दिन गाढ़ा होता जाता है। रोगप्रारम्भ से दूसरे या तीसरे दिन तो सफेद रंगका गाढ़ा प्रवाही हो जाता है। आंख बड़ी कठिनाई से खुलती है। गोलक अवस्थित श्लेष्मावरण अत्यन्त शोथमय (Chemosis) हो जाता है। इससे अति फूला और बढ़ा हुआ भासता है। शुक्लमण्डल के चारों ओर श्लेष्मावरण के फूल जाने से जैसे दुर्ग निर्माण किया हो, ऐसा देखाव होता है। शुक्लमण्डल खाई में रहा है, ऐसा भासता है। स्पर्श करने पर वेदना होती है। यह लक्षण चौथे-पाँचवें दिन से कुछ कम होने लगता है। पलक जो अति कठिन हो गये थे वे अब कुछ नरम होते हैं। फिर दिन-दिन शोथ का ह्रास होता जाता है।

नेत्र की लाली और गोलक पर के श्लेष्मावरण का फूलना भी धीरे-धीरे कम हो जाता है। नेत्र में से निकलने वाला पदार्थ ४-५ दिन के बाद कम गाढ़ा भासता है। सप्ताह के अन्त में यदि शुक्लमण्डल झपट में न

आगया हो, तो लक्षण अच्छी तरह कम हो जाते हैं। फिर ३-४ सप्ताह में नेत्र सामान्य रीति से ठीक हो जाता है। उस समय नेत्र में कुछ लाली होती है और कुछ जल गिरता है। वह भी कुछ समय के बाद दूर होता है। यह वर्णनक्रिया उन सद्भाग्यवान की है; अर्थात् जिनके नेत्र में विशेष विक्रिया न हुई हो, ऐसे सुभागी थोड़े होते हैं।

बहुधा रोग उपस्थित होने पर चौथे दिन शुक्लमण्डल कुछ अपारदर्शक और ओस जैसा भासने लगता है। २ दिन बाद शुक्लमण्डल के किनारे पर एक या अधिक व्रण प्रतीत होते हैं। कभी-कभी शुक्लमण्डल के मध्य भाग में भी व्रण हो जाता है और घातक आक्रमण हो तो समस्त शुक्लमण्डल सफेद होकर गल जाता है। व्रण-क्षत होने पर उसे गहरा होने में अधिक समय नहीं लगता। अर्थात् व्रण उपस्थित होने पर ५ या ६ वें दिन फूट जाता है। फिर उसमें से तारामण्डल का कुछ अंश बाहर निकल आता है। यदि समस्त शुक्लमण्डल सड़ जाय तो लगभग ४ सप्ताह बाद निम्नस्थ अवयव बाहर आ जाते हैं। यदि व्रण फूट जाय तो पूय नेत्रगोलक के भीतर जाकर शोथ उपस्थित करे, यह संभवित है। किन्तु ऐसा क्वचित् ही होता है। प्रायः शुक्लमण्डल का व्रण फूटने पर शुक्लमण्डल की स्थिति सुधरने लगती है।

यह रोग पहले प्रायः एक ही आँख में होता है। उस समय यदि योग्य सम्हाल रक्खी जाय और दूसरी आख को बचाने का उपाय किया जाय तो दूसरी आँख बच जाती है। अन्यथा दूसरी आंख भी एक दो दिन बाद रोग में फँस जाती है।

कितनीक बार शुक्लमण्डलके अतिरिक्त तारामण्डलको भी इस रोग का संसर्ग हो जाय तो उसका भी प्रदाह दृष्टिगोचर होता है। इस तरह तारामण्डलका प्रदाह होनेकी अपेक्षा सुजाकके कीटाणुओंका विष रक्तमें प्रवेशित होकर उससे तारामण्डलका प्रदाह होनेके अनेक उदाहरण प्रतीत होते हैं।

कारण—यह रोग सुजाक कीटाणुओंके संक्रमणसे ही होता है। यह संक्रमण निम्नानुसार ३ प्रकारसे होता है:—

(१) सुजाक पीड़ितकी मूत्रेन्द्रियमें से पूय निकलता है, वह अंगुलीको लग जानेके पश्चात् वह अंगुली नेत्रको लग जाना अथवा धोती या रूमालपर पूयके दाग होनेपर उससे भूलसे आंखको पोंछ लेना।

(२) अन्य किसी सुजाक पीड़ित व्यक्तिकी पूयमय अंगुली या पूय लगा हुआ वस्त्र नेत्रको लग जाना।

(३) जिस गद्दी पर सुजाकजन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहका रोगी सोया हो और उसके ऊपरकी चद्दर या सिरहाने पर पूयके दाग लगे हों; उस पर सोने वाले व्यक्तिके नेत्र पर उसमेंसे कीटाणुओंका संक्रमण हो जाना।

विलायतमें जिस तरह मुँह धोनेके लिये परात (Basin) का उपयोग करते हैं, उस तरह उसके अनुकरण करने वालोंको परातमें लगे हुए (किसी कुटुम्बी या इस रोगसे पीड़ित मेहमानके) पूय कीटाणुओं द्वारा नेत्र पर आक्रमण हो जाता है।

उपरोक्त तीन कारणोंके बिना इस रोग की सम्प्राप्ति नहीं होती।

रोगविनिर्णय—इस रोगके निर्णयमें विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। नेत्रमें से पूयस्राव, पलकपर कठिन शोथ, गोलक पर श्लेष्मावरणका फूल जाना, शुक्लमण्डल खाईमें गिरा हो ऐसा भासना, शुक्लमण्डल व्रण या शुक्लमण्डलकी पारदर्शकतामें परिवर्त्तन, इन सब लक्षणोंपरसे इस रोगका निर्णय हो जाता है।

ऐसे लक्षण मिलनेपर अनुभवी नेत्रवैद्य रोगीसे तत्काल प्रश्न करता है कि उसके पेशाबमें जलन होती है? मूत्रेन्द्रियमें से पूयस्राव होता है? रोगीके स्वीकार कर लेने पर रोगका निर्णय दृढ़ हो जाता है। इसके अतिरिक्त और विनिर्णय करना हो तो कांचपट्टीपर नेत्रमें से स्राव होने वाला पूय लेकर पहले लिखे अनुसार स्पिरिट लेम्प पर स्थिर कर सामान्य मेथिलीन ब्ल्यूमे रंगकर अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा परीक्षा करें। सुजाक-कीटाणु प्रतीत होनेपर रोगका पूर्ण निर्णय हो जाता है। कभी-कभी सुजाक-कीटाणुओंके अतिरिक्त अन्य पूयजनक कीटाणु भी दृष्टिगोचर होते हैं। किन्तु अन्य कीटाणु होनेपर भी रोग विनिर्णयमें अन्तर नहीं पड़ता।

चिकित्सा।

यदि रोग एक ही आँखमें हो तो दूसरे नेत्रमें न होनेके लिये योग्य उपचार करना चाहिये। इसके लिये सर्वोत्तम उपाय बूलरका नेत्ररक्षक कोष (Buller's shield) लगाना है। यह सामान्य सरल योजना है। छोटी घड़ीके ऊपर जैसा कांच लगाया जाता है, वैसा कांच लेवें। फिर चिपचिपा रालका मलहम (Rasin Ointment) कपड़े की पट्टी पर लगा, उस कपड़ेके बीचमें कांच रक्खें और वह कांच ठीक नेत्र पर आजाय उस तरह नेत्रके चारों ओर कपड़ेकी पट्टीको चिपका देवें। कपड़ा इस तरह चिपक जाना चाहिये कि उस नेत्रके भीतर वायु भी

बिल्कुल न जा सके। यह उपाय यथासमय योग्य रूपसे किया जाय, तो दूसरी आंख बच जाती है।

जिस आँखमें रोग हुआ हो, उस आँखको आध-आध घण्टे पर धोते रहें। इसके लिये बोरिक धावन व्यवहृत होता है। हमारे अनुभवमें एक्रीफ्लेविनका १-२००० से १-१००० का प्रवाही अच्छा कार्य करता है। इस तरह नेत्रको धोते रहनेसे पूय नेत्रसंसर्गमें कम समय तक रहता है। इससे हानि भी कम होती है।

कितनेक नेत्रवैद्य पहले ३ दिन तक बर्फके जलका अथवा शीतल किये हुए बोरिक धावन के फोहे रखनेका अनुरोध करते हैं। अवश्य इस उपचारसे रोगीको कुछ शान्ति मिलती ही है; किन्तु शुक्लमण्डलको शीतलता पहुँचने से वह शिथिल हो जाता है। इससे शुक्लमण्डलकी विक्रिया होने का डर बढ़ जाता है। इसकी अपेक्षा उष्ण बोरिक धावनके फोहे अधिक लाभ पहुँचाते हैं; किन्तु कितनेक रोगी उष्ण धावनको सहन नहीं कर सकते। उनके लिये शीतल फोहे बिना अन्य उपाय नहीं है।

सूचना—(१) शीतल फोहे एक समयमें १५ मिनिटसे अधिक समय तक नहीं रखना चाहिये।

(२) यदि रोगीको अतिशय वेदना हो तो कनपटी पर ५-६ जलौका लगवा देवें। इससे वेदना शमन हो जायगी।

(३) यदि पलक पर शोथ अत्यधिक होनेसे नेत्र धोनेके लिये बिल्कुल न खुल सके तो नेत्रके बाहरके कोणको काट देनेकी शस्त्रक्रिया (Canthoplasty) करनेमें कुछ भी विलम्ब नहीं करना चाहिये। इस शस्त्रक्रियासे आँख अच्छी तरह धो सकते हैं। इतना ही नहीं, शुक्लमण्डलपर शोथमय पलकका जो हानिकर दबाव था, वह भी कम हो जाता है।

(४) कभी आँख सुजाकके हेतु से बन्द हो जाती है। भीतर पूय दब जाता है। फिर पलक खोलते ही दूर तक पिचकारीके समान छटकता है। अतः पूय अपनी आँखोंमें या शरीर पर न पड़ जाय, यह परिचारक या परिचारिकाको सम्हालना चाहिये।

नेत्रमें डालने की औषध के सम्बन्धमें नेत्रवैद्योंमें दो मत हैं। एक समूह प्रारम्भ में ही पलक को उलट कर सिल्वर नाइट्रेट (१० ग्रेन १ औंस जल में) फुरेरी से लगाते हैं। यदि पलक न उलट सके तो आर्जिरोल ३० प्रतिशतके प्रवाहीके बूंद २-२ घण्टे पर डालते हैं। दूसरा समूह वर्त्तमानमें विशेष प्रचलित हुई औषध-सल्फोनेमाइड पर अधिक विश्वास रखता है। ये वैद्य नेत्रको धो देने पर सल्फापाइरीडिन या सल्फाथियोझोल

का चूर्ण नेत्रमें छिड़कते हैं। इस उपचारसे विशेष लाभ होना मानते हैं। हमें तो उत्तम उपाय यही प्रतीत होता है कि, आर्जिरोलकी बूंद या सिल्वर-नाइट्रेटके प्रवाहीको नेत्रमें लगाना और साथ-साथ सल्फोनोमाइड ६ से १५ प्रतिशत का मलहम डालते रहना। इस उपचार से अत्यधिक लाभ होने का हमें अनुभव मिला है। अन्य कितनेक वैद्योंको मक्युरोक्रोम २ से ५ प्रतिशत के प्रवाहीकी बूंद दिन में ५-६ बार डालनेसे विशेष लाभ होने का अनुभव मिला है।

उक्त स्थानिक उपचारोंके अतिरिक्त उदरसेवन की औषधियाँ और अन्तःक्षेपण अत्यधिक सहायता पहुँचाते हैं। उदरमें सेवनार्थ वर्त्तमानमें सल्फाथियोझोल की टिकियाँ उत्तम हैं। रोगकी प्रबलताके अनुसार ६ से १२ टिकियाँ प्रतिदिन देवें। १ से २ टिकिया ४-४ घण्टेके अन्तर पर जलके साथ दी जाती हैं। अन्तःक्षेपणार्थ सल्फाथियोझोलका ही उपयोग हो सकता है। एक एम्पूल दिनमें १ से २ बार देवें। इसके अतिरिक्त दुग्धके इञ्जेक्शन इस रोगमें देवें, यह भी आशीर्वादके समान उपयोगी हैं। ८ से १० सी. सी. का अन्तःक्षेपण पहले दिन देवें। यदि अधिक ज्वर न आ जाय तो दूसरे या तीसरे दिन फिर दूसरी बार अन्तःक्षेपण करें। इस तरह रोग शमन होने तक ६ से ८ इञ्जेक्शन देना चाहिये। प्रायः पहले इञ्जेक्शन से ही अच्छा लाभ पहुँचता है। यदि ४ इञ्जेक्शन से लाभ प्रतीत न हो तो उसे छोड़ देवें और टाइफॉइड वेक्सिनका इञ्जेक्शन प्रारम्भ करें। यह इञ्जेक्शन कैसे देना और कितने परिमाण में देना, इसका वर्णन चिकित्सा प्रकरण में पहले किया गया है।

सूचना—(१) यदि शुक्लमण्डलमें व्रण प्रतीत हो, तो नेत्रोंको खोलने में सम्हाल रखनी चाहिये। यदि नेत्रपर किञ्चित् अधिक दबाव होगा, तो गहरा व्रण फूटकर नेत्र चला जायगा। उस तरह आंखको धोनेके लिये भी पिचकारीका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) रोगबल कम होने लगे और आंख अच्छी तरह सुधरी हुई भासे, तब जो उपचार चलता हो, उसे कम कर देना चाहिये। सल्फाथियोझोल ६ से १२ टिकिया दी जाती हों, तो उस स्थान पर ३-४ कर देनी चाहिये। आर्जिरोलकी बूँद प्रत्येक २-२ घण्टे पर डाली जाती हों, तो ४-४ घण्टेपर डालें। सिल्वर नाइट्रेटका प्रवाही रोज लगाते हों, तो १ दिन छोड़कर लगाते रहें। दूधके इञ्जेक्शनकी आवश्यकता न हो तो उसे बन्द करें।

(३) शुक्लमण्डल क्षत और तारामण्डल प्रदाह प्रतीत हो तो उनका उपचार उन रोगोंकी चिकित्सामें लिखे अनुसार करें।

८. कण्ठरोहिणीजन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(Diphtheritic Conjunctivitis)

यह एक भयंकर व्याधि है। कितनीक बार नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह इतना अधिक होता है कि, २४ घण्टेके भीतर आंख चली जाती है। यह रोग विशेषतः ८–१० वर्षकी अवस्था वाले बालकोंको होता है और दोनों आँखोंमें एक ही समयपर होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगीके नेत्रके भीतर अत्यन्त वेदना होती है; और इस हेतुसे वह बेचैन हो जाता है। इस रोगका प्रारम्भ अकस्मात् होता है। रात्रिको सोनेके समय नेत्र निरोगी होते हैं और सुबह उठनेपर दोनों आँख सूजी हुई और लाल हुई भासती हैं। पलक कठिन होकर बहुत सूज जाते हैं। उनपर हाथ लगानेसे वेदना होती है। यदि नेत्र खुल सकते हैं तो भीतरका भाग सफेद मैले रंगकी कृत्रिम कलासे आच्छादित दिखता है, यदि इस पर्त्तको खोलनेका प्रयत्न करे तो वह अति कष्टपूर्वक खुलती है और उसके नीचेका हिस्सा ऐसे ही मलिन वर्णका दृष्टिगोचर होता है। कभी-कभी गोलकपरका श्लेष्मावरण भी कृत्रिम कलासे ढका हुआ भासता है। कितनीक बार नेत्रवैद्यको शंका हो जाती है कि, नेत्रमें चूना तो नहीं गिर गया! कारण, चूना गिरनेपर आंखकी जैसी स्थिति होती है, वैसी इस रोगमें भासती है। यह पर्त्त यथार्थमें नूतन कला नहीं है; किन्तु नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह के हेतुसे जो स्राव उत्पन्न होता है, वही जमकर कृत्रिम आच्छादन बन जाता है। इस क्रियाके हेतुसे निम्नस्थ रक्तवाहिनियाँ इतने तक संकुचित हो जाती हैं कि, उस भागको बिल्कुल पोषण नहीं मिलता। इस हेतुसे नेत्र-श्लेष्मावरणका निम्न अंश बिल्कुल सड़ जाता है। रोगीको ज्वर आजाता है। कानके आगेकी और कण्ठमें रही हुई रसग्रन्थियाँ सूज जाती हैं और उनमें वेदना होती है। ८ से १० दिनमें रोगका बल कुछ कम होता है। फिर नेत्रमें से गाढ़े पीले रंगका पूय निकलने लगता है।

रोगका आक्रमण प्रबल होनेपर कितनेक समय बालक निर्बल हो जाता है और उसके हृदयपर इतनी हानि पहुँच जाती है कि, इसी हेतुसे उसकी मृत्यु होजाती है। यदि ऐसा न हो, तो शनैः-शनैः नेत्रकी स्थिति सुधरने लगती है, पूय कम होता है, कृत्रिम आच्छादन शनैः-शनैः अदृश्य होजाता है। फिर वह निकल जानेपर नेत्रका गोलक नष्ट हो जाता है।

यदि नेत्र बच जाय तो परवाल, नेत्रद्वारका छोटा होना, गोलकका पलकके साथ चिपकना आदि विकृति शेष रह जाती है।

कारण—इस रोगकी संप्राप्ति कण्ठरोहिणी जन्य कीटाणुओं (Klebs-Loffler's bacilli-Diphtheric bacilli) द्वारा होती है। जब कण्ठ-रोहिणीके रोगने अति व्यापक रूप धारण कर लिया हो, तब यह नेत्ररोग प्रतीत होता है। यथार्थमें कण्ठरोहिणीका रोग भारतवर्षमें था ही नहीं। यह विशेषतः यूरोपका ही रोग माना जाता है। किन्तु वर्त्तमानमें कितनेक वर्षोंसे इस रोगके बहुसंख्य रोगी बड़े शहरोंके भीतर अवश्य मिल जाते हैं। बम्बई शहरमें जब-जब यह रोग जनपद व्यापी रूप धारण करता है, तब कितनेक बालक इस नेत्रविकारसे भी पीड़ित हो जाते हैं।

रोगविनिर्णय—उपर्युक्त लक्षणों परसे यह रोग सरलतासे विदित हो जाता है। केवल शङ्का इतनी ही रहती है कि, रोग मूलभूत (Primary) है या गौण (लक्षणात्मक या उपद्रवात्मक-Secondary)? इस बातके निर्णयार्थ रोगीके नेत्रमें से मलिन आच्छादनका टुकड़ा लेकर कांचपट्टी पर घिसे और उसमें जो तह प्रतीत हो उसे स्पिरिटकी बत्तीकी ज्वालामें स्थिर करें। फिर उस तहको ग्रामकी रीतिसे रँगें। कारण, इस रोगके कीटाणु ग्राम स्पष्ट हैं। इस तरह ग्राम स्पष्ट अन्य कीटाणु भी मिल जाते हैं। ये कीटाणु यथार्थमें घातक हैं या नहीं, इस बातके निर्णयार्थ उनको उगाना पड़ता है। ये कीटाणु गिनी पिग (Guinea pig) जातिके वराहके शरीरमें प्रवेश कराये जाते हैं। कीटाणु घातक हों, तो उस पशुकी मृत्यु होजाती है।

चिकित्सा।

इस रोगके लिये सर्वोत्तम उपचार वेक्सिन चिकित्सा है। इसे कण्ठ-रोहिणी प्रतिविष (Diphtheria Antitoxin) कहते हैं। इस वेक्सिनका उपयोग बम्बई शहरमें तो नित्यप्रति होता रहता है। यदि रोगके प्रारम्भ-कालमें ही इसका प्रयोग किया जाय तो निःसंदेह सफलता प्राप्त होजाती है। रोग शमन होजाता है और नेत्र भी बच जाते हैं। इस वेक्सिनका पलककी निम्न त्वचामें प्रवेश कराया जाता है। साथ-साथ नेत्रमें भी उसीकी बूँद दिनमें २-३ बार डाली जाती हैं। वेक्सिन २४ घण्टे बाद पुनः दूसरी बार देवें। इस तरह इसका योग्य उपचार करके अनेक रोगियोंके जीवन और नेत्रोंको बचा सकते हैं। इस वेक्सिनके प्रयोगके अतिरिक्त नेत्रके अन्य उपचार अन्य सामान्य नेत्रश्लेष्माकरण प्रदाहके अनुरूप किये जाते हैं।

नेत्रोंको ३-४ बार बोरिक धावनसे धोना, बोरिक धावनके फोहेसे सेक करना, श्वेत कृत्रिम आच्छादन पृथक् होजानेपर २० प्रतिशत आर्जिरोलकी बूँद डालना, नेत्रके अवयव परस्पर न चिपकनेके लिये सल्फोनेमाइड ६ प्रतिशतके मलहमका अंजन करते रहना तथा शुक्लमण्डलको हानि पहुँची हो, तो अगले प्रकरणमें शुक्लमण्डलकी चिकित्सा लिखी जायगी, उस अनुसार उपचार करना, ये सब चिकित्सा इस रोगके लिये उपकारक हैं।

सूचना—यह रोग अति संक्रामक (सांसर्गिक) है। अतः इस रोगसे पीड़ितोंके संसर्गमें अन्य व्यक्ति, जो कोई आवे, उनमें बच्चोंको न आने देना चाहिये। यदि होसके तो मकानके सब मनुष्योंको इस रोगके निरोधक (Antitoxin) औषधका अन्तःक्षेपण कराना चाहिये। इस रोगके आक्रमणसे कइयोंके नेत्रोंकी संयोजनी शक्ति नष्ट होजाती है; किन्तु योग्य उपचार किया जाय, तो वापस आजाती है।

९. शिथिल कृत्रिमकलामय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।

(*Croupous Conjunctivitis*).

यह रोग कितनेक अंशमें कण्ठरोहिणीजन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहके सदृश और कुछ अंशमें विसदृश है। दोनों व्याधियोंमें कृत्रिम आवरण विरचित होता है। दोनोंमें नेत्र शोथमय बनते हैं। दोनों रोग बालकोंमें प्रतीत होते हैं। इतने अंशोंमें दोनों की समानता है। इस रोग जनित प्रदाहमें कलामय आवरण अतिदृढ़ चिपका नहीं रहता। सरलता से पृथक् हो सकता है। खोलने पर नीचे दूसरा श्वेत आवरण नहीं भासता। यह रोग कण्ठरोहिणीके कीटाणुओं से नहीं होता। इस रोगमें शुक्लमण्डलमें विक्रिया नहीं होती। नेत्रको भी हानि नहीं पहुँचती। ये सब चिह्न कण्ठरोहिणीजनित रोगसे विपरीत हैं।

लक्षण—आँख गड़ती है; सरलता से नहीं खुल सकती; तथा अश्रुस्राव होता रहता है।

चिह्न—रोग सौम्य होने पर नेत्रमें लाली, पलकपर न्यूनाधिक शोथ, मृदु शोथके हेतुसे पलक कठोर न होनेसे नेत्र खोलनेमें कष्ट न पहुँचना, पलकको उलटने पर भीतरसे श्वेत रंगका मिथ्या आवरण प्रतीत होना (यह आवरण सरलता से निकल जाता है। निकलने पर नीचे लाल भाग भासता है और कुछ रक्त निकलता है), नेत्रगोलकका श्लेष्मावरण प्रायः आवरणसे युक्त रहना आदि चिह्न दृष्टिगोचर होते हैं।

लगभग एक सप्ताहके बाद सब चिह्नोंका ह्रास होने लगता है और

लगभग दो सप्ताहमें नेत्र बिल्कुल साफ हो जाते हैं। इस रोगमें शुक्ल-मण्डलको किसी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचती। नेत्रका कोई भी भाग दूसरे भागके साथ नहीं चिपक जाता।

यदि रोग प्रबल हो, तो पलकका शोथ अधिक होता है। फिर भी अति कठिन नहीं होता। नेत्रमें लाली अधिक होती है। कभी शुक्लमण्डल में प्रदाह प्रतीत होता है।

इस प्रकारका रोग एक सप्ताह अधिक रहता है।

कारण—इस रोगकी उत्पत्ति मुख्यतः स्ट्रेप्टोकोकस, न्युमोकोकस, गोनोकोकस तथा कोकबीकके कीटाणुओं द्वारा होती है। यह रोग छोटे बच्चोंमें विशेष प्रतीत होता है। स्ट्रेप्टोकोकसके हेतुसे रोग उत्पन्न हुआ हो तो वह अन्य कीटाणुओं की अपेक्षा विशेषतर प्रबल होता है। रोमान्तिका, शीतला और दण्डक ज्वरमें भी यह रोग उपस्थित होता है। इनके अतिरिक्त शोणित ज्वर (Scarlet fever) में स्ट्रेप्टोकोकाई द्वारा इस रोगकी संप्राप्ति होती है (यह ज्वर अभी तक भारतमें नहीं होता) कभी-कभी कितनेक रासायनिक द्रव्य—सिल्वर नाइट्रेट, चिरमीका सत्व, अमोनिया, आयोडिन, चूना आदि भी इस रोगकी उत्पत्तिके कारण बन जाते हैं।

पार्थक्यसूचक रोगविनिर्णय—इस रोगको विशेषतः कण्ठरोहिणी जन्य प्रदाह और सुजाकजन्य प्रदाहसे पृथक् करनेकी आवश्यकता रहती है। यद्यपि उपरोक्त चिह्नोंसे इस रोगको पृथक् जान सकते हैं, तथापि भावी आपत्तिसे बचने के लिये पहले से सम्हालना चाहिये। कभी-कभी रोगविष अति प्रबल होनेसे या बालक की रोगनिरोधक शक्ति निर्बल होने से रोग निश्चित होने और उपचार योग्य होने पर भी रोग गम्भीर बन जाता है और कभी रोगीकी मृत्यु हो जाती है। इस हेतु से आवरणका निर्णय अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा और अन्य जन्तुशास्त्रज्ञ द्वारा करा लेना चाहिये।

चिकित्सा।

इस रोगमें निवाये बोरिक एसिड के धावनका सेक अच्छा लाभ पहुँचाता है; वेक्सिनकी आवश्यकता नहीं रहती। हो सके तब तक सिल्वर नाइट्रेट जैसी औषधको व्यवहारमें नहीं लाना चाहिये।

आर्जिरोल ५ प्रतिशतके प्रवाहीकी बूंद डालनेसे नेत्र साफ रहते हैं। नेत्रोंको दिनमें ३-४ बार बोरिक धावन या लवण जलसे धोते रहना चाहिये। सल्फोनेमाइडके ६% का मलहम डालनेसे भी लाभ पहुँचता है।

१०. पटिकाक्षतमय अभिष्यन्द।

(Phlyctenular Conjunctivitis)

इस रोग (चित्र नं० ५५ देखें) को नेत्र श्लेष्मावरणका रोग गिना गया है। यथार्थमें जितने अंशमें नेत्रश्लेष्मावरण व्याधिग्रस्त होता है, उतने ही अंशमें या उससे भी अधिकतर शुक्लमण्डल प्रभावित होता है। अतः इस रोगको नेत्रश्लेष्मावरण और शुक्लमण्डल की संयुक्त व्याधि कहना, उचित माना जायगा।

रोगका मुख्य स्वभाव—यह रोग प्रायः ८–१० वर्षके बालकोंको होता है। ऐसा अंग्रेजी ग्रन्थकारोंका लेख है। हमारा अनुभव इससे पृथक् है। २५–३० वर्षकी आयुवाले व्यक्तियोंमें भी हम इसे बार-बार देखते रहते हैं। इतना सत्य है कि ८–१० वर्षकी आयुवालोंको यह अधिक होता है; किन्तु इसपरसे यह निर्णीत नहीं होता कि, इनके अतिरिक्त अन्योंको नहीं होता। यह रोग विशेषतः निर्धनोंमें दृष्टिगोचर होता है। इस विश्वयुद्धके परिणाममें भारतवर्षके भीतर योग्य पोषक शुद्ध भोजनकी न्यूनताके हेतुसे यह रोग अत्यधिक परिमाणमें प्रतीत होता है। यह हमें प्रतिदिन अनुभवमें आरहा है।

कितनेक रोगियोंमें, जिनको यह रोग हुआ हो, उनके गलेमें कण्ठ-मालके सदृश गांठें भी होती हैं। इस परसे अनेक नेत्रवैद्योंकी मान्यता थी कि, इस रोगका सम्बन्ध क्षयके साथ है; किन्तु वर्त्तमान समयने निर्णय कर दिया है कि, इस रोगका मुख्य कारण भोजनमें मिलनेवाले पोषक तत्त्व–जीवन सत्व A और D की न्यूनता है। इसी हेतुसे गरीबोंमें इसका प्रसार अधिक होता है।

इस रोगमें नेत्रके शुक्लमण्डलके किनारेपर नेत्रश्लेष्मावरणमें एक छोटी पिटिका होती है। वह नीचे चौड़ी और ऊपर शिखरमें नुकीली होती है। एक दो दिनमें उसका शिखर भाग घिस जाता है और वहाँ सूक्ष्म क्षत उपस्थित होता है। दो दिन जानेपर वह पिटिका अदृश्य होजाती है और उसके स्थानमें शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरणके संधिप्रदेशमें एक क्षत भासता है। उसके पाससे रक्तवाहिनियां प्रारम्भ होकर नेत्रश्लेष्मावरणके बाहरके भागकी ओर फैलती जाती हैं। इससे एक त्रिकोणाकार लाल दाग होजाता है। उस त्रिकोणका नोकदार भाग क्षतके पास और चौड़ा भाग बहुधा नेत्रकोणकी ओर रहता है। इसकी लालीके अतिरिक्त नेत्रश्लेष्मावरण के अन्य किसी भी भागमें लाली नहीं भासती। और दो दिन जानेपर थोड़ा गहरा क्षत ही प्रतीत होता है। पिटिकाके अवशेष रूपसे जो उभड़ा भाग

भासता था, वह सपाट बन जाता है। यदि ये क्षत एकसे अधिक हों, तो वे छोटे होते हैं। एक ही हो तो बड़ा होता है। जब अधिक हों तब शुक्लमण्डल के किनारेके चारों ओर एक दूसरेसे कुछ-कुछ दूरीपर होते हैं। कितनीक बार क दो क्षत शुक्लमण्डलके किनारेके पास और अन्य एक या अधिक शुक्ल-मण्डलके ऊपरमें ही होते हैं। शुक्लमण्डलके ऊपर होनेवाले क्षत भी उसी तरह उत्पन्न होते हैं। शुक्लमण्डलकी दूसरी बोमेन वृत्तिके नीचे प्रारम्भमें एक पिटिका होती है। वह फिर ऊपर आती है और वहाँ क्षत होजाता है।

प्रकार—इस रोगके स्थान और संख्याभेदसे ३ प्रकार हैं। १. शुक्ल-मण्डलके किनारेके पास एक ही क्षत; २. शुक्लमण्डलके किनारेके चारों ओर एकाधिक क्षत; ३. शुक्लमण्डलके किनारेपर एक या एकाधिक क्षत तथा शुक्लमण्डलपर अन्य क्षत।

लक्षण और चिह्न—इस रोगके मुख्य लक्षण ४ हैं। १. प्रकाशकी असहनशीलता; आँख खोलनेमें कष्ट; ३. आँख बराबर गड़ा कराना; ४. नेत्र मेंसे पतला जल जैसा स्राव होना।

नेत्र खोलकर परीक्षा करने पर शुक्लमण्डलके किनारे के पास एक या अधिक फूटी हुई अलाई जैसी फुन्सियाँ भासती हैं। ये फुन्सियाँ फूटने से वहाँ पर क्षत की प्राप्ति होती है। इन फुन्सियोंके स्थान से त्रिकोणाकार लाल दाग प्रारम्भ होता है। इस त्रिकोणका शिखर पिटिका की ओर तथा चौड़ा भाग बाहरकी ओर होता है। इनके अतिरिक्त स्थानमें लाली नहीं होती। किन्तु तारामण्डलका प्रदाह होने लगा हो, तो शुक्लमण्डलके चारों ओर लाली अच्छी तरह आ जाती है। एवं शुक्लमण्डल पर क्षत सदृश एक या अनेक छोटे सफेद दाग प्रतीत होते हैं। यह स्थिति कितनेक दिनों तक रहती है। अनेक बार ये क्षत फूटते हैं। फिर उसमेंसे तारामण्डलका पर्दा बाहर निकल आता है। बालक यदि कृश और निर्बल हो, तो सिरको नीचे झुका देता है। ऐसा करने पर उसके नेत्रपर प्रकाश कम गिरता है। रोग प्रबल हो, तो बालक अन्धेरे कमरे में अपना सिर सिरहाने के ऊपर औंधा रखकर पड़ा रहता है। इस तरह नेत्र खोलने में भी कभी-कभी इतनी कठिनाई होती है कि बच्चे को दो व्यक्ति पकड़ रक्खें तब अति परिश्रमसे नेत्र खुलता है। सिर पर शीतल जल डालने या नेत्रमें चेतनाहर औषधके बूंद डालने से कष्ट कम होता है।

परीक्षा करने पर कण्ठ या बगलमें कण्ठमाल जैसी गाँठें प्रतीत होती हैं। कितनेक बालकोंकी पलकधारा एवं नासापुट स्फीत हो जाते हैं। इस

हेतुसे कितनेक नेत्रवैद्य इस इस रोगको व्युची विकारज (Eczematous) नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह कहते थे।

कारण—इस रोगका कारण ऊपर कहे अनुसार पोषक तत्त्वकी न्यूनता या अभावसे उत्पन्न शारीरिक निर्बलता है। खुली वायुका अभाव और व्यायामकी न्यूनता आदि कारण भी सहायक हैं। रोमान्तिका, शीतला, मोतिया आदि रोग दूर हो जाने पर या इन रोगोंका बल शिथिल होने पर अनेक रोगियोंमें यह विकार उपस्थित होता है। फिर योग्य उपचार यथा समय न किया जाय तो उससे नेत्रको हानि पहुँचती है।

भूतकालमें इस रोगके साथ क्षय रोगका सम्बन्ध घनिष्ठ माना जाता था। कितनेक नेत्रवैद्य इस रोगको एक प्रकारका नेत्रका क्षय ही मानते थे, यह कल्पना अब दूर हो गई है। इस रोगके क्षत मेंसे क्षय-कीटाणु नहीं मिलते। किसी विशेष प्रकारके कीटाणु इस रोगका कारण रूप हों, ऐसी सिद्धि भी नहीं हुई। भिन्न-भिन्न जन्तुशास्त्रियोंको इस रोगके द्रव मेंसे मोराक्स एक्सनफेल्डके सरल कीटाणु, स्टेफिलोकोकस, स्ट्रेप्टोकोकस आदि मिले हैं। किन्तु वे कीटाणु इस रोगके उत्पादक हों, ऐसा सिद्ध नहीं हुआ।

क्रम—यह रोग स्वयमेव सद्भाग्यसे ही दूर होता है। विशेषतः दिनों तक चलता है। फिर योग्य उपचार होने पर दमन होता है, पुनः कुछ दिनोंमें पुनराक्रमण करता है। पुनः-पुनः आक्रमण करना, यह इस रोगका विशेष लक्षण है। इस तरह महिनों तक आक्रमण करता रहता है। इससे रोगी क्लान्त हो जाता है। कभी-कभी रोग अधिक दिनों तक रहने से शुक्लमण्डल के क्षत गहरे हो जायँ, तो नेत्रको हानि भी पहुँचती है। इस रोगके हेतुसे रोगीके नेत्रगोलक को निकाल देनेकी उपस्थिति हुई हो, ऐसे कितनेक रोगी हमारे अनुभव में आये हैं। तात्पर्य यह है कि, सरलता से शमन हो जाय, तो यह रोग सामान्य है और गम्भीर रूप धारण कर लेवे तो नेत्र जाने तक का परिणाम ला देता है।

यदि रोग लम्बे समय तक रह जाता है और नेत्र मेंसे अश्रुस्राव होता रहता है, तो पलकधारा, नेत्रकोण तथा गालकी त्वचाका पाक होना, निम्नपलक का बाहर मुड़ जाना आदि न्यूनता अवशेष रह जाती हैं।

चिकित्सा—इस रोगके लिये उपचारके दो प्रकार हैं। १. रोगीकी शारीरिक शक्ति को सुधारना; २. नेत्रकी स्थानिक चिकित्सा करना।

शारीरिक शक्तिवृद्धि के लिये—कॉडलिवर ऑइल, हेलीबट ऑइल, शार्क ऑइल, ओस्टेलीन, एडेक्सोलीन और उसके समान अन्य औषधियाँ—

विटामिन D युक्त औषधियाँ अथवा सिरप फेरी आयोडाइड, सिरप फेरी-फोस्फेट्स, केलसियम लेक्टेट, केलसियम ग्लूकोनेट, आदि दवाओं मेंसे किसी एक का सेवन करावें, तथा केलसियम ग्लूकोनेटके अन्तःक्षेपण करें। अथवा आयुर्वेदिक औषधियाँ—सुवर्णमालिनी वसंत, च्यवनप्रासावलेह, वंशलोचन आदि का सेवन कराने से शारीरिक शक्ति बढ़ जाती है।

जितना आधार पौष्टिक औषध पर है, उतना ही या उससे भी अधिक भोजन पर है। रोगीको अच्छा सात्विक भोजन देना चाहिये। दूध, मक्खन, ताजे फल, विशेषतः केले, पक्के मधुर आम, ये सब हितकारक हैं। अण्डे भी लाभदायक हैं। खुली वायुमें घूमना चाहिये; यदि प्रकाश सहन न हो तो काले चश्मे पहिन कर बाहर खुली वायु में घूमें। प्रति दिन शीतल या निवाये जलमे स्नान करें। यदि नेत्र न खुलते हों तो रोज शीतल जल के नलके नीचे थोड़े समय तक बैठने से नेत्र सरलता से खुलते हैं।

यूरोप के कितनेक प्रान्तोंमें ट्यूबरक्युलिनके अन्तःक्षेपण कराते हैं। भारत में भी अच्छा लाभ पहुँचता है।

स्थानिक उपचार—नेत्रको बोरिक धावन से धोकर थोड़ा सा केलोमल आँखमें डालें। फिर हलके हाथसे पलकको बन्दकर नेत्र पर मर्दन करें। यदि केलोमल सहन न हो सके तो केलोमलके मलहम (१ औंस वेसेलिन में ५० ग्रेन केलोमल) का अंजन करें। अथवा पीला मलहम यलो ओक्साइड ऑफ मर्क्युरी आइण्टमेण्ट) १-२ प्रतिशत वाला अञ्जन करने से भी निश्चित लाभ होता है।

सूचना—रोगीको आयोडीनका सेवन कराया जाता हो, तो केलोमल का अञ्जन नहीं कराना चाहिये। कारण, आयोडीन और केलोमल का संयोग होकर नेत्रमें आयोडाइड ऑफ मर्क्युरी बन जाता है। यह रोगीके लिये असह्य सा होता है।

यदि प्रकाश सहन न होता हो तो एक बूंद एट्रोपिनके प्रवाहीका डालें। हमें कितनेक ऐसे रोगियोंका अनुभव हुआ है कि जब तक उनकी बढ़ी हुई गल ग्रन्थियाँ (Tonsils) को काटकर दूर न किया जाय, तब तक चाहे जितने उपचार किये जायँ तो भी यह पूर्णांशमें शमन नहीं होता। बार-बार आक्रमण करता रहता है। अतः बढ़ी हुई रोगग्रस्त गलग्रन्थियोंका उपचार लक्ष्यपूर्वक प्रारंभसे ही करना चाहिये।

यदि निम्न पलककी त्वचाका शोथ हुआ हो या पक गई हो, तो झिंक ऑक्साइड (जसद पुष्प) और इक्थियोलका मलहम लगाना चाहिये।

यदि शुक्लमण्डलमें गहरे घाव होगये हों, तो उसके उपचार उसके प्रकरणमें आगे लिखे जायँगे, उसके अनुसार करना चाहिये।

हमें अनुभव मिला है कि, जब यह पिटिका क्षत किसी भी उपचारसे दूर नहीं होता, तब नेत्रगोलकमें नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे ग्वायकोल केकोडीलेट (Guaiacol Cacodylate) १ प्रतिशतके अन्तःक्षेपण २-२ दिनके अन्तर पर २-३ बार करनेपर रोग शमन होजाता है।

११. नेत्रश्लेष्मावरणकी शेष व्याधियाँ।

नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाहके मुख्य विकारोंमें दो रोगोंका वर्णन शेष रहा है। १. रोहे (Trachoma) और २. वसंतऋतुमें होनेवाला नेत्रश्लेष्मावरण-प्रसेक (Spring Catarrh)। इन दो में से रोहा भारतवर्षमें अति व्यापक होगया है। इससे प्रतिवर्ष लाखों नेत्र खराब होते हैं। इतना ही नहीं, प्रत्येक नेत्र-चिकित्सालयमें इस रोगसे पीड़ित बहुसंख्य रोगी रोज आते रहते हैं। अतः इस रोगके लिये एक स्वतंत्र प्रकरण रखना योग्य माना है। दूसरा रोग बसंत ऋतुमें नेत्रश्लेष्मावरण प्रसेक भी कितनेक अंशमें रोहेसे मिलता-जुलता है। अतः इसका वर्णन भी उसी प्रकरण में दिया जायगा।

इनके अतिरिक्त नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह जनित कुछ सामान्य रोग शेष रहे हैं कि जिनके रोगी क्वचित् ही प्रतीत होते हैं। एवं उनमेंसे कितनेक रोगोंका निदान विशेषज्ञ बिना नहीं हो सकता। अतः उन रोगोंके नाम और संक्षिप्त वर्णन देते हैं।

अ. पेरीनौडका नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह।

(Perinaud's Conjunctivitis)

इस प्रकारके विकारमें नेत्रके भीतर श्लेष्मावरणके ऊपर लाल और पीले दाने हो जाते हैं। पलक सूज जाते हैं। फिर वे कठिन होते हैं। पलकमें छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ उत्पन्न होती हैं। यह रोग बहुधा प्रारम्भमें एक आँखमें होता है। फिर दूसरी आँखमें हो जाता है। कान, गला और शरीरके अन्य भागोंकी रसग्रन्थियोंमें शोथ होकर पक जाती हैं। रोग ६-८ मास तक चलकर फिर मिट जाता है। इस रोगकी उत्पत्ति सड़े हुए पदार्थोंके स्पर्शसे या रोगी पशुओंके स्पर्शसे होती है।

उपचार—कोई विशेष नहीं है। कीटाणुनाशक प्रवाहीसे धोवें तथा सिल्वर नाइट्रेटके प्रवाहीके बूँद डालें या नीलाथोथा लगाने पर रोग

प्रायः दूर हो जाता है। यदि पलकमें दाने अति होगये हों उनको काटकर दूर करना चाहिये या बिजलीसे जला देना चाहिये।

आ. मस्तिष्कावरणप्रदाहजन्य नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह।

(*Meningococcus Conjunctivitis*)

रोमान्तिका, शीतला, मोतिया, नूरबीबी (जर्मन रोमान्तिका) आदि संक्रामक ज्वरोंमें उत्पन्न नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह और नेत्रमें चूनेके सदृश पदार्थोंसे कणमय प्रदाह, इन रोगोंके रोगी अति क्वचित् प्रतीत होते हैं। अतः यहाँ विस्तार नहीं किया।

इ. नेत्रश्लेष्मावरणका कक्ष।

(*Herps of Conjunctiva*)

इस रोगमें शुक्लमण्डलके किनारे और नेत्रके दोनों कोन के बीच में अवस्थित नेत्रगोलकके नेत्रश्लेष्मावरण पर पिटिकाएँ होती हैं। उससे नेत्र में दाह, अश्रुस्राव आदि लक्षण होते हैं।

ई. नेत्रश्लेष्मावरणका उपदंश।

(*Syphilis of Conjunctiva*)

जिस तरह जननेन्द्रिय पर उपदंशज क्षत होता है, उस तरह पलकके भीतर या नेत्रगोलकके ऊपरके श्लेष्मावरणमें भी क्षत हो जाता है। उसमें से उपदंशके कीटाणु मिलते हैं।

उ. नेत्रश्लेष्मावरणका क्षय।

(*Tuberculosis of Conjunctiva*)

यह रोग पलकके भीतरके श्लेष्मावरणमें होता है। यह रोग कभी स्थानिक मुख्य रोग रूपसे होता है एवं देहके अन्य भागमें उपस्थित क्षयके परिणाममें उपद्रवरूपसे भी उपस्थित होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगीको विशेषतः पलकमें गड़ा करता है और जलन भी होती है; अश्रुस्राव होता रहता है; पलकके भीतरके हिस्सेमें एक या अधिक क्षत होते हैं। क्षत पिंगल-रक्त मांस से आच्छादित, और तल-भागमें पीला लाल होता है। कानके पासकी रसग्रन्थि सूजकर बड़ी होजाती है। क्वचित् वह पकती है। फिर कण्ठकी रसग्रन्थियां भी बड़ी होजाती हैं। पलकके क्षत बड़े होकर गहरे उतरते जाते हैं। कितनीक बार समग्र पलकमें एक ही क्षत फैल जाता है। यह रोग प्रायः एक ही नेत्रमें होता है। इसकी

प्राप्ति विशेषतः युवावस्थामें होती है। ऊपरकी अपेक्षा नीचेका पलक प्रभावित होनेकी संभावना अधिक रहती है। यह क्षत या ये क्षत दीर्घकाल तक रहते हैं; मिट जाते हैं और पुनः उपस्थित होते हैं। इस तरह बार-बार होता रहता है।

रोगविनिर्णय—इस रोगका निर्णय संदेहरहित करने के लिये क्षतपर की त्वचाका टुकड़ा काट वीचपट्टीपर रख अच्छी तरह घिस उसपर कार्बोल फुक्सिनका रंग चढ़ावें। यदि क्षय कीटाणु प्रतीत हों, तो रोग निर्णित होता है।

उपचार—हो सके उतना क्षत भाग शस्त्र या धारावाले चिमचसे निकाल डालें। फिर एक शलाकाको तपा लालकर उसे जला देवें। या लैक्टिक एसिड और जलको समभाग मिला प्रवाही बनाकर लगावें। इस तरह आयडोफार्म चूर्ण या मलहम भी अच्छा लाभ पहुँचाता है। ट्युबर-क्युलिन के इञ्जेक्शनसे भी रोग शमन होजाता है।

सूचना—रोगीकी शारीरिक स्थिति सुधारनेके लिये पौष्टिक भोजन और क्षय रोगमें प्रयोजित औषधियोंका सेवन कराना चाहिये।

ऊ. नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रक्तस्राव।

(Subconjunctival Ecchymosis)

(चित्र नं० ५७ देखें) इस रोगकी सम्प्राप्ति बहुधा अकस्मात् होती है। रोगी रात्रिको स्वस्थ नेत्रसे सोया हो और सुबह उठे तब नेत्रगोलक लाल-लाल भासता है। इस देखाव से सामान्यतः रोगीको भय लगता है और दुर्भाग्यवश किसी अज्ञानी वैद्य या हकीमके पास चला जाता है, तो उसके भयमें और वृद्धि होजाती है।

चिह्न—नेत्रगोलकके सफेद भागमें छोटा या बड़ा, एक या अधिक कृष्णाभ-रक्त दाग प्रतीत होता है। जब वह दाग उत्पन्न होता है, तब विशेष लाल होता है। फिर समय जानेके साथ कालापन बढ़ता जाता है। २-३ या ८ दिन तक उस तरह रहकर फिर उसमेंसे रंग कम होने लगता है। रोग के प्रारम्भसे १५-२० दिनमें नेत्र लगभग स्वस्थ होजाते हैं।

परिणाम—इस रोगसे नेत्रको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। यह रोग २-३ सप्ताहके भीतर प्रशमन होजाता है। कभी नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे और नेत्र बाह्यपटलके ऊपर हल्के काले रंगके दाग रह जाते हैं।

कारण—यह रोग अनेक बार किसी बाह्य कारण बिना होजाता है।

काली खांसीवाले बच्चोंमें बहुत समय यह प्रतीत होता है। कारण, खांसीके वेगसे फूली हुई कैशिकाएं कभी टूट जाती हैं। फिर नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रक्तस्राव होजाता है।

इसके अतिरिक्त नेत्रपर पत्थर आदिसे चोट लगना, हृद्रोग, वेगवती खांसी, वृक्करोग, मधुमेह, आक्षेप और वमन तथा करोटि प्रदेशके भागके टूटनेपर भी इस रोगकी प्राप्ति होती है। किन्तु इसमें अन्य गम्भीर चिह्न भी अधिक होते हैं। इस रोगमें बहुधा धमनियोंकी दीवार निर्बल होजाती है और उनमें रक्तसंग्रह अधिक होता है। इससे थोड़ा आघात पहुँचनेपर रक्तस्राव होता है।

उपचार—प्रायः इस रोग पर उपचार की आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु "किसी औषध के उपयोग की आवश्यकता नहीं है" ऐसा सुनकर श्रद्धापूर्वक शान्ति धारण करने वाले रोगी अति कम होते हैं। इससे स्पूगरलेड (शीशे की शर्करा) का जल, बोरिक धावन, शीतल जल, गुलाब जल या बर्फ लगाने का बाह्य उपचार करें। जिंक सल्फेट के प्रवाही के बूंद डालें और रोगी को आराम करने को कहें। एवं काली खाँसी आदि मूल कारण की योग्य चिकित्सा कराने की सूचना करें।

ए. नेत्रश्लेष्मावरणमें अर्श आदि।

(*New growths of the Conjunctiva*)

जिस तरह देहके अन्य भागों में अर्श, मेदग्रन्थि, रसग्रन्थि, जतुमणि (Naevus) आदि होते हैं, उस तरह नेत्रश्लेष्मावरणमें भी अनेक बार देखने में आते हैं। इन अर्श, रसौली आदिसे प्रतिकूलता रूप मुख्य चिह्नके अतिरिक्त विशेष कोई हानि नहीं होती। वे बार-बार नेत्रमें गड़ा करते हैं। इससे अश्रुस्राव, आँख खोलनेमें कठिनता आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। इन सब रोगोंके लिए केवल एक ही उपचार है कि उन रसोलियाँ आदि को योग्य शस्त्रक्रिया से निकाल डालें। कितनेक मस्से बिना शस्त्रचिकित्सा, केवल घोड़ेका पतला बाल बाँधने से भी गिर जाते हैं।

शीतलाजनित नेत्रश्लेष्मावरण और शुक्लमण्डलके रोग।

दीर्घकालसे भारतीय समाजमें ऐसा विचार प्रचलित है कि, शीतला के हेतु से उत्पन्न या उसके उपद्रव रूप से उत्पन्न नेत्र रोगों पर औषधप्रयोग व्यर्थ है। इतना ही नहीं, बल्कि उपचार करने पर हानि पहुँचती है। यह विचार अज्ञान पूर्ण और दुःखवर्द्धक है। जिन-जिन ग्रामों

में जिन-जिन बालकोंको मसूरिका रोग हो गया हो, उन-उन ग्रामोंमें दृष्टि चली गई हो, ऐसे बच्चे, स्त्रियाँ और बड़ी आयु वाले पुरुषों की बड़ी संख्या प्रतीत होती है। हमें दृढ़ विश्वास है कि, यदि योग्य समय पर इन उपद्रवों का योग्य उपचार किया होता हो इनमें से अधिकांशों की दृष्टि नष्ट नहीं होती। जब तक अज्ञान और संदेहका साम्राज्य भारत में रहेगा, तब तक ऐसी दयाजनक विकृतियोंका दूर होना कठिन पड़ेगा।

देहके अन्य भागोंमें शीतला के दानोंका प्रबल आक्रमण हो, उस पर नेत्रके रोगका आधार नहीं है। देह के अन्य भागोंमें शीतलाकी पिड़िकाएँ पास-पास या सम्मिलित हों और रोग गम्भीर बन गया हो, तो भी नेत्र बच सकता है। इसके विपरीत जब देह पर शीतला की पिड़िकाएँ दूर-दूर हों और रोग बल अधिक न हो फिर भी कभी नेत्रको हानि पहुँच जाती है। इस शीतला रोगमें नेत्रके भीतर दो प्रकार के भिन्न-भिन्न विकार होते हैं। १. नेत्रश्लेष्मावरण या शुक्लमण्डल पर होने वाली पिड़िका; और २. शीतला रोगके उपद्रव रूप शुक्लमण्डल का क्षत।

१. शीतला पिड़िका—जिस तरह देह के अन्य भागों पर शीतलाके दाने निकलते हैं, उसी तरह नेत्रश्लेष्मावरण और शुक्लमण्डल पर दाने निकलते हैं। देह पर दाने जब समीप-समीप और सम्मिलित हों, तब नेत्र में दाने होने की संभावना अधिक रहती है, ऐसी हमारी मान्यता है। हमने अनुभव किया है उसके अनुसार शीतलाके सम्मिलित पिड़िका प्रकार (Confluent form) में भी नेत्र बिल्कुल बच जाता है और इसके विपरीत कभी माता पृथक्-पृथक् पिड़िका प्रकार (Discrete form) में भी नेत्र प्रभावित हो जाता है। नेत्रगत दानेका स्वरूप पहले छोटी फुन्सी (Vesicle) जैसा होता है। किन्तु उस पर पलक के घर्षण के हेतु से वह फूट जाती है और शीघ्र क्षत बन जाता है। फिर नेत्र नहीं खुल सकता; अति अश्रुस्राव होता रहता है तथा प्रकाश सहन नहीं होता। यदि शारीरिक पीड़ा अधिक हो तो रोगी का ध्यान नेत्रकी ओर नहीं खिंचता। शारीरिक पीड़ा कम हो तो प्रायः रोगी नेत्रकी कुछ वेदना की पुकार करता है। केवल श्लेष्मावरण पर ही दाना हो तो वेदना कम होती है, और शुक्लमण्डल पर क्षत हो तो पीड़ा अधिक होती है। नेत्रश्लेष्मावरणके क्षत शनैः-शनैः भर जाते हैं और उससे दृष्टि को कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। यह क्षत शुक्लमण्डलके गर्भ भाग का भेदन कर पीछे रही हुई डेसमटकी वृत्ति तक पहुँच जाता है। फिर शनैः-शनैः वह वृत्ति गल जाती है और शुक्ल-मण्डल में छिद्र हो जाता है। उसमें जल रूप रस निकल जाता है; तथा

उस छिद्र में तारामण्डलका पर्दा फँस जाता है। लोगोंकी अज्ञानता के हेतु से शीतलामें औषधोपचार न हो सके, ऐसे दुराग्रह के हेतु से वैद्य को ऊपर की अवस्था तक पहुँची हुई आँख प्रतीत होती है। दुर्भाग्यवश जब तक उपचार हो सके तब तक का समय तो सम्बन्धी वर्गकी अज्ञानता के हेतु से ही निकल जाता है। फिर दृष्टि के लिये कुछ भी न बन सके तब वैद्यके पास जाने पर भी फल क्या हो।

तारामण्डलका पर्दा छिद्र में फँस कर किसी समय रह जाता है। कभी बाहरके कीटाणु उस छिद्र द्वारा भीतरके हिस्से में प्रवेश कर समस्त गोलक या भीतर के कितनेक अवयव-तन्तुमय समूह, नेत्र मध्यपटल, काँच रूप रस आदि भागों का प्रदाह उत्पन्न कर देते हैं। परिणाममें रोगी को दीर्घ काल तक असह्य वेदना होती है और पूय हुआ हो तो आँख फूट जाती है। यदि पूय रहित प्रदाह हो तो धीरे-धीरे गोलक नरम होकर बैठ जाता है। दोनों प्रकारों में दृष्टि बिल्कुल नष्ट हो जाती है और फिर कोई उपाय नहीं रहता।

२. *शुक्लमण्डलके क्षत*—शीतलाके रोगमें उपद्रव रूपसे शुक्लमंडल के क्षत उत्पन्न होजाते हैं। ये बहुधा रोगके आक्रमणके १०-१२ या उससे अधिक दिनोंके बाद होने लगते हैं। मुख्य कारणकी यह कल्पना सहज हो सकती है कि, रोगी अति कृश और निर्बल होगया हो, देह पर शीतलाके बहुसंख्य दाने पूयमय होनेसे मलिनता भी अत्यधिक रहती हो तथा कमरा बन्द रखनेसे कमरेकी वायु भी दूषित होगई हो, या दुर्लक्ष्य वश देह परसे शीतलाका खुरण्ट निकल उसका कुछ अंश नेत्रमें गिर गया हो, तो उन सब स्थितियोंमें शुक्लमण्डलमें क्षत उपस्थित हो जाते हैं।

उपरोक्त दो प्रकारके रोगोंके अतिरिक्त चिह्न, परिणाम और उपचार भेदसे निम्नानुसार शुक्लमण्डलके भेद उपस्थित होते हैं।

कभी-कभी शीतलाके परिणाममें एक तीसरा रोग भी हमारे देखनेमें आया है। कुछ रोगियोंको शीतलाके पश्चात् नेत्रगोलककी वृद्धि (Buphothalmos), यह विकार होने लगता है। हमारे अनुभवमें आये हुए रोगियोंमें सद्भाग्यसे यह वृद्धिशाली स्थिति केवल एक ही नेत्रमें प्राप्त हुई थी। ऐसी स्थितिको प्राप्त हुए नेत्रमें से शनैः-शनैः दृष्टिका ह्रास होने लगता है। उस रोगके लिये शुक्लमण्डलके किनारेमें श्लेष्मावरणके पर्त्तके नीचे वेधन-क्रिया (Trephining) करने पर प्रायः नेत्र बच जाता है।

इनके अतिरिक्त कभी तारामण्डलके पर्दाका प्रदाह, तन्तु समूह

प्रदाह आदि रोग भी शीतलाके उपद्रवरूप या उसके शमन होने पर उपस्थित होते हैं।

उपचार—प्रारम्भमें नेत्रको बोरिक धावनसे दिनमें २-३ बार धोकर साफ रखना चाहिये। फिर १ डाम वेसलीन २-५ ग्रेन आइडोफार्म मिला मलहम बनाकर अथवा उतने ही परिमाणमें बोरिक एसिडका मलहम बनाकर दिनमें १ बार अञ्जन करते रहें।

यदि तारामण्डलका प्रदाह होता हुआ प्रतीत हो तो एट्रोपिनके प्रवाहीके बूँद डालना चाहिये। किन्तु हो सके उतना एट्रोपिनका उपयोग कम करना पड़े, वह अच्छा माना जायगा। आगे शुक्लमण्डलके क्षतके प्रकरणमें लिखा जायगा, उस अनुसार शुक्लमण्डलका क्षत फूटनेकी तैयारी हो और क्षत शुक्लमण्डलकी परिधिके भागमें हो तो 'इसेरीन' के बूँद डालना लाभदायक है। मध्य भागमें क्षत हो तो एट्रोपिनके बूँद डालना अच्छा है। इनके अतिरिक्त जो-जो विकृति प्रतीत हो, उस उसके अनुसार उपचार करना चाहिये।

१२. नेत्रश्लेष्मावरणकी आगन्तुक व्यथा।

(Injuries of the Conjunctiva)

नेत्रगोलक पर कभी धारवाले शस्त्र, बिना धारवाले पदार्थ, अति उष्ण पदार्थ अथवा किसी रासायनिक पदार्थसे चोट पहुँच जाती है, उससे नेत्रश्लेष्मावरण, जो सब नेत्र अवयवोंके ऊपर रहा है, उसे सबकी अपेक्षा अधिक हानि पहुँचती है। अतीक्ष्ण शस्त्र, दण्ड, मुट्ठी आदिसे आघात हुआ हो, तो कभी-कभी नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रही हुई कैशिकाएँ टूट जाती हैं; और उसी हेतुसे आवरणके नीचे रक्त संगृहीत होता है। इस तरह कभी नेत्रको अग्नि, गैस आदिसे हानि पहुँचती है। कभी बाह्य पदार्थ नेत्रमें गिर जाता है।

व्यथा प्रकार—इन व्यथाओंके मुख्य ४ प्रकार हैं। अ. नेत्रश्लेष्मावरण पर घाव, आ. नेत्रश्लेष्मावरणका जलना; इ. नेत्रमें बाह्य पदार्थ गिरना: और ई. गैससे हानि पहुँचना। इन सबका वर्णन क्रमशः करते हैं।

अ. नेत्रश्लेष्मावरणके अभिघातज क्षत।

(Wounds of the Conjunctiva)

बहुधा नेत्रश्लेष्मावरणमें घाव धारवाले शस्त्रसे होता है; किन्तु कभी-कभी बिना धारवाले शस्त्रके आघातसे भी घाव होजाता है।

लक्षण—नेत्रश्लेष्मावरण एक या अधिक स्थानमें कटा हुआ भासता है और उसमेंसे न्यूनाधिक परिमाणमें रक्तस्राव होता है। यदि शस्त्र निर्जन्तुक स्वच्छ हो, तो घाव प्रायः नहीं पकता; शीघ्र भर जाता है। नेत्रमें कुछ समय तक पीड़ा, लाली और कुछ अश्रु स्राव आदि लक्षणोंके अतिरिक्त विशेष चिह्न नहीं होते। किन्तु शस्त्र मलिन हो या फिर कीटाणु प्रवेश हो जानेसे घाव पकता है, तो नेत्रमें से पूयके सदृश स्राव होने लगता है और नेत्रश्लेष्मावरणका कुछ भाग पककर निकल जाता है।

नेत्रश्लेष्मावरण अति पतला है। अतः धारवाले या नोकवाले शस्त्रसे आघात पहुँचनेपर नेत्रश्लेष्मावरणके अतिरिक्त नेत्रबाह्यपटलको भी कुछ-न-कुछ चोट पहुँचती ही है। नेत्रबाह्यपटलकी व्यथाके चिह्न आदिका वर्णन आगे उसके प्रकरणमें यथा स्थान किया जायगा।

उपचार—पारद धावन (H. P. Lotion १-५०००) या बोरिक धावनसे नेत्रको धोवें; तथा घावको महीन सुई और पतले डोरेसे (चाहे डोरा रेशम, घोड़ेका बाल या अन्त्र तन्तु–Catgut हो) सिलाई कर लेवें। रेशम या बाल होनेपर उसे सुईके साथ अच्छी तरह उबालकर निर्जन्तुक बना लेना चाहिये। अन्त्र तन्तु निर्जन्तुक तैयार मिलते हैं। आगे शस्त्रक्रिया में कहा जायगा, उस अनुसार स्वच्छता और निर्जन्तुकताके नियमोंका पालन आग्रहपूर्वक करना चाहिये।

आ. नेत्रश्लेष्मावरणका जलना।

अति उष्ण जल, वाष्प, अग्नि, बारूद, तीक्ष्ण तेजाब, कास्टिक तथा नौसादर-चूनाके मिश्रण समान सभक्षाराम्ल (Alkaline) पदार्थोंसे नेत्रश्लेष्मावरण जल जाता है। यदि बारूदसे जला हो तो जलनेके चिह्नके अतिरिक्त नेत्रके चारों ओरके भाग और नेत्रश्लेष्मावरणका भाग बारूदमें रहे हुए कोयलेके सूक्ष्म रजकणोंके हेतुसे कृष्णाभ होजाते हैं। शेष चिह्न निम्नानुसार हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगीको न्यूनाधिक जलन और वेदना होती है; नेत्र खोलनेमें कष्ट होता है; अश्रुस्राव होता रहता है तथा नेत्रमें न्यूनाधिक लाली भासती है। यदि शुक्लमण्डल अथवा श्लेष्मावरणके नीचे रहे हुए अवयवोंको हानि न पहुँची हो तो दृष्टि प्रायः बच जाती है। सबसे अधिक डर यह रहता है कि, जलनेसे उत्पन्न क्षत भरनेपर ऊपर या नीचेका पलक बाहर या भीतर मुड़ जाता है अथवा नेत्रगोलकको न्यूनाधिक अंशमें चिपक जाता है।

उपचार—जलनको शान्त करनेके लिये वेसलीन, जेतूनका तेल, घी या मक्खन आदि पदार्थोंका उपयोग करना चाहिये। साथमें किंचित् कोकैन डालनेसे कुछ समय तक आराम रहता है; किन्तु उस स्थितिमें कोकैनके उपयोगसे बड़ी हानि यह होती है कि, कोकैनसे शुक्लमण्डलका बाह्य पटल सूखता है और शुक्लमण्डलको भी कुछ व्यथा हुई हो तो वहाँ क्षत होनेके लिये उत्तेजना मिलती है। एकाध दिनके बाद वेसलीनमें बोरिक एसिड डालकर उपयोग करें।

यदि कलीचूनासे दाह हुआ हो तो सादे जल या थोड़ी शक्कर मिलाये हुए जलसे आंखको धोवें। ऐसा करनेपर चूनेका भाग निकल जायगा। फिर ऊपर कहा हुआ उपचार करते रहें।

इ. नेत्रमें बाह्यपदार्थका प्रवेश।

(Foreign bodies in the Conjunctiva)

नेत्रमें अनेक प्रकारके बाह्य पदार्थ गिरते रहते हैं और वे प्रायः ऊर्ध्वपलकके निम्न पोलमें या निम्न पलक और गोलकके बीचकी पोलमें पड़े रहते हैं। कभी नेत्रश्लेष्मावरणमें भी घुस जाते हैं। सामान्यतः रोगी नेत्रको मसल, जल छिड़ककर या उस तरहके सामान्य उपचारसे बाह्य-पदार्थको निकाल डालता है, किन्तु जब सामान्य उपचार निष्फल होते हैं, तब रोगीको वैद्यके पास जाना पड़ता है।

उपचार—निम्न पलककी पोलमें पदार्थ गिरा हो तो वह मुलायम कपड़ेके सिरेसे या नेत्रको धो देनेसे सहज निकल जाता है। ऊपरके पलक के नीचे हो तो पलकको उलट उसी तरह निकाल सकते हैं। यदि नेत्र-श्लेष्मावरण चिपक गया हो तो सूक्ष्म सुई या ऐसे कोई शस्त्र द्वारा सर-लतासे निकाल सकते हैं। यदि कोई शस्त्र तैयार न हो तो कठिन पेंसिलके सूक्ष्म सिरेसे निकाल लेवें। एक समय हमने पेंसिलका उपयोग करके बहुत दिनोंके पहले चिपके हुए पदार्थको निकाल दिया था।

ई. नेत्रश्लेष्मावरण पर विषाक्त गेस जनित असर।

(Effects of Poisonous Gasses on Conjunctiva)

१९१४ ई० के विश्वयुद्धमें जर्मनोंने अनेक जातिके विषाक्त वायु अथवा धुएँका प्रयोग किया था। इनमें मुख्य ३ जाति थीं—१. दाहक; २. अश्रुवाहक; ३. राईके तेलकी वायु।

इनमें से दाहक गेससे नेत्रके कितनेक भागोंमें दाह होता था और

शुक्लमण्डलका बाह्य आवरण जल जाता था। अश्रुस्रावक गेससे केवल अश्रुस्राव होता था और नेत्रमें लाली आजाती थी। राईकी तेलप्रधान गेस अति हानिकर थी, उसमे अनेक बार हानि होती थी और शुक्लमंडल के आगेके पर्त्तोंको हानि पहुँचनेके हेतुसे फूले हो जाते थे। इसके अतिरिक्त इस गेससे फुफ्फुसमें शोथ हो जाता था। इससे रोगीको श्वास लेनेमें घबराहट होती थी और उससे अनेकों की मृत्यु हो जाती थी।

उपचार—इसके दो प्रकार हैं। १—हानि होती हुई रोकनेके लिये; २— हानि होनेपर करने योग्य उपचार।

हानि होती हुई रोकनेके लिये सैनिक और अन्य शहरवासियों, जिनको उस प्रकारके गेसके संसर्गमें आनेका संभव हो, उनको मुखपर पहननेके आवरण (Masks), जो खास उसी हेतुसे बनाये हुए हैं, वे दिये जाते हैं। उस मुखावरणमे नेत्र और मुँहपरकी त्वचाका अच्छी तरह रक्षण होता है। एवं वह गेस श्वासमें न जाय, इसलिये नाक और मुँहको भी उसीसे बन्द करते हैं। फिर प्राणवायुकी एक बड़ी थैली, जो उसके साथ लगाई हो, उससे सैनिक श्वास लेते हैं।

यदि गेस नेत्रको लगा हो तो उसका उपचार करना चाहिये। वेसलीन, जैतुनका तेल, बोरोफेक्स मलहम या टेनोफोक्स मलहम आदिमें से कोई एक नेत्रमें डालनेके लिये देना चाहिये।

१३. नेत्रश्लेष्मावरणकी शुष्कता (*Xerosis*)।

इस रोगमें नेत्रश्लेष्मावरण शुष्क, निस्तेज और सिलवटयुक्त होजाता है। उसका रंग जो स्वाभाविक नेत्रबाह्य पटलके हेतुसे सफेद भासता है, वह इस रोगके हेतुसे मलिन प्रतीत होता है। इस रोगमें २ प्रकार हैं। अ. गर्भभाग तक पहुँचा हुआ, आ. ऊपरके पर्त्तमें रहा हुआ।

लक्षण—इस रोगके चिह्न समग्र नेत्रश्लेष्मावरण शुष्क, निस्तेज और सिलवट मय होनेके अतिरिक्त निम्न गोलकको कितनेक अंशमें संलग्न हो जाता है। शुष्कमण्डलका सब भाग प्रायः ऐसी ही स्थितिमें आजाता है। अर्थात् काँचको घिस देनेपर जैसा अपारदर्शक होजाता है, वैसा शुक्लमण्डल अपारदर्शक होजाता है। दोनों पलक नेत्रगोलकको कुछ अंशमें चिपक जाते हैं। विशेष परिमाणमें चिपक जायँ तो दो पलकोंके बीचमें रहा हुआ गोलक प्रदेशमात्र प्रतीत होता है। नेत्रश्लेष्मावरणको जिस तरह अश्रुप्रवाह आर्द्र रखता है, उस तरह इस रोगमें आंसुओंसे यह भाग गीला नहीं होता। आँखमें से चिपचिपा, गाढ़ा और लाल पदार्थ बार-बार निकलता रहता है।

यह रोग धीरे-धीरे बढ़ता है। अतः ऊपर लिखी हुई स्थिति तक पहुँचनेमें दीर्घकाल लग जाता है।

अ. गर्भभागमें प्रवेशित शुष्कता।

कारण—यह रोग बहुधा चिरकारी रोहेके उपद्रव रूपसे उपस्थित होता है। इसके अतिरिक्त अधिमन्थ (नेत्रके रक्तदबावकी वृद्धि) और कण्ठ-रोहिणी आदि जनित नेत्रश्लेष्मावरणके शोथमें उपद्रवरूपसे होजाता है।

यह रोग स्वतन्त्र उत्पन्न होता है या नहीं, इस सम्बन्धमें विद्वानोंका मतभेद है। कच्छ देशमें चिरकारी रोहेका प्रचार इतना अधिक है कि, इस शुष्कतायुक्त नेत्र, चिरकारी रोहे बिना दृष्टिगोचर नहीं होता। अतः यह रोग स्वतन्त्र होता है या नहीं, यह कहना अशक्य है। इस रोगमे पीड़ित नेत्रोंमें से एक प्रकारके कीटाणु मिलते हैं; किन्तु अनेक बार नीरोगी नेत्रोंमें से भी ये कीटाणु मिल जाते हैं। अतः इन कीटाणुओंको हेतु नहीं मान सकते।

उपचार—यह रोग दुर्भाग्यसे प्रायः असाध्य सा है। फिर भी वेस-लीन, ग्लिसरीन, दूध, घी आदि स्निग्ध पदार्थोंका अंजन करते रहनेसे कितनेक अंशमें रोगका दमन हो सकता है।

सूचना—(१) रोगीको पौष्टिक आहार देना चाहिये। शरीर कृश हो तो उसके लिये योग्य उपचार करना चाहिये। तमाखू सूंघने या धूम्रपान आदिका व्यसन हो तो छुड़ा देना चाहिये।

(२) नेत्रमें रोहे हों, तो मूलकारण रूप रोहेका उपचार करना चाहिये।

आ. उत्तान वृत्तिगत शुष्कता।

चिह्न—इस रोगमें विकृति समस्त नेत्रश्लेष्मावरणमें नहीं फैलती। किन्तु नेत्रगोलकका जो भाग दो बरुनीके बीचमें रहता है, उसपर होती है। शुक्लमण्डल इस रोगमे बिल्कुल मुक्त रहता है। अतः इस प्रकारमें दृष्टिको हानि नहीं पहुँचती। इस रोगके हेतुसे कभी-कभी रतौंधी उपस्थित होती है; किन्तु वह प्रायः कुछ दिन रहकर ठीक होजाती है।

कारण—गर्भगत शुष्कताके अनुरूप।

उपचार—गर्भगत शुष्कताके अनुसार।

१४. अर्म–वेल–टेरिजियम ।

(*Pterygium*)

यह रोग अति:सामान्य है । इस रोगमे पीड़ित रोगी अनेक प्रतीत होते हैं । यह रोग प्रायः एक ही नेत्रमें क्वचित् दोनोंमें भी होता है । यह रोग भी केवल अस्त्र चिकित्सा साध्य है । (चित्र नं ५८ देखें)

चित्र नं० ५८

चित्र—शुक्लमण्डलकी परिधिके आगे से इस रोगका प्रारम्भ होता है । उस स्थान पर उसका सबसे अधिक सकरा भाग रहा है; अर्थात् जो वेलको त्रिकोणाकार कहें, तो त्रिकोणका शिखर भाग शुक्लमण्डलमें रहता है । वह बहुधा नोकरहित होता है । वहाँसे प्रारम्भ होकर वेल बिल्कुल नेत्रकोण तक पहुँचती है । ऊपरके पलकको ऊपर खेंचे और निम्न पलकको निम्न ओर खेंचें, तो नेत्रश्लेष्मावरणके लाल रंगका त्रिकोणाकार भाग रहा हुआ प्रतीत हो, वह वेलके अतिरिक्त प्रायः दूसरा रोग नहीं होता । यह वेल प्रायः शुक्लमण्डलकी परिधिमें से निकलकर नेत्रके भीतरके भागमें चली जाती है, किन्तु कभी बाहरके भागमें से प्रारम्भ होकर बाहरके हिस्सेमें ही रह जाती है । शुक्लमण्डलकी परिधिसे कुछ दूरका हिस्सा निम्न श्लेष्मावरणमे मुक्त रहता है । इससे नेत्रश्लेष्मावरण और वेलके बीचमें से सामान्य मोटी शलाका निकाल सकते हैं ।

यह वेल विशेषतः एक ही नेत्र में होती है; किन्तु कभी-कभी दोनों नेत्रों में भी प्रतीत होती है । यह जबतक शुक्लमण्डल के बीच के भाग तक नहीं पहुँचती, तबतक बहुधा दृष्टिको हानि नहीं पहुँचती; किन्तु आगे बढ़कर शुक्ल मण्डल के मध्य भाग तक पहुँच जाय तो दृष्टि प्रायः बन्द हो जाती है । फिर शस्त्र क्रिया से वेल को निकाल देने पर भी दृष्टि बिल्कुल साफ नहीं हो सकती ।

कारण—इस रोग का निश्चित कारण अभी तक अविदित है । ऐसा अनुमान किया जाता है कि शुक्ल मण्डल की परिधि पर सूक्ष्म क्षत हुआ हो या कोई बाह्य पदार्थ गिरने से कुछ छिल गया हो और फिर वह भर रहा हो, उस समय के भीतर नेत्र श्लेष्मावरण का भाग फँस जाता है, तब वेल का प्रारम्भ होता है ।

उपचार—यह विकार किसी भी औषधोपचार से शमन नहीं होता। इसके लिये शस्त्र चिकित्साके अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग ही नहीं है। किन्तु सब वेलों को शस्त्र क्रिया से निकाल ही डालना चाहिये, ऐसा कोई नियम नहीं है। जबतक शुक्ल मण्डल की परिधिके भागमें ही हो, मध्य भाग की ओर न बढ़ती हो तथा रोगी की इच्छा उसे शस्त्र चिकित्सा द्वारा निकाल देने की न हो, तो उसी अवस्थामें छोड़ देनेमें भी बाधा नहीं है। किन्तु परिधिके भाग का उल्लंघन कर मध्य भाग की ओर बढ़ी हो या बढ़ने लगे अथवा दृष्टि को कुछ अंशमें बाधक होती हो, तो होसके उतनी जल्दी उसे निकाल देनी चाहिये। इसके निकालनेके लिये निम्नानुसार दो उपाय हैं:—

(१) रोगीको टेबल पर लिटा कर ५-५ मिनटके अन्तर पर दो बार कोकैन २ से ५ प्रतिशतके प्रवाही का बूंद डालें, तथा शस्त्र क्रिया करनेके पहले नेत्रके बाहरके भागको और भीतरके भागको पारद धावन (१-५०००) या बोरिक धावनसे अच्छी तरह धो देवें।

इस कार्यके लिये निम्न शस्त्र तैयार रक्खें :—

अ. नेत्रको खुला रखनेके लिये स्पेक्युलम (कमानी)

आ. वेलको निकाल लेने का बडिश यन्त्र (Hook)।

इ. चिमटा (फोर्सेप्स)।

ई. एक सूक्ष्म शस्त्र—चाकू—जो कांच बिन्दु की शस्त्र क्रियामें उपयोगी हो वह या वेल निकालनेके लिये खास शस्त्र आता है वह।

उ. कैंची।

ऊ. सूक्ष्म सूची, सूची को पकड़ने का चिमटा, लिएटके टुकड़े आदि।

इन सब साधनों को उबाल कर निर्जन्तुक करें। इन शस्त्रोंके चित्र आगे दिये जायँगे।

शस्त्र क्रिया—नेत्र को खुला रक्खें और पुनः भीतरके भाग को पारद धावन या बोरिक धावनसे धोवें। फिर बडिश यन्त्रको शुक्ल मण्डल की परिधिसे ३-४ बिन्दु की दूरी पर वेल के नीचेसे निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। उस यन्त्रके अग्रभाग को नीचेसे ऊपर की ओर लेजानेमें विशेष सरलता रहती है। यन्त्र को इस तरह निकालने पर जब वेल उसके ऊपर उठ आवे, तब यह यन्त्र सहायक चिकित्सक को देवें। फिर चिमटे और शस्त्रसे वेलके भाग को मुक्त होने का साथ बडिश यन्त्र भी मुक्त हो जायगा। पश्चात् मुक्त वेलके भाग को चिमटेसे पकड़ शेष भागको नेत्र गोलक परसे मुक्त करें। तत्पश्चात् निम्न अनुसार दो मार्ग ले सकते हैं।

१—एक पद्धति यह है कि, वेल को बिल्कुल नेत्रगोलकके कोण तक

मुक्त कर त्रिकोणाकारमें काट लेवें। इस तरह काटने पर नेत्र श्लेष्मावरणके मुक्त हुए दो भाग अर्थात् ऊपरके और नीचेके भाग को एक या दो टांके लगाकर जोड़ लेवें।

२–दूसरी रीति यह है कि शुक्ल मण्डल की परिधिके आगेके वेलके हिस्सेमें सुईसे दो डोरे निकालकर उससे वेल को दृढ़ बांध लेवें। इससे ४-५ दिनमें स्वयमेव वेल गिर जाती है।

परिणाम—यह वेल यदि शुक्ल मण्डलके मध्यमें न हो तो ही शस्त्र क्रिया करने से दृष्टि बिल्कुल साफ होती है। किन्तु शुक्ल मण्डलके बीचके हिस्सेमें चली गई हो तो कुछ अंशमें दृष्टि की न्यूनता रह जाती है। शस्त्र क्रिया करनेके पश्चात् शुक्ल मण्डलके ऊपर किञ्चित् श्वेत दाग प्रायः शेष रह जाता है। यह बात रोगीको पहलेसे ही समझाकर कह देनी चाहिये।

शस्त्र क्रियाके पश्चात् सम्हाल—शस्त्र क्रिया हो जाने पर नेत्रोंको धो ऊपर गोज़ और रूई का फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। २४ घण्टे बाद खोल, नेत्रको धोकर खुला रक्खें। कुछ दिनों तक नेत्रमें लाली रह जाती है; वह शनैः-शनैः कम होती जाती है। नेत्रमेंसे चिपचिपा या पूय सदृश स्राव होता हो, तो झिंक सल्फेट और आर्जिरोल जैसे ग्राही औषधके बूंद डालना चाहिये।

१५. पिष्टक—पीतबिन्दु।

(*Pinguecula*).

इस रोगको सुश्रुत-संहितामें 'पिष्टक' संज्ञा दी है। इस रोगको आचार्योंने सहज साध्य माना है। यह रोग शुक्लमण्डलके किनारे पर श्लेष्मावरणमें होता है। कुछ मैले पीले रंगकी (चर्बीके समान) पिटिका उठी हो, ऐसा भास होता है। प्रायः यह शुक्लमण्डलके किनारे पर होता है और नासिकाकी ओर अधिक प्रतीत होता है। कचित् बाहरके भागकी ओर भी होता है। इस रोगमें कुछ भी पीड़ा नहीं होती। यह विकार शुक्लमण्डल पर नहीं बढ़ता। अतः दृष्टिको हानि पहुँचनेका कुछ भी डर नहीं रहता।

उपचार—इस रोगके लये बहुधा उपचार करनेकी आवश्यकता नहीं रहती। किन्तु अधिक बढ़ गया हो तो कैंची और चिमटासे काट देना पड़ता है।

१६. गोलक और पलकके आवरणकी संलग्नता।

(*Symblepharon*)

इस रोग (चित्र नं० ५९ देखे) में पलकका आवरण गोलकके आवरणको चिपक जाता है। यदि यह संलग्नतापूर्ण हो, तो पलकको खोलना अशक्य होजाता है। अपूर्ण हो तो पलक और गोलकके बीच एक मृदु त्वचा जैसा पदार्थ आया हुआ प्रतीत होता है।

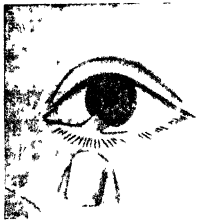

चित्र न ·९

लक्षण और चिह्न—यदि नेत्रगोलकको फिरानेमे प्रतिबन्ध होता हो तो जिस दिशामें वह कम फिरता हो उस दिशामें फिरानेवाली मांसपेशी पूरा काम नहीं कर सकती। इससे दोनों गोलकोंकी दृष्टिरेखा समान्तर न होनेसे रोगीको दो-दो वस्तु प्रतीत होती है। गोलकका कुछ हिस्सा पलकको चिपका हुआ होता है, जिससे गोलकका चलन-वलन योग्य नहीं होता और पलकको खोलकर देखने पर वह पूरा नहीं खुल सकता। पलक और गोलककी झिल्ली चिपकी हुई विदित होती है। गोलक परके श्लेष्मावरणमें अनेक बार सिलवट हो जाती है। कितनेक नेत्रोंमें परबालके समान पलक भीतर मुड़ जाता है।

कारण—नेत्रमें घाव होना, चूना या किसी दाहक क्षार—कास्टिक पोटास, सोडा, अमोनिया आदि गिरा हो, अथवा तेजाब गिरा हो या कण्ठरोहिणी जन्य नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह हुआ हो और फिर उस हेतुसे नेत्रश्लेष्मावरणका कुछ भाग जल गया हो, तब इस विकारकी उत्पत्ति होती है।

उपचार—यदि रोग अति सामान्य स्वरूपमें हो तो ग्लिसरीन, फाइब्रोलाइसिन या यलो ऑक्साइड आफ मर्क्युरीके मलहमका अञ्जन करे। फिर शनैः-शनैः गोलकको पृथक् करनेका प्रयत्न करे। यदि इससे लाभ न हो तो योग्य शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

दसवा प्रकरण।

पोथकी-रोहे-ट्रेकोमा।

(Trachoma-Granular Conjunctivitis)

सुश्रुत संहितामें इस रोग (चित्र नं० ५४ देखें) को पोथकी संज्ञा दी है। इसे वर्त्मगत रोगोंके भीतर लिया है। इसे हिंदीमें रोहे, मराठीमें खुपर्या तथा गुजरातीमें खील, मायल और तापेड़ियां कहते हैं। यह दीर्घकाल स्थायी है और अति छूतका (स्पर्शाक्रमक) रोग माना गया है। इस रोगमें पलकके भीतर बहुसंख्य पिटिकाएं उभड़ आती हैं। रोगी अति उद्विग्न होता है। नेत्रमें से अश्रुस्राव होता रहता है। नेत्र गड़ा करता है। नेत्र नहीं खुल सकता। प्रकाश सहन नहीं होता। रोगीके पलक जैसे अर्द्ध निद्रावस्थामें हों, वैसे ढले हुए भासते हैं। यदि इस रोगका योग्य उपचार करके इसे शीघ्र दूर न किया जाय, तो विविध विक्रिया उपस्थित होनेकी संभावना है। फिर रोगी की दृष्टिको हानि पहुँचती है।

प्रकार—भूतकालमें इस रोगके आशुकारी और चिरकारी, ऐसे दो प्रकार माने जाते थे। उस अनुसार गुजराती प्रथम संस्करणमें दो प्रकार दर्शाये हैं। वर्त्तमानमें नेत्रवैद्य समाज आशुकारी अवस्थाको पृथक् रोग नहीं मानता। रोगकी प्रारम्भिक अवस्थाके चिह्न रूपसे स्वीकार करते हैं। अतः इस संस्करणमें उस अनुसार विवेचन किया है।

लक्षण और चिह्न—इस रोगमें रोगीकी आंखमें से जल गिरा करता है। यदि वायु, धुआं या धूप लग जाय अथवा रोगी लिखने-पढ़नेका प्रयत्न करे, अथवा नेत्रको कष्ट हो ऐसे सिलाई करना, कसीदा निकालना आदि कोई कार्य करें तो अश्रुस्राव बढ़ जाता है। रोगीसे प्रकाश सहन नहीं होता। कितनेक रोगी अँधेरे कमरेमें अनेक दिनों तक शिरको नीचा रखकर पड़ रहते हैं। यदि रोग कुछ सौम्य हो तो काले चश्मे पहनकर रोगी चल सकता है। रोगके प्रारम्भमें पलक प्रातःकाल उठनेके समय चिपक जाते हैं। आंख सतत गड़ा करती है। प्रातःकाल उठनेपर तो रोगीको ऐसा भास होता

है कि कुछ रजकण नेत्रमें गिर गया है। जैसे दिन जाता है वैसे-वैसे गड़ना कम होता है। नेत्रमें वेदना भी सदा बनी रहती है। नेत्र चाहिये उतना नहीं खुल सकता।

रोगीके नेत्रोंकी परीक्षा करनेपर प्रतीत होता है कि, एक नेत्रमें रोग अधिक और अन्यमें कम। एक नेत्रमें रोहे हों और दूसरा नेत्र बिल्कुल नीरोगी हो, ऐसे रोगी क्वचित् ही प्रतीत होते हैं। बहुधा यह रोग दोनों ही आंखोंमें होता है। रोगका प्रारम्भ सामान्यतः आंख आनेके समान होता है। नेत्रमें लाली आकर अश्रुस्राव होने लगता है; गड़ा करता है; नेत्र नहीं खुल सकते; तथा सुबह उठनेपर नेत्र चिपक जाना आदि अभिष्यंदके लक्षणों के समान प्रतीति होती है। परीक्षा करनेपर नेत्रगोलकमें कुछ लाली भासती है। पलकोंको उलटकर देखनेपर वे भी लाल दिखते हैं। इतना ही नहीं, वे चिकने होनेकी एवजी खुरदरे बन जाते हैं। उनपर अंगुली फिरानेपर स्पर्श जनित मोटापन लगता है। यह स्थिति २-३ सप्ताह तक रहकर योग्य उपचार होनेपर शमन होजाती है। ऐसा शुभ परिणाम किसी सद्भाग्यवान् रोगीके लिये ही आता है।

प्रायः रोग चिरकारी बन जाता है; अर्थात् लम्बता है। फिर महिनों या वर्षों तक बना रहता है। रोगीको जो लक्ष्य अनुभवमें आते हैं, वे ऊपर लिखे हैं। चिकित्सकको प्रतीत होनेवाले चिह्न निम्नानुसार होते हैं :—

पलकके भीतरके हिस्सेमें बहुसंख्य सरसोंके समान दाने उभड़े हुए भासते हैं। ये दाने छोटे हों तो पलकके भीतरका श्लेष्मावरण मखमलके कपड़े जैसा भासता है। दाने बड़े हो गये हों तो बड़े-बड़े दाने अनियमित लगे हों, ऐसा देखाव होता है। सामान्यतः साबूदाने नेत्र श्लेष्मावरणके नीचे रक्खे हों, ऐसा भास होता है; या तूतके फलके ऊपर जैसा खुरदरापन होता है, वैसा श्लेष्मावरण बन जाता है। ये दाने विशेषतः ऊपरके पलक के भीतर ही होते हैं। इन दानोंके हेतुसे पलकका भाग न्यूनाधिक सूज जाता है। फिर उस हेतुसे मेईबोमियन पिण्ड अदृश्य हुए हों ऐसा लगता है। यह स्थिति एक दो मास में शनैः-शनैः रूपान्तरित हो जाती है। जो छोटे दाने प्रतीत होते थे, उनके स्थान पर कठिन दाने भासते हैं। ये दाने कुछ पिंगलाभ, स्वच्छ गोल आकारके और श्लेष्मावरणको उभाड़ते हों, इस तरह बाहर तैर आते हैं। पलकमें उबाले हुए साबूदाने चिपकाये हों, ऐसा भासता है। ये दाने पलकके भीतर तो रहते ही हैं, किन्तु उस अवस्था में विशेषतः ऊपर और नीचेके पुटमें भी अधिक स्पष्ट बहुसंख्य दाने उपस्थित हो जाते हैं। निम्न पुटमें तो ये कण इतने परिमाणमें होते हैं कि, नीचेके

पलकको नीचे खेंचें तो निम्न पुट अच्छी तरह ऊपर उभड़ा हुआ प्रतीत होगा। इसी तरह ऊपरके पुटवाले भागको पलकके बाहरसे अँगुलीसे दबावें तो उस पुटमें भी लगभग निम्न पुट जैसा ही देखाव दृष्टिगोचर होगा। अन्तर केवल इतना ही रहेगा कि, वहाँ दाने कुछ छोटे भासेंगे; एवं पुटका भाग अधिक उभड़ा हुआ नहीं भासेगा। ये दाने नेत्रगोलकके ऊपरके नेत्र श्लेष्मावरणमें बिल्कुल प्रतीत नहीं होते।

कितनीक बार दोनों नेत्रोंमें रोहे की स्थिति समान नहीं होती। एक में अधिक और अन्य में कुछ कम परिमाणमें होते हैं। पलकके भीतरके भाग और पुटोंमें तो लाली होती ही है; किन्तु कितनेक रोगियोंमें नेत्र-गोलक पर भी रक्तवाहिनियाँ इतनी अधिक बढ़ी हुई भासती हैं कि, वह भाग भी लाल हो जाता है। यह अवस्था कुछ महिनों तक रहकर फिर जो उभड़ा हुआ भाग, दाने या पिटिकाएँ जो हों, वे सब शोषित होने लगते हैं। अन्तमें यह क्रिया पूर्ण होकर पलक के भीतर झिल्लीमें सफेद रंगकी पंक्तियाँ या दाग रह जाते हैं। अनुभवी नेत्रवैद्य ऐसी रेखा या सूखे हुए स्थलोंको देखकर तत्काल कह सकेंगे कि, इस व्यक्तिको पहले रोहे हुए होंगे। यदि वह शुष्कता ऊपर और नीचेके पुट तक पहुँच जाय या पलकके भीतर अवस्थित कोमलास्थि तक पहुँच जाय तो परवाल और पलकके भीतर मुड़ने वाली स्थिति आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं।

कारण—इस रोग का मुख्य एक ही कारण है कि, इस रोगसे पीड़ित एक व्यक्ति अनेक मनुष्योंको स्पर्श द्वारा यह रोग दे देता है। यह संक्राम-कता रोगीके नेत्रगत स्रावमें अवस्थित है। अतः रोहेके रोगीके नेत्रसे निकला हुआ जल किसी भी रीतिसे स्वस्थ नेत्रको लग जाय तो उस नेत्रमें भी इस रोगकी बहुधा उत्पत्ति हो जाती है। यह संसर्ग अनेक रीतिसे होता है। रोगी अपने हाथसे नेत्रोंको पोंछता है। फिर वह हाथ दूसरेके नेत्रको लग जाता है। या रूमाल या कपड़ेसे नेत्रोंको पोंछता है, वह वस्त्र अन्य स्वस्थ नेत्रको लग जाता है।

यदि माताको रोहा हो और वह अपनी साड़ीके सिरेसे अपनी आंखोंको पोंछती है और फिर अज्ञान वश या प्रमाद वश अपने बालक की आंखोंको पोंछती है तो बालक रोगी होजाता है। जिस गद्दी पर रोगी सोया हो या जिस सिरहाने का उपयोग रोगीने किया हो उस गद्दी या सिरहाने पर अन्य स्वस्थ व्यक्ति सोता है, तो उसे इस रोग की प्राप्ति होजाती है। यूरोपियनोंकी रीतिके अनुसार रहने वाले लोग परातमें जल भरकरके अपना

मुंह धोते हैं। ऐसे बर्तनमें रोगविष लग जाता है। फिर दूसरे व्यक्ति जो उस पात्र का उपयोग करें, उन पर सहज आक्रमण होजाता है।

भारतीय लोगोंको इस रोगके संसर्गका एक सबल साधन प्रत्येक मकान में रोज व्यवहृत होता है और जिसका उल्लेख किसी भी अंग्रेजी पुस्तकमें नहीं मिलता। वह साधन है काजल, जो नित्य प्रति बालकोंके नेत्रोंमें डालते हैं। भारतके अनेक प्रान्तोंमें बालकका जन्म हो जबसे ९-१० वर्षका हो, तबतक काजल डालते रहते हैं। एवं वही काजल बच्चे की माता और अन्य स्त्रियां भी अंगुलीसे अपनी आंखमें डालती रहती हैं। उस काजलकी डिब्बीका उपयोग मकानके सब मनुष्योंके लिये साधारण रहता है। यदि दैववशात् किसी एककी आंखमें रोह हों, तो काजल द्वारा उसका संसर्ग कुटुम्बके अनेक बालकोंको होजाता है। तेज वायु और तेज धूप हो और धूल उड़ती रहती हो, ऐसे देशोंमें रहने वाले लोगोंको इस रोगका संसर्ग अधिक परिमाणमें होता है। इसका कारण यह नहीं है कि इस रोगका संसर्ग होतेही प्रत्येक नेत्रमें यह रोग होजाय। जो आंख कुछ आई हो अथवा किसी अन्य कारणसे लाल होगई हो, या सतत लाल रहती हो, ऐसी आंखोंमें संसर्गसे रोहेका रोग होजाता है।

ग्रामोंमें रहने वाले लोगोंके नेत्रोंमें वायु, धूल आदि जाते ही रहते हैं। जिससे कितनेकोंकी आंखें आई हों, वैसी सर्वदा बनी रहती हैं। वैसी आंखोंमें इस रोगका संसर्ग होजाय तो सहज रोह हो जाते हैं। वायु और प्रकाश रहित कमरेमें सोने वाले और स्वच्छताको न सम्हालने वाले लोगोंमें यह रोग विशेष परिमाणमें फैलता है। नेत्र रोगकी गुजराती प्रथमावृत्तिमें हमने लिखा था कि वायु द्वारा संसर्ग होता है या नहीं, इस सम्बन्धमें विद्वानोंका एकमत नहीं हुआ। उस संदेहका स्पष्ट निराकरण होगया है। अब निर्णित होगया है कि रोहेका संसर्ग वायु द्वारा नहीं होता।

ऊपरके वर्णन परसे पाठकोंको सहज कल्पना हुई होगी कि यह रोग ऐसा छूत वाला है; अतः उसके उत्पादक किसी जातिके कीटाणु होंगे। यह कल्पना संशोधक अनेक नेत्रवैद्योंको भी आई थी और उन्होंने कीटाणु की शोधके लिये वर्षों तक अतिशय प्रयत्न किया था। तथापि अभीतक उसमें सफलता नहीं मिली। केवल जापानके एक जन्तुशास्त्री नोगुची (Noguchi) ने एक प्रकारके कीटाणुओं की शोध की है। उससे रोहेका संसर्ग होता है, ऐसा सिद्ध करनेके लिये प्रयत्न हो रहा है; किन्तु उन कीटाणुओंसे रोहे उत्पन्न होते हैं ऐसा सब नेत्रवैद्योंने अभीतक मान्य नहीं

किया। अन्य एक जर्मनीके जन्तुशास्त्री प्रोवाझेक (Provazek) ने रोहेके दाने की परीक्षा अणुवीक्षण यन्त्रके नीचे करके एक प्रकारके बिन्दु सदृश गोल कीटाणुओंकी शोध की है। उसे प्रोवाझेकस इन्क्लूजन बोडिज् (Provazek's Inclusion bodies) संज्ञा दी है। उसे इस रोगकी उत्पत्तिका सच्चा कारण माना गया है।

क्रम—पहले कहे अनुसार रोगके प्रारम्भमें नेत्रमें लाली, अश्रुस्राव, प्रकाशकी असहिष्णुता, नेत्र खोलनेमें कठिनाई, पलकका सुबह चिपक जाना, आँख गड़ना, सूक्ष्मतासे देखने पर नेत्रमें वेदना और ऐसे अन्य लक्षण और चिह्न होने हैं। ४-६ सप्ताह तक यह स्थिति रहती है। इसके भीतर व्याधि शमन हो जाय तो नेत्र स्वच्छ हो जाते हैं, या रोग दीर्घक्रम धारण करता है। इसके विपरीत कितनेक रोगियोंमें ऊपर लिखे तीक्ष्णावस्थाके लक्षण और चिह्न बिल्कुल प्रतीत नहीं होते; किन्तु रोहे नेत्रमें उत्पन्न होते रहते हैं। फिर भी रोगीको उसका बोध भी नहीं होता। जब कोई नेत्रवैद्य आँख देखे तभी रोगीको विदित होता है। लगभग ६ सप्ताहके पश्चात् नेत्रके पलकके भीतर और पुटोंमें पिटिका या दानेकी उत्पत्ति होती है और पलक मोटे हो जाते हैं। उस हेतुसे तारामण्डलप्रदाह भी कुछ अंशमें हो जाता है। शुक्लमण्डलके क्षतके अतिरिक्त सफेदी आदि विक्रिया जिनका वर्णन विस्तारपूर्वक उपद्रवरूपसे दिया जायगा। वे उपद्रव भी बढ़ने लगते हैं। फिर रोगीकी पीड़ा और बढ़ जाती है।

रोगकी जब तीक्ष्ण अवस्था हो तब दृष्टिके सम्बन्धमें कुछ कष्ट पहुँचता है। इसके अतिरिक्त दृष्टिमें कुछ भी न्यूनता नहीं होती, किन्तु आगे शुक्लमण्डलका क्षत मिटनेके पश्चात् उस स्थानमें फूला रह जाय या सफेदी उपस्थित हो, तो ही दृष्टिमें प्रतिबन्ध होता है। कितनेक रोगियोंमें इस दूसरी स्थिति होनेके पश्चात् भी रोग दूर हो जाता है; और नेत्रमें किसी भी जातिका चिह्न नहीं रहता।

यदि रोग न मिटे तो तीसरी स्थिति में पलकके भीतरके भाग और पुटोंके भीतर शुष्कताके हेतुसे सफेद रेखायें, सफेद स्थल और पुटके भागमें क्षीणता होना तथा नेत्रश्लेष्मावरणके रंगका परिवर्त्तन होना, ये चिह्न देखनेमें आते हैं। अनेक रोगियोंको इस स्थितिकी प्राप्ति होनेके पश्चात् भी रोग शमन हो जाता है। फिर उनकी पीड़ाका अन्त आ जाता है। किन्तु कुछ कसर रह जाती है, वह यह कि जिस तरह अन्य स्वस्थ मनुष्य, जिनको रोहे कभी न हुए हों उनके नेत्र पूरे खुल सकते हैं, उस

तरह इन रोगियोंके नेत्र नहीं खुलते। कुछ कम खुलते हैं; तथा रोगीके मुखमण्डल पर जैसे निद्रामें से उठा हो वैसा पलक भासता है।

यदि योग्य उपचार किया जाय तो यह रोग लगभग शमन होजाता है; किन्तु रोग बिल्कुल शमन होनेके पहले ही उपचार बन्द कर दें, तो रोग पुनः प्रबल बनता है और आक्रमण करता है। हमारे अनुभवके अनुसार भारतवासियोंमें, विशेषतः अशिक्षित समाजमें जब रोग अत्यधिक कष्ट पहुँचाता है, तब नेत्रवैद्यकी शरण लेते हैं। फिर कुछ आराम होने पर थोड़े ही दिनोंमें उपचार बन्द कर देते हैं। परिणाममें कुछ दिन या सप्ताह के पश्चात् पुनः वही रोगी कष्ट बढ़ाकर पुनः नेत्रवैद्यके पास उपचारार्थ उपस्थित होता है।

पार्थक्यदर्शक रोगविनिर्णय—इस रोगका निर्णय प्रारम्भमें कुछ कठिन होता है। जबतक रोहेके दाने स्पष्ट प्रतीत न हों, पलकमें मोटाई न आई हो और लगभग दो मासके पश्चात् प्रतीत होने वाले चिह्न न उपस्थित हुए हों तब तक रोग निर्णयमें अति सम्हालना पड़ता है। सामान्य अभिष्यन्दके समान ही चिह्न प्रतीत होते हैं। किन्तु एक महत्त्वका अन्तर यह है कि, रोहेमें नेत्रस्रावका जल अधिक चिपचिपा नहीं होता। नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह (अभिष्यन्द) के तीक्ष्ण प्रकारमें कीटाणु कोकबिक्स, मोराक्स एक्सनफिल्ड, न्युमोनिया या सुजाकके जो प्रतीत होते हैं, वे इसमें नहीं मिलते।

जब पिटिका या दाने प्रतीत होने लगें तब दो रोग इस रोहेके समान होते हैं। १. वसन्त ऋतुमें होने वाला नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह और २. दानेदार नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह। इनमें वसन्त ऋतुमें होने वाले दाने चिपटे होते हैं। जैसे सड़क पत्थरसे बंधी हो और उसमें पत्थर व्यवस्थित लगे हों, उस तरह दाने सज्जित हुएसे भासते हैं। दानेके ऊपर कभी सफेद दूध जैसा रंग दिखता है, ये दाने पुटोंमें नहीं होते। रोगीको खुजली आती रहती है। एवं नेत्रश्लेष्मावरणसे निकलने वाले प्रवाहीको कांचपट्टी पर फला रंग चढ़ाकर देखें तो रंगेच्छु अणु-इयोसिनोफाइल्स (Eosinophiles) अर्थात् जिन अणुओं पर इयोसिनका रंग चढ़ता है, वे बहुसंख्य प्रतीत होते हैं। रोहेमें इसकी अपेक्षा चिह्न पृथक् ही होते हैं। रोहेके दाने सहज चमकीले, साबूदानेके जैसे नुकीले तथा अव्यवस्थित लगे हुए होते हैं। इन लक्षण भेदसे वसन्तऋतु जनित प्रदाह भिन्न हो जाता है।

दानेदार नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहमें दाने रक्ताभ और पंक्तिबद्ध समान सुसज्जित होते हैं। ऊपरके पलककी अपेक्षा निम्न पलकमें अधिक होते हैं।

वे दाने रोहेके दानेकी अपेक्षा छोटे और नेत्रश्लेष्मावरणकी सतहपर प्रतीत होते हैं। उस रोगमें प्रोवाझेकके अणु एवं नोगुचीके कीटाणु प्रतीत नहीं होते। इनके अतिरिक्त विशेष-महत्वका अन्तर यह है कि, रोहेका रोग लम्बे समय तक रहता है; तथा उससे नेत्रमें विविध परिवर्त्तन और विकार होते हैं, किन्तु दानेदार प्रदाहमें ऐसा कुछ भी नहीं होता। ग्रन्थकारोंने इन दोनों रोगोंमें उतने अधिक अन्तर रहनेका वर्णन किया है। फिर भी स्पष्ट कहना पड़ेगा कि कितनेक रोगियोंमें इन दो रोगोंके बीचका निर्णय करनेमें नेत्ररोग निष्णातोंको भी असफलता मिलती है।

चिरकारी रोहेकी ३ स्थिति:—

१. नेत्रमें कुछ शोथ आकर या कुछ समयमें रोहे घिसकर नेत्र स्वच्छ हो जाता है। फिर रोगी इस रोगसे सदाके-लिये मुक्त होजाता है।
२. कुछ काल तक विष लीनावस्थामें रहकर पुनः आक्रमण करता है।
३. रोहे का रोग दीर्घकाल स्थायी बन जाता है। फिर चिरकारी व्याधिरूप से आजीवन नेत्रमें बना रहता है।

उपद्रव (Complications)—यदि यह व्याधि शीघ्र शान्त नहीं होती, चिरकारी बन जाती है, तो निम्न उपद्रवोंमें से एक या अधिक उपस्थित होनेकी संभावना रहती है।

अ. सफेदी—Pannus.

आ. शुक्लमण्डलके क्षत और शुक्र—Corneal Ulcers and Opacities.

इ. परबाल—Trichiasis and Dis-trichiasis तथा पलकका मुड़ जाना Entropian.

ई. पलकधाराका पाक—Marginal Blepharitis.

उ. पलक और गोलकर्का संलग्नता—Sumblepharon.

ऊ. नेत्रश्लेष्मावरणकी शुष्कता—Xerosis.

ऐ. अश्रुआशय प्रदाह—Dacryocystitis.

अ. सफेदी (*Pannus*)।

यह उपद्रव (चित्र नं० ६३ देखें) रोहेकी जीर्णावस्थामें प्राप्त होता है। यह स्वतन्त्र व्याधि नहीं है। जिन वैद्य या विद्यार्थियोंने एक बार ठीक लक्ष्यपूर्वक इस उपद्रवसे पीड़ित चक्षुओंका निरीक्षण किया है, वे इसका निर्णय करनेमें बहुधा भूल नहीं करते। यह विकार प्रायः शुक्लमण्डलके ऊपरके हिस्सेमें अर्थात् जो भाग ऊपरके पलकसे आच्छादित रहता

है, उस भागमें होता है। किन्तु रोग अति बढ़ गया हो, तो शुक्लमण्डलके मध्यप्रदेशमें और निम्न भागपर भी उपस्थित हो जाता है। शुक्लमण्डलके जिस भागमें यह विकार हो, वह भाग न्यूनाधिक अंशमें अपारदर्शक हो जाता है।

यह अपारदर्शकता या सफेदी शुक्लमण्डलकी परिधिसे प्रारम्भ होती है; तथा मध्यभागकी ओर बढ़ती जाती है। अनेक सूक्ष्म रक्तप्रणालियां इस अपारदर्शक भागमें से निकली हुई भासती हैं। ये रक्तप्रणालियाँ ऊपर से नीचे गमन करती हैं। अनेक बार ये इतनी सूक्ष्म होती हैं कि, शुक्ल-मण्डलके दूरदर्शक यन्त्र और शुक्लमण्डलके अणुवीक्षण यन्त्रकी सहायता विना प्रतीत नहीं हो सकती। ये रक्तप्रणालियाँ बहुधा अनेक होती हैं। ऐसा होनेपर सफेदी कुछ रक्ताभ प्रतीत होती है। यदि उपद्रव अति बढ़ गया हो, तो जैसे कुछ मांसल भाग शुक्लमण्डलमें से उत्पन्न होता हो, ऐसा भास होता है। सफेदीका भाग जब तक शुक्लमण्डलके मध्यभाग तक नहीं पहुँचता, तब तक दृष्टिको हानि नहीं पहुँचती। किन्तु मध्यभाग प्रभावित होजाने पर दृष्टिको अच्छी तरह हानि पहुंच जाती है। फिर रोग अधिक बढ़ जानेपर केवल प्रकाश और हाथके चलन-चलनके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं भासता। अनेक बार इस उपद्रवके बढ़नेपर तारामण्डलका चिरकारी प्रदाह (Chronic Iritis) हो जाता है। इससे दृष्टिको अधिक हानि पहुँचती है। इतना ही नहीं, बल्कि रोगीके नेत्रमें कुछ अंशमें पीड़ा बनी ही रहती है।

इस रोगका स्वरूप भिन्न-भिन्न विद्वानोंने भिन्न-भिन्न दरसाया है। ऊपरके पलकसे आच्छादित शुक्ल मण्डलके भागमें विशेष विकृति होनेसे कितनेक नेत्रवैद्योंकी मान्यता है कि, रोह वाले ऊपरके पलकके घर्षणसे शुक्ल मण्डल अपारदर्शक होकर यह उपद्रव उत्पन्न होता है। किन्तु अन्य विद्वान् इस मतका समादर नहीं करते। उनकी मान्यता अनुसार जिस तरह पलकके आवरणमें रोहकी संप्राप्ति होती है, उसी तरह शुक्ल मंडलकी ऊर्ध्व तहमें रोहके विषसे इस स्थितिकी प्राप्ति होती है। यह व्याधि दीर्घ-काल तक टिक कर रहजाने पर शुक्ल मण्डलकी वृत्तिसे आगे चलकर शुक्ल मण्डलके गर्भभागमें पहुँचती है। फिर शनैः-शनैः उसे नष्ट करती है और उस स्थान पर शुक्ल मण्डलको इतना निर्बल बना देती है कि नेत्रके भीतरके प्रवाहीके दबावसे शुक्ल मण्डलका यह भाग उभड़ आता है। जिससे देखाव गोलकके बहिर्निःसरणके समान भासता है। जबतक यह

व्याधि शुक्ल मण्डलके गर्भ भाग तक नहीं पहुँचती, तबतक यह साध्य है। फिर वह विशेषांशमें याप्य या असाध्य होजाता है।

आ. शुक्लमण्डल क्षत (*Corneal Ulcers*)।

चिरकारी रोहे नेत्रमें रहते हैं तबतक किसी भी समयमें शुक्ल मंडल पर क्षत होजाते हैं। प्रारम्भमें ऊपरके या ऊपर नीचे दोनों पलकोंमें रोहेके दाने होनेके अतिरिक्त नेत्रमें लाली या पीड़ा नहीं होती; किन्तु शुक्ल मण्डलके क्षत होने पर नेत्रमें पीड़ा होने लगती है। वह पीड़ा प्रायः असह्य होती है। नेत्रके अतिरिक्त भ्रू भाग और मस्तिष्कमें दर्द होता है। नेत्रमेंसे अश्रुस्राव अच्छी तरह होता ही रहता है। प्रकाश बिल्कुल सहन नहीं होता। सामान्य प्रकाशमें भी नेत्र नहीं खुल सकते। रोगी प्रायः नेत्रके ऊपर हाथ रख शिरको झुकाकर पड़ा रहता है। कितनेक रोगी लेटनेके समय मुँहको बिछौनेके भीतर दबा देते हैं। नेत्रको खोलने का प्रयत्न करने पर नेत्रमें से बहुत अश्रुस्राव होता है, एवं अनेक बार रोगीको बहुत छींकें आती हैं। नेत्रको खोल कर देखने पर शुक्ल मण्डलके चारों ओर रक्तप्रणालियां स्फीत हो जानेसे लाली भासती है। यह लाली क्षतकी संख्या और गहराई के अनुरूप होती है। शुक्ल मण्डल पर सूक्ष्म-सूक्ष्म एकाधिक क्षत होते हैं। ये क्षत बहुधा गहरे नहीं होते। इनको विशेष स्पष्ट देखनेके लिये फ्लूरेशिन (Fluorescein) की बूंद डालना चाहिये। इससे क्षत प्रदेश पीत हरित और शुक्लमण्डल का स्वस्थ भाग बिल्कुल पारदर्शक और कांच जैसा प्रतीत होता है।

यदि इन क्षतोंके ऊपर न्युमोकोकाई अथवा पूयोत्पादक कीटाणु स्टेफिलोकोकाय और स्ट्रेप्टोकोकायका आक्रमण हो जाता है, तो क्षत गहरे हो जाते हैं। फिर शुक्ल मण्डल फूट कर तारामण्डल का पर्दा प्रायः बाहर निकल आता है। इतना ही नहीं, अनेक बार समग्र नेत्रगोलकका प्रदाह और स्फोटक हो, नेत्र फूट कर बैठ जाता है। सम्हालने पर बहुधा इतने तक परिणाम नहीं आता। योग्य उपचारसे कुछ समयमें शुक्ल मण्डल के क्षतका रोपण होने लगता है। फिर जिन स्थानोंमें क्षत हुए हों, वहां पर सूक्ष्म-सूक्ष्म सफेदी या फूले रह जाते हैं। यदि ये फूले शुक्ल मण्डलके मध्यमें न हों, तो दृष्टि को विशेष हानि नहीं पहुँचती। अन्यथा दृष्टिको दूषित बना देते हैं।

इ. परबाल और पलकका भीतर या बाहर मुड़ जाना।

(Trichiasis. Dis-trichiasis and Entropion & Ectropion)

परबाल—ऊपर और नीचे की पलक धारामें बाल (बरूनी) निकलते हैं। ये ऊपरके पलकके ऊपरकी ओर निम्न पलक के निम्न ओर मुड़े हुए रहते हैं। जब ये बाल गोलककी ओर अर्थात् भीतरमें मुड़ते हैं, तब उनको 'परबाल' कहते हैं।

कारण—रोहके साथ पलकके भीतर न्यूनाधिक अंशमें शोथ आकर जब शमन होता है, तब पलकके भीतरके भागोंका कुछ अंशमें आकुंचन होता है। इससे पलकके भीतर रहे हुए कोमलास्थिकी रचनामें अन्तर हो जाता है। स्वाभाविक रीतिसे वह गोलकके आकारके अनुरूप बाहर की ओर बहिर्गोल होता है। उपरोक्त हेतुसे उस बहिर्गोलपनेमें न्यूनता होती है। इसके अतिरिक्त पलकके भीतरका आवरण भी भीतरकी ओर खिंचता है। परिमाणमें जो बाल नैसर्गिक रीतिके नेत्रसे पृथक् रहने चाहिये, वे ही बाल गोलकको लगते रहते हैं और गड़ते रहते हैं।

पलकका भीतर बाहर मुड़ना—इन दोनों स्थितियोंका कारण भी परबालमें कहा वही है। परबाल और पलकके भीतर मुड़ने पर पलकके बालों से शुक्लमण्डलके ऊपर सतत घर्षण होता है। इससे दृष्टिको हानि पहुँचती है। नेत्र गड़ना, अश्रुस्राव, शुक्ल मण्डलमें क्षत होना आदि चिह्न अवस्थित होते हैं। पलक बाहर मुड़ने पर नेत्र गड़ना आदि कष्ट नहीं पहुँचता। इन सबका वर्णन विस्तारपूर्वक आगे पलक रोगके प्रकरणमें यथा स्थान किया जायगा।

ई. पलकधाराका पाक (*Marginal Blepharitis*)।

जब चिरकारी रोह के हेतुसे नेत्रमें से सतत अश्रुस्राव होता रहता है, तब पलकधारा निरन्तर गीली रहती है। इससे रोगी को बार-बार आँखें पोंछनी पड़ती हैं। किसी साफ मुलायम कपड़े से पोंछते रहें, तो पलक धाराके पाककी सम्भावना कम रहती है; किन्तु अञ्जन, विशेषतः मजदूर वर्ग के लोग चाहे जैसा मैला, खुरदरा या धूलवाला जो कपड़ा हाथ में आया, कुछ भी विचार किये बिना उसीसे बलपूर्वक अच्छी तरह आँखोंको पोंछता है। परिणाममें बाह्यत्वचा, जो सतत आर्द्र रहने से मृदु हो गई हो, वह छिल जाती है और फिर पक जाती है। इस व्याधिका विशेष विचार पलकव्याधि प्रकरण में किया जायगा।

उ. पलक और गोलककी संलग्नता (*Symblepharon*) ।

नेत्रगोलक और पलकके बीच नेत्रश्लेष्मावरणका जो बंधन रहा है, उसका संकोच हो जाता है। फिर अन्तमें निम्न पलक जैसेकि नेत्रगोलकको चिपक गया हो, वैसा भासता है। इस स्थितिके लक्षण, चिकित्सा आदि पहले लिखे जा चुके हैं।

ऊ. नेत्रश्लेष्मावरणकी शुष्कता (*Xerosis*) ।

यह स्थिति अनेक बार चिरकारी रोहे के अति बढ़ जाने पर उपद्रव रूपमें उपस्थित होती है। पलकके ऊपरका आवरण सिलवट मय, शुष्क, कुछ त्वचा सदृश, निस्तेज और अपारदर्शक हो जाता है। शनैः-शनैः यह रोग बढ़ता है। फिर जब गोलक पर के आवरण और शुक्लमण्डल के बाहर पर्त्त तक पहुँचता है, तब असाध्य अन्धता आ जाती है। इसका वर्णन पहले भी नेत्रश्लेष्मावरणके रोग में आगया है।

इस उपद्रवकी प्राप्ति होने के पहले जो अश्रुस्राव प्रतीत होता था, वह बन्द हो जाता है। उस स्थान में स्वल्प, कुछ चिपचिपा और कुछ तन्तुदार पदार्थ थोड़ा-थोड़ा नेत्र में से निकलता है। इस रोग की उत्पत्ति का कारण एक प्रकार के कीटाणु हैं, ऐसी विद्वानोंकी मान्यता है।

ए. अश्रुवाशय प्रदाह (*Dacryocystitis*) ।

चिरकारी रोहे दीर्घकाल तक रह जाने पर अश्रुवाशय पर कार्य का दबाव अत्यधिक आ जाता है। नेत्रमें से जो विकृत स्राव होता रहता है, वह निरन्तर अश्रुवाशयमें जाता है। इससे अश्रुवाशयका श्लेष्मावरण स्रावके भीतर रहे हुए संक्रामक कीटाणुओंके संसर्गसे मुक्त नहीं हो सकता। उन कीटाणुओंकी क्रिया द्वारा चिरकारी प्रदाह उत्पन्न होता है; एवं वह श्लेष्मावरण अतिशय कुडकिला रोजाता है। इनके अतिरिक्त प्रदाहके हेतु से शोथ आकर निम्न मार्ग बन्द होजाता है। कितनेक रोगियोंमें तो निम्न मार्गका अस्थि भी बढ़कर उस मार्गका बिल्कुल अवरोध कर देता है।

पोथकी-रोहा चिकित्सा ।

इस रोगकी चिकित्सा मुख्य २ भागोंमें विभक्त है। १. रोगोत्पत्ति रोधक और २. रोगशामक चिकित्सा।

१. रोगोत्पत्ति रोधक चिकित्सा—रोगकी उत्पत्तिका प्रतिबन्ध करनेके लिये मुख्य सम्हाल यह लेना चाहिये कि, किसी भी कारणसे दूसरोंके

स्वस्थ नेत्रको इस रोगके विषका संसर्ग न होना चाहिये। इसलिये रोहेके रोगीके वस्त्र—रूमाल, तौलिया, कुरता आदि अज्ञानवश या प्रमादवश दूसरेके उपयोगमें न आवें, इस बातकी पूर्ण सम्हाल रखना चाहिये। रोगी के नेत्रमें से गिरनेवाले जलका स्पर्श अन्य नीरोगी नेत्रको न होने देवें। रोगीकी गद्दी, सिरहाना आदि दूसरे किसीको न देवें। पाठशाला और छात्रालय (Boarding), जहाँ अनेक विद्यार्थी रहते हों, ऐसे स्थानोंमें रोहे से पीड़ित विद्यार्थीको नहीं रखना चाहिये, उसके लिये व्यवस्था अलग करनी चाहिये। यदि किसी कुटुम्ब या गृहमें रोहेका रोगी हो तो उसके रोग-विषका संसर्ग दूसरोंको न हो, इसके लिये भी योग्य सम्हाल रखना चाहिये। किसी माताको यह रोग हो तो उसे चाहिये कि, हाथ अच्छी तरह धोये बिना बच्चेकी आँखोंको न लगावें तथा अपने वस्त्रोंसे बालकका मुख और आँखोंको कभी न पोंछे। काजलका उपयोग होता है, तो प्रत्येक बालक के लिये डिब्बी पृथक् रक्खे। एवं एककी आँखमें जिस अंगुलीसे काजल लगाया हो, उस अंगुलीको साबुन-जलसे अच्छी तरह धोये बिना दूसरेकी आंखमें काजल न डालें।

रोहेके रोगको वर्त्तमानमें अति छूतका रोग माना है। इससे बड़े शहरोंमें इस रोगसे पीड़ित विद्यार्थियोंको पाठशाला या कॉलेजमें प्रवेश करनेका निषेध किया जाता है। एवं बैंक और बड़े आफिसोंमें भी इस रोग वालेको नौकरीमें नहीं रक्खा जाता।

जिस तरह अन्य मनुष्योंके लिये सम्हाल रक्खी जाती है, उसी तरह रोगीके परिचारक-परिचारिका, नेत्र परीक्षक वैद्य, सहायक वैद्य आदिको भी अति सम्हाल रखनेकी आवश्यकता है। रोहेसे पीड़ित नेत्रोंको हाथ लगाने के पश्चात् डाक्टर या कम्पाउण्डर अपने हाथोंको साबुन-जलसे धोवें और साफ तौलियेसे पोंछें। पश्चात् पारद धावनमें डुबोयें या कोलन-वाटर या अन्य किसी स्पिरिटसे धो डालें।

सूचना—यदि संसर्ग होनेसे रोग होनेका डर लगता हो तो सिल्वर नाइट्रेट या आर्जिरोलके बूँद डाल लेवें। इससे बहुधा आक्रमण नहीं हो सकेगा।

२. *रोगशामक उपचार*—यदि रोगका आरम्भ होनेपर तुरन्त रोगी नेत्रवैद्य के पास उपचारार्थ आया हो तो रोगीको टेबलपर लिटा उसकी आंखमें ऐनेथेइनके प्रवाही (१ औंसमें ५ ग्रेन) के २-२ बूँद २-२ मिनिटपर ३ बार डालें। फिर आंखको पारद धावन (१-५०००) या बोरिक धावन से धो देवें। पश्चात् सिल्वर आयोडाइडके २-२ बूँद दोनों नेत्रोंमें डालें।

सिल्वर आयोडाइडसे तत्काल जलन होकर अश्रुस्राव होने लगता है। इस जलका शोषण रूईसे कराते रहें। जितना जल आवे सबका शोषण कर लेवें। फिर सल्फोनेमाइड ६ प्रतिशतका मलहम दोनों नेत्रोंमें डालें।

डा० फूकस, जो एक समय संसारमें श्रेष्ठ कोटिके नेत्रवैद्य माने जाते थे। जिनने नेत्ररोगपर एक विशाल ग्रन्थ लिखा है, वे अपने ग्रन्थमें सिल्वर नाइट्रेट (१० ग्रेन–१ औंस जलमें) के प्रवाहीको फुरेरीसे पलकको उलट-कर लगानेका विशेष अनुरोध करते हैं। मैंने इस तरह सिल्वर नाइट्रेटका उपयोग २०से अधिक वर्षों तक किया है। कई रोगियोंको इससे निःसंदेह लाभ होता है; किन्तु इससे अति तीव्र पीड़ा होती थी। वह लगभग ४ घण्टे तक बनी रहती थी। इस हेतुसे अनेक रोगी इस औषधको लगाना स्वीकार नहीं करते थे। यह आपत्ति बार-बार आती रहती थी।

लगभग १९३० ई० से मैंने सिल्वर आयोडाइड (इसकी बनावट औषध प्रकरण पृष्ठ १६६ में दी है) के सोल्युशनका प्रयोग प्रारम्भ किया। यह सिल्वर नाइट्रेटकी अपेक्षा अधिकतर सफल और अति कम पीड़ाकर प्रतीत हुआ है। इसलिये अद्यावधि रोहके रोगियोंमें से विशेष व्यक्तियोंके लिये इसीका उपयोग करता रहता हूँ। मेरे अनुभवका लाभ लेकर रामवाड़ी होस्पिटल (बम्बई) में कार्य करने वाले अन्य सहयोगी निष्णात नेत्रवैद्योंने इसी सोल्युशनका प्रयोग प्रारम्भ किया। उन सबको इस उपचारसे अति सफलता मिलती है। रोहकी तीक्ष्ण अवस्थामें इस प्रयोग द्वारा इलाज होता है; इतना ही नहीं, बल्कि रोहके पुरानेसे पुराने रोगियोंकी चिकित्सा भी इसी पद्धतिसे करते हैं। इसका परिणाम अतिशय संतोष-प्रद आता है।

वियेनाके डाक्टर कार्ल लिण्डसर, जो लब्धप्रतिष्ठ नेत्रवैद्य हैं, उन्होंने सिल्वर नाइट्रेटका उपयोग करनेका स्पष्ट निषेध किया है। उनके मत अनुसार सिल्वर नाइट्रेट बिल्कुल लाभ नहीं पहुँचाता।

रोहका रोग जब तीक्ष्ण स्थितिमें से चिरकारी स्थितिमें रूपान्तरित होता है, तब अनेक नेत्रवैद्य नीलेथोथेका प्रयोग करते हैं। इस प्रयोगके लिये रोगीके नेत्रमें किसी चेतनाहर औषधके बूँद डालें। ५ मिनिट बाद नेत्रोंको पारद धावन (१–५०००) से धो डालें; अथवा हाइड्रार्जिरी साया-नाइड लोशन १–५००० या बोरिक धावनसे धो देवें। नेत्रको ठीक सुखा-कर पलकको उलटें। फिर ऊपर नीलेथोथेके टुकड़ेको ३–४ बार हलके हाथसे फिरावें। यदि पलक कम मोटे हों और भीतरके पिटिका या दाने अतिशय बढ़े हुए न हों तो नीलाथोथा कम लगावें। अधिक हो तो अधिक लगावें।

नीलाथोथा लगानेसे रोगीके नेत्रमें से नीले रंगका जल बहता है। यह जल जैसे-जैसे आता जाय, वैसे-वैसे रूईके फोहेसे शोषण कराते रहें। नीलाथोथा मिश्रित जलको बिल्कुल नेत्रमें न रहने देवें। यदि इस बातका योग्य सम्हाल नहीं रक्खा जायगा, तो शुक्लमण्डलको हानि पहुँचेगी; इतना ही नहीं, रोगीके नेत्र भी इस उपचारको नहीं सह सकेंगे। हो सके तबतक, नीलाथोथा प्रतिदिन एक बार लगाना चाहिये। यह उपचार महीनों तक नहीं, किन्तु वर्षों तक चालू रखनेके लिये उत्तम कोटिके नेत्रवैद्य अति आग्रहपूर्वक कहते हैं। विशेषज्ञोंके मत अनुसार यह उपचार कम से कम दो वर्ष तक चालू रक्खा जायगा, तो ही रोहेका रोग जड़मूलसे दूर हो सकेगा। यदि कुछ दिनों तक लगाकर उपचार बन्द कर दिया जायगा, तो रोग पुनः प्रकाशित हो जायगा।

यदि प्रकृति भेदसे किसीको नीलाथोथा अनुकूल न रहे या असह्य मालूम हो तो नीलाथोथा और फिटकरी, दोनोंके कपड़छन चूर्णको जलमें मिलाकर शलाका बना लेवें। ऐसी शलाका तैयार भी मिलती है। उसे लेपिस डिवाइनिस (Lepis Divinus) कहते हैं। जो मर्क कम्पनीकी बनी हुई है, उसका प्रयोग नीलेथोथेकी अपेक्षा कम उग्र है। इस औषधसे भी अनेक रोगियोंको अच्छा लाभ पहुँचा है।

जब रोग शमन होने लगे उस समय नीलाथोथा अनुकूल न रहे तो नीलेथोथेके मलहम (१ औंस वेसलिनमें २॥ से ५ ग्रेन) या कॉपर साइट्रेटके मलहम (१ औंसमें ५० ग्रेन) का अञ्जन करावें। अथवा एक औंस ग्लिसरीनमें ५० ग्रेन नीलाथोथा मिला मिश्रण करके रोगीको देवें। रोगी उसमेंसे एक बूँद निकाल १५-३० बूँद जलमें मिला प्रवाही कर उसकी बूँद डालते रहें।

जिस तरह नीलाथोथा पलक को उलट कर लगाया जाता है, उसी तरह फिटकिरी की शलाका का भी प्रयोग किया जाता है। कितनेक रोगियोंको नीलाथोथा या उसकी कोई भी बनावट अनुकूल नहीं रहती। उनको १ औंस ग्लिसरीन में ६० ग्रेन टेनिक एसिड मिला शलाका से अंजन कराने से लाभ पहुँचता है।

सिल्वर नाइट्रेट की अन्य बनावट—आर्जिरोल या प्रोटार्गोल आदि रोहे पर अधिक काम नहीं देतीं। अवश्य इन दोनों औषधियोंसे रोगी को कुछ समय के लिये शान्ति मिल जाती है। रोगी को भास होता है कि रोग मिट गया, किन्तु कुछ समय रहकर रोग पुनः उपस्थित हो जाता है। आर्जिरोल या प्रोटार्गोल से रोग दूर नहीं हो सकता; यह निश्चित हुआ

है। उपरोक्त सिल्वर नाइट्रेट और सिल्वर आयोडाइडका उपचार दीर्घकाल पर्यन्त करना पड़ता है। इससे रोगीके नेत्रके भीतर का भाग, विशेषतः दोनों पुट का आवरण सदाके लिये काला (Argyrosis) हो जाता है। इनमें सिल्वर नाइट्रेटकी अपेक्षा सिल्वर आयोडाइडमें कालापन लाने का सम्भव बहुत कम है।

कितनेक रोगियों को जब नीलाथोथा अनुकूल नहीं रहता, तब मर्क्युरी परक्लोराइड (रसकर्पूर) के धावन (१ औंस जलमें ½ ग्रेन) में फुरेरी डूबो, पलक को उलट कर दिन में १ बार लगाया जाता है। इनके अतिरिक्त चौलमोगरा का तेल अञ्जन कराने से भी अनेक रोगियों को लाभ पहुँचा है।

इन उपचारोंसे यदि लाभ न हो, रोहेके दाने अत्यन्त हों, तो उन दानोंको यन्त्रसे दबाकर निकाल डालने पर रोग शमन होने में सहायता मिलती है। इस क्रियाके लिये विशेष प्रकार का चिमटा आता है, जिसे नेपका आवर्त्तक संदंशक कहते हैं। (चित्र नं० ६६ ग्रन्थके अन्त में देखें)।

इस चिमटेमें ऊपरके हिस्सेमें दो खुरदरी गोल फिरने वाली शलाकाएँ सज्जित की हैं। इनके बीचमें पलकको दोहरा किया जाता है। फिर चिमटेके दस्ते को दबाने से ये दोनों शलाकाएँ पलक पर ठीक बैठ जाती हैं। फिर इस चिमटे को आगे खेंचें तो, दोनों शलाकाओंके बीच रोहे के दाने दबकर निकल आवेंगे। इस तरह ८-१० बार चिमटे फिराने से दानों में से अनेक दाने नष्ट हो जाते हैं (३० वें प्रकरण में चित्र नं० २१९ देखें)। दाने तोड़ देने पर सिल्वर आयोडाइडका उपचार पहले लिखे अनुसार चालू रक्खें।

कितनेक नेत्रवैद्य चिमटे का उपयोग नहीं करते, वे दानोंके सिर को घिस डालते हैं। इसके लिये एक विशेष प्रकारका अस्त्र आता है, जिसे पोथकी घर्षक (Rasp) कहते हैं।

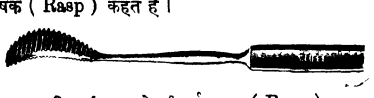

चित्र नं० ६७ पोथकी घर्षक यन्त्र (Rasp).

इस यन्त्र का उपयोग करने के लिये रोगीको टेबुल पर लिटा, नेत्र में चेतनाहर औषध डाल, पलकको पारद धावनसे धोकर साफ करें। फिर पलक को उलट जो दाने प्रतीत हों उनको इस यन्त्र द्वारा सामान्यतः घिस देवें। ऐसा करने पर दाने का शिखर टूट जाता है। फिर सिल्वर आयोडाइड जैसी औषध अच्छा कार्य करती है।

इस तरह रोहेको दबाकर निकाल डालने या घिस कर साफ करने के अतिरिक्त उनका ध्वंस करने के अन्य ३ उपाय व्यवहार में आते हैं। कार्बन डायोक्साइड स्नो (Carbon Dioxide Snow), डायाथर्मी या सामान्य बिजली से चलती दम्भक सूची द्वारा, और रेडियम से।

कार्बन डायोक्साइड स्नो—कितनेक वर्ष पहले अनेक नेत्रवैद्य इस उपचारको प्रयोजित करते थे। किन्तु दीर्घकालके अनुभवके पश्चात् इच्छित सफलता न मिलनेसे वर्त्तमानमें इसका उपयोग अति कम होगया है। कार्बोन डायोक्साइड एक प्रकारकी विषाक्त गेस है। यह गेस सौडावाटर बनानेमें व्यवहृत होती है। यह लोहेके गोल ठोस लम्बे वर्तनोंमें भरी हुई मिलती है। जब उसका बर्फ बनाना हो तब विशेष प्रकारके यन्त्रमेंसे वायुको निकालने पर उसके सिरेपर ठोस बर्फ शलाकाके रूपमें बन जाता है। उस शलाकामें जलानेका गुण है। पलकके भीतरके भागमें लगाने पर रोहेके दाने जल जाते हैं; किन्तु कितनेक रोगियोंको इससे हानि होती है। इस हेतुसे वर्त्तमानमें इसका उपयोग नहीं होता।

कितनेक नेत्रवैद्य रोहेको डायाथर्मी या दंभक यन्त्रसे जलाते हैं। रेडियम का प्रयोग भी किया गया है। किन्तु उनसे रोह दूर नहीं हुए। परिणाममें इन सब उपचारोंका त्याग हुआ है।

शस्त्रोपचार—कितनेक नेत्रवैद्य औषधोपचारसे बिल्कुल निराश हुए, जिससे उन्होंने रोहे वाले नेत्रश्लेष्मावरणका भाग और उसके नीचेके भागों को जड़मूलसे निकाल देनेकी शस्त्रक्रिया का प्रयोग किया। परिणाममें उनको कितनेक रोगियों पर आशातीत लाभ मिला। किन्तु हमारा अनुभव यह है, कि जबतक औषधोपचारसे रोहे दूर हो सकते हों, तबतक शस्त्रोपचारका अवलम्बन नहीं लेना चाहिये। कम-से-कम एक वर्ष तक नियमित औषधोपचार करने पर जिन रोगियोंके रोहे दूर न हो सकें, उनके लिये ही अस्त्रचिकित्साका विचार करना चाहिये। इस चिकित्सामें मुख्य कार्य यह है कि पुटके भागमें रहे हुए रोहे वाले आवरण और उसके नीचेके कुछ भागको कैंची या चाकूसे काट देना। यदि नेत्र कोमलास्थि भी प्रभावित होगया हो तो उसे भी निकाल डालना चाहिये। इस शस्त्रक्रियाके परिणाममें अनेक रोगियोंकी आंख कुरूप होजाती हैं।

रोहेके उपद्रव-सफेदी की चिकित्सा—रोहेके उपद्रवोंमें मुख्य सफेदी है। उसके लक्षण और चिह्न पहिले दिये जा चुके हैं। वह सफेदी (Pannus) सामान्य हो, तो रोहेके उपचारसे ही वह दूर हो जाती है। किन्तु वह

अधिक गाढ़ी हो, तो उपचार द्वारा रोहके शमन होजाने पर भी वह नष्ट नहीं होती। इससे उसके लिये विशेष उपचार की आवश्यकता है। इसके लिये मुख्य ४ उपाय हैं।

१. यलो ऑक्साइड ऑफ मर्क्युरीका मलहम (पीला मलहम)।

२. सायनाइड ऑफ मर्क्युरीका नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण।

३. चिरमीके क्वाथसे उपचार।

४. शस्त्रक्रिया।

१. पीला मलहम—यह मलहम रात्रिको सोनेके आध घण्टे पहले अंजन कर लेवें। प्रारम्भमें १ प्रतिशत अर्थात् १ औंस वेसलिनमें ५ ग्रेन वाला। फिर जैसे-जैसे सहन होता जाय वैसे-वैसे तेज बनाते जायँ। अधिकसे अधिक ८ प्रतिशत वाला मलहम प्रयुक्त करें।

सूचना—(अ) इस मलहमके प्रयोगसे नेत्रमें किञ्चित् भी लाली बढ़ जाय, या शुक्ल मण्डलमें क्षत प्रतीत हों तो इसका प्रयोग तत्काल बन्द कर देना चाहिये।

(आ) इस मलहमके उपयोगकालमें दिनमें एकाध बार एट्रोपिन १ प्रतिशतके प्रवाही की बूंद डालना चाहिये। कारण, सफेदीके साथ बहुधा तारामण्डलका प्रदाह भी होता है। यदि एट्रोपिनका प्रयोग पृथक् न करना हो तो पीले मलहमके भीतर भी एट्रोपिन मिला सकते हैं।

२. साइनाइड ऑफ मर्क्युरी—इसका अन्तःक्षेपण नेत्रश्लेष्मावरणमें किया जाता है। इंजेक्शन किस तरह करना चाहिये, यह पहले औषध प्रकरण में लिखा गया है। प्रायः मर्क्युरी साइनाइड १–१००० के परिमाणमें व्यवहृत होता है। इनकी केवल २-३ बूंद श्लेष्मावरणके नीचे प्रवेशित कराते हैं। इस अन्तःक्षेपणसे नेत्र और पलक पर शोथ आ जाता है। इतना ही नहीं, रोगीको अतिशय पीड़ा भी होती है। वह पीड़ा हो सके उतनी कम हो, इसके लिये सायनाइड ऑफ मर्क्युरीके प्रवाहीके साथ एकोइन प्रवाहीकी १-२ बूंद मिला देना चाहिये। जो शोथ आता है, वह लगभग १ सप्ताहमें उतर जाता है। अतः सप्ताहके पश्चात् पुनः अन्तःक्षेपण दूसरी बार करे। प्रायः २ इंजेक्शन ही पूर्ण होते हैं। कितनेक रोगियोंको ३-४ इंजेक्शन भी करने पड़ते हैं। इसके इंजेक्शनसे नेत्रश्लेष्मावरण उसके नीचेके भागके साथ चिपक जाता है। इससे सफेदीमें जो रक्तप्रणालियाँ निर्माण हुई हों, वे सब आकुञ्चित हो जाती हैं; तथा सफेदी साफ हो जाती है।

३. चिरमीका क्वाथ—यदि उपरोक्त उपचारसे लाभ न हो तो चिरमी (Jequirity seeds) के ३ से ५ प्रतिशतके हिमकी बूँद डाली जाती हैं। इससे सफेदी नष्ट हो जाती है। यह उपचार निम्नानुसार करना चाहिये:—

चिरमीके चूर्ण १५ ग्रेनको १ औंस जलमें मिला काँचके बर्त्तनमें रात्रि को भिगो देवें। सुबह कपड़ेसे छानकर जलको बोतलमें भर लेवें। उसमें से २-२ बूँद रोज सुबह एक बार डालते रहें। किन्तु कितनेक रोगियोंमें एक दिनके प्रयोगसे ही नेत्रमें लाली आकर जल गिरने लगता है और अभिष्यन्दके समान सब लक्षण उपस्थित होते हैं। दूसरे दिन बूँद डालने पर ये लक्षण और बढ़ जाते हैं। यदि तीसरे दिन नेत्र अच्छी तरह सूजे हुए और अति लाल प्रतीत हों, तो यह बूंद न डालें। किन्तु आर्जिरोलकी बूंद डालें और नेत्रके रक्तसंग्रह को शमन होने देवें। प्रायः एक सप्ताह बाद सब शोथ शमन हो जाता है। एवं सफेदी भी साफ होने लगती है।

सूचना—किसी-किसी रोगीको चिरमीके हिमसे नेत्रमें क्षत हो जाते हैं; और दृष्टिको भी हानि पहुँच जाती है। अतः यह उपचार अति सम्हाल पूर्वक करना चाहिये।

जर्मनीकी मर्क कम्पनीने इस औषध में से जेक्वीरिटिन (Jequritin) नामक अर्क तैयार किया है। उसमें १, २, ३, ४ नम्बर रक्खे हैं। उसका प्रयोग करना हो तो पहले नं० १ का प्रयोग करें। उससे विशेष लाली न आवे, तो नं० २ का प्रयोग करें। उससे भी योग्य असर न हो तो नं० ३ को प्रयुक्त करें। इन तीन नम्बरों में से किसी भी नम्बर वाली औषधसे चाहिये उससे अधिक लाली उपस्थित हुई हो, तो नं० ४ वाली औषधकी बूंद डालने पर वह शमन हो जाती है।

४. नेत्रश्लेष्मावरण छेदन (Peritomy)—उपरोक्त सब उपाय करने पर भी योग्य लाभ न हुआ हो और सफेदी अधिक गाढ़ी हो तो नेत्र-श्लेष्मावरणका छेदन करना पड़ता है। इस अस्त्र चिकित्सा करने के पहले रोगीके नेत्रको चेतनाहर औषधसे स्पर्शज्ञान से रहित बनाना चाहिये। फिर कीटाणु नाशक धावन से नेत्र को धो देवें। पश्चात् नेत्रको खुला रखने के लिये कमानी (Eye speculum) लगा लेवें। फिर नेत्र को स्थिर करनेकी चिमटीसे सफेदीके बाहरके किनारे से कुछ बाहरकी ओर रहे हुए नेत्रश्लेष्मावरण को पकड़ ऊँचाकर कैंचीसे काट देवें। इस काटमें कैंची को प्रवेश करा अर्द्धगोलाकार काट शुक्लमण्डलके किनारे से दो मिलीमीटर ऊँचे बिल्कुल सफेदीके भीतरके किनारेसे कुछ भीतर तक ले जायँ। उस काट में नेत्रश्लेष्मावरण और उस पर आये हुए स्पञ्ज (Sponge) सदृश पदार्थ

कट जाना चाहिये। यह शस्त्रक्रिया हो जाने पर नेत्रमें मर्क्युरोक्रोमकी २-२ बूंद डालें; और नेत्रको खुले ही रहने देवें। इस क्रियासे प्रायः गाढ़ी सफेदी भी कम हो जाती है। फिर तीसरे दिन से रोहेका उपचार जो चलता हो, उसका पुनः आरम्भ करें।

रोहेके उपद्रवरूप शुक्लमण्डलके क्षत आदि ६ विक्रिया :—

१. शुक्लमण्डलके क्षत और शुक्र—Corneal ulcers and opacities.
२. परवाल आना और पलकका भीतर-बाहर मुड़ जाना—Trichiasis, Entropion, Ectropion.
३. पलकवाराका पाक—Marginal Blepharitis.
४. पलक और गोलककी संलग्नता—Symblepharon.
५. नेत्रश्लेष्मावरणकी शुष्कता—Xerosis.
६. अश्रुवाशय प्रदाह—Dacryo-cystitis.

इन सबका उपचार आगे प्रत्येक रोगके पृथक वर्णनके साथ किया जायगा।

कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह।

(वसन्त ऋतु जनित नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह—Spring Catarrh.)

इस रोगको वसन्त ऋतुमें होनेसे अंग्रेज और जर्मन ग्रन्थकारोंने 'स्प्रिंग' विशेषण लगाया है। यूरोप जैसे शीतप्रधान देशमें यह रोग वसन्त ऋतु अर्थात् गर्मीके दिनोंके प्रारम्भमें होता है। अतः यूरोपके विद्वानोंने सामान्य जनतामें प्रचलित नाम ही रक्खा है; अभी तक शास्त्रीय विशेष संज्ञा नहीं दी। भारतमें यह रोग गर्मीके दिनोंमें हो, ऐसा नियम नहीं है। इस रोगमें कण्डू प्रधान लक्षण होनेसे इसे "कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह" संज्ञा दी है। कण्डू विशेषतः पलकावरणके भीतर होती है (चित्र नं० ७० में देखें एवं गोलकके श्लेष्मावरणमें कण्डूमय विकृति चि० नं० ७१ में देखें)।

इतिहास—यह एक चिरकारी व्याधि है। प्रति वर्ष किसी-न-किसी ऋतुमें होजाती है। शीतकालकी ऋतु आने पर या रोगी शीतल जलवायु वाले प्रदेशमें चले जानेपर यह रोग अदृश्य होजाता है। पुनः दूसरे वर्षमें भी लगभग उन दिनोंमें अर्थात् गर्मीके दिनोंके प्रारम्भमें पुनः आक्रमण करता है। इस तरह वर्षों तक आक्रमण करके शमन हो जाता है। फिर नेत्रोंमें किसी भी प्रकारकी हानि नहीं रहती। भारतमें इस रोगसे पीड़ित बहुत कम मिलते हैं।

लक्षण और चिह्न—इस रोगका मुख्य लक्षण एक है। वह यह कि, रोगीके नेत्रमें अति कण्डू आती है। यदि एक बार खुजली उपस्थित हुई, तो रोगी कितनेक समय तक नेत्रको मसलता ही रहता है। नेत्रमें से कुछ जल निकलता है। इस जलमें चिपचिपापन नहीं होता। अतः रोगीके नेत्र सुबह उठनेपर नहीं चिपक जाते। रोगीकी आंख प्रकाशको कम सहन कर सकती है। कण्डू जिस तरह स्वयमेव उपस्थित होती है, उसी तरह नेत्रवैद्य भी उसे प्रकाशित कर सकते हैं। यदि नेत्रवैद्य रोगीका ऊर्ध्व पलक उसके गोलकपर शीघ्र २-४ बार फिरावें, या पलकको उलटकर उसे कांचकी शलाकासे कुछ घिसें, तो रोगीके नेत्रमें खुजली उत्पन्न हो जाती है।

इस रोगमें नेत्रके भीतर दो प्रकारका रूपान्तर प्रतीत होता है। यदि रोग केवल पलकमें ही हो तो पलकको उलटकर देखनेपर उसमें, विशेषतः ऊपरके पलकके भीतर बहुसंख्य पिटिकाएं प्रतीत होती हैं। ये पिटिकाएं जैसे कि ठीक पंक्ति बद्ध सुसज्जित की हों, उस तरह रहती हैं। ये पिटिकाएं चिपटी, कठिन और कुछ सफेद रंगकी होती हैं। बड़े शहरोंमें जहां वर्षाके जलका वहन अति प्रबल वेगपूर्वक होता है, वहां रास्तेपर शिलाएं नियमित बिछानेसे जैसा देखाव होता है; वैसा देखाव रोगीके पलकमें इन पिटिकाओंकी सजावटसे भासता है। इन पिटिकाओंपर कुछ दूध लगाया हो उस तरह सफेदी दीखती है। इन पिटिकाओंके चारों ओर श्लेष्मावरण मोटा हो जाता है। गर्मीकी ऋतुमें ये पिटिकाएं बड़ी होजाती हैं, और शीतकालकी ऋतु आनेपर कम होकर मुरझा जाती हैं।

यदि रोग गोलकके श्लेष्मावरणमें हो, तो देखाव भिन्न होजाता है। उसमें शुक्ल मण्डलके किनारेके चारों ओर बहुसंख्य पिटिकाक्षतके समान उभड़े हुए दाने निकल आते हैं। ये दाने शुक्ल मण्डलके ऊपर नहीं होते, किन्तु शुक्ल मण्डलका किनारा उसमें घिरा हुआ रहता है। ये दाने कुछ लाल पिंगल होते हैं। ये समस्त शुक्ल मण्डलके चारों ओर होते हैं या कभी कुछ थोड़ेसे हिस्सेमें होते हैं और अन्य भाग बिल्कुल साफ होता है। प्रायः दोनों नेत्रोंमें रोग समानही होता है। १० से ३० वर्ष की आयु वाले पर रोगका आक्रमण अधिक होता है। स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक पीड़ित होते हैं।

यदि नेत्रस्रावको कांचपट्टीपर ले, स्पिरिटकी बत्तीकी ज्वालापर स्थिर कर लेशमेनके इयोसिन मेथिलिन ब्ल्यू कम्पाउण्ड (Leishman's Eosin Methylene blue compound) रंगसे रंजितकर अणुवीक्षण यन्त्रसे

परीक्षा की जाय, तो बहुसंख्य लालरंगके अणु इयोसिनोफाइल्स (Eosinophiles) प्रतीत होते हैं।

कारण—इस रोगकी उत्पत्तिका कारण अद्यापि पर्यन्त विद्वान् नेत्रवैद्योंसे निर्णित नहीं हुआ। कितनेक नेत्रवैद्य इसे छूतका रोग मानते हैं; अर्थात् एक रोगीको होनेपर उसका संसर्ग दूसरे स्वस्थ नेत्रवालेको होनेसे यह रोग होजाता है। अन्य नेत्रवैद्य इसे बिल्कुल संक्रामक नहीं मानते। कितनेक नेत्रवैद्य, विशेषतः यूरोप, अमेरिकाके शीतल प्रदेशमें रहनेवाले ऐसा मानते हैं कि, सूर्यका प्रकाश नेत्रको लगनेसे यह रोग होता है। अपने भारतवर्षमें जहाँ १० मास तक निरन्तर सूर्यका ताप गिरता है, वहाँ इस रोग के रोगी यूरोप और अमेरिकाकी अपेक्षा बहुत कम प्रतीत होते हैं। इसपरसे निर्णित होता है कि सूर्यके तापके हेतुसे यह रोग नहीं होता।

क्रम—यह रोग प्रत्येक गर्मीकी ऋतुके आरम्भमें उपस्थित होता है और शीत ऋतुमें निवृत्त होजाता है। उसी तरह रोगीको किसी पहाड़के शीतल स्थान—मंसूरी, शिमला, नैनीताल, दार्जिलिंग, उटकमण्ड, महाबलेश्वर आदि स्थानोंमें, जहाँ ग्रीष्मऋतुमें भी उष्णता नहीं होती, वहाँ ले जानेसे रोगका शीघ्र दमन होजाता है। एवं शीतकाल आनेपर भी रोग दब जाता है और फिर गर्मीका आरम्भ होनेपर पुनः रोग आक्रमण कर देता है। इस तरह वर्षों तक होता रहता है और स्वयमेव या योग्य उपचार से प्रशमन होजाता है। रोग शमन होजाने पर नेत्रमें किसी भी प्रकारकी विक्रिया या हानि शेष नहीं रहती; या कोई विशेष चिह्न भी नहीं रहता। एवं दृष्टिको भी किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती।

पार्थक्यदर्शक रोगविनिर्णय—इस रोगका निर्णय करना सरल है। इस रोगसे मिलते दो रोग ही हैं। यदि यह रोग पलकके आवरणमें ही हो, तो उसके चिह्न रोहेसे मिलते हैं। यदि गोलक परके आवरणमें रोग हो, तो नेत्रका देखाव कुछ अंशमें नेत्रगोलकके पिटिकाक्षतके समान भासता है।

रोहेके रोगसे इसे पृथक् करनेके लिये नेत्रदाने या पिटिकाकी परीक्षा करनी चाहिये। यदि दाने रक्ताभ, नुकीले, व्यवस्था रहित अनियमित हों, तो वे रोहे हैं। दाने चिपटे, पंक्तिबद्ध, सुसज्जित और श्वेताभ हों तो वे इस रोगका निर्णय कराते हैं। फिर भी संदेह रहता हो, तो नेत्रस्रावकी परीक्षा करके निर्णय करें। इयोसिनोफाइल प्रतीत हों तो रोगविनिर्णय यथार्थ माना जायगा।

नेत्रगोलकपर रोग होनेपर पिटिकाक्षतका भ्रम होता है। पिटिकाक्षतमें पिटिकाएं शुक्लमण्डलके किनारे पर होती हैं, यह सत्य है; किन्तु वे

नुकीली फिर फूटकर क्षतरूप बनी हुई होती हैं। नेत्रमें लाली हो, वह त्रिकोणाकार होती है और उसके भीतर कुछ दिनोंमें शुक्लमण्डलपर क्षत होजाते हैं, फिर वे योग्य उपचारसे कुछ दिनोंमें शमन होजाते हैं। इसके विपरीत इस रोगमें उपस्थित पिटिकाएं स्पष्ट नहीं होतीं। नेत्रश्लेष्माधरणका भाग ही उभड़ आता है। जिन्होंने एक समय इन दोनों रोगोंवाले नेत्रोंकी परीक्षा की होगी, वे इन दोनों रोगोंकी पृथक्ताका निर्णय तत्काल कर लेते हैं।

उपचार—इस रोगका कोई विशेष निर्णीत उपाय नहीं है। फिर भी रोगीको आराम होनेके लिये निम्न उपायोंका अवलम्बन लेना चाहियेः—

१. कोकैन ६ ग्रेन, एड्रिनेलिन क्लोराइड सोल्युशन ३० बूंद, गुलाब-जल १ औंस मिला लेवें। इसमेंसे ३-४ बार बूंद डालें।

२. रोगीको अति करण्डू आती हो तो एसेटिक एसिड २ बूंद गुलाब जल १ औंसमें मिलाकर उसकी बूंद दिनमें ३ बार डालें। एसेटिक एसिड २ बूंदसे बढ़ाकर शनैः-शनैः २० बूंद तक मिला सकते हैं।

३. फेरोफार्स (चूर्ण) का नेत्रमें अंजन करें। दिनमें १ ही बार।

४. पीला मलहम नेत्रमें डालें। इससे गोलक पक्का रोग कम होता है।

५. हमारे अनुभवमें निम्न औषधियोंके मिश्रणका अंजन हितकारक सिद्ध हुआ है। जिंक आक्साइड, बोरिक एसिड, क्विनाइन सेलिसिलेट, एण्टीपाइरिन और ओर्थोफार्मका मिश्रण। इनकी मात्रा और बनानेकी विधि पहले रोग प्रकरणमें दी हैं।

रोगीके नेत्रमें ऐनेथइनके प्रवाहीकी बूंद डालें। नेत्रको चेतना रहित करें। फिर बोरिक धावनसे धो डालें। फिर पलकको उलटकर उपरोक्त मिश्रण को घिसें। कुछ समय पश्चात् पीला मलहम डालें।

६. इन सब उपचारोंसे रोग न मिटे तो रेडियमका उपयोग करें। इसके प्रयोगसे अनेकोंको लाभ होता है।

७. रेडियमके अतिरिक्त कार्बन डायोक्साइड स्नो या डायाथर्मीसे दानेको जला देनेपर अनेकोंके रोग निर्मूल हो जाते हैं।

सूचना—(१) प्रकाश सहन न हो, तो इसके लिये काले कांच या क्रुक्स कांच (लेन्स) नं० २ B के चश्मे पहननेसे रोगीको कष्ट प्रतीत नहीं होता।

(२) जिनकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो, उनको ग्रीष्म ऋतुमें शीतल पहाड़ोंपर रहना चाहिये।

चि० ६०, पृ० ३१९
शुक्लमण्डलका क्षत।

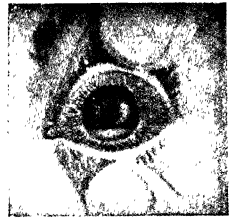

चि० ६१, पृ० ३१२
शुक्लमण्डलका परिसरगशीलक्षत

चि० ६२, पृ० ३५१
कनीनिका अनुबन्धयुक्त शुक्ल।

चि० ६३, पृ० ३७६
सफेदी।

चि० ६४, पृ० ३२८
पिटिकाक्षतज शुक्लमण्डलव्रण

चि० ६५, पृ० ३३९
शुक्लमण्डलका गर्भप्रदाह।

चि. ६८, पृ. ६१८, पीत पिटिका।

चि. ६९, पृ. ३७४ रोप्यक्षारज श्यामता।

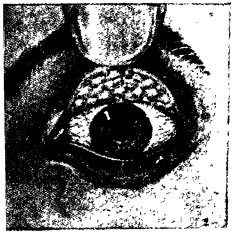

चि. ७०, पृ. २९१
पलकावरणका कण्डूमयप्रदाह।

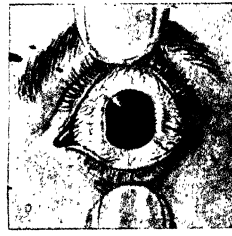

चि. ७१, पृ. २९१
गोलकावरणका कण्डूमयप्रदाह।

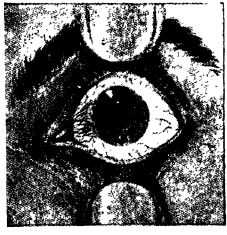

चि. ७२, पृ. ३२६.
शुक्लमण्डलका परिभिन्न

चि. ७३, पृ. ३३३
[illegible]

ग्यारहवां प्रकरण।

शुक्लमंडलके रोग।

(Diseases of Cornea)

शुक्लमण्डल आरोग्य स्थितिमें है या उसमें कुछ अस्वाभाविक स्थिति हुई है, यह जाननेके लिये शुक्लमण्डलकी योग्य सूक्ष्म परीक्षा करनी चाहिये। परीक्षा-विधि, यन्त्र आदि सम्बन्ध और औषधियोंकी उपयोग विधि, ये सब पहले परीक्षा प्रकरणमें लिखा गया है। (तथापि शुक्लमण्डलके क्षतकी परीक्षा किस तरह करनी चाहिये। इस सम्बन्धमें कुछ वर्णन किया जायगा।)

शुक्लमण्डलके रोगोंका वर्गीकरणः—

(१) जन्मजात शुक्लमण्डलकी अस्वाभाविकता—Congenital Anomalies of Cornea.

(२) शुक्लमण्डल प्रदाह—Inflammation of Cornea–Keratitis.
I. क्षतसहित प्रदाह—Ulcerative Karatitis.
II. क्षतरहित प्रदाह—Nonulcerative Keratitis.

(३) शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकता–शुक्र—Opacities of Cornea.

(४) शुक्लमण्डलकी आगन्तुक व्यथा—Injuries of Cornea.

(५) शुक्लमण्डलके पोषणकी न्यूनता जनित शोष या अपक्रान्ति—Dystrophies or degenerations of Cornea.

(६) शुक्लमण्डलका प्रसारण—Ectasia of Cornea.

(७) शुक्लमण्डलमें अर्बुद—Tumours of Cornea.

(१) जन्मजात शुक्लमण्डलकी अस्वाभाविकता।

(Congenitial Anomalies of Cornea.)

तुरन्तके जन्मे हुए शिशुके शुक्लमण्डलमें जो अस्वाभाविक स्थिति प्रतीत होती हैं, उनमें मुख्य ६ प्रकार निम्नानुसार हैं :—

अ. शुक्र–फूला—Corneal opacities.

आ. तारामण्डल और शुक्लमण्डलकी वृत्तिकी संलग्नता—Anterior Synechia.

इ. अधिमन्थ—Congenital Glaucoma.

ई. शुक्लमण्डलकी विशालता—Megalo-Cornea.

उ. शुक्लमण्डलकी लघुता—Micro-Cornea.

ऊ. शंकाकार (शुण्डाकार), शुक्लमण्डल—Keratoconus.

ये सब स्थितियाँ कभी-कभी किसी-किसी शिशुमें दृष्टिगोचर होती हैं। गर्भावस्थाके भीतर नेत्रमें उपस्थित प्रदाह या विकासकी अपूर्णताके हेतुसे ऐसे परिवर्त्तन होते हैं।

(२) शुक्लमण्डल प्रदाह।

(Inflammation of Cornea–Keratitis.)

इस प्रदाहमें क्षत सहित और क्षत रहित, ऐसे २ उपविभाग हैं। इनका वर्णन क्रमशः करते हैं।

I. क्षतसहित शुक्लमण्डलप्रदाह

(Ulcerative Keratitis–Ulcers of Cornea.)

शुक्लमण्डलके क्षतमें २ प्रकार हैं। A प्राथमिक–मूलभूत (Primary); और B. गौण–अनुषंगी (Secondary , इन दोनों प्रकारोंका वर्णन करनेके पहले शुक्लमण्डलके क्षतके सामान्य निदान, परीक्षा आदि का उल्लेख करते हैं।

परीक्षोपयोगी विचार—जिस नेत्रमें क्षत हो उस नेत्रकी परीक्षा किस तरह करनी चाहिये और क्या प्रतीत होगा ? यह जानना महत्त्वका है। क्षतके लिये शुक्लमण्डलको पहले केवल नेत्रसे देखें। फिर दूरदर्शक यन्त्र, कांच या शुक्लमण्डलके अणुवीक्षण यन्त्रका उपयोग करना चाहिये। इस परीक्षाके पहले रोगीके नेत्रमें फ्ल्युओसिनके प्रवाहीकी बूँद डालें। दो मिनिट बाद बोरिक धावनसे नेत्रको धो देवें। ऐसा करने पर जो भाग नीरोगी होगा, उसे रंग नहीं चढ़ेगा और क्षतमय प्रदेश पीला–नीला हो जायगा। यदि क्षत बड़ा होगा तो सामान्यतः नेत्रसे भी प्रतीत हो सकेगा; किन्तु बिल्कुल सूक्ष्म होगा, तो उसे देखनेके लिये नं० १३ से १६ या २० का बहिर्गोल कांच लेवें और रोगीको खिड़की या दरवाजेके पास खड़ा रक्खें या कुर्सी पर बैठावें। नेत्रको बांये हाथके अंगुष्ठ और अंगुलीसे खुला करें और बहिर्गोल कांचसे प्रकाश डालें। इससे शुक्लमण्डलका क्षत

चाहे जितना छोटा हो तो भी दृष्टिगोचर हो सकेगा। यदि आवश्यकता रहे तो दूरदर्शक यन्त्र या उस भागको बृहत् दर्शाने वाले साधनका उपयोग करना चाहिये। रोगीको खिड़कीके पास न बैठाना हो और सूर्यके प्रकाश का उपयोग न करना हो तो अँधेरे कमरेमें ले जावें और बहिर्गोल कांच द्वारा बिजलीका प्रकाश नेत्रके भीतर केन्द्रित करें, तो भी उसी तरह सूक्ष्म क्षत भी स्पष्ट दृष्टिगोचर हो सकेंगे।

दूसरी रीति यह है कि, रोगीको स्टूल या कुर्सी पर बैठा किसी खिड़कीका प्रतिबिम्ब शुक्लमण्डलपर गिरे, ऐसी योजना करें। प्रतिबिम्ब पृथक्-पृथक् भागों पर गिरता रहे और वहाँ देखते रहें। जिस स्थान पर क्षत होगा या शुक्ल मण्डलमें कुछ गड्ढा जैसा होगा, उस स्थान पर इस प्रतिबिम्बके आकारमें अन्तर होता हुआ प्रतीत होगा।

शुक्लमण्डलके क्षतके उपरोक्त चिह्नके अतिरिक्त यदि क्षत पूयजनक कीटाणुओंसे हुआ होगा, तो क्षतकी सतह पर पूयकी प्रतीति होगी। यदि ऐसे कीटाणुओंसे न हुआ होगा तो क्षत सतह साफ भासेगी। शुक्ल मण्डलके क्षतके साथ अनेक बार उपद्रव रूपसे जलमय रसके पूर्व खण्डमें पूयसंग्रह (Hypopyon) हो जाता है। यह स्थिति इस रोगमें विशेषांशमें उपस्थित होती है।

नेत्रवैद्य रोगीको सामने बैठा, नेत्रोंको खोलकर देखें तो शुक्लमंडल की परिधिका निम्न श्वेताभ प्रदेश भासता है। वह भाग परिधिकी ओर गोल तथा ऊपर की ओर सीधी पंक्तिके समान होता है। यदि रोगी को लेटाकर या उसका शिर पीठकी ओर झुकाकर देखे तो गुरुत्वाकर्षणके नियमानुसार सफेदीपना अदृश्य हो जाता है। एवं तारामण्डलका पर्दा ऊपर आच्छादित हो जाता है। इससे वह पर्दा कुछ हलके रंगका होजाता है। इस परीक्षासे जलमय रसके पूर्व खण्डमें पूय है या नहीं, यह भी दृष्टिगोचर हो जायगा। उस पूयमें बहुधा पूयोत्पादक कीटाणु नहीं होता।

वैद्यक शास्त्रके नियम अनुसार देहके किसी भी भागमें पूय होने पर उसके भीतर पूयजनक कीटाणु होना चाहिये। केवल जलमय रसके पूर्वखण्ड का पूय अपवाद रूप है। अतः इस स्थानमें पूय कीटाणु रहित होता है। जिस तरह देहके किसी भी भागमेंसे संगृहीत पूय स्थानका भेदन करके बाहर निकलता है या शस्त्र क्रिया द्वारा उसे मार्ग कर देना पड़ता है, उस तरह इस स्थानके पूयके लिये प्रायः ऐसी आवश्यकता नहीं रहती। वह निर्जन्तुक होनेसे बहुधा शोषित होकर अदृश्य होजाता है। अतः उस पूयको निकालनेके लिये विशेषतः नेत्र पर छेद नहीं किया जाता। सामा--

न्यतः ऐसी कल्पना उत्पन्न हो सकती है कि यह पूय शुक्लमण्डलके क्षत मेंसे उत्पन्न हुआ होगा; किन्तु ऐसा नहीं होता वह पूय तारामण्डलके पर्दामें रही हुई धमनियों और तन्तु समूहोंमेंसे आता है।

लक्षण और चिह्न—रोगीके नेत्रमें वेदना बनी रहती है। यह वेदना क्षत गहरा होने पर असह्य होती है। रोगीको रात्रिको निद्रा नहीं मिलती। इस वेदनाके अतिरिक्त शिरदर्द होता है। शिरदर्द कितनेक रोगियोंमें असह्य होता है। नेत्रमेंसे अश्रु स्राव होता है; यह स्राव गाढ़ा या चिपचिपा नहीं होता; जल सदृश ही होता है। कितनेक रोगियोंके नेत्रमेंसे स्राव इतना अधिक होता है कि उनको अपने हाथमें निरन्तर रुमाल पोंछनेके लिये रखना ही पड़ता है। नेत्र खोलनेमें अतिशय कष्ट होता है। क्षतके हेतुसे दृष्टिमें भी न्यूनता आजाती है। यदि क्षत बीचमें हो, तो दृष्टि में अधिक हानि पहुँचती है। जलमय रसके पूर्व खण्डमें स्राव संगृहीत हुआ तो भी दृष्टिमें बहुत बाधा पहुँचती है। तारामण्डल प्रदाह हुआ हो और उस हेतुसे कनीनिकामें स्राव हो तो दृष्टिमें अतिशय हानि पहुँचती है।

रोगीके नेत्रकी परीक्षा करने पर नेत्रमें अधिक लाली प्रतीत होती है। यह लाली विशेषतः शुक्ल मण्डलके चारों ओरके गोलकके भागमें विशेष भासती है। यह लाली एड्रिनेलिन क्लोराइडके बूंद डालने पर भी अदृश्य नहीं होती। कारण गहराईमें रही हुई तन्तुमय धमनियां और शिराएं रक्तसे पूर्ण रहती हैं। कितनीक बार शुक्लमण्डल पर भी कितनीक नयी रक्तप्रणालियां उत्पन्न होती हुई भासती हैं। ये रक्त प्रणालियां गहरी नहीं होतीं; कितनेक शुक्लमण्डलके गर्भ भाग का प्रदाह आदि रोगोंमें शुक्ल मण्डलके बीचके भागमें रक्तप्रणालियां निर्माण होती हैं। इस तरह इन दोनों स्थानोंमें उत्पन्न रक्तप्रणालियोंके हेतुसे शुक्लमण्डलमें लाली उपस्थित होती है। इनको पृथक् पृथक् जानना आवश्यक है। अतः नीचे दोनों प्रकारके लक्षण पृथक्-पृथक् दर्शाते हैं:—

बाह्यस्थ रक्तप्रणालियाँ	*अन्तस्थ रक्तप्रणालियाँ*
१. ये रक्तप्रणालियाँ शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण के संगम वाले भागमें से निकल कर शुक्लमण्डलमें फैलती हैं। अतः शुक्लमण्डल पर से श्लेष्मावरण में गमन करती हुई भासती हैं।	शुक्लमण्डलकी धाराके पासमें निकलकर वहाँ ही प्रतीत होती हैं। शुक्लमण्डल पर आगे बढ़ती हुई नहीं भासतीं।

२. बाहर होनेसे स्पष्ट भासती हैं और बिल्कुल लाल होती हैं।	अस्पष्ट रहती हैं। केवल उस स्थानमें नेत्रश्लेष्मावरण का भाग लाल भासता है। रंग भी स्पष्ट लाल नहीं, मैला लाल या कृष्णाभ लाल।
३. रक्तप्रणालियाँ वृक्ष शाखा-प्रशाखाओंके आकारसे व्यवस्थित होती हैं।	झाड़ू या ब्रशमें तृणशलाका या बाल विरचित किये हों, उस तरह एक दूसरे के पास-पास रक्त प्रणालियाँ व्यवस्थित होती हैं।
४. शुक्लमण्डल विषम भासता है।	शुक्लमण्डल सपाट भासता है।
५. एडिनेलिन क्लोराइडकी बूंद से संकुचित होती हैं।	संकुचित नहीं होतीं।

शुक्लमण्डल आरोग्य स्थितिमें होने पर पारदर्शक होता है; किन्तु क्षत होने पर पारदर्शकता में न्यूनता आती है। जहाँ-जहाँ क्षत हों, वहाँ-वहाँ क्षतके आकारके अनुसार बहुसंख्य छोटे-छोटे सफेद दाग होते हैं या एक, दो या तीन क्षत गड्ढे आकारके भासते हैं। इन क्षतोंके किनारे और बीच में गड्ढा होता है। यदि इन क्षतोंमें पूयजनक कीटाणु हों, तो गड्ढेका तल मैले रंगका या श्वेत आवरणसे आच्छादित प्रतीत होता है। यदि क्षत कीटाणु रहित हों, तो गड्ढेका तल स्वच्छ भासता है। क्षत अधिक गहरे हों तो किसीक बार कितनेक जातिके क्षतमें जलमय रसके पूर्वखण्ड में सफेद प्रवाही प्रतीत होता है। यह प्रवाही पहले लिखे अनुसार मैले रंगका होता है और वह रोगी बैठा हो या खड़ा हो, तो शुक्लमण्डलकी परिधिकी ओरके भागमें अर्द्ध गोलाकार तथा ऊपरके भागमें पंक्तिके आकार का भासता है। जो रोगी लेट जाता है तो यह स्राव तारामण्डल पर फैल जाता है। इससे तारामण्डल अस्वच्छ प्रतीत होता है। यह पूय निर्जन्तुक होता है। यथार्थमें वह पूय ही नहीं है; किन्तु क्षतके कीटाणुओंसे जो विष उत्पन्न होता है, उसके प्रभावसे तारामण्डल और तन्तुमय समूह की धमनियोंमें से श्वेताणु मिश्रित स्राव होता है। यह प्रवाही प्रायः क्षत भरने पर शोषित होकर अदृश्य हो जाता है। किन्तु वैसा सर्वदा नियमपूर्वक नहीं होता। कभी-कभी उस हेतु से तारामण्डलमें अवस्थित कनीनिका धारा उसके पीछे रहे हुए दृष्टिमणिके आवरणके साथ चिपक जाती है, तब हानि अधिक पहुँचती है।

क्षत अपने स्वभाव अनुरूप भिन्न-भिन्न रूप धारण करता है। क्षत

सौम्य प्रकारका हो, कीटाणु अति घातक न हों तो योग्य उपचार से या देह में रहे हुए रक्षक तत्वोंके प्रतिकारसे शनैः-शनैः भरने लगता है। नेत्र में पीड़ा, जलस्राव, लाली आदि दिन-प्रति-दिन घटने लगते हैं। फिर क्षत का बिल्कुल रोपण हो जाता है। जिस स्थान पर क्षत हुआ हो वहाँ शुक्लमण्डल अपारदर्शक होकर फूला हो जाता है। यह फूला उत्तान या गंभीर होता है। यदि क्षत गहरा गया हो, तो फूला गाढ़ा होता है। जो क्षत उत्तान हो तो फूला भी गाढ़ा नहीं होता। कितनीक बार क्षतके तलमें अनेक रक्तप्रणालियाँ प्रतीत होती हैं। इस तरह निसर्ग उस क्षतको भरने के लिये सुविधा कर देता है।

यदि क्षत भरनेके बदले गहरा और गहरा होता जाय तथा शुक्लमण्डलकी ४ वृत्ति गल जायँ तो नीचे मात्र केसमट वृत्ति रहती है। वह वृत्ति जलमय रसके दबावके हेतुसे ऊपर उठ आती है। फिर क्षतके मूलमें एक फाला होगया हो, ऐसा देखाव होता है। यदि वह केसमट वृत्ति भी गल जाय तो शुक्लमण्डलका क्षत फूट जाता है। फिर क्षत छोटा हो तो उसमेंसे तारामण्डलका कुछ भाग बाहर निकल आता है और शुक्लमण्डलके ऊपर काला बिन्दु जैसा प्रतीत होता है। इस तरह शुक्लमण्डलमें उपस्थित छिद्रमें फँसा हुआ तारामण्डल आजीवन उसे चिपका हुआ रह जाता है। फिर इस हेतुसे कनीनिका अनियमित बन जाती है। इसकी आकृतिमें परिवर्त्तन होजाता है। कितनीक बार कनीनिका इतने तक खिंचती है कि वह बिल्कुल बन्द हो जाती है। इस स्थितिको तारामण्डलके अग्रभागकी सलग्नता (Anterior Synechia) कहते हैं।

यदि क्षत अधिक गहरा हो और शुक्लमण्डलके अधिक भागका ध्वंस हो जाय, तो शुक्लमण्डलाग्रका बहिर्निःसरण (Anterior Staphyloma) होजाता है। यह स्थिति कितनेक रोगियोंके नेत्रमें प्रतीत होती है। जैसे नेत्रगोलकपर द्राक्षा चिपकाई हो ऐसा देखाव होता है।

यदि क्षत अति दुष्ट कीटाणुओं—न्युमोकोकाई, सुजाकके कीटाणु, कण्ठरोहिणीके कीटाणु आदिसे उत्पन्न हुआ हो, तो प्रायः ये कीटाणु समस्त नेत्रगोलकको पूयमय बनाते हैं। यह पूयप्रदाह (Panophthalmitis) निर्माण करता है। इससे गोलक एक बड़ा विद्रधि बन जाता है और इस स्थितिमें रोगीको असह्य वेदना १५–२० दिन तक रहती है। फिर गोलक फूट, पूय निकलकर बैठ जाता है और नेत्रमें गड्ढा या कुआँ (Phthisis Bulbi) होजाता है।

कारण—कितनेक शुक्लमण्डलके क्षतग्रस्त भागको व्यथा होनेपर होते

हैं। किसी भी मनुष्यको अश्रुवाशयका प्रदाह हो तो उस स्थानमें पूयजनक गोल कीटाणु या न्युमोकोकाईसे पूर्ण गाढ़ा प्रवाही संगृहीत होजाता है। जब तक शुक्लमण्डलकी बाह्य वृत्ति अविकृत हो तब तक ये कीटाणु कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। किन्तु शुक्लमण्डल किञ्चित् खुरचनेका चिह्न हो जाय, तो ये कीटाणु अपना कार्य करने लगते हैं। फिर शुक्लमण्डलमें क्षत होजाता है। रोहेके रोगमें एवं विविध प्रकारके नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहमें शुक्लमण्डलके क्षत हो जाते हैं। विशेषतः पिटिकाक्षत सह नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाह, पूयजन्य प्रदाह, कण्ठरोहिणीजन्य प्रदाह, सामान्य प्रदाह (कोकि-क्सके कीटाणु जन्य प्रदाह), मोराक्स एक्सनफिल्डके कीटाणुओंसे प्रदाह आदि रोग शुक्लमण्डल क्षतके विशेष कारण हैं। पिटिका क्षत, पूयप्रमेहजन्य प्रदाह, बालकोंके नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह और बच्चोंमें होनेवाले अन्य प्रकारके नेत्रप्रदाहोंको छोड़कर देखा जाय तो प्रायः वृद्ध मनुष्योंके नेत्रमें शुक्लमण्डलके क्षत विशेष परिमाणमें प्रतीत होते हैं। इसका कारण यह है कि, वृद्धावस्थामें शुक्लमण्डलको पोषण मिलना कम होजाता है। इससे कीटाणुओंसे संरक्षण करनेकी शक्तिका ह्रास होजाता है। इस हेतुसे जो कीटाणु युवावस्थाके नेत्रोंमें शुक्लमण्डलको कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते, वे ही कीटाणु वृद्धावस्थामें नेत्रोंको अच्छी तरह हानि पहुंचा सकते हैं। इस तरह शुक्लमण्डलको योग्य पोषण न मिलनेपर समग्र शुक्लमण्डलका गलन (Keratomalacia) हो जाता है। यह भी पोषणके अभावका उदाहरण है। रोगीकी देहके किसी भी भागमें पूय उत्पन्न हुआ हो तो वह भी क्षतका विशेष कारण बन जाता है। जैसे कि दाँत, गलग्रन्थियाँ आदि में पूय होनेपर नेत्रमें क्षत होता हुआ हमने देखा है।

परिणाम—शुक्लमण्डलके क्षत शुक्लमण्डलके किस भागमें हैं, कितने गहरे और कितने मोटे हैं, किस जातिके हैं, कितना समय हुआ है, रोगीकी शारीरिक शक्ति कैसी है, उन सब पर क्षतके परिणामका आधार है। क्षत शुक्लमण्डलकी परिधिके भागमें हों, तो वैसे क्षत भर जाने पर नेत्रदृष्टिको बाधक नहीं होते। वे ही क्षत चाहे जितने सूक्ष्म हों, किन्तु शुक्लमण्डलके मध्यमें हों, तो रोपण होने पर जो शुक्र उत्पन्न होते हैं, उनसे दृष्टिको बहुत बाधा पहुँचती है। यदि क्षत गहरे हों, तो उनसे जो अपारदर्शकता रह जायगी, वह अधिक गाढ़ी होनेसे उससे दृष्टिको पहुँची हुई हानि आजीवन बनी रहेगी। वे फूले कभी दूर नहीं हो सकते। वे ही फूले उत्तान पतले हों तो औषधसे दूर होने संभव है। ऐसे फूलेसे दृष्टि को अधिक हानि दीर्घकाल पर्यन्त नहीं रह सकती। क्षत स्थायी हो और

बढ़ता न हो, तो शुक्लमण्डलको अधिक हानि नहीं पहुँचाता। किन्तु वह ही क्षत यदि शुक्लमण्डलके मध्य भागकी ओर बढ़ता जाय तो अन्तमें रोगीकी दृष्टिको विशेष हानि पहुँचा देता है। क्षतका रोपण शीघ्र होजाय तो हानि कम होती है। जितना लम्बा समय जाता है, उतनी ही दृष्टिको अधिक बाधा होनेकी सम्भावना है।

यदि क्षतके हेतुसे शुक्लमण्डल फूट जाय, उसमेंसे तारामण्डलका पर्दा बाहर निकल आवे और उस छिद्रमें फँस जाय तो दृष्टिको अधिक हानि पहुँचती है। यदि शुक्लमण्डल विशेष नष्ट होगया हो, और उसके हेतुसे उत्पन्न छिद्रमें से यदि दृष्टिमणि, काँचरूप रस आदि बाहर निकल आवें, तो नेत्र बिल्कुल नष्ट हो जाता है। फिर नेत्र बैठ जाता है।

यदि क्षतके हेतुसे शुक्लमण्डल ध्वंस होकर गोलकका बहिर्निर्गमन हो जाय तो भी दृष्टिको अति हानि पहुँच जाती है। यदि क्षत गहरा हो जाय और उसका पूय तारामण्डल, तन्तुसमूह और काँचरूप रस तक पहुँच कर समग्र गोलकका पूयप्रदाह उत्पन्न कर देवे, तो नेत्र नष्ट होता ही है; बल्कि कितनेक वयोवृद्ध और निर्बल मनुष्योंको पूयका संसर्ग मस्तिष्ककी वृत्ति तक पहुँचकर उसका प्रदाह उपस्थित कर देता है। फिर रोगीके जीवनको भयमें डाल देता है।

इस वर्णन परसे पाठकके लक्ष्यमें आया होगा कि शुक्लमण्डलके क्षतके भावी परिणामके सम्बन्धमें रोगी या उसके सगे सम्बन्धी, मित्रवर्ग कोई नेत्रवैद्यका अभिप्राय पूछे, तब पूरा विचारकर उपरोक्त उपद्रवोंको लक्ष्यमें रखकर जवाब देना चाहिये। प्रत्युत्तर देनेमें दुर्लक्ष्य किया जायगा, तो नेत्रवैद्यकी प्रतिष्ठाको हानि पहुँचेगी। इतना ही नहीं, रोगियोंका विश्वास सदाके लिये दूर हो जाता है।

चिकित्सोपयोगी सूचना।

(१) इस रोगकी चिकित्साके प्रारम्भमें ही सूचना की जाती है कि, शुक्लमण्डल क्षतके रोगी रोगका प्रारम्भ होने पर तुरन्त नेत्रवैद्यके पास उपचार करानेके लिये पहुँचता है, तो दुष्ट प्रकार के क्षतके अतिरिक्त शेष सब प्रकारके क्षतका रोपण हो जाता है तथा रोगी की दृष्टि अच्छी तरह बच जाती है। रोगी क्षत होनेके बाद १५ दिन आलस्य में निकाल देगा, तो व्याधि शमनमें लम्बा समय लगेगा। इतना ही नहीं, कितनेक रोगियोंकी दृष्टिको बचा भी नहीं सकेंगे।

(२) शुक्लमण्डलके क्षतका उपचार करनेके पहले उसका जो कारण विदित हो, उसे दूर करना चाहिये। क्षत लोह आदि धातुके टुकड़ेके लगने

से हुआ हो तो धातुका अणु कोई उस क्षतके तलमें रह तो नहीं गया, इसकी परीक्षा अच्छी तरह कर लेनी चाहिये। कोई बाह्य पदार्थ प्रतीत हो तो उसे शीघ्र निकाल देवें। यदि पलकके बाल नेत्रोंमें लगते हों और उस हेतुसे क्षत हुआ हो (परबालके अनेक रोगियोंमें विशेषतः वयोवृद्धोंमें ऐसे क्षत अनेक बार प्रतीत होते हैं) तो जब तक शुक्लमण्डलसे सम्बन्धवाले बालोंको नहीं निकाल दिया जायगा, तब तक एक या अधिक क्षत जो हुए हों वे दूर नहीं हो सकेंगे। अतः ऐसे रोगियोंको जो बाल चुभते हों या बाधा देते हों उनको पहले चिमटेसे नोच लेना चाहिये। इसके लिये विशेष प्रकारका चिमटा आता है, जिसे बाल नोचनेकी चिमटी (Cilia forceps or Epilation forceps) (चित्र न० ७४ ग्रन्थके अन्तमें देखें) कहते हैं।

(३ कितनेक क्षत पलक धारामें अवस्थित मस्से (Worts) के हेतुसे होते हैं। ऐसा होने पर मस्से को निकाल देना चाहिये।

(४) यदि क्षत नेत्रश्लेष्मावरणके प्रदाह से हुआ हो, तो उस क्षत का रोपण करने के लिये नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह को शमन करने वाला उपचार करना चाहिये।

(५) यदि नेत्रमें रोहे हों, तो उसे दूर करने के लिये सिल्वर आयोडाइडका उपयोग करना चाहिये।

(६) यदि मोराक्स एक्सनफेल्डके कीटाणुओंसे प्रदाह हुआ हो तो जिंक सल्फेटके बिना क्षत का रोपण नहीं होता।

(७) यदि क्षतका हेतु शारीरिक क्षीणता या व्याधि हो तो उसके लिये योग्य उपचार करना चाहिये। उदा०–शाखारूप क्षत (Dendritic ulcers) हो तो क्विनाइन नहीं देना चाहिये। कक्षजन्य (Herpetic) क्षत होने पर सोमलकी योजना करनी चाहिये। पिटिका क्षतके लिये कॉडलिवर तेल आदि पौष्टिक औषधका सेवन कराना चाहिये। एवं शुक्लमण्डलके गल जाने के रोग पर रोगीको पौष्टिक भोजन और पौष्टिक औषधियाँ देना चाहिये।

(८) यदि शुक्लमण्डलके क्षत देहके किसी भी भाग में पूय होनेसे उपस्थित हुए हों तो उस भाग को भी नीरोगी बनानेका प्रयत्न करना चाहिये। उदा०–रोगीके दाँतोंमें पूय हो, तो जब तक पूयमय दाँतको नहीं निकाल दिया जायगा, तब तक नेत्रक्षत दूर नहीं हो सकेगा। उसी अनुसार कितनेक बच्चोंकी गलग्रन्थियाँ (Tonsils) की पूयप्रधान विकृतिसे उत्पन्न क्षत रोगमें जब तक शस्त्रक्रिया द्वारा गलग्रन्थि को न निकाल दिया जाय तब तक उससे होने वाले पिटिका क्षतका आक्रमण नहीं रुक सकता।

इस तरह नेत्रक्षत जो कारण हो, उसका शोधकर उसे निर्मूल करने पर नेत्र चिकित्सा की जायगी, तो सफलता मिलनेकी आशा रख सकते हैं।

शुक्लमण्डल की क्षतचिकित्सा।

क्षत रोगमें सबसे पहले नेत्रको दिनमें १-२ बार धोना चाहिये। धोने के लिये ६ प्रतिशत वाला नमक का प्रवाही (Saline solution) या बोरिक धावन (१ औंसमें ५ ग्रेन) का उपयोग करें। इससे अधिक तेज प्रवाही का उपयोग नहीं करना चाहिये।

यदि क्षति न्युमोकोकाई या सुजाकके कीटाणु जन्य हो, तो एक्री-फ्लेविन (Acriflavin) के प्रवाहीसे नेत्रोंको धोना चाहिये।

सेक (Fomentation)—शुक्ल मण्डलके क्षतमें गरम जल, गरम बोरिक धावन या गरम मेग्नेशियम सल्फेटके जलसे सेक करने पर बहुत अच्छी लाभ पहुँचता है। इतना ही नहीं, बल्कि रोगी की वेदना भी तुरन्त बन्द हो जाती है। मेग्नेशियम सल्फेट का सेक करनेके लिये १ औंस जलमें २० से ३० ग्रेन की अपेक्षा अधिक नहीं मिलाना चाहिये। सेक दिनमें ३-४ बार कर सकते हैं। प्रत्येक बार लगभग १५-१५ मिनट तक सेक किया जाता है।

पट्टी (Bandage)—शुक्ल मण्डलके क्षतमें पलकके क्षत पर घर्षण होता रहनेसे पीड़ा होती है। इतना ही नहीं, बल्कि क्षतके रोपणमें भी अति विलम्ब होता है। अतः क्षतके रोगीके नेत्र पर पट्टी रखनेसे रोगीको शान्ति मिलती है; रोग भी कम होता जाता है; एवं प्रकाश की असहिष्णुता भी बहुत कम हो जाती है। ऐसा होनेसे शुक्लमण्डलके क्षतका जल्दी रोपण होता है।

जिस नेत्रमें क्षतके हेतुसे जलमय रसके पूर्व खण्डमें स्राव संग्रह (Hypopyon) हुआ हो, उस नेत्रमें एट्रोपिन का उपयोग पूरे परिमाणमें करने पर स्राव का शोषण हो जाता है। एट्रोपिन प्रायः १ प्रतिशतके प्रवाही रूपसे या मलहम रूपसे या १ प्रतिशत परिमाणमें तैलमें मिलाकर प्रयुक्त हो सकता है। दिनमें २-३ बार उपयोग करने पर कनीनिका ठीक प्रसारित हो जाती है और रहती है। प्रारम्भके दिनमें २-३ बार डालें। फिर कनीनिका प्रसारित रहने पर उस स्थितिको कायम रखनेके लिये दिनमें १ बार डालने पर भी चल सकता है।

सूचना—(१) यदि क्षत शुक्लमण्डल की परिधिमें हो तो प्रारम्भिक अवस्थामें एट्रोपिन डालनेसे हानि नहीं पहुँचती; किन्तु क्षत बढ़ गया हो

और शुक्लमण्डल फूटना संभव हो तो एट्रोपिन बिल्कुल नहीं डालना चाहिये।

(२) एट्रोपिन का प्रयोग चलता हो तबतक नेत्रान्तर दबाव पर लक्ष्य रखना चाहिये। यदि भीतर का दबाव बढ़ता हुआ प्रतीत हो तो एट्रोपिन बन्द कर देना चाहिये, तथा कनीनिका संकोचक औषध-इसरिन, पाइलोकार्पिन आदिकी बूंद या मलहम डालना प्रारम्भ कर देना चाहिये। यदि नेत्रान्तर दबाव बढ़ा हुआ रहेगा तो पीड़ा बढ़ जायगी। इतना ही नहीं, नेत्रके भीतर का प्रवाही जानेके मार्ग का अवरोध हो जानेसे शुक्लमण्डल क्षतके रोपणमें भी विलम्ब होगा। क्षत परिधिके भागमें हो और क्षत गहरा हो गया हो तो कनीनिका संकोचक औषध डालना विशेष उचित माना जायगा।

कीटाणु उत्पत्तिरोधक (Antiseptics) औषध—भूतकालमें कीटाणुओं की उत्पत्ति न होनेके लिये आयोडोफार्म, झेरोफार्म, एरिस्टोल, केलोमल आदि औषधियों का चूर्ण, रसकर्पूर (मर्क्युरी पर क्लोराइड), मर्क्युरोक्रोम आदि औषधियां मलहम रूपसे व्यवहृत होती थीं। वर्त्तमानमें इस कार्य के लिये आर्जिरोलके प्रवाहीकी बूंद (५ से १० प्रतिशत परिमाण), कोलार्गोलकी बूंद (२ प्रतिशत के), मर्क्युरोक्रोमके बूंद (२ प्रतिशतके), नोवीफार्म का मलहम, सल्फोनेमाइड का चूर्ण और ६ प्रतिशत का मलहम, ये सब विशेष रूपसे प्रयुक्त होती हैं। वर्त्तमानमें शुक्लमण्डल की चिकित्सा निम्नानुसार की जाती है :—

(१) नेत्रको बोरिक धावन (१ प्रतिशत) या सेलाइन सोल्युशनसे धोकर मर्क्युरोक्रोमके २ प्रतिशतके प्रवाहीकी बूंद डालें; किन्तु नेत्रमें चिपचिपा स्राव होता हो तो आर्जिरोल ५-१० प्रतिशतके परिमाण वाले की बूंद डालें (मर्क्युरोक्रोम नहीं) फिर नोवीफार्म (Noviform) के मलहम का अंजन करें।

(२) यदि क्षत न्युमोकोकाई जन्य हो तो ओप्टोचिन (Optochin) की बूंद २ से ५ प्रतिशतके परिमाणकी या २ प्रतिशत का मलहम डालें; अथवा सल्फोनेमाइड का मलहम जो आइलेक्स (Eyelex) के नामसे ट्यूबोंमें मिलता है, वह डालें। या सल्फापाइरिडिन या सल्फाथियोझोल का मलहम ६ प्रतिशत का बना कर अंजन करें।

(३) यदि क्षत मोरेक्स एक्सनफेल्डके कीटाणुओंसे उत्पन्न हुए हों

तो झिंक सल्फेट ½ से १ ग्रेन १ औंस जलमें मिले हुएकी बूंद डालते रहना चाहिये।

दहनक्रिया (Application of Caustics and Cauterization)—कितनेक प्रकारके क्षत विशेषतः फैलनेवाले क्षतपर तथा जो क्षत उपचार करनेपर भी प्रशमन नहीं होते, उनपर दहन क्रिया करनी पड़ती है। इन क्षतों को जलानेके लिये टिञ्चर आयोडिन (Tr. Iodine), एसिड कार्बोलिक (Acid Carbolic), एब्सोल्युट अल्कोहॉल (Absolute Alcohol), क्लोरिन वॉटर (Fresh Clorine water), अलकोहॉल मिश्रित १० प्रतिशत सेलीसिलिक एसिडका प्रवाही (Acid Salicylic solution 10% in Absolute Alcohol), मेटाफेन (Metaphen 1-3000), ताजा फोर्मल्डीहाइड (Fresh Formaldehyde) १० प्रतिशत, आदि औषधियां प्रयोजित होती हैं। इनमें भी पहली तीन औषधियां विशेष रूपसे प्रयुक्त होती हैं।

इस क्रियाके लिये रोगीको टेबल पर लिटावें। उसके दोनों नेत्रोंमें एनेथीन १ औंसमें ६ ग्रेनकी बूँद ३–३ मिनिट पर २ बार डालें। नेत्रोंको बोरिक धावन या नमक जलसे धो डालें। शुक्लमण्डल को सूखने दें। फिर क्षतकी मर्यादाके निर्णयार्थ दहन-क्रिया करने के पहले फ्लुओरेशिन की बूंद डालकर क्षतको रंजित करें। फिर रुईकी एक फुरेरीको कार्बोलिक एसिडमें डुबो, बाहर छिड़ककर अधिक एसिड हो उसे निकाल डालें। पश्चात् वह हलके हाथसे लगावें। जहाँ पर एसिड लगेगा, वह स्थान सफेद हो जायगा। इस क्रियाके करने पर नेत्रमें मलहम आदि लगाना हो तो लगाकर रुई और गोजकी गद्दी रखकर पट्टी बाँध देवें।

कितनेक नेत्रवैद्य टिञ्चर आयोडिन या एब्सोल्युट अल्कोहॉलसे जलाते हैं। किन्तु ये औषधियाँ कार्बोलिक एसिड जितना कार्य नहीं कर सकतीं। हमारे अनुभवके अनुसार उत्तम मार्ग यह है कि, आधा टिञ्चर आयोडाइड और आधा एसिड कार्बोलिक मिला, मिश्रण बनाकर उससे क्षतको दग्ध करें।

कितनेक बार इस तरह औषधसे जलानेके बदलेमें प्लेटिनमकी सादी या बिजलीकी अति लाल होने वाली दाहक शलाकासे यह क्रिया की जाती है।

नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण (Subconjunctival Injections)—अनेक बार सब उपचार करने पर भी शुक्लमण्डलके क्षत जब शमन नहीं होते, तब अन्य उपायकी योजना करनी पड़ती है। इनमें से एक

उत्तम उपाय नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण है। इस अन्तःक्षेपणार्थ प्रायः २ % का नमक जल व्यवहृत होता है। कितनेक नेत्रवैद्य सायानाइड ऑफ मर्क्युरीको उपयोगमें लेते हैं। हम सर्वदा नमक जल को ही प्रयुक्त करते हैं। सायानाइड ऑफ मर्क्युरी शुक्लमण्डलके क्षतमें उपयोग करनेमें मुख्य प्रतिबन्ध यह होता है कि, क्षतके हेतुसे रोगीके नेत्रमें वेदना तो होती ही है। उसमें सायानाइड ऑफ मर्क्युरीके अन्तःक्षेपणसे और बढ़ जाती है। इससे रोगी को 'जलने पर और जलाना', यह कहावत चरितार्थ होती है। एवं नमकके अन्तःक्षेपणकी अपेक्षा सायानाइडका अन्तःक्षेपण शुक्लमण्डल क्षतमें कुछ भी अधिक कार्य करता हो, ऐसा हमें अनुभव नहीं मिला। अतः हमारे अनुभवमें नमकका अन्तःक्षेपण ही प्रधान है।

ये अन्तःक्षेपण दो प्रकारसे कार्य करते हैं। १. जिस स्थान पर अन्तःक्षेपण किया जाता है, वहाँ पर फाला हो जाता है। इससे क्षत पर आता हुआ पलकका दबाव कुछ समयके लिये रुक जाता है और क्षतकी रोपण क्रिया होनेमें सुविधा मिल जाती है। २. नमक जल नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे देनेसे शुक्लमण्डलके पोषणमें वृद्धि होती है। इससे भी क्षत रोपणमें जो पोषक द्रव्य चाहिये, वह मिल जाता है। एवं नमक प्रवाहीके अन्तःक्षेपणसे रक्तवाहिनियां फूल जाती हैं और फिर कितनीक नयी रक्तवाहिनियाँ क्षतके पास पहुँच कर क्षतमय प्रदेश पर नूतन रक्त प्रणालियाँ निर्माण कर देती हैं। इस हेतुसे भी क्षतका रोपण जल्दी होता है।

जो कार्य नमक प्रवाही करता है, वही कार्य कुछ अंशमें डायोनिन प्रवाहीकी बूँद डालनेसे होता है। डायोनिन १०% की बूँद रूपसे प्रयुक्त होता है। उसकी बूँद दिनमें दो बार डाल सकते हैं। डायोनिनमें रोपण क्रिया करनेके अतिरिक्त वेदनाको ह्रास कराने तथा शमन करनेका गुण भी है। डायोनिनका प्रयोग जिस तरह बूँद रूपसे होता है, उसी तरह मलहम रूपसे भी हो सकता है।

शस्त्रक्रियाजनित प्रतिबन्ध (Surgical Interference)—उपरोक्त सब उपचार करने पर भी जब असफलता मिली हो, शुक्लमण्डल का क्षत बढ़ता ही जाता हो और ऐसा भास होता हो कि अब किसी अन्य उपायसे लाभ होनेकी आशा नहीं है, तब जलमय रसको बाहर निकाल देनेके लिये शस्त्रक्रिया की जाती है। इस शस्त्रक्रियासे अनेक क्षत जो अन्य प्रकारसे शमन न हुए हों, वे दूसरे ही दिनसे सुधरने लगते हैं और कुछ ही दिनोंमें भर जाते हैं। इस शस्त्रक्रियाका विचार एक नेत्रवैद्यको अनेक वर्षोंके पहले आनेका हेतु यह हुआ कि, उसके किये हुए निरीक्षण

से उसे ऐसा विचार आया कि, अनेक व्रण नैसर्गिक रीतिसे फूट जानेपर तुरन्त भरने लगते हैं। जब नैसर्गिक रीतिसे व्रण फूटने पर रोगीको आराम मिलता है, तब शस्त्रक्रियासे फोड़नेपर क्यों आराम न मिले? इस कल्पना के आधार पर उसने कितनेक रोगियों पर इस छोटी-सी शस्त्रक्रियाका प्रयोग किया। परिणाममें अनेक रोगियोंको लाभ पहुँचा। यह शस्त्रक्रिया अति सरल है, उसकी विधि निम्नानुसार है :—

जलमयरस निकालनेकी शस्त्रक्रिया (Paracentesis of anterior Chamber)—इस क्रियाके लिये केवल ३ यन्त्रों की आवश्यकता है।

१. नेत्रको खुला रखने की कमानी (Speculum) (चित्र नं० ७५)
२. गोलकको स्थिर रखने वाला चिमटा (Fixation forceps (चित्र नं० ७६)।
३. एक सूक्ष्म चाकू (Narrow Graefe's knife) (चित्र नं० ७७, उक्त तीनों चित्र ग्रन्थके अन्तमें देखें)।

तैयारी—इनमेंसे पहले दो यन्त्रोंको जलमें १५ मिनट तक उबाल कर निर्जन्तुक करें। तीसरे शस्त्रको पहले साबुन जलमें धो, सुखा फिर रेक्टीफाइड स्पिरिटसे धो लेवें। पश्चात् उबलते हुए जलमें आध मिनिट तक रख कर निकाल लेवें। इस तरह यन्त्रोंको तैयार कर स्पिरिटसे धोये हुए कांचके पात्रमें रक्खें।

सूचना—धार वाले शस्त्रोंको उबलते हुए जलमें अधिक समय तक रखनेपर धारकी तीक्ष्णता नष्ट होती है। अतः आध मिनिट ही लिखी है।

सीमिस्ककी शस्त्रक्रिया विधि (Saemisch's Section)—रोगीको टेबल पर लिटा उसके नेत्रमें एनेथिनकी बूँद २-२ मिनिट पर ३ बार डालें। नेत्रको पारद धावन (१-५०००) से धो देवें। फिर नमक जलसे धोवें। पश्चात् नेत्र निर्मीलनरोधक यन्त्र लगावें; और फिर शुक्लमण्डलके निम्न भागमें अवस्थित आवरणको बाँये हाथमें रक्खी हुई चिमटीसे पकड़कर नेत्र-गोलकको स्थिर करें। दाहिने हाथमें छुरिका लेकर उसे अति सम्हालपूर्वक शुक्लमण्डल की परिधिके भागमें प्रवेश करावें। उस छुरिकाको खड़ी न रक्खें; किन्तु एक ओर झुकती हुई रक्खें। उसे खड़ा रक्खा होगा और कदाच उसकी नोक दृष्टिमणिके आवरणमें किञ्चित् भी प्रवेशित हो जायगी, तो व्यथाजन्य कांचबिन्दु उपस्थित हो जायगा। छुरिका की नोक जब शुक्ल-मण्डल की अन्तिम धृत्तिका भेदन करेगी कि तत्काल जलमय रस नेत्रके भीतरसे निकलने लगता है। उस रसके निकल जानेके साथ ही तुरन्त तारा-मण्डल आगे आजायगा। इससे रोगीको कुछ समय तक तीव्र वेदना

होगी। २-३ मिनिट बाद वेदना शमन होगी। इतना ही नहीं, बल्कि क्षतके हेतुसे भी जो पीड़ा होती थी, वह भी शान्त हो जाती है। फिर मक्युरोक्रोमके २ बूँद डाल, फोहा रख पट्टी बांध देवें। २४ घण्टे बाद पट्टी खोलें। फिर क्षतके लिये जो उपचार चलता हो, उसका प्रारम्भ करें। इस शस्त्रक्रियासे बहुधा क्षत भरने लगता है। एवं क्षत फूटने वाला हो तो वह भी रुक जाता है।

यदि क्षत फूटनेकी अवस्था प्राप्त हो चुकी हो, तो कितनेक नेत्रवैद्य उसे नैसर्गिक रीतिसे न फूटने देते हुए शस्त्रक्रियासे काट देते हैं। इस शस्त्रक्रियाको सीमिस्कर्की शस्त्रक्रिया कहते हैं। उसकी विधि निम्नानुसार है:—

शस्त्रक्रिया—नेत्रको खुला रख नेत्रनिमीलनरोधक यन्त्र (चि. नं. ७५) लगावें। नेत्रमें एनीथिनके बूँद डालकर नेत्रगोलकको चेतना रहित करें। फिर नेत्रको धो देवें। पश्चात् बोनग्रेफकी छुरिका (चि. नं. ७७) लेकर उसे क्षतके सिरेसे जलमय रसके पूर्व खण्डके भीतर प्रवेश करावें। उस समय शस्त्रको इस तरह पकड़ें कि, उसकी धार शुक्लमण्डलके ऊपरके भागकी ओर या निम्न भाग की ओर रहे। शनैः-शनैः आगे चलाकर क्षतके दूसरे सिरेके पास शस्त्रकी नोकको बाहर निकालें। पुनः शस्त्रको आगे चलने देवें। इससे शस्त्र की धारका बिचला हिस्सा समग्र क्षतके नीचे आ जायगा। फिर शस्त्रके दस्तेको थोड़ा घुमाकर धारको आकाशकी ओर कर देवें। पश्चात् हलके हाथसे उसे बाहर निकाल लेवें। ऐसा करने पर क्षतके ठीक मध्य भागमें एक समान काट हो जायगा। उस काटमें से जलमय रस बाहर निकल जायगा। फिर मक्युरोक्रोमके बूँद डालकर नेत्र पर पट्टी बांध देवें। इस शस्त्रक्रियासे वेदना प्रायः तत्काल शान्त होजाती है और क्षत भी उसी दिनसे भरने लगता है। हमने इस शस्त्रक्रिया का उपयोग अनेक बार किया है और परिणाम बहुधा संतोषजनक ही मिला है।

शारीरिक उपचार—ऊपर लिखे हुए स्थानिक उपचारोंके अतिरिक्त निम्न शारीरिक उपचार भी आवश्यकता अनुसार करना चाहिये :—

सुजाकजनक, न्युमोनियाजनक, मस्तिष्कावरण प्रदाहजनक अथवा अन्य पूयप्रदाह जनक कीटाणुओंसे क्षत हुआ हो, तो रोग को सल्फाडायाझिन (Sulphadiazin) ७॥-७॥ ग्रेन की ४-६ टिकियाँ एक दिनमें खानेको देवें।

यदि देहमें विद्रधि, स्फोटक या नाड़ीव्रण होनेसे नेत्रके शुक्लमण्डलमें क्षत हुआ हो तो वंगभस्म (स्टेनोक्सिल-Stannoxyl) की टिकियों का

सेवन कराना चाहिये । रोगीकी आयुके अनुसार दिनमें १॥ से ३ टिकिया देवें ।

सुजाक जन्य क्षतके लिये पूयमेहनाशक गव्य (Gonococcal vaccine) देनेसे अनेक रोगियोंको लाभ पहुँच जाता है । इस गव्य का प्रयोग छोटे बालकोंको गुण नहीं पहुँचाता; किन्तु बड़ी आयुवालोंके लिये हितकर है । कितनेक नेत्रवैद्य दुग्धका अन्तःक्षेपण एक दिन छोड़कर या दो दिन छोड़कर देते हैं । ऐसे ३ अन्तःक्षेपणसे लाभ न पहुँचे, तो कण्ठरोहिणीरोधक रक्तद्रव (Antidiphtheria serum) ८००० यूनिट की मात्रामें देते हैं । अन्य कतिपय नेत्रवैद्य मेङ्गनिज कोलोइडल (Manganese colloidal) का १ सी. सी. की मात्रामें त्वचाके नीचे अन्तःक्षेपण करते हैं ।

A. शुक्लमण्डलके प्राथमिक क्षत ।

(Primary Ulcers of Cornea)

शुक्लमण्डलके क्षतका वर्गीकरण करनेमें नेत्र रोगके भिन्न-भिन्न लेखकों ने इतने तक पृथक रीति का अवलम्बन लिया है कि, किसी एककी पद्धतिका मेल दूसरे की पद्धतिसे नहीं मिलता । इस हेतुसे हमने किसी विद्वानकी पद्धति का अनुसरण न करते हुए जो पद्धति विशेष व्यवहार योग्य प्रतीत हुई, उस अनुसार यहाँ वर्गीकरण किया है ।

शुक्लमण्डलके प्राथमिक क्षत प्रकारः—

अ. सामान्य क्षत—Simple Ulcer.

आ. परिसरणशील क्षत जलमय रसके पूर्वखण्ड का पूय मय क्षत—Serpiginous ulcer, Pneumococcal ulcer, Hypopyon ulcer तथा उसके अनुरूप चक्राकार क्षत—Disciform Keratitis.

इ. गम्भीर क्षत—Deep ulcer of Cornea, Ring abscess of cornea तथा उसके अनुरूप पूयपूर्ण पिटिकामय गम्भीर क्षत—Keratitis Pustuliform Profunda.

ई. शुक्लमण्डल का गलन—Keratomalacia.

उ. वात नाड़ी स्तम्भ जन्य शुक्लमण्डल क्षत—Neuroparalytic Keratitis.

ऊ. नेत्रगोलक खुला रहनेसे उत्पन्न क्षत—Keratitis e Lagophthalmos.

ए. शुक्लमण्डलकी परिधिमें उत्पन्न क्षत—Marginal ulcers of Cornea.

ऐ. स्फोटमय शुक्लमण्डल प्रदाह — Keratitis Vesicula e Bullosa.

ओ. शुक्लमण्डलका दुष्ट व्रण—Rodent ulcer of Cornea.

अ. सामान्य क्षत (*Simple Ulcers*).

इस प्रकारके क्षत (प्र० १० में चित्र नं० ६० देखें) प्रायः बड़ी आयु वाले मनुष्योंको अधिकांशमें होते हैं। ऐसा होनेका मुख्य कारण यह है कि, जब वार्धक्यावस्थाके हेतुसे शरीर निर्बल होता है, तब उसके भिन्न-भिन्न भागोंको मिलने वाला पोषण कम होजाता है। उसमें से शुक्लमण्डल तो पहलेसे ही कम पोषण प्राप्त करने वाले भागोंमें मुख्य होनेसे उसे पोषण विशेष परिमाणमें कम होजाता है। इससे वह अशक्त बनता जाता है। ऐसे समय पर मामूली आघात पहुँचना, नेत्रमें रजकण गिरना, धुँआ लगना, नेत्रके ऊपर कुछ चोट लगजाना, आदि ये सब क्रिया क्षत की उत्पत्ति होनेमें हेतु बन जाती हैं।

लक्षण और चिह्न--शुक्लमण्डलके क्षतमय प्रदाहके लक्षण और चिह्न का जो वर्णन दिया है, उस अनुसार लगभग सब लक्षण और चिह्न इस प्रकारके क्षतमें मिल जाते हैं। नेत्रमें अश्रुस्राव, शिरदर्द, नेत्रमें पीड़ा, प्रकाश की असहिष्णुता, नेत्रमें लाली आदि चिह्न मुख्य हैं। नेत्रको खोल कर देखने पर प्रायः एक या क्वचित् एकाधिक क्षत शुक्लमण्डल पर प्रतीत होते हैं। ये क्षत प्रायः शुक्लमण्डल की एक ही वृत्तिमें होते हैं, अर्थात् गहरे नहीं होते। क्षत की सतह अधिक मैली नहीं होती। जब अन्य प्रकारके क्षत सफेद भासते हैं, तब ये क्षत कितनेक अंशमें शुक्लमण्डलके रंग जैसे होते हैं। यदि विशेष सम्हाल न लेते हुए अधिक समय तक चलने देवें, तो क्षत कुछ मलिन होजाते हैं। सामान्यतः नेत्र की लाली, वेदना, प्रकाश सहन न होता और शिर दर्द आदि चिह्न शुक्लमण्डलके अन्य जातिके क्षतकी अपेक्षा कम तीव्र होते हैं। प्रायः इनका योग्य उपचार किया जाय तो शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता उत्पन्न न होते हुए, ये भर जाते हैं। फिर यदि कुछ अपारदर्शकता (फूला) रह जाय, तो उसका योग्य उपचार करने पर वह भी साफ हो जाती है। यदि क्षत मध्य भागमें न हो, तो दृष्टिको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचती। क्षत मध्य प्रदेशमें होने पर कुछ

समयके लिये दृष्टि कम हो जाती है। फिर योग्य उपचार होने पर फूला साफ हो जाता है और दृष्टि भी स्वच्छ हो जाती है।

कारण—इस क्षतका मुख्य कारण ऊपर कहे अनुसार शुक्लमण्डलके पोषण की न्यूनता है। वृद्धावस्था, निर्धनता, सात्विक भोजन की न्यूनता आदि कारणोंसे शुक्लमण्डलकी कीटाणु और विषसे संरक्षण करनेकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। इसके अतिरिक्त वृद्ध मनुष्यके नेत्रमें रोहे, चिरकारी नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह, नेत्रको पूरा बन्द करनेकी शक्ति कम होना आदि कारणोंसे नेत्रमें ही सतत रहने वाले कीटाणु, जो आरोग्य और सबल स्थितिमें किञ्चित् हानि पहुँचानेमें असमर्थ हों, वे अपना कार्य प्रारम्भ कर देते हैं। परिणाममें शुक्लमण्डलमें क्षत होजाते हैं।

पृथक्तादर्शक रोगविनिर्णय—यह क्षत सामान्यतः आंखसे भी प्रतीत होता है। यदि सरलतासे प्रतीत न हो तो फ्लुओरेसिनके प्रवाहीकी बूँद डालने पर क्षत स्पष्ट दृष्टिगोचर हो जायगा। क्षत गहरा नहीं होता। क्षत की सतह मलिन नहीं होती। एवं चिह्न और लक्षण तीव्र नहीं होते। इस परसे इस क्षतकी पृथक्ता शुक्लमण्डलके अन्य गम्भीर क्षतोंसे हो जाती है।

यदि यही क्षत गहरा ही चला जाय, परिमाण बढ़ जाय और चिह्न तीव्र होजायँ तो यही दुष्ट क्षतका स्वरूप धारण कर लेता है। फिर गम्भीर क्षत कहलाता है। सामान्य क्षत नहीं कहा जायगा।

उपचार—इस प्रकारके क्षतके लिये केवल नेत्रको दिनमें दो बार बोरिक धावनसे धोते रहना चाहिये। फिर एट्रोपिनकी बूँद एक या दो बार डालते रहें; तथा आजिरोलकी बूँद और नोवीफार्मका मलहम लगाते रहें।

सूचना—(१) रोगीको भोजन अच्छा और पौष्टिक देना चाहिये। एवं पौष्टिक औषधका सेवन कराना चाहिये। विटामिन D और A तथा मक्खन, दूध आदि देनेसे रोग शीघ्र शमन होजाता है।

(२) इस रोगमें प्रायः पट्टी बांधने की आवश्यकता नहीं रहती। काला चश्मा पहनते रहनेसे धूल और वायुसे नेत्रका संरक्षण होता है।

(३) क्षत शमन होजाने पर फूला रह जाय तो फूलाके प्रकरणमें लिखेके अनुसार उपचार करनेसे आंख साफ होजाती है।

आ. (i) परिसरणशील क्षत।

(*Serpiginous ulcer-Pneumococcal ulcer-Hypopyon.*)

यह क्षत, (चित्र नं० ६६ देखें) नेत्रके भयंकर रोगोंमें से एक है। कारण, इस रोगके परिणामसे प्रायः दृष्टिको हानि पहुँच जाती है।

लक्षण और चिह्न—गहरे क्षतके समान यह क्षत भी शुक्लमण्डलके मध्य भागमें प्रारम्भ होता है। बीचके भागमें कुछ पीताभ क्षत जैसा देखाव होता है। शुक्लमण्डलका भाग अपारदर्शक होजाता है। वह अपारदर्शकता मलिन पीत वर्णकी होती है। क्षतके चारों ओर वैसेही रंगका बल्कि उससे कुछ विशेष गहरे रंगका किनारा बन जाता है। वह किनारा शुक्लमण्डलकी सतहसे एवं क्षतकी सतहसे कुछ उभड़ा हुआ या ऊँचा होता है। प्रायः उस किनारेमें से किरणके समान मैले रंग की अपारदर्शक रेखाएं शुक्लमण्डलकी परिधिकी ओर गमन करती हुई प्रतीत होती हैं। क्षतके भीतर अर्थात् जलमय रसके पूर्वकी ओरके हिस्सेमें से जैसे कि एक पूयकी पंक्ति बन गई हो, उस तरह एक पंक्ति शुक्लमण्डलकी परिधिके नीचेकी ओर गति करती हुई देखनेमें आती है। जलमय रसके पूर्व खण्डमें प्रायः पूयकी प्रतीति होती है। तारामण्डलका प्रदाह भी लगभग सब रोगियों में होजाता है। नेत्रमें से अश्रुस्राव, नेत्र और मस्तिष्ककी वेदना, प्रकाशकी असहिष्णुता, शुक्लमण्डलके चारों ओर समग्र नेत्रगोलकमें लाली तथा पलक का शोथ आदि चिह्न न्यूनाधिक अंशमें सब रोगियोंमें भासते हैं।

क्षत दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाता है। मध्यमें अवस्थित भाग शनैः-शनैः गहरा होजाता है। किनारेका भाग शुक्लमण्डलके स्वस्थ भागकी ओर फैलता जाता है। इसी हेतुसे इस क्षतको परिसरणशील क्षत कहा है। अन्तमें क्षत फूट कर पूर्वखण्डमें रहा हुआ पूय निकल जाता है और तारामण्डलके पर्दों का कितनाक भाग शुक्लमण्डलमें उत्पन्न छिद्रोंमें फँस जाता है; अथवा शुक्लमण्डलका समग्र भाग सड़कर गल जाता है। फिर कभी-कभी समग्र नेत्र गोलकका प्रदाह होकर कितनेक सप्ताह तक रोगीको असह्य पीड़ा देकर वह फूटकर बैठ जाता है। इसे सामान्यतः कुआँ होजाना कहते हैं। अथवा गले हुए शुक्लमण्डलके स्थान पर सूक्ष्म त्वचा जैसा पदार्थ निर्माण होकर गले हुए भागकी पूर्त्ति कर देता है। किन्तु वह शुक्लमण्डल जितना दृढ़ न होनेसे नेत्रगोलकके भीतरके दबावके हेतुसे बाहर उभड़ आता है, उसे गोलकका निर्गमन कहते हैं।

क्षत फूटने पर यदि समग्र नेत्रगोलकका प्रदाह न होजाय, तो वेदना कम होने लगती है और क्षत भरने लगता है। यदि क्षत अधिक बलवाला न हो, तो शुक्लमण्डलके मध्यभागमें छोटा फूला होकर रह जाता है। किन्तु तारामण्डलके प्रदाहके परिणाममें कनीनिका का किनारा दृष्टिमणिके पर्त्तको चिपक जाता है और अनेक बार कनीनिका बन्द भी होजाती है। संक्षेपमें यह क्षत होकर शमन होजाने पर नेत्र बिलकुल नीरोगी स्थितिमें

आजाय, ऐसा एक भी रोगीमें नहीं हुआ। इतना ही नहीं, अच्छेसे अच्छा उपचार करने पर भी यह रोग अपना हानिकर कार्य करना बन्द नहीं करता।

परिणाम—उपर्युक्त वर्णनपर से पाठकको सहज विदित होगया होगा कि, यह क्षत जितनी आँखोंमें होता है, उनमें से एक भी आँखको बिना हानि पहुँचाये नहीं रहता। क्षत चाहे जितना छोटा हो, उपचार चाहे क्षतके प्रारम्भ कालमें ही होने लगे तथा चाहे जितनी सावधानता रक्खी हो, तो भी इस परिसरणशील क्षतके होनेके पश्चात् नेत्र बिल्कुल स्वस्थ स्थितिमें आ जाय, यह बिल्कुल असंभवित है। यह क्षत नेत्रको न्यूनाधिक हानि पहुँचाता ही है। रोगी सद्भाग्यशाली हो और रोगके प्रारम्भ होनेपर तुरन्त अति दृढ़ उपचारका प्रबंध हुआ हो, तो नेत्रगोलकके मध्यभागमें एक फूला शेष रह जाता है और दृष्टिको कुछ हानि पहुँच जाती है। किन्तु इससे अधिक हानि हो अर्थात् क्षत फूटकर उत्पन्न हुए छिद्रमें से तारामण्डल बाहर आकर उस छिद्रमें फँस जाय और उसी स्थितिमें रह जाय तो वह नेत्रको आजीवन भयवाली स्थितिमें ला देता है। इससे भी अधिकतर हानि यह है कि समस्त शुक्लमण्डल गलकर उसके स्थानपर पतली त्वचा जैसी वृत्ति निर्मित होना। यह नूतन त्वचा नेत्रान्तर जल दबावको सहन करनेके लिये अशक्त होनेसे वह अधिक और अधिक उभड़ आती है। फिर अन्तमें शुक्लमण्डलका असंपूर्ण या सम्पूर्ण निर्गमन (Staphyloma) होजाता है।

तारामण्डल और तन्तुसमूहके तीव्र प्रदाहके हेतुसे जलमय रसका पूर्वखण्ड पहले स्रावसे और फिर उस स्रावके गाढ़ा हो जानेसे उससे पूर्ण भर जाता है। तारामण्डल दृष्टिमण्डलके आवरणको चिपक जाता है। एवं तन्तु समूहका भी कितनेक अंशमें क्षय होजाता है। यदि दृष्टिमणिकी झिल्लीको मामूली हानि भी पहुँच जाय तो अनुषंगी कांचबिन्दुकी उत्पत्ति होजाती है। कांच रूप रसमें भी अपारदर्शकता आजाती है। एवं कितनीक बार नेत्रमध्यपटल और नेत्रदर्पणको भी कुछ-न-कुछ हानि पहुँच जाती है। इन सब परिवर्तनों के परिणाम में कितनेक बार नेत्रगोलक की विशीर्णता (Atrophy) होकर वह छोटा और निकम्मा होजाता है।

यदि सनग्र गोलकमें प्रदाह (Pan ophthalmitis) होजाय तो वह आँख सदाके लिये चली जाती है। फिर आँखमें कुआं (Phthisis Bulli) हो जाता है। इस तरह इस परिसरणशील क्षतका परिणाम अति गम्भीर आता है।

परिसरणशील क्षत चिकित्सा।

इस क्षतका पचार हो सके जितना जल्दी प्रारम्भ कर देना चाहिये। रोगीको चाहिये कि वह नेत्रवैद्यके पास जल्दी चला जाय और नेत्रवैद्य भी तीव्रतम उपायोंकी योजना करें।

यदि अश्रु वाशयमें पूय हो तो अश्रु वाशयकी शस्त्र क्रिया करके निकाल डालना चाहिये। इससे नेत्रको हानि पहुँचानेवाले कीटाणुओंको गोलकपर आनेमें प्रतिबन्ध होगा। इस तरह नये शत्रुदलके आक्रमणको दूरकर भीतर प्रवेशित शत्रु सैन्यको नष्ट करनेका कार्य करना चाहिये। कितनेक नेत्रवैद्योंकी पद्धति एक दो दिन तक एट्रोपिन आदिसे उपचार करने की होती है; किन्तु ऐसे सौम्य उपचारोंसे तो केवल सामान्य निर्बल आक्रमण दूर होसकता है। रोगकी तीव्रतामें इसका उपयोग नहीं होता। यदि क्षतका बल मंद हो तो रोगीके नेत्रको एक्रीफ्लेविनके प्रवाही या बोरिक धावनसे धोकर एट्रोपिनकी बूँद ३ बार २-२ मिनटपर डालें। फिर आर्जिरोल १०% के प्रवाहीकी १-२ बूंद डालें। दो मिनट पश्चात् सल्फापाइरिडिनका अति सूक्ष्म चूर्ण नेत्रमें छिड़क देवें और नेत्रपर पट्टी बाँध देवें। इस तरह दिनमें दो बार उपचार करें। दूसरे दिन क्षत कम हुआ हो, नेत्रमें सुधार हुआ हो और रोगीको वेदना कम हुई हो, तो वही उपचार चालू रक्खें। अन्यथा कार्बोलिक एसिड और टिञ्चर आयोडिनके सम भाग के मिश्रणसे क्षतको दग्ध करें।

कितनेक नेत्रवैद्य पहलेसे ही दम्भक यन्त्र (Cautery) से क्षतको जलाना पसन्द करते हैं। कितनेक इससे भी आगे बढ़कर क्षत तल और चारों ओरके किनारेको छोटे तीक्ष्ण चिम्मच (चित्र नं० ७८ ग्रन्थके अन्तमें देखे)से छीलकर फिर दम्भक यन्त्रका उपयोग करते हैं।

इस तरह जलानेके पश्चात एट्रोपिन और सल्फापाइरिडिनके उपचार उपर्युक्त विधि अनुसार करना चाहिये। इसके अतिरिक्त रोगी नेत्रवैद्य के पास आवे उसी समय से सल्फाडायोजिन की कम-से-कम ६ टिकिया और अधिक-से-अधिक १२ टिकिया तक १ दिन में रोगी को खिला देवें।

क्षत को जलाने के दूसरे दिन से सुधार दृष्टिगोचर हो तो उपचार जो चलते हों, वे ही चालू रक्खें। अन्यथा किञ्चित् भी विलम्ब किये बिना जलमयरसके पूर्वखण्ड को रिक्त करने की शस्त्रक्रिया (Paracentesis of Anterior Chamber) कर देनी चाहिये। इस शस्त्रक्रिया से अनेक क्षतों में दूसरे ही दिन से लाभ होने का अनुभव होता है।

फिर भी कितनेक क्षत ऐसे दुराग्रही होते हैं कि, इन सब उपचारों के होते हुए भी आगे बढ़ते जाते हैं। इस तरह प्रगतिशील क्षत प्रायः फूटनेकी अवस्था तक पहुँच जाते हैं। उनको स्वयंमेव फूटने देवें तो परिणाम अधिक हानिकर आता है। अतः उन क्षतों पर सीमिस्ककी शस्त्रक्रिया (पहले पृष्ठ ३०९ में लिखी हुई) करनी चाहिये। इस शस्त्रक्रिया से नेत्रको होने वाली हानि से कुछ अंशमें बचाव हो जाता है।

यदि क्षत फूट जाय और तारामण्डलका पर्दा उसमें फँस जाय तो क्या करना चाहिये ? यह प्रश्न अति विचारणीय है। उस स्थितिमें अच्छे-से-अच्छा उपाय तो यही माना जायगा कि बाहर आये हुए पर्देके भागको अच्छी तरह साफकर पुनः भीतर प्रवेश करा देना; किन्तु ऐसा करनेमें सबसे बड़ा प्रतिबन्ध यह होता है कि जब तक शुक्लमण्डलके क्षत का रोपण न हुआ हो तब तक उसमें अवस्थित कीटाणु अति घातक होते हैं। अर्थात् बाहर आये हुए तारामण्डलके पर्देको पुनः भीतर प्रवेश करा दिया जायगा, तो पर्देके साथ उन हानिकर कीटाणुओंका प्रवेश भी हो जायगा। फिर उस भाग को पकाना प्रारम्भ कर देंगे। फिर "लेने गई पूत और खो आई खसम" वाली कहावत जैसा माना जायगा। इस हेतु से जब तक क्षतका रोपण न हो और नेत्रगत वेदना शमन न हो, तब तक बाहर निकले हुए पर्देको भीतर डालना स्थगित रखना चाहिये। केवल इसरिन डालने से पर्दा कदाच बैठ जाय या कम बाहर रह यह सम्भवित है। अतः तारामण्डलका पर्दा बाहर आने पर अन्य उपचारोंके साथ इसरिन १ प्रतिशत के प्रवाहीकी बूंद दिनमें ३ बार डालते रहना चाहिये। जब आँख बिल्कुल स्वस्थ हो जाय तब उस पर्देको भीतर बैठाने का प्रयत्न करें। भीतर न बैठ सके तो उसे काटकर दूर करने की शस्त्रक्रिया करनी चाहिये। उस शस्त्रक्रिया का वर्णन ३१वें प्रकरण में किया जायगा।

यदि पूय समस्त नेत्रगोलक में फैल गया हो और नेत्रगोलक का स्फोटक (Pan ophthalmitis) हो जाय तो नेत्र को बचाने का कोई उपाय नहीं है। केवल रोगी की असह्य वेदना को शमन करने के लिये शस्त्रक्रिया द्वारा नेत्रगोलक को रिक्त कर देना (नेत्ररिक्त करण–Eviscera-tion) अथवा उसे निकाल देना (गोलक निष्काशन—Enucleation) पड़ता है।

आ (ii) चक्राकार क्षत।

(Disciform Keratitis)

यह क्षत परिसरवर्तीय क्षतसे मिलता-जुलता होने से इसका वर्णन

यहाँ दिया जाता है। यह भी शुक्लमण्डलके मध्य भागमें होता है। विशेषतः शुक्लमण्डलकी बीच की वृत्ति (गर्भवृत्ति) और श्वेतमण्डलकी वृत्ति में होता है।

कारण—इस रोगकी उत्पत्तिका मुख्य कारण परिसरणशील क्षतके समान शुक्लमण्डलको हुई व्यथा है। व्यथा अति मामूली क्यों न हो, चाहे रोगीको उसका भान भी न हो, यह रोग उपस्थित होजाता है। एक रुग्णा आजसे ३७ वर्ष पहले मैंने देखी थी, उसका स्मरण आजानेसे उसका संक्षिप्त वर्णन देते हैं।

एक धनिक कुटुम्ब की बाई लगभग २० वर्षकी आयु की थी, उसे नेत्रमें वेदना उत्पन्न हुई, नेत्र न खुल सके, निद्रा न आसके, नेत्रमेंसे सतत अश्रुस्राव होता रहे, आदि लक्षण उपस्थित हुए। लगभग ४ दिन तक स्थानिक आंखके डाक्टरसे चिकित्सा कराती रही। फिर आराम न होनेसे कच्छ भुजसे हमें बुलाया। रुग्णा कच्छ भुजसे ३२ माइल दूर ग्राममें रहती थी। वहाँ जाकर परीक्षा करने पर प्रतीत हुआ कि शुक्लमण्डलके ठीक मध्यभागमें एक अति छोटा कोयलेका किनका गिरा था, उसके चारों ओर चक्राकार क्षत उपस्थित हुआ था। हमारे साथ उस समय कोई शस्त्र-यन्त्र नहीं था, उस ग्राममें भी किसी वैद्य या डाक्टरके पास उस किनकेको निकालनेका साधन नहीं मिला, और ३२ माइल दूरसे साधन मँगानेमें समय काफी लग जाता। इसलिये सोचकर एक पेन्सिल मँगा तेज नोक बनाली। उस नोकको बत्तीकी ज्वालामें जलाकर निर्जन्तुक (Antiseptic) की और उसीसे उस जर्रेको निकाल दिया। बस, उसी समय रुग्णाकी पीड़ा शान्त होगई और फिर क्षतका शीघ्र रोपण होगया।

ऐसा ही एक उदाहरण अमेरिकन नेत्रवैद्यने प्रकाशित किया था। उसे २१ वर्षकी आयु वाली युवतीके नेत्रमें चक्राकार क्षत दृष्टिगोचर हुआ था। जो किसी भी प्रकारसे नहीं मिटता था। सूक्ष्मतासे निरीक्षण करने पर उसे पता चल गया कि, शुक्लमण्डलके मध्यभागमें एक कांटे (शूल) की नोकका अति सूक्ष्म भाग घुस गया है। उसे निकाल देने पर क्षतका रोपण होगया।

किसी समय बालकको शीतलाका टीका (Vaccination) निकालने पर उसके सूक्ष्माणु उड़कर नेत्रमें गिर जाय तो उस प्रकारका क्षत होजाता है। यथार्थ रूपसे निर्णय किया जाय तो चक्राकार क्षत परिसरणशील क्षत का सौम्य कृत्रिम प्रकार है। कारण, उस क्षतमें जो कीटाणु प्रवेश करते हैं,

वे अधिक दुष्ट होते हैं, किन्तु इस प्रकारके क्षतोत्पादक कीटाणु अतिशय कम विषाक्त होते हैं।

परिणाम—इस प्रकारके क्षतके परिणाममें शुक्लमण्डलके मध्य भागमें फूला या अपारदर्शकता रह जाती है।

उपचार—एट्रोपिन, डायोनिन और सल्फोनेमाइडका मलहम, ये तीन औषधियाँ ही इस रोगको दूर करनेमें काफी हैं। जब फूला पड़ने जैसी स्थिति उपस्थित होजाती है, तब पीला मलहम, डायोनिन मिला हुआ पीला मलहम, रिस्कोलवण्टका मलहम या विण्टर ग्रीन तेलका उपयोग किया जाता है।

इ. (i) शुक्लमण्डलके गम्भीर क्षत।

(Deep ulcers of Cornea, Ring abscess of Cornea).

इसके समान ही दूसरा रोग शुक्लमण्डलके गम्भीर भागका पूयमय प्रदाह (Keratitis Pustuliformis Profunda) है। उसका वर्णन इस रोग वर्णनके बाद किया जायगा।

इस प्रकारका शुक्लमण्डलका पाक प्रायः नेत्रको हुई व्यथाके परिणामरूप अथवा नेत्रमें की हुई शस्त्र चिकित्सा, विशेषतः काँचबिन्दु निकालने की क्रियाके परिणामरूप उत्पन्न होता है। फिर इससे आँख चली जाती हैं।

लक्षण और चिह्न—आँखमें असह्य वेदना होती है, चिपचिपा अश्रु-स्राव होता है और दृष्टि बन्द हो जाती है। रोगी का नेत्र देखने पर दोनों पलक पर अच्छी तरह शोथ प्रतीत होता है। नेत्रके चिपचिपे स्रावके हेतुसे दोनों पलक चिपक जाते हैं। नेत्र गोलक लाल होता है। यदि रोग उत्पन्न हुए २-३ दिन होगये हों तो वह उभड़ा हुआ भासता है। शुक्लमण्डलकी परीक्षा करने पर उसमें एक गोलाकार अपारदर्शकता देखनेमें आती है। यह अपारदर्शकता अंगूठीके आकारकी होती है। शुक्लमण्डलके किनारे पर कुछ भाग किंचित् मलिन रंगका होता है। उसके भीतरके हिस्सेमें वह अंगूठी आकारका किंचित् पीताभ मलिन भाग रहता है। दूसरे दिन नेत्रकी परीक्षा करने पर समग्र शुक्लमण्डल सफेद या पीला और बिल्कुल अपारदर्शक हो जाता है। तीसरे दिन पूरा नेत्रगोलक पूयसे पूर्ण भर जाता है। फिर रोगीकी वेदना बढ़ जाती है। कुछ अंशमें ज्वर भी रहता है, निद्रा नहीं आती। भोजन नहीं भाता। यह स्थिति १५-२० दिन तक चलकर नेत्रगोलक फूट जाता है या उसमेंसे पूय निकल जाता है। फिर वेदना शमन हो जाती है। अथवा कभी-कभी गोलक फूटे बिना ही शुक्लमण्डल

गलकर निकल जाता है और फिर नेत्रगोलकका शोथ शनैः-शनैः घटता जाता है। अन्तमें १॥ मास जाने पर समग्र गोलक बिल्कुल बैठ जाता है।

कारण—यह रोग नेत्रको हुई व्यथाके परिणाममें होता है; अर्थात् नेत्रमें जो घाव हुआ हो, उस घावमें अति दुष्ट कीटाणु—न्युमोकोकाई, बेसिलस प्रोटियस फ्ल्युओरेसन्स (Bacillus Protius fleorescens) और बेसिलस पायोस्यानस (B. Pyocyaneus) का प्रवेश हो जाता है। फिर वे कीटाणु तारामण्डल और तन्तुसमूह तक पहुँच जाते हैं। उस भागमें रही हुई रक्तवाहिनियों, विशेषतः धमनियों द्वारा समस्त नेत्रगोलक में फैलकर उसका तीव्र पूयमय प्रदाह उत्पन्न करते हैं।

कभी ये कीटाणु प्रयोजित शस्त्र या यन्त्र द्वारा घावमें प्रविष्ट होते हैं; अथवा रोगीके देहमें अन्यत्र—दाँत, गलग्रन्थियाँ, कान, कण्ठ, नाक, अश्रुवाशय, फुफ्फुस, स्त्रियोंका गर्भाशय, गर्भाशय मुख और बीजाशय आदि में पूय होने पर वहाँसे रक्तमें प्रविष्ट होकर फिर नेत्रके घावमें पहुँच जाते हैं, जिससे वहाँ पाक होना प्रारम्भ होता है। यह पूयमय पाक (Suppuration) समस्त नेत्रगोलकमें फैल जाता है। इस स्थितिको बढ़ानेमें रोगीकी शारीरिक निर्बलता, मधुमेह, वृक्कप्रदाह, पाण्डु, अति वृद्धावस्था या शराबका व्यसन आदि सहायक होते हैं।

परिणाम—इस रोगके परिणाममें नेत्र निश्चित चला ही जाता है। ऐसा हमारा अद्यापि पर्यन्तका अनुभव है। एवं समस्त नेत्ररोगके लेखकों का लेख है। वर्त्तमानमें एक नूतन औषध पेनीसिलिन (Penicillin) ऐसी निकली है कि, जिसका प्रयोग रोगके प्रारम्भ कालमें तत्काल योग्य परिमाणमें किया हो, तो कदाच कितनेक नेत्रोंको बचा सकेंगे, ऐसा अनुमान है। इनके अतिरिक्त अन्य कोई उपचार कार्यकर सिद्ध नहीं हुआ। बहुधा नेत्रगोलक निकाल देना पड़ता है।

उपचार—इस रोगका कोई भी उपचार पूर्णांशमें सफल नहीं होता। यदि शस्त्रक्रियाके हेतुसे उत्पन्न घावमें संसर्ग हुआ हो, और विदित हो जाय तो उसी समय कार्बोलिक एसिडसे उस भागको जला डालें; अथवा एब्सोल्युट अल्कोहॉल लगा देवें और फिर नेत्रमें सल्फोनेमाइडका सूक्ष्म चूर्ण डाल दें और बोरिक एसिडके प्रवाहीसे सेक करें।

यदि रोगी रोग होने पर पहले ही दिन चिकित्सार्थ आया हो तो पेनीसिलिनके १५००० से ३०००० युनिटका एक, ऐसे ६ अन्तःक्षेपण एक दिनमें देवें। यदि नेत्रमें लाभ प्रतीत हो अथवा रोग-वृद्धि रुकी हुई प्रतीत हो तो सब मिलकर ३० इञ्जेक्शन ५ दिनमें देवें। दो दिनमें लाभ प्रतीत

न हो तो नेत्रकी आशा छोड़ देनी चाहिये। रोगीकी वेदना मिटानेके लिये शस्त्र-क्रिया कर नेत्रगोलकको निकाल देवें। या रोगी ऐसा करनेका निषेध करे, तो गोलकमें छुरिका डाल काटकर पूयको बाहर निकाल डालें। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय अभीतक विदित नहीं हुआ।

इ. (ii) शुक्लमण्डलके गम्भीर भागका पूयमयप्रदाह।

(*Keratitis Pustuliformis Profunda*)

यह रोग केवल पुरुषोंको, इनमें भी केवल वृद्धोंको ही होता है।

लक्षण और चिह्न—इस रोगके लक्षण शुक्लमण्डलके क्षतके लक्षणके अनुसार ही हैं। नेत्रकी परीक्षा करनेपर शुक्लमण्डलके गहरे भागमें पीले रंगके पूयबिन्दु जम गये हों, ऐसा भास होता है। कभी शुक्लमण्डलके मध्यभागमें एक ही दाग दिखता है। किन्तु विशेषांशमें राईके दानेके समान या उससे भी छोटे बहुसंख्य बिन्दु (पिटिकाएं) प्रतीत होते हैं। प्रत्येक बिन्दुके चारों ओर कुछ भाग मैले रंगका विदित होता है। तारामण्डलके प्रदाहके सब चिह्न देखनेमें आते हैं। नेत्रमें तीव्र वेदना, जलमयरसके पूर्व-खण्डमें पूयसंग्रह, शुक्लमण्डलके पिछली वृत्तिमें बहुसंख्य श्वेत बिन्दु (के० पी० Keratitis Punctate) होना आदि लक्षण भासते हैं। कभी कांच-रूपरसमें भी अपारदर्शकता प्रतीत होती है।

उक्त श्वेत बिन्दुओंका वर्णन किया है, वे कभी क्षतमें परिणत नहीं होते; किन्तु प्रत्येक बिन्दुके स्थानमें अपारदर्शकता आकर सूक्ष्म-सूक्ष्म बहुसंख्य फूले होजाते हैं। कभी नेत्रके शोथके हेतुसे गोलक नरम होकर दृष्टि नष्ट होजाती है। किसी भाग्यवान् रोगीके नेत्रमें ऊपर लिखे हुए बिन्दु अदृश्य होकर नेत्र साफ होजाते हैं; किन्तु ऐसा क्वचित् ही होता है।

कारण—इस रोगका कारण अभी तक अज्ञात है। उपदंशको इस रोगका कारण माना जाता है। यथार्थमें यह रोग तारामण्डलके प्रदाहके परिणाम रूप होता है।

उपचार—यह रोग दीर्घकाल स्थायी है। अनेक उपचार करनेपर भी टससे मस नहीं होता। तथापि एट्रोपिन, डायोनिन आदि औषधोंका उप-योग करते रहना चाहिये।

ई. शुक्लमण्डलका गलन (*Keratomalacia*)।

यह रोग छोटे बच्चोंको होता है। यह अति गम्भीर रोग है। जिस बालककी आँखमें होता है, उसकी दोनों आंख चली जाती हैं। इतना ही नहीं,

लक्षण और चिह्न—इस रोगके लक्षण लगभग उत्पन्न नहीं होते, ऐसा कहें तो चल सकता है। बालकके नेत्रमें पीड़ा, अश्रुस्राव, नेत्रका अतिरुदन, आंखोंको मसलना आदि कुछ भी लक्षण नहीं होते। मात्र बालक शान्त भावसे पड़ा रहता है। वह चेतनाहीन हो, इस तरह घण्टों तक चुपचुप पड़ा रहता है। यदि बालक कुछ समझवाला होगया हो, तो रोग प्रतीत होने के पहले रात्रिको न देख सकनेकी फर्याद करता है। दूसरी रीतिसे कहें तो इस रोगका प्रारम्भ रतौंधीपनसे होता है। बालककी देह अस्थिपिञ्जरवत् भासती है। त्वचामें स्थान-स्थानपर झुर्री होजाती हैं। जैसे कि त्वचा सर्वत्र लटक रही हो, ऐसा देखाव होता है। बालकके रोनेमें भी कुछ बल नहीं भासता। वह रोता है, यह भी सुननेमें नहीं आता। नेत्रकी परीक्षा करनेपर शुक्लमण्डलके दोनों ओर नेत्रश्लेष्मावरण त्रिकोणाकार निस्तेज, सिलवट युक्त और शुष्क दिखता है। क्वचित् उसपर झाग जैसी प्रतीति होती है। इस भागपर अश्रु नहीं टिक सकता। समस्त नेत्र शुष्क भासता है। जो स्थिति नेत्रश्लेष्मावरणकी होती है, वही स्थिति थोड़े समयके पश्चात् शुक्लमण्डल की होजाती है। शुक्लमण्डलके ऊपरकी वृत्ति बिल्कुल निस्तेज, कुछ खुरदरी, शुष्क और झुर्रीदार होजाती है। इस तरह ३-४ दिन चलकर फिर शुक्ल-मण्डल समग्र पीले मैले रंगका होजाता है। दोनों नेत्रोंमें रोग एक साथ ही होता है, और २-३ दिन जानेपर समग्र शुक्लमण्डल गल जाता है। फिर वह गोलकसे पृथक् होकर निकल जाता है। ऐसा होनेपर भीतरसे दृष्टिमणि बाहर आजाता है। दोनों नेत्रोंमें गहरे गड्ढे होजाते हैं। रोगीकी शारीरिक शक्ति दिन-प्रति-दिन निर्बल होती जाती है। अतिसार होकर बहुसंख्य दस्त पतले, मल पानी अलग हो वैसे लगते रहते हैं। यह स्थिति भी अधिक दिन नहीं रहती। रोगी कुछ दिनोंमें अति निर्बल होकर मृत्युके शरण होजाता है।

कारण—इस रोग का मुख्य कारण एक ही है। वह यह कि, बालक को स्वस्थ रखने तथा वृद्धि के लिए जो पोषकतत्त्व युक्त भोजन चाहिये, वह न मिलता हो; अथवा पाचन शक्ति की विकृति के हेतु से भोजन पचन न होता हो। बालक माता के दूध पर हो और माता की शारीरिक निर्बलता, पाण्डु, गर्भावस्था या उसे मिलने वाले भोजनमें पोषक द्रव्य (विटामिन) की न्यूनता हो, तो उस दूध से आवश्यक पोषक सत्व नहीं मिल सकता। इस हेतुसे बच्चों को इस रोग की प्राप्ति होती है। वर्त्तमानमें यह निर्णीत हो चुका है कि, बालक को मिलने वाले आहारमें

विटामिन A की न्यूनता या अभाव हो तो इस रोग की उत्पत्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त रोमान्तिका, शीतला, मोतिया, मधुरा आदि ज्वर तथा रक्तमें मातापितासे मिला हुआ उपदंश विष आदि कारणोंसे बालक की देह अतिकृश और निर्बल हो जाती है, तब इस रोग की सम्प्राप्तिका सम्भव रहता है।

उपचार—इस रोग के लिये दो प्रकार के उपचार की आवश्यकता है। विशेष महत्वका उपचार रोगी को अच्छा पौष्टिक भोजन और विटामिन A औषध रूप से देना चाहिये। भोजनमें ताजा धारोष्ण दूध, मक्खन, मलाई, शुद्ध घी (वेजीटेबिल घी नहीं), ताजे फल-केले, मोसम्बी, संतरा, पपीता, आमकी ऋतु हो तो आम, ये सब बालक को पचन हो सके उतने परिमाण में देना चाहिये। इस तरह अण्डा भी पोषक भोजन है।

बालक को अतिसार या पचन विकृति आदि कोई रोग हो, तो उसे पहले दूर करना चाहिये। अतिसार होने पर गोदुग्ध नहीं देना चाहिये। बकरी का दूध अति हितकर माना जाता है; तथा मुख्य औषध कोडलिवर ऑइल देते रहने से शीघ्र लाभ पहुँचता है। यह तेल रोगी की आयुके अनुसार ½ से ¾ छोटी चम्मच (१५ से ३० बूंद) तक दूध या शहद के साथ देते रहें। केपलरका कॉडलिवर ऑइल विथ माल्ट दिन में ३ बार १-१ छोटी चम्मच देना चाहिये। वर्त्तमानमें कॉडलिवरका सत्व निकाल कर उसकी बनी हुई औषध आती है, वह भी अच्छा लाभ पहुँचाती है। इनमें मुख्य ओस्टेलिन, एडेक्सोलिन आदि हैं।

कॉडलिवरसे मिलता दूसरा तेल हेलिबट लिवर ऑइल (Halibut liver oil) है। यह भी ऐसा ही लाभ पहुंचाता है। इस तेलकी एक खास बनावट एलन और हेनबरी कम्पनीकी हलीबोरेन्ज (Halliborange) आती है। उसमें संतरा का रस भी अच्छी तरह मिश्रित किया हुआ है। यह औषध १-२ चम्मच दिनमें ३ बार देते रहनेसे बच्चेकी प्रकृति सुधर जाती है। क्रूकका कोलोसज कोन्सेण्ट्रेटेड हेलिबट ऑइल (Crooks Collosal Concentrated Halibut oil) अति गाढ़ा (Concentrated) है। उसमेंसे २-२ बूँद दिनमें ३ बार देते रहनेसे एक चम्मच कॉडलिवर तेल जितना लाभ मिल जाता है।

वर्त्तमान संसारव्यापी युद्धके हेतुसे विदेशसे कॉडलिवर ऑइल और हेलिबट ऑइलका आना बन्द होगया है। इसलिये भारतके किनारे पर रहे हुए शार्क नामक मत्स्योंका तेल निकालकर उपयोगमें लिया जाता है।

वह भी उतनाही गुणदायक सिद्ध हुआ है। इससे शार्क ऑइल (Shark oil) का प्रयोग करना भी हितकर ही माना जाता है।

इसके अतिरिक्त केलसियमकी अनेक कृति आती हैं, वे भी अस्थि-पोषक रूपसे आवश्यक हैं। इनमें केलसियम हाइपोफोस्फाइट क्षार आता है; और उसका शर्बत (Syrup Calces Hypophosphite) है, वह १-१ चम्मच उपरोक्त कॉडलिवर आदि औषधके साथ देते रहना चाहिये।

अन्य एक औषध ओस्टोकेलसियम (Osto-Calcium) है। उसमें केलसियम और आस्टेलिन (कॉडलिवर तैलका सत्व), दोनों मिश्रित हैं। उसकी टिकिया आती हैं। इनमेंसे आधी-आधी दिनमें ३ बार दी जाती है। इन सार्वाङ्गिक पोषण वाली औषधियोंमें से जो विशेष सुविधाजनक प्रतीत हों, उन्हें प्रयोगमें लाना चाहिये।

स्थानिक उपचार—नेत्रको धोकर साफ करें। फिर नेत्रमें विशुद्ध कॉड-लिवर तैलकी १-१ बूँद दिनमें ३-४ बार डालते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है। मधुरा जैसे मुहल्ले ज्वरोंमें यदि रोगी बेहोश पड़ा रहता हो और नेत्र खुला रहकर सूखता जाता हो, तो नेत्र पर पट्टी रखनी चाहिये।

उ. वातनाड़ी स्तम्भजनित शुक्लमण्डलका क्षत।

(*Neuro Paralytic Keratitis*)

शुक्लमण्डलके भीतर अवस्थित स्पर्शज्ञान और चेतना ५वीं नाड़ी-मस्तिष्कमज्जा रज्जु (Fifth nerve-Trigeminus nerve) के हेतुसे है। अतः किसी भी कारणसे उस नाड़ीका वध होजाता है; या उस नाड़ी का आद्यस्थान त्रिधार ग्रन्थि-मज्जाकंद (Gasserian Ganglion) में अल्कोहाल का अन्तःक्षेपण किया जाता है; अथवा ५वीं नाड़ीकी प्रदाह-जनित असह्य वेदनाको शमन करनेके लिये उस मज्जाकन्दको काट दिया जाता है; तब यह व्याधि उपस्थित होती है।

लक्षण और चिह्न—इस रोगमें नेत्रके भीतर वेदना बिल्कुल नहीं होती। कारण, शुक्लमण्डलका स्पर्शज्ञान या संज्ञा देने वाली नाड़ी—चाक्षुषी नाड़ी जो पाँचवीं नाड़ीकी एक शाखा है, वह बिल्कुल स्तम्भित हो जाती है। इसी कारणसे नेत्रमें से जल भी नहीं गिरता; तथापि नेत्रमें लाली विशेष परिमाणमें होती है। रोगीको दृष्टि कम होती हुई भासती है। इस रोगका प्रारंभ शुक्लमण्डलके मध्य भागमें होता है। उस भागमें पहले ऊपर-की वृत्ति मामूली सूख गई हो और मन्द होगई हो ऐसा भास होता है। वह दाग फिर बढ़ता जाता है और अन्तमें परिधिकी ओर बढ़कर लगभग

समग्र शुक्लमण्डलको घेर लेता है। परिधिका थोड़ा ही भाग कुछ अधिक साफ रहता है। जो सफेद हलका दाग था, वह सारे शुक्लमण्डलको पीला और बिल्कुल अपारदर्शक बना देता है। अन्तमें समग्र शुक्लमण्डल गल जाता है। जलरूप रसके पूर्वखण्डमें पूय प्रतीत होता है। रोगकी प्रगति होने पर शुक्लमण्डलके बीचका हिस्सा फूटता है। उसमेंसे तारामण्डलका कुछ अंश बाहर निकल कर फँस जाता है; या शुक्लमण्डल फूटकर उसमेंसे दृष्टिमणि और काँचरूप रस बाहर निकल जाता है फिर गोलक बैठ जाता है। शुक्लमण्डल बहिर्गोल नहीं रहता, सपाट होजाता है, ये सब क्रिया शनैः-शनैः होती है। इससे शुक्लमण्डलके गलनेमें कुछ सप्ताह लग जाते हैं।

कारण—५वीं नाड़ीके बध होनेसे शुक्लमण्डलकी संवेदना शक्ति नष्ट होती है; फिर उस पर धूलि, रज आदि गिरे, तो उसका बोध नेत्रको नहीं होता, पलक गिरना बहुत कम होता है। एवं उसी नाड़ीमें पोषणको नियमित करनेकी शक्ति होनेसे शुक्लमण्डलका पोषण भी बहुत कम हो जाता है। इन कारणोंसे शुक्लमण्डलकी त्वचा विकृत होने लगती है। नेत्रमें प्रवेशित कीटाणु सबके पहले उस भाग पर आक्रमण करते हैं। जैसे-जैसे समय जाता रहता है, वैसे-वैसे ये कीटाणु गहरे और गहरे भागोंमें दुष्ट कार्य करते रहते हैं। अन्तमें किनारेके ओरके कुछ भागके अतिरिक्त सब शुक्लमण्डलको दूषित कर देते हैं।

परिणाम—प्रायः नेत्र चला जाता है।

उपचार—इस स्थितिके लिये एक ही उपचार है। किसी भी उपायसे नेत्रको स्निग्ध और आर्द्र रख सकें तो नेत्र बच सकता है। इसके लिये नेत्र पर २४ घण्टे (निरन्तर) पट्टी रखें; या उसकी अपेक्षा अच्छा उपाय यह है कि, पलकोंकी सिलाई कर दोनोंको जोड़ लेवें। इस क्रियासे नेत्र सदाके लिये बन्द रहेगा। इस तरह महीनों तक नेत्र बन्द रखना पड़ता है। नेत्र पर गरम जलके फोहे रखने से भी नेत्र आर्द्र रह सकते हैं।

ऊ. नेत्रगोलक खुला रहनेसे उत्पन्न क्षत।

(Keratitis e Lagophthalmos.)

इस रोगमें नेत्र योग्य बन्द न होनेसे शुक्लमण्डलका जो भाग खुला रहता है, वह शुष्क होता है और फिर उसमें क्षत होजाता है।

लक्षण और चिह्न—नेत्रश्लेष्मावरणका एक खास स्वभाव है कि, जो भाग सतत खुला रहे, वह सूखकर रक्ताभ बन जाता है और कुछ सूज जाता

है। इतना ही नहीं, उसमेंसे कुछ चिपचिपा पदार्थ भी निकलता रहता है। वह पदार्थ सूखकर उसकी पतली तह शुक्लमण्डल पर फैल जाती है। इस हेतुसे शुक्लमण्डलका वह हिस्सा शुष्क, निस्तेज और अपारदर्शक होजाता है। जैसे-जैसे समय जाता है, वैसे-वैसे शुक्लमण्डलका रंग अधिक और अधिक पिंगलाभ होता जाता है। अन्तमें उसमें क्षत होता है। उस क्षतके साथ तारामण्डलका प्रदाह प्रतीत होता है। एवं कभी-कभी जलमय रसके पूर्वखण्डमें पूय भी दिखता है। यह क्षत भर जाय तो उस स्थान पर फूला होजाता है। या क्षत फूटकर उसमें तारामण्डलका पर्दा बाहर निकलकर फँस जाता है। किसी-किसी मंद प्रारब्धवान् रोगीमें नेत्रगोलक विशेष समय तक खुला रहनेसे समग्र गोलकमें पूय भी होजाता है।

कारण—यह रोग नेत्र खुला रहने से होता है। ऊर्ध्व पलक का बध, चिरकारी रोहे, पलक का स्फोटक अथवा पलक पर हुई अयोग्य शस्त्र-चिकित्सा, इन कारणों से पलक ठीक बन्द नहीं हो सकता। फिर नेत्र खुला रहता है। इस तरह कितनेक रोगियोंमें गोलक इतना बड़ा हो जाता है कि, पलक से वह किसी भी तरह आच्छादित नहीं हो सकता। इनके अतिरिक्त मधुरा जैसे मुद्दती ज्वरोंमें रोगीकी बेसुधावस्था में नेत्र आधे खुले ही रहने से भी इस रोगकी संप्राप्ति हो सकती है। उपरोक्त किसी भी कारण से गोलक का कुछ भाग पलक से आच्छादित हुए बिना रहने पर उसे सतत वायु लगती रहती है। इससे वह सूखा रहता है, उसका पोषण कम होता है और फिर नेत्र पर कीटाणुओंका आक्रमण होकर क्षत उपस्थित होता है।

उपचार—किसी भी उपाय से नेत्रके गोलकको ढक सकें तो यह रोग रुक जाता है। या प्रारम्भ हुआ हो तो उसे शमन कर सकते हैं। मधुरा जैसे ज्वरों में यह रोग होने की स्थिति प्राप्त हो, तो वह रोगी कचित् ही बचता है। किन्तु सुभाग्य से रोगी बच जाय तो अन्य क्षतोंके समान उपचार करने के लिये रोगी की शारीरिक स्थिति योग्य नहीं मानी जाती। वह अति निर्बल होने से क्षतका रोपण होने में प्रतिबन्ध होता है; तथापि योग्य और दृढ़ उपचार करने से नेत्र बच जाता है।

उपचारोंमें मुख्य एट्रोपिनके बूँद, नोबीफार्मका मलहम और नेत्र पर पट्टी बाँधना, ये हैं। ऐसे रोगियोंकी परिचर्या करने के लिये अनुभवी परिचारिका रखनी चाहिये। इससे वह नेत्रोंको खुला न रहने दें।

ए. शुक्लमण्डल की परिधिके क्षत।

(Marginal ulcers of the Cornea)

चित्र नं० ७२ प्रकरण ११ में देखें। परिधि के भागोंमें होने वाले क्षतोंमें अनेक प्रकार नेत्ररोगके लेखकों ने दर्शाये हैं। उनमें मुख्य निम्न हैं :—

(a) उत्तान परिधिका क्षत—Karatitis Marginalis Superficialis.

(b) गम्भीर परिधि क्षत—Keratitis Marginalis Profunda.

(c) संक्रामक परिधि क्षत—Infectious Marginal Ulcer. (ZurNedden) Punctate & diffuse.

(d) शुक्लमण्डल की तारुण्य पिटिका—Acne Rosacea Keratitis.

(e) पिटिका क्षत —Phlyctenular Conjunctivitis

(a) उत्तानपरिधि क्षत।

(Keratitis Marginalis Superficialis)

परिधिके उत्तान क्षत बहुधा नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह के साथ प्रतीत होते हैं। रोगी प्रायः वृद्ध होता है। उसके नेत्रमें चिरकारी श्लेष्मावरण-प्रदाह रहता ही हो, उसके साथ इस प्रकारके क्षत बारम्बार होते रहते हैं। ये क्षत परिधिके भागमें पिनके सिरकी अपेक्षा बड़े नहीं होते। एक की अपेक्षा अधिक होते हैं। इन क्षतोंके हेतु से तारामण्डलका प्रदाह नहीं होता, एवं अन्य कोई तीव्र चिह्न उपस्थित नहीं होते। क्षत होते हैं; स्वयमेव शमन हो जाते हैं; और पुनः उत्पन्न होते हैं। शमन हो जाने पर क्षतस्थान में सूक्ष्म-सूक्ष्म राई के दाने के समान फूले हो जाते हैं।

कारण—शारीरिक निर्बलता और कीटाणु विष पूरित नेत्र, ये दो मुख्य कारण हैं।

उपचार—नेत्रको बोरिक धावनसे धोवें। यदि नेत्र श्लेष्मावरणका चिरकारी प्रदाह, जो मोराक्स एक्सनफेल्डके कीटाणुओंसे उत्पन्न होता है (अनेक वयोवृद्ध रोगियोंको होनेका हमें अनुभव हुआ है), वह हो तो झिंक सल्फेट (१ औंस जलमें ½ से १ ग्रेन) के प्रवाहीकी बूँद या झिंक क्लोराइड ½ से ½ ग्रेनके प्रवाहीकी बूंद डालनेसे क्षत और प्रदाह दोनों दूर हो जाते हैं।

यदि मोराक्स एक्सनफेल्ड के कीटाणु जनित न हो तो आर्जिरोल (१ औंस जल में ५० ग्रेन) की बूंद डालें; या पलक को उलट कर सिल्वर नाइट्रेट (१ औंस में ५ से १० ग्रेन) को फुरेरी से लगाने पर क्षत मिट जाते हैं। आईलेक्स (Eylex) मलहम युरिया सल्फोनेमाइड का बना हुआ तैयार आता है। वह भी इस रोग के लिये लाभदायक है। इनके अतिरिक्त नोवीफार्म (Noviform) के मलहम का उपयोग करने पर भी क्षत भर जाता है।

उपर्युक्त वर्णन अमेरिकन लेखकों के आधार से दिया है। फूक्स (Fuchs) नामक एक सुप्रसिद्ध नेत्रवैद्य जो वियेना (Vienna) में यशस्वी नेत्रवैद्य माने जाते थे, उन्होंने इस रोग का वर्णन पृथक् ही दिया है। नाम यही रक्खा है।

(b) गम्भीर परिधिक्षत।

(Keratitis Marginalis Profunda)

ये क्षत भी ऊपर वर्णन किये, वैसे ही होते हैं; किन्तु अधिक गहरे होते हैं। फिर भी ये नहीं फूटते एवं गम्भीर चिह्न भी नहीं दर्शाते। ये क्षत शमन होने पर फूले रह जाते हैं।

(c) परिधिका संक्रामक क्षत।

[*Infectious Marginal ulcer (Zur Nedden)*]

यह क्षत भारत में होता हो, ऐसी प्रतीति नहीं हुई। अतः इसका वर्णन नहीं किया। ये व्रण डाक्टर झुरनेडनके नामसे परिचित कीटाणुओं से होता है।

(d) शुक्लमण्डलकी तारुण्यपिटिका।

(Acne Rosacea Keratitis)

युवा लड़के और लड़कियों के मुँह पर जैसे तारुण्यपिटिकाएं होती हैं, मिटती हैं और नूतन उपस्थित होती हैं। एवं जिनमे मुखमण्डल की त्वचा पर शीतला के समान गड्ढे वाले क्षत रह जाते हैं; उसी तरह शुक्लमण्डल की परिधि के भाग में पिटिका क्षत के समान तारुण्यपिटिका उत्पन्न होती हैं और उनके स्थान पर गड्ढे (क्षत) हो जाते हैं। तारुण्यपिटिका शमन होने पर ये क्षत होना बन्द हो जाते हैं। सामान्य उपचार से ये क्षत भर जाते हैं।

(ङ) पिटिका क्षत।

(Phlyctenular Conjunctivitis)

चित्र नं ६४ प्रकरण ११ में देखें। इस रोग का वर्णन पहले प्रकरण ९ में किया है। इस रोग में शुक्लमण्डल पर क्षत हो जाता है।

ऐ. स्फोटमय शुक्लमण्डलप्रदाह।

(Keratitis Vesiculosa and Bullous)

इस रोग में शुक्लमण्डल पर स्फोटिकाएं हो जाती हैं। ये एक प्रकार के सूक्ष्म फफोले हैं जो फूटने पर उत्तान क्षत होते हैं। दूसरे प्रकार में एक बड़ा या दो स्फोट होते हैं। वे फूटने पर बड़े क्षत होते हैं।

लक्षण—इस रोग में स्फोटक या स्फोटिगत प्रवाही से भरे हुए रहते हैं। बड़े स्फोटक के चारों ओर का शुक्लमण्डल का भाग गल जाता है; या फफोले के ऊपर की त्वचा सब निकल जाती है। परिणाम में वहाँ एक बड़ा क्षत हो जाता है। यह फफोला होता है; तब वातनाड़ी के सूक्ष्म तन्तु खिंचते हैं। फिर क्षत होकर तन्तुओं पर से अच्छादन (क्षत त्वचा) दूर होने पर नेत्र में असह्य वेदना होती है।

कारण—लघु स्फोटिकाकी उत्पत्ति नेत्रमें दाहक पदार्थ गिरने, अधिमन्थ (नेत्रान्तर दबाववृद्धि), शुक्लमण्डलके गहरे भागमें प्रदाह या तारामण्डल और तन्तुसमूहके चिरकारी प्रदाहके हेतुसे होती है। बड़े फफोले वाला रोग किस हेतुसे होता है, यह अभी तक अज्ञात है।

उपचार—फफोला बड़ा होने पर उसे फोड़कर सूक्ष्म झिल्लीको निकाल डालें। फिर खुले भाग पर १ प्रतिशतका सिल्वर नाइट्रेटका प्रवाही लगा देवें। आवश्यकता हो, तो एट्रोपिनकी बूँद, नोवीफार्मका मलहम आदि का उपयोग करें।

ओ. शुक्लमण्डलका दुष्टव्रण।

(Rodent ulcer of Cornea–Mooren's ulcer)

यह रोग बहुधा ३५ से ४० वर्ष और इससे बड़ी आयुमें होता है। परिधिके क्षतके समान यह क्षत भी प्रायः परिधिके ऊपरके हिस्सेमें ही प्रारम्भ होता है। जिस स्थान पर पहला क्षत प्रतीत होता है, उस स्थान पर क्षतका रोपण होने लगता है, इतनेमें ही शुक्लमण्डलके अन्य स्वस्थ भागमें अन्य क्षतका आरम्भ होता है। क्षत रोपणके स्थानमें सूक्ष्म रक्तवाहिनियाँ प्रतीत होती हैं। एवं उतना शुक्लमण्डलका भाग अपारदर्शक

हो जाता है। जिस तरह पहले क्षत स्थान पर अपारदर्शकता आती है, इस तरह अन्यत्र भी क्षत होकर रोपण हो जाने पर अपारदर्शकता आती है। इस तरह नूतन-नूतन क्षत और अपारदर्शकताका क्रम कितनेक महिनों तक चलता रहता है। परिणाममें दृष्टिका नाश हो जाता है।

रोगविनिर्णय—उपरोक्त वर्णन परसे सरल है।

उपचार—क्षत पर दहन क्रियाके अतिरिक्त सामान्य उपायोंसे नेत्रका संरक्षण बहुधा नहीं हो सकता। परिधिमें उत्पन्न क्षत एवं यह दुष्ट क्षत, दोनों ही परिधिमें होनेसे नेत्रमें एट्रोपिन डालना उचित नहीं है। कारण, कदाच क्षत फूट जाय तो तारामण्डलके पर्दका बाहर निकल आना अधिक सम्भव रहता है। अतः एट्रोपिनके स्थान पर इसरिन सल्फेट १-२ ग्रेन १ औंस जलमें मिला, उसकी बूँद डालते रहना चाहिये। शेष चिकित्सा अन्य क्षतके समान करते रहें। कितनेक रोगियोंको ट्युबरक्युलिनसे अच्छा लाभ पहुँच जाता है। रेडियम लाभ पहुँचा सके, ऐसा अनुमान है; किन्तु नेत्रमें हानि पहुँचनेके भयसे हमने उपयोग नहीं किया।

B. शुक्लमण्डलके अनुषङ्गी क्षत।

(Secondary Ulcers of the Cornea)

नेत्रके किसी अन्य रोगके हेतुसे जो क्षत उपस्थित हो उसे अनुषङ्गी क्षत कहते हैं। इस प्रकारके क्षतोंमें मुख्य प्रकार निम्नानुसार हैं :—

अ. नेत्रश्लेष्मावरणका प्रसेक जनित क्षत—Catarrhal ulcers.

आ. पोथकी (रोह) जनित क्षत—Trachomatous ulcers of the cornea.

इ. वसन्त ऋतुके कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह जन्य क्षत—Corneal ulcers secondary to vernal Catarrh.

ई. पूयमेह और कण्ठरोहिणीके उपद्रवरूप नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह जनित क्षत—Corneal ulcers in Gonorrheal & Diphtheritic Conjunctivitis.

उ. शुक्लमण्डलका स्फोटक—Pemphigus of Cornea.

ऊ. कक्षजनित क्षत—Corneal ulcers in herps

ए. क्षयजनित क्षत—Tuberculous ulcers of the Cornea.

अ. नेत्रश्लेष्मावरणप्रसेक जनित शुक्लमण्डल क्षत।

(Catarrhal Corneal Ulcers)

नेत्र श्लेष्मावरणके वर्णनमें लिखा गया है कि, कितनेक प्रदाहोंके

साथ रोगीके नेत्रके शुक्लमण्डलमें क्षत होजाते हैं। इस तरह प्रदाहोत्पन्न क्षतके भीतर कोक्विक्स कीटाणुओंसे प्रदाह, न्युमोकोकाईसे प्रदाह आदि का अन्तर्भाव हो सकता है।

लक्षण और चिह्न—इस प्रकारके क्षतोंके लक्षण अन्य प्रकारके क्षतोंके समान ही होते हैं। लक्षणोंमें विशेषता यह होती है कि, ये क्षत प्रायः शुक्लमण्डलके किनारे पर होते हैं और अर्द्ध चन्द्राकार होते हैं। ये विशेष नहीं बढ़ते, एवं अधिक हानि भी नहीं पहुँचाते। ये नेत्रश्लेष्मावरणके प्रदाह के हेतुसे होते हैं, अतः वह प्रदाह शमन होने पर ये क्षत भी दूर होजाते हैं। कितनीक बार इस प्रकारके क्षत भर जानेके पहले गहरे होजाते हैं। परिणाममें समग्र शुक्लमण्डल उभड़ा हुआ भासता है।

उपचार—मूल कारण रूप नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह की चिकित्सा करनी चाहिये। इसके अतिरिक्त नोवीफार्म, झेरोफार्म या आइलेक्स जैसे मलहम का अंजन करना चाहिये।

सूचना—इस प्रकारके क्षतयुक्त नेत्र पर पट्टी बिल्कुल नहीं बांधनी चाहिये। अन्यथा नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहके हेतुसे निकलने वाला चिपचिपा जल, जो कीटाणुओंसे पूर्ण रहता है, वह नेत्रमें संगृहीत होनेसे क्षतका रोपण नहीं हो सकेगा। प्रत्युत उसमें वृद्धि हो जायगी।

आ. पोथकीजन्य शुक्लमण्डल क्षत।

(Trachomatous Ulcers of the Cornea)

रोहके हेतुसे जो क्षत होते हैं, उसमें दो प्रकार हैं। १. रोहाजन्य और २. सफेदी जन्य।

रोहके हेतुसे उत्पन्न क्षत प्रायः शुक्लमण्डलके किनारे पर होते हैं और छोटे-छोटे एकाधिक होते हैं। कभी ये किनारेके समान शुक्लमण्डलके मध्यमें भी होते हैं। मध्यभागमें होने पर क्षत छोटे-छोटे बहुसंख्य होते हैं। एवं उनका बिचला भाग किञ्चित् दबा हुआ होता है। इन क्षतोंके हेतुसे नेत्रमें वेदना, प्रकाशकी असहिष्णुता और अश्रुस्राव बढ़ जाते हैं। इतना ही नहीं, रोहके हेतुसे दृष्टिमें हानि नहीं पहुँचती थी, वह अब दृष्टि बहुत कम होजाती है।

सफेदीके हेतुसे क्षत होते हैं, वे प्रायः सफेदी का किनारा जहाँ पर हो, वहाँ होते हैं। वे क्षत एक या अधिक होते हैं। इन क्षतों पर सूक्ष्म-सूक्ष्म रक्तप्रणालियां निर्माण होती हैं। एक क्षत मिटता है और दूसरा होता है। इस प्रकारके क्षतमें रोगीको अधिक कष्ट भोगना पड़ता है।

उपचार—रोहेके रोग वाले नेत्रमें क्षतका उपचार करने पर इस बातको लक्ष्यमें रखना चाहिये कि, रोहेकी चिकित्सा जो चलती हो, वह चालू रक्खें। केवल नीलाथोथा या नीलेथोथेके मिश्रण युक्त किसी औषध का प्रयोग चलता हो, तो उसे बन्द कर देना चाहिये। कारण, नीलाथोथा क्षतको बिल्कुल अनुकूल नहीं रहता। इतना ही नहीं, नीलाथोथा नूतन क्षत भी उत्पन्न कर देता है। हमने ऐसे अनेक रोगियोंको देखा है, जिनको नीलेथोथे के उपयोगसे ही क्षत हुए थे।

सिल्वर आयोडाइडका उपचार इस प्रकारके क्षत पर अति हितकारक है। अनेक वर्षों से हम उपयोग करते हैं। हजारों रोगियोंकी चिकित्सा हमने इसीसे की है। इससे अच्छा लाभ पहुँचनेका हमें अनुभव मिला है। इससे रोहे और क्षत, दोनों ही दूर होजाते हैं।

सिल्वर नाइट्रेट का प्रवाही १० ग्रेन वाला पलक को उलट कर लगा सकते हैं, किन्तु जबतक सिल्वर आयोडाइडका उपयोग हो सके, तब तक सिल्वर नाइट्रेट को प्रयोग में नहीं लाना चाहिये।

इस रोग के पीड़ितों के लिये आर्जिरोल ५-१० प्रतिशत का प्रवाही भी अधिक अनुकूल रहता है। हम ऐसे रोगियों के लिये आर्जिरोल में कुछ एकाध बूंद वाष्प जल का मिला शहद जैसा गाढ़ा बना पलक को उलट कर लगाते हैं। इससे अनेक रोगियों को आश्चर्यकारक लाभ पहुंचा है।

इनके अतिरिक्त क्षत किनारे पर अति गहरे न गये हों या क्षत शुक्ल-मण्डल के मध्य भाग में हों या सफेदी के हेतु से उत्पन्न हुए हों तो भी एट्रोपिन की बूंद डाल सकते हैं। इस बूंद से पहले ही दिन से रोगियों को बहुत शान्ति मिलती है। एट्रोपिन की बूंद २-२ मिनट के अन्तर पर २-३ बार डाले।

इस तरह नोवीफार्म का मलहम भी इस क्षत के लिये अत्यन्त गुणदायक विदित हुआ है। अतः इसका भी उपयोग करना चाहिये।

सूचना—रोगी के नेत्र को पट्टी न बांधें, किन्तु काले चश्मे का उपयोग अवश्य करना चाहिये।

कितनेक नेत्रवैद्य रोहे में उत्पन्न क्षत के लिये रोगी को सल्फोने-माइड की टिकियाका उदरसेवन कराते हैं। एक दिनमें ४ टिकिया दी जाती हैं। इसके अतिरिक्त नेत्र में भी सल्फोनेमाइड के मलहम का अंजन करते हैं। कई नेत्रवैद्य सल्फोनेमाइड के मलहम का अंजन करते हैं। कई नेत्र-वैद्य सल्फोनेमाइड के प्रयोग की सराहना करते हैं। इन उपचारों के साथ

नेत्र पर बोरिक एसिड के धावन का या अफीम की डोडियों का सेक करें। अनेक रोगियों को इससे अच्छा लाभ पहुँचता है।

इ. बसन्तोद्भूत नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहज शुक्लमण्डल क्षत।

(Corneal Ulcers secondary to Vernal Catarrh)

बसन्त ऋतु में होने वाले नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह के वर्णन में लिखा था कि, जिस तरह इस रोग के हेतु से पलकों के भीतर कण आदि होते हैं, उस तरह नेत्रगोलक में शुक्लमण्डल के किनारे के पास उपद्रव रूपसे पिटिकाके आकार में नेत्रश्लेष्मावरण उठ आता है। वह उठा हुआ भाग कभी-कभी क्षत रूप बन जाता है अथवा सफेदी के समान शुक्लमण्डल के किनारे के भीतर के भाग में अत्यधिक शिराएं निर्माण करके अपारदर्शकता उत्पन्न करता है।

ई. पूयमेह और कण्ठरोहिणी के उपद्रवरूप नेत्रश्लेष्मावरण-प्रदाहज शुक्लमण्डल क्षत।

(Corneal Ulcer due to Gonorrhoeal Diphtheritic)

इन दोनों प्रकार के रोगों में उपद्रव रूपसे उत्पन्न शुक्लमण्डलके क्षत इतने शीघ्र बढ़ते हैं, इतने दृढ़ होते हैं और शुक्लमण्डल का ध्वंस इतना जल्दी करते हैं कि, इन रोगों से अपरिचित नेत्रवैद्य को इनकी तेजगति और परिणाम का खयाल नहीं आसकता। इन क्षतों के हेतु से प्रायः शुक्लमण्डल फूटता है। फिर उसमें से तारामण्डल का पर्दा बाहर निकल कर नेत्र को सदा के लिये विकृत कर देता है।

उपचार—इस क्षतका उपचार मूल रोग की चिकित्सा के अनुरूप ही है। अधिक में एट्रोपिन की बूंद और सल्फोनेमाइड के चूर्ण का व्यवहार करना चाहिये। सुजाक में गव्य (Vaccine) और कण्ठरोहिणी में रक्तद्रव (Serum) का उपयोग उदारतापूर्वक करना चाहिये। सल्फोनेमाइड का शोध होने के पश्चात् सुजाकजन्य क्षतों से शुक्लमण्डल को होने वाली हानि को अच्छी तरह रोक सकते हैं।

उ. शुक्लमण्डल का स्फोटक।

(Pemphigus of Cornea)

यह रोग क्वचित ही होता है। जब नेत्रश्लेष्मावरण में फफोला होता है, तब उसके परिणाम में कभी-कभी वह शुक्लमण्डल मे फैल जाता है। मुख्य चिह्न यह होता है कि शुक्लमण्डल पर छोटी या मोटी पिटका हो

जाती है या शिराओं से पूर्ण दृढ़ सफेदी प्रतीत होती है। इस हेतु से शुक्लमण्डल अपारदर्शक हो जाता है। कभी समग्र नेत्रगोलक का पाक हो जाता है।

ऊ. कत्ता और तत्सदृश शुक्लमण्डलका वृत्ताकार प्रदाहादि रोग।

(Herpetic and Dendritic Keratitis and other diseases similar to herps).

इन रोगों में से वृत्ताकार शुक्लमण्डल प्रदाह (Dendritic keratitis) का वर्णन पहले और फिर कत्ता का वर्णन करेंगे।

ऊ. १—वृत्ताकार शुक्लमण्डल प्रदाह।

(Dendritic Keratitis)

प्रकरण ११ में चित्र नं० ७३ देखें। इस रोग में शुक्लमण्डल के बाह्यपर्त में सूक्ष्मतम रेखाओं के समान क्षत होते हैं। इन रेखाओं में से शाखाएं फूटती हैं। आकृति लगभग वृक्षशाखा प्रशाखाओं जैसी बन जाती है। इस रोग का सम्बन्ध कत्ता के साथ अति निकट का है। जिस तरह कत्ता शुक्लमण्डल की नाड़ियों की व्याधि है, उस तरह यह रोग भी वातनाड़ियों का ही होने से इसका वर्णन यहां किया है।

लक्षण और चिह्न—रोगी के नेत्र में कण गिरने के समान गड़ता है, अश्रुस्राव होता रहता है और प्रकाश सहन नहीं होता। नेत्र में दर्द होने के अतिरिक्त भ्रू के भाग में भी अच्छी तरह पीड़ा होती है, नेत्र में लाली आजाती है। कितनेक मास के पश्चात् ये सब लक्षण मंद होते हैं। गड़ना, वेदना, जलस्राव आदि न्यून होते हैं। नेत्रों को खोलकर देखने पर यदि रोग का बल हो तो शुक्लमण्डल के चारों ओर गहरी लाली आती है। शुक्लमण्डल के मध्य भाग में लगभग १ मिली० चौड़ाई में वृक्ष शाखा के आकार की अपारदर्शकता प्रतीत होती है। इन शाखाओं का अन्त भाग कुछ ग्रन्थि आकार का होता है। इस अपारदर्शकता का रंग बीच में कुछ मैला होता है तथा इन मलिन रेखाओं के इर्द गिर्द का भाग अधिक मैला होता है। एवं वह भाग कुछ स्फीत भासता है। यदि फ्लूओरेसिनकी बूंद डाली जाय तो वृत्ताकार रचना बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है। कुछ काल व्यतीत हो जाने पर अलग-अलग शाखाएं परस्पर मिलकर एक उथला क्षत हो जाता है। इस क्षत का किनारा समान नहीं होता, टेढ़ा-मेढ़ा होता है, कभी-कभी क्षत का आकार तारा (Star) के सदृश हो जाता है। यह रोग महिनों तक चलता है। फिर शनैः-शनैः क्षत का रोपण होता है। पहले शाखा आकार

के भाग का रोपण होता है। फिर कितनेक समय के पश्चात् शाखाओं के सिरे पर ग्रन्थि आकार के क्षत भरने लगते हैं। प्रायः क्षत भर जाने के पश्चात् फूले या अपारदर्शकता नहीं रहती। किन्तु ये सब रोगी प्रारब्धवान नहीं होते। किसी-किसी को उथले फूले रह जाते हैं और वे फिर उपचार करने पर दूर हो जाते हैं।

यदि रोग अधिक दृढ़ प्रकार का हो तो जो क्षत हुआ हो वह अधिक गहरा होता है, उसका रंग अधिक पिंगल या पीताभ हो जाता है। जलमय रस के पूर्वखण्ड में पूय सदृश पदार्थ भासता है। कुछ समय के पश्चात् पूरा शुक्लमण्डल पीला होकर गल जाता है। इस स्थिति का कारण विशेषतः दूसरी आंख में रहने वाले पूयजनक कीटाणुओं का इस क्षत पर आक्रमण है।

कारण—इस रोग का मुख्य कारण कक्ष भी न्यूमोकोकाई, इन्फ्लुएन्झा और मलेरिया के कीटाणुओं का आक्रमण जनित माना जाता है। कारण, कक्ष के कीटाणु अभी तक प्रतीत नहीं हुए। अमेरिका, मेसिडोनिया और अन्य कितनेक प्रदेशों में इस रोग का सम्बन्ध मलेरिया के साथ अतिशय निकट का माना गया है। भारत का अनुभव इससे पृथक् है। इस देश में विशेषतः कितनेक प्रान्तों में मलेरिया इतना प्रबल होता है कि कुछ मनुष्य ही इस रोगसे मुक्त रहते हैं। इतना होनेपर भी वृत्ताकार शुक्लमण्डल प्रदाह के रोगी प्रायः नहीं मिलते, ऐसा हमारा अनुभव है। यदि मलेरिया के हेतु से यह रोग होता हो तो जब-जब मलेरिया व्यापक रूप धारण करे और हजारों मनुष्य ज्वर पीड़ित हों, तब-तब इस रोग से बहुसंख्य रोगी पीड़ित हो जाने चाहिये। किन्तु वैसा नहीं होता। अतः कहना पड़ेगा कि इस रोग का कारण कुछ और ही होना चाहिये। यथार्थ में कहें तो इस रोग और कक्ष का कारण अभी तक अज्ञात रहा है। यह रोग शुक्लमण्डल की नाड़ियों का होने से इतना निश्चित है कि किसी भी जाति का विष जो देह में फैल गया हो वही इस नाड़ीसमूह पर असर पहुँचाता है।

उपचार—इस रोगकी चिकित्साके दो विभाग हैं। शारीरिक और स्थानिक। शारीरिक उपचारमें किनाइन, सोमल और शक्तिवर्द्धक औषध; तथा रोगीके दांत, गलग्रन्थि आदि स्थानोंमें से जो प्रभावित हुआ हो, उसकी चिकित्सा करना।

नेत्रके लिये उत्तम उपाय यह है कि वृत्ताकार क्षतको किसी ऐसी औषधसे जलाना चाहिये कि रोग पीड़ित भाग जल जाय और उसके नीचे रहे हुए शुक्लमण्डलके भागको हानि न पहुँचे। इसके लिये अलग-अलग

नेत्रवैद्य भिन्न-भिन्न औषधका उपयोग करते हैं। कितनेक कार्बोलिक एसिड, कई क्लोरिनसे बना हुआ ताजा जल, तथा कतिपय चिकित्सक अल्कोहॉलमें बना हुआ मर्क्युरोक्रोम, इस तरह भिन्न-भिन्न औषधियोंको प्रयोगमें लाते हैं। किनाइन सल्फेटके ३ प्रतिशतका प्रवाही या नीलेथोथेका ५ प्रतिशतका प्रवाही क्षत तलको लगाते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य टिञ्चर आयोडिनको उपयोगमें लेते हैं। यदि रोग अति प्रबल न हो तो उपर्युक्त औषधियोंमें से कोई भी दवा क्षतको जलाकर घावको भर देती है। यदि क्षत दुष्ट रूप धारण करे तो दम्भक यन्त्रसे उसे जलाना पड़ता है।

नेत्रमें डालनेके लिये इसरीन ½ ग्रेनकी बूंद, होलोकेनकी बूंद, ओप्टोमिन या किनाइनकी बूंद या मलहम, डायोनिनकी बूंद या मलहम तथा मर्क्युरोक्रोमकी बूंद आदिका प्रयोग करना चाहिये। कितनेक चिकित्सक नीलातीत किरणोंकी सूचना करते हैं। एवं कितनेकोंको झिंक सल्फेटके प्रवाही की अपेक्षा आयोनिझेशनका उपचार अच्छा लगा है।

ऊ. २–शुक्लमण्डलका कक्षाजन्य प्रदाह।

(Herpetic Keratitis).

यह रोग दो प्रकारका है। एक प्रकारमें रोगीको इन्फ्लुएञ्जा, श्वासनलिकाप्रदाह, न्युमोनिया आदि विशेष अवयवोंके प्रदाहयुक्त ज्वर या मधुरा जैसा ज्वर आता है। फिर उसी हेतुसे शुक्लमण्डलपर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिटिकाएं होकर नेत्रमें पीड़ा और अश्रुस्राव आदि चिह्न उपस्थित होते हैं। शुक्लमण्डल पर जो पिटिकाएं होती हैं, वे छोटी-छोटी बहुसंख्य होती हैं। प्रायः ये पिटिकाएं फूटकर छोटे-छोटे क्षत होजाते हैं। दो-तीन सप्ताहमें ये क्षत भर जाते हैं और शुक्लमण्डल स्वच्छ होजाता है। इस रोगके साथ कुछ-कुछ ज्वर भी बना रहता है।

दूसरे प्रकारके रोगमें रोगीको मुँहपर कक्ष ही उत्पन्न होता है और वह ५वीं नाड़ी और उसकी शाखाएं जिस स्थानपर रहती हैं, वहाँ होता है। भ्रू के ऊपरके भागमें शोथ और पिटिकाएं होती हैं; तथा पलकपर शोथ आता है। एवं इन दोनों स्थानोंपर दाह होता है।

शुक्लमण्डलपर भी छोटी-छोटी फुन्सियाँ होती हैं। ये फुन्सियाँ ३-३ या ४-४ के समूहमें फैलती हैं। ये पिटिकाएं कुछ समयमें फूटती हैं। फिर नेत्रमें अति जलन, गड़ना, अश्रुस्राव और भौंप्रदेशमें वेदना आदि लक्षण होते हैं। इन पिटिकाओंके स्थानमें अपारदर्शकता और मलिनता आजाती है। तारामण्डलके पर्दोका प्रदाह होता है। शुक्लमण्डलमें संवेदना–

ज्ञान और स्पर्शबोध बहुत कम होजाते हैं या बिल्कुल दूर होजाते हैं। कभी-कभी नेत्रान्तर दबाव कम होजाता है। इससे नेत्रगोलक नरम हो जाता है। यदि नेत्रमें पूयजन्य कीटाणु हों और वे शुक्लमण्डलमें प्रवेश करते हों तो शुक्लमण्डलके गहरे भागका पूयमय प्रदाह प्रकाशित होता है। यह रोग ५-६ सप्ताह या इससे भी अधिक समय तक रहता है।

उपचार—इस रोगमें अच्छा उपाय सोमल है। रोगीको लाइकर आर्सेनिक विथ हाइड्रार्जिरी आयोडाइड (डोनोवन सोल्युशन) ३०-३० बूंद दिनमें ३ बार देवें। सोडा आयोडाइड (१०% के प्रवाही) का अन्तःक्षेपण शिरामें करनेसे भी कितनेक रोगियोंको लाभ होता है। नेत्रमें डालने के लिये क्विनाइन सेलीसिलेटका मलहम, डायोनिन का मलहम, पेरेफिन लिक्विडकी १-२ बूंद, एट्रोपिन, नोवीफार्मका मलहम आदि औषधियोंसे रोगीको शान्ति मिलती है। कितनेक नेत्रवैद्योंको क्विनाइनके प्रवाहीका आयोनिझेशनसे उपयोग करने पर अच्छा लाभ प्रतीत हुआ है।

ऊ. ३-अन्य शुक्लमण्डलके प्रदाह।

शुक्लमण्डलके कत्ताके सदृश एक अन्य प्रकारका शुक्लमण्डल प्रदाह भी प्रतीत हुआ है। इस जातिके प्रदाहमें पिटिका होनेके बदलेमें अनेक खड़ी अपारदर्शक रेखाएं उपस्थित होती हैं। इस स्थितिको रेखामय शुक्लमण्डल प्रदाह (Striate Keratitis) कहते हैं। यह रोग वृत्ताकार प्रदाहसे मिलता-जुलता है। किन्तु अन्तर यह है कि, इसमें शुक्लमण्डल पर रेखाएं सीधी होती हैं; वृत्त शाखाओंकी आकृति नहीं होती।

इसके सदृश और भी एक प्रकारका शुक्लमण्डलका प्रदाह होता है, जिसमें शुक्लमण्डलमें से सूक्ष्म-सूक्ष्म तन्तु उत्पन्न होनेके समान देखाव होता है। उस स्थितिको तन्तुमय शुक्लमण्डल प्रदाह (Filamentary Keratitis) संज्ञा दी है।

ए. क्षयजन्य शुक्लमण्डलके क्षत।

(Tuberculous Ulcers of Cornea)

यह रोग अति क्वचित् दृष्टिगोचर होता है। कितनेक समय नेत्रश्लेष्मावरणमें क्षयजन्य क्षत हो तो वे क्षत फैलकर शुक्लमण्डल पर चले जाते हैं। इन क्षतोंमें से क्षयके कीटाणु मिलें तो ही सच्चा रोगविनिर्णय माना जायगा।

उपचार—ऐसे क्षतों को आयोडीन से जलाना चाहिये या आयडोफार्म का मलहम लगाना चाहिये।

II क्षतरहित शुक्लमण्डल प्रदाह ।

(*Nonulcerative Keratitis*)

इस प्रकारके शुक्लमण्डलके प्रदाहमें मुख्य जाति निम्नानुसार हैं :—

(१) बाह्य बिन्दुमय शुक्लमण्डलका प्रदाह—Keratitis Punctata Superficialis.

अ. शुक्लमण्डलका बिन्दुमय गम्भीर प्रदाह—Keratitis Punctata Profunda.

(२) शुक्लमण्डलके गर्भ भागका प्रदाह—Parenchymatous or Interstitial Keratitis.

अ. इन्फ्लुएञ्जाके पश्चात् होने वाला गर्भ भागका प्रदाह—Past Influenza Parenchymatous Keratitis.

आ. शुक्लमण्डलके गहरे भागका प्रदाह—Keratitis Profunda.

इ. शुक्लमण्डलकी परिधिके गहरे भागका प्रदाह—Keratitis Margenalis Profunda.

ई. शुक्लमण्डलके गहरे भागका पूयमय प्रदाह—Keratitis Pustuliformis Profunda.

उ. पिटिका क्षतमय शुक्लमण्डलके गम्भीर भागमें अन्तर्भरण—Deep Scrofulous infiltrates.

(३) नेत्र बाह्यपटलके प्रदाहसह उत्पन्न शुक्लमण्डल प्रदाह—Sclerosing Keratitis. तथा अ. अनुक्रमिक नेत्रबाह्य पटल और शुक्लमण्डल का प्रदाह—Scleroperi Keratitis Progressive.

(१) बाह्य बिन्दुमय शुक्लमण्डल प्रदाह ।

(*Keratitis Punctata Superficialis*)

इस व्याधिमें शुक्लमण्डल पर बहुसंख्य सूक्ष्म-सूक्ष्म बिन्दु प्रतीत होते हैं। कुछ दिन रहकर शुक्लमण्डलमें अनेक बिन्दु हो जाते हैं।

लक्षण और चिह्न—आँख आनेके सब लक्षण होते हैं। गड़ना, आंख खोलनेमें कठिनता, प्रकाशकी असहिष्णुता, नेत्रमें से अश्रुस्राव आदि लक्षण होते हैं। नेत्रकी परीक्षा करने पर आंखमें लाली भासती है। शुक्लमण्डलमें बहुसंख्य अति सूक्ष्म बिन्दु होते हैं। कभी-कभी ये बिन्दु

इतने सूक्ष्म होते हैं कि शुक्लमण्डलके दूरदर्शक-यन्त्रका उपयोग किये विना नहीं दीखते। ये बिन्दु ८ से २० तक और कभी १०० तक भी होते हैं। शुक्लमण्डलकी पारदर्शकता कुछ कम हुई भासती है। यदि बिन्दु अति समीप हो तो दृष्टिमें कुछ बाधा पहुँचती है। यदि बिन्दु दूर-दूर हों तो दृष्टिमें अधिक बाधा नहीं पहुँचती। ये बिन्दु पंक्तिबद्ध व्यवस्थित होते हैं या ५-७ के समूहमें होते हैं। शुक्लमण्डलकी परिधिका भाग प्रायः बिन्दु-रहित होता है। ये बिन्दु प्रायः ऊपरके पर्त्तमें ही होते हैं। शुक्लमण्डल कुछ हलका मैला भासता है। कुछ कालके पश्चात् लाली आदि चिह्न और अश्रुस्राव आदि लक्षण शमन हो जाते हैं; तथापि ये बिन्दु तो वर्त्तमान ही होते हैं। महीनोंके पश्चात् ये बिन्दु शनैः-शनैः अदृश्य होते हैं और शुक्लमण्डल बिल्कुल पारदर्शक हो जाता है। फिर रोगीकी दृष्टिमें किसी प्रकारकी न्यूनता नहीं रहती।

यह रोग प्रायः युवा व्यक्तियोंको अधिक होता है। क्वचित् एक ही नेत्रमें होता है; किन्तु प्रायः उभय नेत्रोंमें होता है। इस रोगमें शुक्ल-मण्डलके भीतर कभी क्षत नहीं होता।

कारण—इस रोगका कारण अभी तक ठीक समझमें नहीं आया। कितनेकोंको नासिकामें जुकाम या कण्ठमें जुकामका प्रारम्भ होने पर यह रोग होता है। इस हेतुसे इन दो रोगोंका सम्बन्ध होनेकी कल्पना की जाती है। वर्त्तमानमें भोजनमें कितनेक जीवन सत्त्वों (विटामिन) की न्यूनताको इसका हेतु माना जाता है। जब इस रोगके उपस्थित होनेकी वायु फैलती है, तब बहुसंख्य रोगी प्रतीत होते हैं। इस परसे ऐसा अनु-मान होता है कि, वायुमें विष या कीटाणुका प्रसार होने पर इस रोगका आक्रमण होता है।

उपचार—एट्रोपिनकी बूँदसे रोगीको आराम मिलता है। नेत्रोंको धोनेके लिये हो सके तबतक नमक-जल (सेलाइन सोल्युशन) के अति-रिक्त अन्यका प्रयोग न करें। कारण, अन्य औषधके धावनसे चक्षु धोने पर रोगीको कष्ट बढ़ता है। सल्फोनेमाइडका मलहम डालने पर कितनेक रोगियोंको लाभ होता है। रोगका बल कम होने पर पीला मलहम (यलो-ऑक्साइड ऑफ मक्युरीका मलहम) १%, या डायोनिनकी बूँद अथवा डायोनिनका पीला मलहम लगाते रहनेसे शुक्लमण्डल साफ हो जाता है।

उपर्युक्त वर्णनके सदृश रोग कितनेक कुष्ठ रोगियोंमें प्रतीत होता है। उसे कुष्ठजन्य शुक्लमण्डलका बाह्य बिन्दुमय प्रदाह (Keratitis

Punctata Superficialis Leprosa) कहते हैं। इस रोग पीड़ित नयनोंमें से कुष्ठके कीटाणु (Lepra Bacilli) मिलते हैं।

अ. शुक्लमण्डलका गम्भीर बिन्दुमय प्रदाह।

(*Keratitis Punctata Profunda*)

व्याख्या—यह स्थिति स्वतंत्र व्याधि रूप नहीं है; किन्तु नेत्रगोलक के गहरे भागके प्रदाहके हेतुसे होती है। इस रोगका नाम बाह्य बिन्दुमय प्रदाहके अनुरूप होनेसे इसका वर्णन यहाँ दिया है।

जिस नेत्र में तारामण्डल और तन्तुसमूह के प्रदाह में, इसमें भी जब विशेषतः यह प्रदाह उपदंश के उपद्रव रूप हो तब शुक्लमण्डल के पिछले हिस्से में बहुसंख्य या बिखरे हुए सूक्ष्म-सूक्ष्म बिन्दु उपस्थित होते हैं। इन बिन्दुओं को देखने के लिये दूरवीक्षण यन्त्र या + २० के वहि-र्गोलकांचका उपयोग करना पड़ता है। इनमें बिन्दुओं की उत्पत्तिका कारण यह है कि तारामण्डल या तन्तुमय समूह अथवा दोनों भागों का जब प्रदाह होता है, तब उन भागों में से जो स्राव होता है, वह शुक्ल-मण्डल के अन्तिम अर्थात् बिल्कुल पिछले पर्त्त में बिन्दु रूप से लग जाता है। वही बिन्दु इस रोग रूप से प्रतीत होते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य इन बिन्दुओं को इतना प्राधान्य देते हैं कि, इन बिन्दुओं की प्रतीति के साथ ही (अन्य लक्षण या इतिहास जाने बिना) वे तारामण्डल और तन्तुसमूह के गम्भीर प्रदाह होनेका निश्चय कर सकते हैं। हमारा अनुभव भी इस बात का समर्थन करता है।

उपचार—मुख्य रोग अर्थात् उपदंशज तारामण्डल और तन्तुमय समूह के प्रदाहकी चिकित्सा करने पर यह रोग शमन होता है अर्थात् इस गहरे भाग के बिन्दु साफ होजाते हैं।

(२) शुक्लमण्डल का गर्भप्रदाह।

(*Parenchymatous Keratitis—Interstitial Keratitis*)

चित्र नं० ६५ प्रकरणारम्भ में देखें। यह रोग अति गम्भीर है। इससे अनेकों के नेत्रों को हानि पहुँची है। यूरोप और अमरीका जैसे विद्या-सम्पन्न देशों में इस रोगसे पीड़ित भारत की अपेक्षा अत्यधिक परिमाण में दृष्टिगोचर होते हैं। बम्बई रामबाड़ी आँख के होस्पिटल में दैनिक रोगियों की संख्या लगभग ४०० है। १९४४ ई० में नये रोगी लगभग १०००० की जांच की थी। इनमें इस रोग से पीड़ित २० से अधिक नहीं थे।

यह रोग प्रायः ५ से २० वर्ष की आयुवालों को होता है। लड़के की अपेक्षा लड़कियोंको अधिक होता है। ऐसा यूरोप और अमरीका में प्रतीत हुआ है। रामबाड़ी होस्पिटल में इस रोग से पीड़ितों में लड़कियों की अपेक्षा लड़कों की संख्या अधिक विदित हुई है। २० वर्ष के पश्चात् और ५ वर्ष के पहले यह रोग अति क्वचित् ही होता है।

इस रोग का प्रारम्भ दो प्रकार से होता है। कितनेक रोगियों में रोग का प्रारम्भ शुक्लमण्डल के मध्य भाग में से होता है। अन्यों में प्रारम्भ शुक्लमण्डल की परिधि में से प्रतीत होता है। यदि मध्य भाग में से प्रारम्भ हो तो उस भाग में हल्के पिंगलाभ श्वेत दाग भासते हैं। ये दाग शुक्लमण्डल के गहरे भाग में अर्थात् तीसरे या चौथे पर्त्त में अथवा जिसे गर्भभाग कहते हैं, उसमें होते हैं। फिर शुक्लमण्डल बिल्कुल निस्तेज और कितनेक अंशमें अपारदर्शक होजाता है। उपरोक्त सफेद, मैले रंग के दाग शनैः-शनैः बढ़ते जाते हैं और शुक्लमण्डल के मध्य भाग में से किनारे की ओर फैलते जाते हैं; तथा मध्य भाग में दृढ़ होजाते हैं। फिर उस हेतु से शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता बढ़ती जाती है। यहाँ तक कि एक घिसे हुए कांच जैसा शुक्लमण्डल बन जाता है। एक ओर यह अपारदर्शकता बढ़ती है। दूसरी ओर शुक्लमण्डल में शिराएं उपस्थित होने लगती हैं। यह शिरा शुक्लमण्डल की परिधि में निकलकर मध्य भाग की ओर बढ़ती जाती हैं। इन शिराओं का मूल शुक्लमण्डल के गहरे भाग (गर्भ भाग) में रहता है। जो शिराएं उत्पन्न होती हैं, वे बाहर की नहीं हैं, नेत्र बाह्यपटल में से निकल आगे बढ़ती हैं। इस स्थिति में शुक्लमण्डल की जाँच करने पर वह बिल्कुल अपारदर्शक भासता है। उसके भीतर गहरे भाग में बहुसंख्य शिराएं नूतन उत्पन्न होती हुई प्रतीत होती हैं। यदि केवल चक्षु से शिराएं न दीखें, तो शुक्लमण्डल को बृहद् दर्शाने वाले बहिर्गोलकांच, दूरवीक्षण यन्त्र या शुक्लमण्डल के अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा देखने पर शिराएं स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं। इन यन्त्रों द्वारा निरीक्षण करने पर शिराओं के गुच्छ बन गये हों अथवा एक झाड़ू में जिस तरह शलाकाएं व्यवस्थित की हों, उस तरह रचना प्रतीत होती है; किन्तु जिस तरह सफेदी में उत्पन्न शिराएं लाल रंग की और स्पष्ट भासती हैं, उस तरह ये शिरा स्पष्ट नहीं होतीं, निस्तेज और हल्के लाल रंग की होती हैं।

यदि रोग शुक्लमण्डलके किनारेमें से होता है, तो उस भागमें शुक्लमण्डलके चारों ओर सफेद या मैले सफेद दाग उत्पन्न होने लगते हैं। ये दाग भी शुक्लमण्डलके गहरे भागमें होते हैं। दूरवीक्षण यन्त्रसे देखनेपर ये

दाग अधिक स्पष्ट भासते हैं। एवं एक-एक दागके भीतर बहुसंख्य छोटे चिह्न अवस्थित होते हैं। ये दाग शनैः-शनैः किनारे परसे मध्यकी ओर बढ़ते जाते हैं। अन्तमें समस्त शुक्लमण्डल घी लगे हुए कांच जैसा या घिसे हुए कांचके सदृश निस्तेज और अपारदर्शक होजाता है। यह अपारदर्शकता होनेके साथ-साथ शुक्लमण्डलके किनारेके भागमें से बहुसंख्य शिराएं शुक्लमण्डलके गहरे भागमें उत्पन्न हुई भासती हैं। ये शिरा ऊपर कहे अनुसार मैले लाल रंगकी, गहराईमें रही हुई और झाड़ूकी शलाकाओंके समान एक दूसरेमें से निकलती हुई प्रतीत होती हैं।

इन दो प्रकारोंमें से रोगारम्भ चाहे जिस तरह हुआ हो; किन्तु जब रोग कितनेक अंशमें आगे बढ़ जाता है, तब शुक्लमण्डलका देखाव लगभग समान बन जाता है। समग्र शुक्लमण्डल बिल्कुल मलिन, तेजोहीन और पिंगल रंगका होजाता है। वह इतना अपारदर्शक बन जाता है कि उसके नीचे रहे हुए तारामण्डल, कनीनिका आदि अवयवोंकी प्रतीति नहीं हो सकती। जलमयरसका पूर्वखण्ड गहरा होजाता है। शुक्लमण्डलके किनारेके बाहरका भाग लाल बन जाता है। रोगीकी दृष्टि इतनी कम हो जाती है कि २-३ फीट दूरी परसे या कभी १ फीट दूरीसे नेत्रवैद्यकी अंगुलियाँ अति कठिनाईसे गिन सकता है। तात्पर्य यह है कि रोगीकी दृष्टि अति मन्द होजाती है। इस तरह स्थिति महिनों तक रहती है। फिर स्वयमेव या उपचार करनेपर शुक्लमण्डल शनैः-शनैः स्वच्छ होने लगता है। किनारा पहले साफ होता है। फिर मध्यभाग साफ होता है, तथापि कुछ अंशमें अपारदर्शकता रह जाती है। यह उन्नति कितनेक समय तक होकर रोग पुनः आक्रमण कर देता है। फिर पुनः शुक्लमण्डल अपारदर्शक होजाता है। इस तरह बार-बार अनेक पुनराक्रमण होते हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगी की दृष्टि अतिशय कम हो जाती है। नेत्र में से अश्रुस्राव गिरता रहता है। नेत्र नहीं खुल सकते। प्रकाश सहन नहीं होता। नेत्र में वेदना होती रहती है। चक्षु को खोलकर देखने-पर शुक्लमण्डल बिल्कुल मलिन, ऊपर घी की तह लगी हो या उसे किसी ने घिस दिया हो, ऐसा बन जाता है। कितनीक बार उस पर सफेद या मैले सफेद रंग के बहुसंख्य दाग भासते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण करने पर शुक्लमण्डल के गहरे भाग में शिराएं उत्पन्न हुई हों ऐसी प्रतीति होती है। ये शिराएं मैले लाल रंग की, गहराई में रही हुई एक दूसरे में से निकलती हुई, झाड़ू की शलाका के सदृश व्यवस्थित होती हैं। यदि रोगी की कनीनिका प्रतीत हो, तो वह आकुंचित और प्रायः अनियमित होती है। तारामण्डल

का पर्दा भी प्रतीत होगा तो वह भी साफ नहीं होगा। मैले रंगका भासेगा। जलमयरसका पूर्वखण्ड कुछ बड़ा दीखता है। रोगी की आँख में एट्रोपिनकी बूँद डालने पर कदाच कनीनिका प्रसारित नहीं हो सकेगी। यदि प्रसारण होगा, तो अनियमित होगा। इसका कारण यह है कि शुक्लमण्डलके गर्भ भाग के प्रदाह में कितनेक अंश में तारामण्डल और तन्तुमय समूह सर्वदा शोथमय होते हैं। इसी हेतुसे अश्रुस्राव, नेत्र में वेदना, लाली, प्रकाश की असहिष्णुता आदि लक्षण भासते हैं। कितनेक रोगियों में नेत्र-मध्यपटलका प्रदाह भी हो जाता है; किन्तु शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकता के हेतु से (उस भाग की प्रतीति न होने से) प्रदाह का निर्णय नहीं हो सकता। शुक्लमण्डल साफ होने पर नेत्रमध्यपटल में उपस्थित परिवर्त्तन विदित होता है; प्रदाह निर्णित होता है। एवं नेत्रान्तर दबाव का ह्रास होने से गोलक नरम भासता है फिर वह व्याधि महिनों और वर्षों तक रहती है।

क्रम—यह रोग ऊपर लिखे अनुसार लगभग दो मास तक प्रबल रहता है। फिर शनैः-शनैः कम होने लगता है। शुक्लमण्डल स्वच्छ होने लगता है। रोगी की दृष्टि फिर आने लगती है तथा नेत्रपीड़ा आदि लक्षण शमन हो जाते हैं। किन्तु कितनेक रोगियों में यह स्थिति कुछ समय तक रहती है। फिर रोग का आक्रमण होता है तथा पहले की अपेक्षा आँख की अधिकतर बढ़ी हुई विकृति हो जाती है। पुनः दो मास लगभग कष्ट भोगकर स्थिति सुधरने लगती है और सब चिह्न कम हो जाते हैं।

इनके अतिरिक्त कई रोगियोंमें ऐसा शुभ परिणाम नहीं आता; तारामण्डल और तन्तुमय समूहके प्रदाहके लक्षण बढ़ जाते हैं। फलतः कनीनिकाका किनारा और तारामण्डलका अन्यभाग, ये दृष्टिमणिके आवरणके साथ संलग्न होजाते हैं। अथवा इससे भी अधिकतर खराब परिणाम आता है। फिर नेत्रगोलक नरम होजाता है और आजन्म वैसा ही रह जाता है। अन्य कतिपय रोगियोंमें शुक्लमण्डल, गर्भभागके प्रदाहके हेतुसे पतला अथवा निर्बल होजाता है। फिर नेत्रान्तर दबावके हेतुसे उसकी वृद्धि होजाती है या वह बाहर निकल आता है।

सब प्रकारसे यह रोग अति कष्टसाध्य है। इस रोगका पूर्णांशमें शमन होकर नेत्र मूल स्थितिमें आजाय ऐसे भाग्यवान रोगी बहुत कम होते हैं। हाँ, अनेक रोगियों की दृष्टि अच्छी तरह सुधर जाती है; किन्तु वह १४-१५ आने जितनी, पूर्ण नहीं।

कारण—इस रोगकी उत्पत्तिका मुख्य कारण उपदंशज लीन विष है; और वह भी प्रायः बालकोंको मातापिताकी ओरसे प्राप्त होता है। जिन बालकोंको मातापिताकी ओरसे रक्तके भीतर उपदंशज विष मिलता है, उन रोगियोंको अन्य भी कितनेक चिह्न उपस्थित होते हैं। इससे इस रोगका निर्णय सरलतासे होजाता है। उन चिह्नोंमें दबी हुई नाक और दाँतोंकी विचित्र रचना, ये दो मुख्य हैं। नाकके ऊपर जिस स्थान पर चश्मा रहता है, वह स्थान कुछ दबा हुआ भासता है। आगेके ३-४ दांत, ऊपरके एवं नीचेके, इनमें भी विशेषतः दो ऊपरके कर्त्तन दाँतोंमें अर्द्ध चन्द्राकार खड्डा होजाता है। इस परसे ये दांत विदित होजाते हैं। इनके अतिरिक्त भी उपदंशज अनेक गौण चिह्न निम्नानुसार भासते हैं:—

१. ऊपर लिखी हुई दाँतोंकी मुख्य विचित्रता यह है कि वह दूधिया दांत (प्राथमिक दांतों) में प्रतीत नहीं होती और फिर आने वाले दांतोंमें भासती है।
२. रोगीका मुखमण्डल विशेष आकारका भासता है। कपालके दोनों पार्श्वोंमें अस्थि कुछ अंशमें उभड़ आती है। ऊपरके जबड़ेके दोनों ओरका भाग कुछ भीतर बैठ जाता है। ऊपर कहे अनुसार नाककी दण्डी भीतर दब जाती है। नाकमें से प्रायः दुर्गन्धमय श्लेष्मस्राव होता है। मुँहके दोनों कोनमें त्वचाकी सूक्ष्म-सूक्ष्म फाट प्रतीत होती हैं। मुँह खोलकर देखने पर ऊपरके तालुमें भी सफेद सूक्ष्म पंक्तियां प्रतीत होती हैं।
३. देहके भिन्न-भिन्न भागमें सूक्ष्म-सूक्ष्म ग्रन्थियां प्रतीत होती हैं। ये ग्रन्थियाँ त्वचाके नीचे रही हुई लसीका ग्रन्थियों (Lymphatic glands) में शोथ होने पर होती हैं। ये गाँठ विशेषतः कन्धे पर प्रतीत होती हैं। ये गाँठ कण्ठमालकी तरह नहीं पकतीं।
४. देहके भिन्न-भिन्न भागोंमें हड्डियों पर कठिन गांठ होती है।
५. क्वचित् घुटनेके सांधोंमें दीर्घ प्रदाह प्रतीत होता है। एवं कानके चिरकारी प्रदाहके हेतुसे बालक कुछ अंशमें बधिर होजाता है।

उपर्युक्त चिह्नों परसे बालकको उपदंशज उपद्रव है या नहीं, यह सरलतासे अवगत हो जाता है। माता-पितासे प्रश्न करने पर अनेक बार पता नहीं चलता। इतना ही नहीं, कितनेक माता-पितासे प्रश्न किया जाय कि 'आपको पहले उपदंश रोग हुआ था' तो वे बहुत दुःख मानते हैं। अतः ऐसा प्रश्न न किया जाय, यही अच्छा माना जायगा। यदि युक्तिपूर्वक प्रश्न किया जाय, तो माता-पिताको दुःख न पहुँचते हुए निर्णय

हो सकता है। इसके लिये पहले पूछें कि रोगीकी माताको पहले गर्भपात या गर्भस्राव हुआ है ? या कभी मृत संतानका जन्म हुआ है ? यदि यह बात स्वीकार होती है तो माता-पिताको उपदंश होनेका आधा स्वीकार हो जाता है। अनेक रोगियोंका अवलोकन करने पर यह निर्णित हुआ है कि, जिन माता-पिताको फिरङ्ग रोग हुआ हो, उनके ५०% संतान मरे हुए जन्मते हैं तथा अन्य २०% जन्मके पश्चात् किसी न किसी रोगसे कुछ महिनोंके भीतर ही मृत्युकी शरण हो जाते हैं। दूसरा प्रश्न रोगीके पितासे पूछे कि, रोगीके जन्मके पहले आपको रक्तविकारके धब्बे कभी हुए हैं ? यदि धब्बे होते हैं तो वे फिरङ्गकी द्वितीयावस्थामें होने चाहिये। इनके अतिरिक्त विशेष निर्णय करना हो तो रोगीका रक्त निकाल वॉशरमेन या कहानके प्रयोग द्वारा परीक्षा करें।

जन्मसिद्ध उपदंशज विषके अतिरिक्त अन्य दो व्याधि भी शुक्लमण्डलके गर्भभागके प्रदाहके कारणरूप गिनी जाती हैं। उनमेंसे एक क्षय और दूसरा कुष्ठ है। क्षय रोगके हेतुसे कितनेक बालकोंमें शुक्लमण्डलके गर्भभागका प्रदाह होता है। रोगीकी देहमें क्षय-विकार है या नहीं, इसके निर्णयार्थ चौथे प्रकरणमें परीक्षा-विधि लिखी है; उस तरह जांच करें।

इस रोगका कारण कुष्ठ (Leprosy) होता है। क्षय और कुष्ठके कीटाणु एक दूसरेके अति समान हैं। अतः जैसे क्षयके हेतुसे शुक्लमण्डल में यह रोग होता है, वैसे कुष्ठके हेतुसे भी होना संभवित है। किन्तु ऐसे रोगी अति क्वचित् प्रतीत होते हैं। इसका एक कारण यह भी संभवित है कि कुष्ठ प्रायः २० वर्षकी आयुके पश्चात् होता है तथा शुक्लमण्डलके गर्भ भागका प्रदाह बहुधा २० वर्ष और उससे कम आयु वाले रोगियोंको होता है।

परिणाम—यह रोग महिनों और कभी-कभी १-२ वर्ष तक चलता है। परिणाममें रोगीकी दृष्टिमें कुछ अंशमें न्यूनता रह जाती है। रोगका बल अधिक होने पर शुक्लमण्डलकी जो स्थिति होती है, उस स्थितिकी दृष्टिसे रोगीको लाभ भी अच्छी तरह हो जाता है। अतः रोगीके माता-पिताको इस रोगके लिये ऐसा अभिप्राय देना चाहिये कि रोग लम्बा चलेगा, एक वर्ष भी चले, उपचार चालू रखना पड़ेगा, अन्तमें दृष्टि निःसंदेह मिल जायगी, कदाच १६ आने दृष्टि न मिले तो १-२ आने जितनी कसर रहेगी, इस तरह पहलेसे सूचित कर देने पर नेत्रवैद्यकी प्रतिष्ठा कायम रहती है। अभिप्राय सच्चा माना जायगा और रोगीके माता-पिता भी श्रद्धा रक्खेंगे।

रोगविनिर्णय—इस रोगका निर्णय अनुभवी नेत्रवैद्यके लिये कठिन नहीं है। इस रोगके सदृश केवल एक ही व्याधि है। केवल उससे ही इसे पृथक् करना पड़ता है। वह रोग रोहेके उपद्रवरूप सफेदी है। इसके निर्णयार्थ केवल दो ही बात याद रखनेकी हैं। १. सफेदी सर्वदा शुक्लमण्डलके ऊपरके भागमें से प्रारम्भ होती है और आधे भाग तक ही पहुँचती है। शुक्लमण्डलका निम्न अर्द्ध भाग साफ रहता है। २. सफेदीमें जो नूतन शिराएँ निकलती हैं, वे बाह्य भागमें होनेसे अधिक लाल, स्पष्ट और शुक्लमण्डलके ऊपरके अर्द्धभागमें ही रहती हैं। इन दोनों विभेदक चिह्नोंके अतिरिक्त रोगीके शरीरमें जन्मसे ही रक्तमें मिले हुए उपदंशज विषके चिह्न देखने पर भी निदान करनेमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

उपचार—इस रोगकी चिकित्साके २ प्रकार हैं—१. शारीरिक और २. स्थानिक।

शारीरिक चिकित्सा—इस प्रकारमें मुख्य यह है कि, रोगीके रुधिरमें से उपदंश या क्षयके विषको दूर कर शारीरिक स्थितिको सुधारना। उपदंशज लीन विषको नष्ट करनेके लिये पहले सालवरसन और उसके समान औषध अधिक विशेष परिमाणमें व्यवहृत होती थी। वर्त्तमानमें वह मान्यता कुछ कम हुई है। अतः निओसालवरसन आदि औषधियां कम दी जाती हैं। उसके स्थानमें बिस्मथका उपयोग विशेष परिमाणमें किया जाता है। इसके अतिरिक्त आयोडीन और उसकी बनावट भी अच्छा कार्य करती हैं, सिरप फेरीआयोडाइड, पोटास या सोडा आयोडाइड पूर्ण परिमाणमें दिये जाते हैं। हमारे पास एक रोगी था, जो इस रोगसे अति पीड़ित था। उसकी आयु १२ वर्षकी थी। उसके पिताको उपदंश हुआ था, जिससे उसे उपद्रवरूप नेत्ररोग हुआ था। जब वह हमारे पास आया तब उसकी दृष्टि १ फुट दूरसे अंगुलियाँ गिन सके ऐसी थी। समग्र शुक्लमण्डल सफेद होगया था। वैसी स्थितिमें सोडा आयोडाइडका अन्तःक्षेपण शिरामें किया। फलतः शनैः-शनैः चक्षु साफ होगये और उसकी दृष्टि इतने तक सुधर गई कि वह अपना अभ्यास नियमित कर सकता था।

कितनेक रोगियों को पारा की बनावट उदरसेवनार्थ देने पर अच्छा लाभ होता है। मिक्स्ड ट्रीटमेण्ट टेब्लेट्स (Mixed Treatmant Tablets) जो पार्क डेविस कम्पनी की आती है, वह देने से अच्छा लाभ पहुँचने का हमें अनुभव मिला है। उन टिकड़ियों में पारा और आयोडीन, दोनों मिश्रित हैं।

रोगी की शारीरिक स्थिति सुधारने के लिये कॉड लिवर ऑइल आदि

पौष्टिक औषध अथवा सुवर्णमालिनी वसंत जैसी आयुर्वैदिक औषध देने से भी अच्छा लाभ पहुँचता है। इनके अतिरिक्त थाइरोइड एक्सट्रेक्ट (Thyroid Extract) १-१ ग्रेन की मात्रा में दिन में २-३ बार देते रहने से भी कितनेक रोगियों के नेत्र में अच्छा लाभ पहुँचता है।

सूचना—रोगी को शुद्ध खुली वायु में रक्खें; अच्छा पौष्टिक भोजन देवें; और नेत्र को आराम देवें।

स्थानिक उपचार—रोगी के नेत्र पर काले चश्मे (गोगल्स) रक्खें। लिखना, पढ़ना और अभ्यास करना बन्द रक्खें। नेत्र में डालने के लिये एट्रोपिन और डायोनिन, ये दो औषध मुख्य हैं। रोग का वर्णन लिखने के समय सूचित किया है कि इस रोग के हेतु से तारामण्डल और तन्तुमय समूह का प्रदाह कुछ-न-कुछ अंश में उपस्थित होता है। इसलिये एट्रोपिन की बूँद डालते रहने से रोगी को शान्ति मिलती है; इतना ही नहीं, बल्कि नेत्र की स्थिति में भी क्रमशः सुधार होता है।

यदि रोग बहुत बढ़ गया हो अर्थात् रोगोत्पत्ति होने के दीर्घकाल के पश्चात् रोगी चिकित्सार्थ नेत्रवैद्य के पास आया हो तो एट्रोपिन की बूँद कार्य नहीं कर सकती। ऐसे रोगियों के नयनों में एट्रोपीन चूर्ण का अञ्जन करना पड़ता है या एट्रोपिन और एड्रीनेलिन के प्रवाहीका अन्तः-क्षेपण नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे कराना पड़ता है। इस उपचार से तारा-मण्डल बन्धन मुक्त होता है; तथा कनीनिका पुनः प्रसारित होने लगती है।

डायोनिन की बूँद या मलहम का उपयोग करने पर रोगी को अच्छा लाभ पहुँचता है। जब रोग का बल घट जाता है और नेत्र में से लाली आदि लक्षण अदृश्य होजाते हैं, तब डायोनिन मिले हुये पीले मलहम और पीली बूँद आदि शोषक औषधियों का प्रयोग करने से रोगी की दृष्टि सुधर जाती है। जब रोग प्रबल हो, तब नेत्र पर गरम जल का सेक करते रहने से भी रोगी को अच्छा लगता है।

अ. इन्फ्लुएञ्जाके उपद्रवरूप शुक्लमण्डलके गर्भभागका प्रदाह।

(*Past Influenzal Parenchymatous Keratitis*)

व्याख्या—यह रोग शुक्लमण्डल के गर्भभाग का तीक्ष्ण प्रदाह है। इसकी संप्राप्ति इन्फ्लुएञ्जा के उपद्रव रूप से होती है। यह रोग प्रायः एक ही आँख में होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगी के नेत्र में पीड़ा होती है। रोगारम्भ से लगभग ३ दिन तक रोग बढ़ता ही जाता है। अन्त में अधिक से अधिक

खराब स्थिति तक पहुँचता है। नेत्रस्राव, प्रकाश की असहिष्णुता आदि लक्षण भासते हैं। परीक्षा करने पर शुक्लमण्डल पर निस्तेजता प्रतीत होती है। क्वचित् शुक्लमण्डल में खरोंचने के सदृश लकीरें भासती हैं। शुक्लमण्डल में शिराओं की उत्पत्ति नहीं होती। एवं इसके पिछले हिस्से में बिन्दु भी देखने में नहीं आते।

उपचार—गरम जल से सेक करें और नेत्र को पूर्ण आराम देवें। एट्रोपिन आदि सामान्य प्रयोगों से रोग शमन होजाता है।

आ. शुक्लमण्डलके गम्भीर भागका प्रदाह।

(Keratitis Profunda)

इस रोग में शुक्लमण्डल के मध्य भाग में एक अपारदर्शक कुछ पिंगल शोथमय भाग की प्रतीति होती है। यह स्थिति गहरे भाग में होने से इसे गम्भीर भाग का प्रदाह कहते हैं। यह रोग केवल मध्य भाग में ही रहता है, किनारे का भाग सर्वदा रोग युक्त रहता है। शुक्लमण्डल के ऊपर का पर्त्त प्रदाह स्थान में निस्तेज होजाता है। नेत्र में प्रायः लाली नहीं होती। तारामण्डल के पर्द का प्रदाह कितनेक सप्ताहों तक रहकर रोगशमन होने लगता है; किन्तु परिणाम में शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता या फूला रह जाता है। यदि रोग प्रबल न हुआ हो तो अपारदर्शकता साफ होजाती है। प्रायः यह रोग बड़ी आयुवालों को होता है।

कारण—इस रोग का कारण अभी तक अनिश्चित है। भिन्न-भिन्न रोगियों में कारण भिन्न-भिन्न दृष्टिगोचर होते हैं। उनमें मुख्य ५ निम्न हैं :— १. शीत लगना या आमवात; २. देह की कृशता; ३. विषम ज्वर; ४. क्षय; और ५. आगन्तुक व्यथा।

उपचार—शुक्लमण्डल के सामान्य व्याधि पर लिखी हुई चिकित्सा की जाती है।

इ. शुक्लमण्डलकी परिधिके गम्भीर भागका प्रदाह।

(Keratitis Margenalis Profunda)

यह रोग वृद्ध मनुष्यों के नेत्रों में और प्रायः एक ही नेत्र में होता है।

लक्षण और चिह्न—नेत्रमें साधारण गड़ना और कुछ अश्रुस्राव, ये लक्षण होते हैं। इनके अतिरिक्त विशेष लक्षण नहीं होते। चिह्न रूपसे शुक्लमण्डलके किनारे पर भूरे रंगकी अपारदर्शकता देखनेमें आती है। कुछ समयके पश्चात् भूरा रंग कुछ पीताभ होजाता है। कितनेकों में अधिक नीलापन आजाता है। उस अपारदर्शकता का चौड़ापन १ से २ मिली-

मीटर होता है। प्रायः शुक्लमण्डलके किनारे के ऊपर के हिस्से में ⅓ से ½ भाग प्रभावित होता है। जो पीताभ अपारदर्शकता भासती है, वह नेत्र बाह्यपटलमें भी फैल जाती है। कितनेक रोगियों में शुक्लमण्डलके किनारेके बाहर अवास्थित नेत्रश्लेष्मावरण का हिस्सा स्फीत होता है। उपरोक्त ग्राही अपारदर्शकताके ऊपर रहा हुआ शुक्लमण्डल कुछ निस्तेज दीखता है। उसमें कभी क्षत नहीं होता एवं तारामण्डलप्रदाह भी नहीं होता। एक दो सप्ताहके पश्चात् चिह्न शान्त हो जाते हैं फिर पीताभ अपारदर्शकता श्वेत हो जाती है। यह अपारदर्शकता कितनेक अंशमें वृद्धावस्थाजन्य शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकताके समान होती है। केवल इतना ही अन्तर है कि वृद्धावस्थाजन्य अपारदर्शकतामें बाहरका कुछ हिस्सा साफ होता है और इस रोग जनित अपारदर्शकता नेत्रबाह्यपटल तक पहुँच जाती है। यह अपारदर्शकता किनारे पर होती है और मध्य भाग साफ होता है। इससे रोगी की दृष्टि में कुछ भी प्रतिबन्ध नहीं होता।

उपचार—रोगी वृद्ध होने से उसे पौष्टिक भोजन और पौष्टिक औषध देनी चाहिये। नेत्र में डालने के लिये नोवीफार्म का मलहम, कॉडलिवर ऑइल, सल्फोनेमाइड का मलहम, फेरोफार्म का मलहम या उनके समान अन्य औषधियों को कार्य में लेवें।

ई. शुक्लमण्डलके गंभीर भागका पूयमय प्रदाह।

(*Keratitis Pustuliformis Profundus*)

इस रोग का वर्णन पहले इसी प्रकरण में दिया गया है।

उ. शुक्लमण्डल के गंभीर भाग का पिटिकामय अन्तर्भरण।

(*Deep Scrofulous Infiltrates*)

जिस नेत्र में पिटिका क्षत हुए हों, उनमें से किसी-किसी में पिटिका क्षत के अतिरिक्त शुक्लमण्डलके गर्भ भाग में पहले भूरे रंग के और फिर पीले रंग के दाग दीखते हैं। ये दाग सूक्ष्म और एकाधिक होते हैं या कभी एक बड़ा दाग होता है। प्रायः ये दाग शोषित होकर शुक्लमण्डल साफ हो जाता है; किन्तु कभी-कभी ये दाग अधिक पीले हो जाते हैं। उस स्थान से ऊपर रहे हुए शुक्लमण्डलकी त्वचा निकलकर फिर क्षत होजाता है। उस स्थिति की प्राप्ति होने पर शुक्लमण्डल फूटता है या क्षत का रोपण होकर एक मध्यस्थ फूला रह जाता है। यदि यह स्थिति हो जाय, तो रोगी की दृष्टि को अतिशय हानि पहुँचती है। क्षत शुक्लमण्डल के गर्भ भाग में होने

से उपचार करने पर भी फूला पूर्णांश में दूर नहीं होता। इससे रोगी की दृष्टि को सदा के लिये अच्छी तरह अन्तराय आजाता है।

(३) नेत्रबाह्यपटलप्रदाहसह शुक्लमण्डलप्रदाह।

(Sclerosing Keratitis)

यह रोग अकेला ही होता है या नेत्रबाह्यपटल के प्रदाह के साथ भी होता है। जब वह अकेला होता है तब शमन हो जाने के बाद जो अपारदर्शकता रह जाती है, उसका रंग और देखाव नेत्रबाह्यपटल के समान ही होता है। यह रोग प्रायः युवावस्था में होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। यह रोग दोनों नेत्रों में होता है।

लक्षण और चिह्न—इस रोग के मुख्य लक्षण तारामण्डल प्रदाह के सदृश होते हैं। नेत्र में पीड़ा, शिर में कुछ वेदना, नेत्रस्राव होते रहना, प्रकाश की असहिष्णुता और दृष्टि दिन-प्रति-दिन कम होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

यदि नेत्र बाह्यपटल का प्रदाह पहले हुआ हो तो जो छोटी ग्रन्थि नेत्र बाह्यपटल में शुक्लमण्डल के किनारे के पास हो, उसमें से शुक्लमण्डल के मध्य भागकी ओर सफेद रंग की अपारदर्शकता फैलती जाती है। यह अपारदर्शकता शुक्लमण्डल के गर्भभाग में होती है। यह त्रिकोणाकार होती है। त्रिकोणका शिखर भाग शुक्लमण्डल के मध्यभाग में होता है तथा तल भाग शुक्लमण्डल के किनारे के पास होता है। इस तरह एकाधिक अपारदर्शकता एक ही शुक्लमण्डल में प्रतीत होती है।

यह अपारदर्शकता प्रारम्भ में भूरे रंग की, फिर भूरे पीले रंग की और अन्त में बिल्कुल सफेद या सफेद नीली होजाती है। अन्य शब्दों में कहें तो शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता का रंग नेत्रबाह्य पटल के जैसा ही होता है। शुक्लमण्डल की सतह दबी हुई नहीं भासती; किन्तु खुरदरी भासती है। प्रायः नूतन शिराएं उत्पन्न नहीं होतीं। कदाच कुछ अंश में हों, तो वह शुक्लमण्डल के गर्भभाग में होती हैं। कितनेक समय के पश्चात् अपारदर्शकता दूर होने लगती है। यह क्रिया शुक्लमण्डल के बीच के भाग से प्रारम्भ होती है। फिर कुछ अंश में आगे बढ़कर साफ होने की क्रिया बन्द होजाती है। इससे अपारदर्शकता सदा के लिये रह जाती है।

यदि रोग शुक्लमण्डल में से प्रारम्भ होता है, तो भी उपरोक्त रीति से अपारदर्शकता होती है और अन्त में वह नीलाभ श्वेत बन जाती है।

कुछ-कुछ समय तक रोग मंद होकर पुनः-पुनः आक्रमण करता है। इस तरह अनेक आक्रमण होने पर समस्त शुक्लमण्डल अपारदर्शक बन जाता है। शुक्लमण्डल की अपारदर्शकताके अतिरिक्त नेत्र बाह्यपटल और तारामण्डल का प्रदाह भी अवश्य होता है। रोग बहुत लम्बा चलता है।

कारण—इस रोगका मुख्य कारण क्षय या उपदंशज विष है। यदि रोगी वृद्ध हो तो ये दोनों रोग कारण रूप नहीं होते। वातरक्त (Gout) और आमवात कारण रूप होते हैं। कभी-कभी कारणका पता भी नहीं चलता।

उपचार—इस रोगकी चिकित्सा अतिशय असंतोषजनक है। रोगके कारण रूप जो व्याधि हो, उसका उपचार करना चाहिये। कितनेक नेत्रवैद्य, विशेषतः वियेनाके नेत्रवैद्य इस रोगके लिये ट्युबरक्युलिनका प्रयोग अधिक परिमाणमें करते हैं।

यदि वॉसरमेन अथवा कहानकी कसौटी द्वारा रक्तपरीक्षा करने पर उपदंशज विषका निर्णय हो तो उपदंश रोगका उपचार करना चाहिये। इस तरह वातरक्तके उपद्रव रूप नेत्रविकार हो तो वातरक्त शामक उपचार करना चाहिये।

(३) शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकता।

(शुक्र-फूला-ओपेसिटिज ऑफ कॉर्निया-*Opacities of Cornea*)

चित्र नं० ७९ — प्रथमस्तर पर शुक्र
चित्र नं० ८० — द्वितीयस्तर पर शुक्र
चित्र नं० ८१ — गहरा शुक्र

अपने देश में आंखकी सब प्रकारकी अपारदर्शकता—राईके समान सूक्ष्म सफेद दाग होना, समस्त नेत्रमण्डल कौड़ीके समान सफेद होजाना, नेत्रका गर्भ भाग बाहर आजाना, इन सबको फूला कहते हैं। यथार्थमें नेत्रके गर्भभागकी स्थानभ्रष्टताको फूला कहना चाहिये। शेष शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकताको पृथक् संज्ञा देनी चाहिये। किन्तु 'फूला' शब्द अति रूढ़ होगया है। अतः हमने वैद्य समाज और जनतामें प्रचलित शब्द फूले का ही अपार-

दर्शकताके लिये प्रयोग किया है। चित्र नं० ७९, ८०, ८१ देखें। इसके अतिरिक्त कनीनिका अनुबन्धसह शुक्रका रंगीन चित्र नं० ६२ इसी प्रकरण में पहले दिया है।

शुक्लमण्डलके सब प्रकारके क्षत, चाहे पूयजन्य कीटाणुओंसे हों, नेत्रमें बाह्य पदार्थ लगजानेसे हों, शुक्लमण्डल जल जानेसे हों अथवा पिटिकाक्षतके हेतुसे हों, इन सबमें विकृति ऊपरके पर्त्तसे अधिक गहराई तक पहुँची हो, तो वे क्षत न्यूनाधिक अंशमें अपारदर्शकता (फूला) निःसंदेह उत्पन्न करते हैं। प्रत्येक क्षतका रोपण होजाने पर जो व्रणसंरक्षक त्वचा नयी आती है, वह आरोग्य स्थितिके शुक्लमण्डलके समान पारदर्शक नहीं होती। अतः शुक्लमण्डलका प्रत्येक व्रण छोटे या बड़े फूलेको जन्म देता है। ऐसे फूले शुक्लमण्डल पर एक या अधिक होते हैं। एवं छोटे या बड़े होते हैं। शुक्लमण्डलकी परिधिके भागमें एवं मध्यमें भी होते हैं। शुक्लमण्डलके कुछ हिस्सेको या समस्त शुक्लमण्डलको अपारदर्शक बना देते हैं। शुक्लमण्डलकी इस अपारदर्शकताके अतिरिक्त कभी शुक्लमण्डल फूट जाता है और उसमें तारामण्डल फँस जाता है। कभी फूलेके भीतर कैशिकाएं उत्पन्न होजाती हैं। परिधिके फूलेकी अपेक्षा मध्यभागके फूलेसे दृष्टिको अधिक हानि पहुँचती है। दृष्टिको हानि पहुँचनेका आधार फूले के स्थान पर अवलम्बित है। पतले फूले पर तेजके किरण गिरने पर दृष्टिमें अति असह्यता लाते हैं।

लक्षण और चिह्न—लक्षणोंमें मुख्य दृष्टिका ह्रास या अभाव है। चिह्नोंमें मुख्य फूलेकी प्रतीति है। सूक्ष्म फूले केवल नेत्रोंसे प्रायः देखनेमें आजाते हैं। फूलेको देखनेमें निम्न रूप (७ स्थिति) पर लक्ष्य देना चाहिये :—

१. फूला परिधि पर है या बीचमें ?

२. फूला गाढ़ा है या पतला ?

३. फूलेमें धमनियाँ (कैशिकाएं) उत्पन्न हुई हैं ?

४. फूला नया है या पुराना ?

५. तारामण्डलका पर्दा फँसा है या नहीं ?

६. तारामण्डल दृष्टिमणिके आवरणको चिपका है या नहीं ?

७. दृष्टिमणि पारदर्शक है या नहीं ?

इन सबको किस तरह जानना चाहिये, यह पिछले प्रकरणमें लिखा है। कौन फूला मिट सकेगा, कौन नहीं मिटेगा, दृष्टिको पहुँची हुई हानि दूर या कम हो सकेगी या नहीं ? कितनेक अंशमें लाभ होगा ? इन प्रश्नोंका निर्णय निम्न ७ प्रमाणोंसे हो सकता है:—

१. फूला परिधि प्रान्तमें हो और शुक्लमण्डलका मध्यभाग अर्थात्

कनीनिकाके ऊपर रहा हुआ भाग साफ हो तो दृष्टिको बिल्कुल हानि नहीं पहुँचती। ऐसे फूलेके लिये रोगी यदि नेत्रवैद्यकी सलाह लेनेको आता है तो वह प्रायः दो कारणोंसे आता है। (१) फूला कदाच बढ़कर मध्यभागमें आकर भविष्यमें दृष्टिको हानि पहुँचावे। (२) नेत्रमें फूलाकी प्रतीति होने पर रूपमें न्यूनता मानी जाती है। परिधिके फूले दीर्घकाल पहले हुए हों, तो शुक्लमण्डलका नया क्षत हुए बिना वे मध्यभागमें नहीं आते। अतः उस हेतुसे दृष्टिको भविष्यमें हानि नहीं पहुँच सकेगी, ऐसा अभिप्राय देनेमें बाधा नहीं है। किन्तु फूलेमें सूक्ष्म कैशिकाएं निर्माण हुई हों, तो ऐसा निर्णय देनेके पहिले कुछ विचार करना चाहिये। क्योंकि कैशिकाएं प्रायः आगे बढ़ती हैं।

फूला खराब दीखता है। इस हेतुसे रोगी नेत्रवैद्यकी सलाह लें, तो फूले पर रंग चढ़ा देनेसे यह खराबी (खोड़) लगभग ढक जाती है, ऐसी सलाह देवें। रङ्ग चढ़ानेकी विधि आगे चिकित्सामें दीजायगी।

फूला यदि शुक्लमण्डलके मध्य भागमें हो तो दृष्टिको अच्छी तरह हानि पहुँच जाती है। कितनीक बार दृष्टि इतनी कम होजाती है कि सूर्य या दीपक का प्रकाश तथा हाथके चलनेके अतिरिक्त विशेष नहीं जाना जाता। यदि फूला या फूले रोहके हेतुसे हों तो जब तक रोहे योग्य उपचारसे दूर न किये जायँ, तबतक शुक्लमण्डलके नये क्षत और उस हेतुसे उत्पन्न नये फूले होनेकी संभावना बनी रहती है।

२. सामान्य मान्यता अनुसार फूला गाढ़ा हो तो दृष्टिको अधिक हानि पहुँचती है और फूला पतला हो तो कम हानि होती है। किन्तु अनेक बार ऐसा नहीं होता। यदि फूला गाढ़ा हो किन्तु उसके साथ कुछ रंग मिश्रित हो तथा उसके पासमें कनीनिकाका कुछ भाग साफ रहा हो तो दृष्टिको बहुत कम हानि पहुँचती है। कदाच रोगी छोटे अक्षर भी पढ़ सकते हैं। यदि ऐसी ही स्थिति हो और फूला पतला हो तो प्रकाशके कितनेक किरण शुक्लमण्डलके साफ भागमें से और कितनेक पतले फूले में से प्रवेश कर जाते हैं। इस तरह दो स्थानोंसे कनीनिकामें प्रकाश किरणोंका प्रवेश होने पर रोगीको अति असह्यता लगती है। वह यहाँ तक कि ऐसे नेत्रोंसे सूर्यके प्रकाशमें बाहर निकलनेमें रोगीको कष्ट पहुँचता है।

३. यदि फूलेमें कैशिकाएँ प्रतीत न हों और फूलेको दीर्घकाल होगया हो, तो वैसा फूला बहुधा नहीं बढ़ता। यदि कैशिकाएँ हैं तो फूलेके समीप में सफेदी उत्पन्न होती है। यदि फूलेकी बदलीमें शुक्लमण्डलमें क्षत प्रतीत हो और उसमें कैशिकाओंकी उत्पत्ति होती हो तो उसे एक अच्छे चिह्नरूप

मानें। कारण, वैसे क्षत जल्दी भर जाते हैं। पहले लिखे अनुसार शुक्ल-मण्डलमें कैशिकाओंका देखाव दो रोगोंमें विशेष रूपसे प्रतीत होता है। एक सफेदी और दूसरा शुक्लमण्डलके गर्भभागका प्रदाह। ये दोनों रोग विशेषतः कष्टसाध्य हैं। इस बातको लक्ष्यमें रख कर रोगीको अभिप्राय देना चाहिये।

४. फूला नया तुरन्त का हो तो दूर होनेकी संभावना अधिक है। दीर्घकालका होने पर कष्टसाध्य या असाध्य माना जायगा।

५. यदि फूला बिल्कुल छोटा हो, तथापि इसमें तारामण्डल फँसा हो, तो कनीनिका का कितनाक भाग बीच में से हटकर एक ओर खिंच-जाता है या बिल्कुल बन्द होजाता है। अतः ऐसे प्रसंगों में बाह्य देखाव पर से धारणा की जाय, उसकी अपेक्षा विशेष हानि पहुँची होती है। इतना ही नहीं, उसके किनारे का सब भाग भीतर फँस गया हो तो उस हेतु से नीले मोतिये की उत्पत्ति भी होजाती है। फिर जो कुछ थोड़ी सी दृष्टि रही हो, वह भी शनैः-शनैः नष्ट होजाती है। उसका किनारा शुक्लमण्डल में फँस जाने पर नीला मोतिया किस तरह होता है, वह आगे अभिमन्थ रोग के विवेचनमें समझाया जायगा। इनके अतिरिक्त तारामण्डल संलग्न होजाने पर अन्य एक विशेष उपद्रव यह उपस्थित होता है कि, तारामण्डल को बाह्य वायु या पदार्थ आदिका स्पर्श होने पर उसका प्रदाह होजाता है। उसका परिणाम अति भयंकर आता है। अतः तारामण्डल फँसा होने पर दृष्टि के सम्बन्ध में उस समय के लिये या भविष्य के लिये अभिप्राय देने में विशेष सम्हाल रखनी चाहिये।

६. तारामण्डल के संलग्न होने दृष्टि को भविष्य में हानि पहुँचने का भय रहता है, उसमें भी उसका किनारा दृष्टिमणि को चिपक गया हो तो उसके परिणाम में निःसंदेह नीला मोतिया होजाता है। फिर क्रमशः दृष्टि का नाश हुए बिना नहीं रहता। अतः ऐसा प्रकार होने पर तुरन्त तारामण्डल का छेदन करने की सलाह देनी चाहिये। अन्यथा दृष्टि नष्ट होजाती है।

७. पहले लिखे अनुसार शुक्लमण्डल के फूला के परिणाम में दृष्टिमणि के पोषणमें प्रतिबन्ध होने से वह अपारदर्शक होने लगता है। ऐसी स्थिति होने पर शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता के हेतु से दृष्टि में प्रतिबन्ध पहुँचे उसकी अपेक्षा अधिक अन्तराय होता है। एवं भविष्य में अधिकतर हानि होने की संभावना रहती है।

उपचार—फूलेकी चिकित्साके २ प्रकार हैं। १. औषध द्वारा; २. शस्त्र-क्रिया द्वारा। यदि फूला पतला हो अर्थात् शुक्लमण्डलके बाह्य पर्त्तमें ही हो तो औषधसे ही दूर हो जाता है। यहाँ पर और कहना पड़ेगा कि फूलेको बिल्कुल मिटाना हो तो महिनों तक अथवा कभी-कभी वर्षों तक औषध प्रयोग चालू रखना पड़ता है। यह बात रोगीको पहलेसे ही समझा देनी चाहिये। क्योंकि कितनेक रोगी एक-दो सप्ताह औषधोपचार करके 'दवासे कुछ भी लाभ नहीं हुआ' ऐसा कहकर उपचार बन्द कर देते हैं। परिणाममें रोगीको लाभ नहीं मिलता और चिकित्सकको यश नहीं मिलता।

शुक्लमण्डलके फूलेको दूर करनेके लिये मुख्य और विशेष प्रयोजित औषध पीला मलहम (यलो आक्साइड ऑफ मक्युरी ओइन्टमेन्ट) है। यह मलहम यलो ऑक्साइड ऑफ मर्क्युरी (पारदकी पीली भस्म) और वेसेलीन या लेनोलीनके मिश्रणसे बनता है। १ औंस वेसेलीन (या लेनोलीन) में ५-१० ग्रेन पारद भस्म मिलाते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य २० ग्रेन तक पारद भस्म मिलाकर मलहम तैयार कराते हैं। सामान्यतः १० ग्रेन वाला मलहम योग्य माना जायगा।

सूचना—मलहम बनानेके समय अच्छी तरह खरल करके मिश्रण बना लेना चाहिये। योग्य मिश्रण न होने पर पारद भस्मके रजकण पृथक् रह जाते हैं। फिर ऐसे मलहमका अञ्जन करने पर नेत्रमें लाली आजाती है और कभी-कभी वेदना भी होने लगती है।

उक्त मलहमको कांचकी शलाकासे या स्वच्छ अंगुलीसे चनेकी दाल जितना लेकर अञ्जन करें। फिर मलहम नेत्रमें अच्छी तरह फैल जाय, तब नेत्र बन्द कर ऊपरके पलक पर अंगुष्ठसे थोड़ा मर्दन करें। इस तरह लगभग २ मिनट तक करें। यह मर्दन अति धीरे हाथसे करना चाहिये। इस मर्दनसे फूले पर मलहम अच्छी तरह घिसता है और उससे लाभ पहुँचता है।

इस मलहमका अञ्जन रात्रिको सोनेके समय करें, तो विशेष सुविधा रहेगी। कारण, ऐसा करने पर मलहम डालने पर कुछ समय तक दृष्टिमें मन्दताका भास होता है, वह भी नहीं होगा। इस मन्दताका कारण शुक्लमण्डल पर मलहमकी सूक्ष्म तह है। वह तह बिल्कुल अपारदर्शक न होने से कुछ दृष्टिमांद्य होता है। यह मलहम २४ घण्टेमें एक बार ही डालना चाहिये।

कभी इस मलहमके अञ्जनसे नेत्रमें कुछ लाली आजाती है और

कभी अश्रुस्राव भी होने लगता है। ऐसा चिह्न प्रतीत हो तो मलहमको १-२ दिन छोड़ दें। लाली शमन होने पर पुनः मलहमका अञ्जन करने लगें। जो रोगी चिकित्सकके समीप नहीं रहता, उसे इस बातकी पहलेसे ही सूचना कर देवें जिससे लाली आने पर भय मान कर मलहमको छोड़ न देवें।

उक्त मलहममें डायोनिन मिलने पर विशेष लाभ होता है। १ औंस मलहम में २० से २५ ग्रेन डायोनिन मिला सकते हैं; किन्तु डायोनिन मिलाने पर लाली आने की सम्भावना अधिक है। जिस तरह डायोनिन मलहम में मिला सकते हैं, उस तरह डायोनिन प्रवाही की बूंद भी डाल सकते हैं। सुबह डायोनिन की बूंद डालें और रात्रि को मलहम का अंजन करें, तो विशेष सुविधा रहेगी। कदाच रोगी की आँख से दोनों दवाओं का प्रयोग सहन न हो सके, तो १ दिन डायोनिनकी बूंद डालें, दूसरे दिन मलहम का प्रयोग करें।

डायोनिन का प्रवाही १ औंस जल में २५-५० ग्रेन मिलाकर बनाया जाता है। कितनेक नेत्रवैद्य इससे भी अधिक परिमाण में डायोनिन मिलाते हैं। कभी डायोनिन का चूर्ण अन्य औषध मिलाये बिना ही नेत्र में डालते हैं। क्वचित् डायोनिन प्रवाही को नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे प्रवेश कराते हैं।

उपर्युक्त औषध के अतिरिक्त निम्न औषधियाँ भी हमारे अनुभव अनुसार विशेष लाभदायक है।

शुक्लनाशक बिन्दु—इस बिन्दु को बनाने के पहले निम्न दो प्रकार के प्रवाहियों को अलग तैयार करना चाहियेः—

एमोनियम क्लोराइड	(शुद्ध नवसादर)	७॥ ग्रेन	प्रवाही नं० १
झिंक सल्फेट	(जसद पुष्प)	१९ ग्रेन	
बाष्प जल		६ औंस	
कपूर		६ ग्रेन	प्रवाही नं० २
केसर		१॥ ग्रेन	
रेक्टीफाइड स्पिरिट		२॥ ड्राम	
बाष्प जल		२॥ ड्राम	

दोनों प्रवाहियोंको मिला काँच की डाट वाली बोतलमें २४ घण्टे तक रख देवें। २४ घंटे के भीतर बोतल को ४-६ बार चला देवें। फिर फिल्टर

पेपर से छान कर बोतल में भर लेवें। इसमें से २-३ बूंद दिन में १-२ बार डालते रहें।

अहिफेनादि अर्क—केसर और अफीम ५०-५० ग्रेन मिलाकर १ औंस स्पिरिट मिश्रित दालचीनीके जलमें भिगो दें। २४ घण्टे बाद छान कर बूंद डालने के लिये प्रयोग में लावें। इस अर्क के १ औंस जल में २५ बूंद रेक्टी फाइड स्पिरिट मिलायी जाती है। इस प्रयोग से भी फूले में प्रायः लाभ मिल जाता है।

इस तरह ल्यूकोलाइसिन नामक मलहम भी फूले को अच्छी तरह साफ करता है। रिफोल्वएट नामक मलहम भी लाभदायक है। इन सब की अपेक्षा हमारे अनुभव में नैसर्गिक विण्टरग्रीन तेल (Oil Winter green Natural) अत्युत्तम सिद्ध हुआ है। इस तेल से नेत्र में अति जलन होती है। अतः तेल डालने के पहले एनेथेइन की बूँद २ बार २-२ मिनिट के अन्तर पर डालें। फिर तेल का अंजन काँच की सलाई से करें। यह प्रयोग दिन में एक ही बार किया जाता है।

सिल्वर नाइट्रेट के १० ग्रेन परिमाण वाले प्रवाही की कुरेरी पलक को उलट कर, उस पर लगाते रहने से अनेक बार लाभ पहुँचता है। १ औंस जल में ४ ग्रेन नीलाथोथा मिलाकर अंजन करते रहने से भी कभी-कभी फूला कट जाता है। इनके अतिरिक्त वर्त्तमान में नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे कितनीक औषधियोंका अन्तःक्षेपण किया जाता है। इससे बहुत अच्छा लाभ मिलता है। इन औषधियोंमें निम्न विशेष व्यवहृत होती हैं:—

१. पोटास क्लोराइड ५ से १० ग्रेन—स्वच्छ उबाला हुआ जल १ औंस।
२. सोडियम क्लोराइड (शुद्ध नमक) ५ से १० ग्रेन-स्वच्छ उबाला हुआ जल १ औंस।
३. सायानाइड ऑफ मक्युरी ½ ग्रेन-विशुद्ध उबाला हुआ जल १ औंस।

सूचना— (१) नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण करनेके लिये जो प्रवाही व्यवहृत होता है, वह अच्छी तरह उबालकर स्वच्छ किया हुआ लेना चाहिये। पिचकारी और सुईको भी अच्छी तरह १० मिनिट तक उबाल लेना चाहिये।

(२) नेत्रको पारद धावन या सायानाइड आफ मक्युरीके प्रवाहीसे अच्छी तरह धो लेवें और सुई टोंचने पर वेदना न होनेके लिये ५-५ मिनिट के अन्तर पर कोकेनके २-४ बूंद आँखमें डाल लेवें।

उपरोक्त तीनों औषधियोंके प्रयोगसे लगभग ३ घण्टे तक असह्य वेदना होती है। एवं सायानाइड आफ मर्क्यूरीसे तो नेत्र और पलकमें अच्छी तरह सूजन आजाती है। इस शोथको किसी तरह नहीं रोक सकते; किन्तु इस शोथसे कोई हानि नहीं होती। दूसरे दिन स्वयमेव घटने लगता है और ४-५ दिनमें बिल्कुल शमन होजाता है।

(३) तीनों औषध जनित वेदनाको रोकने या कम करानेके लिये कोकैन या एकोईन मिला लेवें। इस तरह यह क्रिया वेदना रहित हो सकती है। इनमेंसे कोकैन जहरी है और उसका असर ४-५ घण्टे तक रहता है। अतः कोकैनकी अपेक्षा एकोईनका उपयोग करना अच्छा माना जायगा। १ औंस जलमें २ ग्रेन एकोईन मिलालेवें। उसमेंसे २ से ४ बूँद उपरोक्त प्रवाहीके साथ मिलाकर अन्तःक्षेपण करने पर रोगीको कुछ भी वेदना नहीं होती।

(४) एकोईनको किसी भी अम्ल विरोधी पदार्थका स्पर्श होने पर या उसके प्रवाहीमें अम्ल विरोधी क्षार मिलादेने पर वह गंदला होकर गुण रहित बन जाता है। अतः जिस बोतलमें एकोईन प्रवाही रखना हो, उसे नाइट्रिक एसिडके प्रवाहीसे धो लेना चाहिये। एवं एकोईन प्रवाही बनानेमें विशुद्ध वाष्प जल मिला लेना चाहिये।

अन्तःक्षेपण विधि—रोगीको तख्त पर लिटावें। जिस नेत्रमें अन्तःक्षेपण करना हो, उसमें कोकैन प्रवाहीकी २-४ बूँद ५-५ मिनिट के अन्तर पर २ बार डालें। फिर ५ मिनिट के पश्चात् सुई टोंचने पर बिल्कुल वेदना नहीं होती।

कितनेक चिकित्सक नेत्र खोलनेके यन्त्र और नेत्रगोलकको स्थिर रखनेके चिमटे का भी उपयोग करते हैं। कितनेक इन दोनों बिना चला लेते हैं। यदि इन यन्त्रोंका उपयोग करना हो तो १० मिनिट तक उबाल विशुद्ध कर लेना चाहिये। सब यन्त्र और शस्त्रों को विशुद्ध पात्रमें रख उसे रोगीके टेबलके समीप दूसरे छोटे टेबल पर व्यवस्थित रक्खें। फिर रोगीके नेत्रको यन्त्र से या सहायक वैद्यकी अंगुली द्वारा खुले रखकर पारद धावन, बोरिक धावन या मर्क्युरी सायानाइडके प्रवाहीसे नेत्रको अच्छी तरह धो देवें।

जिस औषधका अन्तःक्षेपण करना हो, उसे पिचकारीमें भर कर उसमेंसे वायुका अंश निकाल डालें। यदि अन्तःक्षेपण गोलकके ऊपरके हिस्सेमें करना हो तो रोगीको ऊपरमें देखनेको कहें। विशेषतः अन्तःक्षेपण गोलकके ऊपरमें करना सुविधाजनक होता है। रोगी जब नीचा देखता हो तब चिमटेसे नेत्रश्लेष्मावरणके कुछ भागको सहज पकड़, उससे सुईको

सफाईसे टोंचें। सुई ½ इंच जितनी जाने पर प्रवाहीको भीतर डालें। जैसे-जैसे प्रवाही भीतर जाता रहेगा, वैसे-वैसे नेत्रश्लेष्मावरण बुदबुदेके समान फूलता जायगा। प्रायः २० बूंदकी अपेक्षा अधिक प्रवाही नहीं डाला जाता। शुक्लमण्डलसे जितनी दूर होसके उतनी दूरी पर सुई टोंचनी चाहिये।

सूचना—नेत्रबाह्यपटलमें सुई न चली जाय, यह सम्हालना चाहिये। अन्यथा परिणाम विपरीत आता है।

कितनेक नेत्रवैद्य फूलेको साफ करने के लिये विद्युत्प्रयोग करते हैं। उससे अच्छा लाभ पहुंचता है, ऐसा उनका कथन है। हमने इसका अनुभव नहीं किया। कितनेक फूले अति गाढ़े हों और शुक्लमण्डलके मध्यमें हों, शुक्लमण्डलके बाजू का भाग साफ हो, तो तारामण्डलका छेदन करके कृत्रिम कनीनिका की रचना कर सकते हैं। उससे अनेक बार दृष्टिमें बहुत लाभ मिल जाता है। कृत्रिम कनीनिका की शस्त्र क्रिया किस तरह की जाती है, वह आगे तारामण्डलके रोगके विवेचनमें दर्शाया जायगा।

अनेक बार फूला होने पर नेत्र कुरूप भासते हैं। इतना ही नहीं, शुक्लमण्डलके साफ भागमें बनायी हुई कृत्रिम कनीनिका में से चाहिये वैसी अच्छी दृष्टि नहीं पड़ती। कारण, प्रकाशके अधिक किरण कृत्रिम कनीनिका में से निकलते हैं और कुछ फूलेमें से भी निकलते हैं। इन दोनों किरणों का वक्रीभवन अलग-अलग होता है। अतः इन दोनों (कुरूपता, वक्रीभवन भेद) में अन्तरायों को दूर करने के लिये फूले पर गोदने की तरह रंग चढ़ाया जाता है। उससे अनेक बार बहुत अच्छा लाभ पहुँचता है। एक बार एक रोगी अपना इतिहास विनोदपूर्वक कहता था कि फूलेके हेतुसे उसका लग्न नहीं होता था। किन्तु फूलेको रंग देने पर उसे सरलता से कन्या मिल गई थी।

रंग चढ़ाने की तैयारी—नेत्र खुला रखने के लिये उबालकर विशुद्ध किया हुआ यन्त्र, गोलक को स्थिर रखने का चिमटा विशुद्ध किया हुआ तथा नेत्रों को रंग चढ़ाने की सुई तैयार रक्खे। ये सुई दो प्रकार की होती हैं। एक प्रकार में तीन कोन वाली और बीच में सूक्ष्म नहर युक्त सुई दस्तेमें रहती है। दूसरे प्रकार में ४-५

शुक्लमण्डल रंजन सूची

अनेक सूची

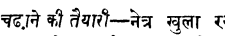

एक सूची

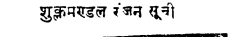

चित्र नं० ८१ शुक्लमण्डल रंगने की सुई; ऊपर में अनेक सुई। नीचे एक सुई।

सामान्य सुई एक दस्ते के भीतर बैठायी हुई होती हैं। ये दोनों प्रकार की सुई चित्र नं० ८२ में दी हैं।

इनके अतिरिक्त पारदधावन, कोकैन प्रवाही, रुई और नेत्र धोने के पात्र आदि तैयार रक्खें।

शुक्ररजन प्रथम विधि—रोगी के नेत्रों को कोकैन डालकर चेतना रहित करें। फिर पारद धावन से धोकर साफ करें। आँख खोलने का यन्त्र चढ़ा चिमटे से नेत्रगोलक को स्थिर पकड़ें और घी या तिल तेलका काजल फूले पर छिड़कें या गोंद के विशुद्ध प्रवाही में काजल मिला स्याही जैसा गाढ़ा द्रव बना १-२ बूँद लगा लेवें। पश्चात् जिस प्रकारकी सुईका उपयोग करना हो, उससे फूले वाले भाग में अच्छी तरह गोदें।

सूचना—इस क्रिया में सुई शुक्लमण्डलके गर्भ भागसे आगे अर्थात् गहराई में न जानी चाहिये। अन्यथा जलमयरस निकल जायगा। कभी तारामण्डलको और कभी दृष्टिमणिको हानि पहुँच जायगी। जब फूले का सब भाग काला हो जाय तब यह क्रिया योग्य मानी जाती है।

शुक्लमण्डलके फूले पर रंग लगाने की एक अन्य रीति भी है। उस प्रकारमें स्याहीका उपयोग नहीं करते। गोल्ड क्लोराइड Gold chloride) और टेनिक एसिड (Tanic acid) का प्रवाही प्रयोजित होता है; या प्लेटिनम क्लोराइड (Platinum chloride) और हाईड्रेजिन हाइड्रेट (Hydrazine Hydrath) के प्रवाही का उपयोग करते हैं। इस प्रकार के रंग की लगाने की विधि निम्नानुसार है।

शुक्र रंजन द्वितीय विधि—रोगी को टेबलपर लिटा नेत्रमें एनेथेइन की बूँद २-२ मिनिट पर ३ बार डालकर नेत्रको चेतना हीन बनावें। १ : ५००० पारदधावन से धोदेवें। पश्चात् आँख को खुली रखने वाली कमानी लगावें और नेत्र को जन्तुघ्न बाष्पजल से धोदेवें। सिर फूले को छीलदें। इस क्रिया के लिये शस्त्रक्रिया में उपयोगी सामान्य चाकू या शस्त्र का उपयोग हो सकता है। अथवा हमने (डा० जादवजी हंसराज ने) जो खास यन्त्र बनाया है, जिसे शुक्लमण्डल घर्षण यन्त्र (चित्र नं० ८३ ग्रन्थ के अन्त में देखें) संज्ञा दी है। यह घर्षण यन्त्र हाथी दांत और धातुओं के दस्ते वाला है। इस सम्बन्ध का लेख इण्डियन मेडिकल गैजेट मार्च १९३३ में दिया गया था। इस यन्त्र से फूले को छील देवें। नेत्र को बाष्प जल से धोदें और फूले को लिण्टके टुकड़े से सुखादें। फिर गोल्ड क्लोराइड १% का प्रवाही फुरेरी से लगावें। लगभग २ मिनिट बाद उसपर फुरेरी से

टेनिक एसिड २% का प्रवाही लगावें। टेनिक एसिड लगने पर रंग काला होने लगता है। २ मिनिट में अच्छी तरह काला होजायगा।

यदि प्लेटिनम क्लोराइडका उपयोग करना होतो उसे गोल्ड क्लोराइड के स्थान पर लगावें तथा टेनिक एसिड के स्थान पर हाइड्रोजिन हाइड्रेट को प्रयोग में लावें। हमारे अनुभव में गोल्ड क्लोराइड और टेनिक एसिड विशेष फलप्रद विदित हुए हैं।

इस तरह लगाया हुआ रंग वर्षों तक रह जाता है। फिर कितनेक रोगियों में कुछ हलका होजाता है। इस उपचार से दृष्टि में अति लाभ पहुँच जाता है। एवं नेत्र का देखाव भी सुन्दर प्रतीत होता है। आयुर्वेद में नीलेथोथे के प्रवाही, सिहनी का दूध आदि औषधियां व्यवहृत होती हैं; किन्तु हमने उनमें से किसी का उपयोग नहीं किया। अतः इनके परिणाम के सम्बन्ध में कुछ भी नहीं लिखा।

कितनेक समय कनीनिका का विशेषांश फूले से बन्द हो जाता है, थोड़ा सा भाग मुक्त रहता है। ऐसी स्थिति में धातुओं के पतरे के चश्मे पहनाये जाते हैं, जिस चश्मे के भीतर सूक्ष्म रेखा के समान चीरा रहता है, उस चश्मे से लाभ पहुँचता है। इस विषय का विवेचन चश्मे के प्रकरण में लिखा जायगा।

उपरोक्त उपचारों के अतिरिक्त कितनेक नेत्रवैद्य पहले अति बढ़े हुए फूले को काट कर उस स्थान पर खरगोश का शुक्लमण्डल रोपित करते थे। जिस तरह नूतन कार्य के प्रारम्भ में अनेक बार कुछ न्यूनता रह जाने से निष्फलता मिलती है, उस तरह खरगोश का शुक्लमण्डल गलकर निकल जाता था; या कभी उग जाता था तो अपारदर्शक बन जाता था। इस तरह जिस हेतु से यह क्रिया की जाती थी वह हेतु सफल नहीं होता था। पुनः कुछ वर्षों से कितनेक नेत्रवैद्यों ने यह क्रिया पुनः की और उनको अच्छी तरह सफलता मिली। इसके अतिरिक्त वर्त्तमान में तुरन्त मृत व्यक्तियों के शुक्लमण्डल को निकाल कर फूले के स्थान पर लगा लेते हैं। इस तरस रोपण क्रिया करने में अधिकतर यश मिला है। अभी तक उन विशेषज्ञों का प्रयोग हो ही रहा है; और आशा की जाती है कि कुछ समय में मनुष्य के पीड़ित शुक्लमण्डल को निकाल उस स्थान पर पशुओंके स्वस्थ शुक्लमण्डल को लगा सकेंगे। एवं उसे पारदर्शक भी रख सकेंगे। ऐसी सिद्धि मिलने पर अनेक मनुष्यों को पुनः दृष्टि की प्राप्ति हो सकेगी।

फूले की उत्पत्ति अनेक रोगोंके उपद्रव रूप हो जाती है। किस व्याधिमें यह उत्पन्न हुआ है, इसे जानकर रोगी को कहा जाय तो अनेक

बार रोगी की श्रद्धा नेत्रवैद्य पर दृढ़ होजाती है। अतः निम्न लक्षणों पर लक्ष्य देनेसे प्रायः हेतु विनिर्णय सरलता से होजाता है :—

शुक्र हेतुनिर्णायक चिह्न :—

१. फूला या फूले छोटे और शुक्लमण्डल के किनारे पर हों तथा रोगी की आयु २५ वर्ष के भीतर हो तो प्रायः फूले की उत्पत्ति पिटिका क्षतके हेतु से हो जाती है।

२. शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता मंद हो, शुक्लमण्डल के विशेषांशपर फैल गई हो तथा सूक्ष्म केशिकाएं प्रतीत होती हों तो उसका कारण सफेदी या शुक्लमण्डल के गर्भभाग का प्रदाह होना चाहिये।

सफेदी जनित अपारदर्शकता प्रायः शुक्लमण्डलके बाह्य पर्त्तमें होती है तथा केशिकाएँ किनारेसे मध्य भागकी ओर जाती हैं। शुक्लमण्डलके गर्भ भागके प्रदाहसे उत्पन्न अपारदर्शकता प्रायः गर्भभागमें होती है। एवं क्वचित् अनेक वर्षोंके पश्चात् भी सूक्ष्म केशिकाएँ केवल आखोंसे प्रतीत होती हैं तथा अणुवीक्षण यन्त्र द्वारा प्रायः सर्वदा दृष्टिगोचर होती हैं।

३. अति गाढ़ा और चूने सदृश पदार्थ ऊपर चिपका हो या भीतर अवस्थित हो, ऐसी अपारदर्शकता कितनीक बार शुक्लमण्डलके गर्भभागके प्रदाह के पश्चात् देखनेमें आती है। एवं कभी दीर्घकालकी सफेदीके पश्चात् भी उपस्थित होती है। जिस समय शुक्लमण्डलमें क्षत हो, उस समय शुगरलेड (नागशर्करा) का उपयोग किया जाय तो उससे भी इसी प्रकारकी अपारदर्शकता रह जाती है।

४. शुक्लमण्डलके किनारे पर अर्द्धचन्द्राकार या उस प्रकारके फूले हों तो उसका हेतु प्रायः अभिष्यन्दमें उत्पन्न क्षत होता है।

५. शुक्लमण्डलके किनारेमें फूला हो और उसमें तारामण्डल फँसा हो तो वह प्रायः पिटिका क्षतके उपद्रवरूप होनेकी सम्भावना है।

६. शुक्लमण्डलके बीचका हिस्सा लगभग गल गया हो और उस स्थान पर तारामण्डल बाहर निकल आया हो, तो उसका हेतु बहुधा पूयमेहज क्षत या शुक्लमण्डलका गम्भीर क्षत होना चाहिये। यह स्थिति शुक्लमण्डलके जल जाने पर भी होती है; किन्तु जलनेके हेतुसे हो तो नेत्रश्लेष्मावरणमें भरे हुए घावोंके चिह्न प्रतीत होते हैं।

७. अपारदर्शकता पक्तिके समान हो और चारों ओरके शुक्लमण्डलका भाग पारदर्शक हो, तो वह धार वाली या नोकदार वस्तु लग जाने

के हेतुसे होनेकी सम्भावना है। यह व्यथा चाहे शस्त्र-क्रियाके परिणाममें हो या अकस्मात् लग जानेके हेतुसे हो।

८. शुक्लमण्डलका निम्न प्रदेश अपारदर्शक हो और वह विकृति मध्य भाग तक न पहुँची हो, स्पष्ट पंक्ति खिंचनेके सदृश देखाव हो, तो ऐसी स्थिति बहुधा पलक विशेष समय खुले रह जानेके हेतुसे होती है। इनका हेतु मुद्दती ज्वर या मस्तिष्ककी व्याधिमें दीर्घकाल तक बेहोशी रही होगी।

९. अपारदर्शकता शुक्लमण्डलके किनारेमें हो, उसके पासमें कृष्णाभ प्रदेश स्फीत हो तो उसका हेतु नेत्रबाह्यपटलका शोथ होना चाहिये।

१०. कितनेक बार शस्त्र-क्रियाके परिणाममें या नेत्रको चोट लगनेके हेतुसे जलमय रसके पूर्वखण्डमें केशिकाएँ उत्पन्न होती हैं। प्रायः इन केशिकाओंका शोषण होकर शुक्लमण्डल और पूर्वखण्ड स्वच्छ पारदर्शक हो जाता है। किन्तु कभी इस क्रियामें बहुत विलम्ब होता है। परिणाममें शुक्लमण्डल पर रक्तका रंग चढ़ जाता है; जिसमें तारामंडल और दृष्टिमणि ठीक नहीं दीखते। उक्त स्थिति पर ध्यान न दिया जाय तो फिर शुक्लमण्डलकी कोई भलती अपारदर्शकताकी कल्पना हो जानेकी सम्भावना है। अतः यह अच्छी तरह लक्ष्यमें रखने योग्य है।

११. वृद्धावस्थाके हेतुसे या कभी वृद्धावस्थाके आगमनके पहले भी शुक्लमण्डलकी परिधिका भाग अपारदर्शक होने लगता है। इस स्थितिको वार्धक्यजन्य शुक्लमण्डलकी श्वेत परिधि (Arcus senilis) कहते हैं (चित्र नं० ८४ देखें)। इसका प्रारम्भ शुक्लमण्डलके ऊपरके भागसे होता है फिर शनैः-शनैः चारों ओर फैल कर अपारदर्शक मण्डल बन जाता है। इस स्थितिके हेतुसे दृष्टिमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं पहुँचती। एवं नेत्रको भी हानि नहीं पहुँचती। क्वचित् ही यह अपारदर्शकता मध्य भागकी ओर आगे बढ़ती है और परिधिका भाग पतला होता जाता है। फिर नेत्रान्तरस्थ प्रवाहीका दबाव समस्त शुक्लमंडल-

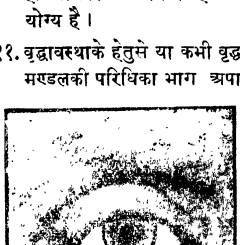

चित्र नं० ८४ वार्धक्यजन्य शुक्लमंडल की श्वेत परिधि।

को स्फीत बना देता है; इससे स्थानच्युत-सा देखाव हो जाता है। दृष्टिको भी कुछ-न-कुछ अंशमें हानि पहुँचती है। यह स्थिति इतने कम परिमाणमें होती है कि हमने इस स्थितिकी प्राप्ति वाला एक भी रोगी आज दिन तक नहीं देखा।

१२. शुक्लमण्डलकी पट्टी आकारकी अपारदर्शकता ऊपरके और नीचेके पलकके बीचमें ऊपर और नीचेके खुले रहने वाले भागमें होती है। प्रत्येक चिकित्सकको लक्ष्यमें रखना चाहिये कि शुक्लमण्डलका थोड़ा सा ही भाग देखनेकी क्रियाके समय पलकोंके बीचमें रहता है। उन भागोंमें से कुछका शुक्लमण्डलके मध्यके भागमें और कितनेकका नीचे-के भागमें अन्तर्भाव होता है। शुक्लमण्डलके ऊपरका भाग ऊपरक पलकसे ढका रहता है और नीचेके भागका थोड़ा-सा ही अंश निम्न पलकसे आच्छादित रहता है। जब उक्त भागोंकी अपारदर्शकता उपस्थित होती है, तब वह पट्टी आकारकी होती है। यह रोग विशेषतः वृद्ध और कृश व्यक्तियोंको होता है। जिस आँखमें यह विकार प्रतीत हो, उसमें नीले मोतियेके समान अन्य व्याधि भी प्रायः होती हैं।

प्रारम्भ में शुक्लमण्डल की आड़ी मध्य रेखा के नीचे दोनों ओर परिधि के समीप में दो अपारदर्शक चिह्न होते हैं। अनेक बार इन दागोंको बढ़ने में वर्ष लग जाते हैं। शनैः-शनैः अपारदर्शकता मध्य भाग की ओर बढ़ती जाती है। फिर जब अन्त में रोग पूर्णावस्था को प्राप्त होता है, तब ऊपर लिखे अनुसार एक आड़ी पंक्ति या पट्टी आकार की अपारदर्शकता प्रतीत होती है। यह पंक्ति दोनों सिरों पर कुछ मोटी और बीचमें कुछ पतली होती है। यदि अणुवीक्षण यन्त्र से नेत्रपरीक्षा की जाय तो यह अपार-दर्शकता बहुसंख्य अपारदर्शक बिन्दुओं से बनी है।

जब नीला मोतिया या भीतर के प्रदाह के हेतु से यह रोग होता है, तब अधिक सम्हालने की आवश्यकता नहीं है। कारण, इन रोगोंके हेतुसे दृष्टिका नाश पहले ही होजाता है। जब दृष्टि युक्त नेत्रमें यह रोग होता है, तब उसका उपचार करने की आवश्यकता है। ऐसी अपारदर्शकता का मुख्य हेतु शुक्लमण्डल के गर्भ के पर्त्त में चूने जैसे क्षार के पर्त्त का निर्माण है। शुक्लमण्डल में धमनियां नहीं हैं; किन्तु उनका पोषण उसी जाति के प्रवाही से होता है। यदि उस प्रवाही में क्षार आदि पदार्थ का परिमाण बढ़ जाय और उसके साथ शुक्लमण्डल की चेतना में न्यूनता आ जाय, तो जो भाग दोनों पलकों के बीच खुला रहता है, उस भाग में वायु का स्पर्श

होने से शोषण क्रिया अधिक होती हो, तो परिणाम में क्षारका पर्त्त बन जाता है।

उपचार—यदि यह व्याधि नीला मोतिया के दुष्परिणाम में हुई हो और दृष्टि न हो तो विशेष उपचार की आवश्यकता नहीं है। कारण यह रोग शमन होजाय तो भी दृष्टि को लाभ नहीं पहुँचता। यदि वृद्धावस्था के हेतु से यह विकार हुआ हो तो पीला मलहम, डायोनिन की बूँद या शक्कर के शर्बत के साथ बनाया हुआ डायोनिन की बूंद का उपयोग करने पर कभी-कभी लाभ होजाता है। यदि चूने जैसे क्षार का पर्त ऊपर के भाग में हो, तो उसे शस्त्र से निकाल डालने पर दृष्टि में लाभ पहुंच जाता है।

(३) A. शुक्लमण्डल की रेखामय अपारदर्शकता।

(*Striate Opacity of the Cornea*)

जिन नेत्रवैद्योंने कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया अनेक रोगियों पर की होगी और दस रोदिन पट्टी खोल कर उन नेत्रों का निरीक्षण किया होगा, उन को यह स्थिति दृष्टिगोचर होती ही है। कांचबिन्दु की शस्त्रक्रिया करने के पश्चात कितनेक रोगियों में यह स्थिति दूसरे या तीसरे दिन उपस्थित होती है। कांचबिन्दु के प्रकरण में आगे लिखा जायगा, उस अनुसार उसकी शस्त्रक्रिया करने के समय शुक्लमण्डल के ऊपर के हिस्से में छेद किया जाता है। उस छेद का बहिर्गोलपना ऊपर के हिस्से में होता है और अन्तर्गोलपना निम्न ओर में होता है। अन्तर्गोल वाले भाग में से सूक्ष्म-सूक्ष्म अपारदर्शक रेखाएं शुक्लमण्डल के मध्य भाग की ओर गमन करती हुई प्रतीत होती हैं। यह रेखाएं प्रायः सरल होती हैं। ४-५ दिन के भीतर ये साफ होने लगती हैं। लगभग १ सप्ताह में बिल्कुल साफ होजाती हैं। इस स्थिति की संप्राप्ति का कारण अभी तक अज्ञात है। ऐसी कल्पना होती है कि, शुक्लमण्डल में छेद होने पर जलमय रसका प्रवेश शुक्लमण्डल के बीच के पर्त्त में होने से ऐसा होता है।

उपाय—कुछ भी करने की आवश्यकता नहीं है। बहुधा यह विकृति स्वयमेव उपशम होती है। कभी कुछ अंश में अपारदर्शकता रह जाती है।

(४) शुक्लमण्डलकी आगन्तुक व्यथा।

(*Injuries of Cornea*)

इस व्यथामें निम्नानुसार विभाग होते हैं :—

अ. शुक्लमण्डलमें बाह्य पदार्थ गिरना। आ. शुक्लमण्डल खुरच जाना।
इ. शुक्लमण्डलके घाव। ई. शुक्लमण्डल जल जाना।

अ. शुक्लमण्डलमें बाह्य पदार्थका प्रवेश।

(*Foeign Bodies upon the Cornea*)

शुक्लमण्डलमें गिरने वाले पदार्थोंमें लोहे आदि धातुके सूक्ष्म किरच, कोयलेके रजकण, रेत या धूलिके परमाणु मुख्य हैं। ऐसी व्यथा श्रीमंतोंकी अपेक्षा खेत, जङ्गल और कारखानोंमें काम करने वाले निर्धन वर्गको अधिकतर होती है। रेलगाड़ीमें मुसाफिरी करने वालोंकी आँखमें अनेक बार कोयलाके रजकण गिरते हैं। एवं पंजाब आदि देशोंमें भयङ्कर आँधी चलती है, तब शहर वासी मनुष्योंकी आँखमें रेतके कण भी गिर जाते हैं।

चिह्न—प्रारम्भमें आँखके भीतर गड़ता है और वेदना होती है। यह वेदना कभी-कभी असह्य होती हैं। आँख लाल होजाती है। बाह्यपदार्थको निकाल देनेके लिये रोगी चक्षुको मसलता है, तो लालीमें और वृद्धि होती है। यदि पदार्थ अस्वच्छ हो तो शुक्लमण्डलमें क्षत उत्पन्न होता है। यदि पदार्थ शुक्लमण्डलकी गहराईमें प्रवेश कर जाता है, तो अधिक हानि होती है। यदि लोहेका सूक्ष्म टुकड़ा शुक्लमण्डलमें गिर गया हो तो उसके चारों ओर कुछ भूरे रंगका वर्त्तुल होजाता है तथा वह पदार्थ काले रंगका दीखता है।

उपचार—बाह्य पदार्थको होसके उतना जल्दी निकालना चाहिये। अन्यथा उस स्थान पर क्षत हो जायगा। फिर विकार बढ़ने पर तारामण्डल प्रदाह, पूर्वखण्डमें पूयोत्पत्ति तथा क्षत स्थानमें फूला आदि गम्भीर रोगोंकी सम्प्राप्ति होजाती है।

शुक्लमण्डलमें गिरे हुए बाह्यपदार्थको निकालनेकी विधि—नेत्रमें एनेथेइन या कोकैनका प्रवाही डालकर गोलकको चेतनाहीन बनावें। नेत्र खोलनेके चिमटेसे नेत्रको खुला रख कर बोरिक धावनसे धो देवें। यदि पदार्थ शुक्लमण्डलके बाह्य पर्त्तमें हो, तो उसे अति सरलता से दूर कर सकते हैं। इसमें गिरे हुए पदार्थोंको निकालनेके लिये खास शस्त्र—कुदाल आदि आते हैं। इनमेंसे कुदाल मोटी सुई जैसा होता है और दस्तेमें लगा रहता है। उसका सिरा कुछ चिमटे और कुदाली जैसे आकारका होता है। उससे

१

(नं० २ बरनाका चित्र ग्रन्थके अन्तमें देखें)

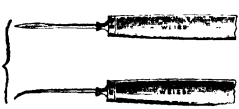

३

चित्र नं० ८५. शुक्लमण्डलमेंसे बाह्य-पदार्थ निकालनेके शस्त्र—
१. खोदनी (Spud) २. बरना (Gouge)
३. सीधी तथा मुड़ी हुई सुई (Needles)

अति हल्के हाथसे बाह्य द्रव्यको निकाल देवें। यदि लोहका कण गिरा हो और चारों ओर भूरे रंगका किनारा बन गया हो तो किनारे वाले भागको भी हल्के हाथसे छील लेवें। यदि पदार्थ शुक्लमण्डलमें गहरा चला गया हो तो शुक्लमण्डलमें बरनेसे छेद करें। फिर चिमटेसे पदार्थको खेंच लें। एवं कांटे जैसे शल्योंको निकालनेके लिये सुईका उपयोग करें।

यदि पदार्थ अति गहराईमें चला गया हो, तो इस तरह निकालनेमें भय रहता है। छेद करने पर यदि बाह्यपदार्थके आघातसे शुक्लमण्डलके अन्तिम पर्त्तका भेदन होजायगा, तो उस छेद मेंसे जलमय रस बाहर निकल जायगा तथा तारामण्डल और दृष्टिमणि भी आगे बढ़ जायँगे। यदि बाह्य-पदार्थ पर ऊपरसे कुछ भी दबाव होगा, जो दृष्टिमणिके पर्त्तको हानि पहुँचेगी। परिणाममें व्यथा जनित काँचबिन्दुकी सम्प्राप्ति होकर दृष्टि बन्द होजाती है। ऐसा न होनेके लिये उत्तम मार्ग यह है कि शुक्लमण्डलकी परिधिके भागमें बरना (चि. नं० ८५) से छेद कर उस मार्गमें एक पतला शस्त्र पूर्वखण्डमें डालकर बाह्यपदार्थको पिछली ओरसे धक्का देवें और आगे की ओरसे चिमटेसे खेंच लेवें। बाह्य पदार्थ निकाल लेने पर नेत्रमें एट्रो-पिनकी बूँद डालकर पट्टी बांध दें। यदि घाव शुक्लमण्डलकी परिधि वाले भागमें हुआ हो तो, एकाध दिन इमेरिन डालना चाहिये। इसका कारण शुक्लमण्डलके क्षतके उपचारके विवेचनमें कहा गया है।

परिणाम—यदि बाह्य पदार्थ ऊपरके पर्त्त में हो तो प्रायः शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता नहीं रहती। किन्तु गहराई में ही कुछ अंशमें अपार-दर्शकता रहजाती है और दृष्टिको हानि पहुँचती है। यह परिणाम रोगी को पहले सेही समझा देना चाहिये। अन्यथा चिकित्सक को विना कारण अपयश मिलने का डर रहता है।

आ. शुक्लमडलका घर्षणक्षत।

(*Abrasions of Cornea*)

शुक्लमण्डकी रचना के वर्णन में लिखा गया है कि शुक्लमण्डल ५ पर्त्तका बना है। इनमें सबसे ऊपरका पर्त्त त्वचा मय है। जब किसी भी कारण से नख लग जाने या आँख को पोंछने पर रुमाल या कपड़े से घिस जाता है तथा बाल या ऐसी वस्तु गिरजाने पर शुक्लमडलमें सूक्ष्म घाव होता है, उसे शुक्लमडल का घर्षण क्षत, खोंच और रगड़ कहते हैं।

लक्षण और चिह्न—अश्रुस्राव, प्रकाश की असहनशीलता, असह्य पीड़ा और नेत्रकी लाली आदि लक्षण होते हैं। नेत्र स्वच्छ हों और अवघर्षण

(या नखक्षत) पर पूयोत्पादक कीटाणु नहीं पहुँचते, तो २-३ दिनमें क्षत भर जाता है और शुक्लमण्डल स्वस्थ हो जाता है। फिर कुछ भी चिह्न नहीं रहता, एवं दृष्टि को भी हानि नहीं पहुँचती। यदि नेत्र में रोहे या नेत्र-श्लेष्मावरण का चिरकारी प्रदाह हो या नासाशूल जैसी व्याधि हो तो पूयोत्पादक कीटाणु पीड़ित स्थान पर अपनी हानिकारक क्रिया प्रारम्भ कर देते हैं। फिर शुक्लमण्डलमें क्षत बन जाता है; जिसके चिह्न, चिकित्सा आदि इसी प्रकरण में पहले लिखे गये हैं। यदि क्षत द्वितीय, तृतीय और निम्नवृत्ति तक पहुँच जाता है, तो दृष्टि को भी हानि पहुँच जाती है।

उक्त घर्षण के अतिरिक्त कभी-कभी शुक्लमण्डलके पुनरावर्त्तक घर्षण-क्षत (Recurring abrasions of cornea) प्रतीत होते हैं। इस प्रकारमें नखरौंट आदि क्षत शमन हो जाने पर कुछ सप्ताह या मासके पश्चात् रोगी जब सुबह या रात को उठकर आँख खोलता है, तब अकस्मात् नेत्रमें वेदना होने लगती है; और ताजा ही क्षत हो, ऐसे सब चिह्न उपस्थित होते हैं। परीक्षा करने पर केवल आँख से खोंच देखने में भी नहीं आती। कितनीक बार तो बहिर्गोल कांच से प्रकाश डालने पर एवं फ्लुओरेसिनकी बूंद डालने पर भी खोंच स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। किन्तु खिड़की की या अन्य किसी वस्तु की प्रतिमा शुक्लमण्डल पर डालकर निरीक्षण किया जाय अथवा नेत्रदर्शक यन्त्रसे रहे हुए दर्पणसे बत्तीका प्रकाश डालकर देखा जाय तो खोंच स्पष्ट हो जाती है। कभी-कभी खोंच के चारों ओर की त्वचामय वृति निम्नवृत्तिसे अच्छी तरह पृथक् हुई भासती है।

इस पर से कितनेक नेत्रवैद्य अनुमान करते हैं कि, त्वचामय वृत्ति और निम्नवृत्ति के बीचमें सूक्ष्म परमाणु अवस्थित होना चाहिये। इस हेतु से इस प्रकार के क्षत का जल्दी रोपण नहीं होता। यह व्याधि दीर्घकाल पर्यन्त चलती है और पुनः-पुनः प्रकशित होती है।

उपचार—आंख पर पट्टी बांध रक्खें। हो सके तो दोनों नेत्रों पर पट्टी रक्खें। रोगी रात्रिको सोनेके समय बोरिक एसिडका मलहम नेत्रमें डालें; जिससे पलक शुक्लमण्डलकी त्वचामय वृत्तिको नहीं चिपकते (कितनेक नेत्रवैद्योंकी मान्यता है कि, निद्रावस्थामें पलक शुक्लमण्डलसे चिपक जाते हैं फिर रोगी निद्रामें से जागकर तुरन्त आँख खोलता है, तब त्वचामय वृत्ति निम्न वृत्तिसे पृथक् होकर पीड़ित होती है। इस हेतुसे रोग अकस्मात् उपस्थित हो जाता है) रोगीको सूचित करें कि निद्रामें से उठने पर आँख धीरे-धीरे खोलें। आवश्यकता हो तो एट्रोपीनकी बूँद या मलहम डालें।

कितनीक बार ये सब उपाय असफल होते हैं, तब खोंच स्थानको कुछ छीलकर टिञ्चर आयोडिन लगाना पड़ता है। कितनेक नेत्रवैद्य क्लोरिनके जलको कुछ मन्द कर (अन्य जल मिलाकर) उससे धोते हैं।

इ. शुक्लमण्डलके घाव।

(*Wounds of Cornea*)

ये घाव प्रायः किसी धार वाले या नोकदार शस्त्र, कांटे या वृक्ष शाखा आदिसे होते हैं। घाव होने पर तुरन्त उसके दोनों ओरके किनारे निस्तेज और शोथमय बन जाते हैं। कारण टूटे हुए भागसे जलमय रस एवं अश्रु शुक्लमण्डलके गर्भ भागमें प्रवेश करते हैं। यह निस्तेजता घाव भर जाने पर प्रायः दूर हो जाती है; किन्तु घावके स्थान पर सूक्ष्म श्वेत अपारदर्शक रेखा रह जाती है। यह रेखा मध्य भागमें अर्थात् कनीनिकाके ऊपर हो तो दृष्टिको कुछ अंशमें हानि पहुँचती है। यदि घाव एक ओर अर्थात् शुक्लमण्डलके परिधि प्रदेशमें हो तो दृष्टिको हानि नहीं पहुंचती।

धार वाले शस्त्रसे साफ घाव होने पर जो हानि पहुँचे, उसकी अपेक्षा नोक रहित शस्त्रसे कुचलने सदृश घावसे अधिकतर हानि पहुँचती है। कभी काँटे जैसे पदार्थकी नोकसे शुक्लमण्डल, तारामण्डल, दृष्टिमणि और कांचरूप रसको भी हानि पहुँच जाती है। इन भागोंको आघात पहुँचने पर क्या परिणाम आता है, वह उन-उन अवयवोंके प्रकरणमें लिखा जायगा।

शुक्लमण्डलके घाव जनित हानि मुख्य २ हैं। १. घाव पूयोत्पादक कीटाणुओंसे दूषित होना; २. शुक्लमण्डलका भेदन होकर तारामण्डलका बाहर निकल आना।

१. पूयोत्पादक कीटाणु जनित विकृति—पूयोत्पत्ति होने पर घाव मार्ग से एक बृहत् क्षत होजाता है; इतना ही नहीं, जलमय रसके पूर्व खण्ड में में भी पूय का प्रवेश होजाता है।। परिणाम में समस्त नेत्रगोलक पक कर दृष्टि और गोलक नष्ट होजाते हैं। यदि योग्य उपचार शीघ्र किया जाय और रोगनिरोधक शक्ति सबल हो तो अच्छे भाग्य वाले रोगी को समस्त गोलक का शोथ या पाक नहीं होता। शुक्लमण्डल का कुछ भाग पक कर नष्ट होजाता है। फिर घाव भर जाता है।

२. तारामण्डल का निःसरण—शुक्लमण्डल का कुछ भाग नष्ट होने पर तारामण्डल घाव में से बाहर आजाता है और फिर रोपण क्रिया के समय बाहर निकला हुआ भाग छिद्र में फँस जाता है। ऐसी स्थिति में

दो प्रकार के परिणाम आते हैं। १. कनीनिका शुक्लमण्डलके छिद्र की ओर सरक जाती है; और २. अनेक बार बिलकुल बन्द हो जाती है। यदि तारामण्डल की परिधिका भाग फँसा हो तो कनीनिका बन्द नहीं होती; किन्तु तारामण्डल का जो भाग छिद्र में से बाहर निकल गया है, उस पर कभी प्रदाहोत्पादक कीटाणु लग कर नेत्र के भीतर के भाग का प्रदाह होने का डर सदा के लिये बना रहता है।

यदि शुक्लमण्डल के अतिरिक्त जलमय रसके पूर्वखण्ड में घाव करने वाली वस्तु द्वारा कीटाणु या विष लग जाय तो उस भाग का प्रदाह होजाता है। फिर वह प्रदाह गहरे भाग में पहुँच कर दृष्टि का नाश करता है।

यदि दृष्टिमणि के आवरण का भेदन हुआ हो तो व्यथाजन्य कांचबिन्दु होजाता है। परिणाम में दृष्टिका नाश होता है। ऐसी स्थिति में शीघ्र योग्य उपचार किया जाय तो दृष्टि पुनः आ जाती है।

तोप का गोला फूटने पर जो टुकड़े चारों ओर उड़ते हैं, उनसे एवं बन्दूक के सूक्ष्म छर्रे से भी शुक्लमण्डल में घाव हो जाते हैं। ऐसे छर्रे आदि शुक्लमण्डल में बहुत गहराई में पहुँच कर हानि पहुँचाते हैं; और उसका वर्णन आगे पृथक् किया जायगा।

उपचार—शुक्लमण्डल के घाव में मुख्य भय पूयप्रदाह का है, अतः घाव को कीटाणुओं से मुक्त करके के लिये जन्तुघ्न प्रवाही से धो देना चाहिये। इसके लिये पारद धावन १/१००० से १/५००० तक का व्यवहृत होता है। यदि जल निवाया लिया हो, तो रोगी को विशेष अच्छा लगता है। बोरिक धावन भी इसी तरह लाभ पहुँचाता है। घाव धोने के पश्चात् देखें कि, तारामण्डल बाहर निकल आया है या नहीं? या घाव में फँस तो नहीं गया? यदि घाव ताजा हो, तारामण्डल घावके भीतर विशेष समय न रहा हो, तो योग्य शस्त्र द्वारा उसे स्वस्थान में स्थापित करने का प्रबन्ध करना चाहिये। तारामण्डल घाव के भीतर या बाहर दीर्घकाल से रह गया हो, तो उसे चिमटे से अति हल्के हाथ से बाहर निकाल कैंची से काट दें।

यदि शुक्लमण्डल का घाव परिधि प्रान्त में हो तो इसरीन का प्रवाही एक दो दिन डालें। फिर एट्रोपि का प्रवाही डालें। इसरीन डालने से तारामण्डल का संकोच होता है। फिर उसका परिधि भाग घाव में से बाहर नहीं निकलता। एक दो दिन बाद एट्रोपिन डालने का हेतु यह है कि प्रदाह का भय दूर होता है। घाव बन्द होजाने पर तारामण्डल बाहर

निकलने का संभव कम होता है; किन्तु व्यथा के हेतु से या प्रदाहोत्पादक कीटाणुओं का संक्रमण होने से तारामण्डल न्यूनाधिक प्रदाहग्रस्त होनेकी संभावना रहती है, एट्रोपीन इस भय को दूर करता है।

यदि शुक्लमण्डल का घाव मध्य भाग में हो तो पहले से ही एट्रोपिन की बूंद डालना, यह उत्तम माना जायगा। फिर आयडोफार्म या झेरोफार्म का सूक्ष्म चूर्ण नेत्र में डाल कर पलक को बन्द करदें। ऊपर एक गोज का टुकड़ा और फिर रुई का फोहा रख कर पट्टी बांध दें। २४ घण्टे बाद पट्टी खोल कर घाव की परीक्षा करें। सुधार पर हो तो साफ होने लगता है, नेत्र में लाली कम होजाती है तथा वेदना का भी ह्रास होता है। यदि ये तीनों चिह्न विपरीत देखनेमें आवें तो स्थिति चिन्ताजनक मानी जाती है। उस पर से अनुमान होता है कि प्रदाह अधिक हुआ है या वह भीतर के भाग में पहुँचा है। उपरोक्त उपचार चालू रखने पर बढ़ा हुआ शोथ कुछ दिनों में दूर होजाता है या समस्त गोलक का प्रदाह होकर दृष्टि और गोलक नष्ट होजाते हैं।

यदि समस्त गोलक का तीव्र प्रदाह हो, प्रकाश-प्रतीति बिल्कुल न होती हो तो, गोलक को निकाल देना, वही उत्तम मार्ग है। इस सम्बन्धमें विशेष आगे के प्रकरण में लिखा जायगा। एवं तारामण्डल, दृष्टिमणि और कांचरूप रसको व्यथा होगई हो, उसका उपचार भी आगे उनके प्रकरणोंमें लिखा जायगा।

ई. शुक्लमण्डल का जलना।

(Burns of Cornea)

कारण—कभी-कभी चूना, तेजाब, जलता हुआ बारूद, उबलता जल, और अग्नि ज्वाला से शुक्लमण्डल जल जाता है।

लक्षण और चिह्न—असह्यवेदना, हानिके अनुसार शुक्लमण्डल की निस्तेजता, बारूद से जलने पर उसमें रह हुए कोयले के सूक्ष्म कण शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण में चिपक जाना, नेत्रश्लेष्मावरण की लाली और प्रायः शोथ, चूना जैसे द्रव्यों से जलने पर द्रव्याणुओं का शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण में चिपक जाना, तेजाब से जलने पर शुक्लमण्डल का कुछ भाग गल जाना और पलक का न्यूनाधिक शोथ आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यदि नेत्रको साफ नहीं रक्खा जाता, तो शुक्लमण्डल में क्षत होजाता है। फिर क्षत भर जाने पर छोटे-मोटे फूले रह जाते हैं। क्षत के परिणाम में तारामण्डल का प्रदाह होजाता है। यदि पूरा

शुक्लमण्डल जल गया है और जलने की क्रिया गहराई तक पहुँच गई हो तो शुक्लमण्डल के कुछ भाग का कोथ होकर पृथक् होजाता है। फिर नीचे का भाग भरने लगता है। नेत्रश्लेष्मावरण में हानि पहुचने पर पलक गोलक को चिपक जाता है।

उपचार—यदि नेत्र चूने से दुग्ध हुए हों, तो शुद्ध जल से या शक्कर के जलसे धो दें, जिससे चूने के अणु निकल जायँगे। यदि चूने के अणु शुक्लमण्डल पर रह जायँगे तो उसस्थान पर दाग आजीवन रह जाना संभव है।

तेजाब से जलने पर चक्षु को शुद्ध जल से धो देना वही उत्तम है।

बारूदके रजकणों को होसके तब तक निकाल देना चाहिये। यदि रजकण बहुसंख्य चिपके हों और निकालने में शुक्लमण्डल को अधिक हानि पहुँचने की संभावना हो, तो १-२ दिन रहने दें। उस समय के भीतर कितनेक स्वयमेव निकल जाते हैं। बोरिक धावन से धोते रहें। घी, वेसलीन आदि शामक पदार्थ डालते रहने से भी पीड़ा कम होती है। वेसलीन में कुछ बोरिक एसिड या आइडोफार्म मिला लेने पर आंख अधिक साफ रहती है। जैसे-जैसे आंख सुधरती जाती है, वैसे-वैसे पलक का शोथ हलका होता जाता है।

(५) शुक्लमण्डल के न्यून पोषणजन्य रोग।

(*Dyotrophies or degeneration conditions of Cornea*)

शुक्लमण्डलको पोषण कम मिलने पर उत्पन्न रोग समूहोंमें मुख्य निम्न हैं :—

अ. वार्धक्य जन्य शुक्लमण्डलकी परिधिकी अपारदर्शकता—Arcus senilis (Gerontoxon)

आ. युवावस्थामें उत्पन्न शुक्लमण्डलकी परिधिकी श्वेत अपारदर्शकता—Arcus Juvenilis.

इ. शुक्लमण्डलमें मेदापक्रान्ति—Primary Fatty degeneration of Cornea.

ई. मेदाप क्रान्तियुक्त सफेदी—Pannus degenerativus.

उ. शुक्लमण्डलकी पट्टी सदृश अपारदर्शकता—Zonular opacity of Cornea.

ऊ. रजतक्षार जन्य कालापन—Argyrosis.

ए. लोहभस्म जन्य पिङ्गलता—Siderosis.

अ. वृद्धावस्थाजन्य शुक्लमण्डलकी परिधिकी अपारदर्शकता।

(Arcus Senilis)

प्रायः वृद्धावस्थाके आगमन कालमें और कितनेक रोगियोंमें वृद्ध होनेके पहले भी शुक्लमण्डलकी परिधिमें श्वेत रंगकी धनुषाकार अपारदर्शकता उपस्थित होती है (चित्र नं० ८३ देखें)। यह पहले शुक्लमण्डलके ऊपर के भागमें प्रतीत होती है। कुछ समय व्यतीत होने पर निम्न अर्द्धभागमें भी उपस्थित होती है। फिर आयु बढ़ने पर दोनों भाग जुड़ कर शुक्लमण्डलके चारों ओर एक श्वेत वर्णकी अँगूठी आकारकी अपारदर्शकता भासती है। इस अपारदर्शकताका ऊपरका और नीचेका हिस्सा अधिक मोटा होता है। बीचका भाग अर्थात् शुक्लमण्डलके बाहर और भीतरके भागमें अवस्थित भाग कम मोटा होता है। इनमें भी भीतरका हिस्सा बाहरकी अपेक्षा कम मोटा होता है। यह अपारदर्शकता परिधि प्रान्तमें होने और शुक्लमण्डलके बीचका हिस्सा बिल्कुल पारदर्शक और स्वच्छ होनेसे रोगीकी दृष्टिमें किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं होती।

जैसे वृद्धावस्थामें यह श्वेत धनुष उत्पन्न होता है, वैसे कितनेक प्रौढ़ व्यक्तियोंमें भी इस अपारदर्शकताकी संप्राप्ति होजाती है। उस स्थितिमें अन्य किसी भी प्रकारका अन्तराय न होनेसे रोगीको अपनी आँखमें किसी भी प्रकारकी विकृति होनेका बोध भी नहीं होता। फिर जब कोई अन्य मित्र या सम्बन्धीकी ओरसे ध्यान आकर्षित किया जाता है, तब घबराकर नेत्रवैद्यके पास दौड़ते हैं। इस तरह घबराये हुये अनेक रोगी मेरे पास आनेका स्मरण है। जब नेत्रवैद्य सच्ची स्थिति समझाते हैं और उससे नेत्रको किसी भी प्रकारकी हानि नहीं पहुँचेगी, ऐसा निश्चय कराते हैं, तब रोगीको शान्ति मिलती है।

केवल चक्षुसे देखने पर अपारदर्शक सतह एक समान भासती है, किन्तु दूरवीक्षणसे निरीक्षण करने पर सूक्ष्म-सूक्ष्म बिन्दु प्रतीत होते हैं। ये बिन्दु यथार्थमें शुक्लमण्डलके दूसरी ओर पहली वृत्तिके बीचमें मेदकण संगृहीत होने पर उपस्थित होते हैं। अतः इस स्थितिको शुक्लमण्डलकी वृत्तिकी मेदापक्रान्ति ही कह सकेंगे।

उपचार—किसी उपचारसे लाभ नहीं होता। उपचारकी आवश्यकता भी नहीं है।

आ. युवावस्थामें उत्पन्न शुक्लमण्डल परिधिकी श्वेत अपारदर्शकता।

(Arcus Juvenilis)

ऊपर वृद्धावस्थामें उत्पन्न अपारदर्शकता दर्शायी, वैसीही अपारदर्शकता कितनेक व्यक्तियोंमें युवावस्थामें प्रतीत होती है। इसका प्रारम्भ किसी-किसी रोगीमें बाल्यावस्थासेही होने लगता है। सम्भवतः वह वंशागत होगी।

उपचार—किसी उपचारसे लाभ नहीं होता।

इ. शुक्लमण्डलकी प्राथमिक मेदापक्रान्ति।

(*Primary fatty degeneration ef Cornea*)

जब किसी-किसी रोगीके नेत्रमें भीतरके भागका प्रदाह, शुक्लमण्डलक्षत अथवा कक्ष हो, तब शुक्लमण्डलके गर्भ भागमें पीतचिह्न उपस्थित होते हैं। इन दागों का पाक नहीं होता, एवं इनसे रोगीको पीड़ा भी नहीं होती। ये दाग शुक्लमण्डलके गर्भ भागमें मेद संगृहीत होने पर होते हैं। यदि मध्यमें दाग हो तो दृष्टिमें बाधा पहुँचती है।

उपचार—कोई विशेष चिकित्सा नहीं है।

ई. मेदमय सफेदी।

(Pannus Degenerativus)

इस रोगका मुख्य स्वभाव यह है कि शुक्लमण्डलकी बाऊमेन वृत्ति (Bowman's membrane) में बहुसंख्य पिटिका निर्माण करता है। ये पिटिकाएं कुछ कालके पश्चात् फूटती हैं। फिर उस स्थान पर श्वेताभ या पीताभ द्रव्य उत्पन्न होता है, जो शुक्लमण्डल को अपारदर्शक बनाता है। यह रोग प्रायः जो आँख नीलामोतिया या तन्तुमय समूहके प्रदाहके हेतु से बिल्कुल चली गई हों, उनमें प्रतीत होता है। नेत्रकी परीक्षा करने पर जो आँख दृष्टिरहित होने पर भी जिनका शुक्लमण्डल स्वच्छ हो, उनमें पहले जलका बुदबुदा होता है। फिर श्वेताभ अपारदर्शकता आती है। रोगी को क्वचित् पीड़ा होती है, विशेषतः यह रोग वेदना रहित होता है।

उपचार—कुछ नहीं है।

उ. शुक्लमण्डलकी पट्टी सदृश अपारदर्शकता।

(Zonular opacity of Cornea)

यह व्याधि प्रायः वृद्धावस्थामें विशेष रूपसे होती है। नेत्र जब खुले हों तब ऊपर और नीचेके पलकोंके बीचके भागमें शुक्लमण्डलके जो हिस्से

रहते हैं, उन भागोंमें यह व्याधि होती है। प्रारम्भमें कुछ निस्तेजता भासती है। फिर शनैः-शनैः बढ़कर अपारदर्शकताकी सम्प्राप्ति होती है। क्वचित् शुक्लमण्डलके इस अपारदर्शक प्रान्तमें चूना सदृश पदार्थ निर्मित होता है। कभी नेत्रश्लेष्मावरणके उतनेही भागमें भी चूना सदृश द्रव्यका संग्रह होता है। दृष्टि शनैः-शनैः कम होती जाती है। यदि रोग अच्छी तरह बढ़ गया हो तो अंधकार, प्रकाश और हाथ चलाने की छायाके अतिरिक्त प्रतीति नहीं होती।

जैसे यह रोग स्वस्थ नेत्रोंमें होता है, वैसे उसकी अपेक्षा अधिकतर अधिमन्थ आदि रोगों से अंध नेत्रोंमें देखनेमें आता है।

उपचार—कोई विशेष चिकित्सा नहीं है। चूना सदृश द्रव्य विशेष संगृहीत हुआ हो और हो सके तो उसे निकाल देना चाहिये। पीला मलहम नेत्रमें डालें।

ऊ. रजतक्षारजन्य श्यामता।

(Argyrosis)

इसी प्रकरण में चित्र नं० ६९ देखें। जब कोई रोगी रोहे जैसे दीर्घकाल स्थायी रोगों के लिये सिल्वर नाइट्रेट, आर्जिरोल, प्रोटारगोल, सिल्वर आयोडाइड आदि रौप्यकी बनावटों का उपयोग लम्बे समय तक करता है, तब नेत्र श्लेष्मावरणमें, विशेषतः दोनों पुटोंमें और शुक्लमण्डल पर कालापन आजाता है। प्रारम्भ में वह बहुत कम होता है, अति सूक्ष्म दृष्टिसे देखने पर विदित होता है। फिर औषधप्रयोग चालू रहने से श्यामता धीरे-धीरे बढ़ती जाती है। एक समय आया हुआ कलौंस औषधप्रयोग छोड़ देने पर कुछ कम हो जाता है; किन्तु बिल्कुल दूर नहीं होता। जिन नेत्रवैद्योंने ऐसे कालेपन वाली आंख एक भी ठीक ध्यानपूर्वक देखी होगी, वे इस स्थिति को कभी भूल नहीं सकते। इतनाही नहीं, अन्य किसीभी रोगकी ऐसी आँख जब दृष्टिगोचर होगी, तब तत्काल रोगी को प्रश्न करेंगे 'आपने रौप्यक्षार की किसी औषध का प्रयोग दीर्घकाल पर्यन्त किया है' सर्वदा प्रत्युत्तर स्वीकृतिदर्शक ही मिलेगा।

इस विकृतिसे नेत्रका रंग खराब भासता है, इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे नेत्रको कुछ भी हानि नहीं पहुँचती। किसी उपचारसे यह श्यामता दूर नहीं होती।

ए. लोहभस्म जन्य शुक्लमण्डलकी पिङ्गलता।

(Siderosis Bulbi)

यह स्थिति दो कारणोंसे होती है। १. नेत्रगोलकमें लोहकण लम्बे समय तक पड़ा रहनेसे और २. जलमय रसके पूर्वखण्डमें रक्त लम्बे समय तक रह जानेसे; अर्थात् यह स्थिति लोहभस्म और रक्त, इन दोनोंसे प्राप्त होती है।

यदि नेत्रके भीतर लोहकण अवस्थित हो, तो उसमें से जंग उत्पन्न होकर वह शुक्लमण्डलके बीचके पर्त्तमें एक प्रकारका भूरा दाग उत्पन्न करता है। फिर वह दाग फैलता जाता है। यदि जलमय रस के पूर्वखण्डमें रक्त लम्बे समय तक वर्त्तमान हो तो समग्र खण्ड पिङ्गल द्रव्यसे भर जाता है। जब ऐसी स्थितिमें रोगी नेत्रवैद्यके पास आता है, तब अनेक बार निदान करना कठिन पड़ता है। यदि दृष्टिमणि स्थानच्युत होकर जलमय रसके पूर्वखण्डमें पड़ा रहता है, तो भी वैसा ही देखाव होता है। एक वर्ष पहले ऐसा एक रोगी मेरे पास आया था, पूर्ण जांच करनेपर भी सच्ची स्थिति का निर्णय नहीं हो सका। फिर अन्य मित्र-नेत्रवैद्योंका अभिप्राय लिया, तो भी दो मत हुए। किसीको जलमय रसके पूर्वखण्डमें दृष्टिमणि गिरनेका और अन्योंको रक्तस्रावका भास हुआ। रोगीको टेबलपर लिटा शुक्लमण्डल की परिधिमें काटकर जलमय रसके पूर्वखण्डको लवणजलसे धो देनेपर नेत्र बिल्कुल साफ होगया। इतना ही नहीं, जिस आंखमें दृष्टि नहीं थी, उसमें पूर्ण दृष्टि भी आगई।

यदि यह स्थिति लोहकण रह जानेसे उत्पन्न हुई हो, तो जब तक लोहकणको न निकाल दिया जायगा, तब तक नेत्रको भय माना जायगा। कारण, शुक्लमण्डलमें जिस तरह भूरापन आजाता है, कांचरूप रस और दृष्टिमणिमें उसी तरहका परिवर्त्तन हो जाय तो नेत्रको सदाके लिये हानि पहुँच जाती है।

उपचार—लोहकण हो तो उसे निकाल देना चाहिये। रक्त हो तो शुक्लमण्डलमें काटकर जलमय रसके पूर्व खण्डको धो देना चाहिये।

(६) शुक्लमण्डलका निःसरण।

(Staphyloma)

इस रोगके २ प्रकार हैं। अ. पूर्ण निःसरण—Staphyloma; आ. शंकाकार शुक्लमण्डल—Kerato conus—Conical cornea.

अ. शुक्लमण्डलका निःसरण ।
(Anterior Staphyloma)

शुक्लमण्डलके क्षतके वर्णनमें लिखा गया है कि व्रण गहरा और बृहद् हो तो फूटनेपर नेत्रके मध्यपटल आदि भाग बाहर आगे की ओर निकल आते हैं (चित्र नं० ८६) । यदि इन भागोंकी जांच की जाय, तो आगेके हिस्सेमें शुक्लमण्डलके समान, किन्तु कितनेक अंशमें अपारदर्शक आवरण प्रतीत होता है । उस झिल्लीकी मोटाईका आधार परिवर्त्तित भागोंपर है; अर्थात् इस निःसरणको लम्बा समय होगया हो और भीतरका दबाव कार्य करता ही हो, तो झिल्ली सूक्ष्म होती जाती है । भीतरका दबाव कम हो और वहिर्निःसरणको अधिक काल न हुआ हो, तो पर्त्त कुछ मोटा होता है । इस पर्त्तके पीछे कुछ जलमय रस रहता है । कभी-कभी जलमय रसका पूर्वखण्ड बिल्कुल रुक जाता है, जिससे उक्त पर्त्तके पीछे तारामण्डल चिपका हुआ होता है । उसके पीछे दृष्टिमणि होती है । दृष्टि-मणि प्रायः स्वस्थान से भ्रष्ट होकर आगे आयी हुई प्रतीत होती है । कभी-कभी वह सीधी नहीं रहती, ऊपर या नीचेका हिस्सा आगे झुक जाता है । आंखमें उत्पन्न शोथके हेतुसे तन्तुरूप समूह आदि भाग भी एक दूसरेको चिपक जाते हैं । काचरूपरसमें भी कुछ अंशमें अपारदर्शकता आजाती है ।

चित्र नं० ८६

नेत्रदर्पण प्रायः कितनेक अंशमें स्वस्थ रहता है; किन्तु नेत्रके भीतर के भागका शोथ विशेष परिमाणमें हो तो नेत्रदर्पण भी शोथमें फँस जाता है ।

नेत्रको खोलकर जांच की जाय तो नेत्रगोलकमें से छोटी द्राक्ष जैसा भाग निकला हुआ भासता है । कितनीक वार एक से अधिक द्राक्ष एक दूसरेको चिपकी हुई हों, ऐसा देखाव होता है । बहिर्निःसरण सब शुक्ल-मण्डलमें होता है या शुक्लमण्डलका कुछ हिस्सा ही उभड़ आता है । यदि यह व्याधि नयी ही हो तो नेत्रके भीतरके भागके शोथके हेतुसे शुक्लमण्डल की चारों ओर लाली देखनेमें आती है । एवं रोगीको कुछ अंशमें वेदना भी होती है । यदि शुक्लमण्डल का कुछ भाग स्वस्थ स्थितिमें हो और नेत्रके

भीतरके भाग शोथसे बच गये हों, तो कुछ दृष्टि रह जाती है। यदि यह रोग समस्त शुक्लमण्डलमें हो, या भीतरके भागोंका शोथ अच्छी तरह हो गया हो तो प्रकाश-अन्धकारके अतिरिक्त दृष्टिगोचर नहीं होता। यदि नेत्र-दर्पण स्वस्थ न हो तो उतनी दृष्टि भी नहीं रहती। प्रायः निस्सृत भाग शनैः-शनैः बढ़ता जाता है। कुछ कालमें पलक धारामे बाहर निकल आता है। उस स्थितिमें पहुँचनेके बाद बाहरमे हानि होनेकी संभावना अधिक रहती है। इतना ही नहीं, बल्कि निरन्तर खुला रहनेसे ऊपरकी त्वचा चेतनाहीन हो जाती है। कभी-कभी सामान्य चोट लगने पर या स्वयमेव वह भाग फूट जाता है। फिर भीतर आंख बैठ जाती है।

कारण—पहले लिखे अनुसार शुक्लमण्डलके क्षत यदि शुक्लमण्डल के अधिक भागमे हों और गहरे हों तो शुक्लमण्डलका जितना भाग गल जाता है, उतने भागमें जो द्रव्य व्रणसंरक्षक त्वचा रूपमे उपस्थित होता है वह शुक्लमण्डलके उपादानिक (मौलिक) द्रव्यका नहीं होता। अतः गले हुये शुक्लमण्डलके स्थान पर नूतन उत्पन्न भाग शुक्लमण्डलकी अपेक्षा अतिशय निर्बल होता है।

अधिमन्थ प्रकरणमें आगे समझाया जायगा कि, जलमयरस, दृष्टि-मणि और कांचरूप रस गोलकके भीतर प्रत्येक ओर दबाव डालते हैं। उस दबावको मांसपेशियां सहायता करती हैं, ये मांसपेशियां उस तरहसे रही हैं कि, उपरोक्त दबाव नेत्रके आगेकी ओर अधिक परिमाणमें होता है। इससे निर्बल भागको आगे ढकेल देता है। नूतन उत्पन्न भाग निर्बल होनेसे इस दबावको सहन नहीं कर सकता। इससे वह बाहर उभड़ आता है। इस उभड़े हुए भागमें तारामण्डल, दृष्टिमणि आदि अवयव फँस जाते हैं।

उपचार—यदि पतन अपूर्ण हो अर्थात् शुक्लमण्डलका कुछ अंश पार-दर्शक और स्वस्थ हो तो उस स्थान पर तारामण्डलका छेदन (Iridectomy) करने पर दृष्टिमें भी कुछ वृद्धि होती है और कुछ समयके लिये नेत्रान्तर दबावका भी ह्रास होता है। फिर शुक्लमण्डलमें उत्पन्न पदार्थको अधिक सबल बनानेका समय मिल जाता है। यदि निःसरण संपूर्ण हो, वेदना होती हो, या अति बढ़ा हुआ हो और दृष्टि न हो तो उसे काट देना चाहिये, अथवा गोलकको निकाल देना चाहिये। इस शस्त्रक्रियाका विवेचन आगे यथास्थान किया जायगा।

आ. शंकाकार शुक्लमण्डल।

(Conical Cornea Keratoconus)

इस व्याधि में (चित्र नं ८७ देखें) शुक्लमण्डलके बीचका भाग नोकके समान आगे बढ़ जाता है, और चारों ओरका भाग जो नैसर्गिक स्थितिमें कुछ चपटा गोल होता है, वह अधिक गोल बन जाता है। इस स्थितिकी प्राप्ति होने पर दृष्टिमें बहुत अन्तर होजाता है। कारण, चश्माके प्रकरणमें आगे समझाया जायगा, उस अनुसार दृष्टि किरण नेत्रदर्पण पर गिरकर स्पष्ट प्रतिमा नहीं डालता; किन्तु अस्पष्ट प्रतिमा उत्पन्न कराता है। अतः सब प्रतीत होते हैं किन्तु सब वस्तु मंद या विकृति आकार वाली भासती हैं। उसमें भी यदि मध्य भाग अपारदर्शक होगया हो, तो दृष्टि बहुत कम होजाती है, यह व्याधि विशेषतः युवावस्थाके प्रारम्भमें १५ से २० वर्षकी आयुमें शुरू होती है। फिर शनैः-शनैः बढ़ती जाती है। शुक्लमण्डलके मध्यभागकी जाँच बिना नोक वाली शलाकासे की जाय, तो विदित होगा कि, चारों ओरके भागसे वह अधिक संज्ञारहित है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर प्रकाशसे गिरती शुक्लमण्डलकी प्रतिमा मध्यभागकी अपेक्षा समीपके भागमें अधिकतर स्पष्ट दीखती है। एवं नेत्रदर्पणका देखाव भी आरोग्य स्थितिकी अपेक्षा भेदवाला भासता है।

चित्र नं० ८७

कारण—इस व्याधिका कारण शुक्लमण्डलकी गर्भवृत्तिकी जन्मसे ही निर्बल स्थिति होनेका माना जाता है। चाहे वह हो या किसी अन्य कारण से उस वृत्तिमें परिवर्त्तन होकर निर्बलता आजाती हो। इतना निश्चित है कि, शुक्लमण्डलका मध्य भाग निर्बल होने पर वह नेत्रगोलकके भीतरके दबावसे आगे निकल आता है। फिर ऊपर कहे अनुसार शुण्डाकार बन जाता है। प्रायः ऐसे शुक्लमण्डलमें इस रोगके परिणाममें व्रण या फफोले नहीं होते और वह नहीं फूटता। इतना ही नहीं, कुछ कालके पश्चात् शुक्लमण्डलमें होने वाला रूपान्तर रुक जाता है। प्रायः यह रोग दोनों नेत्रोंमें होता है। इसके अतिरिक्त शुक्लमण्डलके मध्य भागमें उत्पन्न क्षतके परिणाममें भी शुक्लमण्डलकी शुण्डाकार स्थिति हमने देखी है। किन्तु उसे उक्त रोग की अपेक्षा पृथक माननी पड़ेगी।

उपचार—यह रोग किसी प्रकार की औषध चिकित्सा से दूर नहीं होता। एवं शस्त्र चिकित्सासे भी नेत्र बिल्कुल आरोग्य नहीं हो सकता। फिर भी निम्न उपचारों से दृष्टि में कुछ अंशमें सुधार होता है।

१. *शुक्लमण्डलका वेधन*—इस चिकित्सार्थ पहले शुक्लमण्डलके मध्य भागमें से वेधन यन्त्र (Trephine) द्वारा गोल टुकड़ा काट दिया जाता है। इसके लिये आगे शस्त्र चिकित्सा प्रकरणमें लिख जायगा, उस अनुसार नेत्रको स्वच्छ कर फिर कोकेन डालकर चेतना रहित करें। नेत्र खोलने का यन्त्र चढ़ावें। फिर गोलक को स्थिर करनेके चिमटे द्वारा शुक्लमण्डलके निम्न भागमें नेत्रश्लेष्मावरणको पकड़ शुक्लमण्डलक मध्य भागमें अर्थात् शंकुके शिखर प्रदेश पर वेधन यन्त्र लगावें। (चित्र नं० २२७ देखें) उसे अंगुष्ठ और तर्जनी से पकड़ दो अंगुलियोंके बीचमें फिरानेसे थोड़ेही समयमें शुक्लमण्डलका भाग (गोल टुकड़ा) कट जाता है और भीतरस पूर्वखण्डमें अवस्थित जलमय रस बाहर निकल जाता है। फिर चिमटे और कमानी को निकालकर नेत्र पर पट्टी बांध देवें। रोज एट्रोपिन की बूंद डालते रहें। इस तरह किया हुआ घाव भर जाने पर तारामण्डलका छेदन किया जाता है। इससे दृष्टिमें सुधार होता है।

२. *शंकु के शिखर प्रान्तका दहन* (Couterization of the Apex of the cone)—यह क्रिया विद्युतसे तपाकर लाल किये हुए या स्पिरिटके दीपकसे तपाये हुए दंभक यंत्रसे हो सकती है। नेत्रको कमानी (Speculum) द्वारा खुला रख गोलकको चिमटे से पकड़ स्थिरकर तपाये हुए दंभक यन्त्र से शुक्लमण्डलके मध्यभाग (शंकुके शिखर प्रान्त) का दहन करें। इस क्रियाके करनेके पहले कोकैनकी बूँद डालकर नेत्रको चेतनाहीन बनावें। दहन क्रियाके परिणाममें उस स्थान पर एक छोटा स्वच्छ क्षत होगा, वह भर जाने पर उस स्थान पर कुछ समतल भाग उत्पन्न हो जायगा। इससे शंकुके स्थान पर वर्त्तुलाकार हो जायगा; किन्तु पारदर्शक शुक्लमण्डलके स्थान पर अपारदर्शक धब्बा रह जायगा। उस चिह्न के ऊपर रंग चढ़ा देने पर तथा शुक्लमण्डलके साफ भागके नीचेसे तारामण्डलका छेदन करने पर दृष्टिमें संतोषप्रद लाभ पहुँचेगा।

३. *शुक्लमण्डलका छेदन*—जिस तरह छिद्र और दहन क्रिया द्वारा शुक्लमण्डलके मध्यभाग का संकोच करा सकते हैं, उस तरह शस्त्र और कैंचीसे शुक्लमण्डलके मध्यभागका छेदन किया जाय, तो भी कितनेक अंश में वैसा ही परिणाम आता है।

उपद्रव—उक्त तीनों क्रियाओंमें मुख्य दो प्रकारके उपद्रव होनेकी

संभावना है। १. आंख अच्छी तरह स्वच्छ न हो; शस्त्रक्रियामें पूर्ण स्वच्छता न रक्खी हो; अथवा शस्त्रक्रियाके पश्चात् पूर्ण सम्हाल न रक्खी हो तो नेत्र पक जाता है। फिर अति अनिष्ट परिणाम आता है। नेत्रगोलक का विद्रधि हो जाता है अथवा शुक्लमण्डल पककर नेत्रमें शोथ आजाता है। परिणाममें दृष्टि सुधारके स्थानमें जो थोड़ी बहुत हो वह भी नष्ट होजाती है। २. शुक्लमण्डलमें छेद होनेपर उसमें तारामण्डल फँस जाता है। परिणाममें कनीनिका नष्ट होकर अधिमन्थ उपस्थित होता है।

४. *शंकु शिखर पर बड़ी सुईसे काट*—इस चिकित्सामें शुक्लमण्डलके मध्यमें ५-७ काट दिये जाते हैं। ये काट पूर्वखण्ड तक नहीं पहुंचते। इससे जलमय रस बाहर नहीं निकलता।

उपर्युक्त शस्त्र क्रियाएं केवल अधिक बढ़े हुए रोगोंमें की जाती हैं। यदि रोग प्रारम्भावस्थामें ही हो और मामूली हो तो चश्मेके उपयोगसे दृष्टि में सुधार करा सकते हैं।

चश्माके प्रकरणमें आगे समझाया जायगा, उस अनुसार लघु दृष्टि में गोलक पूर्व पश्चिम (आगे से पीछेकी ओर) अधिक वर्त्तुलाकार बनता है। शुक्लमण्डलकी शंकाकार स्थितिमें भी वही स्थिति होती है। फिर जो आँख ठीक आरोग्य हो वह लघु दृष्टिवाली बन जाती है। इसके लिये योग्य चश्मेका उपयोग करनेपर दृष्टिमें लाभ पहुँचता है। कितनेक समय दृष्टि-संकोचक कांच (Stenopaeic disc) के उपयोगसे कुछ समयके लिये सहायता मिल जाती है। कभी इसरीनकी बूंद डालकर पट्टी बांधने और वह उपचार दीर्घकाल पर्यन्त करते रहनेपर कुछ अंशमें लाभ पहुच जाता है।

(७) शुक्लमण्डलगत अर्बुद।

(*Tumours of Cornea*)

शुक्लमण्डलमें बहुधा ग्रन्थियां नहीं होतीं, ऐसा कहें तो वह असत्य नहीं है। जो ग्रन्थियां शुक्लमण्डलपर फैलती प्रतीत होती हैं, वे प्रायः शुक्लमण्डल और नेत्रवाह्यपटलके संधि स्थानमें उत्पन्न होकर शुक्लमण्डल पर आक्रमण करती हैं। इन ग्रन्थियोंमें मुख्य त्वचा मय अर्बुद (Dermoids), तिल (Nevus), मांसार्बुद (Sarcoma) और उत्तान-स्तरिकाके कर्कस्फोट (Epithelioma) हैं। नेत्रगोलकके भीतर जो ग्रन्थियां वातनाड़ी ग्रन्थि (Glioma), मांसार्बुद (Sarcoma) आदि जब विशेष वृद्धि पाते हैं, तब शुक्लमण्डल तक पहुँचकर उसे भी नष्ट कर देते हैं।

बारहवां प्रकरण ।

नेत्रबाह्यपटल के रोग ।

(Diseases of Sclera)

नेत्ररचना में पहले लिखा गया है कि शुक्लमण्डल नेत्र बाह्यपटल का ही एक भाग है। किन्तु शुक्लमण्डल पारदर्शक और नेत्र बाह्यपटल अपारदर्शक है। शेष रचना दोनों की कितनेक अंश में समान है। रोग-ग्रस्त होने में ये दोनों भाग एक दूसरे से बिल्कुल पृथक् होते हैं। गत प्रकरण के विवेचन पर से विदित होगा कि शुक्लमण्डल में अनेक व्याधि होती हैं। एवं क्षत के लिये तो शुक्लमण्डल ठेकेदार ही हो, ऐसा भासता है। नेत्र बाह्यपटल के लिये स्थिति बिल्कुल इसके विपरीत ही है; अर्थात् नेत्र बाह्यपटल में क्वचित् ही रोग उत्पन्न होता है। नेत्रबाह्यपटल में क्षत तो लगभग प्रतीत नहीं होता। एवं इस पटल की प्रदाहात्मक व्याधि भी बहुत कम हैं। इसका क्या कारण है, ऐसा स्वाभाविक प्रश्न होता है। मुख्य कारण निम्नानुसार हैं:—

१. शुक्लमण्डल लगभग रक्तरहित है। उसका पोषण केवल प्रवाही द्वारा होता है। अतः कोई कारण यदि बड़ा न हो तो भी विशेषतः बाल्यावस्था और वृद्धावस्थामें शुक्लमण्डल के पोषण में न्यूनता हो जाती है। फिर पोषण कम मिलने पर या बिल्कुल न मिलने पर वह भाग बिल्कुल क्षतमय बन जाता है। इसके विपरीत नेत्रबाह्यपटल को धमनियों द्वारा पोषण मिलता है। इससे उसमें क्षत होने की संभावना बहुत कम है।

२. शुक्लमण्डलकी बाह्यवृत्ति अति सूक्ष्म और कोमल है। इससे उसे हानि पहुँचने में देर नहीं लगती। नेत्र बाह्यपटल की स्थिति इससे भिन्न है। इतना ही नहीं, बाह्यपटल पर श्लेष्मावरण का आच्छादन भी रहा है। इससे उसका अच्छी तरह रक्षण होता है।

३. नेत्रबाह्यपटल शुक्लमण्डल की अपेक्षा मोटा और दृढ़ है।

इस पटल में प्रदाहजन्य रोग केवल दो ही प्रकार के होते हैं।

१. उत्तान प्रदाह—Episcleritis.

२. गम्भीर प्रदाह—Scleritis–Deep scleritis.

इनके अतिरिक्त आगन्तुक व्यथा, प्रलम्बन और अर्बुद, ये विकार भी कभी-कभी उपस्थित होते हैं। इन सबका क्रमशः वर्णन करते हैं।

१. नेत्रबाह्यपटल का उत्तानप्रदाह।

(Episcleritis)

चित्र नं० ५६ प्रकरण ९ में देखें। यह रोग अति क्वचित् ही होता है। बालक और युवकों की अपेक्षा प्रौढ़ों को अधिक होता है।

कारण—मुख्य कारण आमवात, वातरक्त, फिरंग, क्षय, कण्ठमाल आदि रोग माने गये हैं।

लक्षण और चिह्न—शुक्लमण्डल के किनारेसे कुछ दूर नेत्र बाह्यपटल में नीलाभ रक्त दाग हो जाता है। उस स्थान का श्लेष्मावरण भी रक्त हो जाता है। बाह्यपटल और श्लेष्मावरण की लाली में भेद रहता है। प्रायः नेत्र में से स्राव या चिपचिपा पदार्थ नहीं निकलता। बहुधा पीड़ा भी नहीं होती। कभी कुछ वेदना होती है। दाग कुछ उभड़ा हुआ होता है; ४–५ या अधिक सप्ताह चलकर फिर शनैः-शनैः घटने लगता है; और उभाड़ भी कम होता जाता है। कितनीक बार नेत्रश्लेष्मावरण में कुछ गड्ढा सा हो जाता है; लाल दाग के स्थान पर राख जैसा या नीलाभ दाग रह जाता है; तथा उस स्थान पर नेत्रश्लेष्मावरण अनेक बार चिपक जाता है। यह रोग एक स्थान में शमन होकर उसके पास में फिर आक्रमण करता रहता है। इस तरह कितनेक मास या वर्षों तक पुनरावृत्ति होती है। अन्त में नूतन आक्रमण बन्द होने पर जीर्ण दाग भी दूर हो जाते हैं और रोग का अन्त आता है।

यह रोग प्रायः दोनों चक्षुओं में होता है। रोग दीर्घकाल स्थायी है, ऐसी सूचना रोगी को पहले से ही कर देनी चाहिये। अन्यथा रोगी चिकित्सक और चिकित्सा से उपराम हो जाता है। उसे दृढ़ता-पूर्वक सूचित कर दें कि, इस रोग से दृष्टि को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचेगी। एवं उक्त दागों में कभी क्षत भी नहीं होता। रोग लम्बे समय तक रहने के अतिरिक्त कुछ भी हानि नहीं होगी।

उपचार—इस रोग के कारण रूप जो-जो रोग कहे, उनमें से जो व्याधि हो, उसके अनुरूप उपचार करना चाहिये। आमवात हो तो सोडा सेलिसिलास, एस्पिरिन, लिथिया सेलिसिलस, बाई कार्बोनेट ऑफ पोटास, आयोडाइड ऑफ पोटास आदि। वातरक्त हो तो पोटास आयोडाइड,

कोलचिकम आदि। फिरंग हो तो पारद कृति और पोटास आयोडाइड। क्षय या कण्ठमाल जैसी व्याधि हो तो कॉडलिवर आइल, सिरपफेरी आयोडाइड आदि का प्रयोग हितकारक है।

स्थानिक चिकित्सा—अति पीड़ा हो तो नेत्र बाह्यकोणमें २-४ जलौंका लगवाकर रक्त निकलवा देने से कुछ शान्ति मिलती है। पीले मलहम का अञ्जन कर हल्के हाथ से मर्दन करने पर लाभ पहुँचता है। कितनीक बार डायोनीन भी अच्छा लाभ पहुँचाता है। बोरिक धावन के प्रवाही या अफीम की डोंडियों का सेक करने पर अच्छी तरह शान्ति मिलती है।

२. नेत्रबाह्यपटलका गम्भीर प्रदाह।

(*Deep Scleritis*)

ऊपर लिखा है कि बाह्य पटल का उत्तान प्रदाह प्रौढ़ावस्थामें होता है। इसके विपरीत यह रोग प्रायः युवावस्था में होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिकतर होता है।

लक्षण और चिह्न—अनेक बार इस रोगके लक्षण प्रारम्भ में स्पष्ट विदित नहीं होते। कितनेक समय उत्तान प्रदाहके समान नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे कृष्णाभ रक्त या नीलाभ रक्त दाग होजाता है। ये दाग कुछ समय के पश्चात् दूर होजाते हैं। फिर राख जैसे रंगका दाँग रह जाता है। इस रोग का सच्चा स्वरूप इसके पश्चात् ही प्रकाशित होता है। बाह्य प्रदाह में जिस तरह आंख पुनः स्वस्थ होजाती है, उस तरह इस रोग में नहीं होती। दाग जहाँ रहगया हो, वहाँ पर बाह्यपटलका शोष होकर कृश और पतला होजाता है। यह पतला होनेकी क्रिया शुक्लमण्डलकी परिधिके समीपके भागमें होती है; या उससे दूर के भाग में होती है। यदि परिधि के पास में होती है, तो प्रायः सब गोल भागमें फैलती है। बाह्यपटल पतला होनेपर इस तरह देखाव होजाता है कि, जिस तरह पतले चीनी के बरतन को प्रकाश में रखने पर उसमेंसे दृष्टि दूसरी ओर जाती है। इसके अतिरिक्त बाह्यपटल उस स्थान में निर्बल होने से नेत्रान्तर प्रवाही के दबाव से उभड़ने लगता है। फिर शुक्लमण्डल के चारों ओर का समग्र भाग पतला होकर शुक्लमण्डल सह सबभाग उभड़ कर गोलक को अधिक लम्बगोल बना देता है या शुक्लमण्डल से दूर प्रान्त में यह विक्रिया हुई हो तो एक या एकाधिक उभड़ी ग्रन्थियां देखने में आती हैं। फिर निम्नस्थ मध्य पटल काला होने के हेतु से ये ग्रन्थियाँ श्याम भासती हैं। कितनीक बार तो इन ग्रन्थियों के हेतु से इस रोग का परिचय मिलता है। एवं जब रोग उपशम होता है। तब उत्तान

प्रदाह के समान नेत्रको स्वस्थ नहीं रखता, किन्तु शुक्लमण्डल, तारामण्डल, तन्तुमयसमूह और मध्यपटल को व्याधिग्रस्त बना देता है।

शुक्लमण्डल की भीतर की वृत्ति में अपारदर्शकता आने लगती है; अर्थात् गहरे फूले उत्पन्न होने लगते हैं। वे प्रायः शुक्लमण्डल के मध्य भाग में होते हैं। इससे दृष्टि को काफी हानि पहुँचती है। क्वचित् शुक्लमण्डलमें गहरे व्रण होते हैं; किन्तु जलमय रसके पूर्व खण्ड में कदापि पूय नहीं होता।

सारा शुक्लमण्डल उभड़ जाने से दृष्टि दिन-प्रति-दिन घटती जाती है। इस तरह दृष्टि को अच्छी तरह हानि पहुँच जाती है।

तारामण्डलका चिरकारी प्रदाह होने पर वह प्रायः दृष्टिमणि के आवरण के साथ चिपक जाता है। एवं अनेक बार कनीनिका बिल्कुल बन्द होजाती है। परिणाम में अधिमन्थ, कांचबिन्दु आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

नेत्रमध्य पटल को भी चिरकारी प्रदाह की संप्राप्ति होती है। एवं कांच रूप रसमें भी अपारदर्शकता उत्पन्न होती है।

कारण—क्षय, फिरंग, वातरक्त और मासिक धर्म की विकृति जन्य अनियमितता आदि मुख्य कारण माने गये हैं।

परिणाम—उपर्युक्त लक्षण और क्रम पर लक्ष्य देने पर स्पष्ट अवगत होता है कि, यह रोग अनेक वर्षों पर्यन्त रहता है। प्रायः यह दोनों नेत्रोंमें होता है; एवं यह नेत्रके भीतर के अवयवों को हानि पहुँचाने वाला होनेसे दृष्टि शनैः-शनैः मंद होती जाती है; और कभी-कभी पूर्ण अन्धत्व की प्राप्ति होजाती है।

उपचार—इस रोग की निश्चित चिकित्सा नहीं है, ऐसा कह सकेंगे। देह में क्षय, कण्ठमाल आदि जो व्याधि हो उसके अनुरूप उपचार करना चाहिये। यह रोग स्त्रियों को अधिक होने से इसका सम्बन्ध मासिक धर्मके साथ होने की कल्पना होती है। यदि ऐसा निर्णय हो तो लोह, बीजाबोल, एलवा आदि मिली हुई औषधियां देनी चाहिये।

तारामण्डल का प्रदाह प्रतीत हो, हो तारामण्डल की चिकित्सा में लिखे अनुसार एट्रोपिन आदि औषधोंका प्रयोग करें। यदि शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता से दृष्टि में बहुत अन्तराय होता हो या नेत्रगोलक अधिक कठिन होगया हो तो शस्त्रक्रिया द्वारा तारामण्डल का छेदन करने पर अच्छा लाभ पहुँचता है।

पहले प्रकरण में लिखा है कि, नेत्रश्लेष्मावरण और बाह्यपटल के बीच में कुछ मृदु और रुई के सदृश पदार्थ अवस्थित है। उस पदार्थ में भी कभी शोथ होजाता है, तब बाह्यपटल प्रदाह से मिलते-जुलते लक्षण उपस्थित होते हैं। उस स्थिति को पृथक् करने के लिये उनके मुख्य दो लक्षणों को ध्यान में रखना पड़ता है। १. नेत्रश्लेष्मावरण भी लाल होजाता है; २. रोग बारम्बार आक्रमण करता है, और जिस स्थान पर हुआ हो वहाँ ही पुनः होता है। कितनेक आक्रमणों के पश्चात् अन्त में दूर होजाता है। नेत्र को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचती।

३. नेत्रबाह्यपटलकी आगन्तुक व्यथा।

(*Injuries of the Sclera*)

नेत्रबाह्यपटलको व्यथा पहुँचनेके मुख्य २ संभवित निम्न कारण हैं:—

(१) नेत्र खुले रहने या बन्द होने पर गोलक पर कुछ कठिन जड़ पदार्थ गड़ जाना, या ऐसे पदार्थ पर नेत्रगोलकका लग जाना। अनेक बार जल्दी उठने लगे उस समय गृहके पदार्थ-किवाड़, खिड़की, खूँटी आदिके साथ नेत्रगोलक बलपूर्वक लग जाता है। इसके अतिरिक्त गौ, भैंस आदि पशुओंसे सम्बन्ध वाले ग्रामीण लोगोंको कभी पशुका शिर, या लात लगने से नेत्रको चोट पहुँचती है। ऐसे समय पर कभी नेत्रबाह्यपटल किसी स्थानसे फट जाता है। यद्यपि ईश्वरने नेत्ररचना करनेके समय पर कितनीक रक्षा योजना भी की है, तथापि ऐसा आघात बार-बार होता रहता है। नेत्रगोलकके जिस भाग पर चोट पहुँचती है उस, भागमें प्रायः फाट नहीं होती, किन्तु उसके सामनेके भागमें होती है।

(२) धार वाले या नोकदार शस्त्रसे भी गोलकको व्यथा होती है। इस प्रकारकी व्यथामें बन्दूककी गोली, तोपके गोले फटकर उछलने वाले छर्रे आदिके आघातका भी समावेश करना चाहिये। तोपके गोले फटकर होने वाली व्यथा गत दो महायुद्धोंके पहले अति कचित् प्रतीत होती थी। पशु का सींग गड़ जाने पर भी इसी प्रकारकी व्यथा होजाती है।

उक्त व्यथाकी गम्भीरताका आधार मुख्यतः निम्न स्थितियों पर अवलम्बित है :—

अ. चोट वाले भागका श्लेष्मावरण टूट गया है या नहीं ?

आ. जिस शस्त्र आदिसे घाव लगा हो वह स्वच्छ है या संक्रामक कीटाणुसे दूषित है ?

इ. नेत्रश्लेष्मावरणके अतिरिक्त नीचे रहे हुए तारामण्डल, तन्तुरूप समूह या मध्यपटल आदिको हानि पहुँची है या नहीं ? उक्त अवयवोंमें से कोई भी अवयव या काँचरूप रस घावमें से बाहर निकला है या नहीं ? यदि बाहर निकल आया हो तो घावमें फँसा है या नहीं ?

ई. बाह्य पटलमें होने वाला चीरा आड़ा है या खड़ा ?

उ. गोलकके भीतर या घावके भीतर कुछ बाह्य पदार्थ रह गया है या नहीं ?

अ. घात स्थानमें श्लेष्मावरणकी विदीर्णता—धारवाला या नोकदार शस्त्र लग जाने पर नेत्रश्लेष्मावरण टूट जाता है; किन्तु धार रहित जड़ पदार्थ के लगने पर श्लेष्मावरण कभी टूट जाता है और कभी नहीं टूटता। श्लेष्मावरण न फटा हो तो उससे बड़ा लाभ यह होता है कि बाहरकी वायु एवं प्रदाहोत्पादक कीटाणु गोलकके भीतर नहीं जा सकते। इससे नेत्र-पाकका भय कम रहता है; और आँखके बच जानेकी आशा रख सकते हैं।

आ. कीटाणुओंसे दूषित घाव—इस बात पर विशेष लक्ष्य देना चाहिये। यदि स्वच्छ हो तो बाह्य पटलमें होने वाला घाव थोड़ेही दिनोंमें भर जाता है। फिर गोलक और दृष्टिको महत्वकी हानि नहीं पहुँचती। उदा०—अधिमन्थ और कांचबिन्दुके लिये विविध प्रकारकी शस्त्रक्रिया की जाती है, वे हेतुपूर्वक किये हुये घाव हैं। इनमें शस्त्र विशुद्ध होनेसे नेत्रको हानि नहीं पहुँचती। किन्तु जब घाव मैले गंदे शस्त्र आदिसे होता है, तब उसका परिणाम बहुत विपरीत आता है। अशुद्ध शस्त्र द्वारा प्रदाहकारक कीटाणुओंका प्रवेश होता है। एक समय कीटाणुओंका प्रवेश होने पर उन कीटाणुओंके पोषण और वंशवर्द्धनके लिये सब प्रकारकी सुविधा गोलकके भीतर मिल जाती है।

जिन विद्यार्थियोंने कीटाणु शास्त्रका अभ्यास न किया हो और इस सम्बन्धका ज्ञान न हो उनको समझानेके लिये रोगोत्पादक कीटाणुओंका प्रवेश होनेके पश्चात् वृद्धिके लिये क्या-क्या सुविधाएं चाहिये, यह दर्शाते हैं। कीटाणुओंकी वृद्धिके लिये मुख्य दो साधनोंकी आवश्यकता रहती है। १. मानव देह की उष्णता है, लगभग उतनी उष्णता; २. कीटाणुओंके पोषणार्थ सेन्द्रिय (Organic) तत्त्वोंका अस्तित्व विचार करने पर सहज विदित होगा कि गोलकके भीतर ये दोनों सुविधाएं पूर्णरूपमें मिल जाती हैं। गोलकमें उष्णता लगभग शारीरिक उत्तापके समान रहती है और काँचरूप रस जैसा प्रवाही सेन्द्रिय द्रव्योंसे पूर्ण है, जिससे कीटाणुओंको आवश्यक पदार्थ मिल जाता है। एवं नेत्रगोलकके अवयव अधिक कोमल होनेसे उन

पर प्रदाहका अभाव शीघ्र होजाता है। इस प्रदाह जन्य शोथके तीन प्रकार हैं—A. सामान्य प्रदाह; B. तीव्र प्रदाह; C. नेत्रविद्रधि।

A. सामान्य प्रदाह—यदि कीटाणु कम परिमाणमें प्रवेशित हुए हों या प्रवेशित कीटाणु अति हानिकर जातिके न हों, या रोगी युवा और स्वस्थ होनेसे गोलकमें रही हुई रोग निरोधक शक्ति कीटाणुओं से बचाव कर सकती हो तो शोथ सामान्य आता है।

लक्षण और चिह्न—घाव स्थानमें सामान्य वेदना और लाली होती है। तारामण्डलका प्रदाह होने पर कनीनिकाका आकुंचन तथा तन्तुरूप समूह का कुछ शोथ होता है। दृष्टिमणिके आवरणको हानि पहुंचने पर २४ घण्टे के भीतर गोलकका वह भाग अपारदर्शक होने लगता है। फिर व्यथाजन्य कांचबिन्दु होने लगता है। कांचरूप रसके भीतर नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर काले-काले धब्बे भासते हैं। ये धब्बे शोथजनित उत्पन्न पदार्थ हैं। उससे कांचरूप रसमें कुछ अपारदर्शकता आजाती है। कभी जलमय रसके पूर्वखण्डमें एवं कांचरूप रसमें रक्तस्राव होता है। पूर्वखण्डमें रक्तस्राव होनेपर सरलतासे विदित होता है। क्योंकि, इस खण्डमें पूय होने पर जिस तरह शुक्लमण्डलका कुछ भाग सफेद भासता है, उस तरह रक्तस्राव होने पर लाली आजाती है। अधिक रक्तस्राव होने पर कनीनिकाकी प्रतीति नहीं होती। कांचरूप रसमें हुआ रक्तस्राव नेत्रदर्शक यन्त्रसे अवगत होता है। उक्त यन्त्रसे गोलकपर दीपकका प्रकाश डालनेसे रक्तस्राव होनेपर भीतरसे अति लाल रंगका प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह शोथ योग्य उपचार करते रहने पर कुछ दिनोंमें शमन हो जाता है। फिर शोथजनित सब चिह्न अदृश्य होकर चक्षु और दृष्टि मूल स्थितिमें आजाते हैं।

B. तीव्र प्रदाह के लक्षण—शोथ प्रबल हो तो सौम्य प्रकारके सब लक्षण या कितनेक लक्षण अधिक तीव्र होते हैं। गोलकमें असह्य वेदना, ऊपरके पलकका शोथ, भ्रूभागमें भी तीव्र शूल, दृष्टिका ह्रास, नेत्रमें लाली, तारामण्डल और कनीनिका निस्तेज भासना, अतिशय वेदनाके हेतुसे निद्रानाश और कुछ अंशमें ज्वर रहना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं और उक्त लक्षण शनैः-शनैः मृदु होते हैं; किन्तु गोलक भी शिथिल होकर सूखने लगता है। कभी-कभी इस प्रकारके प्रदाहके परिणाममें दूसरी ओरकी स्वस्थ आँख भी प्रदाहपीड़ित होजाती है। फिर उसमें भी उपरोक्त चिह्न प्रकाशित होते हैं और वह भी चली जाती है।

C. नेत्र विद्रधि (Panophthalmitis) – प्रकरण १३ में चित्र नं० ९६ और ९७ देखें। नेत्रमें लगा हुआ शस्त्र पूयोत्पादक कीटाणुओं

से दूषित हो, या रोगीके नेत्रमें पूर्वजन्य कीटाणुओं या अश्रुवाशयप्रदाह अथवा नाकशूल के हेतुसे चक्षु पूयमय रहता हो अथवा रोगी अस्वस्थ होने से गोलक कीटाणुओंके आक्रमणसे अपना रक्षण करनेमें असमर्थ हो, तो गोलकका पाक होने लगता है ।

लक्षण और चिह्न—उपरोक्त तीव्र प्रदाहके सब लक्षण प्रतीत होते हैं। असह्य वेदना, गोलक अति लाल होकर सूज जाना, पलक पर अति शोथ और शुक्लमण्डल निस्तेज होजाना, आदि चिह्न प्रकाशित होते हैं। ऐसी स्थिति कुछ दिनों तक रहकर घाव स्थान या अन्य भागमें विद्रधि फूटता है। पूय निकल जाने पर सब लक्षण शनैः-शनैः कम होते हैं। बहुधा शुक्लमण्डल गल जाता है और गोलक सूख जाता है; अथवा आँख बैठ जाती है। पाठकों को आश्चर्य होगा किन्तु अनेक नेत्रवैद्योंका अनुभव है कि इस प्रकारके प्रदाहमें अन्य स्वस्थ नेत्रका प्रदाह कभी नहीं होता। उपर्युक्त सौम्य और तीव्र प्रदाह में जिस तरह उपद्रव रूपसे स्वस्थ नेत्रका प्रदाह होकर दृष्टि बन्द होजानेका डर रहता है, वैसा डर इस प्रकारके पूयप्रदाहमें नहीं है।

इ. तारामण्डल आदि की हानि—नेत्रश्लेष्मावरणके अतिरिक्त भीतर अवस्थित तारामण्डल, तन्तुसमूह, नेत्रमध्यपटल, कांचरूपरस और दृष्टि-मणिको भी कभी आघात पहुंच जाता है। यदि इनमेंसे किसीको हानि न पहुँची हो, केवल नेत्रश्लेष्मावरणको हानि हुई हो, तो स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी मानी जाती है। बाह्यपटलमें हुआ घाव बहुत कम गम्भीर माना जाता है; वह प्रायः भर जाता है या कुछ शोथ आकर थोड़े ही दिनोंमें शान्त हो जाता है।

यदि घाव आंखके आगे के हिस्सेमें अर्थात् शुक्लमण्डलकी परिधिसे थोड़ी दूरी पर हो, तो उसमेंसे तारामण्डल या तन्तुसमूह बाहर निकल आनेकी संभावना है। यदि घाव पीछेके भागमें हो तो मध्यपटलका भाग बाहर निकल आता है। वह भाग यथा स्थान बैठ जाता हो या नेत्रवैद्य अपनी कुशलतासे भीतर बैठादें, तो नेत्रको विशेष हानि नहीं पहुँचती। अन्यथा विविध प्रकारकी हानि पहुंचती है। यदि तारामण्डल बाहर निक-लकर घावमें चिपक जाय तो कनीनिका घाव स्थानकी ओर आकर्षित होती है। एवं तारामण्डलका अधिकांश बाहर निकल गया हो तो कनीनिका बिल्कुल बन्द होजाती है। इतना ही नहीं, तारामण्डलका प्रदाह (आशुकारी या चिरकारी) उस समय या कुछ समयके पश्चात् होने लगता है। परि-णाममें कनीनिका बन्द होजाती है; या नीचे रहे हुए दृष्टिमणिके आवरणके

साथ चिपककर उपद्रवात्मक अधिमन्थ (Secondary Glaucoma) उत्पन्न करती है। फिर अन्तमें दृष्टि नष्ट हो जाती है।

यदि तन्तुसमूह घावमें से बाहर निकल आया हो, तो भी उपर्युक्त स्थितिकी संप्राप्ति होती है। यदि मध्यपटल बाहर निकल आता है, तो किसी भी समय नेत्रके भीतर शोथ होनेका डर है। इतना ही नहीं, नेत्रदर्पण-विच्छेद (Detachment of the Retina) या नेत्रदर्पणका शोष (Atrophy of the Retina) होनेका भय रहता है।

ई. बाह्यपटलके चीरे—बाह्यपटलके तन्तुओंकी रचना इस तरह की है कि, उसमें पड़ा हुआ चीरा खड़ा हो अर्थात् शुक्लमण्डल परिधिसे गोलककी पिछली ओर एक पंक्ति खिंचें, उस पंक्तिके अनुसार चीरा हो, तो वह अधिक चौड़ा नहीं होता। किन्तु चीरा आड़ा हो तो अधिक चौड़ा होता है। इसमें उसमेंसे भीतरके अवयव और कांचरूप रस जैसे प्रवाहीके बाहर निकलनेकी संभावना अधिक रहती है। इसके अतिरिक्त बाहरकी वायु और कीटाणुओं के प्रवेशका भय भी बना रहता है।

उ. गोलक या घावमें रहे हुए बाह्य पदार्थ—घाव होनेपर बाह्य पदार्थ भीतर रहा है या नहीं, यह नेत्रवैद्यको निर्णय करना चाहिये। यदि बाह्य पदार्थ रह जाता है तो जल्दी या देरसे प्रदाह हुए बिना नहीं रहता। इतना ही नहीं, खास अपवादके अतिरिक्त वह प्रदाह ऊपर कहे हुए A और B (सौम्य या तीव्र) प्रकार धारण करता है। इससे दूसरी स्वस्थ आंखको भी हानि पहुँचनेका भय रहता है। अतः इसका निर्णय अति शीघ्र सम्हाल पूर्वक करना चाहिये।

बाह्य पदार्थ जलमयरसके पूर्वखण्डमें हो तो वह अति सरलतासे विदित होजाता है; किन्तु वह काँचरूपरसमें या गोलकके भीतरके किसी भागमें घुस गया हो तो वह भीतर है या नहीं, यह निर्णय अति कठिनतासे होता है। यदि बाह्यपदार्थ किसी धातुका बना हो तो उसके निर्णय के लिये क्ष किरण (X Ray) यन्त्र अति उपयोगी होता है। इस यंत्रसे धातु की किरचको देख सकते हैं, एवं किस स्थानपर है, इसका पूरा निर्णय हो जाता है। क्ष किरण यन्त्रकी परीक्षा विधि कठिन होनेसे यहाँ नहीं दी।

उपचार—चिकित्साके प्रारम्भमें दो प्रश्न उपस्थित होते हैं। १. गोलक में बाह्य पदार्थ है या नहीं? २. जिस शस्त्र आदिसे घाव हुआ है वह स्वच्छ है या नहीं? यदि बाह्यपदार्थ न रहा हो और स्वच्छ शस्त्रसे घाव हुआ हो, तो नेत्रको पारद धावन, बोरिक धावन या सायानाइडके प्रवाहीसे धो देवें। भीतरका कोई भी भाग बाहर निकल आया हो तो योग्य शस्त्रसे भीतर बैठा

देवें। इस क्रियाके समय आंखको विशेष हानि न हो, यह सम्हालना चाहिये। फिर श्लेष्मावरण टूटा हो तो निर्जन्तुक सुई-डोरेसे टांके लगा लेवें। कितनेक नेत्रवैद्य सिलाई नहीं करते; और कई एक सिलाई कर लेना विशेष हितकर मानते हैं। हमारे मत अनुसार सिलाई करनेमें किसी भी प्रकारकी हानि नहीं है, बल्कि अच्छी सहायता मिल जाती है। होसके और नेत्रवैद्य कुशल हो तो बाह्य पटलमें भी १–२ या आवश्यकतानुसार अधिक टांके लगालें।

यदि तारामण्डल बाहर निकल आया हो, फिर उसे भीतर बैठाया हो तो एक दो दिन तक इसरीनकी बूंद डालते रहना चाहिये। फिर उसपर शोथ आजाय तो एट्रोपीनकी बूंदकी आवश्यकता रहती है। यदि मध्यपटल का हिस्सा बाहर निकल आया हो, तो उसे भीतर बैठानेके पश्चात् और बाह्य पटलमें टांके लगानेके पश्चात् विशेष उपचारकी आवश्यकता नहीं रहती। यदि जलमय रसके पूर्व खण्डमें या कांचरूप रसमें रक्तस्राव प्रतीत हो तो, तारामण्डलका प्रदाह न होनेके लिये एट्रोपीन और मक्युरोक्रोमकी बूंदका प्रयोग करें। फिर नेत्रपर गोज और रुईका फोहा रखकर पट्टी बाँध देवे। हो सके तब तक रोगीको ४–५ दिन तक पलंगपर लिटाये रखना चाहिये।

भीतर बाह्य पदार्थ न हो किन्तु मलिन शस्त्रसे घाव हुआ हो, तो भी बाहर निकले हुए भागको भीतर बैठा कर ऊपर लिखे अनुसार टांके लगा लेवें। फिर कुछ शोथ तो आवेगा ही; किन्तु उसके लिये योग्य उपचार पहलेसे प्रारम्भ कर देवें। शोथ कम हो तो एट्रोपीनकी बूंद दिनमें २ बार डालें। प्रत्येक बार २ से ४ बार २–२ मिनिटके अन्तर पर डालें। साथमें १-१ बूंद डायोनिन और मक्युरोक्रोमकी डालनेसे अच्छा लाभ पहुंचता है। नेत्र पर बोरिक धावनका सेक करें। बद्ध न रहे, इसका विशेष सम्हाल रक्खें। पारद मिश्रण और सोडा सेलिसिलस जैसी प्रदाहहर औषध पीनेके लिये देवें। इस तरह का उपचार, शोथ शमन हो जाय, तब तक करते रहना चाहिये।

यदि शोथ दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाय अथवा नेत्रके भीतर पूयोत्पत्ति होजाय और रोगीको प्रकाश दीखना बन्द होजाय, तो फिर प्रश्न उत्पन्न होता है कि, गोलकको रहने देना या नहीं? नेत्रवैद्योंकी सलाह गोलकको निकाल देनेकी है, ऐसा जानने पर प्रायः रोगीको आघात पहुंचता है और अति नाराजी दर्शाता है। उस समय नेत्रवैद्य पर गम्भीर जवाबदारी आती है। प्रकाशकी अप्रतीति होने और नेत्रमें अति शोथ आने पर गोलकको

रहने देनेसे कुछ काल तक रोगीको नेत्र रह जानेकी भ्रान्ति हो, परन्तु विशेष लाभ नहीं होता। ऐसे प्रकारके गोलक महिनों तक दुःख देकर अन्तमें उसका शोषण होजाता है। जिस कुरूपताके भयसे नेत्र निकलवानेमें रोगी विरोध करता है, वही स्थिति भविष्यमें उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त दूसरी जो स्वस्थ आंख हो, उसमें भी क्वचित् शोथ पहुँच जाता है। फिर उसके नाशका और आजीवन पूर्ण अंधेपनका भय भी रहता है। अतः रोगी को भावी आपत्तिका बोध करा देना चाहिये।

गोलकको निकालनेकी क्रिया आगे दी जायगी। गोलक निकालने पर वेदना भी शीघ्र शमन होजाती है। ऐसी स्थिति सर्वदा नहीं होती। सामान्यतः योग्य उपचारसे नेत्रशोथ कम होजाता है और मंद हुई दृष्टि पुनः बढ़ जाती है।

यदि बाह्य पदार्थ नेत्रके भीतर रह गया हो तो क्या करना चाहिये, यह प्रश्न नेत्रवैद्यके लिये विचारणीय है। बाह्य पदार्थ बहुधा अस्वच्छ होता है। केवल अति गरम हुई बन्दूक की गोली या छर्रे या तोपके गोलेके टुकड़े प्रायः स्वच्छ होते हैं। अतः बाह्य पदार्थ भीतर जाने पर न्यूनाधिक शोथ आता ही है। बाह्य पदार्थ जलमय रसके पूर्वखण्डमें हो तो सरलतासे दीखता है और उसे निम्न विधिसे निकालनेमें भी विशेष कष्ट नहीं होता।

जलमय रसके पूर्वखण्डकी शस्त्रचिकित्सा—शुक्लमण्डलमें से पूर्वखण्ड का भेदन करनेके लिये त्रिकोणाकार केराटोम (Keratome) शस्त्र आता है (चित्र नं० १०० देखें)। उसे पूर्वखण्डमें प्रवेश करावें। छेद होनेपर योग्य चिमटेसे बाह्य पदार्थको खेंच लेवें।

सूचना—बाह्य पदार्थको पकड़ने पर तारामण्डल या दृष्टिमणिका आवरण न पकड़ा जाय, इस बातका सम्हाल रक्खें।

कितनीक बार त्रिकोणाकार शस्त्रको बाह्य पदार्थके पीछे लेना पड़ता है। फिर उस शस्त्र पर बाह्य पदार्थको टिकाकर अति कुशलतासे बाहर निकालना पड़ता है।

यदि बाह्य पदार्थ कांचरूप रसके भीतर हो और वह किसी धातु निर्मित न हो, तो नेत्रके भीतर है या नहीं, इस बातके निर्णयार्थ नेत्रदर्शक यन्त्रके अतिरिक्त अन्य साधन नहीं है। यदि विजातीय द्रव्य किस स्थानमें है यह निर्णय होजाय तो शुक्लमण्डलकी परिधिसे कुछ दूर (तन्तु रूप-समूहको छोड़) नेत्र बाह्यपटलमें छेद करें। फिर छेद मार्गसे योग्य चिमटा फैलाकर उसे निकाल लेनेका प्रयत्न करें। स्मरण रक्खें कि, इस शस्त्र क्रिया करने पर नेत्रबाह्यपटल, मध्यपटल और नेत्रदर्पण छेदन किया जाता है; तथा

कांचरूप रस तक शस्त्र पहुँचता है। इससे नेत्रमें कुछ रक्तस्राव तो होगा ही। एवं छेदन मार्गसे कांचरूप रस भी कुछ अंशमें बाहर निकलेगा ही। अतः नेत्रको कुछ अंशमें अधिक हानि पहुँचेगी ही; फिर भी बाह्य पदार्थको गोलकके भीतर रखनेमें जो भय रहता है उसकी अपेक्षा इस क्रियामें हानि कम है। अन्य शब्दोंमें कहें, तो नेत्रके भीतर किसी भी विजातीय द्रव्यको रहने देना, वह लगभग नेत्रको गँवानेके समान है।

यदि बाह्य पदार्थ कहाँ हैं यह निर्णित न होता हो, तो उसकी शोधके लिये नेत्रमें शस्त्र चलाना, यह हितकर नहीं माना जायगा। ऐसे समय पर कुछ दिनों तक राह देखनी चाहिये। यदि बाह्य पदार्थ से प्रदाह की उत्पत्ति न होती हो, या प्रदाह कम परिणाम में हो तो आंख बचने की कुछ अंशमें आशा रख सकते हैं। ऐसे नेत्रों में भविष्य में शोथ का भय रहता है। यदि शोथ प्रारम्भ होजाय और दिन-प्रति-दिन बढ़ता जाय, प्रकाश की प्रतीति दूर होजाय तो श्रेष्ठ मार्ग यही माना जायगा कि नेत्रगोलकको शीघ्र निकाल देना। ये सब कथन धातु से अन्य पदार्थों के लिये है।

यदि बाह्य पदार्थ लोहे का बना हुआ हो तो वह कहाँ है, इसके निर्णय का विवेचन पहले किया गया है। लोह किस कहाँ है, यह निर्णय जिस तरह सरलता पूर्वक होता है, उस तरह उसे सरलता से बाहर निकालने का साधन—बड़ा लोह चुम्बक कुशल नेत्रवैद्यों ने तैयार किया है। यह चुम्बक छोटे लोह चुम्बकों की दृष्टिसे अति वृहत् और अति प्रबल है। इस हेतु से इसे 'राक्षसी' चुम्बक नाम दिया है। यह लोह चुम्बक बिजली की सहायता से कार्य करता है। इससे छोटे ग्राम और छोटे शहरों में बहुधा कम ही मिलता है। इस यन्त्र का चित्र नं० ४५ पहले दिया गया है। इसका प्रयोग निम्नानुसार किया जाता है :—

राक्षसी चुम्बक—चित्र में एक लकड़ी की चौकी है। उसके नीचे तारके २ सिरे भासते हैं। इन दिनों सिरों को विद्युत्प्रवाह के स्थान पर लगाया जाता है। पास में एक दस्ता है। उसे फिराने पर विद्युत्प्रवाह चालू या बन्द किया जाता है। ऊपर दो नोक वाले भाग रहते हैं।

रोगी को योग्य कुर्सी पर बैठा आंख खुली रखवा शुक्लमण्डल के मध्य में नोकदार भाग रक्खें। उस नोक को नेत्र के बिल्कुल समीप लगा देने की आवश्यकता नहीं है। कुछ दूर होने पर चुम्बक अपना कार्य कर सकेगा। एट्रोपिन या कोकेन डालकर कनीनिका प्रसारित करें। यन्त्र व्यवस्थित होने पर दस्ते को फिराकर विद्युत्प्रवाह चालू करें जिससे नोकदार भाग जो पहले सामान्य लोह था, वह प्रबल लोहचुम्बक बन जाता है।

वह नेत्रगत लोहपदार्थ को कनीनिका द्वारा बाहर खींचकर जलमयरसके पूर्वखण्डमें ला देता है। फिर चुम्बक क्रिया बन्द करें और रोगी को तख्त पर लिटा शुक्लमण्डल में छेद कर जलमय रसमें से बाह्य पदार्थ को निकाल लेवें। कभी-कभी बाह्य पदार्थ कनीनिका में से नहीं आता। तारामण्डल और दृष्टिमणिका भेदन करके आनेका प्रयत्न करता है। ऐसे समय पर कुशल नेत्रवैद्य बाह्यपदार्थ को भिन्न-भिन्न दिशा में फिरा नेत्र के अवयवों को हो सके उतनी कम हानि पहुँचे उस तरह फिरा कर निकाल लेता है। यह क्रिया चुम्बक को भिन्न-भिन्न स्थानों पर लगा बाह्य पदार्थ की गति पर दृष्टि रखकर की जाती है।

यदि बाह्य पदार्थ किसी तरह न निकल सके, नेत्रमें शोथ आने लगे और फिर शोथ भयंकर बढ़ने लगे, तो नेत्र को निकाल देने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। बाह्य पदार्थ से उत्पन्न शोथ और नेत्रबाह्यपटल में हुए घाव के हेतु से गोलक को कब निकाल देना चाहिये और किस स्थिति में रक्खा जाता है, यह विषय अति महत्त्व का होने से पाठकों और कम अनुभवी चिकित्सकों को पुनः उसके नियम स्पष्ट समझाये जाते हैं।

१. जो घाव बाह्य पटल में हो, भीतर नेत्रगोलक के अवयव बाहर न निकले हों, या निकले हों तो यथा स्थान बैठाये हों, तो नेत्रको बचनेकी आशा रख कर राह देखनी चाहिये।
२. बाह्यपटलका घाव अधिक गहरा हो, जिस शस्त्रसे घाव हुआ हो वह स्वच्छ होनेका निर्णय न होता हो, भीतरके भाग बाहर आये हों या न हों, किन्तु शोथका आरम्भ होगया हो, तो कुछ दिनों तक प्रतीक्षा करनी चाहिये।
३. शोथ सामान्य हो और दृष्टि कुछ अंशमें रही हो, तो सुधरने की आशा रखनी चाहिये।
४. शोथ प्रबल हो और प्रकाश-प्रतीति न हो तो नेत्र को निकाल देना चाहिये।
५. बाह्य पदार्थ रह गया हो और फिर शोथका प्रारम्भ हो चुका हो तो नेत्र को निकाल देना ही श्रेयस्कर माना जायगा।
६. किसी भी संयोगमें प्रकाश दीखना बन्द हो गया हो तथा वेदना होती हो, तो चक्षुको निकाल देना ही चाहिये।

नेत्र निकालने की शस्त्रक्रिया—नेत्रकी सामान्य शस्त्र चिकित्सामें केवल नेत्रको चेतनाहीन बनाने पर कार्य चल जाता है, वैसा इसमें नहीं चल सकता। इस शस्त्र चिकित्सामें रोगी को प्रायः क्लोरोफार्म या इथर

सुंघाकर बेहोश किया जता है; किन्तु कितनेक नेत्रवैद्य नोवोकेन और एड्रीनेलिनके प्रवाहीका अन्तःक्षेपण गोलकके मूलमें एवं नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे और गोलक के पीछे करके शस्त्रक्रिया करते हैं। एवं पार्क डेविस कम्पनी की एपोथिसिन (Apothesine) नामक चेतनाहर औषधका उपयोग करते हैं। फिरभी सुविधा हो तो क्लोरोफार्म या इथर देना विशेष अच्छा माना जायगा। रोगी को बेहोश कर नेत्र खुला रखनेकी कमानी लगा देवें। फिर समग्र गोलकको पारद धावन या सायानाइड ऑफ मर्क्युरीके प्रवाहीसे अच्छी तरह धो देवें। शस्त्रवैद्य और सहायक वैद्य, दोनों अपने हाथों को अच्छी तरह धो, फिर जन्तुघ्न धावनसे धोकर विशुद्ध करके शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करें।

नेत्रको स्थिर रखनेके चिमटेसे शुक्लमण्डलकी परिधिके पास श्लेष्मावरणको पकड़, मुड़ी हुई कैंची (Conjunctival scissors—चित्र नं० ८८ ग्रन्थ के अंत में देखें) से काट करें। फिर उस काटके भीतर कैंचीके एक पत्रको प्रवेश करा परिधिके चारों ओर छेद करें; अर्थात् परिधिके भागके इर्दगिर्द श्लेष्मावरणमें सब ओरसे छेद करें। फिर मांशपेशीको पकड़नेके अंकुश (Strabismus-चिपटा आंकड़ा-चित्र नं० ८९) को उक्त छेदमें प्रवेश करा प्रत्येक पेशीको अंकुश पर लाते रहें और काटते रहें। पहले प्रकरण में ६ पेशी कही हैं, उन सबको काट देवें। इससे गोलक सब ओरसे मुक्त होता है। केवल दर्शननाड़ीके साथ नेत्रगृहमें सम्बन्ध रहेगा। फिर बन्द की हुई बड़ी कैंची (गोलकको निकाल देनेकी कैंची-Enucleation scissors—चित्र नं० ९० ग्रन्थके अन्तमें देखें) द्वारा गोलकको चारों ओरसे पूर्णांशमें मुक्त करें। फिर नेत्रश्लेष्मावरणका जो थोड़ा सा हिस्सा शुक्लमण्डलको चिपका हो उसे शुक्लमण्डलके भीतरके भागमें अर्थात् नाककी ओरके भागमें चिमटेसे पकड़कर समग्र गोलकको भीतरके भागमें फिरावें; तथा बन्द की हुई कैंचीको बाहरकी ओर से गोलकके पीछे प्रवेश करावें। फिर ऊपर-नीचे भीतर-बाहर फिराने पर दर्शननाड़ी मिल जायगी। उनको स्पर्शशक्तिकी सहायतासे कैंचीके दोनों पत्रोंके भीतर लेकर गोलक से जितनी दूर हो सके उतने दूर काट देवें। दर्शननाड़ी कटने पर गोलक बिल्कुल मुक्त होकर बाहर निकल आयगा।

चित्र नं० ८९–चिपटा आंकड़ा।
(Flat Strabismus Hook).

शस्त्रक्रियाके समय पहले रक्तस्राव सामान्य होता था, वह दर्शननाड़ी करने पर प्रबल होजाता है उसे देखकर नूतन शस्त्रवैद्य कदाच घबरा भी जायगा; किन्तु उसमें भय कुछ भी नहीं है। कुछ लिएटके टुकड़ेको नेत्र-गोलक निकालने पर हुए गड्ढे में दबा कर रखने या कुछ अधिक गरम किये हुये पारद धावनसे गड्ढेको धो देने पर रुधिरका प्रवाह बन्द होजाता है। फिर जांच की जायगी तो कटे हुये नेत्रश्लेष्मावरण का आकार बटुएके खुले हुए मुंह जैसा भासता है। बटुएके मुंहमें से जिस तरह डोरा निकाला होता है उसी तरह इस बटुएके मुँहमें से डोरा चारों ओरसे निकाल लेवें और फिर डोरेके सिरेको खींचें तो बटुएके समान इस थैलीका मुँह भी बन्द होजाता है। इस तरह बन्द कर दोनों सिरोंको गांठ लगादें और शेष डोरेको कैंचीसे काट दें। गोलकके बाहरका नेत्रश्लेष्मावरणका भाग थैलीके भीतर मोड़ देवें। फिर शस्त्रक्रिया लगभग समाप्त होती है। पश्चात् नेत्रगृहको धावनसे धोकर साफ करें और मर्क्युरोकोमकी बूंद डाल गोज और रुई रखकर पट्टी बांध देवें।

आगेकी परिचर्या—रोगीको बेहोश किया हो तो ५-१० मिनिटमें रोगी शुद्धि पर आनेके पश्चात् कुछ पीड़ा १-२ घण्टे तक होती है। इसके अतिरिक्त रोगीको अन्य प्रतिबन्ध नहीं होता। पहले २४ घण्टे तक रोगीको एकही स्थान पर लिटा रखें, फिर पट्टीको बदल देवें। कदाच कुछ रक्तस्राव या पूय निकला हो तो उसमें पट्टी बिगड़ती है। फिर दूसरी पट्टी ४-५ दिन तक निकालनी नहीं पड़ती। इस समय के भीतर घाव बिल्कुल भर जाता है और रोगी स्वस्थ होजाता है। लगभग १॥ मासके पश्चात् आँख सहन कर सके तो कांचका गोलक बैठा देवें। इससे कुरूपता कम हो जायगी।

उपद्रव—इस शस्त्रक्रियामें मुख्य तीन आपत्तियां हैं (इनके अतिरिक्त क्लोरोफार्म और इथरके नस्यजनित हानिका भय तो है ही)। तीन आपत्तियों में पहला उपद्रव रक्तस्राव है, यह अति सामान्य है। यदि धमनियां स्वस्थ न हों या रक्त निर्दोष न हो, तो रक्तस्राव अत्यधिक परिमाणमें होता है।

दूसरी आपत्ति घाव पकने की है। यदि सम्हाल रखनेमें न्यूनता हो या कुछ दुर्लक्ष्य होजाय अथवा शस्त्र, चिकित्सकके हाथ और रोगीकी स्वच्छता में कसर रहजाय तो घाव पक जानेका भय है। घाव पक जाय तो कुछ दिनों तक अधिक महलम पट्टी करने पर घाव भरता है।

तीसरी सबसे महत्वकी आपत्ति यह है कि मस्तिष्कावरणका प्रदाह (Meningitis) होना, यह आपत्ति क्वचित् ही आती है। नेत्रगोलक निकालने पर मस्तिष्कावरणका प्रदाह होकर रोगीकी मृत्यु होजाती है,

ऐसा उदाहरण बननेका पढ़नेमें तो आया है; किन्तु मेरे ४० वर्षके अनुभवमें ऐसा एक भी उदाहरण नहीं मिला। अतः यह डर अति क्वचित् ही माना जायगा।

४. नेत्रबाह्यपटलका प्रलम्बन।

(Ectasiae of the Sclera–Staphyloma of Sclera)

नेत्ररचना प्रकरणमें पहले लिखा है कि, नेत्रबाह्यपटल दृढ़, श्वेत और चिकना है। आगेकी अपेक्षा पीछेका हिस्सा अधिक मोटा है। पिछली ओर मोटाई १ मिली. (⅕ इञ्च), मध्य में '४ से '५ मिली० तथा मांस-पेशियां लगी हैं वहां पर '३ मिली० जितनी है। इस तरह जहाँ-जहाँ पेशियाँ लगी हैं, वहाँ-वहाँ पर मोटाई कम होती है। एवं जहाँ-जहाँ से धमनियां मध्यपटलमें प्रवेश करती हैं, वहां पर वह निर्बल बनता है। पिछली ओर जहां दर्शनतन्तु प्रवेश करते हैं, वहां पर चालनी जैसा बन जाता है। इस वर्णन पर से यह विदित हुआ होगा कि, पेशियोंके चिपकनेके स्थान, रक्त-वाहिनियोंके प्रवेशस्थान तथा चालनी पटलके भागमें बाह्यपटल निर्बल है। यह पटल अन्य पटलोंकी अपेक्षा बाह्य होनेसे इसे नेत्रान्तर दबाव सबसे अधिक सहन करना पड़ता है। यदि वह दबाव किसी कारणसे बढ़ जाय अथवा बाह्यपटल निर्बल बने तब वह झुकता जाता है। यह प्रलम्बन प्रायः उक्त निर्बल भागोंमें ही होता है और शनैः-शनैः अति लम्ब जाता है। ये प्रलम्बन भिन्न-भिन्न भागोंमें होनेसे स्थानके अनुरूप सबको भिन्न-भिन्न संज्ञा दी गई है। इन प्रलम्बनोंमें से मुख्य २ प्रकार हैं। १. पूर्ण; २. आंशिक।

पूर्ण प्रलम्बन—इस प्रकारकी स्थिति विशेषतः छोटे बच्चोंमें ही होती है। कारण, छोटी आयुमें बाह्यपटल स्थितिस्थापक तत्व प्रधान रहता है। इससे किसी रोगके हेतुसे नेत्रस्थ प्रवाहीका दबाव बढ़ जाय तो परिणाममें सारा गोलक बढ़ने लगता है। उस अवस्थाको पूर्ण प्रलम्बन, नयन जलोदर और बाल अधिमन्थ (Total stophyloma of Sclerotic, Hydrophthalmos or Buphthalmos) कहते हैं। इस स्थितिका विशेष वर्णन अधिमन्थ प्रकरणमें किया जायगा।

आंशिक प्रलम्बन (Partial Staphyloma of Sclera)—इसके ३ उपविभाग हैं। १. पूर्वस्थ; २. मध्यस्थ; ३. पश्चिमस्थ।

पूर्वस्थ प्रलम्बन (Anterior Staphyloma)—यह शुक्लमण्डल और नेत्रबाह्यपटलके संगम स्थानमें होता है। प्रारम्भमें शुक्लमण्डलके बाहरके

हिस्सेमें छोटे-छोटे, उभड़े हुए काले दाग प्रतीत होते हैं। फिर जैसे-जैसे समय जाता है वैसे-वैसे दाग अधिक मोटे होते जाते हैं और एक दूसरेसे मिल जाते हैं। अन्तमें शुक्लमण्डलके चारों ओर काले रंगका उभड़ा हुआ प्रलम्बन प्रतीत होता है।

कारण—इस रोगकी उत्पत्तिका का एक ही कारण अनुषंगी अधिमन्थ विकार है। जब कनीनिका धारा दृष्टिमणि के आवरण को पूर्णांश में चिपक जाती है, तब अनुषंगी अधिमंथ होजाता है। इस तरह बढ़े हुए नेत्रान्तर दबाव के परिणाम में शुक्लमण्डल के चारों ओर का नेत्रबाह्यपटलका हिस्सा अधिक निर्बल होने पर वह पतला होता जाता है। अन्त में वह उभड़ आता है।

उपचार—एट्रोपिन या अन्य कनीनिका प्रसारक औषध से अथवा पीछे लिखे हुए कनीनिका प्रसारक उपायों से कनीनिका का प्रसारण होसके तो कनीनिका का बन्धन टूट जायगा। फिर अनुषगी अधिमथ दूर होजायगा; किन्तु ऐसा क्वचित् ही होता है। औषधोपचार निष्फल होने पर तारा-मण्डल (Iridectomy) करें। इस शस्त्र चिकित्सा का वर्णन शस्त्र चिकित्सा प्रकरण में लिखा जायगा।

मध्यस्थ प्रलम्बन (Equatorial Staphyloma)—इस प्रकार की स्थिति मांसपेशियोंके चिपकने के स्थान में अथवा जहाँ से बड़ी धमनियां प्रवेश करती है, वहां पर होती हैं। इनमें से पहली जातिको पूर्वमध्यस्थ (Ciliary) और दूसरी जाति को पश्चिम मध्यस्थ (Equatorial) कहते हैं। ये दो प्रकार के प्रलम्बन प्रायः अधिमन्थ में और वे भी अति दीर्घकाल पर्यन्त उपचार न करने वाले रोगियों में प्रतीत होते हैं। इस प्रकार के प्रलम्बन बाह्यपटल के कितनीक जाति के गम्भीर प्रदाह में भी हो जाते हैं।

उपचार—तारामण्डल का छेदन करने पर कदाच इन प्रलम्बों का अवरोध हो सके।

पश्चिम मध्यस्थ प्रलम्बन (Posterior Staphyloma)—प्रकरण १३ में चित्र नं० ९१ देखें। इस प्रलम्बन के दो प्रकार हैं। १. अधिदृग् बिम्बिय खात; और २. ह्रस्वदृष्टि जन्य प्रलम्बन।

अधिदृग् बिम्बिय खात (Cupping of the optic disc)—अर्थात् दर्शननाड़ी के सिरे पर प्याली आकार का खड्डा होना। यह अधिमन्थ के रोगियों की आँखों में प्रतीत होता है। यह विकार नेत्रान्तर दबाववृद्धि के हेतु से दर्शननाड़ी का सिरा पिछली ओर ढकेल जाने पर होता है।

ह्रस्व दृष्टिजन्य पश्चिम प्रलम्बन (Myopic Posterior staphyloma)—यह केवल अति छोटी दृष्टि वाली आंखों में उत्पन्न होता है। इस अवस्था में गोलकके भीतर का दबाव नहीं बढ़ता, किन्तु ह्रस्व दृष्टि विकृति अधिक बढ़कर गोलक को अधिक लम्बा बना देती है, गोलक लम्बा होने पर बाह्यपटल पतला बनता है, उसका असर अधिक से अधिक दर्शननाड़ी के सिरे के चारों ओर के चालनी पटल (Lamina Cribrose) पर होता है; जिससे वह भाग गड्ढे जैसा बनकर दब जाता है।

उपचार—इस अवस्था को दूर करने के लिये चिकित्सामें अधिक सफलता नहीं मिलती। वर्तमान में ह्रस्व दृष्टि के लिये बाह्यपटल में से २ मिली० चौड़ाईका एक टुकड़ा काट देने की शस्त्र चिकित्सा के प्रयोग का प्रारम्भ में विशेषतः वियेना (Vienna) के चिकित्सकों ने किया है; किन्तु उससे बहुत कम रोगियों को लाभ मिला है।

५. नेत्रबाह्यपटल के अर्बुद।

(Tumours of the Sclera)

नेत्रबाह्यपटल में अर्बुद पीड़ित रोगी क्वचित् ही प्रतीत होता है। यदि ग्रन्थि प्रतीत होती है, तो वह गोलक के अन्य भाग में होनेवाली ग्रन्थियों के उपद्रव रूप से बाह्यपटल पर आक्रमण करती है। ऐसे रोगी तो मिल जाते हैं।

चि० ९३, पृ० ४०२ —तारामण्डलप्रदाह (वाम चक्षु में)

चि० ९४ पृ० ४२४
तारामण्डलमें उपदंशज ग्रन्थि।

चि० ९५, पृ० ४०४
तारामण्डल और तन्तुसमूहप्रदाह
(शुक्लमण्डलमे सूक्ष्म बिन्दु)

चित्र० ९६, पृ० ३८७
नेत्रगोलकमे पूयप्रदाह।

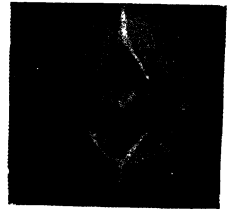

चि० ९७. पृ० ३८७
नेत्रगोलकमें पूयप्रदाह।

चित्रफलक नं० १०

चि० १२४, पृ० ५१५
आशुकारी अंधमन्थ।

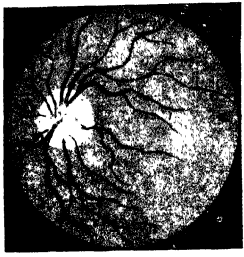

चि० १२५, पृ० ५१६
दर्शननाड़ीके सिरेकी सम्न स्थिति।

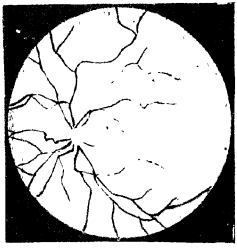

चि० १२६, पृ० ५४४
नेत्रदर्पणकी मध्य धमनीका अवरोध।

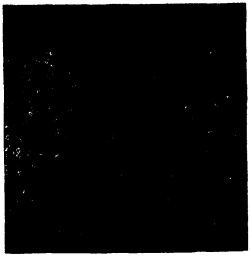

चि० १२७, पृ० ५४७
नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ शिराका रोध

तेरहवां प्रकरण ।

तारामण्डल और तन्तुमयसमूह के रोग ।

(Diseases of Iris and Ciliary body)

तारामण्डल की अनारोग्य स्थिति निम्नानुसार है :—

जन्मलब्ध न्यूनता–Congenital Anomalies of Iris.

अ. कनीनिका आवरण रह जाना–Persistent Pupillary membrane.

आ. तारामण्डलमें जन्मजात छिद्र–Congenital coloboma of Iris.

इ. तारामण्डल का अभाव–Aniridia.

ई. कनीनिका का स्थानान्तर–Ectopia Pupillae.

उ. कनीनिका की कृष्णधारा का बाहर मुड़ जाना–Ectropion uveae

ऊ. एकाधिक कनीनिका–Polycoria.

ए. पिङ्गल तारामण्डल–Albinic Iris.

२. तारामण्डल प्रदाह–Iritis; तन्तुमय समूह का प्रदाह–Cyclitis; और उभय का प्रदाह–Iridocyclitis.

३. तारामण्डल की आगन्तुक व्यथा–Injuries of the Iris.

४. तारामण्डल के अर्बुद–Tumours of the Iris.

१. जन्मलब्ध न्यूनता ।

(*Congenital Anomalies of Iris*)

अ. कनीनिका के आवरण का अस्तित्व ।

(Persistent Pupillary membrane)

गर्भावस्थाके समय में बालक की कनीनिका में एक सफेद भूरे रंगका आवरण होता है । यह आवरण गर्भावस्थाके ५वें मास में पूर्ण होता है । ७वें मास के भीतर अदृश्य होने लगता है । ८ वें मास में बिल्कुल लुप्त हो जाता है । नैसर्गिक रीति से बालक के जन्म के समय कनीनिका में आवरण का किञ्चित् अंश भी नहीं रहना चाहिये । क्वचित किसी-किसी बच्चे के नेत्रों

में यह झिल्ली कुछ अंश में शेष रह जाती है। यदि पूर्ण रूप से हो तो सारी कनीनिका भूरे रंगके आवरणसे आच्छादित होती है, यह आवरण कनीनिका के अतिरिक्त तारामण्डल के पर्दे के ऊपर भी कितनीक दूर तक प्रतीत होता है। आगे कहा जायगा, उस अनुसार तारामण्डल के तीव्र प्रदाह क हेतु से कनीनिका पर इसी प्रकार की झिल्ली बन जाती है, उसे कनीनिका आच्छादन (Occlusion Pupillae) संज्ञा दी है, उस झिल्ली का देखाव भी अवशेष आवरण से मिलता ही होता है। किन्तु इतना अन्तर होता है कि, प्रदाहके परिणाममें उत्पन्न झिल्ली कनीनिका के भाग में ही होती है। इसके अतिरिक्त तारामण्डल के अन्य भाग पर नहीं होती। जन्मजात आवरण कनीनिका पर एवं तारामण्डल के कुछ भाग पर भी भूरे रंग के पर्त रूपसे प्रतीत होता है।

कितनीक बार अवशेष आवरण पूरा नहीं होता, कुछ भाग ही रह जाता है। ऐसी स्थिति में कनीनिका पर कितनीक भूरे रंग की रेखाएं भासती हैं, अथवा दृष्टिमणिके आवरण पर बिखरे हुए भूरे रंगके बिन्दु दीखते हैं।

विशेषतः जन्म होने के थोड़े ही दिनों में यह आवरण अदृश्य हो जाता है। यदि नष्ट न हो तो डायोनिन और एट्रोपीन की बून्द डालने से उसको शोषण हो जाता है। यदि औषधप्रयोग से शोषण न हो तो अस्त्र-चिकित्सा का आश्रय लेना पड़ता है।

आ. तारामण्डल में जन्मलब्ध छिद्र।

(Congenital Coloboma of the Iris)

इस स्थिति में तारामण्डल पूर्ण होने के बदले में उसमें एक छिद्र (चित्र नं० ९२) भासता है। यह छिद्र सर्वदा तारामण्डल के निम्न प्रान्तमें होता है। यह छिद्र पृथक् नहीं होता, किंतु कनीनिकाके साथ मिलकर एक होजाता है। इससे कनीनिका गोल नहीं रहती, ऊपरका हिस्सा अधिक चौड़ा रहता है

चित्र नं० ९२

और जैसे-जैसे शुक्लमण्डलकी निम्नधाराकी ओर जाय, वैसे-वैसे छिद्र संकुचित होता है। इस छिद्रका आकार कुछ औंधे अमरूदके समान होता है। इस छिद्र के किनारे के बाहर संकोचक पेशी रहती है। इस हेतु से उस बृहद् कनीनिका में संकोच क्रिया भासती है। प्रायः जिस नेत्रमें तारामण्डल का छिद्र हो, उसी नेत्रमें नेत्रमध्यपटल और तन्तुमय समूह में भी छिद्र होते हैं। नेत्रमध्यपटल का छिद्र नेत्रदर्शक यन्त्र से देख सकते हैं।

क्वचित् दृष्टिमणिमें भी कुछ न्यूनता रह जाती है। इस स्थिति वाले अनेक रोगियों की कनीनिका का देखाव उपरोक्त होता है; किन्तु किसी-किसी रोगी में तारामण्डल के छिद्र का आकार ताले में चाबी डालने के छिद्र से मिलता है।

उपचार—यह स्थिति जन्मसिद्ध हो तो उसके लिये कोई भी उपचार सफल नहीं होता।

इ. तारामण्डल का अभाव।

(Aniridia—Iridermia)

किसी-किसी बालक में जन्म से ही तारामण्डल का बिल्कुल अभाव रहता है, केवल अन्त के किनारे में कुछ तारामण्डल का चिह्न भासता है। यह स्थिति जिस गोलक में हो, उसमें शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता और अपूर्ण कांचबिन्दु भी होते हैं।

ई. कनीनिकाका स्थलान्तर।

(Ectopia Pupillae)

नैसर्गिक रीतिसे प्रत्येक चक्षुमें कनीनिका करीब मध्यमें ही होती है। बिल्कुल स्वस्थ चक्षुमें भी कनीनिका मध्य से किंचित भीतरके हिस्सेमें होती है। किन्तु कितनेक बच्चों की पुतली जन्मके समय मध्यमें नहीं होती, एक ओर होती है। एवं किसी-किसी बालकमें तो कनीनिका दूर तारामण्डलके किनारेके पास होती है।

उ. कनीनिका कृष्णधाराका बाह्यावर्तन।

(Ectropion Uveae)

कनीनिकाका पिछला पर्त्त, जो रंजित अणुओंसे बना है, वह सामान्यतः कनीनिकाके किनारे तक पहुंचता है। जन्मलब्ध न्यूनता होने पर यह पर्त कनीनिकाके किनारेके बाहर मुड़ जाता है। फिर न्यूनाधिक परिमाणमें कनीनिकाकी सतह पर मुड़ा हुई प्रतीत होता है।

ऊ. अनेक कनीनिका।

(Polycoria)

कितनेक बालकोंके नेत्रमें एक कनीनिकाके बदलेमें दो या तीन कनीनिकाएँ होती हैं। ऐसा अति क्वचित् बनता है। फिर भी ऐसे अनेक कनीनिका वाले बच्चोंकी यादी करने योग्य संख्या भिन्न-भिन्न नेत्रवैद्योंने देखी है।

ए. पिङ्गल तारामण्डल।
(Albinic Iris)

जो व्यक्ति भूरे ही जन्मे हों, उनके नेत्रके तारामण्डलका रंग भूरा ही होता है। इतना ही नहीं, बल्कि उस तारामण्डलके पीछे लाल प्रकाशकी योजना की हो, ऐसा देखाव होता है। जिन नेत्रवैद्यने एक बार भूरे मनुष्य की आँखकी जाँच की होगी, वे किसी भी समयमें उस स्थितिको भूल नहीं सकते।

२. तारामण्डल और तन्तुमय समूहका प्रदाह।

A. तारामण्डल-प्रदाह (Iritis); B. तन्तुसमूह-प्रदाह (Cyclitis); C. दोनोंका प्रदाह (Iridocyclitis)।

तारामण्डल और तन्तुमय समूह, दोनों भाग पृथक् हैं; किन्तु दोनों की अनेक अंशमें समानता है। तारामण्डल लगभग तन्तुमय समूहमें से निकलता है, दोनोंकी रक्तपोषक रक्तवाहिनियाँ पृथक् नहीं हैं। इससे प्रदाह के समय बहुधा दोनों पर समान असर पहुँच जाता है। यदि तारामण्डल के पर्दका प्रदाह हो तो कुछ अंशमें तन्तुमय समूह प्रभावित हो जाता है। प्रायः एक ही भागका प्रदाह नहीं होता, तो भी समझानेके लिये तारामण्डल-प्रदाह और तन्तुमयसमूह प्रदाहका विवेचन पृथक् करते हैं।

A. तारामण्डल-प्रदाह।
(Iritis)

इस रोग (चित्र नं० ९३ देखें) के विनिर्णयार्थ शारीरिक रचना और कार्यके सम्बन्धमें कितनाक विचार पहले प्रकरणमें दिया गया है। उसका यहाँ पुनः स्मरण कराते हैं।

१. तारामण्डलका पर्दा भारतीयोंमें बहुधा काला होता है, किसी-किसीमें भूरा राख जैसे रङ्गका होता है। यूरोपियनोंमें बहुधा भूरे रंगका होता है। जन्मसे भूरे मनुष्योंमें भी कुछ रक्ताभ पिङ्गल (Albinoes) होता है।

२. उस पर्दमें कनीनिकाके चारों ओर एवं उसमेंसे परिधिकी ओर जाने वाली कितनीक सूक्ष्म रेखाएँ भासती हैं। इस हेतुसे वह चित्रित भासता है।

३. दूर-समीप देखने, प्रकाश डालने या अन्धकार करने पर कनीनिका छोटी-बड़ी होती है।

इन तीन बातोंका स्मरण इसलिये कराया है कि, प्रदाहका निर्णय इन तीन बातोंके अन्तर परसे होता है।

लक्षण और चिह्न—अनेकों को नेत्र में असह्य वेदना होती है। अभिष्यन्द रोग में वेदना होती है और इस रोग में भी वेदना होती है; किन्तु दोनोंकी वेदनामें अन्तर है। अभिष्यन्द रोगकी वेदना गड़नेके समान होती है और इस रोग की वेदना में शूल सदृश पीड़ा होती है। अभिष्यन्द रोग में गड़ना प्रायः पलक के नीचे होता है और इस रोग में पीड़ा मध्य भाग में होती है। इस रोग में गोलक के शूल के अतिरिक्त शिर में भी दर्द होजाता है। यह शिर दर्द सारे मस्तिष्क में नहीं होता। ऊपर के भ्रू वाले भाग में या निम्न पलक के नीचे होता है। इन स्थानों में पीड़ा होने का मुख्य कारण यह है कि, इन दोनों स्थानों पर दो वातनाड़ियाँ अवस्थित हैं। वे दोनों ५वीं नाड़ी में से निकलती हैं। उसी अनुसार तारामण्डल के पर्दों में जो सूक्ष्म तन्तु होते हैं, वे भी ५वीं नाड़ी में से निकलते हैं।

शुक्लमण्डल के क्षतों में होने वाली पीड़ा इस रोग जनित वेदना से अधिक मिलती है; किन्तु शुक्लमण्डल के क्षतों को आंखों से, शुक्लमण्डल के दूरवीक्षण यन्त्र से, एवं फ्लोरेसिन डाल कर सरलतापूर्वक देख सकते हैं। इससे दोनों रोगों के निर्णय में विशेष कठिनता नहीं रहती। तारामण्डल के पर्दे के प्रदाह से उत्पन्न दर्द नेत्र पर प्रकाश डालने पर विशेष और अन्धकार में रहने पर कम लगता है। ऐसा होने में दो हेतु हैं। १. प्रकाश में कनीनिका संकुचित होती है, जिससे शोथग्रस्त पर्दे में वेदना अधिक होती है, जिस तरह शोथ वाले सांधें मोड़ने पर अधिक कष्ट होता है; २. नेत्र में प्रकाश जाने पर सूक्ष्म तन्तु उत्तेजित होते हैं। शीत लगने पर पीड़ा बढ़ती हो, तब सेक करने पर वेदना कम हो जाती है।

तारामण्डल के पर्दे के रंग में भी प्रदाह के हेतु से अन्तर हो जाता है। काले रंग के बदले में कुछ रक्ताभ हो जाता है। यह परिवर्त्तन काले पर्दे की अपेक्षा भूरे पर्दे में अधिक सरलतापूर्वक विदित होता है। एवं यह अन्तर दूसरी स्वस्थ आंख के पर्दे से मिलाने पर निर्णित हो जाता है। परिवर्तन होने पर पर्दे की स्वच्छता कम होजाती है अर्थात् पर्दा मलिन धूसर–अस्पष्ट भासता है। पर्दा रक्ताभ होने का कारण पर्दे की रक्तवाहिनियों में रक्त का संग्रह है और मलिनता आने का कारण प्रदाहजन्य पदार्थोंकी सूक्ष्म तह ऊपर आ जाती है। एवं अनेक बार कनीनिकाके

मध्य भागमें भी इस रस का संग्रह हो जाता है। इससे कनीनिका भी गँदली सी भासती है।

जलमय रस के पूर्व खण्ड में भी प्रदाहज रस प्रवेश करता है। इससे वह भी कम पारदर्शक बन जाता है। यदि रोग दीर्घ-काल पर्यन्त टिकता है और रस गाढ़ा हो जाता है, तो शुक्लमण्डल के पिछले पत में भी उक्त रस संगृहीत होकर सूक्ष्म-सूक्ष्म बिन्दु बन जाते हैं (चित्र नं० ९५ देखें)। उन बिन्दुओंके देखाव पर से कितनेक नेत्रवैद्य शुक्लमण्डलके गर्भभागका गम्भीर प्रदाह कहते हैं। किन्तु यथार्थमें वह शुक्लमण्डल प्रदाह नहीं है; किन्तु तारामण्डलके पर्दके प्रदाहसे रससंग्रह है।

तारामण्डलके पर्दके आगेकी तथा पिछली ओर रस संगृहीत होजाने से पर्देकी गतिमें अर्थात् प्रसारण-आकुंचन में अन्तर हो जाता है। उसका मुख्य हेतु तारामण्डल का दृष्टिमणि के आवरणके साथ चिपक जाना है। उस स्थितिको तारामण्डल तलकी संलग्नता (Posterior synechiae) कहते हैं (चित्र नं० ९८)। इस प्रकारकी संलग्नता कई बार कुछ अंश में एक दो स्थानोंमें ही होती है और कभी-कभी समस्त पर्दा और कनीनिका दृष्टिमणिके आवरणके साथ पूर्णांशमें संलग्न होजाय, उतने तक बढ़ जाती है। इस प्रकारके बन्धनका निर्णय दो प्रकारसे हो सकता है। १. कनीनिकाकी गतिमें न्यूनता होनेसे एवं २. एट्रोपीनकी बूंद डालकर कनीनिकाको प्रसारित करनेका प्रयत्न करने पर जब संलग्न भाग स्थिर ही रहता है तब। प्रकरणके प्रारम्भमें कहा है कि तन्दुरुस्त कनीनिका प्रकाश में संकुचित होती है और अन्धकारमें प्रसारित होती है। दूर देखने पर प्रसारित होती है और समीप देखने पर आकुंचित होती है। जब पर्दा संलग्न होजाता है, तब उतने अंशमें यह क्रिया बन्द होजाती है, या कनीनिकाके कुछ भागका ही संकोच-विकास होता है, शेष स्थिर रहता है।

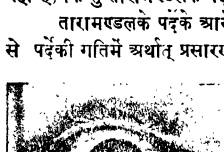

चित्र नं० ९८

इस संलग्नताके हेतुसे कनीनिकाके आकारमें भी अन्तर होजाता है। स्वस्थ कनीनिका वर्तुलाकार होती है, वह अनियमित आकारकी बन जाती है। कितनेक स्थान पर छोटे-छोटे कोन होजाते हैं। यदि ऐसी आँख में २-२ मिनिट पर एट्रोपीन डालें तो संलग्नताके अस्तित्वका निर्णय तत्काल होजाता है। यदि संलग्नता पूर्ण हो अर्थात् परा पर्दा निम्न आवरणको

चिपका गया हो तो कनीनिका बिल्कुल अचल ही रहती है; किंचित् भी प्रसारित नहीं होती। संलग्नता अपूर्ण हो तो कितनेक स्थान पर कनीनिका प्रसारित होगी और कुछ स्थानोंमें एट्रोपीनकी क्रिया नहीं होगी। पूर्णांशमें संलग्नता होने पर जो स्थिति उत्पन्न होती है, उसे कनीनिका अवरोध (Seclusion) कहते हैं।

जलमय रसके पूर्व और पश्चिम खण्डके बीच प्रवाहीका गमनागमन कनीनिका द्वारा होता है। यह अधिमन्थ प्रकरणमें समझाया जायगा। यदि किसी कारणवश उसमें प्रतिबन्ध होता है या व्यवहार बन्द होता है तो अधिमन्थ उपस्थित होता है। जब तारामण्डलका पर्दा और कनीनिका दोनों ही दृष्टिमणिके आवरणको पूर्णांशमें चिपक जाते हैं, तब पश्चिम खण्डका प्रवाही पूर्वखण्डमें बिल्कुल नहीं जा सकता। इससे एक प्रकारका चिरकारी अधिमन्थ (नीले मोतिये) का प्रारम्भ होजाता है। फिर दृष्टि शनैः-शनैः बिल्कुल बन्द होजाती है। पूर्ण संलग्नताके अतिरिक्त प्रदाह-जन्य रस कनीनिकाके बीच संगृहीत होकर जम जाता है। इससे समय व्यतीत होने पर कनीनिकाके मार्गमें एक प्रकारकी तह बन जाती है। उसे कनीनिका आच्छादन (Occlusion) संज्ञा दी है। इस आच्छादनके हेतु से दृष्टि बिल्कुल बन्द होजाती है।

यदि शोथ प्रबल हो और तन्तुमयसमूह भी शोथ ग्रस्त होगया हो तो काँचरूप रसमें भी उपरोक्त रस उपस्थित होकर अपारदर्शकता ला देता है। इस परसे स्पष्ट समझमें आ सकेगा कि तारामण्डल प्रदाह जो सामान्य भासता है, वह बढ़ने पर दृष्टिके लिये भयङ्कर घातक बन जाता है।

कनीनिकाकी गति विकृतिके अतिरिक्त उसकी रचनामें अन्तर हो जाता है। पहले कहे अनुसार तारामण्डलमें पर्देका सूक्ष्म निरीक्षण करने पर कितनीक वर्तुलरूप और कितनीक परिधिकी ओर गमन करने वाली रेखाएं प्रतीत होती हैं, उनसे पर्दा चित्रित भासता है; प्रदाह होने पर यह चित्र-कृति मंद होजाती हैं अथवा बिल्कुल नहीं दीखती। एवं शुक्लमण्डलके चारों ओर रही हुई धमनियोंमें रक्त संगृहीत होता है। इससे शुक्लमण्डलकी परिधिके इर्द-गिर्द सफेद रहने वाला भाग लाल होजाता है। यह लाली नेत्रश्लेष्मावरणमें नहीं होती, किन्तु उससे नीचे होती है, वह किस तरह सिद्ध होगा, यह पहले कहा गया है।

प्रकाश की असहनता और अश्रुस्राव उपस्थित होते हैं। यह अश्रुजल बिल्कुल चिपचिपा नहीं होता। इससे नेत्र नहीं चिपकता। तारामण्डल के प्रदाह से दृष्टि पर कितना असर पहुँचता है, यह प्रश्न

विचारणीय है। यदि प्रदाह अधिक तीव्र न हो और रस का वहन न होता हो, तो दृष्टिमें अन्तर नहीं पड़ता। किन्तु रोग कुछ उग्र बने तो प्रारम्भसे ही दृष्टिमें मन्दता आने लगती है। पहले कहे अनुसार निस्तेजताका हेतु पारदर्शक भागोंमें अपारदर्शक पदार्थ की उत्पत्ति है। अपारदर्शक पदार्थ जिस तरह जलमय रसके पूर्व खण्डमें कनीनिकामें और दृष्टिमणिके आवरण पर उत्पन्न होता है, उस तरह कांचरूप रस के भीतर भी उत्पन्न होता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं कि जलमय रस का पूर्व खण्ड स्वच्छ हो, कनीनिका अच्छी तरह काली हो, फिर भी कांचरूप रसकी अपारदर्शकता के हेतु से दृष्टि बिल्कुल बन्द होगई है। रोग बढ़ने पर दृष्टि शनैः-शनैः मन्द और मन्दतर होती जाती है। यदि योग्य उपचार द्वारा शोथ कम होकर अपारदर्शक पदार्थ शोषण होने लगे तो दृष्टि धीरे-धीरे स्वच्छ होने लगती है। अनेक वार दृष्टि में कुछ मन्दता रह ही जाती है। यदि रोग शीघ्र वश नहीं होता, तो मन्दता दिन-प्रति-दिन बढ़ती ही जाती है। यदि समग्र गोलक के शोष और अपक्रान्ति (Atrophy and degeneration) प्रारम्भ होती है, तो दृष्टि बिल्कुल बन्द हो जाती है।

तारामण्डल का चिरकारी प्रदाह।

(Chronic Iritis)

कितनेक रोगियों को उपरोक्त चिह्नों में से अनेक प्रतीत नहीं हों तो जिससे बिल्कुल पीड़ा नहीं होती; लाली नहीं आती; अश्रुस्राव नहीं होता; किन्तु धीरे-धीरे दृष्टि बन्द होजाती है। यदि सूक्ष्म अवलोकन किया जाय तो तारामण्डल का पर्दा कुछ अंश में दृष्टिमणि की झिल्ली को चिपका है। इससे शान्त शोथके परिणाम में पर्दे की संलग्नता उपस्थित हुई है। ऐसे प्रकार का शोथ बहुधा आमवातिक प्रकृति वाले मनुष्य को होता है।

कारण—तारामण्डल के पर्दे का प्रदाह मुख्य रोग रूप से एवं नेत्रके अन्य रोग के अनुषंगी रूप से उत्पन्न होता है। इन दोनों प्रकारों का वर्णन भिन्न-भिन्न करते हैं।

तारामण्डल का मुख्य प्रदाह।

(Primary Iritis)

कारण—इस रोगके कारणों में ५ प्रकार हैं।

१—अ. उपदंश; आ. सुजाक; इ. क्षय; ई. कण्ठमाला आदि रोग।

२—अ. संधिवात; आ. शीतला; रोमान्तिका, मुद्दती ज्वर और उसके अनुरूप अन्य रोगजन्य विषका रक्तद्वारा नेत्रमें फैलना।

३—देह के पोषण का क्षय करने वाले वातरक्त, मधुमेह आदि रोग।
४—तारामण्डल पर शस्त्र क्रिया और आगन्तु व्यथा।
५—एक चक्षु के गहरे भाग, शोथ होनेपर उसके परिणाम में अपर स्वस्थ चक्षु प्रदाह पीड़ित होना।

१-अ. *फिरंग-उपदंश*—इस के उपद्रवों की ३ स्थिति मानी हैं।

१. जननेन्द्रिय या देह के अन्य भाग पर क्षत होता है।
२. त्वचा पर ददौरे होते हैं तथा रसपिण्ड में शोथ होकर स्थान-स्थान पर ग्रन्थियाँ होती हैं।
३. इस अवस्था में अस्थियों में शोथ आकर गांठें बनना, सांधे जकड़ना, छोटी-छोटी हड्डियाँ गलना आदि विक्रिया होती हैं। इनमेंमें से द्वितीयावस्था में तारामण्डल के प्रदाह की अधिक संभावना है। तृतीयावस्था में भी अनेक बार तारामण्डल प्रभावित हो जाता है। किन्तु इन दोनों अवस्थाके प्रदाहमें अन्तर है।

इस रोग के कीटाणुओं को स्पाइरोकेटा पालिदा (Spirochaeta pallida) कहते हैं। इन कीटाणुओं का विष द्वितीयावस्था में रक्त में मिल जाता है और फिर देह में चारों ओर फैलता है। इसी हेतु से विविध उपद्रव उपस्थित होते हैं।

लक्षण और चिह्न—प्रायः उपदंशज प्रदाह का नेत्रगत कोई विशेष चिह्न नहीं होता। तारामण्डल प्रदाह के सामान्य चिह्न कहें, वे सब होते हैं। कितनेक रोगियों में इन लक्षणों के अतिरिक्त कनीनिका के किनारे के पास या तारामण्डल की परिधि पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पिड़िकाएं होती हैं। बीच में कभी नहीं होतीं। पिड़िकाएं सूक्ष्म राई से मूंग जितनी बड़ी होती हैं। रोगी की देह पर उपदंशके सब चिह्न होते हैं। यदि रक्त की परीक्षा वॉशरमेन या कहान की कसौटी से की जाय तो उपदंश विष का अस्तित्व निर्णीत होता है। इन पिटिकाओं के हेतु से तारामण्डल दृष्टिमणि के आवरण को चिपक जाता है। ऊपर जो वर्णन किया, वह बड़ी आयु वालों के लिये है।

क्वचित् बालकोंमें भी वंशागत विषप्रकोपसे यह रोग उपस्थित होता है। उनके चिह्न भी उक्त वर्णनके सदृश होते हैं। किन्तु ऐसे बालकोंमें इस रोगकी अपेक्षा शुक्लमण्डलके गर्भ भागका प्रदाह अधिकतर होता है। प्रकरण ११वें में लिखे अनुसार उस रोगके परिणाममें उपद्रव रूपसे तारामण्डल-प्रदाह भी कुछ अंशमें हो जाता है।

फिरंगकी तृतीयावस्थामें भी उपरोक्त पिड़िकाओंके समान क्वचित् पिड़िकाएँ होती हैं।

आ. सुजाक—उपदंशके समान सुजाक भी कुछ समयके पश्चात् रक्तको दूषित करता है। परिणाममें सांधे और हृदयके विकार मुख्य होते हैं। इनके अतिरिक्त तारामण्डल-प्रदाह भी होता है। इसके कोई विशेष लक्षण नहीं होते। प्रदाहजन्य सामान्य लक्षण सब होते हैं। स्थानिक उपचारके अतिरिक्त सुजाकके गव्यका उपयोग करने पर अच्छा लाभ पहुँच जाता है। सल्फोनेमाइडकी टिकड़ियोंका प्रयोग और अन्तःक्षेपण भी अति हितकारक हैं।

इ. और ई. क्षय और कण्ठमाल आदि रोग—ये रोग परस्पर अति मिलते-जुलते हैं। ये रोग क्षयके कीटाणुओंका देहमें आविर्भाव या प्रवेश होने पर होते हैं। इन रोगोंके लक्षण स्पष्ट विदित होते हों या रोगीकी देह इन रोगोंके लिये अनुकूल स्थितिमें पहुँची हो, तो ही तारामण्डलप्रदाह के लिये ये रोग कारणभूत होते हैं। इन कारणोंसे उत्पन्न प्रदाहके दो प्रकार हैं। १. प्रदाहके सामान्य लक्षण और देहमें क्षय आदिके लक्षणोंके अतिरिक्त विशेष लक्षण नहीं होते। २. अन्य प्रकारके प्रदाहमें तारामण्डल में सूक्ष्म-सूक्ष्म क्षयकीटाणुजनित बिन्दु या पिटिकाएँ होती हैं। इन बिन्दुओंमेंसे क्षयकीटाणु मिल जाते हैं। इस प्रकार के प्रदाह में तीक्ष्ण चिह्न उपस्थित होते हैं। इस प्रकार में शनैः-शनैः गोलक नरम होता है और दृष्टि बन्द हो जाती है।

कण्ठमालमें एक अन्य प्रकारका प्रदाह होता है। तारामण्डल और जलमय रसके पूर्वखण्डमें एक प्रकारका रस निर्मित होता है, जो गाढ़ा बनकर प्रतीत होता है। इस प्रकारका प्रदाह विशेषतः बच्चोंको होता है।

उपचार—तारामण्डल प्रदाह पर स्थानिक उपचार आगे कहे जायँगे, वे सब इन प्रकारोंमें करना चाहिये। इनके अतिरिक्त शारीरिक संपत्ति सुधारनेका लक्ष्य देना चाहिये। मत्स्यतैल (कॉडलिवर ऑइल), सिरपफेरी आयोडाइड, लोह मिश्रित औषधियाँ, केल्सियम हाइपोफोस्फेट, ग्वाएकोल-कार्बोनास आदि औषधियोंका व्यवहार होता है। ट्युबरक्युलिन नामक गव्य इस रोगमें अधिक उपयोगी है। इस गव्यमें अनेक जाति हैं। उनमेंसे B. E. (बेसिलरी इमलजन) से हमें अच्छा संतोष मिला है। स्थानिक उपचारोंमें ग्वाएकोलके प्रवाहीका नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण करने पर शीघ्र लाभ पहुँचता है। १ औंस जलमें २५ बूँद ग्वाएकोल डालें। फिर उसमेंसे १०–२० बूँद का प्रवेश करावें।

सूचना—यदि देहमें अन्यत्र क्षयोत्पत्तिकी प्रतीति न हो, केवल नेत्र-

में ही हो और दृष्टि बचनेकी विशेष आशा न हो तो आँखको निकाल देना चाहिये; अन्यथा रोग बढ़कर देहके अन्य भागको भी दूषित बना देता है।

२-अ. *आमवात*—हमारे अनुभवके अनुसार प्रौढ़ व्यक्तियोंमें तारामण्डलप्रदाह जितना आमवातसे होता है, उतना अन्य कारणोंमे नहीं होता। प्रौढ़ मनुष्यों पर आमवातका प्रबल आक्रमण होगया हो या न हुआ हो, केवल शारीरिक स्थिति आमवातके अनुकूल हो या भिन्न-भिन्न सांधाओंमें कुछ पीड़ा बारम्बार प्रतीत होती हो तो उनको यह रोग हो सकता है। सुजाकके पश्चात् भी इसी प्रकारका शोथ होता है। ऐसे रोगी शरीरसे पुष्ट ३०-४० वर्षकी आयु के और बहुत कम परिश्रम लेने वाले होते हैं।

रोगका प्रारम्भ अकस्मात् होता है। शिरदर्द, नेत्रकी असह्य पीड़ा और उसके अनुसार लाली आदि लक्षण होते हैं। योग्य उपचारसे रोग शमन होजाता है। किन्तु पुनः-पुनः आक्रमण होना, यह आमवातज प्रदाहका खास स्वभाव है। क्वचित् प्रदाहमें चिह्न प्रबल नहीं होते; किन्तु शनैः-शनैः तारामण्डल चिरकारी प्रदाहके परिणाममें दृष्टिमणिकी झिल्ली को चिपक जाता है।

इस प्रकारकी व्याधि पर स्थानिक उपचारोंके अतिरिक्त सोडासेलिसिलस और पोटाश-बाइ-कार्बोनास जैसी औषधियोंका उपयोग दीर्घकाल पर्यन्त पूर्ण रूपसे करना चाहिये।

आ. *रोमान्तिका, शीतला, मधुरा आदि ज्वर जन्य प्रदाह*—इस प्रकारके प्रदाहमें रोगीकी शारीरिक स्थिति अति निर्बल होजानेके हेतुसे कितनेक समय गोलक नरम होकर दृष्टि नष्ट होजाती है।

३-*देहके पोषणको न्यून करनेवाले वातरक्त, मधुमेह आदि रोग*—इनमें वातरक्तके हेतुसे सांधे और कैशिकाओंमें परिवर्तन होता है। उस परिवर्तनके साथ तारामण्डलके उपदानमें एवं अनेक कैशिकाओंमें भी कुछ रूपान्तर होजाता है। परिणाममें वे प्रदाहके लिये अधिक अनुकूल बन जाते हैं। वातरक्त पीड़ितोंमें से बहुधा मोटी देह वाले, परिश्रम कम लेने वाले, खाने-पीनेमें अधिक मनमौजी और मधुर पदार्थोंके अधिक प्रेमी आदि इस रोग के भोग होजाते हैं। इनके अतिरिक्त इन लोगोंके नेत्र पर शस्त्रक्रिया करनेके पश्चात् तो तारामण्डलप्रदाह विशेषांशमें होजाता है। तारामण्डलकी पोषणशक्ति वातरक्तके हेतुसे बहुत कम होजाती है। इससे शस्त्रक्रियाके परिणाममें स्वस्थ स्थितिमें न होने वाला शोथ सरलतासे उपस्थित होजाता है।

उपचार—स्थानिक उपचारोंके अतिरिक्त पोटास बाई कार्बोनास, पोटास आयोडाइड, लिथिया और कोलचिकम आदि औषध दी जाती हैं।

मधुमेहीको भी अनेक बार तारामण्डलप्रदाह होजाता है; किन्तु वह वातरक्तकी अपेक्षा बहुत कम परिमाणमें होता है।

४–तारामण्डलकी शस्त्रक्रिया या चोट जनित व्यथा—आगे लिखा जायगा कि, कृत्रिम कनीनिकाकी रचना, अधिमन्थ और कांचबिन्दुको निकालनेके लिये प्रायः तारामण्डलकी छेदन क्रियामें व्यवहृत शस्त्र पूर्ण विशुद्ध न हो, नेत्रवैद्यका हाथ हलका न होनेसे तारामण्डलको पकड़ने या काटनेमें भारीपन आया हो, जलमयरसके पूर्वखण्डमें रक्त स्राव हुआ हो, मोतीबिन्दुकी शस्त्रक्रिया करने पर मोतीबिन्दुका कुछ अंश या दृष्टिमणि की झिल्लीका कुछ अंश भीतर रह गया हो, या किसी भी कारणसे तारामण्डलप्रदाह होनेकी अनुकूल स्थिति उत्पन्न होगई हो तो इसका प्रदाह हो जाता है।

शस्त्रक्रियाकी अपेक्षा आगन्तुक आघातसे प्रदाह होनेकी सम्भावना अधिक रहती है। कारण, आघात पहुँचाने वाला शस्त्र (द्रव्य) प्रायः अशुद्ध होता है। एवं नेत्र भी उतने ही परिमाणमें अस्वच्छ होता है। इस प्रकारके प्रदाहमें तारामण्डलके अतिरिक्त तन्तुमयसमूहका प्रदाह भी साथ में होता है।

लक्षण–चिह्न—प्रदाहके परिमाण में प्रबल होते हैं।

उपचार—आगे लिखे जायँगे, उस अनुसार करें।

५–शोथमय चक्षुजन्य अपरचक्षु में प्रदाह—आगे कहा जायगा, उस अनुसार एक पीड़ित चक्षुमेंसे विष दूसरे स्वस्थ चक्षुके भीतर प्रवेश करने पर केवल तारामण्डल या तन्तुमय समूह का ही प्रदाह नहीं होता, बल्कि नेत्र के सब भाग आक्रमित हो जाते हैं।

लक्षण—प्रायः प्रबल होते हैं। शनैः-शनैः दृष्टि मन्द-मन्द होकर नष्ट हो जाती है। नेत्रगोलक नरम हो जाता है। इस रोग का विशेष विचार इसी प्रकरण में आगे किया जायगा।

तारामण्डलका अनुषंगी प्रदाह।

(Secondary Iritis)

नेत्रके अन्य रोगों के परिणाम में तारामण्डल का अनुषंगी प्रदाह अनेक बार हो जाता है। इन रोगोंमें मुख्य ८ हैं। १. शुक्लमण्डलके

क्षत; २. सफेदी; २. रोहे; ४. शुक्लमण्डलके गर्भभागका प्रदाह; ५. नेत्र-बाह्यपटल का प्रदाह, विशेषतः गम्भीरप्रदाह; ६. दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टता (Dislocation) और व्यथा; ७. नेत्रदर्पण का विच्छेद (Detachment of Retina); ८. नेत्रगत अर्बुद (Intra-ocular tumours).

रोग विनिर्णय—इस रोगका पृथक् निर्णय मुख्य ४ रोगों से किया जाता है। १. अभिष्यन्द; २. रोहे; ३. शुक्लमण्डलके क्षत; ४. अधिमन्थ।

तारामण्डलप्रदाहमें नेत्रमें लाली, प्रकाश की असहनशीलता और नेत्रपीड़ा, ये ३ होते हैं। उस तरह अभिष्यन्द (नेत्रबाह्यपटलप्रदाह) और तीक्ष्ण रोहे मेंभी होते हैं। फिरभी इनमें प्रभेद है। अभिष्यन्द और रोहोंकी लाली नेत्रश्लेष्मावरण में होती है, अर्थात् श्लेष्मावरण की रक्तवाहिनियां रक्तपूर्ण हो जाती हैं। तारामण्डलके प्रदाहमें श्लेष्मावरण के नीचे रही हुई धमनियों में रक्त संगृहीत होता है। पहले कहे अनुसार यह रक्तसंग्रह दो धमनियों में होता है। यह जानने के लिये अपने पास २ साधन हैं। नेत्र-श्लेष्मावरण को नोकरहित शलाका से कुछ चलावें। यदि धमनियाँ नेत्रश्लेष्मावरणके साथ सरकती हैं, तो लाली श्लेष्मावरणमें मानी जायगी। अन्य साधन एड्रेनेलिनक्लोराइड है। इसके प्रवाही की बूंद लालीमय नेत्रमें डालने पर नेत्रश्लेष्मावरणकी धमनियाँ तुरन्त आकुंचित हो जाती हैं। फिर अभिष्यन्द और रोहे जनित लाली अदृश्य हो जाती है। किन्तु तारा-मण्डलप्रदाह जनित लाली कम नहीं होती।

अभिष्यन्द रोगमें नेत्रस्रावमें निकलने वाला प्रवाही गाढ़ा और चिपचिपा होता है। उससे नेत्र चिपक जाते हैं। तारामण्डलप्रदाह में अश्रुस्राव का जल बिल्कुल स्वच्छ होता है। पलक उलटने पर रोहे हों तो विदित होते हैं। अभिष्यन्द और रोहों में पीड़ा गड़ने के सदृश होती है। तारामण्डल की वेदना शिरःशूल सम होती है। प्रकाश की असह्यता, यह लक्षण प्रायः सबमें होता है। तारामण्डल प्रदाहजन्य लाली शुक्लमण्डल परिधि के समीप में विशेष भासती है। इनके अतिरिक्त पृथक्दर्शक २ चिह्न मुख्य हैं। १. पर्दे के रंग में अन्तर; २. कनीनिका का आकुंचन और संलग्नता।

उपरोक्त रोगों को नूतन चिकित्सक भूलसे तारामण्डल का प्रदाह कहदें, उस तरह योग्य लक्ष्य न दिया जाय तो अधिमन्थ और इस रोग में भी भूल होने की संभावना है। क्योंकि कितनेक चिह्न दोनों व्याधियों में समान होते हैं। उनकी तुलना निम्न कोष्टक में की है।

तारामण्डल प्रदाह (Iritis)	आशुकारी अधिमन्थ (Acute Glaucoma)
१. शिर में और विशेषतः भ्रू भाग में असह्य शूल।	उस अनुसार असह्य शूल।
२. नेत्र में लाली।	उसी अनुसार।
३. प्रकाश की असह्यता।	उसी अनुसार।
४. अश्रु सदृश नेत्रस्राव।	उसी अनुसार।
विभेदक चिह्न	
५. कनीनिका सर्वदा आकुंचित, धूसर, मंद गति युक्त और एट्रोपीन डालनेपर अनियमित।	प्रसारित, अण्डाकार, अचल।
६. बहुधा तारामण्डलकी संलग्नता।	अभाव।
७. शुक्लमण्डल प्रायः स्वच्छ और पारदर्शक।	प्रायः अस्वच्छ और घिरा हुआ।
८. गोलक नीरोगी स्थितिमें या नरम। यदि संलग्नता पूर्ण हो तो फिर गोलक कठिन होने लगता है।	नेत्रगोलक प्रारम्भसे ही कठिन।
९. कनीनिका कुछ निस्तेज।	कुछ हरिताभ।
१०. प्रायः वमनका अभाव।	प्रायः वमनसे ही प्रारम्भ।
११. एट्रोपीनसे शान्ति।	एट्रोपीनसे रोगवृद्धि।
१२. इसरीनसे प्रायः वेदनावृद्धि।	इसरीनसे कुछ शान्ति।

चिरकारी अधिमन्थ हो तो तारामण्डल प्रदाहके कोई भी लक्षण उपस्थित नहीं होते।

उपचार—तारामण्डल प्रदाहकी चिकित्सामें २ प्रकार हैं। स्थानिक और शारीरिक। इस रोगके कारण अनेक हैं। अतः शारीरिक चिकित्सामें भेद हो ही जाता है।

उपदंशज रोगमें पारा प्रधान औषध—लाइकरहाइड्रार्जिरम् पर क्लोराइड, प्रेपाउडर, ब्ल्युपिल आदि प्रयोजित होती हैं। सेलिसिलेट ऑफ

मर्क्युरी और क्लोराइड ऑफ मर्क्युरी जैसी औषधोंका त्वचाके नीचे अंतः-क्षेपण करते हैं। मर्क्युरी क्रोम जैसी शुद्ध पारद मिश्रित औषधको मांस-पेशीमें प्रवेशित कराते हैं। आगे बढ़ने पर पारद और सोमल की विविध रासायनिक क्रिया द्वारा बनाया हुआ 'सालवरसन' अन्तःक्षेपण द्वारा शिरा में पहुँचाया जाता है। इनके अतिरिक्त पारदका मलहम बगल और कनपटी पर मालिश करने पर देह और नेत्रमें पारेका अच्छा असर पहुँचता है। उपदंश पर चिकित्सा प्रयोग अत्यधिक हैं। उनका विस्तृत विवेचन यहाँ नहीं दिया।

स्थानिक प्रयोग—सायानाइड ऑफ मर्क्युरीका प्रवाही नेत्रश्लेष्मा-वरणके नीचे प्रवेश कराने पर अच्छा लाभ पहुँचता है, ऐसा हमारे अनु-भवमें आया है। द्वितीयावस्थाजनित तारामण्डल प्रदाह हो तो पोटास आयोडाइड, सोडा आयोडाइड, आदि औषधियाँ अच्छा कार्य करती हैं।

सुजाकजन्य विकारमें सुजाकके गव्यके प्रयोगसे लाभ पहुँचता है। हमने कितनीक बार गव्यका प्रयोग किया है। इसके अतिरिक्त सल्फोथायो-मोलकी टिकड़ियाँ और अन्तःक्षेपण भी बहुत अच्छा गुण दर्शाते हैं।

आमवातज व्याधि होने पर सोडा सेलिसिलस, एस्पीरिन, एम्पीरिन और सेलीसिन आदि व्यवहृत होती हैं। इस प्रकारके रोग बारबार पुनरा-क्रमण करते हैं। अतः औषधप्रयोग कुछ काल तक चालू रखना चाहिये।

क्षय आदि रोगोंसे उत्पन्न प्रदाहमें शुद्ध वायुका सेवन, लघुपौष्टिक आहार, रक्तशोधक और शक्तिवर्द्धक औषध आदि हितकारक हैं। ट्यूबर-क्युलिनसे भी कितनेकोंको लाभ पहुँचता है। नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे ग्वाएकोल केकोडिलस के २-३% प्रवाहीके उपयोगको फ्रेञ्च डाक्टरोंने अच्छा माना है। उससे अधिक लाभ हमारे अनुभवमें नहीं आया।

कितनेक जहरी ज्वरोंमें उत्पन्न प्रदाह पर स्थानिक उपचारोंके अति-रिक्त अन्य विशेष उपचार करनेकी आवश्यकता नहीं है।

एक नेत्रके रोग के हेतुसे दूसरी ओरके नेत्रमें प्रदाह होगया हो, तो नूतन प्रदाहवाली आँखके संरक्षणार्थ पहली आँखको शीघ्र निकाल देना चाहिये। क्वचित् एक आँखको निकाल देने पर भी दूसरी प्रभावित आंख नहीं बच सकती।

उपर्युक्त उपचारोंके अतिरिक्त वर्त्तमानमें कुछ वर्षोंसे तारामण्डल-प्रदाह पर दूधका अन्तःक्षेपण किया जाता है, वह आश्चर्यजनक असर पहुँचाता है, ऐसा हमें अनुभव मिला है। इसकी विधि चौथे प्रकरणमें विस्तारपूर्वक लिखी है।

स्थानिक उपचार—तारामण्डलको आघात पहुँचनेसे प्रदाह हुआ हो तो स्थानिक उपचारके अतिरिक्त कुछ भी करनेकी आवश्यकता नहीं है।

स्थानिक उपचारमें एट्रोपिन मुख्य है। पहले लिखा गया है कि एट्रोपिनसे कनीनिका प्रसारित होती है। ऐसी प्रसारित कनीनिका एट्रोपिनका असर हो तब तक समीप देखने या नेत्र पर प्रकाश डालने पर भी आकुञ्चित नहीं होती। कनीनिकाके संकोच होनेकी क्रिया तारामण्डलमें अवस्थित सूक्ष्म मांसपेशीकी गति द्वारा होती है। जब कनीनिका प्रसारित होती है तब इन पेशियोंको और तारामण्डलको विश्रान्ति मिल जाती है। वैद्यक-शास्त्रका नियम है कि, जिस भागमें शोथ आया हो, उस भागकी चलनक्रिया बन्द की जाय तो उसे विश्रान्ति मिलती है। परिणाममें रोग कम होता है और शोथके शमनमें सहायता मिल जाती है।

एट्रोपिनका उपयोग विशेषतः प्रवाही रूपसे होता है। १ औंस जलमें ४ ग्रेन एट्रोपिन या एट्रोपिया सल्फेट मिलावें। इस तरह जैतुनके तेल या एरण्ड तेलमें उसी परिमाणसे मिलाकर अथवा वेसलीनमें उसी मात्रामें मिला, मलहम बनाकर उपयोगमें ले सकते हैं। कनीनिका प्रसारित करनेके लिये एट्रोपिनकी १–१ बूँद २॥–२॥ मिनिटके अन्तर पर २ से ४ बार डालनी चाहिये। यदि रोग अति उग्र हो तो उस तरह एट्रोपिनका प्रयोग दिनमें २–३ अथवा अधिक बार किया जाता है। एट्रोपिनके मलहम का प्रयोग अधिक सरल है। करीब मूँग जितना मलहम काँचकी शलाका पर लगाकर अञ्जन करें। इस तरह दिनमें २–३ या अधिक बार अञ्जन करें।

कितनेकों को एट्रोपिन के प्रयोग से अभिष्यन्द के लक्षण उपस्थित होते हैं और पलक के नीचे की त्वचा और पलकधारा पक जाती है। मलहम की अपेक्षा प्रवाही के उपयोग में ऐसे उपद्रव की विशेष संभावना है। ऐसे रोगियों के लिये एट्रोपिन को छोड़, प्रकरण चौथे में लिखी हुई स्कोपेलेमिन, होमाट्रोपिन, युफ्रेडिनमाइडिन और युफथेलमिन आदि औषधियाँ व्यवहृत की जाती हैं। इनमें से होमाट्रोपिन आदि ४ औषधियों का असर २४ घण्टे के भीतर निकल जाता है। अतः तारामण्डल के प्रदाह में विशेष उपयोगी नहीं होतीं। शेष रही हुई स्कोपेलेमिन एट्रोपिन के स्थान पर उपयोग में ली जाती है। उससे नेत्रश्लेष्मावरण पर एट्रोपिन जितना खराब असर नहीं पहुँचता। १ औंस जलमें आध से १ ग्रेन तक मिलायी जाती है। दतुरिन भी एट्रोपिन से मिलती जुलती है; किन्तु उससे नेत्रश्लेष्मावरण पर लगभग एट्रोपिन जितना ही असर होता है। अतः उसके प्रयोग से

सफलता नहीं मिलती। इनके अतिरिक्त हाइयोसिमिन और डुबोइसिन नामक दो औषधियाँ एट्रोपिन जैसी हैं; किन्तु वे अति जहरी होने से नेत्र में डालनी अनुचित हैं।

अनेक बार एट्रोपिन के डालने पर भी कनीनिका का प्रसारित नहीं हो सकती। उसका मुख्य कारण दृष्टिमणि के आवरण के साथ तारामण्डल की संलग्नता है; या प्रदाह अति प्रबल हो तथा तारामण्डल की धमनियाँ रक्तसे अति पूर्ण हों, तो कनीनिका प्रसारित नहीं होती। ऐसे समय पर रोगी की पीड़ित आँख की ओर की कनपटी पर ४-६ जलौका लगवा लेने पर रक्तसंग्रह कम हो जाता है। फिर जो कनीनिका प्रसारित नहीं होती थी, वह रक्तसंग्रह दूर होने पर हो सकती है। जलौका न मिले या रोगी जलौका लगाने का स्वीकार न करे, तो कृत्रिम जलौका का उपयोग करना चाहिये। वर्तमान में कितनेक चिकित्सक जलौका जन्तु का उपयोग नहीं करते। कारण, जलौका मिट्टी और कीचड़ में रखी जाती है। उस हेतु से उनसे उत्पन्न घाव दूषित होता है। कृत्रिम जलौका के लिये यह आपत्ति नहीं है। ब्लिस्टर लगाने अर्थात् केन्थराइडिस जैसी औषध लगाकर या अन्य रीति से फाला उठाने से भी लगभग ऐसा ही असर होता है।

सेक—नेत्रगोलक पर बोरिक धावन, अफीम की डोंडियों, जिंक सल्फेट और बेलाडोना के प्रवाही का या ऐसी अन्य औषध का सेक करने पर शोथ कम होता है। एवं रोगी को आराम भी मिलता है। एण्टीफ्लोजिस्टीन से सेक हो सकता है। किन्तु इसके लिये आपत्ति दर्शायी जाती है कि उसे ½ से ¾ इंच मोटाई में लगाया जाता है और उस पर रुई का फोहा रख पट्टी बांधी जाती है। इन सबका वजन नेत्र से सहन नहीं हो सकता। एवं नेत्रमें से निकलने वाला जल पलक के भीतर भरा रह जायगा, तो नेत्रगोलक पर दबाव बढ़कर रोग में वृद्धि हो जायगी।

एट्रोपिन प्रवाही जलमय या तेलमय एवं मलहम रूप से प्रयोजित होता है। इनके अतिरिक्त जेलेटिन के साथ मिली हुई टिकड़ियाँ भी आँख में लगाई जाती हैं। क्वचित् उक्त सब कृति कनीनिका को प्रसारित नहीं कर सकती; जिससे एट्रोपिन के चूर्ण को ही प्रयोग में लाना पड़ता है। एट्रोपिन का एक सूक्ष्म रजकण नेत्र में डालें। कुछ समय में वह गल जायगा। यदि इस क्रिया से भी कनीनिका प्रसारित न हो, तो एट्रोपिन ½ ग्रेन और एड्रीनेलिन क्लोराइड सोल्युशन की १ बूंद को १० बूंद बाष्पजल में मिला नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे अन्तःक्षेपण करने पर कनीनिका प्रसारित होती है।

एट्रोपिन के प्रयोग में २ हानि हैं। १. नेत्रमें डालने पर एट्रोपिन का

कुछ अंश नेत्रकोणमें से अश्रु वाहक नलीके मुख द्वारा नाकमें और वहाँसे कण्ठ में होकर आमाशय में जाता है। उस तरह अधिक मात्रा चली जाय, तो धतूरे के विष के समान लक्षण उपस्थित होते हैं। कण्ठशोष, देह उष्ण है ऐसा रोगी को भासना, कुछ उन्माद, चक्कर आना, बिना हेतु हँसना, सूई में डोरा डालने के समान चेष्टा करना, बारबार पेशाब की इच्छा होना आदि प्रकाशित होते हैं। ऐसे लक्षण होने पर ½ से ¼ ग्रेन मोर्फिया देने पर विकृति शमन हो जाती है। इन लक्षणों की उत्पत्ति रोकने के लिये २ बातों को लक्ष्य में रखना चाहिये। १. औषध डालने के समय रोगी का शिर दबा डाली हुई आँख की ओर नवाना, जिससे अधिक प्रवाही बाह्य कोण में से निकल जाय। २. नेत्र के भीतर के कोन को रोगी या वैद्य अंगुली द्वारा दबा रक्खें। इससे अश्रुवाहक नली का मुख बन्द रहेगा और औषध नाक में नहीं जा सकेगी।

एट्रोपिन के उपयोग में दूसरी हानि यह है कि इसका प्रयोग दीर्घ काल पर्यन्त करते रहने पर नेत्रश्लेष्मावरण और पलक के चारों ओर की त्वचा पर व्युची होता है। एट्रोपिन अनुकूल न रहे तो पहले कहे अनुसार स्कोपेलेमिन की बूंद या एक्सट्रेक्ट बेलाडोना १ औंस में ८ से १६ ग्रेन के परिमाण वाले प्रवाही की बूंद डालें।

एट्रोपिन का असर प्रबल करने के लिये उसके साथ कोकैन मिलाया जाता है। दोनों का मिश्रण होने पर कनीनिका अधिक से अधिक चौड़ी होती है। इस हेतु से जब अकेले एट्रोपिन से योग्य लाभ न पहुँचे या संज्ञग्नता को तोड़ने की आवश्यकता हो तब कोकैन मिलायी जाती है। कोकैन प्रायः ४ से ८ ग्रेन तक १ औंस जल में मिलाते हैं या एट्रोपिन के समान तैल में या वेसेलिन में मिलाकर व्यवहृत होती है। जैसे एट्रोपिन की छोटी टिकिया मिलती है, उस तरह कोकैन भी तैयार मिलती है।

सूचना—४० वर्ष से बड़ी आयु वाले रोगियों में एट्रोपिन का प्रयोग करनेके पहले तारामण्डलका प्रदाह है, ऐसा निर्णय कर लेना चाहिये। यदि तारामण्डलके प्रदाहके बदले में अधिमन्थ रोग हो तो परिणाम अति अनिष्ट आता है। कनीनिका प्रसारित होने पर अधिमन्थ रोग बढ़ जाता है और रोगी की दृष्टिको बहुत हानि पहुँचती है।

तारामण्डल प्रदाह पर डायोनिन भी अच्छा लाभदायक है। प्रकरण चौथे में कहा गया है, उस अनुसार डायोनिन शोथहर और वेदना शामक है। तारामण्डल प्रदाहमें ये दोनों लक्षण होते ही हैं। अतः डायोनिन का

चूर्ण या २५ से ५० ग्रेनको १ औंस जलमें मिला प्रवाही बना कर बूंदें डाली जाती है।

वर्त्तमानमें तारामण्डल प्रदाह पर कितनीक औषधियाँ नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे प्रवेश करायी जाती हैं, उनसे अच्छा लाभ मिलता है। इन औषधियोंमें विशुद्ध नमक और सायानाइड ऑफ मर्क्युरी मुख्य हैं। नमक ५ से २५ ग्रेन १ औंस जलमें या सायानाइड १ ग्रेन को २ से ४ औंस जल में मिला कर उपयोगमें लेवें।

उदर सेवनार्थ एस्पीरिन, सोडा सेलिसिलस, पारदकृति आदिके लिये इसी प्रकरणमें पहले लिखा गया है, वे भी रोग शमनमें सहायक होती हैं।

उपरोक्त प्रयोग सब निष्फल होने पर जलमयरसके पूर्वखण्डमें सूक्ष्म छिद्र कर रसको बाहर निकाल देने पर अच्छा लाभ पहुँच जाता है। इस क्रियाके पश्चात् तत्काल पीड़ा शमन होती है। एवं एट्रोपिन आदिसे प्रसारित न होने वाली कनीनिका प्रसारित होने लगती है।

स्वेदल प्रयोग—अनेक वार स्वेदल औषधियाँ भी लाभ पहुँचाती हैं। इस प्रकारमें पाइलोकार्पिन नाइट्रास मुख्य है। $\frac{1}{2}$% से $\frac{1}{4}$% तक त्वचाके नीचे अन्तःक्षेपण किया जाता है। किन्तु इसके प्रयोगके पहले रोगीके हृदय और धमनियां स्वस्थ हैं या नहीं, यह देख लेना चाहिये। अन्यथा हानिकर लक्षण उत्पन्न होते हैं और कभी मृत्यु होजाती है। इसके अतिरिक्त एस्पीरिन १० से १५ ग्रेन देनेसे भी अच्छा प्रस्वेद आता है, रोगीको स्वेदन क्रिया कराने और उष्ण जलसे स्नान करा देहको पोंछ कर कम्बल ओढ़ा देनेसे खूब प्रस्वेद आजाता है।

सूचना—रोगीको अन्धकार वाले कमरेमें रखें, अधिक प्रकाशमें कनीनिका संकुचित होती है, फिर रोग वृद्धि होती है। यदि अन्धकार वाले कमरेमें न रख सकें तो काले-पीले चश्मे का उपयोग करने पर चल सकता है।

उपद्रव और विकृति (Complications and sequelae)—

१. तारामण्डलकी दृष्टिमणिके आवरणके साथ संलग्नता—Posterior synchia.

२. कनीनिका अवरोध और आच्छादन—Seclusion and Occlusion of Pupil.

३. शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकता।
४. कांचरूप रसकी अपारदर्शकता।
५. कांचबिन्दु।

१. तारामण्डल की संलग्नता—प्रदाह सामान्य हो या प्रबल। उपचार यथा समय किया जाय तो प्रायः संलग्नता नहीं होती और नेत्र आरोग्य हो सकता है। किन्तु ऐसा शुभ परिणाम कम नेत्रोंमें आता है। इनके प्रदाह से प्रायः कुछ अंशमें संलग्नता हो ही जाती है। एक दो स्थानमें बिखरी हुई संलग्नता होती है या कनीनिकाका किनारा एव तारामण्डलका विशेषांश या सब भाग चिपक जाते हैं। बिखरे हुए बन्धनसे दृष्टिको विशेष हानि नहीं पहुँचती। बन्धन पूर्ण हो तो परिणाममें अधिमन्थ उपस्थित होता है। फिर शनैः-शनैः दृष्टि मन्द होकर नष्ट होजाती है।

उपचार—बिखरे हुए १-२ बन्धन के लिये उपचार की विशेष आवश्यकता नहीं है। फिर भी कनीनिका को हो सके उतना प्रसारित करना चाहिये। इससे नूतन संलग्नता दूर हो जायगी और अधिक बन्धन भी नहीं हो सकेगा।

शस्त्रोपचार से लाभ के बदले में हानि का भय अधिक है। तारामण्डल अच्छी तरह स्थितिस्थापक गुण युक्त होने से शुक्लमण्डल में छेद कर किसी शस्त्र द्वारा बन्धन को तोड़ने का यत्न करना प्रायः निष्फल होता है। कारण वह तीक्ष्ण शस्त्र से कटने के बदले में खिंचता है। यदि अधिक बल लगाया तो मूल में से टूट जाता है। इस क्रिया में अन्य डर यह है कि, किसी कारण से दृष्टिमणि के आवरण को हानि पहुंच जायगी, तो काँचबिन्दु हो जायगा।

यदि संलग्नता पूर्ण हो तो उसके लिये शस्त्रक्रिया की आवश्यकता रहती है। अन्यथा अधिमन्थ होकर दृष्टि नष्ट हो जाती है। इसके लिये तारामण्डल का छेदन किया जाता है। यह शस्त्र क्रिया कैसे करनी चाहिये, उसका विचार आगे शस्त्रचिकित्सा में किया जायगा। यहाँ इतना कहना आवश्यक है कि, प्रदाह के लक्षण बिलकुल शमन हो जाने पर शस्त्र क्रिया की जाती है; अन्यथा प्रदाह की वृद्धि हो जाने की सम्भावना है।

२. कनीनिका अवरोध और आच्छादन—इससे दृष्टि में अच्छी तरह प्रतिबन्ध होता है। औषध से लाभ नहीं होता। तारामण्डल का छेदन करने पर क्वचित् दृष्टि में कुछ सुधार हो सकता है। शस्त्रक्रिया से लाभ न होने का मुख्य कारण यह है कि, कनीनिका के बीच प्रदाह के परिणाम

में सफेद तह बन जाती है, उसी जाति की तह समग्र तारामण्डल के पिछले हिस्से में फैल जाती है। फिर जिस स्थान पर छेद किया जाता है वह भाग भी पारदर्शक नहीं होता। इस हेतु से दृष्टि में विशेष लाभ नहीं पहुँचता। दृष्टिमणि के आवरण का छेदन कर कृत्रिम काँचबिन्दु उत्पन्न करा फिर कांचबिन्दु को शस्त्रक्रिया से निकाल दिया जाय तो कितनेक समय दृष्टि में अच्छा लाभ पहुँच जाता है किन्तु रोगी को ऐसे अच्छे परिणामकी आशा देने के पहले कांचरूप रस की अपारदर्शकता को नहीं भूलना चाहिये। कनीनिका का अवरोध करदें उतने तक प्रबल प्रदाह हो, तो उस प्रदाह के पश्चात् काँचरूप रस बिल्कुल पारदर्शक रहे, यह प्रायः संभवित नहीं है। अतः काचरूप रस पारदर्शक हो तो ही कांचबिन्दु निकालने पर दृष्टि अच्छी होती है।

३. *शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता*—इसमें २ प्रकार हैं। १-जलमय रसके पूर्वखण्ड में प्रदाहजन्य रसका संग्रह होकर उस रससे शुक्लमण्डलके पीछेकी ओर तह बन जाती है; जिससे समान अपारदर्शकता आजाती है। २-पहले लिखे अनुसार सूक्ष्म-सूक्ष्म बिन्दु होजाते हैं। इन दोनों प्रकारों की चिकित्सा शुक्लमण्डल की अपारदर्शकता में लिखी है। उस स्थिति में नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे नमक जलके प्रवाही का अन्तःक्षेपण अच्छा लाभ पहुँचाता है।

४. *काँच रूप रसकी अपारदर्शकता*—इस रोगके साथ प्रायः कनीनिका भी कुछ अंशमें अपारदर्शक होजाती है। इससे इस विकृतिका बोध नेत्रदर्शक यन्त्रसे नहीं होता। यदि कनीनिका स्वच्छ हो तो देख सकते हैं। उस स्थिति के लिये मुख्य उपचारोंमें पारद जैसी शोषक औषधका उदर-सेवन तथा मक्युरी सायानाइड और सेलाइन का नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण करना चाहिये। कभी-कभी स्वेदल औषध भी ठीक लाभ पहुंचाती है।

५. *काँचबिन्दु*—इस रोग के लक्षण और चिकित्सा स्वतन्त्र प्रकरण में लिखे जायँगे। तारामण्डलके प्रदाह के शमन हो जाने पर जिस स्थान से दृष्टिमणि को पोषण मिलता है, उस भागमें परिवर्त्तन होजाता है। फिर पोषण न्यून मिलने से काँचबिन्दु होजाता है।

उक्त उपद्रवों के अतिरिक्त अनेक बार नेत्रके मध्यभाग के शोथके हेतुसे समस्त गोलकका आकुंचन होने लगता है। उस स्थिति की प्राप्ति होने पर गोलक को निकाल देने के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

B. तन्तुमय समूहका प्रदाह ।

(Cycl itis)

तन्तुमय समूह को केवल नेत्रसे या नेत्रपरीक्षक यन्त्रों से भी देख नहीं सकते। अतः इसका प्रदाह हुआ है या नहीं, यह कहना कठिन है। किन्तु जो आँख तन्तुमय समूह के प्रदाह होने पर चली गई हो; फिर उसे किसी कारण वश निकाल देना पड़ता है, ऐसी आँखों की सूक्ष्म जाँच करने पर स्पष्ट होजाता है कि, इसका भी प्रदाह होता है। उस प्रदाह से होने वाले रूपान्तर भी दृष्टिगोचर होते हैं। ऐसे नेत्रोंमें जो-जो लक्षण प्रतीत होते हैं उनका अभ्यास करने और नेत्रवैद्योंके अनेक वर्षों के अनुभव पर से सिद्ध होगया है कि तारामण्डल प्रदाह होने पर कितनेक निम्न लक्षण बढ़ जाते हैं। उन पर से तन्तुमय समूहके प्रदाह को मान लेना चाहिये।

१. तारामण्डल प्रदाहके लक्षणों की उग्रता बढ़ना और ऊपर के पलक पर शोथ आना।
२. शुक्लमण्डल के किनारे के चारों ओर गोलक को दबाने पर गहराई में पीड़ा होना।
३. तारामण्डल प्रदाहज रसस्राव अत्यधिक होने लगना।
४. बाह्य चिह्नों से दृष्टि में जितनी न्यूनता आसके; उससे अधिक न्यूनता आना।
५. नेत्रगोलक का अत्यधिक नरम या कठिन हो जाना।

इनके अतिरिक्त निम्नलक्षण भी तन्तुमय समूहके प्रदाहकी पुष्टि करते हैं :—

६. शिरमें असह्य वेदना।
७. शुक्लमण्डलके किनारे के चारों ओर अति लाली आना।
८. शुक्लमण्डलकी पिछली तह में सूक्ष्म-सूक्ष्म अपारदर्शक बिन्दु बनना।

कितनेक चिकित्सक तन्तुमय समूहके प्रदाहके एकसे अधिक प्रकार करते हैं। अन्य कितनेक इस एकही रोगके स्वरूपमें न्यूनाधिकता मानते हैं।

कारण—इस रोगका मुख्य कारण आंख पर होने वाली चोट है। बाहरसे लग जाने पर इस रोगकी उत्पत्ति की विशेष सम्भावना है। एवं कांचबिन्दुकी शस्त्र क्रियासे भी यह रोग कभी होजाता है।

कितनेक वर्षों पहले कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रियासे तन्तुमय समूहका प्रदाह होना, वह महा आपत्ति मानी जाती थी। वर्त्तमान में स्वच्छताके नियमोंका अधिक पालन होनेसे वह डर कितनेक अंशमें दूर हुआ है। नेत्र पर आघातके अतिरिक्त कतिपय विषजन्य ज्वर तथा रोमान्तिका और शीतला जैसे जनपद व्यापी ज्वरोंमें यह उपद्रव रूपसे उपस्थित होजाता है।

साध्यासाध्यता—प्रारम्भसे ही योग्य उपायका आश्रय लिया जाय और रोग अधिक उग्र न हो तो कितनेक अंशमें दृष्टिका रक्षण हो सकता है। रोग प्रबल होने पर प्रायः दृष्टि नष्ट होजाती है।

उपचार—तारामण्डल प्रदाहमें कहे हुए उपचार रोगी की स्थिति, नेत्र स्थिति और रोगके स्वरूपके अनुरूप किये जाते हैं।

३. तारामण्डलकी आगन्तुक व्यथा।

(*Injuries of the Iris*)

अ. घाव; आ. बाह्य पदार्थों का प्रवेश; इ. गोलक पर आघात होने पर उत्पन्न व्यथा।

अ. तारामण्डलके घाव।

(Wounds of the Iris)

तारामण्डल का घाव प्रायः नोकदार या धारदार शस्त्रसे होता है। ऐसे शस्त्रों द्वारा पहले शुक्लमण्डल तथा शुक्लमण्डल और बाह्य पटलके संगम स्थान का भेदन होता है। तारामण्डल का पर्दा इतना पतला है कि, ऐसे शस्त्रों द्वारा उसे हानि पहुंचनेके अतिरिक्त दृष्टिमणि और तन्तुमय समूहको भी चोट लग जाती है। यदि यह आघात केवल तारामण्डलमें हो तो परिणाम अधिक भयंकर नहीं आता। दृष्टिमणि और तन्तुमय समूह भी पीड़ित होजाय, तो विशेष भय माना जायगा।

तारामण्डल पर घाव होने पर जलमयरसके पूर्वखण्डमें कुछ रक्तस्राव होता है; या उस पर ही रक्त जम जाता है। परिणाममें कुछ दिनों तक वह अपना कार्य नहीं कर सकता। एवं कुछ शोथ होजानेका भी भय रहता है। ये सब लक्षण योग्य उपचार करने पर दूर होजाते हैं तथा शोथ शमन होजाता है। फिर तारामण्डल अपना कार्य नियमित करने लगता है।

यदि उसका कुछ भाग कट गया हो, तो भी उसे अपना कार्य करनेमें बाधा नहीं आती। जितना भाग कट गया हो, वहां पर न्यूनता रहती है। तारामण्डलमें बहुसंख्य धमनियाँ होनेसे उस पर शस्त्र क्रिया करनेमें तेज कैंचीसे काट लिया जाता है, तब रक्तस्राव क्वचित् ही होता है। इसका कारण यह है कि, धमनियोंके मुख तुरन्त बन्द होजाते हैं।

सूचना—कभी-कभी शुक्लमण्डलमें से तारामण्डल का कुछ हिस्सा बाहर निकल आता है। होसके तबतक उस भागको यथा स्थान तत्काल

बैठा देना चाहिये। यदि ऐसा न होसके तो चिमटेसे पकड़ कर काट देवें। हो सके तबतक तारामण्डलको घावसे बाहर न रहने देवें; अन्यथा किसी भी समय तारामण्डल और तन्तुमय समूहका शोथ होजाने की सम्भावना है।

आ. तारामण्डलमें बाह्य पदार्थ का प्रवेश।

(Foreign bodies in the Iris)

कभी-कभी लोहे के कण और अन्य पदार्थ शुक्लमण्डलका भेदन करके तारामण्डलमें प्रवेशित हो जाते हैं। ऐसे पदार्थ गिरने पर तुरन्त निकालने का प्रयत्न किया जाय तो सरलतापूर्वक निकल सकते हैं। कुछ समय जाने पर लोहे पर जंग उत्पन्न होता है। चारों ओर रक्तस्राव होता है और शोथ आजाता है। इन ३ हेतुओं से लोहका कण दिन-प्रति-दिन निस्तेज होने लगता है। फिर प्रतीत होने की संभावना कम हो जाती है। बाह्य पदार्थ जब तक न निकाला जाय, तब तक शोथ तारामण्डल पर बढ़ता जाता है। अतः बाह्य द्रव्यों को हो सके उतना शीघ्र निकालना चाहिये।

बाह्य द्रव्यों को निकालने की विधि—ग्रेफे के शस्त्र या त्रिकोणाकार शस्त्रसे शुक्लमण्डलका छेदनकर उस द्रव्य वाले प्रान्तको चिमटे से पकड़कर दूषित भाग को कैंची से काट देवें। कभी-कभी लोहकणों को राक्षसी चुम्बक द्वारा निकाला जाता है।

इ. गोलक पर चोट।

(Wounds on Eyeball)

जब किसी जड़ पदार्थ मुट्ठी, गेंद, पत्थर, लकड़ी आदि का आघात पहुँचता है, या अंधकार में नेत्रगोलक दीवार की कील, खम्भे आदि को लग जाता है, तब जलमय रसके पूर्व खण्डमें रक्तस्राव होता है। एवं तारामण्डल पर भी चोट पहुँच जाती है। परिणाममें निम्न विकृति प्रकाशित होती हैं :—

A. तारामण्डल का विच्छेद—Iridodialysis.

B. तारामण्डल वियोग—Traumatic Aniridia.

C. कनीनिका में चीरे—Lacerations of Pupil.

D. तारामण्डल में चीरे—Laceration of Iris.

A. तारामण्डल का विच्छेद।

(Iridodialysis)

तारामण्डलका विच्छेद होने पर परिधि प्रान्त तन्तुमय समूह से मुक्त हो जाता है (टूट जाता है)। इसके परिणाम में एक खास दृश्य प्रतीत

होता है। जिस नेत्रवैद्य ने उसे देखा हो वह उस स्थिति को कभी भूल नहीं सकेगा। अपरिचित चिकित्सक और विद्यार्थी वर्गके लिये उसका विवेचन करते हैं।

तारामण्डल स्वाभविक स्थितिमें गोल पर्दा रूप है। किनारेका सब भाग तन्तुमय समूहसे संलग्न है। जब कुछ भाग वहाँ से टूट जाता है तब उतना हिस्सा कनीनिकाकी ओर सरक जाता है। वह सरका हुआ भाग पहले गोल होता है फिर खिंचावके हेतुसे सीधी पंक्ति रूप बन जाता है। जिससे टूटे हुए भाग और परिधिके बीच खाली जगह होजाती है। वह स्थान तारामण्डलकी अपेक्षा विशेष काला होता है। उसका आकार गोल वस्तुमें से कटे हुए छोटे टुकड़े के समान होता है। अतः बाहर की ओर गोल तथा कनीनिकाकी ओर सीधा भासता है। इस रिक्त स्थानका नाप टूटे हुए भागके अनुरूप बड़ा छोटा होता है। अधिक भाग टूटा हुआ हो तो वह भाग बड़ा और कम टूटा हो तो छोटा होता है।

पर्दा मूलमें से टूटनेके हेतुसे जलमय रसके पूर्वखण्डमें अच्छी तरह रक्तस्राव होता है। फिर दृष्टि तुरन्त बन्द होजाती है। पश्चात् रक्त का जमाव शनैः-शनैः शोषित होजाता है। कभी तारामण्डलका प्रदाह होजाता है। कनीनिका स्वच्छ होजानेके पश्चात् कुछ समय तक कनीनिका में से एवं रिक्त स्थानमें से दृष्टि पड़ती है। दो स्थानोंसे दृष्टि और प्रकाशके किरणों का नेत्रमें प्रवेश होनेसे रोगी को दो-दो भासते हैं; जिससे व्याकुलता होती है। कितनेक रोगियोंमें कुछ समयके पश्चात् नेत्रदर्पणमें एवं कांचरूप रसमें विकृति होने लगती है। परिणाममें दृष्टि बन्द होजाती है।

उपचार—टूटा हुआ पर्दा किसी भी उपचारसे तन्तुमय समूहको चिपक नहीं सकता। दो कनीनिका होने पर रोगीको व्यथा होती हो, तो पीड़ा शमन होजाने पर तारामण्डलके पर्दका छेद करें। रक्तशोषणार्थ एट्रोपीन और डायोनिनकी बूंद डालें।

B. तारामण्डल का वियोग।

(Traumatic Aniridia)

कभी शस्त्रक्रियामें अन्तराय आजाने या नेत्र पर चोट लग जाने पर तारामण्डल मूलमें से बिल्कुल टूट कर पृथक् होजाता है। फिर गेंडुरी बनकर जलमय रसके पूर्वखण्डके तलमें गिर जाता है। एकाध दिनमें संमिलित रक्तके विशेषांशका शोषण होजाता है। यदि नेत्रके बाह्यपटलमें चीरा

होगया हो तो कभी उसमेंसे पूरा तारामण्डल या कुछ अंश बाहर निकल आता है। इस तरह तारामण्डल निकल जाने पर रोगीसे प्रकाश सहन नहीं होता। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर नेत्र धीरे-धीरे सहनशील बन जाता है। कभी नेत्रदर्पणको धीरे-धीरे हानि पहुँच जाती है।

उपचार—इस पर किसी भी उपचार से लाभ नहीं पहुँचता।

C. कनीनिका के किनारे पर चीरे।

(Lacerations of Pupillary Margin).

क्वचित् तारामण्डल पर चोट पहुँचने पर कनीनिका के किनारे पर चीरे पड़ जाते हैं। परिणाम में तारामण्डल का कितनाक हिस्सा परिधि की ओर खिंच जाता है। कभी इस प्रकार की हानि से कनीनिका आजीवन चौड़ी रह जाती है।

D. तारामण्डल का चीरा।

(Laceration of Iris).

कभी-कभी कनीनिका से तारामण्डल की परिरिध तक एक चीरा होजाता है। कभी तारामण्डलके सिरेका भाग तन्तुमय समूह पर मुड़ जाता है। इन सब व्यथाओं के हेतुसे कनीनिकाके आकार में अन्तर होजाता है।

४. तारामण्डल के अर्बुद।

(Tumours of the Iris)

तारामण्डल की ग्रन्थियों में निम्न ५ प्रकार होते हैं :—

अ. उपदंशज ग्रन्थि —Condyloma.
आ. क्षयज ग्रन्थि —Tuberculous.
इ. रस ग्रन्थि —Serous Cysts.
ई. मांस ग्रन्थि —Sarcoma.
उ. कीटाणुजन्य ग्रन्थि—Parasitic.

अ. तारामण्डलमें उपदंशज ग्रन्थि।

(Condyloma of Iris).

चित्र नं० ९४ देखें। फिरंग की तृतीयावस्था में कभी राई से मूंग या चने जितनी बड़ी ग्रन्थि तारामण्डल पर होजाती है। सूक्ष्म निरीक्षण करने पर यह विदित होजाती है। रोगी को उपदंश हो जाने का निश्चय होने पर रोग निर्णय सरलता से हो जाता है।

लक्षण और चिह्न—ये ग्रन्थियाँ पीताभ रक्त होती हैं। कनीनिका के किनारे के लगभग या तारामण्डल के परिधि प्रान्त में होती हैं। बीचके हिस्से में नहीं होतीं। यह चिह्न निदान को अनुमोदन देता है। उक्त ग्रन्थियों के हेतु से तारामण्डल का कुछ प्रदाह होजाता है। इससे प्रदाह के लक्षण उपस्थित होते हैं।

उपचार—पारद और पोटास आयोडाइड आदि, जो उपदंश पर व्यवहृत होती हों, उन औषधियों का सेवन कराना चाहिये। एवं तारामण्डल के प्रदाह में उपयोगी स्थानिक औषधों का अञ्जन करना चाहिये।

आ. तारामण्डलमें क्षयज ग्रन्थियाँ।

(Tuberculous Tumours)

ये ग्रन्थियाँ विशेषतः २० वर्ष से कम आयुवालों को नहीं होतीं। इससे पीड़ित रोगी बहुधा कृश होते हैं। प्रायः क्षय या कण्ठमाला के लक्षण देह के अन्य भाग में प्रतीत होते हैं। जब क्षय का प्रारम्भ तारामण्डल में ही होता है। तब देह में अन्यत्र लक्षण नहीं मिलते।

क्षयग्रन्थि प्रकार—१. तारामण्डल पर फैली हुई सूक्ष्म-सूक्ष्म ग्रन्थियाँ; २. एक बृहद् ग्रन्थि। ये सब ग्रन्थिया विशेषतः पारदर्शक और भूरे रंग की होती हैं। इस हेतुसे तारामण्डलप्रदाह होता है। फिर प्रदाह के लक्षण प्रकाशित होते हैं।

रोग विनिर्णय—रोगीकी आयु, ग्रन्थि प्रकार, कृश देह आदि पर लक्ष्य देनेसे रोग निर्णय होजाता है।

उपचार—रोग प्रारम्भसे ही निर्णित होजाय, तो पौष्टिक औषधियां देनी चाहिये। ट्यूबरक्युलिन गव्यका अन्तःक्षेपण करें। केकोडीलेट ऑफ ग्वायेकोलके प्रवाहीको नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे प्रवेश करावें। रोगीको खुली वायुमें रखें। ये सब चिकित्सा हितकारक हैं। नेत्रमें एट्रोपिन आदि डाल कर दृष्टिका रक्षण करा सकते हैं।

सूचना—यदि रोग बहुत बढ़ गया हो तो प्रायः दृष्टि नष्ट होजाती है। इसके अतिरिक्त देहके अन्य भागमें क्षय होजाने का डर रहता है। इस हेतुसे ऐसी स्थिति का निर्णय होने पर गोलकको शीघ्र निकाल देना चाहिये।

इ. तारामण्डलकी रसग्रन्थियां।

(Cysts of Iris).

इस प्रकारके रसार्बुद कभी-कभी तारामण्डलमें निर्माण होते हैं।

इन ग्रन्थियोंके भीतर जल सदृश प्रवाही रहता है। वे दिन-प्रति-दिन बढ़ती जाती हैं। परिणाममें नेत्रान्तर दबाव बढ़ कर दृष्टि को हानि पहुँचा देते हैं। इन ग्रन्थियोंकी उत्पत्ति स्थान गर्भभागमें है। इससे उसके ऊपरका बाह्यावरण क्षीण हुए तारामण्डलसे बनता है। उनके भीतर जलके सदृश प्रवाही रहता है। जैसे-जैसे वह आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे जलमय रसके पूर्वखण्डको प्रतिबन्ध होता जाता है। उस स्थिति की प्राप्ति होनेके पहले यदि ग्रन्थिको निकाल दिया जाय, तो दृष्टि का रक्षण होजाता है।

उपचार—शुक्लमण्डलमें छिद्र कर चिमटेसे ग्रन्थिमय तारामण्डलको पकड़ उसे कैंचीसे काट कर निकाल डालें। उस क्रियासे प्रायः ग्रन्थि निकल जाती है और नेत्र बच जाता है।

ई. तारामण्डलका मांसार्बुद।

(Sarcoma of the Iris)

मांसार्बुद जिस तरह देहके अन्य भागमें होता है, उस तरह अति क्वचित् तारामण्डल पर भी होजाता है। इसका प्रारम्भ तारामण्डलमें होता है। फिर उसका भेदन कर जलमय रसके पूर्वखण्डमें प्रवेश कर फिर बाह्य नेत्रपटलका भेदन कर बाहर बढ़ने लगता है। यह काला या पिंगल (तमाखू) रंगका होता है। कुछ समय तक शनैः-शनैः बढ़ कर फिर वेग-पूर्वक बढ़ने लगता है।

उपचार—इस अर्बुदका निर्णय प्रारम्भ कालमें होजाय तो तारा-मण्डलको काट देनेसे प्रायः आंख बच जाती है। रोग बढ़ने पर गोलक को निकाल देनेके अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है।

चित्रफलक नं० ७

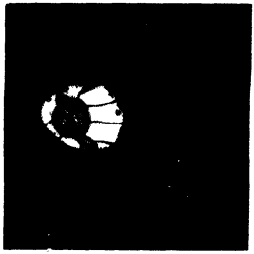

चित्र. ९०, पृ. ३९७
दृष्टिचेतामध्यस्थ प्रलम्बन।

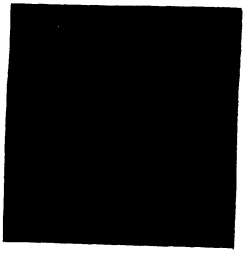

चि. ९९, पृ. ४२७
मस्तिष्कात्मक नेत्रमध्यपटलप्रदाह।

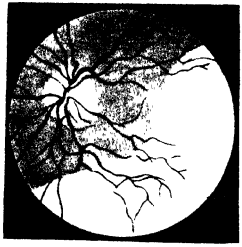

चि. १०१, पृ. ४३४
नेत्रमध्यपटलमें दुष्टमांसार्बुद।

चि. १३५, पृ. ५६५
नेत्रदर्पणमें नाड़ीग्रन्थि।

चि. १२८ पृ. ४३३ नेत्रमाणपटलका भेदन

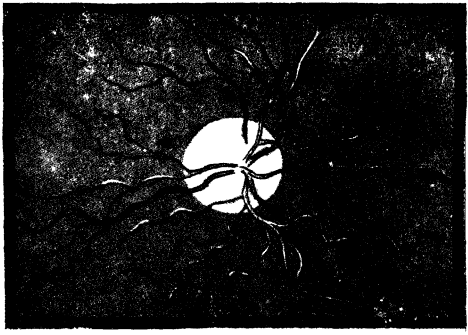

चि. १२९, पृ. ५४९ नेत्रदर्पण मे धमनीकोष काठिन्य।

चौदहवां प्रकरण ।

नेत्रमध्यपटलके रोग ।

(Diseases of Chorioid)

तन्तुमय समूहके रोगको देख नहीं सकते; किन्तु मध्यपटलके रोगों-को नेत्र-दर्शक यन्त्र द्वारा देख सकते हैं, इस हेतुसे इस पटलकी व्याधियों का अभ्यास विद्वानोंने अधिक सूक्ष्मतापूर्वक किया है ।

इस पटलमें रोग होने पर केवल नेत्रसे देखने पर कुछ भी परिवर्त्तन प्रतीत नहीं होता । नेत्रदर्शक यन्त्रकी सहायता बिना परीक्षा करने वालों को नेत्र स्वस्थ भासता है । यदि रोग बहुत बढ़ गया हो और दृष्टिको अच्छी तरह हानि पहुँची हो, तो कनीनिकाकी गतिमें न्यूनता विदित होती है । बाहरसे रोगकी प्रतीति नहीं होती । रोगीकी दृष्टि मन्द होती जाती है, ऐसी वह पुकार करता है ।

व्याधि विभाग—नेत्रदर्शक यन्त्रकी परीक्षा द्वारा प्रतीत होने वाले परिवर्त्तन अनुसार दो विभाग किये गये हैं । १. रसस्रावात्मक (Exudative); २. पूयात्मक (Purulent) । रसस्रावात्मक प्रदाहमें स्थान-स्थान पर रसस्राव जम जाता है और पूयात्मकमें पूयोत्पत्ति होती है ।

१. रसस्रावात्मक मध्यपटलप्रदाह ।

(*Exudative Choroiditis*)

प्रकरण १३ में चित्र नं० ९९ देखें । बाहरसे नेत्र स्वस्थवत् भासता है; किन्तु दृष्टि मन्द होती जाती है । इस हेतुसे रोगी नेत्रवैद्यके पास जाता है । रोगीको दृष्टिके सामने काले धब्बे भासते हैं । यदि दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र (Perimeter चित्र नं० ३४) से परीक्षा की जाय, तो कुछ हिस्सेमें दृष्टि बन्द होनेका अवगत होता है । पेरीमीटरका वर्णन विस्तारपूर्वक पहले परीक्षा प्रकरणमें समझाया गया है । उस परीक्षा द्वारा दृष्टिक्षेत्रके धब्बेका भी निर्णय हो जाता है ।

रसस्रावात्मक प्रदाह होने पर दृष्टिमर्यादाका संकोच होता है । इतना ही नहीं, इस दृष्टिमर्यादाके भीतर भी बीच-बीचमें कुछ भागकी

अन्धता आ जाती है। जैसे-जैसे रोग आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे दृष्टि कम होती जाती है। यदि अनुषङ्गी तन्तुमय समूह या तारामण्डलका प्रदाह होजाय अथवा कांचरूप रसमें अपारदर्शकता उत्पन्न हो जाय, तो दृष्टि विशेष मन्द हो जाती है; किन्तु इस विकारमें रोगीको बहुधा पीड़ा नहीं होती।

इस रोगमें पैरीमीटरके अतिरिक्त जेरमके पर्दे (चित्र नं० ३७) और विविध प्रकारके स्कोटोमीटर (चित्र नं० ३६) का भी उपयोग होता है। उनकी रचना और उपयोग सामान्य चिकित्सकोंकी समझमें नहीं आ सकेगी, इसलिये यहाँ विशेष विस्तार नहीं किया।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर दर्शननाड़ीके सिरेसे लेकर नेत्रदर्पणकी परिधिके भाग तक छोटे-मोटे दाग दृष्टिगोचर होते हैं। प्रारम्भमें ये दाग कुछ श्वेताभ होते हैं। जिससे उस तरह निश्चयपूर्वक नहीं विदित होता। रोग बढ़ने पर ये दाग कुछ पीताभ होते हैं। फिर वे सरलतासे निर्णित हो जाते हैं। अनेक बार इन दागोंका किनारा गाढ़ा काला होता है। रोग लम्बे समय तक चलनेके पश्चात् दाग पुनः बिल्कुल श्वेत हो जाते हैं। जिससे नेत्रदर्पण एवं नेत्रमध्यपटल उस स्थानसे शोषित होकर लगभग नष्ट हो जाता है, फिर नेत्रबाह्यपटल सफेद भासता है। इन दागोंका आकार अनियमित होता है। गोल, लम्बगोल या किसी भी आकारका होता है। नेत्रदर्पणकी शिराएं उन दागों परसे निकलती हुई भासती हैं। कभी इन दागोंका शोषण होकर मध्यपटल स्वस्थ बन जाता है।

प्रदाह प्रकार—उन दागोंकी संख्या और स्थानभेदसे प्रदाहके ५ प्रकार होते हैं। १. बिखरे हुए दाग युक्त; २. मध्यस्थ; ३. वृद्धावस्थाजन्य मध्यस्थ; ४. बिन्दु आकार; ५. उपदंशज। यथार्थमें ये सब एक ही रोगके प्रकार भेद हैं। लक्षण भी प्रायः समान ही होते हैं। किन्तु मध्यस्थ प्रदाह पीत बिन्दु को रोगग्रस्त करता है। इससे दृष्टिमें विशेष हानि पहुँचाता है। परिधि भागमें प्रदाह हो उससे दृष्टि बहुधा दीर्घकाल पर्यन्त बनी रहती है।

इस प्रदाह रोगमें प्रदाहजन्य लक्षणोंके अतिरिक्त जो वस्तु दीखती है, उसका आकार बदला हुआ तथा कद भी न्यूनाधिक भासता है। कभी-कभी नेत्रके समक्ष काले धब्बे देखने में आते हैं। कितनेक रोगी नक्तांध्य हो जाते हैं।

कारण—इस रोगका कारण अनेक बार निर्णित नहीं होता। उपदंश

के विषसे यह उत्पन्न हो सकता है; एवं यह क्षयजन्य भी होता है। जन्म-सिद्ध कांचबिन्दुके साथ भी इस व्याधिका प्रकाशन होता है।

उपचार—उपदंशज प्रदाह पर जितनी चिकित्सा सफल होती है, उतनी अन्य कारण होने पर सफल नहीं होती। रोग शनैः-शनैः आगे बढ़ कर जब पीतबिन्दु तक पहुँच जाता है, तब दृष्टि को बहुत हानि पहुँच जाती है।

उपचारमें मुख्य पारद की बनावट दी जाती है। पारदकी दवाओंके सम्बन्धमें पहले विस्तारपूर्वक लिखा गया है। पोटास आयोडाइड भी पीनेके लिये हितकर है। क्षयजन्य विकारमें कॉडलिवर तैल आदि पौष्टिक औषधियों, सोडियम मोरोल और म्यूबरक्यूलिनके अन्तःक्षेपणसे लाभ होने की आशा रख सकते हैं। कुछ वर्षोंसे नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण होता है, उससे अच्छा लाभ पहुँचता है।

कितनेक नेत्रवैद्य नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपणार्थ नमकप्रवाही का उपयोग करते हैं; अन्य कितनेक मर्क्युरी सायानाइड और आयोडीनके प्रवाहीको व्यवहारमें लाते हैं। कितनेक चिकित्सक निराशा दर्शाते हैं। फिर भी असाध्य स्थितिकी प्राप्ति होनेके पहले ऐसे उपचार करनेमें किसी भी प्रकारकी हानि नहीं है। कुछ लाभ हो तो अच्छा ही माना जायगा।

कितनेक चिकित्सकों को डायोनिनकी बूंद डालने से लाभ की प्रतीति हुई है। उपदंशज प्रदाहमें तो औषधोपचारसे संतोष मिलता ही है। अन्य प्रकारोंमें जितना लाभ हो, उतने अंशमें रोगीको भाग्यवान माना जायगा।

२. पूयात्मक नेत्रमध्यपटल प्रदाह।

(*Suppurative or Purulent Chorioiditis*)

इस प्रकारमें मध्यपटल और नेत्रदर्पणके बीचमें पूयसंग्रह होता है। वह पूय मध्यपटलमेंसे निकलता है। ऐसी मान्यता होनेसे इस रोगको मध्यपटलके रोगमें स्थान दिया गया है। यह रोग बहुधा छोटे बालकों को अधिक और बड़ी आयुवालोंको कम परिमाण में होता है।

लक्षण और चिह्न—समस्त नेत्रगोलक लाल होजाना, श्लेष्मावरण के नीचे रससंग्रह होनेसे उभड़ आना, पलक पर शोथ, नेत्रगोलक बड़ा भासना, कनीनिका की गतिमें न्यूनता, रोग कुछ बढ़ने पर कनीनिका के आकुंचन-प्रसारण का अभाव तथा पूय की आभा के हेतुसे कनीनिका काली के बदले में पीली भासना, आदि चिह्न प्रतीत होते हैं। यदि नेत्रदर्शक यन्त्र से नेत्र के भीतर प्रकाश डाला जाय, तो कांचरूपरस का रंग कुछ

पीताभ भासता है। रोग बढ़ने पर शुक्लमण्डल निस्तेज बन जाता है और अनेक बार पक जाता है। जलमय रसके पूर्व खण्डमें पूय दीखता है। तारामण्डल बीच के हिस्से में से आगे के भाग की ओर उभड़ आता है। एवं वह अनेक स्थानों में दृष्टिमणि के आवरण को चिपक जाता है। ऐसी अवस्था होने पर आंख के भीतर ग्रन्थि होने का संशय होता है प्रायः नेत्रगोलक विद्रधि रूप धारण करता है। समय जाने पर बाह्य पटल या शुक्लमण्डल में से फूटता है, फिर वेदना शमन हो जाती है। पूय निकल जाने पर गोलक का शोषण होने लगता है। प्रायः फिर वेदना नहीं होती। एवं दूसरी आंख का प्रदाह भी प्रायः नहीं होता।

कारण—इस रोग की उत्पति नेत्रमें कुछ नोकदार शस्त्र लगने पर होती है। अतः नेत्रके भीतर रोग बीज का प्रवेश बाहर से होता है। जब किसी भी प्रकार का बाह्य घाव न लगने पर यह उत्पन्न होता है, तब भीतर के विष से उत्पन्न होने का माना जाता है। भीतर में रोग के कारण रूप—मस्तिष्कप्रदाह, काली खांसी, रोमान्तिका, शीतला, मुहती ज्वर, रक्तमें पूय-प्रवेश आदि मुख्य हैं। अनेक बार उपदंश के साथ भी इस रोगके सम्बन्ध की कल्पना की जाती है। कितनीक बार देहके अन्य भाग में विद्रधि होने पर उसका सम्बन्ध किसी शिरा के साथ होता है, फिर उस शिराके रक्तमें से पूयमय रक्त गोलकके भीतर पहुँच कर रोगोत्पत्ति करा देता है। कभी-कभी इस रोग का कारण दाँतोंमें अवस्थित पूय, अन्त्र का चिरकारी प्रदाह या नाक और उसके साथ सम्बन्ध रखने वाले वायु वाले कोटर हो जाते हैं।

साध्यासाध्यता—बहुधा इस रोग से दृष्टि और नेत्र का नाश होता है। यदि रोगी भाग्यवान हो तो कभी रोग कुछ बढ़कर फिर शान्त होने लगता है और दृष्टि कुछ बच जाती है। ऐसे उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। विशेषतः गोलक फूट कर नष्ट हो जाता है।

उपचार—दृष्टि को निश्चयपूर्वक बचा सके ऐसा उपचार इस रोग के लिये प्रायः नहीं है। विविध प्रकार के गव्यों का प्रयोग होता है। नेत्र-श्लेष्मावरण के नीचे रसकर्पूर और मर्क्युरी सायानाइड जैसी औषधों को प्रवेशित कराते हैं। एवं सोडा सेलिसिलिस और सोडा सल्फोकार्बोलस जैसी औषधों का उदरसेवन कराया जाता है। इससे रोग दूर होने के उदाहरण बार-बार प्रकाशित किये जाते हैं। किन्तु इन उपचारों की सफलताका पूर्ण निश्चय नहीं हो सका। पेनिसिलीन (Penicillin) का प्रयोग कदाच नेत्रका रक्षण करा सकेगा, ऐसा अनुमान है।

पीड़ाशमनार्थ बोरिक धावन या अफीम की डोंडियों का सेक, पुल्टिस अथवा एन्टिफ्लोजिस्टीन आदि प्रयोग किये जाते हैं। उनसे पूयको बाहर आने में भी सहायता मिल जाती है। जब पूय स्पष्ट प्रतीत हो जाय, तब चीरा देकर बाहर निकाल देना चाहिये।

नेत्रगोलक को निकाल देने के सम्बन्ध में दो मत हैं। कितनेक चिकित्सकों को नेत्रगोलक निकालनेके परिणाममें मस्तिष्कशोथ और फिर मृत्यु का अनुभव हुआ है, वे इसके विरुद्ध हैं। जिनको ऐसे दूषित परिणाम का अनुभव नहीं हुआ, वे गोलकके निकाल देने को अच्छा मानते हैं।

जो भय गोलक को निकाल देने में है, वह भय बाह्यपटल रख कर गोलक को खाली कर लेने में नहीं है। अतः जब कुछ संदेह रहता हो तब गोलक को खाली कर लेना, वह मार्ग श्रेयस्कर है।

३. नेत्रमध्यपटल की आगन्तुक व्यथा।

(Injuries of the chorioid)

नेत्रमध्यपटल की व्यथाओं में घाव, विच्छेद, बाह्य पदार्थों का प्रवेश, मध्यपटल का भेदन, मध्यपटल में से रक्तस्राव, ये मुख्य हैं।

अ. मध्यपटल के घाव।

(Wounds of Choroid)

मध्यपटल इस तरह नेत्रमें रहा है कि, शुक्लमण्डल अथवा बाह्यपटल पर घाव हुए बिना मध्यपटल को हानि नहीं पहुँच सकती। कितनेक समय धारवाले शस्त्रसे नेत्रमें चोट लगे और वह मध्यपटल तक पहुँचे तो उस पर घाव होता है। मध्यपटल में धमनियां अधिक होने से कांचरूप रसमें रक्तस्राव होता है। उस हेतु से दृष्टि मंद हो जाती है। फिर जब रक्त का शोषण होजाता है और घाव भर जाता है, तब दृष्टि की पुनः प्राप्ति हो जाती है। यदि घाव दूषित हुआ हो, तो गोलक पक जाता है, इस सम्बन्ध का विशेष विचार बाह्यपटल के घाव में दर्शाया है।

कभी नेत्रश्लेष्मावरण न टूटने पर भी नेत्रबाह्यपटलमें चीरा हो जाय तो उसमेंसे मध्यपटल बाहर निकल आता है। गोलक का घाव यदि पिछले हिस्से में हो तो प्रायः वह मध्यपटल तक पहुँचता है। यदि घाव कीटाण्ड या छूत रहित हो तो अधिक हानि पहुँचती, अन्यथा घाव पकने से मध्यपटल का प्रदाह होता है, क्वचित् समस्त गोलक का पूयमय प्रदाह हो जाता है।

उपचार—यदि नेत्रके भीतर बाह्य द्रव्य रह गया हो तो उसे निकाल कर फिर अन्य उपचार करें। मध्यपटल का हिस्सा बाहर निकल आया हो तो उसे भीतर बैठाने का प्रयत्न करें। यदि सरलता से न बैठ सके तो जलमय रस का स्राव करा देने पर बैठ जायगा। नेत्रबाह्यपटल में चीरा हो गया हो तो टाँका लगावें। नेत्रमें मर्क्युरीक्रोम की बून्द डालें, फिर पट्टी बांध देवें।

आ. नेत्रमध्यपटल का विच्छेद।

(Detachment of Choroid)

यह स्थिति गोलक पर मूढ़ मार लगने, गोलकके क्षय या गोलककी शस्त्रक्रियाके परिणाममें प्राप्त होती है। यह विच्छेद कभी पूर्ण और कभी अपूर्ण होता है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे जांच करने पर भीतरके भागमें कांच रूप रसके भीतर एक स्फीत, उभड़ी हुई गांठ प्रतीत होती है। मध्यपटलको नेत्रदर्पण चिपक जाता है। यद्यपि मध्यपटल की मांसल ग्रन्थिमें भी ऐसा ही देखाव होता है, तथापि रोगीका इतिहास, नेत्र का बाहर आजाना आदि चिह्नों पर से निर्णय होजाता है।

उपचार—एट्रोपिनकी बूंद डालें। रोगीको लिटाये रखें। नेत्र पर पट्टी रखें। विरेचन और स्वेदल औषध देवें। कितनेक दिनोंके पश्चात् प्रायः विच्छेद ठीक होजाता है।

इ. मध्यपटलमें बाह्य पदार्थ।

(Foreign bodies in the Choroid)

नोकदार बाह्य पदार्थ बलपूर्वक गोलकको लग जाय तो कभी-कभी उसका अणु मध्यपटलमें रह जाता है। यदि वह अणु धातु का हो तो प्रकाश किरण डालने वाले यन्त्रसे अवगत होजाता है। एवं राक्षसी चुम्बक की सहायतासे लोह किरचको निकाल भी सकते हैं। अन्य प्रकारके बाह्य द्रव्यों की प्रतीति होना कठिन है। इससे प्रायः आंख को निकाल देना पड़ता है। यदि आंख को रहने दिया और उसके शोथके परिणाममें दूसरी आँख को हानि पहुँचे तो रोगीका जीवन अधिक दुःखमय बनता है और चिकित्सक को अपयश मिलता है। नेत्रको रखना या निकाल देना, यह प्रश्न गम्भीर विचारणीय है। चिकित्सकको ही चाहिये कि बाह्य द्रव्यजनित शोथकी स्थिति परसे शीघ्र निर्णय कर लेवें।

ई. मध्यपटलका भेदन।
(Rupture of Choroid)

चित्र नं० १०० देखें। नेत्र पर प्रबल आघात लगने, नोक रहित पदार्थ की चोट, पशुओंका सींग लगने या नेत्रका किसी कठोर पदार्थ को लग जाने, शिर पर गोली लगने या बॉम का टुकड़ा लगने पर बाहर कुछ भी घाव प्रतीत न होने पर भी मध्यपटल टूट जाता है। बालक का जन्म होने पर यदि संडासी (Forceps) से प्रसव कराने का प्रयोग हुआ हो तो उसके दबावसे भी ऐसा होजाता है। इस व्यथाके परिणाममें कांचरूप रसमें कुछ रक्तस्राव होता है। उससे दृष्टिमें हानि पहुँचती है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे निरीक्षण करने पर प्रायः कनपटी की ओर अर्थात् बाहर की ओरके नेत्रमध्य पटलमें एक अर्द्ध चन्द्राकार पीले रंगका चीरा दीखता है। इस चीरेका मध्य भाग चौड़ा और सिरेका भाग सकड़ा होता है। इस चीरेके ऊपर या बाजूमें रुधिर की प्रतीति होती है। कुछ समयके पश्चात् चीरे का रंग सफेद होजाता है। ऐसे चीरे एकाध भी हो सकते हैं। उस चीरे का किनारा कुछ कृष्णाभ और अनियमित होता है। नेत्रदर्पण की धमनियाँ उस चीरे परसे निकलती हैं। किसीको नेत्रदर्पण पर भी आघात पहुँच जाता है। फिर उस पर शोथ आजाता है।

अनेक बार तारामण्डल को भी व्यथा होजाती है। परिणाममें कनीनिका का प्रसारण, तन्तुमय पेशी का बध, दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता, नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव और उसका विच्छेद आदि हानि पहुँच जाती है।

परिणाम—कुछ समय जाने पर रक्तस्राव का शोषण होनेके पश्चात् प्रायः दृष्टि सुधर जाती है। चीरा पीतबिन्दुके समीप हो या चीरेके हेतुसे नेत्रदर्पण मुक्त होजाता है, तो दृष्टि को अच्छी तरह हानि पहुँच जाती है।

उपचार—नेत्रका बिल्कुल उपयोग नहीं करना चाहिये। काले चश्मे पहन रखें। कनपट्टी पर जलौका या ग्लास लगावें। प्रारम्भमें एट्रोपिनकी बूँद डालें। नेत्र पर पट्टी बांधें। रोगीको पलङ्ग पर लिटाये रखें। कम-से-कम एक सप्ताह तक बिछौने पर ही रखना चाहिये। उदर सेवनार्थ केलोमल या मेगनेसियम सल्फेट जैसी विरेचन औषध देवें। २ सप्ताहके पश्चात् रक्तशोधक आयोडाइड सदृश औषध देनेसे लाभ पहुँचता है।

उ. मध्यपटलमें रक्तस्राव।

(Haemorrhage on the Choroid)

जिस तरह गोलकको आघात पहुँचने पर मध्यपटल टूट जाता है, उस तरह अनेक बार मध्यपटल टूटनेके अतिरिक्त उसमें रक्तस्राव भी होता है। यह रक्तस्राव मध्यपटल और बाह्यपटलके बीच अथवा मध्यपटल और नेत्रदर्पणके बीच होता है। रक्तस्राव मध्यपटल और नेत्रदर्पणके बीच हो तथा नेत्रदर्पण टूट गया हो तो रक्तस्राव कांचरूप रसमें चला जाता है; या नेत्रदर्पणकी परिधिके भागमें से दृष्टिमणि के उद्बन्धनमें से होकर जलमय रसके पूर्वखण्डमें आता है। रक्तस्राव कांचरूप रसमें हो जाने पर नेत्रदर्शक यन्त्रसे कुछ भी नहीं दीखता। यदि कांचरूप रस साफ हो तो कुछ अंशमें रक्ताभ उभाड़ विदित होता है। यह उभाड़ बीचमें अधिक लाल और किनारे पर कम लाल होता है। कुछ समयके पश्चात् वह दाग काला-सा हो जाता है और नेत्रदर्पण कुछ अपारदर्शक बन जाता है।

परिणाम—योग्य उपचार द्वारा प्रायः रक्तस्रावका शोषण हो जाता है, फिर दृष्टि पुनः प्राप्त हो जाती है।

उपचार—रोगीको लिटाये रक्खें। नेत्रको पूरा आराम देवें। आवश्यकता हो तो एट्रोपिन डालें। आँख पर पट्टी बांधें। इसके अतिरिक्त स्वेदल औषध देनेसे रक्तस्रावके शोषणमें सहायता मिल जाती है।

४. नेत्रमध्यपटलकी ग्रन्थियाँ।

(Tumours of the Chorioid)

नेत्रगोलकके सब भागोंमें अर्बुद उत्पन्न होते हैं। इन सबके भीतर मध्यपटलमें अधिक होते हैं। अर्बुदों में भी अन्य प्रकारोंकी अपेक्षा मांसार्बुद (Sarcoma) की उत्पत्तिकी विशेष सम्भावना है। अतः उसका विस्तारपूर्वक विवेचन करते हैं।

अ. मध्यपटलके मांसार्बुद।

(:Malignant Melanoma—Sarcoma of the Chorioid)

चित्र नं० १०१ देखें। यह ग्रन्थि दो जातिकी प्रतीत होती हैं। १–रंगयुक्त; २–रंगरहित। ये ग्रन्थियाँ मध्यपटलके गर्भ भागमें से उत्पन्न होती हैं। प्रारम्भमें यह ग्रन्थि उत्पन्न हो रही है, ऐसे संदेहके लिये योग्य लक्षण नहीं दीखते। प्रसङ्गवशात् गोलकके भीतरके भागोंकी

जांच की जाय, तो दर्शननाड़ीके सिरेके पासमें से या कुछ दूर किञ्चित् उभाड़ प्रतीत होता है। यदि ग्रन्थि रंगयुक्त हो तो उभाड़ काला होता है और वह सरलतासे जाना जाता है।

लक्षण और चिह्न—प्रारम्भमें नेत्र पर भारीपन, कुछ पीड़ा होना तथा दृष्टिमें थोड़ा प्रतिबन्ध, ये लक्षण भासते हैं। उस स्थितिमें चिह्न कुछ भी विदित नहीं होता। यदि नेत्रदर्शक यन्त्रसे जांच की जाय, तो किञ्चित् उभाड़ भासता है। फिर जैसे-जैसे रोग आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे वेदना बढ़ती जाती है तथा दृष्टिमें अधिक अन्तराय आता है।

चिह्नोंमें मुख्य २ चिह्न विशेष ध्यान खींचते हैं। १. नेत्रगोलकका आगे बढ़ना; २. नेत्रान्तर दबावकी वृद्धि। रोग एक आँखमें होता है। जिससे गोलक बाहर निकला है या नहीं? यह तुलना करने पर सरलता से विदित हो जाता है। एवं दोनों नेत्रोंके नेत्रान्तर दबावका नाप करने पर ग्रन्थि वाले नेत्रका दबाव बढ़ा हुआ भासता है। विशेष निर्णय गोलक के भीतरकी परीक्षा परसे हो जाता है।

रंगरहित ग्रन्थिका निर्णय करना अति कठिन है। कारण, वह चारों ओरके नेत्रदर्पण प्रदेशसे पृथक् नहीं होती। नेत्रदर्पणकी धमनियाँ उस ग्रन्थि परसे निकलती हैं। धीरे-धीरे ग्रन्थिकी वृद्धि होती जाती है। फिर कुछ समय में बाह्य पटल या शुक्लमंडल में से बाहर निकल आता है। उसके साथ नेत्रगृहके अस्थिको भी यह ग्रन्थि हानि पहुँचाती है। इतनी रोगवृद्धि होनेके पश्चात् देहके अन्य भागोंमें भी ऐसी ग्रन्थियाँ उत्पन्न होने लगती हैं। प्रारम्भमें ग्रन्थिकी उत्पत्तिके लिये नेत्रगोलक कठिन होने लगता है। उस स्थितिमें नीला कांचबिन्दु (अधिमन्थ) और इस रोगका पृथक्करण करना कठिन या बहुधा अशक्य हो जाता है। यदि कांचरूप रस आदि भाग पारदर्शक हों तो ग्रन्थि जानी जाती है; एवं दर्शननाड़ीके सिरेकी स्थितिका भी निरीक्षण हो सके तो निदानमें सहायता मिल सके।

अधिमन्थ ४० वर्षकी आयुके पश्चात् होता है और यह ग्रन्थि भी ४० और ६० वर्षकी आयुके भीतर होती है। इस ग्रन्थिके हेतुसे नेत्रदर्पण का कुछ भाग स्फीत होजाता है। इससे दृष्टिमें प्रतिबन्ध होने लगता है। यदि रोग प्रारम्भसे ही पीतबिन्दु वाले भागमें हो तो दृष्टिको प्रारम्भसे ही अच्छी तरह बाधा पहुँचती है। कितनीक बार नेत्रगोलकको अच्छी तरह हानि पहुँचानेके पश्चात् यह ग्रन्थि मस्तिष्कके निम्न प्रदेशमें फैलने लगती है।

उपचार—हो सके उतना जल्दी गोलकको निकाल देना चाहिये। यदि गोलकके अतिरिक्त चारों ओरके प्रदेशमें या नेत्रगृहकी अस्थिमें यह ग्रन्थि फैली हो तो उस भागको भी हो सके उतना तुरन्त निकाल देना चाहिये। नेत्र निकाल देनेके पश्चात् गहराईमें क्ष किरण लगावें या रेडियम का प्रयोग करें। यदि यह ग्रन्थि देहके किसी एक स्थानमें उत्पन्न हुई, तो फिर रोगीका जीवन भयमें माना जायगा। उपरोक्त मांसार्बुदके अतिरिक्त कभी क्षयज ग्रन्थि और कर्करस्फोट भी हो जाता है। इनमेंसे कर्करस्फोट अति क्वचित् होता है।

आ. मध्यपटलको क्षयज ग्रन्थियाँ (Tubercle of the Chorioid.)।

इस व्याधिके दो प्रकार हैं। १. सूक्ष्म-सूक्ष्म अनेक ग्रन्थिमय; २. बृहद् कुछ ग्रन्थिमय। जब सूक्ष्म बहुसंख्य ग्रन्थियां होती है, तब प्रायः फुफ्फुसमें इस प्रकारकी क्षयग्रन्थियां अनेक स्थानोंमें उत्पन्न हो जाती हैं। नेत्रमें उत्पन्न ग्रन्थि फुफ्फुस आदिके क्षयके उपद्रव रूप होती हैं।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर मध्यपटलमें कुछ पीताभ दाग दीखते हैं, जो दर्शन तन्तुके सिरेमे लगभग आधे कदका उभड़े हुआ होता है। एक समय देखनेके कुछ दिनोंके बाद पुनः देखा जाय, तो दाग पहलेकी अपेक्षा अधिक बड़े भासते हैं। इन दागोंका किनारा काला नहीं होता। इन दो लक्षणों परसे मध्यपटलके रसात्मक प्रदाहके दागोंसे यह पृथक् हो जाता है।

गिनती की संख्यामें बड़ी ग्रन्थियां भी प्रायः देहके क्षयके उपद्रव रूप होती हैं। कदाच अन्यत्र रोगकी प्रतीति होनेके पहले नेत्रके भीतर देखनेमें आवें, तो यह रोग दर्शन नाड़ीके सिरे और पीतबिन्दुके चारों ओर होनेसे दृष्टिको प्रारम्भसे ही हानि पहुँचाता है।

परिणाम—मांसार्बुदके समान इस रोगसे भी नेत्रका रक्षण होनेकी संभावना नहीं है। फिर भी प्रारम्भावस्थामें ट्यूबरक्युलिन गव्यका उपयोग करना अच्छा माना जायगा।

उपचार—ट्यूबरक्युलिन गव्यसे कितनेक रोगियोंको अच्छा लाभ पहुँचता है। अन्य भागोंमें क्षयके लिये जो उपचार किये जाते हैं, वे उपचार इस रोगपर भी करना चाहिये। कॉडलिवर तैल, सिरपफेरी आयोडाइड, न्युक्लिन, सुवर्ण मिश्रित औषधियाँ, स्वर्णमालिनी वसंत आदि, च्यवनप्राशावलेह तथा अन्य पौष्टिक और रक्तशोधक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। केकोडीलेट ऑफ ग्वायेकोलके प्रवाहीका नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे

अन्तःक्षेपण करें। यदि इन प्रयोगोंसे सफलता न मिले एवं रोग नेत्रके अतिरिक्त अन्य भागोंमें न हो और फैलता हुआ रोकना हो तो नेत्रको निकाल देना, यही श्रेयस्कर माना जायगा।

यदि अन्य स्थानोंके अनुषंगी या उपद्रव रूप व्याधि हो तो रोगीकी स्थिति दयाजनक मानी जाती है। बहुधा क्षयकी अन्तिमावस्थामें यह रोग उपस्थित होता है।

लघुदृष्टिजन्य मध्यपटलमें परिवर्तन।

(*Myopic Chorioiditis*)

इस रोगका वर्णन लघुदृष्टिके प्रकरण २९ वें में आगे किया जायगा।

नेत्रमध्यपटलकी जन्मलब्ध अपूर्णता।

(*Congenital Defects*)

जन्मजात अपूर्णतामें मुख्य २ हैं। अ. मध्यपटलमें छिद्र; आ. मध्यपटलका वर्ण परिवर्तन।

अ. मध्यपटलमें छिद्र (Coloboma of the Choroid)।

तारामण्डलके जन्मसिद्ध छिद्रके वर्णनमें कहा गया है कि, उस स्थिति में अनेक बार मध्यपटलमें भी छिद्र होता है। इस छिद्र की प्रतीति नेत्र-दर्शक यन्त्रसे होती है। रोगीकी परीक्षा अँधेरे कमरेमें की जाती है। इस छिद्रका प्रारम्भ दर्शननाड़ीके सिरेके नीचेसे होता है; और वह हम देख सके उतने दूर तक होता है। इस छिद्रका देखाव काले पटल में बिल्कुल सफेद रंगके लम्बगोल दागसा भासता है। दागका किनारा अति स्पष्ट होता है, उस पर कभी काले चिह्न होते हैं। नेत्रदर्पण, मध्यपटल और बाह्यपटलमें रही हुई रक्तवाहिनियां उक्त दाग परसे निकलती हैं। जो श्वेत भाग भासता है वह मध्यपटलके अभावके हेतुसे बाह्यपटलका हिस्सा प्रतीत होता है। इस स्थितिके हेतुसे कभी-कभी समग्र गोलक भी छोटा होता है। उक्त श्वेत भागमें दृष्टि नहीं होती, यह निर्णय पैरीमीटर या दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्रसे होता है। ऐसे नेत्रोंमें भविष्यमें काँचबिन्दु आनेकी विशेष संभावना है।

उपचार—कुछ भी नहीं है।

आ. मध्यपटलका वर्ण परिवर्तन (Pigmentary Changes in Choroid)।

भूरे लोगोंमें मध्यपटल विशेष लाल रंगका होता है और उसमें अवस्थित रक्तवाहिनियां अति स्पष्ट भासती हैं। कभी-कभी मध्यपटलका रंग कालेके स्थान पर स्लेट (Slate) जैसा होता है।

पन्द्रहवां प्रकरण ।

समदुःखी चक्षुप्रदाह ।

(Sympathetic Ophthalmia)

एक नेत्रमें शोथ होने पर उसके परिणामस्वरूप दूसरे नेत्रमें शोथ आ जाता है, या दूसरा नेत्र सहानुभूति प्रकाशनार्थ शोथको ग्रहण कर लेता है, इसलिये उसे समदुःखी चक्षुप्रदाह कहते हैं। इस तरह इस रोग में एक नेत्रके साथ दूसरे नेत्रका भी नाश हो जाता है।

इस रोग का परिणाम अति भयंकर है। यदि इसका स्वरूप पहले से चिकित्सक जान सकें, तो योग्य चिकित्सा द्वारा उसका निरोध कर सकते हैं। हमने इस रोगका अनेक बार अनुभव किया है। इस हेतुसे इसका अनुभव पूर्ण विवेचन पाठकों के बोध के लिये देते हैं।

किसी एक चक्षुमें हानि पहुँची या उसमें कुछ बाह्य द्रव्य रह गया, तो फिर तारामण्डल और तन्तुरूपसमूह आदि अवयव प्रदाहग्रस्त होते हैं। कभी पूयोत्पत्ति या विद्रधि न होने पर भी नेत्रमें अतिशय वेदना होती है। यह वेदना कितनेक सप्ताह पर्यन्त दुःख देती है, और अन्त में दृष्टि बन्द होजाती है। नेत्रगोलक कायम रहता है अथवा उसका शोषण हो जाता है। रोगी मान लेता है कि, एक आँख गई किन्तु पीड़ा शान्त होगई। दूसरी आँख से ही संतोष मान लेता है। फिर कुछ सप्ताह या मास के पश्चात् रोगी सुबह उठता है तब दूसरे नेत्रमें कुछ वेदना सह अश्रुस्राव होने लगता है; तथा प्रकाश की असहनता होती है। पीड़ा कुछ बढ़ती है, गोलक में दर्द होने लगता है। शुक्लमण्डल के किनारे के चारों ओर लाली आ जाती है, इस तरह २-४ दिन निकलते हैं। पहले घरेलू उपचार और फिर सामान्य चिकित्सक का आश्रय लेता है। वह सीस शर्करा (शुगर लेड) के फोहे देता है; या कास्टिक अथवा नीलेथोथेके बूँद डाल देता है। शनैः-शनैः दृष्टि कम होती जाती है। पहली आंख के शोथसे इसका सम्बन्ध होगा, यह विचार रोगी और चिकित्सक को नहीं आता। दूसरी आँख को बचानेके लिये पहले खराब हुई आँख को निकाल देना चाहिये; किन्तु अधिक विकार फैल जाने तक योग्य नेत्रचिकित्सक की सलाह नहीं ली

जाती और समय निकल जाता है। फिर कुशल नेत्रवैद्यके पास जाने पर रोग का निदान होता है, कि पहली आँखके परिणाममें ही इस आँखमें व्याधि उत्पन्न हुई है। गई हुई आँख को निकलवा देने पर कदाच दूसरी आँख बच जाय, इस तरह सलाह मिलने पर कितनेक रोगी मान लेते हैं, तो कितनेकों की आंख बच जाती हैं। एवं कितनेकों की दूसरी आंखमें रोग अधिक फैल जाने पर वह भी चली जाती है। कभी रोगीको आंख निकलवाने की सलाह नहीं मिलती। किसी स्वार्थी वैद्यके मिथ्या आश्वासन पर रह कर समय व्यतीत कर देता है और दूसरा नेत्र भी खो देता है।

रोगक्रम—पहले पीड़ित नेत्रमें कुछ चोट लगी होनी चाहिये। उस हेतुसे या उसमें रहे हुये बाह्य द्रव्यके हेतुसे तारामण्डल, तन्तुमय समूह आदि भागोंका प्रदाह होता है। प्रदाहके लक्षण किसीको प्रबल और किसी को मंद होते हैं। प्रदाहके लक्षण तारामण्डल प्रदाहमें दर्शाये अनुसार होते हैं। यह शोथ कितनेक समय चलकर शान्त होता है। बहुधा नेत्रगोलक शोषित होकर छोटा होजाता है। क्वचित् दृष्टमणिके आवरणके साथ तारामण्डल चिपक कर अधिमन्थ उत्पन्न कर देता है। इससे गोलक नरम होनेके बदलेमें कठिन होजाता है। यदि गोलक नरम होने लगे तो प्रबल लक्षण सब शनैः-शनैः शान्त होजाते हैं। केवल नेत्रगोलक को, उसमें भी विशेषतः शुक्लमण्डलके किनारेसे कुछ दूरके प्रदेशमें (तन्तुमय समूह पर) दबाने पर कुछ पीड़ा होती है। इस पीड़ा का कारण तन्तुमय समूहका प्रदाह है। यह चिह्न खास ध्यानमें रखने योग्य है। क्योंकि, यदि यह चिह्न उपस्थित है, तो शोषित नेत्रको निकाल देने की सलाह देना हितकर है। किन्तु व्यथाके परिणाममें नेत्रपाक होकर पूय होजाय या विद्रधि होजाय तो नियमके अनुरूप ऐसे प्रदाहके परिणाममें दूसरी स्वस्थ आँखमें समदुःखी नेत्रप्रदाह नहीं होता।

एक नेत्रमें प्रदाह होने पर वह कितनेक समय तक रह जाय तो अन्य नेत्रमें भी समदुःखी चक्षुप्रदाह होनेकी डर रहता है। यह योजना भीतरसे नैसर्गिक रीतिसे होती है। नेत्रवैद्योंने बहुसंख्यक रोगियोंके इतिहास और अनुभव परसे निर्णित किया है कि, एक नेत्रमें प्रदाह होनेके पश्चात् कमसे कम १४ दिनमें और अधिकसे अधिक २० वर्ष तक दूसरी आँखमें शोथ होने की संभावना है। बहुधा ६ से १२ सप्ताहके भीतर स्वस्थ नेत्रमें विकृति होती है। क्वचित् दीर्घकाल व्यतीत होजाने पर प्रदाद उपस्थित होता है।

नेत्र को चोट लगनेके अतिरिक्त अन्य कारणसे भी समदुःखी चक्षु-प्रदाह हो सकता है। इनमें नेत्रगोलकके भीतरके अर्बुद और शुक्लमण्डलके क्षत फूटने पर तारामण्डल का भाग बाहर आना, ये दोनों मुख्य हैं।

लक्षण और चिह्न—प्रारम्भमें नेत्रमें शोथ आने लगता है, ऊपरके पलक पर कुछ शोथ आता है। नेत्र लाल-लाल होजाता है। यह लाली शुक्लमण्डलके चारों ओर अधिक होती है। शुक्लमण्डल निस्तेज होता है। न्यूनाधिक शिरदर्द रहता है। जलमय रस कुछ मलिन भासता है। कनीनिका आकुंचित होती है। वह अनेक स्थानोंमें दृष्टिमणिके आवरण के साथ चिपक जाती है। काँचरूप रस अस्वच्छ बन जाता है। गोलकको दबाने पर वेदना होती है। शोथ जितने अधिक समय तक रहता है, उतनी ही दृष्टि कम होती है। इस स्थितिके पश्चात् दो में से एक परिणाम आता है, दृष्टिमणिके आवरण और तारामण्डलकी संलग्नता होकर अधिमन्थ की उत्पत्ति और नेत्रवेदनामें अतिशय वृद्धि तुरन्त होजाना अथवा नेत्र-गोलक का शनैः-शनैः शोषण होना। उस समय तक दूसरा नेत्र बिल्कुल स्वस्थ होता है। इस स्थितिमें २-३ सप्ताह या अधिक समय निकल जाने के पश्चात दूसरे नेत्रमें कुछ वेदना होना, अश्रुस्राव होना, प्रकाश सहन न होना आदि लक्षण भासते हैं। दो-चार दिनमें लक्षण शमन हो जाते हैं। पुनः सब लक्षण उपस्थित होते हैं। शनैः-शनैः तारामण्डल और तन्तुमय समूहके प्रदाहके लक्षण प्रकाशित होते हैं। दृष्टि मन्द होती जाती है और अन्तमें आँख बन्द होजाती है।

रोग विनिर्णय—एक नेत्र को चोट आई हो, फिर उसमें पीड़ा कुछ समय तक रही हो या बिना पके शोषित होगई हो, इसके पश्चात् दूसरी आँखमें प्रदाहके लक्षण उत्पन्न हुए हों, तो इस रोग की संभावना होती है। दूसरी आँखमें दृष्टिमणिके आवरणके साथ तारामण्डल चिपक गया हो, दृष्टि शनैः-शनैः मंद हुई हो और प्रदाहके लक्षण क्रमशः प्रकाशित हुए हों, तो यही व्याधि है, ऐसा समझ लेना चाहिये।

इस रोगके निर्णयार्थ वर्त्तमानमें दो प्रकारकी परीक्षा मुख्य मानी गई है।

१. स्लिट लेम्प और शुक्लमण्डलदर्शक यन्त्र; २. रक्तपरीक्षा।

१. स्लिट लेम्प और शुक्लमण्डलदर्शक यन्त्र—इनसे नेत्रकी परीक्षा करने पर शुक्लमण्डलकी पिछली वृत्तिमें बहुसंख्यक बिन्दु भासते हैं। जलमय रसके पूर्वखण्ड, दृष्टिमणिके पिछले रूक्ष और काँच रूपरसमें बहु-संख्य अणु तैरते हुए प्रतीत होते हैं। इनके अतिरिक्त कनीनिकाके किनारे

और तारामण्डल पर सूक्ष्म-सूक्ष्म रसस्रावके चिह्न भी विदित होते हैं।

२. रक्तपरीक्षा—रक्तपरीक्षा करने पर एक जीव केन्द्रमय बृहद्-लसीकाणुओं (Large Mononuclers) की संख्या बहुत बढ़ी हुई हो तो समदुःखी नेत्रप्रदाहके प्रारम्भ की विशेष संभावना है।

इनके अतिरिक्त तारामण्डल का छोटा टुकड़ा काट काँच की खरलमें विशुद्ध बाष्पजलके साथ खूब पीसें। फिर उसमेंसे १ बूँद त्वचा पर मामूली खुरच कर उस पर लगावें। यदि उसके चारों ओर बड़ा लाल गोल दाग होजाय तो पहले पीड़ित हुई आँख को निकाल देने की आवश्यकता मानी जाती है।

उपचार—इस रोग की चिकित्साके २ प्रकार हैं। दूसरी आँखमें रोगोत्पत्ति न होनेके लिये संरक्षक उपचार; २. रोग होनेके पश्चात् की चिकित्सा।

१. रोगोत्पत्ति रोधक उपाय—पहली आँखमें बाह्य पदार्थ रह गया हो, दृष्टि बन्द होगई हो तथा वेदना होती हो, तो दूसरी आँखमें विष न पहुँचनेके लिये उसे निकाल देना चाहिये। यदि पहली आँखमें कुछ दृष्टि हो और प्रदाहके लक्षण भी हों, तो नेत्र को निकाल देना या रहने देना, यह नेत्रवैद्यके लिये महान प्रश्न है। शोथ दिन-प्रति-दिन बढ़ रहा हो और दृष्टि दिन-दिन कम होती जाती हो, तो दूसरी आँख की रक्षाके लिये उसे निकाल देना ही चाहिये।

यदि दृष्टि अच्छी तरह हो और प्रदाहके लक्षण प्रबल न हों तो योग्य चिकित्सा करनी चाहिये और समय की राह देखनी चाहिये। क्वचित् राह देखनेमें वैद्य को पछताना पड़ता है, उसे भूलना नहीं चाहिये।

पहली आँख बिल्कुल चली गई हो और दूसरी आँखमें भी प्रदाह का प्रारम्भ होगया हो, तो विशेष विचार किये बिना शीघ्र नेत्र को निकाल देना चाहिये। किन्तु दूसरे नेत्रमें प्रदाह का प्रारम्भ होगया हो पहली आँख निकाल देने पर भी प्रवाह सदाके लिये नहीं रुक सकेगा। फिर भी पहली आँखमें दृष्टि आनेकी कोई संभावना न हो तो उसे निकाल देनेमें किसी भी प्रकार की हानि नहीं है।

इन सबसे विकट प्रश्न तब खड़ा होता है, यदि पहली आंखमें कुछ दृष्टि हो और दूसरी आंखमें समदुःखी चक्षुप्रदाहका प्रारम्भ होगया हो। ऐसी स्थितिमें वैद्यको निम्न विचार होता है कि, दूसरी आंखमें समदुःखी प्रदाह का प्रारम्भ होगया है। इस रोगके परिणाममें प्रायः दृष्टि चली जाती है। एक समय समदुःखी प्रदाह का प्रारम्भ होने पर पहली

आंख को निकाल दिये बिना दूसरी आँख को लाभ होने की संभावना कम है। दूसरी ओर विचार आता है कि, पहली आँख निकाल दी और दूसरी आँख चली जाय तो रोगी बिल्कुल अन्ध बन जाता है। ऐसे समय पर धैर्य रख कर श्रद्धासह शान्तिपूर्वक दोनों नेत्रों की चिकित्सा करते रहें। एवं स्थिति का अवलोकन करते रहें। अहली आँखमें जबतक दृष्टि हो तब तक निकालनेका विचार नहीं करना चाहिये।

२. *रोगशामक चिकित्सा*—समदुःखी नेत्रप्रदाहके उपचारोंमें एट्रोपिन और डायोनिन मुख्य हैं। प्रातः-सांय एट्रोपिनकी बूंद २ से ४ बार डालें। डायोनिनकी बूंद डालने पर भी अच्छा लाभ पहुँचता है। कितनेक चिकित्सक उदर सेवनार्थ सोडा सेलिसिलस १० से ३० ग्रेन की मात्रामें देने की सलाह देते हैं। दूसरे पारद पर श्रद्धा रखने को कहते हैं। नेत्र पर सेक करने पर रोगी को शान्ति मिलती है। पाइलोकार्पिनका अन्तःक्षेपण करने पर प्रस्वेद आकर अनेक बार लाभ पहुँच जाता है। नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे सायानाइड ऑफ मर्क्युरी जैसी औषध का अन्तःक्षेपण करने पर अनेक बार रोग शमन होनेमें सहायता मिल जाती है।

वर्तमानमें नियोसालवरसनके अन्तःक्षेपणमे ठीक लाभ होनेका अनुभव मिला है। ये इञ्जेक्शन चढ़ते क्रमसे अवश्य देना चाहिये। तार्पिन तैल १७ बूंद का नितम्ब की त्वचामें अन्तःक्षेपण करने पर एक विद्रधि होती है। उस विद्रधि का शुभ असर भी नेत्र पर होता है। दूध का अन्तःक्षेपण भी लाभदायक है। कण्ठरोहिणीमें प्रयोजित डिफ्थेरिया ऐण्टीटोक्सिनका अन्तःक्षेपण भी व्यवहृत होता है। कितनेक रोगियोंमें तारामण्डल के पर्दे को पीस विशुद्ध बाष्पजलमें मिला उसका अन्तःक्षेपण त्वचाके नीचे करने पर लाभ होने का अनुभव मिला है।

सोलहवां प्रकरण।

दृष्टिमणि के रोग।

(Diseases of Crystaline lens.)

दृष्टिमणि में निम्नानुसार अनारोग्य स्थिति उत्पन्न होती हैं :—

१. जन्मलब्ध अपूर्णता–Congenital Anomalies of the lens.

अ.–सहजात कांचबिन्दु–Congenital Cataract.

आ–सहजात दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता–Congenital dislocation of lens.

इ.–जन्मसिद्ध दृष्टिमणि छिद्र–Congenital coloboma of lens.

ई.–जन्मसिद्ध सूक्ष्म दृष्टिमणि–Congenital microphakia.

उ.–जन्मसिद्ध दृष्टिमणि का अभाव–Congenital Aphakia.

ऊ.–जन्मसिद्ध शंखवावार दृष्टिमणि–Congenital Lenticonus.

२. दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता–Dislocation of lens.

अ.–जन्मजात–Congenital dislocation of lens.

आ.–व्यथा जन्य–Traumatic dislocation of lens.

इ.–नेत्ररोग जनित–Dislocation of lens due to other disease of Eye.

ई.–दृष्टिमणि के बन्धन की निर्बलता जनित–Dislocation through disintegration of Zonule.

३. दृष्टिमणि की अपारदर्शकता–कांचबिन्दु–Opacities of lens-Cataract.

४. दृष्टिमणि का अभाव–Aphakia.

१. अ. जन्मसिद्ध कांचबिन्दु।

(Congenital Cataract.)

कितनेक बालक जन्म के साथ ही कांचबिन्दु वाले देखने में आते हैं। हमने ऐसे ५–६ बालकों को देखा है। प्रायः जन्म के कुछ दिनों तक इस स्थिति का बोध नहीं होता। क्योंकि जन्म होने के ८–१० दिनों तक

बालक अच्छी तरह नेत्र नहीं खोलता। आँख खोले तो भी उसकी कनीनिका इतनी छोटी और संकुचित होती है कि उसमें कांचबिन्दु होने पर भी प्रतीत नहीं होता। यथार्थ में माता या बालक की सम्हाल रखने वाली धाई का ध्यान बालक के नेत्र पर तब जाता है कि, बालक कुछ समझने लगता है, फिर भी कुछ वस्तु न पकड़ता हो या अपनी माता को देखकर प्रसन्न होता हुआ न देखा जाता हो। बालक कम प्रकाश में नेत्र खोलता है, तब उसकी कनीनिका कम आकुंचित होती है। उस समय कनीनिका के बीच कुछ सफेदी देखने में आवे तो बुद्धिमति धाईका लक्ष्य क्वचित् उस ओर जाता है। भारतीय लोगोंमें इस तरह किसीका लक्ष्य बच्चे के नेत्रपर गया हो फिर भी किसी को वैद्य-डाक्टरको दिखलानेका विचार नहीं आता। यदि किसी सुशिक्षित कुटुम्बके बच्चेकी ऐसी स्थिति हो तो कुटुम्बके वैद्य-डाक्टर को दिखलाते हैं। फिर वह समझ न सके तो किसी नेत्रवैद्यको दिखलाकर निर्णय करते हैं। क्वचित् सामान्य आंख में कांचबिन्दुका निर्णय न हुआ हो तो एट्रोपिन की एक बून्द डालकर कनीनिका को प्रसारित करने पर उसका रंग काला दीखने के बदले में सफेद भासता है।

कारण—जन्मलब्ध कांचबिन्दुके २ कारण हैं—१. गर्भावस्था में नेत्र के विकास की न्यूनता; २. गर्भावस्थाके भीतर नेत्रप्रदाह होना।

उपचार—कम से कम ४ मासका बालक बने, तब कांचबिन्दु के उपचार का प्रारम्भ करना चाहिये। इस अवस्थाके पहले नेत्रके सब भाग अति कोमल होते हैं। इससे शस्त्रचिकित्सा करने पर भीतरके अधिक मृदु अवयवों को हानि पहुँचती है। शस्त्रक्रिया के पहले भी निम्न ३ प्रकार से परीक्षा कर लेनी चाहिये :—

१. नेत्र पर दीपक या नेत्रदर्शकयन्त्रके दर्पण द्वारा प्रकाश डालकर देखें कि गोलक और मुँह प्रकाश की ओर फिरते हैं या नहीं ?
२. प्रकाश डालने पर कनीनिका आकुंचित होती है या नहीं ?
३. एट्रोपिन की बूंद डालने पर कनीनिका के किनारे में किसी स्थान पर बन्धन तो प्रतीत नहीं होता ?

यदि प्रकाश की दिशामें बालककी आंख ठीक फिरे, कनीनिकाका योग्य संकोच हो, और संलग्नता प्रतीत न हो तो वह कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया के लिये योग्य है, ऐसा निर्णय करें।

पहले लिखा गया है कि बालक की आंख का दृष्टिमणि बिल्कुल मृदु होता है। उसमें बीज नहीं होता। ऐसी स्थितिमें उसके आवरणका छेदन किया जायगा, तो उसके भीतर जलमय रसका प्रवेश होजायगा।

इससे दृष्टिमणिका गर्भभाग नरम होकर शनैः-शनैः शोषित होता जायगा। फिर अन्तमें लगभग २ मासमें दृष्टिमणि बिल्कुल स्वच्छ होकर कनीनिका निर्मल बन जायगी। इस बातको लक्ष्यमें रखना चाहिये कि, उस आवरण की छेदनक्रिया (Discission) एकसे अधिक बार करनी पड़ती है। इस शस्त्रक्रियाका वर्णन युवकों के कांचबिन्दु की चिकित्सा में किया जायगा।

सूचना—जन्मलब्ध कांचबिन्दु की शस्त्र क्रिया ४ मास की आयु से ४ वर्ष की आयु के भीतर कर लेनी चाहिये। यदि ४ वर्ष तक शस्त्र क्रिया नहीं करायी जायगी, तो फिर नेत्रदर्पण का विकास योग्य परिमाण में नहीं हो सकता। क्वचित् ११ वर्ष की आयु वाले लड़कों की आँख की शस्त्र क्रिया करने पर भी अच्छी दृष्टि हो जाने के उदाहरण १९३२ ई० में हमें मिले हैं। एक मनुष्य अपनी ३ पुत्रियों को मेरे पास लाया था। तीनों दृष्टिहीन थीं, एक ८ वर्ष की, दूसरी १० वर्ष की और तीसरी १२ वर्ष की थी। इन तीनों कुमारिकाओं पर शस्त्र क्रिया की गई और तीनों को बहुत अच्छी दृष्टि की प्राप्ति हो गई।

आ. जन्मलब्ध दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टता।

(Congenital Dislocation of lens)

कभी कोई बालक ऐसा मिलता है कि, जिसका दृष्टिमणि योग्य स्थान में नहीं रहता। न्यूनाधिक अंश में या बिल्कुल स्वस्थान से च्युत होता है। इस स्थिति का कारण यह है कि, दृष्टिमणि के उद्बन्धन और कांचरूपरस का अपूर्ण विकास।

यदि दृष्टिमणि स्थानभ्रष्ट होकर काँचरूपरस में गिर गया हो, तो केवल चश्मे के उपयोग से ही बालक की दृष्टि ठीक हो जाती है। यदि अपूर्ण भ्रंश हो और दृष्टिमणि अपारदर्शक न हो तो विशेष उपचार की आवश्यकता नहीं है।

इ. जन्मलब्ध दृष्टिमणि छिद्र।

ई. जन्मलब्ध सूक्ष्मदृष्टि मणि।

उ. दृष्टिमणि का अभाव।

ये तीनों स्थितियां संज्ञा पर से विदित हो जाती हैं। अतः इनके वर्णन की आवश्यकता नहीं है। इन तीनों स्थितियों की संप्राप्ति दृष्टिमणि के विकास में अन्तराय आने से होती है।

ऊ. शंक्वाकार दृष्टिमणि।

यह शंक्वाकार स्थिति आगे या पीछे के हिस्से में होती है। यदि दृष्टिमणि का आगे का हिस्सा शंक्वाकार हो तो प्रायः गर्भावस्था में ही शुक्रमण्डल में क्षत होकर भरने के समय दृष्टिमणि के आवरण का आगे का हिस्सा उसके साथ चिपक जाता है। परिणाम में दृष्टिमणि आगे की ओर शंक्वाकार बन जाती है। पिछली ओर के शंक्वाकार का कारण काँचरूपरस में रही हुई मध्य शिरा का खिंचाव या आवरण का पिछला हिस्सा टूटना है। ऐसा होने पर रोगी की दृष्टि अतिमन्द होती है। रोगी के सद्भाग्य से यह स्थिति एक ही नेत्र में होती है। जिससे दूसरे नेत्र से कार्य चलता है। एक ही नेत्र में जन्म से ही दृष्टिमन्द होने से वह नेत्र टेढ़ा हो जाता है।

उपचार—किसी उपचार से शंक्वाकार स्थिति नहीं सुधरती। दृष्टिमणि के आवरण में छेदन कर उसका शोषण कराने पर दृष्टि कुछ अंश में प्राप्त होती है।

२. दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता।

(Dislocation of lens)

यह स्थिति जन्मलब्ध हो या फिर भी प्राप्त हो सकती है। जन्मलब्ध स्थानभ्रष्टता का उल्लेख पहले किया है। फिर प्राप्त स्थिति के मुख्य ३ कारण हैं।

अ. आगन्तुक व्यथा; आ. नेत्ररोग; इ. दृष्टिमणि बन्धन की निर्बलता। इन तीनों का विचार क्रमशः किया जाता है।

अ. व्यथाजन्य दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टता (Traumatic dislocation of lens)—इस प्रकारकी स्थानभ्रष्टता नेत्रपर मूड़मार लगने तथा नेत्रके बाह्यपटलके भीतर शुक्रमण्डलकी परिधिसे बाहर घाव होने या चीरा पड़नेपर होती है। यह स्थानभ्रष्टता आगेकी ओर होनेपर जलमय रसके पूर्वखण्डमें तथा पिछली ओर होनेपर कांचरूपरसमें होती है। यदि शुक्रमण्डलकी बाहर बाह्यपटलके भीतर चीरा हो और नेत्रश्लेष्मावरण अपीड़ित हो तो उक्त चीरेमेंसे दृष्टिमणि बाहर आकर नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे पड़ा रहता है।

आ. नेत्र रोगजनित दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता—भारतवर्षमें आगन्तुक व्यथाजनित दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टताके रोगी जितने देखनेमें आते हैं, उनकी अपेक्षा अनेक गुने अधिकतर स्थानभ्रष्ट वाले रोगी (हजारों की

संख्यामें) अन्य कारणजनित व्यथासे दृष्टिगोचर होते हैं। यह व्यथा आंखोंके पंजाबी हकीम, जो आंखोंके रोगोंकी चिकित्साके लिये भारतमें सर्वत्र फिरते रहते हैं, उनके हाथसे होते हैं। वे प्रायः २-४ मिलकर एक गांवसे दूसरे गांव, इस तरह सर्वत्र फिरते रहते हैं। वे मुख्य कांचबिन्दु की शस्त्रक्रिया करते हैं। ये लोग दृष्टिमणिको नेत्रसे बाहर निकालनेके स्थानमें काँचरूपरसमें दबा देते हैं। वे काँचबिन्दुसे आई हुई अन्धता को मिटानेके लिये दृष्टिमणिको हेतुपूर्वक स्थानभ्रष्ट करते हैं। जब ५० वर्ष पहले शस्त्रपद्धतिसे अभ्यास किये हुए आँखके डाक्टर अपने देशमें नहीं थे, तब काँचबिन्दुको उतारने वाले ये नीमहकीम प्रत्येक ग्राममें पहुंच जाते थे और बहुसंख्यक रोगियोंके मोतियोंको उतारते थे। इनमेंसे कितनेकोंकी दृष्टि सुधरती थी, कुछ लोगों की दृष्टि आजीवन अच्छी रहती थी, कितनेकोंको थोड़े समयके लिये लाभ पहुँचता था और फिर दूर न होसके ऐसा अन्धापन आजाता था। कितनेकोंके नेत्र शस्त्रक्रियाके पश्चात् तुरन्त पककर या शोथसह असह्य वेदना देकर नष्ट होजाते थे। कच्छमें ऐसे अनेक मनुष्योंको हमने देखा है।

पहले ये हकीम लोग २ शस्त्र रखते थे। १. गोलकमें काट करनेका त्रिकोणाकार शस्त्र; और २. काँचबिन्दुको दबा देने वाली शलाका। अब ये लोग नेत्र खुला रखने की कमानी (Speculum), गोलकको स्थिर रखनेका चिमटा (Fixation Forceps) एवं कोई-कोई कोकैन जैसी चेतनाहर औषध भी रखते हैं। पहले चेतनाहर औषधका उपयोग भी नहीं करते थे।

नीम हकीमों की प्राचीन शस्त्रक्रिया विधि—रोगी को सामने बैठाते हैं। फिर चेतनाहर औषध डाले बिना शस्त्रक्रिया करते हैं। रोगीको असह्य वेदना होती है, और वह जोर-जोरसे चिल्लाता है। उस समय हकीमके दो शागिर्द रोगीको दृढ़ पकड़ रखते हैं। एक आदमी रोगीकी आँख को खुली रखता है। काँचबिन्दु उतारनेवाले गोलकको स्थिरकर त्रिकोणाकार शस्त्र को, जो केराटोम (Keratome) के आकारका होता है (चित्र नं० १०२ ग्रन्थके अन्तमें देखें), शुक्लमण्डल की परिधिके भागमें घुसेड़ देते हैं। इससे जलमयरसके पूर्वखण्डमें छिद्र होता है, फिर शस्त्रको बाहर निकाल लेते हैं, जिससे उस छिद्रमेंसे जलमयरस निकलकर पूर्वखण्ड खाली होजाता है। फिर हकीम साहब मुड़ी हुई नोकवाली शलाका (चित्र नं० १०३) जो आँकड़े (Hook) से मिलती जुलती है, उसे पूर्व-

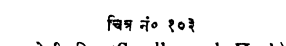

चित्र नं० १०३

लघुपेशी बड़िश (Small muscle Hook)

खण्डमें से कनीनिकाके भीतर प्रवेश करा दृष्टिमणिके ऊपर की धाराके पास पहुँचाते हैं। फिर सिरेको उस तरह दबाते हैं कि सार दृष्टिमणि उसके आवरणसह स्थानभ्रष्ट होकर नीचे काँच-रूपरसमें गिर जाती है। यह क्रिया समाप्त होने पर शलाकाको नेत्रमेंसे बाहर निकाल लेते हैं, इस क्रियाके परिणाममें जो दृष्टिमणि अपारदर्शक होनेसे दृष्टिरोध होता था, वह अवरोध कनीनिकाके मार्गसे दूर होजानेसे जादूके समान दृष्टि खुल जाती है। फिर हकीम साहब अपनी कुशलता दर्शानेके लिये रोगी को अपनी अंगुलियाँ दिखाने लगते हैं और पूछते हैं—"ये कितनी हैं ?" "पहले देखता था ?" "अब देख सकता है ?" "कितनों वर्षोंसे अन्धा था ?" आदि प्रश्न अन्य रोगियोंके समक्ष पूछते हैं। फिर नेत्र पर पट्टी बांध देते हैं। परिणाममें तात्कालिक कितनेक रोगी देखने लग जाते हैं। किन्तु हमें परीक्षा की हुई अनेक आँखों परसे अनुभव मिला है कि केवल २५ प्रतिशतोंकी दृष्टि सदाके लिये रह जाती है। शेष रोगियोंके नेत्र अधिक खराब होजाते हैं। कितनेकोंके नेत्र पककर और सूजन आकर चले जाते हैं। कितनेकों की दृष्टिमणि काँचरूपरसमें गिर जानेसे नेत्रदर्पण और मध्यपटलमें विक्रिया होकर दृष्टि बन्द होजाती है। कितनेकों को इस शस्त्रक्रियाके परिणाममें अनुषंगी अधिमन्थ (Secondary Glaucoma) होता है। फिर नेत्रमें असह्य पीड़ा होती रहती है और अन्तमें आंख चली जाती हैं।

इ. उद्बंधनकी *शिथिलतासे दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टता*—वृद्धावस्थामें आयुवृद्धिके हेतुसे प्रत्येक अवयव शिथिल और निर्बल हो जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि कितनेकों का शोष (Atrophy) भी हो जाता है। इस नियमानुसार दृष्टिमणिके उद्बन्धनके तन्तु दिन-प्रति-दिन निर्बल और क्षीण होते जाते हैं। इस क्षीणता की वृद्धि इतने तक हो जाती है कि, उद्बन्धन अपने मुख्य कार्यको—दृष्टिमणि को स्वस्थानमें रखनेके कार्यको भी नहीं कर सकता। परिणाममें दृष्टिमणि स्थानभ्रष्ट होकर सरक जाती है। इस प्रकार की स्थानभ्रष्टता प्रायः अपूर्ण होती है।

कितनेक वृद्ध लोगों को कांचबिन्दु आता है और समय जाने पर पक जाता है। किन्तु सुविधाके अभावसे या शस्त्रक्रियाके भयके हेतुसे उसे नहीं निकलवाते। ऐसी कांचबिन्दुयुक्त आँखोंसे फिरते रहते हैं। उनमेंसे क्वचित् ऐसे उदाहरण बनते हैं कि, रात्रिको सोनेके समय रोगी अन्धा था।

सुबह उठनेके समय एक आँखसे देखनेवाला बन गया। [illegible] लताके हेतुसे कांचबिन्दु कनीनिकामेंसे सरक गया। ऐसे [illegible] न्यायवत् रोगीने पीर, फकीर, देव आदि की मानता रखी हो, तो उसको भ्रमवश यश दिया जाता है। फिर अनेक भाक जन श्रद्धापूर्वक अपनी कामनाकी सफलताके लिये लग जाते हैं।

उपरोक्त कारणके अतिरिक्त अति ह्रस्वदृष्टि (High Myopia) के हेतुसे नेत्रमें क्षीणता या मध्यपटल और तन्तुमय समूहके प्रदाहजन्य क्षीणता से परिवर्तन तथा दर्पणविच्छेद के परिणाममें नेत्रगत परिवर्त्तन आदि हैं।

लक्षण और चिह्न—दृष्टिमणि उद्बन्धनसे मुक्त होकर ठीक मध्यमें रहे तो उसकी बाह्यगोलता बढ़ जाती है, तो आँख ह्रस्व दृष्टियुक्त बनजाती है। यदि दृष्टिमणि आधी सरक गयी हो और मुड़ गयी हो तो विषम दृष्टि (Astigmatism) उत्पन्न होती है। यदि आधी दृष्टिमणि सरक गयी हो और कनीनिकाके अर्द्धभाग में दृष्टिमणि हो और अन्य अर्द्ध भागमें न हो तो रोगी को द्विदर्शन अर्थात् दो-दो रूपों की प्रतीति होती है। मुक्ति दृष्टिमणि कनीनिकाके बीच आजाय और फिर सरक जाय, इस तरह होता रहे तो दृष्टिमें अस्तव्यस्तता आजाती है। यदि दृष्टिमणि पूर्णांशमें कनीनिकामें से सरककर कांचरूप रसमें गिर जाय तो उस नेत्रकी स्थिति दीर्घदृष्टि वाली बन जाती है। फिर दूरसे अस्पष्ट भासता है और समीपमें बहुत कम दीखता है।

यदि दृष्टिमणि जलमय रसके पूर्व खण्डमें गिर जाय, तो आशुकारी अधिमन्थके सब लक्षण उपस्थित होते हैं। इसके मुख्य चिह्न ३ हैं। १. कनीनिकामें आंशिक या पूर्णांशमें दृष्टिमणि का अभाव; २. तारामण्डल का कम्प (Tremulous Iris); और ३. जलमय रसके पूर्वखण्डमें अन्तर।

यदि दृष्टिमणि आधी सरकी हुई हो, तो आधी कनीनिका काली और आधी दृष्टिमणिसे निरुद्ध होगी। पूरी दृष्टिमणि सरक गयी हो, तो कनीनिका का रंग अति काला भासेगा। दृष्टिमणि काँचरूप रसमें गिरी हो तो तारामण्डल कम्पित प्रतीत होगा। इस दृश्यका कारण यह है कि तारामण्डलको पिछली ओर दृष्टिमणिका आधार था, वह दूर हो गया है। इससे निराधार तारामण्डल कम्पता रहता है।

जलमय रसके पूर्वखण्ड का आकार दृष्टिमणिके स्थानपर आधार रखता है। यदि दृष्टिमणि आधी सरक गयी हो, तो जहाँसे सरक गयी हो, वहाँ पर जलमय रसके पूर्वखण्डमें अधिक गहराई तथा जहाँ पर दृष्टिमणि गिरी हो, वहाँ पर कम गहराई भासेगी। दृष्टिमणि पूर्णांशमें सरक गयी हो

तो जलमय रसका पूर्वखण्ड अधिक गहरा बनेगा। यदि दृष्टिमणि पूर्वखण्डमें गिर गयी हो तो वह खण्ड मलिन सफेद रंगका, सेमकी दाल जैसे पदार्थ से बन्द हुआ भासेगा।

परिणाम—दृष्टिमणि पूर्वखण्डमें गिरी हो तो जलमयरसको गोलक से बाहर जानेके मार्ग (अग्रजलमार्ग-Canal of Schlemm) का अवरोध होता है। इससे नेत्रान्तर दबाव बढ़ जाता है और अनुषङ्गी अधिमन्थ निर्मित होता है। एवं शुक्लमण्डल, तारामण्डल और तन्तुमय समूहका प्रदाह भी होता है। इन सब स्थितियों पर लक्ष्य देने पिगिव रदता हो कि पूर्वखण्ड में अवस्थित दृष्टिमणि अधिक हानिकर है।

कांचरूप रसमें गिरी हुई दृष्टिमणि हानि पहुँचाये बिना दीर्घकाल पर्यन्त रह सकती है। इसी हेतुसे कांचबिन्दु उतारने वाले हकीम उसे दबाकर (Couching of lens) कांचरूप रसमें डाल देते हैं। इससे २५ प्रतिशत रोगियोंकी दृष्टि लम्बे समय तक अच्छी रहती है। फिर उसी हेतुसे जब नेत्रमध्यपटल और नेत्रदर्पणमें चिरकारी प्रदाह उत्पन्न होता है, तब दृष्टिको हानि पहुँचती है।

उपचार—दृष्टिमणि कांचरूप रसमें गिरी हो और नेत्रमें किसी भी प्रकारका उपद्रव न होता हो तो रोगीको योग्य चश्मेकी योजना कर देनेसे दृष्टि अच्छी रह सकेगी। यदि किसी भी प्रकारका उपद्रव उपस्थित हो तो उसे बाहर निकालनेका प्रयत्न करना चाहिये। उस प्रयत्नके पहले दृष्टिमणि पूर्वखण्डमें आ सकती हो या आती हो तो रोगीको औंधा सुलावें अर्थात् मुँह नीचा रखावें। इस तरह कुछ समय तक पड़ा रहने पर स्थानभ्रष्ट दृष्टिमणि कनीनिका मार्गसे पूर्वखण्डमें आजायगी। फिर रोगीको चित्त किये बिना उसके नेत्रमें इसरीनकी बूँद डालें और उसे १५-२० मिनिट उसी स्थितिमें पड़ा रहने देवें। इससे पूर्वखण्डमें आई हुई दृष्टिमणि वहाँ ही रह जायगी। पश्चात् शुक्लमण्डलमें छेदन कर उस मार्गसे दृष्टिमणिको बाहर निकाल डालें।

यदि दृष्टिमणि कांचरूप रसमें बाहर निकल ही न सके, तो उसे निकालना अधिक कठिन है, वह स्थिति नेत्रके लिये अधिक भयप्रद है।

कांचरूप रसमें से दृष्टिमणि निकालनेकी शस्त्रक्रिया अति सूक्ष्म है, अनुभवी नेत्रवैद्य बिना सफलता नहीं मिलती। उस शस्त्रक्रियाके लिये शुक्लमण्डलमें काट किया जाता है। आवश्यकता हो तो तारामण्डलके पर्दका टुकड़ा काट डालें। फिर कांचरूप रसमें पड़ी हुई दृष्टिमणिके पीछे

स्नेलनके दृष्टिमणि पाश (चित्र नं० १०४ ग्रन्थके अन्तमें देखें) को डालकर उसे बाहर निकालें।

ऐसी एक रुग्णा तुरन्त ही हमारे पास आयी थी। ७० वर्षकी आयु वाली थी। उसकी दृष्टिमणि नेत्र पर हाथकी चोट लग जानेसे कांचरूप रस में गिर गयी थी। जिससे कुछ दिनों में ही अधिमन्थके लक्षण सब प्रकाशित होने लगे थे और दृष्टि कम होती जाती थी। योग्य शस्त्रक्रिया करनेसे कांचरूप रसका एक भी बिन्दु बिना निकाले दृष्टिमणि बाहर निकल आयी और रुग्णाको पूर्ण दृष्टिकी प्राप्ति हुई।

पूर्वखण्डमें अवस्थित दृष्टिमणिको निकालनेकी शस्त्रक्रिया—यह शस्त्रक्रिया अति सामान्य है। रोगीको तख्त पर लिटावें। नेत्रको चेतनहरा औषधसे संज्ञाहीन करें। पारद धावन और फिर नमक जलसे धोकर नेत्र खुला रखनेकी कमानी चढ़ावें। नेत्रको स्थिर रखनेकी चिमटीसे नेत्रश्लेष्मावरण और उसके नीचेका भाग पकड़ें। फिर दाहिने हाथसे ग्राफेकी कांचबिन्दु छुरिका (Graefe's Cataract Knife चित्र नं० १०८) या कांचबिन्दुको काटने वाले अन्य शस्त्र या चित्र नं० १०२ में दर्शाये हुए शुक्लमण्डलवेधन यन्त्र (Keratome) को शुक्लमण्डलके किनारेके पास जलमय रसके पूर्वखण्डमें प्रवेश करावें और स्थानभ्रष्ट दृष्टिमणिके कदसे कुछ बड़ा छेद करें, (यह क्रिया कांचबिन्दुके लिये हो तो उसकी अपेक्षा कुछ बड़ा छेद किया जाता है) छेद छोटा होने पर दृष्टिमणिको निकालने में कष्ट पहुँचता है। छेद होने पर ऊपर वर्णित स्नेलनके दृष्टिमणि-पाशमें ठीक फँसाकर बाहर निकाल लेवें। इस क्रियामें तारामण्डलके पर्देका कुछ हिस्सा बाहर निकल आता है, उसे तारामण्डल-नियोजक (Iris repositor चित्र नं० १०५) द्वारा पुनः यथास्थान बैठा देवें। फिर इसरीनकी एक बूँद डालकर नेत्र पर पट्टी बाँध दें।

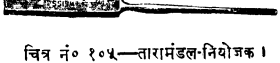

चित्र नं० १०५—तारामंडल-नियोजक।
(Silver Iris Repositor)

सूचना—यदि जलमयरसके पूर्वखण्डमें कुछ पदार्थ रह गया हो तो इसरीनकी बूंद डालनेके पहले नमक जलसे पूर्वखण्डको धो देवें। इस क्रियाके लिये प्रयोजित यन्त्रके वर्णन और चित्र शस्त्रक्रिया प्रकरणमें दिये जायँगे।

३. दृष्टिमणिकी अपारदर्शकता—कांचबिन्दु—मोतियाबिन्दु।

(*Opacities of the lens–Cataract*)

कांचबिन्दुका विकार भारतवर्षमें अत्यन्त प्रचलित है। इस हेतुसे प्रत्येक नेत्रवैद्यको उसे निकालनेके लिये निष्णात होना पड़ता है। यूरोप, अमेरिका आदि शीतल देशोंके सुप्रसिद्ध नेत्रवैद्य कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया जितने रोगियों पर करते होंगे, उससे अनेक गुनी अधिक संख्यामें शस्त्रक्रिया सामान्य भारतीय नेत्रवैद्यके हाथसे होती होगी। एवं प्रतिष्ठालब्ध नेत्रवैद्यने तो हजारों रोगियों पर कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया की होगी। कभी ऐसा भी बनता है कि, कोई चिकित्सक (वैद्य या डाक्टर) कांचबिन्दु उतारनेकी क्रिया ठीक कर सकता हो तो वह प्रसिद्ध नेत्रवैद्य रूपसे माना जाता है। फिर चाहे वह कांचबिन्दुके अतिरिक्त अन्य नेत्ररोगोंके अनुभवसे वंचित हो। तात्पर्य कि, भारतमें कांचबिन्दु एक महत्वका नेत्ररोग माना गया है। अतः इसका वर्णन अधिक विस्तारसे देते हैं।

मोतियाबिन्दु संज्ञाका कारण—कांचबिन्दु पक जाने पर कनीनिकामें जैसे मोती सज्जित किया हो, वैसा देखाव होता है। एवं जब उसे बाहर निकाला जाता है, तब उसके बीचका बीज बिल्कुल मोतीके रंगका ही और चमकीला होता है।

विविध प्रकार—भिन्न-भिन्न ग्रन्थकारोंने मोतियाबिन्दुके वर्णनमें भिन्न-भिन्न शैलीका अनुसरण किया है। उससे अनेकोंको उलझन भासती है। अतः हम, विद्यार्थीवृन्द समझ सकें उस तरह सरल विभाजन करते हैं।

१. प्राथमिक कांचबिन्दु–Primary Cataract.

अ. पूर्ण मोतियाबिन्दु–Total Cataract.

(१) जन्मलब्ध–Congenital Cataract.
(२) शैशवावस्थागत–Infantile Cataract.
(३) युवावस्थागत–Juvenile Cataract.
(४) वृद्धावस्थागत–Senile Cataract.
(५) व्यथाजन्य–Traumatic Cataract.
(६) मधुमेहजनित–Diabetic Cataract.
(७) कृष्ण कांचबिन्दु–Black Cataract.

आ. अपूर्ण कांचबिन्दु–Partial Cataract.

(८) अग्रवर्ति मध्यस्थ–Anterior Polar Cataract.

(९) पश्चाद्वर्ति मध्यस्थ–Posterior Polar Cataract.

(१०) चिह्नमय–Punctate Cataract.

(११) चक्राकार–Zonular or lamellar.

(१२) पश्चाद्वर्ति गर्भगत–Posterior Cortical.

२. अनुषंगी कांचबिन्दु–Secondary Cataract.

अ. आवरणगत शेष कांचबिन्दु–Capsular opacity.

आ. उपद्रव रूप कांचबिन्दु–Complicated Cataract.

(१) जन्मलब्ध मोतियाबिन्दु।

(Congenital Cataract)

इसका वर्णन पहले इसी प्रकरण के प्रारम्भ में हो गया है।

(२) शैशवावस्थागत काँचबिन्दु।

(Infantile Cataract.)

इसका वर्णन आगे चक्राकार कांचबिन्दु में दिया जायगा।

(३) युवावस्थागत काँचबिन्दु–कोमल मोतियाबिन्दु।

(Juvenile Cataract—Soft Cataract)

दृष्टिमणि का रस २५ वर्षकी आयु तक अति कोमल होता है। इससे छोटी आयुमें होने वाला कांचबिन्दु भी मृदु ही रहता है। इससे बड़ी आयुमें मोतियाबिन्दु उतना कोमल नहीं रहता।

लक्षण और चिह्न—रोगीकी दृष्टिमें मंदता आती है। सब वस्तु प्रतीत तो होती है; किन्तु ओसमें अवस्थित होने के समान अस्पष्ट भासती है। यह अस्पष्टता शनैः-शनैः बढ़ती जाती है। पहले दृष्टिमणि बिल्कुल स्वच्छ रहती थी, वह श्वेताभ होजाती है। एट्रोपिन या होमेट्रोपिन डालकर कनीनिका को प्रसारित करने पर विदित होगा कि दृष्टिमणि के सब भागमें श्वेताभ अपारदर्शकता आती रहती है। मोटे बहिर्गोल (उन्नतोदर) कांचसे कनीनिका पर प्रकाश डालें तो यह परिवर्तन अधिक स्पष्ट अवगत होता है। यदि अन्धकार मय कमरे में परीक्षा की जाय और बहिर्गोल कांच द्वारा दीपकप्रकाश कनीनिका पर डाला जाय, तो यह परिवर्तन और भी अधिक स्पष्ट होता है। नेत्रदर्शकयन्त्रसे परीक्षा करने पर कनीनिकामेंसे रक्तप्रकाश

गिरनेके बदलेमें काले रंगकी अपारदर्शकता दीखती है। पारदर्शक भाग हो तो वह रक्तवर्णका स्वस्थ स्थितिमें विदित होता है। यह अपारदर्शकता अधिक न बढ़ी हो तो नेत्रदर्पण देखने में आसकेगा। शनैः-शनैः दृष्टि मंद होजाने पर अन्तमें सूर्य का प्रकाश या हाथ के चलानेके देखावके अतिरिक्त विशेष नहीं दीखता। उस समय कनीनिका बिल्कुल सफेद दीखेगी। फिर नेत्रके भीतरका भाग स्वस्थ है या नहीं, यह नहीं जाना जायगा। किन्तु कनीनिका पर बार-बार प्रकाश अंधकार डालने पर कनीनिकाका प्रसारण-आकुंचन ठीक होता रहे एवं दीपक प्रकाश भिन्न-भिन्न दिशाओंसे नेत्रपर डालने पर किस दिशासे प्रकाश आता है, यह रोगी जान सके तो भीतरके भाग अच्छी स्थिति में हैं, ऐसा माना जाता है।

उपचार—इसका मुख्य उपचार दृष्टिमणिके आवरणका भेदन है। नेत्रके भीतरके अवयव आरोग्य स्थितिमें हैं, ऐसा निर्णय करनेके पश्चात् शस्त्रक्रिया करनी चाहिये। एट्रोपिनसे कनीनिकाको प्रसारित करके शस्त्र-क्रिया करने पर वह सरलतासे हो सकती है। आवरणमें छेद होने पर दृष्टिमणिका रस शनैः-शनैः शोषित होकर कनीनिका साफ होजाती है। प्रायः यह शस्त्रक्रिया एक ही आंख पर एक से अधिक बार करनी पड़ती है।

(४) वृद्धावस्थामें होनेवाला कांचबिन्दु।

(Senile Cataract)

भारतवर्षमें हजारों काँचबिन्दुके रोगी हैं। इनमें लगभग ९९ प्रति-शत रोगी वृद्धावस्था जन्य काँचबिन्दुके होते हैं। भारतवर्षमें काँचबिन्दु सब प्रान्तोंमें समान भावसे नहीं होता। पंजाब, राजस्थान, कच्छ, काठिया-वाड़, गुजरात और सिन्धके उष्ण और रेतीले प्रदेशमें इस रोगसे पीड़ितों की संख्या अत्यधिक होती है। इन सबमें भी पंजाबका नम्बर पहला माना जाता है।

लक्षण और चिह्न—इसका लक्षण एक ही है कि, रोगीकी दृष्टिमें न्यूनता। काँचबिन्दुका प्रारम्भ किस भागमें और किस तरह होता है, उस पर न्यूनतका आधार रहा है। यदि अपारदर्शकता सूक्ष्म और अति मर्या-दित हो, तो दृष्टिमें विशेष अन्तराय नहीं आता। उदा०—मध्यस्थ आगेके मोतियाबिन्दुकी अपारदर्शकता अधिक हो, किनारा स्पष्ट होनेके स्थानमें उसमेंसे किरणाकार अपारदर्शकता चारों ओर उपस्थित हो तो दृष्टिमें अति अन्तराय आता है। यदि अपारदर्शकता दृष्टिमणिके मध्यमें हो,

तो दृष्टि को विशेष बाधक होती है। ऐसी अपारदर्शकतामें रोगीको दिनमें अधिक बाधा पहुँचती है। वही प्रकाश या दीपक रोगीके पिछली ओर हो तो दृष्टिमें कम प्रतिबन्ध होता है। इसका एक ही कारण है कि सायंकाल और रात्रिको एवं प्रकाश या दीपक रोगीके पीछे हो तब कनीनिकाका संकोच कम होता है। इससे मध्यस्थ अपारदर्शकताके बाहरका भाग जो पारदर्शक हो, वह विशेष मुक्त होता है। यदि अपारदर्शकता दृष्टिमणिके परिधि प्रान्तमें हो तो दृष्टिमें विशेष न्यूनता नहीं आती। क्वचित् बिल्कुल बाधा नहीं पहुँचाती। इस प्रकारमें दिनको अच्छा दीखता है; तथा रात्रिको और दीपक प्रकाश पीछेकी ओर होने पर कुछ अधिक मंदता भासती है।

दृष्टिमान्द्यके अतिरिक्त दृष्टिके समक्ष काला स्थिर धब्बा भासता है। कितनेक समय कांचबिन्दु कुछ अंशमें एक ओर हो तथा दृष्टिमणि का भाग बिल्कुल स्वच्छ हो, तो एक आँखसे देखने पर रोगीको दो दो भासता है। उस स्थितिको एकाक्षि द्विदर्शन (Monocular Diplopia) कहते हैं। यदि अपारदर्शकता दृष्टिमणिके आगेके मध्य सिरे पर हो तो अधिक प्रतिबन्ध होता है।

अनेक कांचबिन्दुके प्रारम्भ वाले रोगी लम्बी दृष्टियुक्त हों, तो उनकी कम लम्बी दृष्टि होजाती है। अतः जिस नम्बरका + काँच व्यवहृत होता हो, उससे कम नम्बरके + काँचका उपयोग करने पर उसे ठीक दीखता है। यदि रोगी काँचबिन्दु आनेके पहले नैसर्गिक पूरी दृष्टि वाला हो तो उसकी ह्रस्व दृष्टि होजाती है। इससे जो रोगी दूरसे बिना चश्मे बिल्कुल साफ देख सकता है, उसे दूरसे स्पष्ट देखनेके लिये – काँच की आवश्यकता रहती है। पढ़नेके लिये उसीको + नम्बर का काँच लगता हो, वह कम नम्बर का होजाता है। या काँच (चश्मे) बिना ही पढ़ सकता है। कितनेक रोगी इस तरह अपनी दृष्टिमें हुए सुधारके लिये अभिमान करते हैं और मान लेते हैं कि उनकी दृष्टिमें फिरसे युवावस्था की दृष्टि आजाती है।

काँचबिन्दु बढ़ने पर दृष्टि मन्द-मन्द होजाती है। नेत्र समक्ष उपस्थित धब्बे बिल्कुल नहीं भासते। दो-दो की प्रतीति भी दूर होजाती है। शनैः-शनैः काँचबिन्दु वाले नेत्रकी दृष्टि बिल्कुल बन्द होजाती है। फिर कोई भी वस्तु प्रतीत नहीं होती, एवं विदित भी नहीं होती। किसी मनुष्यको नहीं जान सकते, या उसका आकार नहीं देख सकते। घरमें

भी फिरनेमें छायका सहारा लेना पड़ता है। केवल अन्धकार और प्रकाशका बोध शेष रहता है।

परीक्षाविधि—काँचबिन्दुके प्रारम्भमें उसका निर्णय करना कठिन होता है। कारण, जाँच करने पर दृष्टिमणिमें किसी भी प्रकारका परिवर्तन नहीं भासता। रोगीके नेत्र पर बहिर्गोल काँचसे प्रकाश केन्द्रित किया जाय, तो दृष्टिमणिका रंग कुछ मैला या किञ्चित् पीताभ प्रतीत होगा। पहले कहा गया है कि, बिल्कुल स्वस्थ मनुष्यके नेत्रमें दृष्टिमणिका रंग कभी-कभी पीताभ या मलिन होजाता है। अतः केवल उस रंग परिवर्तनसे ही काँचबिन्दुका निर्णय किया जायगा, तो वह विनिर्णय मिथ्या भी हो सकता है।

मोतियाबिन्दुकी शंका वाली आँखकी परीक्षा अन्धकारवाले कमरेमें कये बिना अस्तित्व या नास्तित्वका अभिप्रायः नहीं देना चाहिये। वृद्ध मनुष्योंकी कनीनिका प्रायः आकुंचित होती है। अतः जबतक उसे प्रसारित नहीं किया जायगा, तबतक अन्धेरे कमरेमें भी योग्य परीक्षा नहीं हो सकेगी। कनीनिका प्रसारित करनेके लिये योग्य औषध—होमेट्रोपिन कोकैन की बूंद हैं। किन्तु ४० वर्षकी आयुके पश्चात् रोगियोंके नेत्रमें इनका उपयोग करनेके पहले नेत्रान्तर दबाव नाप लेना चाहिये। यदि किञ्चित् भी दबाववृद्धि हो या दूर देखनेके लिये + चश्मे की आवश्यकता हो तो हौमेट्रोपिन या कोकैन का प्रयोग नहीं करना चाहिये। ऐसी स्थितिमें युफथेल्मिन हाइड्रोक्लोराइड या एफ्रेडिन सल्फेटकी बूंद डालनी चाहिये। इन औषधियोंके प्रयोगसे अधिमन्थ होनेका डर नहीं रहता। यदि इन दोनों औषधियोंसे भी कनीनिका प्रसारित न हो तो होमेट्रोपिन कोकैन का प्रयोग करें। किन्तु रोगीको मकान पर जानेकी अनुमति देनेके पहले आंखमें इसरीनके बून्द डाल देवें।

कनीनिका प्रसारित होनेपर रोगीको अन्धकार वाले कमरेमें लेजायँ। फिर योग्य स्थान पर बैठा नेत्रदर्शक यन्त्रमें समतल या सादा दर्पण व्यवस्थित करे। (नेत्रदर्पणमें दो गोल दर्पण होते हैं, १. समतल या सादा; २. अन्तर्गोल) नेत्रवैद्य लगभग १॥ फूट दूर बैठें। दीपक प्रकाश दर्पण द्वारा रोगीकी कनीनिका पर डालें। इससे कनीनिका लाल भासेगी। यदि कनीनिका बिल्कुल रक्तवर्ण स्वच्छ प्रतीत हो तो रोगी को मोतियाबिंद नहीं है, यह निश्चित होता है। यदि उस प्रकाशित भागमें काला धब्बा या धब्बे प्रतीत हों तो शुक्लमण्डल, दृष्टिमणि या काँचरूपरसमें अपारदर्शकता

मानी जाती है। इन तीनमें से किसमें है, उसके निर्णयके लिये नेत्रवैद्य अपना शिर चलावें, अपारदर्शकता चलती प्रतीत हो तो किस ओर गति करती है, वह ठीक देखें। शिरके चलने की विपरीत दिशामें गति हो तो शुक्लमण्डलमें, स्थिर रहे तो दृष्टिमणिके आवरणके आगेके हिस्सेमें और समान दिशामें गति हो तो दृष्टिमणिके बीचमें या पिछले आवरण में मानें। यदि अपारदर्शकता स्वतः ही स्वस्थान बदलती रहे अर्थात् अपारदर्शकता चल हो या जलमें तैरती हो ऐसा भास हो तो वह कांचरूपरसमें होती है। कांचबिन्दुके लिये स्पष्ट शब्दोंमें कहें तो नेत्रवैद्य का शिर जिस दिशामें चलेगा, उस दिशामें अपारदर्शकता चलनी चाहिये।

उक्त रीतिके अतिरिक्त स्लीट लेम्प और शुक्लमण्डलके सूक्ष्मदर्शक-यन्त्र भी इस परीक्षामें बहुत अच्छी सहायता पहुँचाते हैं। इस परीक्षासे दृष्टिमणि में अवस्थित सूक्ष्म से सूक्ष्म अपारदर्शकता भी विदित हो जाती है।

दृष्टिमणिकी अपारदर्शकता अच्छी तरह आगे बढ़ गई हो तो परीक्षा सरलता से होती है। खिड़कीसे आनेवाले प्रकाशसे परीक्षा करने पर कनीनिका का रंग राख जैसा भासता है, अन्धेरे कमरेमें कनीनिका पर एक ओर से प्रकाश डालने पर कांचबिन्दु साफ प्रतीत होता है। नेत्रदर्शक यन्त्र को सादे अथवा अन्तर्गोल दर्पणसे प्रकाश डालने पर कनीनिका राख जैसे रंगकी भासेगी। यदि मोतियाबिन्दु लगभग पक गया हो, तो कनीनिका सफेद भासेगी।

यदि मोतियाबिन्दु पकनेके पश्चात् की स्थितिमें होगा, तो उसका देखाव उसमें परिवर्तन के समान होगा। यदि वह सफेद दूध जैसा प्रतीत हो तो दूधिया कांचबिन्दु (Milky Cataract) कहलाता है। उस समय एक छोटी थैली दूध जैसे सफेद प्रवाही से भरी हो और उसके भीतर कुछ मलिन रंगकी वस्तु तैरती हो उस तरह दृष्टिमणिका बीज ऊपर चढ़कर नीचे गिरता हुआ प्रतीत होगा। यदि उससे भी अधिक पक गया होगा, तो दृष्टिमणिके आवरणके आगेके हिस्सेमें ४-६ या कभी बहुसंख्य सूक्ष्म-सूक्ष्म चिह्न देखनेमें आवेंगे। कांचबिन्दु पकजानेके पश्चात् दूधिया न बना हो तो कनीनिका पीताभ भासेगी। काला कांचबिन्दु (Black Cataract) कहते हैं, वैसी अवस्था होगी, तो कनीनिका पर प्रकाश डालने पर भी वह प्रकाशित नहीं होगी; किन्तु अपारदर्शक ही रहेगी।

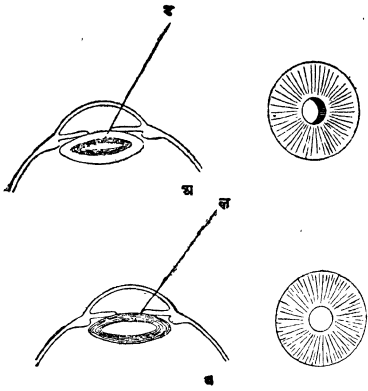

चित्र नं० १०६

अ. तारामण्डलकी छाया, अपक्व कांचबिन्दुमें तिर्यक् प्रकाश द्वारा।

ब. छायाका अभाव, पक्व कांचबिन्दुमें।

यदि मोतिया अच्छी तरह बढ़ गया हो तो वह पक गया है या नहीं, यह जानने के लिये +२० बहिर्गोल काँचसे कनीनिका पर एक ओरसे दीपकका प्रकाश डालें। मोतियाबिन्दु कच्चा होगा, तो जिस ओरसे प्रकाश आता है, उस ओरके कनीनिकाके भागमें अर्द्धचन्द्राकार छाया प्रतीत होगी। उस छायाको तारामण्डल की छाया (Iris-shadow) कहते हैं। चित्र नं० १०६ देखें। जबतक बिल्कुल पक्वावस्था नहीं आती, तबतक छाया बनती रहेगी। इस चिह्न परसे पक्वावस्थाका निर्णय होजाता है। यह मोतियाबिन्दु स्फीत (Swollen lens) होगया होगा, तो तारामण्डल आगे सरक जायगा, जलमयरसका पूर्वखण्ड सँकरा हो जायगा; तथा मोतियाके भागमें पकाये हुए साबूदानाके सदृश पदार्थ प्रतीत होगा। इनके अतिरिक्त त्रिकोणाकार पेशियोंके कोनका अर्थात् सँकरा हिस्सा मध्यभागमें होगा और चौड़ा हिस्सा परिधिकी ओर होगा। ऐसी स्थिति जब देखनेमें आवे, तब अनुषंगी अधिमन्थ होनेका डर रहता है।

अवशेष परीक्षा—१. कनीनिका की प्रतिक्रिया (Reaction of Pupil) अर्थात् आकुंचन-प्रसारण योग्य है या नहीं ? २. रोगीकी आंख पर प्रकाश डालने पर वह उसे देख सकता है या नहीं ? ३. प्रकाश प्रक्षेपण (Projection of Light) किस दिशामें से होता है यह दर्शा सकता है या नहीं ? इनकी परीक्षा करनी चाहिये।

१. *कनीनिकाकी प्रतिक्रिया*—प्रकाशकी प्रतिक्रिया देखनेके लिये रोगीको अँधेरे कमरेमें ले जायँ और कनीनिका पर प्रकाश डालें। प्रकाश गिरनेके

साथ ही कनीनिका आकुंचित होगी। प्रकाश दूर होने पर कुछ प्रसारित होगी।

२. *प्रकाशदर्शन*—नेत्रदर्शक यन्त्रके अन्तर्गोल दर्पण द्वारा रोगीके नेत्र पर दीपकका प्रकाश डालें। इससे वह उसे देख सकता है या नहीं, यह निर्णित हो जायगा।

३. *प्रकाशप्रक्षेपण निर्णय*—प्रकाश देख सके उस रोगीको दर्पणमें से डाला हुआ प्रकाश ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर फिराकर पूछते रहें कि, वह किस दिशासे आरहा है? यदि प्रत्येक दिशा ठीक दिखला सके, तो वह क्रिया भी योग्य है, ऐसा माना जायगा।

इनके अतिरिक्त कनीनिकाका किनारा मुक्त है या नहीं? यह भी निर्णित करलें। किसी स्थानमें वह मोतियाबिन्दुके पर्तको चिपका तो नहीं हैं? यदि किसी स्थानमें किनारा चिपका होगा, तो उस नेत्रमें तारा-मण्डलका प्रदाह माना जायगा। जिस नेत्रमें कनीनिकाप्रदाह हो गया हो, उस नेत्रमें कांचबिन्दु निकालनेकी शस्त्रक्रिया करने पर प्रदाहवृद्धि होनेका डर रहता है।

वृद्धावस्थामें कांचबिन्दु की विविध अवस्था—ये स्थिति ४ प्रकार की हैं। १. प्रारम्भिक अवस्था (Incipient cataract); २. अर्द्ध पक्वावस्था (Intumescent cataract); ३ पक्वावस्था (Mature cataract); ४. अति पक्वावस्था (Hypermature cataract)। इन सब अवस्थाओं के चिह्न ऊपर लिखे गये हैं। अब इन अवस्थाओं में दृष्टिमणि का परिवर्तन दर्शाते हैं।

१. प्रारम्भिकावस्था—कांचबिन्दुकी प्रथमावस्थामें जो अपारदर्शकता भासती है, उसमें ४ प्रकार हैं। अ. त्रिकोणकार; आ. समस्त दृष्टिमणिमें धूम सदृश; इ. मण्डलाकार; और ई. अंगुली आकार की।

अ. त्रिकोणाकार अपारदर्शकता—इस प्रकारमें नोक वाला भाग बीच में और चौड़ा भाग परिधिकी ओर होता है। यदि बत्तीका प्रकाश बहिर्गोल कांचसे केन्द्रित करके कनीनिका पर डाला जाय तो अपादर्शकता का रंग पाण्डु दीखेगा। नेत्रदर्शक यन्त्रके दर्पणमेंसे प्रकाश डालें, तो काला भासेगा। दृष्टिमणि त्रिकोणाकार भागोंसे बनी है। अतः इस आकार की अपादर्शकता देखनेमें आती है। ऐसे प्रकारकी अपारदर्शकता प्रायः ह्रस्वदृष्टि युक्त नेत्रोंमें होती है। इस अपारदर्शकताका प्रारम्भ त्रिकोणके चौड़े भागमेंसे होता है। फिर नोक वाले भागकी ओर बढ़ती है। इस हेतु से बीच का हिस्सा साफ रहे तब तक कितनेक काल तक रोगी की दृष्टिमें अन्तराय नहीं आता।

आ. धूमसदृश अपारदर्शकता—दृष्टिमणिके बीच भाग मेंसे प्रारम्भ होने पर इस प्रकारकी अपारदर्शकता आती है। इसमें बीचका हिस्सा प्रारम्भसे ही आक्रमित होता है। इस हेतु से रोगीकी दृष्टिमें प्रारम्भसेही प्रतिबन्ध होने लगता है। अनेक रोगी अपनी दृष्टिके सम्बन्धमें कहते हैं कि वे मलमल जैसे पतले कपड़े में से देखते हों, या ओस गिरनेसे जिस तरह मन्द प्रतीति हो, उस तरह मन्द और अस्पष्ट भासता है। मध्य भागसे प्रारम्भ होनेके हेतुसे प्रातः-सायं ठीक दीखता है, दोपहरको एवं अधिक प्रकाशमें दृष्टिको अधिक प्रतिबन्ध होता है। कनीनिका पर प्रकाश डालकर देखने पर दृष्टिमणिके बीच का हिस्सा श्वेताभ भासता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर वह काला भासता है।

इ. मण्डलाकार अपारदर्शकता—यह गर्भ भाग की पिछली ओर से शुरू होती है। उसमें भी मध्यका भाग घिर जानेके हेतुसे दृष्टिमें प्रारम्भसे ही अधिक बाधा पहुँचती है। नेत्रदर्शक यन्त्रके दर्पणसे प्रकाश डालकर देखने पर गोल काले रंगका भाग प्रतीत होता है। इस वर्तुल का किनारा स्पष्ट होने के बदले में उसमें से काले रंग के चक्र की धुरी के आकार के किरण निकलते हैं।

पिछली ओरके मध्य भागमें कांचबिन्दु होता है, जिसका वर्णन अपूर्ण मोतियाबिन्दुमें किया जायगा, उसमेंभी नेत्रदर्शक यन्त्रसे प्रकाश डालकर परीक्षा करने पर वर्तुलाकार काली अपारदर्शकता प्रतीत होती है; किन्तु उसका किनारा स्पष्ट होता है और वह किरण रहित होती है।

अन्य रीतिसे कहें, तो प्रारम्भिक कांचबिन्दु की इस प्रकारकी अपारदर्शकता मकड़ीके जालेके आकार से विशेष मिलती आती है।

ई. अँगुली सदृश अपारदर्शकता—यह बहुधा वृद्ध मनुष्यों के नेत्रमें आती है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे प्रकाश डालने पर दो मुद्रिकाएं, एक छोटी और एक बड़ी, जैसे एक दूसरे के पीछे रखी हों, उस तरह देखाव होता है। इस प्रकारकी अपारदर्शकता से दृष्टि को विशेष बाधा नहीं पहुँचती। कारण, दृष्टिमणिका बिचला हिस्सा स्वच्छ और पारदर्शक होता है।

दृष्टिमणिका अगला आवरण कांचबिन्दु अति पक जाय, तब तक अपारदर्शक नहीं होता। किन्तु कितनेक (बहुत थोड़े) रोगियों में इस आवरणके आगेके हिस्सेमें छोटी गोलाकार अपारदर्शकता आजाती है। फिर वह धीरे-धीरे बढ़कर समस्त दृष्टिमणि पर फैल जाती है।

२. अर्द्धपक्वावस्था—इस स्थितिमें दृष्टिमणि स्फीत होती है। उसके गर्भ भागमें विशेष प्रवाही आनेके हेतुसे वह फूल जाती है। फिर उसी

हेतुसे समस्त दृष्टिमणि अपारदर्शक हो जाती है; तथा दृष्टि अतिशय मन्द होजाती है। नेत्रपरीक्षा करने पर जलमय रसका पूर्वखण्ड छोटा होने का विदित होता है। कारण, फूला हुआ कांचबिन्दु आगे की ओर स्थान रोकता है। पिछली ओर कांचरूपमें जानेकी सुविधा नहीं है। इसी हेतुसे जलमय रसका पूर्वखण्ड उथला (Shallow) बनता है। कनीनिका पर दीपकका आड़ा प्रकाश डालने पर कांचबिन्दु श्वेताभ दीखता है, उसमें त्रिकोणाकार टुकड़े व्यवस्थित किये हों, ऐसी सजावट प्रतीत होती है। पार्श्वमेंसे प्रकाश डालने पर तारामण्डलकी छाया भी स्पष्ट पड़ती है। इस चिह्न पर कांचबिन्दु अपक्व है ऐसा कह सकते हैं। प्रत्येक कांचबिन्दु इस स्थिति को धारण करते ही हैं, ऐसा न मान लेवें। कितनेक विशेष प्रकारके कांचबिन्दु, जो बहुधा ४० से ५० वर्ष की आयु के बीच होते हैं, वे ही इस प्रकार के बनते हैं।

३. *पक्वावस्था*—अर्द्ध पक्वावस्थाके पश्चात् पक्वावस्थाकी प्राप्ति होने तक परिवर्तन होता ही रहता है। फिर पक्वावस्थाकी प्राप्ति होने पर दृष्टि लगभग बन्द हो जाती है, मनुष्य का आकार भी नहीं जाना जाता। केवल नेत्रके पास हाथका चलना और प्रकाश-अन्धकारका सामान्य बोध होता है। नेत्रपरीक्षा करने पर जलमय रसका पूर्वखण्ड स्वाभाविक स्थितिमें हो जाता है। तारामण्डलकी छाया नहीं पड़ती। दृष्टिमणिमें त्रिकोणाकार टुकड़े या लाली नहीं भासती। समस्त कांचबिन्दु अपारदर्शक हो जाता है। नेत्र पर आड़ा प्रकाश डालने पर पूरी दृष्टिमणि एक ही रंग की, चाहे श्वेत या पीताभ भासती है। कनीनिका पर सामने से प्रकाश डालने पर वह कृष्णाभ भासती है। उस कालापनमें कुछ रक्त आभा भी होती है। नेत्रपर प्रकाश डालने पर उसे रोगी देख सकता है; एवं किस दिशामें से आया, वह भी कह सकता है। प्रकाश डालने पर प्रतिक्रिया रूप कनीनिका आकुंचन और प्रकाशको खेंच लेने पर प्रसारण ठीक देखने में आता है।

उक्त स्थितिमें कांचबिन्दु शस्त्रक्रियाके योग्य माना जाता है। एवं शस्त्रक्रिया करने पर पूर्ण सफलता मिलती है। इतना ही नहीं, बल्कि रोगी को पुनः अच्छी दृष्टि मिल जाती है।

४. *अति पक्वावस्था*—कांचबिन्दु पक जाने पर भी उसे न निकाला जाय, तो उसमें और परिवर्त्तन होता ही रहता है। इस परिवर्त्तनके २ प्रकार हैं। वे बहुधा दृष्टिमणिके गर्भ पदार्थ (Cortex) में ही होता है। यदि उसके भीतर अवस्थित द्रवका दिन-प्रति-दिन शोषण होता जाय, तो सब गर्भ पदार्थ दृष्टिमणिके बीजके साथ मिलकर कठोर बन जाता है। साथ-साथ कांचबिन्दु भी छोटा ही होता जाता है। उसका रंग अधिक पीला या

मलिन हो जाता है। जलमयरसका पूर्वखण्ड कुछ अधिक बड़ा बनता है। कितनेक कांचबिन्दुमें शोषणक्रिया इतनी अधिक तेजीसे बढ़ जाती है कि, समस्त कांचबिन्दु बहुत छोटा और पतला हो जाता है। ऐसा होने पर उद्बन्धनके बन्धनसे वह कितनेक अंशमें मुक्त होता है। जिससे वह काँपने लगता है। यदि रोगी नेत्रको ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर, इस तरह चलायगा, तो मोतियाबिन्दु भी चलने लगेगा। या जैसे कि तैरता हो, ऐसा भासेगा। क्वचित् यह कम्प तारामण्डलमें भी प्रतीत होता है। तारामण्डलका कम्प दर्शाता है कि दृष्टिमणि अति पतला और छोटा होकर स्वस्थानसे कुछ सरक गया है।

यह शोषणक्रिया और आगे बढ़ती है, तो दृष्टिमणि बीज इतना छोटा होजाता है कि कनीनिकामें से सरककर निम्न भागमें तारामण्डलके पीछे गिर जाता है। ऐसा होने पर दृष्टि पुनः खुल जाती है।

यदि दृष्टिमणिका शोषण इतना अधिक न हो, सामान्य ही रहे और मोतियाबिन्दु न निकाला जाय, तो उसका पर्त आगे की ओर मोटा होजाता है। कभी-कभी उस पर सफेद बिन्दु उत्पन्न होते हैं। ये बिन्दु चूने जैसे क्षारके संग्रहसे बनते हैं। कितनेक कांचबिन्दु पर इस क्षारके स्थान पर पित्त क्षार (Cholesterin) उपस्थित होते हैं। इससे कांचबिन्दुमें तेजस्वी बिन्दु भासते हैं।

यदि शोषणक्रिया न हो और गर्भ पदार्थ प्रवाही रूप धारण करे तो वह दिन-प्रति-दिन गलने लगता है। फिर दृष्टिमणिके बीजके अतिरिक्त शेष कांचबिन्दुका भाग सफेद दूध जैसा प्रवाही बन जाता है। यह प्रवाही भाग दृष्टिमणि के आवरणसे बनी हुई छोटी थैलीके भीतर होनेसे वह थैली (कांचबिन्दु) दूध जैसे रंग वाली बनती है। ऐसे नेत्रकी परीक्षा करने पर कनीनिकाके बीचका हिस्सा दूध जैसा अर्थात् बद्दल मिश्रित सफेद रंगका बन जाता है। उस स्थितिमें पहुँचने पर दूधिया कांचबिन्दु या मोर्गेगनका कांचबिन्दु (Milky or Morgagnian Cataract) कहलाता है। उस स्थिति में गर्भ पदार्थ दूध जैसा प्रवाही बन जाता है। उसके भीतर केवल बीज ही कठिन तैरता हुआ रहता है। अंधकारमय कमरेमें परीक्षा करने पर कनीनिका प्रदेश बिल्कुल दूध सदृश सफेद तथा उसके भीतर पीताभ बीज भासता है। रोगी नेत्र या शिर चलावे तो बीज भी चलता है; यह नेत्रवैद्य स्पष्ट देख सकता है। इस दूधिया मोतियाबिन्दुको निकालनेमें कितनाक खास सम्हाल रखना पड़ता है, वह शस्त्रक्रियाके प्रकरणमें लिखा जायगा।

यदि उस दूधिया मोतियाको रहने देवें, तो उस स्थिति में रह जाता है या प्रवाही पदार्थ शोषित होने लगता है। फिर अन्तमें बीज ही शेष रहता है। यह बीजस्थलीके निम्न भागमें तारामण्डलके पीछे पड़ा रहता है।

यदि मोतियाबिन्दुका पर्त्त अपारदर्शक न बना हो तो उस स्थितिकी प्राप्ति होने पर रोगी बिना चिकित्सा कराये पुनः देखने लग जाता है। इस प्रकारसे पुनः दृष्टिकी प्राप्ति हुई हो, ऐसे रोगी हमने बहुसंख्य देखे हैं।

कारण—वृद्धावस्थामें होनेवाले मोतियाबिन्दुके कारणके शोधका प्रयत्न अनेक शतकोंसे हो रहा है; किन्तु उसमें अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली। दृष्टिमणिमें परिवर्त्तन क्रिया जो सर्वदा होती रहती है, वह वृद्धावस्थामें प्रबल बन जाती है, यह बात सर्वमान्य है। यदि उस प्रबल वेगका प्रतिकार नैसर्गिक रीतिसे न हो सके, तो परिवर्त्तन जनित अपारदर्शकता आती जाती है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि, किसी-किसी वयोवृद्ध को ही होता है, सबको नहीं, किसी-किसीको ३५ वर्षकी आयुमें ही होता है; अन्योंको ७० वर्षकी आयुमें भी नहीं होता, ऐसा क्यों? इन प्रश्नोंके भीतर ही कांचबिन्दुके कारणोंका रहस्य छिपा हुआ है। वर्त्तमानमें ६ कारणोंकी कल्पना की जाती है। १. दृष्टिमणि और उसके आवरणमें होने वाला परिवर्त्तन; २ जलमय रसके मौलिक द्रव्योंमें परिवर्त्तन; ३. प्रकाशाधिक्य ४. उष्णताधिक्य; ५. देहपोषक जीवनीय तत्त्वोंकी न्यूनता; ६. देहगत रसपिण्डोंके अन्तःस्रावोंकी न्यूनता।

१. दृष्टिमणि और उसके आवरणमें होनेवाला परिवर्त्तन—दृष्टिमणिमें सर्वदा परिवर्त्तन होता रहता है, अन्तर विशेषतः दृष्टिमणिके गर्भ पदार्थके तन्तुओंमें होता है। बालकका दृष्टिमणि अति कोमल होता है। आयुवृद्धिके साथ उसके तन्तु मध्यभागकी ओर अधिकाधिक दबते जाते हैं। इन तन्तुओंकी उत्पत्ति परिधिमें से होती है और उनका दबाव बढ़ता जाता है। इस दबावका असर मध्यभाग पर अन्य भागोंकी अपेक्षा अधिकतर होता है। इस दबावके हेतुसे २५ वर्षकी आयुमें दृष्टिमणिके बीचका भाग कठिन हो जाता है, उसे बीज संज्ञा दी है। फिर आयुवृद्धिके साथ बीजके चारों ओरके तन्तु एक दूसरेकी ओर दबाते रहते हैं। ४० वर्षकी आयुमें यह दबाव इतने तक बढ़ जाता है कि, उसका असर समग्र दृष्टिमणि पर होता है। यह क्रिया क्रमशः होती रहे, तो उसका प्रतिकार भी होता रहता है; जिससे सब तन्तु उस स्थितिमें पहुँच कर एक दूसरेको लग जाते हैं; किन्तु किसी हेतुवश (अभीतक अज्ञात) दबाव क्रिया वेगपूर्वक बने या तन्तु मिल जानेकी क्रिया शिथिल रहे, तो पृथक्-पृथक् तन्तुओंके बीच

समान रिक्त रह जाता है। फिर उसमें प्रवाही भर जाता है। तन्तु उस प्रवाही का शोषण कर लेता है। इससे वे स्फीत होकर अपारदर्शक होने लगते हैं। यह क्रिया ही कांचबिन्दुको प्रारम्भ कराने वाली है। यदि यह क्रिया किसी कारणसे स्थगित या रहित हो जाय, तो कांचबिन्दु आगे नहीं बढ़ता। उसी स्थितिमें रह जाता है। किसी उपायसे या भीतरकी रोग-निरोधक शक्ति सबल बननेसे ऐसी जातिका सुधार होजाय कि, दृष्टिमणि के तन्तुमें होने वाला परिवर्त्तन रुक जाय, या उसकी व्यवस्था होनेकी गति सबल बन जाय, तो कांचबिन्दु शमन हो जाता है, ऐसे दृष्टांत भी हमें अनेक मिले हैं। उक्त दोनों क्रिया—नूतन तन्तुओंकी उत्पत्ति द्वारा होने वाला दबाव और तन्तुओंकी व्यवस्थाका आधार शेष ५ कारणों पर रहा है।

२. *जलमय रसकी मौलिक द्रव्यरचनामें परिवर्त्तन*—जलमय रस क्षारे-मिश्रित जल है। उसमें अवस्थित रासायनिक द्रव्योंका मिश्रण जबतक स्वाभाविक होता है, तब तक वह शुक्लमण्डल और दृष्टिमणिको पोषण देकर उनको आरोग्य रखते हैं। यदि उक्त मिश्रणमें अन्य किसी विषाक्त द्रव्यका संयोग हो जाय या नैसर्गिक रीतिसे क्षारोंमें न्यूनता आ जाय, तो दृष्टिमणिके पोषणमें न्यूनता आती है। परिणाममें कांचबिन्दु उपस्थित होता है।

यह रूपान्तर दो कारणों से हो सकता है। (१) तन्तु समूह, जो जलमय रसका स्राव उत्पन्न करता है, उसमें वृद्धावस्थाके हेतु से होने वाले रूपान्तर से स्रावोत्पादक शक्ति का ह्रास होना अथवा उसे मिलने वाले रक्त में से जलमय रस में जाने वाले क्षार कम हो जाना। (२) शारीरिक रोग या विकृतावस्था (चाहे वृद्धावस्था या पचन क्रिया कम होने अथवा मोचक तत्त्व के अतिरिक्त कितनेक विष पदार्थों के निर्माण से उपस्थित) के हेतु से जलमय रस में कितनेक विद्रव्य मिल जाते हैं। फिर उनका प्रसार दृष्टिमणि के आवरण पर होता है, जिससे उसकी शोषण शक्ति में ह्रास होता है और दृष्टिमणि की पारदर्शकता कम हो जाती है, या कांच-बिन्दु का प्रारम्भ होता है। ऐसी स्थिति वृक्कप्रदाह (Nephritis), मधुमेह आदि रोगों में उत्पन्न कांचबिन्दु अथवा नफ्थलिन (Naphthalene) के विषजनित कांचबिन्दु में प्रतीत होती है।

३–४. *प्रकाश और उष्णता की अधिकता*—शीतल देश के लोगों को मोतियाबिन्दु बहुत कम होता है। उष्ण देशों में अत्यधिक मनुष्यों को होता है। इस नियमानुसार पंजाब आदि प्रान्तों में इसके रोगी अधिकतर

विचरते हैं। इस पर से विदित होता है कि प्रकाश और उष्णता का प्रभाव भी इसकी उत्पत्ति में सहायक है। इसी हेतु से नेत्ररोगों की चिकित्सा के यन्त्रों से चिकित्सा करने में अतीत नीललोहित किरण वाला दीपक, एक्सरे, रेडियम आदि साधनों का उपयोग करनेमें सम्हाल रखनी पड़ती है। इन यन्त्रों से निकलने वाले किरण यदि दृष्टिमणि पर गिरते हैं तो उसके परिणाम में कांचबिन्दु हो जाता है। सूर्यप्रकाश में भी अतीत नील-लोहित किरण (Ultra Violet rays) विशेष परिमाण में होते हैं। उनमें ग्रीष्म काल के प्रचण्ड प्रकाश में ये किरण अतिशय अधिक परिमाण में होते हैं। ये किरण नेत्र पर गिरने पर दो प्रकार से हानि पहुँचाते हैं।

(१) तन्तुमय समूहको क्षति पहुँचाकर परम्परागत दृष्टिमणिको हानि पहुँचाते हैं। अथवा ये किरण दृष्टिमणिपर अनिष्ट असर पहुँचाते है। फिर जलमय रसको दृष्टिमणिमें प्रवेश न होने देनेका गुण जो आवरणमें है, उसमें कमी होती है।

(२) अति उष्णताके हेतु से दृष्टिमणिमें अपारदर्शकता आती है। इसका उदाहरण कांचका रस बनाने वालोंको होनेवाला मोतियाबिन्दु (Glassblower's cataract) है। इन लोगोंकीदृष्टिमणिको अति उष्ण किरणों (रक्तातीत Infra red rays) द्वारा हानि पहुँचती है। दृष्टिमणिके आवरणकी भेदक शक्तिको बाधा पहुँचने से जलमय रस दृष्टिमणिके भीतर प्रवेश करता है। फिर कांचबिन्दु हो जाता है।

५. *देहपोषक जीवनीय तत्वों की न्यूनता*—पाश्चात्य देशोंके नेत्ररोग लेखकोंने इस कारणको अधिक महत्व नहीं दिया। किन्तु मेरा अनुभव इनसे भिन्न है। कुछ वर्षोंसे प्रारम्भिक कांचबिन्दुके जो रोगी मेरे पास आते हैं, उनको रिबोफ्लेविन (Riboflavin) नामक जीवनसत्व B_2 खानेके लिये दिया जाता है। उससे अनेक रोगियोंको लाभ होनेका अनुभव हुआ है। सब रोगियोंको नहीं, फिर भी कितनेक रोगियोंको इस जीवन द्रव्यके सेवनसे लाभ पहुँच जाता है। इससे देहपोषक तत्त्वकी न्यूनता दूर होती है। फिर अपारदर्शकता साफ होजाती है या रुक जाती है।

६. *रसपिण्डोंमें उत्पन्न अन्तःस्रावोंकी न्यूनता*—वृद्धावस्था जैसे-जैसे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे स्वाभाविक रसपिण्डोंकी क्रिया शिथिल होती जाती है। एवं कांचबिन्दु भी वृद्धावस्थामें होते हैं। अतः इन दोनोंका निकट सम्बन्ध होनेकी कल्पना तर्कशास्त्र अनुसार योग्य मानी जायगी। इसी आधार पर कितनेक अमरीकन नेत्रवैद्योंने इस कारणको कांचबिन्दु जनक

माना है। किन्तु भारतवर्षमें ३५-४० वर्षकी आयुमें और अन्य प्रकारसे सशक्त मनुष्योंके नेत्रोंमें उत्पन्न मोतियाबिन्दुकी दृष्टिसे उक्त कल्पना मिथ्या भासती है। एवं कितनेक प्रकारके रसपिण्डोंके स्रावका सेवन करा कांचबिन्दुको दूर करने का प्रमाण किसी नेत्रवैद्यने उपस्थित नहीं किया। अतः इस कारणको अधिक महत्व नहीं दे सकेंगे।

क्रम—कांचबिन्दुका प्रारम्भ होने पर उसका क्रम क्या रहता है, यह प्रश्न अति महत्त्वका है। प्रत्येक काँचबिन्दुका रोगी नेत्रवैद्यको प्रथम प्रश्न करता है कि, मेरी आँखकी कैसी स्थित रहेगी ? दृष्टि रहेगी या नहीं ? काँचबिन्दुके पकनेमें कितना समय लगेगा ? आदि-आदि। यदि क्रम का बोध हो तो ही इन प्रश्नोंका उत्तर देसकते हैं।

सामान्यतः वृद्धावस्थामें मोतियाबिन्दु होने पर प्रारम्भावस्थासे पक्वावस्था तक पहुँचनेमें लगभग २-३ वर्ष लगते हैं। गर्मीके दिनोंमें पकनेकी क्रिया शीघ्र होती है; शीतकालमें कुछ शिथिल होती है। अतः रोग प्रारम्भ होने पर ही रोगी आया हो तो सामान्यतः २-३ वर्ष कह सकते हैं। कुछ आगे बढ़ा हो तो उस अनुसार समय कम करना चाहिये।

कितनेक समय कांचबिन्दु वर्षों तक नहीं पकता। ऐसे कांचबिन्दुओंमें मुख्य जाति ह्रस्व दृष्टि वाले नेत्रमें उत्पन्न काँचबिन्दु तथा कितनीक जातिके अपूर्ण कांचबिन्दु हैं। इन रोगियोंका कांचबिन्दु अनेक वर्षों तक नहीं पकता। मेरे पास ऐसे बहुसंख्य रोगी आये थे, जिनको मोतियाबिन्दु होने के २५ वर्ष हो जाने पर भी वे अपना कार्य कर सकते थे। एवं कितनेक रोगी अपक्व मोतियाबिन्दु के साथ ही इस लोक से परलोक पहुँच गये।

मोतियाबिन्दु पक्व होने पर यदि उसे न निकाला जाय और नेत्रमें ही रहने दिया जाय, तो वह अति परिपक्व स्थिति को प्राप्त होकर पहले लिखे अनुसार क्रम व्यतीत होता है।

उपचार—वृद्धावस्थामें उत्पन्न काँचबिन्दुके उपचारके २ प्रकार हैं। १. औषधोपचार; २. शस्त्रोपचार।

१. औषधोपचार—काँचबिन्दु को दूर करने के लिये औषधोपचारका प्रयत्न अति दीर्घकालसे नेत्रवैद्य और सामन्य वैद्य करते आये हैं। किन्तु अभी तक पूर्ण सफलता नहीं मिली। किन्तु कितनेक रोगियों को लाभ पहुँचा है, ऐसा मेरा अनुभव है। इन औषधोंका प्रयोग २ रीति से होता है। १. नेत्रमें डालकर; और २. उदर सेवन रूप से।

नेत्रमें डालनेकी औषध—इनमें एट्रोपिन, पोटास आयोडाइड, सिनेरिया मेरीटिमा (Cineraria meritima), पलासमूलका अर्क, कुसी आयोडो—रूबिडो केल्सियम (Cusi ophthalmosa Iodo—rubido Calcium) का मलहम, डायोनिन और ग्लिसरिन आदि व्यवहृत होते हैं। इनके अतिरिक्त कितनेक औषध नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे डाले गये हैं। इनमें सोडा आयोडाइड, पोटास आयोडाइड, सायानाइड ऑफ मर्क्युरी आदि हैं।

एट्रोपिन—कांचबिन्दुकी प्रारम्भावस्थामें ही वह दृष्टिमणिके मध्य-भागमें हो, तो प्रारम्भसे ही दृष्टिमें बहुत बाधा पहुँचती है। उन रोगियों की कनीनिका प्रसारित की जायगी, तो रोगीको अति संतोषप्रद लाभ प्रतीत होगा। क्योंकि दृष्टिमणिकी परिधिका भाग पारदर्शक होनेसे उस भागमें से रोगी देख सकता है। कनीनिका प्रसारक सब औषधोंमें एट्रोपिनका असर अधिक समय तक रहता है। इसलिये इस औषधका उपयोग अनेक कांचबिन्दुके रोगी करते हैं। एवं कितनेक औषध विक्रेता और नीमहकीम एट्रोपिनमिश्रित औषधका विज्ञापन कांचबिन्दु नाशके लिये विविध नामों से देते रहते हैं। जो रोगी इस एट्रोपिनमिश्रित औषधका प्रयोग करता है, वह इस औषधकी सराहना करता है।

सामान्य उपचारार्थ एट्रोपिन ५ ग्रेनको १ औंस जलमें मिलाया जाता है; किन्तु कांचबिन्दुके लिये यह मात्रा आवश्यक नहीं है। १ औंस जलमें ½ से ¼ ग्रेन एट्रोपिन मिलाकर उपयोग हो सकता है। यह बिन्दु बहुधा ४-४ दिनके अन्तर पर नेत्रमें डाली जाती है।

सूचना—एट्रोपिनके उपयोगसे ४० वर्ष या अधिक आयुवालोंके लिये अधिमन्थ होनेका डर रहता है, यह पहले लिखा गया है। अतः नेत्रवैद्य की सलाह लिये बिना और उनकी देखरेखमें रहे बिना इसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। रक्तदबाव और नेत्रान्तर दबावका निर्णय पहले किया जाय, तो ही इसका प्रयोग हितकर होता है।

पोटास आयोडाइड—१ औंस जलमें ४-८ ग्रेन मिलाकर प्रयोग करने पर कभी-कभी लाभ पहुँचता है।

सिनेरिया मेरिटिमा—यह अमेरिकन औषध है। इसका प्रयोग बहु-संख्य रोगियों पर किया गया है। कितनेक रोगियों को कुछ समय तक लाभ विदित होता है, किन्तु किसी भी रोगी को पूर्णांशमें लाभ हुआ हो, ऐसा हमारे अनुभवमें नहीं आया। अनेक वर्षों तक इसका प्रयोग करके

उपराम हुए रोगियोंने कांचबिन्दुको शस्त्रोपचारसे निकलवाया है, ऐसे उदाहरण बहुसंख्य हमें मिले हैं।

पलाशमूल अर्क—यह आयुर्वैदिक अति सस्ती औषध है। इसका उपयोग हमने कितनेक वर्षोंसे प्रारम्भिक कांचबिन्दुके रोगियों पर किया है। उससे अनेक रोगियोंको लाभ होनेका हमें अनुभव मिला है। अतः प्रारम्भिकावस्थामें इसके प्रयोगका अनुभव करनेका हम अनुरोध करते हैं। इसके प्रयोगमें इतना ही सम्हाल रक्खें कि, किसी विश्वासनीय आयुर्वैदिक औषधालयमें निकाला हुआ अर्क लेवें।

कुसीरुबिडो-आयोडो-केलसियम—इस नाम वाला मलहम स्पेनकी कम्पनीकी ओरसे भारतमें आता है। उसका उपयोग अनेक वर्षोंसे अनेक रोगियों पर किया है। प्रारम्भिक अवस्था वाले अनेक रोगियोंको लाभ पहुँचा है।

कितनेक नेत्रवैद्य डायोनिनकी बूंदका उपयोग करते हैं। कितनेक ग्लिसरिनकी बूंद डालते हैं। दोनों लाभदायक हैं, ऐसा हमें अनुभव नहीं मिला।

कितनेक नेत्रवैद्य पोटास आयोडाइड या सोडा आयोडाइडके २ प्रतिशतका प्रवाही बनाकर उसके १०-१५ बूंदका अन्तःक्षेपण नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे करते हैं। इस तरह सप्ताह में २ बार प्रयोग करते हैं। उससे कईयोंको लाभ होता है। उसी तरह सायानाइड ऑफ मर्क्युरी १-३०००के प्रवाहीकी २-३ बूंदका अन्तःक्षेपण होता है। उससे भी उपकार होने की प्रतीति हुई है।

उदरसेवनार्थ औषध—सामान्यतः वार्द्धक्यावस्थामें कांचबिन्दुके साथ देहके अन्य अवयवोंकी व्याधि या निर्बलता होती है। उसका सम्बन्ध चाहे कांचबिन्दुके साथ हो या न हो। शारीरिक स्थिति सुधरने पर नेत्रको बल मिलता है। परिणाममें कांचबिन्दुकी स्थितिमें लाभ होनेकी आशा रक्खी जाय, तो वह अनुचित नहीं मानी जायगी। अतः प्रत्येक कांचबिन्दुके रोगीकी शारीरिक स्थितिको देखकर योग्य उपचार करना चाहिये।

कितनेक चिकित्सक आयोडिनका प्रयोग प्रत्येक रोगी पर करते हैं। कोलोसल आयोडिन, पोटास आयोडाइड, सोडा आयोडाइड आदि औषध योग्य मात्रामें पीने के लिये दी जाती हैं। कितनेक नेत्रवैद्य सोडा आयोडाइडके प्रवाहीको रोगीकी शिरामें प्रवेश कराते हैं। प्रारम्भमें इनके प्रयोग द्वारा अनुभव करना चाहिये।

रिबोफ्लेविन (Riboflavin)—इस औषधका प्रयोग हम दो वर्ष से

करते हैं। इससे अनेक रोगियोंको अच्छा गुण आया है। इसकी गोलियाँ मिलती हैं। प्रायः ३ मिलीग्रामकी मात्रावाली आती हैं। ऐसी ६ गोली एक दिनमें देते रहें। १२ गोली भी दी जायँ तो इसमे हानि नहीं पहुँचती। कम से कम २ मास तक इसका प्रयोग करना चाहिये। कांचबिन्दुका प्रारम्भ हुआ होगा, तो वह साफ हो जाता है। ऐसा न होने पर आगे बढ़ता हुआ तो अवश्य रुक जाता है।

रोगीको अच्छा पौष्टिक आहार देवें। प्राचीन वैद्य कांचबिन्दुके रोगी को बादाम, पिस्तेका पाक, इसी आशयसे देते थे।

औषधोपचार जो यहाँ लिखा गया है, वह बहुत कम रोगियोंको मर्यादित लाभ पहुँचाता है। कितनेक रोगी शस्त्रोपचारके नामसे ही डरते हैं। इनके लिये प्रारम्भिक अवस्थामें उपरोक्त प्रयोग करना चाहिये। यदि वे निष्फल हो जायँ तो फिर कांचबिन्दु पके तब तक राह देखनी चाहिये।

शस्त्रोपचारके अधिकारी—इस क्रियाको प्रारम्भ करनेके पहले निम्न स्थितियों पर लक्ष्य देकर अधिकारी निर्णय करना चाहिये।

१. रोगीकी शारीरिक स्थिति—रोगीकी शारीरिक स्थिति अच्छी होनी चाहिये। कास और श्वास न होना चाहिये। हो तो योग्य उपचार से पहले दूर करें। शरीरमें अधिक निर्बलता न होनी चाहिये। पाण्डुरोग हो तो शस्त्र-चिकित्सा नहीं हो सकेगी। पेशाबकी परीक्षा कर लेनी चाहिये। शक्कर, शुभ्र प्रथिन (एल्ब्युमिन) अथवा पूय न होना चाहिये। स्वल्प शुभ्र प्रथिन हो तो विशेष बाधा नहीं पहुँचती। शक्कर तो होनी ही नहीं चाहिये। शक्कर जाती हो तो जब तक वह दूर न हो तब तक शस्त्रक्रिया स्थगित रक्खें। वर्त्तमानमें इन्सुलिन (Insulin) के प्रयोग से लगभग दो सप्ताहमें सामान्य शक्कर जाती हो, तो उसे दूर कर देते हैं।

शुभ्र प्रथिन अधिक मात्रामें प्रतीत हो तो रोगीके वृक्कोंकी स्थिति सदोष जानी जाती है। ऐसे रोगियों के नेत्र पर शस्त्रोपचार करने में विविध प्रकारका डर रहता है। विशेषतः घावका पकना, तारामण्डल और तन्तुमय समूहका प्रदाह तथा नेत्र मध्यपटल और नेत्रदर्पणमें रक्तस्रावकी आपत्ति आनेका भय रहता है। उसी तरह पूय जाने पर भी वैसा ही भय रहता है। अतः इन दोनों प्रकार के रोग दूर न हों तब तक शस्त्रक्रिया स्थगित रखनी चाहिये।

दाँतोंमें पूय हो तो उससेभी नेत्रमें पूयप्रदाह हो जाता है। अतः दाँतों के पूयको पहले दूर करना चाहिये। या दूषित दाँतों को निकाल डालना

चाहिये। इस तरह कानके पूय, गर्भाशय प्रदाह आदि का भी निर्णय कर लेना चाहिये।

२. *नेत्रकी स्थिति*—नेत्रकी अच्छी तरह परीक्षा करें। पुराने रोहे, सफेदी या नेत्रश्लेष्मावरणका चिरकारी प्रदाह तो नहीं है? नेत्रमेंसे चिपचिपा पदार्थ तो नहीं निकलता? ऐसा कोई विकार हो तो उसको पहले दूर करें। अन्यथा नेत्र पक जायगा।

३. *अश्रुवाशयकी स्थिति*—उपरोक्त दोनों स्थितियोंकी अपेक्षा यह अत्यधिक महत्व की है। यदि अश्रुवाशयका प्रदाह हो और उसके ऊपर अंगुष्ठसे दबाने पर नेत्रकोणमेंसे पूय जैसा पदार्थ निकले तो भूलसे भी नेत्र-गोलक पर शस्त्र क्रिया नहीं करनी चाहिये। अन्यथा समस्त गोलक विद्रधि रूप बन जायगा। दृष्टि आना दूर रहा, रोगीको एकाध मास असह्य पीड़ा भोगनी पड़ेगी, नेत्र चला जायगा और फिर नेत्रमें गड्ढा हो जायगा।

अश्रुवाशय पर दबाव देने पर चिपचिपा पदार्थ न निकले तो फिर अश्रुवाशयका नाककी ओरका मार्ग मुक्त है या नहीं, यह परीक्षा करें। इस परीक्षा की दो रीति हैं। १. सरल रीति यह है कि, नेत्रमें मेथिलिन ब्लू, मर्क्युरोक्रोम या फ्लुओरेसिनके प्रवाहीकी बूंद डालें और रोगीको शिर नाक की ओर झुकता हुआ रखनेको कहें। यदि अश्रुवाशयका निम्न मार्ग खुला होगा, तो २-३ मिनिटमें उस रंगकी बूंद नाकमें उतरेगी। फिर उस ओरके नाक को छींकने को कहें। उस समय नासापुट पर एक सफेद कपड़ा रक्खें, जिससे उस रंगका दाग उस कपड़े पर पड़ेगा। यदि इस तरह रंग नाकमेंसे निकलता है तो उस मार्ग को खुला मानना चाहिये। यदि इसमें सफलता न मिले तो दूसरी परीक्षा निम्नानुसार करें :—

रोगी को टेबल पर लिटावें। नेत्रमें एनिथिन या कोकेनके प्रवाहीकी बूंद २-२ मिनिट पर ३ बार डालें फिर नेत्रको पारद धावनसे धो डालें। सहायक चिकित्सक विद्युद्दीपकका प्रकाश नेत्रके भीतरके कोणपर केन्द्रित करें। ऐसा करने पर अश्रुवाशयका द्वार स्पष्ट प्रतीत होगा। उसमें द्वार-प्रसारक यन्त्र (Canaliculus dilator चित्र नं०१२) के सूक्ष्म सिरेको उसमें प्रवेश करावें। फिर धीरे-धीरे सरकावें। ऐसा करने पर वह द्वार प्रसारित होगा। पश्चात् कांचकी पिचकारी पर नालिका (Canula) लगा उसे उबाले हुए स्वच्छ जलसे भरें। उसे उस द्वारमें प्रवेश करा पिचकारी में भरे हुए जलको अश्रुवाशयमें छोड़ें। द्वार मुक्त होने पर जल रोगीको नाकमें आकर कण्ठमें आवेगा। ऐसा होने पर अश्रुवाशयका निम्न मार्ग मुक्त समझें।

यदि अश्रुवाशयका प्रदाह हो और उसमेंसे लसदार प्रवाही निक-

लता हो तो अश्रुवाशयको निकाल देनेकी शस्त्रक्रिया पहले करनी चाहिये। जब उसका घाव भर जाय, तब कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया करें।

यदि लसदार प्रवाही न जाता हो, केवल निम्न मार्ग बन्द हो तो २ उपाय हैं। कितनेक नेत्रवैद्य उस स्थितिमें अश्रुवाशयको निकाल देनेको उत्तम मानते हैं। हमारा अनुभव इससे भिन्न है। अश्रुवाशयकी शलाकाएं (Lachrymal probes, चित्र नं० १५७) डालकर उस मार्गको खुला करें। (इन शलाकाओंका वर्णन आगे दिया जायगा) फिर ४ दिन तक अश्रुवाशयको मर्क्युरोक्रोम १ प्रतिशतके धावनसे धोवें। एवं सल्फाडायाजिन सोडियमके ६ प्रतिशतके प्रवाहीको कुछ थैंबोंमें भरें। यदि वह औषध न हो तो आर्जिरोल १० प्रतिशतका प्रवाही लगभग ५ बूंद अश्रुवाशयमें डालें। प्रायः इस प्रकारके उपचारसे वह साफ होजाता है। फिर शस्त्रक्रिया करनेमें आपत्ति नहीं है। यह विचार स्वानुभवके अनुरूप दिया है। अन्य नेत्रवैद्योंने तो अश्रुवाशयको निकाल देनेको ही योग्य माना है।

४. *नेत्रान्तर दबाव*—नेत्रान्तर दबाव (कठिनता) मापक यन्त्र (Tonometer) से नाप लेवें। यदि सियोकके यन्त्रसे २५ और मेकलिनके यन्त्रसे ४० से अधिक न हो तो शस्त्रक्रिया करनी चाहिये। यदि दबाव अधिक हो तो रोगीको विरेचन देवें और आराम करावें। फिर दबाव कम होने पर शस्त्रक्रिया करें।

नेत्रान्तर दबावके समान देहका रक्तदबाव भी जांच करें। १७५ से अधिक न हों तो शस्त्रक्रिया करें। अन्यथा नेत्रमेंसे रक्तस्राव होनेका डर रहता है।

५. *नेत्रदृष्टि निर्णय*—मोतियाबिन्दु पकजाने पर रोगी नेत्रके पास वैद्यके हाथको चलता हुआ जानले तथा दीपक प्रकाशको अच्छी तरह देख सके, तो ही नेत्रमें कांचबिन्दुके अतिरिक्त अन्य दृष्टि दोष नहीं है, ऐसा माना जायगा।

६. *कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया*—यह योग्य होनी चाहिये। रोगीको अंधकार वाले कमरेमें लेजायँ और बहिर्गोल कांचसे नेत्र पर दीपक प्रकाश एक ओरसे डालें। प्रकाश गिरनेके साथ ही कनीनिका आकुंचित होनी चाहिये। एवं प्रकाश दूर होने पर पुनः प्रसारित होनी चाहिये।

७. *प्रकाशकी दिशाका बोध*—नेत्रदर्शक यन्त्रके दर्पण द्वारा रोगीके नेत्र पर प्रकाश डालें और पूछें कि किस दिशासे प्रकाश आरहा है। प्रकाशकी दिशा ठीक दर्शा सके, तो नेत्रदर्पण अच्छी स्थितिमें माना

जायेगी। एवं काचबिन्दुकी शस्त्रक्रियाके पश्चात् उसकी दृष्टि ठीक हो सकेगी।

इस परीक्षाको असत्य बनाने वाली एकही स्थिति है। वह नेत्रदर्पणके मध्यभागके पीतबिन्दुका क्षय। यदि अति वयोवृद्ध मनुष्यमें यह स्थिति हो, तो उक्त प्रकाशका परिणाम योग्य होने पर भी शस्त्रक्रियाके पश्चात् रोगीको संतोषप्रद दृष्टि नहीं मिलती। उपरोक्त सब प्रकारसे अच्छी तरह जांच कर शस्त्रक्रिया करने पर सफलता मिलती है।

शस्त्रक्रियाकी तैयारी—शस्त्रक्रियाके लिये सुबहका समय विशेष अनुकूल माना जाता है। सुबह प्रकाश ठीक रहता है और बढ़ता जाता है। किसी कारणसे डाक्टरको सुविधा न मिलने पर शामका समय रक्खा जाता है। शाम होने पर प्रकाश धीरे-धीरे कम होता जाता है।

रोगीको रात्रिको हलका विरेचन दे और शस्त्रक्रियाके दिन सुबह हलका भोजन देवें। रोगीका मुख साबुन और गरम जलसे साफ करे। कितनेक नेत्रवैद्य रोगीको निद्रा लाने की औषध देते हैं। वह शस्त्र क्रियाके एकाध घण्टे पहले से देते हैं। जिससे शस्त्रक्रियाके समय और फिर रोगी कुछ निद्रामें रहता है। शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करने के पहले रोगीको आश्वासन देवें कि हिम्मत रक्खे, घबरायें नहीं।

फिर रोगीको एक योग्य टेबलपर लिटावे और नेत्रमें कोकैन हाइड्रोक्लोरेटका प्रवाही डाले। पश्चात् रोगीको नेत्र बन्द करनेको कहे। कारण, कोकैनमें शुक्लमण्डलकी सूक्ष्म त्वचाको सुखा देनेका गुण है। एवं एक लिण्टका टुकड़ा नमक जलमें भिगोकर बन्द नेत्र पर रक्खे।

शस्त्रक्रियामें आवश्यक शस्त्र—१. नेत्र खुले रखनेकी कमानी चित्र नं० १०७; २. गोलक को स्थिर रखनेका चिमटा चित्र नं० ७६; ३. ग्रेफेकी छुरिका चित्र नं० १०८; ४. तारामण्डलका पकड़ने का चिमटा चित्र नं० १०९; ५. तारामण्डलको काटनेकी कैंची चित्र नं० ११०; ६. दृष्टिमणिके आवरण को भेदन करनेका कांटा चित्र नं० १११, ७. दृष्टिमणिको बाहर निकालने का चिमच चित्र नं० ११२, आंकड़ा या चिपटा चिमच चित्र० नं० ११३ या ११४; ८. पलक को ऊँचा करनेका आंकड़ा चित्र नं० ११५; ९. कांचबिन्दुको नेत्रमेंसे फँसानेका पाश चित्र नं० १०४, १०. नेत्रको धोनेके लिये कांच कूपी (अण्डाइन–Undine चित्र नं० ५०) बोतल या फ्लास्क, जिसमें रबरकी नली और उसके सिरेपर धातुकी नली होती है वह; ११. तारामण्डलको बैठाने का तारामण्डल नियोजक शस्त्र चित्र नं० १०५।

कितनेक नेत्रवैद्य तारामण्डलको पकड़ने के लिये चिमटे के बदलेमें

आंकड़ेका उपयोग करते हैं। इसी तरह कितनेक चिकित्सक दृष्टिमणिके भेदनार्थ कांटे के बदले में चिमटी का उपयोग करते हैं। कांचबिन्दु को बाहर निकालने के लिये चिमच, आंकड़ा, चिपटे चिमच (स्पेन्युला) आदि जिनको जो सुविधाप्रद प्रतीत हो, उसे उपयोग में लेते हैं। कई नेत्रवैद्य निम्नपलकके दबाव से कांचबिन्दुको बाहर निकालते हैं। इस तरह जलमय रसके पूर्वखण्ड को धोनेके लिये पिचकारी या विशेष नलीका प्रयोग सुविधा अनुसार किया जाता है। कई नेत्रवैद्य उसे धोते ही नहीं।

(चित्र नं० १०७ से चित्र नं० ११० तक ग्रन्थके अन्त में देखें)

चित्र नं० १११—दृष्टिमणिका आवरण भेदक कांटा।

(Cysto-tome)

(चित्र नं० ११२ ग्रन्थ के अन्त में देखें)

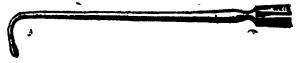

चित्र नं० ११३—कांचबिन्दुको बाहर निकालनेका आंकड़ा।

(Lens Expression hook)

(चित्र नं० ११४ ग्रन्थ के अन्त में देखें)

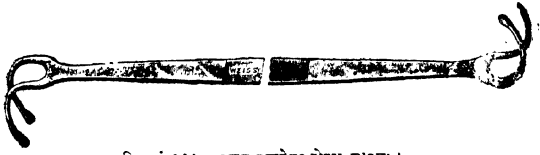

चित्र नं ११५—पलक उठानेका दोहरा आंकड़ा।

(Lid Elevator double hook)

ऊपरोक्त शस्त्र आदिमें से जो नेत्रके भीतरके भागको धोनेका पात्र हो उसमें जलशोधक पत्रसे छाने हुए नमक जलको अच्छी तरह उबालें। फिर नीचे उतार कर शीतल करें। सब शस्त्रोंको उबालकर स्वच्छ करें। लिंपट, पट्टी, नेत्रपर बांधनेके फोहे और गोजके टुकड़े को कल्पसे

करें। एवं शस्त्रवैद्य और सहायक वैद्य, दोनों अपने हाथोंको विशुद्ध करें। यह शोधन क्रिया किस तरह करनी चाहिये, वह आगे शस्त्रक्रियासे प्रकरणमें लिखा जायगा।

सूचना—शस्त्रक्रियाके प्रारम्भमें ही नेत्रवैद्यको ऐसा प्रतीत हो कि, रोगीके नेत्रको हाथ लगाने पर या पलक उठानेपर रोगी बलपूर्वक नेत्रको दबाता है, तो उसे विशेष सावधानता रखनी चाहिये। ऐसे अनेक उदाहरण मिले हैं कि नेत्रवैद्यने शस्त्रसे घाव करने पर तुरन्तही रोगीने नेत्रको जोरसे दबाया। परिणाममें भीतरसे मोतियाबिन्दु और कितनाक कांच रूपरस बाहर निकल आया। ऐसा होने पर नेत्रको हानि पहुँचती है। अतः रोगी कुछ भी घबराया प्रतीत हो या नेत्रको सबल दबायगा, ऐसा भास हो तो नेत्रको न दबा सके इसलिये नेत्रनिमीलनी पेशी (Orbicularis Palpebrarum) को कुछ समयके लिये स्तम्भित करनेका उपाय करना, यह श्रेयस्कर माना जायगा। इस क्रियाके लिये ७वीं नाड़ी, जो इस पेशीको चलन शक्ति प्रदान करती है, उस पर नोवोकेन एडिनेलिनके प्रवाहीका अन्तःक्षेपण करके उसे शक्तिहीन बना देवें। यह क्रिया २ रीतिसे हो सकती है। कानके आगेके हिस्सेमें जहां पर यह नाड़ी अस्थिमेंसे बाहर आती है वहां पर या नेत्रगुहके बाहरके किनारेमें जहां पर वह नेत्र निमीलनी पेशीको चलनशक्ति देनेके लिये प्रवेश करती है, वहां पर अन्तःक्षेपण करना चाहिये। पहले स्थानमें अन्तःक्षेपण करनेमें लाभ यह है कि, पेशी बिल्कुल पूर्णांशमें स्तम्भित होजाती है। यह स्थिति आधसे १ घण्टे तक रहती है। हानि यह है कि लम्बे समय तक पेशी स्तम्भित रहनेसे शस्त्रक्रिया पूरी करके नेत्रपर पट्टी बांधनेमें आवे, तब नेत्र बन्द नहीं होतकता। इससे घाव कुछ समय तक खुला रहता है। प्रवेश स्थानमें अन्तःक्षेपण करनेमें केवल १५ मिनिट स्तम्भन होता है। इसलिये कदाच शस्त्रक्रियामें देर लग जाय तो रोगी पेशीको दबा सकता है। यदि शस्त्रवैद्य स्फूर्तिशाला हो तो मोतियाबिन्दुकी शस्त्रक्रियामें २ मिनिटसे अधिक नहीं लगता। अतः हमारे अनुभवमें दूसरी रीति विशेष उपयोगी प्रतीत होती है।

नेत्रनिमीलनी पेशीकी स्तम्भन क्रियाविधि—सुई, पिचकारी और नेवोकेनके २ प्रतिशतके प्रवाहीको अच्छी तरह निर्जन्तुक करें। फिर नेवोकेन प्रवाहीको विशुद्ध छोटे कांच पात्रमें डाल उसमें २ बूंद एडीनेलिनके प्रवाहीकी डालें। फिर पिचकारीमें भर कानके आगेके हिस्सेमें, जहाँ निम्न जबड़ेका शिर चलता प्रतीत होता है, उससे ½ इञ्च आगेके हिस्सेको स्पिरिटसे साफकर फिर टिञ्चर आयोडिन लगाकर निर्जन्तुक करें। पश्चात्

प्रवाही भरी हुई पिचकारीको दाहिने हाथमें पकड़ जबड़ेके शिरसे ½ इञ्च आगे और ½ इञ्च नीचे की ओर सुई को प्रवेश करावें। आध इञ्च लगभग जाने पर पिचकारीके प्रवाहीमेंसे १ क्यूबिक सेण्टीमीटर (१७ बूंद लगभग) भीतर डालें। फिर सुईको निकाल आयोडिन लगावें। ५ मिनिट बाद रोगी चाहे उतना बल लगावें, नेत्रको बन्द नहीं कर सकेगा।

नेत्रगृहके बाहरके किनारे पर प्रवाही प्रवेश कराना हो तो भी उसी विधि अनुसार त्वचाको निर्जन्तुक करके अन्तःक्षेपण किया जाता है। सुई विकृत भीतरकी अस्थि तक जानी चाहिये। हड्डीको सुई लगने पर थोड़ा प्रवाही डालें। फिर सुईको कुछ बाहर खींचकर ऊपरके हिस्सेमें आगे चलावें, वहां पर कुछ प्रवाही डालें, और फिर निम्न भागमें कुछ प्रवाही डालें। तत्पश्चात् सुईको निकाल उस भागको मसल देवें। ५ मिनिटके बाद आंख बन्द होसकती हैं या नहीं, यह देख लेवें। १० मिनिटके भीतर पेशी स्तम्भित होजायगी। १५ मिनिट तक वैसी स्थिति रहेगी।

आवरणभेदन करके कौंचबिन्दु निकालनेकी शस्त्रक्रिया—शस्त्रक्रियाके पहले रोगीको एक समय कोकैनका प्रवाही डालें, और ५ मिनिटके पश्चात् दूसरी बार बूंद डालें। साथमें एड्रीनेलिन प्रवाहीकी १ बूंद मिला देवें। फिर नेत्रको पारद धावनसे धो डालें। कितनेक चिकित्सक १ : ३०००, कोई १ : ५००० और कई १ : १०००० का प्रवाही व्यवहृत करते हैं। अनेक रोगियों पर अनुभव करनेके पश्चात् हमने १ : ५००० के प्रवाहीको अधिक अनुकूल माना है। इस प्रवाहीके उपयोगसे अच्छा परिणाम यह आता है कि नेत्रप्रदाह या पाक होना आदि विकृति क्वचित् ही होती है। नेत्रगोलक और उसके चारों ओरके भागको इस प्रवाहीसे ठीक धो देवें। कितनेक शस्त्रवैद्य पलककी त्वचाको टिञ्चर आयोडिन लगाते हैं। पारदधावनसे धोकर फिर नेत्रको खुला रखने के लिये कमानी लगा लेवें। पश्चात् उबालकर विशुद्ध किये हुए नमक जलसे नेत्रको अच्छी तरह धो देवें। जो कुछ प्रवाही नेत्रकोणमें रह गया हो, उसका शोषण लिण्टके टुकड़े से कर लेवें।

नेत्र खुले रखनेकी कमानी पहले से ही लगी होती है, जिससे रोगी नेत्रको बन्द नहीं कर सकता। नेत्रगोलकको शुक्लमण्डलके किनारेके नीचे की ओरसे चिमटे द्वारा पकड़कर स्थिर करें। ग्राफेका शस्त्र दहिने हाथमें पकड़ें। (कितनेक नेत्रवैद्य दहिनी आँखके लिये दहिने हाथमें तथा बांयी आँखके लिये बांये हाथमें पकड़ते हैं। काट करनेके समय रोगीके शिरके पास ही खड़े रहते हैं) यदि दहिने नेत्रके लिये नेत्रवैद्य रोगीके शिरके पास

और बांये नेत्रके लिये रोगीको बांयी ओर लेटा रखना चाहिये। फिर गोलकको स्थिर पकड़ शुक्लमण्डलके बाहरके किनारेमे कुछ बाहर तथा कनीनिकाके ऊपरके किनारेकी सतहमे कुछ ऊँचे शस्त्रको जलमय रसके पूर्वखण्डमें प्रवेश करावें। खण्डमें प्रवेश होने पर अनुभवी नेत्रवैद्यका हाथ उसे जान लेता है। एवं शस्त्रका खण्डमें प्रवेश होने पर साफ दिखाई देता है। शनैः-शनैः और स्थिर हाथसे शस्त्रको आगे चलावें। कभी शस्त्र तारामण्डलमें फँस जाता है। ऐसा विघ्न आवे तो २ मार्ग हैं। शस्त्रको आगे चलने देवें और तारामण्डलको कटने देवें या शस्त्रको कुछ पीछे खेंच तारामण्डलसे मुक्त करें। ऐसा करने में यदि जलमयरस निकल जाता है, तो काटने की शेष क्रिया पूर्ण करनेमें बहुत कठिनता होती है। शस्त्र जब शुक्लमण्डलके भीतरके किनारे लगभग पहुँचे, तब उसकी नोकको शुक्लमण्डल और तारामण्डलके बीच घुमाकर बाहर निकालें। फिर शुक्लमण्डल को काटते जायँ, बिल्कुल ऊपरके किनारे तक छेद को पहुँचावें। यदि नेत्रश्लेष्मावरणके आच्छादनको काट देना हो तो शस्त्रको उसी सतहमें रहने दें और नेत्रश्लेष्मावरणका टुकड़ा कटने देवें। फिर शस्त्रधाराको कुछ आगे आने दें जिससे छेद पूरा होगा। यदि नेत्रश्लेष्मावरणका आच्छादन न रखना हो तो शस्त्र शुक्लमण्डलके किनारेको पहुँचने पर शस्त्र धागको कुछ आगे फिराकर छेद पूरा करें।

कभी-कभी छेद पूरा होने पर कुछ रुधिर निकलता है। एवं कुछ रुधिर जलमयरसके पूर्वखण्डमें भी जाता है। ऐसा होने पर उसे नमक जल से धो डाले। फिर नेत्रगोलकको स्थिर करनेका चिमटा सहायक वैद्य को देवें, वे नेत्रगोलकको स्थिर पकड़ रक्खेंगे; नेत्रवैद्य एक हाथमें तारामण्डल को पकड़ने का चिमटा पकड़ें; तथा दूसरे हाथमें कैंची रक्खें। चिमटे से पर्दे को पकड़ छेदसे बाहर खेंचें और कैंची से काट देवें। बहुधा इस क्रियामें रोगीको कुछ वेदना होती है। इसलिये नेत्रको इधर उधर चलाता है अथवा कुछ दबाता है। उस समय सहायक वैद्य को खूब सम्हालना चाहिये। रोगी नेत्रको चलाता है तो तारामण्डल समान नहीं कटता, खिंचता है और टूट जाता है। परिणाममें नेत्रके भीतर बहुत रक्तस्राव हो जाता है। फिर पिछले पर्देमें प्रदाह होजाता है। रोगी नेत्र दबाता है, तो किया हुआ छेद खुल जाता है। फिर उसमेंसे काँचबिन्दु एवं काँच रूप रसका कितनाक भाग बाहर निकल आता है। इतना ही नहीं, क्वचित् नेत्रमध्यपटल और नेत्रदर्पण तक बाहर निकल जाते हैं। यदि इस तरह अकस्मात् होता है तो, रोगी की दृष्टि होनेकी संभावना बहुत कम होजाती है। उसके लिये उपाय

एक ही है कि रोगी नेत्रको दबाता है, ऐसा देखने में आवे, तो तुरन्त सहायक वैद्यको नेत्र खुले रखनेके चिमटे को ऊँचा उठा लेना चाहिये। इससे उसका दबाव नेत्रगोलक पर बिल्कुल न रहे।

तारामण्डलको काटने पर प्रायः रक्तस्राव नहीं होता; किन्तु कितनेक रोगियोंमें होता है। यदि रक्त जलमयरसके पूर्वखण्डमें संगृहीत हो जाय तो शस्त्रक्रियामें आगे बढ़नेके पहले रुधिर को धो देना चाहिये। इसके लिये काँचपात्रमें नमक जल रक्खा हो, उसका उपयोग होता है।

फिर दृष्टिमणिके आवरणका भेदन किया जाता है। इसके लिये भिन्न-भिन्न नेत्रवैद्य भिन्न-भिन्न शस्त्रोंको व्यवहारमें लेते हैं। विशेषतः कांटेका उपयोग करते हैं। कोई चिमटेसे कार्य करते हैं, और कई तलवारके आकारका शस्त्र प्रयोगमें लाते हैं। काँटा अनुकूल रहे तो गोलकको स्थिर रखनेके चिमटेसे स्थिर कर (कितनेक शस्त्रवैद्य चिमटी अपने हाथमें रखते हैं; कोई सहायक वैद्यको देते हैं) कांटेको उस तरह छेदके रस्तेसे जलमय रसमें प्रवेश करावें कि उसका नोकवाला भाग आड़ा हो जाय। जब नोक कनीनिकाकी निम्न धारा तक पहुँचे, तब उसे तारामण्डलके पीछे ले जायँ। फिर नोकको फिरा कांचबिन्दुके आवरणकी ओर घुमा अतिशय हलके हाथसे आवरणमें छेद करें। एकाधिक छेद करनेसे फिर बाधा नहीं पहुँचती। आवरण भेदन करनेके पश्चात् जिस तरह शस्त्र प्रवेश कराया था, उसी तरह सतर्कता-पूर्वक बाहर निकाल लेवें।

फिर सहायक वैद्य नेत्रको खुला रखनेकी कमानीको नेत्र पलसे ऊँची उठा लेते हैं। शस्त्रवैद्य गोलकको स्थिर कर लगभग शुक्लमण्डलके निम्न किनारे पर दबाव देते हैं। इसके लिये रबरके छोटे चम्मच, कांचके आंकड़े, लोहेके आंकड़े, चिपटे चम्मच आदि जो जिनको अनुकूल रहे, उसका उपयोग करते हैं। कितनेक किसीका उपयोग न करते हुए केवल हाथसे निम्न पलक पर दबाव डालते हैं। कितनेक शुक्लमण्डलके निम्न-भागमें एक ओरको दबाते हैं तथा दूसरी ओर शुक्लमण्डलमें किये हुए छेदके पिछले भागको तारामण्डल नियोजक शस्त्रसे दबाते हैं। इससे छेद खुल जाता है और शनैः-शनैः उसमेंसे कांचबिन्दु बाहर निकल आता है। पश्चात् कदाच किञ्चित् अंश भीतर रह गया हो तो, उसे शनैः-शनैः निकाल लिया जाता है। कितनेक नेत्रवैद्य जलमय रसके पूर्वखण्डको धो डालते हैं। एवं कनीनिका प्रान्त बिल्कुल काला हो जाने पर यह क्रिया पूर्ण हुई ऐसा मानते हैं।

तत्पश्चात् तारामण्डलके कटे हुए सिरा यदि छेदके बाहर न तो

भीतर यथास्थान रक्खा जाता है; और नेत्रमें रहे हुए रक्तके सूक्ष्म टुकड़े आदिको निकाल, नेत्रको साफ कर, मर्क्युरोक्रोमके प्रवाहीकी एक बूँद डाल शनैः-शनैः नेत्रको बन्द कर ऊपर गोजका टुकड़ा और रुईका फोहा रख पट्टी बाँध दी जाती है। दूसरे चक्षुको भी साथमें बांध लेना, वह अच्छा माना जायगा। कारण, दोनों नेत्र बँधने पर किसीका पलक नहीं हिल सकता और घाव जल्दी भर जाता है। पट्टी पर बाँधनेके लिये तारका छोटा पलना (तारकी रक्षिका चित्र नं० १८१) आता है, उसे बाँध देने पर रोगीका हाथ या अन्य कुछ वस्तु नेत्र पर लग जाय तो भी चोट नहीं लग सकती। पश्चात् रोगीको टेबल परसे पलंग पर लिटाया जाता है। यदि रोगी अति असहनशील स्वभावका हो तो कुछ अफीम या मोर्फिया दिया जाता है; अन्यथा रोगीको शान्त सोने देते हैं। २४ घण्टे तक रोगीको चित लिटाया जाता है। इस समयके भीतर रोगी जितना शान्त रह सके, उतना ही अच्छा माना जायगा।

शस्त्रक्रियाके पश्चात् परिचर्या—रोगीको क्षुधा लगने पर प्रवाही भोजन लेटे-लेटे ही चम्मच या नलिका वाली झारीसे दिया जाता है। शौच और लघुशंकाके लिये भी उठना नहीं चाहिये। मलपात्र (Bedpen) या मूत्रपात्र (Urinal) में लेटे-लेटे ही मल-मूत्र त्याग कराया जाता है।

२४ घण्टेके पश्चात् पट्टी खोलकर नेत्रमें एट्रोपिनकी ३-४ बूँद २-२ मिनिटके अन्तर पर दो बार डालें। फिर मर्क्युरोक्रोमकी एक बूँद डालें। बूँद डालनेके समय कनीनिका, तारामण्डल और शुक्लमण्डलके घाव आदिको स्थितिको देख लेना चाहिये। नेत्रमें लाली है या नहीं? कनीनिका स्वच्छ है या नहीं? घावके किनारेमें पकनेके कोई चिह्न तो नहीं भासते? तारामण्डल दो में से किसी कोनसे बाहर तो नहीं निकल आया? इन सब स्थितियोंकी जाँच कर लेनी चाहिये।

नेत्रकी स्थिति संतोषप्रद हो तो प्रतिदिन १ समय पट्टी खोल ऊपर लिखे अनुसार बूँद डालते रहें। ९वें दिन पट्टीको निकाल डालें और भ्रू भागमें हरी पट्टी लटका देवें या काले चश्मे पहनावें।

शस्त्रक्रियाके २४ घण्टेके पश्चात् रोगीको एक ओर करवट बदलने की अनुमति देवें। शस्त्रक्रिया की हो वह आंख ऊपर रहे, उस तरह करवट मोड़ें। ४८ घण्टे बाद दोनों ओर करवट बदल सकते हैं। ७२ घण्टे होने पर कुछ-कुछ बैठें तो भी बाधा नहीं मानी जायगी। ५ वें दिनसे रोगीको कुछ-कुछ चलने-फिरने देवें।

भोजन दो दिन तक प्रवाही (दूध जैसा) देवें। तीसरे दिनसे हलवा, चावल, खिचड़ी आदि मुलायम भोजन देवें।

शस्त्रक्रियाके पश्चात् कुछ-कुछ लाली १० दिन तक रहती है। एवं ३-४ घण्टे तक तो घावमें कुछ जलन भी होती है। फिर रोगीको पीड़ा नहीं रहती। यदि पीड़ाकी पुकार होती है, तो कुछ उपद्रव होनेका मानकर जांच करनी चाहिये। लगभग १॥ मास तक एट्रोपिनकी बूंद डालते रहें। दो मासके पश्चात् चश्मे दिये जाते हैं।

सूचना—शस्त्रक्रियाके पश्चात् नेत्रको साजा जल न लगावें। धोनेके लिये उबाले हुए जलका उपयोग करें।

अकस्मात् और उपद्रव—(१) नेत्रको धोनेके लिये कितनेक नेत्रवैद्य १ : ५०० या १ : १०००, ऐसा तेज पारद धावन बनाते हैं और जब १ : ५००० या १ : ३००० का उपयोग करना हो, तब उस परिमाणसे जल मिला लेते हैं। ऐसे नेत्रवैद्य कभी परिचारक या नौकरकी असावधानीसे अति तेज प्रवाहीका उपयोग कर देते हैं। परिणाममें रोगीको अति वेदना होती है और क्वचित् नेत्रको भी हानि पहुंचती है।

(२) छेद करनेके समय शस्त्र तारामण्डलमें फँस जाता है। उस समय क्या करना चाहिये, वह पीछे लिखा गया है।

(३) छेद छोटा होने पर मोतियाबिन्दुको बाहर निकलनेमें कठिनाई होती है। फिर अनुभव रहित नूतन नेत्रवैद्य कदाच गोलक पर चाहिये उससे अधिक दबाव डालता है, तो कांचरूपरस बाहर निकल आता है। इसके लिये एक ही उपाय है कि छेदको बड़ा करें। उसके लिये छिद्रप्रसारक यन्त्र (चित्र नं० ११६), जो विशेष प्रकारका आता है उसका या कैंचीका उपयोग करें।

(४) घाव होजानेके पश्चात् कोई रोगी नेत्रको अकस्मात् खेंचता है या छेद समाप्त होते ही नेत्रको बलपूर्वक दबाता है। सतर्कता न रक्खी जाय तो भीतरसे मोतियाबिन्दु और कांचरूपरसका कितनाक भाग बाहर निकल आता है। परिणाममें दृष्टिको हानि पहुँचती है। इस अकस्मात्को रोकनेके लिये नेत्रनिमीलनी पेशीको स्तम्भित करना चाहिये।

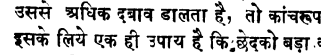

चित्र नं० ११६—डिस्मारका छिद्र प्रसारक यन्त्र (Desmar's Secondary Cataract Knife)

(५) तारामण्डल काटनेमें योग्य न कटे और चिमटेमें चिपक जाय और नेत्रवैद्य घबराकर जल्दीमें तत्काल चिमटेको खेंचले तो तारामण्डल

टूट जाता है या किसी समय पूरा पर्दा बाहर आजाता है फिर रुधिर स्राव बहुत होता है और दृष्टि बहुत कम होजाती है अथवा बिल्कुल चली जाती है।

(६) जलमय रसके पूर्वखण्डमें रक्तस्राव हो, तो यह अधिक गम्भीर नहीं माना जाता। रक्तको नमक जलसे धो दिया जाता है या उसमें ही रहने दिया जाता है। यदि रहने दें तो कुछ दिनोंमें शोषित होजाता है।

(७) कभी तारामण्डलके पर्देका छेदन योग्य न होने पर कनीनिका के ऊपरके किनारे वाला भाग रह जाता है। ऐसा होने पर हो सके तबतक आंकड़ेका प्रयोग कर छेदन पूरा करें या आवरणभेदक कांटेसे पर्देको बाहर खेंचकर काट देवें।

(८) आवरणकाभेदनमें क्वचित् दबाव अधिक आजाय या आवरण लेसदार हो तो उसके भेदनके बदलेमें पूरा कांचबिन्दु स्थानभ्रष्ट होजाता है। ऐसा होने पर मुड़ा हुआ चिमटा (पाश) व्यवहृत होता है।

(९) मोतियाबिन्दुको बाहर निकालने पर कांचरूप रस बाहर आता है। यह रस कभी पहले कभी पीछे बाहर निकलता है। यदि मोतियाबिन्दु आनेके पहले वह बाहर आ जाय तो स्थिति अति भयंकर हो जाती है। फिर दबावके हेतुसे मोतियाबिन्दु डूबता जाता है और कांचरूप रस बाहर निकलता रहता है। इस अकस्मात्से नेत्रका रक्षण करनेके लिये तत्काल पाशका प्रयोग करना चाहिये। पाशको भीतर डाल मोतियाबिन्दुके पीछे ले जायँ और धीरे-धीरे बाहर निकाल लेवें। ऐसा करनेमें थोड़ा बहुत कांचरूपरस निकल ही जाता है।

(१०) नेत्रगोलकमें से रक्तस्राव—वृद्ध मनुष्योंके नेत्रकी धमनियाँ इतनी कोमल होती हैं कि, कांचबिन्दु बाहर निकलने पर वे तुरन्त टूट जाती हैं। फिर उनमेंसे भय उत्पन्न हो, इतना रक्तस्राव होता है। साथमें नेत्रदर्पण, मध्यपटल और सब कांचरूप रस, ये सारे निकल जाते हैं। रोगी को असह्य वेदना होती है। वान्ति होती है। नेत्र पर बँधी हुई पट्टी रक्तसे भर जाती है और अधिक बार उसे बदलना पड़ता है। छेद खुला हो जाता है। संक्षेपमें रोगीकी आंख मारी जाती है। सौभाग्यसे २००-३०० रोगियों में एकाध समय ही ऐसा अकस्मात् होता है। रुधिरस्राव प्रारम्भ होने पर उसे रोक नहीं सकते।

उपचार—रोगीको शान्त लेटे रहनेको कहें। मोर्फियाका अन्तःक्षेपण करें। नेत्र पर दृढ़ पट्टी बांधें।

(११) नेत्रके भीतरका भाग धोनेके लिये जो प्रवाही तैयार किया

जाता है, उसमें रसकपूरका कुछ अंश मिल जाता है तो शुक्लमण्डल सफेद और अपारदर्शक बन जाता है। भविष्यमें भी अधिक लाभ नहीं पहुँचता।

१२. नेत्रप्रदाह—अति सम्हाल रखने पर भी कभी आंख पक जाती है। शस्त्र आदिकी शुद्ध क्रिया भूतकालमें जब अपूर्ण थी, तब नेत्रपाक अधिक परिमाणमें होजाता था। वर्त्तमानमें पूर्ण सावधानता रक्खी जाती है; फिर भी लगभग १ प्रतिशत रोगीमें दुर्भाग्यसे यह आपत्ति आजाती है।

उपाय—शस्त्रक्रियाके दूसरे दिन नेत्रपाकके चिह्न प्रतीत हों, तो उसी दिन इसका प्रतिकार करना चाहिये। यदि एकाध दिन निकल जायगा, तो फिर सफलता नहीं मिलेगी। पाक लक्षण प्रतीत होने पर छेदके सिरे को दग्ध कर दें। दग्ध क्रियाके लिये विद्युत् या दीपक पर तपाये हुए शस्त्र का प्रयोग किया जाता है। या कार्बोलिक एसिड अथवा अलकोहोल व्यवहृत होता है। कभी सायानाइड आफ मर्क्युरीके प्रवाहीको नेत्ररसेष्मावरणके नीचे प्रवेश कराने पर लाभ हो जाता है। क्वचित् जलमय रसके खण्डके भीतरका हिस्सा धो देने पर गुण आजाता है।

सल्फाडायाजिन पूरी मात्रामें खानेको देवें और सल्फाथियोफोलका चूर्ण नेत्रमें डालें। एवं दूधका इञ्जेक्शन देवें।

१३. तारामण्डल और तन्तुमय समूहका प्रदाह—कुछ अंशमें तारामण्डल-प्रदाह सब रोगियोंको हो जाता है। किन्तु एट्रोपिनका उपयोग योग्य रूपसे करते रहने पर एक सप्ताहमें वह शमन हो जाता है। तन्तुमय समूहका प्रदाह हो या तारामण्डलका प्रबल प्रदाह हो तो रोगीको अति वेदना होती है। शिरदर्द होता है। कनीनिका मलिन भासती है। नेत्रमें लाली अधिक होती है और अश्रु स्राव होता रहता है।

कारण—शस्त्रक्रिया करनेके समय आंख अधिक पीड़ित हुई हो, तारामण्डलका पर्दा खिंच गया हो, उसी खण्डमें रक्त रहा हो या दृष्टिमणि के आवरणका भेदन योग्य न हुआ हो, तो तारामण्डल नरम हो जाता है।

उपाय—एट्रोपिनकी बूँद प्रातः सायं २-२ मिनिटके अन्तर पर ४-४ बार डालें। नेत्र पर गरम बोरिक धावनसे सेक करें। कनपटी पर जलौका लगावें। रोगीको पारदकी गोली या सोडा सेलिसिलस जैसी प्रदाहघ्न औषध दें। विरेचन देवें। आदि उपायों से लाभ हो जाता है। तन्तुमय समूहके प्रदाह पर भी यही उपचार व्यवहृत होते हैं। ऐसे रोगियों पर डायोनिनका प्रवाही अच्छा लाभ पहुँचाता है। दूधके अन्तःक्षेपणसे बहुत अच्छा लाभ पहुँचता है।

१४. घाव भरनेमें विलम्ब होना—किसी-किसी रोगीमें घाव भरनेमें बहुत समय लगता है, १ सप्ताहके अन्तमें घाव प्रायः भरजाना चाहिये। ऐसा न होने पर ९-१० दिनके बाद भी घाव कुछ खुला रह जाता है। ऐसा होनेमें २ कारण हैं। १. घाव शुक्लमण्डलमें हुआ हो; या २. घावमें कांचबिन्दु का पर्त्त अथवा तारामण्डलका पर्दा फँस गया हो तो। इसके लिये सामान्य नेत्रवैद्य विशेष उपचार नहीं कर सकता। घावको खुला-कर पर्त्त या पर्दा, जो प्रतिबन्ध करता हो, उसे दूर करना, यही उपाय है। इसकी अपेक्षा निसर्गपर छोड़कर कुछ दिनों तक राह देखनेसे भी प्रायः घाव भर जाता है। आवश्यकता रहे तो एनिथिनकी बूंद डालकर घावको एबसोल्युट ऑल्कोहोल लगाया जाता है।

शस्त्रक्रिया करनेके २०-२५ दिन जाने पर नेत्रमें से लाली बिल्कुल चली जाती है। कनीनिका भी ठीक काली देखनेमें आती है। +१० का कांच नेत्रके पास रखने पर रोगीकी दृष्टि $\frac{३}{६}$ या $\frac{४}{६}$ लगभग होती है। +१४ का कांच लगाकर अक्षर पढ़ सकते हैं। यदि उतनी दृष्टि प्रतीत न हो, तो स्वाभाविक रीतिसे रोगी और नेत्रवैद्यको उसके कारणका शोध करना चाहिये।

अन्धकारमय कमरेमें नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा प्रकाश डालकर नेत्रकी परीक्षा करें। कनीनिका प्रदेश लाल प्रतीत हो और भीतर सफेद रंगकी मकड़ीके जालेके सदृश पर्त न हो तो नेत्रदर्पणकी स्थितिकी परीक्षा करनी चाहिये। विशेषतः पीतबिन्दुकी स्थिति देखें। कनीनिकाके भीतर काला पर्त्त प्रतीत हो, तो समझना चाहिये कि पर्त्तमय कांचबिन्दु अनेक रोगियोंमें रह जाता है। उसके लिये उसका भेदन किया जाता है। इस क्रियाके लिये ३ शस्त्रोंकी आवश्यकता रहती है। आवरण भेदक सूची या ज़ीग्लर (Ziegler) का शस्त्र (चित्र नं० १११), नेत्रको खुला रखनेकी कमानी (चित्र नं० ७५) और गोलकको स्थिर करनेका चिमटा (चित्र नं० ७६)। इस शस्त्रक्रियाका वर्णन पहले किया गया है।

उपरोक्त शस्त्रक्रिया विशेष प्रचलित है। किन्तु कितनेक नेत्रवैद्य भिन्न-भिन्न प्रकारकी शस्त्रक्रिया करते हैं। कितनेक तारामण्डलका छेदन नहीं करते। कतिपय विद्वान् परिधिके भागमें से छोटा टुकड़ा काट लेते हैं। कई चिवस्क आवरण सह कांचबिन्दुको निकालते हैं। यह शस्त्रक्रिया यहाँ देते हैं। पंजाबके पुराने हकीम एवं कितनेक पुराने वैद्य कांचबिन्दुको दबा देते हैं। इसका विवेचन पहले किया गया है। उसके परिणाम संतोषप्रद प्रतीत नहीं हुए। लाभ उठाने वालोंकी अपेक्षा हानि उठाने वालों की

संख्या कई गुनी होती है। इसके विपरीत कुशल नेत्रवैद्यके हाथसे होने वाली शस्त्रक्रियामें ९९ प्रतिशतोंको अच्छा लाभ मिलता है, ऐसा हमें स्वानुभव है।

आवरणसह काँचबिन्दु निकालनेकी शस्त्रक्रिया (Intra Capsular extraction of Catract or Expression of Cataract)—यह शस्त्रक्रिया पंजाबमें अति प्रचलित है। कितनेक वर्षोंसे भारतवर्ष के अन्य प्रान्तोंमें भी इसका प्रचार होगया है। कितनेक अमेरिकन नेत्रवैद्य इस देशमें आकर इस शस्त्रक्रियाको देख गये हैं। उनको यह विधि अति पसंद आई। इससे उन्होंने अमेरिकामें भी इसका विशेष रूपसे प्रचार किया है। विलायतमें नेत्रवैद्योंने किसी कारणवश वहां इस विधिको नहीं अपनाया। कदाच यह भी कारण होसकता है कि, यह क्रिया वही नेत्रवैद्य कर सकता है कि, जिसने आवरणका भेदन कर कांचबिन्दुको निकालने की क्रिया कम से कम ५०० नेत्रों पर की हो।

यह शस्त्रक्रिया जर्मनीमें पागेन स्ट्रेचर (Pagen Strecher) नामके नेत्रवैद्यने प्रारम्भ की थी। फिर उसके पुत्र (जिसे भी अंग्रेजीमें पद्धित अनुसार पागेन स्ट्रेचर ही कहा जाता है उस) ने इसका खूब प्रचार किया। भारतमें पंजाबके भीतर जालंधर शहरमें पहले कर्नल मलरोनी (Col. Malroney) नामक अंग्रेज नेत्रवैद्यने; और फिर अमृतसरमें कर्नल स्मिथ (Col. Smith) ने हजारों रोगियों पर प्रयोग किया। १९१३ ई० में इस शस्त्रक्रियाको देखनेके लिये मैं भी अमृतसर गया था। प्रति दिन लगभग ३० रोगियों पर शस्त्रक्रिया स्मिथ साहेब करते थे। मैं वहां गया तब एक सुप्रसिद्ध अमेरिकन नेत्रवैद्य भी इस विधिको जाननेके लिये आया था। भारतके भिन्न-भिन्न प्रान्तोंमें भी अनेक नेत्रवैद्यने वहां पर जा, शिक्षा ले उसी रीतिके अनुसार शस्त्रक्रिया करके लाभ उठाया है।

आवरण सह काँचबिन्दुको बाहर निकालनेमें लाभ—इस विधिसे शस्त्रक्रिया करनेमें मुख्य २ लाभ प्रतीत होते हैं। १. आवरण बिल्कुल निकल जानेसे रोगीकी दृष्टि बहुत अच्छी हो जाती है। २ आवरण और काँचबिन्दुका गर्भ भाग लेश मात्र जलमय रसके पूर्वखण्डमें न रहने से फिर आवरण भेदनकी क्रिया नहीं करनी पड़ती। एवं गर्भ भाग लेशमात्र भी न रहने से रोगीके नेत्रमें होने वाला तारामण्डल और तन्तुमय समूहका प्रदाह भी लगभग नहीं होता। ये दोनों लाभ अति महत्त्वके हैं।

तीसरा लाभ यह भी है कि, जहाँ हजारों की संख्यामें रोगी कांचबिन्दु निकलवाने के लिये आते हैं, वहाँ पर प्रत्येक रोगीको ८ दिन तक रोज

पट्टी बदलनी, बूंद डालने आदि कार्योंके लिये बहुसंख्य सहायकों की आवश्यकता रहती है। आवरण सह काँचबिन्दुको निकाल देनेमें प्रायः रोज पट्टी नहीं खोलनी पड़ती। एवं रोज बूँद नहीं डालनी पड़ती। अतः जहाँ बड़ी संख्यामें रोगियोंकी चिकित्सा करनी हो वहाँ पर इस विधिमें बहुत कम सहायकों से चल सकता है।

हानि—हानि मुख्य ३ निम्नानुसार मानी गई हैं।

(१) रोगीके नेत्रमें से काँचरूप रस निकल जानेका भय अधिक है ऐसा कितनेक वैद्योंका अनुभव है; किन्तु मेरे अनुभवमें नहीं आया। योग्य सम्हाल रखी जाय तो इस विधिकी शस्त्रक्रियामें तथा आवरण भेदन वाली शस्त्रक्रियामें काँचरूप रसके बाहर निकलनेके परिमाणमें अन्तर नहीं होता। जिस नेत्रमेंसे काँचरूप रस निकलने योग्य स्थिति हो, उस पर दो में से किसी प्रकारकी शस्त्रक्रिया की जाय, तो समान ही भय माना जायगा।

(२) तारामण्डलके पर्देको काटने के पश्चात् उसके दो सिरे (बाहर और भीतर के) आवरण सह काँचबिन्दु निकालने पर अपेक्षाकृत अधिक रोगियोंमें घावसे बाहर निकलते हैं।

(३) आवरण सहित मोतियाबिन्दु निकालनेकी शस्त्रक्रियामें घाव शुक्लमण्डलमें ही किया जाता है। वह बड़ा भी करना पड़ता है। इससे घाव भरनेमें विलम्ब होता है।

इनके अतिरिक्त चौथी हानि यह कह सकेंगे कि नेत्रवैद्यको लम्बा अनुभव हो तो ही वह इस शस्त्रक्रियाको कर सकता है।

उपरोक्त ३ हानिमेंसे पहली हानि रूप कथन अनुभवके विरुद्ध भासता है। दूसरी हानि तारामण्डलके सिरेका घाव में फँस जाना—इसे भी टाल सकते हैं। नेत्रवैद्यको काटे हुए दोनों सिरा को शस्त्रक्रिया कर लेने पर ठीक-ठीक भीतर बैठा देना चाहिये। तीसरी हानिसे भी बच सकते हैं। घाव शुक्लमण्डलमें न करते हुए शुक्लमण्डल और बाह्यपटलके संगम स्थान पर करें तथा हो सके तब तक नेत्रश्लेष्मावरणका टुकड़ा घावमें रहे, उस तरह करे। ऐसा करने पर तीसरी हानि नहीं हो सकेगी। एवं इस तरह क्रिया करने पर दूसरी हानिकी उत्पत्ति ही नहीं हो सकेगी।

प्रकार—यह शस्त्रक्रिया भिन्न-भिन्न ३ रीतिसे की जाती है। १. स्मिथ की रीतिसे; २. ए. नेप (A. Knaph) और एलश्निग (Elschnig) की विधिसे; ३. बाराक्वर (Barraquer) की रीति अनुसार।

१. *स्मिथकी रीति*—नेत्रगोलककी अन्य शस्त्रक्रियाके समान रोगीकी तैयारी करें। नेत्रपरीक्षा भी उसी अनुसार करें। नेत्रको चेतनाहीन बनाना,

नेत्रनिमीलनी पेशीका स्तम्भन, नेत्रको धोकर खुला रखनेके लिये कमानी चढ़ाना आदि। फिर गोलकको स्थिर कर शुक्लमण्डल काटने के लिये शस्त्र लेवें। कितनेक नेत्रवैद्य ग्राफेकी छुरिका को पसंद करते हैं। अन्य स्मिथके ही खास शस्त्रको उपयोगमें लेते हैं। स्मिथका शस्त्र ग्राफेके शस्त्रसे कुछ अधिक चौड़ा है। उसकी नोक पुच्छ आकार की होती है। इसके अतिरिक्त अन्तर नहीं है। हमारे अनुभव अनुसार कोई भी शस्त्र लेने पर परिणाम समान ही आता है। शुक्लमण्डलका काट बड़ा करना पड़ता है अतः शस्त्र को शुक्लमण्डल और बाह्यपटलके संगममें कनीनिकाके बीचके भागके सामने रहे हुए भागमें प्रवेश करावें। शनैः-शनैः जलमय रसके खण्डमें जाने दें और शुक्लमण्डलके दूसरे सिरे पर बाहर निकालें। फिर धीरे-धीरे शस्त्रको ऊपर चलावें। होसके तब तक हलके हाथसे शस्त्रको बिल्कुल शुक्लमण्डल और मध्यपटलके संगमके ऊपरके हिस्से तक ले जाँय। यदि नेत्रश्लेष्मावरणका टुकड़ा काटके साथ लेना हो तो शस्त्रको-नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे जाने देवें। फिर छोटा टुकड़ा कट जाने पर शस्त्रको आगे फिरा नेत्रश्लेष्मावरणका काट पूरा करें। यदि काट शुक्लमण्डलमें ही रखना हो, तो शुक्लमण्डलके किनारे के पासही शस्त्रको आगे फिराकर काट पूरा करें। फिर सहायक वैद्य नेत्र खुली रखने वाली कमानी को ऊपर उठालें।

इसके आगे शस्त्रवैद्यको तारामण्डलके पर्देमें छेद करना हो तो पहले दी हुई सूचना के अनुसार टुकड़ा काट लेवें और काट पूरा होते ही नेत्रको खुला रखने वाली कमानीको हटालें। फिर सहायक वैद्य दहिने हाथमें पलक को उठाने वाले आंकड़े (चित्र नं० ११५) को ऊपर के पलकके नीचे प्रवेश कराकर ऊँचा उठावें। तथा निम्न पलकको बाँये हाथके अंगुष्ठसे खेंच रखें। यह क्रिया अनुभवी सहायक ही कर सकता है। शस्त्रक्रियाकी सफलता का मुख्य आधार सहायककी इस क्रियामें कुशलता पर अवलम्बित है। इस कारणसे प्रत्येक नेत्रवैद्यको इस प्रकारकी शस्त्रक्रियाके लिये सहायक को खास शिक्षा देनी पड़ती है। इस सहायक की क्रियाके हेतुसे गोलक पर किञ्चित् भी दबाव नहीं रहता और आँख ठीक खुली रहती है। फिर नेत्रवैद्य गोलकको स्थिर करनेका चिमटा लेकर उससे शुक्लमण्डलके नीचेके किनारे से लगभग २ मिली० नीचे गोलकको स्थिर करने हैं। इतना ही नहीं, बल्कि उस चिमटेसे गोलक पर कुछ दबाव डालते हैं। इस दबावसे शुक्ल-मण्डलमें किया हुआ काट खुला रहता है। पश्चात् नेत्रवैद्य दहिने हाथमें काँचबिन्दुको बाहर निकालनेका चिपटा चिमच (Spatula चित्र नं० ११४) का मिलकर काँचरूप रसका पुनः स्थापक (Vitreous repositor) काम

से शुक्लमण्डलके निम्न भागमें धीरे-धीरे दबाव डालें। हम उस यन्त्रका उपयोग करते हैं अतः उसका उल्लेख किया है। कितनेक नेत्रवैद्य स्मिथके काँचबिन्दु निकालनेके आँकड़े (चित्र नं० ११७ ग्रन्थ के अन्त में देखें) से कार्य लेते हैं। इस तरह शुक्लमण्डलके निम्न भाग पर दबाव शनैः-शनैः बढ़ावें। इस दबावसे काँचबिन्दुका ऊपर का सिरा शुक्लमण्डलमें किये हुए काटके भीतर दृष्टिगोचर होगा। क्वचित् ऊपर के सिरेके बदले निम्न सिरा मुक्त हो जाता है और पूरा मोतियाबिन्दु औंधा हो जाता है। इससे उसका आड़ा व्यास ऊपर आजाता है। फिर नेत्रवैद्य दबाव डालने वाले यन्त्रको धीरे-धीरे ऊपर लेवें, जिससे काँचबिन्दु धीरे-धीरे गोलकके बाहर निकलने लगता है। जब उसका मध्य भाग बाहर निकल आवे, तब शुक्लमण्डलका दबाव बिल्कुल बन्द करे। दबाव यन्त्रको शुक्लमण्डलके ऊपरके भागमें किये हुए काटके बाहरके भागपर ले जाँय। वहाँसे भीतरके भागकी ओर हलके हाथसे फिराने पर पूरा काँचबिन्दु घावके बाहर निकल आवेगा। पश्चात् तारामण्डलके पर्देमें काट किया हो तो उसे कटे हुए भागके दोनों सिरोंको स्मिथके तारामण्डल स्थापक यन्त्र (चित्र नं० ११८ ग्रन्थ के अन्त में देखें) से पुनः यथास्थान स्थापित करदें। ये सिरे पुनः बैठाने के साथ ही सहायक वैद्य ऊपके पलकके नीचेसे आंकड़ेको निकाल लेता है। फिर तुरन्त निम्न पलक को छोड़ देता है और नेत्रको धीरे-धीरे बन्द करता है। पश्चात् उसके भीतर मक्युरोक्रोम २ प्रतिशत के प्रवाही की १-२ बूंद डालें तथा नेत्रपर फोहे रखकर पट्टी बांध देवें। उस पर तारकी जाली बांधे।

यदि तारामण्डलका पर्दा न काटा हो, तो बाहर आये हुए पर्देको सम्हाल कर भीतर बैठा कर इसरीन १ प्रतिशतके प्रवाहीकी १ बूँद डालें। तत्पश्चात् मक्युरोक्रोमकी बूँद डालकर पट्टी बाँधनी चाहिये।

शस्त्रक्रियाके पश्चात् परिचर्या—नेत्रमें वेदना न हो तो ४ दिन तक दोनों नेत्रों पर पट्टी रहने देवें, न खोलें; अन्यथा दूसरे ही दिन पट्टी खोल, नेत्रकी परीक्षा कर वेदनाके कारणका अनुसंधान करें और उसका उपचार करें। फिर पट्टी बांध दें। ४ दिन पर पट्टी खोल, नेत्रको साफ कर, मक्युरोक्रोमकी बूंद डालकर पुनः पट्टी बांध देवें। ८वें दिन उस पट्टीको निकाल डालें और काला चश्मा लगानेके लिये देवें।

इस शस्त्रक्रियाके पश्चात् किसी-किसी रोगीकी कनीनिका ऊपरकी ओर सरक जाती है। उसके लिये खास उपाय नहीं है। योग्य प्रतीत हो

तो ३ मासके बाद (दृष्टिमें कसर हो तो) दूसरी शस्त्रक्रिया करके कनीनिकाको नीचे खेंच लेवें।

२ A. ए. नेपकी विधि (Intra Capsular Extraction of lens by A. Knaph's Method)—इस शस्त्रक्रियाकी रीति विशेषांशमें स्मिथके अनुरूप है। अर्थात् शुक्लमण्डलका काट--नेत्रश्लेष्मावरणके टुकड़े सह तथा तारामण्डलके पर्दमें काट, ये दोनों बिल्कुल समान हैं। कांचबिन्दुको बाहर निकालनेकी विधिमें अन्तर है। इस विधिमें शुक्लमण्डल पर दबाव नहीं डाला जाता। किन्तु काल्टकी मोतियाबिन्दुके आवरणके चिमटेको (चित्र नं० ११९ ग्रन्थ के अन्त में देखें) नेत्रवैद्य दहिने हाथमें पकड़ घावके भीतर प्रवेश कराते हैं। उसे बिल्कुल मोतियाके निम्न सिरे तक ले जाते हैं। फिर उस स्थान पर मोतियाबिन्दुके आवरणको पकड़ कर ऊपर खेंचते हैं। ऐसा करने पर उद्बंधनका निम्न हिस्सा टूटकर उस भागसे कांचबिन्दु मुक्त होता है। फिर चिमटेको बाहर निकाल लिया जाता है। जैसे स्मिथकी रीतिमें शुक्लमण्डलके निम्न भागमें दबाव देकर कांचबिन्दुको बाहर निकालते हैं, उस तरह इस विधिमें भी ऐसा ही करते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि, स्मिथकी रीतिमें बाहर निकलने वाले कांचबिन्दु कितनेक ऊपरके किनारेसे तथा कितनेक आंवे होकर निम्न किनारेसे निकलते हैं। इस क्रियामें कदाच चिमटेसे पकड़ने पर कांचबिन्दुका आवरण टूट जाता है, तो फिर जिस तरह आवरण भेदन कर कांचबिन्दु निकाला जाता है, उस तरह उसे बाहर निकालना पड़ता है। शेष शस्त्रक्रिया और पट्टी आदि परिचर्या समान ही है।

२ B. एलस्निग (Elschnig) की रीति—उक्त दोनों रीतिसे कुछ भेद वाली है। इस विधिमें ऊर्ध्व सरल पेशीमें सुई द्वारा एक डोरा पो दिया जाता है। इस डोरेको पकड़ कर गोलकको स्थिर किया जाता है। उसे कांचबिन्दुको बाहर निकालनेके पहले ही सी लेनेके उद्देश्यसे काटके दोनों सिरेमें से टांके लगा लिये जाते हैं। उस टांकेको कांचबिन्दु निकल जाने पर गांठ लगाकर बन्द कर दिया जाता है। शेष विधि नेपके लगभग समान है। केवल इतना ही अन्तर है कि नेप लगभग प्रत्येक रोगियों में तारामडलके पर्दमें काट करते हैं। इस विधिमें तारामण्डलको ऐसा ही रहने देते हैं। एवं कांचबिन्दु निकल जाने पर उसके परिधि प्रान्तमें से थोड़ा-सा टुकड़ा काट लिया जाता है। ऐसा करनेसे मोतियाबिन्दु निकल जानेके बाद भी कनीनिका गोल रहती है तथा परिधिके भागमें तारामण्डलके पर्दमें छोटा-सा छिद्र होनेसे जलमय रस पश्चिम खण्डमें से पूर्वखण्डमें

सरलतापूर्वक आ सकता है। इससे तारामण्डलका पर्दा बाहरसे बाहर नहीं निकलता।

३. बाराक्वर (Barraquer) की रीति—उक्त सब रीतिसे पृथक् है। इस विधिमें मोतिया को बाहर निकालनेके लिये शुक्लमण्डल या गोलकके किसी भाग पर दबाव नहीं डाला जाता। एवं किसी चिमटेसे कांचबिन्दुके आवरणको नहीं पकड़ा जाता। इस विधिमें बहुत छोटा चिमच आकारका यन्त्र, जिसमें कांचबिन्दु ठीक रह जाय, उसे बिजलीसे चलती छोटी मोटरके साथ संयोजित करते हैं। मोटर जब चलती है, तब चिमचके पोले भागमेंसे वायु खिंच जाती है, जिसमें मोतियाबिन्दु उस पोले

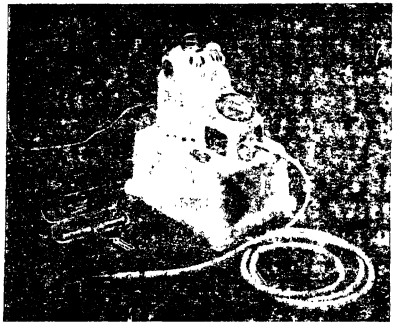

चित्र नं० १२०—कांचबिन्दु चूसक बाराक्वरका यन्त्र।
(Barraquer's Erisophake)

भागको दृढ़तापूर्वक चिपक जाता है। फिर उस चिमचको शनैः-शनैः बाहर निकालनेका प्रयत्न किया जायगा, तो कांचबिन्दुके आवरणके उद्बंधनके तन्तु टूटते जायेंगे और कांचबिन्दु बाहर निकल आवेगा। इस विधिसे कांचबिन्दु निकालनेमें गोलक पर दबाव नहीं होता। इससे कांचरूपरसके बाहर निकलनेका संभव बहुत कम रहता है। यही मुख्य लाभ इस विधिमें है। इस शस्त्रक्रियाका उपयोग संसारके भिन्न-भिन्न भागोंके नेत्र-वैद्योंने किया है। किन्तु जैसा अच्छा परिणाम डाक्टर बाराक्वरके हाथसे आया, वैसा परिणाम अन्य चिकित्सकोंके अनुभवमें नहीं आया।

इससे यह विधि सर्वमान्य नहीं होसकी। इस विधिसे कांचबिन्दुको बाहर निकालनेके पश्चात् की क्रिया और परिचर्या स्थिर और नपके समान ही है।

५. व्यथाजन्य कांचबिन्दु।

(*Traumatic Cataract*)

दृष्टिमणि आवरणसे आच्छादित है। जब तक आवरण हो, तब तक जलमय रस दृष्टिमणि के गर्भ भाग को नहीं पहुँच सकता। किन्तु उसमें छोटा सा चीरा होने पर उसके भीतर जलमय रस प्रवेशित हो जाता है। दृष्टिमणिके भीतर जो रस है, वह शुभ्र प्रथिन (ॲल्ब्युमिन) रूप है। यदि उसका रासायनिक सम्बन्ध क्षारमय द्रव्यके साथ होजाय, तो वह पिघलने लगता है। जलमय रसमें नमक सदृश क्षार होनेसे वह दृष्टिमणिके भीतर प्रवेशित हो जाय, तो वह पहले फूलता है। फिर शनैः-शनैः शोषित हो जाता है।

व्यथाजन्य कांचबिन्दुमें उक्त क्रिया होती है, यदि नेत्रगोलकको किसी धारवाले या नोकदार शस्त्रसे चोट लग जाय, तब दृष्टिमणिके आवरणका भेदन होता है। फिर उसमें जलमयरस प्रवेश हो जाता है। परिणाममें व्यथाजन्य कांचबिन्दुकी संप्राप्ति होती है।

जलमयरसके प्रवेशसे दृष्टिमणिका गर्भभाग स्फीत होता है और साथ-साथ अपारदर्शक बनता है। रोगीको न्यूनाधिक अंशमें वेदना होती है। वेदनाके २ हेतु हैं। १. तारामण्डलका प्रदाह; २. नेत्रान्तर दबाववृद्धि।

तारामण्डलप्रदाह के ३ कारण हैं--१. गोलकमें घाव होनेपर कितनेक कीटाणुओंका घावमार्गसे तारामण्डलमें गमन; २. तारामण्डलको न्यूनाधिक चोट लगना; ३. दृष्टिमणिके गर्भभागसे मुक्त जलमयरसके कुछ भागका पूर्वखण्डके भीतर प्रवेश होनेमें तारामण्डलसे सम्बन्ध होना।

नेत्रान्तर दबाववृद्धिका हेतु—जिसतरह चना जलमें भिगोने पर फूलता है, उस तरह दृष्टिमणिके गर्भभागमें जलमयरस जानेपर फूलता है। एवं नेत्रगोलक बन्धी हुई थैली जैसा है। उसका बाह्यपटल (बाहरका पर्त्त) लगभग स्थितिस्थापक नहीं है। इससे नहीं खिंच सकता। इस हेतुसे दृष्टिमणि स्फीत होनेपर चारों ओरके भागों पर दबाव बढ़ने लगता है। उक्त भाग में सूक्ष्म वातनाड़ियों के तन्तु भी रहे हैं; जिससे दबाव जनित वेदना उत्पन्न होती है।

चोट लगने पर आघातके हेतुसे दृष्टि कम हो जाती है। फिर दृष्टि कम या बन्द होनेका अन्य हेतु न हो तो रोगी कुछ काल तक ठीक देख सकता है। १२ से १८ घण्टे व्यतीत होनेपर दृष्टि मन्द होने लगती है। लगभग ४८ घण्टेके बाद अंधकार-प्रकाश या हाथके चलनेके अतिरिक्त विशेष प्रतीति नहीं होती। लगभग १०-१५ दिन तक दृष्टि बंद रहने के पश्चात् पुनः दृष्टि आने लगती है। उस समयके भीतर दृष्टिमणिका गर्भ गलने लगता है तथा गला हुआ रस शोषित हो जाता है। विशेष भाग पिघलता जाता है और उसका शोषण होता रहता है। यदि रोगी की आयु २५ वर्ष के भीतर हो तो दृष्टिमणिका सब भाग शोषित हो जाता है। केवल आवरण रह जाता है। वह लगभग पारदर्शक होने से दृष्टिमें विशेष अन्तराय नहीं होता। नेत्रके पास +१० का कांच रखने पर दृष्टि विशेष अच्छी बनती है। आयु २५ वर्ष से अधिक हो तो दृष्टिमणिका गर्भभाग अधिक कठिन होता है और उसका शोषण नहीं होता। यदि बीज छोटा हो तो तारामण्डलके पीछे पड़ा रहता है और दृष्टिमें विशेष अवरोध नहीं होता। बीज बड़ा हो तो दृष्टिको बाधा पहुँचाता है। यदि व्यथाजन्य कांचबिन्दुके अतिरिक्त नेत्रके अन्य किसी भागको भी चोट पहुँची हो, तो उसके अनुरूप दृष्टिमें प्रतिबंध होता है।

उपचार—जबतक दृष्टिमणिके गर्भ भागका शोषण होता रहता है और दृष्टि साफ होती रहती है, तबतक विशेष उपचारकी आवश्यकता नहीं है। किन्तु जब आवरणमें हुए छेद बन्द होने से या अन्य किसी कारण से शोषण क्रिया स्थगित होजाती है, तब उपाय करनेकी आवश्यकता रहती है। रोगी की आयु २५ वर्ष से कम है, तो आवरणका भेदन एक या अधिक बार करने पर दृष्टि अच्छी हो जाती है। आयु २५ वर्ष से अधिक हो तो बीजको बाहर निकालना पड़ता है। इसकी रीति कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया में दर्शायी है।

यदि शोषणक्रिया ठीक चल रही हो, तो भी तारामण्डलमें प्रदाह न होने और दृष्टिमणिके आवरणके साथ संलग्न न होने के लिये दिन में १-२ बार एट्रोपिनकी बूँद डालकर कनीनिका को प्रसारित रखना पड़ता है। डायोनिनकी बूँद दिनमें १ बार डालने पर भी शोषणक्रिया को सहायता मिलती है।

मर्क्युरोक्रोमकी बूँद भी पहले दिनसे डालते रहना चाहिये। इससे घाव शुद्ध रहता है। रोगीको दूधका इञ्जेक्शन देवें, एवं सल्फोनेमाइडकी टिकिया खाने को देते रहें।

यदि नेत्रमें घाव हो तो आवश्यकता रहे तब तक पट्टी बांधनी चाहिये घाव का उपचार पहले लिखे अनुसार करना चाहिये।

६. मधुमेहज कांचबिन्दु।

(*Diabetic Cataract*)

इस प्रकारके रोगके २ विभाग हैं। १. मधुमेह पीड़ित रोगी वृद्ध होने पर वृद्धावस्था जनित कांचबिन्दु होना; २. मधुमेह जनित। पहले प्रकार के कांचबिन्दुका सम्बन्ध मधुमेहके साथ अधिकांशमें नहीं माना जाता। केवल एक ही लक्षण साथ-साथ रहता है कि कांचबिन्दु की वृद्धिके साथ पेशाब में शक्कर जाना। इस प्रकारका कांचबिन्दु कितनेक समय जिसे वृद्ध न कहें, ऐसे ३५–४० वर्षकी आयु वाले मनुष्यको भी हो जाता है। दूसरी ओर ऐसे भी रोगी हमने देखे हैं कि, जिनको वर्षों से मधुमेह होने पर भी कांचबिन्दु नहीं हुआ। अनेक दृष्टान्तों में से एक यहाँ देता हूँ।

एक फारसी बाई लगभग ५० वर्ष की आयु में मधुमेहसे पीड़ित हुई। योग्य सम्हाल रखने से वह बाई ९५ वर्ष की अवस्था को पहुँची। उस समय उसे दोनों नेत्रोंमें कांचबिन्दु हुआ। फिर पकनेपर कितनेक नेत्र-वैद्योंकी सलाह ली। सबने ५ प्रति सहस्र शक्कर पेशाबमें जानेके हेतुसे शस्त्र-क्रिया करनेमें आसक्ति दर्शायी। फिर मेरी सलाह ली गई। योग्य परीक्षा करने पर उपरोक्त नियमको लक्ष्यमें रखकर निर्णय किया गया कि, रुग्णाको कांचबिन्दु और मधुमेह, दोनों साथमें हैं सही; फिर भी कांचबिन्दुका कारण मधुमेह नहीं है। कारण, जो मधुमेह ४५ वर्ष तक नेत्र पर असर नहीं पहुँचा सका, उसका सम्बन्ध किस तरह मान लेवें? इस निश्चय अनुसार दृष्टिकी पुनः प्राप्ति होने की हमने आशा दी। फिर योग्य उपचार द्वारा पेशाबकी शक्कर कम कराई और तत्पश्चात् एक नेत्रके कांचबिन्दु की शस्त्रक्रिया की। परिणाममें किसी भी प्रकार के उपद्रव हुए बिना रुग्णा की दृष्टि अच्छी होगई। ६ मास के पश्चात् दूसरे नेत्रकी शस्त्रक्रिया की और उसका परिणाम भी पहली आंखके समान संतोषप्रद आया। तात्पर्य कि, ऐसे रोगियों में मधुमेह और कांचबिन्दु का मात्र साहचर्य होता है।

दूसरे प्रकार के कांचबिन्दु, जिसका सम्बन्ध मधुमेह रोग के साथ निकट का है; अर्थात् रक्त और मूत्रमें शक्कर का परिमाण बढ़नेके हेतुसे जिस कांचबिन्दु की उत्पत्ति होती है, वह प्रायः ३५ वर्षसे कम आयुवालों को होता है। यदि नेत्रवैद्य अनुभवी हो, तो मधुमेहके रोगियोंमें होने वाले

कांचबिन्दुको प्रायः पेशाबकी परीक्षा किये बिना और रोगीको कुछ भी प्रश्न पूछे बिना ही जान सकता है।

चिह्न—इस कांचबिन्दुके ऐसे मुख्य २ चिह्न स्मरण रखने योग्य हैं। १—कांचबिन्दुका रंग अन्य कांच बिन्दुओंकी अपेक्षा अधिक सफेद होता है। २—रोगीका मुखमण्डल उतरा हुआ तथा त्वचा मुरझाई हुई और शुष्क होती है। बहुधा रोगीकी आयु छोटी होती है। पेशाबकी जांच करने पर २ से ५ प्रति सहस्र शक्कर मिल जाती है। रक्तपरीक्षा करने पर उसमें भी शक्कर का परिमाण अधिक जाना जाता है।

मधुमेहीके रक्तमें शक्कर बढ़नेपर जलमय रसमें कुछ शक्कर प्रतीत होती है। इस हेतुसे दृष्टिमणिके आवरणमें अन्य प्रवाहीके प्रवेशका प्रतिबंध करनेका गुण है, उस गुणका ह्रास होता है। फिर वह स्फीत होने लगता है और कांचबिन्दु होजाता है। यदि यह क्रिया शनैः-शनैः होती है, तो दृष्टिमणि अपारदर्शक नहीं होजाती, किन्तु वह फूल जाती है। परिणाम में रोगीकी दृष्टि दीर्घ हो, वह ह्रस्व हो जाती है। इससे वह जिस + कांचसे पढ़ सकता हो, उसकी अपेक्षा कम नम्बर का कांच लगाना पड़ता है। एवं दूर देखनेके लिये जो बाधा नहीं पहुँचती थी, वह अब होने लगती है। फिर – कांचका उपयोग करने पर दृष्टि सुधरती है। यह परिवर्त्तन इतना जल्दी होता है कि रोगी सुशिक्षित और बुद्धिमान् हो तो उसे एक-दो मासमें चश्माके कांच बदलने पड़ते हैं। इस तरह १, २ या ३ मासमें कांच बदलवानेके लिये रोगी नेत्रवैद्यके पास पुनः आता है, तब कुशल नेत्रवैद्यको मधुमेहका स्मरण अवश्य होजाता है। ऐसे रोगीके पेशाबकी जांच करना अति आवश्यक है।

यदि दृष्टिमणिमें जलप्रवेशकी क्रिया शीघ्र होजाय तो कांचबिन्दु आजाता है। ऐसे रोगियोंकी आँखको शुक्लमण्डलदर्शक यन्त्रसे देखा जाय, तो दृष्टिमणिके गर्भ भागमें जलके छोटे-छोटे बिन्दु प्रतीत होते हैं।

क्रम—प्रथम प्रकारका कांचबिन्दु जो मधुमेहपीड़ित वृद्ध रोगीको होता है, वह प्रारम्भिक अवस्थामें हो तथा रोगीकी शारीरिक स्थिति और रक्तमें अवस्थित शक्करकी मात्रामें सुधार हो सके, तो वृद्धि रुक जाती है। एवं कितनेक रोगियोंमें अपारदर्शकता भी साफ होजाती है। ऐसा न होने पर मधुमेहीका कांचबिन्दु अन्य सामान्य कांचबिन्दुकी अपेक्षा जल्दी पकता है। अन्य उपजातिका कांचबिन्दु, जो छोटी वयमें होता है, वह तो उत्पन्न होनेके पश्चात् बहुत थोड़े समयमें पक जाता है। इससे उसके लिये शस्त्रक्रियाके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है।

उपचार—मधुमेही मोतियाबिन्दुकी प्रारम्भिक अवस्थामें नेत्रवैद्यके पास आया हो तो रोगीका जो वैद्य (Medical man) हो, उसे शक्करकी मात्रा घटानेके लिये योग्य उपचार करनेकी सलाह देवें। नेत्रमें डालनेके लिये पलाशमूलका अर्क, क्युसीआयोडो-रुबिडोकेलसियमका मलहम आदि औषधोंका प्रयोग करें। इस तरहके उपचारसे कितनेक रोगियोंको मोतियाबिन्दु रुक जाता है। इतना ही नहीं, दूर भी होजाता है।

यदि कांचबिन्दु पक गया हो तो शस्त्रक्रियाका प्रश्न उपस्थित होता है। रोगीके पेशाबमें शक्कर जाती हो, तो रोगीका मोतियाबिन्दु निकालना या नहीं ? जब तक आध प्रतिसहस्र से अधिक शक्कर प्रतीत हो, तब तक शस्त्रक्रिया नहीं की जाती। उस समय रोगीको पहले इन्सुलिन, सोडा-सेलीसिलस, कोकैन आदि औषधियां दी जाती हैं। जब शक्कर पेशाबमें न हो या ½ प्रति सहस्र से कम हो तब शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

सूचना—(१) शस्त्रक्रियामें नेत्रश्लेष्मावरणका टुकड़ा काटके साथ रहने देवें, जिससे घाव जल्दी भर जाय और नेत्रमें प्रदाह न हो।

(२) किसी रोगीमें शस्त्रक्रियाके पश्चात् नेत्रमें से रक्तस्राव होता है। किन्तु उस अकस्मात्का पहलेसे किसी भी प्रकारसे बोध नहीं होता। अतः ईश्वरके विश्वासपर रह, भयको छोड़कर शस्त्रक्रिया की जाती है। इन मधु-मेहपीड़ित रोगियोंको रक्तस्रावके भयका पहलेसे ही कह देना चाहिये।

७. कृष्ण कांचबिन्दु।

(*Black Cataract—Cataracta Nigra*)

यह काला मोतियाबिन्दु अन्य कांचबिन्दुओंसे पृथक् नहीं है; किन्तु वृद्धावस्थामें होने वाले अति पक्व रूपमें होने वाले परिवर्त्तनोंका एक स्वरूप है। इसका रंग बिल्कुल काला होता है। सूर्यके प्रकाशमें परीक्षा करनेपर कांचबिन्दु है, ऐसा कहना कठिन होता है। क्योंकि, कनीनिका बिल्कुल काली भासती है। कांचबिन्दु होने पर कनीनिकाके मध्यभागमें जो सफेदी प्रतीत होती है, वह बिल्कुल विदित नहीं होती। रोगीको अँधेरे कमरेमें ले जाँच और कनीनिकापर + २० काँचसे दीपकका प्रकाश डाला जाय, तो भी कनीनिका काली ही भासती है। नेत्रदर्शक यन्त्रके दर्पणसे कनीनिका पर प्रकाश डालने पर कनीनिकामें जो प्रकाशित गोल भाग दीखे, वह देखनेमें नहीं आता। यदि कांचबिन्दु किसी स्थानमें कुछ कच्चा होगा, तो उतना भाग प्रकाशित होगा।

काला मोतियाबिन्दु जिस नेत्रमें हो, उसके भीतरके भाग, जैसे कि नेत्रदर्पण, नेत्रमध्यपटल आदिमें से किसी स्थानमें रोग है, ऐसा अनुभव काला कांचबिन्दु निकालनेके पश्चात अनेक रोगियों की परीक्षा करनेपर विदित हुआ है। अतः काला मोतियाबिन्दु है, ऐसा निर्णय होनेपर दृष्टिके सम्बन्धमें सम्हाल रखकर आशा देनी चाहिये।

शस्त्रक्रिया—इसकी शस्त्रक्रिया अन्य मोतियाबिन्दुके समान ही है। एक बातको स्मरणमें रखना चाहिये कि काला मोतियाबिन्दु अन्य जातियोंके मोतियाबिन्दुकी अपेक्षा कदमें बड़ा होता है। अतः इस प्रकारके मोतियाबिन्दुको निकालनेके लिये शुक्लमण्डलमें जो काट किया जाय, वह कुछ बड़ा करना चाहिये, जिसमे उसे निकालने में बाधा न पहुँचे।

दूधिया कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रिया—इस प्रकारके मोतियाबिन्दुमें एक छोटे बीजके अतिरिक्त शेष भाग दूध जैसा प्रवाही ही होता है। उसे निकालनेकी शस्त्रक्रियामें शुक्लमण्डलका काट छोटा हो तो चल सकता है। कारण, कांचबिन्दुके आवरणका भेदन करनेपर सब प्रवाही निकल जाता है। केवल छोटा बीज ही नेत्रसे बाहर निकालना पड़ता है। कभी-कभी यह बीज शुक्लमण्डलमें किये हुए घावके ऊपरके हिस्सेमें उसकी ऊपरकी नोक द्वारा चिपक जाता है। फिर मोतियाबिन्दुको बाहर निकालनेके लिये शुक्लमण्डल के निम्न प्रदेश पर दबाव बना रहेगा, तो कांचबिन्दुके बदलेमें कांचरूपरस निकल आवेगा और कांचबिन्दुका बीज गोलकके भीतर चला जायगा। यदि ऐसा अकस्मात् हो जायगा, तो नेत्रको बचाना कठिन हो जायगा। अतः सम्हाल कर क्रिया करनी चाहिये।

उक्त रीतिसे दूधिया मोतियाबिन्दुके बीजकी ऊपरकी धारा घावके ऊपरके भागमें घुस जाय, तो तारामण्डलको बैठानेवाले यन्त्र (चित्र नं० ११८ पुस्तकके अन्तमें देखें) मे शुक्लमण्डलमें किये हुए काटके ऊपरकी बाजूमें कुछ दबाव डालनेपर बीजका फँसा हुआ किनारा नीचे हट जायगा और मोतियाबिन्दु सरलतापूर्वक बाहर आजायगा।

यदि दूधिया कांचबिन्दुको आवरण सह निकालना हो तो शुक्लमण्डलका घाव बड़ा होना चाहिये। कितनेक नेत्रवैद्य इसे आवरणसह बाहर निकालनेकी रीतिको ही श्रेयस्कर मानते हैं।

सूचना—यदि दूधिया मोतियाबिन्दुके भीतर रहे हुए दूध जैसे प्रवाहीका किञ्चित अंश भी जलमयरसके पूर्व खण्डमें रह जायगा, तो तारामण्डल प्रदाह होनेकी विशेष संभावना है। अतः बीज बाहर निकल

आनेके पश्चात् जलमय रसके पूर्वखण्डको नमकके प्रवाहीसे अच्छी तरह धो देना चाहिये।

आ. अपूर्ण कांचबिन्दु।

(Partial Cataracts)

इस जातिके कांचबिन्दुके विनिर्णयार्थ कनीनिकाको प्रसारित करने की खास आवश्यकता है। कनीनिका प्रसारित होनेपर केवल नेत्रसे या बहिर्गोल कांच द्वारा परीक्षा करनेपर स्थितिका कुछ भास होजाता है। किन्तु पूर्ण निर्णयार्थ रोगीको अँधेरे कमरेमें दीपक और नेत्रदर्शक यन्त्रकी सहायतासे जांच करनेकी आवश्यकता है। रोगीकी परीक्षा करनेकी रीति पहले लिखी गई है।

यदि कांचबिन्दु अगले पर्त्तमें या आवरणके तुरन्त ही नीचेके गर्भ भागमें हो तो कनीनिका की सतह लगभग या उसके किञ्चित् ही पीछेकी ओर काला धब्बा प्रतीत होगा। उससे अधिक दूरीपर काला धब्बा दीखे तो कांचबिन्दु गर्भभागके गहरे या मध्यभाग में मानना चाहिये। गर्भके पिछले भागमें या पिछले आवरणमें हो तो कनीनिकाकी सतहसे अधिकतम पीछेकी ओर काला धब्बा दृष्टिगोचर होगा। आवरणके पिछले भागमें होनेवाला कांचबिन्दु प्रायः जन्मसे ही होता है; अथवा नेत्रदर्पणके अन्य रोग—रतौंधी आदिके साथ होता है।

८. अग्रवर्त्तिमध्यस्थ कांचबिन्दु।

(Anterior Polar Cataract)

यह कांचबिन्दु (चित्र नं० १२१) जन्मजात और फिर उत्पन्न होने वाला भी होता है। जन्मलब्ध हो तो दोनों नेत्रों में होता है। गर्भावस्थामें गर्भके नेत्रके विकासमें न्यूनता होने या गर्भावस्था में उत्पन्न शुक्लमण्डल प्रदाहके हेतुसे होता है। जन्म के पश्चात् होने वाला कांचबिन्दु बाल्यावस्थामें ही उत्पन्न होता है।

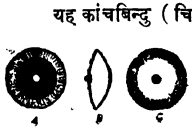

चित्र नं० १२१. अग्रवर्ति मध्यस्थ कांचबिन्दु।

कारण—इसके मुख्य २ कारण हैं। १. नेत्रश्लेष्मावरणका पूय-प्रदाह, जिसमें शुक्लमण्डलका क्षत हुआ हो और वह क्षत फूट कर जलमय रसके पूर्वखण्डमें पूय प्रवेश हो गया हो और दृष्टिमणिके आवरणका

हिस्सा इसके संसर्गमें आया हो; अथवा फिर २. बाल्यावस्थामें शुक्लमण्डलके मध्यभागका क्षत हुआ हो।

उक्त कारणोंसे जिस बालकको या रोगीको आगेका मध्यस्थ कांचबिन्दु प्रतीत हो, उसके नेत्रकी ठीक जांच करें। शुक्लमण्डलकी सूक्ष्म अपारदर्शकता या फूलेका शोध करें। बहुधा ऐसे फूलेकी उत्पत्ति हुए विना इस प्रकारके कांचबिन्दुकी सम्प्राप्ति नहीं होती।

लक्षण और चिह्न—यदि कांचबिन्दु छोटा हो तो रोगीको देखनेमें अधिक कष्ट नहीं पहुँचाता। कारण, मोतियाबिन्दु अति सूक्ष्म होने पर दृष्टिमणिके चारों ओरका भाग, उतने परिमाणमें पारदर्शक होता है कि रोगी अच्छी तरह देख सकता है।

यदि कांचबिन्दु बड़ा हो तो रोगीकी दृष्टिमें अधिक अंतराय होता है। इसके अतिरिक्त सतत नेत्रसंचलन (Nystagmus), इसका विशेष चिह्न उपस्थित होता है। नेत्रकी जांच करने पर कनीनिकाके मध्य भागमें सफेद रंगका एक बिन्दु प्रतीत होता है। अँधेरे कमरेमें नेत्रदर्शक यन्त्रसे वह बिन्दु काला भासता है।

उपचार—दृष्टिमें अधिक बाधा पहुँचती हो तो तारामण्डलके ऊपरके हिस्सेमें एक छोटा छिद्र बनावें। उस छिद्रका विशेषांश ऊपरके पलकसे आच्छादित रहता है। इससे सूर्यका प्रकाश असह्य या दुःखदायी नहीं लगता।

९. पश्चादवर्ति मध्यस्थ कांचबिन्दु।

(*Posterior Polar Cataract*)

इस जातिका कांचबिन्दु (चित्र नं० १२२) विशेषतः जन्मलब्ध होता है। उसके होनेका कारण कांचरूप रसकी मध्यस्थ धमनी, जो गर्भावस्थामें रहती है और फिर अदृश्य हो जाती है, उसका कुछ अंशमें रह जाना है। यह कांचबिन्दु पिछले आवरणमें या गर्भ भागकी पिछली ओर होता है।

चित्र नं० १२२.
पश्चादवर्ति मध्यस्थ कांचबिन्दु।

यदि गर्भभागके पिछले वर्तीमें हो और कांचबिन्दु छोटा हो तो दृष्टि कम होती

है। अन्धकारमय कमरेमें नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा प्रकाश डालकर परीक्षा करने पर दृष्टिमणिके पिछले हिस्सेमें छोटा-सा काला बिन्दु प्रतीत होगा।

उपचार—विशेषतः सफल नहीं होता। फिर भी खास आवश्यकता हो, तो कनीनिकाका छेदन करना चाहिये।

१०. चिह्नमय कांचबिन्दु।

(Punctata Cataract)

इस प्रकारका कांचबिन्दु होने पर दृष्टिमणिमें अनेक छोटे-छोटे अपारदर्शक बिन्दु प्रतीत होते हैं। बहुधा यह व्याधि वृद्ध मनुष्योंके नेत्रमें होती है। कभी छोटी आयुवालोंको भी होजाती है। इस प्रकारका रोग प्रायः स्थायी रहता है, अर्थात् न बढ़ता है और न पकता है।

रोगीको प्रायः दृष्टिमें प्रतिबन्ध नहीं होता। अँधेरे कमरेमें नेत्र-दर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर दृष्टिमणि पर सूक्ष्म सूक्ष्म काले बिन्दु दीखते हैं।

उपचार—विशेष उपचारकी आवश्यकता नहीं है।

११. चक्राकार कांचबिन्दु।

(Zonular or Lamellar Cataract)

इस प्रकार का कांचबिन्दु (चित्र नं० १२३) छोटे बच्चों में प्रतीत होता है। कभी-कभी यह जन्म से ही हो, ऐसा मानने का

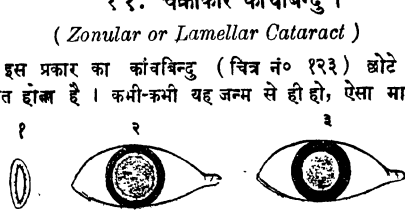

चित्र नं० १२३. चक्राकार कांचबिन्दु।

कारण मिल जाता है। बच्चा सुबोध हो, तब उसकी दृष्टि में न्यूनता प्रतीत होती है। फिर उसी हेतु से मातापिता उसे नेत्रवैद्य के पास ले जाते हैं। ऐसे रोगी की कनीनिका प्रसारित करके परीक्षा की जायगी तो प्रतीत होता है कि, दृष्टिमणि के बीच का हिस्सा कुछ हल्का धूसर (Grey) और उसके चारों ओर का भाग कुछ गाढ़ा धूसर होता है। उसके इर्द-गिर्द का भाग बिल्कुल स्वच्छ होता है। किसी समय इस स्वच्छ या

पारदर्शक भाग में भी गाड़ी के चक्र के आरा जैसी पंक्तियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्रत्येक रोगी में समान स्थिति नहीं भासती। किसी में अपारदर्शकता अधिक होती है। इससे उसकी दृष्टि में विशेष न्यूनता आती है। कितनेकों की अपारदर्शकता इतनी कम होती है कि दृष्टि में मामूली बाधा होती है। कनीनिकाको प्रसारित करके दृष्टि में अच्छी वृद्धि करा सकते हैं।

कारण—इस व्याधिके मुख्य १ कारण को प्रधान माना जाता है। गर्भधारण से लेकर संतान के जन्म तक देह के प्रत्येक अंग-उपाङ्ग क्रमशः विकास को पाते हैं। अतः दृष्टिमणि का भी विकास होता है। दृष्टिमणि और दांत का बाह्य आवरण गर्भावस्था में एक ही जाति के आवरणमें से उन्नति करते हैं। जिन रोगियों में दृष्टिमणि की इस प्रकार की अपारदर्शकता होती है, उनको प्रायः बीच के कर्त्तनक (Incisors) रदनक (Canine), तथा अग्रचर्वपाक (Bicuspid), इन दांतों में भी न्यूनता रहती है। इस पर से ऐसी कल्पना की जाती है कि, गर्भावस्थामें या बालक के जन्म के पश्चात् पोषण की न्यूनता के हेतु से दृष्टिमणि को पोषण कम मिलता है। परिणाम में उस समय के भीतर जितने स्तरों का विकास होता है, उतने स्तर आरोग्य स्थिति में नहीं बनते, अपारदर्शक हो जाते हैं। पुनः पोषण की स्थितिमें सुधार होने पर आगे उत्पन्न होने वाले स्तर स्वस्थ बनते हैं। जिससे बीचमें पारदर्शकता, उसके ऊपर अपारदर्शक पुनः ऊपर पारदर्शकता आ जाती है। इस पर से विदित होगा कि, अस्थिवक्रता (Rickets) जैसे पोषण में प्रतिबन्ध करने वाले रोगों का इस रोग के साथ सम्बन्ध होना चाहिये। संक्षेप में बालकके पोषण की न्यूनता होने पर बाल्यावस्थाके भीतर किसी भी समय इस रोग की संप्राप्ति हो सकती है।

उपचार—इस रोग के मुख्य २ उपचार हैं। तारामण्डल का छेदन और दृष्टिमणि के आवरण का भेदन। यदि अपारदर्शकता सामान्य हो, रोगी को दृष्टि में विशेष अन्तराय न आता हो तो कुछ भी उपाय नहीं करना चाहिये। यदि कनीनिका प्रसारित करने पर दृष्टि में अच्छी तरह वृद्धि होती हो, तो तारामण्डल का छेदन करना वही उत्तम उपाय है। कारण, ऐसा करने पर रोगी की दूर और समीप देखने की शक्ति कायम रह सकती है।

यदि अपारदर्शकता अधिक हो और कनीनिका को प्रसारित करने पर भी दृष्टि में लाभ न पहुँचता हो तो दृष्टिमणि के आवरण का भेदन किये

बिना अन्य मार्ग नहीं है। दृष्टिमणि के आवरण का भेदन किस तरह करना, वह पहले लिखा गया है। किन्तु उसी तरह यदि दृष्टिमणि के आवरण का भेदन किया जायगा तो दूर और समीप की दोनों देखने की शक्ति नष्ट हो जायगी। इससे दूर और समीप को देखने के लिये अलग-अलग २ चश्मे रखने पड़ेंगे और इस प्रकार की प्रतिकूलता आजीवन भोगनी पड़ेगी। अतः हो सके तब तक दृष्टिमणि का भेदन न करें। तारा-मण्डल के छेदन में उक्त आपित्त नहीं है, दोनों दृष्टि कायम रहती हैं।

१२. पश्चाद्वर्त्ति गर्भगत कांचबिन्दु।

(*Posterior Cortical Cataract*)

इस प्रकारका कांचबिन्दु प्रायः ३५-४० वर्षकी अवस्थामें होता है। यह रोग वृद्धावस्थामें होनेवाले कांचबिन्दुका प्राथमिक स्वरूप है। अँधेरे कमरेमें परीक्षा करनेपर दृष्टिमणिकी पिछली तहमें एक तस्तरीनुमा अपार-दर्शकता भासती है। धीरे-धीरे वह समस्त दृष्टिमण्डलपर फैल जाती है। इससे वृद्धावस्थामें होनेवाला कांचबिन्दु बन जाता है।

२. अनुषगी कांचबिन्दु।

(*Secondary Cataract*)

इसके २ प्रकार हैं। अ. जिसमें कांचबिन्दु निकाल देनेके पश्चात् मोटा कुछ अपारदर्शक पर्त्त रह जाता है वह आवरणगत शेष कांचबिन्दु; आ. नेत्रके अन्य रोगमें उपद्रव रूपसे उत्पन्न कांचबिन्दु।

अ. आवरणगत अवशेष कांचबिन्दु।

(Capsular opacity or Capsular Cataract)

ऐसा क्वचित् ही बनता है कि दृष्टिमणिके आवरणका अमुक भाग अपारदर्शक हो और उसके भीतर अवस्थित दृष्टिमणि पारदर्शक है। तात्पर्य कि पर्त्तवाला कांचबिन्दु क्वचित् ही देखनेमें आता है। किन्तु पर्त्तकी अपार-दर्शकताकी एक स्थिति अनेक बार प्रतीत होती है। कांचबिन्दुकी शस्त्रक्रियाके वर्णनमें कहा गया है कि, आवरणका भेदन करनेमें उसके पीछेका हिस्सा भेदनरहित शेष रह जाता है। एवं आगेका हिस्सा आवरणकी बाहरकी ओर मुड़ जाता है। फिर मोतियाबिन्दु [illegible] जाने पर आगे और पीछेका हिस्सा, दोनों परस्पर चिपक जाते हैं। यदि गर्भभाग कुछ शेष रह गया हो,

तो वह भी इन दो पर्त्तोंके बीच रह जाता है। इस तरह बने हुए दृष्टि अवरोधक पर्त्तसे इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

लक्षण और चिह्न—रोगीने पहले कांचबिन्दु निकलाया है, ऐसा वह स्वीकार करता है। तारामण्डलका छेदन किया हो तो वह भी प्रतीत होता है। कनीनिका और इस तरह किया हुआ छेदन भाग, दोनों थोड़े रंग वाले आवरणसे आच्छादित रहते हैं। तारामण्डल प्रायः इस आवरणको चिपका होता है। रोगीकी दृष्टि बहुत कम अथवा लगभग नहीं जैसी होती है। रोगी हाथका चलना या प्रकाश मात्र देख सकता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर कनीनिका लाल दीखनेके बदलेमें काले धब्बेसे पूर्ण भासती है। कनीनिका प्रकाश-अंधकारसे छोटी-बड़ी नहीं होती।

उपचार—उक्त आवरणका भेदन करना, यह एक ही उपाय इस स्थितिके लिये है। यह क्रिया भिन्न-भिन्न नेत्रवैद्य अलग-अलग शस्त्रोंसे करते हैं। कितनेक विशेष प्रकारकी सुईका उपयोग करते हैं। कोई दो सुईसे काय लेते हैं। कतिपय नेत्रवैद्य झिग्लरके शस्त्रका व्यवहार करते हैं। एव कितनेक घिसकर सूक्ष्म बने हुए ग्राफेके शस्त्रका प्रयोग करते ।

शस्त्रक्रिया विधि—रोगीको टेबलपर लिटा कोकेन प्रवाही डालकर नेत्रको चेतना रहित करें। मोतियाबिन्दुक या में लिखे अनुसार नेत्रको धोकर स्वच्छ करें। कमानी लगाकर नेत्रको खुला रक्खें। गोलकको चिमटेसे स्थिर करें। फिर सुई या झिग्लरकी छुरिका (Zieglers Knife) को शुक्लमण्डल और बाह्यपटलके संगमके पास टोंचें। जब वह जलमयरसके पूर्वखण्डमें पहुँचे, तब शस्त्रके दस्तेको कुछ ऊँचा करें, जिससे शस्त्रकी नोक कनीनिकामें अवस्थित आवरणकी ओर मुड़ेगी। शनैः-शनैः नोकको आवरणके भीतर प्रवेश करावें। ऐसा करनेपर आवरणका भेदन होगा। फिर कनीनिकाके भीतर शस्त्रकी नोकको ऊँचे-नीचे चलावें। इससे आवरणका छेद बड़ा होगा। यह क्रिया पूरी होनेपर सुईको तुरन्त बाहर-निकाल लेवें। पश्चात् एट्रोपिनके विशुद्ध प्रवाहीकी १-२ बूंद डालकर पट्टी बांध देवें।

कितनीक बार आवरण बहुत गाढ़ा होता है, जिससे एक सुई काम नहीं कर सकती। ऐसे प्रसंग पर दो सुइयोंका भीतरकी तथा बाहरकी ओरसे प्रवेश कराया जाता है। दोनों सुईकी नोकको आवरणमें टोंचते हैं। फिर शस्त्रोंके दस्तोंको इस तरह एक दूसरेकी ओर किया जाता है कि नोक परस्पर अलग होती हैं। इससे आवरणमें एक बड़ा छेद बन जाता है। इच्छित कार्य होजाने पर दोनों सुईको बाहर निकालकर नेत्रपर पट्टी बांध लेवें।

शस्त्रक्रियामें आपत्ति—उपर्युक्त शस्त्रक्रियामें निम्न २ आपत्तियोंका डर रहता है।

१—सुईको टोंचनेमें सम्हाल न रहे तो तारामण्डलका भेदन होता है। फिर पूर्वखण्डमें रक्तस्राव होता है और रोगीको वेदना होती है। एवं सुई ठीकसे नहीं फिर सकती, जिससे इच्छित कार्यकी सिद्धि नहीं होती।

२—नेत्रको ठीक स्वच्छ न किया हो, तो भीतर कीटाणुओंका प्रवेश होता है। आवरणके पीछे तुरन्त ही कांचरूपरस अवस्थित है और सुईकी नोक कांचरूप रसके भीतर थोड़ी दूरी तक जाती है। यदि सुई या शस्त्रको बाहर निकालनेके समय थोड़ा-सा कांचरूप रस भी आजाता है तो उसी मार्गसे कीटाणुओंका भीतर प्रवेश होजाता है और कांचरूप रसमें सरलतापूर्वक पहुच जाता है। फिर कांचरूप रसमें गम्भीर प्रदाह उत्पन्न होकर नेत्र चला जाता है। अतः इस शस्त्रक्रियाको तुच्छ मानकर स्वच्छताके नियमोंके पालनमें लापरवाही नहीं करना चाहिये।

आ. उपद्रवरूप कांचबिन्दु।

(Complicated Cataract)

यह रोग विशेषतः निम्न नेत्ररोगोंमें अनुषंगी रूपसे उपस्थित होता है। १. तारामण्डल प्रदाह और उस हेतुमे उसकी संलग्नता; २. तन्तुमय समूहका प्रदाह; ३. नेत्रदर्पणका विच्छेद; ४. गोलकके भीतर उत्पन्न होने वाले अर्बुद; ५. अधिमन्थ, ६. दृष्टिमणिकी स्थानभ्रष्टता, ७. मध्यपटल का प्रदाह; ८. नक्तान्धता; ९. कांचरूपरसकी व्याधियां आदि।

लक्षण और चिह्न—पहले लिखे हुए अन्य जातियों के कांचबिन्दु के समान होते हैं। इतना ही याद रखने की आवश्यकता है कि जिस रोग के परिणाम में कांचबिन्दु हुआ हो, उस रोग से ही दृष्टि को अच्छी तरह हानि पहुँची हुई होती है।

उपचार—इस उपद्रव रूप कांचबिन्दु के उपचार में नेत्रवैद्य को अति सावधानता रखने की आवश्यकता है। प्रायः नेत्र के भीतर का भाग कितने अंश में रोग ग्रस्त हुआ है, इसका निर्णय करना प्रायः कठिन और कभी-कभी अशक्य होता है। यदि ऐसा निर्णय न हो सके, तो रोगी को सच्ची स्थिति समझा देनी चाहिये। एवं दृष्टि आवेगी, ऐसी आशा देने के पहले विचार करना चाहिये।

कनीनिका के आकुंचन-प्रसारण का प्रायः अभाव होता है। इससे मुख्य आधार भिन्न-भिन्न दिशा में से आने वाले प्रकाश को रोगी

जान सकता है या नहीं, उस पर अवलम्बित है। यदि नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा नेत्र पर प्रकाश डालने पर रोगी उसे ठीक जान सके, तो परिणाम सामान्यतः अच्छा आने की कुछ आशा दे सकते हैं।

शस्त्रक्रिया करने के समय भी अनेक प्रकार की कठिनाइयाँ उपस्थित होती हैं। तारामण्डल के पर्दे का छेदन करने में मुख्य कठिनाई आती है। प्रायः वह अनारोग्य स्थिति में होने से चिमटे द्वारा नहीं पकड़ा जाता। पकड़ाता है तो खिंचने पर टूट जाता है। उसमें से रक्तस्राव बहुत होता है। छेदन करने और कांचबिन्दु निकालनेके पश्चात् भी उस पर्दे का प्रदाह होने का विशेष डर रहता है। उस हेतु से पर्दे में किया हुआ छेद बन्द हो जाता है। यदि ये सब निर्विघ्न सफल हो तो भी गोलक के भीतर रहे हुए रोग के हेतु से अच्छी दृष्टि की प्राप्ति नहीं होती।

(४) दृष्टिमणि का अभाव।

(*Aphakia*)

इस स्थिति में नेत्र के भीतर दृष्टिमणि होती ही नहीं। यह स्थिति जन्मलब्ध होती है। अथवा कांचबिन्दु को निकालने की शस्त्रक्रिया में उसे निकाल दी हो, या २५ वर्ष से कम आयु वाले मनुष्यों की आँख में कांचबिन्दु की शस्त्रक्रिया के परिणाम में दृष्टिमणि बिल्कुल गल गई हो अथवा दृष्टिमणि स्थानभ्रष्ट हो। चाहे किसी भी कारण से हो, कनीनिका में दृष्टिमणि का अभाव होने पर नेत्र अतिशय दीर्घदृष्टि वाला हो जाता है। पहले लिखे अनुसार दृष्टिमणि नैसर्गिक स्थिति में होने पर उसमें +१० जितना बहिर्गोलपना होता है। जब समीप देखने की स्थिति में हो तब +१४ जितनी बहिर्गोलता होती है। इस स्थिति के हेतु से जब रोगी के नेत्रमें से कांचबिन्दु निकाल लिया हो या अन्य हेतु से दृष्टिमणि का अभाव हो, तब रोगी को स्पष्ट देखने के लिये दूर के लिये +१० और लिखने पढ़ने और समीप देखने के लिये +१४ का कांच दिया जाता है। यह कांच केवल स्वस्थ नेत्र, जिसे कांचबिन्दु आने के पहले बिल्कुल चश्मे की आवश्यकता न हो, उसके लिये है।

यदि ऐसे नेत्रों को कांचबिन्दु निकालने के पहले +कांच की आवश्यकता रही हो तो +१० के साथ उतने +नम्बर बढ़ाना पड़ता है। यदि रोगी −कांच का उपयोग करता हो, तो जिस नम्बर का कांच हो उस नम्बर में से +१० कम करना पड़ता है। उदा० कांचबिन्दु निकलवाने

के पहले रोगी को +२ कांच द्वारा ठीक दृष्टि पड़ती हो, तो कांचबिन्दु निकलवाने के पश्चात् दूर के लिये +१२ और समीप के लिये +१६ कांच की आवश्यकता रहेगी। यदि रोगी को -४ का व्यवहार करना पड़ता हो तो कांचबिन्दु निकलवाने पर +६ दूर के लिये और +१० समीप के लिये चाहिये।

इस बात को लक्ष्य में रखना चहिये कि, कांचबिन्दु निकलवाने में शुक्लमण्डल का ऊर्ध्वभाग काटना पड़ता है और जब वह कटा हुआ भाग फिर जुड़ जाता है, तब दृष्टि कितनेक अंश में अनियमित बन जाती है। उसे सुधारने के लिये रोगी की आवश्यकता अनुसार +अथवा - अर्धगोल कांच बढ़ाया जाता है। इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण आगे २८वें प्रकरण में किया जायगा।

कांचबिन्दु निकालने पर कितनेक रोगी पुकार करते हैं कि सब नीला दीखता है। यह स्थिति दो कारणों से होती है। १. कनीनिका में किया हुआ बड़ा छेद; २. दृष्टिमणि का अभाव (दृष्टिमणि में कितनेक रंगों के किरणों का शोषण करने का गुण अवस्थित है वह कार्य फिर नहीं हो सकता) यह व्यथा २-३ मास के पश्चात् स्वयमेव अदृश्य हो जाती है क्योंकि नेत्र नूतन परिस्थिति के अनुकूल बन जाता है।

सत्तरहवां प्रकरण ।

कांचरूपरसके रोग ।

(Diseases of Vitreous body)

कांचरूपरस गाढ़ा, लेसदार प्रवाही है। लिसोड़ेके रसकी अपेक्षा कुछ अधिक प्रवाही और उससे कम चिपचिपा होता है; या इसकी तुलना अण्डेके रसके साथ की जाती है। दृष्टिमणिके पीछे गोलकका शेष भाग इस रससे पूर्ण है। जन्मके पश्चात् उसके भीतर रक्तवाहिनी नहीं होती। गर्भावस्थामें एक रक्तवाहिनी दृष्टिमणिके पिछले आवरणके मध्यमेंसे नेत्रदर्पणके मध्यभाग तक जाती है। जन्म होनेके पहले वह शोषित हो जाती है। कदाच जन्मके पश्चात् यदि वह शेष रहजाती है, तो एक विशेष रोगयुक्त स्थिति प्रकाशित होती है। इस हेतुसे दृष्टिमें न्यूनता आती है। विशेषतः कनीनिकाके बीचके हिस्सेकी दृष्टिमें अधिक न्यूनता रहती है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखनेपर दृष्टिमणिके पिछले आवरणके मध्यमें एक काला धब्बा प्रतीत होता है। उस धब्बेमेंसे नेत्रदर्पण तक जानेवाली एक सूक्ष्म काली रेखा भासती है। इस स्थितिके लिये कोई उपचार नहीं है।

उक्त स्थितिके अतिरिक्त कांचरूपरसके ६ रोग विशेष हैं। १. कांचरूपरसमें पूय; २. कांचरूपरसमें रुधिर; ३. कांचरूपरसमें अपारदर्शकता; ४. कांचरूपरसमें बाह्य पदार्थ; ५. कांचरूपरसमें सूक्ष्म कृमि; ६. कांचरूपरसका प्रवाहीपना।

१. कांचरूपरसमें पूय ।

(*Pus in Vitreous*)

कारण—इस स्थितिकी प्राप्तिमें निम्न हेतु हैं:—१. नेत्रमें घाव; २. नेत्रमें बाह्य पदार्थ गिरना; ३. बाह्यपटलका पूयात्मक प्रदाह।

लक्षण और चिह्न—रोगीकी दृष्टि बहुत कम हो जाती है; न्यूनाधिक वेदना होती है, प्रारम्भमें नेत्रके भीतर अधिक लाली नहीं होती; किन्तु जब

प्रदाह कांचरूपरसके चारों ओरके भागोंमें पहुँच जाता है, तब लाली अच्छी तरह आजाती है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर लाल प्रकाश आनेके बदलेमें पीला प्रकाश आता है। नेत्रदर्पणका कोई भी भाग नहीं दीखता। बहिर्गोल कांचसे नेत्रमें प्रकाश डालनेपर भी उसी तरह पीला प्रकाश प्रतीत होता है। ऐसा ही प्रकाश नेत्रदर्पणके कपितय अर्बुदोंमें उत्पन्न होता है, जिससे कभी-कभी इसका निर्णय करना अति कठिन होजाता है। सामान्य वैद्यके समझमें नहीं आसकेगा, अतः यहाँ विस्तार नहीं किया।

परिणाम—कांचरूपरसमें उत्पन्न पूय कचिन् ही शोषित होता है या आगे बढ़ता हुआ रुकता है। विशेषतः पूय चारों ओर आगे बढ़ता है। फिर विद्रधि हो जाता है। इसका विशेष वर्णन पहले 'गोलककी विद्रधि' रूपसे किया गया है।

उपचार—प्रारम्भमें नेत्रपर सेक करें। कनपटीपर जलौका लगाना आदि उपाय करें। रोग बढ़नेपर शस्त्रचिकित्सा द्वारा पूयको निकालनेका मार्ग दिया जाता है या नेत्रको निकाल देना पड़ता है।

२. कांचरूपरसमें रुधिर।

(Haemorrhage in Vitreous)

कारण—कांचरूपरसमें निम्न कारणोंसे रक्तगमन होता है:—

१. गोलकको चोट लगना या व्यथा होना।
२. नेत्रदर्पण और मध्यपटल की धमनियां अनारोग्य होनेपर उसके स्तरोंमें रक्त जाता है। फिर वह कांचरूपरसमें प्रवेश करता है।
३. कतिपय युवा व्यक्तियोंको विशेष हेतु रहित कांचरूपरसमें बहुत रक्त चला जाता है। इस प्रकारकी व्याधिको इलका रोग (Eal's Diseases) कहते हैं। उसका वर्णन आगे प्रकरण २७वें में किया जायगा।

लक्षण और चिह्न—रोगीकी दृष्टिमें तत्काल अन्तर हो जाता है। बाहरसे जांच करनेपर नेत्रमें कुछ भी परिवर्त्तन नहीं भासता। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर रक्त थोड़ा और एकाध स्थानमें हो तो प्रतीत होता है। रक्तस्राव अधिक होनेपर कनीनिकामेंसे प्रकाश ही नहीं आता।

उपचार—रोगी को बिल्कुल आराम देवें। मृदुविरेचन, पारद जैसी शोषक औषध, पुनः रक्तस्राव न होने के लिये रक्त का गाढ़ापन बढ़ाने के लिये कैलशियम क्लोराइड और कैलशियम लेक्टेट जैसी औषध

देना आदि उपचार करें। प्राय रक्त पुनः शोषित हो जाता है। फिर दृष्टि पूर्णांश में नहीं, तो भी कितनेक अंश में पुनः आ जाती है।

३. कांचरूपरस में अपारदर्शकता।

(*Opacities in Vitreous*)

यह अपारदर्शकता निम्न ३ प्रकार की होती है:—

१. *सूक्ष्म परमाणु सदृश*—इसकी संप्राप्ति प्रायः उपदंशज विक्रिया के हेतु से मध्यपटल और नेत्रदर्पण के प्रदाह द्वारा होती है। फिर कांचरूपरस में अपारदर्शकता आती है। नेत्रदर्शक यन्त्र से देखने पर सूक्ष्म-सूक्ष्म बहुसंख्य काले परमाणु प्रतीत होते हैं। यदि सादे कांच और नेत्रदर्शक यन्त्र के पीछे +१० या +२० का कांच रक्खा जाय तो, ये परमाणु बड़े और स्पष्ट भासते हैं। ये परमाणु प्रदाहजनित सूक्ष्म बिन्दु जैसे द्रव्य रूप होते हैं या कांचरूप से ही उत्पन्न परमाणु होते हैं।

२. *तन्तु सदृश अपारदर्शकता*—इसकी संप्राप्ति प्रायः मध्यपटल और तन्तुमय समूह के चिरकारी प्रदाह में प्रतीत होती है। लघु दृष्टि में प्रतीत होती अपारदर्शकता इस प्रकार की होती है। यह मध्यपटल में होने वाले परिवर्तन के हेतु से होती है। क्वचित् रक्तस्राव के हेतु से भी इस प्रकार की अपारदर्शकता उपस्थित होती है।

३. *पत्रसदृश अपारदर्शकता*—यह प्रकार अति क्वचित् दृष्टिगोचर होता है। यह अपारदर्शकता रक्तस्राव या मध्यपटल में से होने वाले रक्तस्राव के हेतु से होती है। अपारदर्शकता उपस्थित होने पर कांचरूपरस प्रायः अधिक प्रवाही हो जाता है।

रोगविनिर्णय—इसके लिये ३ साधनों की आवश्यकता है—१. प्रसारित कनीनिका; २. नेत्रदर्शक यन्त्र; तथा ३. अन्धकारमय कमरा और दीपक।

रोगी को कुर्सी पर बैठा कर नेत्रवैद्य सामने बैठें। कनीनिका पर प्रकाश डालें। अन्तर्गोल दर्पण की अपेक्षा समतल दर्पण विशेष सहायक होता है। रोगी को नेत्र ऊपर, नीचे, बाहर, भीतर फिराने के लिये कहें। जिस तरह जल के तल में रही हुई मिट्टी या रेती के परमाणु जलपात्र को चलाने पर जल में फैल जाते हैं, उसी तरह कांचरूप रस में रहे हुए परमाणु द्वारा गँदलापन आ जाता है, वह कनीनिका में से विदित हो जाता है। अन्य भागों की और कांचरूपरस की अपारदर्शकता का भेद

स्थिर पने और चलपने पर से हो जाता है। अन्य भागों में अपारदर्शकता स्थिर और कांचरूपरस के भीतर वह जल में तैरने के समान होती है।

इस अपारदर्शकता से दृष्टि को कितनी हानि पहुँचेगी, या कितना अन्तराय आवेगा, इसका आधार अपारदर्शकता की जाति और समूह पर है। रज जैसे परमाणुओं की अपेक्षा तन्तु विशेष प्रतिबन्ध करता है और पत्र जैसी विकृति अधिकतम प्रतिबन्ध करती है। अपारदर्शकता कम हो तो प्रतिबन्ध कम और अधिक हो, तो अधिक प्रतिबन्ध होता है।

परिणाम—रज जैसी अपारदर्शकता प्रायः अदृश्य हो जाती है; और दृष्टि साफ हो जाती है। तन्तु सदृश अपारदर्शकता प्रायः आजीवन रह जाती है। इस अपारदर्शकता के परिणाम में कभी-कभी नेत्रदर्पण का विच्छेद होता है और परिणाम में अंधता आ जाती है।

उपचार—कनपटी पर कृत्रिम जलौका या ग्लास लगावें। पारद अथवा पोटास आयोडाइड का सेवन करावें। नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे नमक जल (१ औंस में २० ग्रेन) या सायानाइड ऑफ मर्क्युरी १=१००० से १=३००० तक का अन्तःक्षेपण अच्छा लाभ पहुँचाता है। नमक जल दूसरे दूसरे दिन प्रवेश करावें। सायानाइड ऑफ मर्क्युरी सप्ताह में १ से अधिक समय नेत्र सहन नहीं कर सकता।

४. कांचरूप रसमें बाह्य पदार्थ।

(*Foreign body in Vitreous*)

तीक्ष्ण नोकदार शस्त्र गोलकको बलपूर्वक लगने पर नेत्रके भीतरके भागमें प्रवेश कर जाता है। युद्धके भीतर गोलेके टुकड़े, छोटे छर्रे, गोली आदि और कारखानेमें काय करने वालोंके नेत्रमें लोहे आदिके किनके (परमाणु) घुस जाते हैं।

लक्षण और चिह्न—न्यूनाधिक वेदना होती है, क्वचित् बिल्कुल वेदना नहीं होती। नेत्रमें लाली होती है। दृष्टिमें कुछ न्यूनता और कभी न्यूनता का अभाव होता है। परीक्षा करने पर घाव प्रतीत होता है। यदि बाह्य पदार्थ तारामण्डलका भेदन करके भीतर गया हो तो वैसा, गम्भीर घाव भासता है। जलमयरसके पूर्वखण्डमें कुछ रक्त आता है। घावको १-२ दिन होजाने पर दृष्टिमणिका रंग परिवर्त्तन होने लगता है। कनीनिकाको प्रसारित कर नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा जांच करने पर बाह्य पदार्थ प्रतीत होता है।

बाह्य पदार्थ लोहका हो तो लोह चुम्बककी सुई वाले यन्त्रसे विदित होता है। बाह्य पदार्थ नेत्रके भीतर होने पर यन्त्रकी सुई उस ओर मुड़ती है। लोह या अन्य धातु होने पर क्ष किरण यन्त्रसे जाना जाता है। बाह्य-पदार्थ नेत्रके भीतर किस स्थानमें है, इसका निर्णय सूक्ष्मतापूर्वक हो सकता है। यह विधि कठिन होनेसे यहाँ समझानेका प्रयत्न नहीं किया।

उपचार—बाह्य पदार्थ लोहेका हो तो राक्षसी चुम्बक द्वारा निकाल लेने पर नेत्र बच जाता है। अन्य पदार्थ हो तो बाहर निकालनेका प्रयत्न करें। सफलता बहुत कम मिलती है। बहुधा नेत्र चला जाता है। उतना ही नहीं, अन्य स्वस्थ नेत्रको भी हानिकर बन जाता है। इसलिये ऐसे घाव वाली आंख, जिसके भीतर बाह्य पदार्थ गहराईमें रह गया हो, उसे निकाल देनी पड़ती है। इस विषयका विचार समदुःखी नेत्रप्रदाहके विवेचनमें दिया गया है।

५. कांचरूपरसमें सूक्ष्म कृमि।

(Parasites in Vitreous)

इन कृमियोंमें २ प्रकार हैं। १—कद्दूदाना कीड़े—टीनियासोलियमके अण्डे (Cysticercus); २—स्नायु-नारुकी जातिके कृमि लोआ (Filaria Loa)।

कद्दूदाना कृमि चपटे होते हैं। उसका प्रवेश उदरमें होने पर उसके अण्डे आमाशयकी दीवारमें से रक्तमें जाते हैं। फिर नेत्रदर्पणमें पहुँच जाते हैं। वहाँ पर नेत्रदर्पण और मध्यपटलका भेदन करके कांचरूप रसमें घुस जाते हैं। नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा प्रारम्भावस्थामें देखने पर कांचरूपरसमें तेजस्वी, हलके नीले बुदबुदेके समान भासते हैं। कुछ समयके पश्चात् कांचरूपरस गँदला बन जाता है। कृमिके चारों ओर एक प्रकारका आवरण बन जाता है। कुछ काल जाने पर तन्तुमयसमूहका प्रदाह होता है। यदि प्रारम्भिकावस्थामें जांच हो सके तो इस कृमिके अस्तित्वका निर्णय हो सकता है।

स्नायु विशेषतः अपने देश वासियोंमें प्रतीत होता है। नेत्रदर्शक-यन्त्रसे देखने पर छोटे स्नायुके समान लम्बा कृमि कांचरूपरसमें फिरता हुआ भासता है। जब तक वह कांचरूपरसमें ही रहता है, तब तक दृष्टिमें कुछ बाधा पहुँचाता है। इसके अतिरिक्त आपत्ति नहीं लाता। किन्तु जब कांचरूपरसमें से तन्तुमयसमूह या जलमयरसके पूर्वखण्डमें आजाता है,

तब नेत्रमें वेदना और प्रदाहके लक्षण प्रकाशित होते हैं। यदि जलमय रसके पूर्वखण्डमें आजाय, तो शस्त्रोपचारसे उसे निकाल सकते हैं। सद्भाग्यसे ऐसे कृमि मनुष्योंके नेत्रमें अत्यन्त क्वचित् ही प्रतीत होते हैं। इस हेतुसे अनेक नेत्रवैद्योंने इस कृमिके उल्लेखको अपने ग्रन्थमें स्थान नहीं दिया। भारतमें उक्त दोनों कृमि होनेसे यहाँ संक्षेपमें वर्णन किया है। उपचार दोनोंके लिये कठिन है।

६. कांचरूपरसका प्रवाहीपना।

(Liquefaction of Vitreous)

इस स्थितिका वर्णन निश्चयपूर्वक नहीं होसकता। गोलककी कठिनता, तारामण्डलका कम्प और कांचरूप रसमें अपारदर्शकता, ये सब लक्षण इस स्थिति की सूचना करते हैं।

इनके अतिरिक्त कितनेक वयोवृद्ध व्यक्तियोंके नेत्रमें कांचरूपरसके भीतर सुवर्णकी वर्षा हुई हो, ऐसा देखाव होता है। यह देखाव इतना सुन्दर और चित्ताकर्षक होता है कि, एक समय देखने पर आजीवन उसका विस्मरण नहीं होता। उसके अस्तित्वसे दृष्टिमें कुछ भी अन्तर नहीं होता। एवं उसमें उसके लिये किसी विशेष चिकित्साकी भी आवश्यकता नहीं है।

अठारहवाँ प्रकरण।

अधिमन्थ।

नीला मोतियाबिन्दु—आँख का नजला।

(*Glaucoma*)

यह रोग भारतवर्षमें अति प्रचलित है। प्रत्येक नेत्रवैद्यको अपने व्यवसाय कालमें हजारों रोगी मिल जाते हैं। यह रोग इतना दुष्ट है कि, यथा समय योग्य उपचार न किया जाय तो सदाके लिये दृष्टि चली जाती है। फिर किसी भी चिकित्सासे लाभ नहीं मिलता। इस तरह इस रोगसे अंधे हुए हजारों या कदाच लाखों लोग भारतवर्षमें होंगे।

इस रोगमें एक लक्षण प्रधान है। वह यह है कि, किसी भी जातिका अधिमन्थ हो, सबमें गोलककी कठिनता बढ़ती है अर्थात् नेत्रान्तर दबावकी वृद्धि होती है। एवं जो अन्य शूल आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, वे सब नेत्रान्तर दबाववृद्धिके हेतुसे ही होते हैं।

अधिमन्थ प्रकार—१. प्राथमिक (Primary); २. अनुषंगी (Secondary); ३. बालकोंके होनेवाला नयनजलोदर (Buphophthalmos, Hydrophthalmos)। प्राथमिक अधिमन्थकी सम्प्राप्ति बिल्कुल नीरोगी नेत्रमें होती है। अनुषंगी अधिमन्थकी प्राप्ति नेत्रकी अन्य व्याधिके उपद्रवरूपसे होती है। कितनेक नेत्रवैद्य संपूर्ण अधिमन्थ (Absolute Glaucoma) को भिन्न प्रकार मानते हैं। यथार्थमें वह रोगकी अन्तिमावस्था है। अतः हमने एक ही रोगकी विविध स्थिति रूपसे उसका वर्णन किया है। भिन्न रोग या भिन्न प्रकार रूपसे नहीं माना।

१. प्राथमिक अधिमन्थ।

(*Primary Glaucoma*)

कितनेक ग्रन्थकारोंने इसके ४ उपविभाग किये हैं। १. आशुकारी रक्तसंग्रह जनित (Acute Congestive); २. चिरकारी रक्तसंग्रह जनित

(Chronic Congestive); ३. सामान्य या चिरकारी (Simple or Chronic); ४. संपूर्ण (Absolute) । हमें यह वर्गीकरण नैसर्गिक प्रतीत नहीं हुआ । अतः यहाँ २ ही विभाग किये हैं । अ. आशुकारी या रक्तसंग्रह जनित (Acute or Congestive); आ. सामान्य या चिरकारी (Simple or Chronic) ।

अ. आशुकारी अधिमन्थ—शूलसह अधिमन्थ ।

(Acute, Congestive or Inflamatory Glaucoma)

यह रोग (चित्र नं० १२४ देखें) विशेषतः ४० वर्ष या इससे अधिक आयुवालोंको होता है । हमने और अन्य नेत्रवैद्योंने इससे कम आयुवाले रोगियों को देखा है, किन्तु कम आयुवालों की संख्या बहुत कम होती है । यह रोग पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियोंको अधिक होता है । दीर्घदृष्टिकी अपेक्षा लघुदृष्टिवाले इससे अधिक पीड़ित होते हैं । इसका आक्रमण मोटे, निश्चित और भोले स्वभाववालोंकी अपेक्षा अति विचारशील, अति चिन्तापरायण, उग्र स्वभाव और कृपि देहवालों पर अधिक होता है । अधिक लिखने-पढ़ने वाले, कम निद्रा लेनेवाले तथा मलावरोध विकारसे पीड़ितोंको इस रोगकी संप्राप्ति होनेकी विशेष संभावना है । प्रौढ़ा स्त्रियों को मासिक धर्म निवृत्त हो जाने पर यह रोग होनेका विशेष डर रहता है । कितनेक अंग्रेजी ग्रन्थकारोंको यह रोग वंशागत होनेमें संदेह है; किन्तु अनेक रोगियोंने उनके पिता, पितामहके नेत्र इस रोगसे चले जाना स्वीकार किया है, इस परसे हमारी निश्चित मान्यता है कि, जिनके मातापिताको यह रोग हुआ हो, उनकी संतानोंको यह रोग सरलतापूर्वक होजाता है ।

लक्षण—१. मस्तिष्कमें तीव्र शूल; २. अति अश्रुस्राव; ३. दृष्टिमें न्यूनता; ४. उबाक, वान्ति, शीत लगना और हृदय गति घट जाना आदि ।

चिह्न—५. पलकका शोथ; ६. नेत्रमें लाली और स्फीति; ७. शुक्लमण्डलका बाष्पमय बनना; ८. जलमयरसके पूर्वखण्डका न्यून होना; ९. कनीनिकामें परिवर्त्तन; १०. तारामण्डलमें परिवर्त्तन; ११. कनीनिका पर प्रकाश डालनेपर प्रतीत होनेवाली लालीमें न्यूनता; १२. दर्शननाड़ीके सिरे की पतित स्थिति; १३. नेत्रान्तरदबाव वृद्धि ।

इन सब लक्षणों और चिह्नोंके योग्य ज्ञानकी आवश्यकता रहती है । अतः इन सबका क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं ।

१. शिरःशूल—इस रोगमें शिरःशूल होना, यह लक्षण अति प्रसिद्ध है । इस हेतुसे कितनेक रोगी मस्तिष्कमें सामान्य वेदना होनेपर भी

अधिमन्थ तो नहीं होगया ? इस भयके मारे नेत्रवैद्यके पास पहुँचते हैं। शिरःशूल एक ही ओर होता है और वह इतना तीव्र होता है कि रोगी अपना हाथ भ्रू पर ही रखते हैं। कितनेक रोगी हाथोंको शिरपर ठोकते हैं। कई अपने शिरको दीवार पर पटकते रहते हैं। रोगी अति व्याकुल रहता है। निद्रा नहीं आती। मुखमण्डल चिन्ताग्रस्त और दुःखपूर्ण होजाता है। कितनेक रोगी, इनमें भी विशेषतः स्त्रियां इस शूलके हेतुसे रोते ही रहते हैं। शिरदर्द दिन रात सतत बना रहता है। किसी-किसीको दिनमें कुछ कम होता है शिरदर्द केवल भ्रूस्थानमें ही नहीं होता, किन्तु समस्त मस्तिष्कमें होता है। इस शूलका कारण नेत्रान्तर दबाववृद्धिजनित संवेदक वात-नाड़ियों पर दबाव है।

२. *अति अश्रुस्राव*—जिस नेत्रमें अधिमन्थ हुआ हो, उसमेंसे अति जलस्राव होता रहता है। इतने तक कि रोगी नेत्रोंको सतत पोंछता ही रहता है। यह जल चिपचिपापनसे बिल्कुल रहित होता है। नैसर्गिक अश्रु से बिल्कुल मिलता होता है। या ऐसा ही कहें कि, अतिशय अश्रु ही बहता है। यह लक्षण अश्रु पिण्डको जो वातनाड़ियां नियममें रखती हैं, उनकी उग्रताके हेतुसे यह होता है।

३. *दृष्टिमें न्यूनता*—नेत्रमें शूलका प्रारम्भ होनेके साथ ही दृष्टि अति मंद हो जाती है। कितनेकोंकी दृष्टि रात्रिको सोनेके पहले योग्य थी, किन्तु मध्यरात्रिको असह्य वेदनासे वह जाग जाता है और सुबह उठने पर नेत्रसे बिल्कुल नहीं दीखता। ऐसी एक रुग्णाको १९१२ ई० में मैंने देखा है। उसकी आयु लगभग ५० वर्षकी होगी। रात्रिको सोनेके समय स्वस्थ थी। २-३ घंटे बाद उसे अधिमन्थ हो जानेसे असह्य वेदना होने लगी। सुबह उठने पर दोनों आँखोंकी दृष्टि बंद होगई। ३ दिनके बाद उसे मेरे पास लाये। परीक्षा करके शस्त्र क्रियासे कदाच दृष्टिकी प्राप्ति होनेकी आशा दी। उसके सम्बन्धी वर्गने विचार करनेमें ही ४-५ दिन निकाल दिये। फिर आने पर पुनः परीक्षाकी और जवाब दे दिया। फिर अन्य नेत्रवैद्योंके पास गये, किन्तु सबसे वही अभिप्राय मिला। अन्तमें वह बाई आजीवन अंधी ही रही।

इस तरह एक ही रात्रि के प्रबल आक्रमण से नेत्र चले जायँ, ऐसे प्रकार को दुष्ट अधिमन्थ (Fulminant Glaucoma) संज्ञा दी है। उससे रोगी कुछ घण्टों में ही अन्धा हो जाता है। फिर किसी भी उपचार से लाभ नहीं पहुँचता। सामान्य आक्रमण में जब तक नेत्र में पीड़ा होती है, तब तक दृष्टि बहुत कम या बन्द रहती है, किन्तु जब

४, ६ या ८ दिन के पश्चात् रोगबल कम होता है और पीड़ा शमन होती है, तब रोगी की गई हुई दृष्टि में पुनः बहुत सुधार हो जाता है। रोग होने के पहले जितनी दृष्टि थी, उतनी तो नहीं आती, फिर भी अच्छा लाभ पहुँच जाता है। इस तरह कुछ सप्ताह या मास तक शान्त रह कर पुनः नेत्र में पीड़ा होने लगती है और दृष्टि कम हो जाती है या बिल्कुल बन्द हो जाती है। पुनः कुछ दिनों में शान्ति होती है और दृष्टि में सुधार होता है। दूसरे आक्रमणके पहले दृष्टि थी, उससे कम ही वापस मिलती है। इस तरह ३-४ बार आक्रमण हो जाने पर अन्त में दृष्टि बिल्कुल चली जाती है।

४. *वान्ति, शीत लगना और हृत्स्पन्दन-ह्रास*—शिरः शूल के प्रारम्भ के साथ ही उबाक का प्रारम्भ होता है और अनेक रोगियोंको १, २, ३ या अधिक वान्ति हो जाती हैं। वान्ति बहुधा आक्रमण के पहले दिन ही होती है। फिर नहीं होती। इसके अतिरिक्त मलेरिया के समान शीत आ जाता है। वह थोड़े समय तक रहता है। यह शीत भी दो प्रकार का होता है। कितनेकों को शिरदर्द के हेतु से आता है; दूसरों को शीत लगकर ज्वर आ जाता है। इस ज्वर (मलेरिया) के हेतु से अधिमन्थका आक्रमण होता है। कितनेक कोमल प्रकृति वाले कोमल देह वाले व्यक्तियों को हृत्स्पन्दन घट जाता है। अर्थात् १ मिनिट में ७२ लगभग होने के स्थान में केवल ३५-४० होते हैं।

५. *पलकशोथ*—पलक पर न्यूनाधिक शोथ आता है। कितनेकों को कम और कइयों को अधिक होता है। फिर वे नेत्र नहीं खोल सकते। रोगबल कम होने पर शोथ उतर जाता है; किन्तु कितनेक रोगियों में दिनों तक रह जाता है।

६. *नेत्र की लाली और स्फीति*—तीक्ष्ण प्रकोप में नेत्र अति लाल हो जाता है। यह लाली गहराई में अवस्थित रक्तवाहिनियों की स्फीति और उनमें रक्त संगृहीत हो जाने से होती है। इस हेतु से एड्रिनेलिन की बूँद डालने पर भी यह लाली दूर नहीं होती। रोग प्रबल होने पर लाली के अतिरिक्त नेत्रश्लेष्मावरण बुदबुदे के समान फूल जाता है। लाली और स्फीति, ये दोनों लक्षण रक्ताभिसरण के अवरोध जनित होते हैं। शिराओं मेंसे रक्त बाहर निर्बन्ध नहीं जा सकता। रक्तवाहिनियाँ रुधिर से भर जाती हैं। फिर रुधिर धमनियों में से भी शिराओं में खुली रीति से नहीं जा सकता। इससे नेत्र में अतिशय लाली आ जाती है। उक्त

अवरोध के हेतु से रक्तस्थ प्रवाही नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे टपक कर संगृहीत हो जाता है। फिर वह बुदबुदे के समान फूल जाता है।

७. *शुक्लमण्डल का बाष्पमय बनना*—स्वस्थ स्थिति में शुक्लमण्डल बिल्कुल चिकना और तेजस्वी होता है। इस रोग के आक्रमण से तेजी बहुत चली जाती है और जैसे कि उस पर बाष्प बन गई हो, ऐसा देखाव होता है। शुक्लमण्डल को चमकीला और पारदर्शक रखने के लिये रस का अभिसरण छूट से होना चाहिये। यह अभिसरण तभी संभवित है कि जब रक्ताभिसरण खुली रीति से होता हो, रुधिराभिसरण में अवरोध होने पर रक्ताभिसरण में भी अन्तराय आ जाता है। इस हेतु से शुक्लमण्डलके बाह्य आवरणके नीचे रस संगृहीत हो जाता है जिससे शुक्लमण्डल निस्तेज बन जाता है। रोगबल शिथिल होने और नेत्रान्तर दबाव का ह्रास होने पर शुक्लमण्डल मूल स्थिति में आ जाता है।

८. *जलमयरसके पूर्वखण्डकी लघुता होना*—आशुकारी अधिमन्थ में जलमयरस का पूर्वखण्ड स्वाभाविक हो, उसकी अपेक्षा छोटा हो जाता है। यदि रोग कुछ दिनों तक बना रहता है, तो वह खण्ड इतना छोटा हो जाता है कि शस्त्रक्रिया करने के लिये जिस शस्त्रको उसके भीतर प्रवेश कराया जाता है, उसके लिये रिक्तस्थान बिल्कुल नहीं मिलता।

उस खण्डके छोटे हो जानेके २ हेतु हैं। १. रक्ताभिसरण का अवरोध होनेसे तारामण्डल रक्तपूर्ण होकर पहलेकी अपेक्षा मोटा होजाता है जिससे वह विशेष स्थान रोक लेता है। २. नेत्रान्तर जल गोलकमें संगृहीत होनेसे, विशेषतः जलमयरसके पश्चिम खण्डमें संगृहीत होने से तारामण्डल आगे सरक जाता है। इस हेतुसे भी पूर्वखण्ड का स्थान रुद्ध होता है। इनके अतिरिक्त दृष्टिमणि भी रक्ताधिक्यसे कुछ स्फीत होजाती है, यह भी पूर्वखण्डके संकोच का हेतु है। अधिमन्थ रोगके निर्णय में जलमयरसका छोटा हो जाना, यह विशेष सहायक चिह्न है।

एवं धमनियों पर दबावके हेतुसे एल्ब्युमिन (शुभ्र प्रथिन) जैसा गाढ़ा द्रव्य जलमयरस में मिल जाता है, इस हेतु से तथा शुक्लमण्डलकी निस्तेजताके हेतुसे जलमयरसकी पारदर्शकता कम हो जाती है।

९. *कनीनिका में परिवर्तन*—इस आशुकारी व्याधि में कनीनिका न्यूनाधिक अंश में प्रसारित होही जाती है। इतना ही नहीं, इसपर प्रकाश डालने पर भी आकुंचित नहीं होती; अर्थात् कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिफलित क्रिया लगभग नष्ट हो जाती है। ऐसा होनेके २ हेतु हैं। १. तारामण्डल में रक्त संगृहीत होनेसे उसके भीतर रही हुई वातनाड़ियाँ और पेशी स्तम्भित

हो जाती हैं। २. महत्व का कारण यह है कि, नेत्रगत प्रवाहीका दबाव बढ़ जानेसे कनीनिका प्रसारित हो गई है। इसरिन डालने पर इसका संकोच होता है।

१०. तारामण्डलमें परिवर्तन—आशुकारी आक्रमणके प्रारम्भ में तारामण्डल का रंग मलिन हो जाता है। इसके आगेके हिस्से पर कुछ मैल लगाया हो, ऐसी मलिन तह हो जाती है। ऐसा होनेका मुख्य कारण यह है कि, तारामण्डल रक्तवाहिनियोंसे पूर्ण है। उनमें रक्तसंचालन क्रिया सरलतापूर्वक न होनेसे सब रक्तसंग्रहमय बन जाती हैं। इस हेतुसे कुछ स्राव भी होता है। जैसे-जैसे समय जाता है, वैसे-वैसे तारामण्डलके देखावमें अन्तर हो जाता है। फिर यूरोपियनों में राख जैसे रंगका और भारतीयों में अधिक कालापन युक्त राख जैसा बन जाता है; तथा कनीनिका का समग्र किनारा विशेष काला और मोटा भासता है। इस परिवर्त्तन के साथ तारामण्डल का पिछला पर्त सूखने लगता है। इस हेतुसे जब अँधेरे कमरे में पारप्रकाशक दीपक (Transilluminator) को नेत्रबाह्यपटल पर रखा जाता है, तब तारामण्डलमें लाल प्रकाश दीखता है।

तारामण्डल की रक्तवाहिनियाँ रक्तपूर्ण होनेसे तारामण्डल स्फीत होता है। एवं इसी हेतुसे अनेक बार कनीनिका संकुचित होती है। इससे रोगनिर्णय में विशेष कठिनाई होती है। किन्तु तारामण्डल का प्रदाह होने पर जिस तरह दृष्टिमणिके आवरण को चिपक जाता है, वैसा इसमें बहुधा नहीं होता।

११. कनीनिकाके रक्तप्रकाश में न्यूनता—इस आशुकारी रोग में अंधेरे कमरे में नेत्रदर्शकयन्त्रके दर्पण द्वारा प्रकाश डालकर परीक्षा करने पर कनीनिका की लाली आरोग्य स्थिति की अपेक्षा कम प्रतीत होती है, ऐसा होने में ४ कारण हैं। १. शुक्लमण्डल की निस्तेजता; २. जलमयरसके पूर्वखण्डमें गँदलापन; ३. दृष्टिमणि की स्फीति; ४. कांचरूपरसकी पारदर्शकता ह्रास। इन कारणों से कनीनिका का मध्य प्रदेश बहुत कम प्रकाशित होता है। योग्य उपचार करने या स्वयमेव व्याधिबल और नेत्रान्तर दबाव का ह्रास होने पर सब भागों की मलिनता दूर हो जाती है और नेत्रदर्पण स्वच्छ भासता है। यदि रोगबलका दमन न हुआ तो दृष्टिमणि और कांचरूपरसमें न्यूनाधिक अपारदर्शकता या मलिनता सदाके लिये रह जाती है।

१२. *दर्शननाड़ीके सिरेकी निम्न स्थिति*—चित्र १२५ देखें। यदि शुक्लमण्डल आदि अवयव स्वच्छ होंगे तथा नेत्रदर्शक यन्त्रसे नेत्रदर्पणकी स्पष्ट प्रतीति हो सकेगी, तो विदित हो सकेगा कि, दर्शननाड़ीका सिरा अधिक लाल बन गया है उसके ऊपरकी और नेत्रदर्पणकी धमनियोंमें स्पन्दन होता है। चिरकारी अधिमन्थमें जिस तरह दर्शननाड़ीके सिरे पर खड्डा भासता है, उस तरह आशुकारी प्रकारमें गड्ढा प्रतीत नहीं होता। कारण, गड्ढा पड़नेके लिये जितना समय नेत्रान्तर दबाव बढ़ा हुआ रहना चाहिये, उतना समय व्यतीत नहीं हुआ।

स्वस्थ नेत्रमें नेत्रदर्पणकी धमनियोंमें रक्त स्पन्दन प्रतीत नहीं होता; शिराओंमें कचित होता है। यदि स्पन्दन धमनियोंमें प्रतीत हो जाय, तो अधिमन्थ निर्णयमें अच्छी सहायता मिल जाती है।

१३. *नेत्रान्तर दबाव की वृद्धि*--प्रारम्भमें ही कहा गया है कि, सब प्रकारके अधिमन्थकी सम्प्राप्ति नेत्रके भीतर रहे हुए प्रवाहीका दबाव बढ़ने पर होती है। उनमेंसे आशुकारी प्रकारमें यह दबाव शीघ्र बढ़ता है, अतः वह इस रोगका विशेष लक्षण माना जाता है। इस दबाववृद्धिका बोध २ रीतिसे हो सकता है। १. अंगुली द्वारा और २. दबावमापक यन्त्र द्वारा। उँगलीसे दबावकी जाँच करने पर गोलक अधिक कठिन भासता है। यदि यह रोग एक ही नेत्रमें भासता हो और दूसरा नेत्र स्वस्थ हो, तो यह परीक्षा सरलतापूर्वक हो सकती है। कारण, स्वस्थ नेत्रका दबाव पीड़ित नेत्रकी अपेक्षा कम होता है। इससे अच्छा नेत्र कुछ नरम और अधिमन्थ वाला कठिन लगेगा। यह कठिनता कितनी है यह नेत्ररोगीकी अंगुलियों पर निर्भर है। इस कठिनताको अंगुली, सियोजके यन्त्र और मेकलिनके यन्त्रसे नापनेकी विधि परीक्षा प्रकरणमें विस्तारपूर्वक दी है। कभी-कभी यह कठिनता अत्यधिक बढ़ जाती है। हमने मेकलिनके यन्त्रसे १०० मिली० से अधिक देखी है, योग्य उपचार करने पर वह दबाव कम हो जाता है। रोगबल कम होगा, तो दबाव फिर नहीं बढ़ेगा। रोग शमन होने पर नेत्रान्तर दबाव स्वस्थ नेत्र जितना कम हो जायगा।

चिकित्सियोंको चाहिये कि सब लक्षण और चिह्नोंको अच्छी तरह लक्षमें रखें। इस रोगका प्रारम्भ अकस्मात् होता है। मध्य रात्रिको रोगी किसीने झटका मारा हो, उस तरह जाग जाता है और नेत्र फट जानेके समान वेदना होती है। किसी-किसीको वान्ति होकर वेदना दूर होती है; किन्तु थोड़े ही समयमें पुनः होने लगती है। सामान्यतः यह रोग एक नेत्रमें होता है; किन्तु किसी-किसीको दोनों नेत्रोंमें हो जाता है।

तत्काल नेत्रकी परीक्षा की जाय, तो भी उपर्युक्त लक्षण और चिह्न सब अवगत हो जाते हैं। नेत्र बन्द करा नीचे देखनेको कहें। फिर अंगुलीसे नेत्रको देखें तो कठिनता प्रतीत होती है।

कारण—इस रोगकी सम्प्राप्तिके कारण २ जाति के हैं। १. पूर्व प्रवर्त्तक (Predisposing); २. प्रकोपक (Exciting)।

इस रोगकी उत्पत्तिका सच्चा कारण अभीतक निश्चित नहीं हुआ। विद्वानोंकी ओरसे विविध कारणोंकी कल्पना हुई है। यह रोग किस तरह होता है, यह सूक्ष्मतापूर्वक विद्वानोंने समझाया है। एक कल्पना कितनेक काल तक सत्य मानी जाती है, फिर नई कल्पना निकलने पर पहलीका त्याग होता है। इस तरह कारणके सम्बन्धमें मनगढ़न्त कल्पनाएँ हुई हैं। फिर भी जो कुछ सामान्यतः समझाया गया है, उसका कुछ खयाल पाठकोंके समक्ष रखता हूँ।

अधिमन्थकी संप्राप्ति नेत्रान्तर दबाववृद्धि या भीतर संगृहीत प्रवाह के अधिक दबावसे होती है। जब प्रवाहकी नैसर्गिक योजनामें अन्तराय आता है, तब यह व्याधि उपस्थित होती है।

नेत्रकी कठिनता निरन्तर समान भावसे बनी रहे, इसलिये ईश्वरने सुन्दर योजना की है। जलमय रसके पश्चिम खण्डसे तारामण्डलके परिधि प्रान्तमें अवस्थित कितनेक छिद्रों द्वारा क्षार मिश्रित जल सतत जलमय-रसके पूर्व खण्डमें आता रहता है। एवं वही प्रवाही पश्चिम खण्डमें से कांचरूप रसके खण्डमें भी गति करता है। वह तन्तुमय समूहमें स्रवता है। इस स्रावकी न्यूनाधिकताका आधार देहस्थ धमनियों, विशेषतः तन्तुमय समूह और नेत्रमध्यपटलकी धमनियोंके भीतरके दबाव पर एवं नेत्रके भीतर संगृहीत प्रवाहीके दबाव पर रहा है। धमनियोंमें रक्तका दबाव कम हो, तो उक्त प्रवाहीका स्राव कम परिमाणमें होता है। एवं नेत्रगत प्रवाहीका स्राव कम परिमाणमें होता है। इसके विपरीत स्थिति हो, तो स्रावण क्रिया विशेष होती है।

एक ओर प्रवाही बनता है, दूसरी ओर निकलनेका मार्ग भी प्रस्तुत है। जलमय रसके पश्चिम खण्डमें से दृष्टिमणिके बन्धन द्वारा कांच-रूप रसके आवरणमें से नेत्रदर्पणकी रसवाहिनियों द्वारा बाहर निकल जाता है। एवं कितनाक प्रवाही उसी खण्डमें से कैशिकाओं द्वारा वापस रुधिरमें शोषित होजाता है। दूसरा मार्ग जलमय रसके पश्चिम खण्डमें से पूर्व खण्डमें और वहांसे शुक्लमण्डल, वाह्यपटल और तारामण्डलके संगम के पास अश्रुजलमार्ग (स्लेमकी-केनाल) द्वारा बाहर निकलनेका है।

कितनाक वहांसे भी कैशिकाओं द्वारा पुनः शोषित हो जाता है। इस तरह प्रवाही बननेके प्रबन्धके साथ अधिक संगृहीत होने वाले प्रवाहीको निकालने की योजना भी की गई है।

उक्त आय-व्ययको नियममें रखनेके लिये नेत्रान्तर दबावकी वृद्धि होती है। तब प्रवाहीकी उत्पत्तिका दमन और निकासकी वृद्धि हो, ऐसी योजना प्रतीत होती है। ये सब व्यवस्था होने पर अधिमन्थकी उत्पत्ति क्यों हो जाती है? यह प्रश्न उत्पन्न होता है। वर्तमानके निर्णय अनुसार निकलने वाला प्रवाही किसी कारण वश बन्द हो जाय या कम हो जाय, तब अधिमन्थकी संप्राप्ति होती है।

दूसरी ओर कई विद्वानोंका कथन है कि, केवल प्रवाहीके निष्कासन की न्यूनतामें ही अधिमन्थ नहीं होता। उत्पत्ति अधिक हो और निकास कम हो, तब संप्राप्ति हो सकेगी। इनमें से प्रथम कल्पना विशेष प्रमाणभूत मानी जाती है। नेत्रस्थ प्रवाही क्यों कम निकलता है या उत्पत्ति अधिक और निकास कम, ऐसा क्यों होता है, यह अभी तक अविदित है। फिर भी निम्न पूर्व प्रवर्तक और प्रकोपक हेतु मुख्यतः रोगोत्पादक क्रिया करते हैं, ऐसा लगभग सिद्ध हुआ है।

पूर्व प्रवर्तक कारण—यह अधिमन्थ रोग दीर्घ दृष्टि वालोंको विशेष परिमाणमें होता है। इसकी संप्राप्ति प्रायः ४०-४५ वर्ष की अवस्थाके पश्चात् होती है। आगे प्रकरण २८वें में समझाया जायगा कि, दीर्घ दृष्टि-वालोंका नेत्रगोलक स्वाभाविक कुछ छोटा होता है। इससे उसके उपाङ्गों को अधिक संकोचमें रहना पड़ता है। परिणाममें जिन भागोंमें प्रवाही बाहर निकलता है, वे भाग भी स्वाभाविक सकड़े ही होते हैं। इस स्थितिमें वृद्धावस्थाके हेतुसे वृद्धि होती है। इन भागोंको सकड़े बनानेमें सहायक ५ कारण हैं। १. तन्तुमय समूहका मोटा होना; २. दृष्टिमणि कठिन और आकारमें बड़ी होना; ३. बाह्यपटल अधिक कठिन और कम स्थितिस्थापक होना; ४. जलमयरसके पूर्व खण्डकी गहराईका कम होना, ५. नेत्रकी रक्तवाहिनियाँ रक्तपूर्ण होना।

१. तन्तुमय समूह का मोटा होना—दीर्घ दृष्टिवालों को देखने की क्रिया में, विशेषतः समीप के कार्य—लिखना-पढ़ना आदि में दृष्टि खींचती है। इससे तन्तुमय पेशीका संकोच विशेष बलपूर्वक होता है। जिस तरह व्यायाम करने वालों की मांसपेशियां कठिन और मोटी होती हैं, उस तरह तन्तुमय पेशीका अधिक उपयोग होने से वह मोटी बनती है। फिर चारों

और के अवयवों पर दबाव डालती है। परिणाममें नेत्रगत प्रवाही के निकलनेका मार्ग संकुचित होता है।

२. *दृष्टिमणि कठिन और कदमें बड़ी होना*—सामान्यतः दृष्टिमणि ३०-३५ वर्ष की आयु में कठिन और बड़ी होने लगती है, ४०-४५ वर्ष की आयु में अच्छी तरह कठिन होजाती है। दृष्टिमणि बाल्यावस्था में बिलकुल नरम होती है। फिर युवावस्था के बाद उत्तरोत्तर अधिक कठिन होती जाती है। साथमें स्थितिस्थापकता भी कम होती है। इससे प्रवाही निकलने के मार्ग में अवरोध होता है।

३. *नेत्रबाह्यपटल की कठिनता में वृद्धि और स्थितिस्थापकताका ह्रास*—वृद्धावस्था के परिणाम में होनेवाले परिवर्त्तनों में बाह्यपटल कठिन बनना और स्थितिस्थापकता कम होना, मुख्य हैं। उपर्युक्त दोनों कारण या अन्य किसी कारणसे जब नेत्रगत दबाव की वृद्धि होने लगे, तब उसका असर बाह्यपटल पर तत्काल होता है। युवावस्थामें तो बाह्यपटल नरम और स्थितिस्थापक होने से दबाव वृद्धि को सहन कर लेता है। इससे भीतर के भागों पर असर नहीं होता। वृद्धावस्था में इसके विपरीत होने से बढ़े हुए दबाव का असर तत्काल प्रतीत होता है।

४. *जलमयरसके पूर्वखण्ड की गहराई कम होना*—नेत्रगत प्रवाह दो मार्ग से बाहर निकलता है, उन मार्गों में कितनेक कारणों से अवरोध होता है। इनमें मुख्य कारण दृष्टिमणि की कठिनता, तन्तुमय पेशीका मोटा होना, तन्तुमय समूह में रक्त संगृहीत होना, ये हैं। रसवाहिनियों में अवरोध होने पर नेत्रस्थ प्रवाही बाहर नहीं जासकता। फिर उसका दबाव कांवरूपरस पर होने लगता है। यही दबाव दृष्टिमणि और तारामण्डल पर असर पहुँचा कर, इन दोनों उपाङ्गों को शुक्लमण्डल की ओर ढकेल देता है। इसी हेतुसे जलमयरसका पूर्वखण्ड सकड़ा होजाता है।

५. *नेत्रगत रक्तवाहिनियां रक्तपूर्ण होना*—उपर्युक्त कारणों के अतिरिक्त देहगत धमनियों में रक्तगत दबाव बढ़ता है। फिर इस हेतु से मध्यपटल और तन्तुमय समूह की धमनियों में दबाव वृद्धि होकर रक्त संगृहीत होता है। इससे वे अवयव स्वाभाविक की अपेक्षा मोटे होते हैं। परिणाम में नेत्रान्तर प्रवाही की उत्पत्ति बढ़ जाती है और इन मोटे अवयवोंके दबाव से बाहर निकलने के मार्ग से अन्तराय पहुँचता है। परिणाम में नेत्रान्तर दबाव बढ़ जाता है। मध्यपटल और तन्तुमय समूह की रक्तवाहिनियाँ, उनमें भी विशेषतः धमनियोंमें रक्तदबाव बढ़नेके मुख्य कारण निम्नानुसार हैं।

समस्त देह में रक्तदाब वृद्धि (Hypertension–High Blood pressure) के कारण—क्रोध, चिन्ता, मानसिक आघात, निद्रानाश और मलावरोध होने पर मलविसर्जन में अधिक बल लगाना आदि माने जाते हैं। कितनेक रोगियों में ज्वरावस्था बढ़ने पर नेत्रगत धमनियों में दबाव-वृद्धिका अनुभव हमें मिला है।

प्रकोपक कारण—उपर्युक्त वही स्थिति उपस्थित हो, उस समय किसी कारण से कनीनिका प्रसारित हो, तो अधिमन्थ होने की विशेष संभावना है। कनीनिका प्रसारित होने पर तारामण्डल की परिधि में रहे हुए छिद्र, जिनमें से जलमय रस पूर्वखण्ड में से रक्तवाहिनियों में जाता है, उनका अवरोध हो जाता है; तथा अग्र जलमार्ग सकड़ा होता है। इससे नेत्रगत दबाव बढ़ जाता है।

अनेक नेत्रवैद्योंको अनुभव होगा कि, वृद्ध व्यक्तियोंके नेत्रमें होमेट्रोपिन या एट्रोपिन जैसी औषध डालकर कनीनिका प्रसारित की हो, तो उनमें से कितनेकों पर तीक्ष्ण अधिमन्थका आक्रमण हो जाता है। मुख्य कारण यह है कि, उपर्युक्त चारों स्थिति गोलकमें उपस्थित थीं, केवल कनीनिका प्रसारणकी न्यूनता थी। वह एट्रोपिन या होमेट्रोपिन डालने पर शीघ्र पूरी होगई।

उपर्युक्त कारणोंके अतिरिक्त अति परिश्रम और सूर्यके तापमें अति भ्रमणसे भी नेत्रगत दबाव बढ़ जाता है।

क्रम—तीक्ष्ण अधिमन्थका आक्रमण ४-६ या ८ दिन तक चलकर फिर स्वयमेव या योग्य उपचारोंसे शमन हो जाता है। वेदना, लाली, शोथ आदि सब चिह्न शनैः-शनैः दूर हो जाते हैं। रोगीकी दृष्टि जो अति कम होगई थी, वह वापस आने लगती है। लगभग १-२ सप्ताहमें चौदह आने जितनी दृष्टि मिल जाती है। दो आने जितनी कसर रहती है। ऐसा अच्छा परिणाम अच्छे प्रारब्धवान् थोड़े मनुष्योंमें आता है। प्रायः एक आक्रमण शान्त होने पर कितनेक सप्ताह या महिनोंके पश्चात् उसी नेत्र पर पुनः आक्रमण होता है। साथ-साथ दूसरा नीरोगी नेत्र भी प्रभावित हो जाता है। दूसरे आक्रमणमें दृष्टि पहलेकी अपेक्षा बहुत कम हो जाती है। पुनः कुछ सप्ताह बाद तीसरा आक्रमण होता है। फिर जो दृष्टि शेष थी, वह भी चली जाती है। उस स्थितिको नेत्र पहुँचे, उसे पूर्ण अधिमन्थ (Absolute Glaucoma) कहते हैं। उस स्थितिमें बिलकुल दृष्टि नहीं होती। अंधकार-प्रकाशका भी बोध नहीं होता। कनीनिका

प्रसारित रहती है और प्रकाश प्रतिक्रियासे बिल्कुल रहित होती है। कनीनिका पर प्रकाश डालने पर कुछ भी संकोच नहीं होता।

यदि यह स्थिति शीघ्र प्राप्त न हो तो एक आक्रमण होनेके पश्चात् नेत्रमें न्यूनाधिक वेदना बनी रहती है, लाली भी होती है। दृष्टि शनैः-शनैः कम होती जाती है और अन्तमें बन्द हो जाती है।

रोगनिर्णय—आशुकारी अधिमन्थका निर्णय कुशल नेत्रवैद्यके लिये अति सरल है। क्योंकि, उपर्युक्त लक्षण और चिह्न अन्य रोगमें प्रतीत नहीं होते। इस रोगके चिह्न इतने स्पष्ट हैं कि, भूल होनेकी संभावना नहीं है। फिर भी कभी कठिनाई उपस्थित होती है। अधिमन्थका आक्रमण होने पर रोगी किसी नेत्रवैद्यके पास गया हो और उसने इसरिन की बूँद डाली हो, जिससे कनीनिका संकुचित हुई हो या उससे कम प्रसारित हुई हो, साथमें इसरिनसे नेत्रकी कठिनता भी कम हुई हो, तो सामान्य अनुभवीको और कभी विशेष अनुभवीको भी निर्णय करना दुष्कर हो जाता है। यदि ऐसे समय नेत्रवैद्य रोगीसे प्रश्न करे, तो सच्ची स्थिति अवगत हो जाती है; अथवा इसरिन डालनेको १ दिन निकल गया हो तो भी प्रायः उसका असर निकल जाता है और सच्चा स्वरूप प्रकाशित हो जाता है।

यदि अधिमन्थके साथ तारामण्डल प्रदाह भी हो तो उसके निर्णय में अधिक कठिनाई होती है। ऐसे रोगियोंमें कनीनिका प्रसारित होनेके बदलेमें कुछ न कुछ अंशमें आकुंचित रहती है। रोगविनिर्णयका आधार नेत्रकी कठिनता होना, जलमय रसके पूर्वखण्डकी गहराई कम होना, तारामण्डलका आगे सरक आना और प्रतीत हो सके ऐसी नेत्रदर्पणकी स्थिति पर है। इसरिनके प्रयोगसे भी कितनेक समय अच्छी सहायता मिल जाती है। यदि नेत्रमें अधिमन्थ हो और इसरिनकी बूँद डालें, तो कठिनतामें अन्तर नहीं पड़ता। अधिमन्थजनित कठिनता बढ़ी हो, तो ही इसरिनसे कठिनतावृद्धिका ह्रास होता है।

क्वचित् शुक्लमण्डलके सूक्ष्म क्षतोंके हेतुसे प्रबल शिरदर्द होता है। यदि सूक्ष्म अवलोकन न किया जाय, क्षत को न देखा जाय, तो अधिमन्थ का भ्रम हो जाता है। क्षत का अवलोकन, कनीनिका की स्थिति और नेत्र की कठिनता पर लक्ष्य दिया जाय तो भूल नहीं हो सकेगी।

परिणाम—आक्रमण के प्रारम्भ में दृष्टि कम हो जाती है। इतना ही नहीं, कितनेक रोगियों को नेत्रमें से जैसे प्रकाश निकलता हो, ऐसा भास होता है।

उपचार—आशुकारी अधिमन्थका रोगी नेत्रवैद्य के पास आने पर तुरन्त बिछौने पर लेटा देवें। नेत्रमें १ प्रतिशत इसरिन की बूँद आध-आध घण्टे पर डालने लगें। कनीनिका ठीक आकुंचित बनने पर ३-३ घण्टे पर फिर ६-६ घण्टे पर बूँद डालें। रोगीको अति वेदना हो, तो मोर्फिया सल्फेट ¼ ग्रेन का त्वचा के नीचे अन्तःक्षेपण करें। नेत्रपर बर्फ की थैली रखें। रोगी को बर्फ अनुकूल न रहे, तो बोरिक धावन या अफीम की डोंडियों से सेक करें। जिस ओरके नेत्रमें पीड़ा हो उस ओरकी कनपटीमें ६ जलौका लगावें। या कृत्रिम जलौकासे रुधिर निकाल डालें। रोगीको पीनेके लिये मेगनेसिया सल्फेट आधसे १ औंस जलमें पिघलाकर देवें। इससे ४ घण्टेमें जलके सदृश पतले २-३ दस्त होकर नेत्रदबाव कम हो जायगा।

अथवा नेत्रमें एनेथेइनकी बूँद डाल ५ मिनटके पश्चात् रुईके छोटे टुकड़ेको एपिनेफ्रिन (Epinephrine) या एड्रिनेलिन क्लोराइडके १:१००० के प्रवाहीमें भिगो रोगीके नेत्रके ऊपरके पलक और गोलकके बीचमें प्रवेश करावें और ५ मिनट रहने देवें।

उपर्युक्त उपचारोंसे लाभ हो, वेदना का ह्रास हो, नेत्रकी लाली कम हो जाय, तो वेही चलने देवें। ४८ घण्टेमें कुछ भी लाभ न हो तो विशुद्ध नमक (Sodium Chloride) १५० ग्रेन और बाष्प जल १ औंस मिला, फिल्टर पेपरसे छान, १० मिनट तक उबाल, शीतलकर उसमेंसे ५ क्यूबिक सेन्टीमीटर (c. c.) का रोगीकी शिरामें अन्तःक्षेपण करें। इस प्रवाही को एक साथ प्रवेश न करावें; किन्तु अति शनैः-शनैः डालें। यह प्रवाही रक्तमें मिलनेपर समस्त देहका रक्तसंचाप और साथमें नेत्रान्तर दबाव भी कम हो जाता है। इसरिनसे भी जो कनीनिका आकुंचित न हुई हो वह अब संकुचित होने लगती है।

कितनेक नेत्रवैद्य एड्रिनेलिन ३ से ४ बूँद का नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण कराते हैं। इससे भी कितनेक रोगियों को अच्छा लाभ पहुँचता है।

जिस नेत्रमें अधिमन्थज पीड़ा हो, उस नेत्रपर हलके हाथसे लगभग २ मिनट तक दिनमें ३-४ बार मसलने पर कुछ शान्ति मिलती है। उपर्युक्त सब उपचार करने पर यदि रोगबल का ह्रास न हो, तो बिना शस्त्र चिकित्सा नेत्रका रक्षण नहीं हो सकेगा। रोग प्रारम्भ होने से ७२ घण्टे तक उपर्युक्त उपचार करते रहें। लाभ न हो तो अवश्य शस्त्रोपचार करना चाहिये।

शस्त्रोपचार—इसमें मुख्य ३ विभाग हैं। १. जलमयरसके पूर्वखण्ड को दिनमें दो-एक बार खाली करना; २. बाह्यपटल की पिछले पर्तमें छेद करना; ३. तारामण्डल में छेद करना।

१. जलमय रस निकालना—पूर्व खण्डमें शस्त्रको प्रवेश करा प्रवाहीको निकाल देने पर रोगीको कुछ शान्ति मिलती है; किन्तु जब जलमय रस पुनः वापस भर जाता है, तब वेदना आदि चिह्न फिरसे प्रकाशित होते हैं। उस समय उसे दूसरी बार खाली करना चाहिये। कितनेक रोगियोंमें इसरिन कार्य नहीं कर सकता था। वह इस शस्त्रक्रियाके पश्चात् बहुधा शीघ्र लाभ दर्शाने लगता है। किन्तु यह शस्त्रक्रिया प्रायः थोड़े समयके लिये ही लाभ दर्शाती है।

२. बाह्यपटलके पिछले भागमें छिद्र (Posterior Sclerotomy)—इस शस्त्रक्रियाका उपयोग एकही उद्देश्यसे किया जाता है। वह यह है कि, जब जलमयरसका पूर्वखण्ड अत्यधिक छोटा हो जानेसे तारामण्डलमें छिद्र करने के लिये उसमें शस्त्र प्रवेश करानेका मार्ग ही न हो, तो बाह्य पटलके पिछले भागमें शुक्लखण्डसे लगभग १२ मिलि० दूरी पर ग्राफेकी छुरिकाको प्रवेश करा कुछ काचरूप रसमें जाने देवें। इस क्रियासे जो पूर्वखण्ड शस्त्रके प्रवेश होने योग्य चौड़ा नहीं था वह कुछ मोटा हो जाता है। फिर मुख्य शस्त्रक्रिया (तारामण्डलमें छिद्र) हो सकेगी। अतः इस बाह्यपटलके छिद्रका असर भी केवल कुछ समयके लिये ही है।

३. तारामण्डलमें छिद्र (Iridectomy)—आशुकारी अधिमन्थमें इस शस्त्रक्रियासे अत्यधिक लाभ पहुँच जाता है। १८५७ ई० में वोनग्राफे (Von Graefe) नामक जर्मन वैद्यने सिद्ध किया कि, इस व्याधिमें तारामण्डलमें छिद्र किया जाय तो यह रोग सदाके लिये दूर हो जाता है। तभीसे अनेक नेत्रवैद्य इस शस्त्रक्रियाका प्रयोग कराते रहते हैं, उससे ९८ प्रतिशत को अच्छा लाभ पहुँचता है। १९१० ई० तक यह शस्त्रक्रिया आशुकारी और चिरकारी, दोनों प्रकारों पर व्यवहृत होती थी; किन्तु अनेक नेत्रवैद्यों को ऐसा अनुभव मिला कि, आशुकारीमें तारामण्डल छिद्र से जैसा अच्छा लाभ होता है, वैसा चिरकारीमें स्थिर लाभ नहीं मिलता। इससे उसके लिये नये प्रयोग होने लगे हैं। उसका विचार चिरकारी अधिमन्थ चिकित्सामें आगे किया जायगा।

उपर्युक्त वर्णन परसे पाठकोंके लक्ष्यमें यह आया होगा कि, १८५७ ई० के पहले अधिमन्थ रोगी, जिनको इसरिन जैसी कनीनिका आकुंचक औषधियोंके प्रयोगसे लाभ नहीं होता था, वे सदाके लिये अन्ध

बन जाते थे। उस समय तक अन्य उपाय नहीं था। तारामण्डलमें छिद्र करने की शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण २९वें में किया जायगा।

आ. चिरकारी अधिमन्थ।

सामान्य नीलामोतिया—नेत्रका व्यथारहित जीर्ण नजला।

(Chronic, Simple or Non-Congestive Glaucoma)

इस रोगके मुख्य दो लक्षण हैं। वेदना का अभाव और शनैः-शनैः दृष्टिमान्द्य होना। अपने देशवासियोंमें और वैद्योंमें यह मान्यता दृढ़ होगई है कि यह रोग तब हो सकेगा कि, शिरमें और नेत्रमें पीड़ा हो। किन्तु वह सामान्य अधिमन्थके लिये सत्य नहीं है। सामान्य अधिमन्थमें पीड़ा बिल्कुल नहीं होती। यदि होती है तो, अति कम और क्वचित् ही होती है, जिससे रोगीका लक्ष्य उस ओर नहीं जाता। ऐसे कितनेक कारणों से इस रोगका वर्णन कुछ अधिक विस्तारसे किया जायगा।

लक्षण और चिह्न—मुख्य चिह्न एकही है कि, शनैः-शनैः दृष्टिमांद्य की वृद्धि। कुछ समय तक रोगी को संदेह ही रहता है कि कदाच दृष्टि कम हो जायगी। दृष्टि कम होने का भास होने पर वैद्य, डॉक्टर या नेत्रवैद्यकी सलाह लेता है। रोगीकी आयु लगभग ५० वर्षकी होती है, उस समय दृष्टिमणिके रंगमें कुछ अन्तर होता है, जिससे नेत्ररोगमे अपरिचित वैद्य या डाक्टर मोतियाबिन्दु होनेका अभिप्राय देते हैं। यदि रोगीकी अन्धेरे कमरेमें परीक्षा की जाय, तो दृष्टिमणि मलिन रंगकी भासती है। रोगी इस मत पर विश्वास कर लेता है कि, दृष्टि बन्द होने पर मोतियाबिन्दु पक जायगा। फिर नेत्रवैद्यके पास जाने पर भी कुछ भी लाभ नहीं पहुँच सकता। इस तरह भ्रांतिवश अनेक रोगियों की आँख चली जाती है।

सद्भाग्यसे यह रोग दोनों नेत्रोंमें उपस्थित न हुआ हो और दूसरी आंखमें थोड़ी बहुत दृष्टि हो, तब तक उपचार प्रारम्भ करने पर कार्य लायक दृष्टि रह जाती है।

रोगके प्रारम्भमें दूरसे प्रतीत होने वाली वस्तु अस्पष्ट दीखती है, फिर शनैः-शनैः समीपकी वस्तु देखनेमें भी बाधा पहुँचती है। इस स्थितिके बीच-बीचमें सुधार भी होता रहता है। दूर देखने में बाधा पहुँचे, इसके बाद दीर्घकाल तक लिखने-पढ़नेमें कम कठिनाई पहुँचती है। फिर दृष्टि धीरे-धीरे मंद होकर अन्तमें बिल्कुल बन्द हो जाती है। फिर दीपक-प्रकाश भी नहीं दीखता।

गोलककी कठिनता—गोलककी कठिनता अधिक नहीं बढ़ती। फिर भी

कुछ तो बढ़ ही जाती है। कभी-कभी कितनेक रोगियोंमें बिल्कुल नहीं बढ़ती। अतः इस रोगके अन्य लक्षण हों, और गोलककी कठिनता न हो, तो भी इस रोगका निर्णय कर सकते हैं।

इस रोगमें दबाव अति शनैः-शनैः बढ़ता है, जिससे नेत्रके भीतर की वातवाहिनियां एवं दूसरे भाग इस दबावके हेतुसे सहनशील बन जाते हैं। एवं बाह्यपटलकी स्थितिस्थापकता कुछ अंशमें रही हो, उस हेतुसे दबाव होने पर कुछ-कुछ खिंचता जाता है, जिससे वातनाड़ियोंपर दबाव का असर कम होता है। इन दोनों हेतुसे पीड़ा नहीं होती।

कनीनिका—कनीनिका थोड़ी विस्तृत होती है, रोग जीर्ण होने पर तो अधिक प्रसारित हो ही जाती है। कितनेक रोगियोंमें, विशेषतः प्रारम्भावस्थामें कनीनिका स्वस्थ-सी भासती है। प्रायः उसकी संकोचन-प्रसारण शक्तिमें शिथिलता आती है। रोग जब अच्छी तरह बढ़ जाता है, तब वह क्रिया लगभग नष्ट हो जाती है।

शुक्लमण्डल—प्रायः स्वच्छ होता है। दिन के किसी समय पर कभी कुछ निस्तेजता विदित होती है।

जलमय रसका पूर्वखण्ड—इसकी गहराई कम हो जाती है।

दृष्टिमणि—आयु के हेतुसे रंग बदलता है। इसके अतिरिक्त अन्तर नहीं भासता; किन्तु रोग अच्छी तरह बढ़ जाने पर अधिमन्थके उपद्रव रूप कांचबिन्दु की उत्पत्ति होती है। इसका रंग सामान्य कांचबिन्दु की अपेक्षा प्रायः भिन्न रहता है, सामान्य कांचबिन्दु में प्रायः श्वेताभ या किञ्चित् मलिन बण होता है। इस प्रकारमें नीलाभ या पीताभ कांचबिन्दु आता है।

दृष्टिमणि की पारदर्शकता में न्यूनतावाली स्थिति उसके पोषण में प्रतिबन्ध होने पर होती है। इस हेतु से दृष्टिमणि अपारदर्शक होजाती है; किन्तु यह परिवर्तन इस चिरकारी रोग में अति दीर्घ काल में होता है।

दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र से परीक्षा करने पर क्षेत्रमर्यादा संकुचित भासती है। प्रारम्भ में अन्य प्रदेश बृहत् और अर्द्धचन्द्राकार होता है। अर्द्धचन्द्राकार प्रकृतिका अन्तर्गोलपना मध्य प्रदेश या बिन्दु की ओर होता है। इसके अतिरिक्त अधिमन्थ के प्रारम्भ में जब अन्य चिह्न अस्पष्ट होते हैं, तब रोगनिर्णय में जेल्म के पर्दे या स्कोटोमीटर से परीक्षा करने पर अच्छी सहायता मिल जाती है। इन यन्त्रों की उपयोग विधि सामान्य नेत्रडाक्टरों के लिये कठिन है। इसका संक्षिप्त वर्णन नेत्रपरीक्षा प्रकरण में लिखा गया है।

दृष्टिमर्यादाका संकोच नाक की ओर अर्थात् भीतर की ओर अधिक होता है। नेत्रदर्शक यन्त्र से नेत्रपरीक्षा करने पर दर्शननाड़ीका सिरा पिछली ओर दबा हुआ दीखता है। उस समय उसका देखाव, स्वस्थ नेत्रके भीतरका देखाव तथा इसमें होनेवाला भेद निम्न परीक्षा पर से स्पष्ट हो सकेगा। नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा विधि ४थे प्रकरणमें विस्तार से दी है। फिर भी सम्बन्ध वाला भाग यहाँ संक्षेप में दर्शाते हैं।

रोगीको अंधेरे कमरेमें एक स्टूल या कुर्सीपर बैठावें। नेत्रवैद्य रोगीके सामने कुछ अधिक ऊँचाई वाले स्टूल या कुर्सी पर बैठें। रोगीके शिर और लगभग अच्छा प्रकाश देने वाला दीपक रखें। फिर १८ इञ्चकी दूरी परसे नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा रोगी की जिस आंख की परीक्षा करना हो, उसकी कनीनिका पर प्रकाश डालें। इससे वह लाल दीखेगी। यदि बहिर्गोल कांचमें से रोगीके नेत्रके ऊपर प्रकाश पड़े उस तरह उससे १ इञ्च की दूरी पर कांच रखा जायगा, तो नेत्रके भीतरका भाग प्रतीत होगा। होमेट्रोपिन डाल कनीनिका प्रसारित की हो तो भीतरका भाग अधिक स्पष्ट दीखेगा। कभी भीतरका भाग स्पष्ट नहीं होता, तब यन्त्रके दर्पणके बीचमें रहे हुए छिद्रके पीछे +१ या +१·५ का कांच रखना पड़ता है।

पहले धमनी दृष्टिगोचर होगी। रोगी की दहिनी आंख की जांच करनेके लिये नेत्रवैद्यके दहिने कान की ओर तथा बांयी आंखके लिये नेत्रवैद्यके बांये कानकी ओर दृष्टि रखनेको कहें। उस समय कुछ सफेद प्रकाश गिरेगा। सूक्ष्मतासे देखने पर दर्शननाड़ीका श्वेत सिरा स्पष्ट गोलाकार लगभग बड़े चने की दाल जितने आकारका प्रतीत होगा। [illegible] मे एक धमनी निकलनेके साथ उसमें से २-३ या ४ शाखा निकलते [illegible] दीखेंगी। कभी एक शाखा भीतर की ओर अर्थात् नाक की ओर जा[illegible] दीखेंगी। प्रत्येक धमनीके साथ एक-एक शिरा होगी। जो अधिक [illegible] और अधिक स्पष्ट हो, वह शिरा; तथा कुछ निस्तेज और सूक्ष्म हो [illegible] धमनी। ये रक्तवाहिनियां दर्शननाड़ीके सिरे परसे ठीक समान रूपसे नि[illegible]लती हैं। किन्तु इस रोगमें दर्शननाड़ीका सिरा दबा हो तब ये रक्तवाहिनियां दर्शननाड़ीके सिरेके परिधिके भागके पास जैसे कि डूब जाती हों, और टूटती हों तथा पुनः प्रारम्भ होती हों, ऐसा देखाव होता है। विशेषमें नेत्रदर्शक यन्त्रके पीछे १-२ कांच फिरायँगे तो नेत्रदर्पण में से निकलने वाली रक्त वाहिनियां कुछ कम स्पष्ट होंगी और दर्शननाड़ीके सिरेपरसे निकलनेवाली रक्तवाहिनियां विशेष स्पष्ट भासेंगी।

कांच फिरानेपर नेत्रदर्पणपर जानेवाली रक्तवाहिनियां भी अधिक तर

स्पष्ट होगी। बहिर्गोल कांचको कुछ चलायँगे, तो प्रतीत होगा कि दबे हुए भाग की एवं नेत्रदर्पण की धमनियां जिस ओर बहिर्गोल कांचको ले जायँगे, उस दिशामें चलती हुई भासेगी। जैसे-जैसे दर्शननाड़ीका सिरा अधिक समय तक दबा हुआ रहता है, वैसे-वैसे उसमें नाड़ियोंका क्षय होता जाता है। उस क्षय के हेतु से आरोग्य स्थिति की अपेक्षा इस रोग पीड़िता-वस्था में अधिक श्वेताभ प्रतीत होता है। कितनेक समय नेत्रदर्पणके भीतर धमनियोंमें रक्तके तरंग नाड़ी तरंगके समान चलते हुए भी दीखते हैं। बहिर्गोल कांचकी सहायताके बिना केवल नेत्रदर्शक यन्त्रसे सीधा ही नेत्रदर्पण को देखेंगे, तो उक्त बात को आधार मिलेगा। दर्शननाड़ीके सिरे की परिधिके पाससे निकलती हुई रक्तवाहिनियों को देखनेके लिये जिस कांचकी आवश्यकता होगी, उसकी अपेक्षा भिन्न कांचकी आवश्यकता नेत्रदर्शक यन्त्रके पीछे लगानेके लिये रहेगी।

कारण—इस रोगका कारण आशुकारी अधिमन्थके वर्णनमें विस्तार-पूर्वक समझाया है। अन्तर केवल इतना ही है कि, आशुकारीमें परिवर्तन थोड़े ही समयमें तुरन्त होता है और इस चिरकारी व्याधिमें उतने ही परिवर्तनको महिनों या वर्ष लग जाते हैं, जिससे वेदना, लाली आदि चिह्न देखने में नहीं आते। इसके अतिरिक्त दोनों में कारण और क्रिया समान हैं।

रोग निर्णय—आशुकारीकी अपेक्षा इस चिरकारी व्याधिका निदान करना अधिक कठिन है। उसमें भी विशेषतः प्रारम्भके रोगियोंमें अतिशय विकट है। एवं प्रारम्भमें ही निर्णय हो सके तो रोगीकी दृष्टि पूर्ण नहीं तो ९०–९५ प्रतिशत बचा सकते हैं। अतः रोगनिर्णयकी भी अति आव-श्यकता है। इस हेतुसे इसका विवेचन विस्तारपूर्वक करते हैं। इसके निर्णयके लिये निम्न लक्षण और चिह्नोंको स्मरणमें रखना चाहिये, तथा आगे लिखी विधि से परीक्षाओं तथा कसौटी द्वारा निर्णय कर लेना चाहिये :—

१. रोगीकी दृष्टि शनैः-शनैः कम होती है। प्रातःकाल कम भासती है।
२. नेत्रमें सतत पीड़ा नहीं रहती, किन्तु कुछ समय तक अन्धकारमें रहने, सिनेमा देखने और प्रातःकाल उठने पर कुछ शिरदर्द होता है।
३. यह रोग प्रायः दोनों नेत्रोंमें आता है; किन्तु एक साथ नहीं। पहले एक आंखमें फिर दूसरी आंखमें।
४. नेत्रमें लाली या शोथ नहीं होता।
५. शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण लगभग नीरोगी दीखते हैं।

६. बाह्यपटलमें महत्त्वका परिवर्तन नहीं होता।

७. जलमय रसका पूर्वखण्ड कुछ अंशमें संकुचित (उथला--Shallow) होता है।

८. कनीनिका प्रसारित होती है और प्रायः लम्बा गोल होती है। यह लम्बाई खड़ी पंक्तिमें होती है। इसकी प्रकाश प्रतिक्रिया प्रारम्भमें शिथिल और फिर नष्ट होजाती है।

९. तारामण्डलकी अपक्रान्ति और पिछले हिस्सेमें नूतन रक्तवाहिनियोंकी उत्पत्ति होती है।

१०. दृष्टिमणिमें किसी-किसी स्थान पर अपारदर्शकता आती है।

११. कांचरूप रसमें विशेष परिवर्त्तन नहीं होता।

उक्त सब लक्षण और चिह्न केवल नेत्रसे प्रतीत हो सकते हैं। शेष यन्त्रों द्वारा विदित होते हैं।

१२. *स्लिट लैम्प और शुक्लमण्डलदर्शक यन्त्र*—इन यन्त्रोंसे परीक्षा द्वारा शुक्लमण्डलके पिछले हिस्से, जलमय रसके पूर्वखण्ड तथा तारामण्डल में काले दाने प्रतीत होते हैं। तारामण्डलमें नूतन रक्तवाहिनियां तथा दृष्टिमणिमें इतस्ततः अपारदर्शकता भासती है।

१३. कोणदर्शक यन्त्र (Gonioscope)—इस यन्त्रसे परीक्षा करने पर तारामण्डलका परिधि प्रान्त शुक्लमण्डलकी परिधिके भीतरके भागके साथ चिपका हुआ दीखता है।

१४. *नेत्रदर्शकयन्त्र* (Ophthalmoscope)—इससे जांच करने पर दर्शन-नाड़ीका सिरा दबा हुआ तथा परिधिमें से निकलने वाली रक्तवाहिनियां टूटती हुई भासती हैं। नेत्रगोलक पर उँगली दबाने पर नेत्रदर्पण की धमनियोंमें स्पन्दन अवगत होता है। दर्शननाड़ीके सिराके चारों ओरके भागका रंग बदल जाता है।

१५. *दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र* (Perimeter)—इससे परीक्षा करने पर नाक की ओरका दृष्टिक्षेत्र आकुंचित भासता है। यह आकुंचन आकार और रंग, दोनों प्रकारोंमें होता है। इस परीक्षाके लिये ५ मि० मी० की तख्तीको दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्रमें व्यवस्थित करें। इसके अतिरिक्त समस्त दृष्टिक्षेत्र भी दूसरी आंखकी तुलनामें आकुंचित प्रतीत होता है।

१६. *जेरमका पर्दा और इलियटका स्कोटोमीटर* (Bjerrum's Screen and Elliots Scotometer) से परीक्षा करने पर अन्ध प्रदेशकी वृद्धि और अन्ध बिन्दु भी बढ़ा हुआ दीखता है।

१७. *नेत्रान्तर दबावमापक यन्त्र* (Tonometer)—से परीक्षा करने पर दबाव बढ़ा हुआ विदित होता है। यदि दिन के भिन्न-भिन्न समय में यह परीक्षा की जाय तो सुबह को दबाव कुछ अधिक अवगत होगा।

उक्त यन्त्रों के अतिरिक्त निम्न प्रकोपक कसौटी (Provocative tests) द्वारा परीक्षा की जाती है।

१८. रोगी को नेत्रवैद्य की सम्हाल में रखकर ४-४ घण्टे पर नेत्रान्तर दबाव नापें और यादी करें। इस तरह २४ घण्टे तक करें। फिर रोगी को १ घण्टे तक अन्धकार वाले कमरेमें बैठा रखें और उसी कमरे में बहुत कम प्रकाश में नेत्रान्तर दबाव नापें। अधिमन्थ का प्रारम्भ हुआ होगा, तो आधे रोगियोंमें दबाव १५ से ४० मि. मी. बढ़ जाता है।

१९. सुबह नेत्रान्तर दबवा नापें। फिर एक लोटा जल पी लेने को कहें। १० मिनट के पश्चात् पुनः दबाव नापें। चिरकारी अधिमन्थ का अंश होगा, तो दबाव ८ से १५ मि. मी. बढ़ जायगा।

२०. ऊपर कहे जल के स्थान पर १-२ कॅप काफी पिलावें। फिर नापने पर १५ से २५ मि. मी. वृद्धि हो जायगी।

२१. नेत्र में युफथेलमिन हाइड्रोक्लोराइड की बूँद डाल, कनीनिका प्रसारित करें। ३-४ घण्टे में दबाववृद्धि न हो तो रोगी के नेत्र में अधिमन्थका प्रारम्भ नहीं माना जायगा।

२२. नेत्र में एपीनेफ्रिन १:१००० की १ बूँद डालें। चिरकारी अधिमन्थ होने पर कनीनिका प्रसारित हो जायगी।

उक्त प्रयोगों द्वारा परीक्षा करने पर निःसंदेह निर्णय हो जायगा। यदि किसी चिकित्सक के पास साधनों के अभाव से पूर्ण निर्णय न हो सके तो किसी अनुभवी नेत्रवैद्य के पास रोगी को भेज देना चाहिये।

उपचार—इस रोग की चिकित्सा के २ प्रकार हैं। १. औषध चिकित्सा; २. शस्त्र चिकित्सा। कितनेक वर्षों पहले यूरोप के नेत्रवैद्यों का ऐसा मत था कि, इस चिरकारी अधिमन्थकी हो सके उतनी जल्दी शस्त्र चिकित्सा कर लेनी चाहिये। अन्यथा दृष्टि नष्ट हो जायगी। वर्तमान में यूरोप और अमेरिका के कितनेक नेत्रवैद्यों का विचार पलट गया है। जब तक औषधोपचार से दृष्टि और नेत्रान्तर दबाव सुधर सके या अंकुश

में रह सके, तब तक वही प्रयोग करना चाहिये। यूरोप-अमेरिका के लोग सुशिक्षित होनेसे नेत्रमें अधिमन्थके किञ्चित् लक्षण उपस्थित होने या दृष्टिमें किञ्चित् न्यूनता होने पर तुरन्त अच्छे नेत्रवैद्यके पास पहुँच जाते हैं। इससे उस देशमें औषधोपचार पर विश्वास करना योग्य माना जायगा। भारत की स्थिति इससे विपरीत है। कुछ दृष्टि ह्रास हो जाय, तब तक जनता इसकी परवाह भी नहीं करती। इनमें ग्रामवासी और छोटे शहर के लोग तो जब तक एक आँख से दीखता हो, तब तक अच्छे नेत्रवैद्य की सलाह भी नहीं लेते। क्वचित् छोटे शहरों के सामान्य वैद्य डाक्टर को आँख दिखाते हैं, तो वह अज्ञानतावश कह देता है कि "कांचबिन्दु आ रहा है, पकने पर निकल सकेगा, तब तक कुछ भी नहीं करना चाहिये।" रोगी इस विश्वास पर रहकर नेत्रसे वंचित हो जाता है। ऐसे अनेक रोगी हमारे पास आ गये हैं, जिनका रोग असाध्य स्थिति में पहुँच चुका हो। उसमें से एक दृष्टान्त पाठकों के ध्यान में आनेके लिये देता हूँ।

एक छोटे शहरके आफिसरको यह रोग हुआ था। पहले एक नेत्रमें दृष्टि मंद होती गई। बार-बार परिचित सामान्य डाक्टरको दिखाते थे। डाक्टर साहिब मोतियाबिन्दु आनेका और पके तब उतरवानेको कहते थे। कच्चे मोतियाबिन्दु पर अच्छे डाक्टर भी कुछ नहीं कर सकेंगे। इस बात पर विश्वास रखा और अपने आफिसरीके मदमें अनुभवी नेत्रवैद्यकी सलाह नहीं ली। फिर सरकारी डाक्टरसे वार्त्तालाप की। उनने कहा कि मेरे दवाखानेमें पधारें तो मैं ठीक जांच कर सकूं। किन्तु बड़ा ऑफिसर होने से उनने दवाखानेमें चलना स्वीकार नहीं किया। तब बिना साधन सामान्य रूपसे देखकर कह दिया कि, मोतियाबिन्दु आरहा है। कुछ समयके पश्चात् एक नेत्रकी दृष्टि बिल्कुल चली गई और दूसरे नेत्रमें दृष्टि मंद होने लगी थी। उस समय किसी नेत्ररोगके जाननेवाले डाक्टरकी सलाह ली। फिर वे बम्बई आये और मुझे आंख दिखाई। परीक्षा करने पर विदित हुआ कि, एक आंख पूर्ण अधिमन्थसे असाध्य होगई है। उसके लिये कोई उपाय ही नहीं हो सकेगा। दूसरी आंख अति रोगग्रस्त होगई है। तुरन्त शस्त्रोपचार करानेकी सलाह दी। उनने अन्य नेत्रवैद्योंकी भी सलाह ली, उन्योंने भी वही उत्तर दिया। पश्चात् हमारे पास शस्त्रचिकित्सा कराली, जिससे एक आंख उनके जीवन पर्यन्त रह गई।

यदि बड़े शहरवासी सुबोध व्यक्ति प्रारम्भावस्थामें ही तुरन्त उप-

चारार्थ आजायँ, तो ऐसे रोगियों पर औषधोपचार करने पर लाभ पहुँचता है; किन्तु बारम्बार सम्हालते रहना चाहिये।

औषधोपचार—इस चिरकारी रोगके लिये ४ औषधियाँ विशेष प्रयोजित होती हैं। पाइलोकार्पिन, इसरिन, इपिनेफ्रिन और लिवोग्लोकोसन (Levo Glau Cosan), इनमें से पाइलोकार्पिनको प्रथम स्थान दिया जाता है।

रोगीकी दृष्टिमर्यादा और नेत्रान्तर दबावकी यादी करें। फिर पाइलोकार्पिन नाइट्रेट (Pilocarpine Nitrate) ½ से ¾ प्रतिशतके प्रवाहीकी बूंद दिनमें ४ बार सुबह उठने पर, दोपहरको १२ बजे, शामको ५ बजे और रात्रिको १० बजे डालनेको कहें। दूसरे दिन रोगीके नेत्रान्तर दबावको पुनः नापें। दबावमें ह्रास हुआ हो, तो वही औषध चालू रखें। चौथे दिन पुनः नेत्रान्तर दबाव नापे। दबाव अधिक न घटा हो, तो १ से २ प्रतिशत पाइलोकार्पिन प्रयोजित करें। ५ वें दिन पुनः दबाव नापें। अच्छी तरह कम हुआ हो, तो ४ दिन तक वही प्रयोग करें। दबाव ह्रास न हुआ तो ४ प्रतिशतका पाइलोकार्पिन व्यवहृत करें। एवं नेत्रवैद्य अपने हाथसे १ प्रतिशत इसरिनकी बूँद भी दिनमें १–२ बार डालें। दूसरे दिन यदि नेत्रान्तर दबाव कम हुआ हो, तो ४ दिन तक वही प्रयोग (पाइलोकार्पिन और इसरिन) डालते रहें। पश्चात् दिनमें ४ बारके स्थान पर केवल २ बार डालें। १ सप्ताहके पश्चात् एक ही बार रात्रिको सोनेके पहले डालते रहें।

यदि पाइलोकार्पिनके प्रयोगसे लाभ न हुआ हो, तो रोगीको टेबल पर लिटाकर नेत्रमें एनेथेइनकी बूँद डालें। ५ मिनटके पश्चात् एपीनेफ्रिन (Epinephrine) १=१००० के प्रवाहीमें रुईके छोटे टुकड़ेको भिगो रोगीके ऊपरके पलकके नीचे गोलकके ऊपर रहे उस तरह प्रवेश करावें। ३–४ मिनट रखें, फिर निकाल लें। इस उपायसे प्रायः दबाव कम होजाता है।

जिस तरह एपीनेफ्रिन दबावको कम करती है उसी तरह लिवोग्लोकोसन (जर्मन औषध) से भी दबावका ह्रास होता है। इन दोनों औषधियोंके प्रयोगमें एक ही भय रहा है कि इन दोनोंके प्रयोगसे कनीनिका प्रसारित होती है, जिससे नेत्रान्तर प्रवाहीके बाहर निकलनेके मार्ग आकुंचित होते हैं। इस हेतुसे प्रवाहीके बाहर निकलनेमें अन्तराय होकर कभी फिर नेत्रमें पीड़ा उत्पन्न होजाती है। कदाच ऐसा हो जाय तो इसरिन के बूँद डालने पर उपद्रव शमन हो जाता है।

सूचना—शारीरिक और मानसिक उग्रतासे मुक्त रहें। सामान्य

लिखना-पढ़ना कर सकते हैं। निद्रा न आती हो तो निद्राप्रद औषध लेने में आपत्ति नहीं है। मलावरोध न रहने देवें। शौच जाने पर अधिक बल न लगावें। शराबका व्यसन हो तो छोड़ देवें या हो सके उतना कम कर देवें।

उपर्युक्त पथ्य पालनसह उपचार किया जाय, तो महिनों तक दृष्टि कायम रहती है। जब तक दृष्टिमें विकृति न हो और नेत्रान्तर-दबाव सियोट्जके नेत्रान्तर दबावमापक यन्त्रसे २० तक और मेकलिनके यन्त्रसे ३५ तक रहे तब तक ये उपचार चालू रखें। साथ साथ १५-१५ दिन पर नेत्रके भीतरके भागकी परीक्षा नेत्रदर्शक यन्त्रसे करते रहें। यदि दर्शननाड़ीके सिरेमें कुछ विशेष परिवर्त्तन प्रतीत न हो तो अधिक तीव्र उपचारकी आवश्यकता न मानें। उक्त उपचार रोगकी प्रारम्भावस्थामें ही उपयोगी होते हैं; इस बातको न भूलें। रोग बढ़ जाने पर इससे सफलता नहीं मिलती।

उपर्युक्त उपचार करने पर भी नेत्रान्तर दबाव न घटे, दृष्टि कम होने लगे और दर्शननाड़ीके सिरेमें सफेदाई दीखे या रक्तवाहिनियाँ अधिक मुड़ती हुई भासें तो बिल्कुल समयको व्यर्थ न करें। शस्त्र-चिकित्साकी सलाह देवें।

यदि रोग बढ़ जानेके पश्चात् रोगी आया हो तो शस्त्रोपचारका ही आरम्भ करें। औषधोपचार के प्रयोग पर आधार न रखें।

शस्त्रचिकित्सा—आशुकारी अधिमन्थमें निम्न शस्त्रक्रिया मुख्य हैं :—

१. तारामण्डलका छेदन (Iridectomy)
२. तन्तुमयसमूहका विच्छेद (Cyclodialysis)
३. बाह्यपटलमें छेद (Sclerotomy)
   अ. डी विकरकी शस्त्रक्रिया (De. Wecker's Anterior Sclerotomy)
   आ. हर्बर्टकी शस्त्रक्रिया (Herbert's Anterior Sclerotomy)
४. इलियटकी रीतिसे बाह्यपटलमें गोल छिद्र (Elliot's Trephining)
५. लाग्राञ्जकी रीतिसे बाह्यपटलमें छेदन (Lagrange's Sclerotomy)
६. फर्गसकी क्रिया—बाह्यपटलमें इलियटकी रीतिसे गोल छिद्रके साथ तन्तुमयसमूहका विच्छेद (Fergus's Combined Trephining with Cyclodialysis)
७. होल्थकी वेधन-क्रिया (Holth's Punch operation)

८. बाह्यपटलमें छिद्र करके तारामण्डलके सिरेको फँसाना (Iridostasis, Iridencleisis)

इन सब शस्त्रक्रियाओंकी रीतिका वर्णन आगे प्रकरण २९वें में किया जायगा। यहाँ पर क्रियाका स्वरूप समझमें आनेके लिये संक्षिप्त परिचय देता हूँ।

१. *तारामण्डलका छेदन*—इस शस्त्रक्रियामें तारामण्डलमें से एक टुकड़ा काट लिया जाता है। यदि परिधि प्रान्त ठीक कटा हो तो किये हुए छिद्र द्वारा नेत्रान्तर प्रवाही गोलकसे बाहर ठीक जा सकता है, जिससे अधिमन्थ रोगमें सुधार होता है।

२. *तन्तुमयसमूहका विच्छेद*—शुक्लमण्डलके ऊपरके भागमें बाह्यपटल में छेद कर उस मार्गसे एक विशेष यन्त्र द्वारा करीब ⅔ भागमें तन्तुमय समूहको बाह्यपटलसे मुक्त किया जाता है, जिससे नेत्रान्तर प्रवाहीको जानेका मार्ग पिछली ओर होता है। फिर मुक्त तन्तुमयसमूहमें जलमय रसका स्राव करानेकी क्रिया नष्ट होती है। परिणाममें प्रवाहीकी उत्पत्ति ही उतनी कम हो जाती है। इस तरह अधिमन्थके शमनमें सहायता मिल जाती है।

३. *बाह्यपटलमें छेद*—

अ. *डी विकरकी रीति*—इस प्रकारमें बाह्यपटलके ऊपरके भागमें छेद किया जाता है। वह छेद पूरे भाग तक नहीं जाता, बाह्यपटलका निम्न कुछ भाग बिना कटा रख दिया जाता है।

आ. *हर्बर्ट की रीति*—इस प्रकार में 'बाह्यपटलके ऊपरके भाग में '⌐' आकार का काट किया जाता है।

४. *इलियट की रीतिसे बाह्यपटल में गोल छिद्र*—इस क्रिया में नेत्र-श्लेष्मावरण के टुकड़े को काट, उसके नीचे बाह्यपटलमें बिल्कुल शुक्ल-मण्डलके किनारेके पास १॥-२ मि० मी० का गोल छिद्र वेधनी (Trephine) द्वारा किया जाता है। फिर कटा हुआ श्लेष्मावरण ऊपर ढक दिया जाता है। उस टुकड़ेके नीचे गोलकके भीतर का अधिक प्रवाही बाहर निकलकर नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे जाता है और वहाँ से, उसका शोषण होजाता है।

५. *लाप्राञ्जकी रीतिसे बाह्यपटलमें छेद*—इस क्रियामें, बाह्यपटलके ऊपरके हिस्से में काट किया जाता है। फिर कटे हुए नेत्रबाह्यपटल में से कैंची द्वारा छोटा टुकड़ा काट लिया जाता है। उस पर श्लेष्मावरणको ढक दिया जाता है।

६. *फर्गसकी रीति*—इस रीतिमें नेत्रबाह्यपटलमें एक गोल छिद्र किया जाता है। उस छिद्रमें से तन्तुमय समूह का विच्छेद कर उस छिद्रको नेत्र-श्लेष्मावरण से आच्छादित करते हैं।

७. *होल्थकी शस्त्रक्रिया*--इस प्रकार में श्लेष्मावरण का ढक्कन काट निम्न बाह्यपटल में त्रिकोणाकार शस्त्र से छेद करते हैं। उसमें से D आकार का टुकड़ा विशेष प्रकार की कैंची द्वारा काट लिया जाता है। फिर उसमें से तारामण्डलका छेदन कर नेत्रश्लेष्मावरणके ढक्कन को ढक देते हैं।

८. *नेत्रबाह्यपटलके छेद में तारामण्डलके सिरे को स्थिर करना*--इस क्रिया में बाह्यपटलमें छेद किया जाता है। उस छेद में तारामण्डलके सिरे को खींचकर वहाँ ही फँसाया जाता है। इस तरह फँसा हुआ तारामण्डल का टुकड़ा कुछ समय के पश्चात् मुरझा जाता है और जलमय रसके लिये वहन मार्ग बन जाता है।

इनके अतिरिक्त कितनेक नेत्रवैद्य नेत्रश्लेष्मावरण का ढक्कन काट, बाह्यपटलमें छेद कर उसमें रेशम का डोरा डालकर रहने देते हैं।

उपर्युक्त शस्त्रक्रिया का फल (लाभ-हानि):--

१. *तारामण्डल का छेदन*--इस रोग में यह क्रिया विशेष सफल नहीं है। घाव भर जानेके पश्चात् पुनः नेत्रान्तर दबाव बढ़ने लगता है और दृष्टि मन्द होने लगती है। अतः यह शस्त्रक्रिया निष्फल मानी जायगी।

२. *तन्तुमयसमूह का विच्छेद*--यह क्रिया अमेरिका में विशेष पसन्द हुई है। इसमें लाभ यह है कि, खुला घाव नहीं रहता, नेत्र बिल्कुल नैसर्गिक स्थितिमें आजाता है। हानि यह है कि, एक समय शस्त्रक्रिया कराने पर बहुत थोड़े रोगी सदा के लिये रोगमुक्त होते हैं। इसमे २-३ बार शस्त्र-क्रिया करनी पड़ती है। फिर भी किसी-किसी रोगी को रोग रह जाता है।

३. *बाह्य पटलमें छेद*—इसमें दो प्रकार हैं। वर्तमान में दोनों का त्याग हुआ है। क्योंकि, इससे संतोषप्रद लाभ नहीं मिलता।

४. *इलियट की रीति से बाह्यपटलमें गोल छेद*—इस क्रिया का आरम्भ १९११ ई० में हुआ है और यह अति प्रचलित हुई है। इसके प्रचार के मुख्य दो हेतु थे। १९१० ई० तक तारामण्डलके छेदनक अतिरिक्त अन्य शस्त्रक्रिया इस रोगके लिये नहीं थी और उससे संतोषप्रद परिणाम नहीं आता था, जिससे इस नूतन क्रिया की अति सराहना की। दूसरा हेतु यह था कि, इस शस्त्रक्रियाके सचालक कर्नल इलियट अति उत्साही, आग्रही और परिश्रमी होनेसे उनने पत्रों द्वारा तथा व्याख्यान द्वारा अमेरिका तक प्रचार किया। फिर अनेक नेत्रवैद्यों को अनुभव हुआ कि

कितनाक समय जाने पर शस्त्रक्रिया की हुई आँखमें प्रदाह होता है और फिर अनेकों का नेत्र चला जाता है। इससे अब इस क्रिया का भी परित्याग हुआ है। हम भी १९११ ई० से १९४२ ई० तक इस रोगमें यही शस्त्रक्रिया करते थे। किन्तु विक्रियाका अनुभव होने से अब होल्थकी शस्त्रक्रिया करते हैं और उससे अच्छा सन्तोष मिला है।

५. *लापान्ज की रीति*—यह क्रिया अनेकों पर की जाती है। इससे परिणाम अच्छा आता है।

६. *फर्गस की रीति*—इस रीतिमें हानि यह है कि नेत्रान्तर दबाव आवश्यकतासे अधिक घट जाता है। बाह्यपटलमें सदा के लिये छिद्र रह जाता है। इससे अनेकोंमें तारामण्डल और तन्तुसमूह का प्रदाह हो जाता है। इसका प्रचार बहुत कम है।

७. *होल्थकी वेध क्रिया*—यह विधि हमें अधिक सन्तोषप्रद प्रतीत होती है। इस क्रियामें नेत्रको अधिक हानि नहीं होती। शस्त्रक्रियाके पश्चात् लगभग ४ दिनमें नेत्र ठीक हो जाता है। परिणाम भी सामान्यतः अच्छा ही आता है। एवं इस शस्त्रक्रियाके पश्चात् प्रदाह नहीं होता।

७. *बाह्यपटलके छेदमें तारामण्डल के सिरोंको फँसाना*—नेत्रवैद्य यह क्रिया वर्तमानमें विशेष रूपसे करते हैं। कितनेकों को इससे अच्छा सन्तोष मिला है। हमारा अनुभव इस क्रियाके लिये अधिक नहीं है। हम इसका उपयोग चिरकारी अधिमन्थ रोगीके लिये नहीं करते।

साध्यासाध्यता—रोगी प्रारम्भावस्था में आया हो तो औषधोपचार या शस्त्रोपचारसे दृष्टिका संरक्षण हो सकता है। केवल ५ प्रतिशत रोगियोंके नेत्रोंमें दुष्ट अधिमन्थ होता है। वह किसी भी उपचार से नहीं बच सकता। शेष रोगियोंको दृष्टिकी आशा दे सकते हैं।

यदि रोग थोड़ा बहुत बढ़ा हो तो उस समय जितनी दृष्टि हो उतनी का रक्षण शस्त्रक्रियासे हो सकता है। बहुधा दृष्टि नहीं बढ़ती और नहीं घटती। यदि रोग बहुत बढ़ गया हो, तो शस्त्रक्रिया करने पर भी बहुत थोड़े रोगियों की दृष्टि बचती है। शेष रोगियों को शस्त्रक्रिया करानेसे कथनमात्रका आश्वासन मिलता है।

यदि रोगी की दृष्टि १–२ फुट दूरसे उंगलियाँ गिनने योग्य रही हो और दर्शननाड़ीके सिरेका क्षय हो गया हो तो शस्त्रक्रिया का कुछ भी उपयोग नहीं होता। पूर्ण अधिमन्थ बिल्कुल असाध्य है। उसके लिये कोई चिकित्सा नहीं है।

२. अनुसंगी अधिमन्थ।

(*Secondary Glaucoma*)

नेत्रके किसी भागकी व्याधि के परिणाम में नेत्रान्तर दबाववृद्धि होकर अधिमन्थ के लक्षण प्रकाशित हों, उसे अनुषंगी अधिमन्थ कहते हैं।

कारण—१. शुक्लमण्डल के रोग; २. तारामण्डलके रोग; ३. तन्तुमयसमूह और मध्यपटल का प्रदाह; ४. दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता; ५. दृष्टिमणि का रोग; ६. नेत्र के भीतर के अर्बुद; ७. नेत्रपर मूढ़मार; ८. जन्मलब्ध विकृति; ९. नेत्रदर्पण की मध्य शिरा में रक्तसंग्रह; १०. नेत्रगृह की शिराओं में अवरोध। इन कारणों से उपद्रव रूप अधिमन्थ की प्राप्ति होती है।

१. शुक्लमण्डल के रोग—इसके विशेष २ रोग हैं, जिनमें अधिमन्थ रूप उपद्रव उपस्थित होता है। अ. शुक्लमण्डल के गर्भभागका प्रदाह (Interstitial Keratitis); आ. शुक्लमण्डल के क्षत।

इनमें से गर्भ भागके प्रदाह से कितनीक बार नेत्रान्तर प्रवाही बाहर जाने के मार्ग का अवरोध होता है। फिर दबाव बढ़कर अधिमन्थकी संप्राप्ति होती है। इसी तरह क्षत होने पर यदि जलमयरस के पूर्व खण्डमें श्रोतागु और गाढ़ा पदार्थ उत्पन्न हो जाय, तो उससे प्रवाही क जानेका मार्ग बन्द हो जाता है। परिणाम में कुछ समय के लिये दबाव बढ़ जाता है। यदि क्षत फूटता है और तारामण्डल का सिरा उसमें फँस जाता है तो वह आगे आ जाता है। फिर प्रवाही जानेका मार्ग आकुंचित होता है। इससे दबाव बढ़ कर अधिमन्थ हो जाता है।

२. तारामण्डलके रोग—तारामण्डल प्रदाह के रोगियों में से ५ प्रतिशत में पर्द की सूजन से नेत्रान्तर प्रवाही का बाहर जाने का मार्ग संकरा या निरुद्ध होता है। फिर दबाव बढ़कर अधिमन्थ के लक्षण प्रकाशित होते हैं। बहुधा इस प्रकार का रोग एड्रिनेलिनका फोहा ऊपर के पलक के नीचे रखने से शान्त हो जाता है।

जब तारामण्डल के प्रदाह के हेतु से कनीनिका का समस्त किनारा दृष्टिमणि के आवरण को चिपक जाता है, तब पश्चिम खण्डमेंसे पूर्वखण्ड में आने वाले प्रवाही का मार्ग रुद्ध हो जाता है। फिर दबाव बढ़कर अधिमन्थ लक्षण प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार का रोग प्रायः एट्रोपिन के प्रयोग

से शमन हो जाता है। यदि ऐसा न हो तो तारामण्डल का छेदन करना चाहिये।

३. तन्तुमय समूह और मध्यपटल प्रदाह—यह प्रदाह दीर्घकाल पर्यन्त रहजाने पर रक्तवाहिनियाँ रक्तपूर्ण रहती हैं, फिर जलमय रसका गोलक के बाहर जाने का मार्ग सँकड़ा होता है। इस तरह मध्यपटल का तीव्र प्रदाह होने पर भी वही स्थिति होती है। फिर उपद्रव रूप अधिमन्थ हो जाता है।

४. दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता, स्फीति और आयतन वृद्धि—इन तीनों स्थिति में अधिमन्थ की उत्पत्ति हो जाती है। दृष्टिमणि की स्थानभ्रष्टता जन्म से हो या व्यथाजनित हो, अथवा नीम हकीमों की कांचबिन्दु की शास्त्रक्रियासे या वृद्धावस्थासे हो, इन सबमें अधिमन्थ उपस्थित होसकता है। इस स्थिति का एक ही उपाय है कि, स्थानभ्रष्ट दृष्टिमणि को निकाल लेना। यदि दृष्टिमणि कांचरूपरस में गहरा चला गया हो, तो उसे निकालना अशक्य है। ऐसे समय पर तन्तुमय समूह का विच्छेद करें। उससे इच्छित परिणाम न आने पर होल्थ की शस्त्र क्रिया करें।

५. दृष्टिमणि की स्थिति—छोटे बालक या युवा व्यक्ति में जब कांचबिन्दु के आवरण का भेदन किया जाता है, तब कांचबिन्दु फूल जाता है। यदि यह परिवर्तन अधिक परिमाण में हो या अति शीघ्र हो तो आशुकारी अधिमन्थ के सब लक्षण उत्पन्न होते हैं। ऐसी स्थिति में कांचबिन्दु के फूले हुए गर्भ भाग को शुक्लमण्डल में छेदन करके बाहर निकाल लेवें। इससे अधिमन्थ शमन हो जायगा। ऐसी स्थिति चोट लगने पर दृष्टिमणि के आवरण के फट जाने से भी होती है। उसके लिये भी उपाय ऊपर लिखे अनुसार करना चाहिये।

यहाँ पर एक स्थिति का वर्णन कुछ विस्तारसे करने की आवश्यकता है, ऐसे अनेक रोगी हमारे अनुभव में आये हैं। यह स्थिति वृद्धावस्थामें कांचबिन्दु की पक्वावस्थामें होती है। उस समय दृष्टिमणि बहुत फूल जाती है। फिर आशुकारी अधिमन्थ के सब लक्षण और चिह्न अवगत होते हैं कांचबिन्दु पकने पर निकलायेंगे, इस आशामें रोगी दिन निकालता है। ऐसे समय अकस्मात् रात्रिको नेत्र और मस्तिष्क में शूल चलने लगता है, नेत्र लाल हो जाता है और जो थोड़ासा दीखता हो, वह भी तुरन्त बन्द हो जाता है। रोगी घबराकर किसी नेत्रवैद्यके पास जाता है। रोगी केवल अन्धकार या प्रकाश के अतिरिक्त कुछ नहीं देख सकता। पलक पर कुछ शोथ होता है, शुक्लमण्डलके चारों ओर लाली होती है। जलमय रसका पूर्वखण्ड बिल्कुल छोटा हो जाता है। शुक्लमण्डल में

कुछ निस्तेजता आ जाती है। कनीनिका प्रसारित होती है और प्रकाश डालने पर आकुंचित नहीं होती। कांचबिन्दु का रंग मलिन या बिल्कुल श्वेत भासता है। इस स्थिति परसे अनुभवी नेत्रवैद्य तत्काल जान लेता है कि, कांचबिन्दु फूल जाने से उपद्रवरूप अधिमन्थ हुआ है।

सच्ची स्थिति का बोध हो जाने पर रोगी की वेदना का ह्रास कराने और पुनः दृष्टि प्राप्त करानेके लिये एक ही मार्ग है कि स्फीत कांचबिन्दु को निकाल लेना। इस स्थितिके उपचारकी पृथक्-पृथक् दो विधि हैं। कितनेक नेत्रवैद्य पहले तारामण्डल में छिद्र करते हैं और १५ दिन बाद कांचबिन्दु को निकाल लेते हैं। अन्य कतिपय नेत्रवैद्य उसी समय कांचबिन्दु को निकाल लेते हैं। हम ऐसे प्रसंग पर एक दिनका भी विलम्ब किये बिना तुरन्त ही कांचबिन्दु को निकाल देते हैं। हमारे अनुभव अनुसार इस उपचार से अनेक रोगियों की वेदना तत्काल शान्त हो गई है। एवं ८० प्रतिशत को दृष्टि अच्छी सी पुनः प्राप्त हो गई है। जो नेत्रवैद्य पहले तारामण्डल में छिद्र करते हैं, उनके रोगियों को वेदना अनेक दिनों तक भोगनी पड़ती है। इतना ही नहीं, दृष्टि सुधरने का समय भी कम हो जाता है।

यदि वृद्धावस्था में होनेवाला कांचबिन्दु बहुत बड़ा हो जाय तो भी उपद्रवरूप अधिमन्थ हो जाता है। उसके लिये भी कांचबिन्दु को तुरन्त निकाल देना चाहिये।

६. *नेत्रके भीतर अर्बुद*—नेत्र के भीतर अर्बुद या ग्रन्थियाँ होती हैं। पहले कहे अनुसार यह ग्रन्थियां नेत्रमध्यपटल, तारामण्डल और नेत्रदर्पणमें उत्पन्न होती हैं। जब यह ग्रन्थियाँ बढ़ती हैं, तब नेत्र के भीतर का दबाव बढ़ता है। फिर अधिमन्थ के चिह्न उपस्थित होते हैं। यह अधिमन्थ अनुषंगी है, इसपर उपचार सफल नहीं हो सकता। यदि अर्बुद शमन हो तो ही अधिमन्थ दूर हो सकता है।

७. *नेत्रमें घाव न हो ऐसी चोट या मूढ़ मार*—ऐसे आघात से जलमय रसके पूर्वखण्ड में रक्त भरा रहता है। वह रक्त स्लेम के जलमार्ग में से निकल नहीं सकता। इससे नेत्रान्तर दबाव बढ़कर अनुषंगी अधिमन्थ होता है। उसी तरह नेत्रमध्यपटलमेंसे कांचरूप रसमें रुधिरस्राव हो जाय, तो भी वैसी ही स्थिति उत्पन्न होती है।

८. *जन्मलब्ध स्थिति*—ऐसी २ विकृति मुख्य हैं। १. लघुनेत्र (Microphthalmus); और २. तारामण्डल का अभाव। लघुनेत्र में गोलक इतना छोटा होता है कि, पहलेसे ही जलमार्ग छोटा होता है,

उसमें किसी भी कारणवश आकुंचन बढ़ जाय तो अनुषंगी अधिमन्थ उपस्थित हो जाता है। इस तरह तारामण्डल का अभाव होनेपर जलमार्ग बहुत छोटा होता है। फिर अधिमन्थ की संप्राप्ति हो जाती है।

९. *नेत्रदर्पण की मध्यशिरा में रक्त संग्रह*—इस स्थिति का विशेष वर्णन अगले १९वें प्रकरण में किया जायगा। संक्षेपमें, रुधिर को बाहर जाने का मार्ग रुक जाता है। इससे एक ओर सब भाग रक्तपूर्ण बनकर मोटे हो जाते हैं और फिर उसी हेतु से जलमार्ग आकुंचित होता है। दूसरी ओर तन्तुमय समूह तथा मध्यपटलको अधिक रक्त मिलनेसे जलमयस्र का स्राव बढ़ जाता है। परिणाममें अनुषंगी अधिमन्थ हो जाता है।

इस प्रकारका अधिमन्थ अतिशय तीव्र होनेसे रोगीको भयङ्कर पीड़ा होती है। दृष्टि बिल्कुल चली जाती है। इस स्थितिमें नेत्रको निकाल देनेके अतिरिक्त अन्य कोई उपचार वेदना शमनके लिये सहायक नहीं होता। वर्त्तमानमें कुछ वर्षोंसे गहराईमें क्ष किरण लगाये जाते हैं। यदि यह उपाय प्रारम्भसे ही किया जाय तो कितनेक रोगियोंके नेत्र बच जाते हैं।

१०. *नेत्रगृहकी शिराओंमें अवरोध*—इस स्थितिकी सम्प्राप्तिके मुख्य २ हेतु हैं। १. नेत्रगृह ग्रन्थिः २. नेत्रगृहकी शिराओंकी वृद्धि। इन दोनों हेतुओंसे शिरा फूल जाती हैं और अनुषङ्गी अधिमन्थ उपस्थित होता है। प्रायः इसरिनकी बूंदसे नेत्रान्तर दबाव कम होकर लक्षण निवृत्त होजाते हैं।

३. बाल अधिमन्थ—नयनजलोदर।

(*Hydrophthalmos—Buphophthalmos*)

यह रोग बहुधा शिशु और बालकोंको होता है। ⅔ भाग तो जन्मसे ही या एक वर्षकी आयुके भीतर ही होता है। शेष ⅓ दश वर्षकी आयुके पहले प्रतीत होता है। रोग प्रायः एक नेत्रमें होता है। कितने ही बच्चोंको पहले एक आँखमें और फिर दूसरा आँखमें भी हो जाता है। इस रोगके विशेष लक्षण नहीं हैं। रोगीको वेदना भी नहीं होती, जिससे प्रायः रोग अति बढ़ जाने पर ही नेत्रवैद्यको दिखाया जाता है।

लक्षण—प्रारम्भमें वेदना, या लाली आदि कुछ भी नहीं होते। बालक अबोध होनेसे दृष्टि घटनेका ख्याल भी नहीं आ सकता। इससे प्रारम्भमें लक्षण लगभग नहीं होते ऐसा कहा जाता है।

चिह्न—रोगीका नेत्र देखने पर शुक्लमण्डल बड़ा और खिंचा हुआ

भासता है। सामान्यतः वह ८–१० मि. मी. के बदलेमें १८–२० मि. मी. का बन जाता है। बाह्यपटल खिंचकर पतला हो जाता है। जब रोग अति आगे बढ़ता है, तब मध्य पटलका रंग बाह्यपटलमें से दीखता है। कितनेक रोगियोंमें शुक्लमण्डल किसी स्थानमें कुछ अंशमें अपारदर्शक हो जाता है। यह अपारदर्शकता पट्टीदार (Striated) होती है, जिससे शुक्लमण्डल की पिछली ओर खड़ी पट्टी भासती है। ऐसा होनेका कारण डेसमट वृतिमें उत्पन्न चीरा है। शुक्लमण्डलस्थ सूक्ष्मनाड़ी तन्तु भी अति खिंच जानेसे चेतनाहीन हो जाते हैं, जिससे शुक्लमण्डलको शलाका लगाने पर रोगी को स्पर्श बोध नहीं होता। जब रोग अति बढ़ जाता है, तब कितनेक समय बाह्यपटल फट जाता है। जलमय रसका पूर्वखण्ड बड़ा हो जाता है और जैसे-जैसे रोग बढ़ता जाय वैसे-वैसे खण्ड भी बड़ा होता जाता है। दृष्टिमणि पर पहले से ही दबाव होने से उसका विकास नहीं होता, जिससे वह छोटा ही रह जाता है। इस हेतु से कभी-कभी तारामण्डलका कम्प दीखता है। कनीनिका प्रारम्भ में सामान्य चौड़ी होती है; किन्तु रोग बढ़ने पर वह लम्ब गोल हो जाती है। प्रकाश प्रतिक्रिया प्रारम्भ में ठीक होती है; किन्तु रोग बढ़ने पर उसमें भी न्यूनता आजाती है। प्रारम्भमें दर्शननाड़ी का सिरा दबा हुआ नहीं भासता। कारण, बाह्यपटल स्थिति-स्थापक होने से नेत्रान्तर दबावके साथ-साथ बढ़ा होता जाता है, जिससे दर्शननाड़ी के सिरे पर विशेष असर नहीं पहुँचता। जब रोग अधिक बढ़ जाता है, तब दर्शननाड़ीके सिरे पर गड्ढा भासता है। इस विकार से समग्र नेत्र ह्रस्व दृष्टियुक्त हो जाता है।

दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्रसे देखने पर दृष्टिक्षेत्र अतिशय आकुंचित भासता है। रोगी अबोध शिशु होने पर यह परीक्षा अति कठिनाई से होती है; या नहीं हो सकती।

नेत्रान्तर दबाव अच्छी तरह बढ़ जाता है। प्रारम्भमें वृद्धि सामान्य होती है; किन्तु रोग बढ़ने पर दबाव अति बढ़ा हुआ दीखता है।

कारण—इस रोगके कारण का ज्ञान अति अल्प है। यह निश्चित है कि, जिन बालकों को यह रोग होता है, उनका अग्र जलमार्ग (Canal of Schlemm) अतिशय कम विकसित पाया गया है, जिससे नेत्रान्तर प्रवाही गोलकके बाहर सरलतापूर्वक नहीं निकल सकता। दूसरा कारण यह है कि, गर्भावस्थामें या उसके पश्चात् किसी भी कारणसे नेत्रके गहरे भागमें प्रदाह हो जाय, तो भी अग्रजलमार्ग में स्थितिस्थापक गुण का ह्रास कराने वाला पदार्थ निर्मित हो जाता है, परिणाममें वह मार्ग लगभग रुद्ध

हो जाता है। उक्त दोनों हेतुओं से नेत्रान्तर प्रवाही बाहर नहीं निकल सकता; या बहुत कम निकलता है। फिर नेत्रान्तर दबाव बढ़ जाता है।

सामान्यतः २० वर्ष की आयु तक बाह्यपटल स्थितिस्थापक और मृदु होता है। इससे गोलकके भीतर दबाव बढ़ने पर समस्त गोलकका कद बढ़ने लगता है। एक रोगी हमने देखा था, उसे शीतला निकलने के पश्चात् एक नेत्रकी ऐसी स्थिति हो गई थी। उसी तरह रोमान्तिकासे भी ऐसा होने की संभावना है।

उपचार—प्रारम्भमें इसरिन की बूँदसे रोग को काबूमें रख सकते हैं। यदि रोग युवावस्थाकी प्राप्ति तक वशमें रह सके, तो नेत्र को बचा सकते हैं। किन्तु ऐसा अति कम रोगियों में होता है। यदि औषधोपचारसे सफलता न मिले तो तन्तुमयसमूहका विच्छेद, इलियटकी रीतिसे बाह्य-पटलमें छिद्र और होल्थकी शस्त्रक्रिया का प्रयोग किया जाता है। इन क्रियाओंसे कितनेकों को अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

अन्तिम २-३ वर्षोंसे अमेरिकामें अश्रुजलमार्गके छेद (Goniotomy) का प्रयोग प्रारम्भ हुआ है। उससे अच्छा परिणाम आनेका अमेरिकनों का लेख है। इस शस्त्रक्रियाके लिये नेत्र पर प्रकाश डालने के लिये एक विशेष बहिर्गोल कांच का उपयोग होता है। उस कांचसे अश्रुजलमार्गको प्रकाशित कर उसमें सूक्ष्म शस्त्रसे छेद किया जाता है। इससे वह मार्ग खुल जाता है। अभी तक भारतमें यह शस्त्रक्रिया नहीं होती। इसका मुख्य कारण यह है कि; महायुद्धके हेतुसे नूतन यन्त्र और शस्त्र यूरोप-अमेरिकासे नहीं आसकते थे। समीप के भविष्यमें ऐसा साधन आकर उक्त शस्त्रक्रिया होने लगेगी।

उन्नीसवां प्रकरण ।

नेत्रदर्पणके रोग ।

(Diseases of the Retina)

नेत्रदर्पण के रोगों का वर्गीकरण:—

१. नेत्रदर्पण के रुधिराभिसरण में उत्पन्न व्याधियाँ ।

अ. रक्तवृद्धि—Hyperaemia of Retina.

आ. रक्तह्रास—Anaemia of Retina.

इ. मध्यस्थ धमनी का अवरोध—Embolism of Retinal artery.

ई. मध्यशिराका अवरोध—Thrombosis of Central Retinal vein.

उ. नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव—Haemorrhage in Retina.

ऊ. धमनियों की कठिनता—Arterio-Sclerosis of Retinal arteries.

ए. रक्तप्रणालियोंमें स्पन्दन—Pulsation Retinal Vessels.

२. नेत्रदर्पण प्रदाह—Retinitis.

अ. वृक्करोगज प्रदाह—Albuminuric Retinitis.

आ. मधुमेहज प्रदाह—Diabetic Retinitis.

इ. श्वेताणुवृद्धि जनित प्रदाह—Leucaemic Retinitis.

ई. तारकाकार प्रदाह—Stellate Retinitis.

उ. रेषाकार प्रदाह—Retinitis Proliferens.

ऊ. मण्डलाकार प्रदाह—Circinata Retinitis.

ए. स्रावमय प्रदाह—Exudative Retinitis.

ऐ. उपदंशज प्रदाह—Syphilitic Retinitis.

ओ. प्रचण्ड प्रकाशज प्रदाह—Photogenous Retinitis.

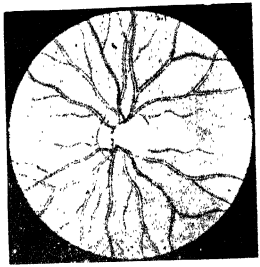

चि. [illegible], पृ. [illegible]
नेत्रदर्पणगत [illegible]

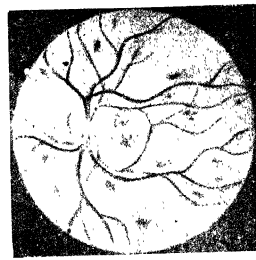

चि. [illegible], पृ. ५[illegible]
नेत्रदर्पणगत [illegible]।

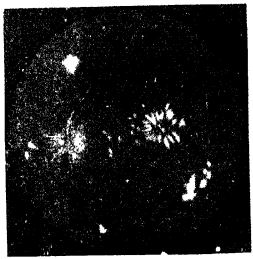

चि. १३०, पृ. ५५१
वृक्कजरोगज नेत्रदर्पणगप्रदाह।

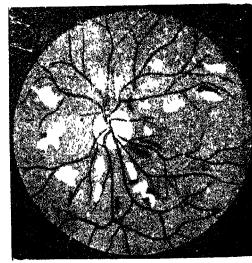

चि. १३१, पृ. ५५२
मधुमेहज नेत्रदर्पणगप्रदाह।

चित्र० १३३, पृ० ४३०
[illegible]

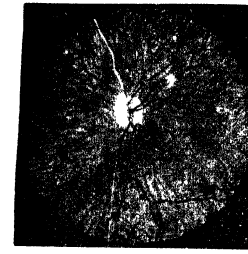

[illegible] १३४ पृ० ४३१
[illegible]

चित्र० १३५, पृ० ४६६
अन्धतासह कीटुम्बिक मृदुता

चित्र० १३७, पृ० ४७०
नेत्रदाग[illegible]

३. नेत्रदर्पण का अपक्रान्तिकारक रोग—Degeneration of Retina.

अ. वर्णबिन्दुसह नक्तांध्य और नेत्रदर्पण प्रदाह—Retinitis Pigmentosa.

आ. श्वेतबिन्दुसह नक्तांध्य और नेत्रदर्पण प्रदाह—Retinitis Punctata Albescens.

इ. अन्धतासह कौटुम्बिक मूढ़ता—Amaurotic family idiocy.

ई. मध्यस्थ नेत्रदर्पण का अपकर्ष—Central Tapeto-Retinal degeneration.

उ. मस्तिष्क और पीतबिन्दु की अपक्रान्ति—Familial cerebro-Macular degeneration and macular degeneration.

४. नेत्रदर्पण की आगन्तुक व्यथा—Injuries of Retina.

५. नेत्रदर्पणके अर्बुद—Tumours of Retina.

अ. वातनाड़ी अर्बुद—Gloma.

आ. अन्य दुष्ट अर्बुद—Other malignant Tumours.

इ. रसार्बुद—Cysts of Retina.

६. रक्तप्रणालियों में अनेक स्थलीनिर्माण—Angiomatosis of Retinal.

७. नेत्रदर्पण विच्छेद—Detachment of Retina.

८. जन्मलब्ध न्यूनताएँ—Congenital Anomalies of Retina.

१. नेत्रदर्पणस्थ रुधिराभिसरणगत व्याधियाँ।

रुधिर संचालनसे सम्बन्धवाली ७ व्याधियाँ हैं, जिनका क्रमशः वर्णन करते हैं।

अ. नेत्रदर्पणमें रक्तसंग्रह।

(Hyperaemia of Retina)

नेत्रदर्पणमें रक्तसंग्रह चाहे धमनियों में हो, या शिराओं में। यदि धमनियों में रक्तसंग्रह हो, तो वह प्रायः मध्यपटल, तन्तुमय समूह और तारामण्डलके आशुकारी प्रदाहके हेतु से होता है। शिराओंमें रक्तसंग्रह की प्राप्ति शिराओं में प्रतिबन्ध या उन पर दबाव आने पर होती है।

शिराओं में प्रतिबन्ध विशेषतः नेत्रदर्पणकी मध्य शिरामें अन्तराय आने पर होता है। दबाव मुख्यतः अधिमन्थ, दर्शननाड़ी प्रदाह, नेत्रगृहके अर्बुद या हृदय के रोग और अति रक्तसंग्रहमय रोगों में होता है। अधिक शराब पीने वाले और अन्य जिनके रक्त में रक्ताणुवृद्धि (Polycythaemia) होती है, उनकी शिराऐं रक्तपूर्ण रहती हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगी को कोई विशेष अनुभव नहीं होता। जब नेत्रवैद्य अँधेरे कमरे में नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा जांच करता है, तब नेत्र-दर्पण की रक्तवाहिनियोंमें परिवर्तन प्रतीत होता है। समग्र नेत्रदर्पण अपेक्षाकृत अधिक लाल होता है, धमनियोंमें रक्तसंग्रह हो तो वे अधिक पूर्ण और मोटी दीखती हैं। रक्तसंग्रह दीर्घकाल रहे तो धमनियाँ कितनेक स्थानों में फूल जाती हैं और स्थान-स्थान पर छोटे-छोटे दाने जैसा परिवर्तन होता है। शिराओं में रक्तसंग्रह होने से वे भरी हुई, अधिक काली, मुड़ी हुई और लम्बी हुई दीखती हैं। नेत्रदर्पणमें स्थान-स्थान पर कुछ-कुछ रक्तस्राव भी होता है। कभी-कभी रोगी को जन्म से ही हृद्रोग हो और देह के रक्तसंचालनमें न्यूनता हो, तो उसके रुधिरकी योग्य शुद्धि नहीं होती। फिर समस्त शरीर का वर्ण काला हो जाता है। एवं उसका नेत्र-दर्पण भी कृष्णाभ प्रतीत होता है।

आ. नेत्रदर्पणमें रक्तकी न्यूनता।

(Anaemia of Retina)

यह स्थिति समस्त शरीर में रक्त की न्यूनता (Anaemia) होने या नेत्रदर्पण को मिलने वाले रक्त में न्यूनता होने पर उपस्थित होती है। नेत्र-दर्पण को मिलने वाले रक्तकी कमीके मुख्य ३ हेतु हैं। १. नेत्रदर्पणकी मध्य धमनी में अवरोध; २. उस धमनी का संकोच; उसी धमनी पर दबाव या धमनीका कट जाना; ३. किनाइन विष। यदि अति रक्त निकल गया हो तो भी कुछ समय तक नेत्रदर्पण में रक्त की न्यूनता होती है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर नेत्रदर्पण का रंग रक्ताभ के स्थान पर श्वेताभ भासता है। दृष्टिमें प्रायः न्यूनता नहीं आती।

इ. नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनीका अवरोध।

(Embolism of the Central Retinal Artery)

चित्र सं० १२६ देखें। नेत्रदर्पण की मध्यस्थ धमनी नेत्रदर्पणको रक्त-प्रदान करती हैं, एवं उसीकी शाखाएं नेत्रदर्पणपर फैली हैं। कितनेक व्यक्तियोंमें इन शाखाओंकी रचना भिन्न प्रकारकी होती है। विशेषतः

५ शाखाएं भासती हैं। २ कनपटीकी ओर इनमें १ ऊँची और १ नीची; २ नाक की ओर, इनमें १ ऊंची और १ नीची; तथा पीतबिन्दुकी ओर एक सूक्ष्म शाखा। ये सब शाखा सिरेकी शाखाएं हैं, जिससे अन्य किसी धमनीकी शाखाओंके साथ उसके रक्तका सम्बन्ध नहीं है। इस हेतुसे मध्य धमनी या किसी भी शाखा में अवरोध हो, तब वह जिस भागको रक्तदान करती है, वह भाग रक्तविहीन हो जाता है। फिर वह अपना कार्य नहीं कर सकता।

कारण—नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनीके अवरोधके मुख्य ३ हेतु हैं। १. धमनी की दीवारके भीतर शोथ या अन्य परिवर्तन होनेसे मार्ग रुद्ध हो जाना; २. देहकी किसी अन्य धमनी या हृदयमें रक्त जमकर उसमेंसे छोटा टुकड़ा रक्तसंचालनमें प्रवाहित होकर उस धमनीमें फँस जाना; ३. धमनीमें रक्त जम जाना। धमनीमें शोथ, यह उपदंश, धमनीकी दीवार की कठिनता आदि कारणोंसे होते हैं। देहस्थ धमनी या हृदयमें रुधिर जम जानेके कारणोंमें हृदयरोग, धमनियों का प्रसारण, गर्भावस्था, धमनीकी कठिनता आदि हैं। नेत्रदर्पणकी धमनीमें रक्त जम जानेके कारण—हृदयगति अति मंद होना, रक्त जमजानेकी शक्तिमें अति वृद्धि होना या धमनीमें कुछ प्रतिबन्ध होना, ये हैं।

लक्षण और चिह्न—इस स्थितिका मुख्य एकही लक्षण है कि, रोगी अकस्मात् नेत्रदृष्टि बन्द हो जानेकी पुकार करता है। अंधता परिधि प्रान्तमें से आरम्भ होती है और बीचकी ओर बढ़ती जाती है। कुछ समयमें दृष्टि बिल्कुल बन्द हो जाती है। यदि मध्यस्थ धमनीका अवरोध न हो, एक दो शाखाओं का अवरोध हो तो उतने भागमें दृष्टि नष्ट होती है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर दर्शननाड़ी का सिरा निस्तेज दीखता है। धमनियां रिक्त होनेसे अति छोटी और सफेद भासती हैं। जैसेकि छोटे-छोटे सूतके तन्तु हों। शिराएँ दर्शननाड़ीके सिरे के पास निस्तेज और छोटी होती हैं, परिधि प्रान्तमें कुछ फूल जाती हैं। नेत्रगोलक पर दबाव आने पर धमनियां या शिराओंमें स्पन्दन नहीं हो सकता। दबाने पर रक्तवाहिनियोंमें कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता। कुछ घण्टोंके बाद नेत्रदर्पणका मध्यभाग मलिन, श्वेत और अपारदर्शक बन जाता है। पीतबिन्दु गहरे लाल रंगका भासता है, धमनियोंमें जो कुछ रुधिर रह जाता है, वह टूट-टूटकर रहता है। ये रक्तके टुकड़ों को धक्के लगते हों, उस तरह धमनीके भीतर चलते हुए प्रतीत होते हैं। कभी सूक्ष्म-सूक्ष्म शोणितस्राव दर्शनतन्तुके सिरे और

पीत बिन्दुके बीचमें होता है। कुछ समयके पश्चात् यह दर्शन अदृश्य हो जाता है। फिर दर्शननाड़ीका सिरा छोटा सफेद रंगका तथा नेत्रदर्पण अपारदर्शक हो जाता है। यदि अवरोध मध्य धमनीके बदलेमें किसी शाखामें हो, तो उस शाखासे पोषण होने वाले भागमें ही उक्त परिवर्तन होता है।

परिणाम—अवरोध एक आध शाखामें हो तो भविष्यमें सुधार होने की आशा रहती है। मध्यस्थ धमनीमें हो तो प्रायः दृष्टिमें सुधार नहीं होता। कभी कुछ समयके लिये कुछ दृष्टि मिलती है, किन्तु अन्तमें दर्शन-नाड़ीके सिरे और नेत्रदर्पणका शोष होने पर दृष्टि सदा के लिये चली जाती है।

उपचार—जलमय रसके पूर्वखण्डमें छेदकर जलस्राव करा देने पर नेत्रान्तर दबाव बिल्कुल कम हो जाता है। परिणाममें मध्य धमनीके भीतर रुधिर वेगपूर्वक आने लगता है, ऐसा होने पर कभी-कभी अवरोध दूर हो जाता है। फिर दृष्टिमें सुधार होता है। यह उपचार अवरोध होने पर तुरन्त किया हो तो ही कुछ लाभ होने की आशा है।

नेत्र पर हलके हाथसे मर्दन करने पर रुधिर संचालनमें कुछ सहायता मिलती है। इस हेतुसे कदाच लाभ हो जाय।

अमील नाइट्रेटकी बन्द शीशीको मोटे कपड़ेमें दबा, नाकके पास तोड़ देने पर वह रोगीके श्वासमें प्रवेश कर जाता है, जिससे संपूर्ण देहका रक्त उछलने लगता है। फिर कभी-कभी धमनीका अवरोध दूर हो जाता है। कभी-कभी ऐसेटिल कोलिन (Acetyl Choline) का अन्तःक्षेपण करने पर तत्काल लाभ पहुँच जाता है। रोगीको गरम जलके टब (Tub) में बैठानेसे भी कभी-कभी धमनीस्थ अवरोध दूर हो जाता है।

कितनेक रोगियोंकी एक या दोनों नेत्रोंकी दृष्टि बन्द हो जाती है, यह स्थिति कुछ मिनटोंसे घण्टों तक रहती है। फिर स्वयमेव ठीक हो जाती है। ऐसे लक्षण एक से अधिक बार होते हैं। कदाच उसका परिणाम मध्यस्थ धमनीके लिये अवरोध कभी हो जाय। उस स्थितिका सच्चा हेतु अभी तक अज्ञात है। किन्तु ऐसा माना गया है कि, किसी व्याधिके हेतुसे धमनी मार्ग आकुंचित हो गया है। उसमें एक प्रकारका खिंचाव आने पर रुधिर संचालन बन्द हो जाता है। इस प्रकारके लिये कोई विशेष चिकित्सा नहीं है।

ई. नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ शिराका अवरोध।

(Thrombosis of Central Retinal Vein)

चित्र नं० १२७ देखें। यह स्थिति प्रायः वृद्ध व्यक्तियोंमें होती है। इनके अतिरिक्त हृदयरोग, चिरकारी वृक्कप्रदाह, मधुमेह, नेत्रगृहके मृदु भागोंका प्रदाह तथा विसर्प आदि रोग भी इस स्थितिकी संप्राप्ति कराते हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगीकी दृष्टि शनैः-शनैः घटती है और कुछ घण्टोंमें बिल्कुल बन्द हो जाती है। जब अनुषंगी अधिमंथ उपस्थित होता है, तब रोगीको असह्य वेदना होती है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर नेत्रदर्पण की शिराएं रक्तपूर्ण होनेके हेतुसे अति काली भासती हैं। धमनियां आकुंचित होती हैं। समस्त नेत्रदर्पण रक्तस्रावसे आच्छादित होता है। दर्शननाड़ीका सिरा पहले स्फीत, शोथमय और अधिक लाल प्रतीत होता है। कुछ समयके पश्चात् निस्तेज और अपकान्ति ग्रस्त होते हैं। रक्तस्राव हुआ हो वह शोषित होता है, किन्तु उसके साथ नेत्रदर्पणका शोष होजाता है। धमनियां सूक्ष्म तन्तु सदृश भासती हैं। यदि मध्य शिरामें अवरोध होनेपर मध्य धमनीमें प्रतिबन्ध हो जाय, तो उस स्थितिके लक्षण भी ऐसे ही प्रकाशित होंगे।

परिणाम—इस रोगसे नष्ट दृष्टि क्वचित् ही आती है। कितनेक रोगियोंमें अनुषंगी अधिमन्थ होता है। परिणाममें असह्य वेदना होती है।

उपचार—इस रोगमें एक भी उपचार लाभदायक नहीं होता। अति वेदना हो तो अन्तमें नेत्रगोलकको निकाल देना पड़ता है।

उ. नेत्रदर्पणमें रुधिरस्राव।

(Haemorrhage in Retina)

चित्र नं० १२८ देखें। इस स्थितिका बोध नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर होता है। धमनियोंके पासमें रुधिरस्रावके अनुपातसे छोटे-मोटे दाग दीखते हैं। दाग तुरन्तके हों तो लाल और पुराने हों तो काले लाल या काले भासते हैं। इसकी संप्राप्ति युवावस्थाकी अपेक्षा ४०-४५ वर्ष की आयुमें अधिकतर होती है। रक्तस्रावके आकारका आधार उसके स्थान पर है। यदि नेत्रदर्पणकी वातनाड़ियोंके पर्तेमें हो तो अग्निकी ज्वालाके सदृश वर्ण होता है। गहराईमें हो तो दाग गोल होता है। जैसे उसका आकार पृथक्-पृथक् होता है, उस तरह उसके कदमें भी अन्तर होता है। कितनेक दाग पिनके शिर सदृश छोटे होते हैं; तब कई दर्शननाड़ीके सिरेकी अपेक्षा

बड़े होते हैं। वे दर्शननाड़ीके सिरेके चारों ओर एवं परिधि प्रान्तकी ओर भी होते हैं। कभी रक्तस्राव कांचरूपरसमें आजाता है।

लक्षण और चिह्न—परिधि प्रान्तमें रुधिरस्राव होनेपर विशेष लक्षण नहीं होते। मध्यमें अर्थात् पीतबिन्दु पर या उसके समीप हो तो रोगीको अकस्मात् शीघ्र अंधता आजाती है। इसके अतिरिक्त रोगीके नेत्रके पास काला पर्दा लटकाया हो वैसा या काली लाल पर्देका भास होता है। प्रायः रक्तस्राव शनैः-शनैः शोषित होजाता है और दृष्टि भी सुधर जाती है। पीत-बिन्दुके ऊपर हो तो कभी कुछ न्यूनता रह जाती है।

कारण—दर्शननाड़ी प्रदाह, विविध प्रकारके नेत्रदर्पणप्रदाह, पाण्डु, रक्तविकार, हृदयरोग, नेत्रदर्पण की धमनियों की विकृति, उपदंशके विषसे धमनियोंमें परिवर्तन, धमनीकोषकाठिन्य, नेत्रदर्पणकी मध्य शिरा का अव-रोध, रजःस्रावमें विकृति, छाती पर दबाव, फुफ्फुसरोग-श्वास आदि तथा नेत्रगोलक को धक्का लगना इत्यादि कारणों से नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव होता है।

परिणाम—निम्न ३ स्थिति पर परिणाम का आधार है। १. किस स्थान पर रक्तस्राव हुआ; २. रक्तस्राव तुरन्त का है या समय व्यतीत होगया; ३. रोगी की शारीरिक स्थिति कैसी है?

रक्तस्राव परिधिप्रान्त में हो तो दृष्टि को अधिक हानि नहीं पहुँ-चती। पीतबिन्दु पर हो तो अधिक हानि पहुँचती है। रुधिरस्राव तुरन्त हुआ हो, शोषण अभी न हुआ हो, तो दृष्टि में जो हानि पहुँची हो, वह कम होने की आशा रह सकती है। सब प्रकारके रुधिरस्राव का शोषण सम प्रकार से नहीं होता। कितनेक बिल्कुल शोषित होकर भावी नाम निशान भी नहीं मिलता। कई ऐसे हैं कि, परिणाम में भूरे धब्बे रह जाते हैं। कभी धब्बे सफेद काले होते हैं।

रोगी की शारीरिक अवस्था पर भी अच्छा आधार रहता है। रोगी स्वस्थ हो, तो शोणित का शोषण हो जाता है और अन्य स्राव नहीं होता। रोगी मेदवृद्धियुक्त, उपदंश, संधिवात, मधुमेह, धमनीकोषकाठिन्य आदि रोग से पीड़ित हो रुधिर शोषण में समय लगता है। क्वचित् अन्यत्र रक्तस्राव भी होता है।

जिस रोगी को रक्तस्राव हो, उसके पेशाब की परीक्षा करनी चाहिये। एवं अन्य प्रकार से शारीरिक परीक्षा भी योग्य प्रकार से करनी चाहिये। कभी-कभी देह में अन्य विकृति प्रतीत न होने पर भी रुधिरस्राव हो जाता है। अतः मूत्रपरीक्षा और शरीरपरीक्षा द्वारा कोई रोग रूप कारण मिल जाता है।

उपचार--नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव होने से उसे तुरन्त दूर करने का कोई प्रबल साधन नहीं है। नेत्र पर शीतल जल या बर्फ के फोहे रखकर पट्टी बांधने पर प्रायः नया स्राव नहीं होता। रोगी को बिछौने पर लिटा देवें। कनपटी पर तुम्बी या जलौका लगावें। रोगी की शारीरिक स्थिति सदोष होने पर उसका योग्य उपचार करें। आयोडाइड ऑफ पोटासियम जैसी शोषक औषध देनेसे अच्छा लाभ होता है।

कैलसियम लेक्टेट १०-१० ग्रेन दिन में ३ बार देवें। अश्वरक्तमें से निकाले हुए रक्तद्रव का अन्तःक्षेपण करें। कभी-कभी सर्पविषके अन्तःक्षेपण से लाभ हो जाता है।

ऊ. नेत्रदर्पणमें धमनीकोषकाठिन्य।

(Arterio--Sclerosis of Retinal Arteries--Atheroma of Retinal Arteries)

चित्र नं० १२९ देखें। यह स्थिति धमनियों के समान शिराओंमें भी हो सकती है। किन्तु धमनियों में अधिक होती है। जिनने शारीर शास्त्र का अभ्यास किया हो, उनको विदित है कि, धमनियों की दीवारमें ३ पर्त हैं। १. बाह्यवृत्ति; २. मध्यवृत्ति; ३. अन्तर्वृत्ति। इनमें से मध्यवृत्ति में सूक्ष्म मांसस्नायु होते हैं, अन्तर्वृत्तिमें स्थिति-स्थापक घटक अधिक होते हैं। इन स्थितिस्थापक घटकोंके हेतुसे नाड़ीस्पन्दन प्रतीत होता है। जब हृदय के आकुञ्चन से धमनीमें रुधिर जाता है, तब स्थितिस्थापकता के हेतुसे धमनी फूलती है और रक्तका उछलना हाथ को भासता है। जब हृदय प्रसारित होता है, तब धमनीमें आया हुआ नूतन रक्त आगे चला जाता है, फिर धमनी मूल स्थितिमें आ जाती है। यह क्रिया सर्वदा चलती रहती है। किन्तु धमनी की दीवार कठिन होजाने पर अन्तर्वृत्तिमें कितनाक अन्तर होजाता है। किसी-किसी स्थान पर विकृति दर्शक पीले रंगके दाग होते हैं। विशेषतः चूने सदृश क्षारों का संग्रह होजाता है, जिससे धमनी रबर के समान होती है, वह कठिन होजाती है। बाह्यवृत्तिमें कुछ परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन जब नेत्रदर्पणस्थ धमनीमें होता है, तब उसका मार्ग आकुञ्चित होता है और उसके पासमें सफेद रेखाएँ उपस्थित होती हैं।

इस रोगका प्रारम्भ प्रायः दर्शननाड़ीके चारों ओर धमनियोंमें होता है, वृक्कके चिरकारी प्रदाहके अतिरिक्त अन्य रोगों में उस स्थान पर पहले

आक्रमण होता है। केवल चिरकारी वृक्कप्रदाह और उपदंश आदि रोगोंमें परिधिप्रान्त की धमनियों में भी दीखता है।

लक्षण और चिह्न—इस रोग के हेतु से शिराओं में रक्तसंग्रह, धमनियों का टेढ़ापन, शिराओं में स्पन्दन, धमनियों का छोटा और उस हेतु से निस्तेज होना, धमनियों की पारदर्शकता में न्यूनता, शिरा परसे धमनी निकलनेके स्थान पर धमनी की दीवार की कठिनता से शिरापर दबाव आना और नेत्रपर कुछ दबाव आने से नेत्रस्थ धमनी में स्पन्दन होना आदि परिवर्तन होते हैं। जब रोग आगे बढ़ता है, तब धमनियां अनियमित हो जाती हैं। किसी स्थान पर आकुंचित और किसी स्थान पर प्रसारित। ऐसा होने पर किसी-किसी स्थान पर धमनी जैसे डोरे से बँधी हो ऐसा देखाव होता है।

प्रारम्भिक चिह्न—छोटी धमनियों की सर्पगति जैसी स्थिति, बड़ी धमनियोंका चांदी के तार सदृश भासना, नीचे से निकलने वाली शिराको एक ओर हटाना और शिराओं में रक्तसंग्रह के हेतु से दर्शननाड़ी में बहुत लाली की प्रतीति होना, ये मुख्य हैं।

रोगी मुख्यतः शिरदर्दकी पुकार करता है। इसके अतिरिक्त दृष्टि में कुछ भी न्यूनता नहीं होती। यदि इस रोग के हेतु से नेत्रदर्पण में रक्तस्राव जैसा परिवर्तन होता है, तो दृष्टि में बाधा पहुँचती है।

कारण—वृद्धावस्था, वृक्कोंका चिरकारी प्रदाह, मधुमेह, उपदंश, नाग (शीशा) विष, शराब और फोस्फरस सदृश विषजनित विक्रिया, कितनेक प्रबल ज्वर और मलावरोध आदि इस रोग के मुख्य कारण हैं।

उपचार—इस रोगकी चिकित्साका कार्य नेत्रवैद्य की अपेक्षा कायवैद्य पर अधिक अवलम्बित है। इस रोग से पीड़ितोंका लक्ष्य तुरन्त धमनीकोषकाठिन्य की ओर लगवाना चाहिये; तथा कायवैद्य से मुख्य रोग की चिकित्सा कराने की सलाह देनी चाहिये। क्वचित् नेत्रवैद्य पर ही चिकित्सा का भार आजाय, तो रोग के मूल कारण की शोध कर उसे दूर करना चाहिये।

इस रोग पर पोटास आयोडाइड सदृश रक्तशोधक औषध अच्छा लाभ पहुँचाती है। पथ्यापथ्यका पालन आग्रहपूर्वक करावें। होसके उतना आराम करे। शराब, धूम्रपान, अति मसाला और अति गरम-गरम भोजन आदि हानिकर हैं। ट्रिनाइट्रिन, अमिल नाइट्रास जैसी औषधियाँ भी आवश्यकता पर व्यवहृत होती हैं।

सूचना—इस रोग के परिणाम में अर्धांगवायु हो जाने का भय रहता है।

ए. नेत्रदर्पणस्थ रक्तप्रणालियों में स्पन्दन।

(Pulsation of Retinal Vessels)

नेत्रदर्शक यन्त्रसे नेत्रदर्पणको देखने पर दर्शननाड़ीका सिरा, धमनियां और शिराएं प्रतीत होती हैं। स्वस्थावस्था में धमनी में स्पन्दन नहीं होता, कदाचित् शिरामें स्पन्दन होता है, अथवा नेत्र पर थोड़ासा दबाने पर उछलना दीखता है। हृदय रोग में वह अधिक प्रतीत होता है। अधिमन्थ, हृदयरोग, गले में अर्बुद; इन रोगों में अंगुलियां से दबाने पर धमनियों में स्पन्दन भासता है।

२. नेत्रदर्पण प्रदाह।

(*Retinitis*)

इस प्रदाहके आकृति और हेतु भेदसे ९ विभाग किये हैं। इन सबका वर्णन क्रमशः करते हैं।

अ. वृक्करोगज नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Albuminuric Retinitis—Renal Neuro. Retinitis)

चित्र नं० १३० देखें। वृक्कप्रदाहके ४ प्रकार हैं। १. आशुकारी प्रदाह। २. गर्भावस्थामें प्राप्त; ३. वृक्कके गर्भभागका प्रदाह; ४. वृक्कके संयोजक तन्तुओंका प्रदाह। इनमें तीसरे और चौथे प्रकारका प्रदाह चिरकारी है। पहले प्रकारके प्रदाहमें नेत्रदर्पण क्वचित् ही प्रभावित होता है। द्वितीय प्रकारका प्रदाह बार-बार दृष्टिगोचर होता है। तीसरे प्रकारमें नेत्रदर्पण प्रदाह अधिक नहीं होता। चौथे प्रकारका प्रदाह अति शनैः-शनैः बढ़ता है। इससे नेत्रदर्पणप्रदाह होने पर जब रोगी नेत्रवैद्यके पास जाता है, तभी मुख्य रोगका पता चलता है। उक्त चारों प्रकारके प्रदाहमें मूत्रमें शुभ्र प्रथिन (एल्ब्युमिन) जाता है। सगर्भाको छोड़ शेष रोगियोंमें नेत्रदर्पण प्रदाह विशेषतः ३०–४० वर्षकी आयुवालोंको होता है। स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको अधिक होता है। गरीबोंकी अपेक्षा धनिकोंको तथा सामान्य व्यक्तियोंकी अपेक्षा भोगविलासियोंको अधिक होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगीकी दृष्टि प्रारम्भमें ठीक होती है। फिर शनैः-शनैः कम-कम होती जाती है। अन्तमें प्रकाश दर्शन भी बन्द हो जाता है। प्रारम्भमें दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्रसे परीक्षा की जाय तो अन्धप्रदेश बड़ा बना हुआ या मध्यमें भासता है। परिधि प्रदेश प्रायः ठीक होता है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर शिरा स्फीति, दर्शननाड़ीके सिरेका शोथ, उसके चारों ओरके नेत्रदर्पणमें भी सूजन, दर्शननाड़ीके ऊपर तथा नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव तथा दर्शननाड़ीके सिरेके इर्द गिर्द लगभग सिरेसे ३ सिरेके कद जितनी दूरी पर गोल या अनिर्णित आकारके श्वेतबिन्दु व्यवस्थित होना आदि चिह्न प्रतीत होते हैं। ये श्वेतबिन्दु पीतबिन्दुकी ओर नक्षत्रके समान होते हैं। पीतबिन्दु अन्तररहित रहता है; या परिवर्तित होगा तो भी अति कम। उक्त चिह्न सब प्रतीत नहीं होते। किसीमें कम और किसीमें ज्यादा। किसीमें एक प्रकारका चिह्न अधिक, तो दूसरेमें अन्य प्रकारका चिह्न प्रबल। धमनियोंमें रूपान्तर होता है। यह रूपान्तर प्रायः वृद्धावस्थाके हेतुसे होनेवाले परिवर्तनोंके परिणाममें होता है। यह रूपान्तर नेत्रदर्पणमें प्रतीत चिह्नके समान होता है। इसका वर्णन धमनियोंकी दीवार की कठिनतामें पहले किया गया है।

परिणाम—वृक्कोंके चिरकारी प्रदाहमें उपर्युक्त परिवर्तन नेत्रदर्पणमें भी हो जाय, तो रोगीके जीवनकी अधिक आशा नहीं रहती। नेत्ररोग नहीं मिटता। इतनाही नहीं, रोगी दो वर्षसे अधिक जीवित भी नहीं रह सकता। जिन रोगियोंमें वृक्कप्रदाहका सुधार होता है, उनको दृष्टिमें भी लाभ पहुँचता है। एवं नेत्रदर्पणमें हुए परिवर्तनोंमें भी सुधार हो जाता है। कितनेकोंमें नेत्रदर्पण बिल्कुल स्वस्थ हो जाता है। कितनेकोंमें वृक्कप्रदाह शमन होने पर भी दर्शननाड़ीके सिरेकी अपक्रान्ति आदि रूपान्तर चालू रहता है, जिससे दीर्घकालके पश्चात् दृष्टि नष्ट हो जाती है।

सगर्भाको प्रसव होनेके पश्चात् लाभ पहुँचता है और एकाध मासमें वह बिल्कुल स्वस्थ हो जाती है। क्वचित् पुनः गर्भधारण होनेपर दूसरी बार भी वही स्थिति हो जाती है।

आशुकारी वृक्कप्रदाह में भी लाभ होने की आशा अधिक रहती है।

उपचार—नेत्रदर्पण के इस रोग के लिये कोई खास चिकित्सा नहीं है। वृक्कप्रदाहका उपशम हो, तो ही नेत्रदर्पण पर लाभ पहुँचता है।

सगर्भा के लिये कभी-कभी प्रश्न उपस्थित होता है कि, नेत्रके संरक्षणार्थ गर्भपात कराना चाहिये या नहीं? प्रायः प्रसव होनेपर तो नेत्र को लाभ हो ही जाता है। अतः असमय पर प्रसव कराने की आवश्यकता नहीं रहती।

आ. मधुमेहजनित नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Diabetic Retinitis)

चित्र नं० १३१ देखें। मधुमेहके कितनेक रोगियों की दृष्टिमें न्यूनता

आती है। ऐसा होनेमें ४ हेतु हैं। १. चश्मे का नम्बर बदलने की आवश्यकता रहती है या पहले जरूरत न हो तो चश्मे की जरूरत पड़ती है, इस स्थिति का वर्णन प्रकरण २९ में किया जायगा। २. कांचबिन्दु आनेके हेतुसे दृष्टिमें न्यूनता होना, इसका वर्णन प्रकरण १६ में किया है। ३. नेत्रमें कोई भी रोग न होने पर भी दृष्टिमें न्यूनता आना, इसका विचार प्रकरण २५ में किया जायगा। ४. नेत्रदर्पण का प्रदाह। इस अन्तिम स्थिति का विवेचन यहाँ करते हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगी दिन प्रतिदिन दृष्टिह्रास होने की फर्याद करता है। नेत्रपरीक्षा करने पर बाहरसे कुछ भी विकृति नहीं भासती। कनीनिका को प्रसारित कर नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर नेत्र-दर्पणमें स्थान-स्थान पर रक्तस्राव प्रतीत होता है। पीतबिन्दुके स्थानमें कितनेक श्वेतबिन्दु उपस्थित होते हैं। किन्तु वे नक्षत्राकारमें व्यवस्थित नहीं होते। मूत्रपरीक्षा करने पर उसमें शक्कर मिलती है। इसके अतिरिक्त कभी-कभी धमनियाँ श्वेत हो जाती हैं। यह सफेदी नेत्रदर्पण की धमनियों के रक्तमें हुए परिवर्तनके हेतुसे भासती है। इस तरह जिस स्थितिमें धमनियाँ सफेद दीखें उसे मेदमय नेत्रदर्पणप्रदाह (Lipaemia Retinitis) संज्ञा दी है।

उक्त स्थिति प्रायः छोटी आयुवाले मधुमेहके रोगियों की भयप्रद अवस्थामें होती है। इस स्थिति की संप्राप्ति के पश्चात् थोड़े ही समय में रोगी को संन्यास (Diabetic coma) हो जाता है। फिर परिणाम अशुभ आता है।

क्वचित् नेत्रदर्पण की मध्यस्थ शिरामें रक्त अवरुद्ध हो जाता है, कभी कांचरूप रसमें रक्तस्राव होकर अपारदर्शकता आ जाती है। कितनेक समय शिरामें रक्तावरोध नहीं होता; किन्तु मुख्य धमनीमें प्रतिबन्ध होता है।

उपचार—इस नेत्ररोग का कोई खास उपाय नहीं है। मधुमेहके लिये आवश्यक उपचार करना चाहिये। धमनी सफेद भासे तो रोगी को बचाने के लिये तत्काल योग्य चिकित्सा कराने का आदेश देना चाहिये।

इ. श्वेताणुवृद्धिजनित नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Leucaemic Retinitis)

इस स्थितिमें नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव होता है, धमनियाँ निस्तेज बनती हैं। शिरा रक्तपूर्ण, प्रसारित और मुड़ी हुई भासती है। मध्यपटल का रंग

मारंगी हो जाता है। दर्शननाड़ी का सिरा निस्तेज और अस्पष्ट किनारे युक्त बनता है। नेत्रदर्पण मन्द तेजस्वी दीखता है। कभी सूक्ष्म उभड़े हुए दाग प्रतीत होते हैं। इन दागोंके किनारे पर रक्तस्राव होता है।

यदि पीतबिन्दुमें रक्तस्राव या अन्य रोग न हो तो दृष्टिमें अधिक हानि नहीं पहुँचती। कांचरूप रसमें रक्तस्राव हुआ हो तो दृष्टि बहुत कम हो जाती है।

ई. नक्षत्राकार नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Retinitis Stelleta)

इस रोगमें नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर पीतबिन्दुमें नक्षत्राकार या पंखेके आकार की सफेद रचना भासती है। इस प्रकारका दृश्य वृक्कप्रदाहमें भी होता है, फिर भी इन दोनोंमें अन्तर है। वृक्कप्रदाह जनित विकारमें रंग अति सफेद नहीं होता और तारे के सिरे अधिक स्पष्ट नहीं होते। यह स्थिति विशेषतः इन्फ्लुएञ्जा या अन्य जहरी ज्वरोंमें उत्पन्न दर्शननाड़ीके सिरेके प्रदाह और उसी भागमें शोथ आने पर उपस्थित होती है। यथार्थमें यह अवस्था एक दृश्य ही है; प्रदाह नहीं है। अतः रोगकी संज्ञामें 'प्रदाह' शब्द मिलाया है, वह योग्य नहीं है।

उ. रेषाकार नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Retinitis Proliferens)

चित्र न० १३२ देखें। नेत्रदर्पणमें होनेवाला रक्तस्राव जब कांचरूप रस तक पहुँचता है, तब रक्तस्रावके पश्चात् कुछ समयमें श्वेत रेषा नेत्रदर्पण में निर्मित हुई हों, ऐसी प्रतीति नेत्रदर्शक यन्त्रमें होती है। यह अवस्था सर्वदा नेत्रदर्पणके रक्तस्रावके पश्चात् ही होती है, इसके अतिरिक्त नहीं होती।

ऊ. मण्डलाकार नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Retinitis Circinata)

इस अवस्थाकी प्राप्ति वृद्धोंको ही होती है; पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियोंको अधिक होती है।

लक्षण और चिह्न—इस रोगका मुख्य लक्षण एकही है कि, समीप और दूरकी दृष्टि दिन-प्रति-दिन कम होती जाती है और लम्बे समयमें मध्यदृष्टि बिल्कुल चली जाती है। फिर रोगी पढ़ नहीं सकता, स्त्री रुग्णा हो तो गृहकार्य अच्छी तरह नहीं कर सकती, चलने-फिरनेमें भी बाधा

पहुँचती है। दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्रसे नापने पर मध्य भागमें अन्ध प्रदेश भासता है। शेष क्षेत्र योग्य होता है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर पीतबिन्दु के चारों ओर एक गोल मण्डल दीखता है। यह मण्डल अनेक सफेद बिन्दुओं का होता है। समग्र गोल चक्र जैसे कि कांवरूप रसकी ओर उभड़ आया हो, उस तरह दीखता है।

परिणाम—इस रोगकी उत्पत्ति होने पर समीप की दृष्टि धीरे-धीरे नष्ट हो जाती है, इसके लिये कोई उपाय सफल नहीं होता।

ए. स्रावमय नेत्रप्रदाह।

(Exudative Retinitis, Coat's Retinitis)

यह रोग युवावस्थामें होता है। स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंको अधिक होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगीको न्यूनाधिक गहराईमें पीड़ा होती है। दृष्टि शनैः-शनैः कम होती है और अन्तमें बिल्कुल चली जाती है।

बाहरसे परीक्षा करने पर नेत्रमें खास परिवर्तन नहीं भासता। कनीनिका का संकोच रोग बढ़नेके अनुपातमें कम होता है। फिर बिल्कुल दूर हो जाता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर नेत्रदर्पण पर श्वेताभ या पीताभ उभड़े हुए दाग भासते हैं। कभी-कभी सूक्ष्म-सूक्ष्म रुधिरस्राव प्रतीत-होता है। कुछ समय जाने पर दाग अधिक श्वेताभ होजाते हैं। ऐसी स्थिति उपस्थित होने पर जो स्राव हुआ हो वह गाढ़ा होकर बन्द हो जाता है। नेत्रदर्पणकी रक्त वाहिनियोंमें प्रायः परिवर्तन नहीं होता।

परिणाम—इस रोग का परिणाम खराब आता है। शनैः-शनैः दृष्टि कम होकर अन्तमें बन्द हो जाती है। कभी-कभी ऐसे नेत्र में अधिमन्थ या नेत्रदर्पण विच्छेद हो जाता है।

उपचार—इस रोगकी चिकित्सा अभी तक नहीं थी। अनुमान है कि, पेनिसिलिन का उपयोग प्रारम्भिक समय पर योग्य परिमाण में किया जाय तो अनेक नेत्रों का संरक्षण हो सकेगा।

ऐ. उपदंशजन्य नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Syphilitic Retinitis)

यह रोग उपदंश के उपद्रव रूप होता है। एवं मातापिता से प्राप्त उपदंशज विकृति से भी इसकी संप्राप्ति होती है। यदि रोगी को हुए उपदंशके

परिणामरूप यह रोग हुआ हो तो जननेन्द्रिय पर क्षत होनेके पश्चात् ६ से १८ मास में यह रोग होता है।

लक्षण और चिह्न—इस रोग में दृष्टि पर सर्वदा समान असर नहीं होता। कभी दृष्टि में बहुत कम अन्तर होता है। कितनेकों को दृष्टि में अधिक बाधा पहुँचती है। रोग जब अधिक आगे बढ़ जाता है, तब प्रायः सब रोगियों को दृष्टि में अच्छी तरह हानि पहुँच जाती है। दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र से परीक्षा करने पर भिन्न-भिन्न प्रकार की न्यूनता भासती है। कितनेक रोगियों में दृष्टिक्षेत्रका मध्य भाग अधिक आक्रमित होता है। कितनेकों में परिधि प्रदेश न्यूनता युक्त होजाता है। कइयों को मध्य प्रदेश अच्छा, फिर सदोष और आगेका परिधि प्रदेश अच्छा रहता है। किसी को आंख के पास काले धब्बे होने की पुकार आती है। कोई रोगी रात्रि को कम देखनेको कहता है। किसीको नेत्रके पास पतंग उड़ता हुआ भासता है। एवं किसीको सब वस्तु छोटी अथवा विकृत आकारकी दीखती है। यदि योग्य उपचार न किया जाय तो दृष्टि कम होती ही जाती है। कभी-कभी दृष्टि कम होकर फिर सुधर जाती है और पुनः कम होने लगती है। योग्य उपचार से दृष्टि सुधर जाय, किन्तु विशेष रहा हो और चिकित्सा बन्द करदी जाय, तो थोड़े ही समय में फिर रोग आक्रमण कर देता है, जिससे दृष्टि पुनः कम होने लगती है।

नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने पर दर्शननाड़ी के सिरे के चारों ओर का नेत्रदर्पण का भाग निस्तेज भासता है। जैसे-जैसे परिधिकी ओर जाते हैं, वैसे-वैसे निस्तेजता कम भासती है। दर्शननाड़ी का सिरा कुछ अधिक लाल और उसका किनारा अधिक स्पष्ट होता है। सिराका सब भाग बहल में से चन्द्र प्रतीत हो, ऐसा दीखता है। धमनी में कुछ अन्तर नहीं होता, शिराएं फूल जाती हैं। कांचरूप रस में प्रायः अपारदर्शकता आती है। बहुधा सूक्ष्म रज जैसी अपारदर्शकता दीखती है। कितनेक नेत्रवैद्य इस अपारदर्शकता पर से उपदंशज नेत्रदर्पणप्रदाह का अनुमान कर लेते हैं। यह अपारदर्शकता कभी रेशे सदृश या कागज के समान होती है। मध्यपटल भी इस प्रदाह से प्रभावित हो जाता है। अनेक बार परिधि की ओर पीताभ दाग होते हैं। उन दागोंके किनारे की ओर काला रंग छा जाता है। कभी दागों में भी रंग आजाता है। पीतबिन्दु वाला भाग इस परिवर्तन से मुक्त नहीं रहता। उसमें बिखरे हुए सफेद और काले पीतबिन्दु हो जाते हैं।

कभी दूसरा भाग रोगमुक्त और केवल पतिबिन्दु रोगग्रस्त होता है। रोगी को हुए उपदंश के उपद्रव रूप प्रदाह की अपेक्षा मातापिता से प्राप्त

उपशाज विष के परिणाम में उत्पन्न प्रदाह में ऐसा होने की संभावना अधिक रहती है। कभी मातापिता से प्राप्त रोग में काला रंग नेत्रदर्पण में अधिक जम जाता है। इतने तक कि रंगमय नेत्रदर्पण प्रदाह और इस रोग को पृथक् करना कठिन हो जाता है। कभी नेत्रदर्पण पर नमक और काली मिर्च का चूर्ण छिड़का हो, उस तरह सफेद और काले बिन्दु बिखरे हुए भासते हैं। कभी दर्शननाड़ी के सिरे का शोष (Atrophy) हो जाता है।

उपचार--इस रोगके लिये पारद सर्वोत्तम औषध है। पारद देने की अनेक विधि हैं। मुँहसे, बगलमें, कनपटी या सांथल पर मलहम घिस कर, बाष्पद्वारा अथवा अन्तःक्षेपण द्वारा दिया जाता है। वर्तमानमें शिरा के भीतर साल्वरसन और निओसोल्वरसन का अन्तःक्षेपण किया जाता है। इससे अच्छा लाभ होता है। रोग शमन होने के पश्चात् भी कुछ समय तक पारद देते रहना चाहिये। अन्यथा रोग का फिर से आक्रमण होजाता है। रोग शमन हो जाने पर पोटास आयोडाइड का सेवन भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

ओ. प्रचण्ड प्रकाशजन्य नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Photogenous and Actinic Retinitis)

इस स्थिति के ४ प्रकार हैं। १. सूर्यप्रकाश से प्राप्त अन्धता (Solar blindness); २ बर्फप्रदेशमें चलने से प्राप्त नेत्रप्रदाह (Snow ophthalmia); ३. विद्युत् प्रकाशज प्रदाह (Electric light Retinitis); ४. क्ष किरण और रेडियम जन्य अन्धता (X ray and Radium exposure Retinitis)।

सूर्यप्रकाशजनित अन्धता।

(Solar Blindness)

जब सूर्यग्रहण होता है, तब उसे देखने के लिये कांच पर काजल लगाकर देखते हैं। किन्तु उस तरह न सम्हालते हुए सामान्य सफेद कांच में से ही सूर्य पर दृष्टि डालें, तो सूर्य के प्रचण्ड प्रकाश से नेत्रदर्पण को कितनेक अंशमें हानि पहुँच जाती है। उस तरह केवल नेत्रसे सूर्य पर त्राटक करने या सूर्यमें रहे हुए काले धब्बेका सूक्ष्म निरीक्षण करने लगें तो भी नेत्रदर्पण को हानि पहुँच जाती है।

लक्षण और चिह्न--प्रकाश का आघात होने पर तुरन्त रोगीके नेत्रके पास एक काला धब्बा बीच में हो जाता है। दृष्टिके बीचमें रंग की

प्रतीत बिल्कुल नहीं होती। कभी काला धब्बा नेत्रके पास नाचता हो ऐसा भास होता है। कितनेक रोगियों को सब वस्तु विकृत दीखती है।

नेत्रदर्पणसे परीक्षा करने पर कोई खास परिवर्तन नहीं दीखता। कितनेक रोगियोंमें पीतबिन्दु का रंग बदला हुआ भासता है। कितनाक समय जानेके पश्चात् वहाँ पर काला रंग जम जाता है।

उपचार—रोगी को आराम लेने को कहें। काले चश्मे लगावें। स्ट्रिक्निया का अन्तःक्षेपण करें। कनपटी पर गैस या विद्युत प्रयोग करें।

बर्फ प्रदेशमें चलने से होनेवाला नेत्रप्रदाह।

(Snow Ophthalmia)

हिमालय जैसे प्रदेशों में जानेवाले लोगों को अधिक समय तक बर्फाच्छादित स्थान पर दृष्टि रखने से नेत्राभिष्यन्द हो जाता है।

लक्षण और चिह्न—प्रारम्भमें नेत्रके भीतर रेत आदिका कण गिरा हो, उस तरह गड़ता है; प्रकाश सहन नहीं होता; नेत्र पर भार लगता है; नेत्र नहीं खुलते और जलस्राव होता रहता है। फिर कुछ समयके पश्चात् नेत्रपर शोथ आ जाता है; और शुक्लमण्डल में सूक्ष्म क्षत हो जाते हैं। ४-६ दिन जाने पर लक्षण कम होने लगते हैं और कुछ दिनोंमें रोग शान्त हो जाता है।

उपचार—कोकेन और एड्रीनेलिन की बूँद डालने पर तुरन्त लाभ पहुँचता है। जब बर्फमय देशों में घूमना हो, तब काले चश्मे का उपयोग करने पर आपत्तिसे रक्षण मिल जाता है।

विद्युत्प्रकाशसे नेत्रदर्पणप्रदाह।

(Electric Light Retinitis)

अपने लोगोंमें सामान्यतः ऐसी मान्यता है कि बिजलीके दीपकसे आँख को हानि पहुँचती है। यथार्थमें यह मान्यता सत्य नहीं है। कम प्रकाश वाली बत्ती, जो शहरों में जलाई जाती है, उतने प्रकाशसे हानि नहीं पहुँच सकती। किन्तु बत्ती अधिक प्रकाशदार हो, तो हानि पहुँचती है। वह भी जब प्रकाश किरण सीधे नेत्र पर गिरें तब। बिजलीके अधिक प्रकाशसे हानि दो प्रकार की होती है। १. नेत्रप्रदाह; २. नेत्रदर्पण की अन्धता।

१. नेत्रप्रदाह—अधिक विद्युत्प्रकाश के आघातसे तुरन्त नेत्रमें दाह और गड़ना प्रारम्भ होता है। पलक पर शोथ आ जाता है। नेत्र

लाल हो जाते हैं, १-२ दिन नेत्रमें से लसदार मल निकलता है और प्रकाश सहन नहीं होता। फिर २-४ दिन जाने पर प्रदाह शमन हो जाता है।

नेत्रदर्पण की अन्धता—यह स्थिति सूर्यप्रकाश जनित अन्धता से मिलती है। विद्युत्प्रकाशसे आघात होने पर रोगी को आंख के पास काला धब्बा दीखता है। कभी-कभी वह आजीवन रह जाता है।

उपचार—कोकेन और एड्रीनेलिन की बूँद डालें; और नेत्र को विश्रान्ति देवें।

क्ष किरण और रेडियमजनित अन्धता।

(X Ray and Radium Exposure Retinitis)

क्ष किरणसे रोगीकी परीक्षा करनेके समय उस कमरेमें कार्य करने वाले काले चश्मे पहनते हैं, जिससे उनको हानि नहीं पहुँचती। एवं वे चश्मा न पहनें तो भी उनको हानि नहीं पहुँचती। कारण, क्ष किरण उनके नेत्र पर नहीं पड़ते, रोगीकी देह पर गिरते हैं। किन्तु जब किसी रोगीके मुँह या उसके कुछ भागकी क्ष किरण द्वारा परीक्षा करना हो, या नेत्रके कितनेक रोगोंके लिये क्ष किरणोंका उपचार करना हो, तब ये किरण सीधे नेत्र पर गिरते हैं। इनसे अन्य परिवर्तनके अतिरिक्त नेत्रदर्पणका प्रदाह भी प्रतीत होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगीके नेत्रपर तुरन्त निस्तेजता आजाती है। परीक्षा करने पर बाहरसे कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर दर्शननाड़ीके सिरेके चारों ओर पीताभ श्वेत दाग तथा समग्र नेत्रदर्पण पर काला रंग या काले दाग छाये हुए दीखते हैं। किसी-किसी को नेत्रदर्पण पर सूक्ष्म-सूक्ष्म रक्तस्राव होता है।

उपचार—रोगीको विश्रान्ति देनेके अतिरिक्त अन्य उपचार विशेष लाभ नहीं पहुँचा सकते।

३. नेत्रदर्पणके अपक्रान्तिकारक रोग।

(Degenerative Diseases of Retina)

इस प्रकारके ४ रोग हैं। इनका वर्णन क्रमशः करते हैं।

अ. अपक्रान्तिकर नक्तान्ध्य।

(वर्णबिन्दुसह नेत्रदर्पण प्रदाह—**Retinitis Pigmentosa**)

चित्र नं० १३३ देखें। इस रोगके विशेष २ स्वभाव हैं। १. नक्तान्ध्य (रतौंधी); २. एक कुटुम्बमें एकाधिक व्यक्तियों पर आक्रमण।

इस रोगका प्रारम्भ प्रायः छोटी आयुमें होता है। फिर जैसे-जैसे आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे दृष्टि कम होती है। प्रकाश कम हो तब दृष्टिमें सामान्य बाधा पहुँचनेसे इसका प्रारम्भ होता है। रोग बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे सायंकालके पश्चात् दृष्टि कम होती जाती है। रोग बढ़ जाने पर रात्रिको बिल्कुल नहीं दीखता। इतने तककि रोगी शाम होते ही अपने मकानमें बैठ जाता है, या लेट जाता है। लगभग ३५ वर्षकी आयुमें रोग इतना प्रबल हो जाता है कि, रात्रिके समय बाहर निकलही नहीं सकता। एवं दिनमें भी कुछ चलनेके समय कुछ बाधा पहुँचती है। लिखने-पढ़नेमें तो अनेक वर्षों तक कष्ट नहीं होता। ५० वर्षकी आयु होने पर लिखने-पढ़नेमें प्रतिबन्ध होने लगता है। पश्चात् कुछ वर्षोंमें दृष्टि बिल्कुल चली जाती है। इस रोगसे पीड़ित कितनेक रोगियोंको दृष्टिमणिके बीचके भागमें अपारदर्शकता आजाती है। इससे उनको मध्यस्थ मोतियाबिन्दु होता है। ऐसे रोगी दिनमें भी अधिक प्रकाशमें कम देख सकते हैं। अतः ऐसे रोगियोंको दो प्रकारकी आपत्ति आती है। सायंकाल होनेपर चलनेमें और दिनमें अधिक प्रकाशमें लिखने-पढ़नेमें कष्ट होता है।

यह रोग जहां होता है, वहां पर एक ही कुटुम्ब, एकही माता-पिता के एकसे अधिक संतानोंको होता है। हमने एक कुटुम्बके, एकही माता-पिताके ७ लड़के और ३ लड़कियां देखी थीं। इनमेंसे २ लड़के और ३ लड़की रतौंधीसे पीड़ित थे। उन संतानोंके ७ ताऊ-चचे और २ भुआ थे। उनमेंसे २ चचोंको रतौंधी थी। दोनों भुआंकी दृष्टि ठीक थी। इस तरह कितनेक कुटुम्बोंका निरीक्षण करनेके पश्चात् ऐसा निश्चय किया है कि, यह रोग स्त्रियोंकी अपेक्षा पुरुषोंमें अधिक फैलता है। यूरोप और अमेरिका के निष्णात नेत्रवैद्योंने ऐसा निर्णय किया है कि, इस रोगका सम्बन्ध सगोत्र विवाहके साथ अधिक है। भारतीय हिंदु समाजमें सगोत्र विवाहका घोर निषेध है। इतनाही नहीं, किञ्चित् सम्बन्ध हो, तो वहां पर कन्या व्यवहार नहीं करते। इतना होने पर भी यह रोग हिन्दुओंमें भी दृष्टिगोचर होता है। अतः उक्त निर्णयको पूरा आधार नहीं मिलता।

लक्षण और चिह्न—इस रोगका उपर्युक्त एक ही लक्षण मुख्य यह है कि, कम प्रकाशमें और रात्रिको रोगी नहीं देख सकता; अर्थात् रतौंधी इसका मुख्य लक्षण है। यदि मध्यस्थ मोतियाबिन्दु हो जाय, तो ही अधिक प्रकाशमें दृष्टि कम होती है। रोगीको चलने-फिरनेमें कष्ट होता है। लिखने-पढ़नेमें बिल्कुल बाधा नहीं पहुँचती। जब रोग अत्यधिक बढ़ जाय और ५५-६० वर्ष की आयु हो जाय, तब मध्यदृष्टिका नाश हो जाता है।

चिह्न—बाहरसे देखने पर कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता। रोग आगे बढ़ने पर कनीनिका संकोच होनेमें कुछ शिथिलता आती है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर नेत्रदर्पणमें काला रंग निर्माण हुआ और फैला हुआ भासता है। इस रंगकी रचना विशेष प्रकार की होती है। मकड़ी के जाले या मनुष्य की अस्थिके सूक्ष्म भाग की रचना अणुवीक्षण यन्त्रसे जैसी दीखे, वैसी रचना नेत्रदर्पण पर इस रंग की दीखती है। कितनेक रोगियों में इस रचना के बदले में नेत्रदर्पण पर गोल आकार के असंख्य काले दाग हो जाते हैं। इस रंगकी उत्पत्ति रोगारम्भ में नेत्रदर्पण के परिधि प्रान्त में होती है। फिर रोग बढ़ने पर वह मध्य भागकी ओर गति करता जाता है। रोग अधिक बढ़ जाने पर बिल्कुल दर्शननाड़ी के सिरे तक पहुँच जाता है। नेत्रदर्पण की धमनियां इस रंग के नीचे दब जाती हैं। कारण, यह रोग धमनियों वाले आवरण के भीतर के पर्त में होता है।

दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र से जांच करने पर प्रारम्भ में परिधि भाग का क्षेत्र एवं मध्य भाग का क्षेत्र भी योग्य ही होता है। केवल इन दो भागों के बीच में एक गोलाकार अन्ध प्रदेश दीखता है। रोग बढ़ता है, तब परिधि का क्षेत्र भाग भी अन्ध हो जाता है। फिर अन्तमें रोग अति प्रबल हो जाने पर बीच में केवल छोटा भाग ही दृष्टिमय रहता है। इसके अतिरिक्त इस दृष्टिक्षेत्र में प्रकाशकी दृष्टिसे भी अन्तर होता है। यदि दृष्टिक्षेत्र पूरे प्रकाश में नापा जाय, तो बहुत अन्तर नहीं भासता। किन्तु कम प्रकाशमें अन्धों का दृष्टिक्षेत्र हो, उससे इस रोग पीड़ितों का बहुत कम प्रतीत होता है। रोग अधिक बढ़ जाने पर नेत्रदर्पणके बहुत भागकी अपक्रान्ति हो जाती है। एवं दर्शननाड़ी का सिरा भी अधिक श्वेत और अपक्रान्ति से प्रभावित हो जाता है। सब ओर से विचार करने पर यह रोग नेत्रदर्पण के दृष्टिवटकों की अपक्रान्ति और उस स्थान पर रंगकी वृद्धि होने से होता है।

कारण—इस रोग का हेतु अभी अज्ञात है। मातापिता के रजवीर्य के भीतर कुछ विक्रिया होने पर यह रोग गर्भावस्था में ही उत्पन्न हो जाता है, यह निश्चित है। किन्तु यह विक्रिया किस प्रकारकी है, कैसे संयोगों में उत्पन्न होती है, यह अविदित है। यदि मातापिता के रोग में से यह रोग आता हो, तो सब संतानों को मिलना चाहिये। किन्तु किसी को ही मिलता है, ऐसा क्यों होता है? सामान्यतः अनुमान होता है कि गर्भ धारण काल में मातापिता की मानसिक स्थिति में कोई खास अन्तर होने से इस रोग की संप्राप्ति होती होगी।

सगोत्र सम्बन्ध को पाश्चात्यवासी कारण मानते हैं। यह कारण हिन्दुसमाज में नहीं है। अतः उसे सिद्ध नहीं मान सकेंगे।

क्रम—इस रोग का प्रारम्भ १०-१२ वर्ष की आयु में होता है, दोनों नेत्रों में होता है। प्रारम्भ में रतौंधी होती है। फिर शनैः-शनैः बढ़ता है। कुछ वर्षों के बाद दिन में फिरने में भी बाधा होती है। अन्त में पूर्ण अन्धता आ जाती है।

उपचार—इस रोग पर अनेक उपचार दर्शाये हैं। अनेकोंका प्रयोग होगया है। किन्तु नेत्ररोगके पाठ्य और माननीय ग्रन्थोंमें एक भी प्रयोग को सफल रूपसे नहीं दर्शाया है। अतः इस रोगका उपाय नहीं है, ऐसा कहें तो चल सकेगा। कुछ ७–८ वर्षोंसे हम सोडियम थियोसल्फेट क्षारके ४ प्रतिशतके प्रवाहीके आध सी० सी० के अन्तःक्षेपण नेत्रगोलकके पिछले हिस्सेमें सप्ताहमें एक बार करते हैं। उससे अनेक रोगियोंकी दृष्टिमें सुधार होनेका अनुभव हुआ है। रोग अधिक पुराना होनेपर नेत्रदर्पणमें परिवर्तन वर्षोंसे होता रहता है। उस पर यह उपचार कमसे कम एक वर्ष पर्यन्त चालू रखा जाय, तो ही सन्तोषप्रद परिणाम आता है। भारतीय लोग अधिक शिक्षित या दृढ़ निश्चयी न होनेसे उतने दीर्घकाल पर्यन्त उपचार कराने वाले नहीं मिलते। कुछ सुधार होने पर प्रायः रोगी उपचार बन्द करा देता है। परिणाममें नेत्रकी स्थिति पुनः पूर्ववत् हो जाती है।

आ. श्वेतबिन्दुसह नेत्रदर्पणप्रदाह—नक्तान्ध्य।

(Retinitis Pigmentosa—Sine Pigmento or Retinitis Punctata Albescens)

इस रोगमें लक्षण और क्रम रंगबिन्दु सह प्रदाहसे मिलते हैं। केवल नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर काले रंगकी उत्पत्ति नहीं भासती। शेष सब चिह्न—नेत्रदर्पणकी धमनियोंका संकोच और अपकर्ष, दर्शननाड़ीके सिरे का अपकर्ष आदि स्पष्ट प्रतीत होते हैं। इस प्रकारके प्रदाहमें समस्त नेत्र-दर्पण पर सफेद रंगके गोल छोटे-छोटे ज्वारके दानेके जैसे बिन्दु निर्माण होते हैं।

उपचार—कुछ भी नहीं है।

इ. अन्धतासह कौटुम्बिक मूढ़ता।

(Amaurotic Family Idiocy—Tay-Sach's disease)

चित्र नं० १३४ देखें। यह व्याधि एकही कुटुम्बमें एकाधिक संतानों को होती है, प्रायः बालक १ वर्षका होनेके पहले रोगारम्भ हो जाता है।

जन्मके समय बालक बिल्कुल स्वस्थ और दृढ़ होता है। ६-८ मास तक वैसी ही स्थिति रहती है, खेलनेके खिलौने तथा माता या धायकी ओर पूरा लक्ष्य रखता है। शनैः-शनैः इन सब पर से लक्ष्य कम होता है। कुछ मास जाने पर बालक बिल्कुल बुद्धिशून्य हो जाता है। शनैः-शनैः हाथ-पैरोंकी मांसपेशियां शिथिल होती हैं। जो बालक पहले हाथ-पैर उछालकर आनन्दसे खेलता था, वह अशक्त होकर एक पुतलीके सदृश पड़ा रहता है। दृष्टि शनैः-शनैः कम होकर अन्तमें बन्द हो जाती है। गोलक सतत चलते-रहते हैं। नेत्रमें टेढ़ापन भासता है। धीरे-धीरे बालक गलता जाता है और दूसरे वर्षकी समाप्तिके पहले मरणके शरण हो जाता है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर प्रारम्भमें कुछ भी अन्तर नहीं भासता। रोग बढ़ने पर पीतबिन्दुके स्थान पर एक सफेद सामान्य फैला हुआ बड़ा दाग प्रतीत होता है। यह दाग दर्शननाड़ीके सिरेसे लगभग दूने कदका होता है। उस दागके मध्यमें एक लाल छोटा दाग होता है। रोग और बढ़ने पर दर्शननाड़ीके सिरेकी अपक्रान्ति होती है।

मरणोत्तर परीक्षाके परिणाममें मस्तिष्कमें कितनेक परिवर्तनों की प्रतीति होती है।

कारण—यह रोग यहूदी लोगोंमें अधिक होता है, ऐसा यूरोपके नेत्र-वैद्योंका लेख है। इसका मुख्य कारण एक ही प्रकारके रुधिरके स्त्री-पुरुषोंका विवाह है। ऐसे कुटुम्बों के संतानों में ही प्रायः यह रोग होता है, यह कारण सत्य हो, तो हिन्दु बालक इससे मुक्त रहना चाहिये। हमारे अनुभव में भी ऐसा ही आया है। इस नियम में हिन्दु शास्त्रकारों की दीर्घ दृष्टि और विशाल ज्ञान की प्रतीति क्या नहीं होती ?

उपचार—औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः।

ई. मध्यस्थ नेत्रदर्पणका अपकर्ष।

(Central Tapeto – Retinal Degeneration)

उपर्युक्त रोग के सदृश रोग ६-७ वर्ष की आयु के बालकों को होता है। चिह्न लगभग समान होते हैं। अन्तर इतना ही है कि, दर्शननाड़ी का क्षय अधिक आगे नहीं बढ़ता। पीतबिन्दु के स्थान पर सफेद दाग और उसके भीतर ईंट के रंग का दाग होने के बदले में पीला बड़ा दाग होता है। उस पर काले रंग के सूक्ष्म बिन्दु होते हैं।

अन्तमें रोगी अन्धा हो जाता है। यदि यह रोग १२ वर्ष की आयु में हो जाय, तो बुद्धि की मन्दता नहीं होती।

उ. मस्तिष्क और पीतबिन्दु का अपकर्ष।

(Familial Cerebro macular Degeneration and Macular degneration.)

इस रोग में मस्तिष्क विकृति दर्शक लक्षण ६ वर्ष की आयु में और नेत्रदर्पण की विकृति दर्शक चिह्न लगभग १३ वर्ष की आयु में उपस्थित होते हैं। पीतबिन्दु के क्षय के चिह्नों के साथ पक्षाघात अन्धता और उन्माद के लक्षण भी उपस्थित होते हैं। यह रोग दोनों नेत्रों में होता है।

उपचार—कुछ भी नहीं है।

४. नेत्रदर्पणकी आगन्तुक व्यथा।

(Injuries of Retina)

इसके ३ प्रकार हैं। अ. नेत्र पर मूढ़मार जनित पीतबिन्दुका शोथ (Commotio Retinae); आ. नेत्रदर्पणके घाव (Penetrating wound of Retina); इ. नेत्रदर्पणमें चीरे (Tears in Retina)।

अ. मूढमार जनित पीतबिन्दु शोथ।

(Commotio Retina)

इस प्रकारकी चोट प्रायः टेनिसके खिलाड़ियोंके नेत्रपर रबरकी गेंद लगने पर होती है। इस चोटसे नेत्रमें अन्य कुछ भी अन्तर नहीं होता। केवल दृष्टि बहुत कम हो जाती है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करनेपर पीतबिन्दुका रंग सफेद भासता है। उसके बीचमें एक लाल बिन्दु प्रतीत होता है। इसी प्रकारका देखाव नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनीके अवरोधमें भी होता है। अन्तर केवल यही है कि, धमनीके अवरोधमें दृष्टि अधिक कम होती है। छोटी धमनियां आकुंचित या अतिशय छोटी बनी हुई तथा नेत्रदर्पण निस्तेज प्रतीत होता है। इस स्थितिमें दृष्टि कम होती है, वह कुछ ही दिनोंमें शोथ दूर होनेपर पुनः ठीक हो जाती है। फिर दृष्टिमें कुछ भी बाधा नहीं रहती।

उपचार—यथार्थमें किसी उपचारके बिना ही यह स्थिति सुधर जाती है। फिर भी रोगीके सन्तोषके लिये नेत्रपर शीतल जलके फोहे रखें। नेत्रको आराम देवें। रोगीको चिन्तामुक्त करनेके लिये निद्राप्रद औषध देवें।

आ. नेत्रदर्पणके घाव।

(Penetrating wounds of Retina)

नेत्रपर किसी नोकदार शस्त्रके लगजाने पर तथा पिछली ओर नेत्र

बाह्यपटलमें छेद करनेकी शस्त्रक्रियाके परिणाममें नेत्रदर्पण पर घाव होता है। यदि घावसे कोई धमनी या शिरा कट जाय तो नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव होता है। वह न हो तो जहां पर घाव हुआ हो वह रक्तसे भर जाता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखनेपर घाव वाले स्थान पर एक सफेद रेखा दीखती है। प्रायः दृष्टिमें कुछ भी बाधा नहीं पहुँचती।

उपचार—नेत्रमें मर्क्युरोक्रोमकी बूंद डालकर पट्टी बांध देवें। नेत्र पर शोथ न आनेके लिये सल्फाडायाझिन की टिकिया खिलावें।

३. नेत्रदर्पणके चीरे।

(Tears in Retina)

इस प्रकारके चीरे आघात होनेपर और बिना आघातसे भी होते हैं। चोटमें गोलकको धक्का लगनेपर चीरे पड़ते हैं। जिनको जलाशय-बावड़ी, तालाब आदिमें ऊंचेसे कूदनेकी आदत होती है, उनको जलका आघात लगकर नेत्रदर्पण पर चीरे हो जाते हैं। इनके अतिरिक्त गोलक यदि बड़ा हो (ह्रस्वदृष्टिमें) और रोगी कोई भारी बोझ को उठावे या जोरसे बोले या जोरसे छींक या खांसी आवे तो उनसे भी नेत्रदर्पण फट जाता है।

परिणाम—नेत्रदर्पणके चीरेके परिणाममें नेत्रदर्पणका विच्छेद होता है। इसका वर्णन आगे विच्छेदके विवेचनमें किया है।

५. नेत्रदर्पणके अर्बुद।

(Tumours of Retina)

इसमें ३ प्रकार हैं। तीनोंका वर्णन क्रमशः करते हैं।

अ. संवेदक और संचालक वातनाड़ी ग्रन्थि।

(Glioma of Retina)

चित्र नं० १३५ देखें। इस प्रकारका अर्बुद विशेषतः छोटे बच्चों को होता है। क्वचित् जन्मसे ही होता है। किन्तु विशेषतः ३ वर्षकी आयुमें और आधेसे अधिकों को २ वर्षकी आयुमें होता है। १० वर्षकी आयुके बाद कचित् ही होता है। १५ वर्षकी आयुके पश्चात् तो बिल्कुल नहीं होता। कभी कुटुम्बमें एकाधिक बालकों को हो जाता है किसी-किसीको दोनों नेत्रोंमें होता है। विशेषतः एकही नेत्रमें होता है। रोगी बालक होनेसे प्रारम्भमें उसका पता कचित् ही लगता है। कारण, इस रोगमें प्रदाह या पीड़ा नहीं होती। मातापिता, इसमें भी माता सुचतुर हो, तो बालक की दृष्टि कम होती जाती है, ऐसा कदाच जान सकती है; अथवा उसे कनीनिका

के भीतर श्वेताभ पदार्थ प्रतीत होता है। इस परसे कुछ रोग होनेकी कल्पना कर सकती है। उस समय यदि बच्चेको नेत्रवैद्यके पास लेजायँ, तो नेत्रपरीक्षा करने पर उसकी सच्ची स्थितिका पता चल जाता है।

इस रोगका प्रारम्भ अति शनैः-शनैः होता है। पहले नेत्रदर्पणके गर्भ-भागमें एक छोटा कुछ दूरी तक फैला हुआ अर्बुद बनता है। कुछ समयके पश्चात् नेत्रदर्पणका विच्छेद होता है; अर्थात् नेत्रदर्पण मध्यपटलसे मुक्त हो जाता है। यह ग्रन्थि काँचरूप रसकी ओर या मध्यपटलकी ओर बढ़ने लगती है। प्रारम्भमें तारामण्डल या तन्तुमय समूहका प्रदाह नहीं होता, काँचरूप रसकी अपारदर्शकता भी नहीं होती, एवं तारामण्डलके किनारेका संकोच भी नहीं होता। किन्तु जैसे-जैसे ग्रन्थि बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे लक्षण भी बढ़ते जाते हैं। अनुपंगी अधिमन्थका देखाव, यह चिह्न ही अनेक रोगियोंका लक्ष्य खींचता है। नेत्रमें पीड़ा होती है। ग्रन्थि शनैः-शनैः बढ़ने पर गोलकके बाहर फूटकर निकलती है। एक ओर दर्शननाड़ीके मार्गसे मस्तिष्ककी ओर तथा दूसरी ओर नेत्रगृहकी अस्थिकी ओर गति करता है। नेत्रगोलकके बाहर फूटकर निकलने पर अतिवेगसे बढ़ता है, फिर फूलगोभी के समान अलग-अलग गुण्डीरूप दीखता है। उनमेंसे शोणितस्राव होता है। कितनाक भाग सड़ता है, जिससे दुर्गन्ध निकलती रहती है।

प्रारम्भमें नेत्रदर्शकयन्त्रसे देखने पर एकाध स्थानमें नेत्रदर्पणका विच्छेद और उसके नीचे अर्बुद भासता है। ऐसा देखाव सर्वदा स्पष्ट नहीं दीखता। अनेक बार मध्यपटलके क्षयजन्य अर्बुदसे पृथक् करना कठिन हो जाता है।

क्रम—इस रोगकी चार अवस्था हैं। प्रथमावस्थामें नेत्रसे बाहर कुछ भी चिह्न नहीं दीखते। प्रदाह, लाली या वेदना कुछ भी नहीं होते। केवल कनीनिकामें कुछ पीताभ या श्वेताभ प्रकाश प्रतीत होता है और दृष्टि कम होती है या नष्ट होती है। द्वितीयावस्थामें नेत्रान्तर दबाव बढ़जाता है। नेत्रमें लाली और वेदना होती है। तृतीयावस्थामें ग्रन्थि नेत्रके बाहर निकलकर बढ़ने लगती है। एवं पिछली ओर दर्शननाड़ीमें तथा उसके भी पीछे की ओर बढ़ती है। चतुर्थावस्थामें पलकके बाहर एक बड़ा क्षत होकर उसमेंसे रक्तस्राव होता है; तथा अर्बुदका आकार फूलगोभीके समान भासता है। पिछली ओर मस्तिष्कमें प्रवेश करता है। मस्तिष्कके अतिरिक्त भागोंमें यह अर्बुद नहीं होता।

परिणाम—रोगीका शरीर निर्बल होता जाता है। मस्तिष्क प्रदाहके

हेतुसे उत्तरोत्तर निर्बलता बढ़कर मृत्यु हो जाती है। ग्रन्थिका प्रारम्भ होनेसे मृत्यु तक १-२ वर्ष लग जाते हैं।

उपचार—इस रोगमें एक भी उपचार सफल नहीं होता। यदि समय होते हुए नेत्रको निकाल दिया जाय, तो जीवन बच जाता है। नेत्र तो जाता ही है, उसे तो बचाने का कोई रास्ता नहीं है। शीघ्र नेत्र न निकाला जाय तो मस्तिष्क की ओर ग्रन्थि बढ़ जाने पर फिर मृत्यु ही होती है।

गोलक निकाल देने के पश्चात् गहराईके भागमें क्ष किरणकी चिकित्सा करानेके लिये रोगी को योग्य स्थान पर भेज देना चाहिये। अन्यथा ग्रन्थिविष जो शेष रहा हो, उससे रोग का पुनराक्रमण हो जायगा। इतना ही नहीं, रोगी और उसके सम्बन्धी वर्ग उपचार करनेवाले नेत्रवैद्य पर दोषारोपण करेंगे।

आ. नेत्रदर्पणके अन्य दुष्ट अर्बुद।

(Other Malignant Tumours of Retina)

नेत्रदर्पण में अन्य दुष्ट अर्बुद—मांसार्बुद (Sarcoma) आदि क्वचित् हो जाते हैं। ऐसा होने पर उनकी चिकित्सा उपरोक्त वातनाड़ी ग्रन्थिके समान करनी चाहिये।

इ. नेत्रदर्पणका रसार्बुद।

(Cysts of Retina)

इस प्रकारके रसार्बुद वृद्धावस्थामें नेत्रदर्पणके परिधिमें और युवावस्थामें मध्यभाग में होता हुआ दृष्टिगोचर होता है। इस अर्बुदका निर्णय सरलता से नहीं होता। इससे उपचार अति कठिन है।

६. नेत्रदर्पणमें रक्तवाहिनीवृद्धि और स्थलीनिर्माण।

(Angionatosis of Retina; Von Hippel's disease; Lindau's disease)

इस रोग (चित्र नं० १३६) का वर्णन प्राचीन ग्रन्थोंमें नहीं मिलता। नव्यग्रन्थ तथा अमेरिकन और अंग्रेजी मासिकों में इस रोगसे पीड़ितों का वर्णन आता है। उनके आधारसे इसे यहाँ स्थान दिया है।

इस रोगमें नेत्रदर्पण की धमनी और शिराएँ फूल जाती हैं और उनमें छोटी-छोटी बैलियोंके समान उभाड़ दीखते हैं। यह रोग प्रायः नेत्रदर्पणकी परिधिकी रक्तवाहिनियों में होता है। यह रोग वंशागत है, ऐसा

अनुमान होता है। कारण, जिन रोगियोंमें यह रोग प्रतीत होता है, उनके माता-पिताओं को. यह रोग होनेका विदित हुआ है। यह रोग किसी भी

चित्र नं० १३६

अवस्था में होता है। बालक, युवा, वृद्ध, सबको होता है, तथापि ३० वर्ष की आयुके बाद अधिक परिमाण में होता है। पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक होता है। रोग एक या दोनों नेत्रोंमें होता है।

लक्षण—इस रोगके मुख्य ३ लक्षण हैं। दृष्टिमें न्यूनता, दृष्टिक्षेत्रका ह्रास और शिरदर्द।

चिह्न—नेत्रगोलककी परीक्षा करने पर रोगारम्भमें कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। रोग आगे बढ़ने पर कनीनिका का किनारा मुड़ा हुआ, अधिक मोटा और काला बनता है। तारामण्डल निस्तेज होता है। जलमय रसका पूर्वखण्ड सँकड़ा होता है। नेत्रान्तर दबाव बढ़ता है। फिर उस हेतुसे शुक्लमण्डल निस्तेज, कनीनिका का प्रसारण, नेत्रमें लाली आदि आशुकारी अधिमन्थ के लक्षण उपस्थित होते हैं। कभी-कभी कनीनिकामें पीताभ-प्रकाश प्रतीत होता है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर प्रारम्भमें परिधि भागकी एकाध शिरा बड़ी और टेढ़ी-मेढ़ी सर्पगति सदृश भासती है। इसमें एकाध स्थानमें छोटी सलाई या बुदबुदा उठा हो, ऐसा दीखता है। रोग बढ़ने पर धमनी से भी ऐसा ही अन्तर हो जाता है। या रोग अधिक बढ़ने पर नेत्रदर्पणके परिधि भागमें एक लम्बगोल या गोल दाग, उभड़ा हुआ लाल रंगका

दीखता है। उस दागमें धमनी और शिराका आवागमन होता है। अधिक [illegible] होने पर उसी प्रकारके छोटे दाग हो जाते हैं। जहां पर दाग हो वहां [illegible] वच्छेद होजाता है। यदि विच्छेद न हुआ हो तो उस स्थान पर एक सफेद स्रावमय दाग उठ आता है। ऐसा दाग पीतबिन्दु पर हो तो वह नक्षत्राकार होता है। कितनेक रोगियोंमें दर्शन-नाड़ीके सिरे पर शोथ आता है। यह रोग जैसे-जैसे अनेक स्थलों पर होता है, वैसे-वैसे नेत्रदर्पणका विच्छेद बढ़ता जाता है। यदि विच्छेद न होजाय, तो जलके बुदबुदे जैसी छोटी बड़ी ग्रन्थियां बनती हैं। यदि स्फीत शिरामें से कोई फूटती है, तो नेत्रमें बहुत रक्तस्राव होता है। एवं आशुकारी अधि-मन्थके सब लक्षण और चिह्न उपस्थित होते हैं।

इस रोगमें रोगीकी पूर्ण परीक्षा करनी चाहिये। क्योंकि, जो स्थिति नेत्रदर्पणमें होती है, वही मस्तिष्कके कितनेक भागोंमें भी होती है।

रोगविनिर्णय—इस रोगसे मिलती स्थिति मुख्यतः नेत्रदर्पणके वात-नाड़ी ग्रन्थिमें प्रतीत होती है। अतः इस रोगको लक्ष्यमें न रखा हो तो वातनाड़ी ग्रन्थि मानकर नेत्रको निकाल देनेकी भूल हो सकती है। यदि रोगी प्रारम्भावस्थामें ही आजाय, तो रोगका सच्चा निदान संभवित है। रोग बहुत बढ़ गया हो, तो सच्चा निर्णय नहीं हो सकता।

परिणाम—इस रोगके हेतुसे नेत्रदर्पणका विच्छेद और रक्तस्राव भी होता है। अतः रोगारम्भमें ही योग्य उपचार न किया जाय, तो नेत्रदृष्टि निःसन्देह चली जाती है। यदि रक्तस्राव हुआ हो और उस हेतुसे अनुषंगी अधिमन्थ भी होगया हो, तो नेत्रको बचाना कठिन है।

उपचार—रोगी बहुत जल्दी नेत्रवैद्यके पास आया हो और नेत्रवैद्यको रोगका निर्णय होगया हो तो कदाच गहरे क्ष किरणसे या रेडियमसे नेत्र को बचा सकते हैं और रोगको वश कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपचार सफल नहीं होता।

७. नेत्रदर्पण विच्छेद।

(*Detachment of Retina*)

नेत्रदर्पण दर्शननाड़ीके सिरेके पास और आगेके हिस्सेमें, इस तरह दो स्थानोंमें दृढ़ चिपका हुआ है। अन्य भागोंमें इतना दृढ़ न होनेसे सरलतासे मुक्त होजाता है।

लक्षण और चिह्न—नेत्रदृष्टिमें तुरन्त परिवर्त्तन होजाता है, रोगीको प्रतीत होनेवाली वस्तुओंकी आकृति विकृत भासती है। नेत्रके आड़े काला

पर्दा आगया हो ऐसा रोगीको भास होता है, कभी नेत्रके पास काले पतंग उड़ते हों, ऐसी प्रतीति होती है। यदि पीतबिन्दु और उसके चारों ओरका भाग चिपका हो तो लिखने-पढ़नेमें विशेष कठिनाई नहीं पड़ती।

विच्छेद नेत्रदर्पणके किसी भी भागमें हो सकता है, किन्तु वह विशेषतः ऊपरके भागमें प्रारम्भ होता है और कुछ समय जाने पर वह निम्न भागमें भासता है। कारण, रसस्राव गुरुत्वाकर्षणके हेतुसे निम्न भागमें चला जाता है। फिर वहां विच्छेद होजाता है और ऊपरका विच्छेद वाला भाग पुनः चिपक जाता है।

यदि पेरीमीटरसे दृष्टिक्षेत्र नापेंगे, तो कितनेक भागका नाश विदित होता है। यदि नेत्रदर्पणका निम्न भाग नष्ट होता है, तो दृष्टिक्षेत्रका ऊर्ध्व भाग मारा जाता है। विच्छेद नया तुरन्तका और नेत्रदर्पण अच्छी स्थिति में हो तो प्रतीत पदार्थ सब मंद दीखेंगे। किन्तु कुछ दिन व्यतीत होने पर नेत्रदर्पण में अन्तर होता है। फिर दृष्टि मंद होनेके बदले उस भागमें से बिल्कुल निकल जाती है। जब विच्छेद पूर्ण नेत्रदर्पणका हो, तब अंधकार-प्रकाशके अतिरिक्त अधिक नहीं दीखता।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर जिस भागका विच्छेद हुआ होगा, उस भागमेंसे धूसर प्रकाश आता हुआ भासता है। यह प्रकाश आरोग्य स्थितिमें हो उसकी अपेक्षा नेत्रदर्पणके कुछ आगेके हिस्सेमें से आता है। रोगी नेत्रगोलकको चलाता है, तो इस प्रकाशमें तरङ्गवत् गति होती है। इस प्रकाश वाले भागपर से नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियां निकलती हैं, उसका रंग लाल होनेके स्थानमें कृष्णाभ दीखता है। एवं इधर-उधर नेत्रदर्पणके सिलवटमें आजानेके हेतुसे अदृश्य होती हुई या टूटती हुई भासती है।

आधुनिक नूतन अनुसंधानके परिणाममें विदित हुआ है कि नेत्र-दर्पणके विच्छेदके कितनेक रोगियोंके नेत्रदर्पणमें चीरा प्रतीत हुआ है। चित्र नं० १३७ देखें। उस चीरेमें से प्रवाही नेत्रदर्पणकी २ वृत्तिके बीचमें प्रवेश करके विच्छेद कराता है। उस चीरेकी परीक्षाके लिये विशेष प्रकारके यन्त्र बने हैं। विशेषतः बाहरसे अर्थात् बाह्यपटलमें से गोलकमें प्रकाश प्रवेश करानेवाले यन्त्रसे जांच की जायगी, तो चीरा कहां पर है, वह विदित होगा।

उपचारके वर्णनमें कहा जायगा कि चीरेका स्थान निर्णित हो, तो किये हुए उपचारसे परिणाम अच्छा आनेकी संभावना है।

ये चीरे और उनके स्थान बाहरसे प्रकाश डालने वाले यन्त्रके अति-

रिक्त नेत्रदर्शक यन्त्र तथा अन्य प्रकारके विशेष यन्त्रसे भी अवगत होते हैं। अतः नेत्रवैद्यको चाहिये उनके स्थानके निर्णयार्थ पूरा प्रयत्न करें।

कारण—१. लघु दृष्टि; २. नेत्रपर चोट लगना; ३. मध्यपटलकी ग्रन्थि; ४. मध्यपटलका स्रावमय प्रदाह; ५. वृक्कप्रदाह; ६. नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियों की स्फीति; तथा ७. किसी भी ज्ञात कारण रहित, ये सब नेत्रदर्पणके विच्छेदक हेतु हैं।

१. लघुदृष्टि—लघुदृष्टि जब अधिक होती है, तब नेत्रगोलक लम्बा, कांचरूप रस अधिक प्रवाही और मध्यपटलमें कितनाक परिवर्तन होता है (इसका विशेष विचार आगे २९ वें प्रकरणमें किया जायगा)। इन सब कारणोंसे कभी-कभी कुछ बल लगाने पर और कभी-कभी बिना कारण नेत्रदर्पणका विच्छेद हो जाता है। एक ब्राह्मण जो लघु दृष्टि वाला था। उसने अहमदाबादके स्टेशन पर अधिक भार वाली पेटी उठाई, जिससे उसकी नेत्रदृष्टि तुरन्त बन्द हो गई थी। बम्बईमें जब वह आंख दिखानेको आया, तब उसके एक नेत्रमें नेत्रदर्पणका विच्छेद प्रतीत हुआ था।

२. नेत्रपर चोट लगना—कभी नेत्रपर मूढ़मार लगने पर मध्यपटल और नेत्रदर्पणके बीच रसस्राव होनेसे नेत्रदर्पणका विच्छेद हो जाता है।

३-४. मध्यपटलके ग्रन्थि और मध्यपटलके स्रावमय प्रदाह—इन दोनों प्रकारोंमें उपद्रवरूप नेत्रदर्पणका विच्छेद हो जाता है।

५. वृक्कप्रदाह—इसके परिणाममें जब समस्त देहमें शोथ आ जाता है, तब कभी-कभी मध्यपटल और नेत्रदर्पणके बीचमें रसस्राव होकर विच्छेद हो जाता है।

६. नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियोंकी स्फीति—नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियां जब अधिक फूल जाती हैं तब विच्छेद हो जाता है। इसका उल्लेख 'नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियोंमें स्थलीनिर्माण' में किया है। यह विच्छेद एकाधिक स्थानों पर होता है। जब अधिक स्थानों पर विच्छेद होता है, तब परस्पर मिलकर बड़े भागका विच्छेद बन जाता है।

७. उपर्युक्त कारणोंका अभाव—सूक्ष्म निरीक्षण करने पर भी कितनेक नेत्रदर्पण विच्छेदके रोगियोंमें उपर्युक्त ६ में से एक भी कारण विदित नहीं होता। इसपरसे अज्ञात कारणकी कल्पना होती है।

रोगविनिर्णय—इस रोगका निर्णय करने के लिये मुख्य २ लक्षणों पर लक्ष्य देना चाहिये। रोगीका वृत्तान्त और नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा।

रोगीका वृत्तान्त प्रायः यह होता है कि, पहले नेत्रदृष्टि योग्य थी। भारी बोझा उठाने या जोरसे बोलने, जोरसे छींक आने अथवा वेगपूर्वक खांसी चलने के पश्चात् एक नेत्रके पास पर्दा लटकता हो, ऐसा दीखने लगा। यह पर्दा दृष्टिके कुछ भागमें ही होता है। ऐसा भी रोगी कहता है कि, वह पर्दा आँखके पास चलता हुआ भासता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर यही स्थिति प्रतीत होती है।

नेत्रदर्पणका विच्छेद होने पर नेत्रान्तर दबावका अधिक ह्रास हो जाता है। अतः इस रोगका संदेह होने पर नेत्रान्तर दबावका नाप कर लेना चाहिये। यदि सियोटज़के यन्त्रमें १० से नीचे और मेकलिनके यन्त्रसे १५ से कम हो, तो नेत्रदर्पणका विच्छेद निर्णीत होता है।

दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्रसे परीक्षा करने पर क्षेत्रके कितनेक भागमें अन्ध प्रदेश विदित होता है। इन तीनों परीक्षासे रोगका निदान हो जाता है। अनुभवी नेत्रवैद्य, जिसने विच्छेदके अनेक रोगियोंकी परीक्षा की हो, उसके लिये रोगनिर्णय अति सरलतासे हो जाता है।

नेत्रदर्पणके वातनाड़ी अर्बुदमें विच्छेदके सदृश चिह्न होते हैं, किन्तु वह ग्रन्थि छोटे बालकों को होती है और विच्छेद बड़ी आयुवालोंको होता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर दोनों स्थितियोंके दृश्योंमें भेद प्रतीत होता है। अतः निर्णय में विशेष कठिनाई नहीं होती, वह भी रोगनिर्णयमें सहायक चिह्न है।

परिणाम—विच्छेद फिरसे योग्य बैठ जाय, तो दृष्टि अच्छी हो जाती है। १५ वर्ष पहले इस रोगके उपचार अधिक असंतोषप्रद थे, जिससे उस समय अच्छा परिणाम क्वचित् ही आता था। वर्तमानमें इस रोग पर विविध शस्त्रक्रियासे उपचार किया जाता है। इससे परिणाम अतिशय अच्छा आता है। लघुदृष्टिके रोगियोंके अतिरिक्त रोगियोंमें ६०–७० प्रतिशत अच्छे होते हैं। अतः इस रोगके लिये १५ वर्षके पहले जो निराशाजनक अभिप्राय दिया जाता था, वैसा अब नहीं रहा। लघुदृष्टि वालोंमें शस्त्रक्रिया करने पर भी अनेकोंमें फिरसे विच्छेद हो जाता है। अतः उनके लिये आशापूर्ण अभिप्राय सम्हालपूर्वक देना चाहिये।

यदि योग्य उपचार करने पर भी सफलता न मिले या योग्य उपचार न करा सके, तो विच्छेद वाले नेत्रमें अनुपंगी कांचबिन्दु, तारामण्डलका

प्रदाह, तन्तुमय समूहका प्रदाह, गोलकका नरम हो जाना और अपक्रान्ति आदि स्थिति उत्पन्न होती हैं।

उपचार—१५ वर्ष पहले रोगीको २ मास तक बिछौने पर लिटाये रखते थे, प्रति दिन नमकके प्रवाहीके अन्तःक्षेपण गोलकके भीतर किये जाते थे। सोडा सेलिसिलास, मेगनेशिया सल्फेट और पोटास आयोडाइड आदि औषधियों का सेवन कराया जाता था। डियोनिनकी बूँद डालते थे तथा नेत्र पर पट्टी बांधते थे। उस समय १ से ५ प्रतिशत भाग्यवान रोगियों को लाभ पहुँचता था। कुछ अंशमें लाभ या क्वचित् पूर्ण लाभ होता था। शेष रोगियोंके नेत्र चले जाते थे।

फिर कितनेक नेत्रवैद्योंने बाह्यपटलमें शस्त्र द्वारा छेदकर भीतरके प्रवाहीको बाहर निकलने दिया। इस शस्त्रक्रियासे भी बहुत कम रोगियों को कुछ समयके लिये लाभ पहुँचा, जिससे वह क्रिया भी सर्वमान्य नहीं हुई।

१९३० ई० के लगभग गोनीन (Gonin), वोग्ट (Vogt), गिस्ट (Guist), लिण्डनर (Lindner) और शाफर (Schaffer), इन यूरोपीय नेत्रवैद्योंने भिन्न-भिन्न प्रकारकी शस्त्रक्रियाकी शोध की और अनेक रोगियों पर प्रयोग किया। इन क्रियाओंसे अनेक रोगी सुधर गये और परिणाम अच्छा आया। अब नेत्रदर्पणके विच्छेदके लिये प्रत्येक नेत्रवैद्य रोगियोंके नेत्र पर शस्त्रक्रिया सफलतापूर्वक कर सकते हैं और अनेकों को गई हुई दृष्टि वापिस मिल जाती है।

इन सब शस्त्रक्रिया का वर्णन आगे प्रकरण ३० में किया जायगा। यहाँ केवल इतना ही कहेंगे कि, शस्त्रक्रियासे अच्छे परिणाम की आशा तो ही रह सकेगी, यदि रोगी विच्छेद होने पर हो सके उतना जल्दी नेत्रवैद्यके पास पहुँच जाय और नेत्रवैद्य बिल्कुल समय व्यर्थ किये बिना शस्त्र क्रिया करने लग जाय। अनेक नेत्रवैद्योंके अनुसार ३ सप्ताह के भीतर यदि शस्त्र क्रिया की जाय, तो अच्छे परिणाम की आशा रख सकते हैं। फिर जितना समय अधिक जायगा, उतनी ही आशा कम होती जायगी। ६ मास हो जाने पर आशा अधिक नहीं रहती।

सूचना—शस्त्र क्रिया करनेके पहले प्रकाश की दिशा योग्य है या नहीं, इसका निर्णय कर लेना चाहिये।

८. जन्मलब्ध नेत्रदर्पण की न्यूनता।

(Congenital Anomalies of Retina)

नेत्रदर्पणमें जन्मसिद्ध खोट बहुत कम होता है। क्वचित् किसी-किसीमें नेत्रदर्पणके कुछ भागमें काले दाग उत्पन्न होते हैं।

इसके अतिरिक्त एक महत्वका परिवर्तन प्रतीत होता है। वह यह है कि, कइयोंमें दर्शननाड़ी का सिरा और उसका किनारा स्पष्ट नहीं होता। किनारेमें से प्रत्येक दिशामें बहुसंख्य रेखाएँ निकलती हों, ऐसा देखाव होता है। यह दृश्य नेत्रदर्शक यन्त्रसे जिनने देखा हो, वे नहीं भूल सकते। इस विकृति का कारण यह है कि, नैसर्गिक रीतिसे दर्शननाड़ीके तन्तु पर जो आच्छादन होता है वह केवल दर्शननाड़ीके सिरे तक होता है। शेष भागमें से अदृश्य हो जाता है; किन्तु इन रोगियोंमें यह आच्छादन दर्शननाड़ीके जो तन्तु, नेत्रदर्पण पर आते हैं, और वहाँ फैल जाते हैं, उनपर भी वह कायम रह जाता है। उस स्थिति को आच्छादनमय दर्शननाड़ी तन्तुके रेषे (Medulated Nerve fibers) कहते हैं। चित्रनं० १३८ देखें।

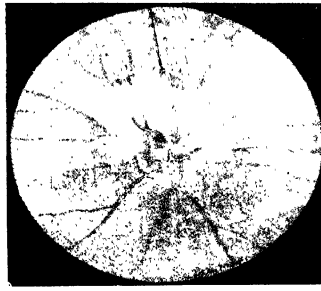

चि० १३८, पृ. ५७४
आवरणसह स्वाभाव दर्शन नाड़ी।

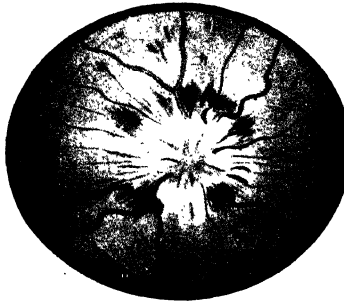

चि. १४०, पृ. ५७८
दर्शन नाड़ी के सिर का शोथ।

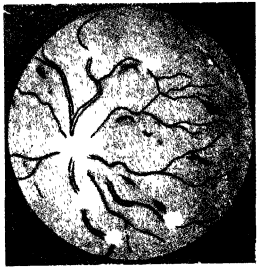

चि. १३९, पृ. ५७६
दर्शननाड़ीके सिरेका प्रदाह

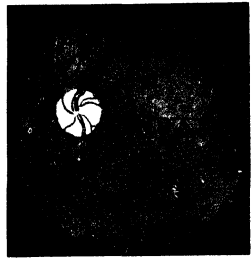

चि. १४१, पृ. ५८४
दर्शननाड़ीका प्राथमिक शोष।

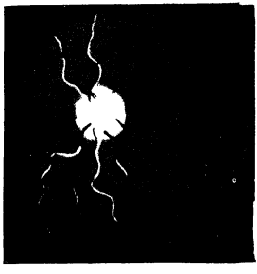

चित्र. १४२, पृ. ५८६

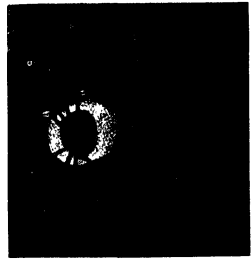

चि० १७५, पृ० ७५४

बीसवां प्रकरण ।

दर्शननाड़ी के रोग ।

(Diseases of Optic Nerve)

दर्शननाड़ीके रोगों का वर्गीकरण निम्नानुसार किया है:—

१. दर्शननाड़ी प्रदाह—

अ. दर्शननाड़ीके सिरे का प्रदाह—Optic Neuritis-Papillitis.

आ. दर्शननाड़ीके सिरे का शोथ—Papilloedema.

इ. पश्चिमा दर्शननाड़ी प्रदाह—Retro-bulbar Neuritis.

२. दर्शननाड़ी का शोथ—Atrophy of Optic Nerve.

अ. प्राथमिक—Primary atrophy.

आ. प्रदाहजनित—Inflammatory atrophy.

३. दर्शननाड़ी की आगन्तुक व्यथा—Injuries of the Optic Nerve.

४. दर्शननाड़ी के अर्बुद—Tumours of the Optic Nerve.

५. विषजनित अन्धता—Toxic Amblyopia.

अ. तमाखू जनित अन्धता—Tobacco Amblyopia.

आ. मद्यजनित अन्धता—Alcoholic Amblyopia.

इ. किनाइन जन्य अन्धता—Quinine Amblyopia.

ई. सेलीसिलसादिसे अन्धता—Amblyopia due to Salicylis and other drugs.

उ. सीसाविषजनित अन्धता—Lead poisoning Amblyopia.

६. जन्मलब्ध न्यूनताएँ—Congenital Anomalies of Optic Nerve.

१. दर्शननाड़ी प्रदाह।

(*Inflammation of the Optic Nerve*)

दर्शननाड़ीके प्रदाहके ३ प्रकार हैं। तीनोंका वर्णन क्रमशः करते हैं।

अ. दर्शननाड़ी शीर्षप्रदाह।

(Optic Neuritis—Papillitis)

चित्र नं० १३९ देखें। दर्शन नाड़ीका जो भाग नेत्रके भीतर आया है, उसके प्रदाहका वर्णन दर्शननाड़ी शीर्षप्रदाह रूपसे किया है। यह रोग अति गम्भीर है। यदि योग्य उपचारसे शमन न हो तो परिणाममें दृष्टिनाड़ी का क्षय होकर दृष्टि सदाके लिये दूषित होजाती है।

लक्षण—इस रोगमें मुख्य ३ लक्षण होते हैं। १. दृष्टिमें ह्रास; २. दृष्टिक्षेत्रका संकोच और अन्ध प्रदेशका बड़ा होना; ३. प्रकाश बोधका ह्रास।

दृष्टिमें ह्रास होना, यह मुख्य लक्षण है। इसी हेतुसे रोगी नेत्रवैद्यके पास आता है। यह न्यूनता सामान्य हो या अधिक हो। बहुधा इस रोगमें दृष्टि बहुत कम होजाती है। साथ-साथ अंधकार-प्रकाश परीक्षा में भी कमी आजाती है। परीक्षा-शक्ति बहुत कम होजाती है।

दृष्टिक्षेत्रमापक यंत्रसे जांच करने पर समस्त दृष्टिक्षेत्र आकुंचित भासता है और अन्ध प्रदेश, जो नैसर्गिक रीतिसे मात्र दर्शन नाड़ीके सिरा के पास ही रहता है, वह विस्तृत होजाता है।

चिह्न—नेत्रके बाहर कुछ भी परिवर्त्तन नहीं भासता। केवल कनीनिका कुछ चौड़ी हुई भासती है। एवं उस पर प्रकाश डालने पर चाहिये उतनी आकुंचित नहीं होती।

दर्शननाड़ीका किनारा, जो नैसर्गिक स्थितिमें स्पष्ट होता है, वह नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर अस्पष्ट भासता है। नेत्रदर्पणमें और विशेषतः दर्शननाड़ीके सिरेके ऊपरकी शिराएं फूली हुई और बड़ी हुई प्रतीत होती हैं। धमनियां कुछ छोटी और किञ्चित् अस्पष्ट दीखती हैं। दर्शननाड़ीके सिरे पर छोटे रक्तस्राव और रसस्राव होते हैं। दर्शननाड़ीके सिरेका रंग स्वाभाविककी अपेक्षा अधिक लाल होता है। नेत्रदर्पण और दर्शननाड़ीके बीच जो स्पष्टता रहती है, वह कम होजाती है। कितनेक समय नेत्रदर्पणका प्रदाह (Neuro-retinitis) भी साथमें होता है।

यह रोग प्रायः एक आंखमें होता है। कभी-कभी दोनों आँखोंमें उपस्थित होजाता है।

कारण—नेत्रदर्पण प्रदाह, तारामण्डल और तन्तुमय समूहका प्रदाह, नेत्रगोलकके भीतरके भागको चोट लगना, मस्तिष्क और मस्तिष्कावरणका प्रदाह, उपदंश, क्षय, वृक्कप्रदाह, जहरी बुखार, दांत, गलग्रन्थियाँ या नासिकाके पासके कोटरोंका प्रदाह होकर प्रवाहित विष द्रव्य और गर्भावस्था आदि कारणोंमें इस रोगकी उत्पत्ति होती है।

परिणाम—यदि इस रोगको प्रारम्भसे ही जान लिया जाय और उसके योग्य उपचारमे सफलता मिले तो प्रदाह शमन होजाता है। फिर दृष्टि बिल्कुल ठीक होजाती है। किन्तु उपचार निष्फल होजाय तो दर्शन-नाड़ीके सिरेका शोष होता है। फिर दृष्टि सदाके लिये कम होजाती है या चली जाती है।

उपचार—कारणानुरोधसे इस रोगकी चिकित्सा की जाती है। यदि उपदंश जनित रोग हो तो नियोसाल्वरसनके अन्तःक्षेपण करें और पारद कृति खानेके लिये दें। कितनेक नेत्रवैद्योंको ऐसा अनुभव मिला है कि, इस रोगमें नियोसाल्वरसनका अन्तःक्षेपण किया जाय तो दर्शननाड़ीका शोष होता है और रोगीको हानि पहुँचती है। किन्तु यह मत मिथ्या विदित हुआ है। अतः निर्भय रूपसे उपदंश जनित इस रोगमें उक्त अन्तःक्षेपण और औषधोंका प्रयोग करना चाहिये।

यदि अन्य किसी भागमें प्रदाह हो, तो उसे दूर करना चाहिये। दाँत, गलग्रन्थि, या कोटरोंका प्रदाह या पूय हो, तो उसकी चिकित्सा सबसे पहले करनी चाहिये। उस मूल रोगको दूर करने पर ही दर्शननाड़ी विकारमें लाभ पहुँच जाता है।

मस्तिष्क या मस्तिष्कावरण का प्रदाह, संक्रामक ज्वर आदि हेतु हों, तो उसका योग्य उपचार शीघ्र करना चाहिये। मस्तिष्क और उसके आव-रणका प्रदाह होने पर यदि दर्शननाड़ी के सिरे का प्रदाह हो जाय, तो परिणाम में उस नाड़ी का शोष होकर अनेक रोगियों की दृष्टि सदा के लिये चली जाती है।

दीर्घ दृष्टि वाले कितनेक व्यक्तियों के नेत्र की परीक्षा नेत्रदर्शक यन्त्र द्वारा करने पर दर्शननाड़ी के सिरे का देखाव ऐसा भासता है कि, जैसा प्रदाह से हो जाता है। किन्तु खास अन्तर यह होता है कि, इन नीरोगी दीर्घदृष्टि वालों की दृष्टि में कुछ भी न्यूनता नहीं होती। रक्तस्राव या रसस्राव

नहीं भासता। रुधिरवाहिनियों में कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। अतः इस स्थिति को दर्शननाड़ी शीर्ष का मिथ्या प्रदाह (Pseudo neuritis) कहते हैं।

आ. दर्शननाड़ी शीर्ष शोथ।

(Papilloedema)

चित्र नं० १४० देखें : इस रोग में दर्शननाड़ी के सिरे पर सूजन आ जाती है। इससे वह नेत्रदर्पण में आगे बढ़ा हुआ भासता है। यह शोथ या आगे बढ़ना कितनेक समय ८-९ नम्बर तक पहुँच जाता है। कितनेक समय दर्शननाड़ी के सिरे का देखाव नेत्रदर्पण के मध्यमें एक छत्रक (Mushroom) उत्पन्न होने के समान भासता है।

लक्षण—इस रोग में कितनेक समय लक्षण बिल्कुल नहीं होते। रोगी की दृष्टि में कुछ भी न्यूनता नहीं भासती। क्वचित् हो तो भी रोग के अनुपातमें बहुत कम। जब रोग अधिक समय तक रह जाता है, तब रोगीकी दृष्टि में गम्भीर न्यूनता आजाती है। कितनेक रोगियों को कुछ समय दृष्टि में मंदता भासती है; किन्तु फिर दृष्टि ठीक हो जाती है। इस तरह दिनमें कई बार होता है। दृष्टिकी न्यूनताके अतिरिक्त शिरदर्द, उबाक, चक्कर आना आदि भी रहते ही हैं, यदि रोगका कारण मस्तिष्ककी ग्रन्थि हो।

चिह्न—नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने के पहले नेत्रके बाहर अन्य भागों को देखना चाहिये। कनीनिकाके अतिरिक्त अन्य भागों में कुछ भी परिवर्तन प्रतीत नहीं होता। यदि दर्शननाड़ी के सिरे का शोथ नेत्रगृह के भीतर उत्पन्न हुई ग्रन्थिके हेतुसे हो, तो गोलक बाहर निकला हुआ भासेगा। कनीनिका कितनेक रोगियों में प्रसारित होती है, जिससे प्रकाश डालने पर संकोच होने में शिथिलता होती है। किन्तु कितनेक रोगियों में कनीनका पर कुछ भी असर नहीं होता।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर दर्शननाड़ी का सिरा आगे बढ़ा हुआ भासेगा। यह आगे कितना बढ़ आया है, इसका नाप हो सकता है। इसके नापकी २ रीति हैं। यदि रोगी की परीक्षा अप्रत्यक्ष (Indirect) रीति से की जाती हो, तो नेत्रवैद्य अपने बायें हाथ में पकड़ा हुआ + १३ का कांच कनीनिका से लगभग २ इञ्च दूर रखें। उसमें जब नेत्रदर्पण के सब भाग स्पष्ट दीखें, तब उस कांचको नीचे ऊपर चलावें। यदि दर्शननाड़ी का सिरा नहीं उभड़ा होगा, तो कांचके चलन-वलन से नेत्रदर्पण के अन्य भाग एक दूसरे से जितने दूर हों, उतने ही दूर रहेंगे। यदि सिरे पर शोथ होगा,

तो नेत्रदर्पणके अन्य भाग दर्शननाड़ीके सिरे से समीप या दूर सरकते हुए भासेंगे। इस विधि की परीक्षा में सिर उभड़ा है या नहीं, इतनाही विदित हो सकेगा। जो नाप किया जायगा वह अनुमान से होगा।

दूसरी रीति प्रत्यक्ष (Direct) परीक्षा की है। इस विधि से जाँच करने पर दर्शननाड़ीका सिरा कितना बढ़ा है, इसका योग्य नाप हो सकता है। इस विधि में नेत्रदर्शक यन्त्रको बिल्कुल नेत्रके के समीप रखें। उस यन्त्र पर नेत्रवैद्य अपनी आंख को व्यवस्थित करें। जब उसे नेत्रदर्पण का भाग प्रतीत हो, तब पहले स्पष्ट प्रतीत होने वाले भाग को देखें। फिर दर्शनतन्तु के सिरेको स्पष्ट देखने के लिये नेत्रदर्शक यन्त्रके चक्रमें काला+कांच फिराते रहें। जिस+कांच से सिरा स्पष्ट हो उतना+वह सिरा आगे बढ़ा हुआ है। सामान्य रोग में+३ तक आगे बढ़ता है। किन्तु विशेष बढ़े हुए रोग में+६ या+७ तक पहुँच जाता है।

दर्शननाड़ीके सिरेके आगे बढ़नेके अतिरिक्त परिवर्तन भी होते हैं। समग्र सिरा अस्पष्ट हो जाता है। उसपर भस्म जैसे रंगके छोटे-छोटे बिन्दु होते हैं। शिराएं अति फूली हुई और बड़ी बनी हुई तथा धमनियां सकड़ी और अस्पष्ट हो जाती हैं। क्वचित् नेत्रदर्पणमें किसी-किसी स्थानपर सूक्ष्म रक्तस्राव होता है। दर्शननाड़ीके सिरेके अतिरिक्त नेत्रदर्पणका भाग भी न्यूनाधिक सूज जाता है।

कारण—शोथ आनेके मुख्य कारण २ हैं। १. मस्तिष्कमें उत्पन्न ग्रन्थि या मस्तिष्क जलोदर (Hydro Cephalus) से दबाव वृद्धि होना; २. मस्तिष्कस्थ उपदंश, इनके अतिरिक्त मस्तिष्क क्षय, मस्तिष्क विद्रधि, मस्तिष्कावरणका शोथ, मस्तिष्क गत बड़ी शिराका अवरोध, वृक्कप्रदाह, पाण्डु, मस्तिष्कमें स्नायु (नारू), करोटी पर चोट लगना, करोटीकी अस्थिमें खोट और नेत्रगृहके ग्रन्थि आदि अनेक कारण माने गये हैं।

१. मस्तिष्कगत ग्रन्थि या जलोदरजनित दबावद्वृद्धि—मनुष्य की खोपड़ी हड्डीमें से बनी है। वह हड्डीमेंसे बना हुआ गोल डिब्बा-सा भासता है। आयु बड़ी होने पर खोपड़ी बिल्कुल कठोर हो जाती है। उसमें स्थिति-स्थापकता बिल्कुल नहीं रहती। इस हेतुसे उसमें दबाव बढ़ने पर, उसका असर उसमें प्रवेश करने वाली या बाहर निकलनेवाली रक्तवाहिनियों पर तो होता ही है, किन्तु इससे भी अधिक दबाव दर्शननाड़ी पर होता है। कारण, दर्शननाड़ी यथार्थमें मस्तिष्क की करोटीके बाहर का एक भाग है। यह नाड़ी करोटीमें से बाहर निकलने के समय पहले नेत्रगृहके एक छिद्र—चाक्षुषछिद्र (Optic foramen) में प्रवेश करती है। उस स्थान पर

दर्शननाड़ी केवल निकल सके, इतना ही मार्ग होता है। यदि ग्रन्थि या जलोदरके हेतुसे करोटीगत दबाव बढ़े, तो एक ओर शिराओंके द्वारा करोटीमें प्रवेश होने वाले रक्तका अवरोध होता है; फिर वे फूल जाती हैं; उसकी दीवारोंमें से रक्तरस टपकने लगता है और उस स्रावसे दर्शननाड़ीका आवरण फूलता है। दूसरी ओर करोटीके भीतर अवस्थित मस्तिष्कके भीतर रहे हुए रस पर दबाव होता है। तब वह रस दर्शननाड़ीके आवरणमें प्रवेशित होकर उसे फुलाता है।

यदि मस्तिष्कगत दबाव कम हो सके, तो दर्शननाड़ीके सिरेकी स्फीति दूर हो जाय। मस्तिष्कगत ग्रन्थि रोगमें दर्शननाड़ीके सिरेकी स्फीति विशेष चिह्न माना जाता है। यह स्फीति दोनों नेत्रोंमें होती है। क्वचित् एक नेत्रमें अधिक और दूसरे में कम भी हो सकता है। इस निरीक्षणके परिणाममें नेत्रवैद्य और मस्तिष्कके रोगोंके निष्पातोंने यह निश्चय किया है कि मस्तिष्कके अर्बुदके लगभग ७० प्रतिशत रोगियोंमें दर्शननाड़ीके सिरेकी स्फीति होती है। इनमें भी ग्रन्थि करोटीके निम्न भागमें हो तो दर्शननाड़ी का सिरा कम उभड़ा हुआ भासता है। इतनाही नहीं, बल्कि वह भी कम रोगियोंमें होता है या नहीं होता। किन्तु चतुर्गुण समूहकी ग्रन्थियोंमें तो ८५ से ९५ प्रतिशत रोगियोंको यह शोथ आता है। एवं अनुमस्तिष्क (Cerebellum) की ग्रन्थियोंमें भी उतना ही परिमाण आता है।

२. *मस्तिष्कका उपदंश*—इस रोगसे पीड़ित रोगियोंमेंसे कइयों को दर्शननाड़ीके सिरेका उभाड़ हो जाता है।

परिणाम—यदि दर्शननाड़ीके शोथके कारणको दूर कर सके, तो स्थिति सुधर सकती है। फिर रोगी की दृष्टिमें जो कुछ हानि पहुँची हो, वह भी चली जाती है। किन्तु कारण असाध्य हो, तो कितनाक समय व्यतीत होने पर दर्शननाड़ी का शोष हो जाता है। फिर दृष्टि सदा के लिये नष्ट हो जाती है।

उपचार—मूल कारणको दूर करनेकी चिकित्सा करनी चाहिये। मस्तिष्क ग्रन्थि हेतु हो और उसे निकाल सके ऐसे स्थान पर हो तो, उसे निकाल देना चाहिये। २५ वर्ष पहले मस्तिष्क और करोटीस्थ ग्रन्थियोंको निकालना लगभग अशक्य था। कारण, जिस रोगी पर शस्त्रक्रिया होती थी, वह मृत्यु-वश हो जाता था। वर्तमानमें यूरोप और अमेरिकाके शस्त्रवैद्य इस सम्बन्ध में विशेष आगे बढ़ गये हैं। ग्रन्थि दुष्ट जाति की न हो, मस्तिष्कके अधिक भागमें न फैल गई हो तथा अनुमस्तिष्क जैसे भागमें न हो, ऐसी ग्रन्थियोंको निकालनेके लिये करोटी को खोलनेमें वे सफल हुए हैं तथा रोगीकी दृष्टि

और आयुको बचा सके हैं। भारतमें अभी तक मस्तिष्क पर शस्त्रक्रिया कर सके ऐसे निष्णात वैद्य अति कम हैं। अतः जितनी सफलता पाश्चात्य प्रदेशवालों को मिली है, उतनी अपने को नहीं मिल सकती।

मस्तिष्क जलोदर पर शस्त्रक्रिया करनेसे अनेक रोगियोंको लाभ पहुँचा है। मस्तिष्कका उपदंश हेतु हो, तो पोटास आयोडाइड जैसी औषधकी आवश्यकता है। क्षय रोगमे सम्बन्ध हो तो उसके अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये। मस्तिष्कगत बृहत् शिरा–त्रिकोणिका (Cavernous Sinus) में रक्तावरोध के उपाय पहले लगभग नहीं था किन्तु वर्तमानमें पेनीसिलिन और गहरे क्ष किरणों की चिकित्सा द्वारा कितनेक रोगी बच गये हैं।

जिन रोगियोंमें मस्तिष्कस्थ ग्रन्थि न निकल सके, ऐसे रोगियों की करोटीमें एक खिड़की (Decompression) बनाकर भीतरका दबाव कम करा सकते हैं और दर्शननाड़ीके सिरेका शोथ मिटा सकते हैं। उस शस्त्र-क्रियाको करोटीमें छिद्र करना (Trephining of Skull) कहते हैं।

इ. पश्चिमा दृष्टिनाड़ीप्रदाह।

(Retro-bulbar Neuritis)

इस रोगमें नेत्रके बाहरकी दर्शननाड़ीमें शोथ आता है। फिर दृष्टि बिल्कुल बन्द हो जाती है। दृष्टि कम हो जाती है। इस रोगके आशुकारी और चिरकारी दो विभाग हैं।

A. आशुकारी पश्चिमा दृष्टिनाड़ीप्रदाह।

(Acute Retro-bulbar Neuritis)

लक्षण और चिह्न—रोगीकी दृष्टि अति कम होकर लगभग बन्द हो जाती है। आँख पहले दिन बिल्कुल स्वस्थ हो, दूसरे दिन दृष्टिमें न्यूनता भासती है और तीसरे दिन सूर्यका प्रकाश भी कठिनतासे भासता है। रोग अति प्रबल न हो, तो दृष्टि उतनी अधिक नहीं घटती, कुछ कम हो जाती है। उसमें भी मध्यभागकी दृष्टि अधिक कम होती है। दिनके समय दृष्टिमें अधिक कष्ट होता है। लाल और नीला रंग प्रतीत नहीं होता। शिरमें दर्द होता है। नेत्रगोलकके गहरे भागमें न्यूनाधिक वेदना होती है। यह वेदना गोलकके चलाने पर अधिक होती है। एवं नेत्रवैद्य अंगुलीसे गोलक पर दबाव डाले तो भी पीड़ामें वृद्धि होती है।

नेत्रपरीक्षा करने पर अन्य कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता। केवल कनीनिका प्रसारित और प्रकाश प्रतिक्रिया में शिथिलता विदित होती है,

या प्रतिक्रिया बिल्कुल दूर हो जाती है। नेत्रदर्शक यन्त्र से देखने पर तुरन्त के रोगी के नेत्रदर्पण या दर्शननाड़ी में कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता। रोग १-२ मास तक चला हो तो दर्शननाड़ी का कनपटी की ओर का भाग कुछ श्वेत दीखता है। कभी नेत्रदर्पण की रक्तवाहिनियों में कुछ अन्तर हो जाता है। कितनेक रोगियों में रक्तवाहिनियां कुछ भरी हुई और कइयों में आकुंचित दीखती हैं।

कारण—इस रोग के २ कारण हैं। स्थानिक और शारीरिक। स्थानिक कारणों में खास दो कोटर—झर्झरास्थि कोटर (Ethmoid Sinus) और जतुकास्थि कोटर (Sphenoid Sinus), जो नेत्रगृह के भीतर की दीवार के समीप रहे हैं, उनमें शोथ या पूयोत्पत्ति हो जाय तो उसका सम्बन्ध दर्शननाड़ी के पिछले भाग के साथ घनिष्ठ होने से उसे संसर्ग हो जाता है, जिससे दर्शननाड़ी का प्रदाह होता है।

शारीरिक कारणों में आमवात, संक्रामक ज्वर, मधुमेह, तमाखू आदि जहरी द्रव्यों का सेवन इत्यादि मुख्य हैं।

क्रम—यह रोग अक्समात् हो जाता है और रोगी की दृष्टि बन्द होने की स्थिति तक पहुँच जाता है। २-३ सप्ताह उस तरह चलकर फिर धीरे-धीरे दृष्टिमें सुधार होने लगता है। यह सुधार पहले दृष्टिक्षेत्र के परिधि प्रान्त में से आरम्भ होता है। फिर लाभ होते-होते केवल मध्य भाग में अन्तराय रह जाता है। यह न्यूनता सदा के लिये रह जाती है या कभी दूर भी हो जाती है।

यदि रोग न मिटे तो दर्शननाड़ी के मध्य में आये हुए रेषे, जिनका सम्बन्ध पीतबिन्दु के साथ है, उसकी अपक्रान्ति हो जाती है और मध्यदृष्टि को सदा के लिये हानि पहुँच जाती है। इन रोगियों में से अधिक परिमाण में रोगियों की दृष्टि अच्छी हो जाती है।

उपचार—इस रोग की चिकित्सा के प्रारम्भ में रोगोत्पादक मूल-करण को दूर करना चाहिये। यदि कोटरों में शोथ हो तो रोगी के नाकमें कोकैन और एडिनेलिन के फोहे रखना चाहिये। अनेक बार नेत्र की श्लैष्मिक कला में शोथ या रक्तसंग्रह होकर कोटरों के प्रवाह का मार्ग रुद्ध होता है। फिर उन कोटरों में रस या पूय संगृहीत हो जाता है। ऐसे समय पर उक्त उपचार से प्रायः मार्ग मुक्त हो जाता है। यदि उससे सफलता न मिले तो कोटरों के विकार के लिये योग्य शस्त्रक्रिया करनी पड़ती है। इस शस्त्रक्रिया का विषय शस्त्रवैद्य या नासा वैद्य का होने से यहाँ विवेचन नहीं किया।

इनके अतिरिक्त दांत, गलग्रन्थियां या अन्यत्र कारण रूप विकृति हो, तो उसे दूर करनी चाहिये।

शारीरिक कारणों के लिये सोडा सेलिसिलास अतिशय अच्छा कार्य करता है, ऐसा हमें अनुभव मिला है। एक रोगी का उदाहरण देने से इस रोग के स्वरूप और उपचार की सफलता पाठक वृन्द सरलता से समझ सकेंगे।

एक गुजराती वकील की धर्मपत्नी रुग्णा थी। आयु लगभग ३५ वर्ष। उसे एक समय ऐसा भास हुआ कि उसकी दृष्टि अतिन्यून होगई है। पुनः ऐसा भास हुआ कि दृष्टि ठीक होगई। दूसरे दिन दृष्टिमें अधिक अन्तराय हुआ और तीसरे दिन दृष्टि बन्द होगई। स्थानिक डाक्टर को दिखाने पर उन्होंने अधिमन्थ होने का कहा। शस्त्रक्रिया करानी चहिये। फिर उसे उसका पति बम्बई मेरे पास लाये। बम्बई के शारीरिक रोगों के एक सुप्रसिद्ध डाक्टर की सलाह भी उसने ली थी। उनने भी अधिमन्थ ही कहा था। मुझे अधिमन्थ का लेश भी प्रतीत नहीं हुआ। किन्तु रुग्णा का इतिहास और नेत्र दबाने पर गहरे भाग में पीड़ा पर से निर्णय किया कि, नेत्रगोलक के पिछले भाग की दर्शननाड़ी का प्रदाह है। इस निर्णय के अनुरूप एक सप्ताह तक सोडा सेलिसिलास और सोडाबाई कार्बोनेट पीने के लिये दिया तथा बाई के दांतों को साफ कराया। १५ दिन के पश्चात् पूर्ण दृष्टि की प्राप्ति होगई।

सोडा सेलिसिलास के अतिरिक्त स्वेदल और विरेचन औषध भी लाभ पहुँचाती हैं।

B. पश्चिमा दर्शननाड़ीका चिरकारी प्रदाह।

(Chronic Retrobulbar Neuritis)

यह रोग दोनों नेत्रों में होता है।

लक्षण और चिह्न--आशुकारी प्रकारके समान ही लक्षण होते हैं।

कारण--इस रोगके कारणों में मुख्य सुषुम्णाकाण्डके मणियों (कशेरुकाओं) का काठिन्य (Multiple Sclerosis of Spinal Cord) है। यह रोग अति शनैः-शनैः आता है। इसका सब से पहला लक्षण कितनेक रोगियों में दृष्टिका बिल्कुल नाश होता है। कतिपय रोगियोंमें दृष्टि नाश परसे ही इस रोगके प्रारम्भ का परिचय मिलता है। इसके अतिरिक्त कितनेक नेत्रवैद्य तमाखू, मेथीलेटेड स्पिरिट और क्विनाइनके विषप्रकोपसे उत्पन्न अन्धता को भी इस प्रकारके भीतर गिनते हैं। इसका वर्णन इसी प्रकरणमें आगे किया जायगा।

क्रम—यह रोग होता है और शान्त बन जाता है। जिससे रोगी की दृष्टिमें विकृति होती है; फिर सुधार भासता है, और पुनः हानि पहुँचती है। इस तरह बार-बार होता रहता है। जैसे-जैसे सुषुम्णाकाण्ड का रोग आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे दर्शननाड़ीका क्षय (शोष) होता जाता है और दृष्टि को हानि अधिकाधिक पहुँचती जाती है।

उपचार—सुषुम्णाकाण्डका रोग असाध्य माना गया है। इस हेतुसे चिकित्सामें सफलता नहीं मिलती।

यदि तमाखू आदि विषके हेतुसे रोगोत्पत्ति हुई हो, तो उस विषका सेवन बन्द कर देने पर रोग शमन हो जाता है।

२. दर्शननाड़ीका शोष।

(*Atrophy of Optic Nerve—Optic Atrophy*)

इस रोगके दो प्रकार हैं। अ. प्राथमिक; आ. प्रदाह जन्य।

अ. दर्शननाड़ीका प्राथमिक शोष।

(**Primary Optic Atrophy**)

चित्र नं० १४१ देखें। यह रोग स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों को अधिक होता है। प्रायः ३०-३५ और ४५-५० वर्षकी आयु वालों को विशेष होता है। वृद्धों को कभी-कभी अन्तर्मातृका या चाक्षुषी धमनीमें वृद्धावस्था जन्य विकृतिके हेतुसे दर्शननाड़ी का शोष होता है। छोटे बालकोंमें यह रोग क्वचित् ही प्रतीत होता है। बालकोंमें अपक्षयात्मक विकृति (Tabes) उपस्थित होने पर इसकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

लक्षण—शनैः-शनैः दृष्टिह्रास, यह एकही मुख्य लक्षण है। इस लक्षणके साथ दृष्टिक्षेत्र भी आकुंचित होता है। लाल और हरा रंग दीखना पहले बन्द हो जाता है। फिर श्वेत पदार्थों की प्रतीति दूर होती है।

चिह्न—कनीनिका प्रसारित और प्रकाश प्रतिक्रिया रहित भासती है। रोगके प्रारम्भमें प्रकाश प्रतिक्रिया शिथिल होती है। इसके अतिरिक्त नेत्रके बाहरके भागमें अन्य कुछ भी परिवर्तन नहीं होता। नेत्रदर्शकयन्त्र द्वारा परीक्षा करने पर दर्शननाड़ीका शिरा बिल्कुल श्वेत, कुछ नीलाभ श्वेत दीखता है। किनारा बिल्कुल स्पष्ट और छोटा हुआ भासता है। उस पर जो सूक्ष्म कैशिकाएं रहती हैं, वे बहुधा अदृश्य हो जाती हैं। यदि रोग अति बढ़ गया हो तो बीचके हिस्सेमें कुछ खड्डासा प्रतीत होता है। चालनी पटलका भाग अधिक स्पष्ट भासता है। नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियोंमें कुछ

भी परिवर्तन नहीं होता। (किन्तु प्रदाह जनित शोथमें रक्तवाहिनियोंमें परिवर्तन होता है) उक्त परिवतन दोनों नेत्रोंकी दर्शननाड़ीमें दृष्टिगोचर होता है।

कारण—मस्तिष्क और सुषुम्णाकाण्डके रोग, जैसे कि शकुन्तगति रोग (Locomotor ataxy--Tabes Dorsalis), सुषुम्णाकाण्डमें स्थान-स्थान पर कठिनता (Disseminated Sclerosis), उन्माद सह पक्षवध (General Paralysis of Insane), इन ३ रोगोंमें अपक्षयात्मक विकृतिके हेतुसे बहुधा दर्शननाड़ीका शोष उपस्थित होता है। शकुन्तगति रोगमें रोगीकी हलन-चलन शक्ति दिन प्रतिदिन कम होती है और अन्धता बढ़ती जाती है, ये दो लक्षण मुख्य रहते हैं। जिन रोगियोंमें दर्शननाड़ीका शोष होता है, उनको अन्धता पहलेसेही आती है; चलनेकी शक्तिमें अधिक अन्तराय बहुत समय जाने पर आता है।

अपक्षयात्मक व्याधियों में दर्शननाड़ी का क्षय होने पर आर्जिल रोबर्टसन कनीनिका (Argyll—Robertson Pupil) और कनीनिका का संकोच, ये दो चिह्न पहलेसे ही उपस्थित होते हैं। आर्जिल रोबर्टसन का चिह्न पहले लिखा गया है। प्रकरण २६वें में इस रोग का विशेष उल्लेख किया जायगा।

उक्त कारणोंके अतिरिक्त दर्शननाड़ी ग्रन्थि, दर्शननाड़ी संगम ग्रन्थि, नेत्रगृह की व्यथा आदि कारणों से भी इस रोग की संप्राप्ति होती है।

कभी-कभी सोमल विषप्रकोपसे भी यह रोग हो जाता है। जब सोमल दीर्घकाल पर्यन्त अधिक मात्रामें सेवन हो, तभी इस प्रकार की हानि पहुँचती है। एक समय नेत्रवैद्यों की ऐसी कल्पना थी कि, सालवर्सन (Salvarsan 606), निओसाल्वर्सन (Neo salvarsan 914) तथा उसके अनुरूप अन्य सोमलमिश्रित औषधों का प्रयोग करने पर दर्शननाड़ी का शोष होता है। किन्तु अधिक निरीक्षण के परिणाममें यह विचार मिथ्या सिद्ध हुआ है। सोमल कृति-एटोक्सिल (Atoxyl) के लिये भी अभी तक ऐसी ही मान्यता है कि, उससे दर्शननाड़ी का शोष होता है।

यदि घाव, अर्श, नासारक्तस्राव या अन्य किसी कारणसे देहमें से अति रुधिरस्राव हो जाय, और उसके परिणाम में पाण्डु रोग उपस्थित हो जाय तो ऐसे कितनेक रोगियोंमें दर्शननाड़ी का शोष हो जाता है।

उपदंश और उसके उपद्रवोंके परिणाममें भी इस रोग की संप्राप्ति हो जाती है।

आ. प्रदाहजन्य दर्शननाड़ी शोष।

(Inflammatory Atrophy of Optic Nerve)

चित्र नं० १४२ देखें। इस रोगमें रोगी की दृष्टि शनैः-शनैः घटती जाती है। फिर कुछ मास वा वर्षोंके पश्चात् बिल्कुल चली जाती है।

लक्षण और चिह्न—इस रोगमें लक्षण उपर्युक्त ही होते हैं। किन्तु चिह्न प्राथमिक शोष की अपेक्षा कुछ पृथक् होते हैं। प्रारम्भ में दर्शननाड़ी का सिरा मलिन श्वेत भासता है। किनारा अस्पष्ट या मन्द होता है। नेत्रदर्पण की रक्तवाहिनियाँ अच्छी तरह पूर्ण या फूली हुई और टेढ़ी-मेढ़ी भासती हैं। रोग बढ़ने पर दर्शननाड़ीके सिरेका रंग अधिक श्वेत होता है। शिरा छोटी और किनारा अनियमित दीखता है। धमनियाँ और नेत्रदर्पण की कैशिकाएँ आकुंचित होती हैं; चालनी पटल प्राथमिक क्षय में स्पष्ट भासता है, वैसा इस प्रकारमें नहीं होता।

कारण—इस रोगके कारणोंमें दर्शननाड़ी प्रदाह और नेत्रदर्पण प्रदाह, ये दो मुख्य हैं।

परिणाम—दर्शननाड़ी की प्राथमिक अपक्रान्ति हेतु हो, तो वह रोग बहुधा असाध्य है। जिन रोगियोंमें उपदंशज उपद्रव रूप विकार हो, उनकी दृष्टिमें कुछ लाभ हो सकता है। शेष रोगियों की दृष्टि दिन-प्रतिदिन कम होती है और अन्तमें बिल्कुल चली जाती है। यदि प्रदाहजन्य अपक्रान्ति का उपचार प्रारम्भावस्थामें ही कराया जाय, तो कितनेक रोगियों की दृष्टिमें सुधार होता है, ऐसा अनुभव भी मिला है।

उपचार—रोग का सम्बन्ध उपदंशके साथ हो तो पारदघटित, आयोडाइड्स (पोटास, सोडा, एमोनिया आयोडाइड आदि) बिस्मथके अन्तःक्षेपण इत्यादि औषधियों का प्रयोग किया जाता है।

उपदंश हेतु न होनेपर स्ट्रिक्निया का प्रयोग करना चाहिये। बड़ी आयुवालों के लिये $\frac{1}{60}$ ग्रेन दिनमें ३ बार अर्थात् एक दिनमें $\frac{1}{20}$ ग्रेन हम प्रयोजित करते हैं। जैसे स्ट्रिक्निया की कृति—लाइकर स्ट्रिक्निया, स्ट्रिक्निया टेबलेट्स आदि उदरसेवनार्थ दी जाती है, वैसे उसका अन्तःक्षेपण भी होता है।

कितनेक नेत्रवैद्योंने विद्युत्प्रयोग—हाई फ्रिक्वन्सी प्रवाह (High Frequency Current) का प्रयोग किया था; किन्तु उससे बहुत कम रोगियोंको लाभ हुआ होगा। वर्तमानमें गोलककी पिछली ओर एट्रोपिन $\frac{1}{20}$ ग्रेनका अन्तःक्षेपण करनेकी सिफारिशकी जाती है। हमने इसका प्रयोग किया है; किन्तु अभी तक उससे लाभ होनेका अनुभव नहीं मिला।

यदि मस्तिष्कके किसी भागमें अर्बुद होनेसे दर्शननाड़ीका शोष उपस्थित हुआ हो और उस अर्बुदको यथा समय शस्त्रक्रिया द्वारा निकाल दिया जाय तो कदाच कुछ रोगियों को लाभ पहुँच सकता है।

उपर्युक्त शोषके अतिरिक्त ३ प्रकारके अनुषंगी विकार हैं। १. अधिमन्थज; २. नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनीके अवरोधसे; ३. गोलकके पिछली ओर की दर्शननाड़ीके प्रदाहके हेतुसे, इनको अनुषंगी शोष (Secondary Atrophy) कहते हैं।

३. दर्शननाड़ीकी आगन्तुक व्यथा।

(*Injuries of the Optic Nerve*)

दर्शननाड़ी नेत्रगृहमें अच्छी तरह सुरक्षित रही है। फिर भी कभी-कभी उसे चोट लग जाती है। इस प्रकारके आघात वर्तमान युगके युद्धके नव्य शस्त्रोंसे होने की विशेष सम्भावना है। मुख्य कारणोंमें बोम्ब, स्फोटक गोले, बन्दूक की गोलियाँ और छर्रे हैं। इन सब व्यथाओंमें नेत्रगृहके बाहर की दीवार टूटती है। फिर टूटी हुई हड्डी या शस्त्रके आघात से दर्शननाड़ी टूट जाती है। दर्शननाड़ी टूटनेके साथ ही नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनी भी टूट जाती है। फिर नेत्रदर्पणको मिलने वाला रुधिर बन्द हो जाता है। उस हेतुसे रोगीकी दृष्टि बन्द हो जाती है।

उपचार—आघातकी योग्यता अनुरूप।

४. दर्शननाड़ीके अर्बुद।

(*Tumours of the Optic Nerve*)

दर्शननाड़ीके अर्बुद अति क्वचित् होते हैं। किन्तु अनेक रोगियोंके निरीक्षण करने वाले नेत्रवैद्यों को, ऐसे रोगी मिल ही जाते हैं।

दर्शननाड़ीके अर्बुदोंमें मुख्यतः वातनाड़ीमय, रेषामय और रसार्बुद, ये ३ प्रकार हैं। ये दर्शननाड़ीके समीपके भाग—नेत्रदर्पण, नेत्रमध्यपटल आदि में उत्पन्न होकर बढ़ने पर दर्शननाड़ी तक पहुँच जाते हैं; या प्रारम्भ से ही दर्शननाड़ीमें से उत्पन्न होते हैं।

लक्षण—मुख्य लक्षण ३ हैं। अति शनैः-शनैः रोगवृद्धि, दृष्टिह्रास और नेत्रके गहरे भागमें कुछ वेदना।

चिह्न—मुख्य चिह्न गोलक का बाहर निकलना (Exophthalmos) और गोलक की चलन शक्तिमें न्यूनता। दर्शननाड़ीके अर्बुद गोलकके पिछले भागमें से उत्पन्न होते हैं। इससे जैसे-जैसे बढ़ते जाते हैं, वैसे-

वैसे गोलक को बाहर ही ढकेलते जाते हैं। यह ढकेलने की क्रिया पार्श्व-भागमें नहीं होती, आगे के हिस्सेमें ही होती है। एवं गोलककी चलन-वलन क्रियामें भी शिथिलता भासती है। फिर यह शक्ति बिल्कुल नहीं होती। कारण, दर्शननाड़ी गोलकके पीछे 'S' आकार में रहती है, जिससे समस्त गोलक ग्रन्थिमें नहीं फँस जाता। यदि अर्बुदके हेतुसे भीतर में रक्तस्राव हो जाय, या अति शोथ आजाय, तो गोलक गतिहीन हो जाता है। नेत्र-दर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर दर्शननाड़ीके सिरेमें कभी कभी कुछ परिवर्तन प्रतीत होता है।

रोगविनिर्णय—गोलकका बाहर निकलना, दृष्टिमें न्यूनता, अंगुलीसे परीक्षा करने पर ग्रन्थिका बोध होना और अन्तमें क्ष किरणोंसे छवि लेने पर रोग स्पष्ट होना, ये सब निर्णय करनेमें सहायक हैं।

उपचार—इस रोगका उपचार बिना शस्त्रचिकित्सा नहीं हो सकता। नेत्रवैद्य इस प्रकारकी शस्त्रचिकित्सामें कुशल हों, तो नेत्रको बचा सकता है। शस्त्रक्रियाके २ प्रकार हैं। १ क्रोनलेनकी शस्त्रक्रिया (Krohnlein's operation); २. करोटीमें खिड़की बनाकर, नेत्रगृहकी ऊपरकी दीवार तोड़, उस द्वारा ग्रन्थिको बाहर निकालना। क्रोनलेनकी शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण ३० में दिया जायगा। यहाँ संक्षेपमें इतना ही कहा जायगा कि, इस प्रकारकी शस्त्रक्रियाके लिये कनपटीके भागमें नेत्रगृहकी बाहरकी दीवारकी हड्डीको छेनी और हथौड़ी द्वारा काट दिया जाता है। फिर उस खिड़की द्वारा दर्शननाड़ीके पिछले हिस्सेमें क्रिया की जाती है। वहां पर दर्शननाड़ीसे अर्बुदको पृथक् किया जाता है। यदि अर्बुद दर्शननाड़ीको अति संलग्न न हो या दर्शननाड़ीके आवरणमें ही हो तो निकालना सरल होता है। यदि अर्बुद दर्शननाड़ीके गर्भ भागमें हो, तो कठिनता होती है। अर्बुद को निकाल हड्डी का जो भाग काटा हो, उसे पुनः यथा स्थान बैठाया जाता है। फिर ऊपर त्वचाको सी लेते हैं। मैंने इस प्रकारकी शस्त्रक्रिया ३ रोगियों पर की है। तीनोंके नेत्र बच गये हैं।

करोटीको खोलकर जो शस्त्रक्रिया की जाती है, वह कार्य नेत्रवैद्यका नहीं है। किन्तु मस्तिष्ककी शस्त्रक्रियाके निष्णातोंका है। ऐसी शस्त्रक्रिया अमेरिका और यूरोप जैसे देशोंमें होती है और उसका परिणाम पत्रों परसे विदित होता है।

५. विषप्रकोपज अन्धता ।

(*Toxic Amblyopia*)

विषमें अनेक प्रकार हैं । मुख्य ५ हैं । अ. तमाखू; आ. मेथीलेटेड स्पिरिट; इ. किनाइन, ई. सेलीसिलिक आदि औषध; और उ. सीसा ।

अ. तमाखूजन्य अन्धता ।

(Tobacco Amblyopia)

यह रोग विशेषतः ४० वर्षकी आयुके बाद होता है । रोगी प्रायः बीड़ी या तमाखूका सेवन अधिक करता होगा । भारतकी अपेक्षा विलायत जैसे शीतल प्रदेशमें यह अधिक प्रमाणमें प्रतीत होता है । जो लोग तमाखू के अतिरिक्त शराब भी पीते हैं, उनको अधिकतर हो जाता है । पचनक्रिया दूषित होने पर इस रोगकी संप्राप्तिका विशेष डर रहता है ।

लक्षण—प्रारम्भमें रोगीको नेत्रके पास ओस गिरनेके सदृश दीखता है; अर्थात् जो कुछ दीखता है वह पतला कपड़ा नेत्रके पास रखने समान भासता है । यह कठिनता प्रातः-सायंकी अपेक्षा दोपहरको अधिकतर होती है । रोग बढ़ने पर रोगी लिख-पढ़ नहीं सकता ।

चिह्न—पेरीमीटरसे परीक्षा करने पर मध्य भागमें हरा रंग विदित नहीं होता । वह भूरा या सफेद भासता है । गुलाबी रंग नीला तथा लाल रंग काला भासता है । इस तरह प्रारम्भमें प्रतीति होती है । रोग बढने पर सफेद वस्तु मध्य भागमें नहीं दीखती । जो अन्ध प्रदेश भासता है, वह लम्ब गोल आकार का होता है और मध्य भागमें से अन्ध प्रदेशकी ओर लम्बा होता है ।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर यदि रोगका प्रारम्भ ही हुआ होगा, तो दर्शननाड़ीके सिरेमें कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता । रोग बढ़ने पर वह सिरा रक्ताभ और मलिन हो जाता है । रोग अति बढ़ जाने पर उसके बाहर (कनपटी) की ओरका भाग निस्तेज और श्वेत प्रतीत होता है । कनीनिकाकी प्रकाश प्रतिक्रिया न्यून हो जाती है ।

परिणाम—यदि तमाखू सेवन चालू रहेगा, तो मंदता दिन-प्रति-दिन शनैः-शनैः बढ़ती जाती है, रोग बढ़ा हो तो रोगी लिख-पढ़ नहीं सकता, किन्तु रास्ते पर चलनेमें बाधा नहीं पहुँचती । यदि तमाखू का परित्याग किया जाय तो शनैः-शनैः सुधार होने लगता है तथा रोग बिल्कुल निर्मूल होकर दृष्टि अच्छी हो जाती है । रोग दूर होनेमें कितनेक मास लग जाते हैं ।

उपचार—तमाखू और शराब, दोनोंका या दो मेंसे एकका व्यसन हो, तो उसे बिल्कुल छोड़ देना चाहिये। तमाखू और शराबके व्यसनियोंके रक्तमें विष शनैः-शनैः संगृहीत होता रहता है। शारीरिक शक्ति सबल हो तब तक विषका असर नहीं होता। फिर जब विष रक्तमें पूर्ण भर जाता है, तब देह और नेत्रपर असर होने लगता है। किसी घड़े को खाली करना हो तो उस घड़ेमें नया जल नहीं डालना चाहिये। उसी तरह तमाखू या शराबके विषको रक्तमेंसे नष्ट करनेके लिये नया विष नहीं डालना चाहिये। अतः कष्ट सहन करके तत्काल व्यसन को छोड़ देना चाहिये। जो रोगी शनैः-शनैः व्यसन छोड़ना चाहते हैं, उनमेंसे बहुत कम मनुष्य व्यसन से मुक्त हो सकते हैं।

पाचनशक्ति मन्द हो तो उसे सुधारने के लिये कुचिला या फोस्फरस-मिश्रित औषध देनी चाहिये। स्ट्रिक्नियाका प्रवाही शीघ्र लाभ पहुँचाता है। रोगीको निद्रा न आती हो, तो उसके लिये योग्य उपचार करना चाहिये।

प्रस्वेद अधिक निकले तो तमाखू का विष शीघ्र निकाल सकता है। इस लिये स्वेदन कराना चाहिये। एवं मूत्रद्वारा अधिक विष निकालने के लिये शीतल जल खूब पिलाना चाहिये।

वर्तमान में विटामीन B, जो बिटेक्सिना बिनरवा विटामीन डोन B (Vitamin don B) आदि नाम वाली औषधियों का सेवन कराने या अन्तःक्षेपण करने पर रोगी को शीघ्र लाभ पहुँचता है, ऐसा हमें अनुभव मिला है।

आ. मेथीलेटेड स्पिरिट जन्य अन्धता।

(Wood Alcohol Amblyopia)

भारतवर्ष में सद्भाग्य से मेथीलेटेड स्पिरिट (प्राइमस आदि जलाने का स्पिरिट) पीने का रिवाज अभी तक नहीं हुआ। किन्तु अमेरिका और इंग्लेण्ड में अति व्यवहृत होता है। अमेरिका में शराबका निषेध प्रबल होगया है। शराबकी प्राप्तिमें कितनाक बन्धन कानून अनुसार रखा गया है, जिससे अनेक शराबी जलाने की स्पिरिटका सेवन करते हैं। परिणाम में उसके विष से पीड़ित अनेक रोगी डाक्टरों के देखने में आते हैं।

लक्षण और चिह्न—हृदय गति मंद और शिथिल होती है। उबाक आती है; पसीना अधिक निकलता है; प्रबल शिरदर्द होता रहता है; चक्कर आता है; तथा सन्निपात के सदृश प्रलाप और चेष्टा होते हैं। फिर रोगी

बेहोस हो जाता है। ये सब लक्षण स्पिरिट पीने के एक घंटे में ही होते हैं। कुछ समय के पश्चात् दृष्टि बन्द हो जाती है; कनीनिका प्रसारित होती है; तथा प्रकाश मे भी आकुंचित नहीं होती। नेत्रगोलक पर दबाने पर या चलाने पर गहराई में पीड़ा होती है। कुछ समय के पश्चात् दृष्टि में सुधार होता है। किन्तु १-२ सप्ताह के बाद दृष्टि शनैः-शनैः कम होने लगती है। फिर आजीवन अन्धता आजाती है। उक्त सब चिह्न नेत्रगोलक के पिछले भाग में रही हुई दर्शननाड़ी के प्रदाह के हेतु से उत्पन्न होते हैं।

अधिकारी—उपरोक्त रोग विशेषतः स्पिरिट पीने वालों को होता है। इनके अतिरिक्त बनाने वाले और वार्निस लगाने वालों को भी हो जाता है।

उपचार—यदि तुरन्त विदित हो जाय तो वामक औषध से या आमाशय नलिका द्वारा होसके उतना स्पिरिट निकाल देना चाहिये। फिर स्वेदन, विरेचन और मूत्रल औषध देवें और रोगी को आराम करावें।

इ. क्विनाइनजन्य अन्धता।

(Quinine Amblyopia)

वर्तमान में क्विनाइन भारतवर्ष में घरेलू औषध बन गया है। कुछ बुखार आया कि क्विनाइन ले लेते हैं। शिर में दर्द हुआ, आलस्य आने लगा या जुखाम हुआ, तो क्विनाइन का उपयोग कर लेते हैं। विषमज्वर के लिये उसके समकक्ष अन्य औषध नहीं है। फिर भी क्विनाइन बड़ी मात्रा में दी जाय या निर्बलों को कम मात्रा में दें, तो उससे तुरन्त बधिरता और अन्धता आजाती है। ३० ग्रेन और इससे अधिक मात्रा बाधक होती है। क्विनाइन लेनेके २-३ घण्टेमें कानमें गुंज और बधिरता का भास होता है। साथमें दृष्टि बिल्कुल बन्द हो जाती है। कितनेकोंको यह अन्धता कुछ घन्टों में दूर हो जाती है। कितनेक सप्ताहों तक अन्धे रहते हैं। फिर कुछ न कुछ न्यूनता सदा के लिये रह जाती है। अन्धता के समय में कनीनिका प्रसारित रहती है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर दर्शननाड़ी का सिरा निस्तेज भासता है। रक्तवाहिनियाँ पतली हो जाती हैं।

उपचार—इस स्थितिमें डिजीटेलिस अच्छा लाभ पहुँचाता है, एवं स्ट्रिक्निया, नाइट्रोग्लिसरिन और लोह आदि औषधियाँ भी हितकर मानी गई हैं।

ई. सेलीसिलिकादि औषधजन्य अन्धता।

(Amblyopia due to Salcylatis and other Drugs)

इस प्रकार की अन्धता उत्पादक औषधोंमें मुख्य सेलिसिलिन, सोडासेलिसिलस (अतिशय परिमाणमें), ओप्टोचिन (Optochin) और सोमल की कृति हैं। इनमेंसे सोमल की कृतियों से उत्पन्न अन्धता के लिये पहले उल्लेख किया गया है। शेष औषधियों से कुछ कालके लिये अन्धता आ जाती है। किन्तु किनाइन जनित अन्धता जैसे आजीवन रह है, वैसे इन औषधियों की अन्धता नहीं रहती। योग्य उपचार से दूर हो जाती है।

उ. शीशा विषज अन्धता।

(Lead poisoning Amblyopia)

यह रोग विशेषतः रंग का कार्य करने वालों को, शीशेके नलसे कारखानेमें आता हुआ जल पीने वालों को, शीशेके बर्तन, खिलौने आदि बनानेवालों को तथा छापाखानाके कम्पोजीटरों को होता है।

लक्षण—मुख्य लक्षण शनैः-शनैः अन्धता की वृद्धि होना।

चिह्न—दर्शननाड़ीके सिरे का प्रदाह तथा रोगीके मसूढ़े (Gums) के ऊपर नीली पंक्तियाँ होना, ये दो मुख्य हैं।

उपचार—यथा समय पोटास आयोडाइड का सेवन कराया जाय तो अच्छा लाभ पहुँच जाता है।

ऊ. जन्मसिद्ध दर्शननाड़ीमें न्यूनता।

(Congenital Anomalies of Optic Nerve)

इस प्रकार की न्यूनता अति कम होती है। इन न्यूनताओं में मुख्य २ प्रकार हैं। १. दर्शननाड़ी के सिरेमें छिद्र (Colboma of Disc); २. दर्शननाड़ीके सिरेके रेषाओं का नेत्रदर्पण पर फैल जाना (Medullary Nerve fibres).

पहली न्यूनता नेत्रदर्शक यन्त्रसे प्रतीत होती है। रोगी की दृष्टिमें न्यूनता रहती है। द्वितीय न्यूनता दर्शननाड़ीके सिरेके प्रदाहके अनुरूप होती है; किन्तु यह स्थिति लक्ष्यमें हो तो परीक्षा करनेमें भूल नहीं होती। इसका वर्णन पहले प्रकरण १९ में लिखा गया है।

चि० १४४, पृ० ६०४
अ जननाभिका

चि० १४५, पृ० ६०७
अ तापस्था समस्थया ।

चि० १४६, पृ० ६०९
अ तापस्थाप्रदाह ।

चि० १४७, पृ० ६०९
अ तापस्थ अश्रावर्त्त ।

चि० १४८, पृ० ६३३
चिरकारी अश्रु वाशय प्रदाह ।

चि० १४९, पृ० ६३४
आशुकारी अश्रु वाशय प्रदाह ।

इक्कीसवां प्रकरण।

अक्षिपुट के रोग।

(Diseases of Eye-lids)

पलकके रोगोंका वर्गीकरण निम्नानुसार किया गया है:—

१. पलककी त्वचाके रोग—Diseases of skin of lids.
२. पलकका शोथ—Oedeme of lids.
३. पलक प्रदाह—Inflammation of lids.
४. पलक क्षत—Ulcers of lids.
५. पलकधारा प्रदाह—Inflammation of margins of lids.
६. पलककी ग्रन्थियोंके रोग—Diseases of glands in lids.
७. पलकका मुड़ जाना और परवाल—Entropion, Ectropion, Distichiasis and Tricheasis.
८. पलकधाराकी परस्पर संलग्नता—Ankyloblepharon.
९. नेत्रद्वारका संकोच—Blepharophimosis.
१०. पलकके बन्द होनेमें न्यूनता—Lagophthalmos.
११. पलकका पतन—Ptosis.
१२. पलककी आगन्तुक व्यथा—Injuries of Eye-lids.
१३. पलकके अर्बुद—Tumours of Eye-lids.
१४. जन्मजन्य पलककी न्यूनताएँ—Congenital Anomalies of lids.
१५. पलकमें जुएँ—Pediculi Ciliaris of lids.

१. अक्षिपुटके त्वक् रोग।

(*Diseases of skin of Eyelids*)

इस रोगके ३ प्रकार हैं। अ. विसर्प; आ. कण्डू; इ. व्यूची।

अ. अक्षिपुटका विसर्प।

(Erysipelas of Lids.)

जिस तरह विसर्प मुखमण्डलके अन्य भागों पर होता है, उस तरह पलक पर भी होता है। इस विकारमें लाल रंगका कठिन शोथ पलक और उसके चारों ओरमें फैलता है। यदि यह शोथ नेत्रगृहके भीतर जाय, तो नेत्रगोलक बाहर निकला हुआ भासता है, विसर्प और शोथ मिटने पर भी कितनीक बार दर्शननाड़ीके शोषका प्रारम्भ हो जाता है। यदि यह शोथ नेत्रगृहकी गहराईमें चला जाय, तो उसके परिणाममें रक्तवाहिनियाँ बन्द हो जाती हैं। फिर दृष्टि बन्द हो जाती है। शोथ मस्तिष्कावरण तक पहुँचता है, तो मस्तिष्कावरण प्रदाह (Meningites) हो जाता है। एवं कितनीक बार करोटीके निम्न भागमें अवस्थित मुख्य रक्तप्रणाली-त्रिकोणिका सरित् (Cavernous sinus) में रक्त जम जाता है, ये दोनों स्थिति अति गम्भीर मानी गई हैं।

कारण—विसर्पकी सम्प्राप्ति स्ट्रेप्टोकोकाई (Streptococci) कीटाणुओंके संसर्गसे होती है। पलकमें कुछ घाव हुआ हो, या मच्छर, मक्खी, मधुमक्षिका आदि जन्तु काट गये हों, या नाखूनसे त्वचाको खुरच दिया हो तो यह छूत लग जाता है। जब देहमें अशांति अधिक हो, या रक्तमें प्रवेश करनेवाले कीटाणुओंसे संरक्षण करनेवाली रोग निरोधक शक्तिका ह्रास हुआ हो, तब इस रोगकी उत्पत्तिकी सम्भावना अधिक रहती है।

उपचार—स्थानिक उपचारों में इक्थियोल और ग्लिसरिन मिलाकर शोथ पर लगाने से अच्छा लाभ पहुँचता है। उदर सेवनार्थ सल्फाडायाजिन की गोलियां एक दिन में ८ देवें। पेनीसिलिन का अन्तःक्षेपण भी आश्चर्यप्रद लाभ पहुँचाता है।

आ. अक्षिपुटका कक्ष।

(Herpes of Lids—Herpes Zoster Ophthalmicus)

इस कक्ष (चित्र नं १४३) के दो प्रकार हैं। १. ज्वरजन्य (Herpes Febrilis); २. नेत्रगत विकार जन्य (Herpes Zoster ophthalmicus)।

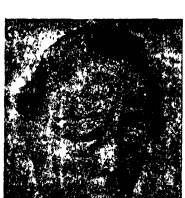

चित्र नं० १४३

जिस तरह कक्ष छाती के बाजू की त्वचा और पीठ पर होता है, उसी तरह ऊपर के पलक और भ्रू के ऊपर में भी होता है। इसे नेत्रकक्ष कहते हैं। यह सिद्ध हो चुका है कि, कक्षका फाला ५वीं वातनाड़ी की पहली शाखा की उपशाखा का अनुसरण करता है। इस परसे इस रोग को त्वचाका नहीं, किन्तु वातनाड़ी का मानना चाहिये। कभी ५वीं नाड़ी की दूसरी या तीसरी शाखा की उपशाखा का अनुसरण करता है। उसकी प्रथम शाखा की उपशाखाएं जिस भाग में अवस्थित हैं, उस भाग में कपाल, ऊर्ध्व अक्षिपुट और नासिका के ऊपर का कपाल का हिस्सा रहा है।

लक्षण या चिह्न—रोगी को एकाध दिन तक बेचैनी और आलस्य रहते हैं; उदर में अपचन या भारीपन भासना है; प्रायः प्रबल ज्वर होता है; किन्तु कभी-कभी ज्वर कम या मामूली होता है। जिस भाग में फाला होना हो, उस भाग के भ्रू के ऊपर अति वेदना होती है। ये लक्षण एक-दो दिन रहकर फिर फाले निकलने लगते हैं। पहले पिटिका राई के दाने जितनी रक्ताभ होती हैं। ये पिटकाएं वातनाड़ी की दिशामें भिन्न-भिन्न स्थान में उठती हैं। कभी-कभी पिटकाएं निकलने पर शिरदर्द शमन हो जाता है; किन्तु अनेक बार पीड़ा रोग दूर हो जाने पर भी कई दिनों तक बना रहता है। रोगके प्रारम्भमें प्रकाश सहन नहीं होता।

चित्र नं० १४३ वां देखने पर रोगीके देखाव और रोगके स्वरूपकी कुछ कल्पना हो सकेगी। पिटिका स्थान की त्वचा लाल होकर सूज जाती है। ऊपर का पलक भी सूज जाता है और ठीक नहीं खुल सकता। पिटकाएँ पहले स्वच्छ जलसदृश प्रवाही युक्त थीं, उनमें पूयोत्पत्ति होती है। पूयोत्पत्ति के समय पिटिकाएं सफेद होने लगती हैं। कभी-कभी पिटकाओं में रक्त गमन करता है। फिर शनैः-शनैः पिटिकाएं सूखने लगती हैं। ऊपर सिलवट पड़ जाती हैं, और नीचे सूक्ष्म-सूक्ष्म क्षत होते हैं। उस समय इन दानों का देखाव शीतला के दाने-जैसा ही भासता है, किन्तु एकही स्थान पर और वातनाड़ी की दिशामें होनेसे निर्णित हो जाता है। रोगी को प्रबल दाह होता है। ऊपर का खुरंट निकल जाने पर शीतला के समान दाग रह

जाता है। यह दाग पहले लाल और फिर त्वचा के रंग का बन जाता है। रोग भगभग ३ सप्ताह तक चलता है। जब रोग पूर्ण बलयुक्त हो तबसे त्वचा की स्पर्श शक्ति अति कम हो जाती है। फिर रोग शमन हो जानेके बाद भी कुछ समय तक स्पर्शशून्यता रह जाती है। दीर्घकाल के पश्चात् स्पर्शशक्ति की पुनः प्राप्ति होती है। यह रोग बहुधा बड़ी आयु में होता है। युवावस्था और बाल्यावस्था में क्वचित् ही होता है।

नेत्रगोलकमें भी इस रोग का असर न्यूनाधिक परिमाण में होता है। जब पिटिकाएँ पूर्ण बलसे उठती हैं, तब अभिष्यन्दके समान नेत्रस्राव होता रहता है। नेत्र लाल हो जाता है। शुक्लमण्डलमें कुछ प्रदाह आ जाता है। एवं अनेक बार सूक्ष्म-सूक्ष्म एकाधिक क्षत हो जाते हैं। प्रायः ये क्षत गहरे नहीं जाते। वे क्षत शुक्लमण्डलके पिटिका क्षतसे मिलते-जुलते होते हैं। छोटे बालकों में इस रोग का अन्य रोगसे भेद करना कठिन हो जाता है। यदि ये क्षत गहरे न जायँ तो फिर नेत्र साफ हो जाते हैं। अधिक गहरे हों, तो फूले रह जाते हैं; या समग्र शुक्लमण्डल की सतह निस्तेज हो जाती है।

तारामण्डल का प्रदाह क्वचित् ही होता है। कभी कक्षके पश्चात् अधिमन्थ हो जाता है, किन्तु इसका अधिमन्थके साथ सीधा सम्बन्ध कितना है, यह कहना कठिन है।

रोगविनिर्णय—इस रोगसे मिलता एक ही रोग है। यह ऊर्ध्व अक्षिपुटका विसर्प है। विसर्पमें दाने या पिटिकाएँ नहीं होतीं। एवं मुखमण्डलका अधिकांश भाग शोथमय और लाल होता है। इस रोगमें केवल वातनाड़ी की शाखा के अनुसरण करनेवाले दाने और शोथ होते हैं। इससे दोनों रोगों का प्रभेद हो जाता है।

उपचार—इस रोगके लिये एक भी रामबाण औषध नहीं है। रोग ३ सप्ताह तक या कम समय तक चलकर स्वयमेव शमन हो जाता है। योग्य उपचारसे केवल रोगी की वेदना को शान्त रख सकते हैं। रोगीको प्रस्किन या क्विनाइनका सेवन करा वेदना को कम करा सकते हैं। लाइकर हाइड्रार्जिरी एट आर्सेनिक एट आयोडा (कानोवनस सोल्युशन) १०-१० बूँद दिनमें ३ बार जलके साथ देते रहनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

स्थानिक उपचार रूपसे कोकेन ५ ग्रेन को एक औंस वेसलीनमें मिला मलहम बनाकर लेप करते रहनेसे वेदना का भान नहीं होता।

यदि शुक्लमण्डल या तारामण्डल में क्षत का प्रसार प्रतीत हो तो उसके अनुरूप उपचार करते रहें।

इ. अक्षिपुट का व्यूची।

(Eczema of Eye-lids)

कारण—इस रोग की उत्पत्तिके मुख्य ३ कारण हैं। १. मुखमण्डलके किसी भागमें व्यूची होने पर उसका संसर्ग होनेसे; २. नेत्रमें पिटिकाक्षत (Phlyctenule) होने पर अनुषंगी रूपसे ; ३. एट्रोपिनके प्रयोगसे।

१. मुखमण्डलगत व्यूचीके संसर्गज व्याधि—पलक की त्वचा उभड़ी हुई, लाल और छीली हुई भासती है। व्यूचीमें से निकलने वाला रस जम जाने पर सूक्ष्म-सूक्ष्म पर्तों की तह पलक की त्वचा और पलक पर बँध जाती है। उस स्थान पर खुजली चलती रहती है। यदि वहाँ पर खुरच कर ऊपर की तह को खोल दें, तो नीचेसे रक्त निकलता है।

२. पिटिका क्षतज—पिटिकाक्षतमय नेत्रमें से निरन्तर जलस्राव होता रहता है। इससे पलक की त्वचा सतत गीली रहती है। एवं नेत्र में कण्डू आती रहती है, जिससे रोगी बारम्बार नेत्र को मसलता रहता है। फिर आर्द्र त्वचा नरम हो जाने के हेतुसे सहज छिल जाती है और वहाँ पर व्यूची का प्रारम्भ होजाता है। एक समय प्रारम्भ होने पर फिर रुकना कठिन होता है। पलक पर व्यूचीके हेतुसे खुजली बढ़ जाने से रोगी उसे मसलता ही रहता है। फिर जलस्राव होता है और व्यूची को बारबार उत्तेजना मिलती रहती है। इस तरह कारण-कार्य परम्परा अविरत चलती रहती है।

३. एट्रोपिन जनित—यूरोप जैसे शीत प्रधान देशोंमें इस प्रकार की व्याधि अधिक होती है। बम्बईके भीतर ४० वर्षोंमें हजारों रोगियों पर एट्रोपिन का प्रयोग किया गया है, इनमें से केवल एक ही रोगी इस प्रकार का व्यूची वाला मिला है। उसे एट्रोपिनके उपयोगके दूसरे ही दिन पलक और उसके चारों ओर की त्वचा पर सूक्ष्म-सूक्ष्म अलाइयाँ निकल आईं। तीसरे दिन अलाइयाँ फूटकर व्यूचीका रूप धारण किया। एट्रोपिनका प्रयोग बन्द करने पर ही वह व्यूची दूर हो सका था।

उपचार—पहले कारणको दूर करना चाहिये। नेत्रमें पिटिकाक्षत हो तो उसके लिये योग्य उपचार करके रोगको मिटाना चाहिये। एट्रोपिन कारणभूत होने पर उसे बन्द कर दें, या बूँदके स्थान पर मल्हम का अञ्जन करें।

ब्यूचीहर मलहम :—

सफेदा (Carbonate of Lead)	३० ग्रेन
जसद भस्म (Zinc Oxide)	३० ग्रेन
इक्थियोल (Ichthyol)	२० ग्रेन
लाइकर कार्बोनिस डिटरजन्स	२० बूंद
वेसलिन	४ ड्राम

इन सबको मिलाकर मलहम बना लेवें। इसके साथ केलोमल मिलाने पर कभी-कभी शीघ्र लाभ पहुँचता है। यह मलहम हमारा अनुभूत है। अनेक वर्षोंसे हम उपयोग करते रहते हैं।

सूचना--धोनेमें साबुनका उपयोग न करें। सोडाबाई कार्बके प्रवाही १=१०० या अरारूट अथवा कॉर्न फ्लावरके क्वाथ और निवाये जलसे नेत्रोंको धोवें।

कभी-कभी प्रकृति-भेदसे मलहम अनुकूल नहीं रहता। उनके लिये शीशाशर्करा (स्यूगरलेड) के जल या फिटकरीके धावन १:१०० के प्रयोग-से अच्छा लाभ पहुँचता है।

२. अक्षिपुटका शोथ।

(*Oedema of Lids*)

पलक पर शोथ दो प्रकारके होते हैं--१. प्रदाह रहित; २. प्रदाह-जन्य। इनके अतिरिक्त व्यथाजन्य (Traumatic) शोथ आता है। उसका वर्णन पृथक् किया गया है।

१. प्रदाहरहित शोथ (Non-inflammatory)--इस प्रकारमें कारण शारीरिक होते हैं। शारीरिक कारणोंमें मुख्य ३ हैं—१. वृक्क विकार; २. हृदयके रोग; ३. फुफ्फुस रोग। इन कारणोंसे आनेवाला शोथ दोनों नेत्रपुटों पर आता है।

२. प्रदाहजन्य शोथ (Inflammatory Oedema)—यह शोथ स्थानिक और प्रायः एक नेत्रपुट पर होता है। क्वचित् दोनों नेत्रों पर भी आता है। मुख्य कारण निम्नानुसार हैं:—१. अंजननामिका; २. पलकविद्रधि; ३. पलक क्षत; ४. नेत्रप्रदाह--अभिष्यन्द पूयमेहज नेत्रप्रदाह आदि; ५. नाड़ीव्रण; ६. नेत्रगृह प्रदाह; ७. नासाकोटरोंका प्रदाह; ८. मस्तिष्कके भीतरकी शिरामें रक्त जमाव, इस प्रकारमें गोलक बाहर निकला हुआ भासता है। यदि शोथ एक ही नेत्र पर हो, तब प्रायः ऊर्ध्वपुट पर होता

है; ९. तारामण्डल पर शोथ आने पर कुछ अंशमें पलक पर शोथ आना; १०. अक्षिपुट पर मधुमक्षिका आदि जन्तुओंका काटना।

इनके अतिरिक्त पोटास आयोडाइडका उदरसेवन, भिलावेका धुंआ लग जाना आदि कारणोंसे भी अक्षिपुट पर शोथ आ जाता है।

पलक पर शोथ आने पर नेत्र नहीं खुल सकता। इस हेतु से रोगी घबराता है। यदि शोथ पलकके रोगके हेतु से हो, तो चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं है। रोगीको धैर्य दे सकते हैं।

शोथ पलकके रोग या गोलकके रोगके हेतु से हो, इस बातके निर्णयार्थ नेत्रवैद्यको आँखके भीतरके भाग देखना चाहिये। शोथ अधिक होने पर डिस्मार यन्त्रसे नेत्रको खोलकर देखें। गोलकमें कोई रोग न हो तो किस हेतु से हुआ है, यह निर्णय करना चाहिये।

अक्षिपुट शोथनिर्णायक नियमः—

१. पलकशोथ अञ्जननामिका (गुहेरी) के हेतुसे होगा, तो पलकधारामें वह विदित होगा। बहुधा एक आँख पर ही होगा। नेत्रवैद्य अपनी अंगुली फिराकरके भी निर्णय कर सकता है।

२. नेत्रके भीतरके भागमें और नाकके ऊपरके हिस्सेमें लाली प्रतीत हो, दबाने पर कठिनता लगे और रोगीको पीड़ा हो, तो निर्णित होता है, अश्रुवाशयके आशुकारी प्रदाहसे शोथ आया है।

३. पलकमें ही लाली, कठिनता, वेदनामय गांठ विदित हो तो पलक विद्रधिजन्य शोथ मानना चाहिये।

४. विसर्प जनित शोथ समस्त पलक पर समान और कठिन शोथ होता है।

५. पलकपर धक्का या मूढमार लगनेसे पलककी त्वचाके नीचे रक्तस्राव हुआ हो, तो समग्र पुट कठिन और समान शोथमय भासता है।

उपचार—शोथके कारणको दूर करना चाहिये। पहले अक्षिपुट पर शीतलप्रदेह औषध--फिटकरी, शीशाशर्करा, कासीस, मेगनेसियम सल्फेट आदि में से किसी एकको जलमें मिला उसके फोहे रखें। यदि उससे लाभ न हो, शोथ कम न हो, तो उष्णजल या अफीमकी डोडियोंके क्वाथसे या मेगनेसियम सल्फेटके उष्णजलसे सेक करें। कितनेक प्रकारोंमें एड्रिनलीन क्लिस्टिन लगानेसे भी लाभ पहुँचता है।

३. अक्षिपुट प्रदाह।

(Inflammation of Lids)

इस प्रदाहके ३ प्रकार हैं—अ. पलक विद्रधि (Abscess of lid); आ. पलक पिटिका (Furncle); इ. मेष कीटाणुजन्य पूय पिटिका (Anthrax Pustule).

अ. अक्षिपुट विद्रधि।

(Abscess of the Lid)

लक्षण—पलक पर फोड़ा होने पर शोथ आता है, पीड़ा होती है, तथा पूय होने पर भीतर शूल सदृश वेदना होती है।

कारण—आगन्तुक व्यथा, घाव, नेत्रगृहकी अस्थिका प्रदाह या कोथ और विसर्प आदि कारण हैं। नेत्रगृहकी अस्थिमें कोथ विशेषतः बालकों को, उनमें भी जिनकी देहमें क्षयका कुछ सचार हुआ हो, उनको होता है।

उपचार—ग्रन्थि पकने पर सेक करें। एण्टिफ्लोजिस्टिन लगावें। पक जाने पर शस्त्रचिकित्सा द्वारा पूयको बाहर निकाल दें। फिर कुछ दिनों तक मलहम पट्टी करने से रोग दूर हो जाता है।

आ. अक्षिपुट पिटिका।

(Furuncles of Lids)

जब गर्मी अधिक पड़ती है, तब तथा आम अधिक खाने वालों को पलक और भ्रू पर भी अलाइयां बहुत होती हैं। इस हेतुसे पलक खूब सूज जाते हैं। कितनेक रोगियोंमें तो देखाव विसर्प सदृश भासता है।

उपचार—जिंक ऑक्साइडको गुलाब जलमें मिलाकर लगावें। बरेलू उपचारमें चन्दनको घिसकर लगाने पर भी लाभ हो जाता है।

इ. मेषकीटाणुजन्य पूयपिटिका।

(Anthrax Pustule)

यह रोग सद्भाग्यसे अपने देशमें नहीं होता, ऐसा कहें तो चल सकेगा। यह रोग चार पैरवाले प्राणी, भेड़, बकरे आदिके संसर्गमें रहने वालों को होता है। ऊनों को रखने वाले ग्वालिये, गड़रिये, चमार, कसाई ये लोगों को भी होता है।

लक्षण और चिह्न—पलक पर और कर्णमूल ग्रन्थियोंमें शोथ आता

है, पलकका कुछ भाग सड़ता है। फिर वहां क्षत होता है। यदि उसमेंसे पूय या प्रवाहीको निकालकर अणुवीक्षण यन्त्रमे देखें तो लम्बे मेष कीटाणु विदित होते हैं।

उपचार—क्षत वाले भागको ८-१० प्रतिशत कार्बोलिक एसिडसे जलावें। उसी प्रवाहिका क्षतके नीचे अन्तःक्षेपण करें। विशेष प्रकारका गव्य (वेक्सिन) इसके लिये आता है। उसका प्रयोग करना चहिये।

परिणाम—उक्त तीनों प्रकारके रोगोंमें कभी-कभी पलकमें व्रणका शोषण हो जाता है। फिर पलक बाहर मुड़ जाता है या छोटा हो जाने से नेत्र बन्द नहीं हो सकता। इन दोनों स्थितियोंका उपचार इसी प्रकरणमें आगे लिखा जायगा।

४. पलक क्षत।

(*Ulcers of the Eyelids*)

पलकके क्षतके ५ प्रकार हैं—१. क्षयज (Tuberculous); २. उपदंशज (Syphilitic); ३. कुष्ठज (Leprous); ४. शीतला जनित (Vaccination ulcers); और ५. आगन्तुक व्यथाजन्य।

१. *क्षयजन्य क्षत*—यह प्रायः समीपके अस्थिके क्षयजकोथ (Gangrene) के हेतुसे होता है। इस प्रकार में क्षत का आकार अनियमित होता है और उसका किनारा लाल होता है। क्षत दीर्घकाल में भरता है या कभी भरकर पुनः आक्रमण करता है। कितनेक समय नाक या गाल पर हुआ क्षयज क्षत फैलता है और पलक पर आता है।

परिणाम—पलकमें कसर रह जाती है।

उपचार—योग्यता अनुसार।

२. *उपदंशज क्षत*—इस प्रकारके क्षतमें ३ जाति हैं—कठिन, मृदु और उपदंश विक्रिया जन्य।

कठिन क्षत (Hard Chancre)—इस प्रकारके क्षत भारतीय लोगों में होने की संभावना अति कम है। यह रोग पाश्चात्य प्रदेशवासियोंमें अधिक होता है। इसका कारण शारीरिक कुटेव है। इस प्रकार का क्षत पलकधारा, पलककोन या पलकके भीतरके भागमें होता है। जननेन्द्रिय ऊपर जिस प्रकारका क्षत दीखता है, वैसा ही यह कठिन मैले पीले रंग का होता है। इस क्षतके साथ कानसे आगे की या जबड़ेके नीचेकी रसग्रन्थि सूज जाती है। यदि इस क्षतके पूय या स्राव को अणुवीक्षण यन्त्रसे देखा जाय, तो उसमें उपदंशके कीटाणु प्रतीत होते हैं। यदि रोग १-२ मास

रह जाय तो वो शरमेन या कहान की रक्तपरीक्षा करने पर उपदंशज विष का निर्णय होता है। कभी पलक परसे छूत शुक्लमण्डल को लग जाता है। फिर वहाँ पर भी क्षत हो जाता है।

कठिन क्षतके समान कभी मृदु क्षत (Soft Chancre) भी देखने में आता है।

उपदंश की तृतीयावस्था में उपद्रव रूपसे पलक में ग्रन्थि होकर फूटती है, उस क्षत को लेसदार क्षत (Gumma) कहते हैं।

उपचार--रोगानुरूप ।

३. कुष्ठज (Leprous)--गलत्कुष्ठ पीड़ितों में इस प्रकारके क्षत होते हैं। इसके परिणाम में पलक में न्यूनता आजाती है। इस क्षतके प्रवाही में कुष्ठ कीटाणु प्रतीत होते हैं।

४. *शीतलाके टीकाजन्य क्षत*--छोटे बालकोंके हाथ पर टीका लगाते हैं, वहाँ पर क्षत होने पर उसके प्रवाही का संसर्ग पलक को हो जाय, तब वहाँ पर भी क्षत होजाता है।

५. *आगन्तुक व्यथाजन्य*--कभी कोई चोट लग जाय और त्वचा छिल जाय फिर पूय का संसर्ग हो जाय तो वहाँ पर क्षत होजाता है।

उपचार--उपर्युक्त तीनों प्रकारके क्षतों का योग्य उपचार करने पर मिट जाते हैं।

५. अक्षिपुट धाराप्रदाह।

(*Marginal Blepharitis*)

चित्र नं० १४६ देखें। इस रोगके मुख्य दो प्रकार हैं। १. क्षतमय प्रदाह (Ulcerous Blepharitis) और शुष्क प्रदाह (Squamous Blepharitis)

यह विकार भारतवर्षमें अधिक होता है, शहरोंकी अपेक्षा ग्रामोंमें अधिकतर प्रतीत होता है। धनिकोंकी अपेक्षा गरीबोंमें तथा बड़ी आयु-वालोंकी अपेक्षा छोटे बालकोंमें विशेष होता है। यथार्थमें यह रोग भी पलक धारा के ब्यूर्चीका भेद है। ब्यूर्चीमें गीला और सूखा होता है, वैसे ही इसमें भी गीला-सूखा होता है। गीला होने पर पलकके बालोंके मूलमें सूक्ष्म-सूक्ष्म क्षत होते हैं। उन क्षतों पर छिल्टे आ जाते हैं। छिल्टेको निकाल देने पर नीचे लाल क्षत भासता है। पलक धारा कुछ सूजी हुई दीखती है। छिल्टा निकालने पर कितनेक बाल भी निकल जाते हैं। इस तरह कितनाक समय जाने पर बाल बिल्कुल प्रतीत नहीं होते। यदि यह

रोग अधिक समय तक रह जाय, तो बालोंके मूल नष्ट हो जाते हैं। फिर रोग शमन होने पर भी पुनः बाल नहीं आते।

यह रोग चिरकारी है और दीर्घकाल तक चलता है। छोटे निर्बल बालकोंको अधिक होता है। अनेक बार इस रोगसे पीड़ित नेत्रोंमें पिटिका क्षत हो जाता है। इस तरह कभी पिटिका क्षतका स्राव भी इस रोगका कारण होता है।

कभी-कभी इस रोगके साथ अश्रुनलका अवरोध भी होता है।

यदि रोग अति दीर्घकाल पर्यन्त रह जाता है, तो फिर शमन होना कठिन हो जाता है। इतना ही नहीं, उसमेंसे परवालकी प्राप्ति होती है और कोमलास्थिकी धारा मोटी होती है और उसके अनुरूप स्थितिकी प्राप्ति होती है। निम्न पलकधारा बाहर मुड़ जाती है। इस हेतुसे नेत्रमें से गिरने वाला जल बढ़ जाता है। जलस्राव बढ़ने पर ब्यूची बना रहता है। बल्कि दिन प्रतिदिन सबल बनता जाता है।

शुष्क ब्यूची भी उतना ही चिरकारी है, किन्तु उसमें क्षत नहीं होता; एवं जलस्राव कम होता है; और छिल्टे नहीं बनते। पलकधारा लाल, कुछ मोटी और शोथमय भासती है। नेत्रमें से जलस्राव होता है, किन्तु आर्द्र ब्यूचीकी अपेक्षा कम। पलकके बाल कितनेक अंशमें गिर जाते हैं। पलकधारा परसे सर्पकी कंचुकीके सदृश त्वचाके सूक्ष्म-सूक्ष्म टुकड़े निकलते रहते हैं।

उपचार—आर्द्र ब्यूचीके लिये छिल्टे निकल जायँ और निम्नस्थ त्वचा छिल न जाय, ऐसा उपाय करना चाहिये। पलकधारा पर तैल या घृतके फोहे रखकर छिल्टेको नरम बनावें। तैलके स्थान पर सोडाबाई-कार्बोनेटका धावन भी चल सकता है। छिल्टे निकल जानेके पश्चात् सूक्ष्म-सूक्ष्म क्षत हों, उनको कास्टिकसे जला देवें। कास्टिक लगाने पर कुछ जलस्राव होगा, उसका शोषण अति हल्के हाथसे शुद्ध रुईके फोहेसे कर लेवें। फिर निम्न पूय प्रदाहहर मलहम लगावें:—

पूय प्रदाहहर मलहमः—

केलोमल	६ ग्रेन	सफेदा	१० ग्रेन
जिंक ऑक्साइड	८ ग्रेन	मक्खन या धोया घी	४ ड्राम

इन सबको मिलाकर मलहम बना लेवें। कितनेक चिकित्सक इस मलहममें लाइकर कार्बोनिस डिटरजन्स लगभग १० बूँद या इक्थियोल लगभग १० ग्रेन अथवा रिसोर्सिन ५ ग्रेन भी मिलाते हैं। इससे लाभ जल्दी पहुँचता है।

कितनेक रोगियोंको क्रियोलिन १ से ५ बूँद, जल आदो ड्राम और लेनोलिन ६ ड्राम मिलाकर तैयार किया हुआ मलहम विशेष उपयोगी होता है।

यह रोग अति जिद्दी है। सब रोगियोंमें एक ही प्रयोग सफल नहीं होता। इससे उक्त मलहमके अतिरिक्त निम्न मलहमोंका उपयोग भी आवश्यकता पर करना चाहिये:—

१. गुलाबजल १ भाग, लेनोलिन १ भाग, वेसलिन २ भाग।

२. उक्त मलहम १ ड्राम, एसिड कार्बोलिक २ ग्रेन, इक्थियोल ६ ग्रेन, तथा प्रवाही वैसलिन १० बूँद।

३. बोरिक एसिड का २% का मलहम, या बरोज वेलकम का बोरोफेक्स (Borofax), एमोनिएटेड मर्क्युरी का मलहम २% का; नोवोफार्म का मलहम १०% प्रतिशत का।

इनके अतिरिक्त एलेम्बिक कम्पनी का और कुसी कम्पनी का जिंक ऑक्साइड और इक्थियोलका मलहम नलियोंमें आता है, वह भी अच्छा लाभ पहुँचाता है।

रोगीके नेत्रमें कोई रोग हो, तो उसे दूर करना चाहिये; तथा रोगी की शारीरिक स्थिति सुधारनेके लिये सोमल, लोह, आयोडिन, कॉडलिवर आइल आदि पौष्टिक औषधियाँ व्यवहृत करनी चाहिये।

६. अक्षिपुट ग्रन्थियोंके रोग।

(*Diseases of Lid Glands*)

पलक की लसीका ग्रन्थियोंमें मुख्य २ रोग तथा गौण १ रोग है। अ. अंजननामिका (Stye, Hordeolum); आ. ग्रन्थि (Meibomian Cyst, Chalizion), इनके अतिरिक्त वयोवृद्धोंमें एक तीसरी अवस्था प्रतीत होती है, उसे इ. मेइबोमियन ग्रन्थियोंमें शुष्क रसका संग्रह (Infarction of Meibomian glands) कहते हैं।

अ. अंजननामिका गुहेरी।

(Stye-Hordeolum)

चित्र नं० १४४ देखें। गुहेरी के २ प्रकार हैं--१. बाह्य और २. अंतर।

१. बाह्य अंजननामिका (External stye)—इसकी उत्पत्ति झाइसके रसपिण्डके प्रदाह से होती है। पलकके बालोंके मूलमें एक-एक रसपिण्ड अवस्थित है। उनको झाइसके पिण्ड (Zeiss' glands) कहते

हैं। उनमें से कुछ चिपचिपा रस उत्पन्न होता है। इस हेतुसे जब अवयव बन्द होते हैं, तब उसके भीतर वायु भी प्रवेश नहीं कर सकती।

लक्षण और चिह्न—रोगी को प्रारम्भसे ही कुछ-कुछ वेदना होती है। रोग जैसे-जैसे बढ़ता है, वैसे-वैसे वेदना भी बढ़ती जाती है। जब गुहेरी बिल्कुल पक जाती है, तब वेदना कम हो जाती है। परीक्षा करने पर पलकधारामें कुछ उभाड़ भासता है। यदि वह पलकके बाह्य कोणमें हो, तो अधिक लक्ष्यपूर्वक देखने पर ही प्रतीत होता है। सूजा हुआ भाग या उभाड़ कुछ रक्ताभ होता है। अँगुलीसे परीक्षा करने पर कुछ कठिन छोटी गांठ भासती है, पलक अच्छी तरह सूज जाता है। फिर २-३ दिनमें शोथ कम हो जाता है और उभाड़के स्थान पर एक गाँठ दीखती है। उसपर चमड़ी खिंची हुई होती है, वहाँ हाथसे स्पर्श करनेपर रोगी को वेदना होती है। १-२ दिन बाद पलक धारामें किसी स्थान पर एक पीले रंग की फुन्सी दीखेगी, वह अंजननामिका का मुख है। वहाँसे ही अंजननामिका फूटेगी। फूटने पर १-२ बूँद पूय निकलता है। फिर शोथ, वेदना आदि शमन हो जाते हैं। यह रोग एक समय मिटने पर पुनः आक्रमण कर देता है। किसी-किसी को अधिक बार होता है। इस परसे सामान्य जनता की मान्यता हो गई है, कि वह ७ बार हो जाती है। कितनेक रोगियोंमें एक साथ अंजननामिका एकाधिक होती हैं।

कारण—रोगी की शारीरिक स्थिति निर्बल हो, दांत, गलग्रन्थियां, नासिका, नासाविवर या उदर के अन्त्र आदि स्थान में पूय उत्पन्न हुआ हो तो वह इस रोग का कारण बन जाता है। इस रोग के लिये स्टेफिलोकोकस कीटाणु जवाबदार हैं।

२. *अन्तर अञ्जननामिका* (Internal Stye)—इस प्रकार की गुहेरी पलक के कोमलास्थिमें अवस्थित मेइबोमियन पिण्ड के प्रदाह से होती है। यह गुहेरी बिल्कुल धारा पर नहीं होती, कुछ ऊपर के भाग में होती है।

लक्षण—अतिशय वेदना होती है। कारण, पूयोत्पत्ति कोमलास्थिमें (मेइबोमियन पिण्डों में) जो झाइस पिण्डों की अपेक्षा कठिन हैं, उनमें होती है।

चिह्न—पलक धारा के कुछ ऊपर एक छोटी गांठ भासती है। उस पर रचा लाल दीखती है। शोथ अधिक नहीं होता। उस स्थान पर पलक धारा को दबावें, तो उसमें से श्वेत, गाढ़ा पदार्थ निकलता है। पलक को उलट कर देखने पर भीतर में एक पीताभ दाग भासता है। यह दाग मेइबोमियन पिण्ड में उत्पन्न हुआ है। इसे पकने और फूटने में कुछ दिन

अधिक लगते हैं। क्योंकि, उत्पत्ति स्थान अधिक कठिन और गहरा है। पकने पर पलक के भीतर फूटता है (बाह्य अञ्जननामिका बाहर फूटती है)।

कारण—जो कारण बाह्य अञ्जननामिका के हैं, वेही कारण इसके हैं।

दोनों प्रकार की गुहेरी प्रायः युवा व्यक्ति अथवा बालकों को विशेष होती हैं। उनमें भी जिनके नेत्र स्वस्थ न हों, जिनके पलक की धारा पक गई हो, जिन बालकों को योग्य पोषण न मिलता हो, जो शरीर से कृश हों, जिनको रोमान्तिका आदि होजाने के पश्चात् निर्बलता रह गई हो, जो कन्या युवावस्था में प्रवेश करती हो, जिनको कोष्ठबद्धता रहती हो, ऐसे रोगियों को यह रोग विशेष होता है। यह रोग होने पर रक्त में इसके कीटाणुओं को नष्ट करने वाला तत्त्व उत्पन्न होता है। इस तरह पुनः-पुनः रोगाक्रमण और बार बार निरोधक तत्व की उत्पत्ति होना, ऐसा क्रम चलता रहने से २-४ या अधिक बार (७ बार) आक्रमण होने पर निरोधक तत्व अधिक उत्पन्न हो जाता है, जिससे स्टेफिलोकोकाय बिल्कुल जीवित नहीं रह सकते।

उपचार—यदि पूयोत्पत्ति के पहले बाह्य गुहेरी प्रतीत हो, तो एक दो पलक के बाल, जिनके मूल में गुहेरी उत्पन्न होती हो, उनको खींच लेनेसे कभी-कभी उत्पत्ति रुक जाती है। बाइटका मलहम (मर्क्युरिक क्लोराइड १ ग्रेन, नमक १ ग्रेन और सफेद वेसलिन ४ ड्राम) लगाने से कितनेक समय पूयोत्पत्ति रुक कर गुहेरी शमन हो जाती है।

यदि अञ्जननामिका उक्त उपचार से न जाय तो बोरिक धावन या अफीम की डोंडियों के क्वाथ का सेक १५-१५ मिनट दिन में लगभग ४ बार २-३ दिन तक करते रहने से अञ्जननामिका पक कर स्वयमेव फूट जाती है, या किञ्चित् शस्त्रका स्पर्श कराने पर फूटकर पूय निकल जाता है। फिर मर्क्युरोक्रोम २% का प्रवाही या बाइट का मलहम लगाते रहें।

यदि शस्त्रचिकित्सा करके गुहेरी को फोड़ना हो, तो समीप के भाग में नोवोकेन और एडिनेलिन के प्रवाही का अन्तःक्षेपण करना चाहिये। अन्यथा यह छोटी शस्त्र क्रिया भी रोगी को अति दुःखदायी प्रतीत होगी।

यदि रोगका पुनः आक्रमण हो, तो स्टेनोक्सिलकी टिकिया खानेके लिये देवें या पूयमें से गव्य तैयार कर उसका अन्तःक्षेपण करें। रोगीकी शारीरिक अवस्था शिथिल हो तो पौष्टिक और रक्तशोधक औषध देनी चाहिये (वहाँ पर अन्तर अञ्जननामिकाका उपचार चाहिये)।

आ. अक्षिपुटकी ग्रन्थि।

(Chalazion—Meibomion Cyst)

चित्र नं० १४५ देखें। मेइबोमियनके एक या अधिक लसीका-ग्रन्थियोंमें चिरकारी प्रदाह होकर रसको बाहर जानेका मार्ग बन्द हो जाता है। फिर उन ग्रन्थियोंमें लसीका संगृहीत होने पर इस रोगकी सम्प्राप्ति होती है।

लक्षण—इसके लक्षण बिल्कुल नहीं होते। रोगीको प्रारम्भमें महीनों तक वेदना नहीं होती। एवं इस प्रकारका रोग हुआ है, इसका बोध भी नहीं होता। जब अनेक मास हो जाने पर ग्रन्थियोंका पाक होने लगता है, तब वेदनाका प्रारम्भ होता है।

चिह्न—पहले पलकधाराके ऊपरके हिस्सेमें ग्रन्थिप्रदाहके स्थान पर एक छोटी-सी गाँठ अंगुलीसे परीक्षा करने पर विदित होती है। उसे दबाने पर बिल्कुल वेदना नहीं होती। पलकको उलट कर देखने पर भीतरके हिस्सेमें किञ्चित पीला दाग प्रतीत होता है। जैसे-जैसे समय व्यतीत होता है, वैसे-वैसे ग्रन्थि बढ़ती जाती है। फिर रोगीका लक्ष्य खिंचता है। उस स्थितिमें वह गाँठ पलकके बाहरकी ओरसे स्पष्ट भासती है। उस गाँठके ऊपरकी त्वचाको स्पष्ट हला-चला सकते हैं। यदि रोगिणी युवती हो, तो इस गांठसे उसके सौन्दर्यमें न्यूनता भासती है। इस सौन्दर्यकी कसरके हेतुसे अनेक स्त्रियाँ मेरे पास उपचार करानेके लिये आई थीं और आती हैं। अधिक समय जाने पर गांठ बढ़ती है, या उसमें प्रदाह होकर पूयोत्पत्ति होती है और वेदना होने लगती है। कभी-कभी यह गांठ पलकके भीतर स्वयमेव फूट जाती है और उसमेंसे लाल मांस बाहर निकल आता है। यह ग्रन्थि अञ्जननामिकासे पृथक् है। दोनोंमें निम्नानुसार अन्तर होता है :—

अञ्जननामिका और अक्षिपुट ग्रन्थि प्रभेद।

अञ्जननामिका	अक्षिपुट ग्रन्थि
१. यह बालके मूलोंमें होती है।	यह पलक-धारासे ऊपर पलकमें होती है।
२. यह १ सप्ताहमें पककर फूट जाती है; या बैठ जाती है।	यह महीनों तक ऐसी ही बनी रहती है।
३. इसके प्रारम्भसे ही वेदना होती है।	यह पकने पर ही वेदना करती है।
४. इस रोगमें छोटे फोड़ेके सब लक्षण—लाली, वेदना, शोथ आदि होते हैं।	इस रोगमें अञ्जननामिकाके एक भी लक्षण नहीं मिलते।

उपचार—यह रोग किसी भी प्रकारकी बाह्य चिकित्सासे शमन नहीं होता। इसे दूर करनेके लिये शस्त्र चिकित्सा ही करनी पड़ती है। नेत्रमें कोकैन और एड्रिनेलिनकी बूँद डाल या नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे अन्तःक्षेपण कर शस्त्र लगानेके स्थानको चेतनाहीन करना चाहिये। फिर पलकको उलट कर देखने पर ग्रन्थि-स्थान कुछ नीला भासता है। उस स्थान पर खड़ा काट करें (आड़ा नहीं)। शस्त्र ग्रन्थिमें पहुँचनेके साथ ही भीतरसे गाढ़ा प्रवाही निकलने लगता है। कुछ दबाने पर अधिक निकलता है। फिर एक विशेष प्रकारके धारवाले छोटे चिमचको भीतर प्रवेश करा ग्रन्थिके भीतरके पर्तको अच्छी तरह निकाल डालें। कितनेक शस्त्रवैद्य विशेष प्रकारकी कमानीका उपयोग करते हैं। उससे रक्त नहीं निकलता। शस्त्र लगानेके पश्चात् १-२ दिन तक ग्रन्थि उतनी ही बड़ी भासेगी। क्योंकि, गाढ़ा प्रवाही निकलनेके स्थानमें रक्त भर जाता है। फिर जब यह रक्त शोषित हो जाता है, तब ग्रन्थि अदृश्य हो जाती है। कभी-कभी एक फिर दूसरी पुनः तीसरी, इस तरह ग्रन्थि होती रहती हैं। ऐसे रोगियोंको केल्सियम सल्फाइड देनेसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

इ. मेईबोमियन पिण्डोंमें शुष्क रसका संग्रह।

(Infarction of Meibomian Glands)

यह रोग विशेषतः वयोवृद्धोंके नेत्रके पलकके भीतरके भागमें होता है। ऊपरके पलकके भीतर सफेद कुछ कठिन राईके दाने जैसे दाग भासते हैं। ये रोग मेइबोमियन पिण्डोंमें रस सूख जाने पर होता है। कितनेक रोगियोंमें इन दागोंके भीतर चूने जैसा पदार्थ संगृहीत हो जाता है। फिर दाग बड़े और अधिक कठिन हो जाते हैं।

लक्षण और चिह्न—कितनेक रोगियोंको इस विकारके अस्तित्वका भी बोध नहीं होता। कितनेकोंको नेत्रमें गड़ना या पलक लगने पर गोलक पर चुभना, ये लक्षण होते हैं। पलकको उलटने पर उसके भीतर श्वेत, छोटे दाग दीखते हैं। दागों पर अंगुली फिराने पर समतल भासते हैं। यदि उन दागोंमें चूना संगृहीत हुआ हो, तो दाग खुरदरे लगते हैं।

उपचार—यदि दाग बाधा पहुँचाते हों तो संगृहीत क्षार या रसको शस्त्रद्वारा निकाल देवें।

७. अक्षिपुटका मुड़ना और परबाल।

(Eversion of Lids, Distichiasis and Trichgasis)

पलककी इस स्थितिके ३ प्रकार हैं—अ. पलकका भीतर मुड़ना

(Entropion); आ. पलकका बाहर मुड़ना (Ectropion); इ-परबाल।

अ. अक्षिपुटका अन्तरावर्तन।

(Entropion of the lids)

चित्र नं० १५२ देखें। इस रोगको भी सामान्य जनता परबाल कह देते हैं; किन्तु नेत्रशास्त्रके अनुरूप दोनों रोगोंमें भेद है। परबालमें जिस तरह अधिक बाल निकलते हैं, वैसा इसमें नहीं होता। किन्तु जो बाल होते हैं, उनकी ही स्थिति पलट जाती है। वे गोलक पर घिसते रहते हैं, जिससे परबालके सब लक्षण उपस्थित होते हैं।

कारण—इस रोगकी उत्पत्तिका कारण परबालके समान रोहे और नेत्रश्लेष्मावरणका चिरकारी प्रदाह है, ऐसे प्रदाहोंके हेतुसे पलकमें अवस्थित कोमलास्थि मोटी हो जाती है और उसके मुड़नेमें अन्तर हो जाता है। कभी पलकको बन्द करनेवाली मांसपेशीमें खिंचाव होकर ऐसी स्थिति बन जाती है।

उपचार—मांसपेशीके खिंचावसे हो तो खिंचाव-उत्पादक कारण दूर होने पर विकृति दूर हो जाती है। यदि कोमलास्थिके मुड़ने से अन्तर हो गया हो, तो शस्त्रक्रिया बिना अन्य उपाय नहीं है। शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण २०वें में दिया जायगा।

आ. अक्षिपुट का बाह्यावर्तन।

(Ectropion of the Lids)

चित्र नं० १५७ देखें। यह रोग ऊपरके पलक की अपेक्षा नीचेके पलकों में अधिक होता है। चिह्न भी निम्न पलकके रोगों में अधिक स्पष्ट भासते हैं। निम्न पलक बाहर मुड़ जाने पर नेत्रमें उत्पन्न होने वाला अश्रु बाहर निकलता रहता है, जिससे पलकवारा पक जाती है। एवं पलक और गाल की त्वचा भी पक जाती है।

कारण—इस रोग में ३ प्रकार हैं। तीनों के कारण पृथक्-पृथक् हैं। A. मांसपेशी की शिथिलता; B. त्वचासंकोच; C. मांसपेशी बध।

A. *मांसपेशी की शिथिलताजन्य पलक का बाहर मुड़ना*—यह प्रायः वृद्ध व्यक्तियों में होता है। जरावस्थाके हेतुसे मांसपेशी और त्वचा पतली हो जाती हैं। इस हेतुसे इस विकृति की संप्राप्ति होती है। यदि वृद्धों के अतिरिक्त अन्यों में यह स्थिति प्रतीत हो तो निम्न पलक में शोथ आता है, उस शोथके हेतुसे पलक धारा बाहर मुड़ जाती है। शोथके दबावसे

मांसपेशी भी शिथिल हो जाती हैं, जिससे पलक धारा बाहर अधिक मुड़ती है।

उपचार—स्नेलन की रीति अनुसार टांके लगावें; अथवा फ्रीलेण्ड फर्गस, कुन्त या केनेथ स्कोट्स की रीति अनुसार शस्त्रक्रिया करें।

स्नेलन पद्धति—एक सामान्य कद की मुड़ी हुई विशुद्ध सुईमें विशुद्ध रेशम का डोरा पोवें। उस सुईको नेत्रश्लेष्मावरण का जो भाग अधिक उभड़ा हो, उसमें प्रवेश करावें तथा पलकधारासे लगभग पौन इञ्च दूर त्वचामेंसे बाहर निकालें। उसी तरह दूसरी सुई एक इञ्चकी दूरी पर उसी पलकमें उसी तरह प्रवेश कराकर बाहर निकालें। गालकी त्वचा में इन दोनों द्वारोंके बीच का अन्तर लगभग ४-५ पंक्ति जितना रहना चाहिये। इन दोनों डोरों को खींचें तथा पलकको नैसर्गिक स्थितिमें बैठावें। जब पलक ठीक बैठ जाय, तब एक लिण्ट या मलमलके छोटे टुकड़े को पेंसिलके समान मोड़कर उसपर दो-तीन डोरें बाँध दें।

फ्रीलेण्ड फर्गस की पद्धति—निम्न पलकके नेत्रश्लेष्मावरणका जो भाग मोटा हुआ हो, उसमें नेत्रके भीतरके कोनेसे बाहरके कोने तक एक छेद करें। उस छेद द्वारा गोलक को नेत्रश्लेष्मावरण चिपका है, वहाँ तक पलकके नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे काटकर नेत्रश्लेष्मावरण का भाग, जो मोटा बना हो, उसे निकाल डालें। फिर घाव को सी लेवें। इसका विशेष वर्णन प्रकरण ३०वें में किया जायगा।

कुन्तकी शस्त्रक्रिया (Kuhnt's Operation for Entropion)—चित्र नं० १५०-१५१ देखें। निम्न पलकको बीचमें से

चित्र नं० १५०-१५१—पलकके भीतर मुड़ने पर कुन्तकी शस्त्रक्रिया।

दूसरे भाग तक चीर डालें और दो पर्त पृथक् करें। पिछले हिस्सेमें कोमलास्थि और नेत्रश्लेष्मावरण तथा अगले पर्तमें मांसपेशी और त्वचा रहती हैं। पिछले पर्तमें एक त्रिकोणाकार भाग काट देवें। त्रिकोण का चौड़ा भाग पलक धागकी ओर तथा शिखा का भाग गोलक की ओर रहना चाहिये। फिर त्रिकोणके कटे हुए सिरे को दृढ़ सीं लें। टाँके जल्दी न टूटें यह सम्हालें। इस क्रियासे पलक की त्वचामें सिलवट हो जायँगे; किन्तु वह सिलवट फिर दूर हो जाती है।

केनेथ स्कोट की शस्त्रक्रिया अधिक कठिन होनेसे नहीं दी।

B. *त्वचा संकोच*—इस हेतुसे पलक बाहर मुड़ जाता है। इसके ४ कारण हैं। १. बरूनी धाराका गिरना, इस हेतुसे पलक की बाह्य त्वचा पक जाती है। फिर भरने पर उसका संकोच होकर पलक बाहर मुड़ जाता है; २. त्वचा पर घाव; ३. त्वचा का जलना; ४. नेत्र-गृह का शोथ।

इस स्थिति को शस्त्र-क्रिया द्वारा सुधार सकते हैं। शस्त्र-क्रिया कुन्त और ट्रक की पद्धति के अनुसार करना चाहिये। केवल वर्णन करने पर सामान्य चिकित्सक नहीं समझ सकेंगे। इसलिये नहीं किया।

C. *मांसपेशी बध*—मांसपेशीका बध हो जाने पर जब पलक बाहर मुड़ जाता है; तब प्रायः सातवीं नाड़ीमें विकृति होती है। दोनों पलक-धाराओंको बाहरके कोनमें सी लेनेसे रोगी को शान्ति मिलती है।

इ. परबाल।

(Distichiasis and Trichiasis)

जो बरूनीके अतिरिक्त बाल दोनों पलक धागमें उगते हैं, उनको परबाल (चित्र नं० १५२)कहते हैं। नैसर्गिक बालों की दिशा ऊर्ध्व और बाहरकी ओर होती है; किन्तु परबालके बालकी दिशा गोलककी ओर तथा नीची होती है। इस हेतुसे जितनी बार पलक चले, उतनी बार बाल शुक्ल-मण्डलपर घर्षण करते हैं। परिणाममें नेत्रमें से जलस्राव होता रहता है; एवं शुक्लमण्डलमें क्षत, सफेदी आदि व्याधियां उपस्थित होती हैं। इस पर-बाल की एकही पंक्ति निकली हो, तो उसे डाक्टरीमें डिस्टीकियासिस कहते हैं तथा एकाधिक पंक्ति होने पर उसे ट्रिकियासिस कहते हैं।

चित्र नं० १५२ परबाल।

लक्षण और चिह्न—यह रोग भारत में अधिक होता है। शहरों की अपेक्षा ग्रामोंमें अधिक; फलद्रप देश की अपेक्षा शुष्क रेगिस्थान—मारवाड़, कच्छ आदि में अधिक फैलता है। मुख्य लक्षण—नेत्र मेंसे सतत जलस्राव, तेजकी असहनशीलता, नेत्र योग्य न खुलना आदि होते हैं। पलक के बाल शुक्लमण्डल पर चुभते रहने से नेत्र में गड़ना यह लक्षण प्रधान होना चाहिये; किन्तु ऐसा क्वचित् ही होता है। कारण, नेत्रस्राव से बाल भीगते रहने से उतने मुलायम हो जाते हैं कि वे नहीं चुभते। बल्कि शुक्लमण्डल भी कितनेक अशमें सतत घर्षण से शून्य (बोधहीन) होजाता है।

परीक्षा करने पर नेत्र कुछ अंशमें रक्ताभ भासता है। नेत्र को खोलने का प्रयत्न करने पर जलस्राव होने लगता है। कितनेकों को छींकें आने लगती हैं। बरूनी में कितनेक अधिक बाल निकले हुए प्रतीत होते हैं। ये बाल गोलक की ओर मुड़े रहते हैं। कितनेक रोगियों में बाल १-२ या गिनती के होते हैं; तब कितनेकों में लम्बी पक्ति होजाती है।

कारण--पलकधाराका चिरकारी प्रदाह और रोएँ ये दो हैं। भारत में विशेषतः दोही कारण होते हैं। जिन ग्राम या प्रदेश में रोएँ के अधिक रोगी प्रतीत हों, वहां पर परबाल के बहुसंख्य रोगी हो जाते हैं। कितनेक बालकों में जन्म से ही परबाल उपस्थित होते हैं।

उपचार--इस रोग के लिये शस्त्रक्रिया के अतिरिक्त उपाय नहीं है। यदि एक दो बाल हो तो बिजली की सुई द्वारा जला सकते हैं। अधिक बाल होने पर शस्त्रक्रिया का शरण लेना चाहिये। कितनेक सुबोध रोगी गोंद जैसी चिपचिपी वस्तु द्वारा बालोंको चिपकाकर ऊपर मोड़ देते हैं। इस तरह कुछ भी बाधा न होते हुए, तथा शुक्लमण्डल को हानि न पहुँचते हुए वर्षों पर्यन्त निभाने वाले रोगियों को मैंने देखा है।

इसकी शस्त्रक्रिया के अनेक प्रकार हैं। इनमें से मुख्य २ प्रकार का वर्णन प्रकरण ३० वें में दिया जायगा।

८. अक्षिपुटधारा की परस्पर संलग्नता।

(*Ankyloblepharon*)

इस स्थिति में ऊर्ध्व पलकधारा निम्न पलकधारा से चिपक जाती है।

लक्षण और चिह्न—रोगी की आंख बिल्कुल बन्द रहती है; खुल नहीं सकती। परीक्षा करने पर दोनों पलकों की धारा चिपकी हुई भासती है। कभी-कभी बीच के हिस्से में कुछ जगह रहती है। कभी गोलक भी पलक को चिपक जाता है।

कारण--इसकी संप्राप्ति के केवल २ हेतु हैं। पलक का जलना या पलकधारा में क्षत होना।

उपचार—इस विकृति को केवल शस्त्र चिकित्सा से ही सुधार सकते हैं। दोनों पलकों को धाराके सिरेके पास काटें और फिर चिपक न जाय, इस लिये नेत्रश्लेष्मावरण या ओष्ठ के भीतर के भाग में से श्लेष्मावरण का टुकड़ा निकाल धारा पर चिपका देवें। बहुधा पलक के दोनों कोनों में श्लेष्मावरण अवश्य डालना पड़ता है।

९. नेत्रद्वार का कोथ।

(*Blepharophimosis*)

इस स्थिति में नेत्रद्वार अर्थात् ऊपर और नीचे की पलकधारा के बीचका अन्तर कम हो जाता है। यह स्थिति नेत्रके बाह्य कोणमें त्वचा के बन्द न होने से होती है। भीतर के कोनवाला भाग सकड़ा नहीं होता।

लक्षण और चिह्न—आंख कम खुलती है और रोगी आंख को सतत दबाता रहता है। कितनीक वार निम्न पलक की धारा कुछ भीतर मुड़ी हुई भासती है।

कारण—१. रोहे के परिणाम में; २. नेत्र में जलस्राव सतत दीर्घकाल तक होता रहना; ३. नेत्र निमीलनी पेशीका तीव्र संकोच, इन ३ कारणों से इस रोग की संप्राप्ति होती है। भारत में जीर्ण रोहे के पीड़ितों से, विशेषतः स्त्री रुग्णाओं में यह स्थिति विशेष उत्पन्न होती है।

उपचार--शस्त्रक्रिया बिना प्रायः यह विकृति दूर नहीं होती। छोटे बालक और युवा व्यक्तियों में यदि मांसपेशी के अति संकोच से यह विकृति हुई हो, तो कारणभूत रोग को दूर करने पर यह विकृति दूर हो जाती है।

शस्त्र क्रिया में नेत्र के बाह्य कोण को काटकर, वहां टांके लगाने पड़ते हैं। इस शस्त्र क्रिया को बाह्यकोण वेध (Canthoplasty) कहते हैं। इसका वर्णन प्रकरण ३० वें में किया जायगा।

१०. अक्षिपुट बन्द होने की शक्तिमें न्यूनता—नकुलदृष्टि।

(*Lagophthalmos*)

इस स्थिति में पलक खुला ही रहता है, जिस से नेत्र बन्द नहीं होते।

लक्षण और चिह्न—नेत्र बन्द नहीं हो सकते। निद्रा आनेपर भी नेत्र खुले ही रहते हैं। जागृतावस्था में नेत्र को बन्द करने का प्रयत्न करने पर गोलक ऊपर चढ़ जाता है। निद्रा में भी प्रायः ऐसा ही होता है। इस तरह स्थिति हो जाने से शुक्लमण्डल जल्दी नहीं बिगड़ता।

कारण—७वीं नाड़ी का बध होने पर इस रोग की संप्राप्ति होती है। मध्यस्थ गलग्रन्थि (Exophthalmic goitre) में भी नेत्रगोलक बड़ा हो जाने से नेत्र बन्द नहीं होता। एवं नेत्रगृहार्बुद में नेत्र गोलक आगे निकल आने पर जिस तरह तंग कोट के बटन बन्द नहीं होते, उस तरह पलक बन्द नहीं होते। अन्य किसी कारण वश नेत्र गोलक बड़ा हो या गोलक बाहर निकल आवे, तब भी वैसी ही स्थिति होती है। पलक बन्द होने पर शुक्ल मण्डल का जितना हिस्सा बाहर रहता है, वह सूखने लगता है। फिर वहां पर क्षत होजाता है।

उपचार—मांसपेशी का बध न हुआ हो, तो नेत्र पर पट्टी बांधते रहने से शुक्लमण्डल का रक्षण होजाता है। या दोनों पलकों के कुछ हिस्सेको सी लेने पर भी नेत्र द्वारा सँकरा होजाता है। फिर शुक्लमण्डल के क्षत को डर कम हो जाता है।

यदि पेशी का बध होगया हो, तो कारण अनुसार उपचार करना चाहिये। बिजली, स्ट्रिक्निया आदि का उपयोग करके परीक्षा करें। उनसे लाभ न होने पर नेत्रद्वार को सँकरा बनाना पड़ता है उसकी शस्त्रक्रिया ३० वें प्रकरण में लिखी जायगी।

११. ऊर्ध्वाक्षिपुट निमीलन।

(*Ptosis, Blepharoptosis*)

इस रोग (चित्र नं० १५३) के २ प्रकार हैं—१. मिथ्या निमीलन; २ यथार्थ निमीलन। मिथ्या निमीलन रोह (पोथकी) रोगमें होता है। अतः उसका वर्णन उस रोगमें किया गया है। इसके अतिरिक्त नेत्रगोलक छोटा होना, पलक का संकोच होना, पलक में ग्रन्थि होना, इन कारणों से भी मिथ्या निमीलन होता है। शेष यथार्थ निमीलनका वर्णन यहां किया जाता है।

चित्र नं० १५३ ऊर्ध्वअक्षिपुट निमीलन।

पलक के यथार्थ निमीलन में भी २ उप-प्रकार हैं—अ. जन्मलब्ध, आ. जन्म के पश्चात् उत्पन्न (संप्राप्त निमीलन)।

अ. जन्मलब्ध अक्षिपुट निमीलन।

(Congenital Ptosis)

यह स्थिति प्रायः शिशुको ६ मासके भीतर प्राप्त होती है। यह दोनों नयनोंमें समान होती है। यह स्थिति कुटुम्बमें एकाधिक शिशुओंमें प्रतीत होती है। जिससे इसे वंशागत विकृति मानी गई है। यह निमीलन पूर्णांशमें या अपूर्ण भी होता है।

लक्षण और चिह्न—रोगी नेत्रों को ठीक नहीं खोल सकता। देखने पर उसके मुखमण्डल और नेत्र निद्राग्रस्त या नशा छायेसे भासते हैं। यदि नेत्रवैद्य अपनी अंगुलीसे पलकको उठाता है, तो नेत्रगोलक अच्छी तरह प्रतीत होता है। पलक पूरा न खुलनेसे बालक देख नहीं सकता, एवं खिलौने आदिको नहीं पकड़ सकता।

कारण—जन्मलब्ध अक्षिपुट निमीलनका मुख्य कारण नेत्रोन्मीलनी पेशीके विकासका बिल्कुल अभाव या अपूर्ण विकास है।

उपचार—जन्मके पश्चात् उत्पन्न रोगके अनुसार।

आ. संप्राप्त अक्षिपुट निमीलन।

(Acquired Ptosis)

इस स्थितिके ३ प्रकार हैं—१. पेशी व्यथाजन्य; २. नाड़ी व्यथाजन्य या अन्य व्याधिजनित; ३. हिस्टीरियाके चिह्न रूप।

१. पेशी व्यथाजन्य अक्षिपुट निमीलन—नेत्रोन्मीलनी पेशी कट जाने, टूटने और पेशी या उसका सिरा मुक्त होने पर यह स्थिति उपस्थित होती है। ये सब आगन्तुक व्यथा शस्त्र क्रियाके परिणामसे या ग्रन्थिके हेतुसे होती है। इनके अतिरिक्त कभी-कभी मांसपेशी शुष्क होने लगे, तो इस हेतुसे भी पलक नहीं उठ सकता।

२. नाड़ी व्यथा या अन्य व्याधिजन्य—नेत्रोन्मीलनी पेशीकी क्रिया तृतीया नाड़ीपर अवलम्बित है। उस नाड़ीको या उस नाड़ीके मस्तिष्कगत केन्द्रस्थानको व्यथा होने या किसी अन्य व्याधिजन्य आघात पहुँचनेपर ऊर्ध्वपुट गिरा हुआ रहता है; अर्थात् ऊपरके पलकको उठानेवाली पेशीका स्तम्भ हो जाता है।

मस्तिष्कमें उस तरह प्रतिबन्ध करने वाले रोगोंमें मुख्य मस्तिष्क-प्रदाह, मस्तिष्कमें रुधिरस्राव या ग्रन्थि; शकुन्त गति रोग (Loocomotor Ataxia), मस्तिष्क जलोदर, कतिपय विषप्रकोप और मोतीझरा, न्युमो-

निया, इन्फ्लुएञ्जा आदि कीटाणुजन्य रोग हैं। इन रोगोंसे मस्तिष्क प्रदाह उपस्थित होनेपर उक्त चिह्न प्रतीत होता है।

३. *अपतन्त्रक जन्य*—हिस्टीरिया रोगमें कभी-कभी यह चिह्न उत्पन्न होता है; किन्तु प्रायः यह कुछ समय तक रहकर पुनः पलक की स्थिति योग्य हो जाती है।

लक्षण और चिह्न—रोगी पलकको अच्छी तरह ऊँचा नहीं उठा सकता। इस हेतुसे कनीनिका प्रदेश ऊपरके पलकसे ढका हुआ रहता है और रोगीको देखनेमें प्रतिबन्ध होता है। रोगीका देखाव निद्रामें या नशेमें हो वैसा भासता है। पलकको उठाकर देखने पर गोलकको किसी भी प्रकार की हानि नहीं दीखती। किसी-किसी रोगीमें पलक ऊँचा न होनेके साथ गोलक भी ऊँचा नहीं जा सकता। कारण, नेत्रोन्मीलनी पेशीके साथ ऊर्ध्वा-सरल पेशीका भी स्तम्भ होता है। यह रोग एक या दोनों नेत्रोंमें होता है। रोगीको ऊँचा देखने को कहें, तब वैसा प्रयत्न करने पर कपाल की पेशी भी साथ में खिंचती है। भ्रू ऊपर बढ़ती है और पलक वैसा ही रहता है, जिससे भ्रू के ऊपर सिलवट पड़ती है। एवं रोगीका देखाव कुरूप लगता है।

कारण—किसी भी कारणसे पेशी, नाड़ी अथवा नाड़ीकेन्द्रको व्यथा पहुँचे या व्याधि हो जाय, तो इस स्थिति की प्राप्ति होती है। इसके मुख्य कारण ५ हैं—१. शीत या सर्दी लग जानेसे पेशी या नाड़ी पर आघात पहुँचना; २. फिरंग; ३. आमवात; ४. मस्तिष्क और सुषम्णा के व्याधि; ५.वृद्धावस्था।

उपचार—जो कारण प्रतीत हों, उनको दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। सोडा सेलिसिलास, पोटास आयोडाइड, स्ट्रिक्निया आदि औषधियों का प्रयोग किया जाता है। पेशी पर फाराडिक करन्ट (विद्युत्) का उपचार करने पर कितनेक रोगियों को लाभ पहुँचता है। यदि लाभ न हो तो शस्त्रोपचार करना पड़ता है।

पलक के गिरने पर अनेक प्रकार की शस्त्र क्रिया प्रयोजित होती हैं। इन शस्त्र चिकित्सा की ४ रीति हैं, उनका वर्णन ३० वें प्रकरणमें किया जायगा।

१२. अक्षिपुट की आगन्तुक व्यथा।

(*Injuries of Eyelids*)

मूढ़मार, पिसजाना, घाव लग जाना, कट जाना, अग्नि या दाहक द्रव्यसे जलना आदि हेतुओंसे पलक में रक्त का संग्रह आदि स्वरूप प्रतीत

होता है। पलक की त्वचा उसके नीचे रहे हुए भागोंसे मुक्त होनेसे और त्वचाके नीचे कितनाक भाग स्पञ्ज जैसा होने से व्यथा होने पर उस पर शोथ और रक्तसंग्रह अत्यधिक होते हैं। अनुभव रहित नेत्रवैद्य पलकों की इस स्थिति को देखकर सहज घबरा जाता है; किन्तु अनुभव से विदित हुआ है कि, यदि पलक के अतिरिक्त नीचे की अस्थि या गोलकमें हानि न पहुँची हो, तो भयंकर भासता हुआ शोथ थोड़े ही दिनोंमें शमन होजाता है। फिर नेत्र में किसी भी प्रकार की न्यूनता नहीं रह जाती।

लक्षण और चिह्न—शोथ अधिक होने पर नेत्र नहीं खुलता। पलक में वेदना होती है; किन्तु शोथके अनुपातसे वेदना कम होती है। यदि नेत्रगृह की अस्थि को व्यथा हुई हो, तो वेदना अधिक होती है। नेत्रको देखने पर ऊपर का पलक अति सूजा हुआ, कठिन और लाल या काला-लाल भासता है। पलक खोलनेमें कष्ट होता है। पलकमें घाव हो, तो घाव की दिशाके अनुरूप वह छोटा बड़ा दीखता है। यदि घाव आड़ा हो, तो घाव के सिरे अधिक पृथक् नहीं होते, किन्तु घाव खड़ा होने पर उसके सिरे अधिक मुक्त होते हैं। नेत्रगृह के बाह्य द्वार के ऊपर का किनारा एवं बाहरके किनारे की ठीक परीक्षा करने पर उसमें किसी स्थान पर भङ्ग हुआ होगा, तो अंगुली फिराने पर नेत्रवैद्य को विदित हो जायगा। कदाच उसमें सन्देह हो तो क्ष किरणों की परीक्षा द्वारा निर्णय किया जाता है। यदि नेत्रगृह की कोई अस्थि टूटी हो और उस हेतु से भङ्ग बाजू में रही हुई कोटरों तक पहुँचा हो, तो पलक की त्वचाके नीचे वायु भरी हुई भासेगी। उस स्थितिमें रोगी नाकके दोनों पुट और मुख को बन्द करके गाल को फुलाएगा, तो पलक पर सूजन बढ़ती हुई प्रतीत होगी। उस सूजन को अंगुली से दबावेंगे, तो उसमेंसे 'कर-कर' ऐसी आवाज निकलेगी। क्योंकि, शोथ में भरी हुई वायु दबाव वाले भागमें से निकलती है।

परिणाम—यदि व्यथा धारवाले शस्त्रसे हुई हो, और घाव आड़ा हुआ हो, तो प्रायः घाव भर जायगा। इतनाही नहीं, पलक में अधिक न्यूनता भी नहीं रहेगी। किन्तु घाव खड़ा होगा, तो उस घावके दोनों सिरे एक दूसरे से दूर होने के हेतुसे घाव जल्दी नहीं भरेगा। एवं घाव खुला रहनेसे उसमें पूयोत्पत्ति होगी तथा घाव भर जानेके पश्चात् जो दाग शेष रह जायगा, वह रोगी को कुरूप बना देगा। इसके अतिरिक्त यदि पलकमें सिलवट होजाय, तो पलक पूरा बन्द नहीं होगा; सदाके लिये कसर रह जायगी।

यदि पलकको अग्नि या दाहक पदार्थ से हानि पहुँची हो, तो पलकके कितनेक भागका नाश होता है; अथवा नाश न होने पर भी घाव भर जाने के पश्चात् कुछ संकोच आकर पलकमें न्यूनता रह जाती है।

यदि नेत्रगृह की अस्थिको व्यथा हुई हो अर्थात् अस्थि टूटी हो तो परिणाम अधिक खराब आता है। उसमें भी टूटी हुई अस्थि सड़ती है, तो महिनों तक घाव नहीं भरता; उसमें पूय होता है और भर जानेके पश्चात् भी पलकका कुछ भाग निम्न भाग को चिपक जाता है।

उपचार—यदि पलकके भीतरका शोथ केवल रक्तसंग्रहके हेतुसे हो, या रससाव जनित हो, तो उस पर स्युगर आफ लेड (नाग शर्करा) के जल (१ औंस में ३ ग्रेन) का फोहा रखने पर ३-४ दिनमें सूजन उतरने लगती है और १ सप्ताहमें साफ हो जाती है। पलकमें वायु भरी हो तो उसी-उपचारसे शनैः-शनैः वायु शोषित हो जाती है। पलक पर साधारण दबाव आवे उस तरह पट्टी बाँधने पर भी सूजन तुरन्त उतर जाती है।

यदि पलकमें घाव हुआ हो और घाव तुरन्तका हो, तो उसे पहले उबाले हुए जलसे फिर स्पिरिट या टिञ्चर आयोडिनसे अथवा स्पिरिट मिश्रित मर्क्युरोक्रोमसे साफ करें। पश्चात् रेशम या सिल्कवर्म (Silk worm) के डोरेसे सिलाई कर लेवें। सिलाई करनेमें पूरा लक्ष्य रखें कि, दोनों सिरे ठीक परस्पर मिल जायँ। अन्यथा घाव भरजाने पर पलकमें कसर रह जायगी। सिलाई करने पर मर्क्युरोक्रोमका प्रवाही लगा गाज और रुईका फोहा रखकर पट्टी बाँधें। ३-४ दिनके बाद पट्टी बदलकर देखने पर प्रायः घाव भरा हुआ दीखता है। ७-८ दिन होने पर टांके निकाल डालें। पलकके घाव बहुधा नहीं पकते। इससे भरनेमें प्रतिबन्ध नहीं होता।

यदि आघात किसी तपे हुए पदार्थ या अग्निसे हुआ हो, तो पहले उस भाग पर फेरोफार्म या नार्वोफार्म का मलहम लगाकर पट्टी बांधें, जला हुआ भाग बिल्कुल साफ हो जाय, तब यदि कसर रह गई हो, देहके अन्य भागमें से त्वचा लेकर पलक पर लगावें (Skin Grafting)।

१३. अक्षिपुटके अर्बुद।

(*Tumours of Eyelids*)

पलकके अर्बुदोंमें २ प्रकार हैं—सादे और दुष्ट। सादे अर्बुदों (Benign Tumours) में मुख्य ६ हैं। अ. पीतसर्षपवत् पिटिकाएँ (Xanthelasma); आ. जतुक (Molluscum Simplex); इ. बहुजतुक

(Molluscum Contagiosum); इ. मस्से (Warts); उ. रसार्बुद (Cysts); ऊ. रक्तार्बुद (Angeomas) आदि हैं।

दुष्टार्बुदों (Malignant Tumours) में मुख्य २ हैं—ए. दुष्ट कर्कस्फोट (Carcinoma); ऐ. मांसार्बुद (Sarcoma).

अ. पीतसर्षप।

(Xanthalasma)

चित्र नं० ६८ प्रकरण ११वें के आरम्भमें देखें। इस रोगमें पलक पर सरसों के दाने के समान पीले दाने हो जाते हैं। यह रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियोंको अधिक होता है। प्रायः यह रोग वृद्धावस्थामें होता है। प्रायः दोनों नेत्रोंके पलक पर होता है और बहुधा दोनों ओर समान ही होता है। एक बार इस रोगको देखनेके पश्चात् दूसरी बार इस रोगके निदान में भूल नहीं होती।

उपचार—बहुधा उपचार की आवश्यकता नहीं रहती। क्योंकि, देखावमें थोड़ा अन्तर होनेके अतिरिक्त इस रोगसे अन्य बाधा नहीं पहुँचती। आवश्यकता होने पर शस्त्रचिकित्सा द्वारा रोगस्थानको काटकर निकाल देवें; या बिजली से जला देवें। कभी रेडियमससे अच्छा कार्य होता है।

आ. इ. ई. जतुक, बहुजतुक और मस्से।

(Molluscum simplex. Molluscum Contagiosum and Warts)

जतुक एक प्रकारके मस्से हैं। किन्तु उसमें यह अन्तर है कि इस मस्सेका आकार लहसन की कलीके समान अर्थात् मुखमें पतला और सिरे पर मोटा होता है। कभी-कभी रोगीके सारे शरीर पर ऐसे अनेक लहसन होते हैं। यह शरीरके समान पलक पर भी होता है।

जब उपरोक्त अनेक जतुक (लहसन) उत्पन्न होते हैं, तब बहुजतुक कहलाते हैं। ये मस्से मूलमें ही समान कड़के और कुछ कठिन होते हैं।

उपचार—इन सबको दाहक औषध द्वारा दग्ध किया जाता है। एवं कभी-कभी चाकू या कैंची से काट दिया जाता है। काटने के पश्चात् कास्टिक या बिजलीसे दग्ध करने पर पुनरोत्पत्ति नहीं होती।

उ. रसार्बुद।

(Cyst)

रसार्बुद (रसौली)—एक या अधिक होते हैं। इनमें भेदभाव

(Adenoma), त्वचामय (Dermoid), तन्तुमय (Fibroid), ये ३ प्रकार हैं। उपचार मस्सेके समान।

ऊ. रक्तार्बुद।

(Angeomas)

पलक पर होजाने वाले रक्तार्बुदोंमें कितनीक जाति हैं। सामान्यतः जिसे तिल कहते हैं, वह भी एक जातिका रक्तार्बुद है। यदि रक्तार्बुद अधिक रक्तपूर्ण होकर फूटे या उसमें घाव हो जाय तो उसमें से अधिक रुधिर निकलता है।

उपचार—मस्सेमें लिखे अनुसार।

ए. दुष्ट कर्कस्फोट।

(Epithelioma)

यह बहुधा त्वचामय होता है। यह पलक पर पिटिकारूप से प्रारम्भ होकर फिर दुष्ट क्षत बन जाता है, इस क्षतका किनारा कठिन होता है। कान के पास का पिण्ड (ग्रन्थि) प्रारम्भ से ही कठिन और मोटा हो जाता है।

ऐ. मांसार्बुद।

(Sarcoma)

यह प्रारम्भ में रक्तार्बुद के समान भासता है। किन्तु समय जाने पर बहुत जल्दी बढ़ने लगता है। इसका रंग रक्ताभ वा कृष्णाभ होता है। यह शीघ्र बढ़ने लगता है, अन्तमें ऊपर का भाग नष्ट होकर उसमें से कोलीफ्लावरके समान अंकुर फूटते हैं, उस अंकुरमें से रक्तस्राव होता ही रहता है।

उपचार—दुष्ट कर्कस्फोट और मांसार्बुद, दोनोंको हो सके उतना जल्दी शस्त्रोपचारसे मूल सह निकाल देना चाहिये। एवं फिर उसपर गहरे क्ष किरण या रेडियम लगाना चाहिये। इन दुष्ट अर्बुदोंको निकाल देनेके पश्चात् उसकी जातिके निर्णयार्थ योग्य परीक्षाके लिये भेजवा देना चाहिये।

१४. अक्षिपुटकी जन्मलब्ध न्यूनता।

(Congenital Anomalies of the Eyelids)

जन्मजात न्यूनताओंमें पलकमें खांच (Coloboma of lid), पलकका (Ablepharia); अक्षिपुट संलग्नता (Ankyloblepharon),

लघु अक्षिपुट (Short lids), जन्मलब्ध परवाल (Congenital Trichiasis), और नेत्रके भीतर के कोनमें त्वचाकी पर्त होना (Epicanthus), ये मुख्य हैं।

त्रिकोणाकार खांच—पलकोंमें विशेषतः, ऊपरके पलकोंमें बीचके और भीतरके भागके बीच में त्रिकोणाकार खांच जन्मलब्ध खोड़ रूपसे कभी होजाता है। यह दरार पलकधारा के पास चौड़ी और ऊपरके भागमें कोन युक्त अर्थात् सँकरी होती है।

उपचार—बालक दो वर्ष का होने पर इस दोषको शस्त्रक्रिया से मिटा सकते हैं।

पलकाभाव (Absence of lids--Ablepharia)—कभी-कभी किसी बालकको जन्मसे ही पलक नहीं होते। यह स्थिति उन बालकों में होती है, जिनको नेत्रगोलक ही नहीं होता।

उपचार—कुछ भी नहीं है।

अक्षिपुट सलग्नता (Ankyloblepharon)—किसी-किसी बालकके जन्मसे ही पलक खुले नहीं होते। यह स्थिति क्वचित् ही होती है। मेरे ४० वर्षके अनुभवमें दो ही रोगी देखनेमें आये हैं। एक सोनारका लड़का जन्म के दूसरे दिन मुझे दिखलाया था। उसके दोनों पलकोंके बीच बिल्कुल मार्ग ही नहीं था। मैंने शस्त्रक्रिया द्वारा उस मार्गको मुक्त किया। फिर देखा तो नेत्रगोलक बिल्कुल छोटा और विकास रहित था। जिन नेत्रोंमें पलक चिपके हुए होते हैं, उनमें गोलक होता ही नहीं या अतिशय कम विकास वाला होता है।

उपचार--कुछ भी नहीं है।

लघु अक्षिपुट और जन्मलब्ध परवाल—इन दो स्थितियोंको कुशल नेत्रवैद्य शस्त्र-चिकित्सा द्वारा मिटा सकते हैं।

नेत्रके भीतरके कोनमें त्वचाकी पर्त होना (Epicanthus)—गर्भावस्थामें नाकके भीतरमेंसे एक सूक्ष्म त्वचाकी पर्त नेत्रके भीतर के कोन पर आकर इस स्थितिकी सम्प्राप्ति होती है। यह न्यूनता भारतीयोंकी अपेक्षा चीन और तिब्बतके लोगोंमें अधिकतर प्रतीत होती है।

उपचार—शस्त्रक्रिया द्वारा त्वचाकी पर्तको निकाल डालें।

१५. पलकमें चर्मजूँ।

(*Pediculi Ciliaris*)

जिस तरह देहके अन्य भागोंमें चामजूँ हो जाती है, उस तरह पलकके बालोंमें भी होती हैं।

लक्षण और चिह्न--कण्डू आती रहती है, इस हेतुसे रोगी पलकोंको बलपूर्वक मसलता है; जिससे उसकी धारा छिल जाती है। परीक्षा करने पर एक या अधिक सूक्ष्म श्वेत चर्मजूँ बरौनीको चिपकी हुई प्रतीत होती है। एवं बालोंके मूलमें बहुसंख्य भूरे अण्डे भासते हैं। उसका देखाव दालचीनीका सूक्ष्म चूर्ण बरौनीको चिपका हो वैसा होता है।

उपचार—अति सम्हालपूर्वक अण्डे और चामजूंको चिमटेसे निकाल लेना चाहिये। फिर केलोमल, एमोन्येटेड मक्युरी और सफेदाका मलहम बना पलकके बालोंके मूलमें दिनमें १-२ बार लगाते रहने पर २-४ दिनमें रोग शमन हो जाता है।

बाईसवां प्रकरण ।

अश्रुजनक पिण्ड और अश्रुवाहक अवयवोंके रोग ।

(Diseases of Lacrimal glands and Lacrimal Apparatus.)

इस संस्थाके रोग निम्नानुसार क्रमसे लिखे हैं:--

१. अश्रुजनक पिण्डके रोग—Diseases of Lacrimal glands.
२. अश्रुवाहक उपाङ्गोंके रोग—Diseases of Lacrimal Apparatus.
३. नेत्रमें से जलस्राव—Epiphora.

१. अश्रुजनक पिण्डके रोग ।

(*Diseases of Lacrimal glands*)

अश्रुजनक पिण्डके रोगोंमें मुख्य २ प्रकार हैं—प्रदाह और ग्रन्थि ।

अ. अश्रुजनक पिण्ड प्रदाह ।

(Dacryo-adenitis)

इस पिण्ड प्रदाहमें २ प्रकार हैं—आशुकारी और चिरकारी ।

अश्रुजनक पिंडका आशुकारी प्रदाह (Acute Dacryo-adenitis)—यह रोग प्रायः दोनों ओर तथा क्वचित् एक ओर होता है।

लक्षण और चिह्न—ऊपरके पलककी बाहरकी ओरका भाग सूजकर लाल हो जाता है। वेदना होती रहती है तथा प्रदाहके ज्वर आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। नेत्रगोलकके ऊपरके और बाहरके कोणकी ओरका भाग लाल होकर सूज जाता है। गोलककी गति भी उस ओरके कोणमें कम हो जाती है। गोलक भीतरके और नीचेके कोणकी ओर सरक जाता है। वेदना अ भागमें अधिक होती है। ऊपरके पलकके बाहरकी ओर दबाने पर पीड़ा होती है। ऊपरके पलकको उटाकर देखने पर पिण्ड सूजा हुआ प्रतीत होता है।

परिणाम—प्रायः प्रदाह १-२ सप्ताह रहकर शमन हो जाता है। क्वचित् पककर फूटता है या फोड़ना पड़ता है।

कारण—सूजाक, कर्णग्रन्थि प्रदाह (Mumps), इन्फ्लूएञ्जा, कण्ठ-रोहिणी, रोमान्तिका, प्लेग (Plague) आदि रोगोंके परिणाममें होने-वाले रक्तविकारसे इस रोगकी सम्प्राप्ति होती है। आगन्तुक व्यथासे तथा नेत्रप्रदाहके हेतुसे भी वह हो जाता है। नेत्रप्रदाह विकारमे इस रोगकी उत्पत्ति क्वचित् ही होती है। क्षय रोगमें भी कभी उपद्रव रूपसे यह उपस्थित होता है। किन्तु वह प्रायः चिरकारी होता है।

उपचार—प्रारम्भमें योग्य प्रकार का सेक करना चाहिये। भूतकालमें पलकके बाहर जलौका लगाते थे, किन्तु वर्तमानमें वह रिवाज बन्द हो गया है। यदि विद्रधि होकर पक जाय तो शस्त्र लगाकर पूय निकालनेका मार्ग कर देना चाहिये।

अश्रुजनक पिण्डका चिरकारी प्रदाह (Chronic Dacryo-Adenitis) —इस प्रकारमें वेदना, लाली और सूजन बहुत कम परिमाणमें होते हैं, या बिल्कुल नहीं होते। इस रोगके कारण उपरोक्त ही हैं। कभी-कभी इस चिरकारी प्रकारमें पिण्डकी वृद्धि होती है। जो अधिक बढ़े तो शस्त्रोपचार से निकाल देना पड़ता है।

आ. अश्रु जनक पिण्डके अर्बुद।

(Tumours of Lacrimal glands).

इन अर्बुदोंमें दुष्ट मांसार्बुद और पिण्डमय अर्बुद मुख्य हैं। यथार्थ में इस पिण्डके अर्बुद बहुत ही कम होते हैं।

रसार्बुद—यह प्रायः छोटे बालकोंमें होता है। सामान्य नेत्रा-भिष्यन्द हुआ हो, उसके प्रदाहके हेतुसे योग्य विकास रहित अश्रु जनक पिण्डकी नलिकाओंका अवरोध होता है। फिर अश्रु पिण्डमें संगृहीत होकर अर्बुद या अश्रु पूर्ण स्थलीरूपसे उपस्थित होता है। बालक रोता रहता है; आँख नहीं खोल सकता; ऊपरका पलक सूजा हुआ भासता है; एवं प्रायः इस रोगका निर्णय नहीं हो सकता। कारण, पलकका शोथ आदि चिह्न अभिष्यन्दके हेतुसे है, ऐसा मान लिया जाता है। यदि पलकको उलट कर परीक्षा की जाय, तो नेत्रके ऊपरके और बाहरके कोनमें एक नीला रसमय अर्बुद प्रतीत होता है। फिर रोगका सच्चा स्वरूप विदित होता है। ऐसा बालक मेरे पास लगभग २५ वर्ष पहले लाया गया था। पहले आँख आई थी, वह ठीक हो गई थी। पुनः आँख आई, जिससे

किसी अच्छे नेत्रवैद्यके पास लेगये थे। उपचार अनेक किये, किन्तु शोथ बढ़ता ही गया। मेरे पास लाने पर परीक्षा करने पर अवगत हुआ कि अश्रु जनक पिण्डका रसार्बुद है। शस्त्र लगा कर प्रवाहीको बाहर निकालनेके साथ ही गांठ बैठ गई और बालककी आँख ठीक हो गई।

उपचार—शस्त्र लगाकर प्रवाही को निकालने को मार्ग देना चाहिये। पुनः संगृहीत होजाय, तो पुनः शस्त्र लगाना चाहिये। प्रायः इस तरह २-३ बार शस्त्र क्रिया करनेके बाद जल नहीं भरता। यदि बार-बार भरता रहे, तो नीले रंग का सूक्ष्म आवरण निकाल देने पर फिर जल संग्रहीत नहीं होता।

दुष्ट मांसार्बुद और पिण्डमय अर्बुद--इन अर्बुदोंमें वही लक्षण उत्पन्न होते हैं। आँखके ऊपरके और बाहरके कोनमें गांठ जैसा भासता है। परीक्षा करने पर वह गांठ कठिन और लाल प्रतीत होती है। दुष्ट मांसार्बुदमें रक्त की सिराएँ ऊपर आई हुई भासती हैं। वह गांठ चलाने पर निम्न भागके साथ चिपकी हुई प्रतीत होती हैं। आरम्भमें वेदना अधिक नहीं होती; किन्तु फिर वेदना होने लगती है। दुष्ट ग्रन्थियोंमें से रक्तस्राव भी होता है। यदि इसका योग्य उपचार न किया जाय तो धीरे-धीरे नेत्रगृह के अस्थि और गोलकमें ग्रन्थि फैलने लगती है। अन्त में उन भागों को नष्ट करती है।

उपचार--दुष्ट ग्रन्थियों को होसके उतना तुरन्त शस्त्र चिकित्सा द्वारा नष्ट कर देना चाहिये। उसके मूल को सम्हालपूर्वक निकाल देना चाहिये। फिर रेडियम या क्ष किरण कुछ समय तक लगाकर अवशेष कीटाणुओं को जला देना चाहिये।

क्षयज ग्रन्थि- कभी देहके अन्य भागमें क्षयरोग होने पर अश्रु जनक पिण्ड पर अर्बुद होजाय, तो वह क्षयज ग्रन्थि होने का संशय होता है। यदि ग्रन्थि का टुकड़ा काट अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा की जाय, तो योग्य निर्णय हो सकता है।

उपचार--होसके उतना जल्दी शस्त्रोपचार से निर्मूल कर देना चाहिये। इस क्रिया का वर्णन प्रकरण ३० वें में किया जायगा।

२. अश्रुवाहक अवयवोंके रोग।

(*Diseases of the lacrimal apparatus*)

इन अवयवोंके रोग निम्नानुसार हैं:—

अ. अश्रुवाहक छिद्र या अश्रुद्वार का बाहर मुड़ना—Eversion of the Punctum.

आ. अश्रुद्वार का संकोच और अवरोध—Stricture and absence of Punctum.

इ. अश्रुवाहक नलीका अवरोध—Obstruction of the Canaliculus.

ई. अश्रुवाहक नल का संकोच—Stricture of Nasal Duct.

उ. अश्रवाशय का प्रदाह—Dacryo-Cystitis.

अ. अश्रुवाहक छिद्र या अश्रुद्वार का बाह्यावर्त्तन।

(Eversion of the Punctum)

लक्षण—नेत्रमें से अश्रुस्राव होते रहना, यह मुख्य लक्षण है।

कारण—इस स्थितिका मुख्य कारण (निम्न) पलक का बाहर मुड़ना है। चाहे वह रोहके हेतुसे पलक मोटा होकर हुआ हो या पलक की त्वचा के संकोच के हेतु से हुआ हो।

उपचार—मूल काण को दूर करना। यदि पलक मोटा हुआ हो, तो शस्त्र क्रियासे समान करें। त्वचा का संकोच हुआ हो तो ३०वें प्रकरण में लिखे अनुसार शस्त्रोपचार करें।

आ. अश्रुवाहक छिद्रके संकोच और अवरोध।

(Stenosis and complete occlusion of Punctum)

इस रोगमें अश्रुवाहक छिद्र (विशेषतः निम्न) सँकरा होजाता है या बन्द होजाता है।

लक्षण—नेत्रमेंसे जलस्राव होता रहता है।

कारण—जन्मलब्ध नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह, पलकधाराका पाक और नेत्रमें दंभक पदार्थका गिरना। इनके अतिरिक्त कभी-कभी कारणभूत रोग शमन होजाने के दीर्घकाल के पश्चात् संकोच या अवरोध उपस्थित होता है। उस समय मूल कारण रूप रोग लगभग विस्मृत ही हो जाता है।

उपचार—यदि छिद्रका संकोच ही हो तो कदाच नुकीली मूषकपुच्छ सदृश शलाका प्रवेश कराने और उस तरह कुछ दिनों तक प्रयोग करते रहने से स्थिति में सुधार होता है। किन्तु अनेक नेत्रवैद्य छिद्रको काटकर भीतर से चीर देते हैं।

इस शस्त्रक्रिया के लिये खास शस्त्र (चित्र नं. १५४) आता है। इस शस्त्र के सिरे पर सूक्ष्म शलाका जैसी नोक रहती है, उसे सम्हाल-पूर्वक छिद्रमें प्रवेश कराते हैं। यदि छिद्र बिल्कुल बन्द हो गया हो, और छिद्रके ऊपर सूक्ष्म त्वचा जो नयी उत्पन्न हुई हो, उसमें शलाका वाले

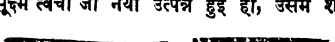

चित्र नं. १५४

वेबरकी अश्रु द्वारभेदक छुरिका (Weber's Canaliculus Knife)

भागको प्रवेश करावें। शलाका जैसे भाग के आगे काटने वाला भाग होता है। शलाका सदृश भागका भीतर प्रवेश होने पर छिद्र के मुखके पास काटने वाला भाग आजाता है। फिर शस्त्रको नाककी ओर कुछ चलाने पर आवश्यक चीरा होजायगा। चीरा भीतर और ऊपरके भागकी ओर अर्थात् नाक और गोलककी ओर ही किया जाता है। अन्यथा शस्त्रक्रिया निष्फल होजायगी और जलस्राव कम होनेके बदले में बढ़ जायगा।

शस्त्रक्रियाके दूसरे दिन किया हुआ चीरा बन्द न होजाय, उसके लिये उसमें एक शलाका प्रवेश करावें। इस तरह कुछ दिनों तक प्रतिदिन शलाका डालते रहें।

इ. अश्रु वाहक नलका अवरोध।

(Obstruction of Canaliculus)

अश्रु वाहक छिद्रसे अश्रु आशय तक दो नलकाएं जाती हैं। ऐसी अश्रु वाहक नलिका दोनों नेत्रों में दो-दो हैं। जब इन नलियोंका अवरोध हो जाता है तब अश्रु नाकमे नहीं उतर सकता। उस हेतुसे नेत्रमें सर्वदा जलस्राव होता रहता है। इस स्थितिका वह एकही लक्षण है।

कारण—१. नेत्रश्लेष्मावरण [प्रदाह और २. बाह्य द्रव्यादिका] प्रवेश, ये दो कारण हैं।

१. नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह—अश्रु वाहक नलियोंके भीतर का आवरण है, वह नेत्रश्लेष्मावरणसे सम्बन्धवाला ही है। जिसमें नेत्रश्लेष्मा-वरणमें किसी भी जाति का शोथ दीर्घ काल तक चले, तो अश्रु वाहक नलिकामें उसके आजाने की संभावना रहती है। उस पर आया हुआ शोथ नलिकाका संकोच उत्पन्न करता है।

२. बाह्य द्रव्य आदि का प्रवेश—पलकके बाल, क्षार पदार्थ या

वनस्पति कीटाणु—स्ट्रेप्टो थ्रिक्स (Streptothrix) आदि का नलिकामें प्रवेश होने पर अवरोध होता है। ये कीटाणु होने पर जलस्राव होना, नेत्रके भीतरके कोनेमें से पीला लसदार पदार्थ निकालना, निम्न अश्रुवाहक द्वारके चारों ओर शोथ भासना, निम्न पलकको खींचने पर नलीके स्थान पर नेत्र श्लेष्मावरणकी ओर एक लम्बा, कठिन नलिकाकार देखाव होना, छिद्र उभड़ आना तथा उसमेंसे पीला गाढ़ा पदार्थ निकलना आदि लक्षण और चिह्न प्रकाशित होते हैं। फिर कुछ दिनोंमें नलीके भीतर विद्रधि बनता है और फोड़े के लक्षण उपस्थित होते हैं।

उपचार—प्रारम्भसे अश्रुवाहक छिद्रके मार्गसे नलिकामें चढ़ाव उतार कदकी शलाकाएं प्रवेश कराने और उस उपचारको अनेक दिनों तक चालू रखने पर नलिका चौड़ी हो जाती है और रोगी को आराम हो जाता है। यदि मार्गका बिल्कुल अवरोध हो, तो नलिकाके स्थान पर सूक्ष्म शस्त्र द्वारा एक नूतन मार्ग अश्रुवाशय तक बनाना पड़ता है। उस मार्गको रोज शलाका डालकर खुला रखा जाता है। जो दीर्घ काल तक यह उपचार प्रयत्नपूर्वक किया जाय, तो अनेक रोगियों में आवश्यक सुधार हो जाता है।

यदि नलिकाके भीतर स्ट्रेप्टोथ्रिक्सका संग्रह प्रतीत हो तो छिद्रको चीर, सूक्ष्म चिमच द्वारा भीतरके भागमें खुरचकर विकृत कलाको निकाल दिया जाता है।

ई. अश्रुवाहक नलका संकोच।

(Stricture of the Nasal duct)

अश्रुवाशयके निम्न सिरे से नाकके भीतर के भागमें उसके मुख तक अश्रुवाहक नल रहता है। उसके भीतरकी श्लैष्मिक कलाका सम्बन्ध एक ओर नाकके आच्छादनके साथ है तथा दूसरी ओर अश्रुवाशयके आवरणके साथ है। जिससे नाकके प्रदाहसे इस नलके आवरणका प्रदाह अनेक बार हो जाता है। इस प्रदाहके परिणाममें भीतरकी श्लैष्मिक कला मोटी होकर संकोच उत्पन्न करती है; या चिरकारी प्रदाहके हेतुसे संकोच होता है, उसी तरह नाककी छोटी अस्थियोंमें प्रदाह या कोथ होने पर हड्डी मोटी होकर संकोच उत्पन्न करती है। इस प्रकारका अस्थिप्रदाह या कोथ उपदंश या आगन्तुक व्यथाके हेतुसे होता है।

उपचार—प्रारम्भमें अश्रुवाहक छिद्रके मार्गमें विशेष प्रकारकी पिचकारी द्वारा एसिडबोरिक, रसकपूरका प्रवाही १:१००००० या नमक

प्रवाही (उबाला हुआ) प्रवेश करावें। यदि पिचकारी की सुईका प्रवेश न होता हो तो छिद्रको चौड़ा करना पड़ता है या चीरना पड़ता है। यदि संकोच केवल श्लैष्मिक आवरणके प्रदाहके हेतुसे हो या श्लेष्मका टुकड़ा रुका हो तो इस तरह पिचकारी से धोने पर मार्ग मुक्त हो जाता है।

यदि संकोच चिरकारी प्रदाहजन्य बन्धनके हेतुसे हो तो चढ़ाव उतार कदकी शलाकाएं प्रवेश करानेसे संकोच दूर होकर मार्ग चौड़ा होता है, इस क्रियाके लिये रोगीके नेत्रमें कोकैनका प्रवाही डालें और वह इस तरह डालें कि उसका कुछ अंश नाकमें उतरे या पिचकारी द्वारा कोकैन प्रवाही अश्रु वाशयमें प्रवेश करावें। कोकैनके साथ एडिनेलिन मिलाया हो तो लाभ विशेष पहुँचता है। शलाकापर तैल या वेसलीन लगा चौड़े किये हुए छिद्रमें प्रवेश करावें। शलाकाको शनैः-शनैः जाने देवें। बिल्कुल बल न लगावें। संकोच अधिक होनेसे शलाका प्रवेश न होता हो तो भी बल न लगावें, दूसरे दिन फिरसे शलाका डालें। ऐसा करनेपर प्रायः जिस भागमें पहले दिन शलाका रुकी हो, उस भागमेंसे सरलतासे निकल जाती है।

शलाका अनेक प्रकारकी होती हैं, उनमें सर विलियम बोमेन, वेबर और पुलार्ड की बनी हुई मुख्य हैं। वेबर की शलाकाएं नीचे पतली और ऊपर बहुत मोटी होती हैं। जिससे ऊपरके हिस्सेका निकलना कठिन होता है। यह भी याद रखना चाहिये कि, नलका ऊपरका भाग भी अति सँकरा होता है। जिससे निम्न भागमेंसे निकलने पर भी शलाका सँकरे भागको हानि पहुँचाती है। एवं प्रत्येक बार व्यथा होती रहनेपर उस भागमें एक नया संकोच उपस्थित होता है। एक समय मार्ग मुक्त होनेपर उसे मुक्त रखनेके लिये शीशेकी शलाका (नाग शलाका) नलीमें रखदी जाती है। जिस तरह बिंधे हुए कानका छिद्र फिरसे बन्द न हो जाय और मोटा जेवर पहनने में सुविधा रहे इसलिये शीशेकी शलाका पहनकर छिद्रको चौड़ा बनाते हैं, उसी तरह इस मार्गको चौड़ा करनेके लिये शीशेकी शलाका व्यवहृत होती है। शीशेके समान चांदीकी सलाई भी उपयोगमें ली जाती है, कितनीक बार बिजलीकी सूईसे संकोचको अच्छा लाभ पहुँचता है।

कितनेक वर्षोंसे हम पुलार्ड (Poulard) नामक पेरिसके नेत्रवैद्य की बनाई हुई शलाकाएं (Poulard's Lacrimal Probes) उपयोग में लेते हैं। उनसे अच्छा परिणाम आनेका अनुभवमें आया है।

बोमेन की अश्रुवाशय शलाका—चित्र नं० १५५ ग्रन्थ के (अन्त में देखो।)

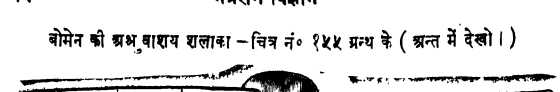

चित्र नं० १५६
वेबर की अश्रुवाशय शलाका (Weber's Lacrimal probes)

यदि इन शलाकाओंके प्रयोगसे नलका संकोच दूर न हो सके, तो उसे पुलार्ड की छुरिका (Poulard's Strictureotomy knife चित्र नं० १५८) से काटना पड़ता है। इस शस्त्र कियाका वर्णन किसी ग्रन्थ में नहीं है। अतः हम यहाँ अनुभवके अनुसार देते हैं।

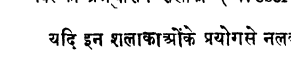

चित्र नं० १५७
पुलार्ड की अश्रुवाशय शलाका
(Poulard's Lacrimal probe)

पुलार्डकी संकोचभेदक शस्त्रक्रिया—रोगीके नेत्रमें एनीथिन, एडिनेलिन

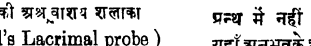

चित्र नं० १५८
पुलार्डकी अश्रनलसंकोचभेदक छुरिका।

की बूंद या कोकैन एडीनेलिनकी बूंद २-३ बार डालें। फिर अश्रुवाशयके स्थानको अर्थात् नाकके भीतरके भागकी त्वचाको साफ करके आयोडिनका अर्क लगावें। वहां पर नोवोकेन और एडीनेलिनके प्रवाहीका अन्तःक्षेपण करें। इस क्रियासे समस्त अश्रुवाशय और नलका भाग चेतनारहित हो जाता है। फिर अश्रुवाशयको रिवेनोल (Rivanol) या एक्रिफ्लेविन (Acriflavine) के प्रवाही १:१००० से धो देवें। फिर एनिथिन एडीनेलिन या कोकैन एडीनेलिनका प्रवाही अश्रु द्वारसे अश्रुवाशयमें प्रवेश करावें। १० मिनट ठहरें। फिर नेत्रको पारद धावनसे धो डालें। फिर वेबरके चाकू (चित्र नं० १५४) से अश्रुवाहक नलीको नीचेसे चीर देवें। पश्चात् पुलार्ड की नं० १ की शलाकाको अश्रु वाहक नल द्वारा नाकमें प्रवेश करावें। मार्ग हो जाने पर उस शलाकाको बाहर निकाल लेवें। फिर पुलार्डके चाकू (चित्र नं० १५८) को अश्रुवाशयमें और वहांसे अश्रुवाहक नलमें प्रवेश करावें। यदि संकोच श्लेष्मावरणके मोटा होनेसे या उस स्थानमें अधिक

कठोर न हो ऐसे पदार्थके प्रवेशसे हुआ हो, विशेष बल न लगाने पर भी शस्त्र नलमें प्रवेशित होगा। यदि अस्थिवृद्धि जनित संकोच हुआ हो, तो अधिक बल लगाना पड़ता है। यदि शस्त्रका प्रवेश सरलतासे हो, तो उसी शस्त्रसे चारों ओर—आगे, पीछे, भीतर और बाहर संकोचको काटें। फिर शस्त्रको बाहर निकाल लेवें। इस क्रियासे प्रायः नाक और अश्रुवाशयमेंसे अति रक्तस्राव होता है। एकाध मिनटमें स्राव कम हो जायगा। पश्चात् पुलार्डकी शलाका नं० १२, १३, १४, जो अच्छी तरह मोटी हो उसे अश्रु-द्वार और अश्रुवाशयके रास्तेसे अश्रुवाहक नलमें प्रवेश करावें। शस्त्रक्रिया के पहले नं० १ की अति पतली शलाकाका प्रवेश भी सरलतासे नहीं होता था, उस स्थान पर नं० १२. १३. १४ की मोटी शलाका भी सरलतासे निकल सकेगी। कारण, जो संकोच था वह हट गया है और मार्ग अच्छी तरह चौड़ा होगया है। उस मोटी शलाकाको १ मिनट तक रखकर निकाल लेवें और अश्रुवाशयको पिचकारीसे धो डालें। जब धोनेका जल अश्रुवाशय में से साफ आने लगे तब आर्जिरोलकी लगभग १० बूंद इस अश्रुवाशयमें डाल देवें। फिर नेत्रपर पट्टी बांध देवें।

तीसरे दिन रोगीको देखें। पट्टी को निकाल डालें। अश्रुवाशयको धो, उसके भीतर पुलार्डके रेशमके डोरेकी रबरकी पर्तवाली शलाकाएं (Poulard's gum Elastic Bougies) को निकालें। ऐसा करने पर जो मार्ग हुआ हो वह कायम रहता है। इस तरह २ सप्ताह तक ३-३ दिन पर उपचार करें। परिणाममें अन्य रीतिसे असाध्य माने गये अश्रुवाशयके नलका संकोच भी दूर होता है, ऐसा हमें अनुभव हुआ है।

ऊपर कहे हुए रोगके अतिरिक्त नाकमें जो रोग मूल कारण रूप हो, उसका योग्य उपचार करना चाहिये।

उ. अश्रुवाशय प्रदाह।

(Dacryo-Cystitis)

इस प्रदाहके २ प्रकार हैं--आशुकारी और चिरकारी। दोनोंका पृथक्-पृथक् वर्णन किया है।

उ. १. अश्रुवाशयका आशुकारी प्रदाह (नासाशूल)

(Acute Dacryo-Cystitis)

लक्षण और चिह्न—चित्र नं० १४९ देखें। इस रोगमें नेत्रके भीतरके कोन वाले और उसके चारों ओरके भागकी त्वचा लाल हो जाती है और उभड़ आती है। नैसर्गिक सिलवट अदृश्य होकर त्वचा चिकनी होजाती

है। शोथ अनेक बार पलक तक पहुँच जाता है। वहाँ पर एक गांठ होने लगती है। रोगीको असह्य वेदना होती है। शोथ धीरे-धीरे बढ़ता जाता है; किन्तु वह फोड़ेके स्थान पर ही। शोथ पलकपरसे उतरता जाता है। जो गांठ अभीतक कठिन होती है, वह नरम होने लगती है; चमड़ी पर दबानेसे उसमें खड्डा गिरता है। सूक्ष्म अवलोकन करनेपर उसके भीतर पूय प्रतीत होता है। शनैः-शनैः ग्रन्थि बड़ी होकर फूटती है। पूय निकल जाने पर शोथ आदि बैठ जाते हैं। ऐसा सुखरूप परिणाम सर्वदा नहीं आता। अनेक बार फोड़ेका घाव नहीं भरता। नाड़ीव्रण हो जाता है। इससे उस स्थान पर छिद्र रह जाता है। उसमेंसे पूय या जल सदृश स्राव निकलता रहता है। योग्य उपचार न किया जाय तो वह छिद्र वर्षों पर्यन्त रह जाता है। कितनीक भीतर रहे हुए नाककी अस्थिमें कोथ हो, तो उस छिद्रको खुला रखनेके लिये सबल कारण मिल जाता है।

कारण—इस रोग का मुख्य कारण अश्रुवाशय का चिरकारी प्रदाह है। इसके अतिरिक्त नाक की अस्थि में कोथ होने से भी इस रोग की संप्राप्ति होती है। कितनेक समय विशेष न जाने हुए कारणसे भी यह विद्रधि होता है। उस समय प्रतिश्यायके अतिरिक्त अन्य कारण नहीं मिलता।

उपचार—प्रारम्भमें सेक, पुल्टिस आदि। पूय की स्पष्ट प्रतीति होने के पश्चात् तुरन्त शस्त्र लगाकर पूय को मार्ग देना चाहिये। पूय अश्रुवाहक छिद्र द्वारा या त्वचा में घाव कर उस मार्गसे बाहर निकाल सकते हैं। त्वचा में से मार्ग निकालना अच्छा है। कारण, वैसा करने पर पूय सरलतासे निकल सकता है। एवं अश्रुवाशयके भीतरके भाग में औषध आदि लगा सकते हैं। पूय निकाल देने पर वेदना कम होजाती है, या लगभग शमन हो जाती है। पूय निकालनेके पश्चात् थैली को जन्तुघ्न धावनसे धो देवें और आयडोफार्म वाले कपड़े की बत्ती बनाकर उसमें रखें। दूसरे दिन थैली को अच्छी तरह साफ कर 'कास्टिक' को शलाका पर चढ़ाकर उसे या कास्टिकके प्रवाही की फुरेरी को थैलीके भीतरके भागमें लगावें। जिससे भीतर का पर्त जल जाता है और घाव भर जाता है। यह क्रिया आवश्यकता रहे, उतनी बार करें। यदि योग्य सम्हाल रखी जाय तो ८-१० दिनके भीतर घाव भर जाता है और आराम हो जाता है। यदि छिद्र रह जाय तो वह कष्टसाध्य हो जाता है, उसके लिये एकसे अधिक उपाय करना पड़ता है। छिद्र को बड़ा बना, भीतर का भाग जलाकर पट्टी लगाते रहें। उससे न मिटे तो भीतरसे खुरच

साफ कर त्वचा को सी लेवें। कितनेक समय बिजली की तपायी हुई शलाकासे जलाने पर लाभ पहुँच जाता है।

अश्रुवाशय का आशुकारी प्रदाह न्युमोकोकाई, स्टेफिलोकोकाई और स्ट्रेप्टोकोकाई कीटाणुओं के हेतुसे होता है। जिससे इस रोग पर सल्फोनोमाइड नामक औषध अच्छा लाभ पहुँचाती है। रोग प्रतीत होने पर तुरन्त सल्फाडायाजिन की ७॥ ग्रेन की २-२ टिकिया दिन में ४ बार देवें। फोड़े को शस्त्र लगाकर फोड़ने के पश्चात् या स्वयमेव फूटने के पश्चात् थैलीके भीतर सल्फाथियोझोल विथ प्रोफ्लेविन (Sulfathiazole with Proflavine) पाउडर भर देवें। इस तरह छिद्र मिटने तक रोज मलहम पट्टी करते रहना चाहिये।

उ. २. अश्रुवाशय का चिरकारी प्रदाह।

(Chronic Dacryo Cystitis--Blenorrhoea of Lacrimal Sac.)

चित्र नं० १४८ देखें। इस रोगमें नेत्रके भीतरके कोन और नाक के बीचमें रहे हुए अश्रुवाशयमें पूय या उससे सम्बन्ध वाला श्लेष्म मिश्रित प्रवाही संग्रहीत रहता है। फिर उस भाग पर दबाव डालने पर निम्न अश्रु वाहक छिद्रमेंसे बाहर निकलता है।

लक्षण और चिह्न—नेत्रमें जलस्राव होता रहता है। इसके अतिरिक्त नेत्रके भीतरके कोनमें से लसदार प्रवाही बार-बार निकलता रहता है, उसे रोगी प्रत्येक बार पोंछता रहता है। नाकके ऊपरके भाग में और नेत्रके भीतरके कोनमें एक नरम गांठ दीखती है। उस गांठ पर दबाव डालने पर नेत्रके भीतरके कोनमें से ३-४ बूंद पूय सदृश प्रवाही निकल आता है, इस रोगके निर्णयार्थ यह उपाय उत्तम है। कभी प्रवाही ऊपर नहीं आता, किन्तु नाकमें चला जाता है। उसे सुबोध रोगी तत्काल जान लेता है। यह प्रवाही नेत्रमें सतत जाता रहे, तो नेत्रश्लेष्मावरण का चिरकारी प्रदाह उत्पन्न होता है। जब तक यह स्थिति दूर न हो, तब तक किसी भी उपायसे वह प्रदाह दूर नहीं हो सकता। अतः नेत्रवैद्य को लक्ष्यमें रखना चाहिये कि, जब कोई भी रोगी एक नेत्रमें चिरकारी नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहसे दीर्घकालसे पीड़ित हो, तब नेत्रके भीतरके कोन को दबा परीक्षा कर लेनी चाहिये। अन्यथा रोग का सच्चा हेतु अज्ञात रहेगा और अन्य उपचार करने पर भी रोग शमन नहीं होगा। इसके अतिरिक्त नेत्रमें सतत पूय रहने पर पलकधारा पक जाती है।

कारण—प्रायः इस रोगका मुख्य कारण अश्रुवाहक नलका संकोच

या अवरोध होता है। अश्रुवाशयका निम्न मार्ग बन्द होनेसे नेत्रमें उत्पन्न श्लेष्म, अश्रु एवं अश्रुवाशयके श्लेष्मावरणमेंसे उत्पन्न होने वाला श्लेष्म, ये सब उस थैली के भीतर संगृहीत होता है। उस प्रवाहीमें गोलक परसे न्युमोकोकस नामक जहरी कीटाणु प्रवेश करते हैं; तब श्लेष्मकलाका प्रदाह होता है। न्युमोकोकस नेत्रमें सामान्यतः बार-बार अवस्थित होते हैं; किन्तु जब तक क्षति न पहुँची हो, या घाव न हुआ हो तब तक कुछ भी हानि नहीं पहुँचा सकते। कितनीक बार संकोच न होने पर भी पीनस जैसे रोगके कीटाणु अश्रुवाशयमें पहुँचकर प्रदाह उत्पन्न करते हैं। कितनेक रोगियोंमें नेत्रका प्रदाह भी नीचे उतरता है। कभी क्षयजनक कीटाणु भी इसी स्थिति की उत्पत्ति करा देते हैं।

परिणाम—यदि उपचार न किया जाय तो दीर्घकाल पर्यन्त रोग वैसाही बना रहता है। रोगी भीतरके कोनेको दबाकर प्रवाही निकालता रहता है। इस तरह पूर्व दिनमें २-३ बार या अधिक बार निकालते रहनेके वर्षों पर्यन्त ऐसा ही चलता रहता है। इस तरह करते रहनेसे प्रायः कुछ भी बाधा नहीं पहुँचती। किन्तु कितनेक रोगियोंमें अकस्मात शुक्लमण्डलमें क्षत हो जाता है। वह क्षत अतिशय आपत्तिकर और फैलने वाला होता है। एक स्थान में क्षत होने पर शुक्लमण्डलका कितनाक भाग या समस्त शुक्लमण्डल गल जाता है; या नेत्रगोलक पककर दृष्टि और नेत्रका नाश हो जाता है। जबतक अश्रुवाशयमेंसे पूय नेत्रमें आता हो, तबतक यह डर प्रत्येक क्षणमें रहता ही है। एवं इस नेत्र पर किसी भी प्रकारकी शस्त्रक्रिया नहीं होती। यदि शुक्लमण्डलका घाव हो जाय तो क्षत होने का भय और गोलकको निकालनेमें आवे तो आँख पक जाने का भय बना रहता है। इस कारणसे अश्रुवाशयके प्रदाहको किसी भी उपाय से हो सके उतना जल्दी दूर कर देना चाहिये।

कितनीक बार शोथ अश्रुवाशयमें से बाहरकी त्वचाकी ओर आता है। उसके परिणाममें नेत्रके भीतरके कोन में एक फोड़ा होता है। उस फोड़े को नाकसूल और नासूर कहते हैं। उसका वर्णन पहले अश्रुवाशयके तीक्ष्ण प्रदाह रूपसे किया है। वह नाकशूल फूटने पर या फोड़ने पर योग्य सम्हाल न रक्खा जाय तो वहाँ छिद्र रह जाता है और फिर दीर्घकाल तक दुःख देता रहता है। वह मिटना अति कठिन हो जाता है।

उपचार—इस रोगकी चिकित्साके समय पहले देखना चाहिये कि, अश्रुनलका संकोच है या नहीं? इसके निर्णय के लिये निम्न अश्रुवाहक छिद्र द्वारा पिचकारी लगावें। जलकी पिचकारी लगानेके बदलेमें थोड़ा

मेथिलिनब्ल्यू, फ्ल्यूओरेसिन या पोटास परमेंग्नेट डालकर प्रयोग किया जाय, तो रंगदार जल निकलनेसे रोगनिर्णय अधिक सरलतासे होता है। इस पिचकारीसे यदि जल सरलतासे नाकमें आ जाय तो संकोच बिल्कुल नहीं है, जल कठिनतासे आवे तो संकोच है; तथा बिल्कुल जल न आवे तो पूर्ण अवरोध है, ऐसा निर्णय होता है।

संकोच हो तो योग्य शलाका डालकर मार्गको चौड़ा करना चाहिये। रोगीको पूय निकाल देने को सिखावें। ऊपरसे निकालनेके बदलेमें नाकमें उतारना अधिक हितकर है। अश्रुवाशयको दिनमें १-२ बार नमक धावनसे धोवें। फिर दिनमें १ बार हाइड्रोजन परोक्साइड १५ से २० प्रतिशत, प्रोटार्गोल ५०-१०० ग्रेन १ औंस जलमें, आर्जिरोल १२५ ग्रेन १ औंस जलमें, सायानइड ऑफ मर्क्यूरीका प्रवाही १ औंसमें $\frac{1}{16}$ ग्रेन, पोटास परमेंग्नेट १ औंस जलमें $\frac{1}{2}$ ग्रेन अथवा टिञ्चर आयोडिनका प्रवाही अश्रुवाशयमें प्रवेश कराते हैं। इन प्रवाहियोंके प्रवेशका मुख्य हेतु यह है कि, अश्रुवाशयके भीतरका श्लेष्मावरण, जिसमें पूयोत्पादक कीटाणु अवस्थित होते हैं, उसका विनाश होता है। फिर दूसरा स्वस्थ आवरण उत्पन्न होता है।

ऐसे तेज प्रवाहियोंका प्रवेश करानेमें दो प्रकारसे सम्हाल रखना चाहिये। १. नेत्रगोलकको हानि पहुँचने का भय है। उक्त प्रवाहियोंमेंसे टिञ्चर आयोडिन या हाइड्रार्जिरी सायानाइड जैसी दाहक औषध गोलक को लग जाय, तो वेदना होती है; बल्कि अनेक बार गोलकको हानि पहुँच जाती है। ऐसी औषध गोलकके संसर्ग में न आने के लिये एक लिस्टके टुकड़ेसे गोलकको बचाकर छिद्रमें प्रवाही प्रवेश कराना चाहिये। २. यदि प्रवाही थोड़ासा भी समीपकी त्वचा या नीचेके भागमें लग जायगा, तो रोगी को एवं अनुभव रहित वैद्यको भय उत्पन्न करे, ऐसा शोथ आ जायगा। यह शोथ शनैः-शनैः कम हो जायगा। यदि रोगी निर्बल हो तो भयंकर स्वरूप धारण करता है और परिणाम हानिकर आता है।

उक्त प्रवाहियोंके स्थान पर वर्तमानमें सल्फोनेमाइडका प्रयोग अधिक फलप्रद प्रतीत हुआ है। थैलीको धोनेके पश्चात् सल्फाथियोझोलका प्रवाही ६ प्रतिशतका बनाकर थैलीमें प्रवेश कराया जाता है।

अश्रुवाशय पर उपचार करनेके अतिरिक्त नेत्रश्लेष्मावरण या नाक का कुछ भी रोग हो, तो उसके लिये भी उपचार करना चाहिये। कितनेक शस्त्रवैद्य अश्रुवाशयको चीर भीतरके आवरणको तपायी हुई शलाका या दंभक औषधसे जला डालते हैं। कितनेक वैद्य बिस्मथका नरम

मलहम बनाकर प्रवेश कराते हैं। ऐसे उपचारों से अति कम रोगियोंका रोग शमन होता है। वर्तमानमें नेत्रवैद्य प्रायः अन्य उपचार करनेके पहलेही थैली को निकाल देने की सलाह देते हैं; किन्तु अश्रु वाशयको न निकालते हुए पुलार्डकी शस्त्रक्रिया (जिसका वर्णन अश्रु नलके संकोचमें दिया है उस) का उपयोग किया जाय, तो भी यह रोग दूर हो सकता है, ऐसा हमारा अनुभव है।

अश्रु वाशयको निकालनेकी शस्त्रक्रिया का वर्णन आगे प्रकरण ३० में दिया जायगा।

३. नेत्रमें जलस्राव।

(*Watering of the Eyes—Epiphora*)

नेत्रवैद्यके पास ऐसे अनेक रोगी आते रहते हैं; जिनकी फर्याद केवल इतनीही होती है कि नेत्रमेंसे जल गिरता रहता है। ऐसे समय पर पहले रोगीके पलककी परीक्षा करें। परवाल या पलकधारा पाक है या नहीं? फिर पलकको उलटकर देखें, रोहे, नेत्रश्लेष्मावरणका चिरकारी प्रदाह, वसन्त ऋतुमें होनेवाला कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह आदि कारण है या नहीं? पश्चात् नेत्रमें कोई बाह्य पदार्थ गिरा है या नहीं? नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह, वेल, पिटिकाक्षत आदि प्रतीत हों, तो उसकी यादी करनी चाहिये। पश्चात् शुक्लमण्डल को अच्छी तरह देखें, सूक्ष्म या बृहत् क्षत आदि हों, तो लक्ष्य में रखें। कनीनिका प्रदाह प्रतीत हो, तो उस हेतु से भी जलस्राव होता है। आशुकारी अधिमन्थ एवं मस्तिष्ककी वातनाड़ियों की विकृति से यह रोग होता है। अतः शिरदर्द होनेपर भी जलस्राव होता है। इनमेंसे कोई भी हेतु प्रतीत न हो और अश्रुस्राव होता हो, तो अश्रुवाहक छिद्रकी परीक्षा करें। उसमें भी विशेषतः निम्न छिद्रकी ओर विशेष लक्ष्य देना चाहिये। ऊपर का छिद्र बाहर मुड़ा हो और नीचेका छिद्र ठीक हो, तथा निम्न छिद्र का संकोच हो या बाहर मुड़ा हो तो जलस्राव होता रहता है।

तेईसवां प्रकरण ।

नेत्रकी मांसपेशियोंके रोग ।

(Diseases of Muscles of the Eye, Motor Anomalies of the Eye)

नेत्रकी मांसपेशियोंमें ३ जाति हैं—१. गोलकके बाहरकी; २. गोलक के भीतरकी; ३. नेत्रके उपाङ्गोंकी। इनमें गोलकके बाहर ६ पेशी हैं—बाह्य सरला, ऊर्ध्व सरला, अन्तः सरला, अधः सरला, ऊर्ध्व वक्रा, अधः वक्रा। इनकी रचना और कार्य संक्षेपमें पहले प्रकरणमें दर्शाये हैं। पुनः यहाँ कार्य विस्तारसे समझाते हैं।

बाह्य पेशियोंका कार्य।

मांसपेशी	गोलकपर क्रिया	शुक्लमण्डल की खड़ी रेखा	शुक्लमंडल जिस ओर होने पर अधिक-अधिक खिंचाव हो	कौनसी वात-नाड़ी के अधिकार में है।
बाह्य सरला	बाहर खिंचना			६ ठवीं
अन्तर सरला	अंतर खिंचना			३ री
ऊर्ध्व सरला	ऊपर और भीतर	भीतर खिंचना	बाहर	३ री
निम्न सरला	निम्न और भीतर	बाहर खिंचना	बाहर	३ री
ऊर्ध्व वक्रा	नीचे और बाहर-की ओर	भीतर	भीतर	४ थी
निम्न वक्रा	ऊपर और बाहर की ओर	बाहर	भीतर	३ री

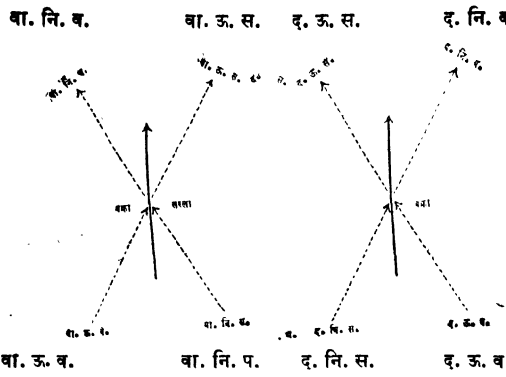

चित्र नं० १५६ नेत्रपेशियोंका क्रियादर्शक पटक।

उपरोक्त चित्र परसे विदित होगा कि, सरला पेशियाँ गोलकको भीतरकी ओर फिराती हैं। वक्र पेशियाँ बाहरकी ओर फिराती हैं। ऊपर की पेशियाँ इस तरह गोलकको फिराती हैं कि, शुक्लमण्डलके ऊपरका सिरा भीतरकी ओर मुड़े। एवं नीचे की पेशियाँ शुक्लमण्डलके ऊपरका सिरा बाहरकी ओर मुड़े, उस तरह गोलकको फिराती हैं।

मांसपेशियों के कार्यका स्पष्टीकरण:—

१. बाह्य सरला गोलकको बाहरकी ओर खींचती है।

२. अन्तरा सरला गोलकको भीतरकी ओर खींचती है।

३. ऊर्ध्वा सरला गोलकको ऊपरकी ओर एवं भीतरकी ओर खींचती है। एवं शुक्लमण्डलकी खड़ी रेखाके ऊर्ध्व सिरेको भीतर की ओर फिराती है।

४. निम्ना सरला गोलकको नीचेकी ओर भीतरकी ओर खींचती है; तथा शुक्लमण्डल की खड़ी रेखा के ऊर्ध्व सिरेको बाहर की ओर फिराती है।

५. ऊर्ध्वा वक्रा गोलकको बाहर खींचती है। शुक्लमण्डलकी खड़ी रेखाके ऊर्ध्व सिरेको भीतरकी ओर फिराती है।

६. निम्ना वक्रा गोलक को ऊपर और बाहरकी ओर खींचती है।

शुक्लमण्डलकी खड़ी रेखाके ऊपर के सिरेको बाहर की ओर फिराती है।

उपरोक्त वर्णनसे विदित होगा कि, नेत्रको भीतरकी ओर खींचनेकी शक्ति भीतरकी सरला पेशीमें है; एवं ऊपरकी सरला और नीचे की सरला भी वही कार्य कर सकती हैं। उसी तरह बाह्य सरला और उसके अतिरिक्त ऊपर की और नीचेकी वक्रा गोलकको बाहरकी ओर खींचती हैं। एवं ऊपर खींचने की शक्ति ऊपरकी सरला और नीचेकी वक्रामें रही है तथा नीचे खींचने की शक्ति निम्ना सरला और ऊर्ध्वा वक्रामें है। इनके अतिरिक्त शुक्लमण्डलकी खड़ी रेखाके ऊपर के सिरेको भीतरकी ओर फिराने की शक्ति सरला और वक्रा में रही है।

उक्त दो-दो पेशियोंकी कोई भी एक जोड़ी लें तो विदित होगा कि, प्रत्येक जोड़ी एक अंशमें समान है, और दो अंशमें पृथक् होती है। उदा०-ऊर्ध्वा वक्रा और ऊर्ध्वा सरला को देखें। वे दोनों शुक्लमण्डल की रेखाके ऊर्ध्व सिराको भीतर की ओर फिराती हैं, इनमें ऊर्ध्वा सरला गोलकको ऊपरकी ओर खींचती है; तथा ऊर्ध्वा वक्रा नीचे खींचती है। ऊर्ध्वा सरला भीतर खींचती है, वक्रा बाहर खींचती है। इनके अतिरिक्त प्रत्येक पेशीका प्रबल अपने अनुकूल स्थितिमें गोलक होने पर अधिक होता है। इस बातको समझानेके लिये लम्बे विवेचनकी आवश्यकता है। किन्तु उससे पाठकों को कठिनता उत्पन्न होती है और ग्रन्थका कलेवर बढ़ता है। अतः अधिक नहीं लिखा।

नेत्रगोलकके भीतरकी पेशी—भीतरकी पेशी २ हैं—कनीनिका संकोचक और तन्तुमय पेशी। इनके अतिरिक्त कितनेक नेत्रवैद्य कनीनिका प्रसारक पेशीको भीतरकी तीसरी पेशी गिनते हैं। सबका वर्णन पहले प्रकरणमें किया है। इनमें से पुनः तन्तुमय समूह का वर्णन यहाँ देते हैं।

तन्तुमय पेशी—यह तन्तुमय समूहमें नेत्रदर्पणके सिरे और तारा-मण्डलकी परिधिके बीचमें रही है। इसका मुख्य कर्तव्य दृष्टिमणिका बाह्य गोलपना न्यूनाधिक करनेका है। उस हेतुसे दूर एवं समीप स्पष्ट दर्शन होता है। इस पेशीकी शक्ति अवस्थावृद्धिके साथ कम होती जाती है। ४० वर्षके बाद इतने तक कम होती है कि, पढ़ने लिखनेमें बाधा पहुँचती है। यह स्थिति सामान्यतः ४२ वर्षके लगभग प्रतीत होने लगती है।

इनके अतिरिक्त तारामण्डलके पर्देमें कनीनिकाको छोटी बड़ी करने वाली दो पेशी हैं, वे अलग ही हैं।

नेत्रके उपाङ्गोंकी पेशी--पलककी २ पेशी हैं—नेत्र निमीलनी और

नेत्रोन्मीलनी। इनके अतिरिक्त मूलरकी पेशी और होर्नरकी पेशी भी इनमें गिन लेते हैं।

नेत्रनिमीलनी पेशी--ये दोनों पलकोंके ऊपर और उसके भीतर एवं बाहर के संगम स्थान पर रही हैं, प्रत्येक नेत्रमें एक-एक है। उसके संकोच से आंख बन्द होती है। जब इस पेशी का बध होता है, तब नीचेका पलक नेत्रगोलकको लगता हुआ नहीं रहता; नीचे गिर जाता है। इस हेतुसे निम्न अश्रु वाहक छिद्र अश्रुओंको नहीं खींच सकता। फिर नेत्रमें से जलस्राव होता रहता है। नेत्रगोलक खुला रहनेसे शुक्लमण्डलका जो भाग आच्छादित नहीं होता, वह सूख जाता है और अपारदर्शक बन जाता है। इस पेशीका संकोच होता है या उसमें खिंचाव होता है, तब पलक गोलककी ओर मुड़ जाता है।

मूलर की पेशी—यह पेशी परिचय कराने वाले डाक्टर मूलर के नाम से प्रसिद्ध हुई है। इसके तन्तु ऊपर और नीचे के पलकों में से होकर नेत्रगृह की ओर जाते हैं। इसके संकोच से नेत्रगोलक कुछ बाहर निकला हुआ भासता है। एवं उसके संकोच से ऊपर का पलक भीतर खिंचता है।

होर्नर की पेशी—यह पेशी अश्रु वाहक नहीं है; अश्रु वाशयके पास रही है और वह अश्रुओं को इस नलिका द्वारा अश्रु वाशय में खिंचने में सहायता करती है। कितनेक डाक्टर इस पेशी को पलक बन्द करने वाली पेशी का एक भाग गिनते हैं।

ऊर्ध्व पलक को ऊपर खींचनेवाली पेशी—यह पेशी अति आवश्यक है। इसके द्वारा ऊपरके पलक को ऊपर खींच सकते हैं। जब इस पेशी का बध हो जाता है, तब ऊपर का पलक गिर जाता है। फिर आँख निद्रामें हो, ऐसा देखाव होता है।

ऊपर नेत्र की बाह्य पेशियों का जो कर्तव्य दर्शाया है, वह सबका स्वतन्त्र कर्तव्य है। यथार्थमें कोई भी पेशी अकेली स्वतन्त्र रीतिसे कार्य नहीं कर सकती। कम से कम दो पेशी मिलकर कार्य होता है। उदा०—किसी समीप की वस्तु को देखना हो, तब दोनों नेत्रगोलक भीतर की ओर मुड़ते हैं। जिससे दोनों गोलक की अन्तरा सरला पेशी आकुंचित होती हैं। उसी तरह ऊपर देखना हो, तब दोनों नेत्रों की ऊर्ध्व सरला पेशी आकुंचित होती है। जिस तरह सरला पेशी संकुचित होती है, उस तरह वक्रा पेशियाँ भी संकुचित होकर गोलक को बाम दक्षिण फिराती हैं। ये सब क्रिया निम्न कोष्टकमें स्पष्ट दर्शायी है।

नेत्र बाह्यपेशियों का कार्य

किस ओर देखने के लिये	दक्षिण गोलककी पेशी	वाम गोलककी पेशी
दहिनी ओर	बाह्यासरला	अन्तरासरला
बांयी ओर	अन्तरासरला	बाह्यासरला
ऊपर और दहिनी ओर	ऊर्ध्वासरला	अधोवक्रा
ऊपर और बांयी ओर	अधोवक्रा	ऊर्ध्वासरला
नीचे और दहिनी ओर	अधःसरला	ऊर्ध्वावक्रा
नीचे और बांयी ओर	ऊर्ध्वावक्रा	अधःसरला

उक्त पेशियोंके कर्तव्यसे नेत्रगोलक पर निम्नानुसार क्रिया होती है:—

अनिमेषदृष्टि या स्थिरदृष्टि - Fixation.

अ. एक नेत्रकी अनिमेषता—Monocular Fixation.

आ. दो नेत्रोंकी अनिमेषता—Binocular Fixation.

द्विनयनदृष्टि (Binocular Vision)—एकरूपता (Fusion).

स्थलान्तर दृष्टि (प्रक्षेपण)—Projection.

अ. एकनयन स्थलान्तर दृष्टि—Monocular Projection.

आ. द्विनयन स्थलान्तर दृष्टि—Binocular Projection.

एकनयन अनिमेषता (Monocular Fixation)—किसी भी वस्तुको स्पष्ट देखने के लिये उस वस्तु पर नेत्रको स्थिर किया जाय, तब नेत्रदर्पण (पीत बिन्दु) के मध्य भाग (Fovea Centralis) का उपयोग होता है। नेत्रदर्पणकी अधिकतम दृष्टि उस भागमें है। जब कोई भी वस्तुका सूक्ष्म अवलोकन करना हो, तब उस वस्तु पर नेत्रको स्थिर करने पर नेत्रदर्पणके मध्य भागसे उसकी प्रतीति होती है।

द्विनयन अनिमेषता (Binocular Fixation)—एक नेत्रसे किसी भी वस्तु का निरीक्षण करना हो तब दूसरा नेत्र खुला हो तो स्वाभाविक रीति से वह भी उसी तरह मुड़ जाता है, जिससे उसके पीतबिन्दु का मध्य भाग उस वस्तु को देख सके। दोनों नेत्रों की यह स्थिति होने पर द्विनयन अनिमेषता कहलाती है।

द्विनयन दृष्टि (Binocular vision)—किसी वस्तु को दोनों नेत्रों से देखने पर उस वस्तु की प्रतिमा दोनों नेत्रोंके दर्पण पर पृथक्-पृथक् उत्पन्न होती है। इस तरह दो प्रतिमा होने पर भी स्वस्थावस्थामें एक

ही वस्तु का प्रत्यक्ष होता है। ऐसा क्यों होता है? उसका स्पष्टीकरण नेत्रविज्ञान-शास्त्री अन्य रीति से नहीं दे सके, किन्तु ऐसा अनुमान किया गया है, कि दोनों प्रतिमाएँ नेत्रदर्पण पर हुई, वे दोनों मस्तिष्कस्थ दृष्टि कर्तव्यके हेतुसे स्वस्थावस्थामें एक ही अनुभवमें आती हैं; अर्थात् दो प्रतिमाओं की एकरूपता (Fusion) हो जाती है। इस तरह एक ही वस्तु को दो नेत्रोंसे देखने पर अधिक स्पष्ट भासती है। इतना ही नहीं, वह नेत्रसे कितनी दूर है, उसका आकार कैसा है इत्यादि भी अधिक स्पष्ट होता है। इस बात की प्रतीति नेत्रवैद्य को सर्वदा होती है, कि जब रोगी की परीक्षा की जाती है, तब २० फुट की दूरी पर अक्षरोंके तख्ते को पढ़नेके लिये कहते हैं। उस समय एक नेत्रसे जितना पढ़ सकता है, उसकी अपेक्षा दोनों नेत्रोंसे अधिक स्पष्ट पढ़ सकता है और अक्षरों को भी अधिक स्पष्ट देख सकता है।

एकनयन स्थलान्तर दृष्टि (Monocular Projection)—किसी वस्तु को एक आँखसे देखने पर वह वस्तु कैसी है, उसका आकार, रंग आदि कैसे हैं, ये सब विदित हो जाता है। इतना ही नहीं, वह वस्तु नेत्रसे कितनी दूर है, यह भी जाना जाता है। इस दृष्टि को स्थलान्तर दृष्टि कहते हैं। वह दृष्टि तब ही पूर्ण कही जायगी, जब गोलक की सब पेशियों की अधिक्षेपण क्रिया (Projection) नियमित हो। यदि इनमें के किसी पेशी का स्तम्भ या बध हो जाय, तो प्रतीत होने वाली वस्तु कितनी दूरी पर है, उसका सच्चा ख्याल नहीं आ सकेगा।

जिस तरह एक वस्तु को देखकर उसका स्थलान्तर विदित होता है, उस तरह एकके साथ अन्य वस्तुओं का भी साथ-साथ बोध हो जाता है और उसका स्थलान्तर जाना जाता है। उस क्रियामें लक्ष्य न जा सके उस तरह नेत्रगोलक चल जाता है; एवं दो या अधिक वस्तुओंके देखनेमें यदि गोलक न चले तो भिन्न-भिन्न वस्तुओं की प्रतिमा पीतबिन्दु और उसके समीपके भाग पर पड़ती है। उन प्रतिमाओंके अन्तरके अनुपातसे वे वस्तु परस्पर कितनी दूरी पर हैं, उसका अनुमान हो जाता है।

द्विनयन स्थलान्तर दृष्टि (Binocular Projection)—जिस तरह एक नेत्रसे स्थलान्तर जाना जाता है, उसी तरह दोनों नेत्रोंका एक साथ उपयोग होनेपर अधिक निश्चित रूपसे स्थलान्तर विदित होता है। जो क्रिया द्विनयन दृष्टिमें होती है, वही क्रिया इसीमें होती है। जिससे दोनों नेत्रोंके दो नेत्रदर्पण पर उत्पन्न दो प्रतिमा, एवं पीत बिन्दुके समीपमें उत्पन्न भिन्न-

भिन्न दो प्रतिमाओंका एकीकरण या एकरूपता होकर वह एकही वस्तु कितनी दूरी पर है यह जाना जाता है।

एकनयन अनिमेषताकी परीक्षा—यह अनिमेषता योग्य है या नहीं, इसकी परीक्षा करनेके लिये रोगीको एक कुर्सी पर बैठावें। फिर नेत्रवैद्य कोई भी वस्तु—पेंसिल या अँधेरे वाले कमरेमें परीक्षा करनी हो तो मोमबत्ती की ज्वाला रोगीके नेत्रके सामने और नेत्रकी सतह पर रखें और दूसरी आँख बन्द कराकर उसकी ओर देखनेको कहें। यदि एकनयन अनिमेषता योग्य होगी, तो उसका शुक्लमण्डल ठीक मध्यमें ही प्रतीत होगा। यदि कुछ कसर होगी, तो गोलक एक ओर सरका हुआ भासेगा।

द्विनयन अनिमेषताकी परीक्षा—रोगीको ऊपर कहे अनुसार कुर्सीपर बैठाकर किसी वस्तुकी ओर देखनेको कहें। दोनों नेत्रगोलक ठीक मध्यमें रहते हैं, या कोई एक किञ्चित् एक ओर सरका हुआ भासता है, यह देख लेवें।

रोगीको किसी वस्तुकी ओर देखनेको कहें। नेत्रवैद्य एक काराजका टुकड़ा लेकर उससे पहले दहिनी फिर बांयी, पुनः दहिनी और बांयी, उस तरह दोनों आंखों को क्रमशः बन्द करें। यदि दोनों अनिमेष होगी, तो दोनों आंख ठीक स्थिर ही प्रतीत होंगी। यदि दोनोंमें स किसीमें कुछ टेढ़ापन या पेशी की निर्बलता होगी, तो निर्बल गोलक एक ओर कुछ हट जायगा और पुनः मध्यमें स्थिर हो जायगा। उदा०—बाह्या सरला पेशीकी निर्बलता या स्तम्भ होगा तो नेत्र भीतरकी ओर फिर जायगा और कुछ समयके बाद पुनः मूलस्थिति में आ जायगा।

द्विनयन दृष्टिकी परीक्षा—ऊपर में परीक्षाका जो वर्णन किया है, उस में जब काराजके टुकड़े को एक नेत्रपर से दूसरे पर फिराते रहते हैं, तब रोगीको पूछे कि, जिस वस्तु पर उसने दृष्टि स्थिर की थी, वह वस्तु स्थिर है या चल है। यदि वस्तु स्थिर है, ऐसा रोगी कहे, तो मानलें कि उसकी द्विनयन दृष्टि योग्य है। किन्तु रोगी कहे कि, वस्तु चल है, तो मानलें कि एकही वस्तुको वह दो आंखसे दो वस्तु रूप देखता है। जिससे उसकी द्विनयन दृष्टि योग्य नहीं है। इसका विशेष विचार आगे गोलककी बाह्य पेशी की निर्बलता के वर्णन में किया जायगा।

एकनेत्रकी संचलन शक्ति (नेत्रगति) की परीक्षा—रोगीके नेत्रके पास कोई भी वस्तु रखें और उस ओर देखने को कहें। रोगी उस वस्तु पर दृष्टि स्थिर करें, तब उस वस्तु को भिन्न-भिन्न दिशामें फिराते रहें और रोगीको उस वस्तु को देखते रहनेको कहें। यदि आंखकी हलन-चलन शक्ति योग्य होगी

और गोलककी सब बाह्य पेशी अपना कार्य योग्य कर सकती होंगी तो गोलक ठीक फिरता रहेगा। बाहर की ओर यदि गोलक अच्छी तरह फिर सकता होगा, तो शुक्लमण्डलका बाहरका किनारा बिल्कुल आंखके कोने तक पहुँचेगा। उसी तरह भीतरकी ओर ठीक फिर सकता होगा, तो शुक्ल-मण्डलका भीतरका किनारा भीतरके कोन तक पहुँचेगा।

प्रत्येक ओर गोलक कहां तक फिर सकता है, उसका नाप करनेके लिये दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र या कालपर्दा, जिसपर नापदर्शक चिह्न किया हो, उसका उपयोग करना चाहिये। रोगीको मस्तिष्क स्थिर रखनेको कहें और रोगीके नेत्र के पास एक कागज पर दो खड़ी पंक्ति एक दूसरेके पास निकाल कर, उन पर दृष्टि रखनेको कहें। फिर उस कागजको प्रत्येक दिशामें फिरावें। जिस स्थान पर एक पंक्ति निस्तेज प्रतीत होने लगे, उस स्थानकी यादी करें। उस तरह प्रत्येक दिशामें परीक्षा करने पर रोगीका गोलक प्रत्येक दिशामें कहां तक फिर सकता है, इसका नाप हो सकेगा।

दोनों नेत्रोंकी गतिकी परीक्षा (Tests of Binocular movements)—नेत्रवैद्य अपने हाथमें सुई जैसी वस्तुको रखें और रोगीको देखनेको कहें। जब रोगी उसे ठीक देख सके तब उसे प्रत्येक दिशामें और प्रत्येक कोनमें फिरावें और रोगी को देखनेको कहे, यदि उसकी सब पेशियां ठीक काम करती होंगी, तो प्रत्येक दिशामें और प्रत्येक कोणमें उसका गोलक ठीक फिरता हुआ प्रतीत होगा। यदि एक गोलक त्वचामें फिरनेमें पीछे रहजाय, तो उस ओर की पेशी मन्दगति युक्त या गतिहीन हुई है, ऐसा जाना जाता है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकारसे भी परीक्षा होती है, उसका विचार इसी प्रकरणमें आगे किया जायगा।

मांसपेशियोंके रोगमें २ विभाग हैं—(१) नेत्र गोलककी बाह्य पेशियों की कर्तव्य-भ्रष्टता; (२) गोलकके भीतरकी पेशियों तथा नेत्रोंके उपाङ्गोंकी पेशियों के रोग। इन सबका वर्णन क्रमशः करते हैं।

(१) नेत्रगोलककी बाह्यपेशियोंकी कर्तव्यभ्रष्टता।

(Anomalies of Extrinsic ocular muscles)

नेत्रगोलककी बाह्य पेशियोंकी कर्तव्यभ्रष्टताके भिन्न-भिन्न ४ प्रकार निम्नानुसार हैं :—

अ. मांसपेशियों की निर्बलता—Heterophoria.

आ. गोलक का एक ओर फिर जाना-तिर्यग् दृष्टि—Squint-Strabismus-Heterotropia.

इ. मांसपेशी संधानगति की भ्रष्टता—Anomalies of Coniugate movement.

ई. अक्षि आंदोलन-गोलककी सतत गति—Nystagmus.

अ. मांसपेशियों की निर्बलता।

(Heterophoria)

इस निर्बलताके ३ प्रकार निम्न हैं :—

१. गोलकको बाहर मोड़नेकी निर्बलता—Esophoria.

२. भीतर मोड़नेकी निर्बलता—Exophoria.

३. नीचे मोड़ने की निर्बलता—Hyperphoria.

इस रोगमें जिस पेशीकी निर्बलता उपस्थित हुई हो, वह पेशी अपना कार्य करने में कितनेक अंशमें शिथिलता दर्शाती है, जिससे उसके सामने वाली पेशी अपनी ओर गोलकको खिंच जाती हैं। प्रायः निर्बल पेशी अपनी न्यून शक्तिका उपयोग करके अपने कर्तव्य का पालन करती है; किन्तु इस प्रकार प्रयत्न जब सतत या अनेक बार करना पड़ता है, तब वह थक जाती है। फिर कर्तव्यका पालन नहीं कर सकती।

जब शुक्लमण्डलकी खड़ी रेखा बांयी या दहिनी ओर मुड़ती है, तब जो स्थिति होती है, उसे गोलकावर्तन (Cyclophoria) कहते हैं।

लक्षण—शिर दर्द, पढ़नेमें, सिनेमा देखनेमें और क्रिकेट जैसे खेल को देखनेमें नेत्रका थक जाना, दोनों आंखोंसे देखने पर कष्ट होना और नेत्रसे कार्य लेनेमें उपरामता आना, ये सब इस रोगके मुख्य लक्षण हैं। चिह्न कुछ भी नहीं है।

परीक्षा विधि—(१) द्विनयन अनिमेषता परीक्षा पहले लिखी है, उस तरह परीक्षा करने पर इस स्थितिका ख्याल आ सकता है।

(२) रोगीको एक दीपक ज्वाला, जो २० फुट दूर हो, उस पर दृष्टि रखनेको कहें। फिर दूसरी बत्ती ६ फुट दूर हो उसे देखनेको कहें। इस तरह रोगी बत्तियों को देखता हो, तब एक कागजके टुकड़े से दहिनी फिर बांयी, पुनः दहिनी फिर बांयी, इस तरह क्रमशः आंखों को बन्द करें। ऐसा करने पर एक आंख ऊपर और दूसरी नीचे मुड़ेगी। कागजके टुकड़ेको नेत्रके पास से उठानेपर जिस आंखका बाहर की ओर मुड़ना भासे, उस आंखमें गोलक को बाहर फिरानेकी निर्बलता है, ऐसा माना जाता है। यदि आँख भीतर की ओर मुड़े तो भीतर की पेशी की निर्बलता है, ऐसा निर्णित होता है।

उक्त न्यूनता कितने अंशमें है, इसके निर्णयके लिये त्रिकोण धन

कांचका उपयोग किया जाता है। यदि आंख ऊपरके भागमें मुड़ती प्रतीत हो, तो त्रिकोण धन कांचको उस तरह रखें कि उसका चौड़ा भाग नीचे रहे। जिस नम्बर के कांचसे आंख स्थिर रहती दीखे, उतने नम्बरकी कसर मानी जाती है। यदि गोलक बाहर फिरता भासे, तो त्रिकोण धन कांचके चौड़े भागको बाहरकी ओर सज्जित करें। यदि गोलक भीतर फिरता हो तो उस कांचके चौड़े भागको भीतरकी ओर व्यवस्थित करें। इस तरह प्रयोग करने पर इस स्थितिका अस्तित्व विदित होता है। एवं उसका नाप भी निर्णित होता है।

(३) इन दोनों प्रकारोंकी अपेक्षा अधिकतर उपयोगी मेडोक्स के अर्धगोल लाल कांच (Maddox Rods) की प्रयोग विधि है। इस कांचमें ५-६ अर्द्धगोल लाचकांच, चश्मे के नम्बर लेने के कांचके समान गोल कमानी में व्यवस्थित किये हैं। परीक्षा विधि निम्नानुसार है।

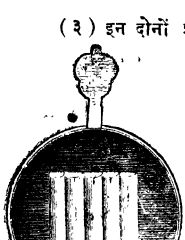

चित्र नं. १६०
मेडोक्सके अर्द्धगोल लालकांच। (Maddox's multiple rods)

मेडोक्स काँचसे परीक्षा—रोगीको अन्धेरे कमरेमें खड़ा रखें या कुर्सी पर बैठावें और उसकी नाक पर चश्माके नम्बर लेनेकी कमानी लगावें। इस कमानीमें बांयी आंख वाले खण्ड में मेडोक्सका लाल कांच इस तरह व्यवस्थित करें कि, जो गोल कांच खड़ा रहे। ६ फुटकी दूरी पर एक मोमबत्ती रखें (जब रोगी दोनों नेत्रों से उस बत्ती की ओर देखता है, तब उसे दहिने नेत्रसे बत्तीकी ज्वाला सफेद दीखती है और बांये नेत्रमे लाल पंक्ति आड़ी दीखती है। जो लाल पंक्ति और दीपककी ज्वाला एकही सतहपर प्रतीत हो तो पेशीकी निर्बलता नहीं है, ऐसा निर्णित होता है।

यदि बांयी आंख ऊपर मुड़ी हुई होगी, अर्थात् बांयी आंखकी अधः सरला पेशी निर्बल होगी, तो लाल पंक्ति बत्तीकी ज्वालासे नीचे दीखेगी। यदि त्रिकोणधन कांचके चौड़े भागको नीचा बांयी आंख के पास रखा जाय, तो दोनों पंक्ति और ज्वाला एकही सतह में प्रतीत होंगे। जिस नम्बर के त्रिकोणधन कांचसे दोनों पंक्ति एकही सतहमें आजायें, उतने नम्बरकी निर्बलता उस नेत्रमें है ऐसा निश्चित होता है। यदि लाल पंक्ति दीपकसे ऊपर दीखे, तो दहिनी आंख बांयी की अपेक्षाऊंची गई है, ऐसा सिद्ध होता

है। यदि त्रिकोणधन कांचके चौड़े भागको नीचे दहिनी आंखके पास रखा जाय, तो दोनों पंक्ति एकही सतह पर आजायँगी।

यदि वही मेडोक्सका लाल कांच चश्मेकी कमानीमें गोल कांच आड़ा रहे, उस तरह रखा जाय, तो बाह्या सरला और अन्तरा सरला पेशी की निर्बलता होगी, तो विदित होजायगी। उस समय लाल पंक्ति खड़ी प्रतीत होगी। यदि दीपक ज्वाला और लाल पंक्ति एक साथही प्रतीत हो तो पेशी निर्बल नहीं है, ऐसा माना जाता है। यदि लाल पंक्ति बांयी ओर सरकी हुई भासे तो बाह्या पेशी निर्बल मानी जाती है। यदि लाल पंक्ति दहिनी ओर दीखे, तो भीतरकी पेशी निर्बल है, ऐसा मानें। बाहरकी पेशी की निर्बलतामें त्रिकोण धन कांचके चौड़े भागको बाहर की ओर रखें और भीतरकी पेशीकी निर्बलतामें कांच के चौड़े भागको भीतरकी ओर रखें, तो दोनों पेशी साथमें मिली हुई दीखेंगी।

(४) त्रिकोणधन कांचकी उपयोग विधि—इस विधिमें नेत्रके पास त्रिकोणधन कांच रख कर कृत्रिम द्विदृष्टि उत्पन्नकी जाती है। रोगीको अंधेरे कमरेमें मद्दमबत्ती देखने को कहें। फिर एक नेत्र (दहिने) के पास नं० ६ का त्रिकोणधन कांच रखें। चौड़ा भाग भीतरकी ओर रखने पर दो बत्ती दीखेंगी। एक बत्ती योग्य स्थान पर, दूसरी उससे बाहरकी ओर। यदि पेशी की निर्बलता नहीं होगी, तो दोनों बत्ती एकही पंक्तिमें प्रतीत होंगी। यदि उस तरह कांच रखने पर एक बत्ती दूसरीकी अपेक्षा नीची भासे तो जिस नेत्रसे बत्ती नीची दीखे, उस नेत्रके पास चौड़ा भाग नीचा रहे उस तरह त्रिकोण धन कांच रखें, तो दोनों बत्ती एकही पंक्तिमें प्रतीत होंगी। जिस नम्बर का कांच उस तरह अन्तर करा सके, उतने (कांचके) परिमाण में निर्बलता माननी चाहिये। इस प्रकार से यदि एक नेत्रके पास त्रिकोण धन कांच नं० ४ का चौड़ा भाग नीचा रहे उस तरह रखें, तो एक बत्ती नीची और दूसरी ऊपर दीखेगी। दूसरे नेत्रके पास त्रिकोण धन कांच, चौड़ा भाग भीतर या बाहर रहे, उस तरह रखें, तो दोनों बत्ती एकही पंक्तिमें आजायँगी। इससे बाहर की या भीतरकी पेशीकी कितनी निर्बलता है यह विदित होजाती है।

यद्यपि इन सब रीतिका यथाशक्य स्पष्टीकरण किया है, तथापि ये सब प्रकारकी परीक्षा अति विकट होनेसे परिश्रम लेनेवाले को भी लम्बे समय में विदित होने वाली हैं। खास रोगियोंके अतिरिक्त इसका उपयोग क्वचित् ही होता है। जो नेत्रवैद्य अपनी विद्यामें कुशल न हो, वह इस परीक्षा पद्धतियों को नहीं जान सकता। पढ़ने मात्रसे बहुत कम व्यक्तियों

को समझमें आती है। कुशल नेत्रवैद्यसे सीखने पर सरलता से बोध मिल जाता है।

१. गोलकका अन्तगवर्तन।

(Esophoria)

गोलकको बाहर मोड़ने में निर्बलता होने पर रोगीका नेत्र भीतरकी ओर मुड़े, उस तरहकी पेशीकी निर्बलता होती है। पहले कहे अनुसार रोगी इस स्थिति पर अंकुश रखनेके लिये यथाशक्य प्रयत्न करता है; और बहुधा उसमें सफल भी होता है। किन्तु जब उसका प्रयत्न निष्फल होता है, तभी यह स्थिति प्रकाशित होती है।

लक्षण और चिह्न—पढ़नेमें अक्षर अस्पष्ट होजाने, या एक दूसरेके साथ मिल जाने का भास होता है। पढ़नेके प्रारम्भमें ही ऐसा नहीं होता, किन्तु थोड़ा समय होने पर कष्ट होने लगता है। पढ़ते-पढ़ते नेत्रमें भारीपन आजाता है और भ्रू भागमें शिरःशूल भासता है। कितनेक रोगियोंको उबाक और वमन होजानेकी भावना होती है। ये सब चिह्न दूर देखनेमें अधिक होते हैं। समीपके कार्यमें कम होते हैं। कितनेकों की पलकधारा लाल और शोथमय बन जाती है। इनके अतिरिक्त लक्षण नहीं दीखते।

कारण—यह रोग बाह्या सरला पेशीकी निर्बलता या अन्तरा सरला पेशीकी अति कर्तव्यताके हेतुसे होता है। रोगीकी देह किसी भी कारणसे निर्बल हुई हो या मनमें चिन्ता हो, अथवा मानसिक निर्बलता हो, तब इस रोगकी सम्प्राप्ति होती है।

रोगविनिर्णय—इस रोगको जाननेके लिये पहले लिखी हुई परीक्षाओं का उपयोग करने पर निर्णय होता है। उसमें भी रोगीकी दूरकी दृष्टिका निर्णय नेत्रोंको बार-बार क्रमशः कागजके टुकड़ेसे ढकने तथा मेडोक्सके अर्द्धगोल काँच द्वारा परीक्षा करने पर होता है। नजदीककी दृष्टिके लिये मेडोक्सका एक यन्त्र आता है, उसे मेडोक्सका पक्षयन्त्र (Maddox Wing Test) कहते हैं। इससे सरलतापूर्वक परीक्षा हो जाती है।

उपचार—इस स्थितिका उपचार दो रीतियों से होता है--१. रोगीकी योग्य परीक्षा करके यथा योग्य नम्बरका चश्मा देना; २. उस चश्मेके एक काँचके साथ त्रिकोण धन काँच, जिस नम्बरका लागू होता हो, उस नम्बर का संयोजित करना। उस काँचका चौड़ा भाग बाहर रहे, उस तरह व्यवस्थित करना चाहिये। इस तरह व्यवस्था करने पर सब लक्षण शमन हो जाते हैं।

यदि उक्त उपायसे स्थितिमें सुधार न हो तो मांसपेशीको व्यायाम

कराना चाहिये। उस व्यायामके लिये कितनेक यन्त्र आते हैं, उसे घनवीक्षण यन्त्र (Stereoscope) कहते हैं। उसके उपयोगसे किसी-किसीको लाभ पहुँच जाता है।

कितनेक नेत्रवैद्य शस्त्रक्रियासे लाभ पहुँचता है, ऐसा अपना अनुभव दर्शाते हैं। किन्तु शस्त्रक्रियासे लाभकी बदलेमें हानि होने की संभावना अधिक रहती है। अतः शस्त्रक्रियाकी सलाह न दी जाय तो अच्छा।

२. गोलका बाह्यावर्तन।

(Exophoria)

गोलकको भीतर मोड़ने की निर्बलता ३० वर्ष की आयु तक क्वचित् ही होती है, ३० वर्षके पश्चात् अधिक होती है।

लक्षण—जो लक्षण गोलकको बाहर मोड़नेकी निर्बलतामें प्रतीत होते हैं, वेही सब लक्षण इस प्रकारमें होते हैं। केवल एकही अन्तर होता है, वह यह है कि, इस स्थितिमें रोगीको दूरका कार्य करनेमें या दूर देखनेमें कष्ट नहीं पहुँचता; किन्तु समीपके कार्यमें—पढ़ने-लिखने, सिलाई करने, कसीदा निकालने, मोती गिनने आदिमें अतिशय कष्ट होता है। यह कठिनता किसी-किसीको इतने तक बढ़ जाती है कि वे लिखने-पढ़ने आदि समीपके किसी भी कार्य को नहीं कर सकते।

कारण—इस रोगकी उत्पत्तिके ३ कारण हैं—दृक् संधान शक्तिकी न्यूनता, केन्द्राभिवर्त्तन शक्तिकी न्यूनता और वार्धक्यजन्य निर्बलता। दृक् संधान शक्तिकी न्यूनता विशेषतः ह्रस्वदृष्टिवाले मनुष्योंमें होती है। इससे यह विकार ऐसे नेत्र वालोंको किसी भी आयुमें हो जाता है।

केन्द्राभिवर्त्तन अर्थात् नेत्रको भीतरकी ओर मोड़नेकी शक्ति (Convergence) में न्यूनता हो—अन्तरा सरला पेशी निर्बल हो, तब गोलकका बाहर मुड़ना संभवित है।

वार्धक्यजन्य निर्बलता (Presbyopia) होने पर रोगी पढ़नेके लिये नेत्रोंको खूब खींचता है। ऐसा करने पर नेत्रोंकी अन्तरा सरला पेशियोंको अधिक परिश्रम पहुँचता है, जिससे वे निर्बल होती हैं। यदि उस निर्बलता के हेतुसे जब प्रयत्न करने पर भी कार्य न हो सके, तब गोलकके भीतर मुड़नेमें निर्बलता प्रकाशित होती है।

रोगविनिर्णयार्थ परीक्षा—(१) एक आँख बन्द की जाती है और दूसरी दिशाओंमें फिरती है या स्थिर रहती है, उसका निरीक्षण किया जाता है।

(२) रोगीके नेत्रके पास त्रिकोणधन काँच इस तरह रखें कि उसकी धारा और बीचका भाग ऊँचा नीचा रहे। फिर रोगीको एक कागज देवें। उस कागज पर एक मोटी पंक्ति खिंची होती है। उस पंक्तिके ऊपर बीचमें एक बिन्दु होता है। यदि काँचकी धारा ऊपर होगी और बीचका भाग नीचा होगा तथा काँच दहिनी आँखके पास रखा होगा, तो स्वस्थ नेत्रको एकही पंक्ति भी लम्बी बनी हुई और दो बिन्दु उसी पंक्ति पर प्रतीत होंगे। यदि दहिनी आँखके भीतर सरला पेशीकी निर्बलता होगी, तो पंक्ति दो दीखेंगी। एक योग्य और दूसरी निस्तेज, प्रत्येक पंक्ति पर एक-एक बिन्दु होगा। निस्तेज पंक्ति और बिन्दु दूसरी पंक्तिसे बाँयी ओर तथा ऊपरमें प्रतीत होंगे। उस परसे भीतरकी सरला पेशीकी निर्बलता निश्चित होती है। उसी तरह यदि निस्तेज पंक्ति और बिन्दु समान पंक्तिकी दहिनी ओर दीखें तो दहिनी आँखकी बाह्या सरला पेशी निर्बल मानी जाती है। एवं उस काँचके किनारे और धड़को भीतर और बाहरकी ओर व्यवस्थित करने पर ऊपर और नीचे खिंचने वाली पेशियोंकी स्थिति अवगत हो जाती है।

इनके अतिरिक्त मेडोक्सके दो त्रिकोण धन काँच वाला यन्त्र, मेडोक्सका पताकार यन्त्र, हर्मानका यन्त्र आदिका उपयोग किया जाता है। किन्तु प्रति दिनके कार्यमें इन यन्त्रोंका उपयोग क्वचिन् ही होता है। अतः इनका विवेचन नहीं किया गया।

उपचार—योग्य परीक्षा करके चश्मेका नम्बर निकाल देवें। मांसपेशी को दृढ़ बनाने के लिये व्यायाम करावें।

रोगीको उदर सेवनार्थ कुचिला, कुचिलासत्व (स्ट्रिक्नियां), ग्लिसरोफोस्फेट्स, सुवर्ण भस्म, मुक्तापिष्टी, मकरध्वज आदि पौष्टिक औषधियां दी जाती हैं। यदि इन त्रिविध (चश्मा व्यायाम और उदर सेवनार्थ औषध, इन) उपचारोंसे लाभ न हो, तो त्रिकोण धन काँच न० १ या २ का चौड़ा भाग (धड़) भीतर रहे, उस तरह दोनों आँखके पास चश्माके साथ लगावें। उससे भी लाभ न हो, तो अन्तरा पेशीको छोटी करने या बाह्या सरलापेशी को लम्बी करने की शस्त्रक्रिया की जाती है।

३. गोलकका ऊर्ध्वावर्त्तन।

(Hyperphoria)

गोलकको नीचे की ओर मोड़नेकी निर्बलता होने पर गोलक ऊपर की ओर मुड़ता है। अर्थात् अधस्था सरलापेशी निर्बल होती है।

लक्षण—शिर दर्द रहता है, विशेषतः मोटर या रेलगाड़ीमें मुसाफिरी

करने में शिर दर्द हो जाता है। क्रिकेट या टेनिसके खेलको देखते रहने से भी शिरदर्द हो जाता है। कभी-कभी रोगीको तन्द्रा आती है और मस्तिष्कमें भारीपन हो जाता है। जिस नेत्रमें ऐसी स्थिति हो, उस ओर कितनेक रोगी अपना सिर झुकाते हैं।

कारण—इस स्थितिमे पीड़ित रोगियोंमें ३३ प्रतिशत रोगी ३० वर्षसे कम आयु वाले होते हैं। शेष रोगी बड़ी आयु वाले होते हैं। सामान्यतः ३० वर्षके पश्चात् इस स्थितिकी प्राप्ति अधिक होती है। इस परसे नेत्रवैद्योंने अनुमान किया है कि, अवस्था-वृद्धिके साथ मांसपेशियोंकी निर्बलता बढ़ती है। जैसे-जैसे आयु बढ़ती है, वैसे-वैसे पेशियोंकी संगृहीत शक्ति कम होती है। अन्य रीतिसे आयुवृद्धिके साथ मांसपेशियोंमें स्थितिस्थापक तत्व भी कम हो जाते हैं।

रोगविनिर्णय—पहले लिखी हुई परीक्षाओं द्वारा रोगविनिर्णय हो जाता है।

उपचार—चश्मेका योग्य नम्बर निकाल चश्मे द्वारा स्थिति सुधारनी चाहिये। योग्य नम्बर का त्रिकोणधन काँच चश्मेके साथ संयोजित करें। जिस आँखमें निर्बलता हो, उस आंखके काँचके साथ त्रिकोण धन काँच, धड़ नीचा रहे, उस तरह व्यवस्थित करें।

नेत्रकी मांशपेशियोंको व्यायाम करावें।

पहले जो पौष्टिक औषधियोंकी सूचना की है, उनका उपयोग करके रोगीकी शारीरिक और मानसिक स्थितिको सुधारें।

सूचना—हो सके तब तक शस्त्रक्रिया का आश्रय न लें। अन्यथा इस स्थितिमें हानि होने की अधिक संभावना है।

आ. गोलकका एक ओर फिर जाना–तिर्यग् दृष्टि।

(Squint—Strabismus – Heterotrophia)

तिर्यग् दृष्टि प्रकारः—

१. स्तम्भरहित—Non-Paralytic Squint.

२. स्तम्भसहित—Paralytic Squint.

३. आक्षेपज—Spasmodic Squint.

आ. १. पेशी स्तम्भरहित तिर्यग् दृष्टि।

(Non. Paralytic Squint—Concomitant Squint)

द्विविधि उपप्रकारः—

A. अन्तर्गामी—Convergent.

B. बहिर्गामी—Divergent Concomitant.

A. अन्तर्गामी (केन्द्राभिमुखी तिर्यग् दृष्टि)।

(Convergent Squint)

द्विविधि शाखा उपप्रकारः—

१. पार्श्विक (Monolateral);

२. पर्यायक्रमसे अनुगमनशील (Alternate).

पार्श्विक तिर्यग् दृष्टि प्रकारमें एक ओरकी दृष्टि भीतरकी ओर अर्थात् नासिकाकी ओर मुड़ी हुई भासती है। पर्याय क्रम प्रकारमें दोनों आंख क्रमशः भीतर मुड़ती जाती हैं।

A १. पेशी स्तम्भरहित पार्श्विक अन्तर्गामी तिर्यग् दृष्टि।

(Monolateral Concomitant Convergent Squint)

यह स्थिति (चित्र नं० १६१) बहुधा बहुत छोटी आयुमें अर्थात् १से ३ वर्षकी आयुके भीतर हो जाती है।

चित्र नं. १६१

लक्षण और चिह्न—तिर्यग् दृष्टि कम होती है। इसका उपचार छोटी आयुमें न किया जाय, तो बड़ी आयुमें सुधार करना अति कठिन होता है। इस प्रकार का रोगी जब बड़ी आयु होने पर नेत्रवैद्यके पास जाता है, तब अच्छे नेत्र की दृष्टि $\frac{६}{६}$ (योग्य चश्मे से) हो तो तिर्यग् नेत्रकी दृष्टि किसी भी चश्मे से $\frac{६}{३६}$ — $\frac{६}{६०}$ से अधिक नहीं हो सकती। रोगीको दो-दो वस्तु नहीं भासतीं।

रोग दीर्घकाल पर्यन्त उपचार किये बिना रह जाय, तो रोगी चाहे उतना प्रयत्न करे, तो भी टेढ़ी आंख सीधी स्थिर नहीं हो सकती।

चिह्नमें केवल एक यही मुख्य है कि, जब रोगी दोनों नेत्र खुले रखकर किसी भी वस्तुको देखता है, तब एक गोलक ठीक मध्यमें प्रतीत होता है और तिर्यग नेत्र नाककी ओर मुड़ा हुआ भासता है। नेत्रका नाक की ओर मुड़ना प्रत्येक स्थिति में एकही समान होता है अर्थात् किसी भी संयोगों में न्यूनाधिक नहीं होता।

कारण—इस स्थितिकी उत्पत्तिका मुख्य कारण एक ही है। तिर्यग् दृष्टि वाले नेत्रमें एक रूपताकी शक्ति कम है। इस शक्तिका ह्रास होनेके हेतुओं में दूरदृष्टि या दूरदृष्टि और विषम दृष्टि दोनों साथमें होना, यह है

उसमें भी जब एक आंख में दूर दृष्टि अधिक और दूसरी आंख में कम होती है, तब जिस आंख में दूर दृष्टि अधिक हो, उस आंख में टेढ़ापन उत्पन्न होता है।

वंशपरम्परा प्रकृति भी एक कारण है, अनेक बार एक कुटुम्बमें एकाधिक बालकोंकी आँखमें टेढ़ापन प्रतीत होता है या पिताको हो तो पुत्रको हो जाता है।

अन्य कारणोंमें डर, अकस्मात् भय लगना, आक्षेपक वात, तीव्र-ज्वर, अति कास, रोमान्तिका आदि रोगोंके पश्चात् टेढ़ापन हो जानेका माता-पिता नेत्रवैद्यके पास कारण दर्शाते हैं। सत्य बात यह है कि, बालक के नेत्रमें दृष्टिकी न्यूनता तो होगी ही। उसमें एक नेत्रके भीतर अधिक कसर थी। अतः टेढ़ापनकी प्राप्तिके लिये अनुकूल स्थिति तो वर्तमान थी ही। ऐसी अवस्थामें ज्वर आदि कारणोंमें तिर्यग् दृष्टिकी उत्पत्ति होनेमें उत्तेजक कारण मिल गया।

उपचार--उपचार करनेके पहले टेढ़ापन कितने अंशमें है, उसका नाप निकाल कर यादी कर लें। टेढ़ापनके नापकी सामान्य रीति निम्नानुसार है।

हर्स वर्गका तिर्यग् दृष्टिमापन—रोगीको अँधेरे कमरेमें कुर्सी पर बैठावें। फिर उसके सामने एक फुटकी दूरी पर आँखकी सतहमें—ठीक मध्यमें एक बिजलीका सूक्ष्म दीपक पकड़ें। उसका प्रतिबिम्ब यदि शुक्लमण्डलके मध्यमें गिरे, तो आँखमें टेढ़ापन नहीं है, ऐसा मानें। यदि कनीनिकाके बाहरके किनारेके पास गिरे, तो १५ डिग्रीकी वक्र दृष्टि, कनीनिका के बाहरका किनारा और शुक्लमण्डलकी परिधिके ठीक बीचमें दीपक प्रतिमा प्रतीत हो तो ३० डिग्री और बिल्कुल परिधिके पास दीखे तो ४५ डिग्री टेढ़ापन माना जाता है।

प्रिस्टली स्मिथकी पद्धति--इस पद्धतिमें एक खास पट्टी आती है जिसे प्रिस्टली स्मिथ पट्टिका कहते हैं। इस पट्टीसे परीक्षा करनेके लिये बालकको अँधेरे कमरेमें कुर्सी पर बैठावें। सहायक वैद्य 'अ' कड़ीको रोगीके नेत्रके बाहरके कोनके पास पकड़ रखें। नेत्रवैद्य विद्युतयुक्त नेत्रवीक्षण यन्त्रकी बत्तीका ढक्कन निकाल, उसे बीचकी 'आ' कड़ीमें व्यवस्थित करें।

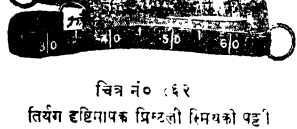

चित्र नं० १६२
तिर्यग दृष्टिमापक प्रिस्टली स्मिथकी पट्टी
(Priestly Smith's Tape)
अ. नेत्रके पास रखनेका वलय।
आ. बिजलीकी बत्ती व्यवस्थित करनेकी कड़ी।
इ. नेत्रवैद्यके लिये पट्टिका पकड़नेकी कड़ी।

रोगीको बत्तीकी ओर देखनेको कहें। रोगी देखने लगे, तब नेत्रवैद्य अपनी अँगुलीसे 'इ' कड़ीको पकड़ कर नापदर्शक पट्टीके पास फिराता है। यह पट्टी पहली पट्टीसे ९० डिग्री-के कोणमें आवे उस तरह व्यवस्थित करे। फिर नेत्रवैद्य अंगुलीको टेढ़ी आँखके टेढ़ापनकी ओर फिराते हैं। जब नेत्रवीक्षण यन्त्रकी बत्तीकी प्रतिमा कनीनिकाके मध्यमें प्रतीत हो, तब अंगुली किस अङ्क पर है, वह देख लेवें। जिस अङ्क पर नेत्रवैद्यकी अँगुली हो, उस अङ्कके समान जितना उस डिग्रीका टेढ़ापन हुआ है।

यदि रोगी बिल्कुल बालक न हो और अधिक समझ सके वैसा हो, तो दृष्टिक्षेत्रमापक यन्त्र (पेरीमीटर) के उपयोगसे भी टेढ़ेपनका नाप हो सकता है। इस मापका निर्णय करनेके पश्चात् रोगीके चश्मेका नंबर निश्चित किया जाता है; अर्थात् चश्मेसे सुधर सके ऐसी न्यूनता हो तो वह निश्चित की जाती है। यह परीक्षा किस तरह करनी चाहिये, वह प्रकरण २८वें में दर्शाया जायगा।

चश्मेका नम्बर निकाल उसके अनुरूप चश्मेका उपयोग कराते रहना चाहिये। चश्मेका नम्बर अँधेरे कमरेमें निश्चित किया जाता है; उस समय कनीनिकाको अच्छी तरह प्रसारित कर लेना चाहिये। छोटे बालकोंमें १% का एट्रोपिन प्रवाही व्यवहृत होता है। उससे अच्छी तरह कनीनिका प्रसारित हो जाती है।

नेत्र की दृष्टि कम हो गई है, वह पुनः प्राप्त होने के लिये टेढ़ी आँखसे कार्य लेते रहने का रोगी को सूचित करें, इसके लिये २ उपाय हैं। १. अच्छी आँख पर पट्टी लगाकर बन्द करें और सब कार्य टेढ़ी आँख से लेवें। २. अच्छी आँख हो उसमें एट्रोपिन डालकर कनीनिका को प्रसारित करें। ऐसा करने पर अच्छी आँख काम करना बन्द करेगी। फिर सब कार्य टेढ़ी आँख को करना पड़ेगा। इस तरह लम्बे समय तक करने से टेढ़ी आँख अपना कार्य करने को नहीं भूलती। इतना ही नहीं, उसमें कुछ अंशमें दृष्टि कम हुई हो वह एकाध वर्ष पर्यन्त सतत प्रयत्न करते रहनेसे पुनः सुधर जाती है।

यदि टेढ़ी आँखमें दृष्टि कम न हुई हो, तो दिनमें २-३ घण्टे तक उस नेत्रसे काम लेते रहनेसे उसमें दृष्टि कम होने की संभावना नहीं रहती। किन्तु दृष्टि कम हो गई हो तो प्रतिदिन ६ घण्टे तक टेढ़ी आँख को व्यायाम कराना पड़ता है।

दृष्टि की एकरूपता लाने की रीति--टेढ़ापन अधिक न हो और रोगी की दृष्टि अधिक न्यून न हुई हो, तो उपर्युक्त दो उपायों का अवलम्बन लेवें। उससे एकरूपता कम हुई हो वह भी कुछ महीनोंमें पुनः आ जाती है। यदि टेढ़ापन अधिक हो और एकरूपता की शक्ति अधिक विकृत हुई हो, तो वह फिरसे लानेके लिये खास उपाय किया जाता है। इसके लिये विशेषतः २ यन्त्र व्यवहृत होते हैं। १. वर्थ का न्यून दृष्टि सुधारक यन्त्र; और २. मेडोक्सका एकरूपता दृष्टिसुधारक यन्त्र (Maddox's Synoptophore), इनके अतिरिक्त सामान्य एकरूप दर्शक यन्त्र (Stereoscope) जो लड़के चित्रों को देखनेके लिये उपयोगमें लेते हैं, वह भी सामान्य टेढ़ेपनमें प्रयोजित होता है।

वर्थ का यन्त्र सस्ता और सरल होनेसे प्रायः उसी का उपयोग होता है। मेडोक्स का यन्त्र अति खर्च वाला और कठिन होनेसे उसका उपयोग केवल बड़े-बड़े होस्पिटलोंमें ही होता है।

चित्र नं० १६३।
वर्थ का न्यून दृष्टिसुधारक यन्त्र।
(Worth's Amblyoscope)

यदि ये सब उपाय निष्फल हों तो शस्त्रोपचार करके टेढ़ापन मिटा सकते हैं। भारतमें केवल शिक्षित वर्ग और धनिक वर्ग ही अपनी टेढ़ी आँख वाले बालकों को नेत्रवैद्यके पास ले जाते हैं। एवं शस्त्रोपचार की सलाह मिले तो उस अनुसार शस्त्रोपचार भी कराते हैं। सामान्य वर्ग टेढ़ापन को रोग नहीं मानते, उसे खोट या ईश्वरदत्त स्थिति अथवा प्रारब्ध दोष मानकर उपाय नहीं कराते। यूरोप जैसे देशोंमें मातापिता अनेक टेढ़ी आँख वाले बालकोंके नेत्र पर शस्त्रक्रिया कराते हैं और परिणाम में टेढ़ापन मिटाते हैं। इतना ही नहीं, टेढ़ापन के परिमाणमें टेढ़ी आँख

की दृष्टि, जो उपचार न करनेसे कम हो गई हो, या चली गई हो, उसे भी बचा सकते हैं।

शस्त्रक्रिया—इस शस्त्रक्रियाके दो प्रकार हैं—१. पेशीके शिरा का छेदन (Tenotomy); और २. पेशी का लघुकरण (Advancement) जिस ओर नेत्र मुड़ा हो उस ओर की पेशी का छेदन किया जाता है; तथा सामने ओर की पेशी का लघुकरण किया जाता है। जैसे किसी बालक की दहिनी आँख नाक की ओर मुड़ी है, तो उसकी अन्तरा सरला पेशी का सिरा काट दिया जाता है अथवा बाह्या सरला पेशी का लघुकरण किया जाता है। यदि टेढ़ापन अधिक हो तो दोनों शस्त्रक्रिया एक ही नेत्र पर की जाती हैं। सामान्य होने पर दोनों मेंसे एक ही क्रिया करनेसे सिद्धि हो जाती है। इस शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण ३०वें में किया जायगा।

A. २ पर्याय क्रमसे अनुगमनशील तिर्यग् दृष्टि।

(Alternating Esotrophia)

क्रमशः दोनों नेत्रों का भीतर मुड़ना, इस प्रकारके टेढ़ेपनमें होता है। एक समय एक आँख भीतर की ओर में मुड़ती है, और जब वह सीधी होती है, तब दूसरी आँख भीतर मुड़ती है। इस तरह दोनों नेत्र क्रमशः मुड़ते रहते हैं।

इस प्रकारका टेढ़ापन जन्म से ही हो या ६ मास की आयुके भीतर ही उत्पन्न होता है। दोनों में से एक नेत्रकी एकरूपता दर्शक शक्ति अपूर्ण होती है। जिससे दोनों नेत्रों में उस शक्तिकी न्यूनता आजाती है। रोगीको दृष्टिकी न्यूनता नहीं भासती।

कारण--यह रोग प्रायः वंशागत होता है। इसके अतिरिक्त इसका अन्य कारण विदित नहीं हुआ।

परिणाम—यह रोग आजीवन उसी स्थिति में रहता है। इससे रोगी की दृष्टि को अधिक बाधा नहीं आती। केवल नेत्रका देखाव सदोष या अनैसर्गिक भासता है।

उपचार—रोगीकी आयु छोटी हो तोही उपचार सफल हो सकता है, आयु बढ़ जाने के बाद चिकित्सा निष्फल है।

इस रोग के लिये शस्त्रोपचार ही एक उपाय है। यदि रोगीके नेत्रमें चश्मा के योग्य कसर होगी, तो उसे सुधारना ही पड़ेगा। शस्त्रोपचार में मुख्य बाह्या सरला पेशीका लघुकरण (Advancement) और अन्तरा सरला पेशीका अपसारण (Recession) अधिक उपयोगी और श्रेष्ठ

उपाय है। यह शस्त्रक्रिया एकही नेत्र पर की जाती है, और बालककी आयु ३ वर्षकी होनेपर करनी चाहिये। ४ वर्षके पश्चात् शस्त्रक्रिया करने से सफलता कम मिलती है। इस शस्त्र क्रियासे नेत्रोंका देखाव सुधर जाता है।

B. पेशी स्तम्भरहित बहिर्गामी तिर्यग्दृष्टि।

(Divergent Concomitant Squint)

यह स्थिति छोटी आयुमें क्वचित् ही होती है। बालक ८-१० वर्ष का हो जाय, तब या उससे भी बड़ी आयुमें इस स्थितिकी उत्पत्ति होती है। अन्तर्गामी की अपेक्षा इस प्रकार के टेढ़ापनके रोगी परिमाणमें कम मिलते हैं। टेढ़ापन वाली आंखमें दृष्टि न्यून नहीं होती; अथवा होती है तो भी अति कम परिमाण में।

रोगप्रकार—अन्तर्गामी तिर्यग् दृष्टिके समान इसके भी २ प्रकार हैं—एक नयन गत (Monocular) और पर्याय क्रमेण नयनद्वयगत (Alternating Divergent)। (चि.नं.१६४)

चित्र नं. १६४
एकाक्षि तिर्यग् दृष्टि।

लक्षण और चिह्न—टेढ़ी आंखकी दृष्टि न्यून होती है; किन्तु अन्तर्गामी की अपेक्षा यह कसर बहुत कम होती है। जिन बालकों को टेढ़ापन बहुत छोटी आयुमें प्रारम्भ हुआ हो, उनको ही दृष्टिकी न्यूनता होती है। दृष्टिकी एकरूपता में भी बहुत कम कसर होती है। प्रायः वह ठीक होती है; कदाच कसर हो तो भी किञ्चित्।

परीक्षा करने पर एक आंख बाहरकी ओर अर्थात् कनपटी की ओर मुड़ी हुई भासती है। यह मुड़ना कितने परमाणमें है, उसके नापकी रीति पहले दर्शायी है।

कारण—इस स्थितिकी उत्पत्तिके कारणोंमें ह्रस्व दृष्टि (Myopia), वात नाड़ियों की निर्बलता और अन्तरा सरला पेशीका शस्त्र क्रिया द्वारा छेदन, ये ३ हैं।

उपचार—दोनों नेत्रोंमें चश्मा लगाने पर सुधर सके ऐसी विकृति हो, तो परीक्षा करके उस प्रकार से सुधारनी चाहिये। ह्रस्व दृष्टि हो तो - कांच देवें। दीर्घ दृष्टि हो तो + कांच देवें। विषम दृष्टि हो तो - या + कांच और

अर्धगोल कांच को मिलाकर व्यवस्था करें। रोगीकी दृष्टि कम हुई भासती हो, तो इसी प्रकरण में पहले जो व्यायाम लिखे हैं, उस अनुसार व्यायाम करावें।

उसी तरह दृष्टिकी एकरूपता में कसर हो, तो उसके लिये पहले दर्शाये हुए उपायों की योजना करें। जब ये उपचार कितनेक समय इच्छित परिणाम नहीं ला सकते, तब शस्त्रोपचार के अतिरिक्त अन्य उपाय नहीं है। शस्त्रोपचार से रोगीका देखाव सुधरता है। एवं कम हुई दृष्टिमें भी कितनेकों को लाभ पहुँच जाता है।

शस्त्रक्रियामें प्रायः अन्तरा सरला पेशीका लघुकरण और बाह्या सरला पेशीका अपसारण, ये दोनों क्रिया एक साथ करनी चाहिये। इस शस्त्रक्रिया का वर्णन आगे प्रकरण ३०वें में किया जायगा।

आ. २. पेशी स्तम्भ सहित तिर्यग् दृष्टि।

(Paralytic Squint)

नेत्रकी मांसपेशियों का स्तम्भ होने पर तिर्यग् दृष्टि होती है। उन मांसपेशियों पर किस-किस वातनाड़ीका शासन होता है, यह देखें तो विदित होता है कि बाहर की सरला पेशी पर छठवी नाड़ीका, ऊपरकी वक्र पेशी पर चौथी नाड़ीका तथा शेष पेशियों पर तीसरी नाड़ीका शासन है। जिससे वात नाड़ीका बध होनेपर उससे सम्बन्ध वाली एक बाहरकी सरला पेशी या ऊपरकी वक्र पेशी अथवा शेष सब पेशियों का स्तम्भ होजाता है। इनमें बाह्या सरला पेशी का स्तम्भ अन्य पेशियोंकी अपेक्षा अधिक समय अनुभवमें आता है। इन पेशियों का वध होने पर दर्शन क्रियामें निम्नानुसार अन्तर होजाता है।

बाहर प्रतीत होनेवाली वस्तुओं की प्रतिमा दोनों नेत्रदर्पण पर पृथक्-पृथक् पड़ती हैं। यह द्विनयन दृष्टिमें पहले लिखा गया है। वे दो प्रतिमा उत्पन्न होने पर भी दोनों नेत्रोंसे समान अन्तर पर रही हुई कोई भी वस्तु एकही भासती है। स्वस्थावस्थामें गोलक को अलग-अलग दिशामें फिराने पर दोनों नेत्रदर्पणों के अलग-अलग भागों पर प्रतिमा होती है; किन्तु मस्तिष्कमें दोनों एकही बन जाती हैं। वेही प्रतिमाएं अस्वस्थावस्थामें नेत्रदर्पण के अन्य भागों पर उत्पन्न होनेपर दो-दो भासती हैं। कारण, एक या अधिक पेशीका स्तम्भ होने पर एकही वस्तु दो दो भासती है। ऐसे रोगी को एक बत्ती दिखाने पर दो प्रतीत होंगी। स्वस्थ नेत्र से प्रतीत होनेवाली बत्ती योग्य प्रकाशवाली और साफ होती है; किन्तु स्तम्भ युक्त नेत्रसे

प्रतीत होनेवाली दूसरी बत्ती मंद और योग्य प्रकाश वाली बत्ती के ऊपर, नीचे, भीतर या बाहर होगी। यदि यह मंद बत्ती किस ओर प्रतीत होती है, उसका योग्य अभ्यास किया जाय, तो कौनसी पेशी रहगई है, वह सरलता से तत्काल विदित हो जायगा। यदि एक नेत्रके पास लाल कांच रखा जाय तो निर्णय अधिक सरलता से हो जायगा।

वाम नेत्रकी बाह्यासरला पेशीके स्तम्भमें प्रतीति—सफेद बत्ती दहिने हाथकी ओर तथा सीधी भासेगी। लाल बत्ती बांये हाथकी ओर प्रतीत होगी। यदि बत्तीको बांयी ओर ले जायँ, तो अन्तर कम हो जायगा।

दक्षिण नेत्रकी बाह्यासरला पेशीके स्तम्भ में प्रतीति—लाल बत्ती दहिनी ओर दीखेगी। बत्ती को दहिनी ओर लेजाने पर अन्तर बढ़ जायगा।

ऊर्ध्वा वक्रा पेशीके स्तम्भमें प्रतीति—बत्ती जबतक नेत्रके सामने होगी, तबतक एकही भासेगी; किन्तु बत्ती नीचे लेने पर दो भासेंगी। उनमें लाल बत्ती नीचे और सफेद बत्तीकी ओर मुड़ी हुई भासेगी। इनके अतिरिक्त अलग-अलग दिशामें दीपक फिराने पर लाल और सफेदके स्थान में विविध अन्तर हो जाता है।

तीसरी नाड़ीका शासन ५ पेशियों पर है। १. ऊर्ध्वा सरला; २. अन्तरा सरला; ३. निम्ना सरला; ४. निम्ना वक्रा; और ५. अक्षिपुट को उठाने वाली पेशी। इनके अतिरिक्त कनीनिका संकोचक पेशी। अतः जब तीसरी नाड़ी में विकार होता है, तब प्रायः इन सब पेशियों पर असर होता है। कभी १-२ पेशी स्तम्भ प्रकोपसे बच जाती हैं।

लक्षण - मांसपेशियों के स्तम्भ में निम्नानुसार ६ लक्षण उपस्थित होते हैं:—

१. तिर्यग् दृष्टि।
२. स्तम्भ युक्त पेशीसे जिस दिशामें गोलक को गति मिलती है, उसमें न्यूनता या अभाव।
३. दो-दो वस्तु भासना।
४. चक्कर आना और अस्थिरता।
५. किसी भी वस्तुको उसके स्थानकी अपेक्षा भिन्न-भिन्न स्थान पर देखना।
६. स्तम्भयुक्त पेशीकी ओर शिरका झुकना।

१. *तिर्यग् दृष्टि*—जब नेत्रकी मांसपेशियां योग्य प्रकार से कार्य करती हैं, तब दोनों नेत्रोंके गोलक समान्तर होते हैं। जब कोई भी पेशी,

उसमें विशेषतः बाह्या सरला पेशी या अन्तरा सरला पेशीका स्तम्भ होता है, तब एक गोलक—स्तम्भ युक्त पेशीवाला गोलक भीतर या बाहरकी ओर खिंच आता है; तथा आरोग्य पेशीवाला गोलक ठीक सीधा रहता है। जब रोगी अलग अलग दिशामें नेत्रको फिराता है, तब यह खोट अधिक भासता है। उदा०-बांयी आंखकी बाह्या सरला पेशीका स्तम्भ हुआ हो, तो जब रोगी सामने देखेगा, तब दहिनी आंखका गोलक ठीक बीच में रहेगा; किन्तु बांयी आंखके गोलक को अन्तरा सरला पेशी नाककी ओर खींचती है। इससे टेढ़ापन दृष्टिगोचर होता है। रोगीको नेत्रवैद्यकी एक अंगुली की ओर देखने को कहें और उस अंगुलीको रोगीकी दहिनी ओर ले जायँ, तो दोनों नेत्रों के गोलक समान्तर हो जायँगे। फिर टेढ़ापन बिल्कुल नहीं भासेगा। किन्तु इसके विपरीत नेत्रवैद्य अंगुलीको रोगीकी बांयी ओर ले जायगा, तो दहिनी आंखका गोलक अंगुलीकी दिशामें योग्य फिरेगा, किन्तु बांयी आंखका गोलक नाककी ओर (दहिनी आंखकी ओर) के कोनमें होगा, तो वहां ही पड़ा रहेगा।

जिस तरह बाह्या सरला पेशीके लिये कहा, उसी तरह अन्य पेशियों के लिये भी समझलें। किन्तु इतना लक्ष्यमें रखे कि, टेढ़ापन जितना उक्त दो पेशियों की शिथिलता में स्पष्ट भासता है, उतना अन्य पेशियोंकी शिथिलता में नहीं होता। कारण, गोलक के बाहर और भीतरकी गतिका आधार मुख्यतः बाह्या और अन्तरा सरला पेशी पर अवलम्बित है। अन्य ओर होनेवाली गतियों का आधार उस ओरकी एकही पेशी पर नहीं है; किन्तु एकाधिक पेशियों पर रहा है। उदा०-गोलक को ऊपर गति देने में केवल ऊर्ध्वा सरला पेशी कार्य नहीं करती; किन्तु निम्ना वक्रा पेशी भी सहायता पहुँचाती है।

यह तिर्यग् दृष्टि गोलक जिस ओर पड़ा रहता है, उस स्थान के अनुसार भीतर, बाहर, ऊपर और नीचेकी ओर की होती है। जिस ओर गोलक पड़ा रहता है, उसके सामने की ओर गति देने वाली या सामनेकी ओर गोलकको फिराने वाली पेशीका वध हुआ होता है। उदा०—बाहरकी सरला पेशी का वध होने पर गोलक भीतरकी ओर खिंच जाता है।

२. *गोलकको गति मिलनेमें न्यूनता या अभाव*—जिस ओरकी पेशीका स्तम्भ हुआ हो, उस ओर गोलकको फिराने या खिंचने में वह पेशी असमर्थ होती है। नेत्रवैद्य रोगीको अपनी अंगुली दर्शावें और उस अँगुली को भिन्न-भिन्न दिशामें फिरावें, तो किस ओर गोलक वापस फिरता है या बिल्कुल नहीं फिरता, वह तुरन्त विदित हो जाता है।

३. *वस्तुओं का दो-दो भासना*—दोनों नेत्रों पर भिन्न-भिन्न प्रतिमा पड़ने पर भी दोनों नेत्रों से कोईभी वस्तु एकही प्रतीत होती है। उसमें अन्तर पड़ने पर नेत्र नीरोगी नहीं हैं, ऐसा रोगीको विदित हो जाता है। यह लक्षण प्रारम्भ में विशेष भासता है फिर जैसे-जैसे समय जाता है, वैसे-वैसे कम होता जाता है। अन्त में अनेक रोगियोंको यह द्विदर्शनरूप लक्षण अदृश्य होजाता है।

यदि रोगी स्तम्भयुक्त पेशीसे गोलक को गति जिस दिशामें भिजती हो, उस दिशामें देखनेका प्रयत्न करता है, तो वह लक्षण अधिक स्पष्ट होता है। अर्थात् एक वस्तुके स्थान पर प्रतीत होने वाली दो वस्तुओं के बीच का अन्तर अधिक भासता है। एवं रोगी गोलकको उस पेशीके सामने की दिशा में फिरायगा, तो दो दीखना बन्द होकर एकही भासेगा।

उदा०—एक रोगीकी बांयी आंखकी बाह्या सरला पेशीका वध हुआ है, वह ठीक सामने देखेगा, तो एक मनुष्यके स्थान पर दो दीखेंगे। वह मनुष्य रोगीके बांयी ओर सरकने पर मूर्ति तो दोही प्रतीत होंगी; किन्तु इन दो मूर्तियों के बीचका अन्तर बढ़ा हुआ भासेगा। यदि दहिनी ओर देखेगा, तो एकही दीखेगी। जब एक व्यक्तिके बदले में दो दीखें, तब बांयी आंख को हाथ या पट्टीसे बन्द करदें, तो एकही प्रतीत होती है। जो दो मूर्ति दीखती हैं, उनमें एक स्पष्ट और दूसरी अस्पष्ट होती है। जो स्पष्ट है वह नीरोगी नेत्रसे और अस्पष्ट है वह रोगी नेत्रसे भासती है। यदि यह स्थिति दीर्घकाल पर्यन्त कायम रहती है, तो बांयी आंख मूर्ति देखनेकी अवज्ञा करनेकी अभ्यासी हो जाती है। फिर दो के स्थान में एकही दीखती है। जिस समय दो दीखती हैं, उस समय यदि योग्य नम्बर का त्रिकोण धन कांच रखा जाय तो मिथ्या द्विदर्शन बन्द हो जाता है।

त्रिकोण धन कांचसे यह असर किस तरह होता है यह आगे चश्मे के प्रकरणमें समझाया जायगा। जैसे त्रिकोणधन कांचका नम्बर अधिक हो, वैसे पेशी का स्तम्भ भी अधिक माना जाता है। उक्त द्विदर्शन केवल बड़ी आयुमें जिनको टेढ़ापन दीखता है, उनको प्रतीत होता है, छोटी आयु में, विशेषतः चश्मे की आवश्यकता वाली आंखों में जो टेढ़ापन उपस्थित होता है, उनमें यह लक्षण नहीं भासता।

४. *चक्कर आना और अस्थिरता*—चलने के समय देहका समतोलपना सम्हाला जाता है। उसका मुख्य आधार दृष्टि पर है और कुछ आधार श्रवणेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय पर है। दृष्टि पर कितने अंशमें आधार है, उसका ख्याल अंधकार में चलनेका प्रयत्न करने पर आता है।

उस समय मुख्य आधार स्पर्शेन्द्रिय पर रहता है। पैर और हाथ से स्पर्श करने पर ऊंची नीची जमीन, दीवार आदि जान सकते हैं। दिनके प्रकाश में जब अपनी दृष्टि योग्य हो, तब हम जल्दी चल सकते हैं। उस परसे नेत्र पर कितने अंशमें चलने का और समतोलपना सम्हालने का आधार रहता है। उसकी कल्पना कर सकते हैं। जब नेत्रकी कोई पेशी रह जाती है, तब प्रत्येक वस्तु २-२ भासती हैं। जिससे सच्ची कौनसी और झूठी कौनसी, इसका निर्णय नहीं हो सकता। जिससे समतोलपना सम्हालने में अति परिश्रम पड़ता है। समतोलपना न सम्हलने पर चक्कर आता है।

५. *वस्तुको सच्चे स्थानसे अन्यत्र देखना*—अमुक वस्तु कितनी दूर है, इस बात को जानने के लिये हम दोनों नेत्रोंका उपयोग करते हैं। उसे देखनेके लिये प्रत्येक गोलककी पेशी कितने अंशमें खिंचती है, उसकी कल्पना मस्तिष्क में होती है, एवं यह क्रिया अनेक बार होगई है, जिससे अमुक वस्तु हम से कितनी दूरी पर है, वह हम तत्काल जान लेते हैं। एक गोलककी पेशी का वध हो जानेपर उसके सामने अवस्थित पेशीको अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इस हेतुसे कोई भी वस्तु यथार्थ स्थानकी अपेक्षा अधिक दूरी पर भासती है। यह लक्षण सब रोगियों में नहीं होता।

६. *स्तम्भित पेशी की ओर शिर का मुड़ना*—रोगी को दो-दो भासने पर वैसा न होनेके लिये यथा शक्य प्रयत्न करता है। स्तम्भित पेशी की ओर वस्तु हो तो दो-दो प्रतीति अधिक परिमाण में होती है, और उसे सामने की ओर ले जायँ तो वस्तु लगभग एकही भासेगी। कोई भी वस्तु रास्तेमें या अन्यत्र प्रतीत हो—उसे बाँये, दहिने, ऊपर या नीचे नहीं सरका सकते; उसे देखनेके लिये रोगी गोलक को भिन्न-भिन्न दिशामें फिरा सकता है। जब गोलक अमुक दिशामें नहीं फिर सकता, तब उस कठिनाई को दूर करने के लिये रोगी अपने शिर को उस दिशामें फिराता है जिससे कितनेक अंशमें उद्देश्य की सिद्धि होती है।

कारण—नेत्रकी पेशियों का स्तम्भ २ प्रकार का होता है—जन्म-लब्ध और जन्मके पश्चात्। जन्मलब्ध प्रकार में जन्मके पहले गर्भ-विकासमें रही हुई न्यूनता ही मुख्य है। कभी-कभी बालक का जन्म होने के समय प्रतिबन्ध होने पर प्रसव करानेके लिये कितनेक यन्त्र या शस्त्रों का उपयोग करना पड़ता है। यदि उन यन्त्र या शस्त्रोंसे सन्तानके नेत्र की पेशी को या पेशी पर अंकुश रखने वाली नाड़ी को हानि पहुँचे, तो उस पेशी का स्तम्भ हो जाता है।

जन्मके पश्चात् स्तम्भ होने के कारणों में पेशी पर जिस नाड़ी

का शासन हो, उस नाड़ी को या मस्तिष्कके जिस भाग में से वह नाड़ी निकलती हो वह व्याधिग्रस्त होने या ऊपर चोट आदि लगने पर अपना पेशी का रोग या पेशी को चोट लगने पर भी स्तम्भ होता है। व्यथा गोलक, नेत्रगृह, नाकके पास की कोटर या मस्तिष्क का घर (करोटी), इनमें से किसी को भी हो सकती है।

इनके अतिरिक्त प्रदाह और रक्ताभिसरणके रोगोंमें मुख्य उपदंश और उसके उपद्रव, क्षय और उसके उपद्रव, नाकके भीतर का प्रदाह, कर्ण-प्रदाह, कोटरप्रदाह आदि हैं। करोटी, नेत्रगृह, कोटर या गोलक और नेत्रगृहके समीपके भागोंमें ग्रन्थि होना, ये कारण होते हैं; तथा शरीरमें होने वाले कितनेक रोग—वृक्कप्रदाह, मधुमेह, इन्फ्लुएञ्जा, मोतीझरा, कफ, विषमज्वर, रोमान्तिका, शीतला और कसुमीमाता आदि रोग तथा शराब, शीशा आदि धातु का जहर, इनके परिणाममें रक्तके भीतर मिलने वाले जहरी तत्त्व, ये सब इस रोगके कारण हैं।

लक्षण तीसरी नाड़ीके व्याधिग्रस्त होने पर—तीसरी नाड़ी मस्तिष्क में से बाहर निकलनेके पश्चात् और नेत्रगृहमें प्रवेश होनेके पहले व्याधि-ग्रस्त हो जाय, तब उसके आश्रित सब पेशियाँ (ऊर्ध्वासरला, अन्तरासरला निम्नासरला, निम्नावक्रा, अक्षिपुट को उठाने वाली तथा कनीनिका संकोचक) स्तम्भित होती हैं। उसके लक्षण निम्नानुसार प्रकाशित होते हैं:—

१. नेत्रगोलक बाहर की ओर खिंच जाता है। अन्तरा सरला पेशीके हेतुमे उसे भीतर की ओर नहीं फिरा सकते।
२. नेत्रगोलक को ऊपर नहीं खींच सकते, किन्तु ऊर्ध्वासरला और निम्ना वक्रा पेशी का वध होनेसे तथा ऊपर की वक्र पेशीके खिंचाव के हेतुसे नीचे और बाहर की ओर रह जाता है।
३. ऊपर का पलक गिरा हुआ भासता है; वह ऊपर नहीं उठ सकता। इस हेतुसे नेत्र योग्य परिमाण में नहीं खुल सकता।
४. कनीनिका प्रसारित होती है, प्रकाशके हेतुसे एवं समीप देखने पर आकुंचित नहीं होती।

यदि तृतीया नाड़ी नेत्रगृहके पिछले द्वारमें प्रवेशित होने के पश्चात् रोगग्रस्त हुई हो, तो कनीनिका पर प्रायः असर नहीं होता। कारण, नेत्रगृहमें प्रवेश होने पर या कभी कुछ आगे उसकी दो शाखाएँ फूटती हैं। यदि व्याधि मस्तिष्कमें हो तो सब पेशी स्तम्भित नहीं होतीं। क्योंकि

मस्तिष्क में एकाधिक केन्द्रस्थान हैं। एवं प्रत्येक केन्द्रस्थान का अंकुश भिन्न-भिन्न पेशी पर होता है।

पेशीस्तम्भसहित तिर्यग् दृष्टिचिकित्सा।

तृतीया नाड़ी का वध—तीसरी नाड़ीके वधके कारणों में उपदंश, आमवात, मस्तिष्कमें रक्तस्राव, प्रतिश्याय, मस्तिष्क-प्रदाह, कितनेक जहरी ज्वर, प्लेग, इन्फ्लुएञ्जा आदि हैं। अतः जिस कारण से व्याधि हुई हो उस कारणके अनुरूप योग्य उपचार करना चाहिये। उपदंशज दोष होने पर पारद, पोटास आयोडाइड आदि औषध। आमवात होने पर सोडा सेलीसिलास जैसी औषध इत्यादि।

मांसपेशी स्तम्भके लिये पहले बिजली का प्रयोग करें। यह प्रयोग अनेक रीति से होता है। बिजली लगाने पर मुख्य लाभ यह है कि, जब तक वातनाड़ी का शोथ या वातनाड़ी की व्याधि शमन न हो, तब तक मांसपेशी की चेतनाशक्ति कायम रहती है। पेशी छोटी न हो जाय उसके लिये जिस दिशामें वह खिंचे, उस दिशा में गोलक को चिमटेसे खींचना चाहिये। कोकैनका प्रवाही डालकर यह क्रिया करनेसे वेदना नहीं होती। लगभग ६ मास पर्यन्त उपचार करने पर लाभ न पहुँचे तो शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

चतुर्थ नाड़ी का स्तम्भ—चौथी नाड़ी का शासन ऊर्ध्वावका पेशी पर है, अतः उस नाड़ीके पीड़ित होने पर वह पेशी रह जाती है।

लक्षण—नेत्रगोलक नीचे और बाहर की ओर फिरानेमें कसर रहती है; किन्तु यह न्यूनता अधिक नहीं होती। कारण, निम्नासरला और बाह्या सरला पेशीसे उस प्रकारकी गति मिलती है। एवं निम्ना वक्रा पेशी गोलक को बाहर की ओर फिराने में सहायता करती है।

उपचार—तीसरी नाड़ीके समान।

छठवीं नाड़ीका स्तम्भ—छठवीं नाड़ीका अमल बाह्या सरला पेशी पर है। अतः जब यह नाड़ी व्याधिग्रस्त होती है, तब वह पेशी स्तम्भित हो जाती है। अन्य सब पेशियोंके स्तम्भकी अपेक्षा इस पेशीका स्तम्भ अधिक बार अनुभव में आता है। कारण, अन्य नाड़ियों की अपेक्षा यह अधिक लम्बी है तथा इस तरह करोटीमें अवस्थित है कि यह सरलता से प्रभावित हो जाती है।

लक्षण और चिह्न—गोलक भीतर खिंचता है। रोगीको दो-दो दीखते हैं। प्रारम्भ में रोगीको अति व्याकुलता भासती है, जीनेपर चढ़ने-

उतरनेमें गिर जानेका भय लगता है। कभी चक्कर भी आता है। इस स्थितिमें नेत्रवैद्यके पास जानेपर निम्न चिह्न प्रतीत होते हैं।

जिस ओर की पेशी स्तम्भित हुई हो, उस ओरका नेत्रगोलक नाककी ओर खींचा हुआ भासता है। रोगीके पास अंगुलीको भिन्न-भिन्न दिशामें फिराने पर विदित होता है कि, स्तम्भित पेशीकी ओर गोलक नहीं फिरता। एवं उसकी विपरीत दिशामें जल्दी फिरता है। रोगीको टेढ़ापन देखने में आता है। इस टेढ़ापन को नापने के विविध साधन हैं। प्रिस्टली स्मिथकी वक्र दृष्टिमापक पट्टिका (चित्र नं. १६२) और तिर्यग् दृष्टिमापन यन्त्र आदि का प्रयोग होता है।

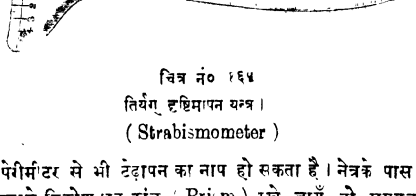

चित्र नं० १६५
तिर्यग् दृष्टिमापन यन्त्र।
(Strabismometer)

पेरीमीटर से भी टेढ़ापन का नाप हो सकता है। नेत्रके पास भिन्न-भिन्न नम्बरके त्रिकोण धन कांच (Prism) रखे जायँ, तो समबल वाले कांच से दो-दो दीखना बन्द हो जाता है। उस कांचके नम्बर पर से भी टेढ़ापन का नाप निकल सकता है।

उपचार—तीसरी नाड़ीके अनुसार उपचार उपयोगी हैं। हमारे अनुभवके अनुसार अन्य पेशियोंके स्तम्भ की अपेक्षा बाह्या सरला पेशीके स्तम्भ दूर होनेकी संभावना अधिकतर है।

अन्य उपचारों से सुधार न होनेपर शस्त्र क्रिया की जाती है। टेढ़ापन के लिये शस्त्रक्रिया के २ प्रकार हैं—१. स्तम्भित पेशीके विपरीत दिशामें गोलकको खींचनेका कार्य जिस पेशीका हो, उसे काट देना (Tenotomy); २. स्तम्भित पेशी को छोटी करना (Advancement), इन दोनों शस्त्र-क्रियाओंका वर्णन प्रकरण ३०वें में किया जायगा।

आ. ३. पेशी आक्षेपज तिर्यग् दृष्टि।

(Spasm of Ocular muscles)

जिस तरह पेशियोंके स्तम्भ से टेढ़ापन आता है, उस तरह किसी भी पेशीके आक्षेपसे भी होता है। इस प्रकारमें गोलक अकुंचित होने वाली पेशी की ओर खिंचता है और उस हेतु से टेढ़ापन उत्पन्न होता है।

कारण--मुख्यतः कारण २ हैं। मस्तिष्कावरण का प्रदाह (Meningitis) और मस्तिष्ककी उत्तेजक स्थिति। कभी-कभी हिस्टीरिया, आक्षेपक वात (Tetanus) तथा जहरी बुखारों के हेतुसे पेशियोंका आक्षेप उपस्थित होता है।

उपचार--मूल कारण को दूर करने और उसके अनुरूप चिकित्सा करने पर लाभ पहुँचता है।

इ. मांसपेशीकी संधानगति भ्रष्टता।

(Anomalis of Conjugate Movements)

नेत्र नैसर्गिक स्थितिमें होने पर दोनों नेत्रोंकी अनुसंधान शक्ति सम रहती है। जिससे वे दोनों किसी भी दिशा में देखने के लिये एक साथ फिरते हैं। उदा०-बांयी ओर देखना हो तब बांयी ओर का गोलक बाहरकी ओर (बांयी ओर) घूमता है और दहिनी आंखका गोलक भी बांयी ओर (नाककी ओर) फिरता है। उसी तरह दहिनी ओर देखना हो, तब दहिना गोलक दहिनी ओर अर्थात् बाहर की ओर तथा बांया गोलक भी दहिनी ओर अर्थात् नाक की ओर गति करता है। उसी तरह ऊपर, नीचे और प्रत्येक कोनमें देखने पर दोनों गोलकों की संयोजित पेशी योग्य रीतिसे फिरती हैं। रेखा चित्र नं० १५९ देखें।

जब किसी भी कारणसे इस संयोजित गतिमें प्रतिबन्ध होता है, तब दोनों गोलक कुछ दूरी तक अर्थात् लगभग मध्य में आवें तब तक ठीक फिरते हैं। फिर एक गोलक नहीं फिरता और दूसरा ठीक फिरता है। उस की योग्य स्थिति को पेशीकी संयोजित गति और उसमें अन्तर पड़ने पर संयोजित गतिभ्रष्टता कहते हैं। यह स्थिति दो कारणों से उत्पन्न होती है— १. स्तम्भ जन्य; २. आक्षेप जन्य।

१. स्तम्भजन्य संधानगतिभ्रष्टता (Conjugate Paralysis)—इस प्रकार में बाहर भीतर देखने के लिये निम्नानुसार ५ स्थिति हो सकती हैं।

१. दोनों में से एकभी आंख बांयी ओर देखने के समय मध्य स्थिति से

अधिक नहीं फिर सकती; किन्तु वस्तुको मुँहके बिल्कुल नजदीक ले जायँ, तो दहिनी आंख बांयी ओर फिर सकती है।

२. दोनों आँख खुली हों, तो दो में से एक भी आँख दहिनी ओर नहीं फिर सकेगी; किन्तु दहिनी आँख बन्द की जाय तो बाँयी आँख दहिनी ओर फिर सकेगी।

३. जब दोनों ओर की अन्तरा सरला पेशी स्तम्भित हुई हो, तब गोलक को भीतर की ओर नहीं फिरा सकती; किन्तु जब समीप देखना हो, तब दोनों आँख स्वयमेव भीतर मुड़ जाती हैं।

४. गोलक बाहर की ओर नहीं फिर सकते।

५. दोनों गोलक बाहर तथा भीतर की ओर भी नहीं फिर सकते; और समीप देखने पर भी नहीं फिर सकते। उसी तरह ऊपर और नीचे की गति में भी अन्तर हो सकता है।

२. *आक्षेप जन्य संचारगति भ्रष्टता* (Spastic loss of Conjugate movement)—इस प्रकार में निम्न २ स्थिति हो सकती हैं :—

१. दोनों गोलक बलपूर्वक स्वयमेव तुरन्त एक ओर फिर जाते हों तो भी उनको प्रत्येक ओर फिरा सकते हैं।

२. दोनों गोलक एक ओर स्वयमेव बलपूर्वक फिर जाते हों; तथापि प्रयत्न करने पर भी सामने की ओर फिर नहीं सकते।

जिस तरह बाहर और भीतर की गतिमें न्यूनता प्रतीत होती है, उस तरह आक्षेपज ऊपर और नीचे की गति में भी न्यूनता आजाती है।

कारण—उपर्युक्त सब स्थिति तीसरी, चौथी और छठवीं नाड़ीके मस्तिष्क स्थिति उत्पत्ति स्थानके रोग या आगन्तुक व्यथाके हेतुसे होती हैं।

उपचार—यदि उपदंशके उपद्रव रूपसे यह स्थिति हुई हो, तो उपदंश में व्यवहृत औषध देने पर स्थिति सुधर जाती है। यदि मस्तिष्क अर्बुद या किसी धमनी की कठिनता के हेतुसे हो तो कितनीक स्थिति शस्त्रक्रिया द्वारा सुधर सकती है।

ई. अक्षि आन्दोलन।

(Nystagmus)

इस स्थिति में गोलक सतत चलता ही रहता है; स्थिरता बिल्कुल नहीं रहती।

लक्षण और चिह्न--व्याकुलता होती है, कभी बड़ी आयु में यह रोग होता है, तब चक्कर आवे जैसा भासता है। यदि यह विकार जन्म

से ही हो तो दृष्टि भी कम होती जाती है। जन्म के पश्चात् हुआ हो तो भी स्पष्ट देखने में अन्तराय होता है। कारण, गोलक स्थिर नहीं रहता। परीक्षा करने पर गोलक की गति विदित होती है। अनेक रोगियोंमें यह गति बाहर भीतर होती है। कुछ रोगियों में ऊपर नीचे होती है तथा किसी-किसी रोगी का गोलक गोल चक्कर में फिरता रहता है।

कारण—जिन जिन रोगों के हेतुसे जन्मसे ही दृष्टि कम होजाती है, उनमें अक्षि-आन्दोलन भी उत्पन्न होता है। उदाहरण-भूरे लोगों के नेत्र (Albinism), जन्मसिद्ध फूले, जन्मलब्ध कांचबिन्दु, नेत्रदर्पण और नेत्र मध्यपटलके जन्मजात रोग तथा कानके रोगों के हेतुसे भी कभी अक्षि-आन्दोलन उपस्थित होता है।

कोयले की खान में जहाँ अति मन्द प्रकाशमे कार्य करना पड़ता है, वहाँ पर कार्य करने वालों को यह रोग हो जाता है। उसे खनक का अक्षि-आन्दोलन (Miner's Nystagmus) कहते हैं। उसी तरह अन्य कितनेक रोगोंमें नेत्रदृष्टि कम हो गई हो, तो उसी हेतुसे नयनांदोलन हो जाता है।

कभी चश्मे का नम्बर अत्यधिक हो ऐसे रोगियों में और व्यथा जनित कांचबिन्दु से पीड़ितों को भी यह विकार हो जाता है।

उपचार—प्रायः इस प्रकार के रोगियोंके लिये कोई चिकित्सा नहीं है।

(२) गोलक के भीतर की पेशियों के रोग।

(*Diseases of Internal Ocular Muscles*)

गोलककी भीतरकी पेशियां मुख्य २ हैं—१. कनीनिका संकोचक; और २. तन्तुमय पेशी। इनके अतिरिक्त तीसरी पेशी कनीनिका प्रसारक है, जो तारामण्डलमें अवस्थित है। इन सब पेशियोंका कर्तव्य मुख्य संयोजन क्रिया (Accomodation) ही है। अतः ये पेशियां व्याधिग्रस्त होने पर संयोजन शक्तिमें अन्तर हो जाता है। इस शक्तिमें विकृति होने पर न्यूनता और अति कर्तव्यता, ये दो प्रकार होते हैं।

अ. संधानशक्तिकी न्यूनता।

(Insufficiency of Accomodation)

इस स्थितिके दो विभाग हैं—निर्बलता और स्तम्भ (Paralysis)। इनमें से स्तम्भ का वर्णन आगे पृथक् किया है। निर्बलतामें भी २ प्रकार हैं—१. संयोजन शक्तिके टिकावमें न्यूनता (Ill-sustained Accomoda-

tion); २. संधान शक्तिकी यथार्थ निर्बलता (True-insufficiency of Accomodation)।

यद्यपि ऊपर संधान शक्तिकी निर्बलताके २ प्रकार कहे हैं, किन्तु यथार्थ में एकही रोगकी ये दोनों स्थिति है—प्रारम्भिक और प्रवृद्ध।

१. संधान शक्तिके टिकावमें विकृति—प्रारम्भिक स्थितिमें रोगी कितनेक समय तक अपनी शक्तिका उपयोग कर सकता है; किन्तु थोड़े ही समयमें उस शक्तिमें निर्बलता आजाती है। प्रकरण दूसरेमें दर्शाये अनुसार संयोजन शक्तिका मुख्य उपयोग लिखने-पढ़नेके लिये होता है। जब उस शक्तिके टिकावका थोड़े ही समयमें ह्रास होता है, तब रोगीको लिखने-पढ़ने और समीपके कार्य करने में मुख्य प्रतिबन्ध होता है। रोगी जब लिखना-पढ़ना प्रारम्भ करता है, तब अक्षर अच्छी तरह साफ दीखता है; किन्तु थोड़े ही समय तक पढ़ते-पढ़ते अक्षर अस्पष्ट होने लगता है। यदि नेत्रको आराम देकर पुनः पढ़ने का प्रारम्भ करें तो पुनः थोड़े समय तक अक्षर स्पष्ट दीखता है। एवं फिर पहले के अनुसार बाधा पहुँचती है।

कारण—इस स्थितिकी उत्पत्तिके २ कारण हैं—१. देहको निर्बल बनाने वाले रोग, २. उतरती अवस्था (लगभग ४० वर्षकी आयु)। जब किसी रोग या अन्य कारणसे देह निर्बल बने तब तन्तुमय पेशी, जिसका मुख्य कार्य संयोजन उत्पन्न करने का है, यह भी देहका एक भाग होने से निर्बल बनती है। इस हेतुसे संयोजन शक्तिमें न्यूनता आती है।

उतरती अवस्थासे न्यूनता आती है। उसका विचार प्रकरण २९वें में किया जायगा। नैसर्गिक नियम अनुसार प्रत्येक व्यक्तिको ४२ वर्ष लगभग की आयुमें लिखने-पढ़नेमें चश्मेका प्रयोग करना पड़ता है। उस स्थितिमें नेत्रगत नैसर्गिक संयोजन शक्तिका ह्रास होता है। उस शक्तिका बिल्कुल लोप होनेके पहले उसकी थकावट प्रतीत होती है।

२. संधान शक्तिकी सच्ची निर्बलता (True Insufficiency of accomodation)- यह स्थिति प्राथमिक थकावटके पश्चात् होने वाली है।

लक्षण—दृष्टिकी निर्बलता, नेत्रकी थकावट, नेत्रमें दर्द होना, नेत्रदाह, लाली, विशेषतः समीप देखनेमें मन्दता, चक्कर आना सामान्य तन्द्रा और प्रकाशकी असहिष्णुता आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। ये सब लक्षण एक साथ नहीं होते। एवं प्रत्येक रोगीमें समान नहीं होते। कितनेक रोगियोंमें नजदीकके कार्यमें बाधा पहुँचनेके अतिरिक्त लक्षण नहीं होते। कोई रोगी शिर दर्द और चक्कर आदि लक्षणोंसे अति व्यथित होता है।

कारण—इस स्थितिके मुख्य २ कारण हैं—दृष्टिमणिकी बढ़ती हुई कठिनता और तन्तुमय पेशीकी निर्बलता।

दृष्टिमणिकी कठिनता आयुवृद्धिके साथ बढती जाती है। प्रायः ४० वर्ष की आयुमें कुछ प्रतीत होती है और ४२-४५ वर्षकी आयुमें स्पष्ट होती है। फिर आयुवृद्धिके साथ कठिनतामें भी वृद्धि होती जाती है।

तन्तुमय पेशीकी निर्बलता के कारण अनेक हैं। मुख्य कारण, देहके भीतर फैलने वाले कितनेक जहरी तत्व, चाहे वे किसी रोगसे हों या कोष्ठ-बद्धता और पचनक्रिया की विकृति से अन्त्रमें से आते हों, नाकमें रोग होने पर श्वास लेने में प्रतिबन्ध, मधुमेह, वातनाड़ियां और मस्तिष्ककी निर्बलता, रक्तदबाववृद्धि, अतिप्रकाश में कार्य करना, अधिमन्थ का प्रारम्भ तथा संयोजन शक्ति को स्तम्भित करने वाले औषधों का न्यून मात्रामें उपयोग।

क्रम—शारीरिक निर्बलता या किसी गम्भीर रोग जनित निर्बलता के हेतु से नेत्रमें निर्बलता आई हो तो निर्बलता दूर होने पर नेत्रकी स्थितिमें भी सुधार होजाता है। जिन कारणों से रोग हुआ हो, उन कारणोंको दूर कर सके तो नेत्रकी स्थिति सुधर सकेगी। वृद्धावस्थाके हेतुमें निर्बलता आई हो तो उसका सुधार नहीं होता; किन्तु प्रारम्भमें यदि पौष्टिक औषध या उत्तेजक औषधों से शारीरिक स्थिति को बलवान बना लिया जाय, तो नेत्रको भी लाभ पहुंच जाता है।

उपचार—ऊपर जो कारण कहे, उनमें से जिन-जिनको दूर कर सकें, उनकी योग्य चिकित्सा करनी चाहिये। देहकी निर्बलता को दूर करने के लिये स्ट्रिक्निया, ग्लिसरो फोस्फेट्स, फोस्फरस आदि औषध देवें। आयुर्वैदिक मकरध्वज, सुवर्णभस्म, मुक्ताभस्म आदि औषधियां भी अच्छा लाभ पहुँचाती हैं।

नेत्रको जो चश्मा लग सके, उसकी परीक्षा करके उपयोग करनेके लिये सूचना करें। कितनेक रोगियों को तो योग्य नम्बर के चश्मेके उपयोग से सब कठिनाई दूर होजाती हैं।

रोगी यदि चाय, सिगरेट आदि अधिक लेता हो, तो व्यसन छुड़ा देना चाहिये। कितनेक रोगियोंको रात्रिको अच्छी निद्रा नहीं आती, उनको योग्य औषध देनी चाहिये। क्योंकि, शान्त निद्रा मिल जानेपर नेत्रको विश्रान्ति मिल जाती है। कितनेक रोगियोंको १-२ सप्ताह या अधिक समय के लिये लिखना-पढना या समीप का कार्य छोड़ देने पर ही लाभ मिलता है।

आ. संयोजन शक्तिका स्तम्भ।

(Paralysis of Accomodation)

लक्षण—इस रोगके लक्षणोंका आधार कितनेक अंशमें नेत्रकी चश्मा के योग्य स्थिति पर है। यदि आंख बिल्कुल स्वस्थ हो और बिना चश्मा सर्व कार्य हो सकता हो, फिर नेत्रकी संयोजन शक्तिका स्तम्भ होजाय, तो उससे नजदीकके कार्य—लिखना, पढ़ना, सिलाई करना, सुईमें डोरा पोना, कसीदा निकालना आदि बिल्कुल नहीं हो सकता। दूरकी दृष्टि में कुछ भी बाधा नहीं आती।

यदि रोगीकी आंख दीर्घ दृष्टि वाली हो तो संयोजन शक्तिके स्तम्भ से रोगीको अधिक बाधा पहुँचती है। समीपका कार्य तो बिल्कुल नहीं होता इतना ही नहीं, दूर देखने के कार्यमें भी प्रतिबन्ध होता है।

यदि रोगीकी दृष्टि लघु हो तो संयोजन शक्तिके स्तम्भ से विशेष प्रतिबन्ध नहीं होता।

चिह्न—यदि तन्तुमय पेशीके साथ कनीनिकासंकोचक पेशी का स्तम्भ हो तो कनीनिका प्रसारित होती है। कितनेक रोगियोंमें जिसकी संयोजनशक्ति स्तम्भित हो गई हो, उनको प्रत्येक वस्तु अपेक्षाकृत छोटी भासती है।

कारण—इस रोगके दो कारण हैं—तन्तुमय पेशी का स्तम्भ या तीसरी नाड़ी की विकृति। तन्तुमय पेशी का स्तम्भ होने के कारणों में मुख्य कण्ठरोहिणी (Diphtheria), इन्फ्लुएञ्जा, जलग्रन्थिप्रदाह जनित उसके जहरी द्रव्यों का रक्तमें प्रवेश, अन्त्र की पचन शक्ति की न्यूनता के हेतुसे रक्त में जहरी द्रव्य मिल जाना, मधुमेह तथा धतूरा और उसके समान गुणधर्म वाली औषधों का विष (ये औषध जिस तरह नेत्र में डालने पर संयोजन शक्ति का स्तम्भ करती हैं, उस तरह उदरसेवन और अन्तःक्षेपण से भी वही असर पहुँचाती हैं) आदि इनके अतिरिक्त मस्तिष्ककी कितनेक व्याधि—विशेषतः उपदंश जन्य उपद्रव, इन सबमें स्तम्भ प्रायः एक नेत्र में होता है।

नेत्र पर चोट लगना, दृष्टिमणिका स्थानभ्रष्ट होना, या शस्त्र-क्रियाके परिमाणमें या अन्य रीतिसे दृष्टिमणिका अभाव होना, ये भी संयोजन-शक्ति को स्तम्भित करते हैं।

क्रम—यदि स्तम्भ किसी औषध से हुआ हो तो स्वयमेव एक सप्ताह में ठीक हो जाता है। कण्ठरोहिणी, इन्फ्लूएञ्जा आदि रोगके उपद्रव रूप

हो तो लगभग दो मास में स्वयमेव या उपचार से लाभ हो जाता है। अन्य विषद्रव्य जो रक्ताभिसरणमें मिलकर इस रोग की सप्राप्ति कराते हैं, वे निकल जाने पर स्तम्भ शमन हो जाता है। नेत्र पर धक्का लग जानेसे स्तम्भ हुआ हो तो वह लगभग १५ दिन में निवृत्त हो जाता है।

उपचार—स्थानिक और शारीरिक, दो प्रकार की चिकित्सा की जाती है। नेत्रमें पाइलोकार्पिन या इसरिनकी बूँद डालने पर कनीनिका तत्काल आकुंचित होती है और गत संयोजन शक्ति तुरन्त वापिस आ जाती है। यदि कण्ठरोहिणी या इन्फ्लूएञ्जा के परिणाम में यह स्थिति हुई हो तो पौष्टिक और वातनाड़ी उत्तेजक औषध - स्ट्रिक्निया (कुचिला सत्व) आदि अच्छा लाभ पहुँचाती हैं। स्ट्रिक्निया का उपयोग ½ ग्रेन एक मात्रा में अन्तःक्षेपण रूपसे करने पर तुरन्त गुण प्रतीत होता है। उपदंशज विक्रियामें आयोडाइड, बिस्मथ के अन्तःक्षेपण आदि उपचार से अनेक बार रोग निवृत्त हो जाता है। नेत्र पर फाराडिजेन्शन (बिजली- Faradization) का प्रयोग करने से कितनेकों को लाभ पहुँच जाता है।

इ. संधान शक्तिकी अतिकर्तव्यता।

(Excessive Accomodation)

यह स्थिति क्वचिन् ही प्रतीत होती है, यह प्रायः दोनों नेत्रोंमें होती है, कभी एक में होती है।

लक्षण—रोगी की दृष्टि जो बिल्कुल ठीक हो, वह लघु दृष्टि हो जाती है। इससे दूर देखने में प्रतिबन्ध होता है।

कारण—यह स्थिति बहुधा तन्तुमय पेशीके संकोच से होती है। वह संकोच तीसरी नाड़ीके उत्तेजनाधिक्य से या उस नाड़ी का सम्बन्ध मस्तिष्कमें जिन भागों के साथ हो, उनका उत्तेजित होने पर होता है। शारीरिक कारणों में भय, मानसिक आघात, हिस्टीरिया, नेत्र का उपयोग नजदीकके कार्योंमें अत्यधिक करना, नाकके पासके कोटरोंमें प्रदाह, अर्धावभेदक (Migraine) आदि रोग हैं। कितनेक बालकों में यह स्थिति कायम रहती है। इसमे चश्माके लिये जब इस स्थिति वाले बालकों की आँखों की परीक्षा कनीनिका प्रसारित किये बिना की जाती है, तब चश्मेके नम्बर का मिथ्या निर्णय हो जाता है।

उपचार—अति आवश्यक हो तो होमेट्रोपिन या एट्रोपिनकी बूँद डालें। मुख्य कारण को दूर करें। हिस्टीरिया जैसा रोग कारणभूत हो तो उसके लिये योग्य चिकित्सा करनी चाहिये।

(३) नेत्रोंके उपाङ्गोंकी पेशियोंके रोग।

(Diseases of Muscles of Eye-appendages)

नेत्रके उपाङ्गोंकी पेशियोंमें मुख्य दो पेशी, जो पलककी हैं, वेही रोग-ग्रस्त होती हैं। नेत्रोन्मीलनी (Levator Palpebrae Superioris) और नेत्रनिमीलनी (Orbicularis Palpebrarum), ये ही दो पेशी हैं। इनमें से पहली पलकको ऊपर उठाती है, दूसरी नीचे गिराती है अर्थात् आँख को बन्द करती है। इन पेशियोंके मुख्य रोग दो हैं—अ. अक्षिपुट निमीलन (Ptosis); और आ. अक्षिपुट निमीलनाभाव (Lagophthalmos)।

अ. पेशीवधज अक्षिपुट निमीलन

(Ptosis)

रोहे जैसे रोगमें पलक मोटे हो जाते हैं, फिर चाहिये उतने अंशमें ऊपर नहीं उठ सकते, उस स्थितिको यथार्थमें निमीलन नहीं कह सकेंगे। किन्तु वह मिथ्या निमीलन (Pseudoptosis) कहा जायगा। सच्चा पतन तो पलकको उठाने वाली पेशीका स्तम्भ होने पर ही होता है। इस पेशीका वध प्रायः ३री नाड़ीके रोगके हेतुसे होता है। कितनीक बार यह रोग जन्मसे ही होता है; किन्तु विशेषतः जन्मके पश्चात् होता है।

लक्षण और चिन्ह—यह रोग एक या दोनों नेत्रोंमें होता है, उसके अनुसार लक्षण भी एक या दोनों नेत्रोंमें उत्पन्न होते हैं। रोगी ऊपरके पलकको ऊँचा नहीं कर सकता। जब ऊँचा देखना हो, तब रोगी कपालकी पेशीको भी साथमें खींचता है; जिससे भ्रू के ऊपर सिलवट पड़ती है और चेहरा कुरूप बनता है। भ्रू ऊपर चढ़ती है और पलक वैसे ही रहता है।

कारण—इस रोगके कारणों में मुख्य—१. शीत लगने से पेशी स्तम्भित होती है या वातनाड़ीमें प्रवाह होता है; २. उपदंश; ३. आमवात; ४. मस्तिष्ककी व्याधि; ५. वृद्धावस्था (वृद्धावस्थाके हेतुसे कितनेक रोगियोंकी पेशी स्तम्भित होकर यह स्थिति उत्पन्न होती है); ६. हिस्टीरिया और ७. मांसपेशीको स्तम्भज क्लान्ति (Myasthenia gravis) हैं।

उपचार—कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये। उदर सेवनार्थ स्ट्रिक्निया जैसी औषध देवें। पलक पर बिजली लगावें। इन सब उपायोंसे लाभ न हो तो शस्त्रक्रिया करनी पड़ती है। शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण ३०वें में किया जायगा।

आ. अक्षिपुटनिमीलनाभाव ।

(Lagophthalmos)

इस स्थितिमें पलक खुला ही रहता है; नेत्र बन्द नहीं हो सकता ।

लक्षण—रोगीका नेत्र बन्द नहीं होता; रोगी सो जाने पर भी नेत्र खुला ही रहता है । जाग्रतावस्थामें रोगी जब नेत्र बन्द करनेका प्रयत्न करता है, तब गोलक ऊपर चढ़ जाता है । निद्रामें भी प्रायः गोलक ऊपर चढ़ जाता है । इससे यह लाभ होता है कि शुक्लमण्डलको हानि नहीं पहुँचती ।

कारण—यह रोग ७वीं नाड़ीके विकारसे होता है । तुङ्गात्त गलगण्ड (Exophthalmic goitre) में भी नेत्रगोलक बड़े हो जानेसे पलक बन्द नहीं हो सकते । उसी तरह नेत्रगृहके अर्बुदमें भी गोलक आगे सरक आनेसे वैसा होता है । जैसे तंग कोटके बटन बन्द न हो सकें उस तरह पलक बन्द नहीं होते । अन्य किसी कारणसे गोलक बड़ा हो या गोलक ऊपर उठ आवे, तो भी वही स्थिति होती है । पलक बन्द न होने पर मुख्य हानि यह है कि शुक्लमण्डलका जो भाग सर्वदा खुला रहता है, वह सूखने लगता है । फिर उस पर क्षत पड़ता है ।

उपचार—जिनको पेशीवध न हुआ हो, उनके नेत्रपर पट्टी बांधते रहनेसे शुक्लमण्डलमें क्षतोत्पत्तिको रोक सकते हैं । या ऊपर और नीचेके पलकको कुछ अंशमें सी लेनेसे नेत्रद्वार सँकरा हो जानेसे भी शुक्लमण्डल का रक्षण हो सकता है ।

पेशीवध हुआ हो, तो उसका कारण निश्चित करके उपचार करना चाहिये । बिजली, स्ट्रिकिनया आदिके उपयोग करें । यदि उनसे लाभ न पहुँचे तो नेत्रद्वार को सँकरा करना पड़ता है । नेत्र द्वार को सँकरा करनेकी शस्त्रक्रिया का वर्णन आगे प्रकरण ३०वें में किया जायगा ।

चौबीसवां प्रकरण ।

नेत्रगृहके रोग ।

(Diseases of Orbit)

नेत्रगृह २ हैं। प्रत्येक ७ छोटी अस्थिलों का बना है। इनमें ३ अस्थि दोनों नेत्रगृहों से सम्बन्ध वाली हैं। अतः दोनों नेत्रगृहों की ११ अस्थि होती हैं। इन नेत्रगृहों में ४ कोन, ४ पार्श्व, आगे का मुख तथा पिछले द्वार, ये भाग अवस्थित हैं। इन नेत्रगृहों में निम्नानुसार रोगों की सम्प्राप्ति होती है :—

१. गोलक का बहिर्निःसरण—Exophthalmos Proptosis.
२. गोलक शोष—Enophthalmos.
३. नेत्रगृह प्रदाह—Orbital Cellulitis.
४. टेननावरण प्रदाह—Tenonitis.
५. त्रिकोणिकामें रक्तजमाव—Thrombosis of the Cavernous Sinus.
६. नेत्रगृहास्थिका आवरण प्रदाह—Periostitis of the Orbit.
७. नेत्रगृहास्थि कोथ—Caries of the Orbital bones.
८. नेत्रगृहकी आगन्तुक व्यथा—Injuries of the Orbit.
९. नेत्रगृहमें रक्तस्राव—Haemorrhage in the Orbit.
१०. नेत्रगृहार्बुद—Tumours of the Orbit.
११. बहिर्निःसरित गोलकमें स्पन्दन—Pulsating Exophthalmos.
१२. तुंगाक्ष गलगण्ड—Exophthalmos Goitre.

१. गोलकका बहिर्निःसरण ।

(*Exophthalmos Proptosis*)

नेत्रगोलक नेत्रगृह में पूरा-पूरा रहा है। वह सरलता से भिन्न-भिन्न

चित्र नं. १६७ उभय गोलकोंका बहिर्निःसरण।
(Exophthalmic Goitre)

दिशामें फिर सके, इतनाही स्थान नेत्रगृह के पर्दा और गोलकके बीच रहा है। इस पर से विदित होता है कि, नेत्रगृह में रही हुई जगह को ग्रन्थि आदि रोक लें या नेत्र-गृह का संकोच हो जाय या गोलक बड़ा हो जाय तो वह बाहर निकल आता है। बाहर निकल आनेका कारण यही है कि, उसे अन्य दिशा में बढ़ने या सरकने के लिये मार्ग नहीं मिलता। इससे केवल आगेकी ओरही निकल आता है। किसीके एक गोलक बाहर निकलता है और किसीके दोनों गोलक। (चित्र नं. १६६-१६७ देखें)।

कारण—गोलकको आगे बढ़नेके लिये ३ कारण हैं—१. नेत्रगृहमें अवस्थित स्थान का रोध; २. नेत्रगृह संकोच; ३. गोलक वृद्धि।

१. नेत्रगृहमें स्थानावरोधके कारण—अ. नेत्रगृह प्रदाह; आ. नेत्रगृहके अर्बुद; इ. नेत्रगृह की धमनी का फूलना; ई. आगन्तुक व्यथा, इस हेतु से या अन्य किसी कारणसे नेत्रगृहमें रक्तस्राव; उ. नेत्रगृह की दीवार का फटना और उस हेतुसे समीप में रही हुई कोटरों में से वायु का भरजाना।

२. नेत्रगृह संकोच के कारण—अ. कोटरों में प्रदाह जन्य पदार्थ संगृहीत होने या ग्रन्थि होने पर नेत्रगृह पर होनेवाला दबाव; आ. शिरास्थियों के कितनेक रोग।

चित्र नं. १६६ एकगोलक का बहिर्निःसरण
(Monocular Exophthalmos)

३. गोलक वृद्धिके कारण—यह मुख्यतः छोटी दृष्टि वाले मनुष्यों में अधिक होता है। इसके अतिरिक्त गोलककी बाह्य

च्युति में भी गोलक आगे निकल आता है। किन्तु यथार्थ में उस स्थिति को सच्चा बाह्य निःसरण नहीं कह सकेंगे।

गोलकका बाह्य निःसरण एकही नेत्रमें हो या दोनों में। यदि तुंगाक्ष गलगण्डके परिणाम में हो, तो दोनों नेत्रों में होता है; करोटी के भीतर अवस्थित शिरामें रक्त जम जाने के हेतु से हो तो पहले एक नेत्रमें ही होता है। फिर दूसरी ओर की शिरा व्याधिग्रस्त होने लगे तो दूसरी आँख में भी उपस्थित होता है।

लक्षण—मुख्य लक्षण गोलक का आगे बढ़ना ही है। पलक ठीक बन्द नहीं होता जिससे आंख कुछ कुछ खुली रहती है। गोलक अधिक बढ़ने पर उसकी गति में संकोच होता है। गोलक बढ़ने से दृष्टि छोटी होती है। ऐसा क्यों होता है, यह चश्मेके प्रकरणमें समझाया जायगा। जब कितनेक समय तक नेत्र बन्द नहीं हो सकता, तब शुक्ल-मण्डल का जो भाग खुला रहता है, वह सूखने लगता है। फिर निस्तेज बन जाता है। कभी उस शुष्क प्रदेश में क्षत हो जाता है।

उपचार—गोलकके बाह्य निःसरण में जो हेतु हो, उसे दूर करनेके लिये यथा शक्य प्रयत्न करना चाहिये। ऐसा न हो सके और शुक्लमण्डल को हानि होने की संभावना हो तो बाहर के कोन में दोनों पलकों के कुछ भाग में टाँके लगाकर नेत्र द्वार को छोटा बना देवें। फिर शुक्लमण्डल खुला नहीं रहेगा।

२. गोलक का शोष।

(*Enophthalmos*)

जिस तरह गोलक बाहर निकल आता है, उस तरह कितनेक रोगों के हेतु से गोलक छोटा होकर भीतर बैठ जाता है।

कारण—मुख्य कारण निम्नानुसार हैं:—

१. रोगी का शरीर अति सूख जाना, विशूचिका में ऐसा होता है।
२. स्वतन्त्र नाड़ी (Sympathetic nerves) का वध होने पर। इस नाड़ी का अंकुश नेत्रगृहको एक पेशी पर है। उस पेशीमें चेतना होने पर वह गोलक को कुछ आगे रखने के लिये सहायता पहुँचाती है। उसका वध होने पर पेशी चेतनाहीन होती है, फिर गोलक भीतर घुस जाता है।
३. तीसरी नाड़ीका वध होने पर।
४. गोलक पर धक्का लगने पर।

५. गोलकके पीछे अवस्थित मज्जाके प्रदाहके हेतुसे उत्पन्न संकोच।
६. कभी-कभी जन्मसे ही गोलक छोटा होता है।

उपचार—बहुधा नहीं हो सकता।

३. नेत्रगृह प्रदाह।

(*Orbital Cellulitis*)

इस स्थितिमें नेत्रगृहके भीतर अवस्थिति गोलकके अतिरिक्त नरम भागोंका प्रदाह होता है।

लक्षण और चिन्ह—पलक लाल होकर अच्छी तरह सूज जाते हैं। यह लक्षण ऊपरके पलकमें अधिक होता है। गोलक पर पूयसंग्रह, नेत्रगृहकी गहराईमें वेदना, गोलक दबाने पर वेदनावृद्धि, अतिशय शिर-दर्द, गोलकका बाहर निकलना, गोलककी गतिमें न्यूनता और वेदना, ज्वर और वमन आदि। सब रोगियोंमें ये सब लक्षण उपस्थित नहीं होते; किन्तु प्रदाहके अनुरूप न्यूनाधिक होते हैं।

दृष्टि प्रारम्भमें अच्छी रहती है, किन्तु प्रदाह जन्य पदार्थोंका दबाव दर्शननाड़ी पर होता है, तो दृष्टि कम होने लगती है। यदि दबाव अधिक समय तक रहे तो दर्शननाड़ीकी अपक्रान्ति होकर दृष्टि बन्द हो जाती है। शुक्लमण्डल चेतनाहीन बन जाता है।

प्रदाह कैसा रूप धारण करता है, उस पर लक्षणोंका आधार है। यदि पूय होने लगे, तो सब लक्षण बढ़ने लगते हैं, ऐसा होने पर शल्यवैद्य अंगुली द्वारा गोलक और नेत्रगृहके अस्थिके बीच परीक्षा करेंगे, तो किसी स्थानमें कठिन भाग या पीछेसे ग्रन्थि जैसा प्रतीत होगा। पूय जैसे-जैसे बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे ग्रन्थि बड़ी होती जाती है। उस ग्रन्थिको अंगुली से दबाने पर भीतर प्रवाही होनेका भास होता है।

कारण—शीत लग जाना, व्यथा होना (घाव या बाह्य पदार्थका नेत्रगृहमें रह जाना), समीपके भागोंमें प्रदाह हो और उसका नेत्रगृह तक पहुँचना, रक्तमें अवस्थित विषमय द्रव्य, कितनेक जहरी बुखारके भीतर रक्तमें विष प्रवेश और देहमें अवस्थित पूयके परिणाममें इस रोगकी उत्पत्ति होती है। कुछ वर्षोंके पहले एक रुग्णाको नेत्रगृहप्रदाह था। उसका कारण शीघ्र विदित नहीं हो सका। वह बाई जल गई थी वह भी हाथ पर, उसमें पूय हुआ था। उसका विष रक्तमें मिलकर नेत्रगृहमें पहुँचा था और उसने वहाँ पर पूय प्रदाह उत्पन्न किया था।

परिणाम—यदि पूय न हो और प्रदाह बैठ जाय, तो थोड़े ही दिनोंमें

वेदना के अतिरिक्त अन्य कुछ भी हानिकर परिणाम नहीं आता। यदि पूयोत्पत्ति हो, तो ग्रन्थि स्वयमेव फूटती है या शस्त्रसे फोड़नी पड़ती है। प्रायः यह घाव भर जाता है और रोग शमन हो जाता है। किन्तु कभी-कभी अस्थिमें कोथ होता है, फिर घाव नहीं भरता। दीर्घ कालके पश्चात् सड़ा हुआ हड्डीका टुकड़ा निकल जाय, तब घाव भरता है। कभी प्रदाह मस्तिष्कमें पहुँच जाता है, तो मस्तिष्कावरणका प्रदाह होकर रोगीकी मृत्यु हो जाती है। यदि करोटीके भीतरकी शिरा तक प्रदाह पहुँचता है, तो भी परिणाम वही आता है। नेत्रगृहके प्रदाह के परिणाममें दर्शननाड़ीका प्रदाह हो जाता है, तब दर्शननाड़ीकी अपकान्ति होनेकी संभावना रहती है। ऐसा होने पर भी कभी दृष्टिका नाश होता है।

उपचार—इस रोगमें स्थानिक और शारीरिक, दो प्रकारसे चिकित्सा करनी चाहिये।

स्थानिक उपचारोंमें सेक, पुल्टिस, एण्टीफ्लोजिस्टिन आदि मुख्य हैं। पूय हो जाय तो उसे हो सके उतना जल्दी शस्त्रक्रिया करके मार्ग देवें। शस्त्रक्रिया में कोई महत्वका मार्ग न कट जाय, उसका पूरा सम्हाल रखें। शस्त्रक्रियाके पश्चात् पूयको निकलते रहने के लिये रबरकी अति सूक्ष्म नली या गोजकी बत्ती रखें। घावको हाइड्रोजन परओक्साइड, रसकपूर का धावन या अन्य जन्तुघ्न धावनसे धोते रहें। अस्थिमें कोथ हुआ हो, तो टुकड़ा पृथक् होने पर निकाल देना चाहिये; अन्यथा घाव नहीं भरता।

रोगी को ज्वर आदि हो, तो उसके शमनार्थ योग्य औषध का उदरसेवन करावें। नाक के कोटरों में कुछ प्रदाह हो तो उसका उपचार करना चाहिये।

शारीरिक उपचारों में सल्फाडायाझिन की टिकिया ८ से १२ तक एक दिन में बड़ी आयु वालों को दी जाती हैं। रोगके प्रारम्भ में पेनिसिलिन मिल जाय तो उसका विधिपूर्वक उपयोग करने पर शीघ्र रोग काबू में आजाता है।

४. टेनन के आवरण का प्रदाह।

(*Tenonitis*)

नेत्रगोलक पर एक आच्छादन है, उसे टेनन का आवरण कहते हैं। वह पिछली ओर अवस्थित है। उसकी शाखाएँ प्रत्येक पेशी पर लपटी हुई है। उस आवरण पर कभी-कभी प्रदाह हो जाता है, तब नेत्रगृहप्रदाह के अनुरूप ही लक्षण उपस्थित होते हैं।

लक्षण और चिह्न—पलक लाल होकर सूज जाते हैं। गोलक कुछ बाहर निकलता है। गोलक की गति में कुछ न्यूनता होती है और उसमें वेदना होती है। नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे रस संगृहीत होता है। नेत्रमें से लसदार पदार्थ बिल्कुल नहीं निकलता, इस चिह्न के अभाव और नेत्र-श्लेष्मावरण के प्रदाहसे इस रोग का निर्णय हो जाता है। रोगी को लगभग भ्रू के भाग तक शिर दर्द होता है। एक या दोनों नेत्र व्याधिग्रस्त होते हैं। दृष्टि में कुछ भी अन्तर नहीं पड़ता।

परिणाम—सर्वदा अच्छा ही आता है। रोग कुछ दिनों के बाद कम होने लगता है और शनैः-शनैः आराम हो जाता है। क्वचित् नेत्रश्लेष्मा-वरण के नीचे एक छोटा फोड़ा होकर फूटता है। दृष्टि में कभी हानि नहीं पहुँचती।

कारण—इस रोगका मुख्य कारण आमवात, इन्फ्लुएञ्जा, राजयक्ष्मा और आगन्तुक व्यथा हैं।

उपचार—नेत्र पर सेक करें। सेक के जलमें अफीम की डोडियाँ, बेलाडोना एक्ट्रेक्ट या १ औंस में २ ग्रेन की मात्रा से नागशर्करा (स्युगर लेड) डालने पर अच्छा लाभ पहुँचता है। नेत्रगोलक को चलने पर वेदना होती है। इतना ही नहीं, शोथ भी बना रहता है। इसलिये नेत्र पर पट्टी रहने देवें।

सोडासेलीसिलास, एस्पिरिन, क्विनाइन, रसकर्पूर का प्रवाही आदि प्रदाहनाशक औषध उदर सेवनार्थ देनी चाहिये। इस रोग में सल्फा-डायाझिन और पेनिसिलिन का उपयोग अत्यन्त हितकारक है।

५. त्रिकोणिका सिरासरित में रक्त जमाव।

(*Thrombosis of the Cavernous Sinus*)

करोटी के निम्न प्रदेश में दोनों ओर दो बड़ी शिरासरित अवस्थित हैं। इनमें अन्य कितनीक छोटी शिराओं के अतिरिक्त नेत्र की शिरा भी रक्त डालती रहती हैं। इन शिरा सरितों में जब किसी कारण से रक्त जम जाता है, तब नेत्रगोलक, पलक और नेत्रगृह के सब भागों में रक्त संगृहीत हो जाता है। फिर उस हेतु से नेत्र में कितनेक महत्व के लक्षण उपस्थित होते हैं। यह रोग मस्तिष्क प्रदेश का होने पर भी नेत्रगत लक्षणों के हेतुसे इसे यहाँ स्थान दिया है।

लक्षण और चिह्न—रोगी को शीत लगकर या बिना शीत कम्प बल-पूर्वक ज्वर आ जाता है। वमन होती है, रोगी का देखाव प्रबल रोग दर्शाता

है, पलक पर व आ जाता है और वह लाल व काले रंग का भासता है। निम्न पलक की अपेक्षा अर्ध्व पलक पर यह चिह्न अधिक स्पष्ट भासता है। नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रससंग्रह होनेसे वह उभड़ आता है। गोलक बाहर निकला हुआ भासता है। कनीनिका पहले आकुंचित होती है; किन्तु फिर प्रसारित हो जाती है। नेत्रगोलक को बिल्कुल नहीं चला सकते। कारण, नेत्रसे सम्बन्ध वाली वातनाड़ियाँ इस शिरा सरित्के पाससे निकलती हैं, जिससे उन पर अच्छी तरह दबाव आता है।

नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर दर्शननाड़ीका सिरा उभड़ा हुआ और प्रदाहग्रस्त प्रतीत होता है। कभी-कभी यह सिरा रोगका चिह्न कुछ भी नहीं दर्शाता। उपर्युक्त लक्षण और चिह्न पहले एकही ओर होते हैं। फिर २-३ दिनमें दूसरी ओर उपस्थित होते हैं। क्योंकि, दूसरी ओरकी शिरा-सरित्में भी रक्त जमावका प्रारम्भ हो जाता है।

परिणाम—यह रोग अति भयंकर है। बहुधा रोगीकी मृत्यु हो जाती है। बहुत कम रोगी बचते हैं।

कारण—प्रायः समीपके भागोंमें प्रदाह होने पर वहाँसे उसके विष या कीटाणुका शिरा द्वारा फैलने पर इस रोगकी उत्पत्ति होती है। इस तरह विष फैलनेके मुख्य स्थानिक प्रदाहोंमें नेत्रगृह प्रदाह, नासाप्रदाह, नासाकोटर प्रदाह, मुखमण्डलका विसर्प, कपोल, मुख, नाक और कंठका दाह और जतुकास्थि (Sphenoid) प्रदाह है। कभी कर्णपाकके परिणाम में भी इस रोगकी संप्राप्ति हो जाती है।

उपचार—इस रोगमें उपचार बहुत कम सफल होता है। मुख्य कारणको दूर करना चाहिये। ज्वर आदि लक्षणोंके शमनार्थ योग्य औषध प्रदान करें। सोडासल्फो कार्बोलेट आदि औषधियाँ व्यवहृत होती हैं।

यदि प्रारम्भमें पेनिसिलिनका उपयोग किया जाय, तो कितनेक रोगी बच जाते हैं, ऐसा अमेरिकन नेत्रवैद्योंका कथन है। पेनीसिलिनके अभावमें सल्फाडायाझिन या सोडियम सल्फाडायाझिनका शिरामें अन्तः क्षेपण करने पर रोगीके बच जानेकी सम्भावना है।

६. नेत्रगृहास्थिका आवरणप्रदाह।

(*Periostitis of the Orbit*)

लक्षण और चिन्ह—इस रोगके मुख्य लक्षण और चिह्न नेत्रगृहप्रदाहके समान होते हैं। केवल अन्तर इतना ही है कि, इस अस्थि धरा कलाके प्रदाहमें अक्षिपुट पर शोथ अधिक नहीं होता एवं इस रोगमें नेत्रगृह द्वारके किनारे

पर दबाने पर रोगी को अधिक वेदना होती है; यह चिन्ह नेत्रगृहप्रदाह में नहीं भासता। जब पूयोत्पत्ति होती है; तब विद्रधि के सब लक्षण उपस्थित होते हैं। कितनेक दिनों के पश्चात् विद्रधि फूटता है, किन्तु विशेषतः नीचे अस्थि सड़ी हुई होती है। कभी-कभी यह अस्थि गल जाती है और उस हेतुसे समीप के कोटरों में मार्ग हो जाता है।

कितनेक समय उपदंशज विषप्रकोप से नेत्रगृह की अस्थि में उपदंशज ग्रन्थि हो जाती है। यह दीर्घकाल के पश्चात् फूटती है। फूटने पर या उसके पहले लगभग सब लक्षण नेत्रगृहास्थि के आवरणप्रदाह के समान प्रकाशित होते हैं। केवल एक चिन्ह विशेष स्पष्ट होता है। वह यह है कि जिस भाग में ग्रन्थि हो उस भाग की ओर से नेत्रगोलक दूसरी ओर खिसकने लगता है तथा ग्रन्थि की ओर फिराने में अति कठिनता और वेदना होती है इस प्रकार में नेत्रगृह का किनारा भी मोटा हो जाता है।

चिरकारी प्रकार—कितनेक रोगियों में आशुकारी प्रदाह नहीं होता, चिरकारी प्रदाह उपस्थित होता है। रोगी के नेत्रगृह का किनारा मोटा भासता है। भ्रू प्रदेश में प्रायः अति वेदना होती है। यह वेदना रात्रि में बढ़ती है। गोलक बाहर नहीं आता तथा नेत्रगृहप्रदाह के अन्य लक्षणों का प्रायः अभाव होता है।

कारण—धक्का लगना, घाव होना, मूढ़मार, उपदंश और आमवात, ये इस रोग के मुख्य हेतु हैं। कभी नासा कोटरों का प्रदाह इस प्रदाह का कारण हो जाता है।

परिणाम—यह प्रदाह बाहर के भाग में होता है, तो पूय निकल जाने पर घाव भर जाता है। यदि अस्थि सड़ी न हो, तो अधिक हानि नहीं पहुँचती। हड्डी सड़ी हो तो रोग अधिक समय चलता है और कभी-कभी उससे अस्थिक्षय होकर रोगी की मृत्यु होती है। यदि प्रदाह गम्भीर प्रदेश में हो, तो गोलक पर दबाव आने पर गोलक आगे बढ़ जाता है। दर्शननाड़ी पर दबाव आने पर या उसमें प्रदाह होने पर अन्धमें उसकी अपक्रान्ति होकर दृष्टि बन्द हो जाती है। मांसपेशियों और वातनाड़ियों पर दबाव आ जाय, तो पेशियों का वध होता है, या उससे भी अधिक हानिकर परिणाम यह आता है कि, प्रदाह नेत्रगृह में से मस्तिष्क के आवरण तक पहुँच जाता है। फिर रोगी की मृत्यु हो जाती है।

उपचार—प्रारम्भ में सेक करें। उपदंश या आमवात हो तो उस रोग के अनुरूप उदर सेवनार्थ औषध देवें। पूय प्रतीत हो तो शस्त्र लगाकर पूय को

निकलने का रास्ता कर दें। अस्थि सड़ी हो तो योग्य शस्त्रोपचार करना चाहिये।

७. नेत्रगृहास्थि क्वथ।

(*Caries of the Orbital Bones*)

लक्षण और चिन्ह—नेत्रगृह की अस्थि सड़ने पर लक्षण वेही उपस्थित होते हैं, जो नेत्रगृहास्थि के आवरण प्रहाद में दर्शाये हैं। विद्रधि फूटने पर घाव नहीं भरता। इस स्थित को आयुर्वेद में नाड़ीव्रत कहते हैं। ऐसे घावोंमें पतली शलाका डालने पर नीचे अस्थि खुली हुई भासती है। घाव में से दुर्गन्धमय पूय निकलता है। किसी भी चिकित्सा से घाव नहीं भरता। रोग दीर्घ काल पर्यन्त रह जाय, तो ज्वर आने लगता है। फिर क्षय के चिन्ह प्रकाशित होते हैं।

कारण— क्षय, उपदंश, आगन्तुक व्यथा, ये ३ कारण मुख्य हैं।

उपचार—पूयोत्पत्ति होने पर तुरन्त शस्त्र चिकित्सा करके पूय को निकालने का मार्ग देवें। घाव को अति सम्हालपूर्वक स्वच्छ रखें। घाव भर जाय तो अच्छा, अन्यथा सड़े हुये टुकड़े को निकाल देने का प्रबन्ध करें। यदि सड़ा भाग अति गहराई तक हो तो नेत्रगृह के बाहर की दीवार को तोड़कर अस्थि के टुकड़े को निकालना पड़ता है।

८. नेत्रगृह की आगन्तुक व्यथा

(*Injuries of the Orbit*)

नेत्रगृह के मूढ़मार से पलक का शोथ हो जाता है, यह प्रत्येक नेत्रवैद्य से परिचित ही है। कभी-कभी नेत्रगृह के किनारे पर दृढ़ मूढ़मार लगने से दृष्टि बन्द हो जाती है। इस तरह दृष्टि बन्द हो जाने का कारण कभी गोलक या दर्शननाड़ी को धक्का लगना भी हो सकता है, अथवा मूढ़मार के हेतु से दर्शननाड़ी जिसमें से निकलती है; उस नेत्र गृह के भीतर के द्वार की अस्थि टूटने पर भी दृष्टि बन्द हो सकती है।

नेत्र गृह के घाव—बिलकुल बाहर के किनारे से भीतर के द्वार तक हो सकते हैं। बाहर की चोटसे कभी-कभी भ्रू के नीचेसे निकलती हुई वातनाड़ी कट जाती है। फिर दृष्टि बन्द हो जाती है। ऐसा क्वचित् ही होता है, किन्तु होने पर भूतकाल में दृष्टि बन्द का कारण गोलक पर लगा हुआ धक्का ही माना जाता था। वर्तमान में निर्णित हुआ है कि इस

तरह नष्ट हुई दृष्टि का कारण धक्का के अतिरिक्त दर्शननाड़ी को पहुँची हुई हानि या प्रदाह भी हो सकता है।

दर्शननाड़ी को हानि नेत्रगृहके भीतर की अस्थिके टूटने से भी हो सकती है। यदि घाव ऊपर के पलक के लगभग गहरा चला जाय तो नेत्रगृह को हानि पहुँचती है। ऐसे घाव नेत्रगृह में होने पर कभी दर्शननाड़ी या मांसपेशी की वातनाड़ी कट जाती है। एवं कभी नेत्रगृह के ऊपर की दीवार की अस्थि का भेदन होकर मस्तिष्क को चोट पहुँच जाती है। फिर इसी हेतुसे मृत्यु होने के उदाहरण भी मिले हैं।

कभी-कभी नेत्रगृह में हुए घाव के अतिरिक्त उस घाव के मार्ग से बाह्य पदार्थ भीतर प्रवेश कर जाता है। बाह्य पदार्थ यदि तपाया हुआ लोहा या शीशा जैसी धातु हो तो वह कुछ भी हानि या वेदना किये बिना दीर्घकाल पर्यन्त नेत्रमें रह सकती है। यदि बाह्य पदार्थ अशुद्ध हो, तो नेत्रगृह में गम्भीर प्रदाह उपस्थित होता है, यह मुख्य हानि है। नेत्रगृह के घाव में प्रदाह होना, यह अति भयंकर आपत्तिकर है। दूसरी हानि रक्तस्राव है, घाव या चोट के हेतु से नेत्रगृह की धमनी टूट जाय तो उसमें न्यूनाधिक रक्तस्राव होता है, इस स्राव से गोलक और दर्शननाड़ी पर दबाव आता है। फिर उसी हेतुसे गोलक बाहर निकल आता है और दर्शन-नाड़ी की अपक्रान्ति होती है।

नेत्रगृह पर चोट लगने से कभी-कभी अस्थि टूट जाती हैं। अस्थि टूटी हो तो प्रारम्भ में कुछ दिनों तक विशेष लक्ष्य आकर्षित हो, ऐसे लक्षण प्रकाशित नहीं होते। फिर दृष्टि को हानि पहुँचना प्रारम्भ होता है, तब नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर दर्शननाड़ीके सिरे की अपक्रान्ति दृष्टिगोचर होती है। अस्थि भंग होने पर नासा कोटरों में से वायु नेत्रगृह में प्रवेश करती है। उससे पलक और नेत्रगृह में शोथ आता है। बलपूर्वक श्वास लेने या खाँसी चलने पर इस शोथमें वेदना अधिक होती है। दबाने पर वेदना कम होती है। नासिका से श्वास लेने में भी शोथ पर वही असर होता है।

उपचार—घाव में बाह्य पदार्थ का प्रवेश हुआ है या नहीं, इसकी पूरी जाँच करनी चाहिये। बाह्य पदार्थ होने पर होसके उतना जल्दी निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। ऐसे समय पर घाव को चौड़ा करना पड़े, तो वैसा करने में संकोच नहीं करना चाहिये। फिर रसकर्पूर के धावन से घाव को साफ कर ऊपर पट्टी बाँधें, नेत्रगृह में वायु प्रवेश हुई हो तो

पट्टी बाँध देनी चाहिये। एवं छींकना, खाँसना आदि क्रियाएँ हो सके उतने अंश में बन्द रखनी चाहियें।

९. नेत्रगृहमें रक्तस्राव।

(*Haemorrhage in the Orbit*)

नेत्रगृह पर चोट लगने या शस्त्र लगने पर रक्तस्राव होता है, आगन्तुक व्यथाके अतिरिक्त कारणों से भी रक्तस्राव होता है। इसका वर्णन अन्यत्र नहीं हुआ है। अतः यहाँ संक्षेप में वर्णन करते हैं।

अन्य कारणोंमें मुख्य ५ हैं—१. वृद्धावस्थाके हेतुसे धमनियों की दीवारकी विकृति; २. तीव्र कास ३. रक्तका पतलापन; ४. शीतला; ५. तुंगाक्ष गलगण्ड।

लक्षण—कुछ रक्त नेत्रश्लेष्माबरणके नीचे आजाता है। इस हेतुसे गोलक या अन्य भाग काला-लाल रंगका बन जाता है। एवं ऊपरके पलक पर शोथ आकर वह भाग भी लाल-काला बन जाता है।

उपचार—बर्फ रखें। शीशा शर्करा (ग्लुगरलेड) के प्रवाही को शीतल कर उसके फोहे रखने पर अच्छा लाभ पहुंचता है। रोगीको बिछौने पर आराम कराना चाहिये।

१०. नेत्रग्रहके अर्बुद।

(*Tumours of the Orbit*)

जिस तरह देहके अन्य भागों में अर्बुद उत्पन्न होते हैं, उस तरह नेत्रगृहमें भी विविध जातिके अर्बुद उत्पन्न होते हैं। इन अर्बुदों में रसार्बुद (Cyst), मांसार्बुद (Sarcoma), कर्कस्फोट (Carcinoma), अस्थिमय अर्बुद (Exostosis), रक्तार्बुद (Angioma) और तन्तुमय अर्बुद (Fibroma) आदि मुख्य हैं।

लक्षण और चिह्न— अर्बुद या ग्रन्थियों के लक्षणों का आधार मुख्यतः ग्रन्थि के स्थान पर है। यदि अर्बुद नेत्रगृहके आगेके हिस्से में हो तो पिछली ओरकी अपेक्षा भिन्न लक्षण प्रकाशित होते हैं। इन लक्षण-चिह्नों में मुख्य निम्नानुसार हैं:—

१. गोलक का बहिर्निःसरण या पार्श्विक च्युति—यह चिह्न अन्य चिह्नों की अपेक्षा पहले प्रकाशित होता है। बहुधा अर्बुद होनेका संशय इस चिह्न परसे होता है किन्तु जब ग्रन्थि गहराई में हो तब इस चिह्नके प्रकाशित होनेके पहले दृष्टिमें अन्तराय, वेदना और गोलककी गतिमें न्यूनता, ये लक्षण पहले उपस्थित हो ते।

यदि ग्रन्थि आगेके हिस्सेमें हो तो गोलक को आगे या एक ओर सरका देता है। ग्रन्थि प्रायः नेत्रगृहके किसी बाजू में निकलती है, जिस से वह गोलकको सामने की ओर या आगे हटा देती है। फिर गोलक सीधा नहीं रहता, टेढ़ा होजाता है। इस चिह्नको अच्छी तरह लक्ष्यमें रखना चाहिये। कारण, अन्य जिन कारणोंसे गोलक बाहर निकलता है (वे कारण—नेत्रगृहप्रदाह, तुंगाक्ष गलगण्ड और मांसपेशियोंका वध हैं), उनमें गोलक केवल बाहर ही आता है, एक ओर नहीं सरकता। यह चिह्न रोग विनिर्णयमें अति महत्व का है। इसमें एक अपवाद है कि, नेत्रगृह के पिछले द्वारके पास जो ग्रन्थि उत्पन्न होती है, वह प्रारम्भ में एक ओर न सरकती हुई आगे ही ढकेलती है। इन ग्रन्थियों में दर्शननाड़ीकी ग्रन्थियोंका भी अन्तर्भाव होता है।

नेत्रगृहार्बुदों में गोलक शनैः-शनैः बाहर निकलता जाता है और अन्य कारण होने पर गोलक तत्काल या जल्दी बाहर बढ़ जाता है, जिस से वह क्रिया भी निदानमें सहायक होती है। इसके अतिरिक्त अर्बुद अति क्वचित् ही दोनों नेत्रोंमें होता है। विशेषतः एकही ओर होनेसे उस बात को भी रोग विनिर्णयके समय लक्ष्यमें रखनी चाहिये।

२. *स्पर्श परीक्षा*—नेत्रगृहमें अंगुलीसे योग्य परीक्षा करने पर किसी स्थानमें ग्रन्थि या कठिन उभाड़ प्रतीत होगा। ग्रन्थि की जातिके अनुरूप कठिनता न्यूनाधिक होती है। अस्थिमय ग्रन्थिमें कठिनता अधिक और केशिकाओं के समूहमय ग्रन्थिमें कम भासती है। यदि ग्रन्थि अतिशय पिछली ओर होगी, तो यह परीक्षा कठिन होगी। इस स्पर्श परीक्षासे ग्रन्थि के अस्तित्वके अतिरिक्त ग्रन्थिके कद, मृदुता-कठिनता स्पन्दन या तरंग और समीपके भागोंसे संलग्न है या नहीं आदि स्थिति का भी बोध हो सकेगा।

३. *दृष्टि*—इसका आधार ग्रन्थिके स्थान पर रहा है। यदि ग्रन्थि पिछली ओर हो और दर्शननाड़ी पर दबाव करती हो, तो प्रारम्भसे ही दृष्टि में न्यूनता उपस्थित होगी। ग्रन्थि आगेकी ओर हो तो प्रारम्भिकावस्थामें दृष्टिमें विशेष अन्तराय नहीं आता। इसके अतिरिक्त यह भी लक्ष्यमें रखना चाहिये कि जो ग्रन्थि जल्दी बढ़ती है, उससे दृष्टिको शीघ्र और अधिक हानि पहुँचती है। किन्तु जो ग्रन्थि अति शनैः-शनैः बढ़ती है, उससे दृष्टिको दीर्घकाल पर्यन्त हानि नहीं पहुँचती। इतना ही नहीं हानि भी बहुत कम होती है। इस नियममें दर्शननाड़ी की ग्रन्थि और उससे अति

समीपके स्थान की ग्रन्थि अपवाद रूप हैं। उस जातिकी और उस स्थानमें रही हुई ग्रन्थियां दृष्टिको प्रारम्भसे ही अधिक हानि पहुँचाती हैं।

४. *द्विदर्शन*—गोलक एक ओर खिसका हो तो रोगी को प्रत्येक वस्तु एकके बदले में दो प्रतीत होंगी। कितनेक समय के पश्चात् यह लक्षण दूर हो जाता है।

५. *वेदना*—इस लक्षण का आधार ग्रन्थिके बढ़नेके वेग पर अवलम्बित है। ग्रन्थि शीघ्र बढ़ती हो तो रोगीको पहलेसे ही पीड़ा होती है, शनैः-शनैः बढ़े तो पीड़ा अति कम या कथनमात्रकी होती है। एक रोगी के नेत्रमें अस्थिमय ग्रन्थि लगभग चार वर्षसे बढ़ रही थी। दो वर्ष हो जाने पर रोगी मेरे पास आया था। तब क्ष किरण द्वारा परीक्षा करके निर्णित किया था कि नेत्रगृहके भीतर (नाककी ओर) की दीवारमें से अस्थिमय ग्रन्थि निकल रही है। इस बात को दो वर्ष होजाने पर फिर रोगी को देखा, तो रोगी को किसी भी जातिकी वेदना नहीं थी। उतना ही नहीं, दृष्टिमें भी अधिक न्यूनता नहीं आई थी। केवल नेत्रगोलक बाहरकी ओर सरकता जाता था; इसके अतिरिक्त किसी भी प्रकारकी बाधा नहीं थी।

६. *गोलक की गतिमें न्यूनता*—यह चिह्न ५ कारणों से होता है। १. जिस ओर ग्रन्थि हो उस ओर स्थल संकोचके हेतुसे गोलक नहीं फिर सकता। २. गोलक आगे बढ़ने पर पेशी खिंचती है। ३. कभी ग्रन्थि पेशी में फँस जाती है। ४. ग्रन्थिके दबावसे पेशीका शोषण होजाता है। ५. ग्रन्थि का दबाव वातनाड़ी पर होने पर पेशीका स्तम्भ हो जाता है। यदि अन्य सब लक्षणों पर से ग्रन्थिका निर्णय हो जाय, फिर भी गोलककी गतिमें न्यूनता न हो तो ग्रन्थि पिछली ओर अवस्थित है, ऐसा माना जाता है।

परिणाम—नेत्रगृहमें अर्बुद उपस्थित होने पर नेत्रका भविष्य जल्दी या देरसे खराब होता ही है। अर्बुद दुष्ट जातिका—मांसार्बुद या कर्कस्फोट हो तो वेगपूर्वक बढ़ता आता है और थोड़ेही समय में दृष्टि को नष्ट कर डालता है। इतनाही नहीं, बल्कि नेत्रगृहमें से गोलक पर आता है और कुछ समय में गोलकको भी खा जाता है। फिर रक्ताभिसरण क्रिया द्वारा देहके अन्य भाग—यकृत, फुफ्फुस आदिमें प्रवेश करके जीवन का भी नाश कर देता है।

सादी ग्रन्थि या निर्दोष ग्रन्थि—तन्तुमय, कैशिकामय, अस्थिमय, रसमय, आदि दृष्टि को शनैः-शनैः हानि पहुँचाती है। कितनीक बार ग्रन्थियाँ स्वयं दृष्टिका नाश नहीं करतीं; किन्तु गोलक जब ग्रन्थिवृद्धिके

हेतु से बाहर निकल आता है, तब पलक गोलक पर बन्द नहीं होता और शुक्लमण्डलका कुछ भाग खुला रहता है। वह खुला रहने वाला भाग पकता है और गोलक को नष्ट करता है।

अस्थिमय ग्रन्थि अनेक वर्षों तक नेत्र या दृष्टि अधिक हानि नहीं पहुँचाती।

रोगविनिर्णय—उक्त लक्षणों पर से निदान सरल से हो सकता है। ग्रन्थि अगली ओर होने से रोगनिर्णय में कठिनता नहीं होती; किन्तु पिछली ओर होने पर प्रारम्भ में कल्पना की जाती है। यदि क्ष किरण की सहायता से परीक्षा की जाय, तो अस्थिमय ग्रन्थि का निर्णय तुरन्त हो जाता है। एवं अन्य जातियों के अर्बुदों में भी सहायता मिल जाती है। उक्त लक्षण-चिह्नों पर से ग्रन्थिके अस्तित्व का बोध तो हो जाता है; किन्तु सर्व समय ग्रन्थि की जाति का निर्णय करना, यह अति कठिन होता है, कभी-कभी तो बिल्कुल अशक्य हो जाता है।

ग्रन्थियों के ३ प्रकार का यहाँ वर्णन करते हैं—अ. रसमय; आ. दुष्ट; और इ. अस्थिमय।

अ. रसमय ग्रन्थियाँ

(Cysts)

इस जाति के भीतर कितनीक उपजाति हैं १. त्वचामय; २. मस्तिष्कस्थ; ३. केवल रसमय, ये तीनों जाति जन्म से ही होती हैं। इनके अतिरिक्त बड़ी आयुमें कृमिजन्य ग्रन्थि (Hydatid Cysticercosis) भी हो जाती है।

१. त्वचामय रसग्रन्थि (Dermoid cyst)—इस जाति की ग्रन्थियाँ जन्म से ही होती हैं, तथापि युवावस्था पर्यन्त शान्त पड़ी रहती हैं, फिर बढ़ने लगती हैं। बढ़ने लगें तब लक्षण उपस्थित होते हैं। अंगुली से परीक्षा करने पर ये ग्रन्थियाँ गोल, चिकनी और कुछ कठिन भासती हैं। शनैः-शनैः बढ़ती हैं और अन्त में गोलक और नेत्रगृह के किनारे के बीचसे बाहर फूटती हैं। इन बाहर निकली हुई ग्रन्थियों को दबाने पर गाँठ भीतर बैठ जाती है। किन्तु गोलक अधिक बाहर आया हुआ प्रतीत होता है। इन ग्रन्थियों में प्रवाही का बोध होता है। प्रायः वेदना नहीं होती। इन ग्रन्थियों में गाढ़ा प्रवाही, त्वचा, बाल और अस्थि द्रव्य आदि होते हैं। अनेक बार अस्थि पर दबाव डालकर मस्तिष्क की ओर या नाक के कोटरों की ओर बढ़ती हैं।

२.मस्तिष्क कोषवृद्धि (Hernia Cerebri)—इस जाति की ग्रन्थि भी जन्म से होती है। नेत्रगृह अस्थियों से बना है। ये अस्थियाँ जहाँ मिलती हैं, वहाँ पर एक प्रकार की संधि बनती है। कभी यह संधि अपूर्ण रह जाती है, जिससे उस मार्ग से मस्तिष्कावरण और मस्तिष्क द्रव्य बाहर निकलकर नेत्रगृहमें प्रवेश करते रहते हैं। फिर वह ग्रन्थि सदृश भासता है। उसे दबाने पर कोटि भीतर घुस जाती है। पुनः कुछ समयमें बाहर आ जाती है। कितनीक बार इस ग्रन्थिमें तरंग प्रतीत होते हैं।

३. रक्तजलमय रसग्रन्थियाँ (Serous Cysts)–कभी-कभी इन ग्रन्थियों में केवल पतला रक्तवारि भर जाता है। इनके अतिरिक्त कभी चर्बी, तैल और अन्य द्रव्यमय ग्रन्थियाँ भी बन जाती हैं।

४. कृमिजन्म रसग्रन्थि (Parastic cysts)—इस प्रकार की ग्रन्थियाँ कितनीक जातिके अण्डेमें से उत्पन्न होती हैं। ये कृमि अन्नजल के साथ आमाशयमें जाकर वहाँ से रक्त में प्रवेश करते हैं। वहाँसे देहके भिन्न-भिन्न भागों में रसार्बुद निर्माण करते हैं। कभी-कभी नेत्रगृह भी इन ग्रन्थियों का अड्डा बन जाता है।

उपचार—इन रसार्बुदों में से मस्तिष्क कोषवृद्धि के लिये कोई भी उपचार सफल नहीं होता। शस्त्रोपचार तो बिलकुल नहीं किया जाता। कारण, ग्रन्थि (कोषवृद्धि) को यदि तोड़ा जाय तो मस्तिष्कमें शोथ आकर रोगीकी मृत्यु होजाती है। इनके अतिरिक्त रसमय ग्रन्थियों में छेदकर, हो सके तो उनको बिलकुल निकाल डालनी चाहिये। वैसा न हो सके तो जितना भाग निकल सके उतने को निकाल डालें। घाव भर जाय, तब तक अच्छी तरह धोते रहें। ग्रन्थि निकालनेके लिए कितनीक बार नेत्रगृह की दीवारको तोड़ना पड़ता है। इसके लिये क्रोनलेन की शस्त्रक्रिया की जाती है। इसका वर्णन नेत्रनाड़ी के अर्बुद की चिकित्सा में किया गया है।

आ. दुष्ट अर्बुद।

(Malignant Tumours)

नेत्रगृहके दुष्ट अर्बुदों में मांसार्बुद (Sarcoma), कर्कस्फोट (Carcenoma), ये मुख्य हैं। इनको काट देनेपर भी ये बढ़ते हैं। एवं देहके अन्य भागोंमें भी उत्पन्न होते हैं। ऐसेही रख देनेसे अन्तमें रोगी की मृत्यु होजाती है। ये ग्रन्थियाँ नेत्रगृह के भीतरके भागमें अस्थि,

मांसपेशी या कैशिकाओं से उत्पन्न होती हैं। शनैः-शनैः अस्थि और गोलकको नष्ट करती हैं। अन्तमें फुफ्फुस या यकृत्में प्रवेश करके रोगी को मार डालती हैं।

कर्कस्फोट प्रायः अश्रुजनक पिण्डमें निर्माण होता। फिर अन्य भागोंमें बढ़ता है।

उपचार—इन ग्रन्थियों को होसके उतना जल्दी मूलसह निकाल देना चाहिये। ऐसा करनेमें नेत्रगोलक को निकाल देना पड़े, तो भी संकोच नहीं करना चाहिये; अन्यथा ये ग्रन्थियां गोलकका नाश करके जीवनको भी समाप्त कराती हैं। रोग अधिक बढ़ा हो तो रेडियम या क्ष किरणका उपयोग करना चाहिये।

इ. अस्थिमय ग्रन्थि।

(Cartilaginous Tumours)

इसका प्रारम्भ प्रायः २५-३० वर्षकी आयुमें होता है। वे ग्रन्थियां अति शनैः-शनैः बढ़ती हैं। कभी-कभी छोटी आयुमें हुई ग्रन्थि वृद्धावस्था-पर्यन्त अधिक हानि पहुँचाये बिना बढ़ती रहती है। यदि इससे दर्शन नाड़ीपर दबाव आजाय, तो ही दृष्टि को हानि पहुँचती है। क्ष किरणसे इसका निर्णय अति सरलतापूर्वक और जल्दी होजाता है।

उपचार,—यदि इस जातिका अर्बुद नेत्रगृहकी ऊर्ध्व दीवारके साथ सम्बन्धवाला हो, तो उसका सम्बन्ध मस्तिष्कके साथ होने की सम्भावना है। अतः उसे निकाल देना उचित नहीं माना जायगा। अन्य स्थानमें होने पर शस्त्रोपचारसे निकाल देना यही उत्तम मार्ग है। शस्त्रोपचारमें नेत्रगृह की बाह्य दीवारको खोलना पड़े, तो संकोच नहीं करना चाहिये।

११—बहिर्निःसरित गोलकमें स्पन्दन।

(Pulsating Exophthalmos)

कितनेक रोगियोंमें नेत्रगोलक बाहर निकल आने पर उसमें स्पन्दन होता है। यह स्थिति प्रायः एक आँख में होती है; किन्तु कभी-कभी दोनों नेत्रोंमें भी होती है।

चिह्न :—

१. नेत्रगोलक बाहर आया हुआ भासता है।

२. श्रवणनलिका नेत्रगृह पर रखने पर भीतर से विशेष प्रकार की आवाज सुननेमें आती है। यह आवाज, छोटी खिड़कीमें से वायु

वेगपूर्वक निकले, उसके समान होती है। यह आवाज हृदय के प्रथम स्पन्दन का अनुसरण करती है। नेत्रगृह के अतिरिक्त समीप के करोटि प्रदेशमें नलिका रखने पर भी आवाज सुनी जाती है।

३. गोलकमें स्पन्दन या कम्प भासता है। कम्प होने पर वह भी हृदयमें संकोच का अनुसरण करता है।

४. पलककी शिराएँ रक्तपूर्ण भासती हैं।

५. कण्ठस्थ धमनी को दबाने पर कम्प बन्द हो जाता है।

६. कभी-कभी नेत्र की एक या अधिक पेशियों का बध हो जाता है।

७. नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर नेत्रदर्पणगत शिराएँ रक्तपूर्ण प्रतीत होती हैं। कचित् दर्शननाड़ीका सिरा भी सूज जाता है।

उक्त सब चिह्न प्रत्येक रोगी में नहीं होते। किसी-किसी में कोई-कोई चिह्न प्रकाशित नहीं होते।

कारण—करोटिके निम्न भागमें अवस्थित धमनी और शिराका परस्पर मिलकर स्फीत होना, यह इस स्थितिका मुख्य कारण है। इसके अतिरिक्त मस्तिकको अन्तर्मातृका शिरा फूली हो या नेत्रकी धमनी फूली हो या नेत्रगृह में रक्तप्रधान दुष्टग्रन्थि हो, तो भी इस स्थितिकी संप्राप्ति हो जाती है।

परिणाम—दर्शनानाड़ीमें शोथ हो जाय या उस पर दबाव आजाय तोही दृष्टिको बाधा पहुँचती है। अन्यथा वर्षों पर्यन्त यह स्थिति बनी रहती है। कभी-कभी भीतर फूली हुई स्थली टूटने पर रक्तस्राव होता है और उसके लिये अकस्मात् मृत्यु हो जाती है।

उपचार—कण्ठकी शिरा (Jugular vein) को बाँधने से लाभ होता है। कभी कोई भी उपचार न करने पर भी रोगनिरोधक शक्ति ही इस रोगको दूर कर देती है।

१२. तुंगाक्ष गलगण्ड।

(*Exophthalmic Goitre—Graves' Disease—Basedow's disease*)

यह रोग पुरुषोंकी अपेक्षा स्त्रियों को अधिक (लगभग १० स्त्री और १ पुरुष) होता है। इसकी संप्राप्ति प्रायः युवावस्था में होती है। यह रोग कितनेक कुटुम्बोंमें वंश परम्परा से उतरता है।

चिह्नः—

१. नेत्रगोलक दोनों नेत्रों में बढ़ा हुआ भासता है।
२. कण्ठके बीच में रही हुई अस्थिके नीचे अवस्थित प्रैवेयक ग्रन्थि (Thyroid gland) बढ़कर एक ग्रन्थि सदृश भासती है।
३. हृत्स्पन्दनवृद्धि (Tachy Cardia) होती है। किसी रोगी में एक मिनट में लगभग २०० तक हो जाते हैं। सामान्यतः १०० से १६० तक।

उक्त तीनों चिह्न मुख्य हैं। इनके अतिरिक्त शारीरिक क्षीणता, प्रस्वेद अधिक आना, कभी गम्भीर अतिसार हो जाना, मांसपेशियों की निर्बलता देह का वजन कम हो जाना, प्रस्वेद अधिक निकलने के हेतु से तृषा लगना, क्षुधा अच्छी लगना, कभी क्षुधा अत्यधिक लगना और किसी-किसी को वमन होना आदि लक्षण प्रकाशित होते हैं। कण्ठ में उत्पन्न ग्रन्थि में स्पन्दन और कम्प भासते हैं। स्त्रियों में मासिक धर्म की अनियमितता आजाती है। कचित् रोगी पुष्ट भासते हैं। इनके अतिरिक्त नेत्र में निम्न विशेष चिह्न उपस्थित होते हैं:—

१. *वान ग्राफे का चिह्न* (Von Grafe's sign)—मनुष्य नीचे देखता है, तब गोलक नीचे आता है। उसके साथ ऊपर का अक्षिपुट भी नीचा झुकता है। इससे स्वस्थ मनुष्य में शुक्ल-मण्डल का ऊपर का किनारा स्पष्ट दीखता है। इसके अतिरिक्त नेत्र का भाग नहीं दीखता। किन्तु इस रोगसे पीड़ित जब नीचा देखता है, तब उसके अनुरूप ऊपर का पलक नीचे नहीं झुकता, जिससे गोलक के ऊपर का सफेद भाग प्रतीत हो जाता है। यह चिह्न अन्य चिह्नों की अपेक्षा पहला दीखता है और यह प्रतीत होने पर रोगनिर्णयमें सन्देह नहीं रहता।
२. *स्टेलवेग का चिह्न* (Stellway's sign)—स्वस्थ स्थितिमें जितने समय पलक हिलता है, उसकी अपेक्षा बहुत कम और अपूर्ण बार पलक हिलती है। कितनेक समय पलकके अयोग्य गिरते रहने से शुक्लमण्डलके नीचे का भाग अपारदर्शक बन जाता है। फिर उस भाग पर सफेदी आ जाती है।
३. *डालरिम्पल का चिह्न* (Dalrymple's sign)—नेत्रद्वार चौड़ा हो जाता है। नेत्रोन्मीलनी पेशीमें आक्षेप आता है।
४. *मीबियस चिह्न* (Moebius' sign)—गोलकके भीतर मुड़ने

में न्यूनता होती है। दृष्टिमें विशेष अन्तराय नहीं आता। गोलक अधिक आगे आ जाय, तो शुक्लमण्डल सूख जाता है। फिर उस पर क्षत होते हैं और उस हेतुसे दृष्टि को अधिक हानि पहुँचती है।

५. जोफरोय चिन्ह (Joffroy's sign)—ऊपर देखने पर मस्तिष्क के पिछले भागमें रहे हुए शिरच्छदा पेशीप्रदेश में सिलवट नहीं पड़ती।

यह रोग दीर्घकाल पर्यन्त रहता है। महीनों या वर्षों पर्यन्त रोगी की वही स्थिति प्रतीत होती है; या रोग अति शनैः-शनैः बढ़ता है। बीच-बीचमें लक्षण—चिह्नों में न्यूनता आ जाती है। प्रायः यह रोग अनेक वर्षों पर्यन्त चल कर फिर शनैः-शनैः सब लक्षणों का ह्रास होने लगता है। कण्ठ के मध्य भागमें किञ्चित् स्फीतिके अतिरिक्त सब लक्षण-चिह्न अदृश्य हो जाते हैं। कितनेक रोगी (लगभग १२ प्रतिशत) शनैः-शनैः मांसशोषसे कृश होकर या हृदय रोगके हेतुसे मरणके शरण होते हैं।

कारण—प्रैवेयक ग्रन्थिमें विशेष रसोत्पत्ति होती है और वह रक्तमें प्रवेश करता है, जिससे इस रोग की संप्राप्ति होती है। किन्तु प्रैवेयक ग्रन्थि क्यों उत्तेजित होकर अधिक रक्तस्राव करती है, जो देह को अति हानि पहुँचाता है- यह अभी तक स्पष्ट नहीं हुआ।

नेत्रगृह के समीप की अस्थियोंमें कितनेक कोटर हैं, उनमें प्रदाह ग्रन्थि, आदि रोग उत्पन्न होते हैं। उन रोगोंके हेतुसे भी नेत्रगृह और नेत्रगोलकके कितनेक रोग उत्पन्न होते हैं। इन कोटरोंके रोगों का विशेष वर्णन कान, नाक और कण्ठरोग (Diseases of the Throat, Ear and Nose) के ग्रन्थोंमें देखें।

उपचार—रोगी को चिन्ता और उपाधिसे मुक्त रखना चाहिये। जलवायु परिवर्तन करावें। दिनचर्या और रात्रिचर्या नियमित रखावें। ६ सप्ताह से लेकर कितनेक मास तक विश्रान्ति करावें। भोजनमें दूध और फल अधिक देवें।

उदरसेवनार्थ लोह, क्विनाइन, डिजिटेलिस, पोटास आयोजाइड, वत्सनाग, बेलोडोना, अर्गोटिन, अफीम, अफीमसत्व (मोर्फिया), एण्टीथाइरोडिन, प्रैवेयक ग्रन्थि निकाल दी हो ऐसी बकरी का दूध, एण्टीपाइरिन आदि बहुसंख्य ओषधियाँ व्यवहृत होती हैं। वैद्यक शास्त्र का नियम है कि जिस रोग का निश्चित उपाय नहीं होता, उसके अनेक

उपाय होते हैं। वे सब लगभग व्यर्थ होते हैं। इस रोग में एक सफल उपाय नहीं मिला। प्रैवेयक ग्रन्थि पर क्ष किरण लगाने पर अनेक रोगियों को लाभ पहुँचा है।

शुक्लमण्डल सूखे या क्षत हो जाय तो पलकके बाहरके सिरे पर टांके लगालें, जिससे नेत्रद्वार संकुचित हो जायगा। फिर क्षतोत्पत्ति रुक जायगी।

पच्चीसवां प्रकरण ।

नेत्रको अज्ञात रोगजनित अन्धता ।

(Amblyopia)

कितनेक समय ऐसे रोगी मिलते हैं कि जिनके रोगोंके कारणों की सूक्ष्म परीक्षा और विचारणा करने पर भी नेत्रगत बाहर या भीतर के किसी भी रोग का पता नहीं चलता । रोगी कहता है कि मैं कुछ भी नहीं देखता । उस समय नेत्रवैद्य को निर्णय करना पड़ता है कि वह सचमुच अन्धा है या ढोंग कर रहा है । यदि ढोंग नहीं है तो कारण जानना आवश्यक है । निम्न स्थितियों में नेत्र के भीतर व्यक्त रोग न होने पर भी रोगी अन्धा हो सकता है:—

१. कृत्रिम अन्धता—Malingering Amblyopia.
२. मधुमेहज अन्धता—Diabetic Amblyopia.
३. सेन्द्रिय विषज अन्धता—Toxic Amblyopia.
४. जन्मजात अन्धता—Congenital Amblyopia.
५. गर्भावस्था में प्राप्त अन्धता—Amblyopia in Pregnancy.
६. दन्तरोगज अन्धता—Amblyopia due to teeth
७. मूत्रविषज अन्धता—Uraemic Amblyopia.
८. मस्तिष्क क्षोभज अन्धता—Amblyopia due to shock.
९. ओजक्षयज अन्धता—Neurasthanic Amblyopia.
१०. अपतन्त्रक जनित अन्धता—Hysterical Amblyopia.
११. तिर्यक् दृष्टिस्थ अन्धता—Amblyopia in Squint.

१. कृत्रिम अन्धता ।

(*Malingering Amblyopia*)

कभी-कभी कितनेक व्यक्ति अन्धे न होते हुए ढोंग करते हैं, पुरुषों में क़ैदी या क़ानून की शिक्षामें से छटक जाने की इच्छा वाले उस तरह

बर्ताव करते हैं। स्त्रियाँ कुटुम्बियों के मनको आकर्षित करने के लिये पाखण्ड मचाती हैं। दोनों नेत्रों से वे नहीं देखते, ऐसा कहने वालोंकी चर्या गुप्त रूपसे देखने पर कितनेक अंशमें सच्ची स्थितिका बोध मिल जाता है। कनीनिका की परीक्षा करने पर भी निर्णय हो जाता है। सच्ची अन्धता में कनीनिका प्रकाश पड़ने पर आकुंचित नहीं होती। यदि कनीनिका का आकुंचन प्रतीत हो तथा मस्तिष्क या नेत्रका कोई रोग न हो, तो रोगी अन्धा नहीं है, ऐसा निश्चित होता है। इस निर्णयमें अपवाद है। किन्तु वह अतिशय कम। उनको छोड़कर शेष सर्व रोगियों में बहुधा भूल नहीं हो सकती।

अनेक बार फौजदारी कोर्ट में गये हुए अपराधी एक नेत्रमें दृष्टि न होना दर्शाते हैं। मार लगने के हेतुसे एक नेत्रकी दृष्टिका ध्वंस हुआ हो, तो क़ानून के अनुसार वह अंगभंग रूप महाव्यथा मानी जाती है। अतः महाव्यथा सिद्ध होने पर अपराधी को भारी शिक्षा होती है। इस हेतुसे कितनेक नालिश करनेवाले ढोंग करते हैं। पाश्चात्य प्रदेश में कारखानों में कार्य करने वाले मजदूर, सेनाके सिपाही आदि मालिकसे हानि वसूल करनेके उद्देश्य से एक या दोनों नेत्र जानेका ढोंग करते हैं। इन रोगियों के सत्यको जाननेके लिये निम्न परीक्षाएँ करनी चाहियें:—

पहली परीक्षा—रोगी को किसी वस्तुकी ओर देखने को कहें और उस पर दृष्टि स्थिर करावें। फिर एक नेत्रके पास नं० १० से १२ का त्रिकोण घन कांच रखें। यदि रोगी दोनों नेत्रोंसे देखेगा तो कांचवाली आँख उसके नाक की ओर सरक जायगी।

दूसरी परीक्षा—रोगी को हाथ ऊँचा करने को कहें, उस हाथको भिन्न-भिन्न दिशामें फिरावें तथा उस हाथ पर दृष्टि डालनेको कहें। यदि रोगी अन्धा ही होगा, तो उसकी आँख का गोलक हाथ पर उस दिशा में फिरेगा। ढोंगी होगा, तो हाथ एक दिशामें और गोलक को दूसरी ही दिशा में फिरायेगा।

उक्त दोनों परीक्षा प्रायः दोनों नेत्रोंसे अन्ध होने का ढोंग करने वालों के लिये व्यवहृत होती हैं। निम्न परीक्षाएँ एक आँख से अन्ध होने वालों के लिये प्रयोजित होती हैं:—

तीसरी परीक्षा—रोगीको अंधकारवाले कमरेमें ले जायँ; उसे जलती हुई बत्तीके सामने देखने को कहें। उसे एक बत्ती दीखेगी। फिर नं० ५ से ६ का त्रिकोण घन कांचका मोटा भाग नीचे रख आँख (नष्ट हुई) के पास पकड़ रखें। फिर रोगी को २ बत्ती दीखेंगी और रोगी घबराकर दो बत्ती

देखना स्वीकार कर लेगा। एक आँख नष्ट हुई होगी, तो बत्ती एकही दीखेगी।

चौथी परीक्षा—रोगी को किसी वस्तु की ओर दृष्टि स्थिर करने को कहें। फिर नं० १० से १२ को त्रिकोण धन कांच को अन्ध मानी हुई आँखके पास पकड़ रखें। यदि नेत्र कायम होगा, तो वस्तु को एक ही देखनेके लिये वह नाक की ओर फिर जायगी। आँख न फिरे तो नेत्र चला गया है ऐसा माना जाता है।

पाँचवीं परीक्षा—रोगी को किसी वस्तु पर दृष्टि स्थिर रखने को कहें। फिर नेत्रवैद्य रोगीके पीछे खड़ा रहकर नष्ट मानी हुई आँख को अपने हाथ से बन्द करें। फिर दूसरी अच्छी आँखके पास नं० १० से १२ का त्रिकोण धन कांच उस तरह पकड़े कि, उसका मोटा भाग नीचे की ओर तथा नोकदार भाग की धारा कनीनिका के मध्यभाग लगभग आ जाय। फिर रोगी को दो वस्तु भासेंगी। जब रोगी कहे कि दो वस्तु प्रतीत होती हैं, तब तुरन्त अन्ध मानी हुई आँख पर से हाथ को उठा लेवें और त्रिकोण धन काँच को कुछ ऊपर हटा लें। फिर रोगी को देखने को कहें, तो मानना चाहिये कि अन्ध मानी हुई आँख में भी देख सकता है।

छठी परीक्षा—रोगी को बड़े कमरे में खड़ा रखें। फिर चश्मा रहित कमानी चढ़ावें। उस कमानीमें अच्छे नेत्रके पास % १४ का काँच रखें और अन्ध माने हुए नेत्र के पास + ०'२५का कांच रखें। अच्छी आँख के पास %१४ का कांच होने से उससे दूर नहीं देख सकेगा; किन्तु रोगी समझेगा कि दोनों नेत्रों पर समान कांच है। फिर दूर की वस्तु उसे दिखावें। यदि वह देख सकता है तो वह अन्ध माने हुए नेत्र से देखता है, ऐसा माना जाता है।

सातवीं परीक्षा—स्नेलन के तख्ते पर कितनेक अक्षर हरे और कितनेक लाल अक्षरों के लिखे होते हैं। रोगी को उन अक्षरों को पढ़ने को कहें। चाहे वह एक ही नेत्रसे देखता हो, या दोनों नेत्रों से देखता हो, वह हरे और लाल सब अक्षर पढ़ सकेगा। फिर अच्छे नेत्र के पास हरा कांच रखेंगे, और दूसरा नेत्र चला गया होगा, तो वह केवल हरे अक्षर ही पढ़ सकेगा, ; लाल नहीं पढ़ सकेगा। यदि लाल कांच लगाया जायगा, तो केवल लाल अक्षर पढ़ सकेगा। यदि दोनों रंगों के अक्षर पढ़ सके तो समझना चाहिये कि दोनों नेत्र कायम हैं।

इनके अतिरिक्त भी ३-४ प्रकार की परीक्षाएँ कराई जाती हैं। किन्तु उपर्युक्त परीक्षाओंसे सत्य विदित हो ही जाता है।

उपाय—यदि रोगी ढोंगी हो तो उसे उपचारार्थ न्यायाधीश के पास भेज देना चाहिये।

२. मधुमेहज अन्धता।

(*Diabetic Amblyopia*)

मधुमेह के कितनेक रोगी शनैः शनैः प्राप्त होने वाली अन्धता की पुकार करते हैं। इन रोगियों की योग्य परीक्षा करनी चाहिये। मधुमेह में कांचबिन्दु आना, चश्मे का नम्बर बदल जाना आदि कारणों से दृष्टि कम होती है, यह पहले कांचबिन्दु के वर्णनमें दर्शाया है। ये कारण कम होने पर भी दृष्टि कम होती हो, तो मधुमेहज अन्धता प्राप्त हो रही है, ऐसा अनुमान कर सकते हैं। इस रोग के ३ प्रकार हैं:—

१. दृष्टिके मध्य प्रदेशमें दृष्टिनाश।

२. दृष्टिके किनारेमें दृष्टिनाश।

३. रंगके लिये दृष्टिनाश या दृष्टिके अर्द्ध प्रदेशमें दृष्टिनाश।

नेत्रवैद्य को लक्ष्य में रखना चाहिये कि, जब नेत्र को योग्य निरीक्षण करने पर भी दृष्टिनाश का कारण विदित न हो, तब मूत्र परीक्षा करनी चाहिये। मधुमेहमें दृष्टिनाश किस कारणसे होता है, इस विषय में भिन्न-भिन्न नेत्रवैद्यों के अभिप्राय भिन्न-भिन्न मिले हैं। कइयों की मान्यता अनुसार रक्तमें शर्करा वृद्धि होने पर उसी रुधिरसे ही नेत्रके सब सूक्ष्म भागों को पोषण मिलता रहता है। उस शर्कराके हेतुसे हानि पहुँचती है। अन्य विद्वानोंके मतमें गोलक के पिछली ओर रही हुई दर्शननाड़ी से शोष होता है, जो नेत्रदर्शक यन्त्रसे प्रतीत नहीं होता, वह दृष्टिनाश कराता है। तीसरे अभिप्रायके अनुसार रक्तगत शर्करा दृष्टिसे सम्बन्ध वाले मस्तिक प्रदेश को हानि पहुँचाती है, जिससे परम्परागत दृष्टिक्षय होता है।

उपचार—नेत्रके लिये खास चिकित्सा की आवश्यकता नहीं है। मधुमेह को लाभ पहुँचाने वाली या शर्करा का ह्रास करानेवाली चिकित्सा से नेत्र को लाभ होता है।

३. सेन्द्रिय विषज अन्धता।

(*Toxic Amblyopia*)

तमाखू, शराब, क्विनाइन, सोमल आदि के अति सेवन से विष-प्रकोप होकर रक्तमें प्रवेश करके दृष्टि को हानि पहुँचाते हैं। प्रायः इस स्थिति में दर्शननाड़ी के सिरे में कुछ परिवर्तन प्रतीत होता है; किन्तु कभी-कभी किसी भी प्रकार का अन्तर न होते हुए इन विषों से अन्धता की सम्प्राप्ति हो जाती है। इस रोग के लक्षण-चिह्न आदि का वर्णन प्रकरण १६ वें में लिखा गया है।

४. जन्मजात अन्धता।

(*Congenital Amblyopia*)

कितनेक बालक जन्मसे ही अन्धे होते हैं। कितनेक बालकोंमें गोलक की सूक्ष्म स्थिति, जन्मलब्ध कांचबिन्दु, दर्शननाड़ी के सिरे का क्षय आदि रोग प्रतीत होते हैं। किन्तु कभी-कभी नेत्रमें किसी भी प्रकार का अन्तर न होते हुए बालक अन्ध जन्मता है। कभी ऐसा भी होता है कि एक नेत्र अच्छा होता है और दूसरा नेत्र दृष्टिरहित या अतिकम दृष्टि वाला होता।

उपचार—कुछ भी नहीं है।

५. गर्भावस्थामें प्राप्त अन्धता।

(*Amblyopia in Pregnancy*)

कितनीक सगर्भा स्त्रियाँ दृष्टि मन्द होने की या क्वचित दृष्टि नाश होने की पुकार करती हैं। इस पूर्ण या अपूर्ण अन्धता के तीन प्रकार हैं:—१, रक्तमें मूत्रविष वृद्धि; २. हिस्टीरिया; ३. किसी भी प्रसिद्ध कारणरहित।

१. रक्तमें मूत्रविष वृद्धि—इस विषय का वर्णन आगे इसी प्रकरण में नं० ७ में किया जायगा। यहाँ संक्षेपमें कहेंगे कि, कितनीक सगर्भा स्त्रियों को वृक्कप्रदाह होता है। इससे पेशाब में शुभ्र प्रथिन जाती है। इसी हेतुसे उसके मुख, पैर और समग्र देह पर शोथ आ जाता है। अन्तमें पेशाब का ह्रास या विनाश होता है। इस हेतुसे आक्षेप आदि विविध लक्षण और अन्धता उपस्थित होते हैं।

२. हिस्टीरिया जनित अन्धता—सगर्भावस्था में हिस्टीरिया होने

की सम्भावना अधिक होती है। उस हिस्टीरिया के लक्षण रूप अन्धता भी कितनेकों में प्रकाशित होती है।

३. *प्रत्यक्ष कारण रहित*—कितनीक सगर्भाओं में हिस्टीरिया आदि कारण उपस्थित न होते हुए अन्धता आजाती है। आधुनिक सब साधनों द्वारा सूक्ष्म परीक्षा करने पर कोई भी कारण नहीं मिलता।

उपचार—प्रायः किसी भी उपचार की आवश्यकता नहीं रहती। प्रसव हो जाने के पश्चात् दृष्टि शनैः-शनैः आने लगती है और कुछ दिनों में पहले के समान दृष्टि हो जाती है। रुग्णा का स्वास्थ्य ठीक रहे, मलमूत्र शुद्धि होती रहे, ऐसी चिकित्सा करनी चाहिये। सगर्भा को नियमित व्यायाम मिलना चाहिये। व्यायाम या परिश्रम से रक्तस्थ विष कितनाक स्वेद द्वारा बाहर निकलता रहता है, जिससे रोगवृद्धिमें प्रतिबन्ध होता है। आहार और व्यवहार नैसर्गिक नियमके अनुरूप नियमित पालन हो, ऐसा उपदेश करें।

सूचना—तीव्र मूत्रविरेचन, मूत्रके परिमाणको कम करनेवाली ओषधियाँ-वङ्ग भस्म आदि तथा अति घृत, तैल या शराब आदि का सेवन हानिकर माना गया है।

६. दन्त रोगज अन्धता

(Amblyopia due to teeth)

भारतीय जनताकी सामान्य मान्यता है कि, ऊपरके दांत और विशेषतः डाढ़ निकालने या दांतों पर खिंचाव आने पर दृष्टिको धक्का पहुँचता है। यह मान्यता अतिशयोक्ति वाली है। लक्षावधि लोग ऊपरके दांत-डाढ़ निकलवाते हैं, उनमें दृष्टि को हानि पहुँचती हो, ऐसे उदाहरण अति क्वचित् मिलते हैं। इन रोगियों में दृष्टि को हानि पहुँचनेके कारण यह हैं कि, दांतमें तीव्र वेदना, डाढ़ भीतर से सड़ना तथा डाढ़ को अति बलात्कार से झटका देकर खींच लेना। प्रायः पीड़ित दांत जिस ओर हो, उसी ओर की आँखकी दृष्टि को हानि पहुँचती है। आजीवन दृष्टि को हानि पहुँचने के उदाहरण अति क्वचित् मिलते हैं। प्रायः कुछ कालतक दृष्टिको न्यूनाधिक हानि पहुंचकर पुनः आरोग्य स्थिति में आजाती है।

७. मूत्रविजनित अन्धता

(Uraemic Amblyopia)

यह रोग वृक्कप्रदाहके हेतु से होता है। विशेषतः सगर्भा स्त्रियों को

एवं क्षय, विषमज्वर आदि में उपद्रवरूप वृक्कप्रदाह होकर इस रोग की संप्राप्ति होती है।

लक्षण—किसी-किसी को अन्धता आने के पहले १-२ दिन किञ्चित् मंददृष्टि थोड़े-थोड़े समय तक आ जाती है। विशेषतः यह दृष्टिनाश अकस्मात् आक्रमण कर देता है। रोगी बैठा हो या सोया हो, तत्काल दृष्टि नष्ट हो जाती है। प्रायः दीपक प्रकाश भी प्रतीत नहीं होता। ऐसी स्थिति २-३ दिन रहकर (रोगी की मृत्यु न हो जाय तो) शनैः-शनैः पुनः दृष्टि आने लगती है। कितनेक रोगियों में बीच के हिस्से में एक छोटा बड़ा अन्ध प्रदेश रह जाता है।

कारण—इस रोग की उत्पत्ति का कारण मूत्रीया (Urea) क्षार है। वह मूत्र के साथ सर्वदा शरीर के बाहर निकलता रहता है; किन्तु किसी कारणवश जब वह क्षार बाहर नहीं निकल सकता; रक्त में संगृहीत होता है तब विष लक्षण प्रकाशित होते हैं। वृक्कप्रदाह, वृक्क में अश्मरी होना या अन्य किसी कारण से मूत्रावरोध होता है या मूत्रोत्सर्ग बन्द होती है। फिर मूत्र में निकलनेवाले विषमय द्रव, जिनमें मूत्रीया मुख्य हैं, केवल रक्त में संगृहीत होते हैं। फिर वह विष मर्यादा से अधिक हो जाता है, तब विष प्रकोप के लक्षण प्रकाशित होते हैं। इनमें मुख्य लक्षण अन्धता है।

उपचार—मूत्रविष को बाहर निकाल देने के लिए विरेचन देना चाहिए। मूत्रशुद्धिकर औषध देवें। प्रस्वेद लाने के लिए उपचार करें। ¼ ग्रेन पाइलोकार्पिन नाइट्रासका त्वचा में अन्तःक्षेपण करना अति हितकारक है। वृक्कप्रदाह से मृत्यु न हो जाय तो दृष्टि को योग्य बना सकेंगे। दृष्टि में अन्तर रह जाने पर स्ट्रिक्नियाका उदर सेवन या अन्तःक्षेपण कराना चाहिए।

७-१० मस्तिष्कक्षोभज, ओजक्षयज और अपतन्त्रक जनित अन्धता।

(*Amblyopia due to shock, Neurasthanic and Hysteric Amblyopia*)

इन तीनों प्रकार के लक्षण-चिह्न परस्पर अति मिलने-जुलते हैं। अतः तीनों के मिले हुए लक्षण-चिह्न देकर फिर प्रत्येक के विशेष लक्षण दिए जायँगे।

लक्षण और चिन्ह—तीनों प्रकारोंमें मुख्य लक्षण दृष्टि की न्यूनता है।

रोगी कभी बिल्कुल अन्ध हो जानेकी, किन्तु बहुधा दृष्टि अति मंद हो जानेकी पुकार करता है। दृष्टिमें न्यूनता दोनों नेत्रोंमें होती है। अनेक बार रोगी ठीक नहीं देख सकता। कुछ पढ़ता हो, ऐसे समय अकस्मात् उसका देखना बन्द हो जाता है। या किसी वस्तुकी ओर लम्बे समय तक देखते रहने पर वह वस्तु दीखनी बन्द हो जाती है।

एक रुग्णा मेरे पास आयी थी, उसकी स्थितिका वर्णन किसी नेत्र-रोगकी पुस्तकमें हमें नहीं मिला। अतः उसकी सच्ची स्थिति दर्शाने पर पाठक इस रोगका स्वरूप समझ सकेंगे। रुग्णाकी आयु लगभग १६-१८ वर्षकी थी। बाई पठित और बुद्धिमती थी। सांसारिक स्थिति अधिक अनुकूल न होने से मानसिक चिन्ता होने लगी। फिर हिस्टीरियाके लक्षण उत्पन्न हुए। हिस्टीरियाके लिये उपचार चालू थे। उस समयमें वह बाई पीहरसे ससुराल जानेको तैयार हुई। ससुरालमें पहुँचते ही उसने कहा कि मैं कुछ भी नहीं देख सकती। उसे प्रकाश-अन्धकारका ज्ञान भी नहीं होता था। वैद्य, डाक्टर, ज्योतिषी और जादू-टोनावालों का उपाय किया गया। सब व्यर्थ हुए। २॥ मासके बाद उसे मेरे पास लाये। मैंने परीक्षा की। कनीनिकाका आकुंचन योग्य होता था। नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर कोई भी रोग प्रतीत नहीं हुआ। उस समय पेरीमीटर न होनेसे उससे परीक्षा न कर सका। कदाच पेरीमीटरसे भी परीक्षा नहीं हो सकती। हिस्टीरियासे दृष्टि मन्द होना पढ़ा था और अनुभव भी किया था किन्तु उस समय तक हिस्टीरियासे दृष्टिका बिल्कुल लोप हो जाने का अनुभव नहीं मिला था। फिर भी हिस्टीरिया मानकर विद्युत् प्रयोग तथा मानसिक सूचना करनेका निर्णय किया। विद्युत् प्रयोग करनेके साथ उसी समय रुग्णा देखने लगी। अक्षर पढ़ने लगी। मुझे और रुग्णाके सम्बन्धीजनों को आश्चर्य हुआ। किन्तु बिजलीका उपचार बन्द होने और मानसिक सूचनाका शासन समाप्त होनेके साथ पुनः रुग्णा अन्ध होगई। लगभग १५ दिन तक प्रयोग करते रहने पर वह बिल्कुल स्वस्थ हो गई।

ऐसे रोगियों में पेरीमीटर से परीक्षा करने पर उनके दृष्टिप्रदेशमें कितनेक महत्त्व के परिवर्त्तन निम्नानुसार प्रतीत होते हैं।

(१) दृष्टिप्रवेश की परिधि का संकोच प्रतीत होता है। दृष्टि मात्र मध्य प्रवेश में ही भासती है। ऐसा होने पर भी रोगीको रास्ते में चलने में कठिनता नहीं होती। दृष्टिप्रवेश की परिधि का संकोच दर्शननाड़ी की अपकान्ति और अधिमन्थ में भी प्रतीत होता है। किन्तु यह अन्तर है कि, इन दोनों रोगों में मध्य प्रदेशके भीतर स्थान-स्थान पर अन्धप्रदेश प्रतीत

होता है। जब नाड़ी आघातज (मस्तिष्कको आघात पहुँचने) आदि प्रकारों में मध्य प्रदेश बिल्कुल साफ होता है। नक्शे पर गोल या लगभग गोलप्रदेश स्पष्ट (दृष्टिमय प्रदेशरूप) प्रतीत होता है। यह चिह्न दोनों नेत्रों में समान भासता है; किन्तु कभी एक नेत्र में न्यूनाधिक होता है।

(२) दृष्टिप्रदेश में रुकावट सी भास होती है। एक समय दृष्टि-प्रदेश कागज पर चित्रित किया और परिधि भागमें संकोच प्रतीत हुआ, उसी समय पुनः दृष्टिप्रदेश की परीक्षा करने पर संकोच में वृद्धि होती है। तीसरी बार निर्णय करने पर उसमे भी अधिक संकोच होता है। उस तरह संकोच में वृद्धि होती रहती है। यदि रोगीको कुछ समय तक विश्रान्ति देकर परीक्षा की जाय, तो पहले समय जो दृष्टिप्रदेश की स्थिति प्रतीत हुई थी, वही भासेगी।

(३) दृष्टिप्रदेश की रंग परिचय शक्तिमें भी अन्तर प्रतीत होता है। नैसर्गिक स्थिति में नीले रंग का प्रदेश सबसे अधिक है। फिर लाल और उससे कम हरे रंग का प्रदेश होता है। इन तीनों प्रकार की व्याधियों में लाल रंग का प्रदेश अधिक बन जाता है।

मस्तिष्क क्षोभज (मस्तिष्क की थकावट) अन्धता (Amblyopia due to shock)—यह विद्यार्थी वर्ग में अधिक होती है। एक समय ऐसा रोगी मेरे पास आया था। पढ़ने का प्रारम्भ करने पर ठीक पढ़ सकता था। कुछ समय के पश्चात् नेत्र में जलन होने लगी और अक्षर अस्पष्ट दीखने लगा। पश्चात् पुस्तक अधिक समीप रखकर कुछ पढ़ा और अन्त में पढ़ने की शक्ति नष्ट हुई। नेत्र परीक्षा करने पर किसी भी प्रकार का रोग या खोड़ नहीं मिले। चश्मे की आवश्यकता भी न होना विदित हुआ। फिर दृष्टिप्रदेश की परीक्षा की (यह परीक्षा बुद्धिमान् विद्यार्थियों की हो सकती है), तब उसमें संकोच प्रतीत हुआ। पुनः परीक्षा करने पर थकावट के चिह्न विदित हुए। इनके अतिरिक्त चक्कर आना, थकावट, चमकना, डरपोकपना आदि लक्षण भी मिले। कभी-कभी ढोंग करनेवाले भी मिलते हैं। जिनको पढ़ने की इच्छा न हो, वे ऐसा ढोंग भी करते हैं। विशेषतः धनिक और रईसों की संतान ऐसा ढोंग करती हैं। पेरीमीटर से परीक्षा करने पर दृष्टिप्रदेश का संकोच प्रतीत न हो तो ढोंग कर रहा है; ऐसा माना जाता है।

उपचार—ओजक्षयज अन्धता के साथ देखें।

ओजक्षयज अन्धता (Neurasthanic Amblyopia) विद्यार्थियों की मस्तिष्ककी थकावटके समान बड़ी आयुवाले स्त्री-पुरुषों में भी दृष्टि की

न्यूनता प्रतीत होती है। ये रोगी प्रायः नेत्रमें और नेत्रके पास विचित्र सुरसुराहट होना कहते हैं। कभी-कभी गोलक और भ्रूप्रदेशमें शूल चलता है। गोलकको चलाने पर पीड़ा होती है। पढ़ने-लिखने आदि कार्य करने पर नेत्र शीघ्र थक जाता है। किसी भी प्रकारके चश्मे से सन्तोष नहीं मिलता। चश्मेसे भी भारीपन भासता है। कोई विशेष कारण न होने पर भी रोगी को किसी न किसी प्रकारका कष्ट होता ही रहता है।

उपचार—रोगीके सन्तोषार्थ नेत्रका उपचार भी करना पड़ता है। प्रकाश सहन न हो तो काला चश्मा देवें। नेत्र को विश्रान्ति देवें पढ़ना-लिखना आदि कार्य बन्द करें या अति कम करें। जलवायु परिवर्त्तन करावें। पौष्टिक और मस्तिष्क पोषक औषधियाँ देवें। चिन्ता का त्याग करावें।

अपतन्त्रक जनित अन्धता (Hysteric Amblyopia)—हिस्टीरिया पीड़ित रुग्णमें उपर्युक्त लक्षण उत्पन्न होते हैं। पलक खिंचता है। इसमें रुग्णा नेत्रों को नहीं खोल सकती। कितनेक समय एक-दो पेशी स्तम्भित हो जाती हैं। इस हेतुसे नेत्रमें टेढ़ापन आ जाता है। दृष्टि प्रदेशका संकोच एक नेत्रमें विशेष भासता है, या एकमें संकोच हो और दूसरेमें न हो ऐसा भी बनता है। कनीनिका स्वस्थावस्थाके समान रहती है; कभी प्रसारित या संकुचित भी होती है। बहुधा प्रकाशमें आकुंचित होती है।

उपचार—ऊपर ओजक्षय जनित अन्धतामें कहे अनुसार करें। इस रोगसे पीड़ित रुग्णा का दृष्टान्त दिया है, उसे कनपटीके पास स्ट्रिकिनया का अन्तःक्षेपण किया जाता था। नेत्र और कनपटी पर बिजली लगाई जाती थी। उदर सेवनार्थ वातशामक औषध दी जाती थी। बिजलीके प्रयोगके साथ सूबनासे प्रतिदिन दृष्टि बढ़ाई जाती थी। योग्य सम्हाल और प्रयत्नपूर्वक चिकित्सा की जाय तो रोग साध्य है।

११. वक्रदृष्टिगत अन्धता।

(*Amblyopia in Squint*)

२३ वें प्रकरण में दर्शाया गया है कि, कितनेक बालकों की एक आँख बाल्यावस्था से ही टेढ़ी हो जाती है। उस आँखके लिये यदि पहले से ही योग्य उपचार न किया जाय तो शनैः-शनैः रोगी एक ही

नेत्र को उपयोग में लेता है। क्योंकि एक नेत्रमें दृष्टि अच्छी होती है। इससे स्पष्ट देखनेके लिये वह एकही नेत्रका उपयोग करता है, या एकही नेत्रका उपयोग करे तो ही दृष्टि साफ होती है। परिणाममें दूसरी टेढ़ी आँख शनैः-शनैः अपना कार्य भूल जाती है और अन्तमें बड़ी आयु होने पर लगभग बन्द हो जाती है। उस नेत्रमें सूक्ष्मता पूर्वक परीक्षा करने पर कुछ भी परिवर्त्तन प्रतीत नहीं होता। टेढ़ी आँखके अतिरिक्त छोटी आयुमें फूले पड़े हों, वैसी आँखमें भी वही स्थिति हो जाती है।

उपचार—छोटी आयुमें कुछ अंशमें सफलता मिलती है। चश्मा लगता हो तो योग्य नम्बर देवें। टेढ़ी आँखका उपयोग करानेके लिये अच्छी आँखमें एट्रोपिनकी बूँद डालकर दृष्टि कम करावें; या रोज २-४ घंटे तक अच्छे नेत्र पर पट्टी बांध रखें। बड़ी आयु हो जाने पर उपचार व्यर्थ है।

छब्बीसवाँ प्रकरण।

मस्तिष्क और सुषम्णाकाण्डकी व्याधियों से नेत्ररोग।

(Diseases of Eye due to diseases of brain and spinal Cord)

नेत्रगोलककी पिछली ओर दर्शननाड़ी अवस्थित है। उसके सूक्ष्म तन्तु नेत्रदर्पण में फैले हैं। एवं करोटिके निम्न प्रदेश तक पहुँच कर अन्य ओरकी दर्शननाड़ी के साथ मिलकर दर्शननाड़ी संगम बनाते हैं। उस संगम में सूक्ष्म तन्तुओं की विचित्र रचना बनती है। दहिनी आंख की दर्शन नाड़ी के बाहर आनेवाले सूक्ष्म तन्तु नाड़ी संगममें भी बाहर की ओर रहकर दहिने दर्शनप्रबन्ध में प्रवेश करते हैं। दर्शनप्रबन्ध में भी बाहर की ओर रहकर उस ओरके मस्तिष्क बंधनमें पहुँच उसी ओरके बाह्य प्रन्थल भाग (External Jeniculate body), दर्शनकेन्द्र स्थान समूह और चतुर्गुण समूह में से निकलकर उसी ओरकी (दहिनी ओरकी) मस्तिष्क त्वचा (Cerebral Cortax) में प्रवेश करता है। बांयी ओरकी दर्शननाड़ी के बाहरकी ओरके सूक्ष्म तन्तु भी उसी तरह बांयी ओरको मस्तिष्क त्वचा में प्रवेश करते हैं।

दहिनी दर्शननाड़ी बीचकी ओर भीतर के सूक्ष्म तन्तु दर्शननाड़ी संगम के पास पहुँचकर अतिक्रमण करते हैं। जिससे दहिनी ओरके तन्तु बांयी ओर तथा बांयी ओर के तन्तु दहिनी ओर चले जाते हैं। फिर मस्तिष्क बन्धन आदि भाग उसी ओर (अतिक्रमणके पश्चात् ग्रहण की हुई ओर) गति करके उस ओरकी मस्तिष्क त्वचामें प्रवेश करते हैं। संक्षेपमें दहिनी दर्शननाड़ी के सूक्ष्म तन्तु दहिनी ओरकी मस्तिष्क त्वचाके साथ तथा बीच के और भीतरके तन्तु बांयी ओरकी मस्तिष्क त्वचा के साथ सम्बन्ध में आते हैं। उसी तरह बांयी नाड़ीके लिये भी समझें।

१. अर्द्ध दृष्टिनाश।

(*Hem ianopsia*)

दोनों ओरकी नाड़ियों के तन्तुओं का अतिक्रमण होने से परिणाम यह आता है कि, दहिनी ओरकी मस्तिष्क त्वचा को हानि पहुँचने पर दहिनी आँख के नेत्रदर्पण के बाह्य भाग और बांयी आँख के नेत्रदर्पण के भीतर के

(नाक की ओर के) भाग में कर्त्तव्य शून्यता आजाती है। जिससे रोगी को बांयी ओर की आंख की कनपटी की ओर अर्द्ध भाग में तथा दहिनी आँख से नाक की ओर के अर्द्ध भाग में नहीं दीखता। उस स्थिति को वामार्द्ध दृष्टिनाश (Left Hemianopsia) कहते हैं। उसी तरह बांयी ओर की मस्तिष्क त्वचा को हानि पहुँचने पर दक्षिणार्द्ध दृष्टिनाश (Right Hemiaopsia) होता है।

मस्तिष्क त्वचा की व्यथाजन्य हानि के समान दर्शनप्रबन्ध और मस्तिष्क त्वचा के बीच में अवस्थित भागोंमें से किसी भागको हानि पहुँचे तो भी अर्द्ध दृष्टिनाश उपस्थित होता है। एवं बाह्य गन्धल भाग और मस्तिष्क त्वचा के बीच की नाड़ी, दर्शनप्रबन्ध और दर्शननाड़ी संगम, इन स्थानों में भी आघात पहुँचे या रोग हो जाय तो अर्द्ध दृष्टिनाश निर्माण होता है।

संक्षेप में मस्तिष्क में अवस्थित दृष्टि के साथ सम्बन्ध रखनेवाले भागों को व्यथा या व्याधि हो जाय तो उसका परिणाम अर्द्ध दृष्टिनाश होता है। उसके मुख्य ५ प्रकार निम्नानुसार हैं:—

१. *दक्षिणार्द्ध दृष्टिनाश*—(Right Hemianopsia)—इस स्थिति में दहिनी आंख का दक्षिण (कनपटी का) भाग और बांयी आंख का दक्षिण (नाक की ओर का) भाग नष्ट होता है। इस स्थिति में दोनों नेत्र दर्पणों का बांया भाग कर्त्तव्यरहित होता है। उसका कारण बांयी ओर की मस्तिष्क त्वचा और बाह्य गन्धल भाग (उत्तरा अधिपीठिका—External Geniculate body) इन दोनों के बीच के तन्तु अथवा मस्तिष्क बन्धन, दर्शनप्रबन्ध या दर्शननाड़ी संगम में व्याधि या व्यथा है।

२. *वामार्द्ध दृष्टिनाश*—(Left Hemianopsia) इस स्थिति में बांयी आंख का बांया (कनपटी की ओर का) भाग और दहिनी आंख का बांया (नाक की ओर का भाग) दृष्टि रहित हो जाता है। इस स्थिति में दोनों नेत्र-दर्पणों का दहिना भाग कर्त्तव्य रहित होता है।

३. *दोनों ओर के शंखास्थिगत अर्द्ध दृष्टिनाश*—(Bitemporal Hemianopsia)—दोनों कनपटी की ओर के अर्द्ध दृष्टिनाश रूप चिह्न मस्तिष्क में अवस्थित पोषणिका ग्रन्थि (Pituitray gland) की वृद्धि होने पर प्रकाशित होता है। बीच में रहे हुये तन्तु पर दबाव होने पर यह चिह्न उत्पन्न होता है। यह दबाव दर्शननाड़ी संगम पर आता है।

४. *दोनों ओर के नासाप्रदेशगत अर्द्धदृष्टिनाश* (Binassal Hemianopsia) यह चिह्न क्वचित् ही प्रतीत होता है। जब दर्शननाड़ी संगम में

अवस्थित तन्तु, जो दोनों ओरकी कनपटीकी ओर गये हुए हैं और अतिक्रमण न करनेवाले हैं, उन पर दबाव होता है, तब यह चिह्न प्रकाशित होता है। यह चिह्न भी पोषणिका ग्रन्थिका वृद्धिदर्शक है।

५. दोनों नेत्रका ऊर्ध्व या अधोभागका अर्द्धदृष्टिनाश-(Altitudinal Hemainopsia) यह चिह्न भी क्वचित् ही प्रतीत होता है। जब ऊपर या नीचेकी ओर से दर्शननाड़ी संगम पर दबाव आता है, तब यह चिह्न प्रकाशित होता है।

उक्त प्रकारों के अतिरिक्त कतिपय विषम अर्द्धदृष्टिनाश भी देखने में आते हैं।

अर्द्धदृष्टिनाश है या नहीं ? इस सम्बन्ध का अनुमान अंगुली या अन्य कोई भी वस्तु दिखलाकर कर सकते हैं; किन्तु निर्णित करने के लिये पेरीमीटर (दृष्टिप्रदेशमापक यन्त्र) का उपयोग करना चाहिये। अर्द्धदृष्टिनाश में प्रायः बीचका भाग कायम रहता है। उसमें दृष्टि रहती है।

मस्तिष्क विकृति स्थान निर्णय—इस अर्द्धदृष्टिनाश पर से मस्तिष्क के किस भाग में व्याधि या व्यथा हुई है, यह निम्न लक्षण-चिह्नों पर से विदित होता है :—

१. अर्द्धदृष्टिनाश के साथ पक्षवध या स्वरनाश या मस्तिष्क से निकलनेवाली वातनाड़ी का स्तम्भ प्रतीत न हो तो व्याधि या व्यथा मस्तिष्कत्वचा में मानी जाती है।

२. अर्द्धदृष्टिनाश के साथ कल्पित चित्र (मिथ्या दर्शन) नेत्रके समक्ष प्रतीत हो, तो व्याधि या व्यथा बाह्य ग्रन्थल भाग और मस्तिष्क त्वचा के बीचके तन्तुओं में होनी चाहिये।

३. दर्शनप्रबन्ध या मस्तिष्क बन्धन में व्याधि या वेदना होने पर अर्द्धदृष्टिनाशके अतिरिक्त उसी ओरका पक्षाघात उपस्थित होता है। कभी किसी वातनाड़ी के स्तम्भ के चिह्न भी प्रकाशित होते हैं।

४. दर्शननाड़ी संगमके अतिक्रमण करनेवाले और अतिक्रमण न करते हुए निकलनेवाले तन्तुओं पर दबाव आने या चोट लगने पर जो लक्षण चिह्न प्रकाशित होते हैं, वे पहले दर्शाये हैं।

कारण—उपर्युक्त भागों में आघात पहुँचने के मुख्य कारणों में करोटिका टूटना और उन भागोंमें रुधिरस्राव होना, ये हैं। इन स्थानों

में होनेवाले मुख्य रोग उपदंश विक्रियाजन्य अर्बुद और मस्तिष्कावरण प्रदाह तथा अन्य हेतुसे उत्पन्न ग्रन्थि आदि हैं।

परिणाम—परिणाम का आधार कारण पर है। उपदंशकी विक्रिया से स्थिति उत्पन्न हुई हो, तो योग्य उपचार से शमन होजाती है। अर्बुदों से उत्पन्न प्रतिबन्ध प्रायः असाध्य होता है। आजीवन न्यूनाधिक दोष रह जाता है।

उपचार—कारण अनुसार। उपदंशज हो, तो पोटास आयोडाइड आदि औषधियाँ उदरसेवानार्थ देवें। विस्मथ आयोडाइड आदिका अन्तः क्षेपण करें। ग्रन्थिजन्य व्याधि उत्पन्न हुई हो तो शस्त्रचिकित्सा बिना रोग निवारण नहीं होता। वर्त्तमान में पाश्चात्य प्रदेशमें मस्तिष्कस्थ अर्बुदों के लिये शस्त्रक्रिया की अति प्रगति होगई है। वहाँ पर मस्तिष्कके अर्बुद के अनेक रोगियों पर शस्त्रक्रिया सफलता पूर्वक होती है। यदि ग्रन्थिको निकालना अशक्य हो तो करोटि में खिड़की करने की शस्त्रक्रिया (Trephining the Skull) करके रोगीको कुछ काल तक शान्ति दी जाती है।

२. मस्तिष्कके रोगोंमें नेत्रगत परिवर्तन।

(*Changes in Eye due to the diseases of the Brain*)

इनमें निम्न रोगों में परिवर्तन होता है :—

१. मस्तिष्क और सुषुम्णा में विकीर्ण कोषकाठिन्य।
२. बुद्धि जाड्यसह पक्षाघात।
३. अन्धता सह कौटुम्बिक उन्माद।
४. मस्तिष्कावरण प्रदाह—Meningitis.
५. मस्तिष्क और सुषुम्णा शीर्षका आवरण
६. शीर्ष जलोदर—Hydrocephalus.
७. मृगी—Epilepsy.
मस्तिष्कस्थ ग्रन्थि—Tumours of th

१. *मस्तिष्क और सुषुम्णामें विकीर्ण कोषका*
Sclerosis of Brain and Spinal Cord)—इ
नेत्रगत लक्षणों की प्रतीति होती है।

१. दृष्टि प्रदेशके हिस्से में रंगकी अप्रत

तक रहकर सुधर जाता है। कितनेक रोगियों को मध्य प्रदेशमें रंग या अन्य कुछ भी प्रतीत नहीं होता।

२. दर्शननाड़ीकी अपक्रान्ति। यह अपक्रान्ति समग्र नाड़ीमें या केवल बाह्य ½ भागमें ही होती है।

३. कितनेक रोगियों में दर्शननाड़ी का प्रदाह होता है।

४. गोलकका सतत संचलन—यह लक्षण कभी-कभी उपस्थित होता है।

५. गोलककी एक या अधिक पेशियों का स्तम्भ। यह लक्षण कितनेक रोगियों में प्रकाशित होता है। पेशियों का स्तम्भ कुछ दिनों तक रहता है। फिर वे स्वस्थ हो जाती हैं।

इन लक्षणों की प्रतीति होने पर मूल रोग के अन्य लक्षणों के लिये जांच करनी चाहिये।

२. *बुद्धिजाड्य सह पक्षाघात* (General Paralysis of the Insane)—इस विकार में रोगी को पहले शेखचिल्ली के समान विविध तरंग उत्पन्न होती हैं। मैं राजा हूँ, मैं सबसे बड़ा हूँ, मेरी हवेली सर्वोत्तम है। मेरी मोटरके समान गाड़ी दूसरे कोई नहीं रख सकते। जनता पर मेरा दबाव है, आदि-आदि मंसूबे आते हैं। ऐसे विचार अनेक क्षुद्र व्यक्ति को अकस्मात् लक्ष्मी मिलजाने पर बिना उन्माद भी आते हैं। ये विचार वे बोल कर दर्शाते रहते हैं। उन लोगों के कथन को इस रोग के चिह्न रूप नहीं गिनना चाहिये। किन्तु इस रोग से पीड़ितों में कुछ काल के पश्चात् बोलने में अन्तराय आता है। अन्तस्थः रकार और टकार आदि अक्षर नहीं बोल सकते। फिर बुद्धि की जड़ता प्रारम्भ होती है। हाथ-पैरकी पेशियाँ चेतनाहीन होती हैं। पेशियों के देखाव में कुछ भी अन्तर करीब स्वस्थ स्थितिवत् भासते हैं, या उससे अधिक भारी शनैः चलना-फिरना और विचारशक्ति का ह्रास होता है। अनियमितता और निरंकुशपना आता है। इस तरह कर अन्त में इस रोग से या अन्य उपद्रव द्वारा मृत्यु

कनीनिका में परिवर्तन, गोलक की पेशियों का वध, व और किसी वस्तु को देखने पर उसे पहचानने

स्भ में कनीनिका आकुंचित होती है। फिर कुछ

समय में प्रसारित होती है। कभी-कभी दोनों कनीनिकाओं के बीच असमानता होती है। एक बड़ी और दूसरी छोटी। यदि कनीनिका बड़ी हो तो प्रकाश से योग्य संकोच नहीं होता। रोग बढ़ने पर संकोच बिल्कुल बन्द हो जाता है। कभी बड़ी कनीनिका छोटी और छोटी बड़ी हो जाती है। कितनेक रोगियों में कनीनिका की थकावट प्रतीत होती है। कनीनिका पर प्रकाश डालने पर पहले संकुचित होगी, किन्तु फिर प्रकाश डालने पर भी प्रसारित हो जायगी। पुनः संकोच और पुनः प्रसारण इस तरह ४-६ बार होकर प्रकाश कनीनिका पर होते हुए भी प्रसारित हो जाती है। यह चिह्न बुद्धिजाड्यसह पक्षघात का विशेष माना जाता है। अन्य कितनेक समय प्रकाश से कनीनिका का संकोच नहीं होता, किन्तु समीप देखने पर होता है। यह चिह्न चलन शक्ति के वध में विशेष उपस्थित होता है।

३. *अन्धता सह कौटुम्बिक उन्माद*–Amaurotic Family Idiocy–यह रोग एक ही कुटुम्ब में एकाधिक सन्तानों में उतरता है। बहुधा बालक की आयु १ वर्ष की हो, उससे पहले ही रोगोत्पत्ति हो जाती है। जन्म के समय बालक बिल्कुल स्वस्थ और दृढ़ होता है। ६–८ मास तक वैसीही स्थिति रहती है। खेलने में जो जो वस्तु दिखलायी जायँ, उस ओर एवं माता और धाय आदि की ओर पूरा लक्ष्य रहता है। फिर शनैः-शनैः वस उन पर से लक्ष्य कम होने लगता है और कुछ मास में लगभग बुद्धिहीन बन जाता है। एवं शनैः-शनैः हाथ-पैर की पेशियाँ शिथिल होती जाती हैं। जो बालक पहले हाथ-पैर उछाल-उछाल कर प्रसन्न चित्त रहता था, वही खिलौने की सदृश निश्चेष्ट होकर पड़ा रहता है। दृष्टि शनैः-शनैः कम होती जाती है। अन्त में बिलकुल बन्द हो जाती है। गोलक का संचलन अविरत होता रहता है। नेत्रमें टेढ़ापन उपस्थित होता है। शनैः-शनैः देह का शोष होने लगता है और दूसरा वर्ष पूरा होने के पहले मरण के शरण हो जाता है।

नेत्रदर्शक यन्त्र से नेत्र परीक्षा करने पर प्रारम्भ में कुछ भी परिवर्तन नहीं भासता। रोगवृद्धि होने पर पीत बिन्दु के स्थान में सफेद फैला हुआ बड़ा दाग प्रतीत होता है। यह दाग दर्शननाड़ी के सिरे से लगभग दूना बड़ा होता है। उस श्वेत चिह्न के मध्य में एक छोटा रक्तचिह्न उत्पन्न होता है। रोग अधिक बढ़ने पर दर्शननाड़ी की अपकान्ति प्रकाशित होती है।

मरणोत्तर परीक्षा करने पर मस्तिष्क में कितनाक परिवर्तन प्रतीत होता है।

कारण—यह रोग यहूदी लोगों में विशेष प्रतीत होता है, ऐसा पाश्चात्य नेत्रवैद्यों का कथन है। समान रक्त के स्त्री-पुरुषों का विवाह हो, ऐसे माता-पिता की सन्तानों में यह रोग अधिक उत्पन्न होता है। केवल यही कारण हो, तो हिन्दू समाज में यह रोग न होना चाहिए। हमारे अनुभव में वैसा ही आया है। इससे हिन्दू शास्त्रकारोंके गम्भीर और अति सूक्ष्म ज्ञान का परिचय मिलता है।

उपचार—औषधं जाह्नवीतोयं वैद्यो नारायणो हरिः।

उक्त रोगके अनुरूप रोग लगभग ६-७ वर्ष की आयुवालों को होता है। चिह्न लगभग समान ही होते हैं। अन्तर केवल इतना ही है कि दर्शन-नाड़ी की अपक्रान्ति अधिक बढ़ी हुई नहीं भासती। पीत बिन्दु के स्थान में श्वेत चिह्न और बीच में ईंट के रंग के चिह्न के बदले में पीले रंग का बड़ा दाग प्रतीत होता है। उस पर काले रंग के सूक्ष्म-सूक्ष्म चिह्न दीखते हैं। इस विकार में रोगी बिल्कुल अन्धा नहीं हो जाता; किन्तु मध्य दृष्टि प्रदेश अतिशय कम हो जाता है। यदि रोग लगभग १२ वर्ष की आयु में हो तो बुद्धिमंद नहीं होती।

४. *मस्तिष्कावरण प्रदाह* (Meningitis)—किसी भी कारण से मस्तिष्क के आवरण का प्रदाह होने पर प्रायः दर्शननाड़ी के सिरे का प्रदाह प्रतीत होता है। रोग के प्रारम्भ में कनीनिका का संकोच कदाचित् होता है। उस समय में मस्तिष्क और नेत्र एक ओर किंचित् फिरे हुए भासते हैं। इसके अतिरिक्त जो क्षयजन्य प्रदाह हो तो नेत्रमध्यपटल में क्षय की छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ भी होती हैं। दर्शननाड़ी प्रदाह तथा मांसपेशियों का स्तम्भ भी अन्य जाति के प्रदाह की अपेक्षा क्षयजन्य प्रदाह में विशेषतर प्रतीत होते हैं।

५. *मस्तिष्क और सुषुम्णाशीर्ष* (Medulla oblongata) *का आवरण प्रदाह*—इस विकार में अक्षिपुट शोथ, नेत्रश्लेष्मावरण शोथ और प्रकाश की असहिष्णुता, ये विशेष चिह्न उपस्थित होते हैं। कनीनिका के कद आदि में अन्तर होता है। इसके अतिरिक्त शुक्लमण्डल के क्षत, शुक्लमण्डल के गर्भ भाग का प्रदाह, नेत्रदर्पण प्रदाह, तथा समग्र गोलक प्रदाह भी बार-बार दृष्टिगोचर होता है। भीतर के भागों की परीक्षा हो सके, ऐसी रोगी और गोलक की स्थिति हो तो दर्शननाड़ी के सिरे का प्रदाह तथा नेत्रदर्पण में छोटे-छोटे रुधिरस्राव भी प्रतीत होते हैं।

आगन्तुक व्यथाजन्य मस्तिष्क प्रदाह में दर्शननाड़ी के सिरे का प्रदाह कुछ दिनों में प्रकाशित होता है।

६. शीर्षजलोदर (Hydrocephalus)—इस रोग में बालक का शिर बढ़ने लगता है। जन्मकाल में ही इस रोग की प्रतीति हो, तो प्रसव होने में कष्ट होता है। विशेषतः जन्मके पश्चात् इस रोग की सम्प्राप्ति होती है। १-२ वर्ष की आयु में शनैः-शनैः बालक का शिर बढ़ता हुआ भासता है। हाथ से दबाने पर शिर नरम लगता है और अस्थिसंधि स्थान में खुला स्थल भासता है। इस रोग में अनेक बार दर्शननाड़ी प्रदाह और फिर अपक्रान्ति प्रतीत होती है।

७. मृगी (Epilepsy)—इस रोगमें कितनेक रोगियों के नेत्रके समक्ष खद्योत के समान प्रकाश और तारा जैसी चमक आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। वस्तु हो उससे छोटी या बड़ी दीखती है; या अर्द्धदृष्टिप्रदेश की विकृति के चिह्न प्रकाशित होते हैं। आक्षेप आने के पहले कनीनिका आकुञ्चित होती है। फिर रोगी के बेहोश होने पर प्रसारित होती है। बेहोशी कालमें प्रकाशसे कनीनिका का संकोच नहीं होता यदि हिस्टीरिया जनित आक्षेप हो तो कनीनिका के आकुञ्चन-प्रसारण होते हैं।

८. मस्तिष्कग्रन्थि(Tumours of the Brain)—मस्तिष्क में उत्पन्न अर्बुद-ग्रन्थियों के हेतुसे नेत्र में तीन चिह्न उपस्थित होते हैं—१ वात नाड़ीके सिरेका शोथ (Papilloedema); २. गोलककी एक या अधिक पेशियों का स्तम्भ (Paralysis of Ocular muscles); और दृष्टिके साथ सम्बन्ध रखनेवाले मस्तिष्क प्रदेश में ग्रन्थि होने पर दृष्टिकी न्यूनता या दृष्टिनाश। मस्तिष्क के भिन्न-भिन्न भागोंमें ग्रन्थिके लक्षण-चिह्न भिन्न-भिन्न होते हैं; किन्तु परस्पर मिलते-जुलते होते हैं, जिससे सामान्य नेत्र-वैद्यों के लिये निर्णय करना, अति कठिन होता है। एवं यह विषय नेत्र-वैद्योंकी अपेक्षा मस्तिष्क की शस्त्रक्रिया निष्णातों का है, अतः यहां विस्तार से नहीं लिखा।

३. सुषुम्णाकाण्ड के रोगोंमें नेत्रमें परिवर्तन।

(*Changes in Eye due to diseases of spinal cord*)

सुषुम्णाकाण्ड की विकृति जन्य मुख्य शकुन्तगति रोगमें नेत्रके भीतर निम्न लक्षण उपस्थित होते हैं।

संचलन शक्तिकी अव्यवस्था (शकुन्तगति रोग-Locomotor ataxy-Tabes Dorsalis)—इस रोगमें नेत्रके भीतर मुख्य ३ चिह्न प्रकाशित होते हैं—अ. दर्शननाड़ी के सिरेकी अपक्रान्ति; आ. कनीनिका में विकृति; इ. गोलककी पेशियों का वध।

अ. *दर्शननाड़ीके सिरेकी अपकान्ति*—इस रोगके अनेक रोगियों की स्थिति पर से निश्चित हुआ है कि, ९० प्रतिशत रोगियों में दर्शननाड़ी के सिरेकी अपकान्ति होती है। कितनेक रोगियों में यह चिह्न रोगारम्भमें ही उपस्थित होता है। यदि ऐसा हो तो संचलन शक्तिमें अधिक अव्यवस्था नहीं होती। यदि प्रारम्भ से ही संचलन शक्तिकी अव्यवस्था स्पष्ट प्रतीत होती हो, तो दर्शननाड़ी की अपकान्ति कितनेक वर्षों के पश्चात् होती है, उस समय संचलन शक्ति की विकृति स्थिर ही रहती है, उसमें सुधार कदाचित् ही होता है। दर्शननाड़ी की अपकान्ति एकबार प्रारम्भ हुई तो फिर वह बढ़ती ही जाती है और अन्त में बिल्कुल चली ही जाती है।

आ. *कनीनिका में परिवर्तन*—आर्गाइल रोबर्टसन नाम के नेत्रवैद्य ने परीक्षा करके सिद्ध किया है कि संचलन शक्ति की अव्यवस्था के रोगियों में से अनेकों की कनीनिका में अन्तर हो जाता है। नेत्र पर प्रकाश डालने पर कनीनिका का आकुंचन नहीं होता, किन्तु रोगी नजीक देखता है, तब कनीनिका आकुंचित हो जाती है। इस चिह्न ने आर्गाइल रोबर्टसन कनीनिका चिह्न—(Argyll Robartson pupil sign) संज्ञा दी है। यह इस रोग का निर्णयात्मक महत्त्व का चिह्न माना जाता है।

कनीनिका प्रायः आकुंचित रहती है, रोग अधिक बढ़ने पर कदाच प्रसारित हो जाती है।

इ. *गोलक पेशियों का वध*—यह चिह्न अनेक रोगियों में उपस्थित होता है। यह चिह्न प्रायः संचलन शक्ति में अव्यवस्था होने के पहले प्रकाशित होता है। पेशीवध के दो प्रकार हैं। १. कुछ काल के लिये, २. आजीवन वध। कुछ समय के होने पर कितने क दिन या सप्ताह तक रह कर फिर पेशी ठीक हो जाती हैं।

पैरों की संचलन शक्ति में अव्यवस्था के समान कभी-कभी नेत्र गोलक की चलन शक्ति में अव्यवस्था हो जाती है। जब तक रोगी किसी वस्तु पर दृष्टि स्थिर नहीं करता, तबतक अव्यवस्था नहीं भासती जब दृष्टि को स्थिर करके देखने लगता है, तब गोलक में किञ्चित् कम्प होता है।

इस रोग के अतिरिक्त के सुषुम्णाकाण्ड कतिपय रोगों में भी नेत्रगत-चिह्न उपस्थित होते हैं, किन्तु वे गौण हैं, रोग निश्चयात्मक नहीं हैं। क्वचित् ही अनियमित रूप से उपस्थित होते हैं। अतः उनका विवेचन नहीं किया।

सत्ताईसवां प्रकरण

शारीरिक रोगों के साथ उत्पन्न नेत्ररोग

(*Medical Ophthalmology*)

यह विषय अधिक महत्वका और अति विस्तार वाला है । यूरोपिय भाषाओं में इस विषय के लिये स्वतन्त्र बड़े बड़े अनेक ग्रन्थ लिखे गये हैं । एवं उनको नेत्ररोग की पाठ्य पुस्तकों में स्थान दिया जाता है । अतः इस ग्रन्थमें भी इसका संक्षिप्त वर्णन करना आवश्यक माना है। जो शारीरिक रोग नेत्रदर्पण, दर्शननाड़ी, गोलक, गोलककी रक्तवाहिनियां, गोलककी पेशियां या दृष्टिमें विशेष परिवर्तन कराते हैं, उनका ही अब विवेचन किया जायगा ।

शारीरिक रोगोंमें निश्चित चिह्न रूप नेत्रगत परिवर्तन कराने वाले निम्न १८ रोग हैं । (१) धमनी कोष काठिन्य, (२) शिरावरोध (३) वृक्क रोग, (४) रक्तरोग, (५) मधुमेह, (६) तुंगाच्च गलगण्ड, (७) शारीरिक कृशता, (८) स्तन्यदान, (९) पोषणिका ग्रन्थि विकार, (१०) मस्तिष्क और सुषुम्णाका आवरण प्रदाह, (११) हृदयावरण प्रदाह, (१२) मुख मण्डलका विसर्प, (१३) सुजाक, (१४) कण्ठरोहिणी, (१५) कुष्ठ, (१६) अर्धावभेदक, (१७) विषम ज्वर, (१८) अज्ञात विकारज इलरोग ।

१. *धमनीकोष काठिन्य* (Arterio-Sclerosis)—वृद्धावस्था, उपदंश जैसे रोग और रुधिरमें कितनेक विषद्रव्य मिल जाने के हेतुसे सब धमनियोंमें कितनीक विकृति हो जाती है । इस विकृतिमें निम्न परिवर्तन मुख्य हैं । (१) धमनियों की दीवारमें उपादानात्मक स्थिति स्थापक द्रव्यका ह्रास होकर उसकी बदलीमें तन्तुमय द्रव्यका निर्माण होना, (२) धमनियोंके भीतरके मार्गका संकोच; (३) धमनियोंका दीवारमें स्थान स्थान पर चूने सदृश क्षारका संग्रह । जिस तरह यह परिवर्तन देहगत धमनियोंमें होता है, उसी तरह नेत्रदर्पण की धमनियोंमें भी हो जाता है । अन्तर केवल यही है कि देहस्थ अन्य भागोंकी धमनियों की प्रतीति नहीं होती, नेत्रदर्पणगत धमनियां नेत्रदर्शक यन्त्रसे दृष्टिगोचर होती हैं । जिससे उनमें उत्पन्न परिवर्तन भी अनुभवमें आता है । इसका वर्णन नेत्र[illegible]की

रक्तवाहिनियों के रोग में पहले दिया गया है। पुनः अधिक स्पष्टीकरणार्थ अत्र देते हैं।

१. जिस स्थान पर धमनी कठिन होती है। वहां पर नीचे रहती हुई शिरा स्पष्ट भासती है या बिल्कुल प्रतीत नहीं होती। धमनीसे शिरा दबी हो वहां पर नहीं भासती, उतना ही नहीं, दोनों ओर कुछ-कुछ दूरी तक नहीं दीखती। रोग बढ़ने पर निम्नस्थ शिरायें अवरोध होती हैं। फिर स्थिति कुछ उलझी हुई बन जाती है।

२. धमनीकोष कठिन हुआ हो, उस स्थानमें भीतर का मार्ग संकुचित हो जाता है।

३. धमनी के रंग और रूप ताम्बेके तार सदृश हो जाते हैं। इस स्थितिमें उत्पन्न नेत्रदर्पण के रोगों में रक्तस्राव मुख्य है। इस रक्तस्राव का आकार प्रायः ध्वाजा सदृश होता है।

४. धमनीमें अकस्मात् संकोच आने पर रोगी की दृष्टि कुछ समय के लिये बन्द हो जाती है, फिर संकोच दूर होने पर पहले जैसी हो जाती है।

५. यह स्थिति दीर्घकाल पर्यन्त रहे तो दर्शननाड़ी के सिरे की अपक्रान्ति हो जाती है।

२. *शिरावरोध*—Venous Thrombosis—इस स्थिति का वर्णन नेत्रदर्पण के रोगों में पहले हो गया है।

३. वृक्करोगों से नेत्रमें परिवर्तन—इस का वर्णन नेत्रदर्पण के रोगों में पहले हो गया; तथापि पुनः २—४ विषयों का स्पष्टीकरण अत्र करते हैं।

इस रोगसे युवाव्यक्तियों के नेत्रदर्पणमें परिवर्तन बहुधा प्रतीत नहीं होता।

सगर्भा के वृक्क रोगों से उत्पन्न नेत्रदर्पण के परिवर्तन का परिणाम बहुधा अशुभ नहीं आता। प्रसव होने पर नेत्रदर्पण की स्थिति शनैः-शनैः सुधर जाती है। वृद्धावस्था में जो वृक्कविकार उपस्थित होता है और जिन कारणों से नेत्रदर्पण में खास अन्तर उपस्थित होता है, वे अधिक घातक हैं। वैसा परिवर्तन होने के पश्चात् रोगी एकाध वर्ष से अधिक काल क्वचित् ही जीवित रहता है।

वृक्क रोगों में मूत्रोत्पत्ति बन्द हो जाती है। फिर मूत्रविष रक्त में

संगृहीत होता है। इस हेतु से दृष्टि नष्ट हो जाती है, इसका वर्णन पहले हो चुका है।

४. रक्तरोगों में नेत्रगत परिवर्तन—पाण्डु, कफपित्तज रक्तपित्त (Scurvy) रुधिर की अति रक्तता, त्रिदोषज रक्तपित्त (Purpura), आदि में नेत्रदर्पण के भीतर रुधिरस्राव उत्पन्न होता है। पाण्डु और उसके अनुरूप रोगों में नेत्रदर्पण का रंग कुछ श्वेत हो जाता है। धमनियों और शिराओं की लाली कम हो जाती है। रक्तस्राव होने पर रोगी की दृष्टि तुरन्त बन्द हो जाती है। नेत्रदर्शक यन्त्र से रक्तस्राव प्रतीत होता है।

५. मधुमेहज नेत्रपरिवर्तन—इस व्याधि में नेत्रदर्पण प्रदाह, कांचबिन्दु नेत्रदर्पण में रुधिरस्राव, दर्शनताड़ी के पिछले भाग का प्रदाह, तारामण्डल प्रदाह, नेत्रदर्पणकी रक्तवाहिनियों में मेदवृद्धि, गोलक की पेशियों का स्तम्भ, चश्मे का नम्बर बारम्बार बदलना आदि लक्षण-चिह्न प्रकाशित होते हैं। इन लक्षणों का वर्णन पहले दिया गया है।

६. तुंगाक्ष गलगण्डजन्य नेत्र परिवर्तन—Exophthalmic goitre-इस रोग में होनेवाले नेत्र परिवर्तन का विवेचन प्रकरण २४वें में हो चुका है।

७. शारीरिक कृशताजन्य शुक्लमण्डलकोथ—Keratomalacia—देह में पोषक द्रव्यों की न्यूनता या अभाव होने पर शुक्लमण्डल नाम हो जाता है। अतः इस रोग का सम्बन्ध शारीरिक स्थिति के साथ है। इस रोग का वर्णन शुक्ल मण्डल के रोगों के साथ दिया गया है।

८. स्तन्य दान से नेत्र में परिवर्तन-शिशुओं को स्तनपान करानेवाली माताओं में से किसी-किसी को दृष्टि की न्यूनता आती जाती है। कारण, स्तनपान कराते रहने से माता की देह में से कितनेक पोषक द्रव्यों का ह्रास होता है। स्तनपान कराना बन्द करने पर ह्रास हुई दृष्टि ४८ घण्टे या कुछ समय में पुनः प्राप्त हो जाती है।

९ पोषणिका ग्रन्थिविकार से नेत्र में परिवर्तन (Pituitary gland)—के रोगों में दृष्टि और नेत्रदर्पण के भीतर विकृति हो जाती है। यथार्थ में कहा जाय तो इन लक्षण और चिह्नों पर से ही इस ग्रन्थि को रोग हुआ है ऐसा विदित होता है। अतः इसका वर्णन कुछ विस्तार से देते हैं। इस रोग का स्वरूप प्रायः प्रन्थि होता है।

लक्षण और चिह्न—शिर दर्द होते रहना, दृष्टि में विकृति, रोगारम्भ

में एक या दोनों नेत्रों में निस्तेजता आना शनैः शनैः निस्तेजता बढ़ना और अधिक बढ़ने पर एक नेत्र बिल्कुल चला जाना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

दृष्टि क्षेत्रमापक यन्त्र से परीक्षा करने पर प्रारम्भ में क्षेत्र के बाहर की ओर के ऊर्ध्व भाग का ह्रास या अभाव विदित होता है। रोग बढ़ने पर क्षेत्र का बाह्य प्रदेश बिल्कुल अन्ध भासता है। यह परिवर्तन दोनों ओर होता है। प्रकरण २६ वें में दर्शाये अनुसार इस स्थिति को अर्द्धदृष्टि नाश कहते हैं।

इस अर्द्धदृष्टि नाश के अतिरिक्त कितनेक रोगियों में दृष्टि क्षेत्र के भीतर अन्य विविध न्यूनता प्रतीत होती है।

नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने पर दर्शननाड़ी के सिरे का शोथ तथा रोग जीर्ण होने पर एक या दोनों नेत्रों की दर्शननाड़ी की अपक्रान्ति विदित होती है।

उपचार—रोग बढ़नेके पहले शस्त्रक्रियासे ग्रन्थिको निकालदें, तो नष्ट दृष्टि पुनः शनैः शनैः प्राप्त होती है, यदि दर्शननाड़ी के सिरे की अपक्रान्ति होगई हो, तो दृष्टि वापस नहीं आती।

१०. मस्तिष्क और सुषुम्णा के आवरणके प्रदाहसे नेत्रमें परिवर्तन—इस रोगमें नेत्रगत निम्न परिवर्तन प्रतीत होता है।

१. नेत्र श्लेष्मावरण प्रदाह—यह प्रदाह कितनेक रोगियोंमें अत्यधिक बढ़जाता है।
२. दर्शननाड़ीके सिरेका शोथ—नेत्रदर्शक यन्त्रसे देखने पर सिरा सूजा हुआ, आगे बढ़ा हुआ और लम्बा बना हुआ भासता है।
३. कितनेक रोगियों में दृष्टिनाश होता है। नेत्रदर्शक यन्त्रसे परीक्षा करने पर नेत्रदर्पण में कुछ भी अन्तर नहीं होता। इस स्थितिकी संप्राप्तिका हेतु यह है कि, दृष्टि केन्द्रकी क्रिया मस्तिष्कावरणके प्रदाहके हेतु से बन्द होजाती है। इस प्रकारकी अन्धता कितनेक सप्ताहोंके बाद दूर हो जाती है।
४. गोलककी पेशियोंका स्तम्भ और गोलककी सतत संचलनशीलता—ये चिह्न भी कभी-कभी प्रतीत होता है।

इस प्रकारका एक रोगी लगभग ४ वर्ष पहले मेरे पास आया था आयु २२-२४ वर्षकी थी। उसे मस्तिष्कसुषुम्णा के आवरणका प्रदाह था।

इस रोगसे वह बचगया था; किन्तु दृष्टि बिल्कुल नष्ट होगई थी। कनीनिका प्रसारित थी। दर्शननाड़ीका सिरा बिल्कुल निस्तेज था। गोलक स्थिर नहीं रह सकता था; सतत गतिवान था। लगभग १ मास पर्यन्त योग्य उपचार करने पर दृष्टि ठीक सुधर गई थी।

उपचार—इस व्याधिपर पेनिसिलिन और सल्फोनेमाइड अत्यन्त सफल हैं। रोग बढ़ने पर दृष्टि बन्द हुई हो, तो आयोडाइड और स्ट्रिक्निया से अच्छा परिणाम आता है।

११. हृदयावरणप्रदाहसे नेत्रगत परिवर्तन—Peri carditis—इस रोग में आवरण के ऊपर जमे हुए रक्त का टुकड़ा मुक्त होकर अन्य धमनियों के समान कभी नेत्रदर्पणकी धमनी में भी अवरोध उत्पन्न करता है। फिर इसी हेतु से रोगीकी दृष्टि तत्काल चली जाती है। इसका वर्णन नेत्रदर्पणके रोगों में पहले किया गया है।

१२. मुखमण्डलके त्रिसर्प से नेत्रगत परिवर्तन—इस रोगमें कितनेक समय शोथ बढ़कर नेत्रगृहके भीतरके भागतक पहुँच जाता है। उस हेतुसे नेत्रगृह की शिराओं में रक्त जम जाता है या मध्यस्थ धमनी पर इतना अधिक दबाव होता है कि उस हेतुसे दृष्टि बन्द हो जाती है।

१३. सुजाकसे नेत्रगत परिवर्तन—इस रोग के कीटाणु और विषप्रकोप से जो-जो रोग होते हैं, उन सबका वर्णन पहले हो चुका है। इन रोगों में मुख्य (१) नेत्रश्लेष्मावरण का प्रदाह; (२) शुक्लमण्डल का क्षत; (३) तारामण्डल प्रदाह और (४) तन्तुमय समूह प्रदाह हैं।

१४. कण्ठरोहिणीसे नेत्रगत परिवर्तन—इस रोग में नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह, नेत्र संयोजन शक्ति का स्तम्भ और गोलककी पेशियों का स्तम्भ, ये विकार अनेक रोगियोंमें प्रतीत होता है। इन व्याधियोंका वर्णन पहले हो चुका है।

१५. कुष्ठरोग के भीतर नेत्रगत परिवर्तन—कुष्ठ के कितनेक रोगियों में पलक धाराका पाक, पलकपर कुष्ठ, नेत्रमेंसे अश्रुस्राव, नेत्रश्लेष्मावरणका प्रदाह, शुक्लमण्डलका क्षत, शुक्लमण्डल के गर्भका प्रदाह आदि नेत्ररोग प्रतीत होते हैं।

१६. अर्द्धांग भेदक—(Migrane) *में नेत्रगत परिवर्तन*—अर्द्धमस्तिष्क शूलके भीतर नेत्रगत मुख्य ३ लक्षण प्रतीत होते हैं। १-क्षणिक दृष्टिनाश; २-नेत्रके पास प्रकाश या रंगके चक्रोंकी प्रतीति; ३-प्रकाशकी असहिष्णुता तीनोंमेंसे दूसरा लक्षण बहुधा प्रत्येक रोगियोंमें होता है। रोगीके नेत्रके

पास एक ओर एक प्रकार का चक्र भासता है। उस चक्रका किनारा टेढा मेढा होता है, एवं वह रंग मिश्रित होता है।

यह चक्र उपस्थित होने के पश्चात् तुरन्त बढ़ता जाता है बाहर की ओर सरकता जाता है और फिर अदृश्य हो जाता है। पुनः दूसरा चक्र उपस्थित होता है। इस तरह शिरःशूल रहे तब तक देखाव होता रहता है। कभी-कभी वान्ति होने के पश्चात् इन चक्रों की प्रतीति बन्द हो जाती है।

कितनेक रोगियोंको अर्द्धमस्तिष्कशूल का बल मन्द होने के पश्चात् तीसरी नाड़ीके साथ सम्बन्ध वाली नेत्र पेशियों का स्तम्भ होता है। यह स्तम्भ एकाध दिन रह कर स्वयमेव शमन हो जाता है।

१७. *विषम ज्वर (Malaria) में नेत्रगत परिवर्तन*—इस रोग का प्रचार भारतमें अत्यधिक है। अतः इस रोग का सम्बन्ध नेत्ररोगों के साथ हो, उसका वर्णन अवश्य देना चाहिये। शुक्लमण्डलके रोगोंके प्रकरणमें पहले दर्शाया है कि वृत्त शाखा रूप शुक्लमण्डलके प्रदाह का सम्बन्ध विषम ज्वर के साथ रहा है एवं किसी किसी रोगी को विषम ज्वर के हेतुसे नेत्रदर्पणमें रक्तस्राव भी हो जाता है।

१८. इलका रोग—नेत्र के भीतर पुनः पुनः रक्तस्राव।

(Eale's disease-Recurrent Intra ocular Haemorrhage)

यह रोग शारीरिक अज्ञात विकृति के हेतु से अकस्मात् उपस्थित होता है। इस रोग की मुख्य दो आदत हैं। १. प्रायः २५–३० वर्ष के युवा पुरुषों को होना; २. कांच रूप रस में एकाधिक समय रक्तस्राव होना।

लक्षण और चिह्न—युवा पुरुष रात्रि को सोने के समय बिल्कुल स्वस्थ नेत्र और दृष्टिवाला होता है; किन्तु सुबह उठने पर बांयी आंख से दीखना बन्द हो जाता है; उतना ही नहीं, नेत्र के पास लाल रंग का पर्दा आ गया हो, ऐसा भास होता है। दहिनी आंख अच्छी रहती है। फिर लगभग १५ दिन बाद दहिनी आंख की दृष्टि भी उसी तरह बन्द हो जाती है। एकाध मास जाने पर फिर शनैः शनैः दृष्टि आने लगती है; किन्तु एक पक्ष पूरा नहीं होता, उतने में पुनः दोनों दृष्टि बन्द हो जाती हैं। यदि रोगी लगभग घण्टा भर शिर को झुकाकर बैठा रहता है, तो कुछ अधिक दृष्टि रहती है। सोने पर नेत्र के पास गाढा लाल रंग का पर्दा छा जाता है। इस तरह

एकाधिक आक्रमण होकर अन्त में दृष्टि सदा के लिये चली जाती है। यदि रोगी भाग्यशाली हो और आक्रमण का रोध हो जाय, तो गत दृष्टि कितनेक अंश में पुनः प्राप्त होती है।

नेत्रदर्शकयन्त्र से परीक्षा करने पर कनीनिका में जो प्रकाश गिरना चाहिये, वह अतिशय मंद गिरता है। रोगारम्भ में कांच रूप रस रक्तमय बन जाने से नेत्र दर्पण का कुछ भी आभास नहीं मिलता। जब रक्त का शोषण हो जाता है; तब शनैः शनैः नेत्रदर्पण अतिशय मंद प्रतीत होता है। कभी कभी नेत्रदर्पण की रक्तवाहिनियां टेढ़ी मेढ़ी हो जाने की प्रतीति होती है।

कारण—इस रोग का कारण अज्ञात है। रक्त परीक्षा पर रुधिर के जम जाने की क्रिया में न्यूनता नहीं भासती। एवं स्वभावतः रक्त के जम जाने में जो समय लगे, उसमें वृद्धि नहीं होती। अतः यह रोग रुधिर के किसी भी प्रकार के परिवर्तनसे नहीं होता, ऐसा माना जाता है। अनुमान है, कि नेत्रदर्पण और नेत्रमध्यपटल की रक्तवाहिनियों में किसी में किसी भी प्रकार की विकृति उत्पन्न होने से इस रोग की संप्राप्ति होती है। वह विकृति किस हेतु से होती है, यह अभी तक अविदित है। संभव है कि, रोगीके रुधिर में किसी भी प्रकार का अज्ञात विष द्रव्य उत्पन्न होता हो, जिससे शरीर की रक्तवाहिनियां और उसमें भी नेत्रगत रक्तवाहिनियों की दीवार अधिक कुडकीली (भंगुर Fragile) हो जाती हो।

उपचार—इस रोग की चिकित्सा अनेक प्रकार से की गई है, किन्तु अभी तक सफल उपाय नहीं मिला।

सूचना—यदि अधिक शराब, अधिक धूम्रपान, अति गरम चाय; इनमें से कोई व्यसन हो तो छुड़ा देने पर कितनेक रोगियों को लाभ पहुँचने की संभावना है।

———

अट्ठाईसवां प्रकरण

उपनेत्र विद्या

(Something about Eye glasses)

इस प्रकरण में जो विवेचन किया जायगा, उसमें से कुछ अंश तीसरे चौथे प्रकरण में दिया है; तथापि यह विषय पाठक वृंद को समझने में सरलता हो, इस हेतु से अत्र पुनः संक्षेप में देते हैं।

चश्मे के सम्बन्ध में पूरा बोध प्राप्त करने के लिये दृक्शास्त्र के गम्भीर अभ्यास की आवश्यकता है। यदि उस शास्त्र का सामान्य उल्लेख किया जाय तो भी कितनेक प्रकरण लिखने चाहिये। फिर भी पूरा सम्यक् बोध मिल सकेगा या नहीं, यह नहीं कह सकते। अतः अत्र पाठकों को सरलता से समझ में आसके उतना ही वर्णन किया है।

चश्मे के नम्बर देने की पेटी—इन पेटियों में छोटी बड़ी अनेक जाति हैं। सबसे छोटी पेटी में बांयी ओर -०'२५ से -६ नम्बर तक तथा दाहिनी ओर +०'२५ से +६ तक के कांच अवस्थित हैं। -चिह्न वाले कांच अन्तर्गोल और + चिह्न वाले कांच बहिर्गोल हैं। वे सब क्रमशः बढ़ने घटने वाले नम्बर के हैं। बीच में जो २ खण्ड हैं, उसमें बांयी ओर के खण्ड में -०'२५ से -४ तक और दाहिनी ओर के खण्ड में +०'२५ से +४ नम्बर तक के कांच रखे हैं। इन कांचों का कुछ भाग दोनों ओर घिसकर अपारदर्शक बनाया है। केवल बीच का हिस्सा ही पारदर्शक रखा है इस पारदर्शक भाग में ऊपर और नीचे एक एक पंक्ति लगाई हुई है। कांच केवल एक ही अक्ष में नम्बर वाला रहता है। दो पंक्ति की दिशा में कांच सादा नम्बर रहित रहता है। उससे आड़ी पंक्ति की दिशा में कांच ऊपर दर्शाये हुये नम्बर के अनुसार अन्तर्गोल या बहिर्गोल होता है। इन कांचों को - या + के चिह्न में दर्शाते हैं। उनको अर्द्धगोल कहते हैं।

पेटी के आगे के हिस्से में और दो खण्ड होते हैं। इन दोनों खण्डों में से पिछली ओर के खण्ड में ८ या अधिक उपखण्ड होते हैं। इन उपखण्डों में से एक में काला अपार दर्शक कांच, दूसरे में वैसा ही किन्तु बीच में छिद्र वाला या चीरे वाला काँच, तथा इसके आगे नं० १ से ६ तक के त्रिकोणघन कांच रखते हैं। ये कांच एक सिरे पर पतला और दूसरे सिरे

पर मोटा होने से सुरन्त विदित हो जाते हैं। आगे के खण्ड में चश्मे के कांच रखने की कमानी आदि की व्यवस्था होती है।

चश्मे के कांच की पेटी

अन्तर्गोल	अन्तरार्द्ध गोल	बाह्य अर्द्ध गोल	बाह्य गोल
—६	—४	+४	+६
—५·५०	—३·५	+३·५	+५·५०
—५	—३	+३	+५
—४·५०	—२·५	+२·५	+४·५०
—४	—२	+२	+४
—३·७५	—१·७५	+१·७५	+३·७५
—३·५०	—१·५०	+१·५०	+३·५०
—३·२५	—१·२५	+१·२५	+३·२५
—३	—१	+१	+३
—२·७५	—०·७५	+०·७५	+२·७५
—२·५०	—०·५०	+०·५०	+२·५०
—२·२५	—०·२५	+०·२५	+२·२५
—२	काला — काला छिद्र वाला — १ २ ३ ४ ५ ६		+२
—१·७५			+१·७५
—१·५०			+१·५०
—१·२५			+१·२५
—१			+१
—०·७५	त्रिकोण घन कांच		+०·७५
—०·५०			+०·५०
—०·२५	फ्रेम या कमानी आदि का स्थान		+०·२५

चश्मेका नम्बर लेनेकी बड़ी पेटी आती है, उसमें —०·२५ से और +०·२५ से —२० और +२० तकके काँच दोनों ओरके खण्डों में होते हैं। कितनीक पेटियों में —०·१२ और +०·१२ से नम्बर प्रारम्भ होता है। पिछली ओर के बीच के खण्ड में अर्द्धगोल काँच —०·२५ और +०·२५ से —६ और +६ तक के होते हैं। बीचके आगेकी ओरके खण्ड में एक काला अपारदर्शक काँच, दो काले छिद्र युक्त कांच (१ छोटा छिद्रवाला तथा एक कुछ बड़ा छिद्रवाला), चीरे वाले दो अपारदर्शक कांच, कितनेक विविध

रंगके रंजित कांच और १ से १२ नम्बर तक के त्रिकोण धन कांच होते हैं। बीचके आगे के खण्डमें २ कमानी होती हैं। एक कमानी में दोनों ओर दो दो काँच व्यवस्थित करने की योजना होती है। दूसरी कमानीमें ऊपर अनुसार व्यवस्थाके अतिरिक्त दोनों ओरकी आँख को बन्द करनेके लिये ढक्कन लगे हुए रहते हैं। नाकका ऊपर रहने वाला भाग ऊँचा नीचा करने के लिये व्यवस्था होती है। इनके अतिरिक्त फ्रेम या कमानी छोटे बड़े कपाल पर व्यवस्थित होसके इसलिये छोटी बड़ी होसकती है, प्रत्येक काँच रखनेके खण्डोंमें आगे के काँचको फिराने के लिये एक घराड़ी या चक्र लगा हुआ रहता है। एवं इन खण्डों में ० से ९० और वहाँ से १८० तक के अर्द्धगोलाकार में अङ्क लगे हुए होते हैं।

उक्त वर्णन परसे यह जिज्ञासा होगी कि,- और + ये चिह्न क्यों लगाये हैं? ऊपर कहे अनुसार अन्तर्गोल प्रकार दर्शानेके लिये '-' का प्रयोग किया जाता है; तथा '+' चिह्न बहिर्गोलके लिये प्रयोजित होता है। - या + चिह्न वाले किन्तु दोनों ओरका थोड़ा भाग घिसकर अपारदर्शक बनाया हो, ऐसे काँच अर्द्ध बहिर्गोल होते हैं। अर्द्ध अन्तर्गोल और अर्द्ध बहिर्गोल काँच एक अक्षमें बिल्कुल सादे नम्बर रहित काँच जैसे होते हैं। उससे आई अक्ष में वे अन्तर्गोल या बहिर्गोल होते हैं। इन कांचों के नम्बर गणितशास्त्र और दृक्शास्त्र के सूक्ष्म अभ्यास के आधार से व्यवस्थित किये हैं। उसी अभ्यास के परिणाम में दृक्शास्त्राचार्यों ने कितनेक नियम निर्माण किये हैं। इनमें मुख्य निम्नानुसार हैं:—

(१) जलती हुई बत्ती या किसी भी प्रकाश डालने वाली वस्तु में से प्रकाशके किरण निकलते हैं। ये किरण निकलनेके पश्चात् एक दूसरेसे अधिक से अधिक दूर होते हैं; अर्थात् किरण फैलते हैं। इस हेतु से किरण प्रकाश केन्द्र से जितना अधिक दूर जाय, उतना ही दो किरणों के बीच का अन्तर बढ़ता ही जाता है। अन्त में लगभग ६ मीटर (३० फीट) के अन्तर पर पहुँचने पर परस्पर ऐसे हो जाते हैं कि उनको लगभग समान्तर कह सकते हैं। दृक्शास्त्र में ६ मीटर या अधिक अन्तर पर रही हुई वस्तुओं से निकलने वाले किरण समान्तर माने जाते हैं। अतः ऐसे मीटर या उससे अधिक अन्तर पर से आने वाले करणों को पृथ्वीनि पर पड़ने पर अपन भी समान्तर किरण कहेंगे।

(२) प्रकाश जब किसी अपारदर्शक वस्तु पर गिरता है, तब उस प्रकाश के किरणों में से कितनेक उस वस्तु में ही मिल जाते हैं। कितनेकों का उस वस्तु पर प्रति प्रकाश गिरता है, इस हेतु से वह वस्तु प्रकाशित होती है,

कितनेक उस वस्तु पर गिरकर उसका प्रतिफलित प्रकाश डालते हैं। वस्तु के चमकाट पर स प्रतिफलित प्रकाश का आधार रहा है, साफ की हुई ताम्बे पीतल की वस्तु और दर्पण को अधिकतम प्रतिफलित प्रकाश डालने वाली वस्तु कह सकेंगे।

(३) जब प्रकाश किसी भी पारदर्शक वस्तु पर गिरता है तब प्रकाश के किरण उसमें से निकलते हैं यदि प्रकाश को ग्रहण करनेवाली वस्तु चारों ओर के वायुमण्डल की अपेक्षा अधिक गाढ़ी है, तो प्रकाश के किरणों का वक्रीभवन होता है, इस नियम अनुसार वायु की अपेक्षा कांच अधिक गाढ़ा है।

(४) यदि किरण बाह्यगोल कांच में से निकले, तो समान्तर किरण उस तरह वक्रीभवन होते हैं कि, उस कांच के पीछे कितनेक बिन्दु के आगे सब किरण मिल जाते हैं। यह बिन्दु और कांच के पिछले भाग के बीच का जो अन्तर रहता है, उस अन्तर का आधार कांच के बहिर्गोलपने पर अवलम्बित है। उदा० ऐसा कांच हो कि, जिसमें से निकलने वाले किरण कांच के पीछे १ मीटर की दूरी पर मिल जाते हैं। उस कांच को नम्बर १ का कांच कहेंगे। (चश्मे की पेटी के भीतर जो +१ नम्बर का कांच रहता है, वह ऐसा है कि उसमें से समांतर किरण निकलते हैं, वे वक्रीभवन होने के पश्चात् १ मीटर की दूरी पर मिलकर एक बिन्दु रूप प्रतीत होते हैं। यदि नं० २ का कांच हो तो उसमें से निकलने वाले समान्तर किरण वक्रीभवन होने के बाद ½ मीटर की दूरी पर मिल जाते हैं। उसी अनुसार नं० ४ के कांच में से निकलनेवाले किरण ¼ मीटर की दूरी पर संयोजित हो जाते हैं। दूसरी ओर ०·५ का कांच २ मीटर की दूरी पर किरणों को सम्मिलित करता है।

(५) समान्तर किरण यदि अन्तर्गोल कांच में से निकले तो उनका वक्रीभवन इस तरह होगा कि कांच में से निकलने के पश्चात् वे फैलने लगते हैं, एवं जैसे जैसे अन्तर बढ़ता जाता है, वैसे वैसे अधिक प्रसारित होते हैं। नं० १ के कांच में से ये किरण उतने तक फैलते हैं कि, वे ही किरण यदि पुनः कांच के आगे के हिस्से में आ जायँ तो १ मीटर की दूरी पर पुनः सम्मिलित हो जायँ, ऐसा माना जायगा। उसी तरह नं० २ के कांच में से निकलने वाले किरण आध मीटर की दूरी पर मिल जाते हैं।

(६) बहिर्गोल और अन्तर्गोल कांच में वक्रीभवन होता है, उसी तरह अर्द्ध अन्तर्गोल और अर्द्ध बहिर्गोल कांच में भी होता है। किन्तु केवल

एक ही रेखा में। दूसरी ओर सादा कांच होने से किरणों का वक्रीभवन नहीं होता।

(७) त्रिकोण घन कांच लगभग त्रिकोण के समान होता है। निम्नभाग मोटा होता है, उसका तलभाग और ऊपरका भाग पतला होता है, उसे शिखर कहते हैं। इसकांच में से निकलनेवाले समान्तर किरणों का उस तरह वक्रीभवन होता है कि, नेत्रके पास ऐसा कांच रखने पर उसमेंसे प्रतीत होने वाली वस्तु उस कांच के शिखरकी ओर हटी हुई भासेगी। शिखर कोन जितना बड़ा हो, उतना ही हटने का अन्तर अधिक होगा। नं० १ वाले त्रिकोणघन कांचमें से देखने पर वस्तु जितनी दूर सरकी हुई भासेगी, उसकी अपेक्षा नं० २ के कांचमें से दूनी दूरी पर तथा नं० ४ के काँचमें से ४ गुनी दूर भासेगी।

उपर्युक्त वर्णन पर से चश्मे की पेटी में रहे हुए कांच को नम्बर किस नियम अनुसार दिये हैं, उसकी कुछ कल्पना पाठकों को हो सकेगी। केवल इतने संक्षिप्त वर्णन परसे विद्यार्थियों को पूरा बोध नहीं हो सकेगा, यह मैं स्वीकार करता हूँ। किन्तु जिनने दृक्शास्त्र का कुछ भी अभ्यास नहीं किया, उनको अधिक समझाना कठिन है। अतः अधिक विस्तार नहीं किया।

चश्मे की पेटी में एक अपारदर्शक कांच तथा २–३ चीरे वाले अपारदर्शक कांच होते हैं, इनका उपयोग एक आंख को कांच लगाने के समय दूसरी आंख को बन्द करने के लिए होता है। कमानी में एक ओर नम्बर वाला कांच डालते हैं तथा दूसरी ओर के नेत्र को बन्द करने के लिये काला अपार दर्शक कांच रखा जाता है। चीरे वाले कांच का उपयोग प्रकरण २६वें में समझाया जायगा, उस अनुसार चश्मे के प्रयोग से सुधरनेवाले नेत्ररोगों में मुख्य लघुदृष्टि, दीर्घदृष्टि, एक अक्ष रेखा में लघु या दीर्घदृष्टि आदि है। जब एक अक्षरेखा में ही लम्बी या छोटी दृष्टि हो, तब उसी रेखा का नम्बर लिया जाता है और उसी रेखा से ही देख सके, इसलिये चीरे वाला कांच नेत्र के आगे रखा जाता है। उदा० दहिने नेत्र में इस प्रकार की विकृति है, तब चश्मे की कमानी चढ़ाकर बांयी आंख के पास काला अपारदर्शक कांच तथा दहिनी आंख के पास चीरे वाला कांच रखें। उस कांच में चीरा खड़ा रखें। फिर रोगी शुक्लमण्डल की खड़ी रेखा में से देखता है। यदि उस समय रोगी को स्पष्ट प्रतीत हो, तो माना जाता है कि खड़ी रेखा ठीक है। उसी तरह चीरे को आड़ा रखकर परीक्षा करें। यदि उस प्रकार से रोगी को स्पष्ट न दीखता हो तो उस रेखा को चश्मे की आवश्यकता है, ऐसा समझा जाता है। अन्य एक अपारदर्शक

कांच होता है, उसमें एक छोटा छिद्र होता है। जब कनिनिका बड़ी हो गई हो और रोगी पढ़ सकता है या नहीं, ऐसी परीक्षा करनी हो, तब ऐसे छिद्र वाले कांच का उपयोग किया जाता है।

कितनेक रोगी भिन्न भिन्न रंगदार चश्मे पसन्द करते हैं किसे कौन रंग अनुकूल रहेगा, दर्शाने के लिये विविधि रंग के कांच पेटी में रखे जाते हैं।

आगे के खड्ड में दो कमानी हैं। उनमें से एक सादी दोनों ओर दो दो कांच रह सकें वैसी होती है। कितनीक कमानियों में अर्द्धगोल कांच की अक्ष रेखा दर्शाने के लिये आगे के हिस्से में अंक अंकित किये होते हैं। रेखा दर्शाने की रीति आगे समझायी जायगी।

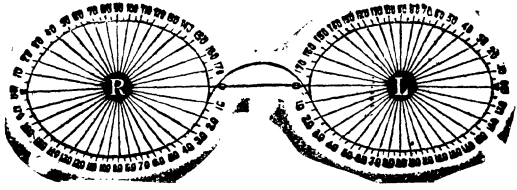

चित्र नं० १६८

दूसरी कमानी अधिक योजना वाली होती है। नाक ऊपर रहने वाले भाग को ऊँचा नीचे करने की, न्यूनाधिक झुकता करने की, कनपटी के अन्तर के समान छोटी बड़ी करने की एक एक नेत्र को बन्द करने की तथा अर्द्धगोल कांचों को भिन्न भिन्न अक्ष रेखा में फिराने की व्यवस्था वाली होती है। यह कमानी चित्र नं० १६८ में दर्शायी है।

नम्बर लेने की तैयारी और नियम।

प्रारम्भमें नेत्रकी सूक्ष्म परीक्षा करके नेत्रका कोई बाह्य रोग हो तो उसकी यादी करनी चाहिये। फिर दृष्टि कितनी है, उसकी जांच करें। इस परीक्षाके लिये कमरा लगभग २० फुट लम्बा होना चाहिये। उस कमरेके एक सिरे पर दीवार में स्नेलनके अक्षरोंका बोर्ड लटका रखें। उन अक्षरोंमें से सबसे बड़ा अक्षर, जिसके नीचे ६० का अंक या D=60 लिखा है, वह अच्छे नेत्रवालों को ६० मीटर अर्थात् लगभग २०० फुट दूरीसे दीखता है। किन्तु २०० फुटका लम्बा कमरा नहीं हो सकता, इसलिये बिल्कुल नीचेके अक्षर उस तरह बनाये हुए होते हैं कि, स्वस्थ मनुष्यको ६ मीटर

(२० फुट) की दूरीसे ठीक स्पष्ट भासते हैं। यदि रोगीको वे अक्षर प्रतीत हों, तो उसकी दृष्टि $\frac{6}{6}$ है,ऐसा लिखा जाता है। ६ मीटरसे दीखते हैं इसलिये ६ और ६ मीटरसे प्रतीत होनेवाले अक्षर दीखते हैं इसलिये $\frac{6}{6}$ दृष्टि है ऐसा लिखा जाता है।

अक्षरोंकी दूसरी पंक्तिके नीचे D = 9 लिखा होता है। अतः ये अक्षर ९ मीटरकी दूरीसे दीखना चाहिये, किन्तु रोगी इन अक्षरोंको यदि ६ मीटरकी दूरीसे ही देख सकता हो, तो दृष्टि $\frac{6}{9}$ है, ऐसा लिखना चाहिये। उस तरह तीसरी पंक्तिके नीचे १२, चौथीके नीचे १८, पांचवींके नीचे २४, छठवींके नीचे ३६ और सातवींके नीचे ६० अंक होते हैं। अलग अलग तख्ते पर अलग अलग अक्षर होते हैं। उनके नीचे अंक भी अलग अलग होते हैं। कितनेक तख्ते मेट्रिक रीति के अनुसार अर्थात् मीटरोंमें नहीं, किन्तु फुटमें होते हैं। उन तख्तों पर २००–१०० आदि अंक होते हैं, अतः उसकी दृष्टि $\frac{20}{20}$ लिखी जाती है।

ऐसे अक्षर अंग्रेजी, हिन्दी, गुजराती, उर्दू आदि अनेक भाषाओं में लिखे गये हैं। अपठित मनुष्यों के लिये भिन्न-भिन्न कदकी बिन्दी, चिह्न, कली आदि विविध वस्तुओं का आकार छोटे बड़े कदके बनाते हैं। रोगीको तख्ते से २० फुट दूर खड़ा रखकर तख्ते परके अक्षर पढ़नेको कहें। यदि $\frac{6}{6}$ या $\frac{6}{9}$ पढ़ सके तो उसकी दृष्टि चाहिये उतनी है, ऐसा विदित होता है। ऐसे व्यक्तियों के लिये चश्मे की आवश्यकता नहीं है। यदि नेत्र में कोई रोग न हो और दृष्टि भी $\frac{6}{6}$ या उससे कम हो तो + काँच नम्बर २५ से अधिकाधिक नम्बर के रखते जायं। यदि + काँच से दृष्टि बढ़नेके बदले में घटने लगे तो – काँच रखें। फिर जिस काँच से $\frac{6}{6}$ दृष्टि हो जाय, उसे निर्णित करें।

नं० १६९

काँचके सम्बन्ध में यह कहना आवश्यक है कि, जिस काँचसे $\frac{6}{6}$ पढ़ सकेंगे, उसके आगेके एक दो नम्बर अधिक हों ऐसे काँचसे भी उतना ही

स्पष्ट दीखेगा; किन्तु उस अधिक नम्बर वाले काँच से दृष्टि घिसती है और भविष्य में हानि पहुँचती है। अतः काँच होसके तबतक कम नम्बर का देना चाहिये।+ काँच रोगीको अनुकूल रहे और दृष्टि $\frac{6}{6}$ रहे, तबतक नम्बर बढ़ता जाय और योग्य+रहे उस काँच को निर्णित करें। किन्तु कितनेक रोगी ऐसे होते हैं कि रोगीकी दृष्टि – या + किसी भी काँचसे $\frac{6}{6}$ नहीं होती। ऐसे रोगी अनेक बार अर्द्धगोल काँचके उपयोग से $\frac{6}{6}$ तक पहुँच जाते हैं। क्योंकि ऐसे रोगियों की आँखकी एक अक्षरेखामें दूसरी अक्षरेखाकी अपेक्षा विशेष बाधा पहुँचती है। इस प्रतिबन्धका विचार अगले प्रकरणमें किया जायगा। इसके निर्णयार्थ सूर्यके किरणों के समान एक चित्र आता है। चित्र न०१६९ सूर्यकिरण पत्रक (Sun's rays chart) देखें।

इस चित्र को २० फुट दूर लटकावें। फिर एक-एक आँख को बन्द कराकर रोगी से पंक्ति देखने को कहें। यदि दोनों अक्षरेखा ठीक होंगी, तो खड़ी और आड़ी पंक्तियां स्पष्ट दीखेंगी। खड़ी पंक्ति स्पष्ट दीखे, तो नेत्र की खड़ी अक्षरेखा योग्य नहीं है, ऐसा सिद्ध होता है। प्रायः खड़ी अक्षरेखा छोटी दृष्टिशाली अर्थात् – कांच से सुधर सके ऐसी होती है। यदि आड़ी पंक्ति स्पष्ट दीखती है, तो नेत्र की आड़ी अक्षरेखा ठीक नहीं है – ऐसी कल्पना कर सकते हैं। आड़ी रेखा में प्रायः लम्बी दृष्टि की न्यूनता होती है, यह + कांच से सुधरती है। अतः – या + कांच से $\frac{6}{6}$ दृष्टि न होती हो तथा आड़ी पंक्ति स्पष्ट प्रतीत होती हो तो + अर्द्धबाह्य गोल कांच खड़ी अक्षरेखा आवे उस तरह रखना चाहिये। पहले २५ से प्रारम्भ करे और $\frac{6}{6}$ दृष्टि हो तब तक बढ़ाते जायँ।

उदा०—एक रोगी +६ से $\frac{6}{6}$ तक पहुँचा, सूर्यकिरण चित्र में उसे दाहिनी आँख से आड़ी पंक्ति स्पष्ट प्रतीत होती हो किन्तु खड़ी पंक्ति अस्पष्ट दीखती हो। + अर्धगोल काँचों में से +१ रखने पर खड़ी पंक्तियां स्पष्ट प्रतीत होने लगें तथा +६ के साथ +१ अर्द्धगोल कांच रखने पर दृष्टि $\frac{6}{6}$ हो जाय तो रोगी को चश्मे का नम्बर लिख दिया जाता है कि दाहिनी आंख गोल (सह)+६ = +१ अर्द्धगोल रेखा खड़ी। उसी अनुसार – कांच के लिये समझें।

अर्द्धगोल कांच की अक्षरेखा।

इस अक्षरेखा को किस तरह जानना, यह कार्य कुछ कठिन है। विद्यापीठ के नेत्रविद्या के परीक्षक रूप से अनेक वर्षों से कार्य करने पर मुझे अनुभव में हुआ कि डाक्टरी विद्या की अन्तिम वर्ष की परीक्षा देने

वाले विद्यार्थियों में से भी अनेकों को इस बात का बोध नहीं होता। पहले कहा गया है कि चश्मे की कमानी के अगले हिस्से में अर्द्धगोलाकार भाग में ० से १८० पर्यन्त अंश के अङ्क होते हैं। एक काट कोन ९० अंश का होता है। दोनों कोन मिलकर १८० अंश के होते हैं। फिर रोगी की आंख की खड़ी या आड़ी अक्षरेखा कितने – या + की है, इसका निर्णय करके उस कांच को कमानी पर रखें। अर्द्धगोल कांच पर २ सूक्ष्म पंक्ति होती हैं। इन पंक्तियों की आड़ी रेखा में जो कांच का भाग रहता है, वह नम्बर वाला होता है। यह नम्बर वाला भाग यदि आड़ी पंक्ति में हो, तो खड़ी पंक्ति वाला जो भाग हो वह इस कांच की रेखा। मान लो कि, आंख की आड़ी अक्षरेखा + अर्थात् लम्बी दृष्टि वाली है। वह +२ से ठीक सुधरती है, अर्थात् अर्द्धगोल कांच को इस तरह रखें कि सूक्ष्म पंक्तियां खड़ी रहें। उसे अन्य शब्दों में कहें तो +२ अर्द्धगोल अक्षरेखा खड़ी। उस तरह चश्मे वाले पर पत्रक लिख दिया जाता है।

यदि आड़ी या खड़ी पंक्ति स्पष्ट प्रतीत होने के बदले में कोई तिर्यक् पंक्ति साफ दीखे तो नेत्र की उस अक्षरेखा में कुछ कसर है, ऐसा समझना चाहिये। ऐसे रोगी की आंख के पास अर्द्धगोल कांच को रखें, उसकी अक्ष-रेखा आड़ी या खड़ी न रखें, किन्तु तिर्यक् रखें और कमानी पर जो ० से १८० तक अङ्क हैं, उनमें से जिस अङ्क पर कांच के भीतर की निम्न पंक्ति आ जाय, वह अङ्क लिखें। उदा०—दाहिनी आंख के पास कांच रखा, वह उस तरह कि कांच की पंक्ति १५० पर रही है। तब चश्मेवाले को पत्रक दें कि +२ अर्द्धगोल अक्षरेखा १५० बाहर और नीचे। इस तरह प्रत्येक रेखा के लिये समझ लेवें।

नम्बर लेने की पद्धति।

नम्बर लेने की अनेक रीति हैं। उन सबका अत्र विवेचन करने पर अति विस्तार हो जाता है। उतना ही नहीं, पाठकों को याद रखना कठिन हो जायगा। अतः केवल दो पद्धति अब देते हैं। १. सामान्य तख्ते वाली और २. प्रकाश प्रतिबिम्ब पद्धति।

(१) *सामान्य पद्धति*—इस पद्धति में चश्मे का नम्बर लेने के लिये रोगी को ६ मीटर (२० फुट) दूर खड़ा रखें। कमरे में प्रकाश पूरा होना चाहिये। यह प्रकाश कम हो तो अक्षरों के तख्ते पर प्रकाश गिरे, उस तरह योजना करनी चाहिये, सामने की दीवार स्नेलन के अक्षर या उसके अनुरूप चिंह्न आदि व्यवस्थित करें। उसी दीवार पर सूर्य किरण चित्र एक तख्ते पर

सविग्रह करें। फिर रोगी को चश्मे का नम्बर लेने की कमानी चढ़ावें और एक आंख बन्द रखें। बांयी आंख बंद रक्खें और दांयी आंख से अक्षर पढ़नेको कहें। रोगी चौथी पंक्ति के अक्षर अच्छी तरह पढ़ सके तो उस पंक्ति के नीचे कौनसा अंक है, वह देखें। कितनेक तख्तों में ४ थी पंक्ति के नीचे D.१८ लिखा होता है, अतः रोगी की दृष्टि $\frac{६}{१८}$ जितनी मानी जायगी। यदि +१ कांच रखने पर दृष्टि सुधर सके और ५वीं पंक्ति पढ़ सके, तो +२ +३ इस क्रम से कांच रखते जायं और जिस कांच से $\frac{६}{६}$ पढ़ सके, वह कांच रोगी का नम्बर है, ऐसा निश्चित होता है। मान लो कि +३ से $\frac{६}{६}$ तक दृष्टि पहुँच जाय, किन्तु इतर किसी कांच से आगे न बढ़ सके तब +३ के साथ +०'२५, अर्द्धगोल कांच रखकर देखें यदि लाभ प्रतीत होता हो तो +०'५० +०'७५, +१ रखते जायं और $\frac{६}{६}$ हो जाय, तब उस काँचकी यादी करें। अर्द्धगोल काँच पहले उस तरह व्यवस्थित करें कि उसकी अक्षरेखा खड़ी रहे, वह अनुकूल न रहे तो आड़ी रखें। इन दो अक्ष रेखाओं के बीच भिन्न भिन्न अक्ष रेखा बदलकर परीक्षा करें। जो सुविधाप्रद हो, उसकी यादी करें। किस अक्ष रेखा में + अर्द्धगोल कांच ठीक कार्य करेगा, उसके निर्णयार्थ उपर्युक्त सूर्यकिरण चित्र का उपयोग करें।

यदि + काँचसे रोगीकी दृष्टि न सुधरे और दीखना कम हो, तो −०'२५ से प्रारम्भ कर आगे बढ़ें। $\frac{६}{६}$ दृष्टि होने पर उस काँचकी यादी करें। आवश्यकता हो तो अर्द्धगोल काँच बढ़ावें। उसमें $\frac{६}{६}$ दृष्टि हो जाय, तो वह काँचनेत्रके योग्य है, ऐसा मानलें।

सामान्य चश्मेके व्यापारी और आँखके रोगों का जिसने खास अभ्यास न किया हो ऐसे डाक्टर भी प्रायः इसी पद्धति का उपयोग करते हैं। सामान्यतः यह पद्धति व्यवहृत होती है; किन्तु क्वचित् इस पद्धति में ऐसी गम्भीर भूल होती है कि + के स्थान पर − काँच दे दिया जाता है, फिर रोगीकी आँख सुधरने के बदलेमें बिगड़ती है, इस हेतुसे नेत्रवैद्य इस रीतिका उपयोग दूसरी पद्धति की सहायता करनेके लिये ही करते हैं।

२. प्रकाश प्रतिबिम्ब पद्धति—

Retinoscopy

चित्र नं०१७० वां देखें। इस पद्धतिमें रोगीको पूछना नहीं पड़ता कि, इस काँच से कैसा दीखता है। नेत्रवैद्य स्वयमेव सच्चे नम्बर को जान लेता है। इस पद्धति में, कितनेक नेत्रवैद्य होमेट्रोपिन और कोकेन या युफ्थेलमिन जैसी औषधी डालकर कनीनिका को प्रसारित करते हैं। कनीनिका का

प्रसारण करने में ४० वर्ष से अधिक आयुवालों के लिये सम्हाल रखने की सूचना पहले ही दी गई है। उसपर खास लक्ष्य देना चाहिये।

चित्र नं० १७०

प्रतिफलित प्रकाश से नेत्रका नम्बर लेने की क्रिया।

कनीनिका प्रसारित होने पर रोगी को अन्धकार वाले कमरे में एक कुर्सी पर बैठावे। रोगी के समीप में या शिर के पीछे किन्तु शिर से कुछ ऊँचाई पर एक बत्ती रखे। नेत्रवैद्य रोगी के सामने लगभग ३ फुट की दूरी पर एक स्टूल या कुर्सी पर बैठे। रोगी को चश्मे की कमान चढ़ाकर नेत्रवैद्य अपने दहिने हाथ में नेत्रदर्शकयन्त्र या एक छोटा मध्य में छिद्र वाला प्रतिफलित प्रकाशप्रदर्पण (Retinoscopic mirror) रखते हैं। चित्रनं० १७१ देखे। यह दर्पण समतल या अन्तर्गोल होता है प्राय समतल दर्पण का उपयोग होता है। (अत्र जो वर्णन किया जाता है, यह समतल दर्पणके लिए ही है। नेत्रवैद्य इस दर्पण को अपनी दहिनी आंखके पास इस तरह सन्नित करें कि मध्य में रहा हुआ छिद्र नेत्र वैद्य की कनीनिका के सामने आ जाय और नेत्र वैद्य उस छिद्र में से रोगीकी कनीनिका को देख सके। उस समय रोगी के समीप या पिछली ओर रही हुई बत्ती का प्रकाश नेत्रवैद्य की आंख के आगे रहे हुये दर्पण पर गिरे। एवं उसका प्रतिबिम्ब रोगी की कनीनिका

पर गिरे। रोगी की कनीनिका पर प्रकाश पड़ने के साथ ही कनीनिका में से रक्ताभ प्रकाश प्रतीत होता है। फिर नेत्रवैद्य अपने हाथ में रहे हुये दर्पण को आड़ी पंक्ति में दहिनी ओर चलावें। फिर तुरंत बांयी ओर चलावें दर्पण चलने के साथ ही साथ लाल रंग का कनीनिका प्रकाकित भाग (छाया) चलने लगता है। उस छाया के मध्य भाग की अपेक्षा एक ओर के अर्द्ध चन्द्राकार किनारे की ओर देखने पर यह गति अधिक स्पष्ट भासती है। यह गति किस ओर होती है, उस पर नेत्र की स्थिति का आधार रहता है। यदि उसकी गति दर्पणकी गति की सामने की ओर हो, तो रोगी के नेत्र में – १ की अपेक्षा अधिक छोटी दृष्टि है, ऐसा सिद्ध होता है कि – ०·२५ का कांच रोगी के नेत्र के पास रखकर देखें और छाया की गति पर दृष्टि देवें। यदि छाया की गति दर्पण की गति की ओर ही (जिस दिशा में दर्पण को चलावें, उसी दिशा में छाया) चले, तो जिस कांच द्वारा गति में अन्तर हुआ उस कांच में —१ बढ़ाने पर जो अंक हो वह आंख के कांच का नम्बर माना जायगा। उदा० दहिनी आंख में छाया की गति दर्पण की गति की सामने ओर है। – ३ रखने पर गति दर्पण की ओर हुई। –३+–१=–४ अर्थात् रोगी को – ४ के कांच की आवश्यकता है।

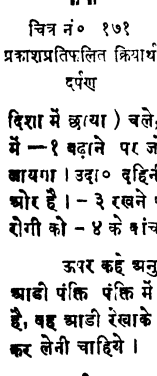

चित्र नं० १७१
प्रकाशप्रतिफलित क्रियार्थ दर्पण

ऊपर कहे अनुसार दर्पणको आडी पंक्तिमें चलाने पर छाया भी आडी पंक्ति पंक्ति में ही चलती है। जिस परसे–४ काँच निश्चित किया है, वह आडी रेखाके लिये ही। विस्मरण न हो जाय इसलिये – ३ की यादी कर लेनी चाहिये।

उसी अनुसार दर्पणको खड़ी पंक्तिमें चश्मेकी कमानी में रोगीके नेत्रके पास – ३ काँच रखकर चलावें। यदि उसी काँचसे अर्थात् इस उदाहरण में – ३ के ही काँच से छाया की गति बदल जाय तो लिखा जाता है कि, |—३. फिर आड़ी और खड़ी पंक्ति, दोनों चरेखाओं की साथमें यादी कर हो, तब इस तरह लिखा जाता कि, + –$\frac{3}{3}$ दोनों अक्षरेखा–३ है। उसमें – १ मिलने पर – ४ दोनों रेखाओं के लिये हुए। अतः ४ – का अन्तर्गोल काँच देने पर रोगीके नेत्रकी न्यूनता दूर होजाती है। उसीतरह बांयी आँखमें में भी न्यूनता को निर्णित करलें। यह तो बिल्कुल सरल बात हुई;

किन्तु कभी कभी दोनों अक्षरेखा भिन्न भिन्न होती हैं जैसे कि आड़ी अक्ष-रेखा – ३ हो और खड़ी अक्षरेखा – ४ हो तो ऐसा लिखा जायगा कि + –४/–३। इनमें – ३ का काँच तो दोनों अक्षरेखाके लिये समान है जिससे – ३ का काँच तो अन्तर्गोल रखते हैं। शेष – १ खड़ी रेखामें रखा जाता है। यह पहले दर्शाया गया है कि अर्द्धगोल अन्तर्गोल काँच एक रेखा में ० होता है और दूसरी रेखामें नम्बर वाला होता है। अतः –१ अर्द्ध अन्तर्गोल काँच रखा जाय और उसका०वाला भाग आड़ा रखे और –१ वाला भाग खड़ा रखे तो रोगी के नेत्रमें जो न्यूनता है, वह दूर हो जाती है। ऐसे करनेके लिये अर्द्ध अन्तर्गोल कांच पर जो सूक्ष्म पंक्ति होती है (नम्बर वाला भाग) उसे आड़ा रखने पर अर्थात् कांच की अक्ष रेखा को आड़ा रखने पर नेत्र की न्यूनता शमन हो जाती है। अतः चश्मे वाले पर पत्रक लिख दिया जाता है –३ अन्तर्गोल = –१ अर्द्ध अन्तर्गोल अक्ष रेखा →।

यदि एक रेखा– हो और दूसरी रेखा + हो तो क्या करना चाहिए या रेखा आड़ी खड़ी न होकर तिर्यक् हो तो किस तरह निर्णित करना, वह आगे समझाया जायगा।

ऊपर दर्शाया गया है कि छायाकी गति दर्पणकी गति से भिन्न दशा में हो, तो लघु दृष्टि मानी जाती है, वह कांच से सुधर सकती है। किन्तु दर्पण की गति जिस दिशा में हो, उसी दिशा में छाया की गति हो तो क्या समझना चाहिये? छाया की गति दर्पण की गति की दिशा में हो तब ३ स्थिति हो सकती हैं। १. दीर्घ दृष्टि, २. स्वस्थ नेत्र; ३. न्यून लघु दृष्टि।

(१) दीर्घ दृष्टि—इन तीनों का स्पष्टीकरण करते हैं। यदि +१ कांच नेत्र के पास रखें और उससे छाया की गति फिर भी दर्पण की गति की दिशा में ही होती रहे तो रोगी की आंख दीर्घ दृष्टि वाली है, ऐसा निश्चित होता है। फिर +१·२५, १·५० इस तरह अधिकाधिक नम्बर के कांच रखते जायँ और अन्त में जो कांच आ जाय, वह लिख लें। जिस तरह – कांच के लियेकिया गया उसी तरह खड़ी और आड़ी रेखा में जांच करनी चाहिये। उदा० खड़ी रेखा +४ आई और आड़ी रेखा +४ आई तो उसमें से +१ कम करने पर +३ का कांच रोगी को देने पर उसका (+४ का) प्रतिबन्ध दूर हो जाता है। किन्तु मान लो कि खड़ी रेखा +४ हो और आड़ी रेखा +६ हो तो +४/+६ इन दो अंकों में से +१ कम करें। जिससे + और +५ होता है। +३ दोनों रेखाओं के लिये समान है अर्थात् +३

बाह्यगोल = +२ अर्द्ध बाह्यगोल अक्ष रेखा खड़ी, इस तरह लिख दिया जाता है।

स्वस्थ नेत्र—यदि +१ कांच रखने परही छाया की गति बदल जाय किन्तु +०'७५ का कांच रखने पर छाया की गति वही रहे, तो नेत्र स्वस्थ हैं, ऐसा समझना चाहिये।

न्यूनलघु दृष्टि—+१ रखने पर छाया की गति जिस तरह बदलती है, उस तरह +०'५ रखने पर भी बदल जाय तो नेत्र में -०५ जितनी न्यूनता है। दोनों रेखाओं का शोध भी उसी तरह कर लेना चाहिये।

कभी कभी ऐसा बनता है कि नेत्र की एक अक्ष रेखा लम्बी दृष्टि और दूसरी रेखा छोटी दृष्टि वाली होती है। दर्पण में से परीक्षा करने पर एक रेखा में छाया दर्पण की गति से विपरीत दिशा में चलती है और दूसरी रेखा में छाया की गति दर्पण की गति के समान ही होता है। ऐसे रोगियों में प्रत्येक रेखा की छाया जिस कांच से बदल जाय, उस कांच का नम्बर जान लेवें। उदा० दहिनी आंख में खड़ी रेखा का कांच -३ और आड़ी रेखा का +२ हो; तथा बायीं आंख में खड़ी रेखा का -१ और आड़ी रेखा का +४ हो तो लिख दिया जाता है कि द० $+\frac{-३}{+२}$ बां० $+\frac{-१}{+४}$।

पहले दहिनी आंख की जांच करें। खड़ी रेखा -३ है, उसमें नियम के अनुसार -१ बढ़ावें, जिससे-४ होता है। उसी अनुसार आड़ी रेखा +२ है उस में से +१ कम करें, जिससे +१ रहता है इस आंख का पत्रक दो रीति से लिखा जाता है। +१ गोल = -४ अर्द्ध गोल रेखा → अथवा -४ गोल = +५ अर्द्धगोल रेखा ↓ उसी अनुसार बांयी आंखको देखें। खड़ी रेखा-१ है, उसमें -१ बढ़ाने पर- रहुए। आड़ी रेखा +४ है उसमें से +१ कम करने पर +३ रहे। इस कांच को दो रीति से लिख सकते हैं। -२ गोल = +५ अर्द्धगोल रेखा → अथवा +३ गोल = -५ अर्द्धगोल रेखा →

यदि रेखा खड़ी या आड़ी न हो, तिर्यक् हो तो छाया खड़ी या आड़ी नहीं चलेगी। तिर्यक् चलेगी। यदि दोनों रेखा तिर्यक् हों × ऐसा लिखा जाता है; किन्तु एक सीधी और एक तिर्यक होती है, तब—\—ऐसा लिखा जाता है अब आड़ी रेखा को ठीक सुधारने के पचात्। रेखाको सुधारेंगे और जो कांच रखेंगे, उसकी रेखा खड़ी न होकर कुछ टेढी आयगी।

यदि अन्तर्गोल दर्पण व्यवहृत किया हो, तो उपर्युक्त छाया की गति विपरीत होती है। यदि छाया की गति दर्पण की गतिकी दिशामें ही हो तो

रोगी की आँखमें लघुदृष्टि है, ऐसा माना जाता है। यदि छायाकी गति दर्पणकी गति के विपरीत हो तो (१) स्वस्थ नेत्र (२) दीर्घदृष्टि; या (३) −१ से न्यून लघुदृष्टि समझी जाती है। आँखके आगे +१ रखने पर भी गति उसी अनुसार रहे, तो लम्बी दृष्टि है, ऐसा समझकर अधिक से अधिक नम्बर का काँच रखते जायँ और जब गति बदल जाय तब उस काँचकी यारी करें। यदि +१ से बदल जाय, किन्तु +०·७५ या +०·५ से न बदल सके तो -०·२५ या −०·५ जितनी लघुदृष्टि है, ऐसा विदित होता है।

उपर्युक्त वर्णन चश्मेका नम्बर लेनेके लिये अति आवश्यक है। अतः पाठकोंको सरलता से समझाने के लिये कितनेक नियम पुनः अत्र देते हैं।

(१) *यदि सादा काँचका दर्पण—व्यवहृत किया हो और छायाकी* गति दर्पण की गति से विरुद्ध हो तो दृष्टि लघु है ऐसा सिद्ध होता है। -काँचसे छायाकी गति बदलती है। उस काँचमें −१ बढ़ाने पर चश्मे का सच्चा नम्बर मिल जाता है।

(२) छायाकी गति दर्पण की गति की दिशामें ही हो तो आँख (अ) स्वस्थ. (आ) दीर्घ दृष्टिवाली; या (इ) −१ से न्यून लघुदृष्टि वाली होती है। नेत्र के पास + (रखने पर गति न बदले तो आँख दीर्घदृष्टि वाली है, ऐसा जाने। जिस +काँच से गति बदल जाय, उसमें से +१ कम करने पर जो काँच आवे वह चश्मे का नम्बर माना जाता है। +१ से गति बदल जाय और +०·७५ से न बदल सके तो चश्मेका नम्बर -०·२५ माना जायगा। +०·५ से बदल जाय तो चश्मेका नम्बर -०·५० तथा +०·२५ से बदल जाय तो नम्बर -०·७५ समझना चाहिये।

(३) एक रेखाकी गति एक काँचसे बदले और दूसरी रेखाकी गति दूसरे काँच से बदले, तो विषम (Astegmatism) लम्बी या छोटी दृष्टि समझनी चाहिये। यदि एक रेखा के लिये – कांच और दूसरी रेखा के लिये +कांच चाहिये, तो भी विषम दृष्टि समझनी चाहिये।

(४) यदि अन्तर्गोल काच के दर्पण का उपयोग किया हो और छाया की गति दर्पण की गति के अनुसार ही हो तो लघुदृष्टि समझना चाहिये। एवं जिस – कांच से गति बदले उसमें −१ बढ़ाने पर जो अंक आवे वह चश्मे का नम्बर मानना चाहिये।

(५) छाया की गति दर्पण की गति से विरुद्ध हो तो (अ) स्वस्थ नेत्र; (आ) दीर्घ दृष्टि; या (इ) −१ से न्यून लघुदृष्टि, इन तीन में से एक होना चाहिये। +१ रखने पर गति न बदले तो दीर्घदृष्टि; +०·७५ से न बदले और +१ से बदले तो स्वस्थ नेत्र; तथा +०·५ से न बदले और +०·७५ से बदले तो −०·२५ लगभग नम्बर समझना चाहिये।

(६) भिन्न-भिन्न रेखाओं में भिन्न-भिन्न गति हो या अलग कांच चाहिये तो उस उस रेखा के नम्बर उसके अनुरूप गिनना चाहिये।

कांच में १ अंक न्यूनाधिक करनेका हेतु—ऊपर लिखे अनुसार चश्मेका नम्बर नेत्रवैद्यने निश्चित किया, किन्तु कांच में −१ क्यों बैठाया जाता है और +१ कांच में कम क्यों किया जाता है? यह प्रश्न पाठकों को स्वाभाविक उपस्थित होगा। अब उसकी समझ विस्तार पूर्वक देने का प्रयत्न करें तो दृक्शास्त्रके अनेक नियमों का बोध करना पड़ेगा; किन्तु उस विषय का ज्ञान पाठकों को बिलकुल न होने से उलझन हो जायगी। अतः संक्षेप में लिखना पड़ता है। रोगीके नेत्रके नम्बर अंधेरे कमरे में जांच करने के समय यदि सामान्य कांच का दर्पण व्यवहृत करें और रोगी ४ मीटर की दूरी पर खड़ा रहे तो − कांच में बढ़ाना नहीं पड़ता एवं +कांच में से कम नहीं करना पड़ता। किन्तु ऊपर लिखे अनुसार नेत्रवैद्य केवल १ मीटर अर्थात् लगभग ३ फुट की दूरी पर खड़ा रहता है। इस हेतुसे ऊपर कहे अनुसार न्यूनाधिकता करनी पड़ती है। अन्तर्गोल कांच तो प्रायः ऐसाही बनाते हैं कि, उससे जो प्रकाश गिरे वह लगभग १ या १। मीटर के अन्तर से डाला जाय तो ही साफ प्रकाश पड़े; अन्यथा प्रकाश उतना मंद हो जाता है कि रोगी की परीक्षार्थ वह उपयोगी नहीं हो सकता।

ऊपर लिखे अनुसार चश्मे का नम्बर निर्णित किया। फिर भी उस नम्बर से रोगी को कितना दीखता है, वह निश्चित करना पड़ता है। यदि रोगी के नेत्रकी कनीनिका प्रसारित की हो, तो यह परीक्षा कनीनिका स्वस्थ स्थिति में आजाय तब तक स्थगित रखनी चाहिये। इसमें एक अपवाद है। यदि रोगी बालक हो १० १२ वर्ष से कम आयु वाला हो, तो चश्मा के नम्बर का निर्णय कनीनिका प्रसारित हो, उसी समय करना चाहिये; अन्यथा उसकी तन्तुमय पेशी दृढ़ होने से दृष्टमणि की बाह्यगोलता में इतना अन्तर आजाता है कि +कांच के उपयोगकी आवश्यकता हो तब रोगी को +कांच से स्पष्ट प्रतीत न होकर − कांच से अच्छा दीखता है, परिणाम यह आता है कि जो रोग सुधरना चाहिए, वह बढ़ जाय, ऐसे कांचका निर्णय प्रमादवश हो जाता है।

अकस्मात् ३ रे में कहा है कि होमेट्रोपिन का असर २४ घंटे तक रहता है। एट्रोपिन का असर ८-१० दिन तक रहता है। अतः होमेट्रोपिक रोगी के देखने डाला ही तो तीसरे दिन रोगी को बुलावें तथा एट्रोपिन डाला होने के ७-१० दिन पश्चात् आने को कहें। रोगी आने पर उसे ६ मीटर की दूरी पर बड़ा टेस्ट सामने रखे हुए तख्ते पर अक्षर पढ़ने को कहें और अंधेरे कमरे में निश्चित किये हुए कांचको कमानी में रखें। यदि रोगी की दृष्टि ६/६ हो अर्थात् तख्ते परकी अन्तिम पंक्ति या ६ के अंकवाली पंक्ति स्पष्ट पढ़ सके एवं अधिक दूर से स्पष्ट देख सके तो वह नम्बर लिख देवें। अनेक बार ऐसा बनता है कि रोगी अमुक कांच से स्पष्ट पढ़ सकता है और देख सकता है; एवं उससे एकाध नम्बर के अन्तर वाले कांच से भी साफ पढ़ सकता है। ऐसे समय पर नियम रखना चाहिये कि, यदि कांच – नम्बर का हो तो कम से कम नंबर का कांच जो लागू हुआ हो, वह देवें, तथा कांच + हो तो अधिक से अधिक नम्बर का कांच देवें। यथा० एक रोगी दक्षिण नेत्र से -५ से ६/६ वाली पंक्ति पढ़ सकता है, और वह कांच अंधकारवाले कमरे में परीक्षा कर निश्चित किया है एवं वह रोगी – ४ से भी उतना ही स्पष्ट देख सकता है, तो -५ न देकर -४ देना यही उत्तम मार्ग है।

अनेक रोगियों को चश्मा देने के समय प्रत्येक नेत्रवैद्य को प्रतीत होगा कि, ऐसे कितनेक रोगी मिलते हैं कि जिसका नम्बर अन्धेरे कमरे में + ६ निश्चित किया हो, बाहर आकर + ६ कमानी में रखकर परीक्षा करने पर विदित होता है कि रोगी ६/६ दृष्टि प्राप्त करने के स्थान में ६/१२ तक भी कठिनता से पढ़ सकता है + ६ के स्थान में + ३ रखने पर रोगी लगभग ६/६ तक पढ़ सकता है। ऐसे रोगी बहुधा ३० वर्ष या उससे कम आयु वाले होते हैं। उन रोगियों के नेत्र में दृष्टिमणि के भीतर उतना अन्तर हो सकता है कि वे अपने नेत्र में ही + ३ या उससे अधिक शक्ति बढ़ा सकते हैं। भिन्न भिन्न अवस्था में यह शक्ति कितने परिमाण में रहती है, यह बोधक्रम आगे नेत्रवैद्य ने एक कोष्ठक द्वारा दर्शाया है, यह अगले प्रकरण में दिया जायगा। अत्र संक्षेप में उतना ही कहना पूरा है कि, ३० वर्ष से कम आयु वाले को जब + कांच की आवश्यकता हो, तब जो कांच अंधेरे कमरे में परीक्षा और गिनती के परिणाम में निश्चित किया हो वह न देते हुये रोगी को उससे कम नम्बर वाला कांच जो अनुकूल रहता हो, वह देना चाहिए, पढ़ने के लिये उससे + १ + २ अधिक नम्बर देना चाहिए।

चश्मे के नम्बरों के पत्रक—ऊपर लिखे अनुसार नम्बर निश्चित करने पर चश्मेवाले के नाम से जो पत्रक लिख दिया जाता है। वह नियमानुसार पद्धति से दिया जाता है। अनेक डाक्टर इस पत्रक के लिये छपे हुए कागजों का उपयोग करते हैं। प्रत्येक डाक्टर अपनी अनुकूलता रहे, उस तरह छपवाते हैं। एक नमूना अत्र देता हूँ।

चित्र न० १७२ वां

चश्मे के नम्बरों का व्यवस्था पत्र

Spectacle Prescription form

	दक्षिण			वाम			
	गोल	अर्द्धगोल	त्रिकोण धन	गोल	अर्द्धगोल	त्रिकोणधन	
दूर							
पढ़ने							

दो कनीनिका के बीच का अन्तर
नाक के भाग का नाप
कांच की जाति

दो कनपटी के बीच का अन्तर
कमानी की जाति

तारीख..... १९ हस्ताक्षर

ऊपर अनुसार वा कुछ परिवर्तन करके कागज छपवाते हैं। चश्मा दूरका और पढ़ने का, इस तरह दो प्रकार के दिए जाते हैं। कितनेक रोगियों को चश्मे की एक ही जोड़ी दूर के और पढ़ने के लिए चलती है। अन्य कतिपयों को दो प्रकार के उपयोग के लिए भिन्न भिन्न दो जोड़ी अलग अलग नम्बर के कांच वाली देनी पड़ती हैं। त्रिकोणधन कांच क्वचित् ही देना पड़ता है।

कांच का नम्बर लिखने के पश्चात् दो कनीनिका के बीच का अन्तर नापा जाता है, उस अन्तर के निर्णयार्थ एक विशेष प्रकार के यन्त्र का उपयोग होता है, अथवा जिस कमानी में कांच चढ़ाया जाता है, उससे नाप किया जाता है। उस कमान में जो ६० का अंक है, वह कांच का मध्यभाग

६० के अंक वाली पंक्ति और कनीनिका का मध्य प्रदेश दोनों एक ही रेखा में आने चाहिए। फिर दो आंखों की कमानी में ६० के अंक के बीच का अन्तर नाप लेवें। दो कनपटी के बीच का अन्तर सरलता से नापा जाता है नाक का नाप लेने के लिये चश्मे वालों के पास विशेष प्रकार का नाप रहता है। ऐसा नाप न हो तो नाक, ऊँचा, नीचा वा मध्य ऐसा लिख देवें।

प्रायः कमानी की जाति चश्मा वालों के वहाँ रोगी पसन्द कर लेता है; किन्तु कितनीक बार नेत्रवैद्य को कमानी की जाति लिख देनी पड़ती है। कमानी भिन्न भिन्न प्रकार की आती है। लोहा, निकल लगा लोहा, निकल चाँदी, विविध प्रकार के मसाले रोल्ड गोल्ड या नकली सोना तथा सोना ६ से १८ के रेट आदि की कमानी आती हैं। इनके अतिरिक्त प्रत्येक बनावट में अनेक जाति हैं। सीधी बाजू वाली, मुड़े हुये सिरे वाली (सवारी करने की राइडिंग कमानी), कमानी रहित (कांच में छिद्र कर उसे नाक के भाग के साथ एवं बाजू की दण्डियों के साथ स्क्रु से लगी हुई), बाजू की दण्डी रहित (नाक पर चांप द्वारा चिपकी रहने वाली), पिन्सनिज (Pince Nez) आदि।

कांच की जाति विशेषतः नेत्रवैद्य को ही लिख देनी पड़ती है। कारण, रोगी को यह बोध नहीं होता कि, कौनसा कांच अच्छा है। कांच में भी कितनेक प्रकार हैं। सादा कांच (Glass) दूधिया कांच (Crystal) पत्थर (Pabble) क्रुक्स A, क्रुक्स B, गहरा पीला (Amber coloured) कृष्णाभ (Smoked) आदि कांच सब से अधिकतम सस्ता है; किन्तु उसमें से सूर्यकिरण अधिक परिमाण में नेत्र में पहुँचते हैं। अतः हानि पहुँचने की सम्भावना है। पत्थर शीतल माना जाता है। कारण, कांचकी अपेक्षा वह अधिक गाढ़ा होने से उसमें से सूर्य के किरण कांच जितने परिमाण में नेत्र के भीतर प्रवेश नहीं कर सकते। क्रुक्स के कांच उत्तम हैं। कारण, उसकी बनावट ऐसी है कि, उसमें से निकलने वाले सूर्य के किरण उतने कम हो जाते हैं कि, नेत्र को बिल्कुल हानि नहीं पहुँचती। क्रुक्स A,B और U ऐसे जाति के कांच आते हैं। A में किञ्चित रंग होता है। जिससे सामान्यतः उपयोग के लिये वह अच्छा है। B जाति में अधिक रंग होता है, अतः जिस नेत्र से प्रकाश बिल्कुल सहन न होता हो, उनके लिये वह अनुकूल रहता है। आंख आने पर या प्रकाश सहन न करने वाली आंखों के लिये U कांच उस से भी अधिकतर अनुकूल है।

वर्तमान के विलासी युग में लोगों से किंचित् कष्ट या प्रतिकूलता सहन नहीं होती, जिनको दो चश्मों की (दूर और नजीक के उपयोगार्थ) आवश्यकता हो उनको एक निकाल कर दूसरा लगाने में त्रास भासता है। ऐसे शौकीनों की सुविधा के लिये एक ही चश्मे में दो कांच व्यवस्थित किये जाते हैं। ऊपर का कांच दूर देखने के लिये और नीचे का कांच समीप देखने के लिये होता है। उनने नीचे का कांच ऊपर के कांच में लगा लिया जाता है। यह संमीलन दो प्रकार से होता है। दोनों कांच आड़ी पंक्ति में लगाये जाते हैं, या ऊपर के कांच में अर्द्ध चन्द्राकार खंड करके उसके भीतर नीचे का कांच सीमेंट से चिपका दिया जाता है। इस रचना से भी कितनेकों को सन्तोष नहीं मिला। जिससे अब चश्मावाले एक ही कांच में दो नम्बर—ऊपर का हिस्सा दूर के लिये और नीचे का हिस्सा पढ़ने के लिये घिसकर तैयार कर देते हैं। इस जाति के कांच को क्रिप्टोक (Kryptock) तथा जिसमें दो टुकड़े सम्मिलित किये जाते हैं, उसे पर्फेक्शन बिफोकल (Perfection Bifocal) कहते हैं।

रोगी चश्मेवाले के पास से चश्मा ले आवे, फिर नेत्रभैद्य को चाहिये कि उसकी योग्य परीक्षा कर लेवे। रोगी को ठीक लगता है। कांच का नम्बर और जाति लिखे अनुसार ठीक है या नहीं? कनीनिका का मध्य प्रदेश और चश्मे के कांच का मध्य भाग ठीक है या नहीं? आदि बातों का निश्चय कर लेना चाहिये।

चश्मे के कांच का नम्बर जानने की रीति।

रोगी जब अपनी आंख की परीक्षा कराने के लिये नेत्रवैद्य के पास आता है, तब वह चश्मे का उपयोग करता है. तो साथ में लाता है, रोगी चश्मे का नम्बर नहीं जानता। जिससे नेत्रवैद्य को चश्मे का नम्बर निर्णित करना पड़ता है। एवं नेत्रवैद्य ने लिखे हुए पत्रक के अनुसार चश्मेवाले ने चश्मे का नम्बर दिया है या नहीं, यह निश्चित करने के लिये भी कांच का नम्बर देखना पड़ता है। उसके लिये कितनीक रीति हैं। इनमें से मुख्य ३ पद्धतियों का वर्णन अत्र किया जाता है। १. नम्बर शोधक यन्त्र द्वारा; २. आंख के आगे कांच रख फिर दूसरा उसके विपरीत कांच रखकर निरीक्षण द्वारा; ३. आंख के आगे कांच रख उसकी गति द्वारा।

(१) *नम्बर शोधक यन्त्र से परीक्षा*—चश्मे के कांच के नम्बरों की शोध करने के लिये एक खास यन्त्र आता है, उसे लैंबेवा लेन्स गेजर

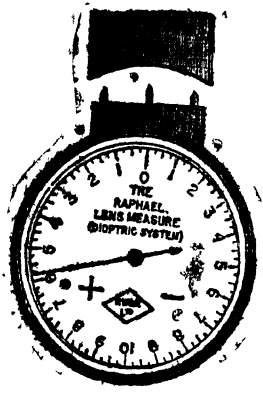

चित्र नं० ९७३—जिनिवा कांच का नम्बर शोधक यन्त्र।

(Geneva lens measure) कहते हैं। यह यन्त्र लगभग घड़ी के सदृश होता है। इसके ऊपर के हिस्से में घड़ी की किली के मान पर ३ कील होती हैं। इनमें से एक बीच की कील भीतर जाती है और पुनः बाहर आती है। बाजू की दो कील दृढ़ बैठाई हुई हैं। बीच की कील को चश्मे के कांच के मध्य भाग में रख कर कुछ दबाने पर यन्त्र में रहा हुआ कांटा फिरेगा और किसी एक अङ्क पर स्थिर हो जायगा। इसमें एक ओर – अङ्क तथा दूसरी ओर + अङ्क होते हैं। चश्मे के कांच का जो नम्बर हो, वह तुरन्त पढ़ सकते हैं। यह नम्बर एक ही अक्षरेखा में समझना चाहिये। उसी अनुसार दूसरी भी अक्षरेखा नापलें। कांच की एक ओर की परीक्षा कर लेने के पश्चात् दूसरी ओर की परीक्षा भी कर लेवें। यदि एक रेखा में एक नम्बर और दूसरी रेखा में दूसरा नम्बर हो तो चश्मे का कांच मिश्र (Compound) माना जाता है। पाठकों को समझाने के लिये अत्र कतिपय उदाहरण देते हैं।

उदा० १ला—चश्मे के निर्मित कांच में एक ओर खड़ी रेखा +३ यन्त्र से देखने में आयी। आड़ी रेखा भी +३ प्रतीत हुई। याद रखने के लिये बाजू में दी हुई आकृति में $+\frac{+३}{+३}$ लिखा। दूसरी ओर खड़ी और आड़ी रेखा +२ हो, तब पहली ओर की +३ और दूसरी ओर की +२ मिलकर कांच का +५ नम्बर होता है।

उदा० २रा—एक ओर खड़ी रेखा +३ और आड़ी रेखा +२ हुई। दूसरी ओर दोनों रेखाएं +३ हुईं। कांच +५ गोल +१ अर्द्धगोल रेखा → का है।

उदा० ३रा—एक ओर खड़ी रेखा -३ और आड़ी रेखा +१ है, दूसरी ओर -३ है। कांच का नम्बर -५ गोल +१ अर्द्धगोल खड़ी रेखा।

उदा० ४वां—एक ओर खड़ी रेखा +२ आड़ी रेखा +२, दूसरी ओर खड़ी रेखा -२ और आड़ी रेखा भी -२ । यह कांच +१ का है।

उदा० ५वां—एक ओर +३ खड़ी रेखा तथा आड़ी रेखा भी +३ है। पिछली ओर खड़ी रेखा + २ और आड़ी रेखा + १ है कांच +४ गोल +१ अर्द्ध गोल रेखा → का है।

इस अनुसार भिन्न भिन्न उदाहरण दे सकते हैं। खड़ी और आड़ी रेखायें यन्त्र लगाने के अतिरिक्त तिर्यक् रेखा में भी यन्त्र लगाकर परीक्षा करनी चाहिए। ऐसा करने पर तिर्यक् रेखा होगी, तो विदित हो जायगी।

२-विपरीत नम्बर के काच द्वारा परीक्षा—चश्मे का कांच नेत्र के आगे रखकर उसमें से दूर के तख्ते पर के अक्षर देखें। यदि नेत्रवैद्य की आंख ठीक होगी, या अस्वस्थ होने पर चश्मे का योग्य नम्बर लगाया हो, तो चश्मे के कांच में से अक्षर स्पष्ट प्रतीत नहीं होगा। यदि स्पष्ट प्रतीत हो तो कांचनम्बर रहित है। या + ०'२५ अथवा-०'२५ लगभग का है, ऐसा विदित होता है। यदि अक्षर स्पष्ट प्रतीत न हो, तो एक + कांच चश्मे के कांच के आगे रखकर देखें। पहले -कांच रखें। उससे अक्षर अधिक स्पष्ट होने लगे तो अधिक अधिक नम्बर का कांच रखते जांय और जिस कांच से अक्षर बिल्कुल स्पष्ट हो जाय उसी नम्बर का किन्तु + कांच होना चाहिए। यदि -कांच रखने पर अक्षर स्पष्ट होने के स्थान पर अधिक मंद होने लगे तो + कांच रखकर देखे। एवं जैसे जैसे अक्षर अधिक स्पष्ट होते जायँ वैसे वैसे नम्बर बढ़ाते जायं। अन्त में एक नम्बर ऐसा आवेगा कि जिससे अक्षर बिल्कुल स्पष्ट हो जायगा, उस नम्बर का कांच वही चश्मे के कांच का नम्बर।

कदाच चश्मे के कांच के आगे—कांच रखने पर और उसका नम्बर अमुक नम्बर तक बढ़ाने पर भी अक्षर सामान्य स्पष्ट भासे, किन्तु बिल्कुल स्पष्ट न भासे, तथा नम्बर विशेष बढ़ाने पर अधिक मंदता आ जाय तो चश्मे में अर्द्धगोल कांच है, ऐसा अनुमान कर सकते हैं। ऐसे समय पर सूर्यकिरण चित्र उपयोगी होता है। चश्मे का कांच अपनी आंख के आगे रखें और उसके साथ जिस कांच से अक्षर अधिक से अधिक स्पष्ट दीखें, उस कांच को रखें। जिससे कितनीक पंक्तियां स्पष्ट और कितनीक अस्पष्ट आवेंगी। अर्द्धगोल कांच के बढ़ते नम्बर रखने और उसकी रेखा बदलने पर जो अर्द्धगोल कांच चश्मे में होगा, वह रेखा सह प्रतीत हो जायगा।

इस्थुर्लस्व दोनों पद्धति सामान्य कार्य में कितनेक अंश में उपयोगी होती हैं, फिर भी पूरा निर्णय करने के लिये निम्न तृतीय पद्धति सर्वमान्य स्वीकृत हुई है।

कांच की गति द्वारा परीक्षा—दृक् शास्त्र का सामान्य नियम है कि, +कांच को आंख के पास रखकर इधर उधर चलाया जाय, तो दूर की वस्तु कांच की गति से विपरीत दिशा में चलती हुई प्रतीत होगी, एवं -कांच में उसी दिशा में गति भासती है। इस नियम का उपयोग चश्मे के नम्बरों की शोध करने में अच्छा होता है। इस परीक्षा के लिये नेत्रवैद्य का नेत्र स्वस्थ होना चाहिये या उसके योग्य चश्मा हो, वह पहनना चाहिये। फिर जिस कांच के नम्बर की परीक्षा करनी हो, उसे अपनी एक आंख के आगे रखें और उसमें से दूर की किसी वस्तु को देखें। पश्चात् कांच को आड़ा चलावें। यदि दूर की वस्तु कांच को जिस दिशा में चलावें उसी दिशा में चलने लगे तो -काँच एवं दूर की वस्तु कांच की गति की विपरीत दिशा में चलने लगे तो + कांच जाना जाता है। इस तरह + या - कांच का निर्णय होने पर +कांच के आगे -कांच और -कांच के आगे +कांच चढ़ते नम्बरों में रखते जायं तथा दूर की वस्तु किस दिशा में चलती है, उस पर लक्ष्य देते रहें। जब दूर की वस्तु चलती हुई बन्द हो जाय अर्थात् कांच को चलाने पर स्थिर विदित हो, तब चश्मे का वही नम्बर माना जाता है। उदा० +३ का कांच चश्मे के कांच के पास रखने पर दूर की वस्तु स्थिर हो गई, जो पहले कांच की गति की दिशा में चलती थी अतः चश्मे का नम्बर -३ होना चाहिये।

जिस तरह कांचको आड़ी गति में चलाया, उस तरह कांच को ऊपर नीचे चलाने पर खड़ी रेखा विदित हो जायगी। जैसे पहले कहा है, वैसे इसका भी नंबर लिख लेना चाहिये। उदा० खड़ी पंक्ति में +४ और आड़ी पंक्ति में +३ आया हो तो अपन $+\frac{+3}{+4}$ लिखते हैं। अन्य शब्दों में कहा जाय तो चश्में का नम्बर +३ गोल + १ अर्द्धगोल रेखा →। उसी अनुसार प्रत्येक कांच के नम्बर जान सकते हैं।

यदि मिश्र कांच की रेखा जाननी है तो उसके लिये जिस कांच से गति स्थिर हुई हो वह गोल और अर्द्धगोलकांच का देखें। फिर खिड़की की सलाकाएं और उसकी चौखट की ओर दृष्टि डालें। सलाकाएं खड़ी होंगी और चौखट का ऊर्ध्वाधो भाग आड़ा होगा। तब तक कांच की रेखाएं

ठीक एक दूसरे से काट कोन में से न आवे तब तक सलाकाएं और कांच। नीचे की चौखट काट कोन में नहीं दीखते, तिर्यक् भासते हैं। फिर अर्द्ध गोल कांच को फिराते जांय और जब सलाकाएं और चौखट ठीक काट कोन में प्रतीत हों, तब जिस रेखा पर अर्द्धगोल कांच दीखे, उसके विकल्प की रेखा ही वही कांच की रेखा। पुनः कहूँगा कि उपर्युक्त वर्णन बढ़ने पर विद्यार्थियों और पाठकों में से अनेकों को यह उलझन जैसा भासेगा, फिर यह समझना कठिन है, ऐसा मानकर प्रयत्न करने का त्याग देंगें। किन्तु यही विषय किसी समझा सके ऐसे कुशल नेत्रवैद्य से समझने का प्रयत्न किया जायगा, तो सुबोध विद्यार्थी केवल एक घन्टे में ही समझ सकेगा।

मेडोक्स नामक नेत्रवैद्य ने एक यन्त्र का शोध किया है, उससे किसी भी कांच की रेखा अत सरलता पूर्वक और और सत्वर विदित हो जाती है।

मेडोक्सका अक्ष रेखा शोधक यन्त्र
Madox's Axis Finder

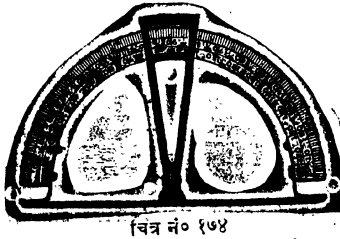

चित्र नं० १७४

चश्मा क्यों दृष्टि बढ़ाता है?—चश्मा देने के समय अनेक बार प्रतीत होता है कि, जो रोगी ६ या ८ फुट की दूरी से अंगुलियां भी ठीक नहीं गिन सकता है, उसे योग्य चश्मा देने पर तख्ते पर की अन्तिम पंक्ति भी सरलता से पढ़ लेता है। इस पर से जिज्ञासु और तीव्र बुद्धि के विद्यार्थियों के हृदय में प्रश्न उठता है कि, जड़ चश्मे में ऐसी क्या शक्ति है? जो चेतनावाली आंख में न्यून हुई चेतना शक्ति की पूर्ति करता है। कांच में ऐसी शक्ति सम्भावित है? इस प्रश्न का उत्तर अत्र हो सके उतनी सरल भाषा में देते हैं।

नेत्र से अपन क्यों देख सकते हैं? दूर और समीप के पदार्थ क्यों समान स्पष्ट भासते हैं? इन विषयों के सूक्ष्म अभ्यास के परिणाम में विदित हुआ है कि, नेत्र चित्र लेने के यन्त्र (कैमरा) के समान है। जिस तरह इस यन्त्र में रहे हुए बहिर्गोल कांच में से निकलने वाले किरणों का

प्रकीर्णन होकर पिछली ओर रहे हुए कांच पर सब किरण संगृहीत होते हैं। उसे अनुसार नेत्र गत शुक्लमण्डल, जलमय रस, दृष्टिमणि और काचि रूप रसमें से निकलनेवाले किरण नेत्रदर्पण पर संचित होते हैं। एक शास्त्र का नियम है कि, अमुक नम्बर के बहिर्गोल कांच में से निकलने वाले किरण निश्चित दूरी पर इकट्ठे होने चाहिए। जैसे +६ के कांच में से निकलनेवाले समान्तर किरण ६ मीटर की दूरी पर मिल जाते हैं। नेत्र में रहे हुए बहिर्गोल द्रव्य में से निकलनेवाले किरणों का वक्रीभवन होता है। फिर वे किरण नेत्रगोलक के किसी स्थान में संगृहीत होते हैं। आंख में रहा हुआ बहिर्गोल द्रव्य ३८·६४ नम्बर के कांच का समान है, यह अनेक योगों के परिणाम में सिद्ध हुआ है। इस बहिर्गोल कांच में से निकलनेवाले किरण शुक्लमण्डल की सतह से २३·२७ मिलीमीटर के अन्तर पर संचित होते हैं। किन्तु नेत्रगोलक की लम्बाई या शुक्लमण्डल की सतह से नेत्रदर्पण २४ मिलीमीटर दूरी पर है। अत नेत्रगोलक यदि स्वस्थ हो, उसकी लम्बाई स्वस्थ स्थिति में हो और उसी परिमाण में रही हो, तो नेत्रगोलक में प्रवेशित किरण वक्रीभवन होने के पश्चात् ठीक नेत्र-दर्पण पर इकट्ठे होते हैं। एवं जिस वस्तु में से उन किरणों का उद्भव हुआ हो, उसकी स्पष्ट प्रतिमा नेत्रदर्पण पर उपस्थित होती है। पहले लिखा है कि ६ मीटर या उससे अधिक अन्तर से आनेवाले किरणों को ही मात्र समान्तर माना जाता है। ६ मीटर की अपेक्षा कम दूरी पर से आने वाले किरण समान्तर नहीं होते; वे फैल जाते हैं। अतः नेत्र की बहिर्गोलता बढ़ने के लिये कोई प्रबन्ध न हो, तो किरण नेत्रदर्पण पर नहीं मिलते, उससे पिछली ओर गिरते हैं। स्वस्थ नेत्र में ऐसा नहीं होता। कारण, दृष्टि-मणि स्थितिस्थापक है। किन्तु तन्तुमय पेशीका संकोच होने पर बहिर्गोल पने में वृद्धि होती है (यह दूसरे प्रकरण में पहले समझाया गया है) उसे बहिर्गोलपने की वृद्धि छोटी आयु में अधिक होती है। फिर जैसी जैसी आयु बढ़ती जाती है, वैसे वैसे यह शक्ति कम होती जाती है। अन्त में लगभग ६०-६५ वर्ष की आयु होने पर ० हो जाती है। यह शक्ति कितनी आयु में कितने नम्बर से बहिर्गोल कांच के समान है, उसका कोष्टक नेत्र के डा० डॉन्डर्स ने तैयार किया है, वह अत्र देता हूँ।

इस कोष्टक पर से विदित होगा कि, लगभग १० वर्ष की आयु में यह शक्ति +१४ जितनी होती है और ६० वर्ष की आयु होने पर ० हो जाती है। मिलर्ग मूर्ख व्यापारी के समान कभी दिवाला नहीं निकालता;

किन्तु सर्वदा कुछ -न कुछ अंश में शक्ति संगृहीत रखता ही है, अतः ४०-४५ वर्ष की आयु होने पर बाहर से +काँच की आवश्यकता रहती है।

जब नेत्र गोलक नीरोगी हो कोई व्यक्ति उससे अधिक लम्बा हो गया हो, तब क्या होता है? किसी भी वस्तु में से निकलनेवाले किरणों का बकीभवन होने के पश्चात् नेत्रदर्पण के ऊपर संगृहीत नहीं होते, नेत्र-दर्पण से कुछ दूरी पर इकट्ठे होते हैं। जिससे वस्तु स्पष्ट नहीं भासती। फिर उसी नेत्र के पास -काँच रखेंगे, तो स्पष्ट दीखेगा। पहले कहा गया है कि, काँच में से निकलनेवाले किरण,-काँच द्वारा ठीक नेत्रदर्पण पर संगृहीत होते हैं। गोलक की लम्बाई जितनी अधिक हुई हो, उतना नम्बर काँच का अधिक चाहिए। संक्षेप में गोलक की लम्बाई लघुदृष्टि के अनुपात से -काँच का नम्बर अधिक रखना पड़ता है।

जब नेत्रगोलक छोटा हो तब किरण गोलक में नेत्रदर्पण के पीछे संगृहीत होते हैं। यदि रोगी की आयु छोटी हो तो उसकी दृष्टिमणि में अधिक बहिर्गोल बनने की शक्ति रहती है। जिससे वह दृष्टि को खिंचने पर दूर बराबर देख सकता है, किन्तु समीप देखने के लिये उसे दृष्टिमणि की शक्ति का दूना उपयोग करना पड़ता है। दूर देखने एवं समीप देखने के लिये। इन दोनों उपयोगों के लिये दृष्टिमणि की शक्ति जब तक टिक सकती है तबतक रोगी चलाता रहता है। किन्तु आयु जितनी-जितनी बढ़ती जाती है, उतनी उतनी दृष्टिमणि की शक्ति घटती जाती है। जिससे चश्मे की आवश्यकता रहती है। दृष्टिमणि को निकाल देने पर भी वही स्थिति होती है। इस पर से स्पष्ट विदित हुआ होगा कि, नेत्र में प्रवेश करने वाले किरणों का बकीभवन योग्य होने में चश्मे से सहायता पहुँचती है। परिणाम में वस्तु की स्पष्ट प्रतिमा नेत्रदर्पण पर उपस्थित होती है।

उन्तीसवां प्रकरण

चश्मे के उपयोग से अच्छे होनेवाले विकार

(वक्रीभवन विकार—Errors of Refractions)

चश्मे के उपयोग से निम्न चार रोगों में लाभ पहुँचता है—

१. ह्रस्व दृष्टि—Myopia.
२. दीर्घ दृष्टि—Hypermetropia or Hyperopia
३. विषम दृष्टि—Astigmatism.
४. वार्धक्यजन्य दृष्टिमान्द्य—Presbyopia.

१. ह्रस्व दृष्टि

Myopia.

इस विकार की संप्राप्ति जन्म से नहीं होती ; किन्तु जन्म के पश्चात् ही होती है, ऐसी नेत्र वैद्यों की मान्यता है। असभ्य देशवासियों की अपेक्षा सभ्य देशवासियों को यह विकार अधिक होता है। अन्य शब्दों में कहें तो देश, मौज शौक में जितना आगे बढ़ता है, उतने अधिक ह्रस्वदृष्टि वाले उस देश में मिलते हैं।

लघु दृष्टि प्रकार—इस रोग के निम्न तीन प्रकार हैं—

१—सामान्य या स्थायी ह्रस्वदृष्टि—रोगी की लघुदृष्टि अमुक अवस्था में हो, वही वर्षों तक बनी रहती है।

२—तन्तुमय पेशी के खिंचाव से प्राप्त ह्रस्वदृष्टि—छोटी आयु में दृष्टिलघु होकर फिर बढ़ती जाती है ; किन्तु चश्मे का उपयोग किया जाय तो फिर लघुदृष्टि में वृद्धि नहीं होती। नेत्र के भीतर कुछ परिवर्तन होता है (वर्णन इसी प्रकरण में आगे दिया जायगा); किन्तु सम्हाल रखने और चश्मे का उपयोग करने पर यह परिवर्तन बन्द हो जाता है।

३—शनैः शनैः वृद्धिंगत ह्रस्वदृष्टि—छोटी आयु में प्रारम्भ होकर ह्रस्वदृष्टि बढ़ती ही जाती है। फिर इसी हेतु से नेत्र में होनेवाले परिवर्तन की भी वृद्धि होती रहती है।

ये तीनों प्रकार एक ही विकार के भिन्न-भिन्न स्वरूप हैं।

लक्षण और चिह्न—शिशु जन्म के समय और उसके पश्चात् कुछ वर्षों तक लम्बीदृष्टिवाला रहता है। फिर आँख को अधिक परिश्रम लेना पड़ता है, तो दृष्टिह्रस्व हो जाती है। कुछ लिखना पढ़ना हो या कोई वस्तु को देखना हो तो उसे बालक नेत्र से अति समीप लेता है। फिर जैसे-जैसे ह्रस्वदृष्टि में वृद्धि हो जाती है, वैसे-वैसे बालक को पुस्तक आदि अधिकाधिक नजीक लेना पड़ता है। दूर से कुछ भी स्पष्ट नहीं दीखता। अनेक बार तो बालक को पाठशाला में लकड़ी के काले तख्ते पर लिखे हुए अक्षर पढ़ने में कष्ट होता है, तभी संरक्षकों का लक्ष्य जाता है कि, बालक की आँख में कुछ दोष है। फिर नेत्र वैद्य से परीक्षा कराने पर ह्रस्वदृष्टि का निर्णय होता है।

रोगी को अक्षरों के तख्ते के पास खड़ा रखने पर विदित होता है कि उसकी दृष्टि $\frac{1}{10}$ या $\frac{1}{12}$ लगभग है। -काँच रखने पर दृष्टि में तुरन्त वृद्धि होती है। नेत्रपरीक्षा करने पर जलमय रस का पूर्व खण्ड गहरा प्रतीत होता है। कनीनिका कुछ चौड़ी होती है। नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने पर कभी-कभी काँच रूप रस में मोटी काली अपारदर्शकता तैरती हुई भासती है। दर्शन पीड़ा के सिरे की परिधि के हिस्से में एक ओर या समग्र सिरे के चारों ओर एक अधिक सफेद अर्द्ध चन्द्राकार या गोल चक्र दीखता है। यह चक्र अर्द्ध चन्द्राकार हो तब एक ही ओर होता है। वर्तुलाकार हो तो तब चारों ओर होता है। इस चक्र को अदीर्घ दृष्टिमण्डल कह सकेंगे। इस चक्र का तल सफेद होता है और वह दर्शन नाड़ी के सिरे के रक्ताभ भाग से एवं नेत्रदर्पण के रंगवाले भाग से पृथक हो जाता है। इस सफेद तलपर कितनेक समय काले रंगके दाग बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। उसी प्रकार के दाग नेत्रदर्पण में भी स्थान-स्थान पर दीखते हैं। जब ये दाग पीतबिन्दु पर होते हैं, तब रोगी की दृष्टि अति मन्द होती है। उसे किसी भी काँच से $\frac{1}{6}$ तक नहीं पहुँचा सकते। इस मण्डल के अतिरिक्त नेत्रदर्पण पर बिखरे हुए छोटे-बड़े सफेद दाग भी प्रतीत होते हैं। इन दागों का किनारा कभी-कभी काला होता है अथवा उसके तल पर काले रंग के सूक्ष्म मोटे दाग प्रतीत होते हैं। ये दाग और दृष्टि नाड़ी के सिरे के चारों ओर प्रतीत होने वाला अर्द्धचन्द्राकार या वर्तुलाकार मण्डल ये सब नेत्र मध्यपटल में होने वाले परिवर्तनों के हेतु से उपस्थित होते हैं।

आगे कहा जायगा, उस अनुसार, ह्रस्व दृष्टि में नेत्रगोलक लम्बा होता रहता है। गोलक लम्बा हो जाने पर नेत्र के सब अवयवों को आघ-

स्थक पोषण नहीं मिलता। जैसे दुष्काल में या दरिद्रावस्था में कुटुम्ब के भीतर अधिक भोजन करनेवालों पर कम अन्न मिलने का असर अन्यों की अपेक्षा पहले प्रतीत होता है, वैसे ही नेत्र मध्यपटल, जिसे अन्य अवयवों की अपेक्षा अधिक पोषण चाहिए, उस पर अधिक असर पहुँचता है। पोषण कम मिलने पर उसके स्थान-स्थान पर शोष होता है। जिससे चारों ओर सफेदरंग के दाग उपस्थित होते हैं। नेत्रदर्पण में रहा हुआ काला रंग जो इन श्वेत दागों पर रहता है वह निकल कर स्थान-स्थान पर उगने लगता है। परिणाम में समग्र नेत्रदर्पण पर काले दाग हो जाते हैं।

नेत्रगोलक लम्बा हो जाने से स्थान-स्थान खिचाव आता है। उसका असर निर्बलतम भाग पर अधिक हो, यह स्वाभाविक है। जहाँ दर्शननाड़ी कोटक में प्रवेश करती है, वह स्थान सबसे निर्बल है, जिससे उसके चारों ओर खिचाव का असर अधिकतम होता है। खिचाव के परिणाम में नेत्र-मध्यपटल शोषित होता है और नेत्रबाह्यपटल पतला हो जाता है। कभी-कभी नेत्रदर्पण का न्यूनाधिक प्रदेश उभड़ आता है। जिससे उतने भाग का विच्छेद होता है। कभी काँच-बिन्दु भी होता है। इनके अतिरिक्त दृष्टि-मणि का रंग गहरा हो जाता है। उसका हेतु भी पोषण की न्यूनता के अलावा कुछ भी नहीं होता।

कितनेक ह्रस्वदृष्टिवाले बालकों की एक आँख टेढ़ी होती है तथा नेत्रगोलक प्रायः बाहर की (कनपटी) की ओर खिच जाता है, ऐसे रोगी अति सूक्ष्म अक्षर भी पढ़ सकते हैं। किन्तु पढ़ने के समय ऐसे छोटे अक्षरों को नेत्र के अधिक समीप लेना पड़ता है। अस्पष्ट दीखती वस्तु और निस्तेज अक्षर स्पष्ट दीखे, इस हेतु से अनेक ह्रस्वदृष्टिवाले नेत्रों को आधा बन्द कर लेते हैं। ऐसा करने पर नेत्र में कम प्रकाश प्रवेश करता है। जिससे वस्तु कुछ अधिक स्पष्ट भासती है। एवं इसी हेतु से लघुदृष्टिवाले हो सके तब तक कम प्रकाश हो, ऐसा स्थान पढ़ने के लिये अधिक पसन्द करते हैं।

कतिपय लघुदृष्टिवाले रोगियों को विशेषतः -१० या -१२ से अधिक नम्बरवाले को नेत्र के पास काले कीड़े उड़ते हों, ऐसा भासता है, ये कीड़े नहीं हैं, किन्तु काँचरूप रसमें रहे हुए काले रजकण हैं। स्वस्थ नेत्र से वे नहीं दीखते; किन्तु ह्रस्वदृष्टिवाले नेत्र में उसकी प्रतिमा बड़ी होकर नेत्र-दर्पण पर गिरती है, इस हेतु से रोगी को भ्रम होता है।

कारण—पहले लिखा है कि यह रोग विशेषतः सुधरे हुए देश के

लोगों को और पठित वर्ग लोगों को होता है, ऐसा अनेक सुप्रसिद्ध नेत्र-वैद्यों का कथन है। हम इस मत से पूर्णांश में सहमत नहीं होते। फिर भी इतना सत्य है कि अनुपात दृष्टि से विचार करने पर विद्वान् लोग लघुदृष्टि वाले अधिक मिलते हैं। ऐसे भी अनेक रोगी मिले हैं जिन्होंने कभी एक अक्षर का अभ्यास न किया हो, सिलाई, बुनने या कसीदे का कार्य भी न किया हो, केवल समग्र जीवन जंगल या खेतों में व्यतीत किया हो, उनकी आँख केवल -२० लगभग ह्रस्वदृष्टिवाली विदित हुई है। ऐसे रोगियों की रचना में जन्म से ही ऐसा कुछ परिवर्तन होता है कि नेत्रगोलक चाहिए उससे अधिक लम्बा होता है।

कितनेक रोगी ऐसे मिले हैं, जिनको २-३ पीढ़ी से लघुदृष्टि प्राप्त होती रहती है। इस पर से ऐसी कल्पना भी हो सकती है कि यह रोग कितनेक अंश में वंशागत भी है।

नेत्र का नजीक में अति उपयोग करना, यह लघुदृष्टि का मुख्य कारण माना जाता है। एवं यह अनुमान बहुधा सत्य है, ऐसा कोई भी नेत्रवैद्य अपने अनुभव से कह सकते हैं। छोटी आयु में बालक को पढ़ने का अति शौक हो और पढ़ने में आवश्यक प्रकाश वाले स्थान की सुविधा न हो, तो अक्षर स्पष्ट दीखने के लिये पुस्तक को अधिक समीप रखना पड़ता है। पुस्तक समीप रखने पर एक ओर गोलक के बाहर की पेशी और दूसरी ओर तन्तुमय पेशी खिंचती है। तन्तुमय पेशी के खिंचाव और भीतर की सरल पेशी के खिंचाव का उतना निकट सम्बन्ध है कि तन्तुमय पेशी खिंचने के साथ भीतर की सरला पेशी भी खिंचती है। उस खिंचाव का असर नेत्रगोलक पर होता है। फिर गोलक लम्बा होता जाता है। बाल्यावस्था में नेत्र के अवयव कोमल होने से खिंचाव का असर अधिक और जल्दी से होता है। शनैः-शनैः गोलक लम्बा होता जाता है। इस लम्बाई वृद्धि के साथ लघुदृष्टि की भी वृद्धि होती जाती है। दूसरी ओर नेत्रवाला पटल पतला होता जाता है। फिर वह निर्बल होता जाता है। इस निर्बलता के हेतु से आयु बढ़ने पर भी खिंचाव के हेतु से नेत्रगोलक लम्बा ही होता जाता है। या लघुदृष्टि की वृद्धि होती ही रहती है।

इन रोगियों के दुर्भाग्य से सब स्थिति और संयोग प्रतिकूल होते हैं। लघुदृष्टिवाला कम प्रकाश में पढ़ना विशेष पसन्द करता है, किन्तु थोड़े प्रकाश में पढ़ने के लिये आँखों को खिंचना पड़ता है। ऐसे रोगी जिस तरह पुस्तक को आँख से नजीक लाता है, उस तरह अपने शिर को भी अधिक

झुकाता है। जिससे वहाँ रक्त का वहन अधिक होता है। वह भी गोलक को लम्बा होने में सहायक होता है।

अमरिका और जर्मनी जैसे सुरक्षित देशों में ह्रस्वदृष्टि के प्रारम्भ वाले बालकों के लिये कितनीक खास योजना की हैं। प्रत्येक पाठशाला में एक या अधिक नेत्रवैद्य होते हैं। वे वर्ष में एक समय प्रत्येक बालक की परीक्षा अवश्य कर लेते हैं। जिनके नेत्र में कसर हो, उनके लिये योग्य चश्मा देते हैं। एवं उनके लिये खास सूचना लिख देते हैं। इन सूचनाओं में मुख्य निम्नानुसार हैं:—

१—पुस्तक के अक्षर अति बारीक न होने चाहिये।

२—पुस्तक पर अर्थात् अक्षरों पर पूरा प्रकाश गिरना चाहिए; किन्तु वह प्रकाश रोगी के नेत्र पर न पड़ना चाहिये। (इस सुविधा के लिये ह्रस्व दृष्टिवाले विद्यार्थियों की बैठक खिड़की के पास विशेष योजनासह कराते हैं।)

३—इन रोगियों के बैठने का प्रबन्ध उस तरह होना चाहिए कि उनका शिर अधिक नीचा न रहे। (उन विद्यार्थियों के लिये खास टेबल बनाते हैं और नेत्रवैद्य की सूचना के अनुसार उसके उपयोग के तख्त या टेबल की ऊँचाई व्यवस्थित करते हैं।)

४—इन रोगियों को रात्रि को नहीं पढ़ना चाहिये, एवं दिन में भी घण्टाओं तक एक साथ नेत्र को कष्ट नहीं देना चाहिये।

५—इन रोगियों का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा रखना चाहिये, कारण अधिक काल तक रहनेवाले किसी रोग के पश्चात् या अन्य हेतु से शारीरिक निर्बलता आने पर ह्रस्वदृष्टि बढ़ जाती है।

उपर्युक्त उपाय और उसके अनुकूल सम्हाल रखकर अमरिका और जर्मनी आदि सादर देशों में ह्रस्वदृष्टि का परिणाम बहुत अंश में कम करा सकते हैं।

(१) *स्थायी ह्रस्व दृष्टि*—यह प्रायः -३ या -४ से नहीं बढ़ती। नेत्र की परीक्षा करने पर उसमें किसी भी जाति का अन्य विकार या लघुदृष्टि के हेतु से उत्पन्न उपद्रवों में से कुछ भी प्रतीत नहीं होता। क्वचित् दर्शन नाड़ी के सिर के बाहर के भाग में किंचित् अर्द्धचन्द्राकार मण्डल दिखता है। रोगी लगभग २० वर्ष की आयु का हो जाय, फिर लघुदृष्टि में वृद्धि होना रुक जाता है। १०-१२ वर्ष की आयु में लिखे हुए चश्मे के नम्बर में ४०-४५ वर्ष की आयु तक एकाध नम्बर का अन्तर करना पड़ता है। इन रोगियों को योग्य कांच देने से स्वस्थनेत्रवाले मनुष्यों के समान ही

कार्य कर सकते हैं। संक्षेप में ऐसे रोगी चश्मा पहनने पर स्वस्थ चक्षुवाले ही माने जाते हैं।

२. *तन्तुमय पेशी के खिंचाव से ह्रस्व दृष्टि*—कितनेक बालक, जो यथार्थ में दीर्घदृष्टिवाले होते हैं, उनमें तन्तुमय पेशी का खिंचाव उतना होता है कि, अँधेरे कमरे में उनकी परीक्षा करने पर वे ह्रस्वदृष्टिवाले हैं, ऐसी प्रतीति होती है। इन रोगियों के चक्षु में एट्रोपीन डालने में आवे तो तन्तुमय पेशीका खिंचाव दूर हो जाने से ह्रस्वदृष्टि के स्थान में दीर्घदृष्टि वाले या स्वस्थनेत्रवाले भासते हैं। ऐसे रोगियों को चश्मा देने से पहले अति सूक्ष्म परीक्षा करने की आवश्यकता है। एवं उससे भी अधिक आवश्यकता उनकी आँख में एट्रोपीन डालने के पश्चात् परीक्षा करने की है।

३. *शनैः शनैः वृद्धिगत ह्रस्वदृष्टि*—यह व्याधि अति भयंकर है एक समय प्रारम्भ हुई लघुदृष्टि शनैः शनैः बढ़ती ही जाती है और चश्मे के नम्बर अधिकाधिक होते जाते हैं उतना ही नहीं, लम्बे होनेवाले गानकों के हेतु से दृष्टि अति कम होती जाती है। एवं कितनेक रोगियों में तो दृष्टि बिल्कुल बन्द हो जाती है।

गम्भीर परिवर्तन—उक्त परिवर्तनों में मुख्य ७ हैं—१. पश्चिम भाग में प्रलम्बन अथवा ह्रस्वदृष्टि अर्द्धचन्द्राकार, २. पीतबिन्दु के समीप में नेत्र मध्यपटलका शोष; ३. पीतबिन्दु के पास नेत्र मध्यपटल में रक्तस्राव, ४. पीतबिन्दुमें काला दाग, ५. नेत्र मध्यपटल का शोष, ६. पीतबिन्दु और उसके समीप के नेत्रदर्पण में रक्तस्राव; ७. नेत्रदर्पण का विच्छेद। इनके अतिरिक्त काँचरूप रस में उपस्थित अपारदर्शकता के हेतु से रोगी को काले काले कीड़े नेत्र के पास उड़ते हुए भासते हैं। उससे दृष्टि में न्यूनता आती है।

१. *पश्चिम भाग में प्रलम्बन या ह्रस्वदृष्टि अर्द्धचन्द्राकार* (Posterior Staphyloma or myopic Crescent)—प्रकरण १२वें में चित्र नं० ९१ देखें। इस स्थिति की संप्राप्ति हुई है या नहीं, इसका निर्णय नेत्रदर्शक यन्त्र से किया जाता है। रोगी को उसके नाक की ओर देखने का कहने पर दर्शननाड़ी का सिरा अपना (परीक्षक का) पहला ध्यान आकर्षित करता है। स्वस्थावस्था में दर्शननाड़ी का सिरा गोल रहता है तथा उसकी बाहर की ओर एक श्वेत अर्द्धचन्द्र आकार प्रतीत होता है, इस चन्द्राकार भाग पर कैशिकाएँ स्पष्ट नहीं दीखतीं, निस्तेज प्रतीत होती हैं। कभी इस अर्द्धचन्द्र का किनारा काले रंग का होता है। इस अर्द्धचन्द्र का आकार सब रोगियों

में समान नहीं होता। कितनेकों में द्वितीया के चन्द्र के समान वर्तुल के छोटे भाग जैसा होता है। किसी-किसी के अष्टमी के चन्द्र जैसा होता है, एवं अधिक बढ़े हुए रोग पीड़ितों में दर्शननाड़ी के सिरे की सब ओर में श्वेतमण्डल सा प्रतीत होता है। इस स्थिति को ह्रस्वदृष्टिजन्य श्वेतमण्डल कह सकेंगे। कितनेक नेत्रवैद्य इसी स्थिति को पश्चिम भाग में पूर्ण प्रलम्बन भी कहते हैं।

नियम यह है कि ह्रस्वदृष्टि जितनी अधिक, उतना ही प्रलम्बन अधिक होता है; किन्तु सब रोगियों को यह नियम समभाव से लागू नहीं होता। कितनेक रोगी ऐसे प्रतीत होते हैं कि, उनकी ह्रस्वदृष्टि-३ से-४ तक होने पर भी प्रलम्बन अच्छी तरह स्पष्ट प्रतीत होता है। इसके विपरीत कभी -१० या -१२ तक के चश्मा पहननेवाले रोगियों में यह प्रतीत नहीं होगी, पिछली ओर प्रलम्बन निःसन्देह भयप्रद स्थिति है; किन्तु उसकी गम्भीरता का आधार कितनेक अंश में रोगी की आयु पर रहता है। आयु जितनी छोटी हो और प्रलम्बन अधिक हो, उतना ही नेत्र के लिए अधिक भय रहता है।

इस प्रलम्बन का मुख्य कारण गोलक की लम्बाई में वृद्धि है, जैसे-जैसे गोलक बढ़ता जाता है, वैसे-वैसे पिछला भाग खिंचता जाता है। इस खिंचाव के हेतु से एक ओर अर्थात् कनपटी की ओर नेत्र मध्यपटल का भाग दर्शन नाड़ी के सिरे पर से खिंच जाता है; तथा नेत्र बाह्य पटल का भाग जो श्वेत है, वह खुला होकर अर्द्धचन्द्राकार प्रतीत होता है। फिर जैसे-जैसे रोग आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे नाक की ओर का नेत्र मध्यपटल का भाग भी शोषित होता है और प्रलम्बन पूर्ण बन जाता है।

२. पीतबिन्दु के समीप नेत्र मध्यपटल का शोष—चित्र नं० १७५ देखें ह्रस्वदृष्टि वाले रोगी की नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने के समय पीतबिन्दु के प्रदेश का निरीक्षण अवश्य करना चाहिये। कारण, अधिक ह्रस्वदृष्टि वाले अनेक रोगियों में यह प्रदेश अनारोग्य प्रतीत होता है। उस हेतु से दृष्टि में बहुत बाधा पहुँचती है। प्रारम्भ में इस प्रदेश में नेत्र मध्यपटल के भीतर सूक्ष्म-सूक्ष्म चीरे हो गये हों, ऐसा देखाव होता है। फिर ये चीरे परस्पर मिलकर एक बड़ा सफेद दाग बन जाता है। उस दाग में अत्र तत्र काली रेखाएँ दीखती हैं। ये रेखा मध्यपटल के छोटे-छोटे टुकड़े रह जाने से भासती हैं। समय जाने पर इस भाग पर के नेत्रदर्पण का शोष होता है। फिर रोगी को लिखने पढ़ने में अतिशय कष्ट पहुँचता है। नेत्रदर्पण की परिधि का भाग साफ होने पर चलने फिरने में विशेष प्रतिबन्ध नहीं होता।

३. *पीतबिन्दु के समीप नेत्र मध्यपटल में रक्तस्राव*—कितनेक लघुदृष्टि वाले रोगी नेत्रवैद्य के पास आकर कहते हैं कि, "मेरी लघुदृष्टि तो पहले से ही थी। फिर भी इतने दिनों तक सूक्ष्म से सूक्ष्म अक्षर भी पढ़ने में बाधा नहीं पहुँचती थी। केवल थोड़े ही दिनों से लिखने पढ़ने में अति कष्ट होरहा है।" रोगी को अँधेरे कमरे में नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने पर पीतबिन्दु के समीप एक राख जैसे रंग का दाग प्रतीत होता है। यह दाग नेत्रदर्पण की सतह से कुछ उभड़ा हुआ होता है। नेत्रदर्पण की धमनियाँ इस दाग पर से निकलती हैं। कभी इस दाग का रंग पीताभ होता है। यदि योग्य उपचार किया जाय तो यह दाग शनैः शनैः साफ हो जाता है। फिर रोगी लिख पढ़ सकता है। यदि योग्य उपचार न किया जाय, या उपचार सफल न हो सके, तो स्राव वाले भाग का शनैः शनैः शोष होता है। फिर अन्त में एक सफेद दाग रह जाता है। एवं रोगी की दृष्टि में आजीवन कसर रह जाती है।

४. *पीतबिन्दु प्रदेश में काला दाग*—कितनेक ह्रस्वदृष्टि के रोगियों में पीतबिन्दु प्रदेश में एक काला दाग हो जाता है। कितनेक नेत्रवैद्य इस दाग को रक्तस्राव का परिणाम मानते हैं। अन्य कतिपय उसका सम्बन्ध रक्तस्राव के साथ होने का स्वीकार नहीं कर सकते। उनकी मान्यता अनुसार नेत्र मध्यपटल में जो रंग द्रव्य है, उनका एक स्थान में संग्रह होने पर इस दागकी उत्पत्ति होती है। वह कालादाग एक बार गाढ़ा काला होकर फिर बिखरने लगता है, इस दाग के हेतु से मध्यदृष्टि में बहुत न्यूनता आ जाती है। रोगी को लिखने पढ़ने में अति कष्ट होता है। इस दाग के हेतु से रस्ता शोधने में बाधा नहीं पहुँचती। किसी भी उपचार से इस दाग की निवृत्ति नहीं होती।

५. *नेत्र मध्यपटल का शोष*—नेत्र मध्यपटल प्रायः रक्तवाहिनियों से बना है। ह्रस्वदृष्टि में गोलक लम्बा होने पर नेत्र मध्यपटल को मिलनेवाले रुधिर में न्यूनता होती है। उस हेतु से उसके कितनेक भाग का शोषण होता है। इस व्याधि में नेत्रदर्शक यन्त्र से परीक्षा करने पर बड़े बड़े सफेद दाग प्रतीत होते हैं। उन दाग के ऊपर इधर उधर काले बिन्दु दीखते हैं। ये बिन्दु नेत्र मध्यपटल का शेष भाग है। कभी-कभी श्वेत दाग का किनारा काला होता है, उस स्थिति में रोगी की दृष्टि अति कम हो जाती है। उसका कोई भी उपाय नहीं है।

६. *नेत्रदर्पण में रक्तस्राव*—कभी कभी ह्रस्वदृष्टि वाले रोगी अकस्मात्

दृष्टि कम हो जाने को कहते हैं। उनकी कनीनिका को प्रसारित करके नेत्र-दर्पण का निरीक्षण किया जाय, तो १-२ स्थान में लाल रंग के धब्बे दीखेंगे ये धब्बे अग्निशिखा के आकार के होते हैं या एक ही फैला हुआ धब्बा होता है। अग्निशिखाकार हो तो रक्तवाहिनियों के ऊपर रक्तस्राव हुआ है, ऐसा अनुमान कर सकते हैं। जो धब्बा समान हो तो निम्न पर्त में रक्तस्राव माना जाता है।

२-४ दिन के पश्चात् शनैः शनैः रक्तस्राव का शोषण होने लगता है। फिर रोगी की दृष्टि में सुधार होता है। कभी कभी स्राव का बिल्कुल शोषण होकर नेत्रदर्पण का स्रावशाला भाग स्वस्थ हो जाता है। यदि कुछ दाग रह जाता है तो रोगी की दृष्टि में कुछ-न-कुछ हानि सदा के लिए पहुँच जाती है।

उपचार—रोगी को बिछौने पर रखें। उदर शोधनार्थ मृदु विरेचन देवें। लिखना पढ़ना आदि समीप का कार्य बिल्कुल बन्द करा देवें। स्राव का सत्वर शोषण हो जाने के लिये श्लेष्मावरण के नीचे नमक प्रवाही का अन्तः क्षेपण करें, तथा पोटास आयोडाइड जैसी शोषक औषधि देवें।

७. नेत्रदर्पण का विच्छेद—नेत्रदर्पण के विच्छेद में लिखा गया है कि इस स्थितिकी सम्प्राप्ति होने में ह्रस्वदृष्टि मुख्य है। प्रायः विच्छेद १० नम्बर से ऊपरकी ह्रस्वदृष्टि वालोंको होता है। रोगी कुछ वजन उठाताहो, बिछौने में से बलपूर्वक उठता हो, मल त्याग के लिये बल लगाता हो, अथवा अँधेरे कमरे में अकस्मात् बहुप्रकाश हो जाना, इन कारणों में से किसी हेतु वश अकस्मात् उसे प्रतीत होता है कि एक आँखके पास पर्दा आगया। नेत्रवैद्य से परीक्षा करने पर विच्छेद निर्णित होता है। अन्य कारणों से होने वाला विच्छेद मिटनेकी जितनी सम्भावना है, उसकी अपेक्षा बहुत कम सम्भावना ह्रस्वदृष्टिजनित विच्छेद के लिए है। विच्छेद बहुधा नेत्रदर्पणके बड़े भाग में होता है। दोनों आँखोंमें विच्छेद अतिक्वचित् होता है। एक आँखमें होनेके पश्चात् वर्षों तक दूसरी आँख में न भी हो। प्रायः एक ही आँख में विच्छेद होता है और दूसरी आँख बिल्कुल बच जाती है।

उपाय—नेत्रदर्पण विच्छेद के प्रकरण में पहले लिखा गया है।

ह्रस्वदृष्टि परिणाम—इस विकारके परिणाम का आधार उसके प्रकार पर अवलम्बित है।

ह्रस्वदृष्टि चिकित्सोपयोगी सूचना

बालक पढ़ने के समय पुस्तक को नेत्र के अति समीप लेने लगे या

सूक्ष्म वस्तुओं को देखने में आँख को खिंचने लगे अथवा उस वस्तु को अन्य मनुष्यों की अपेक्षा नेत्र से अधिक समीप लेने की आदत हो, तब ह्रस्वदृष्टि होने का सन्देह होता है। ऐसे समय पर किसी योग्य नेत्रवैद्य से परीक्षा करा, बालक की दृष्टि का अति सम्हाल रखना चाहिए। कारण, एक बार ह्रस्वदृष्टि का प्रारम्भ हो गया, तो कितनी अधिक नेत्र को हानि पहुँच जायगी, यह निश्चित नहीं कर सकते। ह्रस्वदृष्टि का रोध करने का अनुकूल समय केवल बाल्यावस्था ही है। निम्नानुसार सम्हाल रखना चाहिये।

१—पुस्तक को दूर रख कर पढ़ें। स्वस्थ व्यक्ति १५ से १८ इञ्च की दूरी पर कागज या पुस्तक रख कर पढ़ता है। अतः बालक १५ इञ्च से अधिक समीप पुस्तक न रक्खें, उसका अधिक सम्हाल रखना चाहिये।

२—पुस्तक का अक्षर सूक्ष्म न होना चाहिये। बालक के अभ्यास की सब पुस्तकें मोटे और स्पष्ट अक्षर वाली होनी चाहिए।

३—पढ़ने के स्थान में मन्द प्रकाश या अन्धकार न होना चाहिए।

४—हो सके तब तक बालक की पीठ को खिड़की की ओर रखावें। (इस तरह प्रबन्ध करने पर पुस्तक पर प्रकाश पड़ेगा)।

५—कुर्सी और तख्ता इस तरह रखावें कि, लिखने पढ़ने के साथ नीचा झुकना न पड़े (अमरिका आदि देशों में पाठशाला के भीतर बालकों की बैठक का स्थान निश्चित रहता है। प्रत्येक बैठक बालक की ऊँचाई के अनुरूप व्यवस्थित की जाती है)।

६—रात्रि को पठन नहीं करना चाहिये।

७—कितनेक नेत्रवैद्य दोनों नेत्रों में एट्रोपीन डालते हैं और महीनों तक बालकों को पढ़ने नहीं देते। किन्तु इस तरह महीनों तक नेत्र का उपयोग छुड़ा देना, यह कितनेक नेत्रवैद्यों को अनुचित प्रतीत होता है।

८—ह्रस्वदृष्टि के अनुरूप चश्मा देना।

बालक के लिये चश्मे का नम्बर निकालने पहले के एट्रोपीन के बूंद डालने चाहिए। फिर रेटिनोस्कोपी से योग्य परीक्षा कराकर नम्बर लेवें, तथा जिस कम से कम नम्बर के कांच से ६/६ प्रतीत हो, वह काँच देवें। कितनेक नेत्रवैद्य ह्रस्व दृष्टिवालों को पूरे नम्बर का कांच नहीं देते, कुछ कम नम्बर का कांच देते हैं। यह विचार अन्य नेत्रवैद्य को सदोष भासता है। उतना तो निर्विवाद है कि, चाहिये उससे अधिक नम्बर दे देने में हानि पहुँचती है। हो सके जब तक दूर और समीप के लिये एक ही नम्बर का चश्मा रखें किन्तु कितनेक बड़ी आयु वाले रोगी से लिखने-पढ़ने और दूर

देखने के लिये एक ही नम्बर सहन नहीं होता, उनको अति कष्ट पहुँचता है, जिससे उनमें से कितनेक उपराम होकर चश्मेको छोड़ देते हैं। ऐसे रोगियों एवं –१२ नम्बर से ऊपर नम्बरवाले रोगियों को लिखने पढने में –२ नम्बर कम देना वही अच्छा माना जाता है।

कितनेक रोगियों की ह्रस्वदृष्टि प्रतिवर्ष बढ़ जाती है। एवं ऐसे रोगियों की आयु प्रायः १६ से २० वर्ष के भीतर होती है। यदि ह्रस्वदृष्टि उत्तरोत्तर बढ़ती जाय तो १-२ वर्ष पर्यन्त लिखने पढ़ने को बिल्कुल बन्द करा देना चाहिए। रोगी को किसी छोटे ग्राम में भिजवा देवें तो अच्छा माना जायगा। ग्राम में रहकर भी अधिक समय जंगलों में व्यतीत करना चाहिए, जिससे समीप देखने का विशेष प्रसंग न आवे। हो सके तब तक दूर के भागों पर प्रकृति की विविध लीला के अवलोकन में दृष्टि देते रहें।

ह्रस्वदृष्टि के लिये शस्त्रोपचार।

जब ह्रस्व दृष्टि –१५ या उससे अधिक नम्बर तक पहुँच जाती है, तब कितनेक नेत्रवैद्य शस्त्रोपचार करके दृष्टिमणि को निकाल डालते हैं, इस उपचार से –२० की ह्रस्वदृष्टि हो ऐसे रोगी बिना चश्मा सब कार्य कर सकते हैं और दूरकी दृष्टि योग्य हो जाने के अनेक उदाहरण मिले हैं। ऐसा अच्छा परिणाम तभी आ सकता है कि जब नेत्र दर्पण, काँच रूप रस और मध्य पटल में किसी भी प्रकार का रोग न हो, यदि इस प्रकार कोई रोग हो तो ऐसी शस्त्रक्रिया करना व्यर्थ है।

शस्त्रक्रिया में उपद्रव--इस शस्त्र चिकित्सा में मुख्य २ उपद्रव हैं।

१—बड़ा उपद्रव यह है कि नेत्रदर्पण का विच्छेद हो जाना, कितनेक रोगियों में शस्त्रोपचार करने के एक सप्ताह बाद यह उपद्रव उपस्थित होता है। एवं कितनेकों में महीनों या वर्षों के पश्चात् नेत्रदर्पण का विच्छेद हो जाता है।

२—दूसरा उपद्रव यह है कि, गोलक के भीतर रक्तस्राव होना। किसी किसी रोगी में शस्त्रोपचार के पश्चात् नेत्रदर्पण या नेत्रमध्यपटल की धमनी टूट कर रक्तस्राव होता है।

इन दोनों उपद्रवों में से नेत्रदर्पण का विच्छेद अधिकतर उपस्थित होता है। इस हेतु से कितनेक नेत्रवैद्य इस शस्त्रक्रिया से विरुद्ध मत देते हैं। विलायत के एक सुप्रसिद्ध नेत्रवैद्य के हाथ से शस्त्रक्रिया के परिणाम में यह उपद्रव उपस्थित हुआ था। जिससे रोगी की दृष्टि नष्ट हो गई थी।

फिर नेत्रवैद्य पर मुकद्दमा भी चलाया गया था। मुकद्दमे में से छूटने पर भी उस नेत्रवैद्य पर से जनता की श्रद्धा कम हो गई थी। अतः उसकी शस्त्र चिकित्सा के लिये पहले ही सोच लेना चाहिये। शस्त्रक्रिया का निर्णय हो तो भी एक ही नेत्र पर करनी चाहिये। दोनों नेत्रों पर नहीं। क्योंकि, कदाच उपद्रव उपस्थित हो, तो भी एक आंख कायम रह जाती है।

शस्त्रोपचार विधि—रोगी की आयु २५ वर्ष के भीतर हो तो कदाच दृष्टिमणि के आवरण का २-३ बार भेदन करने पर कनीनिका साफ हो जाती है। रोगी की आयु २५ वर्ष से अधिक हो तो पहले दृष्टिमणि का भेदन कर फिर ८-१० दिन के पश्चात् उसके गर्भभाग और बीज को निकाल देना चाहिये। २५ वर्ष से अधिक आयु होने पर मोतियाबिन्द को भी निकालना पड़ता है।

२—दीर्घ दृष्टि।

Hypermetropia-Hyperopia

लम्बी दृष्टि वाले रोगियों को दूर की वस्तु देखने में अधिक बाधा नहीं पहुँचती; किन्तु समीप की वस्तु देखने में एवं लिखने पढ़ने में खिंचाव होता है। यदि लम्बी निगाह विशेष परिमाण में हो, तो दूर की वस्तु भी स्पष्ट प्रतीत नहीं होती।

जैसे ह्रस्वदृष्टि वाले रोगियों के नेत्रगोलक में प्रवेश होने वाले किरण नेत्रदर्पण के आगे के हिस्से में संगृहीत होते हैं। उससे विपरीत दीर्घदृष्टिवाले रोगियों के नेत्रगोलक में किरण नेत्रदर्पण के पिछले हिस्से में इकट्ठे होते हैं। लघुदृष्टि वालों का गोलक लम्बा होता है। दीर्घदृष्टि में गोलक छोटा होता है। इसके अतिरिक्त कितनीक ऐसी स्थिति भी हैं जिसमें गोलक आरोग्य स्थिति में हो, उतने आकार का हो फिर भी दीर्घ दृष्टि होती है। उदाहरण—ऐसी स्थिति में मोतिया बिंद निकालने पर होती है। रोगी के नेत्र के पास +१० का कांच न रखा जाय, तब तक स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। सब रोगियों को +१० से नहीं चलता, किसीको कम, किसीको अधिक एवं किसी को एकाध अक्षरेखा में दूसरा कांच रखना पड़ता है। कारण यह है कि रोगी की आँख मोतिया को निकाल देने पर लम्बी दृष्टि वाली हो जाती है।

लम्बी दृष्टि जन्म से ही होती है। प्रत्येक बालक जन्म से दीर्घदृष्टि वाला होता है। फिर जैसे-जैसे बालक की आयु बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे नेत्रगोलक का विकास होता है। फिर आँख की दीर्घदृष्टि दूर होकर आरोग्य

दृष्टि आ जाती है। एवं कितनेकों को स्थिति और संयोगों के अनुरूप लघु-दृष्टि की प्राप्ति भी हो जाती है।

दीर्घदृष्टि में किरण नेत्रदर्पण पर नहीं पड़ते, किन्तु उसके पिछली ओर संगृहीत होते हैं। यथार्थ में नेत्रदर्पण के पीछे नेत्र का कोई भी भाग नहीं है, दृक्शास्त्र की मर्यादा सम्हालने के लिये पिछली ओर ऐसा भाग है ऐसी कल्पना करनी पड़ती है। यदि अपन ऐसी आँख के पास योग्य नम्बर का + काँच रखेंगे, तो किरण नेत्रदर्पण के पीछे तकित स्थान में न गिरकर नेत्रदर्पण पर ही पड़ेंगे, जिससे रोगी स्पष्ट देख सकता है।

जो कार्य + बहिर्गोल काँच द्वारा होता है, वही कार्य दृष्टिमणि का अधिक बाह्यगोलपना होने पर हो सकता है। जब तन्तुमय पेशी का संकोच होता है, तब दृष्टिमणि अधिक गोल बनती है, नेत्र में यह गुण स्वाभाविक होने से सामान्य लम्बीदृष्टिवाले व्यक्ति बिना चश्मा भी दूर की वस्तु को स्पष्ट देख सकते हैं। अन्तर केवल उतना ही है कि निरोगी नेत्रवाला मनुष्य जब दूर की वस्तु देखता हो, तब उसकी तन्तुमय पेशी बिल्कुल शिथिल और विश्रान्तिवाली स्थिति में रहती है, किन्तु दीर्घदृष्टिवाले को दूर देखने के लिये भी लम्बीदृष्टि के अनुपात से तन्तुमय पेशी का उपयोग करना पड़ता है। जब इन रोगियों को समीप के कार्य—लिखना, पढ़ना आदि करना पड़ता है, तब उनको तन्तुमय पेशी का अधिक उपयोग करना पड़ता है। किन्तु लम्बी नजर अधिक परिमाण में हो जाने पर तन्तुपेशी का संकोच चाहे उतना हो, फिर भी इस स्थिति के लिये अपूर्ण ही रहता है। जिससे पुस्तक के अक्षर और सुई का छिद्र आदि सूक्ष्म पदार्थ की स्पष्ट प्रतीति नहीं होती। एवं तन्तुमय पेशी का अधिक संकोच होने से नेत्र और कनपटी में पीड़ा या खिंचाव होता है। परिणाम में लिखना, पढ़ना आदि कार्य तुरन्त बन्द करना पड़ता है।

लक्षण और चिह्न—इस विकार में लक्षण-चिह्नों का अनुभव होगा या नहीं, उसका आधार तन्तुमय समूह कितने अंश में प्रतिबंध सहन कर सकता है, उस पर अवलम्बित है। यदि दीर्घदृष्टि उतने अंश में हो कि लम्बी और समीप की दृष्टि स्पष्ट हो सके उतने अंश में तन्तुमय पेशी संकुचित हो सकती हो, तो दूर के और समीप के सब पदार्थ स्पष्ट दिखते हैं। केवल प्रत्येक क्रिया में तन्तुमय पेशी को अच्छी तरह श्रम देना पड़ता है। ऐसे रोगी यदि किसी कारणवश निर्बल हों और वह निर्बलता किसी गम्भीर व्याधि, अति रक्तस्राव या मानसिक उपाधि के हेतु से हो तो समीप

की वस्तु देखने में प्रतिबन्ध होता है। वह सूक्ष्म अक्षर बिल्कुल नहीं पढ़ सकता।

यदि रोगी की तन्तुमय पेशी दूर के कार्य को पहुँच सके, किन्तु नजीक की वस्तु देखने के लिये उसमें योग्य सामर्थ्य न हो, तो नजीक के पदार्थ स्पष्ट नहीं भासेंगे। जब तन्तुमय पेशी उससे भी अधिक निर्बल हो, तब दूर की और समीप की वस्तु देखने में भी प्रतिबन्ध होता है। पुस्तक को चाहे उतना नजीक लें, फिर भी अक्षर नहीं दिखते। जब कभी लम्बी नजर सामान्य परिमाण में हो तो और रोगी किशोर या युवा हो, तो पढ़ने का प्रारम्भ करने पर ठीक स्पष्ट पढ़ सकता है; किन्तु कुछ समय में अक्षर परस्पर मिल जाते हों, ऐसा भास होता है। फिर दीखना बन्द हो जाता है। रोगी यदि नेत्रों को आराम देता है, तो पुनः अक्षर स्पष्ट दीखने लगते हैं इस तरह अधिक श्रम पहुँचने पर मस्तिष्क और कनपटी के पास दर्द होने लगता है, कितनीक कोमल स्वभाववाली स्त्रियों को हिस्टीरिया के चिह्न भी उपस्थित होते हैं। एवं उनके नेत्रों में से अश्रुस्राव होता है ये सब चिह्न तन्तुमय पेशी के थक जाने पर होते हैं। कइयों को शिर दर्द केवल इसी हेतु से होता है। उनको योग्य नम्बर का चश्मा देने पर सत्वर लाभ पहुँचता है। इस पर से इस बात को लक्ष्य में रखनी पड़ती है कि, शिर दर्द के उपचार करने पर भी उसका शमन न होता हो, तो नेत्र की जांच करनी चाहिए।

कारण—इस विचार के मुख्य ५ हेतु हैं।

१. नेत्र गोलक स्वाभाविक स्थिति की अपेक्षा छोटा होना।

२. नेत्रदर्पण का आगे बढ़ जाना (उदा० नेत्रदर्पण विच्छेद और नेत्रमध्य पटल ग्रन्थि में वैसा होता है)।

३. शुक्लमण्डल का चिपटा होना।

४. दृष्टिमणि का अभाव (यह अभाव जन्म से, मोतियाबिन्द निकलने से या दृष्टिमणि के स्थान भ्रष्ट होने से होता है।

५. वृद्धावस्था में दृष्टिमणि के स्थिति स्थापक गुण का ह्रास होना,

१. *नेत्रगोलक की स्वाभाविक स्थिति की अपेक्षा लघुता*—सब शिशु जन्मकाल में दीर्घदृष्टि वाले होते हैं। फिर जैसे-जैसे शरीर के अवयवों का विकास होता है, वैसे वैसे नेत्रगोलक का भी विकास होता है और बालक पूर्ण दृष्टि वाला या लघुदृष्टिवाला बन जाता है। यदि किसी कारण वश अन्य अवयवों के साथ नेत्रगोलक का योग्य विकास नहीं हो सकता, प्रतिबन्ध आ जाता है, तो गोलक छोटा रह जाता है। परिणाम में रोगी दीर्घदृष्टि वाला ही रह जाता है।

२—*नेत्र दर्पण का आगे बढ़ जाना*—नेत्र दर्पण के रोगों का वर्णन करने के समय लिखा गया है कि जब नेत्रदर्पण का विच्छेद होता है, तब नेत्रदर्पण आगे बढ़ जाता है। ऐसी स्थिति में रोगी की दृष्टि में न्यूनता आने का कारण यह है कि विच्छेद के हेतु से नेत्रदर्पण अपने कार्य को बहुधा नहीं कर सकता। इसके साथ दीर्घदृष्टि होने पर कुछ और अन्तर हो जाता है। नेत्र मध्य पटल में ग्रन्थि होने पर भी वैसा ही होता है।

३—*शुक्ल मण्डल का चिपटा हो जाना*—अनेक बार क्षत हो जाने पर शुक्लमण्डल चिपटा हो जाता है। क्षत के हेतु से चिपटा होने के साथ अपारदर्शक भी बन जाता है, अतः दृष्टि में जो कसर होती है, वह प्रायः अपारदर्शकता के हेतु से होती है। कुछ अंत में दीर्घदृष्टि हो जाने से भी न्यूनता आती है।

४—*दृष्टि मणि का अभाव*—दृष्टिमणि का अभाव होने का मुख्य कारण मोतियाबिन्द के लिए शस्त्र क्रिया है। सब नेत्रवैद्यों को विदित है कि, दृष्टिमणि को निकाल देने के पश्चात् रोगी को दूर देखने के लिए +१० का कांच और नजीक के लिए +१२ का कांच देना पड़ता है। सामान्यतः मोतियाबिन्द निकालने पर रोगी की दृष्टि +१० के लगभग लम्बी हो जाती है। जिस तरह मोतियाबिन्द की शस्त्रक्रिया में दृष्टि मणि को बाहर निकाल देने पर लम्बी नजर हो जाती है, उसी तरह ३५ वर्ष से कम आयु वाले रोगियों में आगन्तुक व्यथा होकर दृष्टिमणि का कोथ हो जाने पर भी वैसा ही परिणाम आता है। इनके अतिरिक्त आगुन्तक चोट या नीम हकीमों द्वारा मोतियाबिन्द को दबा देने पर दृष्टिमणि स्थान भ्रष्ट हो जाता है। उस स्थिति में भी +१० लगभग लम्बी नजर हो जाती है। किसी किसी व्यक्ति में जन्म से ही दृष्टिमणि का अभाव होता है। उनकी भी +१० जितनी लम्बी नजर होती है।

५—*दृष्टि मणि के स्थिति स्थापक गुण की न्यूनता*—छोटी आयु में दृष्टिमणि कोमल होता है, तब उसमें स्थिति स्थापक गुण होने से वह अधिक बर्हिगोल बन सकती है। ४० वर्ष के बाद यह गुण कम होने लगता है। एवं ६५ वर्ष की आयु होने पर बिल्कुल चला जाता है। इस हेतु से ४० वर्ष की आयु के पश्चात् सामान्यतः +१ कांच की आवश्यकता होने लगती है, फिर उसमें शनैः शनैः वृद्धि होकर ६५ वर्ष की आयु होने पर +४ के कांच की आवश्यकता पड़ती है। यह एक प्रकार की दीर्घदृष्टि ही है।

परिणाम—दीर्घदृष्टि जितनी हो, उतनी ही रहती है। लघुदृष्टि के समान दिन-प्रति-दिन वृद्धि नहीं होती। एवं +१२ से अधिक नम्बर के कांच की आवश्यकता हो, ऐसे रोगी भी प्रायः दृष्टिगोचर नहीं होते। एवं लम्बी नजर होने पर किसी जाति का रोग भी नेत्र में उपस्थित नहीं होता। केवल ३५ वर्ष की आयु के पश्चात् ऐसे रोगियों को अधिमन्थ होने की सम्भावना रहती है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दीर्घदृष्टि—पहले दर्शाया गया है कि रोगी तन्तुरूप पेशी के संकोच से दीर्घदृष्टि का कितनेक अंश में सुधार कर सकता है। ऐसे रोगियों में दीर्घदृष्टि की सब स्थिति अपने को प्रत्यक्ष नहीं हो सकती। इस पर से नेत्रवैद्यों ने दीर्घदृष्टि के २ भाग किये हैं। १. प्रत्यक्ष दीर्घदृष्टि; २. अप्रत्यक्ष या गूढ़दीर्घदृष्टि। उदा० २० वर्ष की आयुवाला युवक दीर्घदृष्टि के लिए आया है। स्नेलन के तख्ते पर पढ़ने पर वह $\frac{6}{12}$ तक पढ़ सकता है। +२ कांच देने पर $\frac{6}{6}$ ठीक पढ़ सकता है। फिर एट्रोपिन डाल कनीनिका प्रसारित कर अंधेरे कमरे में नेत्रदर्शकयन्त्र से परीक्षा करने पर +६ के कांच की आवश्यकता भासती है। उसमें से नियमानुसार +२ कम कर +४ का कांच उसके नेत्र के पास रखा जाय, तो उसके नेत्र में अवस्थित सब दीर्घदृष्टि का सुधार होना चाहिए। फिर भी +४ का कांच रखने पर वह $\frac{6}{6}$ नहीं पढ़ सकता। किन्तु +२ का कांच रखने पर वह $\frac{6}{6}$ ठीक पढ़ सकता है। जब कनीनिका प्रसारित थी तब लगभग +५ से भी अन्तिम पंक्ति नहीं पढ़ सकता। इन सब का विचार करने पर इस रोगी में लम्बी नजर +४ विदित होती है। इसमें +२ प्रत्यक्ष है और +२ गूढ़ है।

आगे डोण्डर्सका कोष्टक दिया है, उस परसे विदित होगा कि, लगभग ४५ वर्षकी आयुमें रोगीमें +३ या +३.५ जितना सामर्थ्य रहता है उतनी शक्ति तो नजीकके अक्षर लिखने पढ़नेके लिये चाहिये ही। इसके अतिरिक्त सुयोग व्यापारी के समान निसर्गभी शक्तिको कितनेक अंशमें संग्रह कर रखती है। जिससे ४० वर्षकी आयुमें और उसके बाद जितनी लम्बी नजर हो, वह सब प्रत्यक्ष हो जाती है।

दीर्घ दृष्टिके लिये चश्माके नम्बर लेनेकी विधि—इसकी अनेक रीति हैं। इनमें से निम्न रीति प्रचलित और व्यवहारिक हैं।

पहली रीति—रोगीको २० फुट दूर खड़ा रखकर स्नेलनके अक्षर दिखावें। +०.२५ से प्रारम्भकर उत्तरोत्तर अधिकाधिक नम्बर रखते जांय।

जिस कांचसे रोगी ⅗ स्पष्ट पढ़ सके उस कांचकी यादी करें। पश्चात् उससे भी अधिक नम्बरका कांच रखें। यदि +४ से ⅗ स्पष्ट विदित होता हो, तो +५ से भी वह स्पष्ट हो सकेगा। अत्र रोगीको +५ का कांच देना चाहिये। नियम यह है कि, लम्बी नजर वालोंको अधिकमें अधिक नम्बरका + कांच जिससे वह ⅗ स्पष्ट पढ़ सके।

दूसरी रीति—रोगीके नेत्रमें एट्रोपिन या होमेट्रोपिन डालकर कनीनिका प्रसारित करें। रोगीकी आयु १२ वर्षसे कम हो तो एट्रोपिन तथा १२ से ४० वर्ष तक प्रायः होमेट्रोपिन डाला जाता है। पहले टोनोमीटरसे नेत्रान्तर्गत दबावका नाप करलें। वह अधिक न हो तो होमेट्रोपिन द्वारा कनीनिका को प्रसारित करें। किन्तु नेत्रकी परीक्षा हो जाने पर तुरन्त इसरिन की बूंद डालें।

कनीनिका का प्रसारित होने पर रोगीकी परीक्षा अंधेरे कमरेमें नेत्रदर्शक यन्त्रसे करें। यदि सामान्य दर्पण प्रयोजित किया होगा, तो छाया दर्पणकी समान दिशामें ही चलेगी। +कांच रखते जायँ और छायाको देखते जायँ। जब छायाकी गति दर्पणकी गतिसे विपरीत दिशामें हो जाय, तब कांचके नम्बरकी यादी कर लेवें। इस तरह खड़ी और आड़ी पंक्तिमें जाँच करके नम्बरका निर्णय कर लेवें। उक्त नम्बरमें से +२ कम करें। फिर जो नम्बर रहे, वह दीर्घदृष्टिका नाप समझ लेवें।

इस प्रकारसे परीक्षाकर नम्बरकी यादी कर रोगीको रजा देवें। फिर कनीनिका का प्रसारण दूर होकर मूल स्थितिमें आजाय तब पुनः उसकी परीक्षाकरें। अंधेरे कमरेमें की हुई परीक्षासे निश्चित हुआ कांच रोगीके नेत्रके पास रखेंगे तो रोगी ⅗ पढ़ सकेगा। यदि उस कांचसे ⅗ पढ़ सके, तो निर्णित होता है कि, उसकी सब दीर्घदृष्टि प्रत्यक्ष थी, ऐसा परिणाम प्रायः ३५-४० वर्षसे कम आयु वाले रोगियोंके लिये नहीं आता। यदि रोगी ३० वर्षका या उससे कम आयु वाला हो तो जो कांच अंधेरे कमरेमें निर्णित किया हो, उससे +२ लगभग कम कांच उसे अधिक अनुकूल रहता है।

इस सम्बन्धमें अलग अलग नेत्रवैद्य भिन्न भिन्न रीति से कार्य करते हैं। कितनेक नेत्रवैद्य अंधेरे कमरेमें निर्णित कांचका ही उपयोग करना अच्छा मानते हैं। दुर्भाग्यसे ऐसे रोगी कम होते हैं कि, १५ दिन या १ मास तक प्रतिकूलता सहन कर डाक्टर के अभिप्राय को धारण कर सकें। यद्यपि ऐसा करने पर रोगीको लाभ होता है, यह निश्चित है, तथापि

रोगियोंमें से अधिकांश ऐसे हैं कि, "यह चश्मा अनुकूल नहीं रहा, डाक्टरने नम्बर देनेमें भूलकी है" आदि कल्पना करके उस चश्मेका त्याग कर देते हैं। इस कारणसे अन्य नेत्रवैद्य ऐसी सूचना करते हैं कि, ३० वर्षमे कम आयु वाले रोगियों को अंधेरे कमरेमें निर्णित किये हुए नम्बरकी अपेक्षा ½ नम्बर देवें। फिर शनैः शनैः नम्बर बढ़ावें, यह नियम लगभग सब रोगियोंके लिये अनुकूल रहता है।

उदा० एक २५ वर्ष के आयुवाले की नेत्रपरीक्षा कनीनिका प्रसारित करके अन्धेरे कमरे में की उसका नम्बर $+\frac{+८}{+८}$ आया। कनीनिका प्रसारित थी। एवं रोगी की परीक्षा ४ मीटर के अन्तर से करने की बदली में १ मीटर की दूरी पर से जांच की, इसलिये +२ कम किए। जिससे +६ रहे। उपर के नियमानुसार यदि +४ का चश्मा दिया जाय, तो रोगी को अनुकूल रहेगा। ६ मास बाद +४·५ करें। फिर ६ मास के पश्चात् +०·५ बढ़ावें तो रोगी को किसी भी प्रकार की प्रतिकूलता नहीं होगी। एवं पूर्ण दीर्घ-दृष्टि सुधरी जानकर अपने को भी सन्तोष होगा। लम्बी नजर वालों को सर्वदा चश्मा पहनना चाहिए। किन्तु लम्बी नजर +२ के भीतर हो और रोगी युवा हो तो केवल लिखने पढ़ने के समय ही पहनेंगे, तो भी अधिक बाधा नहीं पहुँचेगी।

लम्बी दृष्टि के अतिरिक्त विषय दृष्टि हो तो उसे भी सुधारनी चाहिए कभी कभी रोगी किसी भी कांच से ठीक नहीं पढ़ सकता। ऐसे रोगी को यदि ६ मास तक चश्मा का उपयोग करके वापस बुलायेंगे तो वह ठीक पढ़ सकेंगे।

कितनेक लम्बी नजर वाले बालक विशेषतः जिनकी दोनों आँखों की नजर में अच्छा अन्तर है। और आँख में टेढ़ापन है, उनकी एक आँख भीतर की ओर अर्थात् नासिका की ओर खिच जाती है, ऐसे रोगियों के लिए उपचार क्या करना चाहिए, यह नेत्र की मांस पेशियों के प्रकरण २३ वें में लिखा गया है।

(३) विषम दृष्टि।

(*Astigmatism*)

गोलक की २ अक्षरेखा समान न हो अर्थात् २ रेखाओं में से निकलनेवाले किरण एक ही स्थान पर संग्रहीत न होते हों, उसे विषम दृष्टि कहते हैं। इस स्थिति में रोगी को स्पष्ट नहीं दीखता।

विषम दृष्टि प्रकार—शुक्लमण्डल की खड़ी और आड़ी रेखा की दृष्टि में न्यूनाधिकता से निम्नानुसार ७ प्रकार होते हैं।

१—खड़ी रेखा लम्बी नजर वाली और आड़ी रेखा अच्छी हो।
२—खड़ी रेखा छोटी नजर वाली और आड़ी रेखा अच्छी हो।
३—आड़ी रेखा लम्बी नजर वाली और खड़ी रेखा अच्छी हो।
४—आड़ी रेखा छोटी नजर वाली और खड़ी रेखा अच्छी हो।
५—खड़ी रेखा छोटी नजरवाली और आड़ीरेखा लम्बी नजरवाली हो।
६—खड़ीरेखा लम्बी नजरवाली और आड़ीरेखा छोटी नजरवाली हो।
७—दोनों रेखाएँ लम्बी या छोटी नजरवाली हों, किन्तु एक रेखा में दूसरी रेखाकी अपेक्षा न्यूनाधिक लम्बाई या छोटी नजर हो।

उपर्युक्त सर्व स्थिति हो सकती है और कितनेक रोगियों में दृष्टि गोचर भी होती हैं। किन्तु आड़ीरेखा लम्बी नजरवाली और खड़ी रेखा छोटी नजरवाली हो, ऐसा बहुधा प्रतीत होता है। अतः इस प्रकार की विषम दृष्टि को नियमानुरूप विषम दृष्टि कहते हैं। उसके विपरीत होने पर नियम विरुद्ध विषम दृष्टि कहते हैं।

लक्षण और चिह्न—रोगी को दूर से एवं समीपसे स्पष्ट नहीं दिखता। शिरदर्द, नेत्रदाह, नेत्र में खिंचाव, अश्रुस्राव आदि लक्षण रोगीका ध्यान खींचता है।

कारण—शुक्लमण्डल की दोनों रेखा स्वस्थ स्थितिमें समान होनी चाहिए, वैसी नहीं होती। उनके वर्तुलपन में न्यूनाधिकता होती है। जिस तरह शुक्लमण्डल में भेद होता है, उसतरह दृष्टिमणिमें भी भेद हो सकता है। किन्तु शुक्लमण्डल में कसर, यह हेतु विशेषतः होता है।

परीक्षा—रोगीको २० फुट दूरी पर खड़ा रखकर सूर्यकिरण चित्रको सामने रखें। रोगी खड़ी पंक्तियां ठीक देख सके, तो शुक्लमण्डलकी खड़ी पंक्तिमें कसर है, ऐसा माना जाता है। इस तरह आड़ी पंक्ति ठीक देख सके तो शुक्लमण्डलकी आड़ी रेखामें कसर है, ऐसा विदित होता है। यदि कोई तिर्यक् पंक्ति विशेष स्पष्ट प्रतीत हो, तो उस रेखामें कसर मानी जाती है। इसके लिए अर्द्धगोल कांच योग्य नम्बर का देने पर रोगीको सुविधा मिल जाती है।

द्वितीय परीक्षा विधि—कनीनिका प्रसारितकर अंधेरे कमरेमें दोनों रेखाओं की भिन्न-भिन्न परीक्षा करें। दोनों रेखाओंके नम्बर अलग लिख लेवें। यदि खड़ी और आड़ी सीधी पंक्तिमें छाया चलती हो तो + चिह्न

करके उसमें खड़ी रेखा और आड़ी रेखामें जो नम्बर मिले, वे लिखलें। फिर प्रकरण २८वें में लिखे अनुसार नम्बर देवें। + कांचमें से + २ नम्बर कम करें तथा – कांचमें – १ बढ़ावें।

उदा० पहला—कनीनिका प्रसारितकी है। अंधेरे कमरे में परीक्षा करने पर $\frac{+१}{+६}$ नम्बर मिला है। उनमें से + २ कम करने पर $\frac{+२}{+४}$ शेष रहे, चश्मेका नम्बर निम्नानुसार + २ गोल = + २ अर्द्धगोल, रेखा↓

उदा० दूसरा—कनीनिका प्रसारितकर परीक्षा करने पर $\frac{+२}{-२}$ नम्बर मिले। नियमानुसार न्यूनाधिक करने पर $\frac{+०}{-३}$ नम्बर आये। चश्मे का नम्बर – ४ अर्द्धगोल, रेखा→०

उदा० तीसरा—दर्पणसे परीक्षा करने पर $\frac{+५}{-१}$ नम्बर दृष्टिगोचर हुए। नियमानुसार नम्बर $\frac{+३}{-२}$ हुए। इसके नम्बर दो रीतिसे दिये जाते हैं। (१) + ३ गोल = –५ अर्द्धगोल रेखा → या (२) – २ गोल = + ५ अर्द्धगोल, रेखा↓ ९०।

उदा० चौथा—परीक्षा करने पर $\frac{-२}{-३}$। खड़ी रेखा –२ और आड़ी रेखा – ३ प्रतीत हुई। नियमानुसार मिलाने पर $\frac{-३}{-४}$ हुए। चश्मे का नम्बर – ३ गोल = — १ अर्द्धगोल, रेखा ↓ ३०।

उसी अनुसार रेखा सरल के स्थान पर तिर्यक् प्रतीत हो, तो उस अनुसार लिखें।

कितनेक विद्यार्थी इस विकार पर चश्मे किस तरह देना, यह अति प्रयत्न करने पर भी नहीं समझ सकते। उनको हमारी सलाह है कि, जो पढ़ो या सुनो वह ठीक ध्यान पूर्वक धारणा करो। पढ़कर समझने का प्रयत्न करने के बदले में किसी विद्वान् नेत्रवैद्य से समझने पर जल्दी लक्ष्य में आ सकेगा।

इस विकार के चश्मे में विद्यार्थियों के समान कितनेक नेत्रवैद्यों को भी कठिनता भासती है। बुद्धिमान् दृग्शास्त्रियों ने विषमदृष्टि को नापने के लिए कितनेक यन्त्र बनाये हैं। किन्तु ये यन्त्र प्रायः नेत्रवैद्य

के संग्रहालय की शोभा के लिए व्यवहृत होते हैं। एवं ये यन्त्र चाहिए उतने उपयोग में नहीं आये। इनके तीन हेतु हैं। १—मूल्य अति अधिक है; २-ये यन्त्र बिगड़ने पर भारत में सुधारनेवाले नहीं मिलते। सुधारने के लिए विदेश भेजने में खर्च अधिक आता है; और ३-विद्वान् अनुभवी नेत्रवैद्य इन यन्त्रों की सहायता न लेते हुए अंधेरे कमरे में तत्काल चश्मे का नम्बर निश्चित कर सकते हैं।

४. वार्धक्यजन्य दृष्टिमान्द्य।

(*Presbyopia*)

सामान्यतः ४०-४५ वर्ष की आयु में लिखने पढ़ने के लिये चश्मे की आवश्यकता रहती है, उस स्थिति को वार्धक्यजन्य दृष्टिमान्द्य कहते हैं। इस नियम में लघुदृष्टिवाले अपवाद रूप हैं, अर्थात् —१ लगभग लघुदृष्टि होने पर उसे बिल्कुल चश्मे की आवश्यकता नहीं रहती। लम्बी नजरवाले को जो चश्मा हो उससे पढ़ने के लिए +१ बढ़ाना पड़ता है।

लक्षण और चिन्ह—रोगी को दूर से देखने में कुछ भी कष्ट नहीं होता। समीप देखने में दिन में बाधा नहीं होती। एवं रात्रि को भी बड़े अक्षर पढ़ सकते हैं। केवल सूक्ष्म अक्षर पढ़ने में नेत्रों को खिंचना पड़ता है। शनैः शनैः रात्रि को बड़े अक्षर पढ़ने में त्रास होता है, फिर दिन में छोटे और बड़े अक्षर पढ़ने में भी नेत्रों को कष्ट होता है। ऐसी स्थिति होने पर नेत्रवैद्य की सलाह लेनी पड़ती है। अक्षर बड़े हों तो रोगी पुस्तक या कागज दूर रखकर सरलता से पढ़ सकता है।

कारण—आयु वृद्धि के साथ दृष्टिमणि की स्थितिस्थापकता कम होती जाती है और वह अधिकाधिक कठिन होती जाती है। इस परिवर्तन के हेतु से तन्तुमय पेशी के संकोच से दृष्टिमणि की बहिर्गोल बनने की शक्ति में न्यूनता आती जाती है। एवं तन्तुमय पेशी भी निर्बल होती जाती है। लगभग ४० वर्ष की आयु में दृष्टिमणि में +४ से +५ जितना बहिर्गोलपना रहता है। उतनी शक्ति को निसर्ग संचित रखता है। अतः पढ़नेके लिए आवश्यक अधिक बहिर्गोलपना निसर्ग से प्राप्त नहीं हो सकता। इस हेतु से समीप से अक्षर पढ़ने में त्रास पहुँचता है। यदि नेत्र के पास +१ काँच रखा जाय, तो अक्षर स्पष्ट विदित होता है। इस अनुभव से नेत्रवैद्य ने नियम बनाया है कि सामान्यतः कि ४५ वर्ष की आयु में +१ नं०का कांच;५० वर्ष होनेपर+२ नम्बर, ५५ वर्ष वाले को +३ नम्बर

और ६० वर्ष वाले को +४ नम्बर तक का कांच चाहिए। यदि रोगी को कुछ लघुदृष्टि हो तो उस स्थिति के कांच के अनुरूप पढ़ने के लिए चश्मा देर से चाहिए।

सामान्यतः -१ नम्बर के छोटी नजर वाले को ४५ वर्ष की आयु तक पढ़ने के लिये चश्मा नहीं चाहिए। -२ नम्बर वाले को ५० वर्ष की आयु तक पढ़ने में कष्ट नहीं होता। -३ नम्बर वालों को ५५ वर्ष तक और -४ नम्बर वालों को ६० वर्ष की आयु तक पढ़ने में बाधा नहीं पहुँचती। (इस नियम पर से पाठक को विदित हुआ होगा कि ६० वर्ष के वयोवृद्ध चश्मे की सहायता के बिना क्यों पढ़ सकते हैं? कितनेक वृद्ध अभिमान पूर्वक कहते हैं कि हमारी आँख दीपक जैसी साफ है। किन्तु टक्शास्त्र के अनुसार वे -४ नम्बर के लघुदृष्टि वाले हैं।

लम्बी नजर वाले रोगी को ४० वर्ष की आयु में पढ़ने के लिये +१ से नहीं चलता उसका नम्बर हो, उसमें +१ बढ़ाना चाहिये। यदि किसी कारणवश शरीर में निर्बलता आ जाय और किसी गम्भीर व्याधि के हेतु से शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जाय, तो जो काँच हो उसमें +१ लगभग की वृद्धि करनी पड़ती है। यह वृद्धि दृष्टिमणि में परिवर्तन के हेतु से नहीं है, किन्तु तन्तुमय पेशी की निर्बलता के हेतु से की जाती है।

उपचार—देह निर्बल हो तो पौष्टिक औषध देवें। शरीर सबल हो तो अवस्था के अनुरूप चश्मा देवें। ४० वर्ष की आयु से चश्मे की आवश्यकता होने लगे तो +०.५ से प्रारम्भ करें। फिर ५-५ वर्ष पर +१+१ नम्बर की वृद्धि करें। नेत्र में दूसरी कसर हो तो उसे दूर कर उसके लिए चश्मे का काँच इस कांच के साथ बढ़ा लेवें। रोगी चाहे उतना लिखे पढ़े उसमें बाधा नहीं है।

तीसवां प्रकरण

नेत्र और उपाङ्गों की शस्त्रचिकित्सा

नेत्र के भीतर अनेक अवयव रहते हैं। उन सबका वर्णन प्रथम प्रकरण में किया है। उन अवयवों के कितनेक रोग शस्त्रचिकित्सा साध्य हैं। उन अवयवों की शस्त्रचिकित्सा यहाँ पर निम्नानुसार क्रम से दी जायगी।

A. पलक पर शस्त्रक्रिया।

B. अश्रुजनक पिण्ड और अश्रुवाशय पर शस्त्रक्रिया।

C. नेत्र श्लेष्मावरण पर शस्त्रचिकित्सा।

D. शुक्लमण्डल पर शस्त्रचिकित्सा।

E. तारामण्डल पर शस्त्रक्रिया।

F. अधिमन्थ के लिये शस्त्रक्रिया।

G. कांचबिन्दु पर शस्त्रक्रिया।

H. नेत्रदर्पण की शस्त्रक्रिया।

I. नेत्रगोलक में से गिरे हुए बाह्य पदार्थ को निकालना।

J. नेत्रगोलक की मांस पेशियों पर शस्त्रक्रिया।

K. नेत्रगोलक को निकाल देना।

L. दर्शन नाड़ी का छेदन।

M. नेत्रगृह पर शस्त्रक्रिया।

इन सब प्रकारों की पृथक् पृथक् शस्त्रचिकित्सा का आवश्यक विवेचन करेंगे। यद्यपि आयुर्वेद के विद्वानों ने शस्त्रचिकित्सा के लिये प्रयत्न अभी तक चाहिए जैसा नहीं किया; तथापि आयुर्वेद के विद्यार्थी-वृन्द, जो आयुर्वेद के भावी उद्धारक हैं, जिन पर देशोद्धारक सज्जनों की दृष्टि लगी है, वे इस शस्त्रचिकित्सा के महत्त्व को समझें और इसका सप्रेम अभ्यास कर सकें, इस भावना से प्रेरित होकर यहाँ पर इस चिकित्सा को स्थान दिया है। यदि विद्यार्थियों को इस प्रकरण के लेख से कुछ सहायता मिल जायगी तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूँगा।

यह शस्त्रचिकित्सा केवल ग्रन्थ के अध्ययन मात्र से अवगत नहीं हो सकेगी, इस विषय में मत भेद नहीं है; तथापि अनुभव कराने वाले शस्त्रवैद्य का आश्रय मिलने परभी ग्रन्थरूप साधन न हो, तो भी विद्यार्थियों

को योग्य शिक्षण नहीं मिल सकेगा। इस हेतु से यह प्रयत्न किया गया है। मुझे दृढ़ विश्वास है कि आयुर्वेद के गुणग्राही विद्वान् मेरी इस सेवा को स्वीकार करेंगे।

नेत्र पर शस्त्रचिकित्सा करने के पहले रोगी की शारीरि स्थिति शस्त्रचिकित्सा के योग्य है या नहीं? शस्त्रचिकित्सा के अनुकूल स्थान, ऋतु और साधन हैं या नहीं? इस बात का विचार कर्त्तव्य है। एवं उस समय रोगी की तैयारी और शस्त्रचिकित्सा के पश्चात् परिचर्या या रोगी की सेवा-शुश्रूषा के सम्बन्ध में भी विचार करना चाहिये। अतः इन सब विषयों का विचार निम्नानुसार क्रम से पहले करते हैं।

१—शस्त्रचिकित्सा के पहले रोगी की शारीरिक स्थिति।
२—चक्षु की स्थिति।
३—शस्त्रचिकित्सा के अनुकूल ऋतु।
४—शस्त्रचिकित्सा के अनुकूल दिन का समय।
५—शस्त्रचिकित्सा के योग्य स्थान।
६—रोगी की तैयारी और उसको देने योग्य सूचना।
७—शस्त्रचिकित्सा के आवश्यक साधन।
८—शस्त्रवैद्य और सहायक वैद्य की तैयारी।
९—शस्त्रक्रियार्थ आवश्यक शस्त्र, पट्टी, फोहे, आदि की शोधन विधि।
१०—रोगी के नेत्र को कीटाणु रहित करने की विधि।
११—रोगी को कष्ट का भान न होने के लिए चेतनाहर उपचार।
१२—रोगी नेत्र को न दबावे, ऐसे उपाय।
१३—शस्त्रचिकिसा के पश्चात् परिचर्या।

१. शस्त्रचिकित्सार्थ रोगी की शारीरिक स्थिति।

शस्त्रचिकित्सा करने के पहले रोगी की शारीरिक स्थिति को अच्छी तरह देख लेना चाहिये। यदि शारीरिक स्थिति अति निर्बल हो, श्वास या कास प्रकोप हो, तो उसे दूर करने के पश्चात् शस्त्रचिकित्सा करनी चाहिए। श्वास रोग हो, तो रोगी चित्त नहीं लेट सकता, खांसी का वेग उत्पन्न हो तो नेत्र का घाव खुल जाता है। फिर उस हेतु से रुधिर स्राव हो जाय, तारामण्डल का पर्दा बाहर निकल आवे अथवा घाव में से कांच रूप रस निकल जाय आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं। इसके

अतिरिक्त कास पीड़ित को पीठ के बल से ४८ घण्टे तक पड़ा रहने पर फुफ्फुसों में रक्त संग्रह होता है और उस हेतु से फुफ्फुस पर शोथ आ जाने की सम्भावना है।

दाँतों की परीक्षा कर लेवें। दाँतों में पूय या कोथ हो तो उसका उपचार करा लेने के पश्चात्—दाँत और मसूड़े पूर्ण निरोगी हो जाने पर ही नेत्रगोलक पर शस्त्रचिकित्सा करनी चाहिए। कारण, दाँत में पूय हो, तो उसमें से विष का रक्त में प्रवेश होता है। फिर वह शस्त्रचिकित्सा की हुई आँख में दाहशोथ उत्पन्न करता है। इसी तरह नासिका के पास रहे हुये कोटर और कर्ण प्रदेश भी प्रदाह रहित होना चाहिए, अन्यथा शस्त्रक्रिया करने पर उस नेत्रके पक जाने का भय रहता है।

मूत्र परीक्षा करा लेनी चाहिए। पेशाब में शुभ्र प्रथिन (एल्युमिन) या शर्करा बिल्कुल न होना चाहिए। शक्कर निकलती हो, तो शस्त्र-चिकित्सा बिल्कुल नहीं करनी चाहिए अन्यथा नेत्रगोलक में प्रदाह हो जायगा और कभी कभी पूयोत्पत्ति भी हो जाती है। शुभ्र प्रथिन स्वल्प परिमाण में हो, तब तक तो बाधा नहीं मानी जाती। अधिक परिमाण में होने पर रोगी के वृक्क अस्वस्थ माने जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में शस्त्र चिकित्सा करने पर नेत्रप्रदाह होने की या रक्तस्राव होने की विशेष सम्भावना है।

रोगी की पौरुषग्रन्थि (Prostate gland) बढ़ी हो जाने से या अन्य किसी भी हेतु से मूत्राशय का चिरकारी प्रदाह हो, तो नेत्र पर शस्त्रचिकित्सा करने के पश्चात् पेशाब उतरने में प्रतिबन्ध होता है। कितनीक बार मूत्रसलाका प्रवेश कराकर पेशाब निकाल लेनापड़ता है।

अमरीका, जर्मनी आदि पाश्चात्य प्रदेशों में रोगी के रक्त की भी परीक्षा कर लेते हैं। रक्तपरीक्षा में रक्त का जम जाने का समय निर्णय, रक्ताणु और श्वेताणुओं की संख्या निर्णय तथा वासरमेन और कहान की परीक्षा आदि का प्रयोग किया जाता है। भारतवर्ष में खास स्थिति विदित हो जाय, तो ये सब रक्तपरीक्षा कराई जाती हैं। वैसा कोई चिह्न प्रतीत न हो, तो रक्तपरीक्षा की विशेष आवश्यकता नहीं मानी जाती।

रक्त दबाव अवश्य जान लेना चाहिये। ५० वर्ष आयु और उससे कम आयु वाले रोगियों का रक्त दबाव १७० या उससे अधिक हो तो ऐसे रोगियों को कुछ दिन आराम करावें। फिर रक्त दबाव कम होने पर ही शस्त्रचिकित्सा करें।

यदि रोगी अति डरपोक हो, वह अधिक घबराता हो, तो उसके लिये अधिक ध्यान देना चाहिए। ऐसे रोगी के संरक्षणार्थ क्या क्या उपाय करने इसी प्रकरण में आगे दर्शाया जायगा।

रोगी का हृदय पीड़ित हो और उस हेतु से पैरों पर शोथ आया हो तो उस स्थिति में शस्त्रचिकित्सा नहीं करना चाहिए।

२. चक्षु की स्थिति।

शस्त्रचिकित्सार्थ नेत्र और उसके अवयवोंकी जांच कर लेनी चाहिए। इनमें निम्न स्थिति पर विशेषतः लक्ष्य देना चाहिए।

अ—रोगी की दृष्टि—जितनी दृष्टि हो, वह लिख लेवें।

आ—नेत्रान्तर दबाव—दबाव मापक यन्त्र से नापकर दोनों नेत्रों के दबाव की यादी करें।

इ—नेत्र श्लेष्मावरण, अश्रुवाहक अवयव और कनीनिका की स्थिति को जान लेना चाहिए।

नेत्रश्लेष्मावरण की स्थिति—नेत्रश्लेष्मावरण स्वस्थ है या नहीं? नेत्र में से अश्रुस्राव होता रहता है? नेत्रमें से चिपचिपा मल निकलता है? प्रातः काल रोगीके नेत्र चिपक जाते हैं? नेत्र में रोहे हैं? श्लेष्मावरणका चिरकारी प्रदाह है? इन सबकी जांच करलेनी चाहिए। सुविधा होने पर रोगीके नेत्र पर रात्रिको पट्टी बाँध देवें। फिर सुबह उठने पर आँखमें से निकले हुए पदार्थ को कांचकी तख्ती पर लेवें। उसे योग्य रंग से रंगकर अणुवीक्षण यन्त्रसे देख लेवें। नेत्रमें किस किस प्रकारके कीटाणु हैं, यह निर्णित कर लेवें। कितनेक नेत्रवैद्य इससे भी आगे बढ़कर नेत्रसे निकले हुए स्रावमें किस जातिके कीटाणु हैं, यह निर्णय करनेके लिये भिन्न भिन्न पोषक प्रवाही पर उसे लगाकर कीटाणुओं की संतानोत्पत्ति कराते हैं।

अश्रुवाहक अवयव की स्थिति—नेत्रगोलक पर शस्त्रचिकित्सा करने के पहले अश्रुवाशय और उसके मार्गकी स्थिति देख लेनी चाहिये। आँखमें उत्पन्न अश्रुमें से अधिक हो, उतना हिस्सा अश्रुवाशयसे नाकमें आने वाले नल मार्गसे सरलता पूर्वक निकल जाना चाहिए तथा अश्रुवाशयमें किञ्चित् भी पूय या प्रदाह न होना चाहिये। इन दोनों स्थिति की परीक्षा किस तरह की जाती है, यह प्रकरण ४ थे के प्रारम्भमें समझाया गया है। कोई भी नेत्रवैद्य इस अवयव की परीक्षा किये बिना नेत्र गोलककी शस्त्रचिकित्सा करता है और फिर परिणाम विपरीत आता है, तो उसने एक फौजदारी

अपराध किया है, ऐसा माना जाता है। एवं कोई भी रोगी अदालतमें उस नेत्रवैद्य पर नालिश करे, तो उसे वैसा करने का पूरा हक है।

कनीनिका की जाँच—कनीनिका का किनारा चिपका हुआ तो नहीं है ? प्रकाश प्रतिक्रिया योग्य होती है ? नेत्रपर प्रकाश पड़ने पर रोगी उसकी दिशा ठीक दर्शा सकता है ? इन सब बातों की जांच करके मोतियाबिन्द की शस्त्रचिकित्सा की जाती है।

३. शस्त्रचिकित्साके अनुकूल ऋतु

प्राचीन कालसे भारतीयों की मान्यता है कि शीतकाल में की हुई शस्त्रचिकित्सा में पूर्ण सफलता मिलती है ; गर्मी के दिनोंमें सफलता कम मिलती है और वर्षा कालमें कोई भी शस्त्रक्रिया नहीं करनी चाहिए। यदि करायी जायगी, तो घाव पक जायगा, पूयोत्पत्ति होगी और शस्त्रचिकित्सा निष्फल हो जायगी। यह मान्यता अनुभव करने पर सत्य सिद्ध हुई है। जबतक लिस्टरने जन्तुघ्न औषधों की शोध नहीं की थी, तबतक किसी भी शस्त्रचिकित्सा की सफलता का आधार रोगीकी रोगनिरोधक शक्ति पर रहता था। गर्मीके दिनोंमें और वर्षा कालमें यह शक्ति कम हो जाती है। एवं शीतकालमें वह सबल रहती है, यह सब कोई जानते हैं। शीतकालमें प्रस्वेद अधिक न होनेसे त्वचा अधिक शुष्क रहती है, इन सब हेतुओंसे शीतकालको अधिक अनुकूल माना गया है।

वर्तमानमें जन्तुघ्न औषध आदि साधनों की सुविधा होने से शरीर पर होने वाली शस्त्रचिकित्सा और खास करके नेत्रकी शस्त्रचिकित्सा वर्षके किसी भी भागमें या किसी भी ऋतुमें हो सकती है। शस्त्रचिकित्सा के साधनों को कीटाणु रहित पूर्णांशमें रख सकते हैं। जिससे कुशल शस्त्रवैद्य किसी भी ऋतुमें नेत्रकी शस्त्रक्रिया को सफल बना सकता है। इस दृष्टि से चक्षुकी शस्त्रचिकित्सा सब ऋतुओं में हो सकती है। फिर भी निम्नानुसार विशेष विचार करने पर नवेम्बर और दिसेम्बर का आधा भाग तथा मार्च और एप्रेल का आधा भाग नेत्र की शस्त्रचिकित्सार्थ उत्तम समय माना जायगा। उन समयोंमें अधिक गर्मी या अधिक ठण्डी नहीं होती। जिससे *रोगीको लेटा रहनेमें अधिक कष्ट नहीं होता। गर्मी अधिक होने पर पीठ* तप जाती है और रोगी गर्मीके हेतुसे घबराता है। एवं गर्मीके हेतुसे पसीना आता रहे, वह भी इच्छने योग्य नहीं है। यदि शिर पर उत्पन्न स्वेद शस्त्र-चिकित्साकी हुई आँख के भीतर जाय, तो कदाच त्वचामें रहे हुए रोगोत्पा-दक कीटाणु नेत्रमें प्रवेशित होकर उपद्रव उत्पन्न कर देवें। गर्मीके दिनोंमें

रोगीकी रोगनिरोधक शक्ति भी कम चेतनायुक्त होती है। इस हेतुसे नेत्रमें कम प्रवेश होने पर भी उसके सामने टिकनेमें रोगनिरोधक शक्ति न्यून बलवाली मानी जाती है। यदि शीत अधिक हो, तो रोगीको बिछौने के और ओढ़नेके लिये पूरा साधन चाहिए। उतना ही नहीं, अधिक शीत होने पर चेतना शक्ति भी शिथिल हो जाती है। यह वर्णन लिखा वह जिन देश या प्रान्तोंमें ठण्डी और गर्मी अत्यधिक पड़ती हों, उनको अधिक लागू होता है। बम्बई जैसे स्थलमें नहीं गर्मी अधिक होती एवं न ठण्डी सख्त होती। अतः वहाँ बारों मास शस्त्रचिकित्सा हो सकती है।

४. शस्त्रचिकित्सार्थ दिन का अनुकूल समय।

नेत्रगोलक पर शस्त्रचिकित्सा दिन के किसी भी भाग में हो सकती है। फिर भी सुबह के ९ से १० बजे का समय अधिक अनुकूल माना जायगा। कारण, रोगी रात्रि की शान्त निद्रा के पश्चात् प्रसन्न और स्फूर्तिवान् होता है। एवं शस्त्रवैद्य भी थका हुआ नहीं होता, शस्त्रक्रियार्थ आवश्यक प्रकाश पूरा होता है। सुबह शस्त्रचिकित्सा करने पर शस्त्रवैद्य को रोगी की स्थिति जानने के लिये दिन का अधिक समय मिल जाता है। कुछ उपद्रव या विक्रिया हुई हो, तो शस्त्रवैद्य पुनः रोगी की जांच कर सकता है। ये सब सुविधा महत्त्व की हैं। किन्तु, इस पर से ऐसा न मान लेवें कि दिन के अन्य भाग में शस्त्रक्रिया नहीं हो सकेगी। यदि साधन सामग्री पूर्ण हो और रोगी के नेत्र पर आवश्यक प्रकाश डालने के लिये खास दीपक की योग्य सुविधा हो, तो दिन के किसी भाग में नेत्रगोलक पर शस्त्रक्रिया करने में किसी भी प्रकार की बाधा नहीं मानी जायगी।

५. शस्त्रक्रियार्थ योग्य स्थान।

नेत्र पर शस्त्रचिकित्सा कहाँ करना चाहिए, यह प्रश्न प्रत्येक नेत्र वैद्य को रोज होता है। रोगी के मकान पर या नेत्रवैद्य के आतुरालय में। उत्तर यह है कि, रोगी की आर्थिक स्थिति अच्छी हो, उसके रहने की जगह विशाल हो, वह स्थान पवित्र वायुवाला हो, रोगी के लिये कमरा अलग मिलता हो, उस कमरे में पूरा प्रकाश आता हो, पूर्ण स्वच्छ और शान्ति वाला हो, तो रोगी के मकान पर शस्त्रक्रिया हो सकती है। उपर्युक्त सुविधाएं न हों तो नेत्रवैद्य के आतुरालय या अन्य नेत्र के आतुरालय में शस्त्रचिकित्सा कराना, वह अधिक हितकर माना जायगा।

शस्त्रचिकित्सा के लिये कमरा—प्रायः नेत्रों के सर्व आतुरालयों में एक

कमरा शस्त्र चिकित्सा के साधनों से सुसज्जित रहता है। उस कमरे में पूरा प्रकाश आना चाहिये। उत्तर दिशा की दीवार में एक बड़ी खिड़की कांच के किवाड़ वाली होनी चाहिये। उत्तर में खिड़की रखने का मुख्य कारण यह है कि दिन के किसी भी भाग में उस खिड़की में से प्रकाश आता है; किन्तु सूर्य का ताप नहीं आता। कितनेक नेत्रवैद्य ऊपर के छप्पर में भी कांच लगवाते हैं। कितनेक नेत्रवैद्यों को उस तरह के ऊपर प्रकाश बिना कार्य करना कठिन मालूम पड़ता है। हमारा मत यह है कि, शस्त्रक्रिया का कमरा अच्छे प्रकाश युक्त होना चाहिये।। शस्त्रवैद्यों को ऐसी आदत नहीं डालनी चाहिये कि अमुक जाति के प्रकाश बिना उससे कार्य ही न होवे। क्योंकि, अनेक बार रोगी के मकान पर भी शस्त्रचिकित्सा करनी पड़ती है। उस समय उन शस्त्रवैद्यों को कम प्रकाश में कार्य करने का अभ्यास न होने से अति कष्ट होता है।

शस्त्रचिकित्सा के कमरे में होसके तब तक तल भाग में सफेद संगमर्मर या सफेद टाइल्स लगवाना चाहिये। दीवार में भी ४-६ फुट ऊँचाई तक वैसी योजना करनी चाहिये। उसके ऊपर की दीवार सफेद होनी चाहिये। इस कमरे में पूर्ण स्वच्छ रखना चाहिये। उसमें धूल का नाम भी न होना चाहिये। इस कमरे को रोज सुबह धोकर साफ कर लेना चाहिये। उस कमरे में हाथ धोने के लिये एक दो नल और सफेद चीनी के पात्र रहने चाहिये गैस या बिजली की सुविधा हो तो उसकी बत्तियों की योजना करनी चाहिये। उस कमरे में उबाले हुए जल की योजना सर्व समय के लिये हो सके, तो नेत्रवैद्य को अधिक सुविधा मिलती है।

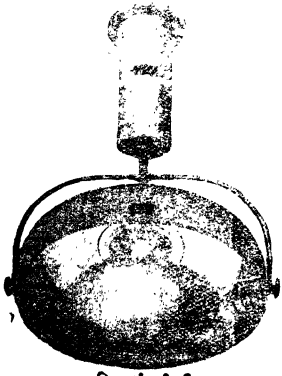

चित्र नं० १७६

कतिपय नेत्रवैद्य सूर्य के प्रकाश से ही नेत्रगोलक पर सब प्रकार की शस्त्रचिकित्सा करते हैं; किन्तु अन्य कितनेकों को खास दीपक बिना शस्त्रक्रिया करने में प्रतिकूलता होती है। ऐसे दीपक दो जातिके आते हैं। इनमें से एक

जाति का दीपक शस्त्रचिकित्साके कमरे में जिस तख्त पर शस्त्रचिकित्सा की जाती है, उस पर व्यवस्थित किया जाता है। उस दीपक को सूर्य सम प्रकाशदायक दीपक और छायारहित दीपक (Shadowless Lamp) कहते हैं। चित्र नं० १७६ देखें। उससे नेत्र पर ठीक प्रकाश पड़ सकता है। यह दीपक अधिक खर्च वाला है, यह केवल बड़े आतुरालयोंमें ही सज्जित किया जाता है। इस दीपक को एक स्थान से दूसरे स्थान पर हटा नहीं सकते। अतः रोगी के मकान पर शस्त्रचिकित्सा करनी हो, तब उपयोग में नहीं आ सकता। इस हेतु से अनेक नेत्रवैद्य हाथ में रह सके, वैसी बत्ती (Operating hand lamp) को पसंद करते हैं। उसका उपयोग किसी भी प्रकार हो सकता है। एवं उसका प्रकाश नेत्र गोलक के बीच के भाग में केन्द्रित हो सकता है। उसमें नेत्र के भीतर के अवयवों की स्पष्ट प्रतीति हो जाती है। चित्र नं० १७७ देखें।

उस कमरे के भीतर एक तख्त सज्जित किया जाता है। वह उस तरह कि रोगी के पैर उत्तर दिशा की खिड़की की ओर रहें। उस तख्त में अनेक प्रकार की व्यवस्था की जाती है। एक प्रकार के तख्त में रोगी को ऊँचा व नीचा करनेकी योजना होती है। एवं कितनेक तख्तोंमें पैरों से तख्त ऊँचा व नीचा हो सकता है। कितनेकों में नीचे रबर के चक्र होते हैं और जब रोगी को उस पर लिटाया जाता है, तब चक्र ऊँचे हो जायँ, ऐसी व्यवस्था होती है। कितनेक तख्तोंमें ऊपरका हिस्सा कांचका होता है एवं कितनेकों में लोहे का होता है एवं कितनेक टेबिलों में ऐसी योजना होती है कि जो कुछ प्रवाही ऊपर गिरे,वह उसके मध्य मार्गके नीचे रही हुई बाल्टीमें गिरे। ये सब योजना तख्तको अधिक मूल्यवाला बनाती हैं। एक सादा तख्त ६। फुट लम्बा २ फुट चौड़ा और ३ फुट ऊँचा हो, तो उससे भी सब कार्य हो सकता है।

तख्त पर एक सिराना रखते हैं और सफेद चादर बिछाते हैं। उस तख्त की बाजू में अन्य दो तख्तों का प्रबन्ध किया जाता है। एक पर शस्त्र यन्त्र व्यवस्थित होते हैं। दूसरे पर पट्टी, फोहे, बून्द डालने की शीशी आदि रखते हैं। और एक अन्य तख्त शस्त्र आदि उबालने के लिये रखा जाता है। पट्टी, तौलिया, चादर आदि को स्वच्छ करने के लिये बड़ा वाष्पयन्त्र रखते हैं। उसकी सामान्य आतुरालय में भी आवश्यकता रहती है। जब प्रकाश पूरा न हो, तब हाथ से पकड़ने का विद्युद्दीपक तैयार रखा जाता है। बड़े आतुरालय में शस्त्र आदि को उबालने के लिए स्वतन्त्र कमरा रखा जाता है।

जिन शस्त्रचिकित्सा में नेत्रगोलक को खोला जाता है, उनमें शस्त्र-क्रिया करने पर रोगी को उठने नहीं दिया जाता। बिछौने पर लिटाया हुआ ही दूसरे स्थान पर ले जाने में आता है। इसके लिये बड़े आतुरालयोंमें पहियेवाली लम्बी गाड़ी या पहियेवाले स्ट्रेचर रखते हैं। सामान्य आतुरालयों में निम्न व्यवस्था विशेष सुविधाकर रहती है।

कंतान या केन्विस का लगभग ६॥ फुट लम्बा और २।—२॥। फुट चौड़ा टुकड़ा लें। लम्बाई के दोनों किनारों को थोड़ा मुड़वाकर (नेफा रखवाकर) सिलवाई करवा लेवें। चौड़ाई में भी दोनों ओर को २॥–३ इंचका नेफा रखें। लम्बाईकी रुखसे उसके भीतर आ सके ऐसे दो बांस या लकड़ी के डण्डे लगवा लेवें। उन डण्डों की लम्बाई करीब ७॥ फुट होनी चाहिये। केन्विस की जितनी चौड़ाई हो उतनी चौड़ाई की लोहे की दृढ़ दो सलाका तैयार करावें। उन दोनों सलाकाओं के सिरे पर एक एक नली रखावें। उन नलियों के भीतर डण्डे सरलता से आ सकें, ऐसी होनी चाहिये। रोगी को जिस समय शस्त्रचिकित्सा तख्ते पर लिटाया उसी समय केन्विस के टुकड़े को टेबिल के ऊपर (रोगी के नीचे) बिछा देवें। फिर रोगी को उठाना हो, तब केन्विस के दोनों ओर डण्डे डाल देवें तथा दोनों सिरे पर लोह सलाका लगा लेवें, जिससे दो मनुष्य रोगी को सरलता से उठा सकें।

वर्तमान में नेत्रगोलक पर होने वाली कितनीक शस्त्रचिकित्साओं में से खासकर नेत्रदर्पण के विच्छेदार्थ होनेवाली शस्त्रचिकित्सा में डायाथर्मी यन्त्र (Diathermy Apparatus) का उपयोग अनिवार्य है। इस यन्त्र की २ जाति आती हैं (१) बड़ा और (२) नेत्रचिकित्सा में उपयोगी। जो नेत्र के लिये खास उपयोगी है, उसे भिन्न भिन्न संज्ञा दी गई हैं। जैसा कि ओफथेल्मोथर्म (Ophthalmotherm) डायाथर्म (Diatherm) आदि। यह यन्त्र भी शस्त्रचिकित्सा के कमरे में रहना चाहिये। चित्रनं० १७८ देखें।

६. रोगीकी तैयारी और देने योग्य सूचना।

नेत्रगोलक पर शस्त्रचिकित्सा करनी हो, तब रोगीका पेट हो सके उतना हल्का होना चाहिये। इस उद्देश्यसे कितनेक नेत्रवैद्य रोगीको पहलेसे एक सप्ताह तक हल्के भोजन पर रहनेकी सूचना करते हैं। हमारे अनुभव अनुसार यह सूचना अधिक कठोर भासती है। जिस दिन शस्त्रचिकित्सा करनी हो उससे ४८ घण्टे पहलेसे लघु भोजन पर रह जाय, तो चल सकता

है। हल्का भोजन क्या लेना, इसका आधार देश देशके रीतिरिवाजों पर अवलम्बित है। जिनका मुख्य आहार चावल हो, उनको चावल पर रहने की सूचना करनी वह अर्थहीन है। जो लोग गेहूँकी रोटी या ज्वार बाजरेकी रोटी

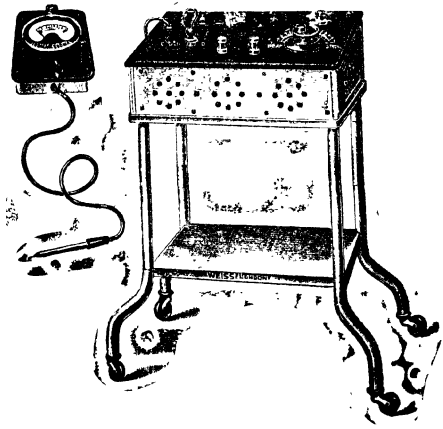

चित्र नं० १७८

लेते हों, उनको १ दिन दाल भात पर और दूसरे दिन दूध भात या मट्ठा और भात पर निर्वाह करने की सूचना करना यह योग्य है कितनेक रोगी एक दिन दूध, मट्ठा या यवागू पर रह जायँ तो उनका पेट नरम और हल्का हो जाता है। संक्षेपमें तात्पर्य यह है कि रोगीको जो भोजन सत्वर और सरलता से पचन हो सके उस भोजन पर १-२ दिन पहले से रह जायँ और आहार भी कम परिमाणमें लेवें।

शस्त्रचिकित्सा करनेके ३६ घण्टे पहले रोगीको मृदु विरेचन देना चाहिये। कौनसा विरेचन देना, यह चिकित्सक और रोगीकी सुविधा पर है। जिस तरह अन्त्र मलरहित हो, उस तरह योजना करनी चाहिये। शस्त्र-क्रिया के दिन सुबहको एक बार बस्तिप्रयोग (Enema) करना चाहिये। एवं शस्त्रक्रिया के पहले रात्रिको पोटास ब्रोमाइड २० ग्रेन जलके साथ देना चाहिये।

शस्त्रचिकित्साके दिन सुबह रोगीको निवाये जल और साबुनसे अच्छी तरह स्नान कराना चाहिये। स्नान के समय मुख पर अच्छी तरह साबुन लगा, मसल फिर अधिक जलसे धो देना चाहिये। मुंह धोते समय खास करके दोनों पलक और नेत्रके भीतरके भागको ठीक साफ करना चाहिये।

कितनेक नेत्रवैद्य शस्त्रचिकित्सा करने के एक सप्ताह पहले से प्रतिदिन जिंक सल्फेट के प्रवाही (१ औंस में १ ग्रेन) आर्जिरोल प्रवाही (१ औंस में २५ ग्रेन), मेटोकेन प्रवाही (१ औंस में ½ ग्रेन) अथवा मर्क्युरोक्रोम (१ औंस में ५ ग्रेन) के बूंद प्रातः सायं दो बार डालते रहते हैं। हमारे अनुभव अनुसार इन औषधियों का प्रयोग केवल उन रोगियों के लिये आवश्यक है, जिनकी आंख में पुराने रोहे या नेत्र श्लेष्मावरण प्रदाह हो।

शस्त्रचिकित्सा के दिन प्रातःकाल लगभग ६ बजे रोगी को १ कप चाय या १ छोटा कप दूध पिलाने में बाधा नहीं है।

शस्त्रक्रिया से आध घण्टे पहले सोडियम एमिटल ३ ग्रेन या गार्डिनल १ ग्रेन रोगी को देवें। यदि रोगी अति डरपोक हो या चंचल वृत्ति वाला हो तो कितनेक नेत्रवैद्य मोर्फिया ½ ग्रेन और एट्रापिन $\frac{1}{100}$ ग्रेन की टिकिया जल में पिघला कर उसका अन्तःक्षेपण करते हैं। इस अन्तःक्षेपण से केवल २ ही हानि हैं। १. कितनेक रोगियों को मोर्फिया से वान्ति होती है; २. रोगी के वृक्क (Kidneys) किञ्चित् भी रोगग्रस्त हो, तो रोगी को मोर्फिया के विष के चिन्ह होने लगते हैं।

७. शस्त्रचिकित्सार्थ आवश्यक साधन।

रोगी को लिटाने के लिये टेबिल, यन्त्र शस्त्र आदि रखने के लिये १-२ टेबिल, विशुद्ध लिंटके टुकड़े, फोहे के लिये विशुद्ध रुई और पतला कपड़ा नेत्र पर बाँधने के लिये पटटी।

शस्त्रवैद्य के हाथ शुद्ध करने के लिये रेक्टीफाइड स्पिरिट एल्सोल्युट अलकोहोल या वीन आयोडाइड आफ मर्क्युरी मिला हुआ रेक्टीफाइड स्पिरिट,

टिञ्चर आयोडिन,

नेत्र धोने के लिये औषधियां—रसकर्पूर प्रवाही (H. P. Lotion) $\frac{1}{5000}$ और $\frac{1}{1000}$; बोरिक प्रवाही (७ औंस में ५ ग्रेन वाला); विशुद्ध लवण जल।

नेत्र में डालने की औषधियां—कोकेन प्रवाही (१ औंस में १०-२० ग्रेन); एड्रिनेलिन क्लोराइड का प्रवाही १:१००० ; एटोपिन प्रवाही एक औंस में ४ ग्रेन वाला; इसरिन सल्फेट प्रवाही एक औंस में ४ ग्रेन वाला; मर्क्युरी क्लोम प्रवाही २ प्रतिशत का और नोवोकेन प्रवाही २ प्रतिशत का।

नेत्रों को धोने के लिये—अनुकूल साधन। भिन्न भिन्न नेत्रवैद्य अलग अलग प्रकार की व्यवस्था करते हैं। कितनेक ऊपर के छप्पर के नीचे या दीवार में ऊँचे कांच का बड़ा बर्तन लटकाते हैं उसमें से रबरकी नली द्वारा प्रवाही आता है। उससे नेत्र धोते हैं। ऐसे कांच के बर्तन छोटे बड़े कद के तैयार मिलते हैं। उनको लगाने के पश्चात् ऊँचे नीचे हो सके, इस हेतु से कड़ी या फिरकी की योजना होती है। यह बर्तन अधिक ऊँचाई पर होने पर जल अधिक बलपूर्वक नेत्र में गिरता है; नीचा होने पर कम बलसे जल गिरता है। अधिक बल से जल प्रवाह नेत्र में जाय, तो शुक्लमण्डल की सूक्ष्म त्वचा को हानि पहुँचती है जिससे कितनेक रोगियों को हानि पहुँचने की भीति रहती है। अतः रोगी और रोग का विचार करके पात्र को नीचा ऊँचा किया जाता है।

अन्य कितनेक नेत्रवैद्य कांच कूपी (अन्टाइन—चित्र नं० ५०) का उपयोग करते हैं। कई एक ग्लास में प्रवाही भर, उसमें रुई या लिंट के टुकड़े को भिगो कर नेत्र पर निचोड़ते हैं। ये सब प्रकार नेत्र के बाह्य भागों को धोने के लिये हैं।

जलमय रस का पूर्व खण्ड धोने के लिये—इसके लिये भी कितनेक प्रकारों की व्यवस्था है। कतिपय चिकित्सक ४-८ औंस जल रह सके ऐसे कांच के प्रक्षालन पात्र का उपयोग करते हैं (चित्र नं० १७९ देखें) उस पात्र पर रबर का दो छेद वाला डाट रहता है, दोनों छेदों में से कांच की २ पतली नली निकलती हैं। एक नली पात्र के तल तक पहुँचती है। दूसरी जल की सतह से ऊँची रहती है। जो नली बिल्कुल तल तक जाती है, उसका बाहर का सिरा ६० के कोन से मुड़ा हुआ होता है। उस सिरे पर करीब ३ फुट लम्बी रबर की नली लगी रहती है। उस नली के बाहर के सिरे पर चाँदी या अन्य धातु की मुड़ी हुई टोंटी होती है।

नेत्रगोलकके भीतरके भागों को धोनेके लिये नोर्मल सेलाइन (विशुद्ध लवण जल) प्रयोजित होता है। इसके उपयोग का हेतु यह है कि, जितने परिमाण में क्षार आदि द्रव्य जलमय रसमें रहते हैं, उतने ही परिमाण में क्षार मिश्रित जल होने पर कनीनिका, शुक्लमण्डल के पीछे रही हुई

पतली त्वचा आदि को हानि नहीं पहुँचती। यह कृत्रिम अश्रुमवरस या अश्रुमवरस के लगभग समान प्रवाही बनानेके लिये १ औंस वाष्पजल में २॥ ग्रेन विशुद्ध नमक मिलाया जाता है। इस लवणजल को ठीक १० मिनट तक उबाल कर निर्जन्तुक बना लेना चाहिये।

अतिरिक्त साधन—नेत्रमें से जल या रक्तको चूस लेनेके लिये उबाले हुए लिण्टके ८-१० टुकड़े; शस्त्रोंको विशुद्ध बनाने के पश्चात् क्रमशः सञ्चित करनेके लिये कांचका या चीनीमिट्टी का शस्त्रधारणार्थ चौकोर थान (चित्र नं० १८० देखें) एवं रोगियों के नेत्र पर पट्टी बाँधने के लिये तार की नेत्ररक्षिका (चित्र नं० १८१) या एलल्युमिनियम की नेत्ररक्षिका (चित्र नं० १८२), इन सबकी अति आवश्यकता रहती है।

चित्र नं० १८२

शस्त्र, यन्त्र, पट्टी, फोहे आदि को निर्जन्तुक करने के लिये खास यन्त्र आते हैं, इन यन्त्रों को भी पूरी पूरी आवश्यकता है। ये यन्त्र भी अनेक जाति के बनते हैं। स्पिरिट के दीपक और विद्युत् से गरम हो सके वैसी जाति भी मिलती है। इनमें से शस्त्र शुद्धिकर विद्युत् से गरम संचालित पात्र शहरों में अधिक व्यवहृत होता है। चित्र १८३ देखें। पट्टी फोहे आदि की शुद्धिके लिये पात्र

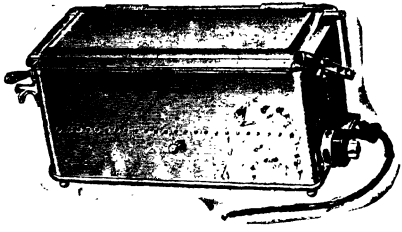

चित्र नं० १८३

आता है, वह चित्र १८४ में दर्शाया है। इस यन्त्रमें विशेष प्रकार के डिब्बे (पेटी) व्यवस्थित किये हैं, उनके भीतर पट्टी, फोहे आदि रखे जाते हैं डिब्बे का चित्र नं० १८५ में दर्शाया है।

८. शस्त्रवैद्य और सहायकवैद्य की तैयारी।

शस्त्रवैद्य और सहायकवैद्य को शस्त्रचिकित्सा करने के पहले

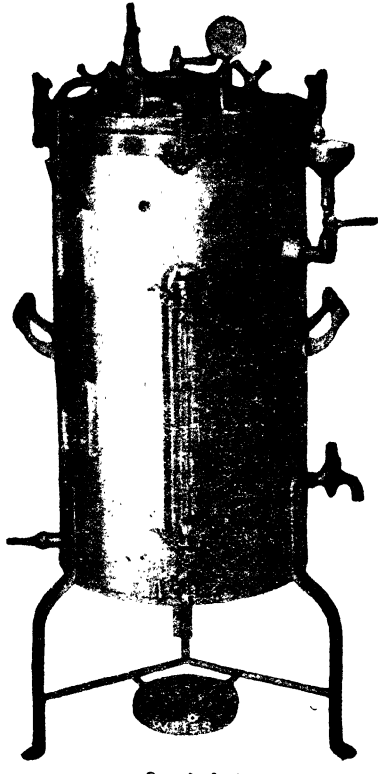

चित्र नं० १८४

हाथों को विशुद्ध करना पड़ता है एवं विशेष प्रकार के विशुद्ध वस्त्र धारण

करना पड़ता है। हाथों की शुद्धि किस तरह करनी चाहिये, इस सम्बन्ध में भिन्न भिन्न नेत्रवैद्य पृथक् पृथक् रीति का उपयोग करते हैं। इनमें से हम जिस तरह हाथों की शुद्धि करते हैं, वह रीति अब देते हैं।

हस्त शुद्धि की रीति—पहले हाथों को कापड़ के ऊपर के भाग तक साबुन लगा कुछ कठिन ब्रुस से घिस प्रवाही जल द्वारा अच्छी तरह साफ करना चाहिये। यह प्रवाही जल उबाला हुआ हो तो विशेष अच्छा। फिर हाथों को रेक्टीफाइड स्पिरिट और बिन आयोडाइड मर्क्युरी के मिश्रण में डुबोवें। (एक औंस रेक्टीफाइड स्पिरिट में बिन आयोडाइड ऑफ मर्क्युरी १ ग्रेन मिलावें) तत्पश्चात् उबाले हुए जल से हाथों को धोकर विशुद्ध तौलिये से पोंछें। इस तरह शुद्धि करने के बाद अन्य किसी वस्तु को हाथ नहीं लगाना चाहिये। रोगी के नेत्रोंको धोनेके पश्चात् पुनः अपने हाथ पर क्लोराइड आफ मर्क्युरी के प्रवाही में डुबोकर विशुद्ध तौलिये से पोंछ लेवें।

विशुद्ध वस्त्र धारण—हाथों को स्वच्छ करने के पश्चात् नेत्रवैद्य और सहायकवैद्य दोनों का यन्त्र में वाष्प से विशुद्ध किया हुआ श्वेत वस्त्रावरण (Apron) धारण करना चाहिये एवं दोनोंको विशुद्ध मुखावरण (Mouth masks) या कण्ठ तक पहनने की टोपी (Head masks) भी पहन लेना चाहिये।

कितनेक नेत्रवैद्य अपने हाथों पर पतले रबर के मौजे पहने बिना शस्त्र क्रिया नहीं करते। हम मौजे का उपयोग नहीं करते। बिना मौजा काम करने में किसी भी नेत्र में हानि पहुँची हो, ऐसा हमारे अनुभव में नहीं आया।

सूचना—नेत्रवैद्य या सहायक वैद्य को जुकाम हुआ हो, या उनके नाक में से कुछ प्रवाही निकलता हो, या खाँसी हुई हो, तो शस्त्रचिकित्सा नहीं करनी चाहिये या शस्त्रचिकित्सा में सहायता भी नहीं करनी चाहिये।

६. शस्त्रक्रियार्थ शस्त्र, पट्टी, फोहे आदि की शोधन विधि।

काटने के शस्त्र - छोटे चाकू, कैंची आदि धार वाले शस्त्रों के अतिरिक्त शेष सब शस्त्रों को साबुन और जल से धोकर उबालने के पात्र में रखें। कम से कम ५ मिनट तक ठीक उबलने देवें। यदि शहर या ग्राम का जल नमकीन हो या उसमें चूने का अंश हो, तो थोड़ा अमोनिया या कार्बोनेट आफ सोडा जलमें मिला देने से शस्त्रों को जंग नहीं लगता।

काटने के धारवाले शस्त्रों को ठीक धोकर साफ करें। फिर पुनः साबुन लगाकर जल से साफ करें। तत्पश्चात् कितनेक चिकित्सक कार्बोलिक एसिड में डुबोते हैं, कई एक अल्कोहॉल में डाल फिर उबाले हुए जल से धो लेते हैं। कतिपय नेत्रवैद्य साबुन जल से धोकर उबलते हुए जल में केवल आध मिनट तक रख देते हैं। धार वाले शस्त्रों को ५ मिनट तक न उबालने का कारण यह है कि, ऐसा करने पर उसकी धार जल्दी मोटी हो जाती है।

उक्त रीति से शस्त्रों को शुद्ध कर एक पात्र (ट्रे) में व्यवस्थित कर उस पर शुद्ध तौलिया ढक देवें।

लिण्ट को अच्छी तरह उबाल कर शुद्ध करें। नेत्र पर रुई के फोहे रखते हैं और उसके दोनों ओर सायानाइड गोज रखते हैं। उनकी शुद्धि वाष्प से की जाती है। पट्टियों को भी अच्छी तरह धोकर वाष्प द्वारा ही शुद्ध करते हैं।

१०. नेत्रों का शोधन।

पलक, अश्रु वाशय आदि गोलक के अतिरिक्त भाग पर शस्त्रक्रिया करनी हो, तो गरम जल और साबुन से पहले मुँह और आँख के चारों ओर के भाग तथा पलक आदि को धोकर अच्छी तरह साफ करें। फिर नेत्र के बाहर त्वचा पर टिञ्चर आयोडीन (रेक्टी फिकेट्स) लगा लेवें। (वह नेत्र में न जाय, यह सम्हालें, अन्यथा नेत्र में दाह होता है) वह सूख जाने पर उस भाग को मर्क्युरी परक्लोराइड के प्रवाही से धो देवें।

गोलक पर शस्त्रक्रिया करनी हो, तो गोलक को चेतनाहीन बनाने के लिये २॥-२॥ मिनट के अन्तर से ३ बार कोकेन के बूँद डालें। कितनेक वर्षों से हम कोकेन प्रवाही के बूँद का उपयोग नहीं करते। किन्तु एनिथीन के बूंद डालकर २ मिनट के पश्चात् कोकेन चूर्ण राई जितना रोगी के नेत्र में डालते हैं। फिर तुरन्त ही १ बूंद एड्रीनेलिन क्लोराइड १/१००० का डालते हैं। ५ मिनट के पश्चात् नेत्र पर शस्त्र क्रिया करने पर रोगी को बिल्कुल बोध नहीं होता। हमें अनुभव मिला है कि कोकेन चूर्ण के प्रयोग से रोगी का नेत्र उतने तक चेतनाहीन हो जाता है कि रोगी को शस्त्रक्रिया का बोध ही नहीं होता। उतना ही नहीं। तारामण्डल का पर्दा काटने में भी रोगी को पीड़ा नहीं होती।

तत्पश्चात् पलक को उलटें तथा पलक और गोलक को १/१००० के

(H.P. Lotion) मर्क्युरी परक्लोइड के प्रवाही से साफ करें। कितनेक नेत्र वैद्य ऽ०ऽ० का प्रवाही लेते हैं। हमने दोनों प्रवाहियों का उपयोग किया है। उस आधार से हमारा मत यह हुआ है कि गेहे जैसे छूत के रोग न हो और आंख अति खराब न हुई हो, तो ऽ०ऽ० से इच्छित कार्य होता है।

नेत्र को ऊपर की विधि अनुसार धोने के बाद नेत्र को खुली रखने की कमानी लगावें। फिर लवण जल से गोलक और उसके कोण आदि को अच्छी तरह धो दें। पश्चात् टिंक्चर आयोडिन रेक्टीफिकेट्स में लिण्ट को डुबो कर पलक और पलकधारा पर लगा दें।

११. पीड़ा शामक—चेतनाहर औषध।

भूतकाल और वर्तमान काल की शस्त्रक्रिया के बीच में यह अन्तर है कि, भूतकाल में शस्त्रक्रिया करने पर रोगी को वेदना होती थी और वर्तमान में चेतनाहर औषधों का शोध होने से रोगी को शास्त्रक्रिया का बिल्कुल बोध नहीं होता।

नेत्र की शस्त्रचिकित्सामें दो प्रकार के चेतनाहर औषधों को प्रयोग में लाते हैं। १. रोगी को बिल्कुल बेहोस बनानेवाली औषधि; २. केवल नेत्र या नेत्र के चारों ओर का प्रदेश, जिस पर शस्त्रचिकित्सा करनी हो उसे बेहोस (चेतनाहीन) बनाने वाली औषधि। १६ वीं शताब्दी तक नेत्रगोलक की कतिपय शस्त्रचिकित्सा जैसी कि तीक्ष्ण अधिमन्थ की शस्त्रक्रिया, नेत्रगोलक को निकाल देने की शस्त्रक्रिया और कांच बिन्दु की शस्त्रक्रिया आदि अति घबरायेहुए रोगियोंमें रोगीको बेहोस बनाये बिना नहीं हो सकती थी। क्योंकि, उस समय तक पीड़ित नेत्रों को बिल्कुल चेतनाहीन बना सके, ऐसी औषधियों का शोध नहीं हुआ था। रोगीको क्लोरोफार्म या इथर सुँघाना पड़ता था।

वर्तमान में स्थानिक चेतनाहर औषधियां उतने तक असरकारक हुई हैं कि, क्रोनलेन की शस्त्रक्रिया, नेत्रगृह के अर्बुद को निकालने की शस्त्रक्रिया क्वचित् अश्रुवाशय के आशुकारी प्रदाह की शस्त्रक्रिया तथा अबोध शिशुओं के नेत्र पर शस्त्रक्रिया, इनको छोड़कर शेष सब शस्त्रचिकित्सा स्थानिक चेतनाहर औषध प्रयोग के आश्रय से हो सकती है।

रोगी को बेहोस बनानेवाले प्रयोग—इस प्रकार में हृदय क्रिया, श्वसन आदि शारीरिक मूलकार्यों के अतिरिक्त समग्र शारीरिक व्यापार या मानस व्यापार को मस्तिष्क की ओर से संचालना नहीं मिलती। यदि संवेदना-

ज्ञान मस्तिष्क केन्द्र तक पहुँचा, तो भी उसका परिणाम मस्तिष्क पर नहीं होता। इस प्रकार की औषधि का उपयोग ३ रीति से होता है। १. बस्ति द्वारा; २. शिरा में अन्तःक्षेपण करके; ३. नस्य देकर। इनमें एवरटिन (Avertin) आदि औषध बस्ति द्वारा दिये जाते हैं। सोडियम एमीटल (Sodium Amytal), पेण्टोथल सोडियम (Pentothal Sodium) एवीपेन सोडियम (Evipan Sodium) आदि का प्रयोग शिरा में अन्तः-क्षेपण करके किया जाता है। क्लोरोफार्म, इथर, नाइट्रस ऑक्साइड (Nitrous Oxide) और एथिल क्लोराइड (Ethyl Chloride), ये सब सुँघाकर रोगी को बेहोस बनाया जाता है।

यदि शस्त्रक्रिया थोड़े समय में समाप्त हो सके, तो एथिल क्लोराइड या नाइट्रस आक्साइड गेस से कार्य लिया जाता है। अधिक समय तक शस्त्रक्रिया होती रहे, तो इथर या क्लोरोफार्म को आक्सिजन (प्राणवायु) के साथ दिया जाता है। बड़े शहरों में शस्त्रक्रिया करने के समय रोगी को बेहोस करने के कार्य में निष्णात् डाक्टर (Anaesthetist) मिल सकता है। छोटे शहर और ग्रामों में यह कार्य सहायक वैद्य से ही लेना पड़ता है।

स्थानिक चेतनाहर औषध—इस प्रकार की औषध में मुख्य एनीथेइन (Anethaine), कोकेन हाइड्रोक्लोराइड, ब्यूटिन (Butyn) होलोकेन हाईड्रोक्लोराइड (Holoceine Hydrochloride), न्युपर्केन (Nuperocain), ये सब नेत्र में डालने के लिये; तथा प्रोकेन (Procaine), नोवोकेन (Novoeaine), पेण्टोकेन (Pantocaine) आदि के प्रवाही त्वचा के नीचे या गहरे भाग में अथवा नेत्रगोलक के पीछे अन्तःक्षेपण द्वारा पहुँचाने के लिये व्यवहृत होती हैं। इन अन्तःक्षेपण की औषधियों के साथ एड्रिनेलिन (Adrenalin) या एपिनेफ्रिन (Epinephrine) मिला लेते हैं।

प्रत्येक नेत्रवैद्य अपनी अपनी पसन्दगी के अनुरूप औषधिका उपयोग करते हैं। भारतवर्ष में विशेषतः नेत्रमें डालनेके लिये एनीथिन और कोकेन तथा अन्तःक्षेपण के लिये नोवोकेन उपयोगमें लिया जाता है। किन्तु विश्वविग्रहके हेतुसे प्रत्येक वस्तुकी न्यूनता हुई। नोवोकेन का अभाव हो गया, जिससे परकेन और पेण्टोकेनका प्रयोग हो रहा है।

कोकेन हाइड्रोक्लोराइड ४ प्रतिशत का (१ औंस जलमें २० ग्रेन) प्रवाही, एनीथिन एक औंसमें ५ ग्रेन, तथा ल्यूटिन १ औंस जलमें ५ ग्रेन मिलाकर उपयोगमें लिया जाता है।

नोवोकेन और परकेन का प्रवाही २ प्रतिशत का तथा पेन्टोकेन प्रवाही १ औंस जल में २॥ से ५ ग्रेन मिला हुआ अन्तःक्षेपणार्थ प्रयोजित होता है।

कोकेनके बूंद २॥-२॥ मिनटके अन्तर पर ३-४ बार नेत्रमें डालते हैं। पहले लिखा है उस अनुसार कोकेन के बूंद जिस नेत्रमें डाला हो, उस आँख को अच्छी तरह बन्द रखें; अन्यथा शुक्लमण्डलकी बाह्य त्वचा शुष्क हो जाती है, परिणाममें उसे हानि पहुँचती है।

१२. नेत्रको रोगी न दबा दे ऐसे उपाय।

रोगी के गोलक को खोलने में आवे, ऐसी कोई भी शस्त्रक्रिया करने पर रोगी नेत्रको बलपूर्वक दबावें तो किया हुआ जख्म खुल जाता है। फिर भीतरसे काँच रूप रस निकल जाता है। रोगी नेत्रको दबाने के लिये नेत्रनिमीलिनी पेशीका उपयोग करता है। उस पेशीपर ७ वीं नाड़ीका काबू होनेसे उस नाड़ीको कर्तव्यहीन बनानी चाहिये। उसके लिये अन्तःक्षेपण किया जाता है। उस अन्तःक्षेपण का वर्णन पहले प्रकरण १६ वें में दिया है। अतः अत्र केवल उतना कहना पूरा है कि, रोगी अति शान्त हो, नेत्रको बिल्कुल शिथिल रखता हो (कुछ भी दबाव न डालता हो) तो अच्छा; अन्यथा इस अन्तःक्षेपण का प्रयोग (विशेषतः कांच बिन्दुकी शस्त्र चिकित्सामें) अवश्य करना चाहिये।

१३. शस्त्रचिकित्सा के पश्चात् परिचर्या

यदि शस्त्रचिकित्सा नेत्रगोलक के अतिरिक्त भागों पर हो, तो रोगीको चलने फिरनेमें बाधा नहीं पहुँचती। भोजनमें चालू आहार दे सकते हैं। केवल उतना ही सम्हालना पड़ता है कि शस्त्रक्रिया वाले भाग पर लगभग एक सप्ताह तक पट्टी बांधनी पड़ती है। एवं आवश्यकता अनुसार पट्टी दूसरे तीसरे दिन बदलनी पड़ती है। यदि शस्त्रक्रिया गोलकपर ही की हो, और उसमें भी गोलकको काटना पड़ा हो, तो कम से कम २४ घण्टे तक रोगीको चित लिटाया जाता है। फिर शस्त्रक्रिया की हो, उस आंखकी सामनी ओर अर्थात् दाहिनी आंखपर शस्त्रक्रिया करनेपर बांयी ओर तथा बांयी आंखपर शस्त्रक्रिया करनेपर दाहिनी करवट लिटा सकते हैं। ४८ घण्टे बाद दोनों करवटसे लेटने दें। ७२ घण्टेके पश्चात् रोगीको बैठने और चलने फिरनेकी अनुमति देवें।

पहले २४ घण्टे तक रोगीको बिल्कुल शान्त रहना चाहिये। बोलना

भी नहीं चाहिये। भोजन प्रवाही लेटे लेटे भारी (फिडिंग कप) से देना चाहिये, लघुशंका और शौचके लिये मूत्रपात्र (Urinal) तथा शयापात्र (Bedpan) का उपयोग ७२ घण्टे तक करना ही पड़ता है। ७२ घण्टेके पश्चात् नरम भोजन--मृदुभात, खिचड़ी, हलवा, यवागू, थूली आदि देवें। सप्ताह तक उष्ण जलमें भिगोये हुए रौलियेसे शरीरको पोंछकर साफ करते रहें। रोगीके दांत और मुंहको साफ रखें। किन्तु प्राचीन रीति अनुसार जिह्वाको बलपूर्वक साफ नहीं करनी चाहिये। किसी भी प्रकारसे उबाक न आवे वा वान्ति न हो, इस बातको विशेष सम्हाल रखें। रोगीको निद्रा न आती हो, तो निद्रा लाने वाली ओषधि देनी चाहिये। कतिपय रोगियोंको लेटे लेटे पेशाब नहीं उतरता, ऐसे रोगियोंको मूत्रनलिका (रबरके केथेटर) लगाकर पेशाब को निकाल लेना चाहिये। घाव मिल जाने पर करीब सप्ताह बाद पट्टी खोलकर आवश्यकता अनुसार काले चश्मे देना चाहिये।

A. अक्षिपुट पर शस्त्रचिकित्सा

Operation on Eyelids.

पलक पर निम्नानुसार १४ प्रकार की शस्त्रचिकित्सा होती हैं।

१—रोहे को दबा देना—Expression af Trachoma.

२—रोहे को काट देना—Excision of Trachoma.

३—रोहे को विद्युत से जलाना—Cauterization of Trachoma

४—रोहे पर कुन्तकी शस्त्र क्रिया—Kuhnt's operation for Trachoma.

५—अंजन नामिका की शस्त्रक्रिया—Incision for Stye

६—पलक की रसग्रन्थि पर शस्त्रक्रिया—Chalazion operation.

७—नेत्र छदार्बुद निकालने की क्रिया—Operation for removal of Tumours of the lids.

८—परवाल की शस्त्रचिकित्सा— Operation for Trichiasis.

अ—परवाल को खींच लेना—Epilation of Cilia

आ—विद्युत् से जलाना—Electrolysis of Dilia.

इ—आर्ल्ट जेसे की शस्त्रक्रिया—Arlt-gasche's operation.

९—परवाल और पलक के भीतर मुड़ने पर शस्त्रक्रिया—Operations for Entropion and Trichiasis.

अ—गेइलार्ड के टांके—Gaillard's sutures.

आ—स्नेलन के टांके—Snellen's sutures

इ—पलक की केवल त्वचा काटना—Excision of Horizontal strip of skin.

ई—होट्ज की शस्त्रक्रिया—Hotz's Operation.

उ—पन्ना की शस्त्रक्रिया—Panna's Operation.

ऊ—स्पेन्सर वॉटसन की शस्त्रक्रिया—Spencer Watson's operation.

ए—इविङ्ग की शस्त्रक्रिया—Ewing's operation.

ऐ—माकेक-ब्लास्को विच की शस्त्रक्रिया—Macheck-Blaskoviez operation.

ओ—विद्युद्भभक यन्त्रसे छिद्र—Galvano cautery Punctures.

औ—वान मिलिगन की क्रिया—Van Milligan's operation.

अं—कोमलास्थि को काटने की क्रिया—Excision af Tarsus.

१०—पलक बाहर मुड़ने पर शस्त्रक्रिया—Operation of Ectropion.

अ—पेशी संकोचज नेत्रच्छद के बाह्यावर्तन पर स्नेलन के टांके—Snellen's sutures for spastic Ectropion.

आ—पेशी वधजन्य नेत्रच्छद के बाह्यावर्त्तन पर कुन्त की शस्त्रक्रिया—Kuhnt's operation for Paralytic and Senile-Ectropion.

इ—नष्ट हुये अक्षिपुट के बाह्यावर्तन पर शस्त्रक्रिया—Blepharophlasty for cicatricial Ectropion.

११—नूतन अक्षिपुट निर्माणार्थशस्त्रक्रिया—Blepharoplasty.

१२—आकुंचित नेत्रद्वार प्रसारक शस्त्रक्रिया—Canthoplasty.

१३—नेत्रद्वार आकुंचनार्थ शस्त्रक्रिया—Tarsorrhaphy.

१४—झुके हुए पलकों को सुधारने की शस्त्रक्रिया—Operation for Ptosis.

१. रोहेको दबा देनेकी रीति।

(*Expression of Trachoma*)

जब रोहेके दाने अति स्पष्ट प्रतीत होते हों और उभड़ आये हों, तब उनको दबा देने पर थोड़े ही समय में आराम हो जाता है। कितनेक नेत्रवैद्य

अंगुष्ठके नख से दबाते हैं; किन्तु अनेक नेत्रवैद्य इस अयोग्य रीतिको पसन्द नहीं करते। इस क्रियाके लिये नेप की चिमटी (चित्र नं० ६६) का उपयोग करना अच्छा माना जायगा।

नेत्र में कोकेन प्रवाही के बूंद २॥-३॥ मिनट पर कम से कम ३ बार डालकर नेत्र श्लेष्मावरण को चेतनाहीन बनावें। कितनेक रोगियोंको बेहोश करना पड़ता है। क्योंकि, कोकेन से पलक उतने अंश में चेतनाहीन नहीं होते कि दबाव होने पर वेदना न हो। पलक को चेतनाहीन बना, उलट, रसकपूर प्रवाही से धो देवें। फिर एड्रिनोलिन के प्रवाही का एक बूंद डालें। २ मिनट बाद क्रिया का प्रारम्भ करें। पलकको उलट कर दोहरा करें। फिर उसे चिमटी के दो पत्र के भीतर लेवें। फिर चिमटी को अच्छी तरह दबावें और सुनार जिस तरह दो सलाकाओंके बीचमें से (दो सलाओं के बीच से) पतला पत्र बनाने के लिये सुवर्ण को निकालते हैं, उस तरह पलकको निकाल लेवें। इस तरह समग्र पलकको २-३ बार निकाल लेवें। इस क्रियासे साबूदाने जैसे कितनेक नरम दाने बाहर निकल आवेंगे। फिर पलकको पुनः रसकपूर के जलसे धो देवें। कितनेक नेत्रवैद्य सिल्वरनाइट्रेट, नीलाथोथा आदि दम्भक और प्राही औषधि भी लगाते हैं। किन्तु इस शस्त्रक्रिया के पश्चात् पलक पर शोथ आता है। उसे दूर करने के लिये पहले बोरिक धावन, रसकपूर का जल और बर्फ और आदि लगाये जाते हैं। फिर इन उपचारों से शोथ शमन होने पर दम्भक औषध का उपयोग करना चाहिए।

२. रोहेको काटने की शस्त्रक्रिया

(*Excision of Trachoma*)

नेत्रमें कोकेन एड्रिनेलिन डालकर नेत्रश्लेष्मावरणको चेतनाहीन करें। नेत्रोको अच्छीतरह धो दें, फिर पलको उलटें और जो भाग उजड़ा हुआ प्रतीत हो, उस भागसे एक एक सिरेको एक एक चिमटेसे पकड़ें। वे चिमटे सहायक वैद्यको देवें। सहायक वैद्य उन चिमटोंको रोगीके शिरकी ओर अर्थात् ऊपर खींचता है, जिसमें रोह वाले भागका नेत्रकी ओर रहा हुआ सिरा स्पष्ट विदित हो जाता है। उस भागमें १ काट नेत्रके भीतरके सिरेसे बाहरके सिरे तक करें। फिर काटका जो सिरा गोलक की ओर हो, उसमें ३-४ टाँके लगा लेवें। इन टाँकों को सुई के साथ बाजू में पकड़ रखें। पश्चात् एक काट चिमटियों की इस ओर अर्थात् बालकी ओर करें। यह काट भी एक सिरेसे दूसरे सिरे तक करना चाहिए। फिर जो डोरा नीचे लगाया है, उसीसे नेत्रश्लेष्मावरणके घावको सी लेवें। पश्चात् नेत्रको

रसकपूर जलसे धोकर दोनों नेत्रों पर पट्टी बाँध देवें। ४ से ६ दिनमें पट्टी खोल डालें और ८ दिनमें टाँकेका डोरा निकाल देवें।

२. रोहेका विद्युत्से दहन

(Cautarization of Trachoma)

इस क्रियाके लिये खास दो साधनोंकी आवश्यकता रहती है। डायाथर्मी (चित्र नं० १७८) तथा अक्षिपुटको पकड़ने के लिये हाथीदाँत या वल्केनाइटके दस्ते वाली चिमटी।

दहन विधि—नेत्रमें कोकेन और एड्रिनेलिन या एनिथिन और एड्रिनेलिनके बूंद डालकर अक्षिपुटके भीतरके भागको चेतनाहीन बनावें। नेत्र को रसकपूर जलसे धोकर निर्जन्तुक करें। फिर खास चिमटी से पलकको उलट, सूखे, विशुद्ध लिण्टके टुकड़े से शुष्ककर लेवें। फिर करीब १० सुई वाला डायाथर्मी यन्त्र लेकर पलक पर लगा कर तुरन्त विद्युत्प्रवाह को चालू करें। तत्काल पलकमें से वाष्प निकलने लगेगी, एवं रोहेके जलनेकी चट् चट् आवाज सुननेमें आवेगी। इस तरह रोहे वाले सब भाग में क्रमशः यह क्रिया करें। क्रिया समाप्त होने पर आर्जिरोल के बूंद डालें। लगभग ३ घण्टेमें पलक पर शोथ आजायगा। उस पर बोरिक धावनके शीतल फोहे रखें। करीब १ सप्ताहमें शोथ शमन हो जायगा।

सूचना—जिस तरह यह क्रिया रोहेके लिये की जाती है। उसी तरह कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहसे उत्पन्न दानोंको जलानेके लिये भी की जाती है।

४. रोहे पर कुन्तकी शस्त्रक्रिया

(Kuhnt's operation for Trachoma)

रोहे जब दीर्घकाल पर्यन्त रह जाते हैं, और उस हेतुसे पलककी कोमलास्थि मुड़ गई हो, तब कुन्तकी शस्त्रक्रिया की जाती है। पहले रोगीके नेत्रमें १ प्रतिशत एनिथिन प्रवाही या ४ प्रतिशत कोकेन प्रवाहीके बूंद २-३ मिनटके अन्तरपर ३ बार डालें, साथमें एक बूँद एड्रिनेलिनका भी मिला देवें। फिर रसकपूर के जल $\frac{1}{5000}$ से धो देवें। पश्चात् नोवोकेन या परकेन प्रवाही २% के साथ एड्रिनेलिन १-२ बूंद मिलाकर नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे अन्तःक्षेपण करें। १० मिनट बाद शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करें।

शस्त्रचिकित्सा विधि—उपर्युक्त पलकको खास चिमटी (चित्र नं०-१८६) से उलट, पलक परवालों से ३ मि० मी० दूरी पर छोटे चाकू से एक

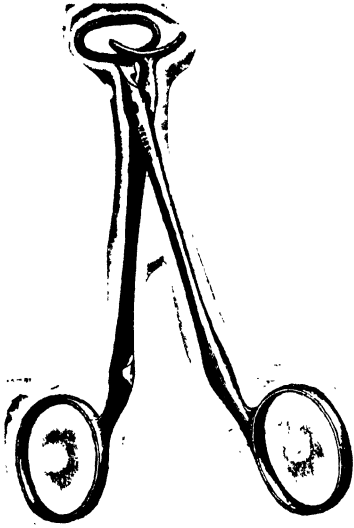

चित्र न० १८६
पलक उलटने का चिमटा
Lid Eversion for ceps

काट करें। यह काट पलकके बाल सिरेसे भीतरके सिरेतक, इस तरह करें कि नेत्रश्लेष्मावरण और कोमलास्थि कट जायं। इस काट द्वारा कोमलास्थिको नेत्रश्लेष्मावरण से एक ओर तथा मांसपेसियोंसे दूसरी ओर पृथक् करें। जब कोमलास्थिकी ऊपरकी धारा तक पहुँचे, तब उस धाराको अलग करने के लिये नेत्रोन्मीलनी पेशीको धारा स्थानमें काटनी पड़ती है। ऊपर की धारा मुक्त होनेपर पूरा कोमलास्थि निकल आता है। फिर नेत्रश्लेष्मावरण में जो काट, किया हो, उसे पलक धाराके भागमें कोमलास्थि स्थानमें शेष रहा हो, उसके साथ टाँका लगा लेवें। नेत्रमें मर्क्युरी क्रोमके २ बूंद डाल ऊपर फोहे रखकर पट्टी बाँध देवें।

परिचर्या—पट्टी बांधने के ४८ घण्टे बाद उसे खोल नेत्र को बोरिक बाबन से धोवें। फिर मर्क्युरो क्रोम के प्रवाही के बूंद डाल, ऊपर फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। सप्ताह तक इसी तरह प्रतिदिन नेत्र को साफ कर मर्क्युरो क्रोम के बूंद डाल, फोहे रखकर पट्टी बांधते रहें। फिर टांके निकाल देवें। नेत्र पर काले चश्मे लगा देवें। पश्चात् रोगीको सूचित करें कि आर्जिरोल १०% के बूंद १ मास तक डालते रहें।

परिणाम—इस शस्त्रक्रिया से रोहे निकल जाते हैं और अनेकों का

रोग दूर हो जाता है। रोगी के पलक की सुन्दरता नष्ट होती है। अतः रोगी को पहले से ही सूचित कर देना चाहिये। रोगी पलक की कुरूपता का स्वीकार करें, तो ही यह शस्त्रक्रिया करनी चाहिये।

५. अञ्जननामिका पर शस्त्रक्रिया।

Incision For Stye

यह शस्त्रक्रिया बिल्कुल सरल है। गुहांजनी पकने पर उस स्थान पर टिंचर आयोडिन लगा, गुहांजनी के मूल में नोवोकेन या परकेन एड्रिनेलिन के ३-४ बूंद का अन्तःक्षेपण करें। ऐसा करने पर रोगी को वेदना नहीं होगी। ५ मिनट बाद १ नोकदार शस्त्र को गुहांजनी में प्रवेश करावें। शस्त्र लगने के साथ ही भीतर से पूय निकल आवेगा। फिर मर्क्युरो क्रोम लगा कर पट्टी बांध देवें। पट्टी १ दिन रखें। आवश्यकता रहे तो बोरिक धावेन कर सेक करें।

६. अक्षिपुट की रस ग्रन्थि की शस्त्रक्रिया।

Operation For Meibomian Cyst or Chalazion.

पलक की फुन्सी किसी भी बाह्य उपचार से नहीं मिटती। उसपर शस्त्रक्रिया करनी पड़ती है। नेत्र में कोकेन और एड्रिनेलिन के बूंद डालकर या नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे अन्तःक्षेपण कर ग्रन्थि भाग को चेतनाहीन बनावें। फिर पलक को उलट कर देखें, तो ग्रन्थि वाला भाग कुछ नीला प्रतीत होगा। उस स्थान पर चाकू लगाना चाहिये। चाकू खड़ा लगावें, आड़ा नहीं। चाकू ग्रन्थिस्थली में पहुँचने पर तुरन्त भीतर से गाढ़ा प्रवाही निकलने लगेगा। कुछ दबाने पर अधिक द्रव निकलेगा। फिर धार वाली छोटी चिम्मच, जो इस कार्य के लिये खास बनाई है, उसे छेद में प्रवेश करा ग्रन्थि के भीतर के आवरण को अच्छी तरह खुरच कर निकाल डालें। कितनेक शस्त्रवैद्य खास कमानी का उपयोग करते हैं। उसके उपयोग से रक्तस्राव नहीं होता। काटने के पश्चात् भी १-२ दिन तक ग्रन्थि उतना ही आसेगा। क्योंकि पूय या गाढ़े द्रव के स्थान पर रक्त भर जाता है। फिर इस रक्त का शोषण हो जाने पर ग्रन्थि अदृश्य हो जाती है। कितनेक समय नई नई ग्रन्थि होती रहती हैं। ऐसे रोगी को केलस्यम सल्फाइड देने से लाभ हो जाता है।

७. नेत्रच्छदार्बुद पर शस्त्रक्रिया।

Operation For removal of Tumours of the Lids

पलक पर अर्बुद दो प्रकार के होते हैं। सामान्य और दुष्ट। सामान्य ग्रन्थियों में से जो तिल या ऐसी ही जाति की हो या जो सूक्ष्म कैशिकाओं से बनी हों, उन पर विद्युदुपचार करना अच्छा माना जायगा। इस उपचारार्थ एक सादी बेटरी; जिसे कोन्सटण्ट करण्ट बेटरी (Constant current Battery) कहते हैं, उसकी आवश्यकता रहती है। उक्त बेटरी में एक + धन सिरा और दूसरा – ऋण सिरा होता है। – सिरे पर सुई रहती है।

जिस गांठ का उपचार करना हो, उसके इर्द गिर्द नोवोकेन या परकेन एड्रिनेलिन के प्रवाही के ५ बूंद का अन्तःक्षेपण करें। ५ मिनट बाद शस्त्रक्रिया करने में रोगी को पीड़ा नहीं होगी। उपचारार्थ जो +सिरा है और जहाँ भिगोये हुए लिण्ट से लपेटा हुआ दस्ता है, उसे रोगी के कंधे पर रखें। जो सुई वाला सिरा है, उसे ग्रन्थि में प्रवेश करावें। फिर विद्युत् प्रवाह चालू करने पर ग्रन्थि में बुदबुदे निकलते हुए दीखेंगे। इस क्रिया से भीतर रहा हुआ रक्त जम जाता है। इस तरह ३-४ बार प्रयोग करने पर ग्रन्थि दूर हो जाती है।

अन्य जो ग्रन्थि कैशिकाओं से न बनी हों, किन्तु छोटी हों, तो उनके लिये भी उपर्युक्त विद्युत् प्रयोग किया जाता है।

जो दुष्ट अर्बुद हो, उनके लिये कितनेक चिकित्सक रेडियम और गहरे क्ष किरण का उपचार अच्छा मानते हैं। अन्य कतिपय नेत्रवैद्य इन अर्बुदों को शस्त्रोपचार से निकाल, पलक के कटे हुये भाग पर अन्य त्वचा लगाकर टांके लगा लेते हैं। तत्पश्चात् उस स्थान पर रेडियम या गहरे क्ष किरणों का उपचार करते हैं।

८—परवाल पर शस्त्रक्रिया।

(*Operation for Trichiasis*)

अ—परवाल को खींच लेना—Epilation of Citia—यह क्रिया अति सरल है। बहुधा यह कार्य कुशल स्त्रियाँ भी कर लेती हैं। इसके लिये बाल नोचने की देशी चिमटी भी चल सकती है; या नेत्रवैद्य ने निर्माण की हुई चिमटी (चित्र नं० ७४) का उपयोग किया जाता है। रोगियों को गोलक पर जो बाल चुभते हों, उन बालों को खींच लेना चाहिये। इस क्रिया से अनेक रोगी वर्षों तक चला लेते हैं। इस क्रिया से बाल सदा के लिये दूर नहीं होते; किन्तु २-३ सप्ताह पर पुनः उत्पन्न हो जाते हैं। जिससे बारम्बार निकलवाना पड़ता है।

आ—परवाल को विद्युत् से जलाना—Electrolysis—रोगी को टेबिल पर लिटावें फिर पलक को स्थिर रखने के लिये उसके ऊपर के हिस्से को बांये हाथ की तर्जनी और मध्यमा इन दो अंगुलियों से दबावें। ४-६ खरड वाली बेटरी तैयार रखें। उसके +धन सिरे पर भिगोया हुआ लिंट रख उसे रोगी की कनपटी पर रखें। दूसरे - ऋण सिरे पर एक प्लेटीनम की या स्टिलकी सुई लगावें। बालों को चिमटी (सिलिया फोर्सेप्स - चित्र नं० ७४) से पकड़ उसके मूलमें सुईको प्रवेश करावें। फिर प्रवाह चालू करें। तुरन्त उस स्थान में से वायु के बुद बुदे निकलने लगेंगे। तत्पश्चात् बाल को चिमटे से किञ्चित् खींचेंगे, तो सरलता से निकल आवेंगे। इस तरह सब बालों के मूल को जला देवें। जिससे फिर बाल नहीं निकलेंगे।

सूचना—इस क्रिया के पहले पलक के श्लेष्मावरण में कोकेन या नोवोकेन का अन्तःक्षेपण कर लें। जिससे रोगी को अधिक वेदना नहीं होगी।

शस्त्रक्रिया के पश्चात् पलक धारा पर शोथ आवेगा और रोगी को कुछ कष्ट होगा। उसके लिये कोकेन का मलहम लगावें। सेक करें। आवश्यकता रहे तो पीड़ाशामक औषधि देवें।

इ—आर्ल्ट जेसे की शस्त्रक्रिया—Arlt. Jasche's operation—यह शस्त्रक्रिया प्रायः परवाल के लिये की जाती है। अतः इसे अधिक विस्तार से देते हैं।

आवश्यक शस्त्र आदि साधनों की तैयारी।

अन्तःक्षेपणार्थ पिचकारी और सुई	कैंची चित्र नं० १८०
स्नेलन की या ग्राफे की कमानी वाम-दक्षिण	सुई मुडी हुई नं० १९२
नेत्र के अनुसार चित्र नं० १८७	सुई पकड़ने की सँडासी नं० १९१
छोटा चाकू चित्र नं० १८८	रेशम के डोरे या सिल्क वर्मगट
चिमटी चित्र नं० १८९	(Silk-worm gut)
ग्राफे की छुरिका नं० ७७	फोहे, पट्टी, पात्र, जन्तुघ्न
दांतेदार चिमटी नं० ७४	धावन और आवश्यक औषधियां आदि

रोगीकी तैयारी—रोगीके मुंह, उसमें भी पलक को साबुन और

गरम जल से अच्छी तरह धोकर साफ करें। फिर टेबिल पर लिटावें। नेत्र बन्द करा पलक की त्वचा पर टिञ्चर आयोडिन लगावें। सूखने पर रसकपूर के जलसे धो डालें। एपोथिसिन के प्रवाही का पलक की त्वचा में अन्तःक्षेपण करें। कम-से-कम ८ मिनट बाद स्नेलन या ग्राफे की कमानी चढ़ाकर शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करें। कमानी लगाने पर रुधिर नहीं निकलता। कितनेक शस्त्रवैद्य कमानी की बदली में पलक के नीचे सिंग या धातुका पलक के आकारका टुकड़ा रखते हैं। कमानी लगाने के पश्चात् पलक धारा में श्वेत रेखाका शोध करें। उस रेखाको लक्ष्यमें रख, उसके भीतर एक सिरे पर ग्राफेकी छुरिका को प्रवेश करावें। फिर ठीक इस श्वेत पंक्ति को दूसरे सिरे के अन्त तक चीर देवें।

सूचना १—इस क्रियामें पलकके भीतर एक ओर कोमलास्थि और नेत्र श्लेष्मावरण तथा दूसरी ओर त्वचा, मांसपेशी और पलक के बाल आदि रहजाने चाहिये।

२—इस श्वेत पंक्ति पर काट लगभग २ डोरे जितना गहरा होना चाहिये। एवं वह बाहरके कोण से भीतरके कोण तक समान गहरा होना चाहिये।

३—भीतरके कोण में अश्रुवाहक छिद्र न कट जाय, इस बात का सम्हाल रखें।

दूसरा काट पुटधारासे २॥ से ३॥ डोरा जितना ऊपर करें। यह भी पलक के एक सिरेसे दूसरे सिरे तक पहुँचता है। तीसरा काट अर्द्ध वर्तुलाकार करें। यह काट दूसरे काट के एक सिरेसे दूसरे सिरे तक किया जाता है। बीच के हिस्सेमें यह दूसरे काटसे करीब ३ डोरा ऊंचा रहता है।

यदि त्वचा अधिक शिथिल हो गई हो या परवाल अति पुराना हो गया हो, तो अधिक त्वचा लीजाती है। दूसरे और तीसरे काटके बीचकी त्वचाको काट कर निकाल देना चाहिये। निम्न पेशीका हिस्सा वैसाही रहने देवें। इस तरह किये हुए घाव को सुई डोरे से अच्छी तरह सी लेवें। ३ से ५ टांके लगावें।

इस शस्त्रक्रिया से पलक के बाल ऊपर आजाते हैं। फिर गोलकको नहीं लगते। टांके लगानेके पश्चात् कमानीको निकाल डालें। रुधिर को पोंछ लेवें। फिर गोज और रुईके फोहे रख कर पट्टी बांधें। ३-४ घण्टे तक घावमें कुछ जलन होती है। फिर बिल्कुल शान्ति हो जाती है। पट्टी ४८ घण्टे तक रखते हैं। फिर पट्टी खोल कर फोहे को धीरे धीरे खोल लेवें।

नेत्र और घाव को रसकर्पूर के जल से साफ करें। नेत्रमें आर्जिरोलकी बूंदें डालें। चौथे दिन पट्टी निकालकर नेत्रों को खुला रहने देवें। सप्ताह के बाद टांके निकाल देवें।

उपद्रव—कभी रुधिर बहुत निकलता है; किन्तु वह लिगटके टुकड़े से दबाने पर बन्द हो जाता है। यदि बन्द न हो तो एड्रिनेलिनकी २-४ बूंद घाव पर डालें। रक्तवाहिनी बांधने की अवश्यकता कचित् ही पड़ती है। कचित् घाव को टांका लगालेने के पश्चात् भी अति रुधिरस्राव होता है। प्रायः वह स्वयमेव बन्द हो जाता है। अन्यथा फोहेको बदल पट्टी को कस कर बाँधने पर रक्त बन्द हो जाता है। जिसका रक्त अति पतला हो, केवल उन रोगियों को अति कष्ट पहुँचता है।

योग्य सम्हाल रखा जाय तो घाव कदापि नहीं पकता। कदाच घाव पक जाय तो डोरा निकाल सामान्य घाव के समान पट्टी लगावें।

यदि त्वचा का हिस्सा अधिक निकाल दिया होगा, तो पलक छोटा हो जायगा। फिर गोलक पूरा पूरा नहीं ढकेगा। परिणाम में फूला पड़ जायगा।

९. परवाल और अक्षिपुट का अन्तरावर्तन पर शस्त्रक्रिया।

Operation For Entropion and Trichiasis.

इस व्याधि के लिये अनेक प्रकार की शस्त्रचिकित्सा होती हैं। भिन्न भिन्न प्रकार की स्थिति अनुसार चिकित्सा में भेद होता है। यहां पर प्रचलित ११ प्रकार की चिकित्सा दर्शायी है।

अ. गेइलार्ड के टांके—Gailard's sutures—यह शस्त्र क्रिया ऊर्ध्व अक्षिपुट के भीतर मुड़ने पर उपयोगी हो, इसकी अपेक्षा निम्न पलक के भीतर मुड़ने पर अधिकतर व्यवहृत होती है। अतः यह वर्णन निम्न पलक के लिये मान लेना चाहिए।

आठ अर्द्ध मुड़ी हुई सुई लें। इन सुइयों में डोरा इस तरह पोना चाहिए कि, एक डोरे के दोनों सिरे पर सुई पोवें। अर्थात् ४ डोरे में ८ सुई रहें।

पलक पर टिञ्चर आयोडिन लगा, फिर नोवोकेन या परकेन एड्रिनेलिन को प्रवाही का अन्तःक्षेपण करें। ५ मिनट बाद शस्त्रचिकित्सा प्रारम्भ करें। एक जोड़ी सुई में से एक सुई को पलक धारा से लगभग ६-३ मि०मी० के अन्तर पर त्वचा में प्रवेश करावें। त्वचा को पकड़ने के

लिये चालू चिमटे का उपयोग करें। उस सुई को लगभग पौन इंच तक पलक की त्वचा में जाने देवें। फिर कोमलास्थि के आगे सुई लावें और (।।। इंच के पश्चात्) सुई को त्वचा से बाहर निकालें। उसी तरह दूसरी सुई को पहली सुई से २ मिली मीटर की दूरी पर प्रवेश करावें और उसी अनुसार बाहर निकालें। इस तरह चार दोहरे टांके पलक में प्रवेश करावें।

तत्पश्चात् पतली रबर की नली के टुकड़े को पलक पर रखें। फिर नली को दो डोरे के बीच लेकर टांके बन्द करें। ऐसा करने से पलक लगभग १ सप्ताह में सीधा हो जायगा। टांके और रबर की नली को लगभग २ सप्ताह तक रखना पड़ता है।

सूचना—टांके बन्द करने पर सुई प्रवेश हुई हो और निकली हो, वहाँ मक्युरोक्रोमका प्रवाही लगा देवें।

आ—स्नेलन के टांके—Snellen's sutures—इस टांके के लगाने के पहले पलक पर टिन्चर आयोडिन लगा फिर नोवोकेन या परकेन एडिनेलिन का अन्तःक्षेपण कर त्वचा को चेतनाहीन बना देवें। इनके अतिरिक्त नेत्रके भीतरके भागमें भी एनिथि। या कोकेन एडिनेलिन के बूंद डाल चेतनाहीन करें। एवं नेत्रश्लेष्मावरणकी स्थलीको शुद्ध करनेके लिये रसकपूर के जल १-५००० से नेत्रों को धो देवें।

उक्त तैयारी हो जाने पर जिस तरह गेइलार्डके टांके के लिये एक एक डोरे में २-२ सुइ पोई जाती हैं। उसी तरह इस टांके के लिये भी करें। फिर निम्न पुट को ठीक नीचे खींचकर एक सुई नीचेक पुट में प्रवेश करावें और पलक की बाह्य त्वचा में से बाहर निकालें। पुनः एक मि० मी० की दूरी पर त्वचा में प्रवेश करा पलकधारा से कुछ नीचे बाहर निकालें। उसी तरह दूसरी सुई को भी पहली सुई से कुछ दूरी पर पुट में प्रवेश कराकर त्वचामें से बाहर निकाल लें। यह एक टांका हुआ। इस तरह २ या ३ दोहरे टांके लेवें। सब टांके लग जाने पर दो दो सिरे को परस्पर बांध लेवें। फिर मक्युरोक्रोम का प्रवाही लगा कर नेत्र पर पट्टी बांध देवें। यह टांका भी २-३ सप्ताह तक रखा जाता है।

इ—*अक्षिपुट की बाह्य त्वचा छेदन*—Excision of Horizontal strip of Skin— यह शस्त्र विशेषतः कम बोध वाले, किन्तु नेत्रवैद्य कहलाने वाले अथवा ऊपर दर्शायी हुई उलझन वाली शस्त्रक्रिया के अनुभव से रहित डाक्टर करते हैं। प्रायः इस शस्त्रक्रिया से लाभ नहीं

होता। क्वचित् लाभ हो, तो थोड़े समय के लिये ही। यह शस्त्रक्रिया बिल्कुल सरल है। पलक को चेतनाहीन बना रोग के अनुपात से त्वचा का अर्द्ध चन्द्राकार टुकड़ा काट डालते हैं। फिर घाव पर २-३ टांके लगाते हैं। ऊपर पट्टी बांधते हैं। तीसरे दिन पट्टी को छोड़कर घाव को देखें। पूय या शोथ न हो तो पुनः पट्टी लम्बी लगावें। ८वें दिन टांके निकाल डालें।

ई. होट्ज की शस्त्रक्रिया—Hotz's operation for Trichiasis and Entropion—इस शस्त्रक्रिया के लिये निम्न शस्त्र आदि की आवश्यकता रहती है।

त्वचामें लगानेकी पिचकारी और सुई।

ग्राफे या स्नेलन की कमानी Graefe of Snellen's clamp forceps) चित्र नं० १८७।

चित्र नं० १९१ सूचीधर यन्त्र।
Suture Needle on handle right or left.

लघु छुरिका (Scalpel) चित्र नं० १८८।

त्वचादि पकड़नेकी चिमटी (Dissection forceps) चित्र नं० १८९

कैंची (Scissors) चित्र नं० १९०।

सुई पकड़ने की संडासी (Needle holder) चित्र नं० १९१।

४ ५ अर्द्ध चन्द्राकार मुड़ी हुई सुई (Half curved needles) चित्र न० १९२।

चित्र नं० १९१ बांधने की पट्टी
Circular wrist-let

शस्त्रक्रिया विधि—पलक की त्वचाको आयोडिन लगावें। फिर नोवोकेन या परकेन एड्रिनेलिन प्रवाहीका अन्तःक्षेपण करके त्वचाको चेतनाहीन बनावें। नेत्रपर कमानी लगालें। फिर पलक पर एक काट करें। यह काट पुटके बाहरके कोनसे भीतरके कोन तक करें। काट पलक धारा से ½ इञ्च ऊपर लेवें। यह काट बिल्कुल निम्न कोमलास्थि पर्यन्त पहुंचता है। पश्चात् कैंची से त्वचा और निम्न पेशीमें से एक टुकड़ा काट लेवें। यह

टुकड़ा पलक की लम्बाई जितना लम्बा और करीब ½ इञ्च चौड़ा होना चाहिये। इस काटसे निम्न कोमलास्थि खुली होती है। यदि पेशीका कुछ अंश घाव में कोमलास्थि को चिपका हो, तो उसे शस्त्रसे निकाल डालें।

कोमलास्थि को साफ करने के पश्चात् एक त्रिकोणाकार टुकड़ा कोमलास्थि में से काट डालें। इस टुकड़ेका कोण नेत्रश्लेष्मावरण की ओर होना चाहिये। एवं वह पलक की लम्बाई जितना लम्बा होना चाहिये। इस टुकड़े को काटने के समय हो सके तब तक नेत्र श्लेष्मावरण को बचा लेना चाहिये। कदाच नेत्रश्लेष्मावरण कट जाय, तो उससे विशेष हानि नहीं होती।

उपर्युक्त विधिसे शस्त्रचिकित्सा समाप्त होने पर एक लम्बे डोरेके दोनों सिरे पर एक एक सुई पोयें। एक सुई को पलक धारा की ओरके घावके सिरेमें भीतरसे बाहर प्रवेश करा कर त्वचामें से बाहर निकालें। दूसरी सुईको कोमलास्थिके ऊपरके टुकड़े में भीतरसे प्रवेश करा कर बाहर निकालें। पुनः उसी सुईको घावके नीचे के भागमें कोमलास्थिके भीतरसे प्रवेश कराकर बाहर निकालें। किन्तु पहली सुई निकाली हो उससे ½ इञ्च जितनी दूरी पर बाहर निकालें। फिर दोनों सिरेको बाँध देवें। बाँधनेमें पतले फोहे या लिण्टका टुकड़ा रखने पर त्वचा नहीं कटती। उक्तरीति से ३-४ टांके लगावें।

उपर्युक्त वर्णन स्वान्जी अपने ग्रन्थमें देते हैं। उस अनुसार हमने लिखा है। किन्तु हम जो शस्त्रक्रिया करते हैं, उसमें कुछ अन्तर है। कोमलास्थिका टुकड़ा काटने पर उक्त विधिसे उलझन वाले टांके नहीं लगाने चाहिये, घाव के दो सिरे को ही सी लेना चाहिये। इस तरह करने पर परिणाम योग्य आता है। ऐसा हमें बहुसंख्यक रोगियों की शस्त्रचिकित्सासे अनुभव मिला है।

टांके लगाकर ऊपर पट्टी बाँध देवें। तीसरे दिन पट्टी खोलें। घावको साफ कर पुनः पट्टी लगावें, पाँचवे दिन पट्टी निकाल डालें, ७वें या ९ वें दिन टांके भी निकाल डालें।

३. पन्नाकी शस्त्रक्रिया—Panna's operation for Entropion स्नेलन की शस्त्रक्रिया में पन्नाने सुधार (Modification) किया हो वह अत्र दर्शाते हैं।

शस्त्र आदि साधन—होट्ज क्रिया में लिखे अनुसार।

रोगीकी तैयारी—पुट त्वचा पर टिञ्चर आयोडिन लगा कर शुद्ध करें। नोवोकेन, प्रोकेन या परकेन एड्रिनेलिन के नीचे अन्तःक्षेपण करके पलकको चेतनाहीन बनावें। फिर नेत्र पर कमानी लगा लेवें।

शस्त्रचिकित्सा विधि—पुटधारा से २-३ मि० मी० ऊपरमें लघु छुरिकासे एक काट करें। यह काट पलकके बाह्य कोणसे भीतर के कोण तक जाना चाहिये। यह काट त्वचामें गहराही जायगा। फिर उस काटके भीतरसे नीचेकी ओर पुटधारा से लेकर ऊपरकी ओर कोमलास्थि की ऊर्ध्व-धारा तक त्वचाको नीचे अवस्थित भागोंसे मुक्त करनी चाहिये। फिर अक्षिपुटधर फलक अर्थात् पलकके आकार का धातुका टुकड़ा (Lid metal plate), जो चित्र नं० १६३ में दर्शाया है, उसे पलक के भीतरके हिस्से में रखें और त्वचामें जो काट पहले किया हो, उतनाही काट कोमलास्थिमें करें। इस काटमें कोमलास्थि और नीचे रहा हुआ नेत्रश्लेष्मावरण, दोनोंको काटना चाहिये। इस काटसे पुटधारा वाला कोमलास्थिका भाग लगभग मुक्त हो जाता है। जिससे उसे सरलतासे फिरा सकेंगे।

शस्त्रक्रिया समाप्त होने पर ८ सुई लेकर ४ डोरे में पोयें। १-१ डोरे के दोनों सिरे पर १-१ सुई पोवें। उनमें से एक सुई को ऊपर के कोमलास्थि के टुकड़े में भीतर से बाहर और फिर उसी टुकड़े में २ मि० मी० की दूरी पर पुनः बाहर से भीतर सुई ले जायँ। इस तरह एक सुई निकाल लेने पर फिर दो सुई को २-२ मि० मी० की अन्तर पर कोमलास्थि के निम्न टुकड़े में भीतरसे प्रवेश करा बिल्कुल पुटधाराकी पिछली ओर बाहर निकालें। उस स्थान हर डोरे के दोनों सिरे को बांध लेवें। डोरेको कांच की मणि या मोती में से निकाल कर फिर दो सिरे को बांधें। ऐसा करने का उद्देश्य यह है कि, रेशम के और सिल्क वर्म गेट के डोरे से त्वचा को हानि पहुँचती है, (कभी त्वचा कट जाती है ऐसा हो तो यह शस्त्रक्रिया निष्फल होती है। इस तरह दोहरे ४ टांके लगावें। फिर मक्युरोंक्रोम का प्रवाही लगा, फोहे रखकर पट्टी बांध लेवें। ८वें दिन टांके निकाल देवें। इस शस्त्रक्रिया का परिणाम अच्छा आता है।

ऊ. *स्पेनसर वाटसन की शस्त्रक्रिया*—Spencer Watson's operation—इस शस्त्रक्रिया का मुख्य उपयोग जब परवाल आधे पलक में हो, तभी होता है। पलक को चेतनाहीन बनाने के लिये त्वचा के नीचे नोवोकेन, कोकेन या एपोथीसिन का प्रवाही प्रवेश करावें। करीब ८मिनट के बाद शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करें। दो काट करें। पहला काट परवाल के नीचे के

भाग में पलक धारा में और दूसरा काट बाल के ऊपर के हिस्से में। ये काट इस तरह करने चाहिये कि, बाल मूलों सह दो काट के बीच आजाय। फिर उस त्वचा के भाग को काट देवें। केवल पलक के बीचके भाग के पास थोड़ा हिस्सा चिपका हुआ रहने देवें। इस चिपके हुए भाग के मूल के पास से एक और काट पलक की त्वचा में करें तथा उसे आवश्यकता अनुसार नेत्र के बहिर्कोण या अन्तर्कोण की ओर ले जांय। इस त्वचा के भाग को काट देवें, किन्तु उसके आंख के कोण की ओर के कुछ भाग को चिपका हुआ रखें। फिर इस त्वचा के काटे हुए टुकड़े को पहले काटे हुए टुकड़ेके स्थान पर उत्पन्न घाव में लगाकर टांके लगा लेवें तथा बाल वाला दूसरे टुकड़े को काटने से उत्पन्न घाव में चिपकाकर टांके लगा लेवें। इस तरह करने पर बाल वाला भाग ऊपर और बाल रहित भाग नीचे उग जायगा।

सूचना—जिस शस्त्रचिकित्सक ने अक्षिपुट पर अनेक बार शस्त्रक्रिया न की हो अथवा शस्त्रक्रिया में जिसका हाथ तैयार न हो, उसने इस शस्त्रक्रिया के लिये प्रयत्न नहीं करना चाहिये। अन्यथा अक्षिपुट ऐसा कुरूप हो जायगा कि वह मुखमण्डल पर सदा के लिये खोड़ रूप दं खेगा।

ए. *इविंग की शस्त्रक्रिया*–Ewing's operation for Entropion–इस शस्त्रक्रिया का उपयोग अमेरिका में अधिक होता है। इस शस्त्र क्रिया में खास लाभ यह है कि, रोगी के पलक पर बाहर से कुछ भी दाग नहीं दीखता। हानि यह है कि यदि कोमलास्थि मुड़ गया हो और परवाल अत्यधिक बढ़ गये हों, तो यह क्रिया काम नहीं देगी। अतः इस शस्त्रक्रिया में कुछ सुधार करके जिस तरह हम शस्त्रचिकित्सा करते हैं, उसका वर्णन करते हैं। अतः इस शस्त्रक्रिया को अपने परिवर्तित इविंग शस्त्रक्रिया (Modified Ewings operation) संज्ञा देंगे।

शस्त्रादि की तैयारी—१. पिचकारी और सुई, २. पलक को उलटने की चिमटी (Lid Eversion for ceps चित्र नं० १७६); ३. लघु छुरिका नं १८८, ४. दांतेदार चिपटी (Toothed for ceps नं० ७४), ५. रेशम के डोरे पर ६ सुई; इनमें से १ सुई में काले रेशम का डोरा पोवें, शेष सुइयों में से ४ सुई में काला डोरा और ४ में सफेद डोरा इस तरह पोवें कि डोरे के दोनों सिरे पर एक एक सुई रहे। एवं सब शस्त्र उबाल कर विशुद्ध किये हुए होने चाहिये।

रोगी की तैयारी—रोगी की पुटधारा को कोकेन एड्रिनेलिनका प्रवाही दो बार २-२ मिनट के अन्तर पर लगावें। पलकधारा पर टिंचर आयोडिन लगा लें। फिर नेत्र को रसकर्पूर जलसे धो डालें।

शस्त्रचिकित्सा—एक सुईको पलकधारा के ठीक बीचमें प्रवेश कराकर १ मि० मी० के अन्तरपर बाहर और निकालें। फिर उस सुईमें जो डोरा पोया हो उसे कुछ खींचकर गांठ लगावें। इस डोरे से पलक को स्थिर करने में सहायता मिलती है। एवं पलक को उलटने में सुविधा रहती है। फिर पलक उलटने की चिमटी को पलक धारा के पास इस तरह प्रवेश करावें कि, उसका चौड़ा हिस्सा पलक की बाहर और संकरा हिस्सा पलक के भीतर रहे।

जो टिचर कोलिन्स की चिमटी है, उसमें चौड़ा हिस्सा बड़े गोल छिद्र वाला होता है। उसके स्थान में बाहर का पत्र ठोस चौड़ा हो वैसी चिमटी विशेष सुविधा वाली मानी जाती है।

चिमटी ठीक बैठ जाय, तब जो डोरा पलकधारा के मध्य में प्रवेश कराया हो, उसे चिमटी से अलग पकड़ रखें। फिर पलक को उलट डोरे को चिमटी में बाँध देवें। पलक उलटने पर उसी स्थितिमें पलकको रखनेके लिये चिमटी सहायक वैद्य के हाथ में देवें। तत्पश्चात् नोवोकेन एड्रिनेलिन के प्रवाही का अक्षिपुट के भीतर के श्लेष्मावरण में प्रवेश करावें। ऐसा करने पर शस्त्रक्रिया पीड़ा रहित होती है।

५ मिनट के बाद शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करें। लघु छुरिका को हाथ में दृढ़ पकड़ पुटधारा से ४ मि० मी० जितनी दूरी पर एक काट करें। यह काट पलक के बाह्य सिरे से बिलकुल भीतर के सिरे तक जाना चाहिये। इस काटसे नेत्रश्लेष्मावरण और कोमलास्थि,दोनों काटने चाहिये। मांसपेशी न कट जाय, यह सम्हालें। काट करने पर कोमलास्थि और मांसपेशी के बीच के हिस्से को छुरिका के दस्ते से कुछ कुछ पृथक करें। फिर टांके लगाने का प्रारम्भ करें। एक डोरे में जो २ सुई पोई हों, उनमें से एक सुई काट के ऊपर के सिरे में कोमलास्थि के भीतर बाहर की ओर से प्रवेश करावें और भीतर की ओर से निकालें। उसी तरह दूसरी सुई (उसी डोरे में पोई हुई) पहले प्रवेश कराये हुए स्थान से १ मि० मी० दूरी पर बाहर से प्रवेश करा भीतर से बाहर निकालें। दोनों सुई को खींचने से-आकार का टांका नेत्र श्लेष्मावरण पर प्रतीत होगा। उसी तरह एक काला और एक सफेद, ऐसे ४ दोहरे टांके लेवें। प्रत्येक टांके की दोनों सुई रोगी के

कपाल पर एक स्वच्छ तौलिये या स्वच्छ लिण्टके टुकड़े पर व्यवस्थित करें। जब सब टांके पूरे हो जांय तब पहले टांके की एक सुई को लेकर उसे पहले किये हुए काट के नीचे के भाग में प्रवेश करावें और उसे बिल्कुल पलकधारा के पिछली ओर बाहर निकालें। इस सुई को धारा से कितनी दूरी पर बाहर निकालना, उसका आधार परवाल या पुटके भीतर मुड़ने के परिणाम पर अवलम्बित है। पलक का मुड़ना जितना अधिक हो, उतनी ही पलक धारासे अधिक दूरी पर सुई को बाहर निकालें। इस तरह ४ टांके वाली ८ सुई के लिए योजना करें।

सब कार्य यथायोग्य हो जाने पर पलक को उलटने की चिमटी और धारा के बीच में किया हुआ टांका, इन दोनों को दूर करें। डोरे के ८ सिरे में से सब जोड़ी को एक एक रबर की पतली नली बीच में रखकर बांध लेवें। ऐसा करने पर कोमलास्थि का मुड़ना दूर होता है और पलक के बाल ठीक हो जाते हैं।

क्रिया समाप्त होने पर नेत्र को धोकर मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही के बूंद डालें। फिर रुई के फोहे और ओझ रखकर पट्टी बांधें। ३ दिन में खोल कर नेत्र को साफ करें। आर्जिरोल के बूंद डालें। फिर पट्टी बांधने की आवश्यकता नहीं रहती। नेत्र को रोज साफ करके आर्जिरोल की बूंद २०दिन तक डालते रहें। ८वें दिन टांके निकाल देवें। २० दिन बाद सिल्वर आयोडाइड के बूंद डालने का चालू करें।

हमारे अनुभव में इस शस्त्रचिकित्साका परिणाम अच्छा ही आया है।

ऐ. *माकेक ब्लास्कोविचकी शस्त्रक्रिया*—(Macheck Blasckoviez-operation) इस शस्त्रक्रियार्थ निम्न शस्त्र आदि को तैयार करावें।

आवश्यक शस्त्र—१. पलक को चेतनाहीन बनानेके लिये पिचकारी और सुई; २. सूक्ष्म दानेदार चिमटी; ३. धातु या शृंगका अक्षि-फलक (Metal or horn lidplate) चित्र नं० १९३); ४. लघु छुरिका (चित्र नं० ७७ या १८८); ५. सुई और डोरा; तथा ६. सुईपकड़नेकी सँड़ासी.

शस्त्रचिकित्सा—पहले लिखे अनुसार अक्षिपुटत्वचा और नेत्रको विशुद्ध करें। फिर अन्तःक्षेपण करके पलकको चेतनाहीन बनावें। पलक के नीचे धातु या शृंगका फलक रखें। संकरे बोन ग्राफेके शस्त्रसे या अन्य कुछ मोटी छुरीकासे बालके पीछे पलक धारामें काट करें। यह काट पलक के

एक सिरेसे दूसरे सिरे तक ठीक पहुँचना चाहिये। दूसरा काट पलक की धारा से ३ मिली० ऊपर पलक त्वचामें एक सिरेसे दूसरे सिरे तक करें। यह काट बिल्कुल कोमलास्थि तक जाना चाहिये। तीसरा काट दूसरे काट से कुछ ऊपर किन्तु उससे छोटा और कुछ वर्तुलाकार करें। यह काट भी कोमलास्थि तक पहुँचना चाहिये।

फिर जो काट पुटधारामें किया हो, उसे गहरा करें और बिल्कुल दूसरे काट तक त्वचाको खुली करें। जो त्वचा का हिस्सा, जिसमें पेशी भी आ जाती है, जो दूसरे और तीसरे काटसे कट गया हो उसे चिमटी से खींच, पहले और दूसरे काटसे मुक्तकी हुई त्वचा के नीचे खींच कर पलक धारा तक ले जायँ। जो त्वचा का हिस्सा पहले और दूसरे काट से मुक्त हुआ हो, उसे — इस आकार के २ से ३ टांके लगाकर कोमलास्थि के साथ जोड़ देवें। ऐसा करने पर त्वचाके दोनों टुकड़े स्थिर हो जायँगें। जो ऊपर का था, वह नीचे आ जायगा तथा नीचेका था वह ऊपर आ जायगा। तत्पश्चात् त्वचामें जो जो घाव प्रतीत हों, उनको पतली सुई और डोरे से सी लेवें। मर्क्युरोक्रोम लगा, फोहे और गोज रखकर पट्टी बांध लेवें। ४ वे या ५ वें दिन टांके निकाल सकते हैं। इस शस्त्रचिकित्सा से भी अच्छा परिणाम आता है।

ओ. विद्युद्दम्भक यन्त्र से छिद्र करना - Galvanocautary Punctures—यह शस्त्र क्रिया अति सरल है।

आवश्यक शस्त्र—१. पलक को दबाने की जांच (चित्र नं० १०२), २. दम्भक यन्त्र विद्युत् से चलने वाला न० ४३।

शस्त्रचिकित्साविधि—पलक त्वचा को चेतनारहित करें। कमानी लगालें। फिर बिजली के दम्भक यन्त्र में व्यवस्थित सूक्ष्मतार जब गरम होकर सफेद हो जाय, तब पलक धारा से ४-५ मि० मी० ऊपर त्वचा में घोंपें। उस तार का नोक से कोमलास्थि को भी वेधन करें। प्रवेश करा कर तत्काल तार को निकाल लेवें। इस तरह ३ से ४ मि० मी० दूर दूर हो सके उतने छेद एक ही पंक्ति में करें। कुछ दिन जाने देवें। इच्छित परिणाम न आया हो, तो पुनः दूसरी बार उसी तरह दहन करें।

ओ. वान मिलिगन की शस्त्रक्रिया—Van Milligan's Technic—इस शस्त्रक्रिया में पलक त्वचा और धारा को स्वच्छ और चेतनाहीन बना कर बालों के पीछे पलक धारा के भीतर एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक काट करें। यह काट कुछ गहरा होना चाहिये। फिर त्वचा में धारा

से करीब ५ मि० मी० ऊपर दूसरा काट करें और उसमें ३-४ टाँके लगाकर त्वचा को ऊँची उठावें इस टांके के सिरे कपाल पर राल के मलहम की पट्टी से चिपका रखें।

जो स्थान पलक के किनारे में किया हो, उसके मुख के भीतर के भाग में से, ओष्ठ में से या गाल के भीतर के भाग में से एक श्लेष्मावरण का टुकड़ा काट कर; उसे उक्त स्थान में बैठा कर टांके लगा लेवें। करीब ६ दिन पट्टी रखें। जिससे श्लेष्मावरण पलक धारा के घाव में जुड़ जायगा। फिर टांके निकाल डालें।

अं. कोमलास्थि को काटकर निकाल देने की क्रिया—Excession of the Tarsus—जिन रोगियों को रोहे दीर्घ काल से हों और उस हेतु से कोमलास्थि बिल्कुल टेढ़ा मेढ़ा हो गया हो; फिर उसी हेतु से परवाल या पलक का भीतर मुड़ना, ये रोग उत्पन्न हुए हों, ऐसे रोगियों पर यह शस्त्र-क्रिया की जाती है।

आवश्यक शस्त्र—१. पलक उलटने की चिमटी; २. लघु छुरिका; ३. चिमटी; ४. सुई डोरा; ५. सुई पकड़ने की संडासी; ६. कैंची।

शस्त्र चिकित्सा—पलक और आंख को स्वच्छ और चेतनाहीन बनावें। पलक उलटने की चिमटी को उस तरह लगावें कि उसका चौड़ा पत्र पलक की बाहर की त्वचा पर आवे तथा सूक्ष्म दांतेदार संकरा पत्र पलक धारा के भीतर रहे। उस चिमटी से पलक को उलट किनारे से २ मि० मी० ऊपर नेत्र श्लेष्मावरण में एक काट करें। यह काट एक सिरे से दूसरे सिरे तक करें। यह काट नेत्र श्लेष्मावरण और कोमलास्थि को काटता है। मांसपेशी को बिल्कुल नहीं काटना चाहिये। इस काट द्वारा कोमलास्थि को मांस पेशी से अलग करना चाहिये। इस क्रिया के लिये हलके हाथ से छुरिका का उपयोग करना चाहिये। इस तरह कोमलास्थि को मुक्त कर उसके ऊपर रहे हुए श्लेष्मावरण सह उसके ऊपर के सिरे के पास से काट कर अलग कर देवें।

तत्पश्चात् दो सुई जो एक डोरे के दोनों सिरे पर पोई हों, उनमें से एक सुई को नेत्र श्लेष्मावरण और नेत्रोन्मीलनी पेशी (जो कोमलास्थि के ऊर्ध्व सिरे पर लगी थी और जिसे कोमलास्थि से पृथक् की है) के भीतर से प्रवेश कराकर बाहर निकालें। काट के बीच में १ टांका तथा दोनों सिरे पर दो टांके देवें। इस तरह टांके लगाने पर डोरे के दोनों सिरे को स्वच्छ तौलिये पर रखते जाय। तीनों टांके हो जाने पर पलक उलटने की चिमटी को निकाल लेवें। फिर पलक नैसर्गिक स्थिति में आ जायगा।

एक डोरेमें पोई हुई दो सुईमें से एक सुईसे मांसपेशी और अक्षिपुट त्वचाका वेधन कर पलकसे बाहर निकालें। उसी डोरेकी दूसरी सुईको कुछ नीचेके हिस्सेमें प्रवेश करा पलक धारके कुछ ऊपरमें बाहर निकालें। इस तरह तीनों टांके अर्थात् ६ सुईको थोड़े थोड़े अन्तर पर बाहर निकालें। फिर डोरेको गांठ लगा टांकेको सी लेवें। इस क्रियासे नेत्रोन्मीलनी पेशी ऊपरका श्लेष्मावरण निम्न धारके साथ अच्छी तरह चिपक जांयगे। टांके से त्वचा न कट जाय, इसलिये टांकेके बीच गोज़ के टुकड़ेको गोल लपेट कर रखें।

सर्व क्रिया समाप्त होने पर मर्क्युरोक्रोम के बूंद नेत्रमें डालें तथा त्वचा पर भी लगावें। फिर गोज़ और फोहे रख कर पट्टी बाँधें। ६ ठवें दिन टांके निकाल डालें।

१०. अक्षिपुटके बाह्यावर्त्तन पर शस्त्रक्रिया

(Operation For Ectropion)

इस विकृति पर निम्न ३ प्रकार की शस्त्रक्रिया की जाती हैं।

अ. पेशीसंकोचज अक्षिपुटके बाह्यावर्तन पर स्नेलन के टाँके—Snellen's Sutures For spastic Ectropion—पहले परवाल और पलकके भीतर मुड़ने पर गेईलार्डके टाँकेके लगानेका वर्णन किया है, उसी अनुसार पलककी त्वचाको स्वच्छ और चेतनाहीन करें। फिर दो मुड़ी हुई सुईको एक डोरेके दोनों सिरे पर पोई हुई लेवें, उनमेंसे एक सुईको पलक जहाँ अधिकसे अधिक मुड़ा हो, उस स्थानके नेत्रश्लेष्मावरण में प्रवेश करा पलककी ऊपर की त्वचामें से बाहर निकालें। उसी अनुसार उसी डोरेके दूसरे सिरे पर लगी हुई सुईको पहली सुईसे ३ मि० मी० दूसरी पर उसी अनुसार प्रवेश कराकर बाहर निकालें। ऐसा करने में—इस पंक्ति आकारका डोरे का टुकड़ा नेत्रश्लेष्मावरण पर प्रतीत होगा। उस टाँकेके अनुरूप आवश्यकता के अनुसार २-३ या ४ टांके लगा लेवें। फिर त्वचामें से बाहर निकाले हुए दो दो सिरे को परस्पर गांठ लगा लेवें। गांठ के बीच में पतली रबर की नली रखें। फिर मर्क्युरोक्रोम लगाकर रोगी को रजा देवें। पट्टी बांधने की आवश्यकता नहीं है। करीब १ सप्ताह होने पर टांके निकाल डालें।

आ—पेशीवधज नेत्रच्छद के बाह्यावर्तन पर कुन्त की शस्त्रक्रिया—Kuhnt's operation for Paralytic and Senile Ectropion—

इस क्रिया के लिये ग्राफे या स्नेलन की कमानी (चित्र नं० १८७),

लघु छुरिका (चित्र नं० १८८) कैंची नं० १६०, चिमटी, सुई पकड़ने की संडासी, सुई-डोरा आदि तैयार रखें।

शस्त्रक्रिया विधि—पलकपर टिंचर आयोडिन लगाकर एपोथीसिन एड्रिनेलिन, नोवोकेन एड्रिनेलिन अथवा परकेन एड्रिनेलिनका त्वचामें अन्तः-क्षेपण करें। फिर त्वचा और बालका हिस्सा आगे रहे तथा कोमलास्थि और नेत्रश्लेष्मावरण वाला हिस्सा पीछे रहे, उस तरह लघु छुरिका से पलक को चीरें। पश्चात् पिछली ओरके भागमें से एक त्रिकोणाकार टुकड़ा काट लेवें। त्रिकोणका चौड़ा भाग पलकके किनारेकी ओर तथा शिखर प्रदेश पलकके मुख की ओर रखना चाहिये। इस तरह काट करके सिलाई कर लेवें फिर मक्यु रो-क्रोमके बूंद डाल पलकपर फोहे रखकर पट्टी बांध देवें। कुछ दिनोंतक त्वचामें सिलवट प्रतीत होगी। फिर वह दूर होकर पलक ठीक हो जायगा।

इ—*नष्ट हुए अक्षिपुट के बाह्यावर्तन पर शस्त्रक्रिया*—Blepharo-plasty for Cicatricial Ectropion—जब जलने या किसी रोग के हेतु से पलक का कुछ हिस्सा या पूरा पूरा गल जाता है, तब कपाल, गाल या बाहु के भीतर के भाग में से पतली त्वचा लेकर उसे पलक पर लगाने से नूतन पुट बनता है। स्थान और रोगी की आवश्यकता अनुसार यह शस्त्रक्रिया भिन्न भिन्न प्रकारसे होती है। निम्न पुट और ऊर्ध्व पुट के लिये रीति में भेद होता है। इसके लिये शस्त्रवैद्य की बुद्धि और कुशलता पर सच्चा आधार रहता है। इस शस्त्रक्रिया के लिये बहुधा रोगी को बेहोश बनाना पड़ता है। भरे हुए भाग को छुरिका और कैंची से काटकर घाव को ताजा बनाना पड़ता है। फिर जहाँ से त्वचा लेना हो, वहाँ से काट योग्य आकार बना अच्छी तरह यथास्थान चिपका कर टांके लगा लिये जाते हैं।

११—नूतन अक्षिपुट निर्माणार्थ शस्त्रक्रिया।

(*Blepharoplasty*)

इस शस्त्रक्रिया का संक्षिप्त परिचय ऊपर लिखा गया है।

१२—आकुंचित नेत्रद्वार विस्फारक शस्त्रक्रिया।

(*Canthoplasty*)

चित्र नं० १९४ देखें। नेत्र के बाह्य कोण के चारों ओर की त्वचा पर टिञ्चर आयोडिन लगावें। फिर एपोथीसिन या युकेन का अतःक्षेपण करें। नेत्र को रस कर्पूर के जल से धोकर कोकैन की बूंद डालें।

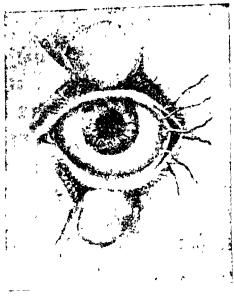

चित्र नं० १६४

शस्त्रक्रिया विधि— सहायक वैद्य ऊर्ध्वपुट को ऊपर की ओर तथा निम्न पुट को नीचेकी ओर खेंचे। शस्त्रवैद्य नोक रहित कैंची के एक पत्त को नेत्र के बाह्य कोण में अच्छी तरह प्रवेश करावें। दूसरा पत्त बाह्य त्वचा पर रहेगा। फिर कैंची को अच्छी तरह बल लगा-कर बन्द करने पर बाह्यकोण कटकर घाव हो जायगा। कभी कभी छोटी धमनी कट जानेसे बहुत रुधिर स्राव होता है। किन्तु थोड़े समय तक दबाव डालने पर स्राव बन्द हो जाता है।

जो घाव हुआ है, वह पुनः बन्द होकर चौड़े हुए द्वार को फिर से संकरा न बनादे, इसलिये घाव में रहे हुये नेत्रश्लेष्मावरण और त्वचा को २-३ टांके लगा लिए जाते हैं। कुछ बोरिक वेसेलिन की पट्टी चिपका, फिर नेत्र पर पट्टी बांधें। तीन दिन में पट्टी निकाल देवें। ८ दिन बाद डोरे निकाल डालें।

१३. नेत्रद्वार आकुंचनार्थ शस्त्रक्रिया

(Tarsorrhaphy)

चित्र नं० १६५ देखें। जब किसी भी कारण से पुट बन्द होने पर भी शुक्लमण्डल का कुछ भाग खुला रह जाता है, अच्छी तरह अच्छादित नहीं होता, तब शुक्लमण्डल पर क्षत होने का भय रहता है। ऐसी स्थिति में नेत्रद्वारको आकुंचित करनेके लिये शस्त्रक्रिया की जाती है। नेत्रद्वार को जितना छोटा करना हो, उस परिमाण में ऊपर और नीचेके पलक को चीरें। फिर उत्पन्न हुए दोनों जखमों को परस्पर सीकर पट्टी बाँध लेवें। ६-७ दिन में पलक का बाह्य हिस्सा चिपक जाने पर नेत्रद्वार सकरा हो जाता है।

चित्र नं० १६५

१४. झुके हुए पलक को सुधारने की क्रिया

(*Operation For ptosis*)

यह शस्त्रक्रिया अलग अलग ४ रीतिसे की जाती है। १. पलकको छोटा बनाकर; २. नेत्रोन्मीलनी पेशीको ऊपर खींच पलकको छोटा बनाकर; ३. नेत्रोन्मीलनी पेशीका कर्तव्य कपाल की पेशीको देकर (हेसकी शस्त्रक्रिया द्वारा); ४. नेत्रोन्मीलनी पेशीका कर्तव्य ऊर्ध्व सरला पेशी को देकर (मोटेई की शस्त्रक्रिया द्वारा)।

१. *पलक को छोटा बनाना*—Shortening of the Lid—इस शस्त्रक्रियामें पलककी त्वचा और कोमलास्थि को काटा जाता है। कोमलास्थिको पूर्णांशमें या कुछ अंशमें निकाल देते हैं। कोमलास्थि को किस तरह निकालना चाहिये, उसके लिए वर्णन इसी प्रकरणमें पलकके भीतर मुड़नेकी शस्त्रक्रियाके अन्तर्गत (३ पृष्ठके पहले) किया है। इसके अतिरिक्त विधि समझाने के लिए अत्र वर्णन करते हैं। इस क्रियाको फ्रीलेण्ड फर्गस की शस्त्रक्रिया कहते हैं।

फ्रीलेंड फर्गस की शस्त्रक्रिया Freeland Ferguss's operation—पहले त्वचाको शुद्ध कर चेतनाहीन बनावें। पलकके किनारेसे लगभग ½ इंच ऊपर एक काट करें, यह काट बाहर के सिरेसे भीतर के सिरे तक पहुँचता है। गहराई में बिल्कुल कोमलास्थि तक जाता है। इस काट द्वारा कोमलास्थिके मूल तक का हिस्सा साफ करें। ऊपर भ्रू की अस्थि तक जायं। कोमलास्थि पर रही हुई मांसपेशी को निकाल डालें। जितने परिमाण में पलक झुका हो, उतने परिमाण में कोमलास्थि का टुकड़ा काट लेवें। फिर कोमलास्थिके ऊपरके सिरे को भौंकी हड्डी के ऊपर रहे हुए आवरण के साथ केटगेट से सी लेवें। ३-४ टाँके लगाने पड़ते हैं और टाँकेसे त्वचा का घाव सी लेवें।

इस शस्त्रक्रिया से यथार्थमें पलक को छोटा बनाकर ऊपरकी अस्थिके आवरणके साथ संलग्न कर देते हैं। जिससे कुछ दिनों तक नेत्र ठीक बन्द नहीं होता है। किन्तु फिर नेत्र बन्द हो सकते हैं। फिर भी इस शस्त्र क्रिया से परिणाम प्रायः सन्तोषप्रद नहीं मिलता। इस हेतुसे वर्तमान में कुशल नेत्रवैद्योंने इसका उपयोग कम कर दिया है।

२. *नेत्रोन्मीलनी पेशीको उपर खींचने या छोटा करनेकी शस्त्रक्रिया*—Advancement of Levator Palpebralis Superioris चित्र नं०

१९६-१९७ देखें। इस शस्त्रक्रियाके लिए पलक और भौं के ऊपरकी त्वचा को स्वच्छ, विशुद्ध और चेतनाहीन बनावें। पुटधारा और भ्रू के समान

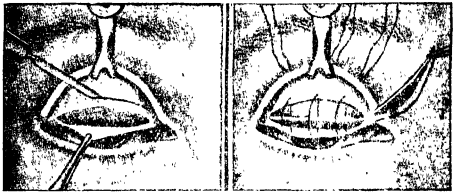

चित्र० नं० १९६ चित्र० नं० १९७

नेत्रोन्मीलनी पेशी को उठाने की शस्त्रक्रिया।

अन्तर पर बीचमें रहे हुए पलक पर एक काट बाहर से भीतरकी ओर (सारे पलक पर) करें। इस काटसे त्वचा और नेत्रनिमीलनी पेशी कटते हैं। फिर त्वचा और पेशीके हिस्सेको कोमलास्थि के ऊपरसे नीचेकी ओर हटावें। ऐसा करने पर नेत्रोन्मीलनी पेशी, जो कोमलास्थिकी ऊर्ध्व धाराको चिपकी है, वह प्रतीत होती है, फिर एक डोरेमें २ सुई पोई हो, ऐसी ६ सुई से ३ दोहरे टाँके लगावें। ये टाँके नेत्रोन्मीलनी पेशी कोमलास्थिकी ऊर्ध्व धाराको संलग्नहो, वहाँसे करीब ३ मि० मी० ऊँचे लेवें। इन टाँकोंकी क्रिया होने पर कोमलास्थिकी धाराके ऊपर संलग्नपेशी और कोमलास्थिके ऊपरके कुछ भागको काट डालें। तत्पश्चात् जो ३ दोहरे टाँके पेशीमें प्रवेश कराये हों, उनकी एक एक सुई कोमलास्थि और नेत्रनिमीलनी पेशीके बीच निकाल कर बिल्कुल पलक धारासे किञ्चित् ऊपर बाहर निकालें। इस तरह सब सुइयों को थोड़े थोड़े अन्तर पर बाहर निकाल, दो दो सुई वाले डोरेके टाँकेमें गाँठ लगा कर बाँध लेवें। फिर त्वचामें जो घाव हुआ हो, उसे सुई डोरेसे सी लेवें। उस पर मर्क्युरी क्रोम का प्रवाही या सल्फोनेमाइड का मलहम लगा फोहे रख कर पट्टी बाँधें। लगभग ८ दिनमें टाँके निकाल डालें।

सूचना—टांके के बीच में रबर की पतली नली रखनी चाहिये; अन्यथा त्वचा कटती है।

३—हेस की शस्त्रक्रिया—Hess's operation for Ptosis—चित्र नं १९८-१९९ देखें। इस चिकित्सा के लिये लघु छुरिका चित्र नं० १८८.

चिमटी नं० १८६, सरल कैंची नं० १६०, ६ सुई और डोरा, रक्त के अवरोधार्थ स्पेन्सर वेल्सकी छोटी चिमटी नं० २०४ आदि साधनों की तैयारी करें।

चित्र नं० १९८

चित्र नं० १९९

रोगी की तैयारी—अस्त्र से भ्रू के बाल निकाल डालें। भ्रू, उसके चारों ओर की त्वचा तथा पलक की त्वचा पर टिञ्चर आयोडिन लगावें। फिर एपोथीसिन, नोवोकेन एड्रिनेलिन या परकेन एड्रिनेलिन के प्रवाही का अन्तःक्षेपण करके उन सब भागों को चेतनाहीन बनावें।

शस्त्रक्रिया विधि—भ्रू के बाल के स्थान में उतना ही लम्बा काट करें यह काट त्वचा और निम्न पेशी तक होना चाहिये। इस भाग के भीतर से त्वचा के नीचे के स्थान को रिक्त करें। फिर उस घाव के निम्न सिरे को चिमटे से पकड़ पलक की त्वचा को निम्न भाग से छुरिका द्वारा मुक्त करें। ऐसा करने पर जेब सा बन जायगा, फिर ६ सुईयों में से २ सुई को १ डोरे के दोनों सिरे पर पोवें। १ सुई को पलक के बीच के हिस्से में जिस स्थान पर नैसर्गिक सिलवट होती है, वहाँ पर त्वचा में प्रवेश करावें और भीतर जो पोल बनाई है, उसके भीतर ले जायं और भ्रू के घाव में से बाहर निकालें। दूसरी सुई ½ इंच की दूरी पर प्रवेश करावें। इस तरह पलक के बीच के हिस्से में ½ इंच चौड़ा एक टांका लगावें। पुनः इसी तरह और २ टांके बाहर की ओर तथा भीतर की ओर देवें। भ्रू के घाव में से बाहर निकाली हुई सुई इस जख्म के ऊपर के भाग में से निकाल, खींचकर टांके लगा देवें। इस बात को लक्ष्य में रखना चाहिये कि, टांके बांधने के समय पलक पर कितनेक अंश में सिलवट उत्पन्न करनी पड़ती है तथा पलक को भी कुछ अंश में उठाना पड़ता है। इस तरह टांके लगा लेने के पश्चात्

श्री में किये हुए घाव को सी लेवें। ८-१० दिन टांके रखकर फिर निकाल डालें। इस शस्त्रक्रिया से पलक को उठाने वाली पेशी कपाल की पेशी के साथ जुड़ जाती है।

इस शस्त्रक्रियासे कितनेक रोगियों में बहुत अच्छा परिणाम आता है; किन्तु कुछ काल के बाद पुनः पलक निर्जीव बन जाता है।

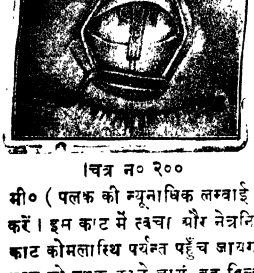

चित्र न० २००

मोटेईकी शस्त्रक्रिया—Motai's operatiom for Ptosis—चित्र न० २०० देखें। नेत्र में कोकैन एडिनेलिन के बूंद डालें। पलक और भ्रू की त्वचा को विशुद्ध, कीटाणु रहित बनावें। फिर नोवोकेन एडिनेलिन के प्रवाही से चेतनाहीन करें।

शस्त्रक्रिया—पुटधारा से ८ मि० मी० ऊंचे एक आड़ा काट २५ मि० मी० (पलक की न्यूनाधिक लम्बाई होने पर न्यूनाधिक) छोटी छुरिका से करें। इस काट में त्वचा और नेत्रनिमीलिनी पेशीको काटना चाहिये अर्थात् काट कोमलास्थि पर्यन्त पहुँच जायगा। फिर घाव के ऊपर के हिस्से में दोनों भाग को पृथक् करते जायं, वह बिल्कुल कोमलास्थिकी ऊर्ध्वधारा से ८ मि० मी० तक। वहाँ पर एक दूसरी काट कर नेत्रोन्मीलनी पेशी और पलकके शेष भागों को काटें। इस काट से टेनन का आवरण मुक्त होगा। ऊपर के संपुट में रहे हुये नेत्रश्लेष्मावरण में एक टांका लगाकर उसे नीचे खींचें। फिर टेननके आवरण में ऊर्ध्वसरला पेशीके बाह्य भागके पास एक काट करके उस पेशी को मुक्त करें। पश्चात् एक पेशी बडिश (चित्र न० १०३) को ऊर्ध्व सरला पेशी के सिरे में पेवें और बडिश को कुछ ऊपर खींचें। जिससे पूरी पेशी उसके सिरे सह प्रतीत हो जायगी। उस पेशी में से ४ मि० मी० चौड़ा और १० मि० मी० लम्बा सिरा नीचे की ओर काट देवें। उस सिरे की धारा से २ मि० मी० ऊपर एक दोहरा टांका (एक डोरे के दोनों सिरे पर १-१ सुई पोई हो उनसे) लेवें। इस टांके और डोरे से ऊर्ध्व सरला पेशी का सिरा कोमलास्थि के ऊपर के सिरे में जो जेब बना हो, वहाँ पर ले जायँ। सुइयों को कोमलास्थि के आगे त्वचा और नेत्र निमीलनी पेशी के नीचे बिल्कुल पलक धारा तक ले जायं फिर धारा में से बाहर निकालें। उस तरह दोनों सुइयों को पुटधारा में से बाहर निकालने के

पश्चात् आवश्यकता हो तो एक दूसरा दोहरा टांका ऊर्ध्व सरला पेशीके सिरेमें प्रवेश करा पहले के अनुसार पुटद्वारा में से बाहर निकालें। फिर दोनों टांकों को गांठ लगाकर बन्द करें। त्वचा में जो घाव हुआ हो, उसे टांके लगाकर बन्द करें। पश्चात् मक्खु रोक्रोम का प्रवाही लगा फोहे, रखकर पट्टी बांधें। सप्ताह बाद टांके निकाल डालें।

परिणाम—कितनेक रोगियों में संतोषप्रद।

उपर्युक्त चार शस्त्रक्रिया के अतिरिक्त अनेक शस्त्रवैद्यों ने पृथक् पृथक् शस्त्रक्रिया का प्रयोग किया है। किन्तु किसी भी रीति में शत प्रतिशत परिणाम नहीं आता। अतः वैद्यक शास्त्र के लिये एक सामान्य नियम है कि, जिस रोग के लिये एक निश्चित सफल उपचार न हो, उसके लिये अनेक प्रयोगों की सफलता दर्शायी जाती है। वैसा ही इस स्थिति के लिये है। यथार्थ में एक भी क्रिया इस विकार के लिये पूर्णांश में सफल नहीं है।

B. अश्रुजनक पिण्ड और अश्रुवाशय पर शस्त्रक्रिया—Operation on Lacrymal apparatus.

१. अश्रुजनक पिण्ड को निकाल देने की शस्त्रक्रिया—Excision of Lacrymal gland.
२. अश्रुवाशय धोने की क्रिया—Lavage of Lacrymal sac.
३. अश्रुद्वार को चिरने की क्रिया—Slitting of Canaliculi.
४. अश्रुवाशय में सलाका डालने की क्रिया—Proving of the Lacrymal duct.
५. अश्रुवाशय में काट करने की क्रिया—Incision of Lacrymal sac.
६. पुलार्ड की अश्रुवाहक नलका संकोचनाशक क्रिया—Poulard's Stricturotomy of Nasal duct.
७. अश्रुवाशय का नाक के भीतर का मार्ग साफ करना—Operation of Dacry-rhinostomy.
८. अश्रुवाशय को निकाल देने की शस्त्रक्रिया—Excision of the Lacrymal sac.
९. वेस्टकी नाक के मार्ग से अश्रुवाशय निकालने की क्रिया—West's operation of sac.

१. अश्रुजनक पिण्ड को निकाल देने की शस्त्रक्रिया
(Excision of Lacrymal gland)

शस्त्रक्रिया करने के हेतु—१. अश्रुजनक पिण्ड की अति वृद्धि या

उसमें ग्रन्थि उगना; २. अश्रु वाशय को निकाल देने के पश्चात् नेत्र में से अत्यधिक अश्रुस्राव होता रहना। इन दो में से कोई भी कारण उपस्थित होने पर शस्त्रचिकित्सा की जाती है।

शस्त्रक्रिया प्रकार—यह शस्त्रक्रिया दो प्रकार से की जाती है। सुविधा अनुसार कभी बाहरसे और कभी भीतरसे। अश्रुजनक पिण्ड के २ भाग हैं। इनमें पहला बड़ा भाग नेत्रगृह के बाहर के और ऊपर के कोण में एक गड्ढे में रहा है; तथा दूसरा छोटा भाग ऊर्ध्व अक्षिपुट के श्लेष्मावरण के नीचे उसी स्थान में रहा है। इस पर से समझ में आया होगा कि, पिण्ड के बृहद् भाग को निकालने के लिये बाहर से तथा लघु भाग को निकालने के लिये नेत्र श्लेष्मावरण काटकर भीतर की ओर शस्त्रक्रिया की जाती है।

बाहर से शस्त्रक्रिया करने की रीति—पहले ऊर्ध्व पुट की त्वचा को साफ कर टिंचर आयोडिन लगावें। फिर नोवोकेन एड्रिनेलिन या परकेन एड्रिनेलिन या प्रोकेन एड्रिनेलिन के प्रवाहीका अन्तःक्षेपण नेत्रवास कोणमें करके त्वचा पिण्ड और उसके चारों ओर के भाग को चेतनाहीन बनावें। पश्चात् नेत्रगृह की ऊर्ध्वधारा के बाहर के तीसरे भाग के ऊपर की त्वचा में एक काट करें। त्वचा को काटने के पश्चात् नीचे अवस्थित पिण्ड पर रहे हुए आवरण को काटें। फिर पिण्ड को बाहर खींच अस्थि से पृथक् करके निकाल लेवें। यदि किसी सूक्ष्म धमनी कट जाने से रुधिर स्राव होता हो, तो उसे दबावें या आवश्यक हो तो बांध दें।

शस्त्रक्रिया समाप्त होने पर त्वचा के काट को ३—४ टांके लगाकर सी लेवें। मक्यु रोक्रोम का प्रवाही लगा, फोहे रखकर पट्टी बांधें। बहुधा पट्टी बदलनी नहीं पड़ती। ८ दिन में पट्टी खोलने पर घाव भरा हुआ प्रतीत होगा। ऐसा हो, तो टांके निकाल डालें।

भीतर से शस्त्रक्रिया करने की रीति—पिण्ड के छोटे भाग को निकालने के लिये यह शस्त्रक्रिया व्यवहृत होती है। ऊपर के पलक को उलट कर ऊपर खींचे। फिर टिंचर आयोडिन लगा उपर्युक्त चेतना हर ओषधि का अन्तःक्षेपण करके पिण्डके चारों ओरके भागको बधिर बनावें पश्चात् नेत्रगृह के ऊपर के किनारे के नीचे बाहर की ओर नेत्रश्लेष्मावरण में एक काट करें। यह काट ठीक होगा, तो अश्रु पिण्ड प्रतीत होगा। उस पिण्ड को चिमटे से पकड़ चारों ओर के अवयवों से शस्त्र द्वारा मुक्त करें। फिर उसे सरलता से निकाल सकेंगे। रक्तस्राव बन्द करके नेत्रश्लेष्मावरण में १-२ टांके लगा लेवें। पश्चात् मक्यु रोक्रोम लगा, फोहे रखकर

आंख पर पट्टी बांध लेवें। तीसरे दिन नेत्र को रसकर्पूर के जल से धोकर मर्क्युरोक्रोम के बूंद डालें और फोहे रखकर पट्टी बांध देवें। इस तरह तीसरे तीसरे दिन करते रहें। ८ दिन होने पर टांके निकाल डालें।

२—अश्रुवाशय प्रक्षालन रीति।

(*Lavage of Lacrymal sac*)

कांच बिन्दु की शस्त्रक्रिया के पहले और अश्रुवाशय प्रदाह होने पर इस रबली को पिचकारी से धोनी पड़ती है। धोने के लिये प्रायः बोरिक धावन या लवणजल प्रयोजित होता है। इस क्रिया के लिये एक खास पिचकारी आती है। (चित्र नं० १३ देखें)। नेत्र में कोकेन प्रवाही डालकर चेतनाहीन बनाव। पिचकारी की सुई को निम्न अश्रुवाहक छिद्र में डालें, किन्तु अनेक बार वह छिद्र उतना छोटा हो जाता है कि, उसमें सुई का प्रवेश नहीं हो सकता। जिसमें छिद्र को चौड़ा करना पड़ता है।

छिद्र को चौड़ा बनाने के २ साधन हैं। १—नलिका; २— सूत्र। नलिका उस तरह की होती है कि उसका सिरा बिलकुल पतला होता है और ऊपर का भाग शनैः शनैः मोटा होता जाता है। चित्र नं० १२ देखें।

नेत्र चेतनाहीन होने पर रसकर्पूर के जल से धोवें। फिर निम्न पलक को कुछ नीचे खींचकर नलिका के सिरे को अश्रुवाहक छिद्र में प्रवेश करावें। सहज विदित हो जायगा कि, नलिका को प्रवेश कराने के समय उसे खड़ी रखनी पड़ती है। सिरे का प्रवेश होने पर नलिका को ४५ डिग्री जितनी नीची करें और बल लगाये बिना उसे छिद्र के भीतर जाने देवें ऐसा करने पर अश्रुवाहक छिद्र पिचकारी की सुई का प्रवेश हो सके उतना चौड़ा हो जायगा।

कितनेक शस्त्रवैद्य छिद्र को चौड़ा नहीं करते, उसे शस्त्र से काट देते हैं। इस क्रियाके लिए वेबरकी खास अश्रुद्वार की छुरिका (Weber's Canaliculus knife) आती है। उसका सिरा बहुत सूक्ष्म होता है। फिर काटनेवाला भाग होता है। सूक्ष्म नोक को अश्रुवाहक छिद्र में प्रवेश करा शस्त्रको कुछ भीतर जाने देवें। यदि शस्त्र के सिरे को ऊपरकी ओर लेजायँ, तो अश्रुवाहक छिद्र में एक काट हो जायगा। चित्र नं० २०१-२०२ देखें। यह काट ऊपर और भीतर के भाग की ओर करना चाहिये। इस काट में से पिचकारी की सुईको प्रवेश करा सकते हैं। चित्र न २०३ देख। विशेष वर्णन आगे 'अश्रुवाहक छिद्रमें सलाका प्रवेश कराना' इस शीर्षक के नीचे दिया जायगा।

३. अश्रुवाहक छिद्र को चीरने की क्रिया
(*Slitting of Canaliculi*)

इस छिद्र को विदीर्ण करने की क्रिया ऊपर अश्रुवाशय धोने की क्रिया में लिखी गई है।

नं० २०१

नं० २०२

४. अश्रुवाहक छिद्र में सलाका प्रवेश कराना।
(*Probing of the Lacrymal duct*)

चित्र नं० २०३ देखें। ये सलाका अनेक जातिकी आती हैं। ये न्यूनाधिक मोटाई की रहती हैं। उपर्युक्त लेख अनुसार नेत्र में कोकेन प्रवाही डाल, रसकपूर जल से धोकर छिद्र को विशुद्ध करें। फिर उसे चीरें। पश्चात् विशुद्ध सलाका पर वेसलिन या तेल लगा कर अश्रुवाहक छिद्र में प्रवेश करावें। पहले सूक्ष्मतम सलाका लेवें। सलाका को प्रवेश कराने के समय उसे निम्न पुटधारा की समपंक्ति में रखनी पड़ती है। सलाका थोड़ी भीतर जाने पर नासिका की अस्थि को लगती है और वहाँ रुक जाती है। फिर सलाका के सिरे को ऊपर फिराते जायँ

चित्र नं० २०३ अश्रुवाहक नल में सलाका-प्रवेश।

और छिद्रमें गये हुए सिरेको आगे बढ़ाते जाँ। जब सलाका लगभग खड़ी हो जाती है, तब उसका प्रवेश अश्रुवाशय और वहाँसे अश्रुनल द्वारा नासिका में हो जाता है। सूक्ष्म सलाका का प्रवेश सरलता से हो जानेके पश्चात् उससे मोटी सलाका लेवें और उत्तरोत्तर मोटी सलाका प्रवेश करा देवें।

५. अश्रुवाशय में काट करना

(*Incision of Lacrymlsac.*)

जब अश्रुवाशय में पूयोत्पत्ति होती है, तब उसके आशुकारी प्रदाह के हेतुसे विद्रधि बन जाता है। फिर पकने पर उसमें छेद किया जाता है। उसके लिए निम्नशस्त्र तैयार करें।

शस्त्रादि साधन—१. बिमटी; २. पिचकारी और सुई; ३. नोकदार तेज छुरिका, ४. नलिका (probe) और ५. रबरकी पतली नली।

शस्त्रक्रिया विधि—रोगीकी त्वचाको स्पिरिटसे साफ करके टिंक्चर आयोडिन लगावें। फिर नोवोकेन एड्रिनेलिन या उसके समान गुणवाली ओषधि और एड्रिनेलिन के प्रवाही का त्वचा में अन्तःक्षेपण कर पीड़ित स्थान और सम्बन्धवाले अवयवों को चेतनाहीन बनावें। पश्चात् जो स्थान प्रदाहके हेतु से नरम हो गया हो, वहाँ पर शस्त्रवैद्य ने अपने बांये हाथ के अंगुष्ठ और तर्जनी से त्वचा को खींचनी चाहिये। चमड़ी खींचने पर दाहने हाथ में पकड़ी हुई छुरिका के नोकदार भागको अश्रुवाशय में प्रवेश करावें। तत्काल पूय बाहर निकलने लगेगा। छुरिका को कुछ आगे धकेल अश्रुवाशयमें उत्पन्न घावको ऊपर और नीचेकी ओर कुछ चीरा करें। ऐसा करने पर सब पूय निकल जायगा। फिर एकीफ्लेविन के प्रवाही १-१००० से अश्रुवाशयको धो देवें। पश्चात् सल्फाथियो मोल या सल्फाडायाझिन का चूर्ण उसके भीतर भर देवें। एवं रबरकी पतली नली को अश्रुवाशय में प्रवेश करा, घाव पर फोहा रख कर पट्टी बाँध लेवे। इस तरह प्रतिदिन परिचर्या करने से करीब १ सप्ताहमें घाव भर जाय और अश्रुवाशय में से एक भी बूंद न निकलता हो, तो बहुत अच्छा परिणाम आया है, ऐसा मानना चाहिये।

कदाच पूय आताहो, तो एक सलाका पर रुई लगा फुरेरी बना सिल्वेट नाइट्रेट के प्रवाही (एक औंस में एक ड्राम) में भिगो अश्रुवाशय के भीतर के आवरण पर लगावें। फिर पहले के अनुसार धोना आदि शुश्रूषा करें। जबतक पूय प्रतीत हो, तबतक इस तरह तीसरे, चौथे दिन सिल्वर नाइट्रेट

(रौप्य लवण) लगाते रहें। कभी सब प्रकार के प्रयत्न करने पर भी घाव नहीं भरता और नाडीव्रण हो जाता है। ऐसा हो जाय तो अश्रुआशय को निकाल देना पड़ता है।

६. पुलार्ड की अश्रुवाहक नलकी संकोचहर क्रिया।

(Poulard's Striturotomy of Nasal Duct)

यह शस्त्रक्रिया पहले प्रकरण २२ में दी है।

७. नाक के भीतर का अश्रुमार्ग को साफ करना।

(Dacryo rhinostomy-Toti's operation-Dupuy-Dutemp's operation)

यह शस्त्रक्रिया सामान्य नेत्रवैद्य से नहीं हो सकेगी। कारण, इस शस्त्रक्रिया में नाक के बाहर दीवार की अस्थि को छेणी और हथौड़ी से तोड़नी पड़ती है या वेधन यन्त्र (Trephine) से उसमें छिद्र करना पड़ता है। अतः वह जिसने शरीर पर अन्य शस्त्रक्रिया की हो, उसी से हो सकेगी।

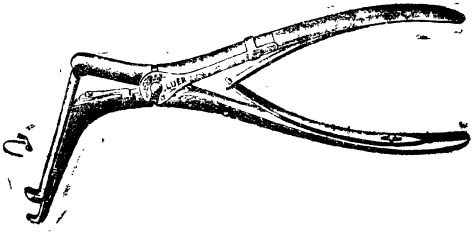

चित्र नं० २१०

आवश्यक शस्त्रादि की तैयारी:—

१-पिचकारी और सुई।
२-लघु छुरिका।
३-स्पेन्सर बेल्स की रक्तस्तम्भक चिमटी नं० २०५
४-त्वचा पकड़ने की चिमटी (Dissection for ceps)
५-दांतेदार चिमटी (Toothed for ceps) चित्र नं० २०५
६-कैंची।
७-घाव को खुला रखने वाला अंकुश (Retractor) नं० २०६
८-अस्थि के आवरण को साफ

करनेवाला अस्त्र (Periosteum Elevetor) नं० २०७
९-छेणी (Chisil) नं० २०८
१०-हथौड़ी (Hammer) नं० २०९
११-अस्थि के घाव को चौड़ा बनाने वाला अस्त्र (Sphenoidal for oeps) नं० २१०
१२-दस्ते में व्यवस्थित दो सुई नं० २११
१३-केटगट के डोरे।
१४-सादी मुड़ी हुई सुई नं० १९२
१५-रेशम या सिल्क वर्म गट के डोरे।
१६-सुई पकड़ने की संडासी नं० १९१
१७-अश्रुवाशय को अस्थि से अलग करने के लिये छुरिका नं० २१२

रोगी की तैयारी—नाक के भीतर कोकेन १०% के प्रवाही (थोड़ा एड्रिनेलिन मिले हुए) में लिण्ट के गोल फोहे भिगोकर जिस ओर शस्त्रक्रिया करनी हो, उस ओर के नासापुट के भीतर ऊपर के हिस्से में प्रवेश करावें और १० मिनट तक रहने देवें। ऐसा करने पर नाक के भीतर का श्लेष्मावरण चेतना रहित हो जाता है। फिर नाक के कोण की त्वचा को टिञ्चर आयोडिन लगाकर वहां पर नोवोकेन एड्रिनेलिन के प्रवाही का अन्तःक्षेपण करें और उस स्थान को चेतनाहीन बनावें।

शस्त्रचिकित्सा विधि—आंख के भीतर के कोण में से कुछ नाक की ओर एक खड़ा काट करें। वह नाक के बाहर के हिस्से में, भीतर के पुटबन्धन के सिरे से ३ से ५ मि० मी० ऊँचे से प्रारम्भ कर बिल्कुल अश्रुवाशय नल नाक में जिस स्थान पर प्रवेश करता है, वहां तक करें। चित्र नं० २१३ देखें। वह काट बिल्कुल अस्थि पर्यन्त जाना चाहिये। यदि

चित्र नं० २१३ अश्रुवाशय निकालने का काट

कोई धमनी कट गई हो और उसमें रुधिर का सूक्ष्म फुआरा उड़ता हो तो उस धमनीको स्पेन्सर वेल्सकी चिमटीसे पकड़ लेवें। जिससे रक्तस्राव बन्द हो जायगा। धमनी न कटी हो, किन्तु रक्तघावके भीतरसे फूटकर निकल रहा हो, तो लिण्ट के टुकड़े से घाव को दबाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

किये हुए घाव के दोनों सिरे को गहरे करें और शनैः शनैः एक ओर नाक की बाहर की दीवार की अस्थि को तथा दूसरी ओर अश्रुवाशय को अच्छी तरह खुले करें। फिर अश्रुवाशय को नाक की बाह्य भित्ति से खास छुरिका (चित्र नं० २१२) से या सामान्य छुरिका से पृथक् करें। तत्पश्चात् छेणी और हथौड़ी लगा कर नाक के बाहर की दीवार की हड्डी में एक खिड़की बनावें अर्थात् छेणी-हथौड़ी से हड्डी को तोड़ देवें। यदि वह खिड़की छोटी हो तो अस्थि घात विस्फारक अस्त्र (नं० २१०) लगा कर उसे चौड़ी बनावें। उस खिड़की में से नासिका के भीतर का श्लेष्मावरण आगे आ जायगा। उस श्लेष्मावरण पर एक काट करें। एवं उतना ही बड़ा काट अश्रुवाशय में करें। फिर नाक के श्लेष्मावरण के काट का निम्न हिस्सा और अश्रुवाशय के काट का निम्न हिस्सा, तथा नाक के श्लेष्मावरण के काट का ऊर्ध्व भाग और अश्रुवाशय के काट का ऊर्ध्व भाग खास दस्तेवाली

चित्र नं० २१४

नेत्रकोणगत रक्तवाहिनियों का सम्बन्ध

चित्रमें वाहिनी और ५ सलाका जैसे चिह्न हैं।

१ ला—ऊर्ध्व हस्तास्थिका अपाङ्ग प्रवर्द्धन। २ रा—नासाहिव

३ रा—नेत्रपुटका अन्तर स्नायु। ४ बा—नेत्रकोणगत शिरा।

५ बाँ—नेत्र कोणगत धमनी।

सुई, बायीं और दाहिनी (चित्र नं० २११) से केटगट के सूक्ष्म तन्तु से सी लेवें। जिससे अश्रुवाशय और नासापुट का ऊर्ध्व भाग मिलकर सीधा मार्ग हो जाता है। फिर अश्रुवाशय में से अश्रु और श्लेष्म आदि द्रव्य, जो निकलेगा, वह सीधा नाक में चला जायगा।

इस तरह अश्रुवाशय और नाकके श्लेष्मावरणकी सिलाई हो जाने के पश्चात् जो घाव त्वचामें किया है, उसे रेशमके डोरेसे सी लेवें। फिर घाव पर मर्क्युरी क्रोमका प्रवाही लगा, फोहे रख कर पट्टी बाँध लेवें।

यदि यह शस्त्रक्रिया योग्य हुई हो, कीटाणुओंका स्पर्श नहीं हुआ होगा, तो घाव ८ वें दिन भर जायगा। फिर टाँके निकाल डालें।

परिणाम—बहुत अच्छा। कठिनता यह है कि सब नेत्रवैद्य यह क्रिया नहीं कर सकते। जो करते हैं, उनको इस क्रियाके लिए १ घण्टा देना पड़ता है।

८. अश्रुवाशय को निकाल देने की शस्त्रक्रिया।

(*Excission of the Lachrymal sac*)

चित्र नं० २१४, २१५ देखें। इस शस्त्रक्रियाके लिए कितनेक शस्त्रवैद्य रोगी को क्लोरोफार्म या इथर अन्य औषधि देकर बेहोस करते हैं। रोगीको बेहोस करनेसे पीडा नहीं होती। रोगी स्थिर रहता है। एवं शस्त्रवैद्य को शस्त्रक्रियामें जल्दी नहीं करनी पड़ती।

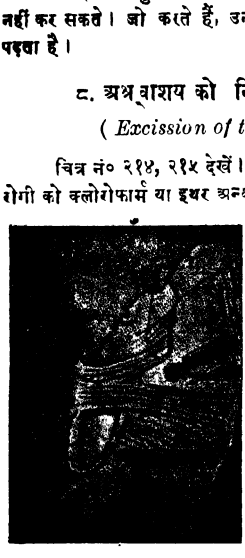

चित्र नं० २१५ अश्रुवाशय

क्लोरोफार्म से बेहोस करने में हानि यह है कि, रुधिरस्राव अधिक होता है। रोगी १-२ घण्टे तक बेचैन रहता है। कितने रोगी क्लोरोफार्म के नामसे ही घबराते हैं। ऐसे रोगियोंको बेहोस नहीं करना चाहिये। निम्न अन्तःक्षेपण का प्रयोग त्वचाके नीचे करनेसे भी शस्त्रक्रिया लगभग वेदनारहित हो सकती है। अन्तःक्षेपण निम्न प्रवाही ताजा बनाना चाहिये।

अश्रु आशय—

बांयी ओर के ४ चिह्नों में क्रमशः अश्रु विसर्जनी पेशी, अश्रु आशय-अस्थि, अश्रु आशय तथा निम्न तिर्यक् पेशी हैं।

ऊपर का चिह्न तन्तुमय मण्डल का है।

दाहिनी ओर के ४ चिह्नों में ऊर्ध्व अक्षिपुट, अश्रु द्वार, सन्लापेशी तथा तन्तुमय मण्डल क्रमशः रहे हैं।

विटायुरेन Beta eucaine १२ ग्रेन
सोडियम क्लोराइड ३ ग्रेन
एडिनेलिन क्लोराइड सोल्युशन १७ बूंद
विशुद्ध वाष्प जल ३॥ औंस

इस प्रवाहीको त्वचाके नीचे प्रवेश करावें। फिर २० मिनटके बाद शस्त्रक्रियाका प्रारम्भ करें।

शस्त्रादि साधनोंकी तैयारी—१. मूलकी कमानी (चित्र नं० ३१७) २. अस्थिके आवरणको खोलने वाला शस्त्र (चित्र नं० २०७); ३. लघु छुरिका (चित्र नं० ७७); ४. नोकरहित विभाजक शस्त्र (चित्र नं० २१८); ५. नोकदार अश्रु आशय चिमच (चित्र नं० २०६), ६. गोलकको स्थिर रखने वाली चिमटी (चित्र नं० ७६); ७. स्पेन्सर वेल्सकी चिमटी (चित्र नं० २०४), ८. तीक्ष्ण घर्षक चमस (चित्र नं० ७८), ९, मुड़ी हुई सुई (चित्र नं० १९२); १०, रेशम का डोरा आदि।

रोग की तैयारी—अश्रु आशय के ऊपर की ओर चारों ओर की त्वचा को अच्छी तरह साफ कर, उस पर टिंक्चर आयोडिन लगावें। शस्त्रवैद्य रोगी के एक ओर खड़े रहें। दाहिनी ओर के अश्रु आशय पर शस्त्रक्रियार्थ दाहिनी ओर तथा बांयी ओर के अश्रु आशय शस्त्रक्रियार्थ बांयी ओर खड़े रहें तथा अश्रु आशय को निर्णय कर लक्ष्यमें रख लेवें।

अश्रु आशय स्थान—पलकको बाहर की ओर खींचने पर नाक और आँखके बीच एक आकर्षित डोरी जैसी नाड़ी प्रतीत होती है, वह भीतरका बन्धन है। उस बन्धनके नीचे अश्रु आशय के मध्य भागका ऊर्ध्व प्रान्त अवस्थित है। उस बन्धनके नीचे अंगुली फिराने पर जो अस्थिधारा जैसी प्रतीत होती है, वह अश्रु आशय खात (Lachrymal fossa) की बाह्य भित्ति है। उस खड्डे में अश्रु आशय अवस्थित है, उस आशयकी लम्बाई करीब आधा इंच है।

चित्र नं० २१८ नोकरहित विभाजक शस्त्र।

शस्त्रक्रिया रीति—त्वचा में एक काट करें। यह काट, दोनों पलकों को बाहर खींचने पर जो बन्धन प्रतीत होता है, उसके कुछ ऊपर किया जाता है। इस काट को वहाँ से नीचे ले जायं। बंधन के ऊपर के भाग से प्रारम्भ कर नेत्र के अन्तःकोण के भीतर में से निकाल कर नीचे ले जाया जाता है। निम्न ओर काट को कुछ बाहर में नेत्रगृह की निम्न धारा के लगभग समीप ले जायं। काट की लम्बाई सब स्थान की मिलकर १-१॥ इंच करीब होती है। काट प्रारम्भ से ही ऐसा गहरा करें कि वह अस्थि पर्यन्त पहुँच जाय। उतनी गहराई में जाने से बीच में ही उक्त बन्धन और अस्थि पर रहा हुआ आवरण, ये दोनों कटते हैं।

सूचना—यह काट नाक की ओर अधिक (चाहिये उससे अधिक) न चला जाय, इस बात का सम्हाल रखें। अन्यथा कितनीक धमनी कट जायँगी और बहुत रक्तस्राव होगा। एवं शस्त्रक्रिया में कठिनता और विलम्ब होंगे।

यदि उक्त काट ठीक अस्थि पर्यन्त किया होगा, तो अश्रुवाशय का ऊर्ध्व भाग प्रतीत होगा। सूक्ष्म निरीक्षण करने पर चारों ओर के भागों की अपेक्षा वह अधिक रक्ताभ तथा कम नरम विदित होगा। इस चिह्न पर से वह सरलता से निर्णित हो जायगा।

कितनेक शस्त्रवैद्य मूलर की कमानी और कई एक्सन फिल्ड की कमानी का उपयोग करते हैं। मूलर की कमानी से काट की दोनों बाजू अलग होकर खुलती हैं। एक्सन फील्ड की कमानी से काट लम्बाई पर पर खुलता है। कितनेक नेत्रवैद्य केवल काट की दोनों ओर स्पेन्सर वेल्स की चिमटी लगाकर घाव को खुला रखते हैं। यदि रक्तस्राव बन्द न हुआ हो तो लिग्रेट से दबाकर बन्द करना चाहिये।

फिर विभाजक शस्त्र (नं० २१८) से अश्रुवाशय को भीतर में अस्थि से मुक्त करें। पश्चात् चिमटे से पकड़ आगे की ओर खींच ऊपर के भाग में से (सम्बन्ध वाले अवयवों से) अलग करें। इस क्रिया के लिये कैंची या छुरिका को उपयोग में ले सकते हैं। फिर पिछली ओर मुक्त करें। बाहर के हिस्से को मुक्त करने पर २ अश्रु नलिकों को काट देना पड़ेगा। उस समय तक अश्रुवाशय ऊपर के सब अवयवों से मुक्त हुआ होगा, केवल निम्न भाग में अश्रुनल काटना शेष रहा होगा। इस हेतु से अश्रुवाशय को चिमटे से अच्छी तरह खींच नल को होसके उतना नीचे से काटें। तत्पश्चात् एक नोकदार छोटी चिम्मच (चित्र नं० ७८) लेकर अश्रु-

वाशय या नल का भाग अस्थि को चिपका हो उसे खुरच डालें। फिर कार्बोलिक एसिड की फुरेरी लगाकर घाव को सी लेवें। ३ टांके लगावें। बीचके टांके में बन्धन को ले लेवें। फिर उस पर गोज और फोहे रख कर पट्टी बांध लेवें।

सब क्रिया यथोचित हुई हों, कीटाणुओं का प्रवेश न हुआ हो, तो ६-७ दिन बाद पट्टी निकाल डालें। उस समय घाव भरा प्रतीत होगा। ९ वें दिन टांके के डोरे निकाल डालें। घाव जब तक भर न जाय, तब तक रोज धोकर साफ रखें। एवं पट्टी लगाते रहें।

९—वेस्ट की नासा मार्ग से अश्रुवाशय को निकालने की क्रिया

(West's Rhino Docryo Cystotomy)

इस शस्त्र क्रिया के लिये नाक की रचना का पूरा ज्ञान होना चाहिये, इतना ही नहीं, जिस कमरे में शस्त्रक्रिया करनी हो वह बिल्कुल अंधकार वाला होना चाहिये। एवं नाक के भीतर के भागमें केन्द्रित प्रकाश गिर सके, वैसी बत्ती की व्यवस्था होनी चाहिये।

शस्त्रआदि साधनों की तैयारी—लघु छुरिका (नं० १८८) दो लम्बी चिमटी, छेणी, हथौड़ी (न० २०८—२०९), नाक को खुला रखने वाली कमानी (नं० २०७) आदि।

शस्त्रक्रिया विधि—नाक के भीतर कोकेन एड्रिनेलिन के फोहे रखकर उस भाग को चेतनाहीन बनावें। फिर जिस भाग में अश्रुवाशय रहा है, उस भाग में से श्लेष्मावरण के लोलक को काट दें किन्तु उसे मुख में चिपका रखें, शेष नाक के भाग में से बाह्य भित्ति की अस्थि से मुक्त करें। ऐसा करनेपर अश्रुवाशय प्रतीत होने लगेगा। उसे खास छुरिका या नोकरहित शस्त्र से मुक्त करके काट डालें। कितनेक नासावैद्य अश्रुवाशय को पूरा नहीं काट देते; किन्तु एक टुकड़ा काटते हैं। ऐसा करने पर अश्रु-वाशय में आने वाला प्रवाही आदि नासामार्ग से बाहर निकल जाते हैं।

उपर्युक्त शस्त्रक्रिया प्रायः नाक के शस्त्रवैद्य ही करते हैं। नेत्रवैद्य नहीं करते। अतः उसका वर्णन करने की आवश्यकता नहीं थी। फिर भी पाठकों को इस क्रिया का कुछ ख्याल आ सके, इस हेतु से संक्षिप्त वर्णन लिखा है।

C. नेत्र श्लेष्मावरण पर शस्त्रक्रिया।

(*Operation on conjunciva*)

इस श्लेष्मावरण पर निम्नानुसार १० प्रकार की शस्त्रचिकित्सा होती है।

१—रोहे को दबा देना—Expression of Trachoma.

२—रोहे को छीलना—Grattage.

३—अक्षिपुट के श्लेष्मावरण को काट देना—Excision of Retrotarsal fold.

४—शुक्लमण्डल के चारों ओर के नेत्र श्लेष्मावरण का छेद—Peritomy

५—नेत्रश्लेश्मावरण के ग्रन्थियों को निकालना—Removal of Conjunctival Tumours.

६—बेल के लिये शस्त्रक्रिया—Operation for Pterygium.

७—गोलक के संलग्न नेत्रश्लेष्मावरण की शस्त्रक्रिया—Operation for Symblepharon.

८—नेत्रश्लेष्मावरण धोने की शस्त्रक्रिया—Conjunctivoplasty.

९—नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे अन्तःक्षेपण—Subconjunctival Injections.

१०—आंकुचित अक्षिपुटों की शस्त्रक्रिया—Formation of New ouldе Sac and Eye socket (कांच की आंख बैठाने के लिये)

१. रोहे को दबा देना

(*Expression of Trachoma*)

चित्र नं० २१६ देखें। इस क्रिया का वर्णन प्रकरण १० वें में दिया है। पृष्ठ २७४ में देखें। ये दाने नेत्र के आवर्तक संदंशक (Knapp's Roller forceps चित्र न० ६६) से दबाये जाते हैं।

२. रोहे को घिसना।

(*Grattage of Trachoma*)

इस शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण १० वे में किया है। पोथ की घर्षक चित्र नं० ६७) से घिस दिये जाते हैं। पृष्ठ २८७ में देखें।

३. अक्षिपुट के श्लेष्मावरणका छेदन।

(*Excision of Retro tarsal fold*)

इस शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण १० वें में किया है। पृष्ठ २९० में देखें।

चित्र नं० २१६

४. शुक्लमण्डल के इर्द गिर्द श्लेष्मावरण छेद।

(*Peritomy*)

इस शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण १० के भीतर पृष्ठ २६० में लिखा गया है।

५. नेत्र श्लेष्मावरण के अर्बुद को निकालना।

(*Removal of Conjunctival Tumours*)

इस शस्त्रक्रिया का संक्षिप्त वर्णन् करण ९ वें में दिया है। अत्र कुछ अधिक स्पष्टीकरण करते हैं।

ग्रन्थि छोटी हो, या मस्से जैसी हो तो आंख में एनिथिन के प्रवाही का १ बूँद डालें। २॥ मिनट बाद कोकेन किंचित् और एड्रिनेलिन के बूंद डालें। पांच मिनट के पश्चात् नेत्र को रसकर्पूर जल से धो दें। फिर कैंची या लघु छुरिका से ग्रन्थि को काट देवें। लिण्ट के टुकड़े से वहाँ दबावें, जिससे रक्तस्राव बन्द हो जायगा।

फिर ग्रन्थि स्थान में विद्युत् के दम्भक यन्त्र या सादे दम्भक यन्त्र से जला देवें। यन्त्र न होने पर क्यास्टिक से या कार्बोलिक एसिड से जला देवें।

कदाच ग्रन्थि दुष्ट जातिकी हो, ऐसा संदेह हो तो ग्रन्थिकी जाति का निर्णय करने के लिये पूरा प्रयत्न करें। परीक्षा के अन्त में दुष्ट है, ऐसा निर्णय हो तो, रेडियम या गहरे क्ष किरण से चिकित्सा करनी चाहिये।

३—अर्म-वेल के लिये शस्त्रक्रिया।

इस शस्त्र क्रिया का वर्णन प्रकरण ९ के अन्त में वेल के उपचार में दिया है।

७—गोलक से संलग्न श्लेष्मावरण की शस्त्रक्रिया।

(*Operation for Symblepharon*)

कभी-कभी घाव, क्षत, जलना या रोहे आदि रोगों के हेतु से पलक

के भीतर का श्लेष्मावरण नेत्रगोलक के श्लेष्मावरण को चिपक जाता है। तब शस्त्रक्रिया करके उनको मुक्त करना पड़ता है।

शस्त्र आदि साधनों की तैयारी—गोलक को स्थिर रखने की दो चिमटी (चित्र नं० ७६), स्पेन्सर वेल्स की २ चिमटी (चित्र नं० २०४), अतीक्ष्ण नोक वाली कैंची (चित्र नं० ८८); सादा चिमटा, अर्ध मुडी हुई सुई, सुई पकड़ने की संडासी, रेशम के रंगीन डोरे, लघु छुरिका या तीक्ष्ण उस्तरा, कलई या शीशे का पतला पतरा आदि।

शस्त्र क्रिया विधि—नेत्रमें कोकेन, एड्रिनेलिन का प्रवाही डाल कर नेत्रश्लेष्मावरण को चेतनाहीन बनावें। रमकपूर के जलमें नेत्रको धो देवें। फिर संलग्न प्रान्तको कैंची से काटकर मुक्त करें। जिस जिस स्थान पर हो सके, उस उस स्थान पर चारों ओरके श्लेष्मावरण को खींच घाव पर लाकर टांके लगा लेवें। जहाँ श्लेष्मावरण का अधिक भाग कम होता हो, वहाँ पर मुखमें से श्लेष्मावरण निकाल कर चिपका देवें। कभी कभी बाहुके भीतरकी रोमरहित कोमल त्वचाको उस्तरेसे निकाल कर चिपकायी जाती है। फिर उसे सी लेते हैं। कुछ दिनों तक नेत्र को बन्द रख कर पट्टी बांध देने से त्वचा या श्लेष्मावरण उग जाता है।

८. नेत्रश्लेष्मावरण को बोनेकी शस्त्रक्रिया।

(*Conjunctivoplasty*)

उपयोग—शुक्लमण्डल या नेत्रबाह्यपटल में घाव हुआ हो और उसे ढकनेकी आवश्यकता हो, शुक्लमण्डलका क्षत भरने पर आयी हुई कोमल त्वचाको सबल बनानी हो, तथा कनीनिका बाहर निकल आने पर उसे कीटाणु संसर्ग से बचानी हो, तब नेत्रश्लेष्मावरण को बोया जाता है।

आवश्यक शस्त्र—नेत्रको खुला रखने की कमानी (चित्र नं० ७५), गोलक को स्थिर रखने की चिमटी (चित्र नं० ७६), कैंची (नं० ८८) कनीनिकाको पकड़ने की चिमटी (चित्र नं० १०६), अर्धमुड़ी हुई सुई और रंगीन रेशम का डोरा आदि।

रोगीकी तयारी—नेत्रको अच्छी तरह धोकर कोकेन एड्रिनेलिन के बूँद डाल कर श्लेष्मावरण को चेतनाहीन बनावें। यदि बाह्यपटल में घाव हुआ हो और उसमें से मध्यपटल या कनीनिका अथवा तन्तुसमूह का कुछ भाग निकल आया हो, तो सेलाइन (नमक जल) से अच्छी तरह धोकर उसे बैठा देनेका प्रयत्न करें। यदि भीतर न बैठे तो उसे काट डालें। घाव

बिल्कुल स्वच्छ करें। उसके समीप के निम्न भाग पर रहे हुए श्लेष्मावरण को थोड़ी दूरी तक खोल दें। फिर उसे खींच घाव पर लावें और घावको दूसरी ओरके श्लेष्मावरण के साथ सी लेवें।

यदि घाव शुक्लमण्डल में हो, तो श्लेष्मावरण दो रीति से बोया जाता है। १. घावमें फंसे हुए कनीनिका प्रान्तको चिमटीसे खींचकर काट डालें। फिर जो भाग घावके किनारे को चिपका हो, उसे सलाका या चिपटे चिम्मच (Spatula) से पृथक् करें। पश्चात् जखम से कुछ बड़े नेत्रश्लेष्मावरणको घाव पर दबा कर पट्टी बांध देवें। ३ दिन तक पट्टी रखें। जिससे बहुधा नेत्र श्लेष्मावरण चिपका हुआ प्रतीत होगा।

२. दूसरी रीति यह है कि शुक्लमण्डल के जिस भागमें घाव हुआ हो, उसके समीप के नेत्रश्लेष्मावरण में से एक पट्टी जैसा भाग काट लेवें। पट्टी के दोनों सिरे चिपके हुए रखें। उस पट्टी को खींच कर घाव पर लावें और सी लेवें। ऊपर पट्टी बांध देवें। पट्टी रोज खोलें और नेत्रको साफ करते रहें। ४-५ दिनमें नेत्रश्लेष्मावरण चिपक जाता है।

९. नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे अन्तःक्षेपण।

(*Subconjunctival injections*)

इस शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण ५वें में किया है। पृष्ठ १३४ में देखें।

१०. आकुंचित अक्षिपुटों की शस्त्रक्रिया।

(*Formation of New cul de sac and Eye socket.*)

जब नेत्रगोलक किसी भी कारण से निकाल दिया हो, गोलकके किसी रोग से उसका क्षय हो गया हो अथवा गोलक फूट कर आँख में गड्ढा हो गया हो, तब कुरूपता दूर करने के लिए कांचकी या आधुनिक मसाले की (प्लास्टिक) आँख बैठाई जाती है। कितनेक रोगी ऐसे देखने में आते हैं कि छोटी आयुमें उनकी आँखमें गड्ढा हो गया हो, उस समय कांचकी आँख लगाने के सम्बन्धमें रोगी अनभिज्ञ हो या नेत्रगोलक को निकालने वाला शस्त्रवैद्य अनुभव रहित हो या कार्यमें भारी हाथ वाला हो तो नेत्रगृह का मुख उतना आकुंचित या उथला हो जाता है कि किसी भी उपायसे कृत्रिम नेत्र नहीं ठहर सकता। ऐसी अवस्था में कुरूपता को दूर करने के लिए कृत्रिम नेत्रकी योजना करनी हो, तो नेत्रगृह पर शस्त्रचिकित्सा करनी पड़ती है। इसके लिए भूतकाल में अनेक शस्त्रक्रिया थीं, किन्तु वर्त्तमान में निम्न दो ही शस्त्रक्रिया की जाती हैं, जो विशेष सफल हैं।

प्रथम विधि— यदि पुटों का संकोच अधिक न हो, तो नेत्र में एनिथिन की बूंद डालें। फिर कोकेन एडिनेलिन के बूंद डालकर पुट और श्लेष्मावरण को चेतनाहीन बनावें। यदि रोगी अधिक डरपोक हो, तो नोवोकेन एडिनेलिन के प्रवाही का अन्तःक्षेपण पुटों में करें। शस्त्रक्रिया वाला भाग चेतनाहीन होने पर रसकर्पूर जल से धो देवें। फिर दोनों पलकों को अच्छी तरह खींच खुले रखने का सहायक वैद्य को कहें। पश्चात् लघु छुरिका, कैंची, और चिमटी के उपयोग से पुट (विशेषतः निम्न पुट) को गहरा बनावें। नेत्रश्लेष्मावरण और उसके निम्न भाग को अच्छी तरह काट कर निकाल डालें। रक्तस्राव को बन्द करें। फिर रोगी के सांबन के बाहर के भाग की त्वचा में से उस्तरे से पतली पर्त निकालें। पश्चात् दाँत के डाक्टर जो मोम (Dental wax, Moulding wax) उपयोग में लेते हैं, उसे गरम जल में डाल, नरम कर नेत्र के पुट का आकार देवें। उस मोम के पुट आकार के टुकड़े को त्वचा की पर्त के ऊपर रख उतनी पर्त को निकाल लेवें। उस पर्त के त्वचा वाले भाग को बाहर और लाल जैसे भाग को अक्षिपुट के भीतर आ जाय इस तरह पुट में बैठावें। फिर पतली सुई और रेशम के डोरेसे आवश्यक टांके लगा लेवें। नेत्र को साफ कर ऊपर फोहे रखकर पट्टी बांध देवें। पट्टी ८ वें दिन खोलें। अति सम्हाल पूर्वक साफ करें। आंख को न धोवें। यदि मोम निकल सके तो निकालें। न निकले तो ४ दिन और पट्टी बाँधें। फिर मोम को निकाल डालें। और करीबन १५ दिन में कृत्रिम नेत्र बैठा देवें।

द्वितीय विधि—यदि पुटों को संकोच अत्यधिक हो गया हो, नेत्रगृह द्वार अति छोटा और उथला होगया हो, तो पहली शस्त्रक्रिया से अधिक शस्त्रक्रिया करनी पड़ती है। यद्यपि यह शस्त्रक्रिया अनेक प्रकार से होती है, तथापि विरल (Wheelar) की शस्त्रक्रिया का परिणाम अच्छा आने का अनुभव मिला है। अतः उसी का वर्णन करता हूँ।

रोगी की तैयारी—नेत्र के चारों ओर की त्वचा, पलक आदि को स्पिरिट से अच्छी तरह साफ करके टिञ्चर आयोडिन लगावें। फिर नोवोकेन एडिनेलिन के प्रवाही का अन्तःक्षेपण ऊपर और नीचे के पुट तथा इर्दगिर्द की त्वचा में करके उन भागों को चेतनाहीन बनावें। सहनशीलता कम हो ऐसे रोगियों पर क्लोरोफार्म या अन्य शारीरिक चेतनाहर औषध का प्रयोग किये बिना यह शस्त्रचिकित्सा नहीं हो सकती।

विलर की शस्त्र क्रिया—सब भाग चेतनाहीन होने पर एक दृढ़ कैंची

(चित्र नं० ९०) में नेत्र के बाह्यकोण को अच्छी तरह काट देवें। यह काट बिल्कुल नेत्रगृह के बाहर के किनारे तक पहुँचना चाहिये। इतना अधिक काट तो करना ही चाहिये, यदि ऊपर का और नीचे का, दोनों पुट अतिशय आकुंचित हो। केवल निम्न अक्षिपुट ही संकुचित हो तो नेत्रकोण को थोड़ा काटने पर भी चल जायगा। फिर लघु छुरिका (चित्र नं० ७७) या कैंची से पलक को काटे। इस काट से दोनों पलक या एक बिल्कुल नेत्रगृह के किनारे तक मुक्त हो जायगा। इस मुक्त करने की क्रिया बाह्य कोण से बिल्कुल भीतर के कोण तक करनी चाहिये। पलकों को मुक्तकर उनको अच्छी तरह बाहर उलटें।

सूचना—यह शस्त्रक्रिया ऊपर के पुट में कम करें। अन्यथा नेत्रोन्मीलनी पेशी कटेगी।

तत्पश्चात् पलक के भीतर के भाग, कोमतास्थि, मांस पेशी और त्वचा को रहने दें। शेष सब भागों को चिमटे और छुरिका से काट दें। पलकों को पतले बना लें। जो जो धमनियाँ कट गई हों, जिनमें से रक्त की धारा उड़ती हो, उन सब को स्पेन्सर वेल्स की चिमटियों (नं० २०४) से पकड़ कर रक्तस्राव बन्द करावें। पहली विधि में कहे हुए मोम को गरम जल में रख नरम बनाकर उसमें से आंख के भीतर की आकृति बना लेवें। मोम के साँचे को थोड़ा समय रहने देने से शीतल होने पर कठिन हो जायगा। आवश्यकता पर बरफ के जल में रखने से सत्वर कठिनता आ जाती है।

रोगी के सांथल की बाहर की ओर से त्वचा का पतला टुकड़ा और ३ इंच लम्बा और २ इंच चौड़ा उस्तरे से काट लेवें। उस त्वचा को मोमाकृति पर उस तरह रखें कि लाल भाग बाहर और त्वचा वाला भाग मोम को लगा हुआ रहे। फिर अति सम्हालपूर्वक हल्के हाथ से मोमाकृति को त्वचा सह नेत्र के गृह पर बैठादेवें। ऊपर गोज के टुकड़े की ४-६ तह रखें, पुनः उसी तरह गोज की १-२ तह करें। उन तहों को चिपकने वाले मलहम की पट्टी (Adhesiveplaster) से चिपका देवें। ऊपर एक पट्टी बांध देवें। सप्ताह के बाद पट्टी खोलें। आंख को सम्हालपूर्वक साफ करें। आंख को न धोवें। पुनः गोज के टुकड़े रखकर पट्टी बांध देवें। इस तरह २०-२२ दिन तक करते रहें। फिर मोम को हटा देवें। यदि मोम दृढ़ चिपका हो तो रोगी को कुछ बेहोश किये बिना उसे खोलने की क्रिया रोगी से सहन नहीं हो सकेगी। उसे दूर करने के पश्चात् नेत्र को धोकर

स्वच्छ करें। फिर नेत्रगृह में विशुद्ध वेसलिन लगावें, ८ दिन बाद कृत्रिम नेत्र लगा लेवें।

D. शुक्ल मण्डल पर शस्त्रक्रिया।

(Operation on Cornea)

शुक्लमण्डल पर १० प्रकार की शस्त्रक्रिया निम्नानुसार की जाती है

१—शुक्लमण्डल पर से बाह्य द्रव्य को हटाना—Removal of Forein body from cornea.

२—शुक्लमण्डल क्षत की दहन विधि—Cauterization of Corneal ulcers.

३—शुक्लमण्डल को सीने की रीति—Suturing of Cornea.

४—अन्तर्य रस के पूर्व खण्ड में छिद्र—Paracentesis of Anterior Chamber.

५—सिमिश्क की शस्त्रक्रिया—Saemisch's saction of Cornea.

६—शुक्लमण्डल के निगर्मन पर शस्त्रक्रिया—Operation for Staphyloma.

७—शुण्डाकार शुक्लमण्डल की शस्त्रक्रिया—Operation for Conical Cornea.

८—शुक्ल की शस्त्रचिकित्सा—Operation for Corneal Opacities

९—शुक्लमण्डल को रंजित करना—Tattoing of Cornea.

१०—शुक्लमण्डल को बोना—Keratoplasty.

१—शुक्लमण्डल पर से बाह्य द्रव्य को निकालना।

(Removal of Foreign body from Cornea.)

इस शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण ११ वें में शुक्लमण्डल की आगन्तुक व्यथा के भीतर किया गया है।

२—शुक्लमण्डल के क्षत की दहन विधि।

(Cauterization of Corneal ulcers.)

इस क्रिया का वर्णन प्रकरण ११ वें में शुक्लमण्डल के क्षतमय प्रदाह के भीतर किया है।

३—शुक्लमण्डल को सीने की रीति।

(Suturing of Cornea.)

शुक्लमण्डल में जो काट किये जाते हैं या चीरे पड़ते हैं, उनको

बहुधा सीनेकी आवश्यकता नहीं रहती। घाव के दोनों सिरे परस्पर लगे हों, तो वह घाव स्वयमेव मिल जाता है, कितनीक बार मोतियाबिन्द की शस्त्र-क्रिया में या अन्य रीतिसे हुए घाव में शुक्लमण्डल को सीना पड़ता है। इसके लिए खास पतली सुई आती है। उस सुईसे विशुद्ध अति पतले रेशम के डोरे से शुक्लमण्डल के दोनों सिरे को सी लेवें।

४. जलमय रस के पूर्वखण्डमें छेद।

(Paracentesis of Anterior Chamber)

इस शस्त्रक्रियाका वर्णन प्रकरण ११ वें में शुक्लमण्डलकी क्षतचिकित्सा के भीतर किया है।

५. सिमिक्स की शस्त्रक्रिया।

(Saemisch's section of Cornia)

इस शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण ११ वे में शुक्लमण्डल की क्षत चिकित्सा के साथ किया है।

६. शुक्लमण्डल के निःसरण पर शस्त्रक्रिया।

(Operations of Staphyloma of Cornea.)

यदि यह निःसरण समग्र शुक्लमण्डल में हो, तो नेत्रको निकाल, उस स्थान पर कृत्रिम नेत्र बैठा देना, वही उत्तम मार्ग है। यदि निःसरण मर्यादित भागमें ही हो और शेष भाग स्वच्छ पारदर्शक हो, तो उस भागमें और कनीनिका में छेदन कर लेने से कुछ दृष्टि मिल जाती है। यदि दृष्टिकी प्राप्तिकी संभावना बिल्कुल न हो, और शुक्लमण्डल का प्रलम्बन अत्यधिक हो गया हो तो, अथवा नेत्रमें पीड़ा होती हो, तो उस प्रलम्बन को काट देना चाहिये।

कतिपय चिकित्सक वीक की शस्त्रचिकित्सा की सराहना करते हैं। हमें अनुभव है कि, स्वच्छताका पूरा लक्ष्य रखा जाय, तो प्रलम्बन को सरल चिकित्सा द्वारा काट देने में परिणाम वीक की पद्धति के अनुरूप ही आता है; अर्थात् घाव भर जाता है। विशेष लाभ यह है कि, शस्त्रचिकित्सा में समय कम लगता है और बहुधा रोगी को बेहोस नहीं करना पड़ता।

सरल शस्त्रचिकित्सा विधि—नेत्रको विशुद्ध बनावें, फिर चेतनाहीन बना कर नेत्रको खुला रखने वाली कमानी (नं० ७५) लगा लेवें। फिर गोलक को स्थिर रख ग्राफे की लघु छुरिका (नं० ७७) को प्रलम्बन के एक सिरे पर प्रवेश करावें और सम्हाल पूर्वक दूसरे सिरे से बाहर निकालें। इस

हस्तसे प्रलम्बन के ऊपर के भाग को उसी शस्त्रसे काट देवें। निम्न भागको कैंची से काट देवें। यदि दृष्टिमणि ऊपर आ जाय, तो उसे निकाल देवें। फिर नमकजल से नेत्र को धोकर पट्ट बांध देवें।

सूचना—कभी-कभी इस शस्त्रक्रिया के पश्चात् नेत्रमें से अति रक्तस्राव होता है। ऐसा होने पर गोलक को रिक्त करना पड़ता है।

७. शंक्वाकार शुक्लमण्डल की शस्त्रक्रिया

(Operations for Conical Cornea.)

यह शस्त्र क्रिया निम्नानुसार त्रिविध प्रकार से होता है।

अ—शुक्लमण्डल के मध्य भागमें वेधयन्त्र द्वारा छिद्र-Trephining the cornea.

आ—शंकु के शिखर भाग का दहन—Contaryzation of the apex of the cone.

इ—शुक्लमण्डल के मध्य प्रान्त का छेदन—Cutting of Central part of Cone.

इन तीनों प्रकार की शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण ११ वें में शंक्वाकार शुक्लमण्डल की चिकित्सा में किया गया है।

८. शुक्लमण्डल के शुक्लकी शस्त्रक्रिया।

(Operations for Corneal opacities)

इस रोगकी शस्त्रक्रिया में कभी-कभी कृत्रिम कनीनिका बनाने के लिये शस्त्रचिकित्सा (Optical Iridectomy) करनी पड़ती है। इसका वर्णन तारामण्डल की शस्त्रक्रिया के अन्तर्गत कनीनिका के छेदन में किया

९. शुक्लमण्डल का रंजन।

(Tattoing of Cornea.)

इस क्रिया का वर्णन प्रकरण ११ शुक्लमण्डल के शुक्र (फूले) की चिकित्सा के साथ किया है।

१०. शुक्लमण्डल का रोपण।

Transplantation of Cornea Keratoplasty

शुक्लमण्डल को बोने की शस्त्र क्रिया का प्रचार कुछ वर्षों से हो रहा है। जिन रोगियों का शुक्लमण्डल बिल्कुल अपारदर्शक हो गया हो और नेत्रके अन्य भाग स्वस्थ हों, ऐसे रोगियों के लिये यह शस्त्रचिकित्सा की

जाती है। जब यह शस्त्रक्रिया पहले की, तब जीवित पशु और मनुष्यों के शुक्लमण्डलों को निकाल कर रोगीके नेत्रमें बोये गये। वर्तमान में कुछ वर्षों से यह सिद्ध हुआ है कि, मृत मनुष्य और मृत पशुओं के शुक्लमण्डल तुरन्त निकाल कर निश्चित प्रवाही के भीतर रखा जाय, तो वह शुक्लमण्डल रोगी के नेत्रमें किसी भी समय आरोपित हो सकता है। इस तरह बोये हुए शुक्लमण्डल चिपक जाते हैं, पारदर्शक भी रह जाते हैं।

आवश्यक शस्त्र—अति तीव्र लघु छुरिका (नं० ७७), तेज कैंची, दो चिमटे, नेत्रको खुला रखने वाली कमान (नं० ७५) आदि।

शस्त्रक्रिया—जिस नेत्र पर शस्त्रक्रिया करनी हो, उसे चेतनाहीन करके रसकर्पूर जल से धो देवें। फिर नमक जल से धोवें। पश्चात् लघु छुरिका और कैंची से अपारदर्शक शुक्लमण्डल को काटकर निकाल देवें। उस समय आरोपण करने के लिये नूतन शुक्लमण्डल तथा उसके चारों ओर लगाने के लिये करीब ४ मि० मी० नेत्र श्लेष्मावरण को काटकर तैयार कर लेवें। रोगी का शुक्लमण्डल निकालने पर तत्काल नया शुक्लमण्डल स्थापित करदें। फिर नेत्र श्लेष्मावरण को उस नूतन आरोपित शुक्लमण्डल के चारों ओर लगा देवें और रोगी के नेत्र श्लेष्मावरण के साथ सी लेवें। पश्चात् फोहे रखकर पट्टी बांध देवें।

४ दिन तक पट्टी रहने देवें। ५ वें दिन पट्टी खोल नेत्र को कुछ साफ कर आरोपित शुक्लमण्डल की स्थिति को देख लेवें। यदि शुक्लमण्डल न सड़ता हो, अच्छी स्थिति में हो, तो पुनः फोहे रख कर पट्टी बांध देवें। लगभग १० १२ दिन में शुक्लमण्डल अच्छी तरह संलग्न हो जाता है। चिपक जाने के पश्चात् कुछ दिनों तक वह शुक्लमण्डल सर्वांश में पारदर्शक नहीं होता, किन्तु जैसे जैसे दिवस व्यतीत होते हैं, वैसे वैसे उसकी पारदर्शकता बढ़ती जाती है। कितनेक भाग्यशाली रोगियों में वह बिल्कुल पारदर्शक बन जाता है। ऐसा उत्तम परिणाम बहुत थोड़े ही रोगियों में आता है।

कितनेक रोगियों में बोया हुआ शुक्लमण्डल नहीं चिपकता; किसी किसी में सड़कर नष्ट हो जाता है। कइयों में चिपकने के पश्चात् अपारदर्शक और सिलवट वाला बन जाता है। जिससे जिस उद्देश्य को लेकर शस्त्रक्रिया की थी, वह सफल नहीं होता।

E. तारामण्डल की शस्त्रचिकित्सा

तारामण्डल पर मुख्य ३ प्रकार की निम्न शस्त्रक्रिया की जाती है।

१—तारामण्डल का छेदन—Iridectomy.
२—तारामण्डल में काट—Iridotomy.
३—तारामण्डल के अर्बुदों का दूरीकरण—Removal of Tumours in Iris.

१. तारामण्डल का छेदन।

(*Iridectomy*)

चित्र नं० २२०-२२१ देखें। तारामण्डल का छेदन निम्न ६ प्रकार के लाभ के लिये किया जाता है।

अधिमन्थ रहित नेत्रों में तारामण्डल पर शस्त्रक्रिया।

अ-त्रिकोणाकार शस्त्र का कनीनिका में प्रवेश कराकर भेद न करना।

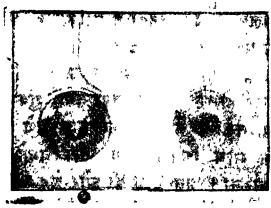

चित्र नं० २२०

ब-कनीनिका के किनारे का भेदन।

चिकित्सा हेतुः—

१—कनीनिका फूले से दब जाने पर कृत्रिम कनीनिका बनाने के लिये।
२—कनीनिका बन्द होने पर कृत्रिम कनीनिका बनाने के लिये।
३—दृष्टिमणि की अपारदर्शकता को दूर करने के लिये।
४—अधिमन्थ की चिकित्सा के लिये।
५—दृष्टिमणि के आवरण के साथ तारामण्डल चिपकता है, तब अधिमन्थ की उत्पत्ति को रोकने के लिये।
६—तारामण्डल में प्रवेशित बाह्य द्रव्य और उत्पन्न ग्रन्थियों को निकालने के लिये।

सूचना—१. रोगी के नेत्र में एट्रोपिन का बूँद डालें, उससे दृष्टि सुधरती हो तो शस्त्रक्रिया से सुधरने की आशा है। किन्तु तारामण्डल दृष्टिमणि के आवरण से संलग्न हो या गत रोग के हेतु से तारामण्डल की विकृति हुई हो, तो एट्रोपिन से लाभ नहीं पहुँचता। फिर भी कृत्रिम कनीनिका बनाने पर लाभ हो जाता है।

२—कृत्रिम कनीनिका बनाने के लिये शुक्लमण्डल के मध्य भाग को निर्णित करलें, किन्तु अनेक बार शस्त्रवैद्य को पसन्द करने की आवश्यकता नहीं रहती।

३—कृत्रिम कनीनिका हो सके उतनी छोटी होनी चाहिये। अन्यथा प्रकाश का प्रवेश अधिक होगा।

४—मोतियाबिन्द के लिये जो छेदन किया जाता है, वह प्रायः शुक्लमण्डल के ऊपर के भाग में किया जाता है। कारण कनीनिका में किया हुआ छेद ऊपर की पलक से ढका रहता है। जिससे उस मार्ग से अधिक प्रकाश आँख में प्रवेश नहीं कर सकता।

५—बाँधमन्थ के लिये प्रायः तारामण्डल के ऊपर के हिस्से में छेदन किया जाता है। यह छेद हो सके उतना बड़ा तथा शुक्लमण्डल और बाह्य पटल के संगम तक पहुँचे वैसा करना चाहिये। तारामण्डल यदि नीचे के भाग के साथ चिपक जाय, तो चिमटे से सरलता पूर्वक पृथक् नहीं हो सकता। अतः नीचे की ओर छेद नहीं किया जाता।

आवश्यक शस्त्र—

१—नेत्र खुला रखने की कमानी नं० १०७।

२—गोलक को स्थिर रखने का चिमटा नं० ७६।

३—ग्राफे की संकीर्ण छुरिका (न० ७७) या जेगर का त्रिकोणाकार शस्त्र नं० २२७।

चित्र नं० २२२

४—टाइरेल का अंकुश (Tyrell's hook) नं० २२२।

५—तारामण्डल को पकड़ने का चिमटा नं० १०९।

६—डी वीकर की कैंची (१००) या नं० ७० की मुड़ी हुई नोकवाली कैंची या मोनोर की तारामण्डल को काटने की कैंची।

७—तारामण्डल स्थापक यन्त्र नं० ११८।

८—जलमय रसका पूर्व खण्ड धोने के लिये पतली नली, रबर की नली फ्लास्क आदि।

रोगी की तैयारी—शस्त्रक्रिया के एक दिन पहले नेत्र को बोरिक बाबन या रसकर्पूर जल १:५००० से अच्छी तरह धोवें। पुनः शस्त्रक्रिया आरम्भ होने के पहले उसी प्रवाही से धोवें। आंख गंदी हो तो रसकर्पूर का जल १:३००० लेवें। फिर नेत्र में कोकेन एड्रिनेलिन आदि चेतनाहर औषधि के बूंद डालें। चेतना दूर होने पर आंख खुली रखने की कमानी लगा लें। पश्चात् लवण जल (उबाले हुये) से अच्छी तरह से धो देवें।

शस्त्रक्रियाके समय रोगी को पीड़ा न हो, इस हेतु से सामान्यता कोकेन एड्रिनेलिन के प्रवाही का उपयोग होता है। उससे इच्छित असर पहुँचता है। किन्तु बालकों को क्लोरोफार्म दिये बिना नहीं चलता। कारण, वह शस्त्र आदि देखकर ही घबराता है। एवं कितनीक स्त्रियां और निर्बल मन वाले पुरुषों को भी क्लोरोफार्म सुंघाना पड़ता है।

यदि आशुकारी अधिमन्थ रोग में तारामण्डल का छेदन करना हो, तो कोकेन के प्रयोग से पीड़ा का भान बिल्कुल न हो ऐसा नहीं होता। कारण, नेत्र में लाली होने पर कोकेन पूरा प्रभाव नहीं दर्शा सकता। सामान्यतः कोकेन से पूर्णांश में वेदना का अभाव नहीं होता। कोकेन के पहले एड्रिनेलिन का प्रयोग करने पर यह अन्तराय कितनेक अंश में टल जाता है। किन्तु कतिपय नेत्रवैद्यों की मान्यता है कि, एड्रिनेलिन से बाहर की धमनियाँ आकुंचित हो जाने से गहराई में अवस्थित धमनियों में रक्त की वृद्धि हो जाती है। जिससे कदाच रक्तस्राव अधिक होने की सम्भावना है।

हम हो सके तब तक अधिमन्थ के रोगियों को क्लोरोफार्म नहीं सुंघाते। कारण, पूर्ण सम्हाल रखने पर भी किस रोगी को वान्ति होगी, यह कल्पना पहले से नहीं हो सकती। कदाच वान्ति हो जाय, तो नेत्र को अति हानि पहुँचती है। आवश्यकता हो और रोगी अति निर्बल मन का हो तो शस्त्रक्रिया से आध घण्टे पहले ¼ ग्रेन मोर्फिया और ¼ ग्रेन स्कोपोलेमिन का अन्तःक्षेपण करते हैं। पहले लिखे अनुसार कोकेन २५ ग्रेन को १ औंस जल में मिलाकर उपयोग में लेते हैं। एवं कितनेक नेत्रवैद्य तो उसका थोड़ा सा चूर्ण ही नेत्र में डालते हैं। सामान्यतः कोकेन ५ प्रतिशत का प्रवाही २॥–३॥ मिनट पर ३—४ बार नेत्र में डाला जाता है।

सूचना—कोकेन डालने के पहले नेत्र को रसकर्पूर जल से अच्छी तरह धो लेना चाहिये। नेत्र को खुला रखने की कमानी लगा लें। एक परिचारक लवण जल के पात्र को पकड़ शस्त्रवैद्य के पीछे खड़ा रहता है।

रहे वैद्य जिस ओर की आँख की शस्त्रचिकित्सा करनी हो, उस ओर खड़े रहते हैं। शस्त्रवैद्य परिचारक के हाथों में से रुई की नली लेकर जलयुक्त जल की पतली मन्दधारा नेत्रगोलक पर छोड़ता है। सहायक वैद्य कमानी को ऊँची नीची कर नेत्र के कोने आदि भागों को अच्छी तरह साफ करते हैं। नेत्र धो लेने के पश्चात् लिण्ट को भिगो, निचोड़कर आँख के बाह्य सिरे पर इस तरह लगावें कि नेत्र में रहा हुआ सब प्रवाही का शोषण हो जाय। फिर शस्त्रक्रिया का सच्चा प्रारम्भ होता है।

शस्त्रक्रिया—गोलक को स्थिर बनाने वाले चिमटे से शुक्लमण्डल के नीचे नेत्रश्लेष्मावरण को अच्छी तरह पकड़कर गोलक को स्थिर करें। चिमटे को शस्त्रवैद्य बांये हाथ से पकड़ते हैं। दाहिने हाथ में जेगर का शस्त्र लेकर उसे शुक्लमण्डल की परिधि में प्रवेश करावें। दृढ़ हाथ रख धीरे धीरे जलमय रस के पूर्व खण्ड की ओर शस्त्र को आगे बढ़ावें जब शस्त्र की नोक स्वच्छ और तेजस्वी प्रतीत हो, तब शस्त्र जलमय रसमें प्रवेशित हुआ है, ऐसा समझें। फिर शस्त्र के दस्ते को कुछ नीचा करें। जिससे शस्त्र की नोक शुक्लमण्डल की पिछली सतह की ओर आगे बढ़ेगी।

सूचना—१- यदि इस स्थान पर सम्हाल न रखा जाय, तो शस्त्र की नोक तारामण्डल में और फिर दृष्टिमणि में प्रवेश कर जायगी। परिणाम में व्यवाश्रन्य मोतियाबिन्द की संप्राप्ति हो जायगी।

शस्त्र को शुक्लमण्डल की पिछली सतह पर धीरे धीरे आगे जाने देवें। जब आवश्यक काट हो गया, ऐसी प्रतीति हो या शस्त्र का सबसे अधिक चौड़ा भाग शुक्लमण्डल के किनारे लगभग पहुँच जाय, तब शस्त्र को शनैः शनैः बाहर निकाल लेवें। यदि काट बड़ा बनाना हो तो शस्त्र को बाहर निकालने के समय दोनों ओर थोड़ा थोड़ा दबावें, जिससे काट बड़ा हो जायगा।

काट हो जाने पर तत्काल सहायक वैद्य को सचेत हो जाना चाहिये। रोगी नेत्र को दबावे। ऐसी प्रतीति हो तो कमानी को गोलक से कुछ ऊँची उठा लेवें। तर्जनी और मध्यमा अंगुली को कमानी के दो पर्वों के बीच लेकर अंगुष्ठ को कमानी के मूल के पास रखें। इस क्रिया में बांये हाथ का उपयोग करना पड़ता है। एक हाथ से कमानी पकड़े और दूसरे हाथ से चिमटे द्वारा गोलक को स्थिर रखें। कारण काट हो जाने पर तुरन्त शस्त्रवैद्य स्थिर करने का चिमटा सहायक वैद्य को देता है।

फिर शस्त्रवैद्य एक हाथ में तारामण्डल पकड़ने का चिमटा और

दूसरे हाथ में कैंची पकड़ते हैं। बायें हाथ में चिमटा और दाहिने हाथ में कैंची पकड़ने पर अधिक सुविधा रहती है। किन्तु सब शस्त्रवैद्य को यह अनुकूल नहीं रहता। जिससे वे दाहिने हाथ में चिमटा और बांये हाथ में कैंची रखते हैं। तारामण्डल को पकड़ने के चिमटे को बन्द कर धीरे धीरे शुक्लमण्डल में किये हुए काट के भीतर प्रवेश करावें। जलमय रस के पूर्व खण्ड में लगभग कनीनिका के समीप चिमटा पहुँचने पर उसे खोलें और तारामण्डल पर कुछ दबा कर बन्द करें। जिससे तारामण्डल प्रायः उसके भीतर पकड़ा जाता है। यदि तारामण्डल का बड़ा टुकड़ा काटना हो तो चिमटे को अधिक खोलें; छोटा टुकड़ा काटना हो कम खोलें। तारामण्डल को पकड़ने के पश्चात् चिमटे को बाहर निकालें।

सूचना ?—इस क्रियामें तारामण्डल पर किञ्चित् भी अधिक दबाव न आ जाय, यह सम्हालना चाहिये; अन्यथा तारामण्डल मूल में से टूट जाता है। फिर रक्तस्राव होता है।

२—तारामण्डल के आवश्यक भाग को काट से बाहर निकाल कर कैंची से काट देवें। कैंची के पत्तों को आड़ा लगाने पर बड़ा छेद होता है; तथा खड़ा लगाने पर छोटा छेद होता है। इस बात को लक्ष्य में रखना चाहिये।

३—तारामण्डल कटने पर थोड़ा बहुत रुधिर जलमय रस में प्रतीत हो, तो चांदी की नली, जो कांच के पात्र के साथ जुड़ी हुई रबर की नली के साथ लगी हो, उसे काट के एक सिरे पर प्रवेश करा लवण जल से उस पूर्व खण्ड को धो देवें।

पुनः शस्त्रवैद्य गोलक को स्थिर रखने के चिमटे को पकड़ते हैं। गोलक को स्थिर कर तारामण्डल स्थापक यन्त्र (नं० ११८) को काट में प्रवेश करा काट के दोनों सिरे पर तारामण्डल को अच्छी तरह भीतर बैठा देते हैं। उस समय घाव अच्छी तरह मिल गया हो, ऐसा दीखेगा। पश्चात् गोलक को स्थिर रखने के चिमटे को उठा लेवें। शनैः शनैः कमानी को निकाल लेवें। कमानी निकालने के समय निम्न पलक को कुछ खींच कर रखें और शनैः शनैः नेत्र को बन्द होने देवें।

इस तरह शस्त्रचिकित्सा समाप्त होने पर मर्क्युरोक्रोम के २% के प्रवाही का एक बूंद डालें। फिर नेत्र पर गोज और फोहे रखकर पट्टी बांध देवें। २४ से ४८ घण्टे तक दूसरी आंख को भी बन्द रखने से घाव

जल्दी भर जाता है। यदि रोगी अति चञ्चल वृत्ति का हो तो पट्टी पर तार की जाली (न० १८१) बांध देवें।

शस्त्रक्रिया के पश्चात् परिचर्या—२४ घण्टे के पश्चात् पट्टी को खोल कर आंख को देखें। नेत्र के बाहर जो कुछ पदार्थ संगृहीत हुआ हो, उसे रसकर्पूर जल में भिगोये हुए लिण्ट से साफ करें। एट्रोपिन के २-३ बूँद (१ औंस में ४ ग्रेन) २-३मिनट के अन्तर पर डालें। पुनः पट्टी बांध देवें। इस समय तक रोगी को चित लिटाया जाता है। अब उसे करवट लेने की अनुमति देवें। जिस आंख पर शस्त्रचिकित्सा की हो वह आँख ऊपर रहे, उस तरह करवट लेवें। कारण दूसरी आंख ऊपर रहेगी, तो उसमें से टपकने वाले जल आदि का प्रवेश शस्त्रक्रिया की हुई आंख में होने की संभावना है। ऐसा होने पर नेत्र पक जाता है। एवं रोगी कच्ची आंख पर दबाव डालें, तो भी हानि होने की भीति रहती है। ४ दिन तक प्रतिदिन उसी तरह २४-२४ घण्टे पर पट्टी बदलते रहें। फिर पट्टी निकाल काले चश्मे पहना देवें या नेत्र के ऊपर नीला वस्त्र बांध देवें।

सूचना—शस्त्रको प्रवेश कराने में तारामण्डल या दृष्टिमणि को हानि न पहुँचे, इस बात का सम्हाल रखें, अन्यथा परिणाम अति हानिकर आता है। एवं जब तारामण्डल को पकड़ बाहर खींच कर कैंचीसे काटते हैं, तब तारामण्डल कट गया, ऐसा समझ कर कभी-कभी नये शस्त्रवैद्य तारामण्डल के पकड़ने के चिमटे को जल्दी बाहर खींच लेते हैं। ऐसे समय पर तारामण्डल का कुछ भाग चिमटे के बीचमें रह जाय, तो तारामण्डल का कितनाक हिस्सा या पूरा पूरा बाहर निकल आता है। फिर जलमय रस रुधिरपूर्ण बन जाता है। इस अकस्मात् की उत्पत्ति को रोकने के लिये एक ही उपाय है कि शस्त्रवैद्य जल्दी न करें और घबराहट से मुक्त रहें।

ऊपर जो वर्णन किया वह कृत्रिम कनीनिका बनाने के लिये है।

अधिमन्थ होने पर तारामण्डल का छेदन—कृत्रिम कनीनिका बनाने की शस्त्रचिकित्सा और अधिमन्थ में होने वाली शस्त्रचिकित्सा में कुछ अन्तर रहता है। अधिमन्थ में जलमय रसका पूर्व खण्ड बहुत छोटा होता है। जिससे जेगर शस्त्रको भीतर चलाने में भय रहता है। जिससे ग्राफेकी छुरिका ही उपयोग में ली जाती है।

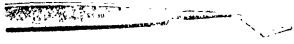

चित्र नं० २३८ डा० हर्बर्ट की शुक्लमण्डल भेदक छुरिका

कितनेक नेत्रोंमें पूर्व खण्ड तो उतना छोटा हो जाता है कि प्राफेकी संकीर्ण छुरिका (न० ७७) भी उसमें प्रवेश नहीं कर सकती। ऐसे रोगियों के लिये बम्बई के डा० हरबर्ट का बाह्यपटल भेदक शस्त्र (चित्र नं० २३८) विशेष उपयोगी सिद्ध हुआ है।

शस्त्रक्रिया पद्धति—नेत्र को खुला रखने की कमानी लगावें। गोलक को चिमटे से पकड़ कर स्थिर करें। दाहिनी आंख के लिये शस्त्रवैद्य रोगी के शिर के पास खड़ा रहे। बाँयी आँख के लिये शस्त्रवैद्य बांये हाथ से शस्त्रक्रिया कर सके तो रोगी के शिर के पास खड़ा रहे। नहीं तो रोगी की बायीं ओर खड़ा रहे। शस्त्र की नोक कहाँ प्रवेश करानी चाहिये, उसके लिये पाठकों को समझाने के लिये नेत्र को घड़ी की उपमा देकर समझाया जाता है। चित्र नं० २२३ देखें।

चित्रनं० २२३
शुक्लमण्डल छेदन स्थलदर्शक आकृति
Clock Diagram to show points of Corneal Incisions.

जिस तरह घड़ी में अंक लिखे रहते हैं उस तरह इस आकृति में भी अंक अंकित किये हैं। १२ का अंक ऊर्ध्व पलक की ओर ६ का अंक निम्न पलक की ओर दाहिनी आंखमें ९ का अंक दाहिनी ओर तथा बांयी आंख में ३ का अंक बायीं ओर (बाहर की ओर) लिखा है।

अधिमन्थ रोगमें शस्त्र की नोक दाहिनी आंखमें नं० १० और ११ के बीच प्रवेश करायी जाती है। शुक्लमण्डल और नेत्रबाह्य पटल के संगम के पास नोक को घुसाई जाती है। यह नोक जलमय रसके पूर्वखण्ड में स्पष्ट दीखे, तो मानना चाहिये कि, वह भीतर गई है। अब सम्हाल रखने की आवश्यकता है। यदि नोक तारामण्डल की ओर किंचित् भी मुड़ेगी, तो दृष्टिमणि को हानि पहुँचने की सम्भावना है। आगे आवेगी तो शुक्लमण्डल के पिछले आवरण को हानि पहुँचेगी। इन दो प्रान्तों के बीच अति

सम्हालपूर्वक शनैः शनैः शस्त्र को आगे चलावें। जब शुक्लमण्डल के दूसरे सिरे पर पहुँचे तब १॥ (१ और २ के मध्य में) के स्थान पर शस्त्र की नोक को बाहर आने देवें।

फिर दृढ़ हाथ से किन्तु स्वच्छ से शुक्लमण्डल के उस ऊपर के हिस्से को काट देवें। जब शस्त्र ऊपर के हिस्से में शुक्लमण्डल और नेत्र वाह्यपटल के संगम के पास आवे, तब शस्त्र की धार को कुछ आगे करें। ऐसा करने पर नेत्र वाह्य पटल का थोड़ा टुकड़ा कट जायगा। उस समय शस्त्रनेत्र श्लेष्मावरण के नीचे आया हुआ प्रतीत होगा। फिर शस्त्र की धारा को आकाश की ओर (रोगी लेटा होने पर) करें। जिससे शस्त्र श्लेष्मावरण का टुकड़ा काट कर बाहर निकल आवेगा।

काट पूरा होने पर कुछ रक्तस्राव होगा, सहायक वैद्य को इशारा करने पर कमानी की ऊँची उठा लेता है। जिससे गोलक पर से उसका दबाव कम होता है। गोलक को स्थिर रखने का चिमटा सहायक वैद्य को दिया जाता है। वह गोलक को स्थिर रखता है। शस्त्रवैद्य एक हाथ में तारामण्डल को पकड़ने का चिमटा और दूसरे हाथ में कैंची पकड़ता है। चिमटे से तारामण्डल को पकड़ कर बाहर निकालता है। फिर उसे कैंची से काट देता है। कैंची को आड़ी रख कर काट करें, जिससे अधिक हिस्सा कटेगा।

कितनेक शस्त्रवैद्य तारामण्डल को पकड़ कर एक ओर खड़ा काट करते हैं। फिर चिमटे से पकड़े हुये भाग को खींचते हैं। जिससे तारामण्डल का कितनाक हिस्सा मूल में से अलग हो जाता है। फिर घाव में से बाहर आये हुये भाग को कैंची से काट देते हैं इस प्रकार से काटने में खास लाभ यह है कि, तारामण्डल मूल में से अलग होने से जलमय रस को जाने का मार्ग मुक्त होता है। हानि यह है कि कभी कभी तन्तुसमूह को हानि पहुँचती है और फिर प्रदाह उपस्थित होता है। कभी-कभी रक्तस्राव भी होता है। एवं तारामण्डल को खींचने पर रोगी को वेदना होती है। जिससे कितनेक रोग नेत्र को दबाते हैं। उस हेतु से भी अतर्कित हानि पहुँच आती है।

तारामण्डल को काट लेने के पश्चात् जलमय रसके पूर्वखण्ड में रक्त प्रवेश करे, तो उसमें चांदी की नली डालकर उसे धो देवें। फिर चिपटाचिम्मच (नं० ११८ Spatula) को घाव के दोनों सिरे पर फिरा कर तारामण्डल को सम्हाल पूर्वक यथा स्थान बैठा देवें।

सूचना—यदि उस क्रिया में अपूर्णता रह जायगी, तो तारामण्डल

का हिस्सा घाव के कोण में से बाहर निकल आता है। फिर घाव भरने पर वह उसमें फंस जाता है। परिणाम में तारामण्डल का प्रदाह होता है। इतना ही नहीं, रोगी को आजीवन प्रदाह जन्य पीड़ा हो जाने की भीति बनी रहती है।

शस्त्रक्रिया पूर्ण होने पर नेत्र में मक्युरोक्रोम के प्रवाही के १-२ बूंद डालें। फिर गोल और फोहे रख कर दोनों नेत्रों पर बांध देवें। २४ घण्टे बाद पट्टी खोलें। एट्रोपिन के १-२ बूंद डालें और पुनः पट्टी बांध देवें। ४थे दिन पट्टी निकालकर काले चश्मे पहनावें या नेत्र के पास हरे रंग की पट्टी रखें।

तारामण्डल में काट।

(Iridotomy)

तारामण्डल और दृष्टिमणि के बीच में कुछ भी अन्तर नहीं है। अतः तारामण्डल पर काट तब ही हो सके, जब नेत्र में दृष्टिमणि न हो। मोतियाबिन्द उतारने के बाद सूजन आकर जब कनीनिका बन्द हो जाती है, तब यह क्रिया मुख्य रूप से की जाती है।

नेत्र में कोकेन प्रवाही डालकर चेतनाहीन बनावें। फिर रसकर्पूर जल से नेत्र को धोकर विशुद्ध कर लेवें। गोलक को स्थिर रखने के चिमटे से पकड़ त्रिकोणाकार शस्त्र (चित्र नं० १०२) से शुक्लमण्डलके किनारे पर छेद करें। इस छेद में से डॉ० वीकर की कैंची (चित्र नं० ११०) को जलमय रस के पूर्व खण्ड में प्रवेश करावें। फिर कैंची को कुछ खोल एक पत्ते को तारामण्डल में प्रवेश करावें। अच्छी तरह प्रवेश होने पर कैंची को बन्द करें। जिससे दो पत्तों के बीच छेद हो जायगा। कनीनिका जैसी काट होगी। प्रायः अति रक्तस्राव होता है; किन्तु कुछ समयमें वह शोषित हो जाता है और रोगी की दृष्टि कुछ अंश में खुल जाती है। कभी-कभी तारामण्डल में से एक आध टुकड़ा काट लेने का प्रयत्न किया जाता है। उसमें सफलता मिले, तो उसके भीतर से अच्छी दृष्टि पड़ती है।

उपर्युक्त शस्त्रक्रिया जिस तरह डॉ० वीकर की कैंचीसे की जाती है, उस तरह मिगलर के शस्त्र से भी हो सकती है। इसके सिरे पर एक नोक है, फिर कुछ भाग काटनेवाला है। इस काटने वाले भाग की चौड़ाई उस तरह बनाई है कि उससे होनेवाले छेद में, उस चौड़े भाग के पीछे प्रवेश करने वाला गोल भाग ठीक बैठ जाता है।

इस शस्त्र से क्रिया करने के पहले नेत्र की तैयारी ऊपर लिखे अनुसार करें। गोलक को चिमटे से पकड़ स्थिर कर फिगलर की छुरिका को शुक्लमण्डल के किनारे के योग्य स्थान पर प्रवेश करावें। किस स्थान पर प्रवेश कराना चाहिये, उसका आधार कैसा काट करना है, इस निर्णय पर अवलम्बित है। यदि तारामण्डल के मध्य में एक आड़ा काट करना हो, तो कनीनिका के मध्य भाग की पंक्ति में शस्त्र को प्रवेश करावें। जब काटने वाला भाग जलमय रस के पूर्व खण्ड में ठीक प्रवेश कर जाय, तब शस्त्र को उस तरह फिरावें कि काटने वाली धार तारामण्डल की ओर रहे। नोकदार भाग को तारामंडल के दूसरे सिरे पर प्रवेश करावें। शस्त्र के दस्ते को कुछ ऊंचा उठाने पर नोकदार भाग ठीक प्रवेश कर जायगा। फिर शस्त्र के दस्ते को उसी स्थिति में रखकर काट करें। काट पूर्ण होने पर दस्ते को पुनः झुका कर शस्त्र को निकाल लेवें। इस शस्त्र क्रिया में भी रक्तस्राव बहुत होता है। किन्तु कुछ समय जाने पर शोषित हो जाता है। एवं रोगी प्रारब्धवान हो, तो थोड़ी बहुत दृष्टि आ जाती है।

तारामण्डल के अर्बुदों का दूरीकरण।

(*Removal of Tumours in Iris*)

प्रकरण १३ में लिखे अनुसार तारामण्डल में २ प्रकार के अर्बुद होते हैं। सादे और दुष्ट। इनमें से सादे अर्बुद (ग्रन्थियों) को सरलता से दूर कर सकते हैं। दुष्ट अर्बुदों को उत्पत्ति काल में पहचानना कठिन है। तथापि ऐसे ग्रन्थि भी छोटे हों, तब तक निकाल सकते हैं।

इन अर्बुदों को निकालने के लिये पहले नेत्रों को स्वच्छ विशुद्ध और चेतनाहीन बनावें। नेत्रों को खुले रखने की कमानी लगा लें। गोलक को स्थिर करने वाले चिमटे से गोलक को पकड़ें। फिर शुक्लमण्डल के किनारे पर से त्रिकोणाकार शस्त्र (नं० १०२) या ग्राफे की लघु छुरिका (नं० ७७) से छेद करें। यह छेद कुछ बड़ा होना चाहिये। फिर जलमय रसके पूर्व खंड में मार्ग होने पर तारामण्डल को पकड़ने के चिमटे (नं० १०६) से तारामण्डल के भाग को ग्रन्थि सहित चिमटे में पकड़, घाव से बाहर निकालकर उसे डी. वीकर की कैंची (नं० ११०) से या अन्य तारामण्डल काटने की कैंची से काट देवें। काटने के समय इस बात को अच्छी तरह देख लेवें कि, ग्रन्थि का कुछ भी भाग अवशेष तो नहीं रह गया। फिर तारामण्डल को चिपटे चिम्मच (नं० ११८) से भीतर में यथास्थान ठीक बैठा देवें। यदि जलमयरस के पूर्व खंड में रक्तस्राव हुआ हो, तो उस खंड को नमक

जल से धो डालें। फिर मर्क्युरोक्रोम का एक बूंद डाल, फोहे रख कर पट्टी बांध देवें। दूसरे नेत्र पर पट्टी बांधने की आवश्यकता नहीं है। २४ घण्टे पर पट्टी खोल नेत्र को साफ कर एट्रोपिन के बूंद दो बार और मर्क्युरोक्रोम के बूंद १ बार डाल कर पुनः पट्टी बांध देवें। ६ठवें दिन पट्टी को निकाल डालें।

सूचना—जिस अर्बुद को निकाला हो, उसे स्पिरिट में डालकर प्रयोगशाला में भिजवा देवें। यदि अर्बुद दुष्ट होने का अभिप्राय मिले, तो रेडियम या गहरे क्ष किरण का उपचार करना चाहिये।

अधिमन्थ की शस्त्रक्रिया

(*Operations for Glaucoma*)

अधिमन्थ के लिये निम्न ११ प्रकार की शस्त्रचिकित्सा की जाती हैं:—

१—तारामण्डल छेदन—Iridectomy.

२—तारामण्डल को घाव में चिपकाना—Iridotasis.

३—नेत्रबाह्यपटल के अग्र भागमें छेदन—Anterior Sclerotomy.

४—नेत्रबाह्यपटल के पश्चिम भागमें छेदन—Posterior Sclerotomy.

५—लेग्रांजकी शस्त्रक्रिया—Lagrange's operation.

६—होल्थकी शस्त्रक्रिया—Holth's punch operation.

७—इलियट की शस्त्रक्रिया—Elliot's Trephining.

८—होल्थकी तारामण्डल को चिपकाने की शस्त्रक्रिया—Holth's Iridencleisis.

९—तन्तुसमूह विच्छेद—Cyclodialysis.

१०—जलमय रस के पूर्वखण्ड में से सतत स्राव कराना—Drainage of Anterior Chamler.

११—जलमय रसके पूर्वखण्ड के कोणका छेदन—Goniotomy.

१. आशुकारी अधिमन्थके लिये तारामण्डल का छेदन

इस शस्त्रक्रिया का वर्णन पहले तारामण्डल के छेदन में हो गया है।

२. तारामण्डल को घाव में चिपकाना।

(*Iridotasis–Iridencleisis*)

कितनेक नेत्रवैद्य इन दोनों शस्त्रक्रियाओं को एक ही गिनते हैं।

अन्य वैद्य दोनों के बीच कुछ अन्तर दर्शाते हैं। यथार्थ थोड़ा भेद होनेसे दोनों का वर्णन अलग-अलग दिया है।

प्रथमविधि (आइरिडोटेसिस Iridotasis)—इस शस्त्रक्रियामें पहले नेत्रको शुद्ध, कीटाणुरहित और चेतनाहीन बनाते हैं, नेत्रको खुली रखनेवाली कमानी लगाते हैं तथा गोलक को स्थिर करने वाले चिमटे से पकड़ कर स्थिर करते हैं। फिर शुक्लमण्डल के ऊपर के किनारेसे लगभग ६ मि० मी० की दूरी पर त्रिकोणाकार शस्त्र (नं० २२७) को नेत्रश्लेष्मावरण में प्रवेश करा बिल्कुल शुक्लमण्डल के किनारे तक ले जाते हैं। पश्चात् उस शस्त्रको शुक्लमण्डल के किनारे में से जलमय रस के पूर्वखण्ड में प्रवेश कराते हैं।

द्वितीय रीति यह है कि, शुक्लमण्डल के ऊर्ध्व भागमें ६ से ८ मि० मी० ऊपर नेत्रश्लेष्मावरण को चिमटे से पकड़ कर कैंचीसे एक काट करें। उस काटको अर्ध गोलाकार बने, उस तरह दोनों सिरे पर लम्बावें। चित्र नं० २२५ में देखें। उस काटके बीच का भाग अर्थात् ब-ब के बीचमें रहे हुए भागको बिल्कुल नेत्रबाह्यपटल तक ले जायं। फिर कैंचीसे नेत्रश्लेष्मावरण को नेत्रबाह्यपटल से पृथक् करें। इस तरह शुक्लमण्डल की परिधि तक पहुँचें। पश्चात् त्रिकोणाकार शस्त्रको नेत्रबाह्यपटल में प्रवेश करा जलमय रसके पूर्वखण्ड में ले जायं। ४-५ मि० मी० का छेद होने पर उस शस्त्र को बाहर निकाल लेवें। फिर तारामण्डल के चिमटे (नं० १०६) को जलमय रसके पूर्व खण्डमें प्रवेश करा बिल्कुल कनीनिका के ऊपरके किनारे तक ले जायं। वहाँ पहुँचने पर चिमटे को कुछ खोल कनीनिका के किनारे को पकड़, उसे धीरेसे बाहर निकाल नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे रख; वहाँ ही रहने देवें और उस पर नेत्रश्लेष्मावरण के आवरण को ढक देवें।

इस तरह शस्त्रक्रिया समाप्त होने पर मर्क्युरो क्रोम का एक बूंद डाल फोहे रख सब पट्टी बांधे। तीसरे दिन पट्टी को खोल, नेत्रको साफ कर मर्क्युरो क्रोम का बूंद डालें और पुनः पट्टी बांध देवें। पांचवे दिन पट्टी निकाल डालें फिर काले चश्मे पहनावें।

द्वितीयविधि—(आइरिडेन्क्लीसिज Iridenoleisis)—इस क्रियामें त्रिकोणाकार शस्त्रसे छेद करने तक की रीति एक ही है। फिर तारामण्डल पकड़नेवाले चिमटे से कनीनिका के किनारे को न खींचें, किन्तु तारामण्डल को ही बाहर निकालें। और उस पर डी० वीकर की कैंची से खड़ा काट करें। ऐसा करने पर तारामण्डल के दो विभाग हो जाते हैं। इनमें से एक को कनीनिका के किनारे के पास से पकड़ छेद में से बाहर खींचें और उसे

नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे रखें और ऊपर नेत्रश्लेष्मावरण को ठीक ढक देवें। तत्पश्चात् पहली विधि अनुसार मर्क्युरोक्रोम की बूंद डालना, पट्टी बांधना आदि परिचर्या करें।

३. नेत्रबाह्यपटल के अग्रभाग में छेदन।

(Anterior Sclerotomy)

छेदन हेतु—

१—आशुकारी अधिमन्थ में जब तारामण्डल का छेदन न हो सके या न करना हो, तब।

२—तारामण्डल के छेदन में गोलीहो वेदना होती हो।

३—नेत्रके भीतर रक्तस्राव होने पर तरल अनुसङ्ग अधिमन्थ में।

४—कभी चिरकारी अधिमन्थ में तारामण्डल के छेदनकी बदली में।

५—अनुसङ्ग अधिमन्थ में।

६—बालकों में होने वाले अधिमन्थ में।

७—समदुःखी नेत्रप्रदाह के हेतुसे नेत्रान्तर दबाव वृद्धि होनेपर।

शस्त्रक्रिया विधि—सामान्य नियम अनुसार नेत्रों को स्वच्छ, कीटाणु रहित और चेतना हीन बनावें। नेत्र को खुला रखने की कमानी लगावें। गोलक को स्थिर करें प्राफे की छुरिका को शुक्लमण्डल और नेत्रबाह्य पटल के संगम स्थान के १० नम्बर के अंक के पास प्रवेश करावें एवम् उसी स्थान पर (Counter puncture) करें सामने की ओर नं० ६ के अंक के पास बाहर निकालें। सम्हाल पूर्वक ½ इंच जितना छेद किन्तु शुक्लमण्डल के ऊपर के किनारे को बिना छिल ले रहने दें छेद होने पर शस्त्र को कुछ आगे लेवें, अन्यथा दृष्टिमणि को हानि पहुँचेगी। शनैः शनैः शस्त्र को बाहर निकाल लें। यदि तारामण्डल बाहर आया हो, तो धीरे-धीरे यथास्थान भीतर बैठा देवें। कदापि न बैठ सके, तो खींच कर काट देवें। फिर मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही का एक बूँद डाल, फोहे रख कर पट्टी बांध देवें।

४. नेत्रबाह्यपटल के पश्चिम भाग में छेदन।

(Posterior Sclerotomy)

शस्त्रक्रिया हेतु—

१. जलमय रस का पूर्वखण्ड अति छोटा हो जाने से तारामण्डल के

छेदनार्थ शस्त्र को जाने का मार्ग न रहा हो, तब पूर्वखण्ड को बड़ा बनाने के लिये।

२. अन्य शस्त्रक्रिया करने पर भी अधिमन्थ की वेदना शान्त न हुई हो, तब इनके अतिरिक्त नेत्रदर्पण के विच्छेद में भी यह क्रिया की जाती है।

शस्त्रक्रिया विधि—नेत्र को नियम अनुसार शुद्ध, कीटाणु रहित, चेतनाहीन बनाकर खुला रखनेवाली कमानी लगा लेवें। रोगी को अपने नाक की ओर देखने को कहें। फिर शुक्लमण्डल के किनारे बाहर नेत्र-श्लेष्मावरण को पकड़ कर गोलक को स्थिर करें। ग्राफे की छुरिका को शुक्ल मण्डल से आध इंच की दूरी पर, बाहर की सरल और ऊपर की सरल मांस पेशीके बीच प्रवेश करावें। शस्त्र गोलकके भीतर प्रवेशित होने पर उसे थोड़ा फिरावें, जिससे घाव खुला होगा और उसमें से कांच रूप रस थोड़ा निकल जायगा। एवं जलमय रसका पूर्वखंड बड़ा होजायगा। शस्त्रको उस तरह प्रवेश करावें कि उसकी धार नेत्रगृह के कोण की ओर रहे; अन्यथा छेद बहुत बड़ा हो जायगा। शस्त्र को बाहर निकाल मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही का बूंद डाल फोहे रखकर पट्टी बांध देवें। २-३ दिन तक पट्टी रख कर निकाल डालें।

५. लेग्राञ्जकी शस्त्रक्रिया।

(Lagrange's operation)

यह (लेग्राञ्ज), होल्थ और इलियट, इन तीनों शस्त्रक्रिया का आशय एक ही है। वह यह कि, जलमय रस को सतत बाहर निकलने के लिये मार्ग करदेना। चित्र नं० २२६ देखें।

चित्र नं० २२६

आवश्यक शस्त्र—

१. नेत्रको खुला रखने की कमानी नं० १०७।
२. नेत्रश्लेष्मावरण काटनेकी कैंची नं० ८८।
३. छेद विस्फारक छुरिका नं० ११६
४. जेगरका त्रिकोणकार शस्त्र नं० २२७।
५. तारामण्डल पकड़ने का चिमटा नं० १०९।
६. तारामण्डल नियोजक नं० १०५
७. सुई डोरा तथा सुई पकड़ने की संडासी न० १६१।
८. गोलक स्थिर रखने के २ चिमटे नं० ७६।

चित्र नं० २२६

जेगर का मुड़ा हुआ त्रिकोणाकार शस्त्र।(Jager's curved keratome.)

शस्त्रक्रिया विधि—नेत्रको शुद्ध, कीटाणु रहित, चेतनाहर बनाकर नेत्रको खुला रखनेवाली कमानी लगावें। फिर गोलक को स्थिर रखने वाले चिमटे से शुक्लमण्डल के ऊपर के किनारे से ६ मि० मी० ऊपर नेत्रश्लेष्मावरण को पकड़ें। उसमें कैंची से छेद करें। फिर तारामण्डल को छेदमें स्थिर करने वाली शस्त्रक्रिया में लिखे अनुसार तथा चित्र नं० २२५ में दर्शाया है उस तरह शुक्लमण्डल के किनारे तक का भाग साफ करें। इसमें घावको चौड़ा करनेवाले शस्त्रका उपयोग करना हो, तो वह सुविधाप्रद होगा। नेत्रवाह्यपटल के भागको बिल्कुल साफ करने के पश्चात् शुक्लमण्डल के किनारे से करीब ३ मि० मी० ऊपर नेत्रवाह्यपटल में जेगरके त्रिकोणकार-शस्त्रको प्रवेश करावें। फिर धीरे-धीरे उस शस्त्रको जलमय रसके पूर्व खण्ड में जाने देवें। इस तरह वाह्यपटल में ४-५ मि० मी० का घाव करें। पश्चात् उस शस्त्रको बाहर निकाल लेवें। नेत्रवाह्यपटल का जो टुकड़ा घाव और शुक्लमण्डल के बीच आया हो, उसे चिमटे से पकड़ उसमें से करीब १॥ मि० मि० जितना टुकड़ा कैंची से काट लेवें। ऐसा करने पर एक खिड़की उत्पन्न होती है। फिर तारामण्डल को पकड़ने वाले चिमटे को उस खिड़की में से प्रवेश करा तारामण्डल के ऊपरके भागको खींच कर घावमें से बाहर निकालें। और उसे डी० वीकर की कैंचीसे काट देवें। हो सके तब तक

कनीनिका के किनारे को बचा लेवें। ऐसा करने पर कनीनिका गोल रह जाती है। जिससे रोगी को प्रकाश सहन करने में कष्ट नहीं होता।

तारामण्डल का छेदन कर लेने के पश्चात् पुनः उसे नियोजक अस्त्र से जलमय रस के पूर्व खण्ड में बैठा देवें। तत्पश्चात् नेत्रश्लेष्मावरण का टुकड़ा काट लिया है, उस स्थान को ऊपर खींच नेत्र बाह्य पटल के घाव को ढक देवें। बहुधा यह आवरण स्वयमेव चिपक जाता है। क्वचित् किसी रोगी में, विशेषतः अति वयोवृद्ध रोगी में यह नहीं चिपकता। ऐसा हो, तो उस पर्दके ऊपर के भागको गोलक के ऊपर के नेत्रश्लेष्मावरण के घावके निम्न भागके साथ २-३ टांके लगाकर सी लेवें।

शस्त्रक्रिया हो जाने पर मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही का बूंद डाल, फोहे रख कर पट्टी बांध देवें। पट्टी दोनों नेत्रों पर बांधें। २४ घण्टे के पश्चात् पट्टी खोलें। नेत्रको अच्छी तरह साफ करें। एट्रोपिन १% का १ बूंद और मर्क्युरोक्रोम का १ बूंद डाल शस्त्रक्रिया की हो, उस नेत्रपर पट्टी बांधें। दूसरा नेत्र खुला रखें। इस तरह ४ दिन तक परिचर्या करें। ५ वें दिन पट्टी निकाल डालें और काले चश्मे पहनावें। लगभग १५ दिन तक कुछ लाली रहती है। तब तक एट्रोपिन मर्क्युरोक्रोम के बूंद डालते रहें। यदि नेत्रमें लाली अथवा वेदना प्रतीत हो, तो डायोडिन के बूंद डालें। नेत्र पर बोरिक धावन का सेक करें। सोडा से लिसिलास या सल्फाडायाझिन की टिकड़ी खाने को देवें। शस्त्रक्रिया के १० दिन बाद हल्के हाथ से नेत्रका मर्दन करें।

६. होल्थ की शस्त्रक्रिया।

Holth's operation.

यह शस्त्र उपर्युक्त लेमाख्ज की शस्त्रक्रिया के समान ही होता है, केवल एक ही अन्तर है, वह यह कि नेत्रबाह्यपटल में त्रिकोणाकार शस्त्र से काट करने के पश्चात् जो टुकड़ा कैंची से काटा जाता है, उसकी बदली में होल्थ की खास वेधनिका संदंशिका (Punch for ceps—नं० २२८) के निम्न पत्र को नेत्रबाह्यपटल के छेदन में प्रवेश करा उस चिमटे के दोनों सिरों को दबावें। जिससे नेत्र बाह्यपटल में से 'Ω' आकारका टुकड़ा कट जाता है। फिर तारामण्डल को चिमटे से पकड़ एक टुकड़ा काट लेवें। शेष सब क्रिया और परिचर्या लेमाख्ज की शस्त्रक्रिया में लिखे अनुसार करें।

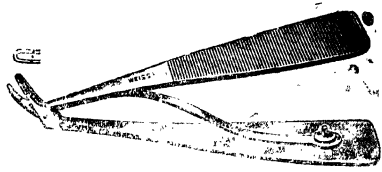

चित्र नं २२८
होल्थ की वेधनिका कैंची
(Holth's Punch for ceps)

७—इलियट की शस्त्रक्रिया।

(*Elliot's Trephining*)

आवश्यक शस्त्रादि साधनः—

१—आँख को खुली रखने वाली कमान नं० ७५

२—गोलक को स्थिर रखने का चिमटा नं० ७६

३—नेत्रश्लेष्मावरण काटने की कैंची नं० ८८

४—वेधनिका नं० २२६

५—कटा हुआ टुकड़ा पकड़ने का चिमटा नं० २३१

६—तारामण्डल काटने की कैंची नं० ११०

७—तारामण्डल को पकड़ने का चिमटा नं० १०९

८—तारामण्डल नियोजक यन्त्र नं० १०५

इनके अतिरिक्त कभी सुई डोरों की आवश्यकता रहती है। कितनेक नेत्रवैद्य शुक्लमण्डल को चीरने के लिये खास चीज का प्रयोग करते हैं। ऐसे शस्त्र अनेक नेत्रवैद्यों ने भिन्न भिन्न प्रकार के बनाये हैं। वेधनिका भी अनेक प्रकार की आती हैं। जैसे कि, वोमेन, सिबनसन, इलियट चित्र नं० २२१, हेरिसन बटलर चित्र नं० २३०, बोन हिपल आदि। इनमें बोन

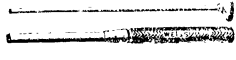

चित्र नं० २३०
हेरिसन बटलर की वेधनिका।
(Horrison Butler's Trephine)

हिपल के अतिरिक्त सब हाथ से चलायी जाती हैं। बोन हिपल की वेधनिका में घड़ी की कमानी और चक्कर इस तरह व्यवस्थित किये हैं कि वह स्वयमेव चलती है और इच्छा अनुरूप टुकड़ा काट देती है। ये अब वेधनिका प्रायः ३ कद्दकी आती हैं। १॥, २, २॥ मि० मी० की। इनमें से अनेक शस्त्रवैद्य २ मि० मी० का अधिक उपयोग करते हैं; किन्तु कितनेकों को यह बहुत बड़ी लगती है। वे १॥ मि० मी० की प्रयोजित करते हैं। एवं कितनेक अति आगे बढ़कर २॥ मि० मी० के उपयोग के लिये सूचना करते हैं। हम २ मि० मी० को उपयोग में लेते हैं।

शस्त्रक्रिया विधि—रोगी को सामान्य नियम के अनुसार शस्त्रक्रिया के लिये तैयार करें। नेत्रमें कोकैन और एड्रिनेलिन डाल कर चेतनाहीन बनावें। एड्रिनेलिन डालने पर बहुधा रक्तस्राव नहीं होता। नेत्रको एक बार रस कपूर जलसे और फिर नमक जल से धो देवें। इसके पश्चात् शस्त्रक्रिया प्रारम्भ करें। रोगीको उसके पैरोंकी ओर देखने को कहें, ऐसा करने पर नेत्रगोलक निम्न पलक की ओर मुड़ेगा। उस समय नेत्रवैद्य गोलक को स्थिर करने के चिमटे से नेत्रश्लेष्मा-वरणको पकड़ें। नेत्रश्लेष्मावरण का जो भाग ऊर्ध्व पुटसे आच्छादित हो उस भागको पकड़ें। शुक्लमण्डल के ऊपर के किनारेसे हो सके उतनी ऊँचाई पर पकड़ें।

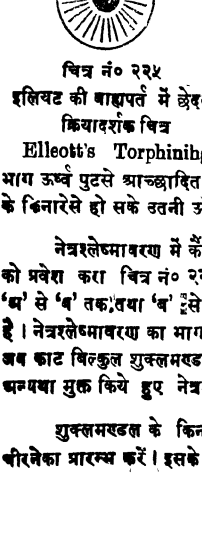

चित्र नं० २२५
इलियट की बाह्यपर्त में छेदन क्रियादर्शक चित्र
Elleott's Torphinihg

नेत्रश्लेष्मावरण में कैंचीसे काट करें, उस काटमें कैंचीके एक पक्ष को प्रवेश करा चित्र नं० २२५ में दर्शाये अनुसार काट करें। यह काट 'अ' से 'ब' तक तथा 'ब' से 'अ' तक एवं फिर ब-ब और क-क से दर्शाया है। नेत्रश्लेष्मावरण का भाग कैंची से काट निम्न बाह्यपटल से पृथक् करें। जब काट बिल्कुल शुक्लमण्डल के किनारे तक पहुँचे, तब पूरा लक्ष्य रखें। अन्यथा मुक्त किये हुए नेत्रश्लेष्मावरण में छिद्र हो जायगा।

शुक्लमण्डल के किनारे तक पहुँचने के पश्चात् शुक्लमण्डल को चीरनेका प्रारम्भ करें। इसके लिये कितनेक शस्त्रवैद्य खास शस्त्रोंका उपयोग

करते हैं। हमें ऐसे शस्त्रों की अभी तक आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई। कैंची की नोकसे कार्य करने में हमें कभी बाधा नहीं हुई। कैंचीकी नोक या खास शस्त्र से शुक्लमण्डल के किनारे के पीछे कुछ हद तक शुक्लमण्डल को चीरें। इस क्रियामें जलमय रसका पूर्व खण्ड न खुल जाय, उसका खास सम्हाल रखें।

चीरने की क्रियासे शुक्लमण्डल के २ हिस्से हो जाते हैं। आगेके हिस्सेमें गर्भ भाग और स्वचा तथा पिछले हिस्से में डेस्मट की पर्त और अन्तिम त्वचा रहते हैं। फिर वेधनिका को दक्षिण हस्तसे तथा वामहस्तसे चिमटे को पकड़ें। नेत्रश्लेष्मावरण से कटे हुए भागको पकड़ शुक्लमण्डल के ऊपर मोड़ देवें। उसे वहाँ पर चिमटे से पकड़ रखें। वेधनिका को शुक्लमण्डल के किनारे के मध्य भागमें इस तरह लगावें कि उसका ½ भाग बाह्यपटल के ऊपर तथा ½ भाग शुक्लमण्डल के ऊपर आजाय। वेधनिका को स्थिर रख अंगुष्ठ और तर्जनी के बीचमें शनैः शनैः फिरावें। यदि वह तेज होगी, तो केवल ५-७ बार फिराने मात्र से नेत्रबाह्यपटल में छिद्र हो जायगा। अनुभवी नेत्रवैद्य को छिद्र होने पर तत्काल विदित हो जाता है। नूतन वैद्यको १-२ या अधिक बार उसे उठाकर देखना पड़ता है। छिद्र होने पर नेत्रबाह्यपटल का गोल टुकड़ा ऊँचा उठ आता है। उसमें से जलमय रस और तारामण्डल का हिस्सा बाहर निकल आता है। ऐसा होने पर वेधनिका को एक ओर रख देवें। सहायक वैद्य आँख को खुली रखनेकी कमानी को ऊँची पकड़ रखें, जिससे गोलक पर दबाव न रहे।

नेत्रवैद्य बांये हाथमें टुकड़े को पकड़ने वाला चिमटा लेकर, उस कटे हुए गोल टुकड़े को पकड़ जो किसी स्थानमें चिपका हो, वहाँ से कैंचीसे काट कर अलग रखें।

तारामण्डल का चिमटा लेकर उससे तारामण्डल पकड़कर कैंचीसे काट लेवें। तारामण्डल कटने पर शेष भाग भीतर बैठ जाता है। न बैठे तो नमक जलकी धार उस पर छोड़ने से वह बैठ जायगा। नेत्रश्लेष्मावरण को काटने के पश्चात् जिस भागको शुक्लमण्डल पर मोड़ दिया है, उसे उसके योग्य स्थान पर बैठा देवें। फिर मर्क्युरोक्रोम का १ बूंद डाल, फोहे रख कर पट्टी बाँध देवें।

कितनेक नेत्रवैद्य तारामण्डल का टुकड़ा नहीं काटते, उसमें कैंची से

केवल छेदही कर देते हैं। ऐसा करने पर कभी कभी तारामण्डल का कुछ भाग उस छेदमें आकर फँस जाता है, फिर छेद बन्द हो जाता है। कितनेक रोगियों में वेधनिका के छेदमें से वह छेद पूरा होने पर बहुत रक्तस्राव होता है। रक्त जैसा जैसा आता जाय, वैसा वैसा पोंछते रहें। एवं लिण्टके टुकड़े से कुछ दबाव डालें। जिससे कुछ समय में रक्त बन्द हो जाता है। कितनेक रोगियों में छेद पूरा होने के पश्चात् ही रक्त बन्द होता है। कभी कभी जलमय रस के पूर्व खण्डमें रुधिर चला जाता है। कभी कभी नेत्र-श्लेष्मावरण का कटा हुआ ढकन बड़ा हो, तो उसे एकाध टांका लगाना पड़ता है।

कभी वेधनिका मे कटा हुआ बाह्यपटल का टुकड़ा जलमय रस के पूर्व खण्ड में गिर जाता है। ऐसा होवे, तो नमक जल को पूर्व खण्डमें प्रवेश करावें। जिससे वह टुकड़ा घावमें से बाहर निकल आवेगा। कदाच बाहर न निकले, तो अधिक छानबीन न करें, उसे वहाँ रहने देवें ऐसा होने पर नेत्रको हानि नहीं पहुँचती।

शस्त्रक्रिया के पश्चात् परिचर्या—२४ घण्टे तक रोगी को चित लेटा रहने देवें। आवश्यकता हो तो मोर्फिया ½ ग्रेन अथवा अफीम ½ ग्रेन देवें। २ घण्टे बाद पट्टी खोलकर एकाध समय एट्रोपिन का बूंद डालकर पुनः पट्टी बाँध देवें। इस तरह ४ दिन तक दिन में १ बार पट्टी खोलें और आवश्यकता अनुसार एट्रोपिन और मर्क्युरोक्रोम के प्रवाह का बूंद डालें यदि नेत्र में शोथ आया हो तो डायोडिन का प्रयोग करें। ४ दिन पश्चात् पट्टी निकाल देवें और काले चश्मे पहनावें या नेत्र के ऊपर हरी पट्टी बांधें। नेत्र में से बिल्कुल लाली दूर हो, तब तक डायोडिन और आवश्यकता हो तो एट्रोपिन डालते रहें। एकाध मास के पश्चात् रोगी की दृष्टि शस्त्रक्रियाके पहले थी उतनी या उससे अधिक हो जानी चाहिये। आवश्यक हो तो योग्य चश्मा देवें।

८. होल्थ की तारामण्डल को चिपकाने की क्रिया।

(*Holth's Irideneleisis*)

इसका वर्णन नं० २ की क्रिया में पहले हो गया है।

९. तन्तुमय समूह विच्छेद।

(*Cyclodialysis*)

यह शस्त्रक्रिया कितनेक वैद्यों को बहुत पसंद आई है। अन्य कितनेक

नेत्रवैद्य इस क्रिया को केवल मोतियाबिन्द के पश्चात् अनुसंगी अधिमन्थ को दूर करने के लिये करते हैं हमारा अनुभव यह है कि सामान्य सादे अथवा चिरकारी अधिमन्थ में यह क्रिया अधिक भयवाली और कम असर कारक है। केवल मोतियाबिन्दु को निकालने के पश्चात् होने वाले उपद्रव रूप अधिमन्थ में इसका उपयोग करना चाहिये।

आवश्यक शस्त्रादि साधन—

१. आंख खुली रखने की कमानी
२. गोलक को स्थिर रखनेका चिमटा
३. कैंची
४. लघु छुरिका या खास शस्त्र नं० २३१
५. तन्तु समूह विच्छेदक सलाका नं०२३३
६. कभी सुई डोरा

चित्र नं० २३२—तनुसमूह विच्छेदक छुरिका।
Cyclodialysis Knife

चित्र नं० २३३
तन्तु समूह विच्छेदक सिंकलेर की सलाका
Sinclaer's Cyclodialysis Spatula.

शस्त्रक्रिया विधि—नेत्र को स्वच्छ, कीटाणु रहित और चेतना हीन बनावें। नेत्र खुला रखने वाली कमानी लगावें। रोगी को नीचे देखने को कहें। फिर शुक्लमण्डल के ऊपर के किनारे के ७ मि० मी० ऊपर में नेत्र श्लेष्मावरण के भीतर कैंची से एक काट ८ मि० मी० का करें। उस छेद द्वारा नेत्रश्लेष्मावरण को कुछ अलग करके नेत्र बाह्य पटल को मुक्त करें। फिर छोटी तेज छुरिका या इस शस्त्रक्रिया के खास शस्त्र द्वारा नेत्रबाह्य पटल में एक आडा छेद लगभग ५ मि० मी० का करें। इस काट में केवल नेत्रबाह्य पटल ही कटना चाहिये। शस्त्र गहराई में न चला जाय, यह सम्हालें। पश्चात् तन्तुमय समूह विच्छेदक यन्त्र लेकर उसे नेत्र बाह्य पटल

के छेद में प्रवेश करा, अति सम्हाल पूर्वक उसे नेत्रबाह्य पटल और तन्तुमय समूह के बीच में (अमुक सीमा तक) तारामण्डल के मूल तक जाने देवें। फिर उस यन्त्र को दाहिनी और बाँयी ओर चलावें। ऐसा करने पर तन्तुमय समूह नेत्र बाह्य पटल से पृथक् होगा। उतने हिस्से में तारामण्डल का मुख भी अलग होगा। एवं उतने हिस्से में दृष्टिमणि का बन्धन भी टूटेगा। ये सब होने पर यन्त्र को बाहर निकालें। फिर नेत्रश्लेष्मावरण को घाव पर लाकर ढक देवें। मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही का बूंद डाल, फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। एक नेत्र पर पटटी बाँधने पर भी चल सकेगा। २४ घण्टे बाद पट्टी खोलें। नेत्र को साफ करें एट्रोपिन प्रवाही का १ बूंद डालें। ३ मिनट बाद मर्क्युरोक्रोम का १ बूंद डालें। फिर फोहा रखकर पट्टी बांधें। इस तरह ४ दिन तक रोज एक बार करते रहें। पांचवें दिन पट्टी निकाल देवें और काले चश्मे पहना देवें।

१०. जलमय रस के पूर्ण खण्ड में से स्राव कराना।

(*Drainage of Anterior Chamber*)

कितनेक नेत्रवैद्य जलमय रस की वृद्धि को सतत गोलक के बाहर निकालने के हेतु से नेत्रश्लेष्मावरण को काटते हैं। फिर उसके टुकड़े को शुक्लमण्डल पर उलट, शुक्लमण्डल और नेत्रबाह्य पटल के संगम स्थान में ग्राफे की लघु छुरिका से एक छोटा टुकड़ा काटकर, उसमें केटगट का डोरा, सोने का तार या रेशम का डोरा आदि रख उसे सदा के लिये स्थाई बनाते हैं। उस पर नेत्रश्लेष्मावरण को ढक, उस पर्त के नीचे जलमय रस के पूर्व खण्ड में से रस सर्वदा निकलता रहे, ऐसी योजना करते हैं। इस शस्त्रक्रिया को अधिक सफलता नहीं मिल सकी। जिससे चिकित्सक समाज में उसका अधिक आदर नहीं हुआ।

११. जलमय रस के पूर्व खण्ड के कोण छेदन।

(*Gonio tomy*)

यह शस्त्रक्रिया विशेषतः बालकों के अधिमन्थ (Buphophthamos) में व्यवहृत होती हैं। इससे अमरिकन कितनेक चिकित्सकों को अच्छा संतोष मिला है।

आवश्यक शस्त्रः—

१. नेत्र को खुला रखनेकी चांप २. गोलकको स्थिर रखनेका चिमटा

३.पक्व बहिर्गोल कांच। ५. त्रिकोणाकार शस्त्र या ग्राफेकी छुरिका
४.पूर्वखंड कोण छेदक छुरिका (Goniotomy)

शस्त्रक्रिया विधि—नेत्र को स्वच्छ और कीटाणुरहित बनावें। रोगी छोटी आयु का होने पर केवल कोकैन एड्रिनेलिन डालने पर भी शस्त्रक्रिया करने नहीं देते। जिससे क्लोरोफार्म, इथर या अन्य शारीरिक चेतनाहर औषधि का प्रयोग करके रोगी को बेहोश बनाना चाहिये। फिर नेत्र को खुला रखने वाली चाँप लगा ग्राफे के शस्त्र या बहुत छोटे जेगर के त्रिकोणाकार शस्त्र से बहुत छोटा काट (छेद) जलमय रस के पूर्व खण्ड में करें। पश्चात् खास यन्त्र (गोनियोस्कोप-Gonioscop) द्वारा गोलक पर प्रकाश डालें। जिससे पूर्व खण्ड का कोण अति स्पष्ट प्रतीत हो। फिर वेधक शस्त्र को जलमय रस के पूर्व खण्ड में प्रवेश करा बिल्कुल शुक्लमण्डल के दूसरे सिरे तक ले जाँय। वहाँ कोण में अति सम्हाल पूर्वक ऊपर नीचे फिराकर अग्र जलमार्ग को खुला करें। ऐसा करने में दृष्टिमणि या उसके आवरण को हानि न पहुँच जाय, इसका खास सम्हाल रखना चाहिये। फिर मर्क्युरोक्रोम का बूंद डाल; फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। लगभग ४ दिन पट्टी रखें। फिर काला चश्मा पहना देवें।

G. काँच विन्दु के लिये शस्त्रक्रिया।

(Cataraci operations)

१—दृष्टिमणि के आवरण का छेदन—Discission.

२—दृष्टिमणि के आवरण का भेदन कर कांचविन्दु को बाहर निकालना—Cotaract Extraction operation with copsulotomy.

३—आवरण सह कांच विन्दु को बाहर निकालना—Intracapsular Extraction cataract

अ—स्मिथ की रीति—Smith's method.

आ—नेप की रीति—Knaph's method.

इ—एल्शनिंग की रीति—Elshnig's method.

ई—बाराक्वर की रीति—Barraguer's suction method.

४—नेत्र श्लेष्मावरण के नीचे कांच विन्दु को हटाकर निकालना—Zermack's subconjunctival extraction of lens.

५—कांच विन्दु को बैठा देना या स्थान भ्रष्ट करना—Couching of the lens.

६—कांच बिन्दु निकालने के बाद आवरण की शस्त्रक्रिया—Operations for post operative copsular opacity.

अ—आवरण भेदन—Needling.

आ—आवरण का दूरीकरण—Removal of copsule.

१. दृष्टिमणि के आवरण का छेदन

(*Discission*)

चित्र नं० २३४ देखें। इस शस्त्रक्रिया के लिये पहले एट्रोपिन के बूंद डाल कर कनीनिका को प्रसारित करें। नेत्रको खुला रखने की चांप चढ़ावें। गोलक को स्थिर रखने के चिमटेसे गोलक को स्थिर करें।

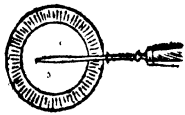

चित्र नं० २३४

शस्त्रक्रिया विधि—दृष्टिमणि के आवरण को तोड़ने के कांटे (नं० १११) को शुक्ल-मण्डल के परिधि प्रान्तमें से प्रवेश करावें। चाहिये उतनी जाने पर उसकी नोक को दृष्टिमणिके आवरणमें घुसेड़ देवें। फिर आवरण का भेदन अच्छी तरह हो- इसलिये सुई को ऊँची नीची फिरावें। इस शस्त्रक्रिया के परिणाम में दृष्टिमणि जलमय रसके खण्डमें प्रवेशित होती है। फिर शनैः शनैः वह गल जाती है और कनीनिका बिल्कुल काली हो जाती है। रोगी की दृष्टि प्रायः अच्छी हो जाती है।

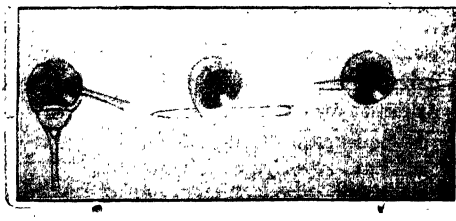

चित्र नं० २३५

२. आवरण का भेदन कर कांच बिन्दु को बाहर निकालना।

(*Cataract Extraction operation with Copsulotomy*)

इस शस्त्रका वर्णन प्रकरण १६ वें में किया गया है। चित्र नं० २३५ देखें।

३. आवरणसह काँच बिन्दु को बाहर निकालना।

(Intracapsular Extraction of Cataract)

इस शस्त्रक्रिया में ४ प्रकार हैं। अ. स्मिथ; आ. नेप; इ. एल्सनिग और ई. वाशकचर की पद्धति अनुसार यह क्रिया होती है। इन सबका वर्णन प्रकरण १६ वें में हो गया है।

४. काँच बिन्दुको हटा कर नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे से निकालना।

(Zermack's subconjunctival extraction of Lens)

शस्त्रक्रिया हेतु—जीर्ण रोहे और उसकी चिकित्सा के हेतुसे तथा अन्य रोगों से कितनीक आँखें अति बिगड़ जाती हैं, फिर वे सर्वदा गन्दी ही रहती हैं। शस्त्रवैद्य चाहे उतना सम्हाल रखें, तो भी ऐसी आंख शस्त्रक्रिया करने पर पक जाती हैं या उनमें सूजन आ जाती है। पकने का कारण यह है कि, गोलक में किये हुए छेद द्वारा कीटाणु भीतर प्रवेश कर जाते हैं और फिर प्रदाह उत्पन्न कराते हैं। ऐसा दुष्परिणाम न आवे और गोलकमें घावको खुला रखना न पड़े, इस उद्देश्य से झरमाक नामक शस्त्रवैद्य ने इस शस्त्रक्रिया का प्रारम्भ किया। उनको अच्छी सफलता मिली। जिससे उनका अनुकरण अन्य चिकित्सकों ने भी किया।

शस्त्रक्रिया विधि—कांचबिन्दुकी अन्य शस्त्रक्रिया के समान नेत्रोंको तैयार करें। चांप चढ़ाकर नेत्रको खुला रखें। नेत्रश्लेष्मावरण को पकड़ कर चित्र नं० २२३ में दर्शाये अनुसार दाहिनी आँख में शस्त्रक्रिया करने के लिये नं० ८ के पास और बांयी आंख में नं० ४ के पास और ग्राफे के शस्त्रको प्रवेश करावें। फिर उसे श्लेष्मावरण के नीचे से जलमय रसके पूर्व रूपमें हो कर शनैः शनैः शुक्लमण्डल के दूसरे सिरे पर अर्थात् दाहिनी आंख में नं० ४ के पास और बांयी आंखमें नं० ८ के पास बाहर निकालें। पश्चात् शुक्लमण्डलमें थोड़ा काट करके शस्त्रको बाहर निकाल लेवें। शुक्लमण्डलके निम्न किनारे को बिना कटे ही रहने देवें।

नेत्रश्लेष्मावरण में एक खड़ा काट कैंची से करें। यह काट ग्राफेका शस्त्र जिस स्थान से प्रवेश कराया है, उसी स्थानसे प्रारम्भ होकर निम्न पलक का प्रारम्भ होता है वहाँ तक जाता है। इस घाव द्वारा कैंची से नेत्रश्लेष्मावरण में एक कोटर उत्पन्न करें अर्थात् नेत्रश्लेष्मावरण को निम्न बाह्यपटलसे अलग करें। सामनेकी ओर काट न करें। फिर एक दूसरी तेज कैंची के एक पत्र को शुक्लमण्डल के किये हुए घाव में प्रवेश करा, उससे शुक्लमण्डल के निम्न किनारे को काट कर घाव पूरा करें।

उपर्युक्त विधि अनुसार शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण में काट न करते हुए कितनेक नेत्रवैद्य प्राफे के शस्त्र को रेखा चित्र नं० २३३ में दर्शाये नं० १० के अंकके पास दाहिनी आंख में प्रवेश करा नं० २ के पास बाहर निकालते हैं। इस तरह बांयी आंखमें नं० २ के पास प्रवेश करा नं० १० के पास बाहर निकालते हैं। उसी शस्त्र से शुक्लमण्डल के भाग को काटें और जब शस्त्र शुक्लमण्डल की परिधि के पास पहुँचे, तब शस्त्र की धार को कुछ आगे फिरा देवें। शुक्लमण्डल का काट पूरा होने पर उसी शस्त्र को नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे जाने देवें और नेत्रश्लेष्मावरण का एक कोटर लगभग ६ मि० मी० लम्बा और ४ मि० मी० चौड़ा बनावें। इसके ऊपर के भाग को बिना काटे ही रहने देवें।

यदि तारामण्डल का टुकड़ा काटना हो, तो चिमटे से पकड़, बाहर खींचकर कैंची से काट लेवें। अब शेष मोतियाबिन्द के आवरण का छेदन रहा है। कितनेक शस्त्रवैद्य प्राफे का शस्त्र जलमय रस के पूर्व खण्ड में प्रवेश करने पर तुरन्त आवरण का भेदन करते हैं। ऐसा न किया हो तो आवरण भेदक कांट से भेदन करें। फिर दो छोटे चम्मच या दो तारामण्डल नियोजक अस्त्र लेवें। एक से शुक्लमण्डल के ऊर्ध्व किनारे पर दबाव डालें और दूसरे से घाव के निम्न सिरे पर दबाव डालें। यदि शुक्लमण्डल और नेत्रश्लेष्मावरण का काट ऊपर के हिस्से में किया हो तो मोतियाबिन्द को बाहर निकालने के लिये शुक्लमण्डल के निम्न भाग पर दबाव डालें। जिससे मोतियाबिन्द नेत्रश्लेष्मावरण के नीचे बनायी हुई कोटर में आ जायगा। वहाँ से उसे धीरे धीरे बाहर निकाल लेवें।

आवश्यकता प्रतीत हो तो जलमय रस के पूर्व खण्ड को धो डालें। तारामण्डल के हिस्से को बाहर निकाला हो, तो भीतर बैठा देवें। फिर नेत्रश्लेष्मावरण के घाव को एक दो टांके लगाकर सी लेवें। कितनेक शस्त्रवैद्य टांके नहीं लगाते। श्लेष्मावरण को अच्छी तरह बैठा देते हैं। फिर मक्युरोक्रोम के प्रवाही का एक बूंद डाल फोहे रखकर पट्टी बांध लेवें। फिर परिचर्या कांचबिन्दु की अन्य शस्त्रक्रिया के समान करें।

५. काँच बिन्दु को भीतर बैठाना या स्थान भ्रष्ट करना।

(Couching of the lens)

इस शस्त्रक्रिया का वर्णन प्रकरण १६ वे में किया गया है।

६. काँच विन्दु निकालने के बाद आवरण की शस्त्रक्रिया।

(*Operations for Post operative capsular opacity*)

इस शस्त्र क्रिया के २ भेद हैं। अ. आवरण भेदन; आ. आवरण का दूरीकरण।

अ. आवरण भेदन—*Needing.*

इस शस्त्र क्रिया का वर्णन प्रकरण १६ वें में किया है।

आ. आवरण का दूरीकरण।

(*Removal of capsule*)

यह आवरण कितनेक रोगियों के नेत्रों में अति गाढ़ा और स्थिति स्थापक गुण से रहित होता है। जिससे कांटे (नं० १११) या फिग्लर के शस्त्र नं० २२४) के उपयोग से उसमें बड़ा छेद नहीं होता और न वह कट सकता। ऐसे रोगियों के नेत्रों में पुनः दृष्टि लाने के लिये मोतियाबिन्द के पश्चात् शेष रहे आवरण को भी निकाल देना पड़ता है।

शस्त्रक्रिया विधि—नेत्र को स्वच्छ, कीटाणु रहित और चेतनाहीन बनावें। नेत्र को खुला रखनेवाली चांप चढ़ावें। गोलक को चिमटे से स्थिर करें। फिर शुक्लमण्डल की परिधि के बाहर के हिस्से में अर्थात् कनपटी की ओर जेगर के त्रिकोणाकार शस्त्र (नं० २२७) से छेद करें। इस छेद में तारामण्डल को पकड़ने के बन्द चिमटे को प्रवेश करावें। फिर उसे खोल उसके दो पत्तों के बीच में तारामण्डल को पकड़ें। उसे शनैः शनैः बाहर खींचें। यदि आवरण तारामण्डल के साथ अति चिपका न हो, तो सरलता से बाहर आ जाता है। संलग्न होने पर बाहर नहीं निकल सकता। उस स्थिति में अधिक बल लगाने पर तारामण्डल या कदाच रञ्जु समूह भी टूट जायगा। अतः बलात्कार न करें। सरलता से जितना आवरण का भाग आवे, उतने को बाहर निकाल लें। फिर मर्क्युरो क्रोम के प्रवाही के बूँद डालें, फोहा रखें और पट्टी बांध देवें। एक ही आँख पर पट्टी बांधें। ७४ घण्टे बाद पट्टी खोल एट्रोपिन और मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही के बूँद डाल, नेत्र को साफ कर पुनः फोहा रखकर पट्टी बांधें। इस तरह ६-७ दिन तक परिचर्या करें।

H. नेत्रदर्पण पर शस्त्रक्रिया।

(*Operations on Retina*)

नेत्रदर्पण शस्त्रक्रिया में मुख्य नेत्रदर्पण विच्छेदार्थ निम्न शस्त्र क्रिय है।

१. नेत्रदर्पण विच्छेदार्थ शस्त्रक्रिया।

(Operations for detachment of Retina)

इस शस्त्रक्रिया की ३ पद्धति हैं। अ. गोनिन; आ. गीस्ट और इ. शाफर की रीति।

अ. गोनिन पद्धति।

(Gonin's method)

प्रकरण १९ वें में नेत्रदर्पण विच्छेद के वर्णन में दर्शाया है कि, विच्छेद को दूर करने के लिये शस्त्रोपचार करने के पहले नेत्रदर्पण में कौन से स्थान पर चीरा हुआ है, यह निर्णय कर लेना चाहिये। इसका निर्णय करने के समय कनीनिका अति प्रसारित होनी चाहिये। फिर नेत्रदर्शक यन्त्र से चीरे को देख शुक्लमण्डल के कौन से भाग में से पंक्ति खिंचने पर उस चीरे को पहुँचे, उसका खयाल कर देशी स्याही या मेथिलिन ब्ल्यू के प्रवाही से शुक्लमण्डल के किनारे के पास एक चिह्न कर लेवें। दन्तुर धारामण्डल (Ora-Serreta), जो हथेली के समान है और जो नेत्र दर्पण में बाह्य सिरा है, उसमें चीरा कितनी दूरी पर है, उसे लक्ष्य में रख लेवें। इसके लिये दर्शन नाड़ी के सिरे के आगे कितनेक दर्शन नाड़ी सिरे रखने पर चीरे का स्थल विदित हो, यह नाप निकाल लेवें। दर्शन नाड़ी के सिरे का नाप १॥ मि० मी० है। अतः जितने सिरे का परिमाण निश्चित किया जाय, उतने से गुणने पर चीरे के स्थान का नाप निकल सकता है।

प्रकरण १ ले में लिखे अनुसार शुक्लमण्डल के किनारे से ८ मि० मी० की दूरी पर दन्तुर धारामण्डल अवस्थित है। अतः जो नाप ऊपर निकाला हो, उसमें ८ मि० मी० मिलाने पर शुक्लमण्डल के किनारे से कितनी दूरी पर चीरा है, उसका खयाल आ सकेगा। उदा० नेत्रदर्शन यन्त्र से प्रतीत हुआ है कि, चीरा दन्तुर धारामण्डल से दर्शन नाड़ी के ४ सिरे जितना दूर है, तो १॥ × ४=६ मि० मी० हुआ। उसमें ८ मि० मी० मिलाने पर १४ मि० मी० की दूरी शुक्लमण्डल के किनारे से चीरे के स्थल के बीच में है।

उपर्युक्त पद्धति से और बत्ती के प्रकाश की सहायता से चीरे का स्थल निर्णित करके शस्त्रक्रिया का प्रारम्भ करना चाहिये।

आवश्यक शस्त्र:—

१-आंख खुली रखने की चाँप नं० ७६।
२-नेत्रश्लेष्मावरण को पकड़ने का चिमटा नं० ७५।
३-नेत्रश्लेष्मावरण काटने की कैंची नं० ८८।
४-सादा कम्पास या एम्सलरका नेत्र बाह्य पटल मापक यन्त्र नं० २३६
५-ग्राफे की छुरिका नं० १०८।
६-पेक्वेलिन का विद्युत् युक्त दम्भक यन्त्र नं० ४३।
७-सुई डोरा तथा सुई और केटगट आदि।

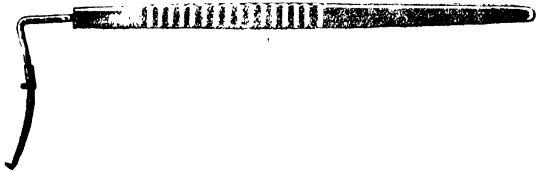

चित्र नं० २३६
एम्सलर का नेत्रबाह्यपटल मुद्रक
Amsler's scleral marker

शस्त्रक्रिया विधि—नेत्र पर चांप लगाकर खुला रखें। जिस भाग में चीरा होने का निर्णय किया हो, उस भाग में नेत्रश्लेष्मावरण का टुकड़ा काटें। इस टुकड़े को गोलक की पिछली ओर चिपका हुआ रहने देवें। फिर नेत्रबाह्यपटल को ठीक साफ करें। यदि चीरे वाले भाग पर कोई मांस पेशी आती हो, तो उसे काटकर दो टुकड़े करने पड़ते हैं। पेशी को नेत्रबाह्य-पटल से मुक्त कर फिर जिस भाग में चीरा होने का अनुमान, करके चिह्न किया हो, उस भाग में से ग्राफे के शस्त्र को गोलक में प्रवेश करावें। ऐसा करने पर विच्छेद स्थल पर जो प्रवाही संगृहीत हुआ होगा, वह निकल जायगा और दम्भक यन्त्र की लघु सलाका को प्रवेश करने का मार्ग मिल जायगा। पश्चात् दम्भक यन्त्र की सलाका को लाल हो जाने पर प्रवेश करावें। एक सेकण्ड रख कर निकाल लेवें।

उस घाव में से थोड़ा बहुत कांच रूप रस बाहर निकल जायगा।

दम्भक यन्त्र निकाल लेने पर तुरन्त नेत्रश्लेष्मावरण का टुकड़ा, काटकर पिछली ओर हटा दिया है, उसे स्वस्थान पर रख देवें। आवश्यक हो तो टाँके लगा लेवें। मांस पेशी को काटी हो, तो उसके दोनों सिरे को सुई और कैटगट से जोड़ लेवें। नेत्रश्लेष्मावरण को सी लेने पर मर्क्युरो क्रोम या आर्जिरोल के प्रवाही का १ बूँद डाल, फोहा रखकर दोनों नेत्रों पर पट्टी बांध लेवें। रोगी को १० दिन लिटा रखें। पट्टी को दूसरे दिन खोलें। नेत्र को साफ कर मर्क्युरोक्रोम और एट्रोपिन के प्रवाही के बूंद डाल कर पुनः पट्टी बांध देवें। ११वें दिन बिछौने पर कुछ बैठने देवें। १५ दिन बाद कुछ फिरने देवें। यदि तारामण्डल चिपक गया होगा, तो रोगी की नष्ट दृष्टि प्रायः आ जायगी।

आ. गीस्ट की पद्धति।

(Guist Method)

इस शस्त्रक्रिया में दम्भक यन्त्र की आवश्यकता नहीं रहती; किन्तु १ मि० मी० की वेधनिका (Trephine) तथा क्यास्टिक पोटास की नोकदार सलाका की आवश्यकता रहती है।

शस्त्रक्रिया विधि—जिस भागमें चीरा हो, उस भागको खुला करने की क्रिया, जैसी गोनिन की शस्त्रक्रियामें दर्शाया, उस अनुसार करें। फिर चीरे के चारों ओर वेधनिका से २-३ मि०मी० के अन्तर पर नेत्रबाह्यपटल में छेद करें। उन छेदों से केवल बाह्यपटल ही काटना चाहिये। नेत्र मध्यपटल को किञ्चित् भी हानि न होनी चाहिये। फिर प्रत्येक छिद्र के मूलमें क्यास्टिक पोटास की नोक लगावें। अधिक क्यास्टिक पोटासको एसेटिक एसिड के जल मिश्रित प्रवाही से धो डालें। फिर मांसपेशी और नेत्रश्लेष्मावरण काटा हो, उसे सीलेवें। मर्क्युरो क्रोमके प्रवाही का १ बूंद डाल, फोहा रखकर पट्टी बांध लेवें। परिचर्या गोनिन की क्रिया के अनुसार करें। १० दिन तक रोज एट्रोपिन और मर्क्युरो क्रोमके बूंद डालें और पट्टी बांधें। १५ दिनके बाद रोगीको उठने देवें।

इ. शाफरकी पद्धति

(Shaffer (Larson, Weve, Meller)'s Method)

इस पद्धति में शस्त्रगोनिन क्रिया के समान चाहिये दम्भक यन्त्रकी आवश्यकता नहीं है। उसके स्थान पर डायाथर्मी (नं० १७८), उसके अनुरूप दस्ता और सुई चाहिये।

इस पद्धति का मुख्य उद्देश्य यह है कि, नेत्रदर्पण में चीरा हो, उसके चारों ओर के नेत्रदर्पण के भाग पर डायाथर्मी की सुई को लगा किञ्चित् दहन करने से वह निम्न भागको चिपक जायगा। जिससे चीरा बिल्कुल अलग होने पर विच्छेद दूर हो जाता है।

शस्त्रक्रिया विधि—चीरेका स्थान निश्चित् कर, गोनिन पद्धति के अनुसार नेत्रबाह्यपटल को खुला करें। फिर चीरेके चारों ओर के नेत्रबाह्य-पटल में डायाथर्मी की सुई को प्रवेश करावें और विद्युत्प्रवाह चालू करने पर उस भागमें किञ्चित् चरराट हो, कि तत्काल प्रवाह बन्द कर देवें और सुई को निकाल लेवें। इस तरह चीरे के चारों ओर चाहिये उतने दम्भ करें। प्रत्येक दम्भ २-२ मि० मी० की दूरी पर करें। ऐसा करने पर चीरेके इर्दगिर्द का नेत्रदर्पण का भाग चिपक जायगा। शस्त्रक्रिया के पश्चात् की परिचर्या गोनिन पद्धति के अनुसार करें।

जिस तरह यह शस्त्रक्रिया शाफर के नामसे प्रसिद्ध है उस तरह वह लार्सन, विवि और मेलर के नामसे भी कही जाती है।

I. नेत्रगोलक के भीतर प्रवेशित पदार्थ को निकालना।

Operations for Removal of foreignbdies from Eyeball)

चोट लगने पर नेत्रगोलक के भीतर लोह लकड़ी आदि पदार्थ घुस जाते हैं। उनमें लोहमय और लोहे से अन्य, ऐसे दो विभागों की शस्त्र-क्रिया अलग,अलग प्रकार से होती हैं। उनका क्रमशः वर्णन करते हैं।

१. लोहकण को नेत्रगोलक में से निकालना।

(Removal of Iron foreign body)

इस विषयको पहले प्रकरणोंमें,विशेषतः राक्षसी लोहचुम्बक चित्र नं० ४५ के वर्णन के साथ कांच रूप रसके रोगों के प्रकरण में तथा अन्य प्रकरण में लिखा गया है। पुनः पाठकों को विशेष परिचय देने के लिये भी कुछ पंक्तियों में लिखता हूँ।

क्रिया विधि—रोगी को टेबल पर लिटावें या खड़ा रखें। पहले नेत्र को शुद्ध, कीटाणु रहित और चेतनाहीन बना लेवें। फिर राक्षसी चुम्बक केनोकवाले भाग को धीरे से खुली रखी हुई आंख के पास लाते रहें, जब नेत्र के समीप आवें, तब उसे गोलक की एक ओर रख नेत्र के नजीक लाते रहें। जब नोक ठीक शुक्लमण्डल के समीप व्यवस्थित हो जाय तब

विद्युत्प्रवाह चालू करके लोह चुम्बक को गतिमान करें। बहुधा लोह कण तारामण्डल का भेदन कर या तारामण्डल और दृष्टिमणि के बीच में से निकल कनीनिका द्वारा जलमय रसके पूर्व खण्ड में आ जायगा। वहाँ आने पर लोह चुम्बक को हटा लेवें। फिर त्रिकोणाकार शस्त्र से जलमय रसके पूर्व खण्ड पर काटकर उसी चुम्बक से या चिमटे से बाहर निकाल लेवें। फिर एट्रोपिन और मर्क्युरोक्रोमके प्रवाहीके बूँद डाल फोहे रख कर पट्टी बांध देवें। कुछ दिनों तक रोज एट्रोपिन और मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही के बूँद डालते रहें। करीब ६ दिन तक पट्टी रखें।

२—नेत्रगोलक के भीतर से लोह से इतर पदार्थ को निकालना

Removal of Non ferrous foeign body from the Eye ball.

लोह से अन्य—लकड़ी, पत्थर, कांच, सोना, चांदी, तांबा, शीशा आदि धातुओं के कण अकस्मात् होने पर नेत्र में घुस जाते हैं। इनमें सुवर्ण, रौप्य के शुद्ध कण हो, तो वह कुछ समय तक नेत्र में रह सकता है। शेष द्रव्य नेत्र में शोथ उत्पन्न करता है। फिर वह आंख चली जाती है और दूसरी स्वस्थ आंख को भी हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है।

बाह्य पदार्थ गोलक के भिन्न-भिन्न भाग में प्रवेश कर जाता है। उन उन स्थानों के अनुरूप निकालने की क्रिया में भी अन्तर किया जाता है।

जलमय रस के पूर्व खण्ड में से बाह्य पदार्थ को निकालना—इसके लिये ग्राफे की छुरिका या त्रिकोणाकार शस्त्र से शुक्लमण्डल और बाह्यपटल के संगम में छेद करें। उस छेद में से चिमटे को भीतर प्रवेश करा बाह्य द्रव्य को निकाल लेवें। इस शस्त्रक्रिया में विशेष कठिनता नहीं है।

तारामण्डल में बाह्य पदार्थ—तारामण्डल को चिपक जाने पर उपर्युक्त विधि से छेद करें। फिर तारामण्डल को पकड़ने के चिमटे के बाह्य पदार्थ सह तारामण्डल के भाग को बाहर निकाल उस पदार्थ सह तारामण्डल के कुछ अंश को कैंची से काट देवें। फिर तारामण्डल के सिरे को यथास्थान ठीक बैठा देवें। जलमय रस के पूर्व खण्ड में रुधिर हो तो नमक जल से साफ करें। फिर नेत्र को स्वच्छ कर, मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही का १ बूँद डाल, फोहा रखकर पट्टी बांध देवें।

दृष्टिमणि के भीतर बाह्य पदार्थ—दृष्टिमणि को बाह्य पदार्थ चिपकने पर व्यथाजन्य मोतियाबिन्द होने की सम्भावना है। ऐसी स्थिति में बाह्य पदार्थ के साथ दृष्टिमणि को भी बाहर निकालना पड़ता है। इसकी शस्त्रक्रिया मोतियाबिन्द की शस्त्रक्रिया में दी है।

काँच रूप रस में बाह्य पदार्थ—कांच रूप रस में बाह्य पदार्थ का प्रवेश होने पर स्थिति गम्भीर मानी जाती है। यदि नेत्रदर्शक यन्त्र से वह प्रतीत होता हो, स्थान निर्णित हो जाता हो, तो नेत्र बाह्य पटल में छेद कर, उसमें से चिमटे को प्रवेश करा उसे निकाल लेने का प्रयत्न करें। वह निकल जायगा, तो ही आंख बचने की सम्भावना है। अन्यथा गोलक को निकाल देने के अतिरिक्त उपाय नहीं है।

नेत्रगोलक की मांस पेशियों पर शस्त्रक्रिया।

(Operations on Ocular muscles)

मांसपेशियों पर ३ प्रकार की शस्त्रक्रिया की जाती हैं। १. पेशी का सिरा छेदन; २—पेशी का लघुकरण; ३—पेशी को स्थलान्तर में चिपकाना।

मांशपेशियों के रोगोंके प्रकरण में लिखा गया है, उस अनुसार रोगी की दृष्टिमें टेढापन हो जाय तब शस्त्रक्रिया एक या दो साथ में की जाती है। कब शस्त्रक्रिया करना और किस तरह करना, इस सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न नेत्रवैद्यों ने भिन्न-भिन्न नियम बनाये हैं। हम जिन नियमों का पालन करते हैं, वेही अत्र दर्शाते हैं।

अनुसङ्गी तिर्यक् दृष्टि में :—

१—बालक की आँखमें चश्मा के योग्य जो कसर हो, दूर कर योग्य चश्मा देवें। फिर १ वर्ष पर्यन्त राह देखें। एवं दोनों नेत्रों की दृष्टि एक साथ कार्य सके, ऐसे उपायों की योजना करें। ये उपाय पेशीके रोगीके प्रकरणमें दर्शाये हैं।

२—शस्त्रक्रिया करनी हो, तो पहले दृष्टि अच्छी है और आवश्यक परिमाण में है या नहीं यह निश्चय कर लेवें।

३—६ वर्षकी की आयुके पहले शस्त्रक्रिया करने पर अच्छा परिणाम आने की सम्भावना है।

पेशीवधजनित तिर्यक् दृष्टिमें—योग्य उपचारों-ओषधि, विद्युत् आदि

को १ वर्ष तक किये बिना शस्त्रक्रिया न करावें। इस शस्त्रक्रिया में सफलता कम मिलती है। छेदन के साथ सामन रही पेशी को भी आगे बढ़ानी पड़ती है।

गोलकके अन्तरावर्त्तनमें सामान्य तिर्यक् दृष्टि—इस तरह टेढापन हो, बाह्यसरला पेशीमें शक्ति हो तो अन्तर सरला पेशीका छेदन करना ही पूरा होता है। टेढापन अधिक हो और बाह्यसरला पेशीमें शक्ति न हो तो अन्तर-सरला पेशी का छेदन तथा बाह्यसरला पेशीका लघुकरण, ये दो क्रिया करनी पडती हैं।

गोलक का बाह्यावर्त्तन—यह स्थिति हुई हो, तो बाह्यसरला पेशीका छेदन और अन्तर सरला पेशीका लघुकरण, ये दो क्रिया की जाती हैं।

पेशी सिरा छेदन।

(*Tenotomy*)

आवश्यक शस्त्र—

१—आंख खुली रखने की चांप नं० ७५

२—गोलक को स्थिर करने का चिमटा नं० ७६

३—गुथरी का दोहरा नोकदार आंकडा नं० २३७

४—चिमटा मुड़ा हुआ आंकड़ा नं० ८९

५—सरल नोक रहित कैंची नं० १०५

६—सुई पकड़ने की संडासी नं० १९१

७—अर्द्धमुड़ी हुई सुई नं० १९२ डोरे आदि।

रोगीकी तैयारी—समझने वाले लड़के या बड़े मनुष्य के नेत्रमें कोकैन एडिनेलिन डाल कर नेत्रको चेतनाहीन करें तो शस्त्रक्रिया में बाधा नहीं पहुँचती। छोटे बच्चों को क्लोरोफार्म सुँघाकर बेहोस बनाना पड़ता है।

चित्र नं० २३६

शस्त्रक्रिया विधि—चित्र नं० २३६ देखें। रोगीको टेबलपर लिटावें। दहिनी आंख के भीतर की सरला पेशी के छेदनार्थ शस्त्रवैद्य रोगी के शिर के पास खड़ा रहता है; और बांयी आंख की सरला पेशी के छेदनार्थ रोगी के बाजू में उसके मुखके समाने खड़ा रहता

है। मांसपेशी का सिरा गोलक को चिपकता है, उस भाग और शुक्लमण्डल के किनारे के बीच के नेत्रश्लेष्मावरण के भाग को चिमटे से पकड़ चिमटे के बाहर की ओर कैंची से एक छेद करें। इस छेद को ऊपर और नीचे कुछ दूरी तक बढ़ावें। इस छेद द्वारा पेशी के शिरे की ओर नेत्रश्लेष्मावरणको गोलक से पृथक् करें।

नेत्रश्लेष्मावरण को बांये हाथमें रखेहुए चिमटेसे पकड़, दाहिने हाथ में रखेहुए आंकड़ेको पेशीके नीचे निकाले,पेशीका पूरासिरा आंकड़ेमें आजाना चाहिये। फिर आंकड़ेको बांये हाथमें लें (चिमटे को पहले से ही बांये हाथ में से छोड़देना चाहिये) फिर दाहिने हाथमें कैंची पकड़ उससे पेशीको काट देवें। पेशीका कोई डोरा रह गया हो, तो उसे आंकड़े पर उठाकर काट देवें।

गुथरीका दोहरा आंकड़ा कभी कभी गोलक को फिराने में सहायता पहुँचाता है। फिर भी कितनेक शस्त्रवैद्य उसके बिनाही चला लेते हैं।

पेशीका छेदन होनेके साथ ही गोलक जो पहले भीतरके भागकी ओर या बाहर की ओर मुड़ा होता है, वह सीधा हो जाता है। यदि गोलक ठीक सीधा हो गया हो तो पेशीको या नेत्रश्लेष्मावरण को टांके लगाकर सी लेने की आवश्यकता नहीं है। यदि गोलक चाहिये उससे अधिक सामने की ओर फिर जाय, तो टेनन के आवरण और नेत्रश्लेष्मावरण में टांके लगा लेवें।

सब क्रिया समाप्त होने पर नेत्रको बन्द कर गोज और फोहा रखकर पट्टी बांध लेवें। दूसरे दिन पट्टी खोल,नेत्रको धोकर पुनः पट्टी बांध देवें। पांचवें या छठवें दिन घाव भर जाता है। फिर पट्टी निकाल डालें। शस्त्र-क्रिया के स्थानमें कुछ लाली दो सप्ताह तक प्रतीत होती है।

अकस्मात्—अनुभव शून्य शस्त्रवैद्य पेशीको काटनेमें कभी गोलक में घाव कर देता है। यह अकस्मात् भयंकर माना जाता है। बहुधा नोक रहित कैंचीसे ऐसी आपत्ति नहीं आसकती। कदाच घावहो जाय, तो घाव पर नेत्र श्लेष्मावरण को सी लेवें और आंख पर पट्टी बांध देवें।

पेशीका लघुकरण

(*Advance ment operations*)

आवश्यक शस्त्रः—पेशीशिराछेदनमें लिखे हुए शस्त्र तथा प्रिन्सके पेशी लघुकरण चिमटे दो, (दाहिने बांये—चित्र नं० २४०-२४१)

वह शस्त्रक्रिया भिन्नभिन्न शस्त्रवैद्य अलग अलग प्रकारसे करते हैं। इन सबमें अधिक प्रचलित वर्थकी रीति अत्र देते हैं। इस क्रियामें पेशी कटनेसे कुछ आगे बढ़ जाती है।

वर्थ की शस्त्रक्रिया विधि—चित्र नं० २४२ देखें। गोलक को चेतनाहीन और कीटाणुरहित बनाकर नेत्र को खुला रखने वाली कमानी चढ़ावें। नेत्र श्लेष्मावरण को चिमटे से पकड़ कर आध इञ्च लम्बाईका खड़ा घाव करें। यह घाव पेशी के छेदनमें किया जाता है उसकी अपेक्षा शुक्लमण्डलकी

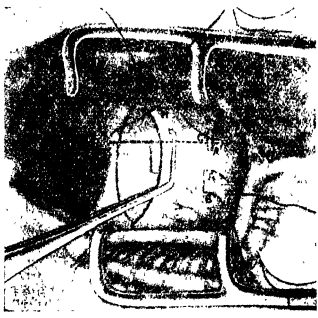

चित्र नं० २४२
वर्थ की नेत्रपेशी लघुकरण क्रिया।

अपेक्षा अधिक नजीक होता है। टेननके आवरणमें भी उसी तरह घाव करें। नेत्र श्लेष्मावरण और टेननके आवरण उठा प्रिन्सके चिमटेके एक पत्त को मांसपेशी के नीचे दाखल करें। दूसरा पत्त ऊपर रहे हुए नेत्र श्लेष्मावरण पर रहना चाहिये। चिमटेको बन्द करने पर पेशीका सिरा, टेननका आवरण और नेत्र श्लेष्मावरण, तीनों चिमटेमें आ जावेंगे। फिर पेशी के सिरेको, जहां वह नेत्र बाह्य पटलमें चिपका है। वहां से कैंची से काट देवें। चिमटेको उठाने पर पेशी का निम्न भाग स्पष्ट प्रतीत होगा।

एक डोरा पोई हुई सुई को चिमटे से कुछ बाहर नेत्रश्लेष्मावरण, टेनन का आवरण और मांस पेशी के पास से डालकर पेशी के नीचे से बाहर निकालें। पुनः उसी सुई को बाहर निकली हो, वहाँ से कुछ ऊपर

में या नीचे पुनः प्रवेशित करावें। किन्तु इस समय मांस पेशी, टेनन का आवरण और नेत्रश्लेष्मावरण में से निकालें। इस टांके में पेशी के नीचे या ऊपर का लगभग चौथा भाग आ जाता है। उसी तरह दूसरे टाँके में पेशी के ऊपर का या नीचे का चौथा भाग ले लेवें। प्रत्येक चौथे भाग में २-२ डोरे हों, उनको एक एक गाँठ बाँध लेवें। जिससे ४ डोरे थे, उसके स्थान पर दो हो जाते हैं। एक ऊपर के चतुर्थ भाग का, एक नीचे के चतुर्थ भाग का। इन दो डोरे में से एक में सुई पोवें। उस सुई को कुछ बाहर के भाग में नेत्रश्लेष्मावरण, टेननका आवरण और मांसपेशी में से निकाल, चिमटे के नीचे से लेकर शुक्लमण्डल को किनारे के पास नेत्रबाह्य पटल में से निकालें। यहाँ पर यह लक्ष्य में रखें कि सुई नेत्रबाह्य पटल के नीचे से न निकले; नेत्र बाह्यपटल की आधी मोटाई में से केवल निकलनी चाहिये। इस सुई में रहा हो उस डोरे को पहले चिमटी के बाहर रहे हुए डोरे के सिरे के साथ कुछ ढीला बांधकर एक ओर रख देवें। उसी अनुसार नीचे के दो डोरे को बांधें। उनमें से एक में सुई पोहकर पेशी और चिमटे के नीचे से निकाल शुक्लमण्डल के किनारे के पास से निकाल, दूसरे सिरे के साथ शिथिल बांध देवें।

फिर नेत्रश्लेष्मावाण, टेनन का आवरण और पेशी के भागको चिमटे में पकड़ रखा है, उसे कैंची से काट देवें। चिमटे सह गोलक में पृथक् कर देवें। पश्चात् जो दो डोरे ढीले बांधे हैं, उनको पकड़ अच्छी तरह दृढ़ कर गांठ लगा देवें। ऐसा करने से पेशीका दूरका भाग शुक्लमण्डलके किनारे के साथ संलग्न हो जायगा। क्रिया समाप्त होने पर नेत्र को साफ कर गोज और फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। इस क्रिया से गोलक मध्यमें आगया होगा। लगभग २-३ दिन पट्टी रखें। फिर पट्टी खोलकर नेत्र को धोकर पुनः पट्टी बांध देवें। ८-१० दिन में पट्टी को निकाल डालें। उतने में घाव बहुधा भर जाता है। जिस स्थान पर घाव किया होगा, उस स्थान पर कुछ दिनों तक कुछ उभाड़ जैसा दीखेगा।

३—पेशी की स्थलान्तर में संलग्नता।

(*Transplantation*)

इस शस्त्र क्रियामें ऊर्ध्व सरला और अधःसरला पेशीके आधे हिस्से को बाह्य सरला अथवा अन्तर सरला पेशी जो निर्बल हुई हो या स्तम्भित हुई हो, उसके साथ चिपका दिया जाता है। ऐसा करने पर ऊर्ध्वसरला और

अधःसरला पेशी का संकोच होता है तब स्तम्भित पेशी का कार्य हो जाता है। कारण, बाह्यसरला पेशी के ऊपर और नीचे के सिरे की दूरी ऊर्ध्वसरला अथवा अधःसरला पेशीसे ७-८ मि० मी० से अधिक नहीं है, अर्थात् बाह्य-सरला से अधःसरला या ऊर्ध्वसरला पेशी के बीचका अन्तर ७-८ मि० मी० है। ऊर्ध्वसरला और अधःसरला पेशी के सिरे लगभग १० मि० मी० तक पहुँचे हैं। अतः इन दो में से किसी भी एक पेशी का आधा हिस्सा चिपकाने के लिये लिया जाय, तो ५ मि० मी० जितना मिलजाता है। वह पेशी भाग पूरा सबल माना जायगा।

शस्त्रक्रियाविधि—नेत्रको स्वच्छ, कीटाणुरहित और चेतनाहीन करें। आंख खुली रखने वाली चांप चढ़ावें। यदि बाह्यसरला पेशी के साथ ऊर्ध्वा और अधःसरलाका आधा हिस्सा चिपकाना हो, तो शुक्लमण्डल के किनारे के बाहर की ओर, किनारे से ५ मि० मी० की दूरी पर नेत्रश्लेष्मावरण में एक काट करें। यह काट गोलक के आधेभागका श्लेष्मावरण कटे, उतना बड़ा करें। काट करने बाद बाह्यसरला पेशीको खुली करें और उसके नीचे प्रिन्सका चिमटा पेशीके सिरेसे ६-७ मि० मी० दूरी पर लगावें। फिर शुक्लमण्डल को चिपके हुए इस पेशी सिरेको काट देवें। करीब २ मि० मी० लम्बा सिरा शुक्लमण्डल को चिपका हुआ रखें।

टेननका आवरण, जो ऊर्ध्वसरला पेशी और बाह्यसरला पेशी के बीच में रहा है, उसमें टेढ़ापन के लिये प्रयोजित चिपटे आंकड़े को प्रवेश करावें। टेनन के आवरण को शुक्लमण्डल से करीब ६ मि० मी० की दूरी पर काट देवें। उसी आंकड़े को ऊर्ध्वसरला पेशी के नीचे प्रवेश करा उसे आंकड़े पर उठावें। फिर उस उठायी हुई पेशी की धारसे २ मि० मी० की दूरी पर और पेशीके सिरे के मध्य भागमें एक डोरा पोही हुई सुई को भीतर से प्रवेश कराकर निकालें। उसी सुई को पुनः २ मि० मी० की दूरी पर बाहर से प्रवेश कराकर भीतर निकालें। ऐसा करने पर ऊर्ध्वसरला पेशी अच्छी तरह पकड़ जायगी। उसी तरह अधःसरला पेशीमें भी डोरा डालकर पकड़ सकें ऐसी योजना करें। फिर एक डोरे के दोनों सिरे पर सुई पोवें। इन सुइयों को एक दूसरे से करीब २ मि० मी० के अन्तर पर बाह्यसरला पेशी के काटे हुए भाग के ऊपर में प्रवेश करावें। उन्हीं सुइयों को पुनः ऊर्ध्व-सरला पेशी के कटे हुए सिरे में से निकालें।

सहायक वैद्य शुक्लमण्डलके भीतरकी ओर के नेत्रश्लेष्मावरणको पकड़ गोलकको बाहरकी ओर फिरावें। गोलक बाहर फिरनेपर ऊर्ध्वसरला

और बाह्य सरलाको जोड़नेमें टांकेको खींचकर गांठ लगावें । उसी तरह अधःसरलाके टुकड़ेको बाह्य सरला के टुकड़ेकी नीचेकी ओर जोड़ें । क्रिया समाप्त होनेपर टांकेके डोरेके शेष भागको काट देवें, जिससे वह अन्तराय उत्पन्न न करें । जो टांके ऊर्ध्वसरला और अधःसरलाको स्थिर करनेके लिये लगाये हों, उनको निकाल डालें ।

पाठकों को विदित हुआ होगा कि उपर्युक्त क्रिया से ऊर्ध्वसरला पेशी का आधा हिस्सा बाह्यसरला पेशी की ऊर्ध्वधारा के साथ तथा अधःसरला पेशी का आधा हिस्सा बाह्यसरला पेशीकी निम्न धारा के साथ जोड़ दिया है । फिर जो बाह्यसरला पेशी का कटा हुआ सिरा रहा, उसे शुक्लमण्डल के साथ रहे हुए २ मि० मी० के टुकड़े के साथ तथा नेत्र बाह्यपटल के साथ दोहरे टांके से सी लेवें । इस क्रिया में जो प्रिन्सका चिमटा बाह्यसरला पेशी में लगाया है, उससे बाह्यसरला पेशी को शुक्लमण्डल के किनारे तक खींच सकते हैं और टांका लगा सकते हैं । टांका लगाने के पश्चात् नेत्रश्लेष्मावरण के काट को रेशम के डोरे से सी लेवें । फिर मर्क्युरोक्रोम के प्रवाही के १-२ बूंद डाल, नेत्रपर फोहा रखकर पट्टी बांध लेवें । २-३ दिन बाद पट्टी खोल, नेत्र को साफकर, मर्क्युरोक्रोम के बूंद डालकर पुनः पट्टी बांध देवें । ८ वें दिन पट्टी को खोल दें और टांके निकाल डालें ।

K. नेत्रगोलक पर शास्त्रक्रिया

(*Operations upon the Eyeball*)

नेत्रो लकपरशस्त्रक्रिया में मुख्य २ प्रकार हैं । (१) गोलक को निकाल देना; (२) गोलकको खाली करना ।

१—नेत्रगोलक को निकाल देना

(*Enucleation of the Eyeball*)

इस क्रियाका वर्णन पहले प्रकरण १२ वें में आगन्तुक व्यथा जन्य विद्रधिके साथ किया है ।

२—गोलकको खाली करना

(*Evisceration of Eyeball*)

गोलकका विद्रधि होनेपर गोलकको निकाल देनेके परिणाम में कभी-कभी कीटाणु या विष दर्शन नाड़ी द्वारा मस्तिष्कमें पहुँच जाता है । फिर मस्तिष्कावरण प्रदाह होकर रोगीका जीवनभयमें आजाता है । इस प्रदाहके

भयसे कितनेक नेत्रवैद्य पकी हुई आंखको निकालनेकी बदलीमें उसे खाली कर देते हैं।

रोगीकी तैयारी—नेत्रकी अन्य शस्त्र क्रियाओंके समान तैयारीकी जाती है, रोगीको टेबलपर लिटाते हैं। बहुधा यह शस्त्रक्रिया भी गोलक को निकाल देने के समान रोगी को बेहोश करके की जाती है।

शस्त्रक्रिया विधि—पहले शुक्लमण्डलमें मांसकी छुरिकासे एक छेद करें। जिस तरह मोतियाबिन्दकी शस्त्रक्रियामें किया जाता है। उस तरह छेद करें। फिर कैंचीसे शुक्लमण्डलके शेष भागको काट देवें। प्रायः दृष्टिमणि स्वयमेव बाहर निकल आती है। वैसा न होनेपर कुछ दबाव डालनेपर बाहर निकल आयेगी। फिर म्युलकी पाडड़ी (Mule's Evisceration scoop चित्र नं० २४३) को नेत्रबाह्यपटल और तारामण्डलके बीच और फिर नेत्रमध्यपटलके बीच प्रवेश करा उससे नेत्रमध्यपटलको अलग करें। इस क्रियामें सम्हाल रखना चाहिये कि, नेत्रमध्यपटल हो सके उस तरह बिना टूटे बाहर निकल आवे; अन्यथा बहुत रक्तस्राव होता है। फिर नेत्रमध्यको दर्शननाड़ीके सिरेके पासमें मुक्त करें। नेत्रमध्यपटल, नेत्रदर्पण और कांच रूपरसको बाहर निकाल डालें।

चित्र नं० २४३
नेत्रमल अपसारण शस्त्र
Evisceration scoop

कितनेक नेत्रवैद्य इस रिक्त गोलकके स्थानमें कांचका गोलक बैठा देते हैं। कितनेक वैसाही रहने देते हैं। १०-१२ दिनमें घाव भर जाता है। फिर कृत्रिम कांचका नेत्र बैठा सकते हैं।

L. दर्शन नाड़ी का छेदन

(Cutting of the Optic nerve

यह शस्त्रक्रिया अधिमन्थसे नष्ट हुई किन्तु वेदना करने वाली आंखोंपर की जाती है। आशुकारी अधिमन्थमें नेत्र और शिरमें असह्य पीड़ा होती है। वेदना और रोग की तीव्रताके अनुपातसे दृष्टि कुछ-न-कुछ

समयमें बन्द होजाती है। दृष्टि जानेपर भी कितनेक २ गयोंको अतिशय दर्द होता रहता है। ऐसी स्थितिमें २ उपाय हैं। (१) तारामण्डलका छेदन; (२) गोलकको निकाल देना।

तारामण्डलका छेदन करनेपर कितनेक नेत्रमें रक्तस्राव होता है। इस भयसे या तारामण्डलका छेदन करनेपर भी क्वचित् पीड़ा शान्त नहीं होती। इस हेतुसे गोलकको निकाल देनेकी सलाह दी जाती है। कितनेक रोगी गोलकको निकलवानेका स्वीकार नहीं कर सकते। ऐसे रोगियों के लिये दर्शननाड़ी अर समीपमें रही हुई संवेदक नाड़ीका छेदन कर देने पर पीड़ा बिल्कुल शान्त होजाती है।

शस्त्रक्रिया विधि—रोगीको प्रायः क्लोरोफार्म या इथर सुंघाकर बेहोश करें। नेत्रको सामान्य नियम अनुसार शस्त्रक्रियार्थ तैयार करें। गोलकको खुला रखनेकी चांप चढ़ावें। नेत्रश्लेष्मावरणको शुक्लमण्डलसे कुछ दूरी पर भीतरके भागमें (नाककी ओर) चिमटेसे पकड़, उसमें लम्बा छेद करें। फिर मांश पेशीको पकड़नेके आंकड़ेको छेदमें प्रवेश करा भीरतकी सरला पेशीको पकड़ें। उस पेशीमें दो सुई डोरेसह प्रवेश करावें। एक सुई शुक्ल-मण्डलकी ओर तथा दूसरी नाककी ओर के भागमें। फिर इन सुईके बीचके पेशी भागको कैंचीसे काट देवें।

एक मुड़ी हुई दृढ़ कैंची (नं० ९०) को दाहिने हाथ में तथा बांये हाथमें चिमटेको पकड़ें। चिमटेसे शुक्लमण्डलकी ओर की भीतरकी सरल पेशीके सिरेको पकड़ गोलकको बाहरकी ओर फिरावें। गोलकको बाहरकी ओर खींच, कैंचीको गोलकके पिछली ओर लेजायँ। फिर दर्शननाड़ी को कैंचीसे शोधकर गोलककी पिछली ओर में काट देवें। दूसरा काट गोलक के लगभग करें। दो काट करनेपर कैंचीको २-३ बार खोल बन्द कर गोलकके पीछे की ओर अवस्थि सूक्ष्मनाड़ी तन्तुओं को काट देवें।

उस समय बहुत रुधिर निकलेगा। किन्तु साधारण दबाव डालनेपर शनैः शनैः स्राव बन्द हो जायगा। फिर भीतरकी सरल पेशीके दोनों सिरेको सुई डोरेसे सी लेवें। उस पर श्लेष्मावरणको सी लेवें। दोनों पलकोंको परस्पर सी लेवें। पलकको सीनेका मुख्य हेतु यह है कि शुक्ल-मण्डलको चेतना देने वाली नाड़ी कट जानेसे, उसे खुला रखने पर वह शुष्क होकर निस्तेज बन जाता है। या उस पर बड़ा क्षत हो जाता है। पलक को सी लेने पर यह आपत्ति टल जाती है। पलकों को १० दिन तक उस स्थिति में रखें। फिर खोल देवें।

परिणाम—शस्त्रक्रिया होनेके साथ ही रोगीकी मूल पीड़ा शान्त हो जाती है। यदि गोलकके पीछे रक्तस्राव हुआ हो, तो उसके दबावसे एकाध दिन सामान्य वेदना रहती है, फिर वह भी शमन हो जाती है।

M. नेत्रगृह पर शस्त्रक्रिया।

(Operations on the Orbit)

इस शस्त्रक्रिया में निम्नानुसार ३ प्रकार हैं।

१—नेत्रगृह विद्रधिकी शस्त्रक्रिया-Opening on orbital abscess.

२—नेत्रगृहार्बुद को निकालना-Operations for removal of orbital Tumours.

अ-बाहर से शस्त्रक्रिया- Operation from out side.

आ-क्रोनलेन की शस्त्र क्रिया—Kronlein's operation.

३—नेत्रगृह को खाली करना—Exenteration of the orbit.

१. नेत्रगृह विद्रधि पर शस्त्रक्रिया।

(Opening on orbital abscess)

इस शस्त्रक्रियामें कुछ विशेष नहीं करना पड़ता। फोड़ा कहां है, उसे पहले से निर्णय कर लेवें। एक छोटा, तीक्ष्ण नोकवाला और धारवाला शस्त्र लेकर उसी पलक के सिरे के पास प्रवेश करावें। फिर अति सम्हाल पूर्वक गोलक और नेत्रगृहास्थि के बीच जाने देवें। गोलक और अस्थिको बिल्कुल हानि न पहुँचनी चाहिये, यह सम्हालें। फोड़े तक पहुँचने पर शस्त्र कुछ आड़ा फिराने पर पूयस्राव होने लगेगा। फिर शस्त्र को बाहर निकाल लें। आवश्यकता हो तो लम्बी सूक्ष्म चिमटी प्रवेश करावें। जिससे सब पूय निकल आवे। विद्रधि भर जाय, तब तक गोज की बत्ती भरते रहें।

२. नेत्रगृहार्बुद को निकालना।

Operations for removal of orbital rumours

नेत्रगृहार्बुदों पर शस्त्रक्रिया २ प्रकार से होती हैं। १. बाहर से; २. क्रोनलन की पद्धति से। दोनों का क्रमशः वर्णन करते हैं।

अ—नेत्रगृहार्बुद की बाहर से शस्त्रक्रिया।

(Operation from out side for removal orbital tumours)

शस्त्रक्रिया कहां से करनी चाहिये, उसका मुख्य आधार ग्रन्थिके स्थान पर अवलम्बित है। यदि ग्रन्थि नेत्रगृहके अग्रभागमें हो, तो पलकको

चीर, उस घावमें से नेत्रगृह तक पहुँच सकते हैं। उस मार्गसे ग्रन्थिको बाहर निकाल सकते हैं। यदि ग्रन्थि गहराईमें हो, या पिछली ओर हो, तो क्रोनलेनकी शस्त्रक्रिया अधिक सुविधाजनक रहती है। पाठकों को अधिक लक्ष्यमें रखने योग्य दूसरी बात यह है कि, ग्रन्थिको निकाल देने का और गोलकको बचा लेनेका प्रश्न तब तकही रहता है, जब तक गोलक ग्रन्थिग्रस्त न हुआ हो। यदि गोलकसे ग्रन्थि अति संलग्न होगई हो या गोलकमें ग्रन्थि उगने लगी हो या दृष्टि बिल्कुल बन्दहो गई हो, तो फिर गोलकको निकाल देनेके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। दुर्भाग्यसे ऐसे बहुत कम रोगी होते हैं, जो रोगवृद्धि होनेके पहले नेत्रवैद्यके पास पहुँच जायं। कितनेकों को प्रारम्भमें शस्त्रक्रिया की सत्यता मान्य नहीं होती।

एक रोगी हमरे पास आयाथा, उसे एकबार ३ वर्ष पहले देखा था। गोलकके पीछे अस्थिमय ग्रन्थि है, ऐसा निदान करके शस्त्रक्रियाकी सलाह दी थी। रोगीने कहा कि "विचार करके जवाब देऊंगा।" फिर २ वर्षबाद सलाह लेने को आया। ग्रन्थि पहले की अपेक्षा बढ़ गयी थी। दृष्टिकुछ कम होगई थी। पुनः वही सलाह दी। शस्त्रक्रियाका समय निश्चित किया; किन्तु उसदिन रोगी नहीं आया। इस तरह रोगी अपनी प्रवृत्ति और प्रमादके हेतुसे एवं दृष्टिनाश और कुरूपताके भयसे दृष्टि बिल्कुल बन्द होजाने पर ही शस्त्रक्रिया कराते हैं।

इसशस्त्र क्रियाका विशेष वर्णन ग्रन्थ लेखक से लिखवाना था। किन्तु इस सम्बन्धमें पत्र जो लिखाथा, वह उनके स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् ३रे दिन बम्बई पहुँचा। बम्बई से उनके सुपुत्र मुरारजी भाई की ओरसे प्रत्युत्तर मिला। वह प्रत्युत्तर नेत्ररोगके विशेषज्ञ श्री डाक्टर व्यासजी की अनुमति अनुसार दिया है, उसमें लिखा है कि, "नेत्रगृह के ग्रन्थियों को निकालने की शस्त्रक्रिया, यह विषय अति कठिन है और बहुत कम (आंख के निष्णात्) डॉक्टर यह शस्त्रक्रिया करते हैं। बम्बई में स्वर्गवासी डाक्टर जादवजी हंसराज (ग्रन्थ-लेखक) अकेले ही यह शस्त्रक्रिया करते थे। अतः इस शस्त्रक्रिया का वर्णन देना, यह इस ग्रन्थके लिये आवश्यक प्रतीत नहीं होता। कुछ मास पहले लेखक महोदयने इस विषय पर एक स्वतन्त्रलेख भी अंग्रेजी मासिक में दिया था।"

आ—क्रोनलेन की शस्त्रक्रिया।

(*Kronlein's operation*)

यह शस्त्रक्रिया क्रोनलेन नामक जर्मन डाक्टर ने प्रारम्भ की है। जिससे यह उनके नामसे प्रसिद्ध हुई है।

शस्त्रक्रिया किन-किन संयोगों में करनी चाहिये:—

१—नेत्रगृहमें रसार्बुद उत्पन्न होने पर।
२—दर्शन नाड़ी और उसके आवरणमें ग्रन्थि उत्पन्न होने पर।
३—गोलककी पिछली ओर धमनीमय और रसमय ग्रन्थियां उत्पन्न होनेपर।
४—गोलक की पिछली ओर अन्य प्रकारके ग्रन्थि उगने पर।
५—गोलक के पिछली ओर बाह्य पदार्थ के प्रवेश होने पर।
६—गोलक के पश्चिम भाग में आशुकारी प्रहार होने पर।
७—क्वचित् प्रेवके रोग में गोलक की अति वृद्धि होने से पलक बन्द न होता हो, तब गोलकके पिछली ओरके भागोंको निकालनेके लिये।
८—दर्शन नाड़ी या उसके आवरण पर शस्त्रक्रियाकी आवश्यकता होने पर। इन सब कारणों परसे पाठकोंके समझमें यह आया होगा कि, जब गोलकको बचानेके लिये कुछ संभावना हो, तभी यह शस्त्रक्रिया की जाती है।

आवश्यक शस्त्र:—

१—काटने के लिये छुरिका।
२—घाव को खुला रखनेके लिये दो आंकड़े नं० २०६।
३—नोक रहित सरल और मुडी हुई, दो कैंची।
४—स्पेन्सर वेल्सके चिमटे नं० २०४।
५—पतली और तेज धारवाली छेणी नं० २०७।
६—अस्थि के आवरणको खोलनेवाला अस्त्र।
७—पदमकी आरी, सुई, रेशमके डोरे, सिलकवर्म गेट आदि।

शस्त्रक्रिया विधि—रोगीके भ्रू के बालों को उस्तरेसे निकाल डालें। कनपटीपर बाल हो, तो उसे भी हटा देवें। नेत्र और कनपटीकी त्वचाको पहलेसे शुद्ध कर लेते हैं। अतः काट करनेका प्रारम्भ होता है। काट लगभग भ्रू के बाहर के सिरेके पाससे प्रारम्भ होकर नीचे जाता है। नेत्रके बाह्यकोणसे लगभग ½ इञ्च बाहर आगे जाने देवें। वहाँसे नीचे और बाहर के भाग की ओर मोड़ अन्त में कान के मध्यभाग और आंख के बाहर के कोण को जोड़ने में जो पंक्ति खिंचे, उसके मध्य भाग के पास पूरा करें। इस काट से त्वचा और मांसपेशी कटने चाहिये। एवं काट बिल्कुल अस्थि पर्यन्त पहुँचना चाहिये।

अस्थिके आवरणको पृथक करनेके लिये रेस्पेटरीको लेवें। उसे

नेत्रगृह की बाह्य दीवारकी अस्थि और उसके आवरणके बीच प्रवेश करावें। आवरणको अस्थिसे बिल्कुल पिछले भागतक पृथक् करें। फिर अस्थि काटने का प्रारम्भ करें। उसपर ३ काट किया जाता है। २ आड़े और १ खड़ा। इन काटोंको करनेके पहले विभाजक शस्त्र (नं० २१८ स्पेच्युला) को गोलक और अस्थिके बीचमें प्रवेश करावें और गोलकको हानि न पहुँचे उसका सम्हाल रखें। अस्थिके ऊपरका आड़ा काट नेत्रगृहके बाहरके और ऊपरके कोणसे प्रारम्भ होकर लगभग आध इंच तक पहुँचता है। दूसरा काट पहले काटके बाहरके सिरेके पाससे प्रारम्भ होकर लगभग पौन इंच नीचे उतरता है। तीसरा काट पहले काटके भीतरके सिरेसे पौन इञ्च नीचे से प्रारम्भ होता है तथा दूसरे काटको मिल जाय वहाँ तक बाहरकी ओर लम्बता है। इन ३ काटोंसे अस्थिका पौन इञ्च जितना चौकोर टुकड़ा नेत्रगृहकी बाहरकी दीवारमें से अलग होता है। इस टुकड़ेको बाहरकी ओर मोड़ देनेसे नेत्रगृहका कितनाक बाहरका हिस्सा खुला होगा। केवल बीचमें अस्थिका आवरण ही रहेगा। उस आवरणमें एक काट करने पर गोलक और उनकी पेशियां प्रतीत होने लगेगी।

फिर उस स्थितिमें पेशियोंको एक ओर हटानेका कार्य हो सके तो करें; यदि बाजूमें सरका ने जितना स्थान न मिलता हो, तो दोनों ओर डोरे सीकर बीचमें से काट देवें। ग्रन्थि आदि जो निकालना हो उसे निकाल देवें। यह क्रिया पूर्ण करनेपर कटी हुई पेशियोंको केटगूट्से सी लेवें। पश्चात् अस्थिके आवरणको सी लेवें। अन्तमें अस्थिके चौकोर टुकड़ेको यथा स्थान बैठादें। रक्तकी धमनी या शिरा कटी हो, तो उसे स्पेन्सर वेल्सके चिमटेसे पकड़ रखें। आवश्यकता हो तो केटगूट्से सी लेवें। अस्थिको बैठानेके पश्चात् त्वचाके काटको सी, ऊपर फोहे और गोजे रखकर पट्टी बांधें। बहुधा घाव जल्दी भर जाता है। ८-१० दिनमें टांके निकाल डालें। कितनेक चिकित्सक दो पलकोंको सी लेते हैं और फिर सप्ताह बाद खोल देते हैं।

अकस्मात् और उपद्रव

१—गोलकके पीछे रक्तस्राव हो तो गोलक आगे निकल आता है।

२—पिछली ओर वातनाड़ियां कट जायं, तो शुक्लमण्डलमें क्षत हो जाता है।

३—क्वचित् घाव पकता है।

४—क्वचित् १-२ पेशीका वध हो जाता है। फिर गोलककी गतिमें न्यूनता आजाती है।

३—नेत्रगृहको रिक्त करना

(*Exenteration of the Orbit*)

इस शस्त्रक्रियाकी आवश्यकता प्रायः नेत्रगृहके ग्रन्थि समग्र नेत्रगृहमें फैलजाने और उसका मूल अस्थिपर्यन्त पहुँच जाने पर होती है। इस शस्त्रक्रियामें बहुधा रोगीको बेहोश करना पड़ता है।

शस्त्रक्रिया विधि—कैंचीसे नेत्रके बाह्यकोणमें बिल्कुल अस्थि तक काट करें। इस काटके दो सिरेमें डोरा पोकर उसे चौड़ा रखें। फिर नेत्रश्लेष्मावरणमें शुक्लमण्डलके चारों ओर एक काट करें। इस काटसे प्रारम्भ कर बिल्कुल नेत्रगृहके किनारे तक नेत्रश्लेष्मावरणको गोलकसे मुक्त करें। बहुधा यह क्रिया कठिन प्रतीत होगी क्योंकि ग्रन्थिके हेतुसे शोथ आकर नेत्रश्लेष्मावरण गोलकको अच्छी तरह चिपक जाता है। नेत्रगृहकी धार के पाससे नेत्रश्लेष्मावरणको काट देवें। फिर एक शस्त्रसे अस्थिके चारों ओर के भागोंको काटते जाय। सब भाग कट जानेपर एक खास शस्त्र-अस्थिको आवरणसे पृथक् करनेवाले रेस्पेटरी (Raspatory) से अस्थिको उसके आवरणसे अलगकरें। सब ओरसे आवरणको मुक्त करनेके पश्चात् गोलक और अन्य भाग केवल दर्शननाड़ी छिद्रके पासही चिपके हुए रहेंगे। फिर एक दृढ़ कैंचीसे दर्शननाड़ी, उसके चारों ओर की धमनियां, वातवाहिनियां और बंधन आदि को काटकर गोलक और चिपके हुए भागोंको निकाल डालें।

बहुधा रक्तस्राव बहुत होता है। वह बन्द करनेके लिये गोजके टुकड़ेको उस खड्डेमें अच्छी तरह दबावें या आवश्यकता हो तो गोजके टुकड़ेसे उस गढ़ेको अच्छी तरह बन्द कर देवें। ऐसा करनेपर रक्तस्राव बन्द हो जायगा। फिर नेत्रके बाह्यकोणमें जो छेद किया हो, उसे सी लेवें। फिर रुईका मोटा फोहा रखकर पट्टी बांध देवें। रोगीको यदि पूयशोषण होकर ज्वर आदि उपद्रव उपस्थित न हुए हों, तो २-३ दिन तक पट्टी न खोलें। ज्वर हो या घावमें से दुर्गन्ध आती हो, तो घावको धोकर रोज मलहम पट्टी करते रहें। घाव भर जानेपर रोगीको जानेकी अनुमति देवें।

प्रकरण ३१ वां

नेत्र के स्वास्थ्य की रक्षा।

(*Hygiene of the Eye*)

यह एक अविचल सत्य है कि, यदि हम प्राकृतिक नियमों का उल्लंघन न करें, तो शरीर को स्वस्थ रखने के लिये किसी बाह्य चिकित्सा की आवश्यकता ही नहीं पड़ती केवल यही नहीं, अपितु प्रकृति हमारी साधारण छोटी छोटी भूलों से उत्पन्न होनेवाले विकारों का निवारण करके शरीर यन्त्र को स्वस्थ रखने की चेष्टा भी करती रहती है। सादा और पौष्टिक आहार करने और खुली वायु में रहनेवाला पथ्यशील व्यक्ति, जो दिनचर्या और रात्रिचर्या का भली भांति पालन करता है, वह अपने शरीरको वृद्धावस्था पर्यन्त (आजीवन) स्वस्थ रख सकता है।

नेत्र सारे शरीर में अतिशय उपयोगी भाग है, उसकी रचना अति सूक्ष्म है और वह पूर्ण अवयव है। सामान्यतः नेत्र छोटे नीबू जितना गोल अवयव है, उसमें प्रकृति ने जो रचना की है, वह अद्भुत है। वह रचना परिपूर्ण है और उसकी पूर्णताको कायम रखनेके लिये योग्य प्रबंध कियागया है। यदि इस नेत्ररूप रत्नको सम्हाला जाय तो यह जीवन पर्यन्त ठीक कार्य देता है। ऐसा अनुभव ग्रामों में रहकर नैसर्गिक नियमानुसार जीवन व्यतीत करनेवाले व्यक्तियों में मिलता है। ८० वर्ष की आयु में भी एक मील दूरी पर से पहचान सकते हैं। इस तरह दृष्टिको सम्हालनेवाले वर्त्तमान में भी प्रतीत होते हैं।

आंख शरीर का एक अंग होनेसे जो नियम समस्त शरीर या उसके किसी अन्य अवयव के लिये लागू होते हैं, वे ही आंख के लिये भी लागू होते हैं। दूसरे शब्दों में इस प्रकार कह सकते हैं कि, यदि हम आंखों का दुरुपयोग न करें, उनकी शक्ति से अधिक काम न लें और भली भांति स्वच्छ रक्खें, तो पूरी आयु तक वे नियमित रूप से कार्य कर सकती हैं। उन्हें न तो सुर्मे की आवश्यकता है न काजल की, न त्रिफला जल के छींटे देने की, और न शहद आंजने की। इन समस्त पदार्थों को अभ्यास के कारण आंखों को स्वस्थ रखने के लिये आवश्यक मान लिया है ; परन्तु प्राकृतिक नियमों

का पालन किया जाय तो इन पदार्थों की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहती। कितने ही वृद्ध पुरुष कहा करते हैं कि, अमुक सुरमा लगाने से या अमुक अंजन लगाने से अथवा प्रतिदिन सोते समय आंख में तिलका तेल लगाने या प्रातःकाल त्रिफला जल से आंखों को धोने से अथवा इसी प्रकार की किसी अन्य औषध के प्रयोग करने से हमारी आंखें आज तक दीपक जैसी चमकती हैं। परन्तु हम शास्त्र और अनुभव के आधार से कह सकते हैं कि, उनकी आंखों को वृद्धावस्था तक तेजपूर्ण रखनेवाली यह दवाइयां नहीं हैं; किन्तु प्राकृतिक नियमों का पालन और सम्हाल रखना ही है। जिस प्रकार विशेष-विशेष औषधों में आँखों के स्वस्थ रखने की शक्ति मान ली जाती है इसी प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य की स्थिरता के लिये भी कितने ही मनुष्य किन्हीं विशेष औषधों के गुणगान किया करते हैं। इस स्थल पर हमें एक वास्तविक घटना का स्मरण होता है, जिसे पाठकों के मनोरञ्जनार्थ यहां लिखते हैं:—

एक पारसी महाशय ७५ वर्षकी अवस्था तक अपने शरीर को स्वस्थ रखने में समर्थ हुए थे। उन्हें उनके बाल्यकालमें किसी डाक्टर या बुद्धिमान व्यक्तिने बतलाया था कि यदि तुम प्रतिदिन किनाइन की २ ग्रेनवाली १-१ गोली खाते रहोगे तो तुम्हारा शरीर स्वस्थ रहेगा। यह महाशय लगभग ६० वर्षकी अवस्था तक तो औषध विक्रेताओंके यहांसे किनाइनकी गोलियां खरीद कर सेवन करते रहे, परन्तु इसके पश्चात् जब इनके पुत्र ने डाक्टरी पास करके अपना औषधालय खोला तो ये गोलियां वहां से आने लगीं, और इसी प्रकार ५ वर्ष और निकल गये। ६५ वर्ष की अवस्था में इनकी आंखमें मोतियाबिन्द की शुरूआत हो गई तब उनके पुत्र डाक्टर महाशय ने अपने भ्रमपूर्ण विचारानुसार पिता को समझाया कि, आपकी आंख में किनाइन की गर्मी के कारण धुंधलापन आगया है और किनाइन का सेवन रक्खोगे तो और भी अधिक हानि पहुँचेगी। पिताने पुत्रकी सलाह मानकर किनाइनका परित्याग कर दिया, किन्तु क्विनाइन छोड़ते ही उनकी तबियत बिगड़ने लगी। इसलिये डाक्टर को पुनः किनाइन सेवन कराने के लिये विवश होना पड़ा और इससे उनके पिता का स्वास्थ्य पुनः ठीक हो गया।। इस प्रकार दो तीन दिन तक किनाइन के बजाय गेहूँ के चोकर की गोलियां बनाकर भेजदीं और इनसे भी वही परिणाम निकला जो किनाइनकी गोलियों से निकलता था। इस घटना से प्रकट है कि जो लोग आंख को स्वस्थ रखने के लिये किन्हीं औषधों को आवश्यक समझते हैं,

उनके मनमें केवल एक अंध विश्वास जगह कर लेता है। वस्तुतः प्रकृति ने स्वयं ही सब प्रबन्ध कर रक्खा है।

अक्षिगोलक की प्राकृतिक रक्षा—निसर्ग ने आंखों की रक्षाके लिये दो पलक बनाये हैं। मानों स्वयं बन्द होने और खुलनेवाले दरवाजे हैं। आंखको किसी प्रकार की हानि पहुँचने की संभावना होते ही वे तुरन्त अपने आप बन्द हो जाते हैं। पलकों के किनारे पर बालों की एक पंक्ति रहती है। मानो दरवाजे पर पहरेदार बैठे हैं, जो आँख के भीतर जन्तु धूल आदि को रोकते हैं। रात्रि के समय जब हम सो जाते हैं तो पलक बन्द रहता है। जिससे बाहर की हवा पुतली को नहीं लग सकती। केवल यही नहीं बल्कि पलक के बालों के नीचे एक प्रकार का माड़ा प्रवाही पदार्थ उत्पन्न करनेवाली कुछ नालियां भी रहती हैं। जिनमें से निकलकर यह प्रवाही पदार्थ दोनों पुतलियों के ऊपर आजाता है जिससे पुतलियां इस तरह ढक जाती हैं कि आंखके अन्दर की वाष्प बाहर नहीं निकल सकती और न बाहर की हवा भीतर जा सकती है। अतएव पुतली सर्वथा शुष्क नहीं हो सकती। यदि वह बिल्कुल सूख जाय तो अत्यन्त अनिष्टकारक परिणाम उत्पन्न हो सकता है। इस अनिष्ट का प्रमाण हमको उस समय भली भांति मिल सकता है कि, जब कोई रोगी ज्वर अथवा किसी व्याधि के कारण कई दिन तक बेभान पड़ा रहे और उसकी आंखें अर्धनिमीलित रहें। यह दशा उपस्थित होने पर हम बहुत शीघ्र देखेंगे कि, आखें खुली रहने के कारण पुतली का जो भाग खुला रहता है, वह सूख गया है और उसमें घाव हो गया है।

आँख में थोड़ा बहुत मैल चला भी जाता है, उसे धोकर साफ करने के लिये आँसू तैयार रहते हैं। जब आँख में मैल नहीं होता तो केवल उतने ही आँसू उत्पन्न होते हैं कि, जिनसे केवल पुतली भीगी रहे, परन्तु जब मैल को धोकर बाहर निकालने की आवश्यकता होती है, अथवा आँख को हानि पहुँचाने वाले धूम्र इत्यादि के प्रभाव को कम करना आवश्यक होता है तो आँसू पर्याप्त परिमाण में उत्पन्न हो जाते हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक विद्वानों ने आँसुओं के एक गुण का भी पता लगाया है वह यह है कि हवा अथवा धूल इत्यादि के द्वारा आँख में जो जीवाणु पहुँच जाते हैं, आँसू उन्हे विनष्ट कर देते हैं और उनसे आँखों को स्वच्छ रखने के लिये पलक के बाल भी बड़ा काम करते हैं। यह बाल एक मिनट में लगभग २० बार पुतली को

साफ कर देते हैं। यह सब व्यवस्था केवल पुतली को स्वच्छ रखने के लिये ही है।

आँख के भीतर रहनेवाले नेत्रदर्पण जैसे कोमल पर्दों को अधिक प्रकाश से बचाने के लिये अक्षिगोलक के बीच में काला रंग लगाया है। जिससे केवल कनीनिका के द्वारा ही प्रकाश आँखों में जा सकता है और उसमें भी अत्यन्त सूक्ष्म और यथोचित व्यवस्था की गई है। जब प्रकाश थोड़ा हो तो वह बड़ी हो जाती है। जिससे आँख में अधिक प्रकाश जा सकता है। अधिक प्रकाश में वह संकुचित होजाती है। जिससे आंखमें बहुत थोड़े भागों में से प्रकाश प्रवेश कर सकता है।

इस विवेचन से हम जान सकते हैं कि आंख को स्वस्थ रखने के लिये प्रकृति ने स्वयं समस्त व्यवस्था कर रक्खी है। और हमारे लिये केवल यही काम शेष रह जाता है कि उसके निर्धारित नियमों का यथोचित पालन करते रहें।

समग्र जीवन पर्यन्त आंखों को अच्छी स्थिति में रखने के लिये किस तरह सम्हाल रखना चाहिये! जन्म से मरण पर्यन्त नेत्रमें होनेवाले रोगों की उत्पत्ति न हो, इसके लिये क्या क्या करना चाहिये और क्या क्या न करना चाहिये? इन नियमों को पाठक अच्छी तरह समझ सकें, इस उद्देश्य से यह प्रकरण लिखा जाता है। भिन्न भिन्न आयु के लिये सम्हाल में भेद होता है। अतः समय और आयुभेद से ५ विभाग किये है। १. गर्भावस्था, २. जन्मकाल, ३. बाल्यावस्था, ४. युवावस्था, और ५. वृद्धावस्था। इन समयों में किन किन नियमों का पालन करना चाहिये, यह क्रमशः समझाते हैं।

१. गर्भावस्था में सम्हाल।

जन्म लब्ध रोगों में कितनेक नेत्र रोग ऐसे हैं कि जो माता या पिता के शरीर में से संतान को मिलते हैं उदा० जन्यलब्ध रंगान्धता, कांच बिन्दु, ह्रस्वदृष्टि, नक्तान्ध्य, तिर्यक दृष्टि आदि। इन रोगों के निरोधार्थ जिन कुटुम्बों में यह रोग वंशागत हो, उस कुटुम्ब की कन्या नहीं लेनी चाहिये। रतौंधी जैसे रोग का सम्बन्ध सगोत्र विवाह के साथ है, ऐसा अभिप्राय अनेक विद्वानों का है; अतः ऐसा विवाह नहीं करना चाहिये। हिन्दु समाज में सगोत्र विवाह को शास्त्र विरुद्ध माना है। इसलिये नहीं होता। अतः उन नियमों का पालन करनेवालों को यह सूचना विशेष

उपयोग की नहीं है। किन्तु वर्तमान के सभ्य युग में हिन्दू भाई-बहिन सगोत्र विवाह करने में संकोच नहीं करते, उनको समझाने के लिये तथा मुसलमान, पारसी, यहूदी ईसाई आदि जिनमें सगोत्र विवाह निषिद्ध न होने से होता रहता है, उनको खास सूचना दीजाती है। इन समाजों के सुबोध मनुष्यों को चाहिये कि इस रोग से अपने समाज का रक्षण करने के लिये कानून बना लेना चाहिये।

कन्या अथवा पुत्र को कोई नेत्ररोग-ह्रस्व दृष्टि, रतौंधी आदि होगा, तो उसके संतान को भी वह रोग मिल जाने की संभावना है। इस हेतु से सुबोध माता पिता को चाहिये कि, पुत्र और कन्या दोनों के नेत्रों की योग्य परीक्षा कराकर सम्बन्ध करें।

कितनेक रोग जैसा कि शुक्लमण्डल का गर्भप्रदाह उपदंश पीड़ित माता पिता की संतति को ही होता है। उसे रोकने के लिये सगर्भावस्था में ही माता पिता की योग्य सेवा-शुश्रूषा कर उपदंशके विषको रक्त में से नष्ट कर देना चाहिये। जन्म के पहले बच्चे को कितनेक नेत्ररोग की सम्प्राप्ति के कारणों में एक कारण यह है कि, माता को योग्य पोषक तत्त्वयुक्त आहार न मिलना। अतः सगर्भा को भावी संतानों के संरक्षणार्थ हितकर पौष्टिक पथ्य आहार देना चाहिये।

२—जन्मकालमें नेत्रकी सम्हाल

पहलेके प्रकरणोंमें कहा गया है कि, जन्म देनेवाली माताकी सुजाकके कीटाणुओंसे उत्पन्न प्रदर हो तो प्रसवकालमें शिशुके नेत्रको कीटाणुओंका संसर्ग होजाता है। फिर उसी हेतुसे नेत्रश्लेष्मावरणका भयंकर प्रदाह होजाता है। इसका वर्णन प्रकरण ६ वें में किया है। अतः उस रोगसे बचनेके लिये तत्काल योग्य परिचर्या न कीजाय, तो उस रोगसे परिणाममें हजारों, बल्कि लाखों बालकोंकी आंखें चली जाती हैं। फिर मृत्युपर्यन्त कष्ट सहन करना पड़ता है।

यूरोप-अमरिका आदि सभ्य देशोंके नेत्रवैद्यों ने अपने अनुभव परसे जाहिर किया है कि अन्ध व्यक्तियोंमें से ⅓ से ½ जितने अर्थात् १०० अन्ध मनुष्योंमें से ३३ से ५० जितने केवल इसी (पूयमेह) रोगके हेतुसे अन्ध बने हैं। किन्तु भारतमें यह परिमाण कम है। हम ४० वर्षके अनुभवके आधारसे दृढ़तापूर्वक कह सकते हैं कि इस देशमें १०० अन्धों में से १ प्रतिशत मनुष्योंको जन्म कालमें इस रोगसे नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह होकर आंख चली जाती है।

बम्बई जैसे वैभवशाली शहरमें जनताका जीवन ग्रामोंकी अपेक्षा अत्यधिक स्वच्छन्दी होता है। वहां पर भी उक्त रोगका परिमाण १ प्रतिशत प्रतीत होता है। यह १ प्रतिशत जो दर्शाया है, वह रामबाड़ी होस्पिटलमें आनेवाले रोगियोंकी चिकित्साके आधारसे दर्शाया है। इस मोहल्लेमें और चारों ओर सभ्य हिन्दूवर्गकी आबादी अधिक है। समग्र बम्बई शहरके लिये कदाच यह संख्या कम मानी जायगी, तो भी २ प्रतिशतसे अधिक तो नहीं है, ऐसी हमारी मान्यता है।

इस परसे एक बात विदित होती है कि यूरोप-अमेरिकाकी अपेक्षा भारतमें सुजाकका परिमाण, विशेषतः कुलीन स्त्रियोंमें अत्यन्त कम है। अतः इस रोग से होनेवाली हानि से बालकों की रक्षा हो सकती है।

इस रोगके निरोधार्थ क्रेडे (Crede) नामक नेत्रवैद्यने ऐसी योजना की है कि, जन्मकालमें प्रत्येक शिशुके नेत्रमें सिल्वर नाइट्रेट २ प्र० श० के अर्थात् १ औंस वाष्पजलमें १० ग्रेन सिल्वर नाइट्रेट मिलाकर बनाये हुए प्रवाहीके १-२ बूंद डाल देवें। यह प्रथा वर्षों तक यूरोप-अमरिकामें और वर्तमानमें भारतके बड़े शहरोंके प्रसूतिकालय (Maternity Hospital) में प्रचलित थी। फिर कितनेक नेत्रवैद्योंको विचार आया कि २ प्र० श० का प्रवाही तुरन्त जन्मे हुए कोमल शिशुओंके नेत्रके लिये अति आघात पहुँचाने वाला है। जिससे फिर १ प्र०श०के प्रवाहीका उपयोग किया। इससेभी परिणाम उतनाही संतोषप्रद मिला। अतः वर्तमानमें नूतन जन्म लेने वाले बच्चोंके लिये सुजाकके कीटाणुओंसे पीड़ित होने की किञ्चित् भी शंका हो जाय,तो वैसे बच्चोंके नेत्रोंमें क्रेडेकी रीति अनुसार १प्र०श० सिलवरनाइट्रेट के प्रवाहीके १-२ बूंद डाल देना चाहिये। कदाच क्रेडेकी रीतिअनुसार बूंद डालनेमें न आया हो, या डालनेपर भी सफल न रहा हो तथा बालकके नेत्रमें श्लेष्मावरण प्रदाहके किञ्चित् भी चिह्न उपस्थित हो जायँ, तो उत्तम मार्ग यह है कि बालकको किसी विख्यात् नेत्रवैद्यके पास ले जायँ, ऐसा नेत्रवैद्य न मिले तो अन्य विद्वान् कायवैद्य या डाक्टरके पास लेजायँ।

जन्मके पश्चात् बालकको तुरन्त स्नान कराया जाता है और साथ ही उसकी आंखेंभी धोई जाती हैं, इसके पश्चात् भारत के अनेक प्रान्तों में बालककी आंखमें काजल लगानेकी प्रथा है, परन्तु यह प्रथा योरुप आदि देशोंमें नहीं है। यदि हम दोनों देशोंके बालकोंकी आंखोंका मुकाबिला करें, तो मालूम होगा कि, योरूपियन बालकोंकी आंखोंमें रोहे बहुत ही कम होते हैं। रोहा छूतका रोग है और वह इस काजल द्वारा अज्ञानी माता या धाई द्वारा अनेक निरपराधी बच्चोंको प्राप्त होजाता है।

काजलका अंजन—कच्छ, गुजरात, काठियावाड़, यू० पी० और राजपूताना आदि प्रान्तों में जन्मसे ही बालकों की आँखों में स्याही लगाई जाती है; यह स्याही, काजल और घी को मिलाकर बनाई जाती है। एक दीपक में तिलका तेल या घी डालकर उसमें मोटी बत्ती जलाई जाती है और उसके ऊपर दिये से जरा ऊंची एक पाली या सरांई (शराब) ढकदी जाती है। दीवे से निकलनेवाली स्याही इस पाली में जमती रहती है। रात भर की जमी हुई स्याही सुबह को उतारली जाती है और उसमें घी मिलाकर खूब रगड़ा जाता है। फिर उसे तांबे या चीनी की डिबिया में भरकर रख दिया जाता है। अमीर लोग चांदी की डिबिया अधिक पसन्द करते हैं। हमने बहुतसी वृद्धा स्त्रियोंसे सुना है कि "अगर रोजाना बच्चे की आंख में यह स्याही डाली जाय तो उसकी आंखें कभी नहीं दुखतीं; इतना ही नहीं, बल्कि इससे बच्चे की नजर भी दीपककी लौ जैसी साफ और तेज रहती है।" परन्तु काजलके सम्बन्धमें हमारी राय यह है कि, काजल से कोई खास फायदा नजर नहीं आता। अगर बच्चेकी आंखें साफ रक्खी जायँ और उनमें बाहरसे किसी रोगका जहर अन्दर न जाने दिया जाय, तो स्याही या ऐसी ही किसी दूसरी चीजके बिना भी प्रकृति आंखों को तन्दुरुस्त रख सकती है। स्याही से शायद यह फायदा हो सकता हो कि, अगर आंखमें धूल, मिट्टी आदि गिर जाय तो इस स्याही की चिकनाई के कारण निकल जाय; इसके सिवाय बालक की आंखें काली दीखने से वह अपनी मां और दादी आदिको अधिक सुन्दर मालूम होता होगा। परन्तु इसके साथही यह भी न भूल जाना चाहिये कि जितनी चाहिये उससे अधिक स्याही डाल देनेसे बालक कुरूप दीखने लगता है। हमारी राय में अगर स्याही न डाली जाय तो कोई हानि नहीं है। आंखसे मैल मिट्टी निकालनेके लिये प्रकृतिने स्याहीके बिनाही पूरा प्रबन्ध कर दिया है।

इसके सिवाय स्याही डालने से एक बहुत बड़ी हानि भी होती देखी गई है और वह यह है कि अगर एक ही डिबीमें से कई बालकों की आंखों में उंगली साफ किये बिना काजल लगाया जाय और उनमें से किसी एक बालक की आंखमें कोई छूतवाला रोग हो, तो वही रोग दूसरे बालकों की आंखोंमें भी हो जाता है। कितनी ही जातियोंमें आंखोंमें रोहे पड़ जानेका रिवाजसा हो जाता है; हमारे पास स्याहीके रिवाजको ही इसका कारण सिद्ध करनेके लिये प्रबल प्रमाण मौजूद हैं। सारांश यह है कि (१) स्याही डालनेकी कोई आवश्यकता नहीं (२) स्याही से कोई विशेष हानि नहीं

होती और न ही कोई विशेष लाभ होता है। (३) यदि काजल डालना ही हो, तो प्रत्येक बालकके लिये डिब्बी अलग अलग रखनी चाहिये। (४) काजल डालने के पहले काजल डालनेवाली स्त्री को अपनी अंगुली अच्छी तरह साफ कर लेनी चाहिये।

यदि काजल आंजनेवाली स्त्रीकी आंखमें रोहे आदि रोग हों, या उसकी आंख दुख रही हो और वह उंगलीसे अपनी आंख को स्पर्श करनेके पश्चात् उसी उंगलीसे डिब्बियांमें से काजल निकाले तो काजल दूषित हो जाता है और वह जिस बच्चे की आंखमें डाला जाता है, उसकी आँखें दुखने आजाती हैं, या उनमें रोहे हो जानेकी संभावना रहती है।

यदि बालककी आँखमें काजल डालने वाली स्त्री को पूयमय प्रदर रोगहो तो बालक की आंखको भी उसका विष लगकर भयंकर सूजन आजाने का भय रहता है। जिससे कदाचित् आँख नष्ट होजाना भी सम्भव है। अतएव ऐसी स्त्रियाँ किसी बालककी आंखमें काजल न डालें यही श्रेयस्कर मार्ग है।

हम लोगों में, विशेष कर ग्रामीण स्त्रियोंमें यह परिपाटी है कि यदि अपने यहाँ अच्छा काजल नहीं होता, तो किसी अन्यके यहाँसे काजलकी डिब्बी माँग ली जाती है, परन्तु उसमें वही भय रहता है कि जो हम अभी ऊपर कह आये हैं। इसी प्रकार यदि अपने यहाँसे काजल की डिब्बी मांगकर लेजाय तो वह डिब्बी उसीको देदेना अच्छा है। अपने लिये फिर दूसरी नई बना लेनी चाहिये।

बालककी आंखें धोने के बाद एक साफ तोलिया या रूमाल से अच्छी तरह पोंछ देना चाहिये। यह रूमाल हरएक बालकके लिये जुदा जुदा होना चाहिये। अगर बालककी माता या घरके किसी दूसरे आदमी की आँखें दुखती हों या रोहें आदि का रोग हो तो उनके काममें आया हुआ कपड़ा बालककी आँखमें न लगाना चाहिये। रोहोंका रोग कच्छ, काठियावाड़, गुजरात, पंजाब और राजपूताने में अधिक होता है। यह रोग अत्यन्त कष्टसाध्य है और इससे आँखके भीतर कितने ही अन्य रोग पैदा होजाते हैं, कितनी ही बार इससे आँखें जाती रहती हैं या नजर को थोड़ा बहुत नुकसान पहुँचता है; यह छूतका रोग है। अतः एक आदमी की आँख से लगा हुआ कपड़ा, हाथ या उंगली दूसरी तन्दुरुस्त आँखमें लग जाय, तो उसमें भी उसके होनेका भय रहता है, इसलिये बालककी आँखें साफ

करने के लिये जो रूमाल काममें लाया जाय वह दूसरोंके काममें न आये, इस बातका खास तौर से ध्यान रखना चाहिये।

वर्तमान समय के नेत्रवैद्यों ने सूक्ष्मावलोकन और प्रयोग द्वारा निश्चय किया है कि, रोहोंका कारण "रोहोंका चेप" होता है। अगर रोहों वाली आंखोंको लगा हुआ हाथ या कपड़ा यथा रूमाल, धोतीका छोर आदि तन्दुरुस्त आंखको लगता है तो उसमें भी रोहे होने की सम्भावना रहती है नेत्रवैद्योंको भी इस चेपसे बचनेके लिए बहुत सावधान रहना पड़ता है। हमें अपने अनुभवसे मालूम हुआ है कि, अगर रोहोंवाले रोगीके साथ दूसरे लोग खुली हवामें घूमें फिरें तबतक तो उनको रोहोंका चेप नहीं लगता, परन्तु जिस स्थानमें कभी हवा और रोशनी नहीं पहुँचती उनमें रोहों वाले रोगीके साथ तन्दुरुस्त आंखों वाले स्त्री पुरुष या बालक सोवें तो उन्हें भी यह रोग होजाता है।

इस विवेचनसे स्पष्ट होता है कि, रोहोंको न होने देनेका मुख्य इलाज यह है कि, आंखोंमें रोहेहों उनका कपड़ा या रूमाल आदि दूसरे लोगोंको अपना मुँह पोंछनेके काममें हरगिज न लाना चाहिये। जो लोग अंग्रेजी पद्धतिके अनुसार मुंह धोते हैं उन्हें चाहिये कि जिस बर्तनमें किसी ऐसे रोगीने मुंह धोया हो उसको अपने काममें लाएं। अगर ऐसा रोगी ऐसे मकानमें सोए कि जहाँ काफी हवा या रोशनी न आती हो तो जहाँ तक होसके दूसरे लोगोंको उस मकानमें न सोना चाहिये। अगर कभी ऐसे रोगीको आंखको हाथ लगाना पड़ेतो पहले हाथोंको साबुनसे धोकर फिर रसकपूरके पानी या कोलन वाटरसे धो डालना चाहिये।

३—बाल्यावस्थामें आंखोंका सम्हाल

बाल्यावस्थामें यदि प्राकृतिक नियमोंका यथोचित पालन किया जाय तो फिर युवावस्था और वृद्धावस्थामें अधिक आपत्ति नहीं आती। बाल्यावस्थामें नेत्रके अंग अति कोमल होते हैं। उस अवस्थामें शारीरिक विकासके साथ नेत्रने अंगोंका भी विकास होता रहता है। ऐसी अवस्थामें यदि आवश्यक पोषणमें न्यूनता रही, तो नेत्रके अंगोंका योग्य विकास नहीं होगा। एवं नियमोंका पालन भंग करनेसे कोई रोग उपस्थित होता है, तो विकास होनेमें अन्तराय आता है; उतनाही नहीं, हानि भी पहुँच जाती है अतः युवावस्था और वृद्धावस्थाकी अपेक्षा बाल्यावस्थामें नेत्रोंकी रक्षाके

लिये पर्याप्त लक्ष्य देना चाहिये। सामान्यतः बाल्यावस्थामें निम्न नियमों का पालन करना चाहिये।

(१) बालककी आंखपर सीधा प्रकाश न पड़ना चाहिये। बालकको ऐसी जगह न सुलाना चाहिये कि, खिड़की-झरोखे से आने वाला तीव्र प्रकाश अथवा सूर्य की किरणें उसकी आंखों पर पड़ती रहें। लैम्प अथवा दीपक भी ऐसे स्थान पर रखना चाहिये कि, उसका प्रकाश भी बालक की आंख पर न पड़े। बिजली का लैम्प हो तो उसके ऊपर नीले अथवा लाल रंग का शेड (पर्दा) लगा देना चाहिये। ध्यान रखना चाहिये कि जब बालक सोता है और उसकी आंखें बन्द रहती हैं तब भी प्रकाश उसकी आँखके भीतर प्रवेश कर सकता है। क्योंकि, बालककी पलक बहुत बारीक होती है। बालकको बाबा गाड़ीमें बिठला कर हवा खिलानेके लिये लेजाया जाय, तब भी उसके मुख को प्रकाशसे बचाने की व्यवस्था करनी चाहिये।

(२) पीछे बतलाया जा चुका है कि, जन्मके पश्चात् बालकोंकी आँखोंमें सुजाक जनित भयङ्कर सूजन होजाया करती है जिसका परिणाम बहुत बुरा होता है अतएव इस संकट निवारणके लिये जो उपाय पीछे बतलाये गये हैं उन पर पूरी तरह अमल करना चाहिये।

(३) बालक खेलना प्रारम्भ करे, तब उसे बहुत छोटे खिलौने न देने चाहिये। क्योंकि, छोटे खिलौनों को भलीभाँति देखनेके लिये बालक उन्हें आँखके निकट लेजाता है। फिर इससे सब चीजोंको आँखके पास लाकर देखनेकी आदत पड़ जाती है। परिणाम यह होता है कि जब बालक पढ़ना शुरू करता है, तब पुस्तक भी आँखके नजदीक रखता है। यह आदत ह्रस्व-दृष्टिकी आधार शिला है। अतएव इस विषय पर सदैव पूर्ण ध्यान रखना चाहिये। यदि बालकको किण्डर गार्टन (Kinder gartan) पद्धतिसे शिक्षा दी जाती हो, तो उसमें भी अधिक छोटी चीजोंका उपयोग न करना चाहिये।

बालक पांच वर्षका होजाय और पाठशालामें जाने लगे तब उसकी आँखोंकी रक्षाके लिये निम्न लिखित बातों पर ध्यान रखना चाहिये। उसके पढ़ने लिखनेका कमरा ऐसा होना चाहिये कि, जिसमें प्रकाश भली भाँति आता हो। यदि संभव हो तो उसके बैठनेका आसन व कुर्सी उत्तर दिशाकी खिड़की की ओर रखनी चाहिये, जिससे उसे प्रकाश समान रूपसे मिलता रहे। यदि कुर्सी, मेज दी जाय तो मेज इतनी नीची न होनी चाहिये कि, बालकको अपना शिर पुस्तक पर झुकाने की आवश्यकता हो। क्योंकि ऐसा

करने पर आँख नीची रहती हैं और गुरुत्वाकर्षणके नियमानुसार उनमें अधिक रक्त भर जाता है; जिससे नेत्रगोलक लम्बे होकर बालक की दृष्टि दूर देखनेमें असमर्थ होजाती है, जिसे ह्रस्वदृष्टि कहते हैं। इस कार्यके लिये ऊंची टेबिल अथवा ढालू डेस्क अधिक उपयुक्त रहती है। यदि सम्भव हो तो डेस्क के ऊपर की तख्ती अथवा कुर्सी की बैठकमें ऐसी व्यवस्था कर देनी चाहिये, जिससे वह आवश्यकतानुसार ऊंची नीची हो सके और वह मेज कुर्सी प्रत्येक बालकके उपयोगमें आसके।

इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि बालक पुस्तकको आँखके पास रखकर न पढ़े, क्योंकि ऐसा करनेसे स्वस्थ आँख में भी ह्रस्वदृष्टि उत्पन्न होने लगती है। और ह्रस्वदृष्टि एक ऐसा रोग है, कि एकबार शुरू होजाता है, तो फिर उसको रोकना बड़ा ही कठिन होता है।

यदि बालकको अक्षर देखनेमें कठिनाई होती हो, तो किसी योग्य नेत्रचिकित्सक द्वारा उसकी आँखकी परीक्षा करानी चाहिये। जहां तक होसके छोटे बालकोंको रात्रिमें न पढ़ने देना चाहिये और यदि इसके बिना काम न चल सके तो प्रकाशका योग्य प्रबन्ध करना चाहिये। इस स्थल पर दो शब्द इस विषयमें भी कहना चाहते हैं कि प्रकाश किस प्रकारके दीपकका हितकर होता है। सम्प्रति प्रधानतः बिजली, गैस, मिट्टीके तैलके भाँति-भाँति की चिमनी वाले लैम्प, एसेटीलीन (Acetylene) या पेट्रोलके लैम्प और नारियल, तिल, तथा अरण्डी के तेलके दीपक काममें लाए जाते हैं। इनके अतिरिक्त मोम और मछलीके तैलसे निर्मित मोमबत्तियां भी प्रयुक्त होती हैं। इन अनेक प्रकारके दीपकोंमें से किस जातिका दीपक अधिक हितकर होसकता है? आधुनिक नेत्र चिकित्सकोंने अनुभवके आधार पर निश्चय किया है कि, बिजलीका प्रकाश अन्य सब प्रकाशोंकी अपेक्षा उत्तम है। क्योंकि (१) उसमेंसे किसी प्रकारका धुंवा या कोई अन्य हानिकारक पदार्थ नहीं निकलता। (२) वह अधिक गर्म नहीं होता और (३) उसका प्रकाश स्थिर होता है। बिजली की बत्तियों के ऊपर लगने वाले ग्लोब न्यूनातिन्यून ४,७,१६ मोमबत्तियों के बराबर और अधिक से अधिक ५०० या इससे भी अधिक मोमबत्तियोंके बराबर प्रकाश देने वाले आते हैं। इन ग्लोबोंमें से प्रधानतः दो प्रकारके ग्लोब काममें लाये जाते हैं (१) कारबन ग्लोब (२) ड्रोन वायर ग्लोब। कारबन ग्लोबमें कारबन नामक कोयलेके समान पदार्थ का तार बत्तीके अन्दर लगा रहता है। वह बिजलीके प्रवाहसे स्पर्श करते ही सुर्ख अंगारा होकर प्रकाश देने लगता है। इस प्रकारके ग्लोबका प्रकाश

मन्द और शीतल होता है परन्तु इसमें विद्युत्प्रवाह अधिक व्यय होता है। इसलिये खर्च अधिक पड़ता है। ड्रोन वायर ग्लोब अथवा लैम्पमें एक प्रकारकी धातुका बारीक तार लगा रहता है यह तार विद्युत्प्रवाहसे गर्म होकर अति तीव्र प्रकाश देता है। हमारे मतानुसार जो लोग सोलह बत्ती से अधिक प्रकाश देने वाले लैम्प काममें लाते हैं, वह अपनी आँखों को तीव्र प्रकाश में देखनेके लिये पराधीन बनाते हैं। इससे चाहे कोई दूसरी हानि न भी हो तथापि इतनी हानि तो अवश्य है कि, जब इन लोगों को थोड़े प्रकाशमें अथवा जहां बिजली न हो ऐसी जगह पढ़ने लिखने का अवसर आता है, तो उन्हें एक भारी कठिनाईका सामना करना पड़ता है। अतएव हम तो यही परामर्श देते हैं कि जहां तक सम्भव हो थोड़ी बत्तियों के प्रकाश वाले बिजलीके लैम्प काममें लाने चाहिये।

बिजलीके बाद दूसरा नम्बर गैसके लैम्पोंका है, परन्तु इनके ऊपर मेण्टल लगा होने पर ही इन्हें दूसरे नम्बर पर रक्खा जासकता है। गैसका प्रकाश बिजलीके समान स्थिर नहीं होता इसलिये उसे दूसरे नम्बर पर रखना उचित ही है।

जहां बिजली और गैसका प्रकाश मिलना सम्भव नहीं, वहां आजकल मिट्टीके तेलके अनेक प्रकारकी चिमनियोंवाले लैम्प काममें लाये जाते हैं। इस प्रकारके लैम्पोंमें सबसे सादा दीपक मिट्टीके तेलकी डिबिया है। यह डिबिया अनेक प्रकार से हानि पहुँचाती है। इससे निकलकर मिट्टीके तैलका धूँआँ घरके सामान और दीवारोंको काला करता है और उस मकानमें रहने वाले व्यक्तियोंके फेंफड़े, नाक, और आँखोंमें पहुँचकर, इनके श्लेष्मा-वरण में सुर्खी और कभी-कभी सूजन पैदा किये बिना नहीं रहता। इस प्रकारकी डिबियाके प्रकाशवाले घरमें सोनेवाले मनुष्योंकी नाक और मुंह से काले रंगका श्लेष्मा (ब्लगम) निकलते हुए बहुतसे मनुष्योंने देखा होगा। अतएव इस प्रकारका दीपक तो जहां तक सम्भव हो कदापि न जलाना चाहिये। कांचकी चिमनीवाले मिट्टीके तेलके लैम्प और कीटसन लाइट अथवा इनसे मिलते-जुलते लैम्पों को भी आँखके लिये कुछ अधिक हितकर नहीं कहा जासकता। साधारणतः हम लोगों का ख्याल है कि पढ़नेके लिये मोमबत्ती अथवा गोलेके तेल का दीपक उत्तम शीतल होता है। इस विचार में सचाई का भाग बहुत अधिक है; परन्तु यह प्रबन्ध अवश्य होना चाहिये कि बत्ती स्थिर रूप से जलती रहे। यदि यह प्रबन्ध हो सके तो इनको सर्व प्रकारसे उत्तम कहा जासकता है। मोमबत्तीके लिये ग्लोब युक्त

कैण्डल स्टिक हो तो अच्छा है। गोलेके तेलके दीपकके लिये एक विशेष प्रकार का लैम्प आता है, जिसे रीडिंग लैम्प अथवा अध्ययन दीपक कहते हैं, इसका प्रयोग करना अच्छा है। एसेटीलीन के दीपक, घरों में जलाने के लिये सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। इनमें से जो गैस निकलती है, वह अत्यन्त विषाक्त होती है और श्वास के साथ भीतर जाकर हानि पहुँचाती है।

पैट्रोल के लैम्प जलाने में अनेक प्रकार का भय रहता है। इसके सिवाय इनका प्रकाश भी बहुत तीव्र होता है। इसलिये पढ़ने के लिये यह भी ठीक नहीं है।

तिल और अरण्डी के दीपकों का प्रकाश बहुत मन्द होता है और उसके प्रकाश में पढ़ने से आँखों पर अधिक जोर पड़ता है। इसलिये पढ़ने के लिये इन प्रकार के दीपकों के व्यवहार की सिफारिश नहीं की जासकती।

अनेक व्यक्ति चन्द्रमा के प्रकाश में पढ़ने के अभ्यस्त होते हैं और उन्हें अपनी आँखों के ऊपर गर्व होता है। ऐसे लोगों के हित के लिये प्रकट कर देना आवश्यक है कि, चन्द्रमा के प्रकाश में पढ़ने से आँखों पर जोर पता है और अधिक काल तक उस प्रकाश में पढ़ते रहने से आँखें थक जाती हैं। चन्द्रमा का प्रकाश शीतल तो अवश्य होता है, परन्तु वह पढ़ने के लिये पर्याप्त नहीं होता।

सम्प्रति विलायत में छाया रहित दीपक (Shadow less lamp) का आविष्कार हुआ है कि, उसमें प्रकाश सूर्य के प्रकाश के समान ही उत्पन्न होता है। यह दीपक पढ़ने के लिये उत्तम है, इसमें संदेह नहीं है; किन्तु इसमें खर्च इतना अधिक आता है कि, धनिकों के अतिरिक्त अन्य साधारण-जनसमूह से सहन करना कठिन है। एवं इन दीपकों का अभी तक भारत में अधिक प्रचार भी नहीं हुआ।

बच्चों की आँखों को शीतला आदि रोगों से बहुत कुछ हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। अनेक बार इन रोगों के कारण आँखों में फूला पड़ जाता है।

कितने ही बालक दिन भर पुस्तक हाथ से नहीं छोड़ते और हर समय उसमें सिर दिये बैठे रहते हैं। कितने ही माता पिता भी उनको ऐसा करने के लिये विवश करते हैं; परन्तु यह अभ्यास अत्यन्त हानिकर है। हमारी नेत्र रचना इस प्रकार की है कि, यदि हम दूरी पर देखते रहें तब तो आँख को किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता; परन्तु निकट देखने में या लिखने

पढ़ने में उन्हें न्यूनाधिक परिश्रम अवश्य पड़ता है। अतएव इस प्रकार दिन भर पढ़ते रहने से छोटे बच्चों की आँखें थक जायँ तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। बालकों के पढ़ने की सर्वोत्तम रीति यह है कि, उन्हें एक बार में २ घण्टे से अधिक कभी न पढ़ने दिया जाय। घण्टे दो घण्टे के बाद उन्हें थोड़े समय के लिये आराम लेने देना चाहिये।

बालक के लिखने पढ़ने का समय आने के पश्चात् उसके माता पिता को विशेष सावधानी पूर्वक देखना चाहिये कि वह पुस्तक को आँख के अधिक निकट लाकर तो नहीं पढ़ता। साधारणतः तन्दुरुस्त आँख से मामूली टाइप में छपी हुई पुस्तक कोई १५ इञ्च के फासले से अच्छी तरह पढ़ी जासकती है। अब अगर टाइप बारीक हो या कमरे में रोशनी कम हो तो बालक को स्वभावतः ही पुस्तक को आँख के पास लानी पड़ती है। यदि कुछ दिनों तक यही क्रम जारी रहे तो फिर उसे पुस्तक आँख के पास लाकर पढ़ने की आदत पड़ जाती है। इस आदत से नेत्रगोलक पर जोर पड़ता है और बस यहीं से ह्रस्व-दृष्टि की शुरूआत हो जाती है।

ह्रस्वदृष्टि—होने पर नेत्रगोलक आवश्यकता से अधिक लम्बा हो जाता है। इस रोग की उत्पत्ति जन्म से नहीं होती, हानिकर अभ्यास, प्रसंग और रोगों के हेतु से कितनेक बालकों में ५–७ वर्ष की अवस्था में ही शुरू हो जाती है। उस वक्त यदि पूरा पूरा सम्हाल रखा जाय तो रोग आगे नहीं बढ़ सकता और साथ ही बालक को चश्मे के भार से भी छुट्टी मिल सकती है।

इसके सिवाय कितनेक बालकों का नेत्रगोलक जन्म से ही कुछ अधिक लम्बा और निर्बल होता है, जिसके कारण थोड़ासा आघात पहुँचने पर उन्हें बहुत छोटी उम्र में ही यह रोग होजाता है। उनका रोग बराबर बढ़ता जाता है। २०–२५ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते पहुँचते नेत्ररचना में इतना अधिक फेरफार हो जाता है कि, फिर योग्य चश्मे के उपयोग से भी उनकी दृष्टि पूर्ण नहीं होती।

इस विकार की वृद्धिको रोकने के उपाय बतलाते हुए सबसे प्रथम यह बतला देना आवश्यक है कि ह्रस्व दृष्टि को न बढ़ने देने के लिये जो कुछ किया जा सकता है, वह विशेषतः छोटी उम्र में ही किया जासकता है। इसलिये बच्चों के लिये निम्न लिखित बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

१—बालकों को शुरू में पढ़ने के लिये जो पुस्तक दी जाय उसके अक्षर बारीक न होने चाहिये।

२—जिस कमरे में बालक को पढ़ने के लिये बिठाया जाय, उसमें रोशनी की कमी न होनी चाहिये। अगर ऐसा प्रबन्ध हो सके कि रोशनी उत्तर दिशा से आवे और बालक उस खिड़की की ओर पीठ कर बैठे तो अत्युत्तम है।

३—अगर यह पता चले कि बालक पुस्तक को आँख के पास लाकर पढ़ता है तो उसको समझाकर ऐसा करने से रोकना चाहिये। फिर भी वह पुस्तक आँख के निकट ही लाकर पढ़े तो किसी योग्य नेत्रवैद्य से आँखों की परीक्षा कर के आवश्यकतानुसार चश्मा लिवा देना चाहिये।

हम लोगों में और विशेषतः स्त्रियों में चश्मे के प्रति एक प्रकार का अनुचित और कुत्सित भाव होता है। लज्जा के कारण कितनी ही स्त्रियां होने पर भी चश्मा लगाना या अपने बच्चों को लगाने देना बुरा समझती हैं; परन्तु यह उनकी भूल है। अगर आँखों की परीक्षा से चश्मे की आवश्यकता प्रतीत हो तो चश्मा अवश्य लगाना चाहिये। इस कार्य में लापरवाही करने से दृष्टि अधिक खराब हो जाती है; केवल उतना ही नहीं, भेंगापन आदि कितनी ही कष्टसाध्य व्याधियां भी पैदा हो जाती हैं।

यह मालूम हो जाय, कि बालक की ह्रस्व-दृष्टि है तो उसको केवल योग्य चश्मा दिला देना ही काफी नहीं, बल्कि उसके बैठने के लिये कुरसी का भी विशेष प्रबन्ध करना आवश्यक है। ऐसे बालक प्रायः शिर को नीचे पुस्तक के पास झुका देते हैं, इस आदत को रोकने के लिये उनके वास्ते ऐसे आसन (कुरसी आदि) का प्रबन्ध करना चाहिये कि, जिससे उनका शिर ऊंचा रहे और पुस्तक लगभग ठीक आँख के सामने रहे। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिये एक साधारण नीची कुरसी या बेंच पर बालक को बिठलाना चाहिये और उसके सामने एक ऐसी मेज रखनी चाहिये जिससे पुस्तक लगभग आँख के सामने रहे।

ह्रस्व-दृष्टि वाले विद्यार्थी प्रायः पढ़ने के शौक़ीन होते हैं अतएव उनके इस शौक़ को मर्यादित करने के लिये उनके माता पिता को सूचना दी जाती है कि, घर पर बालक को नियत घंटों से अधिक समय तक न पढ़ने दिया जाय। इन उपायों के फलस्वरूप अमेरिका, जर्मनी आदि देशों में ह्रस्व-दृष्टि व्यक्तियों की संख्या न्यून होती जारही है। शौक़ के साथ

कहना पड़ता है कि, एक ओर अमेरिका आदि देशों की यह दशा है और दूसरी ओर भारत में ह्रस्व-दृष्टि मनुष्यों की संख्या बराबर बढ़ती जारही है।

अगर ह्रस्व-दृष्टि बराबर बढ़ती जाय तो आँख में कुछ ऐसा फेरफार होजाता है कि, अन्त को नजर सदा के लिये, बहुत ही कम हो जाती है और फिर चश्मे के उपयोग से भी अधिक अच्छी नहीं होती। अतः बाल्यावस्था में ही सम्हाल लेना चाहिये।

दीर्घदृष्टि—जिस प्रकार गोलक आवश्यकता से अधिक लम्बा बन जाने पर ह्रस्वदृष्टि विकार उपस्थित होता है, उसी प्रकार गोलक की लम्बाई कम होने पर दीर्घ-दृष्टि होती है। सामान्यतः दीर्घदृष्टि प्रायः जन्म से ही होती है। किन्तु शनैः शनैः गोलक बढ़कर यह स्थिति दूर हो जाती है। किसी कारण वश गोलक की लम्बाई योग्य न हुई, ऐसे दीर्घदृष्टि वाले रोगियों को प्रारम्भ में दूर की वस्तु देखने में दिक्कत नहीं होती; पढ़ना शुरू करते वक्त भी दिक्कत मालूम नहीं होती; परन्तु थोड़े ही समय तक पढ़ने में अक्षर कुछ धुंधले और एक दूसरे में मिले हुए दिखलाई देने लगते हैं। फिर १-२ घण्टे में शिर में भारीपन आकर शिर दर्द होने लगता है।

यह दीर्घदृष्टि रोग अधिक बढ़ने पर दूर की वस्तु देखने और छोटे अक्षर पढ़ने में भी दिक्कत होती है; कितनेक विद्यार्थियों को ऐसी कोई दिक्कत मालूम नहीं होती; किन्तु वे शिर दर्द की शिकायत किया करते हैं, यह पीड़ा आँखों की परीक्षा करा उचित चश्मा लगाये बिना नहीं मिट सकती। नेत्रवैद्यों ने अनेक वर्षों के अनुभव के पश्चात् निर्णित किया है कि, दीर्घ-दृष्टिका उपाय चश्मा ही है। अन्य किसी भी उपचार से यह रोग दूर नहीं हो सकेगा।

विषमदृष्टि—ह्रस्वदृष्टि और दीर्घदृष्टि के समान किसी कि व्यक्तियों को विषमदृष्टि विकार हो जाता है। उनको प्रारम्भसे ही दूर देखने और लिखने पढ़ने में समान दिक्कत पड़ती है। इसका इलाज भी मुनासिब चश्मा लगाना ही है।

पाठशाला में व्यवस्था—अमेरिका और जर्मनी इत्यादि सभ्य देशों में पाठशाला के कमरों में पर्याप्त प्रकाश और वायु का आवागमन होता है या नहीं, इस कारण योग्य वैद्य नियुक्त किये जाते हैं। यह वैद्य हर तीसरे या छठे महीने प्रत्येक विद्यार्थी की स्वास्थ्य की परीक्षा भी करते रहते हैं। यदि उनके स्वास्थ्य में किसी प्रकार की न्यूनता दृष्टि-गोचर होती है तो उनके

संरक्षकों को उसकी सूचना दी जाती है। बम्बई में भी यह परिपाटी कितनी ही पाठशालाओं में प्रचलित की गई है। उससे विद्यार्थियों के संरक्षकों को यह पता चलता रहता है कि उनके बच्चों को कोई रोग है या नहीं ? परन्तु खेद लिखना पड़ता है कि विद्यालयों में प्राप्त सूचनाओं पर ध्यान देकर समुचित उपचार करने वाले माता पिता अभीतक शहरों में भी बहुत ही कम हैं।

ऊपरोक्त कथनानुसार सभ्य देशोंमें विद्यार्थियों को शारीरिक परीक्षा के समय यदि आंखमें किसी प्रकार की विकृति प्रतीत होती है तो विद्यार्थी को नेत्र परीक्षाके लिये योग्य नेत्रचिकित्सक के पास पहुँचा दिया जाता है। फिर नेत्रचिकित्सक जो सूचनाएं करता है उन पर पूर्णतया अमल किया जाता है। उन देशों में विद्यार्थियों का रहन-सहन, और खान-पान इत्यादि प्रायः विद्यालय के अधिकारियों के निरीक्षणमें ही होता है। अतएव नेत्रचिकित्सकों की सूचनाओं पर भली भांति और सरलता से अमल हो सकता है। इस सावधानी का ही परिणाम है कि अमेरिका और जर्मनी इत्यादि सभ्य देशों में जहां आज ४० वर्ष पीछे ह्रस्व-दृष्टि व्यक्तियों की संख्या बढ़ रही थी सम्प्रति वह बहुत कम होगई है। इस समस्त लेखका प्रयोजन यही है कि, बालक की आंख में तनिक भी विकार मालूम हो तो तुरन्त योग्य नेत्रचिकित्सक की सलाह लेनी और उसके बतलाये हुए उपायों पर पूरा अमल करना चाहिये।

चश्मेका उपयोग—कुछ वर्षों पहले हम लोगों की यह मान्यता थी कि, चश्मेकी आवश्यकता केवल वृद्धों को ही पड़ती है। छोटी आयु में सभी स्त्री-पुरुषों की दृष्टि अच्छी होनी चाहिये, इस भ्रान्तिका मुख्य कारण अज्ञान था। भूतकालमें नेत्रवैद्यों को भी चश्मा सम्बन्धी ज्ञान मर्यादित था। उस समय सिर्फ वृद्धों को ही ऐनक दीजाती थी और उससे पढ़ने में सुविधा मिलती थी। इस के अतिरिक्त आंखके किसी दूसरे विकारमें चश्मे से लाभ होता है या नहीं, यह बात भूत कालके नेत्रवैद्यों को ज्ञात ही नहीं थी।

कुछ पाश्चात्य शिक्षा-दीक्षावाले नवयुवक थोड़ी बहुत अंग्रेजी सीख कर केवल अंग्रेजों की नकलके विचारसे चश्मा लगाने लगते थे और समझते थे कि, चश्मेसे हम शिक्षित, सुधरे हुए और सम्मानित समझे जायेंगे। इन शिक्षाविदग्धों की शौकीनी के हेतुसे छोटी आयुवालों को रोग होनेपर भी चश्मा लगाना तिरस्काररूप माना गया।

वर्तमान में विद्यार्थियों में से चश्मा पहनने मात्र से शिक्षित कहलाने

कीभावना दूर हुई है, एवं चश्मा सम्बन्धी ज्ञान भी इतना अधिकतर विस्तृत हो गया है कि, अन्धेरे कमरेमें आंखों की परीक्षा करते ही पता चल जाता है कि चश्मेकी आवश्यकता है या नहीं।

इस विषयमें एक और मिथ्या विचार की जड़ सामान्य जनता के हृदय में जमी हुई है। वह यह कि, स्त्रियां चश्मा कैसे लगा सकती हैं? यद्यपि यह विचार नगर निवासी शिक्षित समुदायमेंसे दूर होता जा रहा है, तथापि अशिक्षित स्त्रियोंमें अभी तक इसकी जड़ नहीं हिली और उनको या उनकी बहूबेटी को चश्मेकी चाहे कितनीही अधिक आवश्यकता क्यों न हो, फिर भी वे अपना दुराग्रह नहीं छोड़तीं।

कहनेका अभिप्राय यह है कि, यदि नेत्रवैद्य की परीक्षासे चश्मे की आवश्यकता प्रतीत, हो, तो चश्मा सत्वर ले लेना चाहिये, दुराग्रह करके नेत्रों को अधिक रोगी नहीं बना देना चाहिये।

धूम्रपान से हानि—कितनेक मनुष्य धूम्रपान करते हैं। उनको कितनी हानि पहुँचती है, यह आगे वृद्धावस्थाके सम्हाल के विवेचनमें दर्शाया जायगा। उन के बच्चे भी पूज्यों को देख कर एकांत में बीड़ी-सिगरेट आदि पीनेका प्रारम्भ कर देते हैं। तम्बाखू के विषमें बालकों के कोमल नेत्रोंको अत्यधिक हानि पहुँच जाती है। दृष्टिमन्द हो जाती है और नेत्रोंके अवयव सब निर्बल बन जाते हैं। अतः ऐसी दुष्ट आदत बालक को न हो जाय, इस सम्बन्ध में संरक्षकों को उचित लक्ष देना चाहिये।

गरम गरम पेय आदि से हानि—धूम्रपान के समान, किन्तु कम हानि गरम गरम चाय आदि से पहुँचती है। यद्यपि उसका सीधा सम्बन्ध नेत्रों से नहीं है, तथापि परम्परागत हानि अवश्य पहुँचती है। कितने ही बड़े और छोटे अंगुली और त्वचासे सहन हो सके वैसी गरम गरम चाय पीते रहते हैं। वह गरम पेय आमाशय की श्लैष्मिक कला को जलाता रहता है। जिससे कुछ वर्षों में ही अग्निमान्द्य और मलावरोध सवार हो जाता है। फिर शारीरिक कमजोरी और दृष्टिमान्द्य उपस्थित होते हैं।

धुएँ से हानि—ठण्डी के दिनोंमें कितने ही बालक ठण्डी उड़ाने के लिये अग्नि से तापते रहते हैं। गोबरी लकड़ी, घास आदि जो मिल जाय, उसे जला कर तापते हैं; अग्नि बुझ जाने पर मुंह से फूंक मारते रहते हैं। इस तरह अग्नि का तापना और धुँआ आँखों को लगना, दोनों आँखों को लिये हानिकर है। ठण्डी उडाने के लिये ऊनी वस्त्र पहनना, व्यायाम करके सहनशीलता बढ़ाना, तैलमर्दन करना आदि उपचार हितकर हैं।

इनके अतिरिक्त कितनेही १०-१० वर्ष की छोटी आयुवाले विद्यार्थी भी दुष्टों के कुसंग में पड़ जाते हैं। फिर हस्तमैथुन आदि बुरी आदत डाल कर जीवन को बरबाद कर देते हैं। संरक्षकों को चाहिये कि, बालकों के कार्य आदत, व्यसन, विद्याध्ययन आदि बातों पर योग्य लक्ष्य देते रहें।

सूर्यदर्शन से हानि—कितने ही बालक सूर्य को आँखों से देखते रहते हैं। ठण्डी के दिनों में सूर्य की ओर मुँह रखकर ग्रन्थ पढ़ते रहते हैं। एवं सूर्य ग्रहण होने पर कितने ही बालक सफेद काँच से ग्रहण का निरीक्षण करते हैं। वे यह नहीं जानते कि, सूर्य का तेज प्रकाश नेत्रमें प्रवेश करने पर क्या हानि होती है ? सूर्यग्रहण का निरीक्षण करने वालों की दृष्टि कुछ समय के लिये बिल्कुल बन्द हो जाती है। कितने ही की दृष्टि तो समय पाकर स्वच्छ हो जाती है, किन्तु निर्बल आँखों वाले कितनेही बच्चों की दृष्टिमें न्यूनाधिक विकार रह जाता है। अतएव ग्रहण के समय बालकों को समझा देना चाहिये कि बिना स्याही चढ़ाये सफेद काँच में ग्रहण को देखना अत्यन्त हानिकारक है। एवं सूर्य के तापमें सूर्य की ओर मुंह रख कर बैठना भी दृष्टि को निर्बल बनाता है।

सिनेमा देखने से हानि—आजकल सिनेमा देखने का शौक बहुत अधिक बढ़गया है। बालकों को तो स्वभावतः ही देखना अत्यन्त रुचिकर होता है। सिनेमा में चित्रों को इतना तेजी से दिखलाया जाता है कि पृथक् पृथक् चित्र एक ही चित्र जैसे मालूम होते हैं। किसने ही सिनेमाओं में प्रकाश में भी न्यूनाधिकता होती रहती है। ये सब बातें आँखों के लिये अत्यन्त हानिकारक हैं। निर्बल दृष्टि और परदे के पास बैठने वाले व्यक्तियों को तो और भी अधिक हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। इसलिये जहाँतक सम्भव हो छोटे छोटे बच्चों को सिनेमा में बहुत थोड़ी देर के लिये लेजाना चाहिये और सदा परदे से दूर बिठलाना चाहिये।

ऊपर जो सूचना दी है वह बालकों के नेत्र के लिये है। इस पर से ऐसा न समझ लें कि, सिनेमा देखने पर केवल बालकों के नेत्रों को ही हानि पहुँचती है; बड़ी आयु वाले भी इस हानि से नहीं बच सकते। हमारा अनुभव स्पष्ट दरशाता है कि, जो लोग अधिक परिमाणमें सिनेमा देखते रहते हैं, उनकी आँख दिन-प्रति-दिन निर्बल होती जाती है। जिन लोगों को चश्मे की आवश्यकता न रहती हो, उनको सिनेमा देखते रहने पर चश्मे की आवश्यकता उत्पन्न होती है। जो चश्मे का उपयोग करते हों उनको सिनेमा अधिक देखने पर चश्मे का नम्बर बार बार बदलना पड़ता है जिनकी दृक्-

संधानशक्ति कुछ भी निर्बल हो, उनको तो अधिक ही हानि पहुँचती है। कारण, सिनेमा देखने के समय नेत्रों के संधान में प्रत्येक सेकण्ड में उतनी अधिक बार परिवर्तन करना पड़ता है कि तन्तुमय पेशी को अत्यधिक श्रम पहुँचने से वह थक जाती है।

सिनेमा के सम्बन्ध में एक और बात भी हमें दर्शा देना उचित लगता है। यद्यपि उस बात का नेत्र के साथ सीधा सम्बन्ध नहीं है, तथापि परंपरागत असर हुए बिना नहीं रहता। सिनेमा देखने वालों का अनुभव है कि सिनेमा प्रारम्भ होनेके लगभग ५ मिनट पहिले सिनेमागृह के प्रत्येक दरवाजे और खिड़कियाँ बंदकिये जाते हैं। जिससे जो हजारों व्यक्ति वहाँ बैठे हों, वे श्वासमार्ग से जो अशुद्ध वायु को बाहर निकालते हैं, उस मलिन वायु को जाने का मार्ग तथा अन्य शुद्ध वायु को आने का मार्ग अतिशय कम होता है। किन्तु जिन सिनेमा गृहों में वायु के आगमन की तथा वायु को उष्ण या शीतल करने की योजना (Air Conditioned) हो उनके लिये उक्त कथन नहीं है। शेष सिनेमा गृहों के भीतर की वायु अति अशुद्ध और दूषित हो जाती है। इसका प्रत्यक्ष अनुभव कोई भी मनुष्य ले सकता है। इस अनुभव के लिये किसी सिनेमा गृह में जाय और एकाध खिड़की के पास खड़ा रहे। जब सिनेमा का एक खेल समाप्त हो, तब उस खिड़की को खोलेगें। उसके खुलने के साथ ही उसमें से निकलने वाली गन्दी वायु का निरीक्षण करें। बाहर से आनेवाली वायु शुद्ध और शीतल होती है तथा सिनेमागृह में से निकलने वाली उष्ण और अनेक प्रकार की दुर्गन्धयुक्त प्रतीत होती है।

विचार करें कि प्रत्येक मनुष्य एक मिनिट में १८ बार श्वास लेता है। इस हिसाब से एक घण्टे में १८ × ६० = १०८० बार श्वास लेते हैं। सिनेमा का खेल २॥ घंटे चलता है। अतः १०८० × २॥ = २७००श्वास सिनेमा प्रत्येक प्रेक्षक लेते हैं। ये सब प्रेक्षक उतने समय इन श्वासों में गन्दी वायु ही फुफ्फुसों में डालते रहते हैं। परिणाम में फुफ्फुस मस्तिष्क रक्त की शुद्धि और सारे शरीर पर कितनी हानि होती होगी? यदि इस दूषित वायु के परिणाम में एवं आवश्यक निन्द्रा-विश्रान्ति कम मिलने के हेतु से शारीरिक स्वास्थ्य या शक्ति में ह्रास होता हो, तो नेत्र भी देह का एक भाग होने से ऊपर भी उसका असर होना चाहिये।

अपूर्ण निद्रा से हानि—जिस तरह प्रत्येक शारीरिक अवयव को कार्य के पश्चात् विश्राम की आवश्यकता होती है, उसी तरह आँख भी परिश्रम

के पश्चात् आराम चाहती हैं। आँखों को वास्तविक आराम निद्रा में ही मिल सकता है।

निद्रा की अवधि के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं। कुछ लोगों के मत में १० घण्टे सोने की आवश्यकता है कितने क केवल ६ घण्टे की नींद को पर्याप्त समझते हैं। हमारे मतानुसार एक स्वस्थ व्यक्ति को ७ घण्टे से कम नींद पर्याप्त नहीं है और बालकों को तो न्यूनातिन्यून ८ घण्टे सोने की आवश्यकता है। परन्तु सम्प्रति नाटक-सिनेमा का शौक बालकों की नींद के समय को हड़प करता रहता है जिससे आँखों को पूर्ण आराम नहीं मिल सकता। वह थक जाती हैं और अन्त में हस्वदृष्टि उत्पन्न होने लगती है।

बालक को विद्यारंभ कराने का समय—अमरीका और यूरोप देशीय विद्वानों का मत है कि यदि बालक सर्वथा स्वस्थ हो तो उसे ७-८ वर्ष की अवस्था में, और यदि निर्बल हो तो १२ वर्ष की अवस्था में विद्यारम्भ कराना चाहिये। परन्तु दुर्भाग्यवश यह नियम हमारे लिये अनुकूल नहीं पड़ सकता। क्योंकि भारतीय बच्चों को प्रथम स्वभाषा में ३-४ श्रेणी में से उत्तीर्ण होने पर ही अंग्रेजी प्रारम्भ करनी होती है फिर उन्हें १६,१७ वर्ष की अवस्था में मैट्रिक परीक्षा पास करनी पड़ती है। अतएव भारत में बालकों को, विशेषतः लड़कों को ५-६ वर्ष की अवस्था में ही विद्यारम्भ करना पड़ता है। परिणामतः कालेजों के विद्यार्थियों और शिक्षित युवकों का एक बड़ा भाग चश्मे का अभ्यासी हो जाता है और कितनों ही की आँखें तो दुगनी विकृत हो जाती हैं कि उन्हें बीच ही में विद्याभ्यास छोड़ने के लिये विवश होना पड़ता है। इस स्थिति को बहिष्कृत करने का उपाय नेत्रवैद्यों के हाथ में नहीं है। वह स्थिति तो तभी सुधर सकती है कि, जब शिक्षापद्धति में परिवर्तन हो और शास्त्रीय विषयों को स्वभाषा में सिखलाने की व्यवस्था हो जाय। उसी समय विद्यार्थियों के ऊपर से शिक्षा का अनुचित भार कम हो सकेगा और हम अपने बालकों के मस्तिष्क और नेत्र का आवश्यक विकास होने पर अर्थात् सामान्यतः ७-८ वर्ष की अवस्था में विद्याभ्यास प्रारम्भ कराने में समर्थ हो सकेंगे। अभ्यास प्रारम्भ करने के समय बालक से अधिक समय तक लिखने-पढ़ने का काम न लेना चाहिये। फिर एक वर्ष के पश्चात् कुछ कार्यभार बढ़ा देना चाहिये। शिक्षा विभाग के अधिकारियों से हमारी प्रार्थना है कि, वह इस विषय पर पूर्ण ध्यान देने का कष्ट उठावें।

यदि बालक पुस्तक को आँख के पास लाये बिना पढ़ने में असमर्थ हो, तो उसे किसी नेत्रचिकित्सक के पास अवश्य ले जाना चाहिये; यदि

उसका परामर्श चश्मे के लिए हो तो वह भी जरूर लिवा देना चाहिये। ऐसी दशा में संशय या निरर्थक लज्जा कदापि न करनी चाहिये; क्योंकि उस समय चश्मा न लिया जायगा तो आंख दिनों दिन बिगड़ती जायगी। यथासमय चश्मे का व्यवहार किया जाय तो अनेक बार चश्मेकी आवश्यकता जाती भी रहती है। थोड़े समय तक चश्मे का व्यवहार करने के पश्चात् बालक बिना चश्मे के ही कार्य करने लगता है। ह्रस्व-दृष्टि बालकों के लिये तो और भी अधिक सम्हाल की आवश्यकता होती है। उनको लगातार अधिक समय तक लिखने पढ़ने का कार्य न देना चाहिये और पूर्व कथनानुसार उन्हें स्थूलाक्षरों की पुस्तकें देनी चाहिये।

रोहे एक ऐसी व्याधि है कि, जहाँ एक बार आंख में प्रविष्ट होजाते हैं फिर उन्हें निर्मूल करना असाधारण परिश्रम, धैर्य और व्ययका कार्य है। इन तीनों बातों में ही हम लोग बहुत अधिक पिछड़े हुए हैं। रोहों को हम लोग एक साधारण रोग समझते हैं, परन्तु इसका परिणाम कितना भयंकर होता है इस ओर हमारा ध्यान नहीं जाता। प्रायः जब कोई नेत्र-वैद्य यह परामर्श देता है कि, इस रोगके लिये साल छै महीने निरन्तर औषध जारी रखने की आवश्यकता है, तो रोगी के बन्धु बान्धव इस कथन का केवल एकही अर्थ निकालते हैं कि "डाक्टर लोग तो अपने स्वार्थ के लिये ऐसी सलाह दिया ही करते हैं। भला रोहे जैसे साधारण रोग के लिये भी कहीं इतने अधिक समय तक औषध सेवन करने की आवश्यकता होती होगी?' इस प्रकार के क्षुद्र विचारों के अधीन होकर प्रायः थोड़े समय तक औषध सेवन करने के पश्चात् जब रोहे कुछ कम हो जाते हैं तो चिकित्सा छोड़ दी जाती है। थोड़े समय पश्चात् रोहे फिर जोर कर आते हैं, और बस यही चक्र चलता रहता है। और रोगी की आंखें दिनों दिन खराब होती जाती हैं। यही नहीं, बल्कि रोहों से उत्पन्न होने वाली कतिपय अन्य व्याधियां भी आंख में उत्पन्न हो जाती हैं। अतएव रोहों की छूत से बचने के लिये पूर्ण सावधानी रखनी चाहिये; और यदि आँख में रोहे उत्पन्न हो जायँ तो जब तक वह समूल नष्ट न हो जायं तब तक बराबर उसकी चिकित्सा जारी रखनी चाहिये।

४. युवावस्था में और उसके पश्चात् आंखों की रक्षा।

युवावस्था जीवन का एक सर्वोत्तम अंश है। जिस प्रकार जीवन के इस काल में शरीर के अन्य समस्त अंग प्रत्यङ्ग उत्तम से उत्तम स्थिति में

रहने चाहिये, उसी प्रकार नेत्र भी (यदि वह स्वस्थ हों तो) अधिक से अधिक उत्कृष्ट दशा में होने चाहियें। इस अवस्था में नेत्र जितने सशक्त होते हैं, उन्हें काम उतना ही अधिक करना पड़ता है। स्वस्थ नेत्र तो प्रायः इस भार को सहन कर लेते हैं, परन्तु जो आँखें पहिले से ही निर्बल या ह्रस्व-दृष्टि होती है; अथवा अन्य कारणवश जो चश्मे के सहारे बिना कार्य नहीं कर सकतीं, उनका पूरा सम्हाल न रक्खा जाय तो वह जीवन के इस आनन्दमय काल में अवश्य ही अत्यधिक विकृति हो जाती हैं। ह्रस्व-दृष्टि नेत्र प्रायः इस अवस्था में ही अधिक खराब हुआ करते हैं। पाठकों को स्मरण रखना चाहिये कि, ह्रस्व-दृष्टि जन्म से नहीं होती, और यदि होती भी है तो बहुत ही थोड़े व्यक्तियों की। शेष ह्रस्व-दृष्टि के समस्त रोगी नेत्रों को निकटवर्ती कार्यों में अधिक व्यवहृत करने के कारण ही इस रोग को मोल लेते हैं। विशेषकर लिखने-पढ़ने के कार्य में आँख पर अधिक जोर पड़ता है और ह्रस्व-दृष्टि हो जाती है। ऐसे रोगियों को निम्नाङ्कित तीन बातों की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

१—उनके पढ़ने की पुस्तकें बहुत बारीक टाइप में छपी हुई न होनी चाहिये। यह एक विचित्र बात है कि, ह्रस्व-दृष्टि लोग प्रायः पढ़ने के शौकीन होते हैं। यदि इस शौक को पूरा करने के लिये यह लोग बारीक अक्षरों की पुस्तकें पढ़ें तो उन्हें पुस्तक को आँख के अत्यन्त निकट लानी पड़ती है जिस से आँख पर अधिक जोर पड़ता है। ताविजी गीता और रेनोल्ड नाविल जैसी पुस्तकें बारीक टाइप की पुस्तकें नमूने के लिये उपस्थित की जा सकती हैं।

१—पुस्तक के पढ़नेके समय पुस्तकके ऊपर पूर्ण प्रकाश पड़ना चाहिये। विलायत के देशोंमें सूर्यका प्रकाश बहुत ही कम प्राप्त होता है और विशेषतः शीत काल में! इसलिये वहाँ के निवासियों को पढ़ने के लिये लैम्प के प्रकाश के ऊपर ही निर्भर रहना होता है। परन्तु सौभाग्यवश हम लोगों को दिन में सूर्य का पर्याप्त प्रकाश प्राप्त हो सकता है। अतएव इस प्रकाश का पूर्ण उपयोग करने के लिये पढ़ने के समय उत्तर दिशा की खिड़की के पास बैठना चाहिये और बैठने की व्यवस्था इस प्रकार करनी चाहिये कि पुस्तक पर प्रकाश बाईं ओर से पड़े। रात्रि के समय दीपक को भी इसी भांति रखना चाहिये कि प्रकाश पीछे से और बाईं ओर से केवल पुस्तक के ऊपर ही पड़े। कितने ही विद्यार्थी लैम्प को सामने रख, उसके ऊपर के हिस्से में कागज रखकर अपने सिर पर छाया बना लेते हैं; किन्तु यह रीति

कुछ बहुत उत्तम नहीं है क्योंकि आंख के ऊपर सामने से प्रकाश पड़ने पर वह थक जाती है।

एक ही बार बहुत अधिक समय तक न पढ़ना चाहिये जिस प्रकार अधिक समय तक चलने से पैर थक जाते हैं, कार्य करने से हाथ श्रान्त हो जाते हैं, उसी प्रकार लगातार अधिक समय तक काम करने से आंख भी थक जाती हैं। इस थकान का प्रभाव स्वस्थ आंख की अपेक्षा ह्रस्व-दृष्टि पर विशेष पड़ता है। अतएव एक दो घंटे तक लिखने पढ़ने के बाद आंखों को १५, २० मिनट तक आराम देना चाहिये। आंखों को आराम देने की सबसे सुगम रीति आंखें बन्द करके पड़ा रहना है। इस क्रिया से उन्हें अधिक से अधिक विश्राम मिलता है। कारण कि, इस दशा में उनके ऊपर लैम्प या सूर्य का प्रकाश बिल्कुल नहीं पड़ता।

चलती हुई गाड़ी में पढ़ना—आज कल प्रायः सभी पढ़े लिखे लोगों को और विशेषतः बड़े बड़े शहरों में कामकाजी मनुष्यों को, समाचार आदि पढ़ने का समय बहुत ही कम मिलता है। अतएव ये लोग प्रायः ट्रेन, चलत मोटर या गाड़ी में समाचार आदि पढ़ा करते हैं; परन्तु इससे आंखों को बहुत हानि पहुँचती है। एक तो वर्त्तमान समाचार पत्रों के अक्षर ही बारीक होते हैं और फिर उन्हें चलती हुई गाड़ी में पढ़ने से आंखों और अक्षरों के बीच का अन्तर प्रति सेकण्ड बदलता रहता है जिसके कारण आंख का नेत्र संयोजन (Accomodation) भी बदलता रहता है। और इससे आंख की बारीक पेशियाँ थक जाती हैं। किन्हीं किन्हीं व्यक्तियों के सिर में अधिक समय तक चलती ट्रेन या मोटर में पढ़ते रहने से पीड़ा होने लगती है इसका कारण भी यह थकान ही होता है। अतएव हम विशेष रूप से सलाह देते हैं कि जिन्हें अपनी आंखें प्यारी हों उन्हें यथा सम्भव चलती गाड़ी या मोटर आदि में बैठकर न पढ़ना चाहिये।

जब हम आंख से बीस फीट या इससे अधिक दूरी पर देखते हैं। तो नेत्र प्राकृतिक अवस्था में रहते हैं; परन्तु २० फीट से कम दूरी पर देखने के लिए आंख के भीतर रहने वाली पेशी को संकुचित होना पड़ता है, यह संकोचन दूरी के अनुसार न्यूनाधिक होता रहता है। लिखने पढ़ने या ऐसे ही अन्य कामों के करने में तो पेशी को बहुत अधिक संकुचित होना पड़ता है। पेशी के संकोच से दृष्टिमणि का बन्धन ढीला हो जाता है और फिर यह स्थितिस्थापक गुणविशिष्ट दृष्टिमणि अधिक बहिर्गोल (उत्तोदर) हो जाता है। यह बाह्य गोलता आंख और अक्षरों के बीच के अन्तर के बदलने

के साथ ह साथ बदलती रहती है। दृष्टिमणि की बाह्य गोलता के परिवर्तन का नाम ही नेत्र संयोजन परिवर्तन है। इसका विशेष विचार मांस पेशियों के रोगों के विवेचन में दर्शाया है।

लेटकर पढ़ना—कितने ही व्यक्तियों को पलंग या बिछौने पर लेटे लेटे पढ़ने का अभ्यास होता है। कइयों को तो लेटकर पढ़े बिना निद्रा ही नहीं आती; किन्तु इस प्रकार पढ़ने से आँख पर बहुत अधिक जोर पड़ता है।

मुंह पर जाली लगाना—सम्प्रति योरूप के सभ्य देशों में स्त्रियाँ प्रायः मुख पर एक प्रकार की बारीक जाली पहनती हैं। उन्हीं का अनुकरण कहीं कहीं भारतीय स्त्रियाँ और विशेषतः पारसी महिलाएँ भी करने लगी हैं; परन्तु इस जाली के लगाने से आँख को हानि पहुँचती है। यदि जाली के छिद्र कुछ बड़े हों तब तो जोर कुछ कम पड़ता है और छिद्र बहुत बारीक हों तो आँखों पर बहुत अधिक जोर पड़ता है।

युवावस्था में होने वाले सुजाक आदि रोग—सुजाक, उपदंश आदि रोग साधारणतः किसी भी अवस्था में हो सकते हैं परन्तु इनके कारणों पर विचार करने से पता चलता है कि, युवावस्था में इनके होने की अधिक संभावना रहती है। ये दोनों ही रोग आँखों को अत्यधिक हानि पहुँचाते हैं। इनमें से किस रोग से अधिक हानि पहुंचती है और किससे कम, यह कहना कठिन है। अतएव हम प्रत्येक का पृथक्-पृथक् वर्णन करते हैं।

सुजाक से होने वाली हानि—इस रोग में मूत्र मार्ग से सफेद या पीले रंग की पीप निकला करती है। इस पीप में असंख्य रोग कीटाणु होते हैं। यदि रोगी की अंगुली, हाथ, रूमाल या अन्य कोई चीज पीप से लगकर फिर वह आँख को लग जाय तो उसमें एक भयंकर सूजन उत्पन्न हो जाती है। इसे दो कारणों से भयंकर कह सकते हैं, एक तो इसलिये कि इससे रोगी की आँख में सुर्खी, सूजन और पीड़ा बहुत अधिक होती है। दूसरे इसलिये कि इसका परिणाम अत्यन्त अनिष्टकारक होता है। इसके परिणाम स्वरूप आँख में गहरे घाव हो जाते हैं और शुक्लमण्डल का थोड़ा बहुत भाग भी इन घावों से खराब हो जाता है। यह घाव गहराई में फूटते हैं, इसलिये आँख के भीतर के भाग इनके बीच में आ जाते हैं और उनकी रचना विकृत हो जाती है। रचना विकृत होने पर दृष्टि में विकार होना स्वाभाविक है। इसके सिवाय इससे केवल उसी समय दृष्टि में विकार होता है यह बात भी नहीं है; बल्कि आँख को हानि पहुंचाने वाले फेर-फार दीर्घ

काल तक होते रहते हैं, जिससे बहुत से रोगियों की आँखें जाती रहती हैं; और वह सदैव के लिये अन्धे हो जाते हैं। एक आँख में रोग होने पर उसका विष दूसरी आँख में भी बिना लगे नहीं रहता।

इस भयंकर रोग के रोकने का केवल एक ही उपाय है और वह यह कि, जिस हाथ को सुजाक जनित पीपका स्पर्श हो जाय, उसे तुरन्त साबुन और जल से भली भांति धोकर रसकपूर या कार्बोलिक के धावन से धो डालना चाहिये। यदि इन दोनों में से कोई दवा न मिल सके तो हाथों को कोलनवाटर से ही धो लेना चाहिये; और ध्यान रखना चाहिये कि हाथों को इस प्रकार साफ किये बिना अपनी या किसी दूसरे की आंख का स्पर्श करना अत्यन्त हानिकारक है। रूमाल या कोई दूसरा कपड़ा इस पीप से दूषित हो जाय तो उसे पानी में डालकर उबालना चाहिये। सुजाक के रोगी अपनी स्त्री और भावी सन्तान के लिये भी भयावह होते हैं। रोगी का छूत स्त्री को लगे बिना नहीं रहता। कदाचित् स्त्री में सुजाक के लक्षण प्रकट न हों, तो भी रोग विष उसके गुह्य अङ्गों में अवश्य विद्यमान रहता है। ऐसी स्त्रियों को जब प्रसव होता है, तब नवजात शिशु की आंख में भी वही चेप लग जाता है। जिससे उस बालक की आंख में सूजन हो जाती है और बालक जन्मते ही अथवा १०-१५ दिन पश्चात् अपने माता पिता के दोष से जीवन भर के लिये अन्धा हो जाता है।

इस भयंकर स्थिति को रोकने के लिये अमेरिका जैसे सभ्य देशों में कितने ही डाक्टर एक ऐसा कानून प्रचलित कराने का प्रयत्न कर रहे हैं कि, इस रोग से ग्रसित कोई भी व्यक्ति रोग शान्त होने से पूर्व विवाह न कर सके। रोग के परिणामों पर विचार करते हुए इन डाक्टरों के साथ सहानुभूति प्रकट करना तो समुचित ही है पर दुःख है कि भारत में ऐसे नियम के जन्म का स्वप्न देखने का साहस भी हम नहीं कर सकते।

सुजाकका विष कितने ही समय तक रोगी के शरीर में गुप्त रहता है। फिर वह रक्त में मिल जाता है। जिससे आंख और उसके भीतरी पर्दे में अनेक बार सूजन उत्पन्न हो जाती है। यदि यह सूजन नेत्रमध्यपटल में आती है तो आंख को अनेक बार हानि पहुँचती है।

इस विवेचन से युवक और युवतियों को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये। यह रोग एक दो बार की भूल से ही उत्पन्न हो जाता है, और एक बार उत्पन्न हो जाने के पश्चात् आंख को भयंकर हानि पहुँचने की सम्भावना उपस्थित

हो जाती है। कदाचित् आजन्म अन्धा बनानेका कारण भी हो सकती है हमने ऐसे अनेक रोगियों को देखा है। उनमें से एक करुणजनक कहानी यहां देते हैं, जिससे पाठक इस रोग की भयंकरता का कुछ अनुमान कर सकें।

एक ब्राह्मणको एक ही लड़का था, वह लड़का पढ़ने लिखनेका नाम तो जानता ही न था, साथ ही कुसंग में भी रहता था, ब्राह्मण ने अत्यन्त कृपणता करके कुछ धन संग्रह करलिया था। लड़केकी उम्र १६ वर्ष की होते ही ब्राह्मण अपना सर्वस्व उसके आधीन करके परलोकवासी होगया। पिता की मृत्युके पश्चात् लड़का खुलकर खेलने लगा और तीन मासके भीतर ही भीतर दोनों आँखोंमें सुजाकजनित घाव उत्पन्न करके हमारे पास आया। घावों का स्वरूप देखकर हमने उन्हें सुजाकजनित बतलाया। उसने भी अपनी भूल स्वीकार करली। बड़े परिश्रम के बाद एक आंख में कुछ दृष्टि रुक गई, पर दूसरी आंख सर्वथा नष्ट हो गई। तीन वर्ष के बाद उसकी मूर्खता के कारण सुजाक का पुनः आक्रमण हुआ, उसे जो थोड़ी बहुत दृष्टि प्राप्त होगई थी, इस बार वह भी जाती रही। फिर वह भिक्षुक की स्थिति में आजीवन धक्का खाता रहा।

उपदंश से होनेवाली हानि—उपदंश से भी आंखको अनेक प्रकार से हानि पहुँचती है जननेन्द्रिय में घाव होने के एक महीने पश्चात् तक तो आंख में किसी प्रकार के अशुभ लक्षण दिखलाई नहीं देते; परन्तु शरीर के अन्य भागों में घाव उत्पन्न होने के साथ साथ आंखों में भी उपदंश जनित व्याधि के चिह्न दीखने लगते हैं। यद्यपि उपदंश के सभी रोगियों की आंखें विकृत नहीं हो जातीं पर इसमें सन्देह नहीं कि अधिकांश को हानि अवश्य पहुँचती है।

पहिला चिह्न जो आंख में दिखलाई देता है, वह सुर्खी है। इसके साथ ही प्रायः रोगी को आंख और मस्तक में तीव्र वेदना भी होने लगती है। आंख प्रकाश को तनिक भी सहन नहीं कर सकती और उसमें से पानी निकलता रहता है। यह लक्षण आंख के मध्यपटल की सूजन से उत्पन्न होता है। इस पर्दे में सूजन होने से एक प्रकार का रस उत्पन्न होता है जो कनीनिका के बीच में आकर दृष्टि को रोकता है। आगे जाकर वह रस जम जाता है और कनीनिका के नीचे रहनेवाले कांच सदृश दृष्टिमणि के साथ चिपट जाता है। यही नहीं, बल्कि इस रसके जमने से ऐसी दशा उत्पन्न हो जाती है कि, मानों कनीनिका में एक बारीक कपड़ा लगाकर सी दिया

गया है। इस प्रकार कपड़े के समान पर्दा कनीनिका के सामने आजाने से देखने में अत्यन्त बाधा उपस्थित होती है। रोग का परिणाम यहीं समाप्त नहीं हो जाता; बल्कि इसे तो हानि का प्रारम्भ समझना चाहिये। दृष्टिमणि पर उक्त रसके जम जाने से आंख के अन्दर का प्रवाही भीतर ही रुक जाता है फिर उसका दबाव बढ़कर पिछली नसों और आंख के अन्य भागों को हानि पहुँचाता है। इससे दृष्टि कम हो जाती है और बराबर घटती रहती है; अन्त में सर्वथा नष्ट हो जाती है। कितने ही रोगियों की आंखें सर्वथा नष्ट नहीं होतीं, परन्तु थोड़ी बहुत तो जाती ही रहती हैं।

यह उपरोक्त विकार उपदंश होने के एक आध वर्ष पीछे उत्पन्न होते हैं। उपदंश होने के एक वर्ष से दस बीस वर्ष के भीतर किसी समय भी इसी भांति, या अन्य किसी प्रकार से, आंख को हानि पहुँच सकती है। इन हानियों में कांच रूप रस की अपारदर्शकता और आंख के पिछले भाग में रहने वाली दर्शन नाड़ी की सूजन तथा कच्चे मोतियाबिन्द में होने वाली बारीक रसौली मुख्य हैं। ये तीनों ही व्याधियां गम्भीर हैं। उनसे दृष्टि को अच्छा खासा नुक़सान पहुँचता है। यदि काले पर्दे में रसौली होती हैं तो वह बाह्य परीक्षा से ही मालूम होजाती हैं; परन्तु अन्य दोनों रोगों में बाह्य परीक्षा से आँख सर्वथा स्वस्थ मालूम होती है, लेकिन दृष्टि दिनों दिन घटती जाती है। भीतर नाड़ीकी सूजन में तो दृष्टि धीरे धीरे इतनी घट जाती है कि रोगी पराधीन हो जाता है। जब अपक्रान्ति हो कर दर्शन नाड़ी क्षीण होने लगती हैं तब तो दृष्टि बहुत ही शीघ्र कम हो जाती है और अन्त को रोगी बिल्कुल अन्धा हो जाता है। इस प्रकार दृष्टि हो जाने पर भी नेत्र की बाह्य परीक्षा की जाय, तो आंख लगभग स्वस्थ ही मालूम होती है। हाँ, अनुभवी नेत्रचिकित्सक केवल यह देख सकता है कि, कनीनिका के ऊपर प्रकाश डालने से उसमें जो संकोच होना चाहिये, वह नहीं होता अथवा बहुत ही कम होता है। इस चिह्न पर से और उपदंश के अन्य चिह्नों पर से अनुभवी चिकित्सक रोग के स्वरूप को समझ लेता है।

उपदंश एक ऐसी दुष्ट व्याधि है कि, रोगी के शरीर को निकम्मा बना ही देती है, साथ ही उसकी धर्म पत्नी पर भी आक्रमण करती है और जब यह उस निर्दोष महिला को चिपट जाती है तो प्रायः उसको सन्तति नहीं होती; अथवा अपूर्ण बालक जन्म लेता है। बहुत समय बाद जब रोग का जोर कम हो जाता तो बालक सजीव जन्म लेता है; किन्तु बालक के शरीर के ऊपर इस रोग के अनेक चिह्न मौजूद होते हैं उन चिह्नों में से हमें यहाँ

केवल आँखों के सम्बन्ध में विचार करना है। जिस को यह रोग माता पिता को उपदंश होने के कारण विरासत में मिलता है, उसको लग भग १०, १२ वर्ष की अवस्था में एक विशेष नेत्र रोग उत्पन्न हो जाता है। इस रोग में आँख के उस भाग में कि जो नेत्र गोलक के बीच में घड़ी के समान जड़ा हुआ दिखलाई देता है और पारदर्शक है, उस शुक्ल मण्डल पर सूजन उत्पन्न हो जाती है। इस सूजन से इस भाग की स्थिति ऐसी हो जाती है कि जैसे कांच को घिस देने पर उसकी हो जाती है। उस में बारीक बारीक गहरी धमनियाँ दीखती हैं; रोगी की आँख लाल हो जाती हैं, आँखों से पानी गिरने लगता है; दृष्टि कमजोर हो जाती है, और रोगी बिलकुल प्रकाश नहीं सह सकता इस रोग में आँख के अन्दर रहने वाले तारामण्डल मध्यपटल आदि भागों में सूजन आजाती है। यदि यथा समय समुचित उपचार न किया जाय, तो दृष्टी को भारी हानि पहुंचती है। यह महिनों तक चलता है। यदि भाग्य वश यथा समय उचित उपचार हो जाता है, तो रोग नष्ट हो कर रोगी की दृष्टि पहिले के समान ही हो जाती है या कुछ कम रह जाती है; अन्यथा रोगी को उपरोक्त परिणाम भोगना पड़ता है।

इस विषय में विस्तार पूर्वक इसलिये लिखा गया है कि जो युवक क्षणिक कृत्रिम सुख के लिये कुमार्ग गामी होते हैं, वे अनेक प्रकार से अन्धता को निमन्त्रण देते हैं और साथ ही अपनी सन्तति के लिये दुख का बीज बोते हैं। ऐसे लोग इससे कुछ शिक्षा ग्रहण करेंगे यह आशा है।

५. प्रौढावस्था और वृद्धावस्था में नेत्र रक्षा

इस अवस्था में जिस प्रकार शरीर को स्वस्थ रखने के लिये विशेष सावधानी रखनी पड़ती है उसी प्रकार आँख को स्वस्थ रखने के लिये भी विशेष सम्हाल की आवश्यकता है।

इस अवस्था में पढ़ने में दिक्कत पड़ती है और उसके लिये चश्मे की आवश्यकता होती है, यह पीछे बतलाया जा चुका है। परन्तु यहाँ हम फिर ध्यान दिलाना चाहते हैं कि, जब चश्मे की आवश्यकता प्रतीत हो तो मिथ्याभिमान या अन्य किसी कारण के बिना चश्मे के काम चलाने का यत्न नहीं करना चाहिये। यथा समय चश्मा ले लेने से आँख का बहुत सा परिश्रम बच जाता है और कितने ही भयंकर रोग नहीं होने पाते।

धूप में घूमने से हानि:—अधिक धूप साधारणतः किसी के लिये भी हितकर नहीं है; परन्तु युवकों की आँख को इतनी अधिक हानि नहीं

पहुंचती, जितनी कि वृद्धों को पहुँचती है। वृद्धों की आँखों की स्थिति कुछ भिन्न होती है। शुक्ल मण्डल, दृष्टिमणि और कांच रूप रस इत्यादि नेत्रावयवों का पोषण रक्त में से निकलने वाले रक्त पानी जैसे पदार्थ के ऊपर निर्भर है। वृद्धावस्था में एक ओर तो ये अवयव जीर्ण हो जाते हैं तथा दूसरी ओर उनका पोषण करने वाला यह पदार्थ भी न्यून हो जाता है। फिर भी साधारण स्वास्थ्य अच्छा हो तो ये अवयव अपना काम किसी न किसी प्रकार चला लेते हैं। धूप में फिरने से शुक्ल मण्डल जैसे भागों के ऊपर का पानी सूखता जाता है और नया पानी जल्दी उत्पन्न नहीं होता। यही दशा दृष्टिमणि की होती है जिससे मोतिया बिन्द होने की अधिक सम्भावना रहती है। यह सिद्ध हो चुका है कि, धूप में फिरने और उष्ण प्रदेशों के रहने वाले मनुष्यों को मोतिया बिन्द अधिक होता है। अतएव ४०-४५ वर्ष की अवस्था के बाद जहाँ तक सम्भव हो धूप में बहुत कम जाना चाहिये। यदि धूप में जाने की विशेष आवश्यकता ही पड़े तो काला या काला पीला चश्मा लगा कर जाना चाहिये।

धूप के चश्मे अनेक प्रकार के आते हैं। पहिले तो ये चश्मे बहुत से आते थे। इन दोनों बगलों में लोहे की तार की जाली होती थी। हरेक आँख के आगे एक एक काला आइना रहता था, तथा पीछे बायने के लिये उस में रबड़ का डोरा रहता था। इस के पश्चात् बगलों में भी जाली के स्थान पर कांच के आइने आने लगे। फिर जब मालूम हुआ कि काले कांच की अपेक्षा नीले रंग का या पीला काला कांच अधिक ठंडा होता है तो इसी रंग के चश्मे प्रचलित हुए। सम्प्रति इन चश्मों में भी अन्य प्रकार के चश्मों की भांति बहुत कुछ सुधार हुआ है धातु की कमानी की जगह मसाले की कमानी आती हैं जो कछुए की अस्थि से बनी होती हैं; अथवा अन्य धातु और ऊपर कछुए की हड्डी का अस्तर होता है। यह हल्की और शीघ्र न पिघलने वाली होती हैं। कांच में भी सुधार किये गये हैं। साधारण कांच के स्थान में आज कल सर विलयम कुक्स नामक रसायन शास्त्री द्वारा निर्मित रासायनिक कांच काम में आते हैं। इनकी रचना ऐसी होती है कि, उनमें आँख को हानि पहुंचाने वाली सूर्य की किरणें नहीं गुजर सकती हैं। ये कांच तीन प्रकार के आते हैं। A,B और U,I प्रथम प्रकार के कांचका रंग कुछ काला और B जाति के कांच का रंग अधिक काला तथा U जाति का रंग पीला काला होता है। जब टण्ड चश्मे की आवश्यकता पड़े, तब साधारण काले कांच वाला चश्मा न ले कर इस प्रकार का रासायनिक कांच वाला चश्मा लेना चाहिये।

तम्बाकू और शराब आदि मादक द्रव्यों का प्रभाव:—आज कल चाय और तम्बाकू का व्यवहार अधिक बढ़ गया है। एतएव इन पदार्थों का आँख पर क्या प्रभाव पड़ता है इस विषय में हम यहाँ कुछ विवेचन करना चाहते हैं।

चाय के उपयोग से शरीर को हानि पहुंचती है इस विषय में तो अधिकांश डाक्टर सहमत हैं। सब मानते हैं कि, इससे जठराग्नी मन्द होती है मल बद्ध हो जाता है; परन्तु अधिक चाय पीने से आँख पर कोई बुरा प्रभाव पड़ता है, यह बात जहाँ तक हमें ज्ञात है अभी तक किसी विद्वान् ने सिद्ध नहीं की इससे यह न समझना चाहिये कि हम चाय के तरफदार हैं। हम भली भांति देख रहे हैं कि, चाय भारतीयों को असीम शारीरिक और आर्थिक हानि पहुंचा रही है, और हम चाहते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो चाय के व्यसन का भारत से मुँह काला हो जाय, परन्तु सत्य की रक्षा के लिये कहना पड़ेगा कि हमारे ज्ञान के अनुसार चाय से आँखों को हानि पहुंचती है या नहीं, यह अभी तक अविदित है।

तम्बाकू की बात चाय से भिन्न है। तम्बाकू में जो अनेक विषैले तत्व रहते हैं वे, आँख की भीतरी बात नाड़ी को नुकसान पहुंचाते हैं अक्षि-गोलक के पिछले भाग में सूत की मोटी डोरी के समान एक नाड़ी रहती है, जिसे दर्शन नाड़ी कहते हैं जो अक्षिगोलक को मस्तिष्क के साथ मिलाती है। यह नस असंख्य तन्तुओं से निर्मित है, जिसमें से बहुत तन्तु तम्बाकू के अधिक उपयोग से अनेक बार मृत या क्षीण हो जाते हैं और इसी कारण से दृष्टि में न्यूनाधिक ह्रास हुए बिना नहीं रहता, यह बात परीक्षणों द्वारा सिद्ध हो चुकी है।

सभी मनुष्यों के लिये तम्बाकू का एक ही परिमाण समान हानिकारक नहीं नहीं हो सकता। कितने ही मनुष्य प्रतिदिन किसी भी प्रकार की पचास बीड़ी सिगरेट या दो दर्जन चुरट बिना किसी प्रकार की हानि उठाये पी सकते हैं, और कितनों ही की दृष्टि को इससे आधे में ही अत्यधिक हानि पहुंच सकती है। तथापि यह तो निश्चय पूर्व कहा जा सकता है कि इस उष्ण देशमें प्रति-दिन १५ से ज्यादा बीड़ी या सिगरेट और ६ से अधिक चुरट पीने वालों की आँख को कभी न कभी हानि पहुँचने की सम्भावना रहती है। इसके सिवाय जिनकी पाचन शक्ति अच्छी नहीं है अथवा जिन का वृक्कस्थान अपना काम पूरा नहीं कर सकता, या यों कहिये कि जो लोग तम्बाकूके जहरको सरलतापूर्वक शरीर से बाहर नहीं निकाल सकते उनको हानि तहुँचने की अधिक सम्भावना रहती है।

हुक्का पीने से कम तथा बीड़ी सिगरेट से अधिक हानि पहुँचती है। चुरट उससे भी अधिक नुकसान पहुँचाते हैं; और चिलम में तम्बाकू रखकर पीना सबसे अधिक हानिकारक है।

तम्बाकू के जहर से किस प्रकार हानि पहुँचती है और उसके क्या क्या लक्षण दिखलाई देते हैं, इसका वर्णन पहले के प्रकरणों में किया गया है। यहाँ केवल इतना कहना ही पर्याप्त है कि, जिन्हें वृद्धावस्था में आंख को स्वस्थ रखने की अभिलाषा हो उन्हें तम्बाकू का यथा सम्भव कम उपयोग करना चाहिये। यदि न रहा जा सके तो हुक्के से काम चलाना चाहिये। चुरट अथवा चिलम का उपयोग तो सर्वथा त्याज्य ही है।

यदि तम्बाकू के अधिक उपयोग से आंख को हानि पहुँचती हुई दिखाई दे तो उसका तत्काल परित्याग करके पाचन शक्ति को सुधारने का यत्न करना चाहिये। अनुभवी चिकित्सक की देख रेख में रहकर कुचिले का सेवन करने से तम्बाकू विषजन्य विकृत दृष्टि में सुधार होता है।

शराब के व्यसन से हानि—तम्बाकू के समान शराब भी नेत्रों को अति हानि पहुँचाती है। कतिपय विद्वानों का मत है कि, केवल शराब या केवल तम्बाकू से अधिक हानि नहीं पहुँचती; किन्तु इन दोनों के संमिलन से अत्यधिक हानि पहुँचती है। हमारे मतानुसार जिस प्रकार एक दुष्ट मनुष्य अनिष्ट करता है, उस स्थान पर दो दुष्ट मिल जाँय, तो और भी अधिक अनिष्ट कर सकते हैं, उसी प्रकार तम्बाकू और शराब में से कोई एक जितनी हानि पहुँचावे, उसकी अपेक्षा दोनों मिलकर विशेष हानि पहुँचा सकते हैं।

शराबियों के यकृत् और वृक्कस्थान कदापि अच्छी स्थिति में नहीं रह सकते। इसलिये तम्बाकू का विष सरलता पूर्वक बाहर नहीं निकल सकता; तात्पर्य यह है कि, शराब तम्बाकू के विष को देह में से बाहर निकलने में प्रतिबन्ध करती है। तम्बाकू के समान शराब से सब प्रान्तों में और सब व्यक्तियों को समान हानि नहीं पहुँचती कितने ही सबल मांसाहारी मनुष्य वर्षों तक खूब शराब पीते रहते हैं। फिर भी उन्हें विशेष हानि युवावस्था या प्रौढ़ावस्था तक प्रतीत नहीं होती। इसके विपरीत थोड़ी मात्रा में पीने पर भी अनेकों को कुछ ही समय के भीतर हानि के स्पष्ट चिह्न प्रकाशित होने लगते हैं।

जो मनुष्य अति मर्यादित शराब औषधि सेवन की तरह लेते रहते हैं, उनको प्रायः वृद्धावस्था तक हानिकारक लक्षण उपस्थित नहीं होते;

किन्तु जो मनुष्य अधिक परिमाण में सेवन करते हैं, उनको तो कम समय में या दीर्घकाल में निःसंदेह हानि पहुँचती ही है। शरीर सबल हो, तो देरसे और निर्बल तो जल्दी हानि होती है।

जो शराब नयी है, वह अधिक हानि कर है। पुरानी होने पर हानिकर तत्त्व की तेजी मंद हो जाती है। जो शराब महुए के फूलों से बनायी जाती है, वह नयी होने पर यकृत् और नेत्रों को अधिक हानि पहुँचाती है। जो विलायती पुरानी शराब का सेवन करते हैं, उनको महुए की नयी शराब की अपेक्षा कम हानि पहुँचती है, ऐसा शराब के सेवन करने वाले चिकित्सकों का अनुभव है।

शराब के सेवन से आँखों में जो चिह्न उपस्थित होते हैं, उनके वर्णन की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती केवल उतना ही कहदेना पर्याप्त है कि, शराबी को जब आँखों में किसी भी प्रकार का विकार मालूम हो, तब उन्हें शराब के सेवन का त्याग कर किसी योग्य नेत्रवैद्य की सलाह लेनी चाहिये।

शराब का वर्णन करते हुए इस बात को नहीं भूल जाना चाहिये कि रंग और वार्निसों में काम आने वाली मैथिलेटेड स्पिरिट भी नेत्र के लिये हानि कारक है। डिनेचर्ड नामक स्पिरिट से तो अधिक हानि नहीं पहुँचती, किन्तु असली मैथिलेटेड स्पिरिट से अवश्य हानि पहुँचती है। इस शराब का उपयोग रंग और वार्निसों में होता है। इसलिये इसका प्रभाव इस काम के करने वालों पर पड़ता है। फिर भी कभी कभी तुरन्त के रंगे हुए मकानों में रहने से सभी व्यक्तियों को इससे हानि पहुंच जाती है। नेत्र की हानि के अतिरिक्त वमन-अतिसार आदि लक्षण भी उपस्थित हो जाते हैं।

उपर्युक्त मादक द्रव्यों से दूर रहने के साथ वृद्ध मनुष्यों को अपने नेत्रों को स्वस्थ रखने के लिये नियमित समय पर सोना उठना चाहिये। हो सके, तब तक रात्रि को लिखने पढ़ने का काम नहीं करना चाहिये। एवं कोई ऐसा कार्य न करना चाहिये कि जिससे आँखों पर जोर पड़े। यह भी ध्यान में रखना चाहिये कि; इस अवस्था में आँखों को त्वरित हानि पहुँच जाती है। यदि आँख में किञ्चित् भी विकार या पीड़ा प्रतीत हो, तो सत्वर उचित उपचार करना चाहिये, अन्यथा अनेक बार भारी हानि पहुँच जाती है। आँख के क्षत इसके उदाहरण स्वरूप उपस्थिति किये जा सकते हैं। वृद्धावस्था में क्षत अति सत्वर और सहज हो जाते हैं। इसकी चिकित्सा यदि प्रारम्भावस्था में की जाय, तो नेत्रों को अधिक हानि नहीं पहुँचती सामान्य हानि पहुँचा कर रोग शमन हो जाता है अन्यथा कभी कभी आँखों को सदा के लिये नष्ट करदेता है।

परिशिष्ठ नं० १

दशांश (मेट्रिक) पद्धति के तोल नाप ।

तोलदर्शक कोष्ठक ।

०·००१	ग्राम	=	१ मिलीग्राम	=	·०१५४३२	ग्रेन ।
०·०१	ग्राम	=	१ सेण्टीग्राम	=	·१५४३२	ग्रेन ।
०·१	ग्राम	=	१ डेसीग्राम	=	१·५४३२	ग्रेन ।
१	ग्राम	=		=	१५·४३२	ग्रेन ।
१०००	ग्राम	=	१ किलोग्राम	=	१५४३२	ग्रेन ।

१—७००० ग्रेन के पौण्ड के हिसाब से २·२०४६ पौण्ड (३५ औं० ११९·७ ग्रेन) एवोर्ड्यु पोइज वजन ।

२—५७६० ग्रेन के पौण्ड के हिसाब से २·६७९२ पौण्ड ।

६० ग्रेन = १ ड्राम ।
८ ड्राम = १ औंस (४८० ग्रेन)
१२ औंस = १ पौंड (५७६० ग्रेन)
१ ग्रेन = ०·०६४८ ग्राम ।
१ ड्राम = ३·८८७९ ग्राम ।
१ औंस = ३१·१०३५ ग्राम
१ पौण्ड = ०·४५३६ किलोग्राम ।

प्रवाही औषधियों का नाप ।

१ मिलीमीटर = १ क्युबिक सेण्टीमीटर = १६·८९४१ बूँद ।
(०·०३५२ औंस)

१ लीटर = १००० क्युबिक सेण्टीमीटर = ३५·१९६ औंस ।
(१ पिण्ट—१५ औंस—१ ड्राम—३४ बूँद)

यह नाप इम्पिरिल पद्धति के अनुसार है। इस पद्धति में ६० बूँद का १ ड्राम ८ ड्राम का १ औंस तथा २० औंस का १ पिण्ट होता है।

एपोथेकरिज पद्धति के हिसाब से १ क्युबिक सेण्टीमीटर के १६·२३ बूँद तथा १ लीटर का २·११ पिण्ट अर्थात् ३३ औंस–६ ड्राम–३१ बूँद। इस पद्धति में पिण्ट १६ औंस का होता है।

इम्पिरियल पद्धति के १ बूँद का नाप एपोथेकरिज पद्धति में ·९६ होता है।

१ बूँद	=	०·०६ सी० सी०			
१ ड्राम	=	६० बूँद	=	३·५५ सी० सी०	
१ औंस	=	४८० बूँद	=	२८·४२ सी० सी०	
		(C. C.	=	क्युबिक सेण्टीमीटर)	
१ पिण्ट	=	०·५६८ लीटर।			

लम्बाई का नाप।

१	मीटर	=			३९·३७ इञ्च।
१/१०	मीटर	=	१ डेसीमीटर	=	३·९३७ इञ्च।
१/१००	मीटर	=	१ सेण्टीमीटर	=	·३९३७ इञ्च।
१/१०००	मीटर	=	१ मिलीमीटर	=	·०३९३७ इञ्च।
१/१००००००	मीटर	=	१ माइक्रोन	=	०·००००३९ इञ्च।
			(मिलीमीटर का हजारवां हिस्सा)		
१	इञ्च	=	०·०२५४ मीटर।		

परिशिष्ठ नं० २

(जो चित्र लेख के साथ देने से रह गये थे, वे यहाँ दिये गये हैं।)

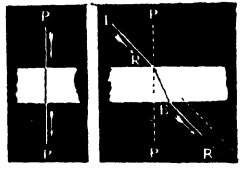

चित्र नं० ८, पृष्ठ ५६।
किरणों का वक्रीभवन (ग्रन्थ में एक चित्र दिया है, यह एक रह गया है)।

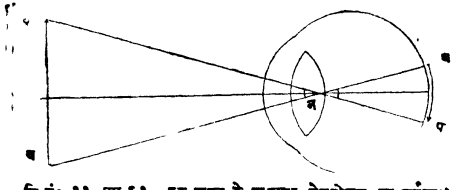

चित्र नं० ११, पृष्ठ ६१—दृक् शास्त्र के अनुसार नेत्रगोलक का कर्तव्य।

चित्र नं० १२, पृष्ठ ६७— अश्रुद्वार विस्तारक नलिका।
(Canaliculus dilator).

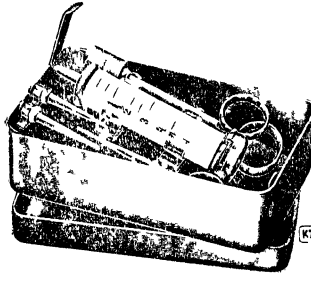

चित्र नं १३, पृष्ठ ६८।
अश्रु वाशय धोने की पिचकारी।
Lachrymal syringe with cannula.

चित्र नं० १५, पृष्ठ ६९।
डेस्मारे का पलक को उठाने का यंत्र।
Desmarr's Lid retractor.

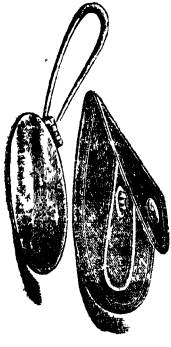

चित्र नं० १५, पृष्ठ ७१।
दस्तेवाला बहिर्गोल काँच।
(Biconvex lens in a handle)

चित्र नं० १७, पृष्ठ ७१।
शुक्लमण्डल का वृहद्दर्शक काँच।
(Corneal lens.)

चित्र नं० १८, पृष्ठ ७१

शुक्लमण्डल का बृहद्दर्शक यन्त्र, प्रकाश वेधक दीपक सह ।

(Corneal microscope with slit lamp.)

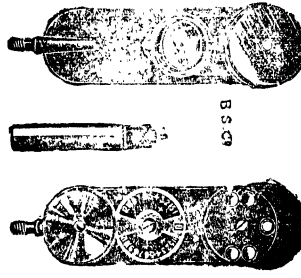

चित्र नं० १९, पृष्ठ ८४ ।

मर्टन का नेत्रदर्शक यन्त्र ।

(Morton's ophthalmoscope.)

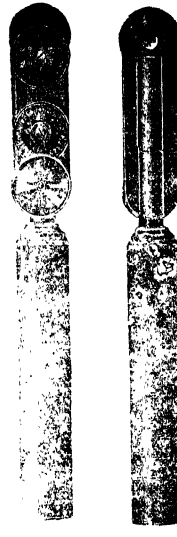

चित्र नं० २१, पृष्ठ ८७
विद्युत् दीपकसह नेत्रदर्शन यन्त्र—Electric ophthalmoscope.

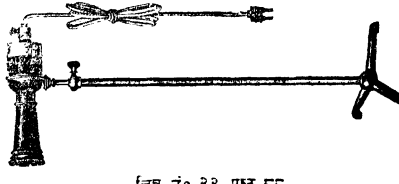

चित्र नं० २२, पृष्ठ ८८
नेत्रदर्शक दीपक—Ophthalmic lamp.

चित्र नं० २३ पृष्ठ ८८—नेत्रवीक्षण यन्त्र से प्रत्यक्ष परीक्षा—Direct examination by ophthalmoscope.

चित्र नं० २५, पृष्ठ ९१—नेत्रवीक्षण यन्त्र से परोक्ष परीक्षा। (Indirect examination by ophthalmoscope.)

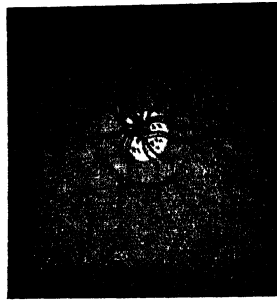

चित्र नं० २६, पृष्ठ ६३
दर्शन नाड़ी के सिरे की छत्रमाहक स्थिति।
(Physiological cupping of optic disc)

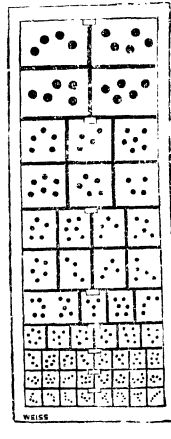

चित्र नं० ३०, पृष्ठ १०१
दृष्टिपरीक्षार्थ बिन्दु पत्र—Dot Test type

चित्र नं० ५० पृष्ठ २३१--कांचकूपी (Undine)

चित्र नं० ६६ पृष्ठ २८७
नेपका आवर्तक संदंशक—Knapp's roller forceps.

चित्र नं० ७४ पृष्ठ ३०३
बालनोचने की चिमटी—Cilia forceps.

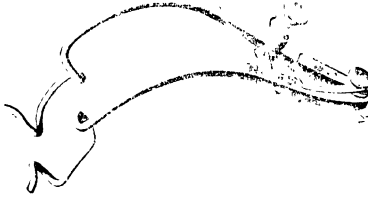

चित्र नं० ७५ पृष्ठ ३०८—क्लार्क की नेत्रों को खुला रखने की कमानी। Clerk's Eye speculum.

चित्र नं० ७६ पृष्ठ ३०८
गोलक को स्थिर रखने का चिमटा—Fixation forceps.

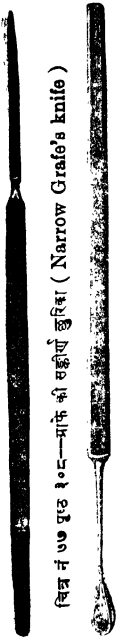

चित्र नं ७७ पृष्ठ ३०८—ग्राफे की सङ्कीर्ण छुरिका (Narrow Grafe's knife)

चित्र नं० ७८, पृष्ठ ३१५—तीक्ष्ण घर्षक चमच (Sharp spoon)

चित्र नं ८२ अ पृष्ठ ३५८
शुक्लमण्डल रङ्गने की अनेक सुईं।
(लेख के साथ भूल से भलता चित्र छप गया है।)

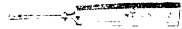

चित्र नं० ८२ ब पृष्ठ ३५८
शुक्लमण्डल रंगने की एक सुई

चित्र नं० ८७ पृष्ठ ३७८
शंक्वाकार शुक्लमण्डल
(लेख के साथ दिये हुए चित्र में भूल से नीचे का ऊपर और ऊपर का हिस्सा नीचे हो गया है।)

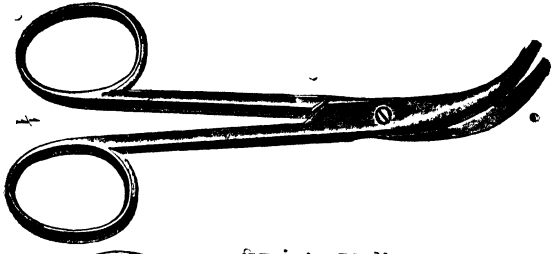

चित्र नं० ९०, पृष्ठ ३६४
गोलक कर्तनी
Enucleation scissors.

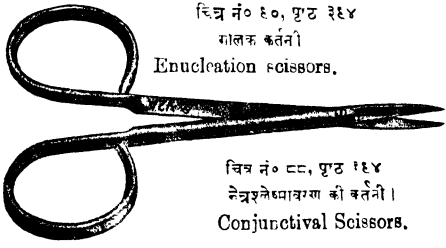

चित्र नं० ८८, पृष्ठ ३६४
नेत्रश्लेष्मावरण की कर्तनी।
Conjunctival Scissors.

चित्र नं० १०२, पृष्ठ ४४७
शुक्लमण्डल वेधन सरल यन्त्र
Keratome straight.

चित्र नं० १०४– पृष्ठ ४५१
श्नेलनका दृष्टिमर्षणजाल
Snellen's lens Vectis

चित्र नं० १०७ पृष्ठ ४७३
स्मिथकी कमानी
Smith's Eye speculum.

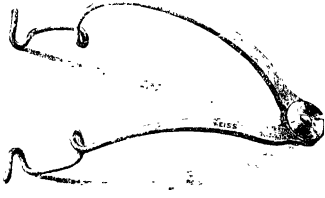

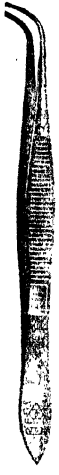

चित्र नं० १०६ पृष्ठ ४७३ तारामण्डल पकड़नेका चिमटा—Iris Forceps.

चित्र नं० ११० पृष्ठ ४७३—डी० वीकरकी तारामण्डल कर्तनी।
De. Weeker's Iris scissors.

चित्र नं० [illegible] पृष्ठ [illegible]—कांचबिन्दु निकालनेका चिमच
Lens Expression spoon.

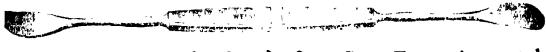

चित्र नं० ११४ पृष्ठ ४७३ कांचबिन्दु निकालनेका चिमटा–Lens Expression spatula

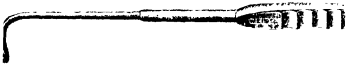

चित्र नं० ११७ पृष्ठ४८५ स्मिथ का कांचबिन्दु निकालने का आंकड़ा (बड़िश) Smith's lens Expression hook

त्र नं० ११८ पृष्ठ४८५ स्मिथ का तारामण्डल स्थापक यन्त्र–Smith's Iris repositor.

चित्र नं० १५५ ।
बोमेनकी अश्रुवाशय शलाका ।
Bowman's Lachrymal Probes.

चित्र नं० १५६
प्रक्षालन यन्त्रिका
Irrigating Apparatus.

चित्र नं० १५६ आवरण के आवरण का कालटका चिमटा ।
Kalt's Capsule Forceps.

चित्र नं० १८१ तार की नेत्ररक्षिका ।
Wire Gauze Eye-protector.

चित्र नं० १८५ ।
वस्त्रधर पेटिका ।
Dressing drum.

चित्र नं० १८७
परवाल की वानदक्षिण चांग--Clamp forceps..

चित्र नं० १८६
सूक्ष्म नोकवाली चिमटी
Fine pointed forceps.

चित्र० नं० २१७
घाव को खुला रखने का मूलर का यन्त्र।
Muller's retractor.

चित्र० नं० २२४
झिग्लर की छुरिका।
Zeagler's knife.

चित्र नं १८८ लम्बी छुरिका—Scalpel

चित्र नं०२१६ सूक्ष्म वाद्य निकालने का नोकदार चिमच (Sharp spoon)

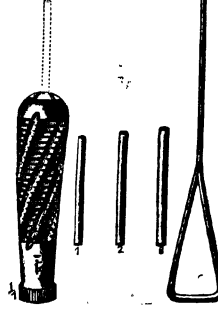

चित्र नं० २२६
इलियट की वेधनिका- Elliot's Trephine.

चित्र नं० २३१--इलियट का वर्तुलाकार टुकड़ा निकालने का चिमटा।
(Elliot's disc forceps.)

चित्र नं० २४०—२४१
प्रिन्स का देशी लघुकरण चिमटा —Prince's advancement forceps.

शेष चित्रों के लिये निवेदन।

ग्रन्थ में विवरण दिये हुए यन्त्र और शस्त्र के चित्रों में से १४ चित्रों (नं० ८३, १०८, १७२, १८०, १९०, १९२, १९३, २०४, २०५, २०७, २०८, २०९, ३११, २२८) के ब्लोक बम्बई से आने वाले थे, वे समय पर नहीं मिल सके। एवं ब्लोक बनवाने के लिये समय भी नहीं रहा, जिससे निरुपायवश वे चित्र नहीं दे सके।

मैनेजर—
कृ० गो० औषधालय।

रोगसंज्ञा सूची

(अ)

पृष्ठाङ्क	रोग नाम	अंगरेजी नाम
६०४	अंजननामिका ६०५,७८६,७६४	Stye, Hordeolum, Chalazion
४६५	अग्रवर्ति मध्यस्थ कांचबिन्दु	Anterior Polar Cataract
४५६	अतिपक्ववास्थामें कांचबिन्दु	Hypermature Cataract
५१०	अभिमन्थ ४१२,४४८	Glaucoma
	अन्तर्दृष्टिक्षेत्रका अर्ध अभाव	Binasal Hemianopsia
५६२	अन्धतासह कौटुम्बिक मूढ़ता	Amauratic familyIdiocy, Taysach's disease
६४१	अनिमेषता	Fixation
	अनुबन्धित फूला	Adherent Leukoma
४०१	अनेक कनीनिका	Polycoria
७०१	अस्थ्यर्बुद	Cartilagincus Tumours, osteomas
३७३	अपारदर्शकता ४५२,४६६,५०६	Opacity
	अभिघातज कांचबिन्दु	Traumatic Cataract
७०६	अर्द्धदृष्टिनाश ७०७,७०८	Hemianopsia
	अर्द्धपक्ववास्थामें काचबिन्दु	Hypermature Cataract
६७२	अर्धावभेदक ७१६	Migrain
३८०	अर्बुद ३६८,४२४,५४३,५६७ ५६७,५८७,६१८,६२४, ६८२,६८६,७८६,७६४	Tumours, New growths
२८३	अश्रुवाशयप्रदाह ६३१,६३३	Dacryo Cystitis, Blennorrhoe of Lachrymal Sac
६२३	अश्रुजनकपिण्ड प्रदाह ६२४	Dacryo-Adenitis
६२६	अश्रुद्वारका बाहर मुड़ना	Eversion of the Punctum
६२६	अश्रुवाहक छिद्रके संकोच और अवरोध	Stenosis and complete occlusion of Punctum

६२६	अश्रुवाहक नलका अवरोध	obstruction of Canaliculus
६२८	अश्रुवाहक नलका संकोच	Stricture of the Nasal duct
	अक्षिपुटपिटिका	Furuncles of Lids
६८५	अस्थिमय अर्बुद	Exostosis
६९०	अस्थिमय ग्रन्थि	Cartilaginous, Tumours, Osteomas
	अस्थिवक्रता	Rickets
६४५	अक्षि आंदोलन ६६९, ६६८	Nystagmus
६०८	अक्षिपुटका अन्तरावर्तन ६०१	Entropion
५९४	अक्षिपुटका कक्ष	Herpes zoster ophthalmicus
६०४	अक्षिपुटकी ग्रन्थि ६०७,७१४	Chalazion
६१२	अक्षिपुट धाराकी परस्पर संलग्नता	Ankyloblepharon
६१५	अक्षिपुट निमीलन ६७३	Ptosis
६७३	अक्षिपुट निमीलनाभाव ६७४	Lagophthalmus
	अक्षिपुट पतन	Ptosis
	आँखका नजला	Glaucoma
३१४	आँखमें कुआं (रिक्त नेत्र)	Phthisis Bulbi
६६६	आक्षेपक वात	Tetanus
६५१	आक्षेपज तिर्यग्दृष्टि ६६६	Spasmodic Squint
	आक्षेपजन्य संधानगतिभ्रष्टता	Spastic loss of Conjugtate movement
६९५	ओजक्षय ७०१	Neurasthenia

(इ)

७२०	इलका रोग	Eale's disease
३८२	उत्तानप्रदाह	Episcleritis
३८०	उत्तानस्तरिका का कर्कस्फोट	Epithelioma
	उपदंश	Syphilis
४२४	उपदंशज ग्रन्थि	Condyloma
५४२	उपदंशज प्रदाह ५५५, ६०१	Syphilitic inflamation
	उपान्त्रप्रदाह	Appendicitis
६७६	उभय गोलकोंका बहिर्निःसरण	Exophthalmic Goitre
५९४	ऊर्ध्वाक्षिपुट निमीलन ६१४	Ptosis
	एकगोलकका बहिर्निःसरण	Monocular Exophthalmos

६४९	नयन अनिमेषता	Monocular Fixation
६४२	एकनयन स्थलान्तर दृष्टि	Monocular Projection
४५५	एकाक्षि द्विदर्शन	Monocular Diplopia
	कण्ठमाल	Scrofula
	कण्ठमालज अन्तर्भरण	Scrofulous infiltrates
६७९	कण्ठरोहिणी	Diphtheria
२५०	कण्ठरोहिणीजन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	Diphtheritic Conjuctivitis
४०५	कनीनिकाका अवरोध	Seclusion of pupil
४०५	कनीनिकाका आच्छादन	Occlusion of pupil
४०१	कनीनिकाका स्थलान्तर	Ectopia Pupillae
३९९	कनीनिकाके आवरणका अस्तित्व	Persistent Pupillary membrane
६१९	कर्कस्फोट ६२०, ६८५, ६८९ ६२०	Carcinoma,Cancer, Ephithelioma
६२४	कर्णग्रन्थिप्रदाह	Mumps
६८८	कृमिजन्य ग्रन्थि	Hydatid Cysticercosis
६८१	कृमिजन्य रसग्रथि	Parasytic cysts
४९३	कृष्ण कांचबिन्दु	Cataracta Nigra, Black Cataract
५९४	कक्षा	Herpes Zoster
३३२	कक्षा और तत्सदृश शुक्लमण्डल का वृक्षाकार प्रदाहादिरोग	Herpatic and Dendritic keratitis and other disease similiar to herps
४४३	कांचबिन्दु ४५२,४५७,४६२ ४८९,४९१,४९३ ४९५,४९७,४९९,५०१	Cataract
४५९	कांचबिन्दुकी प्रारम्भिक अवस्था	Incipient Cataract
५०९	कांचरूपरसका प्रवाहीपना	Liquefaction of viterous
५०६	कांचरूपरसमें अपारदर्शकता	Opacities in vitreous
५९७	कुकूणक	Phlyctenule
५८३	कोथ	Caries,Gangrene, Necrosis
	खनकका अक्षि आंदोलन	Miner's Nystagmus
४३४	ग्रन्थियां	Tumours,New growths
	ग्रसनिका ग्रन्थियोंका प्रदाह	Tonsillitis

	गर्भावस्था में विकृति	Congenital Abnormalities
६०४	गुहेरी	Hordeolum
२७२	गोलक और पलकके आवरणकी संलग्नता	Symblepharon
६४५	गोलकका अन्तरावर्तन ६४८	Esophoria
६७७	गोलकका आक्षेपज शोष	Enophthalmos
६४५	गोलकका ऊर्ध्वावर्त्तन ६५०	Hyperphoria
६७५	गोलकका बहिर्निसरण	Exophthalmos Proptosis
६४५	गोलकका बाह्यावर्त्तन ६४९	Exophoria
३१४	गोलकमें प्रदाह	Pan ophthalmitis
	गोलकावर्त्तन	Cyclophoria
६५१	गोलककी तिर्यग् दृष्टि	Heterotrophia, Strabismus
४९७	चक्राकार कांचबिन्दु	Lamellar Cataract
३१६	,, क्षत	Disciform Keratitis
५७५	चक्षुष छिद्र ५७६	Optic foramen
	चिरकारी मृदु अर्बुद	Molluscum Simplex
४९७	चिह्नमय कांचबिन्दु	Punctata Cataract
४१२	चीरे ४२४;५६५,५६६	Lacerations, Tears
४३८	चक्षुप्रदाह	Ophthalmia
६१९	जतुक	Molluscum Simplex
	जतुमणि	Naevus, Nevus
२९५	जन्मजात शुक्लमण्डलकी अस्वाभाविकता	Congenital Anomalies of Cornea
	जराजन्य पीतबिन्दु क्षय	Central Senile Retino-Choroiditis
६७९	टेननके आवरणका प्रदाह	Teronitis
३८०	त्वचामय अर्बुद ६२०	Dermoids
६८८	त्वचामय रसग्रन्थि	Dermoid cyst
६८५	तन्तुमय अर्बुद	Fibroma
३३६	तन्तुमय शुक्लमण्डल प्रदाह	Filamentary Keratitis
५३२	तन्तुमय समूहका विच्छेद	Cyclodialysis
४०२	तन्तुसमूह प्रदाह	Cyclitis
	तृतीयक विषमज्वर	Tertian malarial fever

४०२	तारामण्डल और तन्तुमयपेशी उभयकाप्रदाह	Iridocyclitis
२९६	तारामण्डल और शुक्लमण्डलकी कृति की संलग्नता	Anterior Synechia
४०१	तारामण्डलका अभाव	Aniridia, Iridermia
४३२	,, विच्छेद	Iridodialysis
४२२	,, वियोग ४२३	Traumatic Aniridia
४०२	तारामण्डलप्रदाह ४०६,४१२	Iritis
४२४	तारामण्डलमें चीरे	Lacerations of Iris
५२३	तारामण्डलमें छेदन ५३३	Iridectomy
	तिल	Naevus, nevus
६४४	तिर्यग् दृष्टि ६५५	Squint, Strabismus, Heteropia
६७४	तुंगाक्ष गलगण्ड ६९१,७१७	Exophthalmic goiter, Basedow's disease, Grave's disease
	दन्तपूय	Pyorrhoea
५७५	दर्शनतन्तुओं का शोथ ५७८	Papilloma
५९२	दर्शन नाड़ी में जन्मसिद्ध अपूर्णता	Congenital anamalies of Optic Nerve
५९२	दर्शननाड़ीके सिरे में छिद्र	Colobcma of Disc
५७५	दर्शननाड़ी शीर्षका मिथ्याप्रदाह ५७८	Pseudo neuritis
५७६	दर्शननाड़ी शीर्षप्रदाह ५७६	Optic neuritis, Papillitis
२३९	दानेदार नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह	Follicular Conjunctivitis
	द्विदर्शन	Diplopia
६४९	द्विनयन दृष्टि	Binocular Vision
६४२	द्विनयन स्थलान्तर दृष्टि	Binocular Projection
	दिवान्धता	Day Blindness
७४८	दीर्घ दृष्टि ७५९	Hypermetropia or Hyperopia
	दुष्ट कर्कस्फोट	Epithelioma
	दुष्ट व्रण	Rodent ulcer
	दोनों नेत्रका ऊर्ध्व या अधोभाग का अर्द्ध दृष्टिनाश	Altitudinal Hemianopsia

६५०२	दृष्टिमणिका अभाव	Aphakia
४५२	दृष्टिमणिकी अपारदर्शकता	Opacities of lens, cataract
४२३	दृष्टिमणिकी व्यथाजन्य स्थानभ्रष्टता	Traumatic Dislocation o lens
४४६	दृष्टिमणि के पिछले पर्त्तमें एक अपारदर्शक धब्बा	Posterior Polar cataract
	धमनी में रक्तावरोध	Embolism
७१५	धमनीकौषकाटिन्य	Arterio-Sclerosis, Atheroma
५६२	नक्ताध्य	Retinitis Pigmentosa
५६४	नकुल दृष्टि ६१३	Lagophthalmus
५१०	नयन जलोदर ५३६	Buphthalmos, Hydro-phthalmos
	नयनद्वयगत तिर्यग्दृष्टि	Alternating Divergent Squint
	नक्षत्राकार नेत्रदर्पणप्रदाह	Retinitis Stelleta
	नाड़ीग्रन्थि	Glioma
	नीलपीतान्धता	Tritanopia
	नेत्रका बिल्कुल अभाव	Anophthalmos
७२०	नेत्रके भीतर पुनः पुनः रक्तस्राव	Recurrent Intra ocular Haem-orrhage
२२४	नेत्रकोणगत श्लेष्मावरणप्रदाह	Angular Conjunctivitis
६७८	नेत्रगृहप्रदाह	Orbital Cellulitis
	नेत्रगोलकका पूयप्रदाह	Endophthalmitis
३१६	नेत्रगोलकका स्फोटक	Panophthalmitis
६४४	नेत्रगोलककी बाह्यपेशियों की कर्तव्य भ्रष्टता	Anomalies of Extrinsic occular muscles
२६३	नेत्रगोलककी वृद्धि	Buphthalmos
३१४	नेत्रगोलककी विशीर्णता	Atrophy of Eye ball
३२४	नेत्रगोलक खुला रहनेसे उत्पन्न क्षत	Keratitis Lagophthelmos
६८३	नेत्रगृहास्थि क्षोभ	Caries of the orbital Bones
	नेत्रच्छद धारा प्रदाह	Marginal Blepharitis
	नेत्रच्छदार्बुद	Chalazion
५७६	नेत्रदर्पणका प्रदाह ५७५	Neuro-retinitis
	,, विच्छेद	Detachment of Retina

	नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनी का अवरोध	Embolism of the Central Retinal artary
५६९	नेत्रदर्पण तन्तुका विच्छेद	Retinal detachment
५६४	नेत्रदर्पणके घाव	Penetrating wounds of Retina
५६७	नेत्रदर्पणमें रक्तवाहिनी वृद्धि और स्थली निर्माण	Lindau's disease, Von Hipple's disease
	नेत्रदर्पणमें रक्तसंग्रह	Hyperaemia of Retina
५४३	नेत्रदर्पण प्रदाह ५५१ से ५५९	Retinitis
५९४	नेत्रद्वारका कोथ ६१३	Blepharophimosis
५५८	नेत्रप्रदाह	ophthalmia
	नेत्रबाह्यपटलका उत्तानप्रदाह	Episcleritis
	,, प्रलम्बन	Staphyloma of Sclera
३४९	नेत्रबाह्यपटलके प्रदाहसह उत्पन्न शुक्लमण्डलप्रदाह	Sclerosing keratitis
	नेत्रबाह्यपटल प्रदाह	Scleritis
४३४	नेत्रमध्यपटलके मांसार्बुद	Malignant Sarcoma
४२७	नेत्रमध्यपटल प्रदाह	Chorioditis
३००	नेत्रमें गड्ढा या कुआ	Pthisis Bulbi
५२७	नेत्रमें पिटिकाक्षत	Phlyctenule
६२३	नेत्रमें जल स्राव ६३६	Epiphora
२५९	नेत्रश्लेष्मावरणका उपदंश	Syphilis of Conjunctiva
२५९	नेत्रश्लेष्मावरणका कक्ष	Herps of Conjunctiva
२५९	,, ,, क्षय	Tuberculosis of Conjunctiva
२६७	नेत्रश्लेष्मावरणकी शुष्कता २८३	Xerosis
२६०	नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रक्तस्राव	Subconjunctival Ecchymosis
२६६	नेत्रश्लेष्मावरण पर विषाक्त गैसजनित असर	Effects of Poisonous Gasses on Conjunctiva
३२१	नेत्रश्लेष्मावरण के प्रसेकजनित शुक्लमण्डल क्षत	Catarrhal Corneal ulcers
२६१	नेत्रश्लेष्मावरणमें अर्श	New growths of the Conjunctiva
२२९	,, ,, प्रदाह	Catarahal Conjunctiva
२२८	,, ,, रक्तसंग्रह	Hyperaemia of the Conjunctiva

	नेत्रशुक्लांगता	Albinism
२३५	न्युमोकोकस जनित नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	Pneumoococal Conjunctivitis
	पट्टीसदृश चक्राकार काचबिन्दु	Zonular cataract
५६४	परवाल २०८,६११,६२१,७८६ ७६५,७६८,८००	Districhiasis & Trichiasis
२८२	परवाल और पलक का भीतर या बाहर मुड़जाना	Trichiasis, Districhiacis and Entropion and Ectropion
	पर्याय क्रमसे अनुगमनशील तिर्यग् दृष्टि	Alternating Esotropia
२८३	पलक और गोलककी संलग्नता	Symblepharon
६२०	पलकका अभाव ६२१	Ablaphoria
३१३	परिसरणशील क्षत	Serpiginous ulcer·Pneumo Cocoal ulcer, Hypopyon ulcer
६०६	पलकका अन्तरावर्तन ७८१,८८६,८००	Entropion
६०६	,, बाह्यावर्तन ७६०	Ectropion
२८२	पलकधाराका पाक	Marginal Blepharitis
५६४	पलकधाराकी परस्पर संलग्नता ६१२,६२०,६२१	Ankyloblepharon
६२२	पलकमें चर्म जूँ	Pediculi Ciliaris
	पलकक्षत	Ulcers of Eyelids
	पश्चिम भागमें अर्द्ध चन्द्राकार ह्रस्वदृष्टि	Posterior Myopic Crescent
	पश्चिम भागमें प्रलम्बन	Posteriar Staphyloma
५७५	पश्चिमा दृष्टिनाड़ी प्रदाह	Retro bulbar Neuritis
	पाण्डु	Anaemia
६००	पिटिका	Furuncles
३२८	पिटिका क्षत	Phlyctenular Conjunctivitis
२५४	पिटिका क्षतमय अभिष्यन्द	,, ,,
४६२	पित्तक्षार	Cholesterin
	पित्ताशय प्रदाह	Cholecystitis
२७१	पिशुक-पीतबिन्दु	Pinguiculia

४०२	पिंगल तारामण्डल	Albinio Iris
५६४	पीतबिन्दुका शोथ	Commotio Retinae
६१८	पीतसर्षपवत् पिटिकाएं ६१९	Xanthelsma
५०४	पूय	Pus
४२९	पूयात्मक नेत्रमध्यपटलप्रदाह	Purulent-Suppurative Choroiditis
३००	पूयप्रदाह, नेत्रगोलक का	Panophthalmitis
	पूयपूर्ण नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह	Purulent ophthalmia
३१९	पूयमयपाक	Suppuration
	पूयमय रक्तविकार	Pyaemia
३३२	पूयमेह और कण्ठरोहिणीके उपद्रव स्वरूपनेत्रश्लेष्मावरण प्रदाहज शुक्लमण्डलक्षत	Corneal ulcer due to Gonorrhoeal Diphtheria
२४१	पूयमेहज नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह	Gonorrheal or Purulent ophthalmia
२९६	पूयसंग्रह	Hppopyon
२५८	पेरीनौडका नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह	Perinaud's Conjunctivitis
६५९	पेशी स्तम्भरहित तिर्यग्दृष्टि	Non Paralytic squint, Concomitant Squint
६५२	,, ,, पार्श्विक अन्तर्गामी तिर्यग्दृष्टि	Monolateral Concomitant convergent Squint
६५७	,, ,, बहिर्गामी तिर्यग्दृष्टि	Divergent Concommitant Squint
२७३	पोथकी	Trachoma
३३०	पोथकी जन्य शुक्लमण्डल क्षत	Trachomatous ulcers of the Cornea
	पोषणकी न्यूनताजनित शुक्लमण्डलशोष	Dystrophies of Cornea
५५७	प्रचण्ड प्रकाशजन्य नेत्रदर्पण प्रदाह	Photogenous Retinitis
	प्रथिनक्षेपज आघात	Allergic Shock
३८३	प्रदाह ५७६, ५७५,	Inflammation
	प्रदाहजन्य शोथ	Inflammatory oedema
	प्रदाहरहित शोथ	Non— ,, ,, ,,

३९६	प्रलम्बन ७५३	Ectasiae, Staphyloma
	फुफ्फुसक्षय	Phthisis
२९५	फूला	Corneal opacities
५९७	न्युची	Eczema
	बहुजतुक	Molluscum
	बहुस्थली निर्माण	Angiomatosis
६७६	बहिर्निःसरण	Exophthalmos
५३९	बाल अधिमन्थ	Hydrophthalmos, Buphthalmos
२४१	बालकों का पूयमय नेत्रश्लेष्मा वरण प्रदाह	Ophthalmia Neonatorum
४०१	बाह्यावर्तन ६०८, ६०९	Ectropion
५५४	मण्डलाकार नेत्रदर्पण प्रदाह	Retinae Circinate
	मध्यस्थ नेत्रदर्पणका अपकर्ष	Central Tapete-Retinal degeneration
	मध्यस्थ प्रलम्बन	Equatorial Staphyloma
	मधुमेहज अन्धता	Diabetic Amblyopia
६१९	मस्से	Warts
७०९	मस्तिष्क और सुषुम्णामें विकीर्ण कोपकान्ठिय	Disseminated Sclerosis of Brain and Spinal Cord
६८९	मस्तिष्क कोष वृद्धि	Hernia Cerebri
५७५	मस्तिष्क जलोदर ५७९	Hydrocephalus
३९५	मस्तिष्कावरण प्रदाह ५९४, ६६६, ७०९, ७१२	Meningitis
२५९	मस्तिकावरण प्रदाह जन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	Meningococcus Conjunctivitis
४२४	मासग्रन्थि ३८०, ४२६, ४३४ ६१९, ६२०, ६८५, ६८९	Sarcoma
६४४	मांसपेशियोंकी निर्बलता ६४५	Heterophoria
	मांसपेशी स्तम्भज क्लान्ति	Myasthenia gravis
	मिथ्या नाड़ी प्रदाह	Pseudo neuritis
	मिथ्या निमीलन	Pseudoptosis
	मूद्धमारजनित पीतबिन्दुका शोथ	Commotio Retinae
६९५	मूत्रविषजतिन अन्धता ७००	Uraemic Amblyopia

६२०	मेदमय अर्बुद	Adenoma
५५५	मेदमय नेत्रदर्पण प्रदाह	Lipaemia Retinitis
६००	मेषकीटाणुजन्य पूयपिटिका	Anthrax Pustule
४५२	मोतियाबिन्दु ४५३	Cataract
७०६	मृगी ७१३	Epilepsy
	युवावस्थामें उत्पन्न शुक्लमण्डलकी परिधिकी श्वेत अपारदर्शकता	Arcus Juvenalis
४५३	युवावस्थामें मोतियाबिन्दु	Juvenile Cataract
६८०	रक्तजमाव	Thrombosis
६८६	रक्तजलमय रसग्रन्थिया	Serous cysts
५४२	रक्तन्यूनता ५४४	Anaemia
७१७	रक्तपित्त	Scurvy Purpura
	रक्तप्रणाली वृद्धिजनित ग्रन्थिया	Naevi
	रक्तपिटिका	Phlyctena
	रक्तवर्णान्धता	Protanopia
५६७	रक्तवाहिनी वृद्धि	Angiomatosis
६१६	रक्तार्बुद ६२०,६२५	Angiomas
	रक्ताणुवृद्धि	Polycythaemia
५६२	रतौंधी	Retinitis Pigmentosa
४२४	रसग्रन्थि ४२५,६८८,७८६,६८९	Serous cysts, Chalazion, Cysts
४२९	रसस्रावात्मक नेत्रमध्यपटल प्रदाह	Exudativechoroiditi
५४३	रसार्बुद ६६७,६१६,६८५	Cysts
५३६	रेखामय शुक्लमण्डल प्रदाह	Striate keratitis
५४२	रेषाकार नेत्रदर्पणप्रदाह ५४४	Retinitis Proliferens
२७३	रोहा ७८६,७९०,७९१,९६२	Trachoma, Granular lids, Granular Conjunctivitis
४३७	लघुदृष्टि	Myopia
५३८	लघुनेत्र	Microphthalmus
६०२	लेसदार क्षत	Gumma
३७५	लोहभस्मजन्य शुक्लमण्डलकी पिंगलता	Siderosis Bulbi
	वंशागत अन्धतासह मूढ़ता	Amauratic family Idiocy

२४५	वयस्कोंके पूयमेहज नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह	Gonorrheal Conjunctivitis
५४३	वर्णबिन्दुसह नक्ताध्य और नेत्रदर्पणप्रदाह ५५९, ५६२	Retinitis Pigmenotosa
२९१	वसन्त ऋतुजनित नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह	Spring Catarrhal conjunctivities
४६४	वृक्कप्रदाह	Nephritis
४५४	वृद्धावस्थागत मोतियाबिन्दु	Senile Cataract
३३३	वृत्ताकर शुक्लमण्डलप्रदाह	Dendritic keratitis.
५४३	वातनाड़ी अर्बुद ५६५	Glioma
३८०	,, ग्रन्थि ५६५	Glioma
७१३	वातनाड़ीके सिरेका शोथ	Papilloedema
३२३	वातनाड़ी स्तम्भजनित शुक्लमण्डल का क्षत	Neuro-Paralytic keratitis
	वातरक्त	Gout
६४९	वार्धक्यजन्य दृष्टिमान्द्य ७४८, ७६८	Presbyopia
	,, पीतबिन्दु	Pinguecula, Pinguicula
	,, शुक्लमण्डकी श्वेत परिधिकी अपारदर्शकता	Arcus Senilis
५९४	विसर्प	Erysipelas
६००	विद्रधि	Abscess
५७५	विषप्रकोपज ५८९, ६९९	Toxic
२६९	वेल	Pterygium
४४९	विषमदृष्टि ७३६, ७४८, ७६५	Astigmatism
७२०	विषमज्वर	Malaria
४४६	शंक्वाकार दृष्टिमणि	Lenticonus
३७८	,, शुक्लमण्डल	Conical Cornea, Keratoconus
५८५	शकुन्तगतिरोग ६७५, ७१३	Locomotor Ataxy-Tabes Dorsalis
	श्लीपद	Elephantiasis
५४३	श्वेतबिन्दुसह नक्ताध्य ५६२	Retinitis Punctata Albescens
२५२	शिथिल कृत्रिम कलामय नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह	Croupous Conjunctivitis

७१६	शिरावरोध	Venous Thrombosis
७०९	शीर्षजलोदर ७१३	Hydrocephalus
२९५	शुक्र	Corneal opacities
३३५	शुक्लमण्डलका कक्षाजन्य प्रदाह	Herpetic Keratitis
३०९	शुक्लमण्डलका गलन ३२०	Keratomalacia
३३९	,, गम्भीर बिन्दुमयप्रदाह	Keratitis Punctata Profunda
३३९	,, गर्भप्रदाह	Parenchymatous Keratitis, Interstitial Keratitis
३६६	,, घर्षणक्षत	Abrasions of Cornea
३७५	निःसरण	Anterior Staphyloma
३६८	शुक्लमण्डल के घाव	Wounds of Cornea
६७०	शुक्लमण्डलका जलना	Burns of Cornea
३७१	,, न्यूनपोषणजन्य रोग	Dyotrophies or Degeneration Condition of Cornea
३३२	,, स्फोटक	Pemphigus of Cornea
३१४	,, निर्गमन	Staphyloma
२९६	शुक्लमण्डलकी अस्वाभाविक विशालता	Megalo-Cornea
३२६	,, ,, उत्तानपरिधिके क्षत	Keratitis Marginalis, Superficialis
३२७	शुक्लमण्डलकी गम्भीर परिधिकेक्षत	Keratitis Marginalis Profunda
६२७	,, तारुण्य पिटिका	Acne Rosacea, Keratitis
४२७	,, परिधिका संक्रामक क्षत	Infectious Marginal(ulcer Zur-Nedden)
३७२	,, परिधिकी अपारदर्शकता	Arcus Senilis
३७३	,, ,, श्वेत ,, ,,	,, Juvenilis
३६४	,, रेखामय अपारदर्शकता	striate opecity of the Cornea
२९६	,, लघुता	Microcornea
	शुक्लमण्डलके गर्भ भागकाप्रदाह	Interstitial Keratitis, Parenchymatous Keratitis,
७१७	शुक्लमण्डलकोथ	Keratomalacia

१८१	शुक्लमण्डल क्षत	Corneal ulcer
	शुष्क अभिष्यन्द	Xerophthalmia
६०४	शुष्क रस संग्रह ६०८	Infarction
५११	शूलसह अधिमन्थ	Inflamatory Glaucoma
	शोणित ज्वर	Scarlet fever
	संक्रामक परिधि क्षत	Infectious Marginal ulcer
२८६	सफेदी	Pannus
४३८	समदुःखी चक्षुप्रदाह	Sympathetic ophthalmia
६७३	स्तम्भज कलान्ति	Myasthenia gravis
६६६	स्तम्भजन्य संधानगति भ्रष्टता	Conjugate Paralysis
६५१	स्तम्भरहित तिर्यग्दृष्टि ६५८	Non Paralytic Squint
६४१	स्थलान्तर दृष्टि ६४२	Projection
४४४	स्थान भ्रष्टता ४४५,४४६	Dislocation
३२८	स्फोटमय शुक्लमण्डलप्रदाह	Keratitis Vesiculosa and Bullous
५५५	स्रावमय नेत्रप्रदाह	Coat's Retinitis
	सुजाकजनित सन्धिप्रदाह	Gonorrhoeal arthritis
५८३	सुषुम्नाकाण्डके मणियोंकाकाठिन्य	Multiple Sclerosis of Spinal Cord
५५७	सूर्यप्रकाशज अन्धता	Solar Blindness
	सूक्ष्म दृष्टिमणि	Microphakia
६६२	हृत्स्पन्दन वृद्धि	Tachycardia
७१६	हृदयावरणप्रदाहसे नेत्रगतपरिवर्तन	Pericarditis
३९८	ह्रस्वदृष्टि ४४६,६५७,७४८,७५३	Myopia
	हरितान्धता	Deuteranopia
६०२	क्षतमय अक्षिपुट प्रदाह	Ulcerous Blepharitis
३३७	क्षतरहित शुक्लमण्डलप्रदाह	Non ulcerative Ketatitis
६०२	क्षतमय शुष्कप्रदाह	Squamous Blepharitis
४२४	क्षयजग्रन्थि ४२५,४६६,६०१	Tubercle
	क्षयजनित क्षत	Tuberculous ulcers
३३६	क्षयजन्य शुक्लमण्डलके क्षत	,, ,, of Cornea
२९६	क्षतसहित शुक्लमण्डलप्रदाह	Ulcerative Keratitis

नेत्ररोगविज्ञान में आये हुए पारिभाषिक शब्द।

A

Ablepharia, Ablepharon	पलकका अभाव
Abrasion	घर्षण क्षत
Absorbents	शोषक
Absorption	संशोषण
Accessory Lachrymal glands of Krause	क्रोसेके पिण्ड
Accomodation	संयोजन
Acne Rosacea	तारुण्य पिटिकाजन्य क्षत
Actinic	प्रचण्ड प्रकाशज
Aczema	व्युची
Adenoma	मेदमय अर्बुद
Adheaent Leucoma	अनुबन्धित फूला
Adrenal	अधिवृक्क
Advancement	पेशीका लघुकरण
Aetiology	निदान, कारण
Albescens	श्वेत बिन्दुसह नक्ताध
Albinic Iris	पिङ्गल तारामण्डल
Albinism	नेत्रशुक्लांगता, त्वचा आदि का भूरापन
Albinos	भूरे बाल, नेत्रादि वाले।
Albumin	प्रथिन
Alkalies	विविध क्षार
Alkalies	समक्षाराम्ल
Allergic shock	प्रथिन क्षेपज आघात
Alternate	पर्यायक्रमसे अनुगमनशील
Alternating Divergent Squint	नयनद्वयगत तिर्यग्दृष्टि
,, ,, Esotrohia	पर्यायक्रमसे अनुगमनशील तिर्यग् दृष्टि
Altitudinal Homianopsia	दोनों नेत्रोंके ऊर्ध्व या अधोभागका अर्द्ध दृष्टिनाश

Amaurotic family Idiocy	वंशागत अन्धतासह मूढ़ता
Amber Coloured	गहरा पीला
Amblyopia	अन्धता
Amblyoscope	दृष्टि सुधारक यन्त्र
Ambolism	धमनीका अवरोध
Ambryology	गर्भशास्त्र
Ampoules	कांचकी छोटी बन्द शीशीयां
Anaemia	रक्तन्यूनता, पाण्डु
Anethetics	चेतनाहर
Angioma	रक्तार्बुद
Angiomatosis	बहुस्थली निर्माण
Angular conjunctivitis	नेत्रकोणगत श्लेष्मावरण प्रदाह
Aniridia	तारामण्डलका अभाव
Ankyloblephsharon	अक्षिपुट धाराकी परस्पर संलग्नता
Anodynes	पीड़ाशामक
Anomalies of conjugate movement	मांसपेशीकी संधानगति भ्रष्टता
,, ,, ,, Cornea	शुक्लमण्डलकी अस्वभाविकता
,, ,, ,, Extrinsic ocular muscles	नेत्रगोलककी बाह्यपेशियोंकी कर्तव्यभ्रष्टता
Anomaly	न्यूनता
Anophthalmos	नेत्रका बिल्कुल अभाव
Anterior chamber	अग्रिमा जलधानी, जलमय रसका पूर्वखण्ड
,, Epithelial membrane	अग्रिमा उत्तान स्तरिका
,, limiting layer	अग्रिम स्तर
,, Staphyloma	शुक्लमण्डलका बहिर्निःसरण
,, Synechia	तारामण्डलके अग्रभागकी संलग्नता, तारामण्डल और शुक्लमण्डलकी वृत्तिकीसंलग्नता
Anthrax Pustule	मेष कीटाणुजन्य पूय पिटिका
Antiphlogistics	प्रदाहनाशक, शोथहर
Antiseptic	जन्तुघ्न, कीटाणु उत्पत्तिरोधक
Antrum of Highmore	हनुगर्भ कोटर

Apex	शिखर
Aphakia	दृष्टिमणिका अभाव
Appendages	उपाङ्ग
Appendicitis	उपान्त्रप्रदाह
Application of Caustic and Cauterization	दहनक्रिया
Apron	वस्त्रावरण
Arachnoid Membrane	मध्यावृत्ति, निशारिका।
Arcus Juvenlis	युवावस्थामें उत्पन्न शुक्लमण्डलकी परिधि की श्वेत अपारदर्शकता।
,, Senilis	वार्धक्यजन्य शुक्लमण्डलकी श्वेत परिधि की अपारदर्शकता
Area Striate	रेखा चिह्नित प्रदेश
Argyrosis	रजतक्षारजन्य कालापन
Arteria Centralis retina	नेत्रदर्पण मध्यस्था धमनी
Arteries	धमनिया
Arterio-Solerosis	धमनी कोष काठिन्य।
,, Solerotic Retinitis	नेत्रदर्पणस्थ धमनी कोष काठिन्य जनित प्रदाह
Artificial fever	कृत्रिमज्वर
Aseptic	निर्जन्तुक
Astigmatism	विषम दृष्टि
Astringents	ग्राही
Atheroma	धमनी कोष काठिन्य
Atropa Bellodonna	सूची बूटी।
Atrophy	शोष, विशीर्णता।
Axis	अक्ष
Bacilli	उद्भिद् कीटाणु।
Bacteriology	कीटाणु विद्या, रोगोत्पादक कीटाणु विज्ञान।
Bandage	पट्टी।
Base	आधार स्थान।
Basedows' disease	तुंगाक्ष गलगण्ड।
Basin	परात।

Bedpan	शय्यापात्र।
Bioonvex	युगल उन्नतोदर।
Biouspid tooth	अग्रचर्वणक दांत।
Binasal Hemianopsia	अन्तर्दृष्टि क्षेत्रका अर्ध अभाव।
Binoonular Fixation	द्विनयन अनिमेषता।
,, ,, ophthalmoscope	दोनों नेत्रों का नेत्रदर्शक यन्त्र।
,, ,, Projection	द्विनयन स्थलान्तर दृष्टि।
,, ,, Vision	द्विनयन दृष्टि।
Bitemporal Hemianopsia	बाह्य दृष्टि क्षेत्रका अर्ध अभाव, दोनो ओर शंखास्थिगत अर्ध दृष्टिनाश।
Blenorrhoea of Lachrymal Sac	अश्रुवाशयका प्रदाह।
Blepharitis	अक्षिपुटप्रदाह,
Blepharophimosis	नेत्रद्वारका कोष, नेत्रद्वारका संकोच।
Blepharoptosis	ऊर्ध्वाक्षिपुटपतन।
Buld of the Eye	नेत्रगोलक।
Bulber's Shield	नेत्ररक्षक कोष।
Bulphthlamos	बालकोंका अधिमन्थ।
Buphthalmos	नयन जलोदर और बाल अधिमन्थ। नेत्रगोलककी वृद्धि। नितम्ब।
Calcarine fissure	वक्रान्तरा सीता; एड़ीके आकारकी दरा।
Canal of sohlemm	अग्र जलमार्ग
Canaliculi	अश्रुवाहक नलिका, अश्रुप्रपिका
Canaliculus dilator	अश्रुद्वारप्रसारक नलिका
Cancer	कर्कस्फोट
Canine	रदनक दांत
Canthoplasty	नेत्रबाह्यकोणभेदक शस्त्रक्रिया
Canula	नोकरहित आर
Capsular Cataraot	आवरणगत शेष कांचबिन्दु
Carbonate of Lead	सफेदा
Caroinoma	कर्कस्फोट
Caries of the orbital Bones	नेत्रगृहास्थि कोथ

Cartilaginous Tumours	अस्थिमय ग्रन्थि
Carunole Lachrymalis	मांसल नेत्रपिण्ड कोणांकुर
Cataract	काचबिन्दु
,, Nigra	,, कृष्ण
Catgut	अन्त्रतन्तु, तांत
Cauterization	दहनक्रिया
Cautery	दहनकर यन्त्र, दम्भक यन्त्र
Cavernous Sinus	त्रिकोणिकाशिरा सरिता
Central Senile Retino-Choroiditis	जराजन्य पीतबिन्दु क्षय
,, Tapeto-Retinal degeneration	मध्यस्थ नेत्रदर्पणका अपकर्ष
Cerebellum	अनुमस्तिष्क
Cerebro-Macular degeneration	मस्तिष्कगत अपक्रान्तिसे पीतबिन्दुकी अपक्रान्ति
,, Spinal fluid	ब्रह्मवारि
Chalazion	नेत्रच्छदार्बुद, अञ्जननामिका
Chamber	जलमयस्थान
Chancre	क्षत
Chemical injuries	रासायनिक द्रव्यसे व्यथा
Chemosis	शोथमय नेत्रश्लेष्मावरण
Chiasma	दर्शननाड़ी संगम, दृष्टि नाड़ी योजनिका
Cholecystitis	पित्ताशय प्रदाह
Cholesterin	पित्तक्षार
Choreiod	नेत्रमध्यपटल
Chorioditis	नेत्रमध्यपटलप्रदाह
Cilia forceps	बाल नोचनेकी चिमटी
Ciliary artery	संधानिका धमनी
,, muscles	संधानपेशी, तन्तुमयपेशी
,, body	तन्तुसमूह, संधानमण्डल
Ciliary ganglior	चानुपग्रन्थि।
,, process	संधानदर्शिका, तन्तुमयपुट।
Circinata	मण्डलाकार।

Circulus arteriosus	धमनी चक्र ।
Coagulents	रक्तको घनत्वजनक ।
Coarse adjustment	स्थूल समायोग ।
Coat's Retinitis	स्त्रावमय नेत्रप्रदाह ।
Collyrium	नेत्रमें डालने की औषधियां ।
Coloboma	छिद्र ।
Coma	संन्यास ।
Common carotid artery	महामातृका धमनी ।
Commotis Retinal	मूढ़मारजनित पीतबिन्दुका शोथ ।
Complication	उपद्रव ।
Compression	दबाव ।
Concave mirror	अन्तर्गोल दर्पण ।
Concentrated	अति गाढ़ा ।
Concomitant Squint	पेशीस्तम्भरहित तिर्यग् दृष्टि ।
Concussion	धक्का ।
Condyloma	उपदंशज ग्रन्थि ।
Conflunt	सम्मिलित
Congenital abnormalities	गर्भावस्था मेंविकृति
Conjestive	रक्तसंग्रहजनित ।
Conicle Cornea	शंकाकार शुक्लमण्डल ।
Conjugate Paralysis	स्तम्भज सन्धानगति भ्रष्टता ।
Conjunctiva	नेत्रवर्त्म, नेत्रश्लेष्मावरण ।
Conjunctivitis	नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह
Consensurl reaction	उभयवर्त्मि प्रतिक्रिया ।
Convergence	केन्द्राभिवर्त्तन, केन्द्राभिमुख प्रतिक्रिया ।
Convergent	अन्तर्गामी
Convex	उन्नतोदर ।
Cornea	शुक्लमण्डल, स्वच्छमण्डल ।
,, **loupe**	शुक्लमण्डलका वृहद्दर्शक यन्त्र
,, **microoscope**	शुक्लमण्डलदर्शक अणुवीक्षण यन्त्र दीपक सहा
,, ,, **with slit lamp**	शुक्लमण्डलका अणुवीक्षणयन्त्र ।

Corneal opacity	शुक्र, फूला ।
,, ulcers secondary to vernal catarrhal	वसन्त ऋतु के कण्डूमय नेत्रश्लेष्मावरणी प्रदाहजन्यक्षत ।
Corpora quadrigeminum	चतुर्गुण समूह, कलायिका चतुष्टय ।
Corpus genioulatum	अधिपीठिका उत्तरा ।
Cortex	गर्भपदार्थ, वल्क ।
Cortical	गर्भगत ।
Cover slide glass	कांचपुट ।
Cranial nerves	मस्तिष्क से सम्बन्धवाली १२ नाड़ी ।
Croupous Conjunctivitis	कृत्रिमकलामय नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह ।
Crura Cerebri	मस्तिष्कमृणालक, मस्तिष्क बंधन ।
Crystal lens	दृष्टिमणि, यवकांच ।
Culture media	पोषक तत्व ।
Cylindrical Concave	अर्ध अन्तर्गोल ।
Cylindrical convex	अर्ध बहिर्गोल ।
Cyclitis	तन्तुमय समूह का प्रदाह ।
Cyclodyalysis	तन्तुमय समूहोंका विच्छेद ।
Cyclophoria	गोलकावर्त्तन ।
Cycloplegics	तन्तुमय पेशी शैथिल्यकर औषध ।
Cysts	रसार्बुद ।
Cysticercus	बाल कद्दूदाना कीड़े ।
Cystotome	दृष्टिमणिका आवरणभेदक कांटा ।

D

Dacryo-adenitis	अश्रुजनन पिण्ड प्रदाह
,, -cystitis	अश्रु वाशयका प्रदाह
Dark adaption	अन्धकार संयोजन
Day Blindness	दिवान्धता
Decompression	दबाव कम करना
Deep Scrofulous infiltrates	पिटिका क्षयमय शुक्लमण्डलके गम्भीर भागमें अन्तर्भरण
Degeneration	अपकान्ति, अपकर्ष
Demonstration ophthalmoscope	एकाधिक विद्यार्थि रोगीके नेत्रदर्पणको

	देख सके ऐसा यन्त्र
Dendrite	वृक्षकी शाखा सदृश वृद्धि
Dendritic Karatitis	वृक्षाकार शुक्लमण्डलप्रदाह
Dermoid Cyst	त्वचामय रसग्रन्थि
Desmaer's lid elevator	डिस्मारका नेत्रच्छद उत्थापक यन्त्र
Detachment of Retina	नेत्रदर्पणका विच्छेद
Deuteranopia	हरितान्धता
Diabetic Amblyopia	मधुमेहज अन्धता
Diaphanoscope	प्रतिप्रकाश यन्त्रसे परीक्षा
Diaphragm	गोल छिद्रवाला पर्दा
Diathermy Apparatus	डायाथर्मी यन्त्र
Dilator Pupillae muscles	कनीनिका प्रसारक
Diphtheria	कण्ठरोहिणी
Diplopia	द्विदर्शन
Discoform Keratitis	चक्राकार क्षत
Discrete form	पृथक्-पृथक् पिडिका प्रकार
Dislocation of Lens	दृष्टिमणिकी स्थान भ्रष्टता
,, through disintegration of Zonule	दृष्टिमणिके बन्धनकी निर्बलताजनित स्थान भ्रष्टता
Dissection forceps	त्वचादि पकड़नेकी चिमटी
Disseminated Sclerosis of Brain and Spinal cord	मस्तिष्क और सुषुम्णोंमें विकीर्ण कोष काठिन्य
Districhiasis	परवाल, पलककी एक पंक्तिका भीतर या बाहर मुड़ जाना
Divergent concomitant Squint	पेशी स्तम्भरहित बहिर्गामी तिर्यगदृष्टि
Dorsalis nasi art.	बाह्य नासिकी धमनी
Dura Mater	वराशिका, बहिर्वृत्ति
Dystrophies of Cornea	पोषणकी न्यूनताजनित शुक्लमण्डलशोष
Eale's disease	इलकारोग, नेत्रदर्पणगत परिवर्त्तित रक्तस्राव।
Ectasiae	प्रलम्बन।
Ectogenous	नेत्र तथा उसके उपाङ्गोपर आक्रमण करना।
Ectopia Pupillae	कनीनिकाका स्थलान्तर।
Ectropion	पलकका बाहर मुड़ना, नेत्रच्छदका बहिर्वलन

Eczema	व्युची ।
Eczematous	व्युची विकारज ।
Electro cautery	दहनक्रियोपकरण ।
Electrolysis needle	विद्युत प्रवाहमुक्त दम्भक शलाका ।
Elephantiasis	श्लीपद् ।
Embolism of the Central Retinal Artery	नेत्रदर्पणकी मध्यस्थ धमनीका अवरोध ।
Embryology	गर्भशास्त्र ।
Endo Crine disturbances	अन्तःस्रावी ग्रन्थियोंका विकृतिजनित परिवर्तन
Endoganous	रक्त में प्रवेश करके आक्रमण करना ।
Endophthalmitis	नेत्रगोलकका पूयप्रदाह ।
Endothelial loyer	अग्रिम सूक्ष्मत्वचा स्तर ।
Enophthalmos	गोलकका अक्षिपज शोष ।
Entropion	परवाल, अक्षिपुटका अन्तःवर्तन ।
Enucleation	नेत्रगोलकके निकाल देनेकी शस्त्रक्रिया, गोलक निष्काकन ।
,, Scissors	गोलकको निकाल देने की कैंची ।
Epicanthus	रङ्गेल्लु अण,
Epichoroid	त्वचाकी पर्त्त ।
Epicranial	शिरच्छदा ।
Epilation forceps	बाल नोचने की चिमटी ।
Epilepsy	मृगी ।
Epiphora	नेत्रमें जलस्राव ।
Episcleritis	नेत्रबाह्य पटलका उत्तानप्रदाह ।
Epithelioma	दुष्टकर्कस्फोट ।
Equatorial region	विषुवत् रेखाप्रदेश ।
,, Stayhyloma	मध्यस्थ प्रलम्बन ।
Erisophake	कांचबिन्दु चूसक यन्त्र ।
Erysipelas	विसर्प ।
Esophoria	गोलकका अन्तरावर्तन ।
Ethmoid bone	झर्झरास्थि ।
Eversion	बाहर मुड़ना ।
Evisceration	नेत्र रिक्तकरण (नेत्र गोलकको रिक्त कर दो)

Excessive Accomodation	संधान शक्तिकी अति कर्तव्यता।
Excision of Horizontal Strip of Skin	अक्षिपुटकी बाह्य त्वचा छेदन।
Exciting	प्रकोपक।
Exophoria	गोलकका बाह्यावर्तन।
Exophthalmic Goitre	तुंगाक्ष गलगण्ड।
Exophthalmos proptosis	गोलकका बहिर्निःसरण।
Exostosis	अस्थिमय अर्बुद।
Expression of Trachoma	रोहेको दबा देनेकी रीति।
Externol geniculate body	उत्तरा अधिपीठिका, बाह्यग्रन्थल भाग।
,, Rectus muscle	बहिर्दर्शनी, बाह्यस्था सरला पेशी।
Exudative choroiditis	रसस्रावमय नेत्रमध्य पटल प्रदाह।
Eye ball	नेत्रगोलक।
,, brow	भ्रू।
,, lids	अक्षिपुट, पलक, नेत्रच्छदी।
,, speculum	नेत्रको खुला रखने के लिये कमानी।
Facial artery	बहिर्हानव्या धमनी।
Familial Cerebro-Macular degeneration	कौटुम्बिक मस्तिष्क और पीतबिन्दुकी अपक्रान्ति।
Fiber	तन्तु।
Fibroma	तन्तुमय अर्बुद।
Field of vision	दृष्टि क्षेत्र।
Filamentary Keratitis	ततुमय शुक्लमण्डल प्रदाह।
Filamentous	केशरूप विकृति।
Filaria Loa	स्नायु—नारूकी जातिके कृमि।
Fixation	अनिमेष दृष्टि या स्थिर दृष्टि।
,, forceps	गोलकको स्थिर रखनेवाला चिमटा।
Flame	ज्वाला।
Focussing	केन्द्रीभवन, रश्मियोंका एकीकरण।
Follicular Conjunctivitis	दानेदार नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह।
Forceps	चिमटे।
Fobea centrlis	नेत्रदर्पण का मध्यभाग, दर्शनकेन्द्र।
Frontal artary	ललाटिका धमनी।

Frontal Sinus	ललाट कोटर।
Fulminant Glaucoma	दुष्ट अधिमन्थ।
Fundus	अश्रुवाशय शिर।
Furuncles of Lids	अक्षिपुट पिटिका।
Fusion	एकरूपता।
Ganglean Layer	पुरुकन्दाणुकिनी, नाड़ीग्रन्थि स्तर
Gangrene	कोथ
Gasserian ganglion	मज्जाकन्द, त्रिधारग्रन्थि
Glass slides	काचकी लम्ब चौकोर तख्तिया
Glaucoma	अधिमन्थ; आंखका नजला
Glioma	नाड़ी ग्रन्थि
Gluteus maximum	नितम्ब पिंडका गरिष्ठा
Gluteus medius muscles	,, ,, मध्यमा
Goggles	काले रङ्गके चश्मे
Gonioscope	कोणदर्शक यन्त्र
Goniotomy	अग्र जलमार्गके छेद
Gonococci	पूयमेहक अण्डाकार कीटाणु
Gonorrhoeal-arthritis	सुजाक जनित संधिप्रदाह
Gout	वातरक्त
Gram negative bacilli	ग्रामाग्राही सरलाकृति कीटाणु
,, positive ,,	ग्रामग्राही ,, ,,
Granular lids	पोथकी, रोहे
Grave's disease	तुंगाक्ष गलगण्ड
Great trochanter	ऊर्वास्थिका महाशिखर
,, wings of sphenoid bone	जतूकास्थिकी बृहत् पक्षति
Gumma	लेसदार क्षत
Haemorrhage	रक्तस्राव
Hand slit lamp	प्रकाशकेन्द्रक लघु दीपक
Hemianopsia	अर्ध दृष्टिनाश
Hernia cerebri	मस्तिष्क कोषवृद्धि
Herpes	कक्षा
Herpes Zoster ophthalmicus	अक्षिपुटका कक्ष
Herpetic	कक्षाजन्य

Herpetic Keratitis	शुक्लमण्डलका कक्षाजन्यप्रदाह
Heteropsia	गोलककी तिर्यग्दृष्टि
Heterophoria	नेत्रगोलकी मांसपेशियोंकी निर्बलता
Higher visual centre	उच्चदर्शन केन्द्र स्थान
Hordeolum	अंजननाभिका
Horizontal Diameter	अनुप्रस्थ (उत्तर-दक्षिण) व्यास
Hyaloid membrane	कांचरूप रसावरण, सान्द्रजलधरकोष
Hydatid cysticercosis	कृमिजन्य ग्रन्थि
Hydro cephalus	मस्तिष्क जलोदर
Hydrochloric acid	नमक द्रावक
Hydrophthalmos	बाल अधिमन्थ, नयन जलोदर
Hyperaemia of Retina	नेत्रदर्शणमें रक्तसंग्रह
Hypermature cataract	अतिपक्वावस्थामें कांचबिंदु
Hyperopia	दीर्घ दृष्टि
Hypermetropia	दीर्घ दृष्टि
Hyperphoria	गोलकका ऊर्ध्वावर्त्तन
Hypertension	रक्तदबाव वृद्धि
Hypopyon	पूयसंग्रह
Hypopyon ulcer	परिसरणशील व्रण
Idiocy	मूढ़ता ।
Iliac-creat	जघनचूड़ा ।
Ill Sustained accomodation	संयोजनशक्तिके टिकावमें न्यूनता ।
Incipient cataract	कांचबिन्दुकी प्रारम्भिक अवस्था ।
Incision for Stye	अञ्जननामिकापर शस्त्रक्रिया ।
Incisors	कर्त्तनक ।
Infarction of Meibomian glands	मेइबोमियन ग्रन्थियोंमें शुष्क रसका संग्रह
Infectious Marginal ulcer	संक्रामक परिधि व्रत
Inferior fornix	अधःपुट, निम्नवर्त्मकोण ।
,, Oblique	वक्राधोदर्शिनी–अधः स्था वक्रा ।
,, Rectus	अधोदर्शिनी, अधस्था सरला ।
Inflammation of cornea	शुक्लमण्डल प्रदाह ।
Inflammatory atrophy of optic nerve	प्रदाहजनित दर्शननाड़ी शोष ।

,, ,, Glaucoma	शूलसह अधिमन्थ ।
,, ,, Oedema	प्रदाहजन्य शोथ ।
Infra-orbital artery	नेत्रगुहाधारिया धमनी ।
,, Red rays	रक्तातीत किरणें ।
Injuries	आगन्तुक व्यथा ।
Inner canthus	नेत्रपिण्डस्थान, नेत्रान्तकोण ।
,, Molecular	तन्तुजालिनी अन्तरा, अंतर अणुस्तर ।
,, Nuclear	यवकन्दिनी अन्तरा, अन्तर बीजस्तर ।
Insufficiency of accomodation	सन्धानशक्ति की न्यूनता ।
Internal carotid artery	अन्तर्मातृका धमनी ।
,, Membrane	अन्तःसीमिका, अन्तराच्छादन स्तर ।
,, Rectus muscle	अन्तर्दर्शिनी, अन्तःस्थर सरलापेशी ।
Interstitial Keratitis	शुक्लमण्डलके गर्भ भागका प्रदाह ।
Intra capsular extraction of cataract	आवरणसह कांचबिन्दु निकालने की शस्त्रक्रिया ।
Intumescent cataract	अर्धपक्वावस्थामें कांचबिन्दु ।
Irideotomy	तारामण्डलका छेदन ।
Iridermia	,, ,, अभाव ।
Iridocyclitis	तारामण्डल और तन्तुमय पेशी, उभयका प्रदाह
Iridodialysis	तारामण्डलका विच्छेद ।
Iridodonesis, Iridencleisis	तारामण्डलके सिरेका फसाना ।
Iris	तारामण्डल ।
,, repositor	,, नियोजक ।
,, shadow	,, की छाया ।
Iritis	तारामण्डलप्रदाह ।
Jequirity Seeds	चिरमी ।
Jugular vein	कण्ठकी शिरा ।
Juvenile cataract	युवावस्थागत मोतियाबिन्दु ।
Keratitis	शुक्लमण्डलप्रदाह
,, Lagophthalmus	नेत्रगोलक खुला रहनेसे शुक्लमण्डल पर उत्पन्न क्षत
,, Marginalis Superficialis	उतान परिधिका क्षत

,, ,, Profunda	गम्भीर परिधि क्षत
,, Punctate	शुक्लमण्डलके पिछली वृत्तिमें बहुसंख्य श्वेत बिन्दु
,, Pustuliformis Profunda	शुक्लमण्डलके गम्भीर भागका पूयमयप्रदाह
,, Vesiculae Bullosa	स्फोटमय शुक्लमण्डलप्रदाह
Keratomalacia	शुक्लमण्डलका गलन
Keratoconous	शंक्वाकार-शुण्डाकार शुक्लमण्डल
Keratome	शुक्लमण्डलबन्धन यन्त्र
Klebs-Loffers bacilli	करटरोहिणीजन्य कीटाणु
Lacerations of Iris	तारामण्डलमें चीरे
Lachrymal apparatus	अश्रुवाहक अवयव
Lachrymal	नेत्रद्वाराङ्कुर, अश्रुवाशय
,, artary	आश्रवी धमनी
,, bone	अश्रुपीठास्थि
,, duct	अश्रुवाहक प्रणालिका
,, fossa	अश्रुवाशय खात
,, glands	अश्रुग्रन्थियां, अश्रुजनकपिण्ड
,, papillae	अश्रुद्वाराङ्कुर
,, puncta	अश्रुद्वार
,, sac	अश्रुकुम्भिका अश्रुवाशय
Lagophthalmus	नकुलदृष्टि, अक्षिपुट निमीलनाभाव
Lamellar cataract	चक्राकार कांचबिन्दु
Lamina cribrosa	चालनीपटल
Latent	गुप्त
Lateral fornix	पार्श्ववर्त्मकोण-पार्श्वपुट
,, geniculate	पार्श्विका अविसीठिका
Layer of nerve fibers	वितान सूत्रिणी, नाड़ीस्तर
,, ,, Rods & cones	रूपादानिका, दण्डशंकुस्तर
Lens capsule	दृष्टिमणिवृत्ति, दृष्टिमण्डलधरकला कोष
Lenticonus	शंक्वाकार दृष्टिमणि
Lepra Bacilli	कुष्ठके कीटाणु
Leprous	कुष्ठजन्य

Leucaemia Retinitis	श्वेताणु वृद्धिजनित नेत्रदर्पणप्रदाह
Levator palpebrae Superiories	नेत्रोन्मीलनी
Lice	जूँ
Lid Eversion forceps	पलक उलटनेका चिमटा
Light difference	प्रकाशान्तर ज्ञान
,, minimum	न्यूनतम प्रकाश
,, reaction of pupil	कनीनिका प्रकाशकी प्रतिक्रिया
,, sense	प्रकाशदृष्टि
Limbus Cornea	स्वच्छ शुक्लसन्धि
Lindau's disease	नेत्रदर्पणमें रक्तवाहिनीवृद्धि और स्थली निर्माण
Liquefaction of vitreous	कांचरूप रसका प्रवाहीपना
Lipaemia Retinitis	मेदमय नेत्रदर्पणप्रदाह
Locomotor ataxia	शकुन्तगति रोग
Long Ciliary vein	तन्तुमय समूहकी दीर्घशिरा
,, posterior ciliary art.	दीर्घ पश्चिमगामी धमनियां
Lupus	क्षयकीटाणु जन्य क्षत
Lymphatics	रसवाहिनियां
Lymphatic glands	लसिकाग्रन्थियां
Lymphatic Tissue	रसतन्तु, लसिकातन्तु
Lysozyme	देहोत्पन्न जन्तुघ्न द्रव्य
Macula lutea	पीतबिन्दु।
Malignant Melanoma	मांसार्बुद।
Malignant Tumours	दुष्ट अर्बुद।
Malingering Amblyopia	कृत्रिम अन्धता।
Margenalis	परिधि
Marginal Blepharitis	नेत्रच्छदधाराप्रदाह।
Mastoid process	गोस्तन प्रवर्द्धन।
Maxillary sinus	हनुगर्भकोटर, हन्वीय कोटर।
Machanical injuries	यान्त्रिक व्यथा।
Medial fornix	मध्य वर्त्म कोण, मध्य पुट।
,, wall of the orbit	भीतर की दीवार।

Meduated Nerve fibers	आच्छादनमय दर्शननाड़ी तन्तुके रेषे।
Medulla oblongata	सुषुम्णाशीर्ष।
Medullary Nerve fibres	दर्शननाडीके शिरेके रेषाओंका नेत्रदर्पण पर फैल जाना।
Megalocornea	शुक्लमण्डलकी अस्वाभाविक विशालता।
Meibomian cyst	नेत्रच्छदाबुद, अञ्जननामिका।
,, glands	जलपिण्डमञ्जरी ग्रन्थियां।
Meningitis	मस्तिष्कावरणप्रदाह।
Meningococcous Conjunotivitis	मस्तिष्कावरणप्रदाहजन्य नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह।
Metric	दशांश पद्धति।
Micro-Cornea	शुक्लमण्डलकी लघुता।
Microphakia	सूक्ष्मदृष्टिमणि
Microphthalmus	लघुनेत्र, सूक्ष्मगोलक
Migraine	अर्धावभेदक
Miner's Nystagmus	खनकका अक्षि आन्दोलन
Miotics	कनीनिका संकोचक
Moles	ग्रन्थियां
Molluscum simplex	जन्तुक, चिरकारी मृदु अर्बुद
,, Contagiosum	बहुजन्तुक
Monocular Diplopia	एकाक्षि द्विदर्शन
,, Exophthalmos	एक गोलकका बहिर्निःसरण
,, Fixation	एकनयन अनिमेषता
,, Projection	,, स्थलान्तर दृष्टि
Monolateral Concomitant Convergent Squint	पेशी स्तम्भरहित पार्श्विक अन्तगामी तिर्यग्दृष्टि
Mononuclear	लसीकाणु
Mouth masks	मुखावरण
Multiple Sclerosis of Spinal cord	सुषुम्णाकाण्डके मणियोंका काठिन्य
Mumps	कर्ण ग्रन्थिप्रदाह
Myasthenia gravis	मांसपेशी स्तम्भज क्लान्ति

Muscle biceps	बाहवी द्विशिरस्का पेशी
„ Brachio-radialis	करोताननी पेशी
„ flexors	कूर्परसंकोचनी पेशी
Mydriatics	कनीनिक प्रसारक
Myopia	ह्रस्वदृष्टि
Myopic	लघुदृष्टिजन्य
Myxoedema	घन शोथ
NasalDucts	अश्रुवाहिका
Naevi	रक्तप्रणालीवृद्धि जनित ग्रन्थियां
Naevus,	जतुकमणि, तिल
Naro ciliary Nerves	औपनासिका की नाड़ी
Necrosis	कोथ
Negative	ऋण
Nephritis	वृक्कप्रदाह
Nerve cutan antibrachii lat.	प्रकोष्ठ पार्श्विका त्वचानाड़ी
„ „ „ Medialis	प्रगण्डान्तरीया त्वचानाड़ी
„ fibres	तन्तुबन्ध
Nervous stimulants	वातसंस्था उत्तेजक
Neutral	समभावी, न अम्ल और न क्षारीय
Neuritis	शीर्षप्रदाह
Neuro-retinitis	नेत्रदर्पणका प्रदाह
Neuroparalytic keratitis	वातनाड़ी स्तम्भज शुक्लमण्डल क्षत
New growths	ग्रन्थियां, अर्बुद
Nitric Acid	सोराद्रावक
Non-inflamatory oedema	प्रदाहरहित शोथ
„ aralytic squintp	स्तम्भरहित तिर्यग् दृष्टि
Nonulcerative keratitis	क्षत रहित प्रदाह
Nucleus of lence	बीजमण्डलका
Nystagmus	नेत्रगोलककी चंचलता
Oblique	टेड़ा।
Obliqus Inferior	अधरा वक्रादर्शिनी।
„ superiories	ऊर्ध्वा वक्रादर्शिनी।
Obstruction of the Canalicular	अश्रुवाहक नलीका अवरोध

Occipital lobe	पश्चिम पिण्ड ।
Occipital thalami radiation	,, ,, की ओर वातनाड़ियों के तन्तुओंका फ़ैलान ।
Occlusion Pupillae	कनीनिकाका आच्छादन ।
Occular axis	नेत्राक्ष रेखा ।
,, muscles	नेत्रकी मांशपेशियां ।
Oedema	शोथ ।
Oozing way	क्षरणमार्ग ।
Opacities of Cornea	शुक्र, फूला, शुक्लमण्डलकी अपारदर्शकता ।
,, of lens Cataract	दृष्टिमणिकी अपारदर्शकता—कांचविन्दु ।
,, in vitreous	कांचरूपरसमें अपारदर्शकता ।
Opaque	अपारदर्शकता ।
Ophthalmia	चक्षुप्रदाह ।
,, Neonatorum	बालकोंका पूयमय नेत्रश्लेष्मावरण प्रदाह ।
Ophthalmic artary	नेत्र धमनी, चाक्षुषी धमनी ।
Ophthalmology	नेत्रविद्या ।
Ophathlmoscope	नेत्रदर्शक यन्त्र ।
,, with retinal photography	रोगीके नेत्र दर्पणका चित्र आसके ऐसी रचना सहयन्त्र ।
Optic Chiasma	दृष्टिनाड़ी योजनिका ।
,, disc	दर्शननाड़ीका सिरा, सितविम्ब ।
,, foramen	दर्शननाड़ी रन्ध्र ।
,, lobe	पश्चिम पिण्ड ।
,, nerve	दर्शननाड़ी, दृष्टिनाड़ी ।
,, neuritis	दर्शननाड़ी प्रदाह ।
,, thalmus	आज्ञाकन्द ।
,, tract	दर्शनप्रबन्ध, दृष्टिनाड़ी मूलिका ।
Ora serrata	दंतुरधारामण्डल ।
Orbicularis ciliaris	संधान वलयिका, तन्तुमय मण्डल ।
,, palpebrum	नेत्रनिमीलनी पेशी ।
,, Oculi muscle	,, ,,
Orbit	नेत्रगृह ।
Orbital cellulitis	नेत्रगृहप्रदाह ।

Organic	सेन्द्रिय।
Organs	अंग।
Osteomas	अस्थिमय ग्रन्थियां।
Outer Canthus	नेत्र बहिःकोण।
,, Molecular	तन्तुजालिनी अन्तरा, बाह्य अणुस्तर।
,, Nuclear	यवकन्दिनी बाह्यावीजस्तर।
Palpebral fissure	नेत्रद्वार, पुटान्तरिया परिखा।
Palpebral veines	नेत्रच्छदगा शिरा।
Pannus	सफेदी, कृत्रिमकला।
Panophthalmitis	नेत्रगोलकका प्रदाह।
Papillitis	दर्शननाड़ी शीर्षप्रदाह।
Papilloedema	दर्शन तन्तुओं का शोथ, वातनाड़ीके शिरे का शोथ।
Paracentesis of anterior Chamber	जलमयरस निकालने की शस्त्रक्रिया।
Paralysis	मांसपेशियोंका वध या स्तम्भ।
,, of Accomodation	संयोजनशक्तिका ह्रास।
,, of Ocular muscles	गोलककी एक या अधिक पेशियों का स्तम्भ।
Paralytic Squint	स्तम्भसहित तिर्यग्दृष्टि।
Parasitic Cysts	कीटाणुजन्य रसग्रन्थि।
Parasympathetic root	सहायक स्वतन्त्रमूल।
Parasite	परोपजीवी सूक्ष्मकृमि।
Parathyroid	परिग्रैवेयक।
Parenchymatovs Keratitis	शुक्लमण्डलके गर्भभागका प्रदाह।
Pasteurization	उष्णताजनित कीटाणुनाश।
Pathology	सम्प्राप्तिविज्ञान।
Pediculi cilaris of lids	पलकमें चर्म जूँ।
Pemphigus of Cornea	शुक्लमण्डलका स्फोटक।
Penetrating wounds of Retina	नेत्रदर्पण के घाव।
Perforation	छिद्र।
Perimeter	दृष्टि क्षेत्रमापक यन्त्र।
Peripheral vision	नेत्रदृष्टि।

Periost eum	अस्थिधराकला ।
Periostitis of the orbit	नेत्रगह्वरस्थिका आवरणप्रदाह ।
Peritomy	नेत्रश्लेष्मावरण छेदन ।
Persistent Hyoloid artery	सान्द्रजलकी धमनी का अस्तित्व रहजाना ।
„ pupillary membrane	कनीनिकाके आवरणका अवशेष रहजाना ।
Phlyctena	रक्तपिटिका ।
Phlyctenular conjunctivitis	पिटिकाक्षतमय अभिष्यन्द ।
Phlyctenule	कुकूणक, नेत्रमें पिटिकाक्षत ।
Photogenous Retinitis	प्रचण्ड प्रकाशजन्य नेत्रदर्पणप्रदाह ।
Photometer	प्रकाशमापक यन्त्र ।
Phototherapy	प्रकाशचिकित्सा ।
Phthisis	फुफ्फुस क्षय ।
Physical injuries	भौतिक व्यथा ।
Physiological Cupping	नैसर्गिक विदारण ।
Pia mater	अन्तरावृति चीनाशु ।
Pigmentary layer	रंजित स्तर ।
Pigmentosa	वर्ण बिन्दुसह ।
Pineal	दृक् कन्दिका ।
Pinguecula	वार्धक्यजनित पीतबिन्दु ।
Pituitary gland	पोषणिका ग्रन्थि ।
Platinum loop	प्लेटीनमकी कांचमें बैठाई हुई शलाका ।
Palica Semilunaris	अर्ध चन्द्राकार पुट, कोणच्छदिका ।
Pneumococcal ulcer	न्युमोकोकस जनित परिसरणशील क्षत ।
Polar	मध्यस्थ के लिये ।
Polycoria	अनेक कनीनिका ।
Polycythaemia	रक्ताणुवृद्धि ।
Posterior Chamber	जलमय रसका पश्चिम खण्ड, पश्चिमा जलधानी ।
„ Myopic Crescent	पश्चिम भागमें अर्ध चन्द्राकार ह्रस्व दृष्टि ।
„ Polar cataract	दृष्टिमणिके पिछले पर्त्तमें एक अपारदर्शक धब्बा ।
„ Staphyloma	पश्चिम भागमें प्रलम्बन
Predisposing	पूर्वप्रवर्त्तक ।

Presbyopia	वार्धक्यजन्य दृष्टिमांद्य।
Primaryoptic atophy	दर्शनतन्तुओं का प्राथमिक शोष।
Prism	त्रिकोणघन काच।
Profunda	गह्वराभाग।
Projection of light	प्रकाश प्रक्षेपण (स्थलान्तर दृष्टि)।
Prolifer:ens	रेषाकार।
Prostate gland	पौरुषग्रन्थि।
Protanopia	रक्तवर्णान्धता।
Provocative tests	प्रकोपक कसौटी।
Pseudo-neuritis	मिथ्या नाड़ी प्रदाह।
Pesudoptosis	मिथ्या निमीलन।
Pterygium	वेल।
Ptosis	ऊर्ध्वाक्षिपुट निमीलन, अक्षिपुट पतन।
Pulsating Exophthalmos	बहिर्निः सरित गोलकमें स्पन्दन।
Pulsation of Retinal vessels	नेत्रदर्पणस्थ रक्तप्रणाली में स्पन्दन।
Punctate Cataract	चिह्नमय काचबिन्दु।
Punctata Lachrymalis	अश्रुद्वार।
Punctvm Lachrymal	अश्रुद्वार।
Pupil	कनीनिका।
Purulent chorioiditis	पूयात्मक नेत्रमध्यपटलप्रदाह।
Purulent ophthalmia	पूयपूर्ण नेत्रश्लेष्मावरणप्रदाह।
Pustulifomis	पूयमय।
Pyeamia	पूयमय रक्तविकार।
Pyorrhoea	मसूढ़ेका पूय दंतपूय।
Rasp	पोथकी घर्षक यन्त्र
Recession	सरलापेशीका अपसारण
Rectus muscle	सरला पेशी
Redium therapy	रश्मिकिरण चिकित्सा
Reflectea light	प्रतिफलित प्रकाश
Refraction	वक्रीभवन या भुग्नीभवन
Repositor	नियोजक
Retina	नेत्रदर्पण
Retinal degeneration	मध्यस्थ नेत्रदर्पणका अपकर्ष

Retinal detachment	नेत्रदर्पणतन्तुका विच्छेद
Retinitis	नेत्रदर्पणप्रदाह
,, Circinata	मण्डलाकार नेत्रदर्पण प्रदाह
,, Pigmentosa	रतौंधी, वर्णबिन्दुसह नेत्रदर्पणप्रदाह नक्तान्ध्य
,, Proliferens	रेपाकार नेत्रदर्पप्रदाह
Retinitis Punctata Albescens	श्वेतबिन्दुसह नेत्रदर्पणप्रदाह, नक्तान्ध्य
,, Stelleta	नक्षत्राकार नेत्रदर्पणप्रदाह
Retnoscopic mirror	प्रतिफलित प्रकाशप्रददर्पण
Retiinoscopy	प्रकाश प्रतिबिन्ब पद्धति
Retrobulbar	नेत्रका पिछला हिस्सा
,, Neuritis	पश्चिमा दर्शननाड़ीप्रदाह
Rickets	अस्थिवक्रता
Rodent ulcer	दुष्टव्रण
Rods and Cones	पर्त्तदण्ड और शंकु
Sagittal Diameter	नेत्रगोलकका अनुलम्ब (पूर्व पश्चिम) व्यास
Sarcoma	मांसार्बुद
Saprophite	क्षीणसत्वपोषित
Scalpal	लघु छुरिका
Scarlet fever	शोणित ज्वर
Schlemm's Canal	अग्र जलमार्ग
Sclera	नेत्रबाह्यपटल
Scleritis	नेत्रबाह्यपटलका प्रदाह
Sclerosing Keratitis	नेत्रबाह्य पटलके प्रदाहसह उत्पन्न शुक्ल मण्डलप्रदाह
Sclerotomy	नेत्रबाह्यपटलमें छिद्र
Scotoma	अन्ध प्रदेश
Scotometer	अन्ध प्रदेश मापक यन्त्र
Scrofula	कण्ठमाल
Scrofulous infiltrates	कण्ठमालज अन्तर्भरण
Scurvy	रक्तपित्त
Seclusi n of Pupil	कनीनिका का अवरोध
Secondary	उपद्रवात्मक, अनुषंगी

	वृद्धावस्थागत मोतियाबिन्दु
Sensory area	सज्ञाधिष्ठान
,, nerve	संज्ञावहनाड़ी
,, root	संज्ञावह मूल
Sequelae	विकृति
Serous cysts	रसग्रन्थियां
Serpiginous ulcer	परिसरणशील क्षत
Siderosis Bulbi	लोहभस्मजन्य शुक्लमण्डलकी पिङ्गलता
Sinus	कोटर सरित
Slit lamp	प्रकाशकेन्द्रक दीपक
Small wing	लघु पक्षति
Smoked goggles	काले रंगका चश्मा
Sodium Chloride	शुद्ध नमक
Solar Blindness	सूर्य प्रकाश जनित अन्धता
Spasmodic Squint	आक्षेपज तिर्यगृदृष्टि
Spastic loss of conjugate movement	आक्षेपजन्य संधानगति भ्रष्टता
Spatula	लेपनी, छुरी
Speculum	नेत्रप्रसारक कमानी
Sphenoid bone	जतुकास्थि
Sphincter Pupillae muscl	कनीनिका संकोचक पेशी
Spinal Cord	सुषुम्णाकाण्ड
Spuxd	खोदनी
Squamous	शुष्क
Squint	तिर्यगृदृष्टि
Stain	रंजके
Stannoxyl	वङ्ग भस्म
Staphyloma of Sclera	नेत्रबाह्यपटलका प्रलम्बन
Stellate	तारकार, नक्षत्राकार
Stenopaic disc	दृष्टिसंकोचक कांच
Stenosis of Punctum	अश्रुवाहक छिद्रका संकोच
Stereoscope	धनवीक्षणयन्त्र
Strabismometer	तिर्यगृदृष्टि मापन यन्त्र

Strabismus	गोलककी तिर्यग्दृष्टि
Streptothrix	विभागरहित वनस्पति कीटाणु
Stricture	संकोच
Striate	रेखामय
Stroma	गर्भस्तर
Stye	अंजननामिका
Subconjunctival Ecchymosis	नेत्रश्लेष्मावरणके नीचे रक्तस्राव
Subcortic l optic Centre	वल्कके नीचे स्थित नेत्रका केन्द्रस्थान
Sun rays chart	सूर्यकिरणपत्रक
Super and Infer Palpebral Veins	नेत्रच्छदमा उत्तरा और अधरा शिरा
Superficial	उत्तान
Superior Colliculus	कलायिका चतुष्टय
,, fornix	ऊर्ध्वपुट, उर्ध्ववर्त्मकोण
,, obeique muscle	ऊर्ध्वा वक्रापेशी, वकोर्ध्वादर्शिनी
,, tarsus	नेत्र चौखटका ऊर्ध्वदेश
Supra orbital artery	ऊर्ध्वभ्रुवाधमनी
,, ,, fissure	पक्षान्तराल
Suppuration	पूयमय पाक
Suppurative	पूयात्मक
Surgical Interference	शस्त्रक्रियाजनित प्रतिबन्ध
Suspensory Ligament of the lens	दृष्टिमणि उद्बन्धन
Symblepharon	गोलक और पलकके आवरणकी संलग्नता
Sympathetic nerve	स्वतन्त्र नाड़ी
,, ophthalmia	समदुःखी चक्षुप्रदाह
,, root	स्वतन्त्रनाड़ी मूल
Synechia	संलग्नता
Syphilis	उपदंश
Syphilitic inflamation	उपदंशज प्रदाह
Tabes	विकृति, शोष।
,, dorsalis	शकुन्तगति रोग।
Tachycardia	हृत्स्पन्दनवृद्धि।

Tarsus	नेत्रकोमलास्थि, क्षुद्रपत्रिके ।
Tay-Sach's di-ease	अन्धतासह कौटुम्बिक मूढ़ता ।
Tears	चीरे ।
Telescope	दूरदर्शकयन्त्र ।
Temporal art	अनुशंखा धमनी ।
Tendon	कण्डरा ।
Tenon's Capsule	नेत्रधरकला कोष ।
Tenonitis	टेननके आवरणका प्रदाह ।
Tenotomy	पेशीके सिराका छेदन ।
Tension	कठिनता दबाव ।
Tertian malarial fever	तृतीयक विषमज्वर ।
Testes	वृषण ।
„ of Binocular movements	दोनों नेत्रोंकी गतिकी परीक्षा ।
Tetanus	आक्षेपक वात ।
Thalamus, Thalami	आज्ञाकंद, दर्शनेन्द्रस्थान ।
Thrombosis of the Cavernous Sinus	त्रिकोणिका सिरासरितामें रक्तजमाव ।
Thymus	बालग्रैवेयक ।
Thyroid gland	ग्रैवेयक ग्रन्थि ।
Tonometer	कठिनतामापक यन्त्र ।
Tonomatry	नेत्रान्तर दबावका नाप ।
Tonsillitis	ग्रसनिका ग्रन्थियोंकाप्रदाह ।
Tansils	गलग्रन्थिया ।
Toxic	विषोत्पादन ।
Toxin	विष ।
Trachoma	रोहे, पोथकी ।
Trachomatous ulcers of Cornea	पोथकी (रोहे) जनित क्षत ।
Transillumination	प्रतिप्रकाश ।
Transilluminator	पारप्रकाशदीपक, प्रतिप्रकाश यन्त्रसे परीक्षा ।
Transmission	प्रतिफलित ।
Transparent	पारदर्शक ।
Transverse diameter	आडा व्यास ।
Traumatic Aniridia	व्यथाजन्य तारामण्डल वियोग ।

Traumatic Cataract	अभिघातज कांचबिन्दु।
,, Dislocation of lens	दृष्टिमणिकी व्यथाजन्य स्थानभ्रष्टता।
Tremulous	कम्प।
Trephining	गोलछिद्र, वेधनक्रिया।
Treponema pallidum	उपदंशके कीटाणु।
Trichiasis	परवाल, नेत्रच्छदका अन्तर्वलन।
Trigeminus nerve	पाञ्चवी नाड़ी।
Tritanopia	नीलपीतान्धता।
Tubercle bacilli	क्षयोत्पादक कीटाणु
Tuberculosis of Conjunctiva	नेत्रश्लेष्मावरण क्षय
Tuberculous ulcers	क्षयजनित क्षत
Tumours	अर्बुद
Tunic	पटल
Ulcerative Keratitis	क्षतसहित शुक्लमण्डल प्रदाह।
Ulcers of the Eyedlids	पलक क्षत।
Ulcerous Blepharitis	क्षतमय अक्षिपुट प्रदाह
Undine	नेत्र धोने की कांच की कूपी
Uraemic Amblyopia	मूत्र विषजनित अन्धता
Urae	मूत्रीया
Urinal	मूत्रपात
Ultra violect rays	नीलातीत किरण
Vaccination	शीतलाका टीका
Vascular Layer	रक्तवाहिनीमय स्तर
Vaso Constrictors	रक्तप्रणाली संकोचन
Vaso diletors	,, प्रसारक
Vein	शिरा
Vena Basilica	अन्तर्बाहुका शिरा
,, Cephellica	बहिर्बाहुका शिरा
,, Mediana cubiti	मध्य बाहुका योजनी शिरा
Venae vorticosae	शिरा गुल्मिका
Venesection	रक्तमोक्ष-शिरामोक्षा
Venous Thrombosis	शिराबरोध
Vertiole diameter	उत्तान (खड़ा) व्यास

Visible light	दर्शनीय प्रकाश
Visual acuity	दृष्टि परीक्षा
„ axis	दृश्याक्ष रेखा
Visaul purple	चाक्षुष-बैंजनी रंग
Vitreous Humour	काँच रूप रस
Von Hippel's disease	नेत्रदर्शन में रक्तवाहिनी वृद्धि और स्थली निर्माण
Watery eye	नेत्रमें जलश्राव
Warts	मस्सा
White blood Corpuscles	श्वेत रक्ताणु
Xanthelasma	पीत सर्षपवत् पिडिकाएं
Xerophthalmia	शुष्क अभिष्यन्द
Xerosia	शुष्कता
X ray	क्ष किरण
Zinc oxide	जसद भस्म
Zonular Cataraot	पट्टीसदृश चक्राकार कांचबिन्दु
Zounle of Zinn	दृष्टिमणि बन्धनी
„ „ „	दृष्टिमणि उद्बन्धन
Zoster	कक्षा

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
L B S National Academy of Administration, Library
मसूरी
MUSSOORIE
यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है।
This book is to be returned on the date last stamped

दिनाक Date	उधारकर्त्ता की सख्या Borrower's No	दिनाक Date	उधारकर्त्ता की सख्या Borrower's No

GL H 617 7
VAI
125771
LBSNAA

14024

अवाप्ति म.
ACC No.....

वर्ग सं.
Class No.....

पुस्तक म.
Book No .....

लेखक
Author..... वैद्य, जादवजी हंसराज

शीर्षक
Title ..... नेत्ररोग विज्ञान ।

H
617.7

LIBRARY 14024
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

वैद्य

Accession No. 125771

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving